रजत जयन्ती ग्रन्थ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा

सम्पादक–मण्डल

★

प्रकाशकीय

समितिकी यह प्रबल इच्छा थी कि रजत जयन्तीके अवसरपर ही यह "रजत जयन्ती ग्रन्थ" प्रकाशित हो सके; किन्तु हमारे अनथक परिश्रमके बावजूद भी परिस्थितियोंने हमारा साथ न दिया। कई विद्वानोंसे सामग्री प्राप्त होनेमें काफी विलम्ब लगा और मुद्रण आदिके कार्यमें भी कई ऐसी अपरिहार्य कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा जिसके कारण इस ग्रन्थके प्रकाशनमें अनपेक्षित विलम्ब हो गया। इसके लिए हम अपने सभी अग्रिम ग्राहकों एवं राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंसे क्षमा चाहते हैं।

आज हमें इस ग्रन्थको अपने ग्राहकों एवं राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंके हाथोंमें देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थकी सामग्रीको पाँच खण्डोंमें विभक्त किया गया है।

पहले खण्डमें महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, कर्नाटक केरल, तमिलनाड, ओड़िशा, पंजाब, मणिपुर, बंगाल और कश्मीर आदि प्रान्तोंकी हिन्दीको देनके सम्बन्धमें चर्चा की गई है। इस चर्चामें जहाँ-जहाँ सम्भव हुआ है, वहाँ-वहाँ इन-इन प्रान्तोंकी भाषाओंका हिन्दीके साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे खण्डमें राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अबतक हिन्दी साहित्यके इतिहासमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अपनायी गई काल-विभाजनकी पद्धतिको ही लिया जाता रहा है। प्रस्तुत लेखमें विद्वान लेखकने इस इतिहासको एक नई दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न किया है। हिन्दीके व्यापक रूपके अन्तर्गत आनेवाली प्रत्येक विभागकी प्रकृति, उसके साहित्यकी विशेष प्रवृत्तियों और लक्षणोंका सामान्य परिचय देकर उस साहित्यके विशिष्ट कवियों और लेखकोंकी विश्लेषणात्मक व्याख्या की गई है।

तीसरे खण्डमें राष्ट्रभाषाके निर्माण, उसकी पारिभाषिक शब्दावली, प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह, वैज्ञानिक विषयोंपर लिखे गए साहित्यकी परिचयात्मक जानकारी आदि विषयोंपर अधिकारी विद्वानों द्वारा सामग्री प्रस्तुत की गई है।

चौथे खण्डमे नागरी लिपि, उसकी उपादेयता, उसकी वैज्ञानिकता, उसकी प्राचीनता एवं उसमें किये गए सुधारो आदिका विस्तृत विवेचन है।

पाँचवें खण्डमें राष्ट्रभाषा-प्रचारकी गतिविधियोंकी अद्यतन जानकारी प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया गया है। राष्ट्रभाषा-प्रचारमे जो-जो सरकारी, गैर सरकारी प्रयत्न हुए, उन सबका विस्तृत विवेचन है।

सभी विषयोंपर अधिकारी विद्वानों द्वारा सामग्री प्रस्तुत कराई गई है। इन सभी विद्वानोंने लेख लिख भेजनेमें सहर्ष अपना जो अमूल्य सहयोग दिया, उसके लिए समिति उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

सारी सामग्रीको मुद्रणके लिए देनेसे पहले एक बार देख लेनेमें जिन कार्यकर्ताओंका तथा सामग्रीको सुन्दर रूपमें मुद्रित करनेमे राष्ट्रभाषा प्रेसका जो सहयोग प्राप्त हुआ, उसके लिए समिति उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है। ग्रन्थको अधिक सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण बनानेके हेतु चित्रोंको तैयार करनेमे श्री रमणभाईका सहयोग प्राप्त हुआ। आवरणकी डिजाइन श्री विजय बऱ्हाणेने तैयार की, अतः समिति उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है। ऐसे बड़े आयोजनोंकी सफलताके पीछे जाने-अनजाने कई लोगोंका सहयोग और परामर्श होता है, जिसके बिना कार्य पूरा होना कठिन हो जाता है। अतः यहाँ ऐसे सभी लोगोंके प्रति नाम देकर कृतज्ञता व्यक्त करना सम्भव नही है। हम उन सभीके प्रति अपनी सामूहिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। हम आशा तथा विश्वास भी करते हैं कि समग्र रूपसे हमारा यह प्रयास सभी राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

संयोजक,

रजत-जयन्ती-महोत्सव

अनुक्रमणिका

महात्मा गाँधी

प्रान्तीय भाषा-भाषियोंके अन्तर प्रान्तीय विनिमयके लिए एक
राष्ट्रभाषा समस्त भारतके लिए जरूरी है और
वह केवल 'हिन्दी' ही हो सकती है।

—मो. क. गाँधी

पहला खण्ड
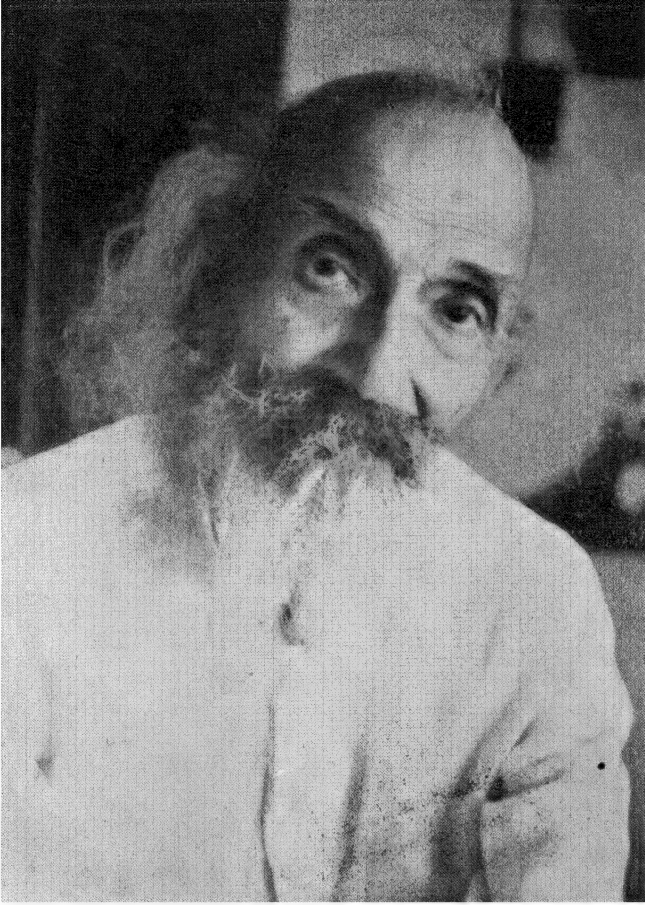
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

महाराष्ट्रकी हिन्दीको देन

डॉ. विनयमोहन शर्मा

भारतके दक्षिणापथ (महाराष्ट्र) में नव्य भारतीय आर्य-भाषा-कालके उपरान्त ईसाकी लगभग १३ वीं शतीसे प्राय: प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदायके सन्तोंकी हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है। इसके धार्मिक, राजनैतिक आदि कारणोंके अतिरिक्त हिन्दी-मराठी भाषाओंका पारस्परिक निकट सम्बन्ध भी एक कारण है। मराठी भाषियोंकी हिन्दी-सेवाका उल्लेख करनेके पूर्व हम इन दो भाषाओंके पारस्परिक सम्बन्धका भाषा-विज्ञानके आधारपर सिंहावलोकन करेंगे।

हिन्दी-मराठी भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध

दोनों भाषाएँ एक ही आर्य-भाषा-परिवारकी है। यद्यपि आर्योंके मूल स्थानका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है तो भी ऐसा विश्वास है कि वे ईरानके मार्गसे शनै: शनै: भारतमें प्रविष्ट होते रहे है और लगभग ईसाके १५०० वर्ष पूर्व उनकी प्रथम टोली पंजाबमें प्रविष्ट हुई। वहाँ बसनेके उपरान्त वे धीरे-धीरे भारतके विभिन्न क्षेत्रोंमें फैल गए और इस प्रकार वे जहाँ-जहाँ गए, अपनी भाषा भी स्वभावत: लेते गए। भाषा-विज्ञानियोंने उनके भाषाविकास-क्रमको मुख्यत: तीन कालोमें विभाजित किया है—

(१) **प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा-काल** (लगभग १५०० ईसा पूर्वसे लगभग ५०० ईसा पूर्व तक) अिस कालमें वैदिक और लौकिक संस्कृतका विकास हुआ।

(२) **मध्य भारतीय आर्य-भाषा काल** (लगभग ५०० ईसा पूर्वसे १००० ई० तक) यह पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंके उदय और विकासका काल है।

(३) **नव्य भारतीय आर्य-भाषा-काल** (इसका प्रारम्भ १००० ई० सन् से होता है।) यह वर्तमान आर्य भाषाओंके उदयका काल है। मराठी और हिन्दीके उदयका प्राय: यही काल है।

मराठीकी उत्पत्ति: महाराष्ट्री—महारठ्ठी—महरठ्ठी—मर्हाठी—मराठीसे लगाई जाती है। इसे 'देसी' और 'प्राकृत' भी कहा गया है। इसमें पूर्व वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश-सभीके थोड़े बहुत अंश विद्यमान होनेसे इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंमें मतभेद उपस्थित हो गया है।

एक मतके अनुसार इसका जन्म पूर्व वैदिकसे, दूसरे मतके अनुसार संस्कृतसे, तीसरे मतके अनुसार पालिसे, चौथे मतके अनुसार महाराष्ट्री प्राकृतसे और अन्तिम मतके अनुसार महाराष्ट्री अपभ्रंशसे हुआ है। एक धुंधला मत यह भी है कि यह मूलतः देशभाषा है अर्थात् द्रविड़ भाषापर आधारित पर संस्कृत तथा प्राकृत एवं अपभ्रंशसे प्रभावित है। इसमें सन्देह नहीं कि मराठी पूर्ववैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंशके मार्गसे ही अवतरित हुई है। अतः इसमें इन सभी भाषाओके अवशेष विद्यमान रह सकते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मराठीका पूर्व वैदिक भाषा परिवारसे सम्बन्ध है। मराठीका सीधा जन्म उस परिवारकी किस भाषा-शाखासे हुआ है, इसे जाननेके लिए हमें उसके शब्द-भण्डारकी ही नहीं, उसकी वर्ण, प्रत्यय और प्रयोग-प्रक्रियाकी भी परीक्षा करनी होगी, क्योकि ये ही भाषाके भीतरी उपकरण होते हैं। ये जिस भाषासे अधिक मेल खाअेंगे, वही उसकी जननी मानी जाएगी। मराठी-भाषियोंमें उसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दो ही मत प्रमुख हैं; (एक) मराठीका जन्म सीधे महाराष्ट्री प्राकृतसे हुआ है। डा० ब्लाख, ग्रियर्सन आदि इस मतके पोषक है। (दो) मराठीका जन्म सीधे महाराष्ट्री अपभ्रंशसे हुआ है। डा० तुलपुले, डा० कोलते आदि इस मतके समर्थक है। दूसरा मत ही आधुनिकतम है और मान्य है। क्योंकि यह वर्तमान आर्य भाषाओंके विकास-क्रमसे मेल खाता है। प्राकृतों और नव्य आर्य भाषाओंके मध्यमें अपभ्रंशोंका काल आया है, इसे प्रायः सभी भाषा-वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। यह भी मान्य सिद्धान्त है कि भाषाका विकास क्रमशः होता रहता है। अतः प्राकृतोंका अपभ्रंशोंमें रूपान्तरित होना विकास-क्रमकी स्वाभाविक क्रिया है और अपभ्रंशोंका ही विकास आधुनिक आर्य भाषाओके रूपमें हुआ है। जैन अपभ्रंश साहित्यके प्रकाशनके पश्चात् मराठीके जन्मके इतिहासकी क्रमिक श्रृंखला जुड़ जाती है। उसकी उत्पत्तिका काल आठवीं शताब्दी माना जाता है। उसके प्रथम चिन्ह मैसूरके श्रवणबेलगोलाके शक ९०५ के शिलालेखमें मिलते हैं। वहाँ गौमटेश्वरकी प्रस्तर-मूर्तिके चरणोंपर उत्कीर्ण दो पंक्तियाँ हैं—

"श्री चामुण्डराजे करविमले।
श्री गंगराजे सुत्ताले करविमले।"

मराठीकी उपबोलियोंमें हार्नलेने कोंकणी, दक्षिणी और रत्नागिरीका उल्लेख किया है परन्तु डा. गुणे इनमें और मूल मराठीमें, जो पुणेंके आसपास बोली जाती है, कोई भेद नहीं देखने। मराठी क्षेत्रकी सीमाएँ उत्तरमें विंध्य और सतपुड़ाका भाग, पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें तेलंगाना और छोटा नागपुर तथा दक्षिणमें कन्नड़ है। मराठीका आदि ग्रन्थ मुकुन्दराजका 'विवेकसिन्धु' माना जाता है, जिसकी रचना शक संवत् १११० में हुई है।

हिन्दीकी उत्पत्ति: 'हिन्दी', शब्द फारसी है। इसका उल्लेख अति प्राचीन आर्य भाषा ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। सम्भवतः भारतमें मुसलमानोंके आक्रमणके पूर्व फारसी भाषा भाषियोंने 'सिन्धु' को 'हिन्दु' कहना प्रारम्भ कर दिया होगा क्योंकि फारसीमें 'स' का उच्चारण 'ह' होता है। सिन्धुका ही हिन्दु बन गया है जो सिन्धुके देशका द्योतक हो गया और जो हिन्दमें रहते थे उन्हें 'हिन्दी' कहा जाने लगा। कालान्तरमें हिन्दियोंकी भाषाका नाम हिन्दी पड़ गया। यों समस्त हिन्द-वासीके लिए हिन्दीका प्रयोग हो सकता है; परन्तु हिन्दीका प्रयोग उत्तरापथके मध्य देशकी शौरसेनी और अर्द्धमागधी, मागधी अपभ्रंशोंसे

उत्पन्न भाषाओंके लिए सीमित हो गया है। जो शब्द मूलतः हिन्दी वासियोंका बोधक है, वह अर्थ-संकोचके नियमानुसार हिन्दके विशिष्ट भू-भागकी भाषाका परिचायक हो गया है। डा० ग्रियर्सनने हिन्दीके दो मुख्य भेद किये है; (एक)—पश्चिमी हिन्दी और (दो)—पूर्वी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दीके अन्तर्गत खड़ी बोली या हिन्दुस्थानी, बांगरू, कन्नौजी, ब्रज और बुन्देलीका समावेश उन्होंने किया है, और पूर्वी हिन्दीके अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ीका। उन्होंने मागधी अपभ्रंशसे उत्पन्न बिहारीको हिन्दीसे पृथक् मानकर उसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार उन्होने राजस्थानीको भी हिन्दीसे पृथक् घोषित कर उसका पृथक् ही परिवार बना दिया है। डा० भाण्डारकरने हिन्दीके पश्चिमी और पूर्वी भेद स्वीकार नहीं किए। दोनोंको एक ही नाम हिन्दीसे अभिहित किया है। उन्होंने राजस्थानीको भी हिन्दीकी ही उपभाषा स्वीकार किया है। आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक बिहारी भाषाओंको हिन्दीके अन्तर्गत माननेके पक्षमें होते जा रहे है।

हिन्दीके प्रादुर्भाव कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है; परन्तु एकाध मतको छोड़कर सभी मानते है कि उसका विकास अपभ्रंशोंसे ही हुआ है और उसका आदिकाल लगभग १००० ई० है। यों ईसा सन्के लगभग २०० वर्ष पूर्वसे भी उसके विकास-चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं। परन्तु उस कालकी रचनाओंको हिन्दीका आभास देनेवाली अपभ्रंश कृतियाँ मानना चाहिए।

हिन्दी-मराठीकी परस्पर तुलना

शब्द-निधि: दोनों भाषाओंमें प्राचीन और अर्वाचीन आर्य द्रविड़, अरबी, फारसी, अँग्रेजी, डच, पुर्तगाली आदि भाषाओंके शब्द है। परन्तु दोनोंका मूल संस्कृत भाषा-परिवार होनेसे दोनोंमें संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्दोंकी प्रचुरता है। खड़ी बोली हिन्दीकी प्रवृत्ति तत्समताकी ओर अधिक है और मराठीकी तद्भवताकी ओर। मराठीकी विशेषता यह है कि वह उधार लिये हुए शब्दोंको तत्सम रूपमे न रखकर अपने रंगमें रँग लेती है। उदाहरणके लिए मजमून (अरबी), गजब (अरबी), मजहब (अरबी), मशहूर (अरबी), सिवा (अरबी), स्टेशन (अँग्रेजी), शब्द मराठीमें क्रमशः मजकूर, गहजब, महजब, महशूर, शिवाय, ठेसन बन गए है। हिन्दीकी विभाषाओं—ब्रज, अवधी, बुन्देली, राजस्थानी, भोजपुरी आदिमें मराठीके समान ही विदेशी शब्दोंको अपनी प्रवृत्तिमें रँग लेनेकी वृत्ति पाई जाती है।

हिन्दी-मराठीकी प्रवृत्तियाँ: हिन्दी और मराठी-दोनों भाषाओंकी लिपि देवनागरी अथवा बालबोध है। दोनोंकी वर्णमालामें समानता है। व्यंजनोंमें ("ल"के साथ) 'ळ' व्यंजन ध्वनि मराठीमें अधिक कही जाती है। परन्तु यह कथन पूर्वी हिन्दीके सम्बन्धमें लागू होता है। पश्चिमी हिन्दीकी मालवी, निमाड़ी तथा राजस्थानी उपभाषाओंमें यह 'ळ' ध्वनि है।

कर्ता-कारक एकवचन अकारान्त संज्ञा-शब्द प्राचीन मराठीमें 'उ' और ओकारान्त होते हैं। जब उकारान्त होते है तब पूर्वी हिन्दीका अनुसरण करते है और जब ओकारान्त होते है तब पश्चिमी हिन्दीका। पश्चिमी हिन्दीमें भी कहीं-कहीं अकारान्त संज्ञा शब्दोंका कर्ता एकवचनमें उकारान्त रूप मिलता है।

मराठी और पश्चिमी भाषाओंके वर्ण-उच्चारणोंमें प्रायः समानता रहती है। 'अ' का उच्चारण ह्रस्व 'अ्' ही होता है। बंगलाके समान 'ओ' नहीं।

'व' और 'ब' का भेद मराठीमें पश्चिमी हिन्दीकी खड़ी बोली, राजस्थानी आदिके समान स्पष्ट दिखाई देता है।

मराठीमें च, ज, ज्ञ, का जिस प्रकार उच्चारण होता है, उस प्रकार पूर्वी भाषाओंमें नहीं होता। मराठीमें इनके शुद्ध तालव्य और दन्त्य तालव्य उच्चारण मिलते हैं। मराठीमे दन्त्य और मूर्धन्य—स, ष, और श, वर्ण विद्यमान हैं। पश्चिमी हिन्दीमें ये तीनों वर्ण हैं पर मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'स' होता है। पूर्वी हिन्दी (अवधी) में 'श' के स्थानपर 'स' ही अधिक प्रयुक्त होता है। बिहारी और सुदूर पूर्वकी बंगलामें 'स' के स्थानपर 'श' का साम्राज्य है। पूर्वी हिन्दीके ग्रन्थोंमें 'ष' मिलता है पर उसका उच्चारण पश्चिमी हिन्दीके समान 'स' होता है।

'ऋ' का उच्चारण पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दीमें 'रि' होता है और मराठीमें 'रू'।

मराठीमें तीन—पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक-लिंग होते हैं। राजस्थानी डिंगलके प्राचीन ग्रन्थोंमें स्त्रीलिंग और पुंलिंगके अतिरिक्त कहीं-कहीं नपुंसकलिंगके उदाहरण भी मिलते हैं।

ऊपर कहे अनुसार आकारान्त मराठी संज्ञापदका रूप एकवचनमें खड़ी बोली और भोजपुरीके समान, पर बहुवचनमें खड़ी बोली पश्चिमी हिन्दीके समान होता है। यथा—

एकवचन

घोडा (मराठी) भोजपुरी—घोड़ा, खड़ी बोली—घोड़ा

बहुवचन

घोडे (मराठी) भोजपुरी—घोड़न, खड़ी बोली—घोड़े और पूर्वी हिन्दी—घोड़न्ह।

मराठी सम्बन्धवाचक सर्वनामोंका पश्चिमी हिन्दीके समान एकवचनमें 'ओ' से अन्त होता है, पर बहुवचनमें वे पूर्वी हिन्दी भोजपुरीका अनुकरण करते हैं। यथा—

एकवचन

मराठी—जो, पश्चिमी हिन्दी—जो, पूर्वी हिन्दी—जे

बहुवचन

मराठी—जे, पश्चिमी हिन्दी—जो, पूर्वी हिन्दी—ज

मराठीमें मागधीसे उद्भूत बिहारी, बंगला आदि भाषाओंका भूतकालीन 'ल' प्रत्यय पाया जाता है।

मराठी (भूतकाल)	भोजपुरी (भूतकाल)
गेला	गइल

मराठीमें कैसा, कैसे, ऐसा, जो, जैसे, ऐसे, तैसे, जैसी, पश्चिमी हिन्दीके समान ही प्रयुक्त होते हैं।

मराठीमें प्रश्नवाचक सर्वनाम 'काय' पश्चिमी हिन्दीकी बुन्देलीके समान 'काय' ही है। यथा—

मराठी	**बुन्देली**
काय रे, कसा बसला आहे ?	काय रे, कैसो बैठो हे ?

इसी प्रकार मराठी 'आपण' पश्चिमी हिन्दी (बुन्देली) 'अपन' के सदृश है जो खड़ी बोलीमें भी प्रयुक्त होने लगा है। यथा--

मराठी--चला आपण चलू। **बुन्देली**--चलो, अपन चलें।

मराठीमें राजस्थानीके समान 'न' के स्थानपर 'ण' की बहुलता है। मराठी की 'ळ' ध्वनि राजस्थानीमें भी है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

मराठीका बुन्देलीसे बहुत कुछ सामीप्य दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि वह अपने क्षेत्रके उत्तरपूर्वमें उसके सम्पर्कमें प्रारम्भसे रही है। दोनोंके साम्यके कतिपय उदाहरण नीचे दिए जाते हैं--

मराठीकी 'होता' भूतकालिक क्रिया बुन्देलीमें एकवचनमें 'हतो' है और बहुवचन में 'हते ?'। मराठीमें उसका बहुवचन रूप 'होते' है। यथा—

मराठी एकवचन-- राम जात होता।
बुन्देली ,, राम जात हतो।
मराठी बहुवचन-- मुलगे जात होते।
बुन्देली ,, मोडा जात हते।

प्राचीन मराठीमें 'नोहे' क्रिया खड़ी बोली 'नहीं' है' के अर्थमें प्रयुक्त होती है। बुन्देलीमें इसी अर्थमें 'नोंही' प्रचलित है।

हिन्दी-मराठी साम्यके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं; किन्तु यह लेखका मुख्य विषय न होनेसे उसके कतिपय उदाहरण मात्र प्रस्तुत किए गए है। फिर भी संक्षिप्त विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है कि ये दो आर्य भाषाअें बहुत अधिक सन्निकट है।

हिन्दीपर मराठीका प्रभाव : जहाँ मराठी हिन्दी भाषी क्षेत्रसे घिरी हुई है, वहाँ उसका प्रभाव इस क्षेत्रकी हिन्दीपर स्वभावतः पड़ा है। यह प्रभाव नागपुर, छत्तीसगढ़ विदर्भ और हैदराबाद राज्य-क्षेत्रोंमें अधिक परिलक्षित होता है। नागपुर और विदर्भमें जो व्यावहारिक हिन्दी बोली जाती है,उसे हिन्दी-मराठीके प्रमुख केन्द्र-स्थान नागपुरके नामपर 'नागपुरी हिन्दी' कहा जाता है। डा० ग्रियर्सनने अपनी 'लिग्वि-स्टिक सर्वे भाग ६' में नागपुरी हिन्दीका वर्णन किया है। उन्होंने इसका क्षेत्र नागपुर* जिला बतलाया है और इसके बोलनेवालोंम उन्हींको सम्मिलित किया है, जिनकी मातृभाषा हिन्दीका कोई रूप है। उन्होंने नागपुरी हिन्दीका जो उदाहरण दिया है, वह ऐसे परिवारका है जिसकी मातृभाषा बुन्देली है। ग्रियर्सन ने यही भूल की है। नागपुरी हिन्दीका क्षेत्र नागपुर ही नहीं, विदर्भ तक फैला हुआ है और इसे बोलनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी ही नही, अहिन्दी-भाषा-भाषी भी हैं। वास्तवमें यह व्यापारी क्षेत्र तथा बाजारमे विभिन्न भाषा-भाषियोंके मध्य विचारोंके आदान-प्रदानकी बोली है।

मराठी क्षेत्रमें हिन्दी-संचारके कारण

दक्षिणापथमें हिन्दीका प्रवेश मध्यदेशीय भाषा-विकासकी एक श्रृंखला ही है। महाराष्ट्रमें

उसका संचार मध्यदेशके आर्योंके उसमें प्रवेशका ही परिणाम है। दक्षिणापथमें जानेवाले आर्य बराबर व्यवहारमें स्वभावतः मध्यदेशकी किसी भाषाका व्यवहार करते रहे है और वही समय-समयपर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा बनती रही है। राष्ट्रकूट शासकोंके कालमें मान्यखेट साहित्यका केन्द्र था। वहाँ पुष्पदन्तके 'णायकुमार चरिउ' में हिन्दीका आभास देनेवाली पंक्तियाँ मिलती है—

"सोहइ जलहरू सुरधनु छायए।
सोहइ माणुसु गुण सम्पतिए॥"

महाराष्ट्रके चालुक्य राजा सोमेश्वरके ज्ञानकोष 'अभिलषित चिन्तामणि' में राग-रागिनियोंके प्रसंगमें हिन्दीकी पंक्ति भी दी गई है—

"नन्द गोकुल जायो कान्ह जो गोपीजणें पडिहेली रे।"

इस ग्रन्थका रचनाकाल विक्रम सम्वत् ११८४ है।

पहले कहा जा चुका है कि दक्षिणापथमें हिन्दी-संचारके राजनैतिक, धार्मिक आदि कारण रहे है जिनपर विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है।

राजनैतिक कारण

ईसाकी पूर्व ३२५–२६२ शतीमे मौर्य सम्राट् अशोकका राज्य-विस्तार दक्षिण तक था। उसके पश्चात् ईसाकी चौथी-पाँचवीं शतीमे यहाँका अधिकांश भाग गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित था। ईसाकी सातवी शतीमें हर्षवर्धनने भी यहाँ राज्य किया। अतः जो यह कहते है कि मुसलमानोंने मध्यदेशकी भाषा हिन्दीको दक्षिणापथमें संचारित किया, वे भ्रान्तिमें है। आर्य भाषाएँ उनके दक्षिण-प्रवेशके पूर्वसे ही वहाँ पहुँच चुकी थी और जनता उन्हें समझती थी। मुसलमानोके सम्पर्कसे वहाँ हिन्दीकी शैली विशेष पल्लवित हुई। बहमनी राजाओके राज्यमें हिसाब-किताब हिन्दी भाषामे ही रखा जाता था। मुसलमान शासकों तथा हिन्दू राजाओंने स्थानीय भाषाओंके साथ-साथ हिन्दीको भी प्रोत्साहित किया था। हिन्दू शासकोंमे शहाजी तथा शिवाजी महाराजके समय हिन्दी कवियोंका बड़ा मान था। शहाजीकी सभामें प्रान्त-प्रान्तके कवि पहुँचा करते और अपनी काव्य रचनाओंसे उन्हें प्रसन्न किया करते थे। उनके यहाँ जयराम नामक राजकवि हिन्दीकी अच्छी कविता करता था। शिवाजी महाराजकी सभामें भूषणके अतिरिक्त गणेश और गौतम नामक कवि भी थे। स्वयं शिवाजी भी कभी-कभी हिन्दीमें पद-रचना करते थे। उनका एक पद उपलब्ध है—

"जय हो महाराज गरीब निवाज।
बन्दा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी लाज।
मैं सेवक बहु सेवा मांगूं इतना है सब काज॥
छत्रपति तुमसे उदार शिव इतना हमारा फर्ज।"

महाराष्ट्रमें ललित-गोंधल-लोकनाटयोंका चलन रहा है। उसमें स्वांगके अभिनेता हिन्दीका भी प्रयोग किया करते थे। पेशवा कालमे लावनीबाजोंकी धूम थी। वे मराठीके साथ हिन्दीमें भी लावनियाँ गाते थे।

आर्थिक कारण: उत्तरापथ और दक्षिणापथका व्यापार-सम्बन्ध प्राचीन कालसे चला आ रहा है। अतः उत्तर भारतकी मध्यदेशीय भाषा दोनों दिशाओंकी जनताको 'एक' करती रही है। ईसा शतीके पूर्वसे ही पैठणके श्रेष्ठी और महाजन देशभरमें संचार करते रहे हैं और मध्यदेशीय भाषाका व्यवहार करते रहे हैं।

धार्मिक कारण: उत्तर तथा दक्षिणकी जनताको निकट लानेका श्रेय धर्म तथा धर्माचार्योंको है। आठवीं शताब्दीमें शंकराचार्य सुदूर दक्षिणमें उत्पन्न हुए; पर उन्होंने अखिल भारतमें संचार कर धर्म-स्थापना की। रामानुजाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य आदिने उत्तर भारतमें हरि-सन्देश सुनाया। यह तभी सम्भव हो सका जब उन्होंने मध्यदेशकी व्यापक भाषाको अपने विचारोंका माध्यम बनाया। वे तत्कालीन लोकभाषाको अपनाकर ही जनताके कण्ठहार बन सके। महाराष्ट्रके सन्तोंने भी जब उत्तर भारतकी यात्रा की तो वहींकी भाषा अपनाई। उत्तरके नाथोंने जब दक्षिणमें संचार किया तो महाराष्ट्रमें मराठी तो अपनाई ही, अपनी भाषाका भी प्रचार किया। कबीरने भी दक्षिणमें प्रवास किया था। उनकी साखियाँ आज भी महाराष्ट्रमें चावसे गाई जाती हैं। इस प्रकार उत्तर और दक्षिणके सन्तों-भक्तोंके आवागमनने भी हिन्दीको महाराष्ट्रमें अनायास ही संचारित किया। जनता रामकृष्णकी जन्मभूमि और गंगा-जमुना जैसी पवित्र नदियोंका सान्निध्य चाहती रही है और इस प्रकार उत्तर भारतकी उसकी यात्राओंने उसे वहाँकी व्यापक भाषासे सहज परिचित करा दिया।

अब हम ऐतिहासिक क्रमसे मराठी भाषी सन्तोंकी हिन्दी-सेवाका उल्लेख करेंगे।

यादव-काल: महाराष्ट्रमें मुसलमानोंके आक्रमणके पूर्व यादव राजा देवगिरिको राजधानी बनाकर साहित्य और कलाको प्रोत्साहन दे रहे थे। उस समय दिल्लीमें खिलजी वंश राज्य कर रहा था। बहुत उथल-पुथलके पश्चात् सन् १३१८ में महाराष्ट्रमें यादव राजाओंका राज्य समाप्त हो गया और देवगिरिपर मुस्लिम झंडा फहराने लगा।

महाराष्ट्रमें सबसे प्राचीन हिन्दी वाणी महानुभाव पन्थके प्रवर्तक चक्रधरकी प्राप्त होती है। इनका समय सन् ११९४ से १२७३ है। ये जन्मसे गुजराती थे पर महाराष्ट्रको अपना धर्म-प्रचारका केन्द्र बनाकर देश-भ्रमण करते थे। उनकी शिष्या महदाइसा अपने गुरुकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत हिन्दीमें पद गाती थीं। उनके एक पदकी पंक्तियाँ हैं—

> **"नगर द्वार हों मिच्छा करों हो, बापुरे मोरी अवस्था॰लो।**
> **जिहाँ जावों तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।**
> **हाट चौहाट पड़ रहूँ हो मॉग पंच घर भिच्छा**
> **बापुड़ लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो।"**

इनका रचनाकाल शके १२३० के आसपास है। दामोदर पण्डित भी महानुभावी सन्त थे जिनकी साहित्य, संगीत और दर्शनमें अच्छी गति थी। इनकी हिन्दीकी चौपदियाँ प्रसिद्ध हैं। एक चौपदी है—

> **"नवनाथ कहे सो नाथ पंथी, जगत कहे सो जोगी।**
> **विश्व बुझे तो कहि बैरागी, ज्ञान बुझै सो भोगी।"**

इनका समय शक-संवत् ११९४ के आसपास है।

सन्त ज्ञानेश्वरका नाम महाराष्ट्रीय सन्तोंमें मूर्धन्य स्थानपर है। इनकी 'ज्ञानेश्वरी' का आज भी घर-घर पाठ होता है। इनका जन्म शक-संवत् ११९७ है। इनका भी हिन्दीमें एक पद प्राप्त होता है जिसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"सब घट देखो माणिक मौला, कैसे कहूँ मैं काला धबला।
पञ्चरंगसे न्यारा होई, लेना एक और देना दोई।।"

इन्होंने नामदेवके साथ उत्तर भारतकी यात्रा की थी। अतएव इनका हिन्दीमे पद-रचना करना असंगत नही है। ज्ञानेश्वरकी बहिन मुक्ताबाईने भी हिन्दीमें पद कहे है।

महाराष्ट्रमें मुसलमानोंके आक्रमणके पश्चात् हिन्दी: यादव कालमे जिन सन्तोंने हिन्दी-पद रचनाकी, उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसके पश्चात् आविर्भूत होनेवाले सन्तोंकी हिन्दी सेवाका परिचय आगे दिया जाता है।

नामदेव: यद्यपि नामदेव ज्ञानेश्वरके सम-सामयिक थे तो भी इनका रचनाकाल ज्ञानेश्वरकी मृत्युके पश्चात् ही मुख्यतः प्रारम्भ होता है। इन्होंने ज्ञानेश्वरकी समाधिके उपरान्त महाराष्ट्र त्याग कर उत्तर भारतके पंजाबमें ही अपना अधिक समय बिताया। इसलिए इनके हिन्दीके पद उत्तर भारतमें बहुत अधिक प्रचलित हैं। सिक्खोंके आदि ग्रन्थमे वे प्रचुर मात्रामें संकलित है। इनका जन्म सम्वत् ११९२ में हुआ था। इनके पदोंकी भाषा अधिक साफ है। उदाहरणके लिए एक पद दिया जाता है—

"मोहि लागति तालाबेली।।
बछरे बिन गाइ अकेली।।
पानीआ बिनु मीन तलफै।।
ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा।।
जैसे नाइका बाछा छूटला।।
थन चोखता माखनु घूटला।।
नामदेऊ नाराइणु पाइआ।।"

हिन्दीमें निर्गुण भक्तिके प्रथम उन्नायक नामदेव ही है। कबीरने भी इनकी स्तुति की है और यत्र-तत्र इनकी भाव-छाया ग्रहण की है।

त्रिलोचन: इनकी गणना प्रसिद्ध सन्तोंमें की जाती है। गुरु ग्रन्थ साहबमें इनके चार पद संग्रहीत हैं जो विभिन्न राग-रागिनियोंमें हैं। किम्वदन्तीके अनुसार ये बार्षीके रहनेवाले थे। इनकी भाषामें नामदेवके समान स्पष्टता और प्रवाह नहीं है।

"घर गहेणि हाथे मोहि आपियले
राम चे नाम वदचि त्रिलोचन रामजी।"

और भी—

"अन्ति कालि जो स्त्री सिमिरे,
ऐसी चिन्ता महि जे मरे
वेसवा होइ बलि बलि अवतरे।"

ज्ञानेश्वर महाराज

*

गोंदा महाराज : ये नामदेवके पुत्र हैं। इन्होंने मराठीके अतिरिक्त हिन्दीमें भी पद लिखे हैं। इन्होंने मराठीके अभंग छन्दका हिन्दीमें प्रयोग किया। साथ ही उसमें अपने पिताके जीवनको गूंथनेके कारण हिन्दीमें इन्हें खड़ी बोलीमें आख्यान-काव्य लिखनेका प्रथम श्रेय दिया जा सकता है।

सेनानाई : इनकी भी प्रसिद्ध सन्तोंमें गणना है। कोई इन्हें उत्तर भारतीय मानते हैं पर अधिक प्रमाण इनके महाराष्ट्रीय होनेके ही हैं। गुरु ग्रन्थ साहबमें इनका एक पद मिलता है जिसमें कहा गया है—

**"राम भगति रामानन्द जानी,
पूरन परमानन्द बखाने।
मदन मूरति तारि गोविन्दे,
सेन भजे भज परमानन्दे।"**

सेनाके एक-दो हिन्दी पद समर्थ वाग्देवता मन्दिर धूलियाकी हस्तलिखित पोथीसे प्राप्त हुए हैं।

भानुदास : ये महाराष्ट्रके सरस कृष्ण-भक्त कवि हैं। इनकी एक प्रभाती इस प्रकार है—

**"जागो हो गोपाल लाल जसोदा बलि ज्याई, जननी बलि ज्याई,
उठो तात प्रात भयो रजनिको तिमिर गयो,
टेरत सब गुवाल बाल मोहना कन्हाई।
सघन गगन चन्द मन्द उठौ आनन्द कन्द,
प्रकटित भयो हंस-यान, कुमुदिनि सुखदाई।"**

एकनाथ : ये महाराष्ट्रमें भागवत-धर्म रूपी प्रासादके दृढ स्तम्भ कहे जाते हैं। इनका समय पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीके मध्य है। इनके हिन्दी पद गौलज, मुंडा, नानक, भारूड़ शीर्षकोंके अन्तर्गत लिखे गए हैं। इनकी भाषा सन्तोंकी अटपटी वाणीका ही रूप है। ब्रज, खड़ी बोलीके साथ-साथ अरबी, फारसी और गुजरातीकी भी छटा है। इनके पदोंमें जहाँ सरसता है ("मैं दधि बेचन चली मथुरा, तुम केवों थारे नन्दजीके छोरा) वहाँ ढोंगियोंपर तीखा व्यंग्य भी है—

**"संन्यास लिया, आशा बढ़ाया, मीठा खाना मंगता है,
भूल गया अल्लाका नाम यारों जमका सोटा बजता है।"**

दासो पन्त : इनका काल सन् १५५१ से १६१५ तक माना जाता है। ये दत्तोपासक थे। इनके कुछ हिन्दी-भजन मिलते हैं।—

**"सुन रे गुइयां हमारी बात
धन जोबन कोई न आवे संगात,
किसकी दुनिया किसकी मवेसी
दिन दो रहेंगे फिर उठ चले परदेसी।"**

अनन्त महाराज : इनके कालके विषयमें निश्चय रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु ये सम्भवतः एकनाथके पश्चात् ही आविर्भूत हुए हैं। इनकी भाषा अनुप्रास, यमक और विरोधाभास अलंकारोंसे गुम्फित है। अुदाहरणार्थ—

"न्यारी न हो के न्यारी में हूँ
न्यारी न्यारी भव न्यारी हूँ।"

माधवदास : ये विदर्भके रहनेवाले सन्त थे। अनुमान है कि शक सम्बत् १६०० में इनका आविर्भाव हुआ होगा। इनके दो हिन्दी पद प्राप्त हुए हैं। एक इस प्रकार है—

"सालगराम सुनो विनती मोरी,
सब बरदान दया कर पाऊँ।
प्रात समे उठ भजन कर कर
प्रेम सहीत असनान बनाऊँ।
चन्दनकी धुप दिप तुलसी दल,
बरं बरंके फुल चेढ़ाऊँ।
आप बैठे मरकत (?) सिंघासन,
घंटा संख मिरदंग बजाऊँ।
येक बुंद चरणामृत पाऊँ,
पितरनको बैकुंठ पठाऊँ।
जो कछु करत रयेन दिन भीतर,
भोग लगाकर भोजन पाऊँ।
जो कछु पाप कियो दुन्या मो,
फरका मनके सात बहाऊँ।
अब भय नाहीं मोहेका (हु) के,
देवनके दरबार मझ्याऊँ।
माधोदास कहे कर जोरे,
सब सन्तनको दास कहाऊँ।"

श्यामसुन्दर : इनका समय शक सम्वत्की १६ वीं शताब्दी अनुमाना जाता है। इनका एक हिन्दी पद मिला है, जो गेय है।

जन जसवन्त : ये गोस्वामी तुलसीदासके महाराष्ट्रीय शिष्य थे। ये शक सम्वत् १५३० के लगभग आविर्भूत हुए। इन्होंने तुलसीदाससे प्रत्यक्ष दीक्षा लेनेके लिए काशी प्रवास किया। इनकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दोहा प्रसिद्ध है—

"संवत सोलसो ची ओतरा रवितनया के तीर
फाल्गुन शुद्ध अष्टमी जसवन्त त्यजे शरीर।"

इनकी हिन्दी-रचनाका उदाहरण इस प्रकार है—

"कोई बन्दो, कोई निन्दो कोई कैसो कहो रे।
रघुनाथ साथे प्रीत बांधी होय जैसो होय रे।
कमलम्याने मोट बांधी नीर था भरपूर रे।

रामदास स्वामी

रामचन्द्रने कूर्म होकर राख लीनी पीठ रे।
चन्द्र सूर्य जीनी जाते स्तम्भ बिन आकास रे।
जल्ल पर पाषाण तारे क्यू न तारे दास रे।
जपतशिव सनकादि मुनिजन नारदादिक संत रे।
जन्म-जन्मके स्वामि रघुपति दास जन जसवन्त रे।"

सन्त जन जसवन्तकी भाषा खड़ी बोली, ब्रज, मराठी हिन्दी मिश्रित है। पर भावोंमें राम-भक्तिकी तीव्रता है।

शिवाजी कालीन मराठी भाषी सन्तोंकी हिन्दी-वाणी

तुकाराम : ये महाराष्ट्रके प्रसिद्ध अभंगकार सन्त हैं। इन्हें सचमुच लोकोन्मुख कवि कहा जा सकता है। इनकी भाषामें सहज भोलापन है। इनका जन्म शक सम्वत् १५२० और निधन १५७२ माना जाता है। ये विशेष पढ़े लिखे नहीं थे पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतका खूब पाठ किया था। इनका तत्कालीन हिन्दुई अथवा हिन्दी भाषासे भी परिचय था। इनके हिन्दी-पद्योंको तीन भागोंमें बाँटा जाता है। वे है,—गोपी-प्रेम, पाखंड-उद्घाटन और नीति तथा भक्तिपरक उपदेश। उनके एक भजनकी पँक्तियाँ है :—

"तुका संग तीन सूं करिये जिनसे सुख दुनआय
दुर्जन तेरा मुख काला थीता प्रेम घटाय।"

एक पदमें वे कहते है—

"कब मरूं पांवूं चेरन तुम्हारे,
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे।
ज्यग डरे ज्याकू सो मोहि मीठा,
मीठा उर अनन्द माही पैठा।"

मृत्युको प्यार करनेवाली कल्पना कितनी निर्द्वन्द्व है। महाराष्ट्रमें हिन्दीका क्या रूप था, इसे समझनेके लिए तुकारामकी 'असल गाथा' अध्ययन-योग्य है।

कान्होबा : ये तुकारामके छोटे भाई थे जिन्होंने "चुरा चुराकर माखन खाया, गौलिनीका नन्द कुमार कन्हैया' जैसी पंक्तियाँ लिखी है।

समर्थ रामदास : इनका समय ईसाकी सत्रहवीं शताब्दी था। इन्हें शिवाजी महाराजका राजनैतिक गुरु कहा जाता है। इन्होंने महाराष्ट्रमें राम और हनुमानकी उपासनाका बहुत अधिक प्रचार किया। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते हैं। एक पदकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

"जित देखो उत राम हि रामा।
जित देखो उत पूरन कामा।
तृण तरुवर सातों सागर,
जित देखो उत मोहन नागर।

जल थल काष्ठ पषाण अकाशा।
चन्द्र सूरज नच तेज प्रकाशा।
मोरे मन मानस राम भजो रे।
रामदास प्रभु ऐसा करो रे।"

इनके शिष्योंने भी हिन्दीमें पद-रचना की, जिनमें बेणा बाई, बयाबाई, बहिणा बाई आदिके नाम लिए जा सकते हैं।

बहिणाबाई: ये महाराष्ट्रकी प्रसिद्ध कवियत्री है। ये तुकारामकी शिष्या हैं। इनका समय १५५० से शक सम्वत् १६२२ तक माना जाता है। इनकी कृष्ण-भक्ति परक रचनाएँ जो गौलण कहलाती हैं, अधिक प्रसिद्ध हैं। एक गौलणकी पँक्तियाँ हैं—

"यमुनाके तट धेनु चरावत है गोपाल,
गीत प्रबन्ध हास्य विनोद नाचत है श्री हरि।"

इन्होंने उलटबाँसी भी लिखी हैं। जैसे—

"अजब बात सुनाई माई अजब बात सुनाई,
गरूड़ पंख हिरावे कागा लक्ष्मी चरण चुराई।"

गिरिधर, रंगनाथ, वामन पंडित (रामदासी) आदि रामदास-कालीन सन्तोंकी भी हिन्दी वाणी मिलती है।

मानसिंह: इनके सम्वन्धमें विशेष ज्ञात नहीं है परन्तु इनका एक हिन्दी पद राग बिहागका प्राप्य है जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

"बिगरी कौन सुधारे नाथ बिगरी कौन सुधारे
बनी बनेका सब कोई साथी दीनानाथ गुसाइं रे
भरी सभामें लज्जा राखी दीनानाथ गुसाइं रे।
कड़ू बेल की कड़ू तुमरिया सब तीरथ फिर आई रे।
गंगा न्हाई, जमुना न्हाई तोबि न गई कडुवाई रे।"

कल्याण स्वामी: ये स्वामी रामदासके प्रिय शिष्योंमें रहे हैं और उनके लेखक भी। कल्याणकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। समर्थ मुखसे बोलते जाते और कल्याण द्रुतगतिसे लिखते जाते। इन्होंने हिन्दीमें पद और रुक्मणी-स्वयम्वर नामक कथा-काव्यकी भी रचना की है। महाराष्ट्रमें रुक्मणी स्वयम्वरपर कई कथाकारोंने लिखा है। कल्याण स्वामीके अतिरिक्त मुकुन्ददास और मुकुन्दराजके नामपर भी रुक्मणी स्वयम्वर नामक कथा-काव्य प्राप्त हुए हैं। कल्याणकी हिन्दीका नमूना देखिए—

"हुई रुक्मणि बेजार
तपे तपती गुलनार
तुटे मोतेनके हार।
छप्पर पलंग लेहटती।"

इनके अतिरिक्त, जयरामस्वामी, शिवराम, देवदास, मुकुन्दानन्द, राम, नरहरि आदिके हिन्दी पद मिलते हैं। मानपुरीका गंगापर लिखा हुआ पद अधिक परिष्कृत है। जैसे—

"तेरोहि निरमल नीर गंगा तेरोहि निरमल नीर।
तेरो ज्यू न्हाइये पाप कटत है पावन होत सरीर।" आदि

एक और पद है—

"तुम बिन और न कोई मेरो।
तुम बिन जियको दरद न ज्याने, भर भर अंखियाँ रोई।"

इसी कालके गोस्वामी नन्दन, केशव स्वामी, गोपालनाथ, निपट निरंजन, लीला विश्वम्भर और जमालशाहके मस्ती भरे पद मिलते हैं।

पेशवाकालीन और पेशवाओंके परवर्ती मराठी सन्तोंकी हिन्दी-वाणी

मध्व मुनीश्वर: इनका जन्म शक सम्वत् १६११ में हुआ था। ये नाशिकके रहनेवाले थे। इनकी रचनाएें औरंगाबादमें रहनेके कारण अरबी, फारसी शब्दोसे आपूर हैं। ये भी निर्गुण सन्तों जैसी उक्ति, कहते हैं। यथा—

"सब घट पूरन एकहि रब है,
ज्यों तसवी बीच तागा।"

सूफियोंके समान इन्होंने अपने प्रियको माशूक कहकर पुकारा है जैसे—

"माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव।
कपटका घूंघट खोल सिताबी इश्क मिठाई चखाव।
आशकका तेरा जोड़ा चातक कर मेहर बरसाव।
दिल कागज पर सूरत तेरी गुरूके हात लिखाव।
मध्य मुनीश्वर साई तेरा अस्सल नांव सिखाव।"

शिवदिन केसरी: ये महाराष्ट्रमें नाथ-परम्पराके कवि कहे जाते हैं। इनकी रचनाओंमें भी सूफी रंग है। एक बड़ी हृदयस्पर्शी रचना है—

"हम फकीर जनमके उदासी, निरंजन वासी
सतकी भिच्छा दे मेरी मांई मनका आटा भरपूर।
बार बार हम नहि आनेके हरदम हार खुशी
हम फकीर जनमके उदासी निरंजन वासी।
सोना रूपा धेला पैसा ओ कुछ हम ना चाहें
प्रेमकी भिच्छा ला मेरी मांई हम पंछी परदेसी
हम फकीर जनमके उदासी निरंजन वासी।"

"परदेसी निरंजन वासी" के हृदयमें प्रेमकी कितनी गहरी पीर है। वह झोली लेकर असकी घर-घर भीख माँगता है। कबीरकी भाँति केसरीने भी अपने 'अलख' का कान्ता-भावसे स्मरण किया है—

"किन बयरीने बैर कियो री, साजनको बहराय दियो री।"

अमृतराय: इनका समय शक सवम्त् १६२० और १६७३ के मध्य माना जाता है। ये बुड़ल्हाना जिलेके रहनेवाले थे, बादमें औरंगाबादमें जाकर बस गए थे। ये अच्छे कीर्तनकार भी थे। ये मराठीके अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी भी अच्छी जानते थे। इन्होंने मराठी और हिन्दीमें प्रथम बार कटाव नामक एक छन्दको जन्म दिया। इसमें सानुप्रासिक चरण होते हैं जिनकी शब्द-योजनासे ही अर्थ झंकृत हो जाता है। इन्होंने हिन्दीमें फुटकल पदों, कटावों आदिके अतिरिक्त शुक-चरित्र, रामा-चरित्र, द्रौपदी-वस्त्र-हरण, रामचन्द्र वर्णन, गणपति वर्णन आदि लम्बे कथा पद्य भी लिखे हैं। इनके शिष्योंमें सिद्धेश्वर महाराज और माधव कविका नाम अधिक प्रसिद्ध है। अमृतरायकी कतिपय पंक्तियाँ हैं—

"काया नहिं तेरी नहिं तेरी। मत कर मेरी मेरी।
न्हावे हांडा पानी गरम। नहिं करता कोड़ीका धरम।
इस कायाका कौन भरोसा। आकर जम डारेगा फासा।
बांधे टीम टामकी पगड़ी। चौथे दिन मुढ़ावे दाढ़ी।
खावे घी खिचड़ीका खुराक। आखर जल कर होवे खाक।"

सिद्धेश्वर महाराज: ये अमृतरायकी शिष्य-परम्परामे हैं। इनकी रचनाओंमें नाथ योगियोंकी अनुभूति और उनसी अभिव्यक्ति प्रकट होती है। उनका एक पद है—

"बंगला खूप बनाया बे
उस मो माधव सोया बे। ध्रुवपद॥
पंच तत्वकी भीत बनाई तीन गुन (न) का गारा
राम नामकी छान छबाई छानेहारा न्यहारा।
उस बंगले कु नव दरवाजे बीच पवनका खम्भा
आवे जावे सब कोई देखे ये ही बड़ा अचम्भा।
आशा दुराशा माया नाचे मन मो ताल बजावे
सुरत निरत मिरदंग बजावे राग छतीसा गावे।
बंगला खूप बनाया बे
उस मो माधव सोया बे।"

माधव: ये भी अमृतरायके ही शिष्य हैं। इनकी हिन्दी अधिक परिमार्जित है। एक प्रभातीका नमूना इस प्रकार है:—

"प्रात समै रघुवीर जगावे, कौसल्या महारानी।
उठो लाल जी भोर भयो है सन्तनको हितकारी।
बन्दी जन गन्धर्व गुन गावें नाचें थै थै तारी।
शैलसुता शिव भोरे ठाड़े होत कुलाहल भारी।
सुन प्रिय बचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख उघारी।
चितवन अभय देख भक्तनको मुक्त भए नर नारी।

कर असनान दान नृप दीजे गो गज कंचन थारी।
जं जं कार करत धन्य माधव रघुकुल जस बिस्तारी।"

सोहिरोबा: ये महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त हो गए हैं। इन्होंने देशका पर्याप्त भ्रमण किया था। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते हैं। उदाहरणके लिए एक पद दिया जाता है—

"तुम अच्छा हुक्का पीना।
ब्रह्म रन्ध्रमें चित्रकूट चिलम,
प्राण अपानसे दमपर दम लेना।
अलख तमाखू ज्ञान अग्निसे,
जलकर माया धूम छोड़ देना।
कहत सोहिरा सतसंग धरना,
अहंमेली सेनली खलील कर देना।"

ये शक सम्वत् १६६६ में उत्पन्न हुए थे।

नरहरिनाथ: ये शिवदीन केसरीके पुत्र सत्रहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुए थे। इनके हिन्दी पद इनकी अलमस्त वृत्तिके भी द्योतक हैं—

"क्या किसीसे काम, हम तो गुलाम गुरू घरके
बेपरवाह मनमौजी राजा हम अपने दिलके।
+ + +
चाँद सूरज मशाल लेकर आगे चलते है,
अर्द्ध-चन्द्रका मुख प्याला भर-भर पीते हैं।"

इनके अतिरिक्त लक्ष्मण फकीर, महिपत, कृष्णदास रामरायके भी फुटकर हिन्दी-पद मिलते हैं। कृष्णदासके पदकी पँक्तियाँ हैं—

जसोमति सुत नन्दलाला ब्रजकी गैल डोले
पीताम्बर कछनी कस गव्वनके संग जात
फेट मुरली मुकुट शीश बैस बैन बोले।
जसोमत सुत नन्दलाल ब्रजकी गैल डोले।
ग्वाल बाल संग लिए अंग अंग मोरे
हाथ लकुटि दध मटकी सखियन सो जोरे
बृन्दावन कुंज जात गावत हरि कृष्णदास
या छबि न कही जात रसनामृत घोरे।"

देवनाथ महाराज: ये विदर्भके रहनेवाले थे। इनका काल सन् १७५४ से १८३० तक है। इनका अधिक समय तो ग्वालियरमें व्यतीत हुआ। इन्होंने हिन्दीमें पद-रचना की है। इसमें निर्गुण कृष्ण-भक्तिका सरल रूप दिखलाई देता है। एक पदकी पंक्तियाँ है—

"कैसी मोहन बंसी बजाई
सुनत धुन मोहे सुधि नहिं पाई।
भादों मासों मेघ गड़ागड़, टपकी बुंदरी खासी
रुनझुन रुनझुन झुरमुर झरिया बरसत है दिनराती।
ओढ़ि खुशाल दुशाल पिया सन रमही भोग विलासन
बिजली-सी बंशी बजाई मोहे मदनकुमार भगाई।
कैसी मोहन बंसी बजाई।"

जीवनके उतार-चढ़ावके विषयमे इनका एक प्रसिद्ध पद है—

"रमते नाथ फकीर कोई दिन याद करोगे।
कोई दिन ओढ़े शाल दुशाला कोई दिन भगवे चीर,
कोई दिन धोती और लंगोटी कोई दिन नंगे पीर।
कोई दिन खास. पलंग बिछाना कोई दिन जमिन पै शीर।"

दयालनाथ: ये देवनाथके शिष्य थे। इनका देहान्त सन् १८२५ में हुआ था। यद्यपि ये नाथपन्थी थे फिर भी इन्होने हिन्दू धर्ममें मान्य सभी देवताओंपर रचनाएँ की हैं। इनका एक दोहा है—

"रूप हीन कुल जातकी प्रीत करी नन्दलाल
गोपिन मोहरे डारके च्याल चली ब्रजपाल।"

विष्णुदास कवि: ये साताराके रहनेवाले थे। इनका जन्म सन् १८४४ में हुआ था। ये प्रसिद्ध लावनी-बाज रहे हैं। इनकी कुछ लावनियाँ मणि-प्रवाल शैलीमें लिखी गई है जिनकी एक पंक्ति हिन्दीकी है और दूसरी मराठी की। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

"भला भला मोरी जान। खुसी से यंव करना दोस्ती।
येथ कुणांची नाहिं कुणावर पहा जबरदस्ती।
क्या कहूँ तारिफ तेरे बलनकी अजब तरहा प्यारी।
जसि कमलाची कली टवटवति दिसे भर दुपारी।"

गुलाबराव महाराज: ये विदर्भके रहनेवाले थे और इनका जन्म सन् १८८० मे हुआ था। इन्होंने ज्ञानेश्वरको अपना गुरु स्वीकार किया था। इनकी रचनाओंसे प्रतीत होता है कि ये सखी सम्प्रदायके अनुयायी थे। कृष्णको अपना पति मानकर शरीर पर मंगलसूत्र, कुंकुम आदि स्त्री-सौभाग्य चिन्ह धारण करने लगे थे। ये मधुराद्वैत दर्शनके आचार्य कहे जाते हैं। इन्होंने दोहा, चौपाई सवैया, कवित्त आदि छंदों तथा विभिन्न राग-रागिनियोंमें गेय पदोंकी रचना की है। उनका एक कवित्त है—

"छाँडि लोक लाज राज साज चलो आज
देखवेको कैसे सखि नैन ललचाए है।
कोउ ठाड़े छतर धारे कोउ आये व्यजनवारे
पालकीमें बैठ मेरे ज्ञानराज आए हैं।
कमलिनि लजाय रही कनक श्री जाय रही

रसा हर खाय रही रसली मिलाई है
पानीके प्रवालकी और मनिके लाल की
अरू कामिनीके गालकी शोभा भुलाई है।
बीजुरी के सरि सूरज धुर धारीसे
करिके सवारी छबि सारी हरि लाई है।"

गुण्डा केशव : ये विदर्भके रहनेवाले थे। इनके आविर्भावका काल अनिश्चित है पर ये शक सम्वत् १७५२ में विद्यमान अवश्य थे। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते हैं जिनमे निर्गुण सन्तोंकी विचारधारा मिलती है। इनकी भाषामें अरबी, फारसीकी झलक पाई जाती है। इनका एक ख्याल नीचे दिया जाता है:—

"लगी है प्रेम लगन कि याद।
पीया बिन जीयरा कैकर जोये,
खुदस्ते बूनियाद।
मेहारबक्ष दयाल आजीज कूं
और न ज्यानु बादा।
गुंडा केशो प्रेम दीललया,
तेरी खाने ज्यादा।"

आधुनिक युग : आधुनिक युगमें भी महाराष्ट्र-अंचल और उसके बाहर अनेक मराठी-भाषी सन्तों तथा गृहस्थोने हिन्दीमें रचनाएँ कीं। हम गुलाबराव महाराजकी चर्चा पहले कर चुके है। प. प्रयागदत्त शुक्लने ऐसे मराठी भाषी आधुनिक हिन्दी प्रेमियोकी, जिनका विदर्भसे सम्वन्ध रहा है, अपने 'हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन' नामक ग्रन्थमे चर्चा की है।

सन् १८९९ में सीताराम गुर्जरने मराठीके ओवी छन्दमें भक्त महिसासुर ग्रन्थकी रचना की। ये वर्धाके रहनेवाले थे। उसी कालमें बाबा रामजी तसकरीने भी, जो होशंगाबादके नर्मदा-तटपर रहते थे, कुछ हिन्दी पद रचे है। एक पदकी पंक्तियाँ है—

"इस देहीको पूजो जासे और देव नहि वूजो।
आतमब्रह्म सकलसे न्यारा आप याहीं बूझो।"

भोंसलोके समयमें श्री मुकुन्दराज, दादाजी साधु, रामकृष्ण करतालकर, गोपाल जी हरदास, केशवदास महाराज, श्री सम्प्रदाय आदिकी हिन्दी वाणी मिलती है। इनमेसे कुछके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) **"गोकुलकी गलियोंमें कान्हा बंसी बजावै।**
ग्वाल बाल सब ब्रजके बसैया सब मिल धूम मचाई।
सब सखियाँ मिल मंगल गावै तनकी सुध बिसराई।
मुकुन्द कहे प्रभु क्या छबि बरनूं मनकी उनमनि पाई।"
—मुकुन्दराज।

(२) "राम भजन कर लेना एक दिन जाना है भाई।
सोना पहिरे चाँदी पहिरे, पहरे पीतल काँसा।
साहबके घर चिट्ठी आई छूटी देहकी आसा।
राजा गए काजी गए बड़े-बड़े अधिकारी।
साहबके घर आया बुलावा छोड़ चले सरवारी।
हंस छोडके जात पलक मो पंचतत्वका चोला।
जानबूझकर क्यों बे भूला कहे रामकृष्ण बाला।"

—रामकृष्ण।

(३) "पूरण मोह फंस्या है बे। हमने साहब पाया बे।
बड़ा महल क्या करना खासा। कितने दिन है जगबासा।
काल खड़ा है अपने पासा। क्या सासाकी आसा।"

—केशवदास।

सन्त तुकड़ोजी: इनका जन्म सन् १९१० में हुआ। ये अभी वर्तमान हैं। अपने गुरू आड़कुजीके परम भक्त हैं। इनकी राष्ट्रसेवा सर्व-विश्रुत है। सन् १९४२ के "भारत छोडो" आन्दोलनमें इनके भजनोंसे जनता अनुप्राणित हो उठती थी। ब्रिटिश सरकारने इनके प्रभावको देखकर इन्हें कुछ समयके लिए बन्दी बना लिया था। महात्मा गाँधी, विनोबाजी, प. जवाहरलाल नेहरू सभीने इनकी राष्ट्र-सेवाकी प्रशंसा की है। इनके भजन विदर्भके घर-घरमें गाए जाते हैं। इनके अनेक हिन्दी भजन-पद आदि मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

"गंगा किनारे बैठकर हर बून्दको देखा करूं।
हर बून्दके आधार पै ये वृत्तियाँ लेखा करूं।
उठते उठाते गंगकी जैसी लहर मिटती रहे।
वैसी हमारी वृत्तियाँ सत् रूपमें घटती रहें।"

और भी

"दिन जमाने खूब बदले, रूह बदला ही नहीं।
भोग बदले लोग बदले, कर्म बदले धर्म के।
युग चारों फेर बदले, रूह बदला ही नहीं।
उम्र बदले, राज बदले, काज बदले संग से।
मौत के दौर भी बदले, रूह बदला ही नहीं।
जन्म बदले, देह बदले, रंग बदले नूर के।
शशि रविके फेर बदले, रूह बदला ही नहीं।
नर्क बदले, स्वर्ग बदले, आस बदले हर घड़ी।

सन्त तुकडोजी

ज्ञानके बिन सार बदले, रूह बदला ही नहीं।
स्वरूपका उजियार है, वहाँ रूहका क्या पार है।
कहत तुकड्या तार है तो रूह बदला ही नहीं।"

श्री रघुनाथ भगाड़े: इनका जन्म सन् १८०४ में दमोहमें हुआ था और मृत्यु नागपुरमें सन् १९३८ में। आप सेशंस जजके पदसे सेवा-मुक्त हुअे। ये हिन्दी-प्रेमी रहे हैं। इन्होंने ज्ञानेश्वरीका हिन्दीमें अनुवाद किया है। ये एकनाथी भागवतका भी हिन्दीमें अनुवाद कर रहे थे पर वह पूर्ण न हो सका।

श्री देउसकर: इनका अधिक समय काशी, कलकत्ता आदि स्थानोंमें व्यतीत हुआ। अन्तिम समयमें जबलपुरमें आकर बसे। इन्होंने हिन्दीकी बड़ी भारी सेवा की है। बाबूराव पराड़कर, श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे आदिको हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें लानेका श्रेय इन्हींको है। इन्होंने स्वयं कई पत्रोंका सम्पादन किया और अभिनय-योग्य नाटक भी लिखे। ये प्रायः कहा करते थे कि मराठी मेरी माता है, पर हिन्दी मेरी "मौसी" है। मौसीकी गोदमे ही मेरा लालन-पालन हुआ है और मुझे वह बहुत प्रिय है। मै उसीकी सेवामें सुख अनुभव कर रहा हूँ।

स्व. माधवराव सप्रे: ये द्विवेदी-युगके सबल लेखक और पत्रकार थे। मराठी 'केसरी' का हिन्दी संस्करण नागपुरमें इन्हीके सम्पादनमें निकलता था जिसकी हिन्दी-जगतमें बड़ी धूम थी। इन्होने पेंड्रारोडसे 'छत्तीस-गढ़ मित्र" मासिक पत्र निकाला था जिसमें हिन्दीके उस समयके महारथी बराबर लिखा करते थे। उसमें पुस्तकोंकी लम्बी गुण-दोष-विवेचक आलोचनाएँ निकला करती थीं जिन्हें विद्वान बड़ी रुचिसे पढ़ा करते थे। राजनीतिसे संन्यास लेनेपर इन्होंने मराठीके प्रसिद्ध ग्रन्थोंका—दासबोध आदिका—हिन्दीमे अनुवाद भी किया था। और जबलपुरके 'कर्मवीर' तथा खण्डवाके 'कर्मवीर' को कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण करनेका भी इन्हें श्रेय है। अखिल भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अध्यक्ष-पद भी ये स्वीकार कर चुके है। छत्तीसगढ़में हिन्दी-प्रचारका प्रशंसनीय कार्य इनसे सम्पन्न हुआ।

स्व. बाबूराव विष्णु पराड़कर: इनका सन् १८८३ में काशीमे जन्म हुआ था। इनका सारा जीवन हिन्दी पत्रकारितामे व्यतीत हुआ। काशीके "आज" का आपने जिस प्रतिष्ठा और श्रमसे सम्पादन किया, उससे हिन्दी-जगत भली-भाँति परिचित है। इनके विचार संतुलित पर साथ ही स्पष्ट हुआ करते थे। इन्होने हिन्दीको कई पारिभाषिक शब्द प्रदान किए। इन्हें हिन्दी-सेवाके निमित्त अखिल भारतीय महात्मा गाँधी-पुरस्कारसे भी सम्मानित किया गया। "आज" के अतिरिक्त इन्होंने कलकत्तेके प्रतिष्ठित पत्रों बंगवासी, हितवार्ता, भारतका भी सम्पादन किया और कतिपय पुस्तकें भी लिखीं।

स्व. लक्ष्मण नारायण गर्दे: (जन्म सन् १८८९) इनकी सेवाऐं भी हिन्दी-पत्रकारिताको ऊँचा उठानेवाली है। कलकत्तेके 'भारत मित्र' 'श्रीकृष्ण सन्देश' आदि पत्रोंको इन्होंने विशेष रुचिके साथ सम्पादित किया। "कल्याण" के सम्पादनमें कभी इनका हाथ था। इन्होंने 'अरविन्द योग,' 'हिन्दुत्व,' 'तुकाराम-चरित्र' आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

स्व. विनायकराव: ये जबलपुर निवासी हिन्दी-सेवी थे। इनकी 'रामचरित-मानस' पर की गई 'टीका' का हिन्दी जगतमें बड़ा मान है।

श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे : ये हिन्दीके प्राचीन साहित्य-सेवी हैं। मराठीकी अनेक कृतियोंका इन्होंने हिन्दी-रूपान्तर किया है।

स्व. सिद्धनाथ माधव आगरकर : ये उज्जैनके सन्निकट आगरके निवासी थे। हिन्दीके अनन्य भक्त थे। भारतकी तरुण पीढ़ीको हिन्दी-क्षेत्रमे अवतरित करनेका इन्हें बहुत कुछ श्रेय है। जबलपुर और खण्डवा के "कर्मवीर" तथा "मध्यभारत" के सम्पादन-कार्यकी हिन्दी-जगतपर गहरी छाप है। इन्होंने मराठीके कई ग्रन्थों–तिलक चरित्र, मानसोपचार आदिका हिन्दी-रूपान्तर किया। स्वाधीनता-संग्राममे कई बार भाग लिया और सन् १९४२ के कारावाससे मृतप्राय अवस्थामें छोड़े गए, जिससे थोड़े दिनोके पश्चात् ही इनका देहावसान हो गया।

काका कालेलकर : ये गांधीवादी स्वतन्त्र चिन्तक है। मराठी मातृभाषा होते हुए भी कई भाषाओंपर अधिकार रखते है। हिन्दीकी भी इनके द्वारा बहुमूल्य सेवा हुई है। गाँधीजीके अनुयायी होनेके कारण हिन्दी-हिन्दुस्तानी आन्दोलनको पुरस्सर करनेमें इनका बड़ा योग रहा, पर जबसे हिन्दीको वैधानिक राष्ट्रभाषाका पद प्राप्त हुआ है, हिन्दी पक्षको प्रबल बनानेका सतत उद्योग करते रहते है। इनकी कई पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हुई है जो भाषाकी सरलता और सरसता तथा विचारोंकी गहनताके लिए अप्रतिम हैं। हिन्दीमें गाँधीवादी विचार-धाराको आचार्य विनोबा भावेके पश्चात् इन्होने ही प्रस्तुत किया है। ये हिन्दी-सेवीके नाते अखिल भारतीय गाँधी-पुरस्कारसे पुरस्कृत हो चुके है।

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर : ये सौ वर्षके लगभग पहुँच गए है पर वैदिक साहित्यके अन्वेषणके क्षेत्रमे अभीतक संलग्न है। गीता, महाभारत आदिपर आपकी हिन्दी टीकाऐं प्रसिद्ध है। हिन्दीमें इनकी अनेक पुस्तकें छप चुकी है। मासिक 'वैदिक धर्म' का भी ये सम्पादन कर रहे है। महात्मा-गाँधी पुरस्कारसे सम्मानित है।

आचार्य विनोबा भावे : इनकी हिन्दी-सेवा और प्रेमसे सारा देश अवगत है। इनके प्रवचनोंकी सात्विकता सर्व-विश्रुत है। गांधी तथा सर्वोदय विचारधारा पर इनकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध है। गीता तथा ईशावास्योपनिषद् पर इनकी टीकाएँ मौलिक है। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, इस मतके आप प्रबल उद्घोषक है।

स्व. भास्कर रामचन्द्र भालेराव : इनका जन्म सन् १८९५ में हुआ था। ये मध्यभारतके प्रसिद्ध पुरातत्व, इतिहास आदि विषयोंके लेखक रहे है। इन्होने वर्षों हिन्दीमें विभिन्न शोध-परक लेख लिखे। प्राचीन कवियों तथा लेखकोंपर खोज सम्बन्धी इनके लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिकामे छपते रहे है। अपने लगभग २४ ग्रन्थ सम्पादित और अनुवादित किए है।

स्व. श्री तामस्कर : ये जबलपुरके रहनेवाले थे। इन्होंने इतिहास, नागरिकशास्त्र आदि विषयोंपर अनेक हिन्दी कृतियाँ लिखीं। इन्होंने भूषण पर भी शोधपरक पुस्तक लिखी है, जो अप्रकाशित है।

स्व. वासुदेव गोविंद आपटे : ये इन्दौरमें एक हिन्दी पत्रका वर्षों सम्पादन करते रहे हैं।

श्री प्रभाकर माचवे : (जन्म २६–१२–१९१७) इनकी मातृभाषा मराठी है फिर भी इन्होंने वर्षों मध्यभारतमें रहनेके कारण हिन्दीको सहज रूपसे अपना लिया है। ये हिन्दीमें गद्य और पद्य दोनों

लिखते हैं। हिन्दीकी प्रगतिशील प्रवृत्तियोंको अग्रसर करनेमें ये सदैव सचेष्ट रहते हैं। अभी तक इनके कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जो काव्य, आलोचना निबन्ध और कथा-साहित्यसे सम्बन्ध रखते हैं।

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े : ये नागपुरके 'नागपुर टाइम्स' के संचालक हैं। इन्होंने हिन्दीको मातृभाषासे भी अधिक आदर दिया है। ये हिन्दी में ही लिखते हैं। इनके कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं और पुरस्कृत भी। कुछ उपन्यास अन्य भाषाओंमें भी अनूदित हुए हैं। इनका 'ज्वालामुखी' उपन्यास बुक ट्रस्ट द्वारा सभी प्रमुख भारतीय भाषाओंमें अनूदित होनेके लिए स्वीकृत किया जा चुका है। उपन्यासोंके अतिरिक्त इनके कथा-संग्रह तथा व्यक्तिपरक निबन्ध भी प्रकाशित हुए हैं। इन्हें हिन्दी-सेवीके नाते अखिल भारतीय गाँधी पुरस्कार भी इसी वर्ष प्राप्त हुआ है।

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध : ये आधुनिक प्रयोगवादी कवियोंमें विशेष रूपसे सम्मानित हैं। 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' मे इनकी रचनाएँ संकलित हैं। ये केवल कवि ही नही, चिन्तनशील समीक्षक भी हैं। 'प्रसाद' की कामायनीपर हाल ही इनकी आलोचनात्मक कृति प्रकाशित हुई है जिसमे इनका अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमे समय-समयपर इनके विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित होते रहते हैं। इस समय राजनांदगांवके दिग्विजय महाविद्यालयमे हिन्दीके प्राध्यापक हैं।

श्री आत्माराम देवकर : ये सेवानिवृत्त प्राचीन हिन्दी सेवी हैं। हटा (मध्यप्रदेश)मे रहते हैं, पानीका बुदबुदा, माया-मरीचिका, आदर्श मित्र आदि पुस्तकोंकी रचना की है।

आधुनिक युगमे मराठी भाषी हिन्दी लेखकोंकी सख्या बढ़ती ही जा रही है। अतः सबका नामोल्लेख करना भी कठिन हो रहा है। कुछ नाम जो स्मरण आ रहे हैं, नीचे दिए जा रहे हैं। इनमेसे बहुतोंकी विशिष्ट सेवा भी है; उनकी कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ भी प्रकाशमे आई है, पर स्थानाभावसे उनपर विस्तारके साथ नही लिखा जा सका। अतः क्षमा प्रार्थी हूँ—अनिल कुमार, भृंग तुपकरी, शकर शेष, अनन्त वामन वाकणकर, गोविन्द नरहरि बैजापुरकर, श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, गोविन्द हरि वर्डीकर, भालचन्द्र आपटे, मालोजीराव नरहिसराव शितोले आदि।

गुजरातकी हिन्दीको देन

श्री केशवराम का. शास्त्री

स्वराज्य प्राप्तिके पूर्व गुजरात प्रदेशकी ब्रिटिशकालीन जो सीमा थी, उसमें आज छोटे-मोटे अन्तरके सिवा कोई विशेष अन्तर नही हुआ है, और विभाजनके बाद भी दक्षिणतल-गुजरात सौराष्ट्र और कच्छका वही गुजराती-भाषी प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरातके रूपमे ही स्थापित मिलता है। इसके अन्तर्गत देशी राज्योंका राजकीय दृष्टिसे विलीनीकरण हुआ, किन्तु भाषाकी दृष्टिसे तो कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ। केवल डूंगरपुर-बांसवाड़ा और सिरोही राज्यके गुजराती भाषासे सम्बद्ध भीली-भाषी प्रदेश आज राजस्थानमें सम्मिलित हो गए है।

आज गुजरात राज्यकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरमे पाकिस्तानी सिन्धकी एवं राजस्थानके आबूकी उपत्यका पुराने सिरोही राज्यकी दक्षिणी सीमा, पुराने उदयपुर राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी सीमा, पूर्वमे डूंगरपुर-वांसवाड़ाके विशाल वागड़ प्रदेशकी एवं मध्यप्रदेशकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्रके खानदेश-की पश्चिमी सीमा, दक्षिणमे महाराष्ट्रके नासिक एवं थाना जिलाकी उत्तरीय सीमा, और पश्चिममें सौराष्ट्र कच्छको अपनेमे समाविष्ट करके विशाल अरब समुद्र है। आजसे करीब ९० वर्ष पहले गुजरातके कवि नर्मदने गुजरातियोके प्रिय राष्ट्रगीतमे गाया था—

> **"उत्तरमां अम्बा मात,**
> **पूरबमां काळी मात,**
> **छे दक्षिण देशमां करन्त रक्षा कुन्तेश्वर महादेव,**
> **ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम करो देव—**
> **छे सहायमां साक्षात,**
> **जय जय गरवी गुजरात।**

उपर्युक्त गीतमें गाई गई बात आज भी ज्यों की त्यों चरितार्थ होती है।

आज गुजरात प्रदेशकी सीमाका विस्तार जितना संकुचित हो गया है उतना आजसे हजार वर्ष पूर्व नहीं था। यह तो निश्चित ही है कि 'गुजरात' नाम 'गुजर' नामक गोपजातिने दिया है इस जातिके कितने

ही कुल राजकुलके पदको शोभित कर चुके थे और दक्षिण गुजरातके नांदादे (प्राचीन स्वीकृत नाम नांदीपुरका) चेदि राजवंश (शासन काल चेदि सं. ३००–४८६ तक या ई. सन् ५४८–७३४) 'गुर्ज-नृपतिवंश' संज्ञासे विख्यात था। हरिश्चन्द्रकी क्षत्रिय पत्नीसे उत्पन्न दद्द नामक पहला गुर्जर इस वंशका संस्थापक था। इन गुर्जरोंका उस समय निवास प्रदेश प्रधानतः मारवाड़ था। आजके गुजरातमें इनकी व्यापकता वहाँसे हुई थी। हर्षचरितके लेखक बाणभट्टने सम्राट हर्षवर्धनके पिता प्रभाकरवर्धनको 'गुर्जरप्रजागर:' (चतुर्थ उल्लास) कहा है; इन गुर्जर लोगोंसे मारवाड़के ही गुर्जरोंकी ओर स्पष्टतया सकेत है। दसवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें सुप्रसिद्ध अरब यात्री अलबरूनी द्वारा अपने प्रवास ग्रन्थ 'अल हिन्द' में एक प्रदेशका नाम 'गुज्रात' स्पष्ट रूपमें दिया गया है (ई. सन् ९७०–१०३०) इनके मतमें वह प्रदेश आबूसे लेकर जयपुर तक ही था। उत्कीर्ण लेखोंमें संस्कृतीकृत 'गुर्जरत्राभूमि' 'गुर्जरत्रामण्डल' 'गुर्जरत्रा' प्राकृत 'गुज्जरत्ता'—इन नामोंसे संकेतित प्रदेश भी आबूसे लेकर उत्तरका विशाल मारवाड़ प्रदेश ही था। 'गुजरात' शब्दका मूल स्व. नरसिंहराव दिवेटियाने अरबी बहुवचनके स्त्रीलिंगदाची प्रत्यय 'आत' से संयुक्त 'गुज्र आत' 'गुज्रात' रूपमे भी माना है। अलबरूनीका प्रयोग देखनेसे भी यही निश्चित मूल स्पष्ट होता है। भीलोका समूह 'भीलात', मेवोंका समूह 'मेवात'—ये सब प्रजावाचक है, बादमें प्रदेशवाचक बन जाते है। जिस प्रदेशमें गुजरोंकी संख्या अधिक थी उस प्रदेशका नाम 'गुज्रात'; पड़ा; और अरबी बहुवचनके कारण निष्पन्न 'गुजरात' यह इस देशका नाम भी स्त्रीलिगदाची रहा। पंजाबमे इस नामका एक प्रदेश आज भी पाया जाता है। अपभ्रंश भाषाके अनेक प्रान्तीय भेद मिलते है उनमें एक भेद 'गौर्जर अपभ्रंश', पञ्जाबके टाक्क अपभ्रंशसे सम्बन्धित प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेयने भी जिसकी ओर निर्देश किया है, वह मूलमें गुजर प्रजाके निवासभूमि राजस्थानके विशाल प्रदेशका था।

इससे इतना निश्चित होता है कि आजके गुजरात प्रदेशकी भूमिका नाम अल्बरूनीके समयमें 'गुजरात' नही था। जब मूलराज सोलंकीने (चौलुक्य) ई. स. ९४२ में अणहिलवाड़में सत्ता हाथमे ली तब तो वह मात्र वढ़ियारके साथ सारस्वत मण्डल (आजका उत्तर गुजरात) का ही अधिपति था। आजके मध्य गुजरात, दक्षिण गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छपर उसका अधिकार नही था। मूलराजका पिता राजि कान्यकुब्जके प्रतिहार वंशी राजा महेन्द्रपाल या महीपालका सामन्त था और वह भिन्नमालके प्रदेशका अधिरक्षक था। इसकी मृत्युके बाद मूलराज, अपने मौशालमे मामाके घरमें अणहिलवाड़के अधिपति चावड़ा सामन्तसिंहके पास सुरक्षित था। सामन्तसिंहका उत्तराधिकारी बननेसे मूलराज अणहिलवाड़ पाटणका अधिपति बना। भिन्नमालवाले गुर्जर प्रदेशके सामन्त राजिका पुत्र होनेके कारण इसको "गुर्जरेश्वर" भी माना जाता था। बादमें तो आबूके धरणीवित्तहको मूलराजके सामन्तपदको स्वीकार करना पड़ा था, इससे मूलराज सचमुच ही 'गुर्जरेश्वर' भी बन गया था। आगे चलकर सौराष्ट्र कच्छ और खेटक प्रदेशके बहुतसे भाग मूलराजने अपने जीवनकालमें हस्तगत किये थे। फिर तो सिद्धराज जयसिंहके (ई. सन् १०९४–११४३) समय तक आजके गुजरातका ही रूप नहीं मिला बल्कि इससे भी बाहरके प्रदेश सोलंकियोंकी सत्ताके अन्तर्गत आ गये थे। सिद्धराजने मालवापर (ई. स. ११३६) विजय प्राप्त की। इससे पूर्व तीन पीढ़ियोंसे मालवाके राजवंश एवं अणहिलवाड़के सोलंकियोंके बीच संघर्ष जारी था। धारापति भोजदेवके इन शब्दोंमें किया हुआ यह व्यंग्य ध्यान देने योग्य है:—

शृण्वन्ति लटभं लाटाः प्राकृतं संस्कृतद्विषः।
अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः॥
[सरस्वती कण्ठाभरण २-१३]

यहाँ गुर्जरोंके विषयमें अपनी ही अपभ्रंश भाषा (गौर्जर अपभ्रंश) का आग्रह रखनेका निर्देश है। किन्तु इससे पूर्व राजशेखरने भी 'काव्य-मीमांसा' में "सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवः" (पृ. ५१) कहा ही था। इन दोनों प्रमाणोंसे यह अत्यन्त स्पष्ट है कि समग्र मारवाड़के साथ आबूके विशाल दक्षिण प्रदेशकी "गौर्जर अपभ्रंश भाषा" देशभाषा थी। सिद्धराज जयसिंहके समयमें उसके राज्यके मान्य पण्डित आचार्य हेमचन्द्रने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' (संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओंके व्याकरण) की रचना की, जिसके आठवें अध्यायमे अपभ्रंश सहित छह प्राकृत भाषाओंका स्वरूप स्पष्ट किया गया है। आचार्य हेमचन्द्रने महाराष्ट्री प्राकृतको प्रधान तो रखा, किन्तु 'महाराष्ट्री' ऐसा नाम नही दिया, नाम तो 'प्राकृत' ही रखा गया। इतना ही नही वह महाराष्ट्री प्राकृत भी स्वरूपसे मुख्यतया "जैन महाराष्ट्री" ही थी। इसी तरह अपभ्रंशके उदाहरण देते समय अपभ्रंशको कोई विशेष नाम नहीं दिया, तो भी इस अपभ्रंशके उदाहरण अपने प्रदेशके व्यापक जीवन लोकसाहित्यसे उद्धृत करके दिये थे, वे राजशेखर एवं भोज देवके निर्दिष्ट प्रदेशके ही थे। अतः मेरी धारणा है कि "गौर्जर अपभ्रंश" उसी अपभ्रंशके लिए प्रयुक्त है। आगकी निष्पन्न गुजराती, राजस्थानी, मेवाती, अहिरवती, हाड़ौती, ढूँढ़ाली, मालवी और निमाड़ीके स्वरूपोंका सीधा विकास आचार्य हेमचन्द्रके दिये हुए 'अपभ्रंश' से स्पष्ट है। इसी कारण इस अपभ्रंशकी संज्ञा 'गौर्जर अपभ्रंश' होना युक्ति संगत है। यहाँ दी हुई 'राजस्थानी' से लेकर 'निमाड़ी' तक की भाषाओंके अतिरिक्त भारतीय आर्य परिवारकी अन्य भाषाओंका सम्बन्ध आचार्य हेमचन्द्र द्वारा दिये हुए 'अपभ्रंश' से जरूर है, किन्तु वह 'गौर्जर अपभ्रंश' मे रही हुई व्यापक अपभ्रंशताके कारण ही।

सिद्धराज जयसिंहका विशाल गुर्जरदेश ('गुजरात') आगे चलकर कमजोरीके कारण भीमदेव द्वितीय (ई सन् ११८६-१२४२)के समयमे राजकीय दृष्टिसे संकुचित हो गया, किन्तु भाषाकी दृष्टिसे कोई संकोच नही था। भाषाके संकोचका प्रदेश तो तब हुआ जब अणहिलवाड़ पाटणमे कर्ण बाघेलाका शासन मुसलमानोके हाथमें चला गया। और गुजराती मुस्लिम सुलतानोंके शासनकालमे गौर्जर अपभ्रंशके एक प्रकारका विकास, खासकर आबूके दक्षिणी प्रदेशमें, होने लगा। चौदहवीं शताब्दीके अन्त तक राजस्थानी मेवाती, अहिरवटी, हाडौती, ढूँढाळी, माळवी और निमाड़ी भी प्रान्तीयताकी दृष्टिसे अपने-अपने प्रदेशमे विकसित हो रही थीं। उस समयकी गुजरातकी भाषाका नाम "गुजर भाखा" था। भालणने (ई. सन् १५००-५० के लगभग) अपने ग्रन्थोंमें लिखा है—'गुजर भाखाए नलराना गुण मनोहर गाऊँ' (नलाख्यान १-१) भाषाके लिए 'गुजराती' नाम सबसे पहिले गुजरातके आख्यान-कवि प्रेमानन्दने (१६५०-१७०० के लगभग) अपने 'दशमस्कन्ध' की इस पंक्तिमें 'बाँधूं नागदमण गुजराती भाषा' इस प्रकार किया है। यह नाम बर्लिनके एक ग्रन्थपाल लाकोजेने ई. सन् १९३१ मे अपने एक ग्रन्थमें प्रयुक्त किया था।

आजकी भूमिके लिये देशवाचक 'गुजरात' नाम द्वितीय सोलंकी भीमदेवके समयमें रूढ़ बना था। इसका सबसे पहला प्रमाण तो नाल्हकृत 'वीसलदेव रासो' (ई. स. १२१६)के 'समन्द सोरठ सारी गुजरात'

(१–६१) और उसके बाद 'आबू रास' (ई. सन् १२३३) के 'गुजरात-धुर-समुधरण राणउ लूणपसाउ' (११) इन वचनोंसे मिलता है।

आजके गुजरातका 'गुजरात' नाम कबसे प्रचलित हुआ, इस प्रदेशकी भाषाकी विविध भूमिकाओंके क्या क्या नाम थे और किस किस प्रदेश-भाषाओंके साथ इसका भगिनी-सम्बन्ध है, ऊपर यह बतलानेका एक अल्प प्रयत्न किया गया है। सांस्कृतिक दृष्टिसे कहा जाय तो, आदिवासी भीलोंको छोड़कर, प्राय: गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छकी प्रजा मारवाड़ और सिन्धसे आकर बसी है। इनके रीति रस्म, व्यवहार, लोकगीत, लोक-साहित्य आदिमें जो साम्य दिखाई पड़ता है, वह भी इसी कारणसे। इस बातको भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गुजरातमें बसनेवाले सभी लोग 'गुजर' नही है। गुजर अंश गुजरातके पाटीदारोंमें गुजराती रबारियोंमें, गुजर ब्राह्मण, गुजर बनिये, गुजर सुतारोंमें, एवं सोलकी-वाघेला आदि राजवंशी राजपूतोंमे ही है। अन्य लोग दूसरे दूसरे वशोके हैं। ये सभी पीढ़ियोसे साथ रहनेके कारण सास्कृतिक एकताके सूत्रमें बँधे हुए है।

गुजराती भाषा और हिन्दी भाषा

हिन्दी भाषा कहनेसे उसके 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' ये दो प्रधान भेद उपस्थित होते है। 'पूर्वी हिन्दी' कहनेसे 'अवधी' 'बघेली' और 'छत्तीसगढ़ी' का एक समूह, और 'पश्चिमी हिन्दी' कहनेसे 'खड़ी बोली' 'बांगरू' 'ब्रजभाषा' 'कन्नौजी' और 'बुन्देली' का समूह स्पष्ट होता है। 'राजस्थानी' की उत्तरपूर्वी सीमा, 'पश्चिमी हिन्दी' की दक्षिण-पश्चिमी सीमा बन जाती है। 'राजस्थानी' कृत्रिम नाम होनेपर भी विशिष्ट संज्ञाके अभावके कारण भाषाका यह नाम स्वीकृत कर लिया जाय तो इसमे कोई बाधा नहीं है। 'पुरानी राजस्थानी' के पश्चिम भागके बड़े दो स्रोत विकसित हुए। वे है—'राजस्थानी' और 'गुजराती'। यहाँ 'गुजराती' और हिन्दी' की तुलनात्मक सुविधाकी दृष्टिसे सम्बन्धित भाषा-उपभाषाओंके रूपोके साथ उनके स्वरूपको स्पष्ट करनेका एक प्रयत्न किया जा रहा है।

वर्णमाला :–स्वर–भारतीय आर्य भाषाके वर्णोच्चार वैदिकी भूमिकासे चले आये है। यदि हम स्वरोंपर विचार करें तो " अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ " इतने स्वरोसे हमारा काम नहीं चलता है। गुजरातीके लिये—राजस्थानी और हिन्दीके लिये भी—'लघुप्रयत्न अकार' की अपेक्षा रहती है। 'कमल' शब्द देखनेसे तुरन्त पता चलता है कि तीनों अकारोंमें तारतम्य है। 'क' में अकार समकक्ष है, 'म' मे पूरा स्वराघातवाला अकार है, तो इसी कारण 'ल' में अकार पूर्णतया प्रयुक्त नहीं है। यूरोपीय विद्वान् यहाँ अकारका अभाव कहते है। हम सम्पूर्ण अभावका अनुभव नही करते है। इसी तरह स्वराघातके कारण ही " इ उ ए ओ " आदि स्वर अस्वरित होते है तब लघुप्रयत्न हो जाते हैं। राजस्थानी और हिन्दी उच्चारणों में भी यही स्थिति है। 'सगाई' 'लुगाई' 'जाऊँ' 'जनेऊ' 'गाउ' 'गयेलुं' 'जाओ' आदि गुजराती—हिन्दी शब्दोंमें स्वराघातवाले स्वरोंके परवर्ती स्वरोंमें उच्चारणलाघव स्पष्ट है।

तत्सम शब्दोंके लेखनमें आज ऋकार स्वीकृत है, किन्तु उच्चारण नष्ट हो गया है। गुजराती-राजस्थानीमें सामान्योच्चारण 'र' है, तो हिन्दीमें ऋग्वेदीय पद्धतिसे 'रि' उच्चरित होता है। शिष्ट गुजरातीमे 'रु' है। ये तीनों उच्चारण व्यञ्जनात्मक बन गये हैं।

"ए-ओ" प्राकृत भाषाओंके समयसे ह्रस्व भी चले आते हैं। ह्रस्व-दीर्घ "ए-ओ" के लिए 'संवृत' संज्ञा गुजराती विद्वानोंने दी है। गुजरातीमें इनके अतिरिक्त 'विवृत' उच्चारण भी है, जिसके भी ह्रस्व और दीर्घ ये दो प्रकार हैं। राजस्थानी एवं हिन्दीमें तो ये दोनों प्रकार है ही। ऐ-औ वाले संस्कृत तत्सम शब्दोंको छोड़कर राजस्थानी एवं हिन्दीमें तद्भव शब्दोंमें जहाँ कहीं "ऐ-औ" हैं वहाँ सर्वत्र उनका उच्चारण संस्कृतकी तरह सर्वथा "ऐ-औ" नहीं है। गुजराती बैठो, राजस्थानी बैठो, हिन्दी बैठा, अरबी-फारसी गय्र, कय्द, कव्ल, (गुजराती 'गेर, केद, कोल' जैसे शब्दोंके उच्चारण देखनेसे हिन्दी 'बैठा' (बयठा) और गुजराती बैठो इन दोनोंके बीचका उच्चारण-भेद स्पष्ट होगा। राजस्थानी और हिन्दीमें आज जहाँ जहाँ दो मात्राएँ लगाई जाती है वहाँ प्रायः सर्वत्र गुजरातीके "ए-ओ" विवृत है; राजस्थानी उच्चारण भी प्रायः विवृत हैं।

अनुस्वार और अनुनासिक :—र, श, ष, स, ह के पूर्व संस्कृत परम्परासे पूर्ण अनुस्वार है; संरम्भ, संशय, कंस, संहार। प्रायः यह उच्चारण संस्कृत तत्सम शब्दोंके लिये सीमित है। जहाँ-जहाँ वर्गीय अनुनासिक व्यञ्जन होता है वहाँ-वहाँ भी लेखनमें 'अनुस्वार' लिखनेकी प्रथा है।

यों अनुनासिक उच्चारण तो वैदिक समयसे ज्ञात है। प्रातिशाख्योंमें उसे ही 'रङ्ग' कहा गया है। अनुस्वारका मार्दवसे भारत-आर्यकुलकी भाषाओंमें अनुनासिक मृदु उच्चारण उतर आया है। संस्कृत अक्षि, प्राकृत अंखी, अपभ्रंश अंखि, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आँख. प्राकृत और अपभ्रंशके प्रत्ययोके अन्तभागमें स्वतन्त्रतापूर्वक भी यह उच्चारण था। 'ज्यां-त्यां-क्यां' और 'जहाँ-वहाँ-कहाँ' मे स्पष्ट अनुनासिक है। अनुस्वार ह्रस्व स्वरको 'गुरु' बनाता है, अनुनासिक तो मात्र स्वरधर्म है और सानुनासिक ह्रस्व स्वर ह्रस्व ही रहता है; जैसे कि संस्कृत कंस, हंस, किन्तु गुजराती काँसु, हिन्दी हँसना।

विसर्ग : मात्र थोड़े संस्कृत तत्सम शब्दोके लिये ही मर्यादित है।

व्यञ्जन—व्यंजनोके उच्चारण वैदिक समयसे ही चले आते है। गुजरातीमें—खास करके चरोतरमें 'च-छ-ज-झ' के मराठी प्रकारके विशिष्ट उच्चारण पाये जाते हैं। गुजरातके इतर प्रान्तोंमें, राजस्थानी एवं हिन्दी आदिमें यह विशिष्ट उच्चारण नहीं है. शुद्ध संस्कृत उच्चारण ही है। ग्रामीणोंमें 'च-छ' का दन्त्य 'स', 'ज-झ' का यूरोपीय 'जंड' सदृश, और 'श-ष-स' का कण्ठ्य अघोष महाप्राण 'स' गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छमें परिचित है। इनमें 'श-ष-स'का कण्ठ्य अघोष महाप्राण 'स' उच्चारण शिष्टोंमें अल्प व्यापक नहीं है। कतिपय विद्वानोंने इस उच्चारणको 'ह' सदृश कहा है, किन्तु 'ह' तो कण्ठ्य घोष महाप्राण है। 'स' 'स़' 'ह' ये तीन उच्चारण स्पष्ट रूपसे पृथक् है। यह भेद राजस्थानीमे भी पाया जाता है।

अरबी-फारसी शब्दोंके जिह्वामूलकेभी अन्दरके भाग साथ रखनेवाले अ-क़-ख़-ग़-ज़ आदि उच्चारण 'हिन्दी' में यथावत् हैं, किन्तु गुजराती एवं राजस्थानीमें नहीं है। 'ज़' के विषयमें इतना है कि अँग्रेजी तत्सम शब्दोंमे 'गुजराती' कण्ठमें भी वह व्यक्त होता है,; लिखनेमें वहाँ 'झ' से काम चलाया जाता है।

'ड-ढ' शब्दारम्भमें या समासान्त शब्दोंमें परवर्ती शब्दके आरम्भमें तो शुद्ध मूर्धन्य हैं, जैसा कि डफ, डोसी, ढेल, ढब्बु, ढोर, नीडर, अडग, आडम्बर, ; किन्तु मध्यवर्ती दशामें वैदिक समयसे तालव्य उच्चारण

उतर आया है। वैदिक संहिताओंमें 'ळ' और 'ळ्ह' से बताया जाता है, जैसा कि 'अग्निमीळे' 'दृळ्हम्' (='अग्निमीड़े' और 'दृढ़म्')। गुजराती राजस्थानी और हिन्दीमें इस विषयमें समानता है। हाँ, सौराष्ट्र-कच्छमें अवश्य इसके अपवाद है, जहाँ मूलमें दुगुणा 'ड्ड' हो और उनके विकासमें 'ड' आया हो, तो वह शुद्ध मूर्धन्य है; जैसा कि 'पड्ड' 'हड्ड' 'गड्ड' आदिसे विकसित 'पाडो' (महिषीपुत्र), 'हाडकुं' (हड्डी)' 'गाड़ी' (गाड़ी)। सौराष्ट्र-कच्छमें मध्यवर्ती स्थितिमें सभी संयोगोंमें 'ढ' का उच्चारण शुद्ध मूर्धन्य ही है। ब्रजभाषामें तो 'ड़-ढ़' के 'र' 'र्ह' उच्चारण मिलते है।

'ड़ ढ़-ण' इस 'तालव्य' उच्चारणकी संज्ञा भाषाशास्त्रविषयक गुजराती ग्रन्थोंमें 'मूर्धन्यतर' दी गई है।

'न-म' उच्चारण करते समय, यह स्वाभाविक भी है––पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक होता है। गुजराती-राजस्थानी और हिन्दी इन तीनों भाषामें यही स्थिति है। अतः हम देखते है कि 'नातो' 'नदी' 'माता' 'मदन' के 'न-म' की आदि स्थितिमें उच्चारण निरनुनासिक है, 'दान' 'मान' 'रान' 'राम' आदिमें पूर्ववर्ती स्वर सानुनासिक है। प्राकृत भाषाओंके समयमें शब्दारम्भमें 'ण' आ सकता था और उस स्थितिमें उसका उच्चारण निरनुनासिक था जब कि मध्यवर्ती स्थितिमें 'ण' का पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक उच्चरित होता था। वही स्थिति आज तक चली आ रही है, और मध्यवर्ती 'ण' के तालव्य अथवा मूर्धन्यतर उच्चारणका यही कारण है।

'फ' का उच्चारण अँग्रेजी शब्दोंमें दन्त्योष्ठ्य है; 'पीएच्' से आया हुआ 'फ' मात्र ओष्ठ्य है। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमे अँग्रेजी तत्सम शब्दोके इन दोनों प्रकारके 'फ' की अव्यवस्था दिखाई पड़ती है।

'र' का उच्चारण गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमें संस्कृतके अनुसार है। 'मराठी' और दक्षिणकी द्रविड़ भाषाओंमें वर्तुलाकार होता है। बेशक, मराठीमें स्थान-परत्वमें संस्कृतानुसारी उच्चारण भी है।

'य-व' का लघुप्रयत्न उच्चारण पाणिनि द्वारा दिया गया था, किन्तु प्रचलित संस्कृत भाषामे इस उच्चारणका प्रचलन नहीं था। प्राकृतोंमें-खास करके जैन महाराष्ट्रीमें, 'अवर्णो यश्रुति:' से 'य' का लघु-प्रयत्न प्रवाही उच्चारण व्यापक था। गुजराती-राजस्थानी-हिन्दीमें 'य' और 'व' इन दोनोंका लघुप्रयत्न उच्चारण स्वाभाविक है। गुजराती और राजस्थानीमें प्रथम भूतकृदन्तके रूपमें यह उच्चारण 'य' का जीवन्त रूप है; जैसा कि 'मार्यो' 'कर्यो' 'गयो'; व्रजभाषामें भी इन रूपोंमें यह स्वाभाविक है। और 'गया' 'आया' 'पाया' आदिमें 'य' लघुप्रयत्न है। गुजराती द्वितीय भूतकृदन्तोके स्वरान्त धातुस्थितिमें भी 'य' लघुप्रयत्न मिलता ही है, जैसा कि 'गयेलु' 'समायेलुं'। तीनों भाषाओंमें जब य और व 'इ' और 'उ' के बादमें उच्चरित होते है तब ये लघुप्रयत्न होते है, उदाहरणार्थ 'दरिया' 'कडियो' 'रूपियो' और इसी प्रकारके 'चाहिये' 'लिये' 'किये' 'किया' 'दिया' आदि शब्द-समूह। गुजरातीमें 'जुए' 'जुओ' जैसे क्रियारूपोंमें 'जुवे' 'जुवो' जैसी स्पष्ट स्थिति है। गुजराती-हिन्दीके 'जाओ' आदि रूपोंमें भी 'जाव' आदि ही उच्चारण है।

'श-ष-स' हमारी भाषाओंमें प्राकृत कालसे ही 'स' के रूपमें है। गुजरातके चरोतर एवं

अुत्तर गुजरातमे तालव्य स्वरोंके साथ तालव्य उच्चारण होता है, जैसा कि 'शी' 'डोशी'। और मूलमें तालव्य स्वरके सम्बन्धके कारण ही 'भेंश' 'मेश' आदिमें, और भविष्य कालके रूपोंमें, 'शुं' आदि शब्दोंमे। 'ष' सम्पूर्णतया खो दिया है, तो भी सौराष्ट्रकी मेर प्रजामें 'च-छ' के उच्चारणमें स्पष्ट मूर्धन्य 'ष' सुना जाता है; गुजराती 'बेठा छोने?' सौराष्ट्रिय 'बेठा छ नें?' मेर. 'बेट्ठा ष नें।'

बाकी, तत्सम संस्कृत शब्दोंमें ही 'श-ष' हमारी भाषाओंमें स्वीकृत हुए हैं, जिनकी व्रजभाषामे तो कोई आवश्यकता नहीं है।

'ह' के कण्ठ्य और संयुक्ताक्षरोंमें औरस्य उच्चारण वैदिक समयसे चला आता है। संस्कृत तत्सम शब्दोंमें यह परिचित है। वर्तमान भारतीय भाषाओंमें महाप्राण स्वरोच्चारण सुनाई पड़ता है। गुजराती और राजस्थानीकी हस्तलिखित प्रतियोंमें जिन व्यञ्जनों और स्वरोंमें अथवा जिन स्वरोंमें महाप्राण स्वरित उच्चारण है उन व्यञ्जनो और स्वरोसे अलग रखकर स्वसहित लिखा गया 'हकार' मिलता है,; जैसा कि 'वाहालुँ' 'माहारुं' इत्यादि। राजस्थानीमें 'ताहारुं' का 'थारूं' बन गया है। गुजराती उच्चारण 'ताःरुं' ('त्हारुं' जैसा) होता है। "तुम्हारा, हमारा, हम, उन्होंने, जिन्होंने" आदिमे जो हकार है वह व्यञ्जनात्मक माना जाय तो हकारका यह लघुप्रयत्न उच्चारण हुआ, और यदि इसे स्वरूप माना जाय तो वहाँ स्वर ही महाप्राण है, जिसके लिये मैंने गुजराती भाषा शास्त्रीय ग्रंथोके उदाहरणोके लिये 'विसर्ग' चिह्नको अपनाया है। इस हश्रुति या महाप्राण युक्त स्वरोच्चारणके विषयमे अधिक मात्रामें अन्वेषण करनेकी आवश्यकता है।

गुजराती और राजस्थानीमें सुलभतासे पाया जानेवाला जिह्वामूलीय 'ळ' न तो पूर्वी हिन्दीमें मिलता है और न पश्चिमी हिन्दीमें ही। असंयुक्त संस्कृत प्राकृत मध्यवर्ती लकारके स्थानपर मराठी गुजराती राजस्थानी आदि भाषाओंमे यह उच्चारण व्यापक है। गुजरातमें कितनी ही जातियाँ यह उच्चारण नहीं कर सकती है। वे लोग इसके स्थानपर 'र' बोलते है। यह उच्चारण द्राविड़ कुलकी भाषाओंमे व्यापक है। यह उच्चारण वैदिक-कालमें भी था। ऋग्वेदमे 'इला' शब्द और इससे व्युत्पन्न शब्दोंमें 'ळ' था। तालव्य 'ळ—ड़' और ळ एक ही चिन्ह से लिखे जाते थे, किन्तु उच्चारणमें स्पष्ट भेद था। 'जिह्वामूलं तालु चाचार्य आह स्थानं डकारस्य तु वेदमित्रः' ऐसा 'ऋक् प्रातिशाख्य' का कथन इन दोनों उच्चारणोंकी प्राचीनताकी पुष्टिके लिये पर्याप्त है।

सयुक्ताक्षरोंमें हमारे सामने 'क्ष—ज्ञ' के उच्चारणका प्रश्न है। मात्र सं. तत्सम शब्दोंका ही शब्दोंका ही यह विषय है। गुजरातमे 'क्ष' का 'क्ष' शुद्ध उच्चारण शिष्ट लोग करते है; उत्तर भारतमें इसका उच्चारण 'क्छ' के रूपमें सुना जाता है। 'ज्ञ' का उच्चारण तो सभी लोगोंने खो दिया है। गुजरातमें 'ग्न' के रूपमें, तो हिन्दी उच्चारण 'ग्य' है, महाराष्ट्रमें कुछ 'द्य' जैसा उच्चारण सुना जाता है; कहीं भी 'ज्ञ' ऐसा मूल उच्चारण नहीं सुनाई देता।

ध्वनि-परिवर्तनके विषयमें राजस्थानी और हिन्दीमें कोई खास अन्तर नहीं है। स्वरोंके विषयमें तो राजस्थानी एवं हिन्दीमें परम्परासे 'इ' है वहाँ कितने ही शब्दोंमें 'अ' गुजरातीमें आया है; लिखणो—लिखना नहीं, किन्तु 'लखवुं' में इससे विपरीत परम्पराके 'अ' के स्थानपर राजस्थानी एवं हिन्दीमें 'इ'; 'गणवुं' के स्थानपर गिणणो—गिनना.।

गुजराती और राजस्थानीमें व्यञ्जनोंमें जहाँ 'ण' है वहाँ नियमके रूपमें ही हिन्दीमें 'न'; इसी तरह गुजराती-राजस्थानीके 'व' के स्थानपर हिन्दीमें प्रायः 'ब' मिलता है। ब्रजभाषामें हिन्दीकी उस लाक्षणिकताका सविशेष पालन है।

व्याकरण

लिंग :––गुजरातीमें संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशकी परम्परानुसार तीनों लिंग प्रचलित है। कुछ शब्दोंका लिंग-परिवर्तन हो गया है। राजस्थानीमे प्रायः पुल्लिग और स्त्रीलिंग दो लिंग रहे हैं। ज्यों-ज्यों पश्चिम और दक्षिणमें आते हैं त्यों-त्यों नपुंसकलिंगका प्रयोग भी दिखाई देता है। गुजरातीमें इसका प्रयोग स्पष्ट रूपसे होता है। हिन्दीमें तो पुल्लिग और स्त्रीलिंग दो ही लिंग है; तो भी पश्चिमी हिन्दीकी एक-दो उपभाषाओंमें क्वचित् नपुंसकलिंगके रूप भी बच गये है।

वचन :––भारतीय आर्यकुलकी सभी वर्तमान भाषाओंमें दो ही वचन है। इसका आरम्भ प्राकृत कालसे ही हो चुका था। गुजराती और हिन्दीमें जो विशिष्टता आई है वह बहुवचनके विभक्ति-रूपोंमे 'ओ' प्रत्ययका प्रत्ययों एवं परसर्गोके पूर्व प्रवेश; जो हिन्दीमें सानुनासिक 'ओं' के रूपमें है; जैसे कि गुजराती 'घोड़ाओनुं, झाड़ोनु', किन्तु हिन्दी घोड़ोंका, झाड़ोंका'। शब्दोके भीतर लगनेमें इतना ही अन्तर है कि गुजराती सबल रूपोंमे 'ओ' अलग रहता है, तो हिन्दीमे वह पूर्व स्वरके साथ मिलकर परसवर्णके रूपमे याने 'ओं' के रूपमें एकरूप बन जाता है। राजस्थानी उपभाषाओंमें एवं भीली भाषा-कुलमें 'आँ' ('वागड़ी' में 'अँ') के रूपमें यह मिलता है। सौराष्ट्रमें––खास करके पश्चिमी भागमें 'उ', तो पूर्वी भागमें स्त्रीलिंगमें मात्र सानुनासिक 'उँ' ये अपवाद स्वरूप है।

सबल रूपोंमें गुजरातीमें 'घोड़ा–घोड़ाओ' 'घोड़ीं–घोड़ींओ' (सौराष्ट्रमें तो एक ही रूप 'घोड़ाउ' 'घोड़ाँउ'––'घोड़ियु–घोड़ियुं) यों दो रूप प्रयुक्त होते है। राजस्थानीकी उपभाषाओंमें 'आँ' आता है। हिन्दीमें स्त्रीलिंगमें प्रथमा विभक्तिमें मात्र इ-ईकारान्त शब्दोंमें ही 'आँ' आता है; उदा० 'कृतियाँ' 'लड़कियाँ' 'घोड़ियाँ,। बाकी हिन्दी भाषाकुलमें प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'ए' प्रत्यय ही है, जो पालिमें व्यापक था और जो मगध देशकी ही लाक्षणिकता थी––अर्ध मागधीमें एवं मागधीमें भी यही स्थिति थी। हिन्दीमें स्त्रीलिंगी शब्दोंमें वह प्रत्यय सानुनासिक 'एँ' के रूपमें है; उदा०–– 'रचनाएँ' 'वालाएँ' 'भुजाएँ' 'आँखे' 'पाँखें' 'बातें।' हिन्दी एवं राजस्थानीकी एक जो विशिष्टता है पुल्लिग अकारान्त-उकारान्त शब्दोंमें प्रथमा विभक्तिमे अप्रत्यय दशाकी स्थिति उदा. हिन्दी 'पेड़ उगा–– पेड़ उगे' 'फूल खिला-फूल खिले' 'लड्डू खाया––लड्डू खाये'। यानी साहचर्यसे ही वचन-परिचय होता है। शिष्ट गुजरातीमें प्रथमा विभक्तिके विषयमें साहचर्यसे जहाँ भी बोध है वहाँ सभी शब्दोंमें ओकारकी आवश्यकताके विषयमें कोई बन्धन अनिवार्य नहीं है।

नाम :––भारतीय आर्यकुलकी रूपाख्यान-पद्धति समान है। प्रत्ययोंका लगभग नाश हो गया है और उनका स्थान अनुगों अथवा परसर्गोंने लिया है। गुजराती एवं राजस्थानी-कुलमें तृतीया विभक्तिमें 'ए' बच गया है (जिसका उच्चारण ह्रस्व विवृत है––प्रान्तीयताकी दृष्टिसे कहीं कहीं वह सानुनासिक 'एँ' के रूपमें भी है), जो भीली-कुलमें भी है। इतना ही नहीं, सप्तमी विभक्तिमें भी बच गया है,

किन्तु उसका प्रयोग बहुत सीमित हो गया है, और 'उपर' 'पर' आदि नामयोगी परसर्गोंने मूलमें 'अन्दर' का अर्थ नष्ट हो जानेके कारण उसका स्थान ले लिया है।

यहाँ तुलनाकी दृष्टिसे गुजराती 'राजस्थानी' मालवी 'ब्रज' और हिन्दीके रूपोंको दिया जा रहा है--

सबल अंगका पुं. 'घोड़ो' शब्द :

एकवचन	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
प्रथमा	घोड़ो	घोड़ो	घोड़ो	घोरो	घोड़ा
तृतीया	घोड़े-घोड़ाए	घोड़े	घोड़े	...	...
विभक्ति-अंग	घोड़ा–	घोड़ा–	घोड़ा–	घोरा–	घोड़े–
बहुवचन					
प्रथमा	घोड़ा (-ओ)	घोड़ा	घोड़ा	घोरे	घोड़े
तृतीया	घोड़ा(-ओ)ए	घोड़ाँ	घोड़ाँ	...	...
वि.–अ.	घोड़ा (-ओ)–	घोड़ाँ–	घोड़ाँ–	घोरौं–घोरनि–	घोड़ों–

यहाँ तृतीयामें ब्रज और हिन्दीमें प्रत्यय नष्ट हुआ है; अनुग याने परसर्गवाले रूप प्रयोगमें आते हैं; जैसे कि 'घोराने' 'घोड़ेने', 'घोरौंने' 'घोड़ोंने'।

विभक्ति-अंग वह वस्तु है जिसको अनुग याने परसर्ग विभिन्न विभक्तियोके अर्थके लिए लगाये जाते है। हिन्दीमें ऐसी अंगस्थितिमें ए. व. मे 'ए' एवं ब. व. में ब्रज. में 'औं' (–विवृत 'ओ') और हिन्दीमें 'ओं' है।

सबल अंगका स्त्री लिं. 'घोड़ी' शब्द :

ए. व.	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
प्रथमा	घोड़ी	घोड़ी	घोड़ी	घोरी	घोड़ी
तृतीया	घोड़ीए(–घोड़िये)	घोड़ी	घोड़ी	..	...
वि. अ.	" घोड़ी–	घोड़ी–	घोड़ी	घोरी–	घोड़ी–
बहुवचन					
प्रथमा	घोड़ी(-ओ) (–घोड़ियो)	घोड़्याँ	घोड़्याँ	घोरियाँ	घोड़ियाँ
तृतीया	घोड़ी(-ओ)ए(–घोड़ियोये	घोड़्याँ	घोड़्याँ	..	...
वि. अं.	घोड़ी(-ओ)–(–घोड़ियो–)	घोड़्याँ–	घोड़्याँ	घोरियौं–	घोड़ियों–

सबल अंगके गुज. नपुं. 'घोड़ुं' के रूप

प्रथमा	घोड़ुं	घोड़ाँ (–ओ)
तृतीया	घोड़े, घोड़ाए	घोड़ाँ (–ओ)ए
वि. अं.	घोड़ा–	घोड़ाँ (–ओ)–

उत्तर गुजरातमें अकारान्त नपुं. नामोंके रूपोंमें प्रथमा ब. व. में 'ढोरां' 'घरां' 'खेतरां' जैसे रूप प्रयुक्त होते हैं। शिष्ट भाषामे यह नहीं है।

निर्बल अंगका गुज. में नपुं., किन्तु दूसरोंमें पुं. 'घर' शब्द :

ए. व.	गुज.	राज.	माल	ब्रज.	हिं.
प्रथमा	घर	घर	घर	घर	घर
तृतीया	घरे	घर	घर	...	...
वि. अं.	घर–	घर–	घर–	घर–	घर–
बहुवचन					
प्रथमा	घर (–घरो)	घर	घर	घर	घर
तृतीया	घरे. (घरोए)	घरां	घरां	..	...
वि. अं.	घर–(घरो–)	घरां	घरां	घरौ–,घरनि–	घरों–

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजस्थानी कुलमें तृतीया विभक्तिके कर्तृ-अर्थमे 'ने' अनुग या परसर्ग नहीं लगता है; केवल मेवाती और मालवीमें 'ने' या 'नै' (–नॅ) का प्रयोग पश्चिमी हिन्दीकी निकटताके कारण होता है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सप्तमी विभक्तिमें गुज. मे 'ए' प्रत्ययवाला रूप अब तक बचा है। वैसे ही राजस्थानी कुलमें भी 'ऐ' '(अँ) रूपमें बचा है किन्तु प्रयोगमें विरल होता जाता है और अनुगों किंवा परसर्गोंसे काम चलाया जाता है।

अनुग किंवा परसर्ग :

विभक्तियोके प्रत्यय नष्ट हो जानेके कारण 'अनुगों' अथवा 'परसर्गो' का प्रयोग भारतीय भाषाओंमें व्यापक बन गया है। ये अनुग या परसर्ग मूलमे तो कोई शब्द ही है, पीछेसे घिसते-घिसते छोटे-छोटे रूपमें आ पहुँचे है; स्वरूपमें प्रत्यय जैसे बन गए है। इसके अलावा नामयोगियोंका भी ठीक-ठीक उपयोग, खास करके गुजराती भाषामें होता है।

	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
तृतीया-कर्ता	...	...	ने	नें, नै	ने
तृतीया-साधन	बड़े, थी	थकी	..	से	से
चतुर्थी-सम्प्रदाय	ने	नै	ने, के	कौं, कूँ, कै, के	को
चतुर्थी-तादर्थ्य	माटे, सारु, वास्ते	..	...	लिए	लिए
पञ्चमी	थी	सूं, ऊँ	ऊँ, से, सूं	सूं,सौं, तें, ते	से
षष्ठी	नो-नी-नुं-ना-नां	रो-रा-री	रो-रा-री	कौ-के-की	का-के-कीख
सप्तमी	माँ, उपर-पर, विशे, में, पर		में, पर	मे, मैं,पै, लौ,	मे, पर

अनुग या परसर्गोके अन्दर पूर्व हिन्दी सबल अंगोंमें बीचमें 'ए' आता है, 'घोड़ेने-से-का' इत्यादि।

किसी-न-किसी प्रकारसे विभक्तिके अर्थोंको पूर्ण करनेका प्रयत्न किया गया है। व्रज आदि हिन्दी कुलकी भाषाओंने सभी प्रत्यय खो दिए है और भाषाने 'व्यस्त दशा' का रूप ले लिया है; गुजराती राजस्थानीमे तृतीया-सप्तमीमे 'ए' प्रत्यय बचनेसे इतना रूप 'समस्त दशा' का है, बाकीका 'व्यस्त दशा' का।

गुजराती कर्मणि नई रचनामे कर्ताको 'थी' लगाया जाता है; जैसा कि 'छगनथी खवातुँ नथी'; हिन्दो—'छगनसे खाया नहीं जाता' है। प्राचीन भूत कृदन्तवाली रचनामें 'ए' प्रत्यय ही प्रयुक्त होता है; जैसा कि 'केशवे रोटली खाधी'; हिन्दी—'केशवने रोटी खाई।'

षष्ठी विभक्तिके परसर्ग सबल अंगके हैं और उन सब भाषाओंमें लिंग और वचनानुसार परिवर्तित होते है। गुजरातीके 'थी' का मूल स्वरूप लिंगानुसारी 'था', और सौराष्ट्रमें 'थो-थी-थुँ-था-था' लोक-भाषामें भी प्रयुक्त होते है। बाकी तो 'थी' ही स्वीकृत हो गया है।

विशेषण: विशेषण 'विशेष्य' का परवश है। 'विशेष्य' की उपस्थितिमे उसमे खास प्रत्ययादि नहीं लगते। सबल अंगके हों तो 'घोड़ो-घोड़ी-घोड़ुँ' के विभक्ति-अंग जैसे रूप होते है। गुजरातीमें तृतीया-सप्तमीके 'ए' प्रत्ययवाले पुं.-नपुं. नामोंके पूर्व सबल अंगके विशेषणोंमे वही प्रत्यय लगानेकी प्राचीन परिपाटी है, जैसा कि 'सारे छोकरे' 'ऊँचे घोड़े' मे है; किन्तु अब वि. अं. का प्रयोग शिष्ट लोगोंमे व्यापक बनता जा रहा है; जैसा कि 'सारा छोकरे' 'ऊंचा घोड़े' इत्यादिमें देखा जा सकता है। राजस्थानीमे सबल अंगके विशेषणोंमें 'एकार' लगता है जैसे, 'राजारे घरे' 'राजाके घरे' आदि। हिन्दीमे तो प्रथमाके अतिरिक्त सभी विभक्तियोंमें सबल अंगके विशेषणोंमें 'ए' अवश्य लगता है उदाहरणार्थ 'अच्छे लड़केने', 'अच्छे लड़केसे', 'अच्छे लड़केमें', 'अच्छे लड़केपर', 'अच्छे लड़केको' इत्यादि।

सर्वनाम :

पुरुषवाचक सर्वनाम—प्रथम पुरुष

ए. व.	गुज.	राज.	माल.	व्रज.	हिं.
प्रथमा	हुँ	हुँ; म्हुँ	मुं, हुँ	मै, हौ, हों	मै
तृतीया	में				
वि. अ.	मारा–	म्ह–, मै–	म्हा–	मो–, मोहि–, मुज–.	मुझ
बहुवचन					
प्रथमा	अमे (–अह्मे)	म्हे, मे	म्हें	हम	हम
तृतीया	अमे (–अह्मे)				
वि. अ.	अमारा (–अह्मारा)	म्हाँ–, माँ– ह	म्हाँ–	हमौं–, हमनि–; हम–	

(गुज. मे 'अमो,' वि. अं. 'अमो' भी व्यापक है।)

द्वितीया-चतुर्थीके लिए गुज. ए. व. 'मेमले' रूप 'म–' (म. गु. मुहु–) अंगको तो ब. व. 'अमने' रूप 'अम' (म. गु. अम्ह–) अंगको मध्य गुज. 'नइ' परसर्ग द्वारा मिला है। राजस्थानी एवं ब्रज-हिन्दीमें तो वि. अ. को परसर्ग लगकर रूप सिद्धि होती है। गुज. चतुर्थी ए. व. में 'मारे' और ब. व. मे 'अमारे' तृतीयाके प्रत्ययसे प्राप्त रूप है।

षष्ठीके अर्थके विशेषण रूप 'महारउ' ए. व. अपभ्रंशमें था; इसके ब. व. में 'अम्हारउ'। गुज. और राज. में समान रूप ए. व. मारो–म्हारो है। मालवीमे 'म्हाँणो' है; ब्रजमें 'मेरौ,' हिन्दीमें 'मेरा' मिलता है, तो ब. व. गुज. 'अमारो,' राज. और माल. 'मारो–म्हारो'; ब्रज. 'हमारौ,' हिन्दीमें 'हमारा'। हिन्दीके 'मुझे–हमें कोई ख्याल नहीं है' (ऐसे चतुर्थी अर्थके प्रयोग होते ही है।)

गुजराती ने उत्तम-मध्यम पुरुषोंके सम्मिलित अर्थका 'आपणे' प्राप्त किया है, जिसका रूपाख्यान राजस्थानीमें 'आपाँ,' मालवीमें भी 'आपाँ' इसी अर्थमें होता है। गुज. 'आपणो,' राजस्थानी 'आपरो', तो मालवी 'आपणो' गुजरातीके समान षष्ठीका अर्थ देनेके लिए व्यापक है। 'अपन नहीं करेंगे,' ऐसा प्रयोग बोलचालकी हिन्दीमें कभी होता है तो वहाँ अर्थ 'हम' ही है।

मध्यम पुरुष

ए. व.	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हि.
प्रथमा	तुँ	तूं, थूं	तूं	तू, तै, तै	तू
तृतीया	तें				
वि. अ.	तारा–	थ–, तैं–	त–, थ–, था–	तो–, ततोहि–, तुझ	
बहुवचन					
प्रथमा	तमे (–तह्मे)	थे, तमे	थें	तुम	तुम
तृतीया	तमे (तह्मे)				
वि. अ.	तमारा–(तह्मारा)–	थाँ, तमाँ–	थाँ	तुम्हौं–,	तुम–

(गुजराती में 'तमो', वि. अ. 'तमो–' भी व्यापक है।)

द्वितीया और चतुर्थीके लिए गुज. ए. व. 'तने' रूप 'त' (म. गु. तुहु–) अंगको, तो ब. व. 'तमने' रूप 'तम' (म. गु. तुम्ह–) अंगको मध्य. गुज. 'नइ' परसर्ग द्वारा मिला है। राजस्थानी एवं ब्रजभाषा तथा हिन्दीमे तो वि. अ. को अनुग लगकर पररूप सिद्धि होती है। गुज. चतुर्थी ए. व. में 'तारे' और ब. व. में 'तमारे' तृतीयाके प्रत्ययसे प्राप्त है।

षष्ठीके अर्थके विशेषणके रूप 'तुहारउ' ए. व. अपभ्रंशमें था; इसके साम्यसे 'तुम्हारउ' गुज.–रातीमें ए. व. 'तारो–त्हारो', राज. और माल. 'थारो', ब्रज. 'तेरौ', तो हिन्दीमें 'तेरा', ब. व. मे गुज.' 'तमारो' राज. 'थाँरो–तमाँरो,' माल. 'थाँणो', ब्रज 'तुम्हारौ–तिहारौ', हिन्दी 'तुम्हारा'।

गुजराती, राजस्थानी, मालवी, ब्रज और हिन्दी आदि भाषाओंमें मानार्थमें 'आप' सर्वनामका प्रयोग होता है। जिसके सभी रूप बनते हैं। इसकी खूबी यह है कि ब्रज और हिन्दीमे वह अन्य पुरुष ब. व. की क्रियाके साथ प्रयुक्त होता है; उदा०– 'आप करें', गुजराती मध्यम पुरुषके साथ ब. व. की क्रियाका रूप प्रयुक्त होता है;, उदा० 'आप करो–आवो-जाओ।'

हिन्दीमें 'तुझे–तुम्हें कोई खयाल नहीं है' ऐसे क्रियाके चतुर्थीके रूपके प्रयोग स्वतन्त्र हैं।

दर्शक सर्वनाम--'आ'

ए. व.	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हि.
प्रथमा	आ	ओ, यो,	यो	यह	यह
		स्त्री. आ. या	स्त्री. या		
वि. अं.	आ--,	इण--, इणी--, अणी--	इणी--, अणी--	या--, याहि--	इस--
बहुवचन					
प्रथमा	आ	ए, ऐ	ये	ये	ये
वि. अ.	आ--	इणाँ--, अणाँ--,	इणाँ--, अणाँ	इन्हौं--, इनि	इन्हों--,इन-
		स्त्री. याँ--, आँ			

गुजराती में ब. व. में 'ओ' प्रत्ययवाले रूप भी शिष्टोंमे प्रचलित हैं, तो द्वितीया-चतुर्थीके अर्थमं 'आमने', और षष्ठीके अर्थमें 'आमनुं' खास करके मान बतानेके लिए प्रयोग करते समय बोले जाते हैं

'ए'

ए. व.	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हि.
प्रथमा	ए	ऊ, स्त्री.वा	वो,स्त्री. वा	वो, वह	वह
वि. अं.	ए--	उण--,उणी--,वणी--	उणी--,वणी--	वाहि--,वा--	उस--
बहुवचन					
प्रथमा	ए	वै	वी	वै, वे	वे
वि. अं.	ए--	उणा--,वणा--,वाँ	वणाँ	उन्हौं--,उनि--	उन्हों--,उ

'आ' विषय की सूचना 'ए' के लिए भी समान है।

इतर सर्वनाम :

	गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हि.
सम्बन्धी	जे	जो, जिको,	जो	जौ, जौन	जो
		स्त्री. जिका			
वि. अं.	जे--	जिण--,जण--,जणी--	जणी--	जाहि--, जा--	जिस--
	ते	सो, तिको	...	सो	...
		स्त्री. तिका	...		
वि. अं.	ते	तिण, तिणी--	...	ताहि--, ता--	..
प्रश्नार्थ	कोण	कुण, कण	कूंण	को, की	कौन
वि. अं.	को--,के	कुण--,कण--	कणी--	काहि--,का	किस--
नपुं.	कोण	कांई	कांई	कहा, का	...
अनिश्चित	कोई	कोई	कोई	कोऊ, कोई	कोई
नपुं.	कंई, कांई	कांई	कांई	कछु	कुछ

गुज. में 'जे' 'ते' के रूपाख्यान 'ए' की तरह सभी संयोगोंमे होते हैं। 'ते' गुज. में 'जे' के सम्बन्धी प्रयोगमें ही प्रयुक्त होता है; वहाँ 'ते' के स्थानपर 'ए' भी आता है। बाकी 'ते' अ. पु. के सर्वनामकी ही शक्ति अपनेमे बचा सका है। गुज. में 'वह' दर्शक सर्वनाम है ही नहीं। अ. पु. सर्वनाम 'तो' का भी स्थान 'ए' ने अपनेमें रखा ही है। इसपरसे बने हुए विशेषण एवं अव्ययोंमें भी यही स्थिति है;

हिन्दीमें प्रथमा-द्वितीया अप्रत्यय दशामें विशेषण स्वरूपमें एवं रूपाख्यानमे वि. अं. 'जिस' है। 'किस' की भी यही स्थिति है।

गुज. 'कोण' जीवित मानवके लिए है। व्यापक रूपमें 'शो–शी शुं के, जिसका वि. अं. शा–,शे– पु. नपुं. में है। हिन्दीमें इसके स्थानपर 'क्या' का प्रयोग है। गुज. के पास एक प्रश्नार्थ 'कयो--कई-कयुं' भी है, जो 'क्या ' के समानान्तर चलता है।

गुज. में अनिश्चित 'हरकोई,' 'हरकांई' प्रचलित है। गुज. हिन्दी दोनोंमें 'हरेक' चलता है, तो गुज. में 'दरेक' व्यापक है।

'गुज. में 'सौ', तो हिन्दीमें 'सब' है; भारतके लिए हिन्दीमें 'सभी' का प्रयोग व्यापक है।

गुज. में स्वात्मवाचक सर्वनाम 'पोते' है; हिन्दीमे इस अर्थमें 'अपना' शब्द (विशेषणात्मक) प्रयुक्त होता है। दूसरे तत्सम समान ही है।

क्रियापद :

सबसे प्रथम हम स्थितिवाचक क्रियापदको देखेंगे। पालि प्राकृतमें एक 'अच्छति' रूप था, जिसका संस्कृत मूल सं. द्वितीय गणका 'अस्' ही है। सं. में गम्-गच्छति, यम् –यच्छति, ऋ–ऋच्छति, पृच्छति ऐसे क्रियारूपोंमें एक विकरण 'च्छ' बच गया है। 'अस्' का सं. में कोई रूप बचा नहीं, किन्तु पालि-प्राकृतमें आया जहाँ 'होना' और 'बैठना' दोनों अर्थ आये। 'आस्–बैठना' भी मुझे 'अस्--होना' का ही अर्थ-विकास लगता है। गुज. में अच्छति>अप. अच्छइ, मध्य गु.>अछइ, छइ इस प्रकारसे 'छे' तक आया है।

वर्तमान काल		गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
ए. व.	१	छुं	हूँ	हूँ	हौं	हूँ
	२	छे	है	हे	है	है
	३	छे	है	हे	है	है
ब. व.	१	छीए(–छियें)	हाँ	हाँ	है	हैं
	२	छो	हो	हो	हौ	हो
भूत काल पुं.	३	छे	है	है	हैं	हैं
ए. व.		हतो	थो	थो	हो, हुतौ	था
ब. व.		हता	था	था	हे, हुते	थे

ढूंढ़ाड़ी (जयपुरी) में छूं 'छै—छाँ छो छै, भू. का. में छो छा' लक्ष्यमें लेने जैसे है। 'ह' प्रकृतिका सारा विकास 'छ>स>स़>ह' के रूपमें है।

भविष्यकाल 'थ' प्रकृतिका विकास 'हत>त्ह>थ' के रूपमें है।

		गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
ए. व.	१	हईश, होईश	हे हूँ	...	होइ हूँ	होगा
	२	हईश, „ हशे	व्हेही	...	होइ है	होगा
	३	हशे	व्हेही	...	होइ है	होगा
ब. व.	१	हईशुं, होईशुं	व्हेहां	...	होंगे	होंगे
	२	हशो, होशो	हेहो	...	होंगे	होंगे
	३	हशे	हेही	....	होंगे	होंगे
	३	हशे	हेही	....	होंगे	होंगे

भविष्यकालके इन रूपोंमें प्रायः संशयार्थ है। राजस्थानीमें 'हुऊंला,' 'व्हेऊंला'; 'हुऊंगो,' 'हेऊंगो' प्रकारके रूपमें प्रचलित हैं।

मुख्य क्रियापद :

वर्तमान कालमें परम्परासे सं. प्रा. अप. से जो रूप उतर आए है उनका निश्चयार्थ जीवित भाषाओंमें चला गया है और सहायभूत 'छ' के रूप आनेके बाद निश्चयार्थ होता है। हिन्दीमें तो 'निश्चयार्थ' के लिये वर्तमान कृदन्तके साथ 'छ' से निष्पन्न 'ह' के रूप लगाकर रूपसिद्धि की जाती है। मूल रूपोंमें विध्यर्थके अर्थोंका बल आ गया है।

गुजराती 'चाल'—चलना

		गुज.	राज.	माल.	ब्रज.	हिं.
ए. व.	१	चालुं	चळूं	चळूं	चलौं	चलूं
	२	चाले	चळै	चळे	चलै	चले
	३	चाले	चळै	चळे	चलै	चले
ब. व.	१	चालीए (–चालिये)	चळां	चळां	चलैं	चलें
	२	चालो	चळो	चळो	चलौ	चलो
	३	चाले	चळै	चळे	चलैं	चलें
आज्ञार्थ—						
ए. व.	२	चाल (चाल्य)	चळ	चळ	चल	चल
ब. व.	२	चालो	चळो	चळो	चलौ	चलो
भविष्यार्थ—						
ए. व.	१	चालीश	चळहूं	चलूंगा	चलिहौं	चलूंगा
	२	चालीश, चालशे	चळही	चलेगा	चलिहै	चलेगा
	३	चालशे	चळही	चलेगा	चलिहै	चलेगा
ब. व.	१	चालीशुं, चालशुं	चळहां	चलूंगा	चलिहै	चलेंगे
	२	चालशो	चळहो	चलोगा	चलिहो	चलोगे
	३	चालशे	चळही	चलेगा	चलिहैं	चलेंगे

ढूंढाड़ी (जयपुरी) में चळस्यूं–चळसी–चळस्यां–चळस्यो–चळसी ये रूप हैं।

उत्तर गुजरात और पुराने शिरोही राज्यकी गुजराती प्रान्तीय बोलीमें द्वि. तृ. तृ. पु. का 'चालसी' रूप है। हिन्दीने तो वर्तमानके रूपोंको 'गा-गे' लगाकर काम चलाया है। 'हो' की तरह राज. में 'ला' और 'गो' वाले तो मालवीमें 'गो' वाले ही रूप है।

आज्ञार्थमें गुजरातीमें जहाँ भविष्य' के भाववाले 'चालजे, चालजो' (उत्तर गुजरातमें 'दीजे–लीजे' भी) होता है वहाँ हिन्दीमें 'चलिये' रूप बनता है।

भूत काल :

भूतकालके रूप तो प्राकृत भूमिकासे ही खो गए हैं। संस्कृतमें भूतकृदन्तोंका उपयोग शुरू हो गया था; प्राकृतादि भूमिकामें वह चालू था और हमारी आजकी भारत-आर्यकुलकी भाषाओंमें वही चला आता है।

कर्मणि और भावे रचना : सकर्मक क्रियापदोंकी कर्मणि रचना और अकर्मक क्रियापदोंकी भावे रचना संस्कृतकी तरह गुजरातीमें भी व्यापक है। गुजरातीमें दोनों रचना क्रियारूपोंमें मध्यग 'आ' से सिद्ध की जाती है—'छगनथी चोपड़ी वँचाय छे' (कर्मणि), छगनथी दोडाय छे (भावे)।* हिन्दीमें भी वाक्यके ये दोनों रूप हैं उदा०—'छगनसे पुस्तक पढ़ी जाती है' (कर्मणि), 'छगनसे दौड़ा जाता है' (भावे)। यहाँ हिन्दीमें भूतकृदन्तके साथ 'जा' धातुके कर्तरि वर्तमान कृदन्तका रूप प्रयुक्त होता है। हिन्दीमें विध्यर्थ 'दिखाना, कराना, बुलाना' ऐसा मर्यादित प्रयोग दिखाई पड़ता है। राजस्थानीमें 'मारणो' का 'मारीजणों' जैसा 'ईज' मध्यगवाला (सं. 'इ+य' का क्रमिक विकास प्रा. 'इज्ज' द्वारा) प्रचलित है।

गुज. पास संस्कृत की कर्मणि भूतकृदन्तोंकी यथावत् रचना भी है; जैसे 'छगने चोपड़ी वांची'। इस परसे चालू नयी रचना भी प्रचारमें है; उदा०—'छगनथी चोपड़ी वंचाई।'

'मार' जैसे क्रियामूलके कर्मणि प्रयोगमें 'छगने मगनने लाकड़ी मारी'—'छगने मगनने लाकड़ीए मार्यो'—'छगने मगनने मार्यो'—'छगने मगनने मार्युं'। इनमेसे हिन्दीमें 'छगनने मगनको (लकड़ीसे) मारा।' यही भावे रचना व्यापक है। 'छगनने मगनको लकड़ी मारी' यह हो सकता है, किन्तु यह व्यापक नहीं है।

प्रेरक : 'प्रेरक' के विषयमें गुजरातीमें विविधता है; उदा०—अकर्मक क्रियारूपोंके विषयमें—सं. 'पतति', गुज. 'पडे छे'; प्रेरक सं. 'पातयति'—गुज. कर्मक रूप 'पाड़े छे'; आगे जाकर 'पड़ावे छे' और फिर तो 'पड़ावरावे–पड़ावड़ावे छे।'

सकर्मक क्रियारूपोंके विषयमें—सं. करोति', गुज. 'करे छे'; प्रेरक सं. 'कारयति', गुज. 'करावे छे'; आगे जाकर 'करावरावे–करावड़ावे छे।'

'भम,' 'लग' जैसे कितनेमें 'भमाववुं–भमाड़वुं' 'लगाववुं–लगाडवुं' यों वैकल्पिक 'आड़' का प्रवेश, तो 'पेस' जैसे क्रियारूपोंमें 'आड' ही 'पेसाडवुं।'

---

* गुजरातीकी विशिष्टताके सम्बन्धमें इस लेखके लेखकका ग्रन्थ 'गुजराती भाषा शास्त्र भाग–२' (पृष्ठ–११५–१२५) दृष्टव्य है।

हिन्दीमें दो प्रक्रियायें चालू है—'चढ़ना' से 'चढ़ाना–चढ़वाना', 'पकड़ना' से 'पकड़ाना –पकड़वाना", 'देना' से 'दिलाना–दिलवाना', 'बोलना' से 'बुलाना–बुलवाना' इत्यादि।

कृदन्त :

वर्तमान कृद त : इसका पारम्परिक प्रत्यय 'त' सबल अंगका मिला है। बुन्देलीमें केवल निर्बल 'त' है। गु. 'करतो–ती–तुं–ता–तां', राजस्थानी और मालवीमें 'करतो–ती–ता' ब्रज. 'करतो–ती–ते', हिन्दी 'करता–ती–ते'।

भत कृदन्त : इसमे भी सं. परम्परा ही है। गु. राज. माल. ब्रज. 'कर्यो-री', हिन्दी 'किया–की', 'हँसा–सी' 'पढ़ा–ढ़ी'।

अव्ययरूप कृदन्त : (संबन्धक भूतकृदन्त)—गुज. में 'करी, करीने,' तो राज. 'करे,' माल. ब्रज. 'करि', हिन्दी 'कर'। हिन्दीमे संयुक्त क्रियापदोंमे 'कर' जैसे रूप प्रयुक्त होते है, स्वतन्त्र दशामें तो रूपमें 'कर' लगाया जाता है; 'हँसकर' 'जाकर'। मुख्य 'कर' में 'के' और दूसरे रूपोंमें विकल्पसे 'के' भी लगाया जाता है; 'कर' के 'हँसकर—हँसके' आदि।

सामान्य कृदन्त : सं. 'तव्य' के विकासमे गुज. 'करवो', राज. 'चलबो', माल. 'चलवो'; तो क्रियावाचक नाम-प्रत्यय 'अन' के विकासमें राज० 'चळणो–चळणूं', माल. 'चळणो', ब्रज. 'चलनो', हिन्दी 'चलना' है।

यहाँ गुजराती और हिन्दीकी तुलनाका एकदम गहराईमें नहीं वरन तुलनात्मक दृष्टिसे सामान्य जानकारी देनेकी दृष्टि से ही विवेचन किया गया है।

गुजराती भाषियोंकी हिन्दी-सेवा

डॉ. ग्रियर्सनने जिस विशाल प्रदेशको 'राजस्थान' समझकर उसकी व्यापक भाषाका 'राजस्थानी' कुलनाम अपनी अनुकूलताके लिये दिया, वह प्रदेश अलबरूनीके द्वारा अभिहित 'गुज्रात' था और उस विशाल प्रदेशकी भाषा भी 'गौर्जर अपभ्रंश' थी। उसी 'राजस्थानी' की पश्चिम विभागकी भाषाका नाम—'गुजराती' को साथ मिलाकर—डॉ. तेस्सितोरीने 'पश्चिमी राजस्थानी' दिया है। इस 'पश्चिमी राजस्थानी' के दो भेद है 'मध्यकालीन राजस्थानी' और 'मध्यकालीन गुजराती' और भालणका दिया हुआ नाम है 'गुजर भाखा'। आचार्य हेमचन्द्रके उत्तरकालमें उत्तर अपभ्रंश भाषाकी जो साहित्यिक कृतियाँ, प्रायः जैन कवियोंकी, मिलती है उनमें 'मध्यकालीन राजस्थानी' और 'मध्यकालीन गुजराती' अथवा 'गुजर भाखा' से पूर्वका स्वरूप मिलता है। न हिन्दीका, न हिन्दीकी मानी गई उपभाषाएँ ब्रजभाषा आदिका उनके साथ कोई जनक-जन्य सम्बन्ध है। भाषाओंका पार्थक्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। 'मध्यकालीन गुजराती' की ई. सन् १३५० के आस-पाससे प्राप्त हुई कृतियोंमें जहाँ कहीं व्यापक हिन्दी अंश मिलता है वह इसी कारण स्पष्ट स्वरूपमें अपना व्यक्तित्व व्यक्त कर देता है। 'अवहट्ठ' की छायामें उद्भूत कृत्रिम डिंगल भाषा—चारणी भाषा भी स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाती है। ईडरके श्रीधर व्यासके 'रणमल्ल छन्द' में कृत्रिम डिंगली रूपोंका प्राधान्य है, किन्तु उसका स्वरूप 'हिन्दी' का नहीं है 'मध्यकालीन गुजराती' का ही है। पद्मनाभके 'कान्हड़दे प्रबन्ध' की भाषा भी स्पष्ट रूपसे 'मध्यकालीन गुजराती' है। 'रासयुग-'
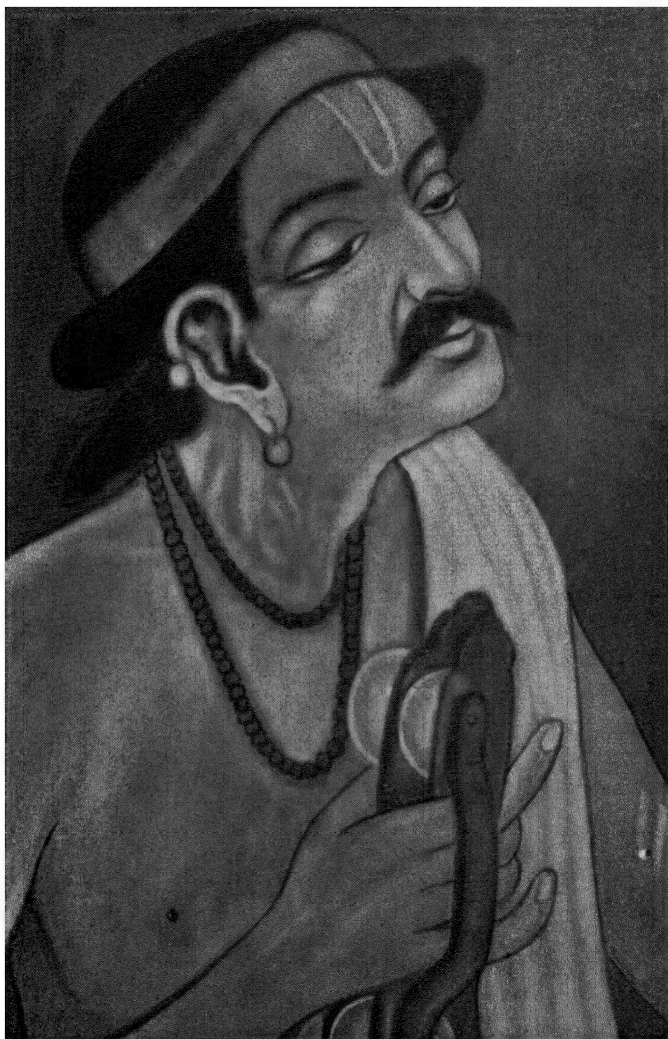
नरसी मेहता

के अन्तिम भागकी कृतियोंमें जैनेतर कवियोंकी भी कोई कोई कृति प्राप्त है—असाइत नायककी 'हंसाउलि' (ई. सन्. १३६१), अज्ञात कविका 'वसन्त-विलास फागु' (ई. सन्. १३५०-१४०० के करीब), वस्तिगकी 'चिहुगति-वेल चउपई' (ई. सन्. १४०६ से पूर्व की कृति), और भीमका 'सदयवत्सचरित' (ई. सन्. १४१०)। इन कृतियोंमें हिन्दी रचनाओंके दर्शन नहीं होते है।

'रास युग' के अनुसन्धानमें नरसिंह महेताकी भक्तिमय विशाल पद रचनाओके कारण 'आदि-भक्तियुग' का आरम्भ होता है, जिसके आदि कवि अब तककी खोजोंके अनुसार नरसिंह महेता ही ठहरते हैं। इस युगकी परम्परा अणहिलवाड़ पाटणके भालणमें और मारवाड़-गुजरातकी भक्त कवयित्री मीरांमे प्रतीत होती है। मेरे मतानुसार 'आदिभक्ति युग'की कालावधि ई. सन् १४२० से १५२० तक मानना चाहिए। गुजरातमें भक्तिकी धारा कहाँसे आई इस विषयमे सप्रमाण कहा जा सकता है कि नरसिंह महेता पर तो एक ओर जयदेवके संस्कृत काव्य 'गीतगोविन्द' का असर था, तो दूसरी ओर महाराष्ट्रीय वारकरी वैष्णवोंका। नरसिंहने 'हारसमे के पदों' में जब गाया कि 'देवा हमची वार कां बधिर होइला, आपुला भक्त कां विसरी गेला' और अपनी छापके लिये 'नरसैयाचा स्वामी' ऐसा अपने सैकड़ों पदोंमे कहा, तब कोई शका नहीं रहती। 'भणे नरसैयों' शब्दो पर तो जयदेवके 'भणति जयदेव' और वारकरी वैष्णव कवि नामदेवके 'नामा म्हणे' का सम्मिलित असर प्रतीत होता है। पण्ढरपुरके भगवान् 'विठोबा' नरसिंहसे ये परिचित है और गुजराती साहित्यमें तो सबसे पहले नरसिह महेताहीने अपनी कवितामे 'विट्ठल' शब्दका और सम्बोधनोंमें मराठी सदृश आकारान्त शब्दोंका विपुलतया प्रयोग किया है। नरसिंह महेताका प्रिय छन्द 'झूलणा' स्पष्ट रूपसे नामदेवके अभंगोंका विकास मालूम पड़ता है। 'महानुभाव सम्प्रदाय'के मराठी सन्तोंने एव 'वारकरी सम्प्रदाय' के नामदेवने भगवान कृष्णकी विविध लीलाओंका गान भी किया था। 'भागवत' एवं 'गीत गोविन्द' से प्रेरणा पाकर मराठी सन्तोकी पदप्रणालीको नरसिंहने आत्मसात् करके अपनी उद्दीप्त प्रतिभासे अनेक-सहस्र पदोंकी रचना की। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि गुजरातमें नरसिंहसे पूर्व पद-प्रकार एवं 'झूलणा' की रचनाएँ नही थीं, फिर भी इनको व्यापक बनानेका सर्वप्रथम श्रेय तो नरसिंह महेताको ही मिलता है।

सम्भवतः नरसिंहका ब्रजभाषाके शब्दोसे परिचय रहा हो। मुद्रित सस्करणोमे 'ब्रखभान कुमारी' 'ब्रिजवासी' 'कनैयालाल' जैसे शब्द क्वचित् मिलते है, तो 'रास सहस्त्रपदी' के मुद्रित पदोंमें ब्रजभाषाका एक पूरा पद भी मिलता है :—

[पद ११९ मु—राग 'सामेरी']

साखी.— **कुंजभवन खोजती प्रीते रे, खोजत मदन गोपाळ।**
प्राणनाथ पावे नहीं तातें व्याकुल भई वृजबाळ ॥१॥
चाल.— **(चालता ते) व्याकुल भई व्रजबाला, ढुंढती फीरे श्याम तमाला।**
जाय बुझत चम्पक जाई, काहु देखी नन्दजी को राई ॥२॥
साखी.— **पीय संग एकांत रस विलसत राधा नार।**
कंध चडावनको कहो, तातें तजी गये जु मोरार ॥३॥
चाल.— **ताते तजी गये जु मुरारी, लाल आय संग ते टारी।**

त्यां ओर सखी सब आई, क्याहू देख्यो मोहन राई ॥४॥
में तो मान कीयो मेरी बाई, तातें तजी गये कनाई ॥५॥
साखी.—कृष्णचरित्र गोपी करे, बीलसे राधा नार।
एक भई त्यां पूतना, एक भई जु गोपाळ लाल ॥६॥
चाल.— एक भई जु गोपाळ लाल री, तेणे दुष्ट पूतना मारी।
एक भेख-मुकुंदको कीनो, तेणे तृणावर्त हरि लीनो।
एक भेख-दामोदर धारी, तेणे जमला-अर्जुन तारी ॥७॥
साखी.—प्रेम प्रीत हरि जीन के, आए उनके पास।
मुदित भई त्यां भामनी, गुण गावे नरसैंयो दास ॥८॥

(न. म. काव्य संग्रह, पृष्ठ १९८–९९)

इस पदकी भाषाका स्वरूप भ्रष्ट है, और किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रतिमें अब तक नहीं पाया जाता। यह कृति यदि नरसिंह महेताकी हो तो, यात्राके कारण मथुरा प्रदेशके सम्पर्कका यह परिणाम हो सकता है।

भालणकी ब्रजभाषामें लिखित पाँच-छह पदोंकी रचना तो सचमुच ध्यान देने योग्य है। भालणने भागवतके दशम स्कन्धका भावानुवाद कड़वा बद्ध 'आख्यान' के रूपमें किया है (ई. सन् १५०० के करीब)। भालणने कृष्णकी लीलाके स्वतन्त्र पदोंकी भी रचना की थी। स्वयं भालणने या किसी अन्य समकालीन या उत्तरकालीन सम्पादकने चालू कथाके बीच भालणके पदोंको समाविष्ट किया है। ऐसे १५० से भी अधिक पद सम्मिलित किए गये हैं। इनमें प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमे ब्रजभाषाके पाँच पद मिलते हैं और मुद्रित संस्करणोंमें एक पद अधिक भी मिलता है। (मुद्रित संस्करणोंमें ये ११, २५१, २५३, २५४, २५५. २६५ संख्यक पद ब्रजभाषाके हैं)। उनमेंसे एक यह है—

"ब्रजको सुख समरत श्याम.
पर्नकुटी सो बीसरत नाहीं, नाहीन भावत सुंदर धाम०॥१॥
बदीर मात्र नवनीतके कारन उखले बांधे ते बहु दाम।
चितमें वे जु चुभी रही हे, चोर चोर कहत हे नाम ॥२॥
निशदिन फिरतो जु सुरभिके संग, शरपर परत शीत घनश्याम॥३॥
निश फुनी दोहन बंधनको सुख, करी बेठत नाहीं जो नाम ॥४॥
मोर पिच्छ गुंजाफल लेले बेख बनावत रुचिर ललाम।
भालनप्रभु बिधाताकी गति, चरित्र तुम्हारे सब वाम॥५॥

आश्चर्य है कि भालणके ब्रजभाषाके पदोंपर सूरदास आदि अष्टछापके भक्तकवियोंका असर न होनेपर भी किसी-किसी गुजराती पदपर वह असर स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भालणने जीवनकी उत्तरावस्थामें मथुरा प्रदेशकी यात्राकी थी और ब्रजमें गिरिराज पर श्रीनाथजीके मन्दिरमें कुम्भनदास आदि भक्तोंके पदोंका श्रवण किया था।

भक्त कवयित्री मीरांके विषयमें तो विशेष कहनेको है ही नहीं। इनकी राजस्थानी एवं गुजराती मिश्रित रचनाओंके अतिरिक्त ब्रज भाषाकी रचनाएँ भी काफी हैं। गुजरातीकी हस्तलिखित प्रतियोंमें नरसिंह, नारायण, परमानन्द, सूरदास आदिकी रचनाओके साथ मीरांके ब्रज भाषाके पद भी मिलते है। (ई. सन् १६४५ की एक प्रतिमे 'मुरली वाजि हो, साजन मुरली वाजि हो' और 'नन्दलाल स्युं मेरु मन मान्यु हसा काहु करी गा कोइ रे' ये दो पद मिलते हैं)

इस युगके एक जैन कवि लावण्यसमयका उल्लेख उपयुक्त होगा। इनके ऐतिह्यमूलक प्रबन्ध-काव्य 'विमलदास' या 'विमल प्रबन्ध' में (ई. सन् १५१२ की रचनामें) मुस्लिम पुरुष-स्त्रियोंके द्वारा कहे गए वाक्यों में 'खड़ी बोली' का स्वरूप पाया जाता है। लावण्यसमय सम्भवतः पहले गुजराती कवि हैं जिन्होंने खड़ी बोलीका प्रयोग किया है :—

"उंचे गुखी चडी-चडी जव जोइ सुरताण।
क्या कीजइ हवइ आया खुदा तणा फुरमाण ॥७४॥
कसला दल हादरि हूआ, जब पूछइ सुरताण।
आया विमल बकाल ए, मुरडि मनावइ आण ॥७५॥

+ + +

आया हींदू गोबरे, सुणीआ बोल बकाल।
सामा सवि छीनी लीइ ते किम आपइ काल ॥७७॥
हींदू अह्म हक्कि गया, लडि विण लित्ता कोट।
ते कुण आज बकाल बे हमकुं देवइ दोट्ट ॥७८॥

चालि

हमकुं देवइ दोट बकाला, मागइ माल कोडि बिच्यारा।
हमके हाजारि नही असवारा, नही कोई वली मूझारा ॥७९॥
हमे सुरतान सभान समाने, हमकुं नामुं कोटि।
देखे बीबी लोक लूटाउं, मारि कराउं लोट ॥८०॥
ए तेरे पाय पडाउं, तु हूं साहिब तेरा।
हिंदू कटक कराउं हेरा, कसूं कहुं बुहं तेरा ॥८१॥"

+ + +

"ए हींदू छइ देव सरूपी, जे जे इणि दलि आया।
जिम देखु तिम वीट वीटाई, क्या हींदूकी माया ॥९२॥
रे रे मीरा रहि एक तीरा, म करे मान पराण।
जिसकी खोल्या बाण भी जावइ गाउ पंच प्रमाण ॥९३॥" (सातवाँ खण्ड)

उपर्युक्त पंक्तियोंमें कई भाषाओंका मिश्रण है। अतः भाषाका रूप विकृत भी है, तो भी 'खड़ी बोली' का स्वरूप पकड़नेमें कोई कठिनाई नही है। इनकी कवितामे आगे चलकर 'रेखता' का भी प्रयोग हुआ है और उसका यह पूर्वाभास है।

'आदि भक्ति युग' में विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित करनेवाले कवियोंमें 'अष्टछाप'के वैष्णव भक्तकवि कृष्णदास है। आप गुजरातके चरोतर के कुणबी लेउवा पाटीदार थे और ब्रजभूमिमें जाकर परम वैष्णवाचार्य श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुजीके अष्टछापके चार शिष्योंमे—सूरदास, कुम्भमदास और परमानन्ददासके साथ स्थान पानेमें समर्थ हुए। इनकी ब्रजभाषाकी ही रचनाएँ मिलती है। उस समय गोवर्धनगिरिपर अवस्थित श्रीनाथजीके मन्दिरके वे अधिकारी थे और सूर, कुम्भनदास एवं परमानन्दके समान कृष्णकी विभिन्न लीलाओंको अति कठिन रागोंमें बनाकर पदोंको भगवानकी विभिन्न कालीन सेवाओंमे अर्पित करते थे। अनेक उत्सवोके समयके इनके पद मिलते है। इनमें रासके, कठिन रागोंमें—कठिन तालोंमें दिये हुए, पद बहुत ही ऊँचे दर्जेके बन पड़े है:—

"नाचति नवनागरी नवल नागर संग तरनितनया-पुलिन सरदकी राती।
कुमुद कल्हार शतपत्रिका केतकी, दिव्य अद्‌भुत गंध फूलि रही जाती॥१॥
षडज मध्यम धैवत उतरी सव गंधार, नैषद पंचम गान तान मदमाती।
गति लेत डगमगति पिय-अंग लपटति, प्रेम-परबस भई छुट गई सांती॥२॥
सरद-राका-चन्द निरखि विथकित भये, पियवदन निकट प्यारीवदन कांती।
मनऊं सांवल गौर जुगल इंदु राजत वृंदाविपिन नभदेस केलिकल कान्ती॥३॥
लाल गिरिवर धरन वयन मन दुखहरन, श्रमित जुवतिनि चरन भेंटि रही छाती।
'कृष्णदासनि' नाथ छेल गिरिवरधरन, रसिकजन सुखद गावत मधुप पांती॥४॥"

यह 'कान्हरे' का पद है। नीचे 'केदारे' का दूसरा पद देखिए:—

"श्री वृखभाननन्दिनी नाचत लालन गिरिधरन संग,
लाग डाँट उरप तिरप रास रंग राख्यो।
झपताल हि मिल्यो राग केदारो सप्त सुरनि,
अवघर भर सुघर तान गान रंग राख्यो॥१॥
पाइ सुख-सुरति सिद्धि भरति काव्य विविध रिद्धि,
अभिनव दल-सुवास हुलास रंग राख्यो।
बनिता सत जूथ पति निरखि थक्यो सघन चन्द,
बलिहारि 'कृष्णदास' सुजस-रंग राख्यो॥२॥"

ब्रजभाषा एवं संगीत दोनोंपर विशेष अधिकारके साथ-साथ काव्यके रस-शास्त्र और काम-शास्त्रके भी वे पण्डित थे। इस प्रकारकी विशिष्टता आगे चलकर दयाराममें ही मिलती है।

श्रीवल्लभाचार्यजीके तीन और गुजराती शिष्य है जिनकी भी ब्रजभाषामें लिखित पद रचना मिलती है। अहमदाबादके पासके किसी एक गाँवके सांचोरा ब्राह्मण भगवानदास थे जिनका "श्री विट्‌ठलेशचरन कमल पावन-त्रैलोक्य-करन दरस परस सुन्दर वर वार वंदे" यह दो कड़ीका पद मिलता है। इसमें भगवानदासने श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र श्रीविट्‌ठलनाथ-गुसाईंजीकी ख्याति गाई है। दूसरे शिष्य अहमदाबादके पासके नरोड़ा गाँवके क्षत्रिय गोपालदास थे, जिनके 'चोखरे' ब्रजभाषाकी विशिष्ट रचनाएँ है, जो कि पुष्टिमार्गीय मन्दिरोंमें विभिन्न उत्सवोंपर गाये जाते हैं। तीसरे शिष्य रामदास

मुखिया सांचोरा ब्राह्मण थे, जो अहमदाबादके पासके गाँवके निवासी थे। 'रामदास' की छापके उनके पद मिलते है। एक पद देखिए :—

[राग 'गोरी']

" चलि सखी चलि अहो ब्रज पेंठ लगी है जहाँ बिकात हरि-रसप्रेम।
सूंठ सोंधो प्राननके पलटे उलट धरो जिय नेम॥१॥
ओर भांति पाइवौ अति दुर्लभ कोटिक खर्चो हेम।
'रामदास' प्रभु रत्न अमोलिक सखी पैयत है राम॥२॥"

ई. सन् १५२५ के आस-पास पौराणिक आख्यान-कथानकोंकी प्रचुरतावाला 'आख्यान युग' जोर पकड़ता है। प्रेमानन्दके समय (ई. सन् १७००) तक गुजराती साहित्यके इतिहासमें यह युग अपनी विपुल आख्यान-रचनासे विशिष्टता स्थापित कर गया है। इस युगमें भी हिन्दीकी सेवा करनेवाले साहित्यकार गुजरातमें कभी-कभी मिल जाते है। ई. सन् १५३६ के प्रभासपाटणके कवि केशव हृदयरामकी 'कृष्णक्रीडाकाव्य' नामक ४० सर्गोकी गुजराती काव्यकृतिमें राधाके प्रसंगमें (१४ वें सर्गमें) ब्रजभाषाकी बहुतसी पंक्तियां मिलती है। उनमेंसे कुछ की बानगी देखिए :—

['ध्रुपद']

" त्यज अभिमान गोवाली ! घरघ आयो श्री वनमाली,
याके चरण चतुर्मुख सेवे, किंकर होय कपाली। ५२

× × ×

सुनो हो यशोमति माय ! कृष्ण करत हें अति अनियाय।
त्रोटक—कृष्ण करत हें अन्याय अतलीबल, गोपीको कह्यो न माने;
देखत लोक, लाज कुछू नही, नारघ बोलावत ही शाने ?
हम गुनवन्ती सती सुलखणी, यह विध्य रह्यो न जाय;
कोप हि काल्य सुनेगो कंसासुर, सुन हो जशोमति माय॥५७॥"

आगे ६४ वीं पंक्ति तक यह प्रसंग चलता है और वहाँ तक ब्रजभाषाकी रचना है। केशवका भी ब्रजभूमिके साथ सम्पर्क सम्भव है। हाँ, इतना स्पष्ट है कि भालणपर पुष्टिमार्गके सूरदास आदि का असर है किन्तु केशव पर ऐसा कोई असर नहीं दिखाई पड़ता। इनपर यदि कोई असर है त्रो वह नरसिंह महेताकी 'चातुरियों' की बन्धपद्धतिका।

इसी युगमें श्रीविट्ठलनाथजीके २५२ शिष्योंमेसे किसी-किसी गुजराती शिष्योंकी भी रचना ज्ञात हुई है। इनमेंसे एक शिष्य 'कटहरिया' गुजराती क्षत्रिय थे, जिनका निम्नलिखित पद यहाँ दिया जा रहा है—

[राग 'सारंग']

"आज महा मंगल महेराने,
पंच शब्द धुनि भीर वधाई घर घर वेर खवाने॥१॥
ग्वाल भरे कांवर गोरसकी वधु सिंगारत वानें।
गोपी गोप परस्पर छिरकत दधि के माट ढराने॥२॥

नामकरन जब गर्ग मुनि आये नन्द देत बहु दाने।
पावन जस गावत 'कटहरिया' जाहि परमेश्वर माने ॥३॥"

दूसरे शिष्य खम्भातके माधवदास नामक दलाल थे, जिनके श्री विट्ठलनाथजीके प्रशस्तिके कुछ पद ब्रजभाषामें मिलते हैं। इन्होंने श्री विट्ठलनाथजीके पास गोकुलमें ठहरनेके बाद रचनायें की थीं।

गुजराती 'गजेन्द्रमोक्ष,' 'दशमस्कन्ध,' 'चन्द्रहासाख्यान,' 'कर्णपर्व' आदि छोटी-बड़ी ज्ञात आठ कृतियोंके रचयिता (ई. सन्. १५८३–१६१६), अहमदाबादके पासके महेमदबादके खोखासुत 'लक्ष्मीदास' की छापवालेके थोड़े पदोंकी जानकारी मिली है। जिनमेसे एक पद नमूनेके तौर पर यहाँ दिया जा रहा है—

[राग 'केदार']

आजु सरे सफल भये नयन।
कोटि मनमथरूप चतुर जु निरखे गिरिधर चिन॥
कोटि-रबि-छबि-योति आनन अम्बर कोटिक मिन।
जन 'लिषिमिदास' बिचित्र तरूनि लिखि चित्र सो इन॥"

इस युगमें किसी-किसी जैन कविकी रास-रचनाओंमें भी हिन्दीके अंश प्राप्त होते हैं। वाचक नयमुन्दरके 'रूपचन्दकुंवररास' के 'रेखता छन्द' के नीचे हिन्दी अशुद्ध रूपमे मिलती है :—

"जस ही कस ही रे सखी दुःख न दाखिये।" (पृष्ठ ३७)
"दीना होय कथीर, सोना कहां पाइये" (पृष्ठ ७०)
"चलिये तिनके साथ चलंतां जे चले,
पण दुख चले न साथ जे लांबा डग भरे।
लीला गेलि करंत के अंग न मोडिये,
सो सोना जलि जाओ के कन्नह तोडिये।" (पृष्ठ ११९)

एक स्थानपर (पृ. ७८) तो "कबिरा कबहु न कीजिये, अनमिलताको संग" यह कुण्डलिया छन्दकी एक कड़ी उद्धृतकी गई ज्ञात होती है। इनके 'नलदमयन्ती रास' (ई. सन् १६०९) में दो स्थान पर हिन्दी दोहे मिलते हैं :—

"दुनियामें यारां विगर जे जीवणा सवि फोक।
कह्या न जावे हरकिसे, आपणे दिलका शोक॥" (पृष्ठ २०६)
"तुं विछड्या आवे नहीं, मेरे दिलके यार।
मैं नजीक बू तुंही रहेवे कोश हजार॥१॥
रे वल्लभ तो दर्शकुं अधर रह्यो जी आय।
अब क्या आज्ञा होत है, फिरि घट रहें कि जाय ?॥२॥
जिउ मेरा छोरे नहीं, तेरी आशिष मित्त।
शिर डाले भी तो अथे जुदा न होसी चित्त॥३॥

मिट्टी में से जीवता मैं ऊठुं जब बहार।
तब फिरियाद वही करूं, कहां है मेरा यार ?॥४॥
प्रियतम बिछूरन फिर मिलन, का जाणे कब होय ?
एह जग मिलन अनुप हे, मिलीं न विछुरो कोय॥५॥
बिछुर मिले ते बहुत सुख, जु प्रियतम एहीं भाउ।
प्रेम पलटियो, हे सखे; बिछुरे मिले तो काउ ? ॥६॥"

(पृष्ठ २२६–२७)

खम्भातके जैन कवि ऋषभदास एक प्रसिद्ध साहित्यकार हो गए हैं। इनकी रचनाओंमें भी 'खड़ी बोली' के अंश दीख पड़ते हैं। 'कुमारपालरास' में (ई. सन् १६१४) एक स्थानपर यह छन्द आया है :—

"कब ही माणस लाख लहइ, कबीक लाख सवाय।
कबीक माणस कोडि लहइ, जब वाओ वाइक वाय॥८१॥"

(आ. का. महोदधि ग्रं. ७, पृ. १४२)

'श्रीहीरसूरिरास' में (ई. सन् १६२९) तो मुस्लिम पात्रोंके द्वारा 'खड़ी बोली' का इन्होंने प्रयोग कराया है :—

"दीठो रूप सुंदर आकार, खोजी खान बोल्यो तिण वार।
'क्युं बे सेवडा इनकुं करे ? क्या समज्या ए योग क्या धरे ?'॥७०॥
सताबखान बोल्यो तिहां सोय, 'करे सेवडा इनकुं कोय ?
मारूं टार न छोडुं उसें,' सताबखान इम हुओ गुसे ॥७१॥
रतनपाळ शाह बोल्यो तहीं, 'में तो सेवडा करता नहि।
ब्याह करूँगा इनका सही, जूंठी बात तुम आगे कही॥७२॥"

(आ. का. महोदधि ग्रं. ८, पृ. ४३)

आगे हीरविजयजी और अकबरके जहाँ-जहाँ सम्वाद आते हैं वहाँ-वहाँ सर्वत्र अकबरके द्वारा 'खड़ी बोली' का प्रयोग मिलता है। वैसे ही जिनचन्द्रसूरिके प्रसंगमें जहाँ अकबर और जहाँगीरके शब्दोंको देनेका प्रयत्न समयप्रमोद आदि जैन कवियोंने किया है, वहाँ भी खड़ी बोलीके अंश मिलते हैं। कनकसोम, साधुकीर्ति, गुणविनय, समयसुन्दर, लब्धिमुनि रत्ननिधान आदिने 'जिनचन्द्रसूरि' की प्रशस्तिमें पद लिखे हैं, उनमें कई पद 'खड़ी बोली' में ही है। उदाहरणके लिअे दो पद यहाँ दिए जा रहे हैं :—

"बनी हे सद्गुरुकी ठकुराई।
श्री जिन चन्द्रसूरि गुरुवंदो, जो कुछ हो चतुराई॥१॥
सकल सनूर हुकम सब मानति तैं जिन्ह कुं फुरमाई।
अरु कछु दोष नहीं दल अंतरि, तिमि सब हीं मनि लाई॥२॥
माणिकसूरि पाट महिमावरी लइ जिन स्युं वितणाइ।
झिगमिग ज्योति सुगुरुकी जागी, 'साधुकीरति' सुखदाइ॥३॥"

(ऐ. जै. का. सं. पृ. ९७)

"सुगुरु मेरउ कामित कामगवी ।
मन शुद्ध साही अकबर दीनी 'युगप्रधान' पदवी ॥१॥
सकल निशाकर मंडल समसरि दीपति वदन छवी।
महिमंडलमइ महिमा जाकी दिन प्रति नवी नवी ॥२॥
जिन माणिकसूरि पाट उदयगिरि श्रीजिनचन्द्र रवी।
पेखत ही हरखत भयउ मनमइ 'रत्ननिधान' कवी ॥३॥"

(पृ. १२३)

इस युगमें जूनागढ़का एक 'नरमिया,' (ई. सन् १५३६) परम भक्त महात्मा दादूदयाल (ई. सन् १५४५-१६११), पुहकर कायस्थ (ई. सन् १६३५), रामचन्द्र नागर (ई. सन् १६४४), महेराज लुघाणा (ई. सन् १६६९), कवीश्वर देवरामजी (ई. सन् १६६९), लक्ष्मीरामजी, अहमदाबादके दलपतिराम, बंशीधर और रघुराम (ई. सन् १७०१) के विषयमें भी जानकारी प्राप्त हुआी है। इनमें दादूदयाल अहमदाबादके थे और परम भक्त थे उनकी ख्याति राजस्थानमें विशेष हुई है। उनके नामसे 'दादू पन्थ' नामक एक सम्प्रदाय भी चला। इस सम्प्रदायके अनुयायी जनोंकी प्राप्त रचनाए मध्यकालीन 'ढूंढ़ाळी' भाषामें है। दादूकी रचनाकी एक बानगी देखिए :—

"अजहूँ न निकसे प्रान कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुंदर प्रीतम मोर॥
चार पहर चार हु जुग बीते रैनि गँवाई भोर।
अवध गये अजहूँ नहि आये कतहुँ रहे चित चोर॥
कबहू नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
दादू अइसहि आतुरि बिरहिनि, जइसहि चंद चकोर॥"

दलपतिराम और बंशीधर अहमदाबादके थे और उन लोगोंने साथ मिलकर महाराजा जशवन्तसिंहके सुप्रसिद्ध 'भाषाभूषण' ग्रन्थकी टीकाके रूपमें—संस्कृतके कुवलयानन्द ग्रन्थके आधारपर हिन्दीमें 'अलंकार-रत्नाकर' की रचना की है। ये दोनों हिन्दीके उच्च कोटिके कवि थे।

इस 'आख्यानयुग' मे गुजरातीमें समर्थ रचनाओके साथ-साथ स्वतन्त्र रूपमें हिन्दीमें भी लिखने वाले कवि तो अखा भगत (ई. सन् १६००–१६५० के करीब) है। 'संतप्रिया' (१०७ कड़ी) और 'ब्रह्मलीला' (छह-छह कड़ियोंके ८ चोखरे) ये दोनों कृतियाँ ब्रजमिश्रित 'खड़ी बोली' में हैं। अखाने कैवलाद्वैत सिद्धान्तको ठीक-ठीक आत्मसात् कर लिया था। वे कठिन-से-कठिन विषयको भी सर्वसुलभ और सरल भाषामें अपनी कवितामें अच्छी तरह अभिव्यक्त करनेकी क्षमता रखते थे। गुजराती एवं हिन्दी दोनोंही भाषाओंमें वह ज्ञानकी बातें आसानीसे समझा देते थे। गुजरातीमें आपकी षट्पदी चौपाईकी रचना भी विपुल संख्यामें मिलती है। आपने अनेक गेय पदोंकी रचना भी की थी। आपने ऐसे पद हिन्दी भाषामें भी लिखे थे। उदाहरणार्थ कुछ पद यहाँ दिए जाते हैं :—

"रामरसायन जन जिनही पियो हे, ताके नैन भये कछु ओरा।
जब ही प्यालो मानु कान दियो हे, रामरसायन जन जिनही पियो हे॥१॥

उतरत कंठ कुटिलता मिट गई, जब उर अंतर वास कियो हे।
भिन्न भिन्न भाव रह्यो तोरी भीतर, सो सब महारस नीर दियो हे ॥२॥
पियो हे पीयूष पच्यो हृदामां, महा अनुभव प्रकाश कियो हे।
ऊर्ध कमल सुधं भये ऐसे, जीव टली निज शिव भयो हे ॥३॥
ऊतरत नांही ताके ब्रह्म-खुमारी, वाकुं कबहुं न काल ग्रह्यो हे।
ज्युंका त्युं ही 'अखा' हे निरन्तर, चित्त चिद्‌रूप भयो सो भयो हे ॥४॥"

"ब्रह्म महल सुख कीनो, अब तो ब्रह्ममहल सुख कीनो ॥ टेक ॥
चतुरातीत त्रिगुण पर पावन, ऐसो निज पद चीन्यो ॥१॥
जहाँ नहि ध्येय, जहाँ नहि ध्याता, धोखालीन सब कीनो।
विधि निषेध दोउ भये बराबर, ना कोई अधिक अधीनो ॥२॥
ज्युं मोर-सलाखा मध्य परठत, प्रतिबिम्ब सो तनमें कर लीनो।
भेदाभेद जहाँ नहि वाचा, आकाश तें अति झीनो ॥३॥
जीवन्मुक्त सकल घटवासी, सब रसभोगी भीनो।
अजब कला अखा 'सोनारा,' ऐसो अनुभव चीन्यो ॥४॥"

'अखेगीता' उसका गुजराती पद्यात्मक आख्यान-घाटीका ग्रन्थ है। चालीस कड़वोंके इस ग्रन्थमें इन्होंने दस स्वतन्त्र पद भी अत्र-तत्र दिए है, इनमें ४, ५, ७, ९ ये चार पद हिन्दीमें है। उदाहरणके लिए एक पद दिया जा रहा है :—

"अकल कला खेलत नर ज्ञानी, जेसे ही नाव हिरे फिरे दश दिश।
धृव तारेपर रहत निशानी, अकलकला खेलत नर ज्ञानी ॥ टेक ॥
चलन वलन अवनीपर वाकी, मनकी सुरत आकाश ठेरानी।
तत्त्व समास भयो हे स्वतंतर, जेसे हिम होत हे पानी ॥१॥
छूटी आद्य अंत नहि पायो, जई न सकत जहाँ मन-बानी।
ता घर स्थिति भई हे जिनकी, कही न जात एसी अकथ कहानी ॥२॥
अजब खेल अद्‌भुत अनुपम, जाकुं हे पहिचान पुरानी।
गगन हीं गेबं भया नर बोले, एही 'अखा' जानत कोई ज्ञानी ॥३॥"

किसी भी गुजराती कविने ज्ञानसे भरे पदोंकी रचना हिन्दीमें की हो तो ऐसा अखा ही पहिला कवि है। नरसिंह महेताने और धनराजने ज्ञानसे परिपूर्ण पदों एवं वाणियोंकी रचना जरूर की थी, किन्तु वे गुजरातीमें ही थीं। अखाके सामने कबीर आदि पूर्वकालीन भक्तोंके ज्ञानसे भरे पद मौजूद थे; वे देशाटन भी बहुत किए थे। सत्संग भी जीवनमें उन्होंने बहुत किया था। यह सारा ज्ञान वैभव अखाकी कवितामें ढल गया है।

'उत्तर अपभ्रंश' के एवं 'मध्यकालीन गुजराती' के 'फागुओं' की प्राप्ति ठीक-ठीक प्रमाणमें हुई है। यह काव्य प्रकार गुजरातकी भूमिकी विशिष्टता रही है। ई. सन् १६६९ के आस-पासकी एक

फागु-रचना 'अध्यातम फाग' प्रकाशमें आई है जो हिन्दी में है। उसके लेखक लक्ष्मीवल्लभ जैन हैं। उनकी रचनाओंके कुछ नमूने ये हैं :--

[राग-'धमार']

"आतम-हरि होरी खेलीये हो, अहो मेरे ललनां,
सुमति-राधाजूके संगि ॥ टेक॥
तनु वृंदाबन कुंजनें हो, प्रगटे ग्यान वसन्त।
मति गोपिनसु हसि सबे हो, पंचऊ गोप मिलंत॥१॥
सुष-सुरतरु की मंजरी हो, लई मनु राजा रांम।
अब कउ फाग अति प्रेमकउ हो, सफल कीजे मलि स्याम॥२॥
जाकी लागे सिस कीं कला हो, फट गए मोह-तुसार।
सोलह पदम कमल छऊ हो, विकसित भए है उदार॥३॥
मंद मिष्ट हितगुण गहे हो, वह हे सत्य समीर।
अति समता रवि रुचि बढी हो, घटी ममता निशि पीर॥४॥
रचे पीत पट सीलु के हौ, उर संवेग वनमाल।
सिरि विचित्र तपको धयो हो, मोरमुकुट सुविशाल।
सिरि विचित्र तपको धर्यो हो, मोर मुकुट सुविशाल॥५॥
इला पिंगला सुषमना हो, वहति त्रिवेणी-धार।
अति उज्वल रुचिसुं रमै हो, मुनिमन हंस उदार॥६॥
वजी सुरतकी बाँसुरी हो, उठे अनाहत नाद।
तीन लोक मोहन भए हो, मिट गए दंद विषाद॥७॥
भरि भरि झोरी प्रेमकी हो, षेलिति भक्ति गुलाल।
पुन्य अबीरकी सुरभिता हो, पाप गए पयमाल॥८॥
कुमति कुबरी कुपि गई हो, क्रोध जनक कै गेह।
सुमति-महासुष मानि के हो लाग रही पतिदेह॥९॥
त्रिकुट त्रिवेणी तट तिहा हो, गुपत ब्रह्मरंध्र-कुंज
वसे षिलत तहां दंपती हो, मगन भये सुषपुंज॥१०॥
राधा कै बसि हरि भए हो, तजी और रसरीति।
ऐसे फागु सफल कह्यो हो, सुधि भई अति प्रीत॥११॥
निसदिन ऐसे षेलमें हो षेलत काल अनंत।
मंद मती समुझनु नहीं हो, समझतु है मनि संत॥१२॥
"श्री लक्ष्मी वल्लभ' को रच्यो हो इह 'अध्यातम फाग'।
पावतु पद जिनराजको हो, गावत उत्तम राग॥१३॥

(प्राचीन फागु संग्रह--प्रा. वि. मन्दिर, बड़ौदा)

'आख्यानयुग' के अन्तके साथ भक्ति और ज्ञानका प्रवाह बहानेवाले कवियोंने गद्य पद साहित्यसे गुजराती साहित्यको समृद्ध किया है, इस नये युगका नाम 'उत्तर भक्तियुग' है। इस नये युगमे हिन्दीमें भी रचना करनेवाले साहित्यकारोंकी कमी नहीं है। हिन्दीका समादर पहले था। किन्तु इस युगमे और भी बढ़ गया। इस युगकी विभूतिरूप पद्यमय वार्ताओंका कर्ता, अहमदाबादका कवि सामल भट्ट (ई. सन्. १७००–१७६५ है करीब) है इन्होंने हिन्दीमे कोई विशिष्ट ग्रन्थ नहीं लिखा है। 'अगदविष्टि' एव 'रावण-मन्दादेरी सवाद, ये इनकी दो काव्य-रचनाएँ है जिनमे 'खड़ी बोली' के कितने ही पद्य मिलते हैं। सामल अपने छप्पयके लिअे भी गुजराती साहित्यके इतिहासमे प्रख्यात है। 'अगदविष्टि' मे उनके हिन्दीमें लिखे हुए छप्पय मिल जाते हैं:—

"कहा लंठकुं लाज, कहा चाडीसुं चातर!
कहा भीखमें भोग, कहा जस बिन झुंझा नर!
कहां जूठे की जीत, कहा गोविंद बिन गानो!
कहा डापण दारिद्र, कहा सत बिने ज्यु शानो!
पुनि कहा मरकट कंठ मनि, जुहारी-घर घोडला!
कहा रावनकुं रीझवन, क्यों बावरीके शिर बेडला! ॥२२॥

कविने अंगदके मुखसे ऐसे छप्पय–कवित्त आदि कहलवाये है।

'रावण मन्दोदरी सवाद' मे कथा निरूपणमें, विभीपणादि द्वारा ब्रजभाषाका प्रयोग मिलता है, तो कवित्त एव छप्पय भी भी खड़ी बोली और व्रज भाषाके मिश्रणमे है; एक कवित्त देखिए:–

"बिभिषण कहे सुणो भ्रात, आये हे श्री रघुनाथ,
लक्ष्मण अनुज भ्रात, जनम को जती है।
आप मन ज्ञान आनो, वाको तो गुन बिखानो,
देवन को देव जाणो, त्रिलोक को पति है।
जाके नाम मुक्ति पावे, जठर फरी न आवे,
दर्शन अघ कोटि जावे, अतलि बल अति है।
सामल कहे काम कीजे, रंक केरो कह्यो कीजे,
कर जोर सीत दीजे, (शुभ) शिरोमणि सती है॥८१॥"

इस नये युगमे नड़ियादके निकटके पीज गाँवके पटेल वेणीदासकी (ई. सन्. १७०५) 'दिल्ही साम्राज्य वर्णन' नामक कृति तत्कालीन राजकीय भूगोलकी दृष्टिसे ऐतिहासिक महत्वकी है। इसी समयकी एक दूसरी स्वतन्त्र कृति 'बाबी विलास' प्राप्त हुई है। अहमदाबादके राजपुर नामक उपनगरकी 'तुलसीपोल' के विसनगरा नागर केवलरामकी यह रचना है। अहमदाबादके इस समयके सूबेदार बाबी जवाँमर्दखानकी एवं उसके पूर्वजोंकी प्रशस्तिके रूपमें यह ग्रन्थ काव्यगुणोंसे भी भूषित है। यह कृति ई. सन्. १७५० के निकटकी है। बाबी कमालुद्दीन उर्फ जवाँमर्दखानकी प्रशस्तिके दो कवित्त उदाहरण स्वरूप यहाँ दिये जा रहे हैं:—

"गजवी गरूर गाज, दिल्हीतें दलन साज,
लुटवेके काज पंथ गुज्जरको लीनो है।
बुंदीको बिडारी मारी, हाडा गाढा जोरनके,
औरे राव राना ताके बाँह-बल छीनो है।
प्रबल पठानसो भीर्यो जग जीतवेकों,
भारतसो कीनो जुद्ध, वीररस भीनो है।
नवल नवाब जवांमर्दखाँ बहादुरने,
फकरु नवाबको फकीर कर दीनो है॥१॥
गढगंजन कमाल, अरिभंजन कमाल,
मनरंजन कमाल, सुरत रसाल है।
प्रीतमें कमाल, रन जीतमें कमाल, राज—
रीतमें कमाल देख्यो प्रजापतिपाल है।
साजमें कमाल, सब काजमें कमाल, दिल—
साजमें कमाल, सदा बैरी-सिर साल है।
खागमें कमाल, अरु त्यागमें कमाल देख्यो
खान हु कमाल, सब बातमें कमाल है॥२॥

(गु. विद्यासभा. ह. लि. पु. नं. ८४१)

लुणावाड़ा नरेशने केवलरामको 'कवेश्वर' की पदवी दी थी, जो आजतक इनके वंशजोंमें चली आती है।

केवलरामके पुत्र आदितराम बड़ौदाके मानाजीराव गायकवाड़के आश्रित थे। मानाजीरावकी प्रशस्तिमें कहा गया यह कवित्त आप ही की रचना है—

"जाके भुजदंड देखी लाजत है सुंढावंड,
पोंचे बल देखी सिंह हथन विदारे है।
दुर्जनके साल ओर सज्जनके प्रतिपाल,
राजत विशाल द्रग विधिके समारे है।
हाथकी कृपान कारी नागनी समान जाकी,
बडे खानखाना देखी हिंमतको हारे है।
राज चहूँ ओर ओर देखे बरजोर, माना-
मूछके मरोर पर करोर वार डारे है॥"

गायकवाड़ने आदितरामको गाँव पुरस्कार स्वरूप दिया था और अहमदाबादमें एक बड़ी हवेली भी बनवा दी थी। वह पोळ आज भी 'कवेश्वरकी पोळ' के नामसे खाड़िया-विभागमें प्रसिद्ध है।

ई. सन् १७०० के आस-पास वागड़ प्रदेशमे योगिराज मावजी और बादमे उनके नित्यानन्द जीवणदास सुरानन्द आदि शिष्य-प्रशिष्योंने ज्ञान-भक्तिकी अनक वाणियाँ एव पदोकी विपुल रचना की। वे रचनायें हस्तलिखित ग्रन्थोंमें सुरक्षित पड़ी है। मही और सोम नदियोके संगमके निकट अवस्थित उनके धर्मस्थान साबला-हरि मन्दिरमे रख गय बड़ ग्रन्थमे सैकड़ोंकी संख्यामे इनके पदादि मिलते हैं। उनके इतर धर्मस्थानोंमें भी इस ग्रन्थकी नकलें होनकी खबर है। साबला-हरिमन्दिरके उस ग्रन्थके दर्शनका लाभ मुझे मिला है। भाषा हिन्दी प्रचुर स्थानीय वागड़ीके स्वरूपकी है।

अखाकी तरह ज्ञानीभक्त प्रीतमदासन (ई. सन् १७१८–१७९८) भी गुजरातीके साथ-साथ हिन्दीमें भी स्वतन्त्र रचनाएँ की थीं। 'भक्त-नामावलि', 'ब्रह्मलीला', 'साखियों' मे कहीं-कहीं हिन्दी दोहे मिलते है तो 'प्रेमनुं अंग' 'वैराग्यनुं अंग' 'अनन्यन् अंग' 'ब्रहनुं अंग' 'तृष्णानुं अग' 'मननुं अंग' 'स्मरणनुं अंग' आदि अंग प्रायः हिन्दीमे—खड़ी बोली मे है। इनके भी कुछ पद 'खड़ी बोली' में मिलते है; जैसे–

"पद सरोज पर वारी, श्याम तेरे पद सरोज पर वारी।
मंगल करत हरत सब दुखको, उर राखे त्रिपुरारी ।।१।।
जे पद मूल प्रगट भई गंगा त्रिभुवन-पावनकारी।
'प्रीतम' सोइ चरणरज वन्दे तन मन धन बलिहारी ।।२।।"

स्तुतिके पदोंका हिन्दीका उदाहरण लीजिए––

"जय जय श्रीजानराय भक्त हितकारी ।। टेक ।।
पतितपावन नाम जाको लीला पीयूषधारी ।। १ ।।
कमलासन शम्भु शेष कहत निगम च्यारी।
दिनके दयाल आप, ईशता विसारी ।। २ ।।
गुनका गज विप्र व्याघ्र क्षुद्र पशु नारी।
अधम जाति बहुत भांति आपदा निवारी ।। ३ ।।
पाहि पाहि अशरणशरण, राखिये मोरारी।
'प्रीतम' के प्राणप्यारे–महिमा बलिहारी ।। ४ ।।"

मुकुन्द नामक एक भक्त ई. सन् १७२१ के आसपास हुए थे। उनके हिन्दी पद भी प्राप्य हैं। एक नमूना देखिए :—

"मोहन मधुबनमें बिराजे ।।टेक।।
बादर झुक आयो चौफेरी, मधुर मधुर स्वर गाजे ।। १ ।।
घटा छटा, घन दामनी चमकत, मोर बपैया समाजे ।। २ ।।
सुंदर श्याम प्रभु मनोहर मूर्ति देखी मदन मस लाजे ।। ३ ।।
'मुकुन्द' मन्दमति कहे कर जोडी हृयदकमलमें बिराजे ।। ४ ।।"

इस युगके आरम्भके आस-पास किशनदास नामक जैन साधुने 'किशन बावनी' की (ई. सन् १७५१) रचना की इसमें २२ कवित्त-सुभाषित हैं।

नरसिंह महेताके काका पर्वत महेताके एक वंशज त्रीकमदास वैष्णव बड़े राजपुरुष थे (ई. सन् १७४४–१८००)। इनका विपुल भक्ति परक पदसाहित्य मिलता है। इन्होंने 'रुक्मिणी ब्याह' फारसी बहुल ब्रजभाषामे रचा था।

एक शिवभक्त शिवानन्द सूरतमें ई. सन् १७५४ के आस-पास हुए इनकी शिवविषयक रचनाएँ हिन्दीमे भी मिलती हैं। इस युगमें डूंगरपुरकी भक्त और वेदान्ती-कवयित्री गौरीबाई, नथुराम (ई. सन् १७८४ के पहले) और मूलतः उदेपुरके ईडरमे आकर और बसे हुए केवलपुरी मूलदास महात्मा, निसंत भक्त, भोजा भक्त, मुकुन्द, प्रश्नोरो, हरजीवन व्यास भावनगरी आदि भक्त कवियोंने गुजराती पदोंके साथ-साथ हिंदीमे भी पद रचना की है। गौरी बाईकी रचना अष्टछापके कवियोंके ढंगकी है।

आमोदके वैष्णव गोविंदरामके ब्रजभाषामें पाँच भक्तिपद प्राप्त है। भक्त प्रागदासने 'दिनमणि' और 'रामरसायण' ये दो ग्रन्थ हिन्दीमे, और 'चेतवणी' 'तिथि' आदि गुजरातीमें रचे है। अपने 'रामायण' के कारण प्रसिद्ध गिरधर भक्त (ई. सन् १७८७–१८५२) ने 'दाण 'लीला' एवं कई पद 'हिन्दी' मे रचे हैं। अहमदाबादके श्री हरगोविन्द भट्टन आशाभीलकी लावणी गुजराती-मिश्रित हिन्दीमें रची है। केशवदास भटनगरी नामक एक वैष्णव कविने श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र प्रतापी श्रीगोकुलनाथजीकी प्रशस्तिमें 'वल्लभचपेटारस' ब्रजभाषामे ९२० दोहोंमे लिखा है; श्री इस्माइलने ई. सन् १८३८ में अहमदाबादमे साबरमतीमे आई हुई भयकर बाढका वर्णन खड़ी बोलीमे किया है।

'उत्तरभक्तियुग' मे स्वामिनारायणीय सम्प्रदायके विरक्त भक्त कवियोंने गुजराती साहित्यको अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओंसे समृद्ध किया है। इनमें ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द-प्रेमसखी नामी कवि थे। गुजराती भाषाकी इन दोनोंने महत्त्वपूर्ण सेवा की है तो हिन्दीको भी वे भूले नही है। ब्रह्मानन्दने भगवान कृष्णकी लीलाओंके पद प्रायः ब्रजभाषामे लिखे है :

"श्याम दृगनसें दूर न मेलुं में तो श्याम दगनसें दूर ॥ टेक ॥
लोभीके धन ज्युं करी राखुं अहोनिश प्रीतम उर ॥ न० ॥
जेही पल सुंदर श्याम न देखुं, सो पल कठिन करूर ॥ न० ॥
ब्रह्मानन्द रहुं होय दासी नटवर-चरण हजूर ॥ न० ॥"

'उत्सव पद सग्रह', 'शृंगारविलास', 'लीलावर्णन', 'विरहवर्णन' और 'ज्ञान-विलास' मे भी गुजरातीके साथ-साथ हिंदीके स्वतन्त्र सैकड़ो पद मिलते है। ब्रह्मविलास' और 'सुमति प्रकाश' ये दो ग्रन्थ पूरे हिंदीके है। रचनाएँ भी उत्तम प्रकारकी है। लोही वारोटका होनके कारण इनका कवित्वपर जन्मसिद्ध अधिकार था वे सत्समागम एव विद्याका लाभ भी मिला फलतः इनकी प्रतिभा चमक गई। गुजराती साहित्यको इसी कारण वे सराहनीय सेवा अर्पित कर सके है।

स्वामिनारायणी दूसरे भक्त कवि प्रेमानन्द-प्रेमसखी है, इनकी भी हिन्दी-सेवा श्लाघ्य है। 'भक्ति-विलास', 'लीलावर्णन' के सब मिलकर २२८६ पदोंमें हिन्दी पद भी सैकड़ोंकी संख्यामें है।

कुछ पद नमूनेके तौरपर देखिए––

"लाला तेरी लटकनीमें ललचाई रे ॥ टेक ॥
लटकती चाल चलत मनमोहन मधुर मधुर मुसकाई रे।

दयाराम

जब देखुं मोहन रंग-भीने आनंद उर न समाई।
लटकती चाल लाल द्रग चंचल बिनु देखें कछु न सोहाई।
'प्रेमानन्द' घनश्याम-मूरति निरखत ध्यान लगाई।"

ऐसे ही पदोंमें इनकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं। और भी—

"रसियो मोसुं रार करें, में केसे जाउं जल भरने जमुनाके पनघटवा ॥ टेक ॥
चीर मेरो फारे, हार मेरो तोरे, खोले पकरी घूंघटवा।
ले ले नाम गारी दे खिजवत गिरिधर नागर नटुवा।
कठिन भयो जमुना जल भरनो, पंथ भयो विकटवा।
कठिन भयो जमुना जल भरनो, पंथ भयो विकटवा।
प्रेमानंद कहे मन हर लीनो, पे'री श्याम पीत पटवा।"

इन दोनोंके अग्रगामी मुक्तानन्द स्वामीके भी हिन्दीमे पद मिलते हैं।

इस युगको अपनी सर्वांगीण प्रतिभासे प्रतिभासित करनेवाले तो दयाराम हैं। (ई.स १७७७–१८५३)। इसकी 'गरबियां' एवं 'पद' गुजराती साहित्यकी उत्तम रचनाएँ हैं। बारह-तेरह वर्षकी उम्रसे शुरू करके मृत्यु पर्यन्त लगातार ६०–६५ वर्षों तक उन्होंने सरस्वतीकी उपासना की है। वे गुजराती रचनातक ही सीमित नहीं रहे, उन्होंने मराठी, पंजाबी, राजस्थानी, संस्कृत और ब्रजभाषामें भी रचनाएँ की है। गुजराती और व्रजभाषापर उनका समान अधिकार था। व्रजभाषामे आपने उसी प्रवाहमें सरलतापूर्वक रचना की है मानो वे मातृभाषामें ही लिख रहे हों। प्राप्य बड़ी कृतियोंमें 'सतसैया' (ई.सन् १८१६), 'वस्तुवृन्ददीपिका-कोश' (ई. सन् १८१८), 'भागवतानुक्रमणिका' (ई. स. १८२३), 'व्रजविलासामृत (अप्रसिद्ध ई. सन् १८२६), 'श्रीकृष्ण अकलचन्द्रिका' और 'रसिकरंजन' आदि रचनाएँ इन्हे उच्च कोटिके हिन्दी कवियोंमें स्थान देनेके लिए पर्याप्त हैं। 'सतसैया' बिहारीकी 'सतसई' की कोटिकी रचना है, तो 'रसिक रंजन' तत्त्वज्ञानसे प्लावित काव्य-ग्रन्थ है। शुद्धाद्वैतवेदान्त समझनेके लिए यह पिछला ग्रन्थ उपयुक्त है। 'छप्पय कवित्त', कुण्डलिया और मत्तगयन्द छन्दमे समृद्ध इस ग्रन्थकी भाषा भी स्वाभाविक एवं सरल है :—

"क्यौंहु न चलि जलजात बदनके पौन गगन बिन,
बुजै न दावानल कबू जलकलश सों घन बिन।
टुटि न कोटिकी टुटी कौरिते चिंतामन बिन,
घोस क्योंहु नहि होय दीपदिक सौं दिनमनि बिन।
बिच सिंधु झाझ खग ऊडि थके क्यौंहु न लही पार थल,
तजी 'दया' ओरसब राखि इक चरन सरन गिरिधरन-बल ॥१॥"
"अंक बिना सब मंडल ज्यौं, दुलहे बिन जेसी बिरात बिचारो,
वस्त्र बिना सब भूषन ज्यौं, बिन लौंन जसो गन व्यंजन सारो।
भूप बिना लगि जेसि चमू, बिन नाक परें सब रूप नकारो,
कहत दयो हरिभाव बिना इक, साधन कोटि हु एसेहि धारो ॥२॥"

इनके व्रजभाषाके कमनीय पद भी काफी बड़ी संख्यामें मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक पद्य यों हैं—

"मेरे प्यारेके नोंकीले नेन, बंसीवारेके नोंकीले नेन ॥ टेक ॥
बिरहेमोहे तीरसों-बटु मोहे तीरसों लगे,
रेन द्योस मोहे कल न परत वे, मोहे पलक परत नहि चेन ।
एजी मोहे पलक परत नहि चेन ॥
हांसी मंद मानुं मदनकी फांसी, सुधा बोले सलुने बेन,
'दया' के प्रीतम तोरी मोहन शी मूरत मोहे छिन छिन सतावत मेन ॥"

उन्होंने 'रेखता' के नीचे फारसीमय रचना की है :—

"परो मत इश्कके फंदा, परे जग सोउ मतिमंदा,
कठिन हे इश्कका किल्ला, लेवे कोउ जगतमें बिरला ॥१॥
आगे सों सिर अपना देवे, सोइ गढ इश्कका लेवे।
सहे सब खल्ककी हांसी, सो तोडे दुःखकी फांसी ॥२॥
पिया जिने प्रेमका प्याला, सदा वे रहत मतबाला ।
खुशीमें दिन सब रेहेना, माशुकका दे चरन नेंना ॥३॥
मोहन मेहेबुब तुंही मेरा, चश्म बीच दीजिये डेरा ॥
सजन तेरी सांवरी सूरत, माधो तेरी माधुरी मूरत ॥५॥
तुंही सिरदार मेरे सिर पर, तेरे दिल चाहे सो तुं कर ;
आशककी ये ही हे अरजी, न बुजिये माशुककी मरजी ॥६॥
भई बिन-मोलरी दासी, प्याराकी दरसकी प्यासी।
निभावनवारे तुम यारो, 'दया' के प्रीतम गिरिधारी ॥७॥"

गौरीबाई, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द-प्रेमसखी एवं दयाराम—इन चारोंमें भक्तितत्त्वकी प्रधानता है और हृदय कवित्वपूर्ण है; व्रज-हिन्दीपर भी अच्छा अधिकार है। वे गुजराती साहित्यके भूषण तो हैं हीं; हिन्दी-व्रजभाषाके भी भूषण रूप बननेके लिए पूरी योग्यता रखते हैं।

इस युगके अन्तिम और अर्वाचीन युगके आरम्भके एक ज्ञाननिष्ठ भक्त कविकी चर्चाके बिना यह निबन्ध अधूरा ही रह जाएगा। वे है मलातज (खेड़ा जिलेके) एक ब्रह्मनिष्ठ नागर कवि छोटचे (ई. सन् १८१२-१८८५)। इनकी 'साखियाँ' हिन्दीमें है। दश अंगोंमे विभक्त ये 'साखियाँ' एक अच्छा सुभाषित संग्रह बन गया है :—

"कपटीको मधुरो बचन, ज्यामें ब्होत विकार ।
मधुरा बोले मोर ज्युं, करे अहिका आहार ॥१॥
न्याय सहित जो बोलवो सो हो बडाको बोल ।
मूरखके मुखको बचन ज्यामें नहि कछु तोल ॥ २॥ आदि....

इनकी फुटकर रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं :—

"तेरा दिलमें दिलदार देख ले विचार करी;

जाका कोय न पाये पार, रहे मुनि ध्यान धरी ॥ टेक ॥
पंच भूत वैराटमें रे चोराशी लख वाती,
जेसे एक भूमिमें ऊगे, तरुलता तृण जाती ॥ देख ले० ॥
घटघटमें मनका मत न्यारा, बुद्धि भेद अपारा।
एक नीरसे बाग बनाया, स्वाद सुगंध रस न्यारा ॥ देख ले० ॥
माया कारण विश्वाकारे धारे रूपसे कहिए,
स्थावर जंगम देह सकलमें निद्रा एक रस लहिये ॥ देख ले० ॥

× × ×

शूरा पींछे शब्द कुं रे, ओर चित्त ना आवे।
जन 'छोटय' जंजाल छांडके तुरत परम पद पावे ॥ देख ले० ॥"

पिंगलशी गढ़वी, डुंगर बारोट, मनोहर स्वामी, खुमानबाई, जीवनलाल नागर, जूनागढ़के सुप्रसिद्ध देवीभक्त रणछोड़जी दीवान, कोईदयाल, मोहनलाल, गोविन्दभाई गिलाभाई, जसुराम, उत्तमराम, नरसिंहराम आदि हिन्दी कविताके उपासक इस युगके अन्तिम भागमें हुए हैं।

यहाँ हमें आजके हिन्दीके पुरस्कर्ता लल्लूलालजीको भी (ई. सन. १७६४–१८२६) को याद कर लेना चाहिए। भागवत-दशमस्कन्धकी कथा परसे गद्यमय 'प्रेमसागर', 'लतायफ हिन्द', 'भाषाहितोपदेश', 'सभा-विलास', 'माधव विलास', 'सतसइकी टीका', 'भाषा-व्याकरण', 'मसादिटे', 'भाषा', 'सिंहासनबत्तीसी', 'बेतालपच्चीसी', 'माधवानल', 'शकुन्तला' ये सब लल्लूलालजीकी हिन्दी गद्य रचनाएँ है। वे कलकत्तेमें कम्पनी सरकारके कारकून थे और हिन्दीकी सर्वोपयोगिताको समझकर हिन्दी गद्यको उन्होंने सबल बल दिया, जिसका शुभ परिणाम आजकी हमारी 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' है। 'उत्तर भक्तियुग' में हम कच्छके महाराव लखपतीजी एवं राजकोटके ठाकोर महेरायण सिंहजीको पाते है। लखपतजीका 'लखपति श्रृंगार' व्रजभाषाका काव्य शास्त्र-ग्रन्थ है; तो महेरायणा सिंहजीका 'प्रवीण सागर' (ई. स. १७८२) सुमधुर काव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थकी रचनामें महेरायण सिंहजीको अपने दूसरे पाँच मित्रोंकी भी सहायता मिली थी। महेरायण सिंहजीके जीवनके प्रसंगको रूपकके रूपमें देनेका इस काव्यमें सफल प्रयत्न है। लेखकका विभिन्न भाषाओंपर अधिकार भी सूचित होता है। कवितामें प्रवाह है। कुछ उदाहरण देखिए :—

"कुंजगली बन जेवो तज्यौ अरु बेठ रहे गिरिसें गिरिधारी,
नेननिकी छबि बक्र निहारबो सो गति नेननिसें भइ न्यारी।
टेढो किरीट खुली अलकें सोइ आपनसें सब सूधि बिसारी,
ओरेनसें मुसके नहिं मोहन, कीनि भली व्रषभानु दुलारी ॥ १॥"
"उठी हे चमंकि पाय, धरनि धमंकि धरे,
जेहर झमंकी मन आतुर अति भई।
उर अकुलाय धाय, चढी हे झरोखे जाय,
चिकसु उठाय लखी कुसुम अगें लई।

सागर चलंत मग जुरत दुहन द्रग,
अटाकी घटानमें छटान ज्यौं छिपै गई।
दोऊ मन प्रेम बान लगें ज्यों लगे निशान-
पें अयान तन त्रान छेदन भये दई॥२॥"
"सागर जात गयंद चढे सु प्रबीन झरोख चढी उमगी,
दूर कियो चिक दीठ जुरी जुग, रीझ भई भरि लाज भगी।
दामनि ज्यौं सु दमंक गई चित दोउनके सु चमंक लगी।
होत नहीं बिरहान लउदित, प्रेम जरीक जगी चिनगी॥३॥"

इस ग्रन्थके दो सस्करण हुए हैं। नये सस्करणकी आवश्यकता है। यह ग्रन्थ अपूर्ण प्राप्त हुआ था और ऐसी किम्वदन्ती है कि कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाईने इसे पूर्ण किया है।

कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाई नए युगके गुजरातीके आदि कवि है। उनकी ब्रजभाषाके ग्रन्थोकी शिक्षा कच्छ-भुजमें हुई थी। वहाँ ब्रजभाषाके काव्यशास्त्रके ग्रन्थोंका अध्ययन करानेके लिए राज्याश्रित शाला चलती थी। विभिन्न राज्योंके आश्रित कवियोंने वहाँ जाकर शिक्षा पाई थी। स्वामिनारायणीय कवियोंमें ब्रह्मानन्दकी शिक्षा वहाँ हुई थी। दलपतराम यों तो नई गुजरातीके कवि थे; तो भी उन्होंने ब्रजभाषामें भी कविता की थी। 'श्रवणाख्यान' उनकी ब्रजभाषाकी रचना है।

नए युगमें भी क्वचित् हिन्दी प्रेमियोंने कविता लेखन किया है। सूरतका एक फकीरुद्दीन, खेरालके साँई दीन-दरवेश, अलख बुलाखीराम, महुवाके बड़नगरा नागर मनोहरदास, विसनगरके अनवर मियाँ काजी, सौराष्ट्रके हीराचन्द कानजी आदि कवियोंने तत्त्वज्ञानकी गहरी बातोंको गुजरातीके साथ-साथ हिन्दीमें भी देनेका सुप्रयत्न किया है। अनवर मियाँ परम भक्त थे और उन्होंने महत्वपूर्ण संख्याबन्ध भजनोंकी रचना की थी। 'ज्ञानी' की छापसे उन्होंने कविता की है। इनकी कविताके कुछ नमूने लीजिए :—

"गुरुने मुजको ज्ञान बताया रे मेरे मन अचरज आया जी॥
साहेब मेरा मुजमें समाया रे, गुरुने दरश दिखाया जी॥ टेक॥
मन-दरियाकी मोजमें रे हीरला लगा मेरे हाथ।
अंतर खोजा में आपका, वामें मिलिया मुजे दीनानाथ॥ १॥
बासणमें ज्युं दूध हे रे, म्यानमें ज्युं तलवार,
खलकमें ज्युं तेरी देह हे एसा कायामें किरतार॥ २॥
दरिया घडेमें समा गया रे, ज्युं बीजमें वडका झाड,
सुईके नाकेमें ज्युं हस्ति समाया, युं तृणके ओठे हे प्हाड॥ ३॥
काया हमारा हे घोडला रे, आत्मा हे असवार,
चाहे उधर वाको ले चलें, वाका कोई न पाया पार॥ ४॥
काया हमारा म्हेल हे रे, खासा झरूखेदार,
वामें हमारा वास हे तख्त तीर्थ तीरखुटी द्वार॥ ५॥

काया हमारी गोदडी रे, ओढे फिरे दिनरात,
'ज्ञानी' कहे अम ओर हैं, नहीं काया हमारी जात ।। ६ ।।

कविकी 'कृष्ण भक्ति' की कविता भी पदोंके रूपमें मिलती है, तो शुद्ध उर्दू गजलोंका भी अच्छा संग्रह सुलभ है।

गुजरात, सौराष्ट्र-कच्छके रजवाड़ोंमें राज्याश्रित कवियोंकी कमी नहीं थी। अलग-अलग उत्सवादिक, राज्याधिकार प्राप्तिके प्रसंगादिपर कविताएँ पढ़ी जाती थीं, ये सब प्रसिद्धि नहीं पा सकी है। इनका संग्रह किया जाए तो इन कवियोंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिन्दीकी जो अपार सेवा की है, उसका कुछ अन्दाज आ सके।

आज तो हिन्दीका राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे ज्ञान सुलभ बना है, उसकी ओर लोगोंका आदरकी दृष्टिसे देखना स्वाभाविक ही है, और हमारी इस पीढ़ीके कवि दूलाभाई काग, "सुन्दरम्", राजेन्द्र शाह आदिने कभी-कभी हिन्दीमें भी कविता-लेखनका प्रयास किया है, तो इन्द्र वसावड़ा जैसे गद्य-लेखकने गद्य ग्रन्थोंका भी सर्जन किया है। गाँधीजीके 'हरिजन' पत्र द्वारा हिन्दीकी सेवा तो भारत-विख्यात है।

दूलाभाई भायाभाई काग (ई.सन् १९०४ जन्म) सौराष्ट्र-गोहिलवाड़के मजादर गाँवके परजिया चारण है। इनकी प्रतिभा उच्च प्रकारकी है। चारणी पद्धतिकी एवं लोक-साहित्यकी इनकी गुजराती रचनाएँ, गेय गीत आदि अच्छी ख्याति पा चुके है। इन्होंने हिन्दीमें भी कविताएँ लिखी हैं। 'राष्ट्र-ध्वज पचीशी' इनकी एक मान्य कृति है; जिसके आरम्भका कवित्त है:—

"अभय किसान मजदूर व उद्योगपति,
अभय व्यापार सब खेलो वैश्योंके लले।
अभे कवि भारतीके भव्य ललकारो गीत,
अभे यमुनाके जल जाओ दधिमें ढले।
अभे सिंहासन शुचि भारतके भूपतिके,
अभय धरित्री सब खेत धान्यसे फले।
श्वेतवर्णवाले छत्र छोर श्वेतद्वीप चले,
अभय रहो री धेनु हिन्दकी ध्वजा-तले।।"

गाँधीजीकी लकड़ीका प्रताप भी द्रष्टव्य है:—

"सुता बरड़ाकी भई कोतुकी करामतकी,
धीरजकी माता जब गांधी कर पकरी।
शोणितके प्यासी तीर खंजर बंदुकनसे,
तोप तलवारनसे अडिग होय टकरी।
बनके शिकारी जो गजारि मांसाहारी बड़े
सिंहनने देखी तब हुए शेर बकरी।
चक्रनको शूलको रु बमके बलूननको
'काग' रोक रही संत मोहनकी लकरी।।"

यहाँ हमारे एक वैष्णव गोस्वामी जो हारमोनियम-वादनमें भारतीय कलाकारोंमें ख्यात हैं, संगीत शास्त्रके भी ज्ञाता हैं। ये सौराष्ट्रके पोरबन्दर-सुदामापुरीके निवासी हैं--गो. श्री द्वारिकेशलालजी (ई. स. १९०२ जन्म) को याद कर लेना चाहिए। इनकी गुजराती एवं व्रजभाषाकी रचनाएँ सुमधुर हैं। भक्त हृदय होनेके कारण इनकी वाणीमें अष्टछापीय माधुर्यकी झलक पाई जाती है। यथा :--

["राग बिहाग"]

शामा क्यों न कहत कछु बेन।
तो बिन धीर अधीर सुघड वर कितहुं न पावन चेन॥ १॥
जिन हठ कर री तू नवल रसिकसों प्रकट दहत अतिमेन।
ललित लाल जीवनकी जीवन जीवन हृदय लगेन॥ २॥
तृषित नयन अकुलात छबीली चाहत है कछु लेन।
कर बहु बेग अभिसार श्यामहित उरसि परम रसदेन॥ ३॥
'द्वारकेश' सुन बचन रसीली मुसकि चली कर सेन।
रहसि मिलें मानों कबहुं मिले नां सुफल भई यह रेन॥ ४॥

इनके 'खण्डिता', 'मान', 'दान', 'होरी' आदिके पद भी मिलते हैं।

अन्वेषण-क्षेत्रमें शिरोहीके स्वनामधन्य स्व. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाकी राजपूतानेके इतिहास-ग्रन्थोंकी एवं लिपि शास्त्रकी भगीरथ सेवा, पाटणके गो. पा. द्वारकादास परीखका पुष्टिमार्गके ग्रन्थोंके अनेक सम्पादन एवं अनेक निबन्धोंका लेखन, विद्यमान प. सुखलालजी संघवीका दर्शनशास्त्रके अनेक उच्च कोटिके निबन्धोंका लेखन, राष्ट्रभाषा प्रचारके कारण श्री मोहनलाल भट्ट, श्री जेठालालजी जोशी, श्री कान्तिलालजी जोशी आदिकी अनेक निबन्धोंकी-पाठ्य-पुस्तक आदिकी सेवा, वागड़के स्व. सूरजमल वागड़ियाके शोधपूर्ण विवरणोंका प्रकाशन और विद्यमान श्री भैरवसिंहजीकी डिंगल विषयक लेखोंकी सेवा, श्री ओंकारेश्वर पुरोहितका 'वागर' पत्रिकाका सम्पादन, श्री रणधीर उपाध्याय, श्री लालशंकर डुं. जोशी, श्री हरिहर शुक्ल आदि अध्यापकोंके निबन्ध लेखन-पाठ्य पुस्तकोंका लेखन आदिकी हिन्दी सेवा श्लाघ्य है।

आन्ध्रकी हिन्दीको देन

डॉ. आय. पांडुरंगराव

भौगोलिक स्थिति

सप्तद्वीपा वसुन्धरामें सुप्रतिष्ठित एशिया महाद्वीपका करावलम्ब लेकर विश्व-सरसीके सजल जलजकी भाँति सर्वत्र अपनी सुगन्ध फैलानेवाला भारतवर्ष सुशोभित हो रहा है, जिसके "वामांक" में आन्ध्र जनताकी जन्मभूमि विराजमान है। १ नवम्बर १९५६ से इसी भूखण्डका नाम आन्ध्र प्रदेश हो गया है। दक्षिण भारतके पूर्वी समुद्रके किनारे वीणाके आकारमें अपना "फुल्ल कुसुमित" अञ्चल फैलाकर तीन करोड़ भारतवासियोंके द्वारा यह "आन्ध्र लक्ष्मी" आराधित हो रही है। इसके पूर्वमें बंगालकी खाड़ी, दक्षिणमें मद्रास और मैसूर, पश्चिममें महाराष्ट्र, उत्तरमे मध्यप्रदेश और पूर्वोत्तरमें उत्कल प्रदेश है। इस प्रकार इसके चारों तरफ तमिल, कन्नड़, मराठी, हिन्दी और उड़िया भाषाएँ बोली जाती हैं और इस प्रदेशकी मुख्य भाषा तेलुगु है। तेलंगानेके कतिपय उर्दू भाषा-भाषियोंको छोड़कर शेष सभी लोग तेलुगु बोलते है। समीपवर्ती प्रान्तोंमें भी उस प्रान्तकी भाषाके अतिरिक्त तेलुगु बोलनेवाले भी काफी संख्यामें मिलते है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे आन्ध्र प्रदेश भारतके उत्तर और दक्षिणका संगम स्थल रहा है।

रायलसीमा और तेलंगानेके सुहावने जंगल और सुन्दर पर्वत और तटवर्ती प्रान्तोंकी नदियाँ आन्ध्र प्रदेशको सुसम्पन्न और समृद्ध बनाए हुए है। आन्ध्र प्रदेशको प्राय: "नदियोंका देश" कहा जाता है और यह बहुत हद तक ठीक भी है। दक्षिण भारतकी दो प्रसिद्ध नदियाँ—गोदावरी और कृष्णा—इसी प्रदेशमें सागर-संगम प्राप्त करती है। आन्ध्र प्रदेश कितना सुजल, सुफल तथा शस्यश्यामल बन सकता है; आन्ध्र प्रदेशकी प्राकृतिक सम्पदाओंका यथाधिक उपयोग किया जाय तो यह अन्नपूर्णाका मन्दिर ही बन सकता है। इस दिशामें संघ सरकारका प्रयास भी काफी सन्तोष-जनक है।

आन्ध्र प्रदेशके पर्वत प्राय: तीर्थ यात्राके स्थल बन गअे है। श्रीशैल, तिरुमलै, सिंहाचल, मंगल-गिरि, यादगिरि आदि इस प्रकारके पर्वतोंमें उल्लेखनीय हैं। इन पर्वतोंके ऊपर प्रतिष्ठित देवी-देवताओं-

के दर्शनसे यात्रियोंके मन जिस प्रकार पवित्र बन जाते हैं उसी प्रकार वहाँके प्राकृतिक वैभवको देखकर उनकी आँखें भी सफल हो जाती हैं।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

आन्ध्र प्रदेशका इतिहास ऋग्वेदके समयसे ही आरम्भ होता है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत, रामायण तथा सम्राट् अशोकके समयके शिलालेखोंमें 'आन्ध्र' शब्दका उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीजने आन्ध्रोंके गज-दल, हय-दल तथा अन्य बल-वैभवकी बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन ईसाके पूर्व तीसरी शताब्दी तक इस भूभागके शासन अथवा शासकोंके सम्बन्धका कोई प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं है।

मत्स्य पुराणमें शातवाहनोंका उल्लेख मिलता है जिन्होंने चार शताब्दियों तक आन्ध्रपर शासन किया था। उपलब्ध सामग्रीके आधारपर ये ही शातवाहन आन्ध्रके पहले शासक सिद्ध होते हैं। इस वंशके सत्रहवें राजा "हाल" ने अपनी प्रसिद्ध रचना "गाथासप्तशती" को भारत-भारतीके चरणोंमें अर्पित की थी। हिन्दीकी 'सतसई परम्परा' इसी सप्तशतीपर आधारित है।

ईसाके पूर्व २६३ से लेकर सन् १५७ तक शातवाहनोंकी छत्र-छायामें आन्ध्रमें वाणिज्य, व्यवसाय, कला और साहित्यका यथेष्ट विकास हुआ था। अमरावती, भट्टिप्रोलु, गुटुपल्लि आदि प्रान्तोंमें अब भी उस समयकी स्थापत्य तथा शिल्पकलाके प्रमाण विद्यमान हैं।

शातवाहनोंके पश्चात् इक्ष्वाकुओंने आन्ध्रकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। इन राजाओंके शासनमें बौद्ध धर्मको बड़ा प्रोत्साहन मिला था। दूर-दूरके बौद्ध धर्मके विद्यार्थी यहाँके धार्मिक विद्यालयोंमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आया करते थे। बुद्धकी मूर्ति बनाकर पूजा करनेकी प्रथा इसी समय आरम्भ हो गयी थी। शिलालेखोंकी भाषा प्राकृत थी।

ईसाकी चौथी शताब्दीके द्वितीय चरण तक इक्ष्वाकुओंका पतन हो गया और राज्य कई टुकड़ोंमें बँट गया था। बृहत्पलायन, शालंकायन, विष्णुकुण्डिन आदि विविध राजवंशोंने आन्ध्रपर शासन किया था। इस समयके शिलालेखोंमें प्राकृतका स्थान संस्कृतने लिया है। बौद्ध धर्मके साथ-साथ वैदिक धर्मको भी आदर मिलने लगा था। विष्णुकुण्डिनोंने स्थापत्य और शिल्प कलाओंका पोषण किया था। उंडवल्लि और मुगलराजपुरम्के गुफा-मन्दिरोंको देखनेपर इनकी कला-साधनाका परिचय मिलता है।

तदनन्तर सन् ६३१ में पूर्वी चालुक्योंने आन्ध्रपर अपना आधिपत्य जमाया। प्रारम्भके दो तीन राजाओंके बाद सन् ८४८ में गुणग विजयादित्यका शासन शुरू हुआ। इन्होंने अपने शिला लेखोंमें अपनेको दक्षिणापथका शासक घोषित किया है। राष्ट्रकूटोंका आपने बड़ी चतुराईके साथ दमन किया। पूर्वी चालुक्योंके साथ-साथ उत्तरमें गांग तथा दक्षिणमें पल्लवोंका भी शासन चलता था। सिंहविष्णु और महेन्द्रविष्णुकी कला-रुचि महाबलिपुरम् की शिल्प कलामें मुखरित हो उठी है। पर दसवीं शताब्दीके आरम्भमें पल्लवोंका स्थान चोलवंशके राजाओंने ग्रहण कर लिया था। ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यमें पूर्वी चालुक्यके राजा राजराजने कर्नाटक चालुक्योंसे समझौता कर लिया। देशमें

फैली हुई अशान्तिको मिटाने के लिये राजराजने साहित्यकी ओर जनताको प्रेरित करना उचित समझा अपने दरबारके कवि नन्नयासे महाभारतका अनुवाद कराया। तेलुगु भाषामे साहित्यका श्रीगणेश इसी समय हुआ। बौद्ध धर्म, जैन धर्म और वैदिक धर्मकी त्रिवेणी उस समयकी आन्ध्र जनताको चकित किया करती थी। मन्दिरोंका महत्व बढ़ने लगा था और शिलालेखोंमे तेलुगुका प्रयोग होने लगा था।

बारहवीं शताब्दीमें आन्ध्रका शासन अव्यवस्थित हो गया था। चोल राज्यके कई टुकड़े हो गअे और आपसमें झगड़े बढ़ने लगे। धार्मिक क्षेत्रमे शैव और वैष्णव आपसमे लड़ने लगे। "पल्नाटि वीरयुद्ध" नामक मशहूर लड़ाई इसी समयकी थी जिसको श्रीनाथने अपनी लेखनीके द्वारा अमरत्व प्रदान किया है।

तेरहवीं शताब्दीमें आन्ध्रमें काकतीय प्रतिष्ठित हुए। काकतीय वंशके राजा सभी अर्थोमें 'आन्ध्र शासक' थे। काकतीय राजा प्रतापरुद्रीके समय मुसलमानोंका हमला शुरू हो गया था और प्रतापरुद्रने उल्लूखांके हाथों बन्दी होनेके कारण निराश होकर प्राण छोड़ दिये थे।

काकतीयोके समय साहित्य, कला और वाणिज्यका आशातीत विकास हुआ। इसी समय महाभारतका अनुवाद तिक्कनाने पूरा किया। 'रंगनाथ रामायण', 'उत्तर रामायण' जैसे सुन्दर काव्योंकी भी रचना इसी समय हुई। देश-विदेशमें आन्ध्रके वाणिज्यका प्रसार हो गया था। "प्रतापरुद्रयशोभूषण" नामक काव्यशास्त्रका प्रणयन भी इसी समय हुआ।

इसके बाद सन् १३५८ से १३६७ तक कापय्या नामक देशभक्तने विदेशी शत्रुओंसे वरंगलकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया था। इतनेमें तुंगभद्राके किनारे विजयनगरका साम्राज्य हरिहर और बुक्क नामके दो भाइयोंके प्रयत्नसे स्थापित हो चुका था। स्वामी विद्यारण्यकी वात्सल्यमयी छायामें इसकी खूब उन्नति हुई। कृष्णदेवरायके समय इस साम्राज्यका सूर्य उत्कर्षके उत्तुंग शिखरपर आसीन हो गया था। इस युगमे कला और साहित्यका यथेष्ट विकास हुआ। पेद्दना, धूर्जटि, तेनालि रामकृष्ण आदि महाकवियोंकी काव्य साधना इसी समय सफल हुई थी। तेलुगुके प्रसिद्ध "अष्टदिग्गज" (आठ श्रेष्ठ कवि) इसी समयके थे, जो कृष्णदेवरायकी प्रेरणासे अपनी मातृभाषाकी चिरस्मरणीय सेवा कर गये।

सन् १५३० मे कृष्णदेवरायका देहान्त हो गया और परवर्ती राजाओंकी कमजोरीके कारण राक्षसी तंगडीके समरांगणमे विजयसगरकी राजलक्ष्मी विचलित हो गयी थी। तेलंगानेमे आधिपत्य जमाकर धीरे-धीरे पूरे आन्ध्रको हड़प लेनेकी इच्छासे बहमनी राज्य विजयनगरका शत्रु बन बैठा था। इन परिस्थितियोंमें सन् १६५२ मे विजयनगर भी मुसलमानोके आधीन हो गया।

कुतुबशाही शासनका केन्द्र गोलकुण्डा था। इस परम्परामे महमद कुलीका नाम चिरस्मरणीय है, जिन्होंने सन् १५९१ मे हैदराबाद नगरका ढाँचा बनाकर बसाया था। कुतुबशाही शासनमे आन्ध्र का काफी अच्छा सांस्कृतिक विकास हुआ। शासकोंकी सहिष्णुता तथा सहृदयता ही इसका कारण है। परन्तु यह शासन भी अधिक समय तक न टिक सका।

सन् १६८७ में गोलकुण्डा मुगल साम्राज्यके हाथमें चला गया और हैदराबादमें निजामका शासन स्थापित हुआ। अठारहवीं शतीके आरम्भमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी धीरे-धीरे आन्ध्रमें प्रवेश पाने लगी और

निजामकी उदारताका पूरा-पूरा उपयोग करके कम्पनीने सन् १८०० तक तेलंगानेको छोड़कर आन्ध्रके शेष प्रान्तोंमें अपना आधिपत्य जमा लिया।

ब्रिटिश शासनके समय सारे भारतमें एक नई चेतना फैली। राष्ट्रकी एकता और साथ-साथ परतन्त्रताकी वेदनाका अनुभव हर भारतवासीने किया। राष्ट्रीय जागरणकी लहरने आन्ध्रको भी खूब प्रभावित किया। इस राष्ट्रीय आन्दोलनमें आन्ध्रके बड़े-बड़े नायकोंने पूरा सहयोग प्रदान किया था और आखिर सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र होकर ही रहा।

स्वतन्त्रताके अवतरित होते ही आन्ध्र जनता अपनी प्रान्तीय स्वतन्त्रताकी मीठी उत्कण्ठाकी सफलताकी आशा लगाए बैठी थी; लेकिन संघ सरकारका निर्णय इसके अनुकूल नहीं था। मद्रास राज्यके अन्तर्गत ही आन्ध्रको भी मिलाया गया था; पर आन्ध्रके निवासी इस निर्णयको अन्तिम मानकर बैठ नहीं गए। आन्ध्र राज्यकी स्थापना के लिए आन्दोलन हुआ और नेल्लूरके एक देशभक्त पोट्टि श्रीरामुलुने आमरण अनशनका व्रत धारण करके अपने प्राणोंकी बलि भी चढ़ायी। फलतः सन् १९५३ में मद्रास राज्यके तेलुगु भाषी प्रान्तको अलग करके ग्यारह जिलोंका आन्ध्र राज्य बनाया गया। बादमें संघ सरकारकी राज्य पुर्निर्माण सम्बन्धी नीतिके अनुसार तेलंगानेके नौ जिलोंको मिलाकर परिपूर्ण आन्ध्र प्रदेश-का निर्माण हुआ। इस नये राज्य उद्घाटन १ नवम्बर १९५६ को भारतके प्रधान मन्त्रीने किया था।

इस प्रकार आन्ध्रोंके तेईस सौ वर्षके इतिहासमें उनकी सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय और साहित्यिक चेतनाका क्रमिक विकास देखा जा सकता है। भारतकी राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक सम्पत्तिको यथाशक्ति समृद्ध बनानेमें आन्ध्र हमेशा आगे ही रहा। भारतको सुमधुर बनानेमें आन्ध्रने हमेशा योग दिया है। कलाकी अखिल भारतीय आराधनामें आन्ध्रके अमरावती, अेकशिला, नागार्जुन आदि कला-केन्द्रोंकी सुधामयी शोभाने नई चेतनाका सृजन किया था। गान-कला और नृत्यकलामें भी आन्ध्रकी देनका स्मरण तब तक किया जाएगा जबतक त्यागराज, अन्नमाचार्य, क्षेत्रय्या आदि महानुभावोंके नाम अमिट रहेंगे। साहित्य संसारमें तेलुगुका विशेष स्थान है। संस्कृत साहित्यका सार ग्रहण करके आन्ध्रभारतीने उसी सुरभारतीके चरणोंमें अपनी निजी संपत्ति अर्पित की है। नन्नय्या, तिक्कना, पोतन्ना, श्रीनाथ, पेद्दन्ना, सूरन्ना आदि महाकवियोंने अपने-अपने क्षेत्रमें अमर कलाकृतियोंका सर्जन किया है। वल्लभाचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ, भवभूति, सायण, आपस्तम्ब आदि मनीषियोंने अमर-भारतीकी आराधना करके अखिल भारतीय स्तरपर आन्ध्रका यश बढ़ाया।

संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि आन्ध्रने उत्तर की दिव्य भागीरथी और दक्षिणकी मधुर गोदावरीकी संगमस्थलीके रूपमें जहाँ उत्तरमें दक्षिणको व्याप्त किया था वहाँ उसने उत्तरसे दक्षिणको भी भी बहुत लाभान्वित किया। आदान-प्रदानके इस महायज्ञमें आन्ध्रका महत्व राष्ट्रीयकी अपेक्षा सांस्कृतिक ही अधिक रहा है।

भाषा

आन्ध्र प्रदेशकी मुख्य भाषा तेलुगु है। "तेलुगु" का पर्यायवाची शब्द है "तेनुगु"। "आन्ध्र" शब्दका भी इसी अर्थमें प्रयोग होता है। यहाँ की जाति, देश और भाषाके अर्थमें आजकल इन तीनों

शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है। अतः ये समानार्थ शब्द हो गये हैं। इन तीनोंमें ' आन्ध्र ' अथवा ' अन्ध्र ' शब्दका प्रयोग सबसे प्राचीन है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें पहले पहल ' आन्ध्र ' शब्दका प्रयोग मिलता है । विश्वामित्रके पुत्र, पिताके द्वारा अभिशप्त तथा निर्वासित होकर आन्ध्रकी ओर गये थे । ' रामायण ' तथा 'भारत' में भी आन्ध्र जातिका उल्लेख मिलता है। भगवान् विष्णुकी सहस्त्र नामावलीमें भी 'आन्ध्र' शब्दका प्रयोग किया गया है। ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दीसे ' अन्ध्र ' के साथ साथ ' आन्ध्र ' शब्दका भी प्रयोग पाया जाता है। ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भसे आन्ध्रके समानार्थकके रूपमें " तेलुगु " शब्दका प्रयोग होने लगा है। इसी शताब्दीके मध्यमें तेलुगुके आदिकवि नन्नय्याने तेलुगुके अर्थमें " तेनुगु " शब्दका का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार ये तीनों शब्द प्रचलित हो गये हैं।

तेलुगु भाषाके पारिवारिक निर्णयके सम्बन्धमें भी विद्वानोंमें काफी मतभेद है। दक्षिण भारतमें प्रचलित होनेके कारण दक्षिणकी अन्य द्रविड़ भाषाओंके साथ इसको भी कुछ लोग 'द्रविड़ परिवार'की भाषा समझते हैं और कुछ लोग भाषाका वैज्ञानिक अध्ययन करके उसे ' आर्य परिवार ' के अन्तर्गत मानते हैं। वैसे, साधारण दृष्टिसे देखनेपर दोनों वादोंमें सत्यका आंशिक रूप दिखाई देता है। सम्भव है कि तेलुगु यहाँकी कोई देशी भाषा रही होगी जिसका तमिल, मलयालम और कन्नड़से सम्बन्ध रहा होगा और बादमे इस देशके विदेशी शासकोंकी मातृभाषा (सम्भवतः कोई प्राकृत) का इसपर प्रभाव पड़ा होगा और दोनोंके सम्मिश्रणसे वर्तमान तेलुगुका रूप स्थापित हुआ होगा। यहाँकी संस्कृतिमें जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण (अथवा आर्य और द्रविड़) का सम्मिश्रण दिखायी देता है, वैसा ही सम्मिश्रण भाषाके सम्बन्धमें भी हो जाना असम्भव नहीं है।

भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण

१. वर्णमाला :

(१) तेलुगुकी वर्णमालामें प्रायः वे सभी स्वर और व्यञ्जन पाये जाते हैं जो हिन्दीमें है। इन सामान्य अक्षरोंके अतिरिक्त " ए " और " ओ " के ह्रस्व रूप भी तेलुगुमें मिलते हैं जो कि हिन्दीमे नहीं हैं।

(२) हिन्दीका अर्धानुस्वार अनुनासिक का सूचक है। पर तेलुगुमें ऐसा कोई ध्वनि चिह्न नहीं है। तेलुगुके अर्द्धानुस्वारका उच्चारण नहीं होता। वह केवल पूर्णानुस्वारके लुप्त होनेका सूचक मात्र है।

(३) तेलुगुमें साधारण "र" और " ल " के अतिरिक्त एक नया अक्षर* है जो 'र' का तीव्र रूप है पर 'र्' नहीं। एक और नया अक्षर मराठी ' ळ ' के समान है। हिन्दीकी कला, महिला और मुरली तेलुगुमे कळा, महिळा और मुरळी बन जाती हैं।

(४) ए, औ, श, ष, आदि कतिपय वर्णोंके तेलुगु और हिन्दी उच्चारणमें भी अन्तर पाया जाता है। ' च ' और ' ज ' का दन्त्य उच्चारण भी होता है, जिसे ' च ' और ' ज ' पर एक विशेष चिन्ह लगाकर प्रकट किया जाता है।

तेलुगुमें ' ऋ ' का उच्चारण, हिन्दीके विपरीत, ' रि ' की तरह होता है।

---

* चूंकि हिन्दीमें इससे मिलता जुलता कोई अक्षर नहीं है इसलिए इसको अपने मूल रूपमें नहीं दिया जा सका।

२. शब्द :

(१) तेलुगुके सभी शब्द अजन्त (स्वरान्त) होते है; हिन्दीकी तरह हलन्त नहीं। यह प्रकृति यहाँ तक बढ़ जाती है कि विदेशी शब्द भी स्वरान्त बनकर ही तेलुगुमें प्रयुक्त होते है। जैसे:—स्कूलका स्कूलु; बाजारका बजारु बनना।

(२) तेलुगुके शब्दोंमें हर अक्षर का स्पष्ट और पूरा उच्चारण होता है। पर हिन्दी में "शबनम" में 'बकार' हलन्त उच्चरित होता है।

(३) हिन्दी और तेलुगुमें सयुक्ताक्षर लिखनेके ढग में भी काफी अन्तर है। हिन्दीमें पहला अक्षर आधा लिखा जाता है और दूसरा अक्षर पूरा। तेलुगुमे पहला अक्षर पूरा लिखा जाता है और दूसरे अक्षरका चिह्न मात्र।

(४) सन्धिकी प्रवृत्ति तेलुगु शब्दोंमें अधिक है। तेलुगुमें वाक्यके मध्यमे कभी स्वरका प्रयोग स्वतन्त्र रूपसे नहीं हो सकता। वह स्वर, अपनेसे पहले के व्यञ्जनके साथ, सन्धिके नियमोके अनुसार, मिल जाता है। यह भाषाकी प्रकृति-सी बन गया है। किसी भी शब्दको किसी दूसरे शब्दसे जोड़ना हो तो किसी ध्वनिका लोप होगा, या आगम होगा या आदेश। हिन्दीमें यह बात नही है। किसी शब्दके कारण किसी दूसरे शब्दमें विकार उत्पन्न नहीं होता है। जैसे :—

तेलुगुमें—रामुडु + इचटकु + एप्पुडु + वच्चुनु ? = [रामुडिचटकेप्पुडु वच्चुनु ?]

हिन्दीमें—राम + इधर + कब + आएगा ? = [राम इधर कब आएगा ?]

आजकल तेलुगुमे भी सन्धिको अनावश्यक समझा जा रहा है। शिष्ट व्यवहारमें भी विसंधिको मान्यता मिल रही है।

३. शब्द-भेद :

(१) हिन्दीकी भाँति तेलुगुमे भी संज्ञा, सर्वनाम, विशषण आदि आठ प्रकारके शब्द-भेद पाये जाते है। संज्ञाको तेलुगुमें "नामवाचक" का नाम दिया गया है।

(२) तेलुगु और हिन्दीमें संज्ञाके दो ही वचन है और सात कारक है (सम्बोधनको छोड़कर)। हिन्दीमें सज्ञाके पुल्लिग और स्त्रीलिंग दो ही प्रकार माने गए है। तेलुगुमे नपुसक लिंग भी है। पुरुष अथवा देवतावाची शब्दोंको महत्वाचक और उनके स्त्री वाचक शब्दोंको महतीवाचक मानते हैं, अन्य तिर्यक् और जड़वाची सभी शब्द अहमत्वाची है। आजकल पुं. स्त्री. नपुंसक के भेदको माननेकी ओर अधिक झुकाव है।

लिंग निर्णयकी समस्या हिन्दीमें जटिल है। तेलुगुमें ऐसी कोई समस्या ही नहीं है। चेतन और अचेतन और स्त्री-पुरुषका अन्तर स्पष्ट है और इसी आधारपर संज्ञाओंके लिंग निर्धारित किए जाते हैं।

हिन्दीमें अन्य पुरुष सर्वनामका लिंग भेद क्रियाके रूप द्वारा ही जाना जा सकता है जबकि तेलुगु में अन्यपुरुष सार्वनामिक शब्दोंमें लिंगके अनुसार भेद हैं। यथा हिन्दीका 'वह' अँग्रेजीके That, He, She or It के लिए प्रयुक्त होता है, तो तेलुगुमें 'अदि', 'वाड्', 'आमे' अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं।

उत्तम पुरुष बहुवचन (हम) के दो रूप हैं, 'मनमु' और 'मेमु'। 'मनमु' में वक्ता श्रोताको भी अपनेमें मिला लेता है तो 'मेमु' में केवल वक्ता विद्यमान रहता है। यह वैशिष्ट्य द्रविड़ परिवारकी सभी भाषाओंमें पाया जाता है पर आर्य परिवारकी भाषाओंमे नहीं। इसीके वजनपर बोलचालकी हिन्दीमें 'अपन' शब्दका प्रयोग होता है और मराठीमें 'आम्हीं' तथा 'आपण'

विभक्तियोंके आगमनसे सर्वनामोके रूपमें परिवर्तन दोनों भाषाओंमें पाया जाता है।

तेलुगुमें निजवाचक 'अपना' प्रयोग नहीके बराबर है। केवल अन्य पुरुषमे ही इसका प्रयोग दिखाई पड़ता है।

तेलुगुमें सम्बन्धवाचक 'जो' का प्रयोग तो होता ही नहीं। यह प्रयोग इस भाषाकी प्रकृतिमें नहीं है।

(३) हिन्दीकी भाँति तेलुगुमें भी क्रियाके तीन मुख्य काल माने गय है—भूत, वर्तमान और भविष्य। किन्तु इन तीन कालोंके अवान्तर भदोंमे थोड़ा बहुत अन्तर दिखायी देता है। तेलुगुका वर्तमान काल हिन्दीके तात्कालिक वर्तमान कालके समान है। हिन्दीका सामान्य वर्तमान तेलुगुमें तद्धर्मकालमें माना जाता है। सामान्य भूत और सामान्य भविष्यत्को छोड़कर भूत और भविष्यत् के अन्य प्रकार तेलुगुमें प्रयुक्त अवश्य होते हैं; पर इन क्रियाओंके विशष रूप नहीं है। समापक और असमापक क्रियाओंके पारस्परिक सहयोगसे य सभी रूप बन जाते है।

तात्विक दृष्टिसे देखनपर तेलुगुमें क्रियाका विशष महत्व नहीं है। सर्वनाम और क्रियाजन्य विशषणका सम्मिश्रित रूप ही क्रियाका रूप धारणकर लेता है। उदाहरणार्थ—

रामुडु वच्चु-चुन्नाडु [राम आ रहा है।]

इस वाक्यमे 'वच्चुचुन्नाडु' क्रिया है। पर इसका विच्छेद करनेसे 'वच्चुचुन्न वाडु' (आता हुआ वह) हो जाता है। इसमें 'आता हुआ' (क्रियाजन्य विशषण) और 'वह' (सर्वनामका) सम्मिश्रित रूप ही 'वच्चुचुन्नाडु' है। इसीका भूतकालिक रूप 'वच्चिनाडु' (वच्चिन वाडु) वर्तमान रूपसे अधिक भिन्न नहीं है। 'वच्चु' ['आ'] धातुका वर्तमानकालिक रूप 'वच्चुचुन्नु' भूतकालिक रूप 'वच्चिन' बन जाता है। अतः क्रियाके अन्तमे कोई परिवर्तन नहीं होता है। क्रियाजन्य विशेषण का रूप बदल जाता है। यह बात हिन्दीमे नही है।

हिन्दीमें लिंगके अनुसार क्रियाका रूप बदल जाता है। पर तेलुगुमे केवल अन्य पुरुषकी क्रियाओंके इस प्रकार रूप बदल जाते है।

हिन्दीमें क्रियाके तीन वाच्य होते है—कर्तृ वाच्य, कर्म वाच्य और भाव वाच्य। पर तेलुगुमें भाव वाच्यका प्रयोग नहीं होता।

लिंग-वचनके अनुसार विशेषणोंमे कोई परिवर्तन नही होता। पर हिन्दी और तेलुगुमे क्रमकी भिन्नता है। हिन्दीमें 'बाईस' [twenty two नही two twenty] है पर तेलुगुमे 'इरुवदिरेंडु' [बीस दो] होता है।

(१) हिन्दी और तेलुगुके वाक्योंमें शब्दोंका क्रम अेक ही विधानके अनुसार होता है---कर्त्ता, कर्म और क्रिया। पर तेलुगुके वाक्योंमें क्रियाका होना अनिवार्य नहीं है। उदा. रामुडु मंचिवाडु [राम अच्छा है।]

(२) तेलुगुमें सम्बन्ध वाचक सर्वनामके अभावके कारण प्रायः वाक्य रचना सरल ही हुआ करती है। हिन्दीके मिश्रित या संयुक्त वाक्योंकी रचना तेलुगुके उपयुक्त नहीं है।

(३) परोक्ष कथनमे तेलुगुकी वाक्य रचना हिन्दीसे बिलकुल उलटी होती है।

४. शब्द-भण्डार :

तेलुगुकी शब्दावलीके चार विभाग किये जा सकते है---तत्सम, तद्भव, देशी (देशज) और विदेशी। दक्षिणकी भाषाओंमें संस्कृतसे अधिक शब्दोंको आत्मसात् करनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है। तेलुगुमें इसकी मात्रा अधिक है। लेकिन संस्कृतके कुछ ऐसे शब्द है जो हिन्दी और तेलुगुमे सामान्य रूपसे प्रयुक्त होनेपर भी भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं। उदाहरणके लिये "प्रपंच" शब्दका प्रयोग हिन्दीमें 'छल-कपट' के अर्थमें होता है जब कि तेलुगुमे 'ससार' के अर्थमे होता है। इसी प्रकार 'आलस्य' का अर्थ हिन्दीमे सुस्ती है और तेलुगुमें 'विलम्ब'। उपन्यास, अनुमान, चेष्टा, विचार आदि शब्दोके इन दो भाषाओंमें अलग-अलग अर्थ होते है।

५. भाषाकी व्यापकता और परिवर्तनशीलता :

तेलुगुकी अपेक्षा हिन्दी अधिक व्यापक और परिवर्तनशील है। हिन्दीका क्षेत्र विस्तृत है और तेलुगुका सीमित। दोनों भाषाओंमें साहित्य-रचनाका आरम्भ करीब-करीब एक ही समयपर—ग्यारहवीं शताब्दीमें हुआ था। पर, आजकी तेलुगु और ग्यारहवीं शताब्दीमें नन्नयाके द्वारा प्रयुक्त तेलुगुमें अधिक अन्तर या परिवर्तन नहीं दिखाई देता। परन्तु हिन्दीमे 'पृथ्वीराज' रासोकी भाषा 'कामायनी' की भाषासे एकदम भिन्न है। इसका कारण शायद क्षेत्रका विस्तार और अन्य भाषाओंका प्रभाव हो है।

६. भाषाकी विशेषता :

तेलुगु भाषामें नाद सौन्दर्यका विशेष आकर्षण है जो कि ब्रजभाषामे पाया जाता है। यही कारण है कि तिरुवायूरकी तमिल भाषाके वायु-मण्डलमे पलकर भी सन्त त्यागराजने अपने गीतोंकी रचना तेलुगु भाषामे की थी। इस प्रकार संगीतके माध्यमसे त्यागराजने सुदूर दक्षिणमें भी तेलुगुको प्रतिष्ठित किया है। सकार, लकार और नकारका अधिक प्रयोग होनेके कारण इसमें सरसता, लालित्य और नवनीत जैसी कोमलता पायी जाती है। इस भाषाके माधुर्यके कारण ही किसी विदेशी यात्रीने इस भाषाकी प्रशंसा 'Italian of the East' कहकर की है।

दक्खिनी हिन्दी

"पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी संयुक्त प्रदेश (आर्यावर्त्तके जिस भागका पुराना नाम 'मध्यदेश' था तथा आजकल जिसे 'पछाँह' कहते है) से तुर्कों द्वारा उत्तर भारतकी विजय कर लेनेके बाद ईसाकी चौदहवीं शतीसे भाग्यान्वेषी सेनानी तथा वणिक्जन दक्खिन (महाराष्ट्र, तेलंगाना और कर्नाटक) में अपना आसन जमाने

लगे। इन लोगोंमें यद्यपि दिल्लीके तुर्क सुलतानोंसे प्रेरित या पोषित पञ्जाबी और पछाँही भारतीय भारतीय मुसलमान ही नेतृत्वमें थे फिर भी स्थानीय राजपूत, जाट, वनिया, कायस्थ आदि जातियोंके हिन्दुओं की संख्या भी कम नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगोंमें पूर्वी पंजाब और पछाँहके गूजरोंकी संख्या अधिक थी; क्योंकि दक्खिनी हिन्दीको उसके कवि लोग 'भाका' या 'भाखा' बोलते थे और 'गूजरी' नाम भी देते थे। उत्तर भारतमें उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम या भारतीय-ईरानी एक नवीन मिली-जुली सभ्यता की नींव डाली गई थी। दक्खिनमें बसे हुए उत्तर भारतीय पंजाबी और पछांही मुसलमान, जो अपनी क्षात्र-शक्ति, प्रसार-शक्ति तथा अधिकार-शक्ति के कारण वहाँके एक नवीन अभिजात समाजके लोग बने, उत्तर भारतसे जिस लोक-साहित्यको अपने साथ ले गए थे, उसीके आधारपर, इसलामी सूफी-दर्शन और रहस्यवादका रंग उसपर चढ़ाकर, एक अभिनव साहित्य-शैलीका प्रवर्त्तन करने लगे। मुस्लिम धर्म-गुरुओंके अत्यधिक प्रभावके कारण यह भाषा अरबी लिपिमें लिखी जाने लगी। ...... इस साहित्य-शैलीका शाब्दिक, तात्विक और तथ्य विषयक ढाँचा उत्तर भारतके सन्त साहित्य जैसा ही था।..... हम दक्खिनी साहित्यको उर्दू तथा हिन्दीके खड़ी बोलीसे सम्बन्धित साहित्यका आदि रूप कह सकते हैं। यह साहित्य धारा वर्तमान हिन्दी और उर्दू साहित्यका उत्पत्ति स्थान है। उत्तर भारतसे दक्खिनमें जाकर यह प्रौढ़ बना फिर समग्र उत्तर भारतपर, दिल्लीकी भाषाके सहारे, इसका प्रभाव फैला।"

—डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

सर्वश्री नासिरुद्दीन हाश्मी, डॉ. सैयद मुहीउद्दीन क़ादिरी 'जोर', श्री अब्दुल क़ादिर सर्वरी, डॉ. श्रीराम शर्मा, डॉ. राजकिशोर पाण्डेय, श्री बृजबिहारी तिवारी आदिके सतत प्रयत्नसे दक्खिनीका हिन्दी साहित्य पर्याप्त मात्रामें प्रकाशमें आया है और आता जा रहा है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा' और डाक्टर बाबूराम सक्सेनाकी 'दक्खिनी हिन्दी' भी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

ख्वाजा बन्देनवाज़ (१३४३ ई.) दक्खिनी हिन्दीके प्रथम कवि माने जाते है। 'चक्कीनामा' (पद्य) 'मेराजनामा' (गद्य) से पारा (गद्य) इनकी पुस्तकें है। इनकी कविताका एक नमूना लीजिए—

'देखो वाजिद[1]' तनकी चक्की। पीड चातुर होके सक्की[2]।
सौकन इब्लिस[3] खिच खिच थक्की। के या बिस्मिल्ला अल्ल हो[4]।।'

दक्खिनी हिन्दीके आदिकाल (१४००–१५०० ई.) के लेखकोंमें शाहमीराँजी, अशरफ, बुरहानुद्दीन जानम, एकनाथ, शाहअली, मुल्ला वजही आदि प्रसिद्ध है। दक्खिनी हिन्दीका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सबरस' के लेखक हैं वजही। वजहीके दो काव्य ग्रन्थ मिलते है। 'कुतुबमुश्तरी' (१६०९ ई.) में बंगालकी राजकुमारी मुश्तरी और अपने सरक्षक इब्राहीम कुतुबशाहके उत्तराधिकारी मुहम्मद कुल्ली कुतुबके काल्पनिक प्रेमका वर्णन किया है। 'सबरस' वजही की मौलिक कृति नहीं मानी जाती किन्तु वह अपने कवित्वपूर्ण गद्यके कारण विशेष महत्व रखती है।

---

१. विहित २. सखी ३. शैतान ४. हे भगवान

'दखिन सा नहीं ठार[1] संसारमें। निपज[2] फ़ाज़िलाँ[3] का है इस ठारमें ॥
दखिन[4] है नगीना अगूठी है जग। अंगूठी कूं हुर्मत[5] नगीना ही लग[6] ॥
दखिन मुल्क कूं धन अजब साज है। कि सब मुल्क सिर होर[7] दखिम ताज है ॥
दखिन मुल्क मौते घ[8] खासा अहै। तिलगाना उसका खुलासा अहै ॥'

'सबरस' की कथा 'किस्सेकी असल' पर आधारित है। इसमे रूपकके द्वारा 'तसव्वुफ' की बातें बयान की गई है। कथारम्भका एक अंश उदाहरण के रूपमें देखिए:—

'एक शहर था। उस शहरका नाँव सीस्तान। उस सीस्तानके बादशाहका नाँव अकल। दीनो दुनियाका तमाम काम उसते चलता। उसके हुकुम बाज[9] जर्रा[10] कई नै हिलता। उसके फ़रमाये[11] पर जिनों[12] चले, हर दो जहां[13] में होय भला।

दक्खिनी हिन्दीके मध्यकाल (१५००-१६५७ ई.) के प्रसिद्ध लेखकोंमे मुहम्मद कुल्ली, अब्दुल, अमीन, तुकाराम, अब्दुल्ला कुतुब, रुस्तमी, निशाती आदि है। उत्तर काल (१६५७-१८४० ई.) के लेखकोंमे नस्राती, तबई, गुलाम अली, वली दकनी, वली वेल्लोरी, हाशिम अली आदि प्रसिद्ध है। वलीकी रचनाका एक नमूना लीजिए:—

"बिरागी जो कहाते हैं उसे घर बार करना क्या।
हुई जोगिन जो कोई पी की उसे संसार करना क्या ॥
जो पीवे पिर्त (प्रीत) का पानी उसे क्या काम पानी सों।
जो भोजन दुखका करते हैं उसे आधार करना क्या ॥"

दक्खिनी हिन्दीकी कुछ अपनी कहावते भी है जिनपर प्रान्तीय भाषाओंका प्रभाव स्पष्ट है। कुछ कहावते य है—

१. अपना सुन्दर दूसरोंका जगली बन्दर।
२. मुँहका मीठा हाथका झूठा।
३. खिला तो फूला नही तो धूल आदि।
४. सौ गज वारूं एक गज न फाडूं।
५. जैसा सूत वैसी फेटी, जैसी माँ वैसी बटी।
६. किसीको तवेमे दीख, किसीको आरसीमे।

इसमें पहेलियोंकी बुझौवल भी मार्केकी होती है। नमूना देखिय:—

इन्ने सरके टिल्लूमियाँ
गज भरकी दुम

---

१. ठौर २. उपज ३. निपुण ४. दक्षिण भारत ५. इज्जत (महत्व) ६. तक ७ और ८. बहुत ही।
९. बिना १०. कण-कण ११. आज्ञा देन १२. जो १३. लोक।

भाग गये टिल्लूमियाँ
सपड़ गई दुम
—(सूई)

हरी गुंबज सुफेद खाने
उसमे बैठे सिद्दी दिवाने
—(सीताफल)

आहाकी थैलीमें ऊहूके दाले
—(मिर्च)

दक्षिणमें बहमनी राज्यकी स्थापना गोलकुण्डाके साहित्य-रसिक कुतुबशाही राजाओके समय से ही, आन्ध्र प्रदेशमें, खासकर तेलगान प्रान्तका सम्बन्ध 'दकनी' भाषासे था। १६ वीं शतीके आस-पास के काव्योंमें कुछ उर्दूके शब्दोंका प्रयोग हुआ है। 'खबर' शब्द 'कबुरु' बन ठठ तेलुगुका शब्द बन गया है। 'मछिलीपट्टणम' जो किसी जमानेमें प्रसिद्ध बन्दरगाह था, 'गाह' का लोप होनेपर 'बन्दर' के नामसे ही प्रसिद्ध है। इस प्रकार 'दकनी' या 'हिन्दुस्तानी' के रूपमे ही सही, दक्षिण भारतमें हिन्दीका व्यवहार, विचारोंके आदान-प्रदानके साधनके रूपमें लगभग १५–१६ वीं शताब्दीसे होने लगा था।

तजाऊर १६–१७ वीं शतीमें तेलुगु साहित्यका केन्द्र बना हुआ था। विजयनगर साम्राज्यके पतनके बाद तेलुगुको सुदूर दक्षिणके रियासतोंमें ही आश्रय मिला। तेलुगु नायक राजाओके शासन कालके बाद तंजाऊर पर मराठोंका शासन स्थापित हो गया। उनकी मातृभाषा ठहरी मराठी, प्रान्तकी भाषा रही तेलुगु, फिर भी इन मराठी शासकोंने तेलुगु साहित्यकी अनन्य सेवा की है।

भोसलावंशके मालोजीके पौत्र एकोजीके पुत्र महाराज शाहजी (सन् १६८४–१७१२) अपने साहित्य-सेवाओंसे तेलुगु साहित्यमे चिरस्मरणीय स्थानके अधिकारी बन गए है। संगीत और साहित्यके सुन्दर संगम के समान शहाजीने तेलुगुमे लगभग बीस 'यक्षगान' लिख है। इनके अतिरिक्त मराठीमे 'लक्ष्मीनारायण कल्याण' नामसे और हिन्दीमें 'राधाबनसीधर विलास नाटक', और 'विश्वातीत विलास नाटक' नामसे दो 'यक्षगान' लिख है। इन हिन्दी 'यक्षगानों' की चार पाण्डुलिपियाँ प्राप्त है जिनमें तीन तेलुगु लिपिमें है तो एक देवनागरी लिपिमें। "हिन्दीके नाटय साहित्यके एक विशिष्ट अंगका निर्माण करनेका गौरव शहाजीका है और इन प्राचीन कृतियोंके रक्षण करनेका यश 'सरस्वती महल' के पोषकोंका ही है।" इन यक्षगानोंकी एक और विशषता है; वह है कि हिन्दी भाषाको कर्नाटक रागरागिनियोंमे निबद्ध करनेका सफल प्रयास। भाषाके उदाहरणके लिए 'राधाबनसीधर विलास' नाटकसे एक गीत उद्धृत किया जाता है:—

"सखि संध्या राग अरून सुहावे।
माणिक्य जैसो वारुनि अबल मानु।
गिरिपर नाथ धुडति कर लिय दीप श्रेणि जो ऐसे सुहावति ॥ १ ॥
कमलिनी नाथ रुठ गया कहकर मुख म्लान होती।
कुमुदिनी नाथागमन सुन मुख स्मित पूर्ण होती ॥ २ ॥

खग देखो सब श्रेणी बादके अपने घर चाले है।
चकई नित्र वियोगसे कामिनी ताज फिरे ॥ ३॥"

महाराष्ट्र प्रान्तसे नाटक कम्पनियोंने सन् १८८० और १८८५ मे आन्ध्रदेशमें भ्रमणकर कई नाटकों का अभिनय किया। इन नाटकोंकी भाषा टूटी-फूटी हिन्दी ही होती थी। इन नाटक समाजोंने जो महत्वपूर्ण कार्य किया, वह यह कि यहाँकी जनताको नाटक रचना और प्रदर्शनकी ओर आकृष्ट करनेके अतिरिक्त जनता में हिन्दी भाषाके प्रति भी रुचि पैदा कर दी।

मछिलीपट्टणमके 'नेशनल थियेट्रिकल सोसाइटी' ने १८८६ से प्रारम्भ कर लगभग १०-१५ वर्षो तक हिन्दी नाटकोंको अभिनीत करवाया। इन हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाटकोंके प्रणेता थे श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि। स्वनामधन्य इस महापुरुषने सन् १८८६-८८ तक ३२ हिंदी नाटक लिखे है। पर दुर्भाग्यवश अब ६ नाटक सम्पूर्ण रूपमें और ८ नाटकोंके गीत मात्र उपलब्ध है। ये सभी नाटक तेलुगु लिपिमे लिखे गए है। अभी इन नाटकोंपर शोधकार्य चल रहा है और आशा है कि निकट भविष्यमें दक्खिनी हिन्दी के गद्य साहित्यकी एक विस्तृत कड़ीका सुष्ठु रूप दृष्टिगत होगा और हिन्दीके नाटक साहित्यके अज्ञातप्राय पक्षपर प्रकाश पड़ेगा।

श्री पुरुषोत्तम कविकी भाषाका नमूना लीजिए:—

(**सूत्रधारके वचन गणपतिसे**)—'जगज्जेगीयमान महामहिमांचितौदार्य निवारिताखिलार्तजन दैन्या ! सर्व लोक शरण्या ! प्रथमगण्या ! आप् भक्ताधीन होनेसे, अयिसी दीन्पर, सानुघर हुये है। आप्का सदर्शन कर्नेसे इच्, मै पावन्भी, निर्बिचार भी हुवा हुँ। आज्ञानुवर्ती होनेके लिए कर्ने विज्ञापन ये है:—

(**गुमाश्तेके वचन तानाशाहसे**)—'जी ! हुजूर ! अब्भी कहाँका तहसील्दार ? कहाँका नकद ? सर्कार्के खजानेमे रह्ने, छेलाख रूपें तमाम्, खरच कर्के, वोह् भद्रगिरिपर, श्रीरामदेव् कु, बडा देवलेक, बंदाके, बहुत् कीमत् रह्ने, बहुत्तर हौं की जवाहिरी भि, जल्सा कर्नेमे लायक् होने, बहुत्फसंद्के चीजाँ भि, तय्यार कराके व्हां दाखल्कर्देकर् सारा वस्त्, नींद् भूकका खयाल्भि, छोड्कर वोहि देवल्मे बैठ्के, गीताँ गाते, खुप् पाते, दिवाना सरीक्, है कह्ते।'

उपयुक्त उद्धरण 'श्री रामदासु चरित्र' नामक नाटक के है और श्री भीमसेन 'निर्मल' ने दिए है।

इन नाटकोंके अतिरिक्त और भी हिन्दी नाटक उस समय आन्ध्र प्रदेशमे लिखे गए होंगे पर उनका पता नहीं चल रहा है। आन्ध्रकेसरी श्री टंगटूरि प्रकाशम पन्तुलुने अपनी आत्मकथामें इस प्रकार लिखा है:— 'जब हमारी 'लोवर फोर्त' की पढ़ाई खतम हुई, तब पूना की कंपनी ओंगोल आई। वे हिन्दी नाटकोंका प्रदर्शन करते। तब उन्होंने प्रमीला स्वयंवर, पीश्वा नारायणराव वध, उषा परिणय, कीचक वध आदि नाटकोंका अभिनय करते थे। . . . . उस समय हमारी भी इच्छा हुई कि ऐसे नाटकोंका अभिनय करें। . . . . . हमारी इच्छाको रूप देनेके लिए उस गाँवमें नाटकोंपर जान देनेवाले एक उंडदल्ली साहब थे। . . . . . . उंडदल्ली साहब उर्दूके पंडित थे। वे उर्दूमें ही नाटक लिखते। हम तेलुगु लिपिमें उसे लिखकर, पूरे नाटक कंठस्थ कर लेते। . . . . ।'

इस प्रकार यह स्पष्ट है १५ वीं शतीसे लेकर १९ वीं शती तक आन्ध्र प्रदेशमें हिन्दी-हिन्दुस्तानीका थोड़ा-बहुत व्यवहार होता ही रहा। २० वीं शतीके प्रारम्भमें गांधीजीकी प्रेरणाके बलसे राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीका प्रचार होने लगा और राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे हिन्दीका अध्ययन-अध्यापन होने लगा।

पुरुषोत्तम कवि

आन्ध्र प्रदेशका हिन्दीके साथ सम्बन्ध

भारतकी वाह्य विभिन्नतामें आन्तरिक एकताको प्रतिष्ठित करनेवाली मूल शक्तियोंमें भाषा और साहित्यका महत्वपूर्ण स्थान है। भारतकी प्रायः सभी भाषाओंका साहित्य एक ही प्रकारकी सांस्कृतिक विचार धारासे अनुप्राणित है। इसका प्रधान कारण है यहाँकी विविध भाषाओंके बीचमें निरन्तर चरनेवाला पारस्परिक आदान-प्रदान। विदेशी शासनके पहले आदान-प्रदानका यह सांस्कृतिक कार्य सुर-भारती संस्कृतके माध्यमसे सम्पन्न हुआ करता था। बादमें पालि, प्राकृत जैसी भाषाओंके द्वारा भी यह कार्य बहुत हद तक सम्पन्न हुआ करता था। बादमें अँग्रेजी जैसी विदेशी भाषा भारतके मस्तिष्क मात्रका पोषण करनेमें समर्थ रही। अतः उसके हृदयकी अवहेलना-सी हो गई और फलतः भारतकी सांस्कृतिक एकता तनिक शिथिल होने लगी। पर इधर खड़ी बोली (हिन्दी) ने अपना सिर उठाया है और अब इसीके माध्यमसे भारतीय साहित्यकी एकसूत्रताका पुनरुत्थान सम्भव हो रहा है।

आदान-प्रदानके इस महान् कार्यमें आन्ध्रका पहलेसे ही महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। आपस्तम्ब, हाल, वल्लभाचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ, आदि महर्षियों, मनीषियों तथा मनस्वियोंकी दूरदर्शिताने आन्ध्रको समग्र भारतके साथ मिला दिया है। हालकी 'गाथा सप्तशती'ने हिन्दीमें 'सतसई'की सरस परम्पराको प्रचलित किया था। हिन्दी साहित्यको स्वर्णिम शोभा प्रदान करनेवाली 'कृष्णभक्ति शाखा'को उर्जस्वित करनेका श्रेय श्रीवल्लभाचार्यकी 'नरवचंद्र छटा' को ही है जिसके बिना कविवर सूरदासको 'सब जग माँझ अँधेरो' ही दिखाई पड़ा था। सूरदासने हिन्दी साहित्यको हृदय दिया था तो श्री वल्लभाचार्यने पवित्र गोदावरीसे अभिमिश्रित स्निग्ध एवं स्फीत बुद्धि प्रदान करके ब्रजको सर्वथा परिशुद्ध किया था। इसके पश्चात् अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणमे तैलङ्ग ब्राह्मण 'पद्माकर' भी इसी परम्पराके प्रवर्तकके रूपमें अपना नाम अमर कर गए है।

उपर्युक्त महानुभावोंने जिस कार्यको सास्कृतिक दृष्टिकोणसे सम्पन्न किया था, उसीको सन् १९१८ मे महात्मा गाँधीने राष्ट्रीय रूप प्रदान किया था और भारतकी पतनोन्मुख सांस्कृतिक चेतनाको भाषाके सहारे खड़ा कर दिया था। सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन इन्दौरमें सम्पन्न हुआ था। गाँधीजीने इस अधिवेशनके अध्यक्षीय भाषणमे हिन्दीको अखिल भारतीय रूप प्रदान करके उसका राष्ट्रीय महत्व समझाया था। उस समय तक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागका दृष्टिकोण हिन्दी भाषी प्रान्तों तक ही सीमित था। आगे चलकर दक्षिणमे भी हिन्दीका प्रचार आरम्भ हो गया और मई सन् १९१८ मे साहित्य सम्मेलनका कार्यालय मद्रासमे स्थापित हो गया। महात्मा गाँधीजीके पुत्र देवदासके द्वारा ही राष्ट्रवाणीकी आराधना दक्षिणमें शुरू हुई थी। इसी समयसे राष्ट्रभाषा हिन्दीके साथ आन्ध्रने भी अपना यथाधिक सम्पर्क स्थापित कर लिया है। देवदास गाँधी, रामभरोसे, रामानन्द शर्मा आदिके साथ-साथ हृषीकेश शर्मा, मोटूरि सत्यनारायण जैसे उत्साही आन्ध्र युवकोंने भी राष्ट्रके इस स्पृहणीय कार्यमें स्तुत्य योग दिया था।

इस राष्ट्रीय धाराके साथ-साथ सांस्कृतिक चेतनासे प्रेरित साहित्यिक साधना भी आन्ध्रमें जाग उठी। सर्वश्री जन्ध्याल शिवन्नशास्त्री, ओरुगंटि वेंकटेश्वर शर्मा आदि उदीयमान लेखकोंने राष्ट्रवाणीमें लिखने प्रशंसनीय प्रयास किया था। इस समयको 'जागरण काल' अथवा 'प्रबोध युग' माना जा सकता है। सन्

१९१८ से १९३५ तक यही प्रबोध आन्ध्र के हिन्दी आन्दोलनमें दृष्टिगोचर होता है। सांस्कृतिक समरसता को भारतमें पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिए आन्ध्रने एक सामान्य भाषाकी आवश्यकता महसूस की और यहाँके प्रतिभाशाली लेखकोंने तुरन्त उस कार्यमें सक्रिय तथा रचनात्मक योगदान देना आरम्भ किया था।

सन् १९३६ तक हिन्दीका प्रचार आन्ध्रकी शिक्षित जनतामें किया गया और इसके फलस्वरूप सरकारने भी इनको मान्यता प्रदान कर विद्यालयोंमें भी हिन्दीका प्रवेश कराया। इस प्रकार सन् १९३७ से हिन्दी अध्ययन-अध्यापनका भी विषय बन गयी है। अब प्रचारकों, शिक्षकों तथा लेखकोंकी संख्या बढ़ने लगी। सन् १९३७ से सन् १९४९ तक प्रचारकी लहर आन्ध्रके कोने-कोनेमें फैल गई जिसने हजारों युवकोंको हिन्दी पढ़ने और हिन्दीमें लिखनेकी ओर प्रेरित किया है। तेईस सालकी इस अवधि को 'प्रचार युग' अथवा 'साधना युग' माना जा सकता है। इसी छोटी अवधिमें सर्वश्री राममूर्ति "रेणु" आरिगपूडि रमेश चौधरी, हनुमच्छास्त्री अयाचित, नरसिंहमूर्ति राचकोंड, सूर्यनारायण चावलि आदि कई उदीयमान लेखक आन्ध्रमें तैयार हो गए। इनकी साधनाने आन्ध्रका मुख उज्जवल किया है और सिद्ध किया कि हिन्दी केवल उत्तर भारतकी एक साधारण प्रान्तीय भाषा नहीं है बल्कि वह सारे राष्ट्रकी सम्पत्ति है।

सन् १९५० में हिन्दीने भारतके संविधानमें आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है और तबसे उसका विकास पहलेसे कई गुना अधिक होने लगा है। गद्य लेखक, समालोचक, कवि, नाटककार, कहानीकार और पत्रकार अधिकाधिक संख्यामे अपनी प्रतिभाके बलपर राष्ट्रवाणीको समृद्ध करने लगे है। अतः सन् १९५० से अब तक का यह दशक 'विकास युग' माना जा सकता है।

इस प्रकार आन्ध्र प्रदेशमें हिन्दी साहित्यकी व्याप्तिको 'चार युगों' में विभाजित किया जा सकता है:—

प्राचीन युग : सन् १९१८ से पहले

प्रबोध युग : सन् १९१८ से सन् १९३५ तक

साधना युग : सन् १९३७ से सन् १९४९ तक

विकास युग : सन् १९५० से सन् १९६० तक।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक युगके लेखक अलग-अलग हैं और उनकी प्रवृत्तियाँ एक दूसरेसे भिन्न है। केवल विकासकी दृष्टिसे यह विभाजन किया गया है। वास्तवमे 'प्रबोध युग' की ही प्रवृत्तियाँ 'साधना युग' में और इसी प्रकार 'साधना युग' की प्रवृत्तियाँ 'विकास युग' में परिवर्तित एवं परिष्कृत हुईं। प्रत्येक युग अपने पूर्ववर्ती युगका पूरक तथा परवर्ती युगका पोषक होता है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि एक ही लेखक 'प्रबोध युग' में अपनी साधनाका आरम्भ करके 'साधना युग' और 'विकास युगों' में अपनी रचनाका कार्य जारी रखता है। अतः यह विभाजन तत्कालीन प्रवृत्तियोंपर अधिक आधारित है; लेखकोंपर नहीं।

अब आगे चलकर प्रत्येक युगके प्रमुख लेखकोंकी साहित्यिक सेवाका परिचय दिया जाएगा। यहाँपर इस बातको स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसमें केवल उन्हीं लेखकोंके नाम दिये जा रहे है जो आन्ध्र प्रदेशके निवासी अथवा तेलुगु भाषी होकर हिन्दीमें लिखते है। आन्ध्रमें कई अन्य भाषा भाषी है जो विविध प्रान्तोंसे यहाँ आकर बसे हुए है और जो राष्ट्रवाणीमे साहित्य सर्जन कर रहे है। विस्तारके भयसे इनका उल्लेख इस निबन्धमें नहीं किया जा रहा है, यद्यपि इन सहृदय लेखकोंकी सेवा अत्यन्त स्तुत्य है।

प्रबोध-युग (१९१८–१९३५)

सन् १९१८ के मार्चके महीनेमें गाँधीजीने हिन्दीको राष्ट्रभाषाका रूप मौखिक रूपसे दिया था और दो ही तीन महीनोंमें दक्षिणमें इसका प्रचार भी शुरु कर दिया था। बापूकी इस आत्मीय प्रेरणाने कई प्रतिभाशाली आन्ध्र युवकोंका मन हिन्दी पढ़ने और हिन्दीमे लिखनेकी और आकृष्ट किया। आन्ध्रसे सर्वश्री जन्ध्याल शिवन्नशास्त्री, पीसपाटि वेंकट सुब्बराव, रामकृष्ण शास्त्री आदि उत्तर भारत जाकर हिन्दीका अध्ययन करके वापस आये। इनमेसे श्री जन्ध्याल शिवन्न शास्त्रीका व्यक्तित्व बड़ा जबरदस्त था। राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे श्री मोटूरि सत्यनारायणने हिन्दी प्रचारके बीज जिस प्रकार बोये थे, उसी प्रकार शास्त्रीजी आन्ध्रमें हिन्दी साहित्यके सर्जनकी सञ्जीवनी प्रेरणा सञ्चरित कर गए थे।

उपर्युक्त विवेचनसे यह नही समझना चाहिये कि सन् १९१८ के पहले आन्ध्रोंका ध्यान हिन्दी साहित्यकी ओर आकृष्ट ही हुआ नहीं था। पिछले पृष्ठोंमें स्पष्ट कर दिया गया है कि आन्ध्रका हिन्दी भाषा और साहित्यके साथ दो प्रकारका सम्बन्ध रहा है—राष्ट्रीय और सास्कृतिक। राष्ट्रीय सम्बन्ध सन् १९१८ के बाद ही दृष्टिगोचर होता है। उसके पहले सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे आन्ध्रने हिन्दीको भली-भाँति अपनाया था और इसका उज्ज्वल प्रमाण है पद्माकरकी प्राभातिक काव्य-माधुरी। इसी परम्परामे श्री कृष्णमूर्ति शिष्टु, पुरुषोत्तम नादेल्ल आदि महानुभावोंने अपनी सांस्कृतिक तथा साहित्य-प्रवण प्रकृतिका परिचय दिया था। श्री कृष्णमूर्ति शिष्टुने तुलसीदासके "रामचरितमानस" का पद्यानुवाद तेलुगुमे किया है। अब तक प्राप्य अनुवादोंमे यही 'मानस'का पहला आन्ध्रानुवाद है। दोहे चौपाईके छन्दोंमे यह अनुवाद किया गया है और इस दृष्टिसे यह तेलुगुके छन्दोवैभवको भी बढ़ानेवाला सिद्ध हुआ है। यद्यपि इन छन्दोंका प्रयोग बादके आन्ध्रके लेखकोंने नही किया है। कृष्णमूर्तिने इसका अनुवाद अरण्यकाण्डमे 'मारीच वध' तक किया था। शेषांशका अनुवाद मंडनरहरि नामके सज्जनने पूरा किया। इसका रचना-काल सन् १८८० के लगभग है, जबकि उत्तर भारतमें नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी स्थापना तक नहीं हुई थी। इसी प्रकार श्रीनिवासराव पसुमर्तीका गद्यानुवाद और नरसिंहशर्मा, भागवतुलका पद्यानुवाद भी उल्लेखनीय है। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि आन्ध्रके कवियोंकी दृष्टि सबसे पहले 'मानस' की ओर गई और आज भी कई ऐसे तेलुगु भाषी हैं जो केवल 'मानस' का अध्ययन करनेके लिये हिन्दी सीखना चाहते है। 'मानस'के मधुर वाचक नोमुल अप्पाराव इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

'मानस' के अनुवादकी ओर आन्ध्रके लेखकोंका ध्यान जिस समय आकृष्ट हुआ था उसी समयके लगभग हिन्दी नाटकोंका भी प्रदर्शन आन्ध्रमें होने लगा, जिसकी ओर कई कलाप्रिय युवकोंका मन आकृष्ट हुआ। इनमें नादेल्ल पुरुषोत्तम नामके नाटककारका नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने सन् १८८४ और १८८६ के बीच हिन्दीमे कई नाटक लिखकर रंगमंचपर उनका प्रयोग कराया था। आपके द्वारा रचित तेरह हिन्दी नाटक आज मिलते है। इन नाटकोंकी पाण्डुलिपियाँ इस समय उस्मानिया विश्वविद्यालयके तरुण शोधकर्ता तथा वरंगल आर्ट्स कालेजके प्राध्यापक श्री भीमसेन 'निर्मल' के पास हैं, जो इनका अनुशीलन कर रहे है। कहा जाता है कि आपने कुल मिलाकर ३२ नाटक लिखे थे। अगर ये सब प्रकाशित हो जाएँ, तो अतीतका बहुत-सा अन्धकार आलोकित हो सकेगा।

यह सारा कार्य प्रबोधकालके (अर्थात् सन् १९१८) पूर्व हुआ था। इसी आधारपर आलोच्य कालकी साहित्यिक रचना आगे बढ़ी। आपस्तम्बके समयसे चली आती हुई इस सांस्कृतिक भागीरथीने बीचमे प्राप्त राष्ट्रीय यमुनाको अपनेमे मिला लिया और अब वह समग्र भारतको पावन कर रही है।

युग-साहित्य

गद्यकार :

स्व. शिवन्नशास्त्री (१८९६-१९२९): आप आलोच्य युगके प्रतिनिधि लेखक माने जा सकते हैं। आप तेलुगु, संस्कृत, बंगला और हिन्दीके अच्छे विद्वान् तथा तेलुगु और संस्कृतके सरस कवि थे। आपने डी. एल. रायके बंगला नाटकोंका आन्ध्र भाषामे अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। हिन्दीमें आपने दो कोश तथा दो व्याकरण-ग्रन्थ लिखे थे। 'हिन्दी-तेलुगु-कोश', 'तेलुगु हिन्दी-कोश', 'हिन्दी-तेलुगु व्याकरण' तथा 'ब्रजभाषा व्याकरण' (अधूरा) आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है।

भाषाकी शुद्धता एवं विचारोंकी स्पष्टताको आपने अपने लेखोमें बहुत महत्व दिया था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजीसे आप बराबर सम्पर्क बनाये रखते थे। आप "सरस्वती" में लिखा करते थे। एक लेखमें आपने हिन्दीके लेखकों तथा कवियोंकी अस्पष्ट अभिव्यक्तिपर अपना असन्तोष प्रकट करते हुए लिखा है :—

"आजकल युवक कवि 'मिस्टिक पोइट्री' (रहस्यमय कविता) लिखते है। ये लोग अपने अनुभवके किसी पहलूको लेकर इतनी अस्पष्ट कविता लिखते है कि स्वयं लेखकके सिवा दूसरेकी समझमें वह नहीं आती। इनमें कई तो ऐसे भी लेखक है जो दूसरोंको अपनी कविताका भाव भी नहीं समझा सकते। ऐसी कविताओंसे क्या लाभ है, मै नहीं जानता।"

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीने अपने एक लेख "आजकलके छायावादी कवि और कविता" में इन पंक्तियोंको उद्धृत भी किया है। इससे स्पष्ट है कि आन्ध्रमें हिन्दी रचनाके प्रारम्भिक दिनोंमे रहकर भी शास्त्रीजी हिन्दी साहित्यको दुरुस्त करनेके लिए कितने लालायित थे। इस युगके जितने भी लेखक, प्रचारक और शिक्षक हुये, वे सब शास्त्रीजीकी प्रेरणाके आभारी हैं।

स्व. ओरुगंटि वेंकटेश्वर शर्मा (१९१५–१९५२) : शास्त्रीजीके पश्चात् आपका नाम उल्लेखनीय है। आप भी शास्त्रीजीकी भाँति अल्पायु तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। सन् १९२५ से आपकी हिन्दी सेवा आरम्भ हुई थी। आप काटूर, विनयाश्रम, नेल्लूर आदि कई केन्द्रोंमें हिन्दीका प्रचार करके अन्तमें आन्ध्र विश्वविद्यालयके प्रथम हिन्दी प्राध्यापक बने थे। हिन्दी और तेलुगुका तुलनात्मक अध्ययन करके साहित्यिक समन्वय तथा सांस्कृतिक संगम के महान् कार्यमें आपने बड़ी प्रशंसनीय सेवा की है। तुलनात्मक अध्ययनके आप प्रवर्तक माने जा सकते हैं इन्हींकी प्रेरणा पाकर बादमे 'साधना युग' के राममूर्ति 'रेणु' ने इस परम्पराको बहुत आगे बढ़ाया। आन्ध्रकी सोयी हुई प्रतिभाको आपने जगाया था और इस दृष्टिसे आप 'प्रबोध युग' के प्रतिनिधि लेखक माने जा सकते है। आपने रमण महर्षिकी जीवनी हिन्दीमें लिखी है।

हृषीकेश शर्मा : सन् १९१८ में जबसे दक्षिणमे हिन्दीका प्रचार आरम्भ हुआ था तभीसे आप हिन्दीकी सेवामें तत्पर रहे और कई रूपोंमे आप भारत-भारतीकी आराधना करते रहे हैं। आप स्वयं लेखक है और लेखकोंको प्रेरित करनेवाले भी है। आन्ध्र प्रदेशमें प्रकाशित पहली हिन्दी पत्रिका 'हिन्दी प्रचारक' का सम्पादन सर्वप्रथम आप ही के द्वारा सम्पन्न हुआ था और यही पत्रिका आज 'हिन्दी प्रचार समाचार' के नामसे प्रसिद्ध है। प्रेमचन्द द्वारा सञ्चालित 'हंस' के भी आप कुछ दिनों तक सहायक सम्पादक रहे और बादमें 'राष्ट्रभारती' की सेवामे लग गए। पत्रकारके रूपमें आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय है और इसके जरिए आपकी रचना शक्तिका भी परिचय प्राप्त होता रहा है। आपने जयशंकर प्रसाद, उपेंद्रनाथ 'अश्क' आदि कई प्रसिद्ध हिन्दी लेखकोंकी रचनाओंका तेलुगुमें अनुवाद किया है।

मोटूरि सत्यनारायण : सन् १९२१ से आप गाँधीजीके आदेशपर हिन्दीके प्रचारमें लग गए और आज तक कई रूपोंमें राष्ट्रवाणीकी सेवा करते आ रहे हैं। आपका व्यक्तित्व बहुमुखी है। आप प्रचारकोंमें प्रचारक, शिक्षकोंमे शिक्षक, लेखकोंमे लेखक तथा पत्रकारोंमे पत्रकार है। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा', मद्रासके मुख-पत्र 'हिन्दी प्रचार समाचार' तथा 'दक्षिण भारत' के सम्पादकके नाते अपने हिन्दी साहित्यकी स्तुत्य सेवा की है। 'तेलुगु भाषा समिति', 'भारतीय सांस्कृतिक संघ' तथा अन्य कई सरकारी, गैर सरकारी सांस्कृतिक संस्थाओके आप सदस्य है और इस रूपमें भी आपके व्यक्तित्व ने हिन्दीको लाभान्वित किया है। आपने विद्यार्थियोके लिए उपयुक्त कई पाठ्य-पुस्तकोंकी रचना की है। आपकी 'हिन्दी स्वबोधिनी' का आन्ध्रमे विस्तृत प्रचार हुआ है। कई पत्र-पत्रिकाओमें आप विभिन्न विषयोंपर लेख भी लिखा करते है।

इनके अतिरिक्त दम्मालपाटि रामकृष्ण शास्त्री, उन्नव राजगोपालकृष्णय्या, एस. वी. शिवराम शर्मा, दिनवहि सत्यनारायण आदिके नाम भी आलोच्य युगके गद्यकारोंमें उल्लेखनीय है। सागि सत्य-नारायण और कोमण्डूरि शठकोपम भी इसी युगमे प्रचार-कार्य शुरू कर चुके थे। पर इन दोनोंके द्वारा लिखित शब्दकोश—'शब्दसिंधु' (सत्यनारायण कृत) और 'आन्ध्र-हिन्दी-कोश' (शठकोपम कृत) बादमे प्रकाशित हुए थे।

पद्यकार :

इस युगके पद्यकारोंमें लाजपति पिंगलका नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् १९२१ से आपकी हिन्दी सेवाका आरम्भ हुआ था। आपकी रचनाओंमे 'रामदास' (खण्डकाव्य), 'सुमती शतक' का हिन्दी अनुवाद और 'मीराबाई' (पद्य) प्रसिद्ध है।

कर्णवीर नागेवर राव भी इसी युगके लेखक है। आप संस्कृत, हिन्दी और तेलुगुके माने हुए विद्वान् और कवि है। आप संस्कृतमे अधिक लिखते है। हिन्दीमें आपने कुछ पाठ्य पुस्तकें भी लिखी है।

साधना-युग (सन् १९३६–१९४९)

प्रबोध युगकी रचनाओंने आन्ध्रके कई तरुण लेखकोंमें नई चेतना पैदा कर दी। भाषा और साहि-त्यके प्रसारके लिए बाहरका वातावरण भी अनुकूल होने लगा। पाठशालाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई प्रारम्भ हो चली। हिन्दी पढ़नेवालोंकी संख्या भी बढ़ गई और फलतः हिन्दीमे लिखनेवालोंकी भी संख्या बढ़ने लगी।

इस युगके लेखक गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, समालोचना आदि साहित्यके सभी रूपोंमें अपने हाथ अजमाने लगे हैं। वास्तवमे आन्ध्रमें हिन्दीकी परिनिष्ठित साधना इसी युगमें सम्पन्न हुई है।

प्रबोध युगकी भाँति इस युगमे भी राष्ट्रवाणीके दोनों रूप––राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक––पाए जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे आदान-प्रदानका जो कार्य ओरुगंटि वेंकटेश्वर शर्माने इसके पूर्व शुरू किया था उसे सक्रिय एवं प्रगतिशील रूप प्रदान करनेका श्रेय इस युगके वाराणसि राममूर्ति 'रेणु' को मिला है। इस दृष्टिसे 'रेणु' जी को इस युगकी सांस्कृतिक धाराका प्रतिनिधि लेखक माना जा सकता है। 'रेणु' जीके साथ-साथ आरिगपूडि रमेश चौधरी, आलूरि बैरागि चौधरी, सूर्यनारायणमूर्ति चावलि, नरसिंहमूर्ति राचकोंड, हनुमच्छास्त्री अयाचित आदि कई लेखकोंने इसी सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे हिन्दी मे लिखना शुरू कर दिया है।

इसी प्रकार आलोच्य युगकी राष्ट्रीय धाराके अन्तर्गत वेमूरि आञ्जनेय शर्मा, चिट्टूरि लक्ष्मी नारायण शर्मा, वेंकटाचल शर्मा, रामशेषय्या, चोडवरम आदिने भी राष्ट्रवाणीको समृद्ध तथा सशक्त बनानेमे प्रशंसनीय योग दिया है।

इन दो प्रमुख धाराओके अतिरिक्त शिक्षको तथा प्राध्यापकोंमेसे एक लेखक दल इसी युगमे अपनी समुज्ज्वल सेवाके साथ प्रकट होने लगा है। इस दलके लेखकोंमे जी. सुन्दर रेड्डी, सीतारामय्या आकेल्ल, सुन्दरराम शर्मा कोटा, भगवान इन्नमरायशर्मा आदिके नाम उल्लेखनीय है।

गद्यकार :

प्रबोध युगमे जिन साहित्यिक प्रवृत्तियोंका उद्घाटन शिवन्न शास्त्री और वेंकटेश्वर शर्माने किया था, उन्हीकी अनन्य साधना इस युगके लेखकोंमें पाई जाती है। कविता, उपन्यास, नाटक, एकांकी, समालोचना, निबन्ध, पत्रकारिता आदि साहित्यके प्राय सभी रूप इस युगमें दिखाई देते है । इस युगके गद्यकारोंका परिचय इस प्रकार है :—

राममूर्ति 'रेणु': आप इस युगके गद्यकारोंमे सर्व प्रथम उल्लेखनीय हैं। भारतीय भाषाओंमे और विशेष रूपसे हिन्दी और तेलुगुके बीचमे निरन्तर चली आती हुई साहित्यिक आदान-प्रदानकी परम्पराको आप ही ने इस युगमें प्रतिष्ठित किया है। कविता और नाटक भी आपके प्रिय विषय है। सन् १९५० में आपका एक कविता संग्रह 'विहग गीत' के नामसे प्रकाशित हुआ था। सन् १९५० के बाद आपके कई 'गीति-रुपक', तथा 'कृष्णलीला तरंगिणी', 'गीत शंकरम्', 'नादयोगी त्यागराज', 'महान व्याख्याकार मल्लिनाथ सूरी" आदि आकाशवाणी, हैदराबादके द्वारा प्रसारित हुए है। किंतु ये सभी रचनाएँ सन् १९५० से शुरू होनेवाले विकास कालका प्रतिनिधित्व करती है, आलोच्य कालका नहीं। आपकी इन रचनाओंमें सास्कृतिक अनुसन्धानका एक परिष्कृत रूप दिखाई देता है, जिसके पीछे आपकी पूर्ववर्ती रचनाओंमें झलकनेवाली साहित्यिक साधना छिपी हुई है। आप अभी तेलुगु साहित्य-को हिन्दीमे रूपान्तरित करनेमें जुटे हुए है।

आपकी 'साधना-काल'की रचनाओंमें आन्ध्र देशके 'कबीर-वेमना' सबसे पहली है। सन् १९४६ में आपने इस रचनाका आरम्भ किया था और चार सालके गम्भीर अध्ययनके फलस्वरूप, आपकी यह पहली रचना सन् १९४९ मे प्रकाशित हुई थी। इसके पहलेसे भी आपके कई लेख 'हंस', 'नई धारा', 'राष्ट्र-

भारती', 'सरस्वती', 'आजकल', 'अजन्ता', 'कल्पना', 'अवन्तिका' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं-में प्रकाशित हुआ करते थे। 'नेहरू-अभिनन्दनग्रंथ' में आपका लिखा हुआ 'आन्ध्र-प्रदेशके बौद्ध-केन्द्र' नामक लेख विशेष उल्लेखनीय है। आपके प्राय: सभी लेखोंमें साहित्यिक आदान-प्रदानकी प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। सन् १९५२ में 'साहित्यकार संसद' के द्वारा प्रकाशित 'आदान-प्रदान' आपकी इसी प्रवृत्तिको मुखरित करनेवाले कई लेखोंका संकलन है।

आपकी अप्रकाशित रचनाओंमें 'एक वीरा' (उपन्यास), 'राजा देशिंग', (७०० पद्योंका अनूदित काव्य) और भागवतके कुछ प्रसंग उल्लेखनीय है।

तंजाऊरके ग्रन्थालयमें 'राधा वंशीधर विलास' नामक एक गेय नाटक आपके द्वारा हाल हीमें सम्पादित और प्रसारित हुआ था। सम्पादकके अनुसार हिन्दीका यह पहला गेय नाटक है; जिसकी रचना तमिल प्रान्तके रहनेवाले मराठी भाषी शासक शाहजीने हिन्दीमें की थी और इसकी पाण्डुलिपि तेलुगु लिपिमें है। इस प्रकार आपकी साहित्यिक साधना इस युगमें आरम्भ होकर 'विकास-युग'में आकाशवाणीके माध्यमसे बहुत आगे बढ़ रही है।

आरिगपूडि रमेश चौधरी: आप इस युगके उदीयमान लेखकोंमेंसे एक है और हिन्दीमें मौलिक रचनाके अग्रदूत माने जा सकते है। 'भूले-भटके', 'दूरके ढोल', 'खरे-खोटे' आदि उपन्यास और 'भगवान भला करे' जैसे कहानी संग्रह आपकी साहित्यिक सेवाके ज्वलन्त प्रमाण है। आपकी शैलीमें सरलता और स्निग्धताका सुन्दर सम्मिलन पाया जाता है और आपके विचार बिलकुल सुलझे हुए होते है। आपके उपन्यासोंमें आन्ध्र देशके ग्रामीण वातावरणका सुन्दर चित्रण मिलता है। 'दक्षिण-भारत'का सम्पादन भी आपने काफी समय तक किया है। इस दृष्टिसे आप इस युगके माने हुए पत्रकारोंमेंसे एक है। केन्द्रीय साहित्य अकादमीके लिए आपने तेलुगुके श्रेष्ठ उपन्यास 'नारायणराव' का हिन्दीमें अनुवाद किया है।

हनुमच्छास्त्री अयाचित: आप इस युगके इतिहास लेखकोंके प्रतिनिधि माने जा सकते है। 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' तेलुगुमें और 'तेलुगु साहित्यका इतिहास' हिन्दीमें लिखकर आपने दोनों भाषाओंकी चिरस्मरणीय सेवा की है। आप हिन्दी, तेलुगु, और संस्कृतके पहुँचे हुए विद्वान् है। आजकल अलीगढ़ विश्व-विद्यालयमें हिन्दी भाषियोंको तेलुगु सिखा रहे है।

आलूरि बैरागि चौधरी: आप हिन्दी और तेलुगुके अच्छे लेखकोंमेंसे एक है। हिन्दीमें 'बादलकी रात' और कुछ फुटकल कविताएँ आपने लिखी है। आप प्रमुख रूपसे कवि है और कविताने आपको पत्रकार भी बनाया है। हिन्दी और तेलुगुमें प्रकाशित होनेवाली 'चन्दामामा' पत्रिकाका आपने सम्पादन किया है। बालोपयोगी कविता लिखनेमें आप बड़े कुशल है। तेलुगुमें 'चीकटि-नीडलु', 'नूतिलो गुन्तिकलु', 'दिव्य—भवन', 'त्रिशंकु स्वर्गम' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है।

जी. सुन्दर रेड्डी: आन्ध्र विश्व विद्यालयसे सम्बन्धित महाविद्यालयोंमें हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापकोंमें हिन्दीमें लिखनेकी प्रेरणा आपने दी है। आपकी प्रेरणासे कई लेखकोंने हिन्दीमें लिखना शुरू कर दिया। श्री रेड्डीजी स्वयं अच्छे लेखक भी है। 'साहित्य और समाज', 'मेरे विचार', 'हिन्दी और तेलुगुका तुलनात्मक अध्ययन' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। आप कभी-कभी तेलुगुमें भी लिखते है। दोनों भाषाओंपर आपका अच्छा अधिकार है।

सुन्दर राम शर्मा 'कोटा': संस्कृत-पालि, प्राकृत, फ्रेंच, जर्मन, फारसी और रूसीके अतिरिक्त हिन्दी और तेलुगुके आप विशिष्ट विद्वान् है। हिन्दी और तेलुगुमे आपने कई रचनाएँ की है। भाषा-विज्ञान आपका प्रिय विषय है। 'प्रद्युम्नाभ्युदयम्' नामक संस्कृत नाटकका आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। 'बिहारी सतसई' का भी आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। शिक्षा-शास्त्रके भी आप पहुँचे हुए विद्वान् है। आप जैसे बहु भाषा-पारंगत तथा अध्यवसायी अध्येताको पाकर आन्ध्र गौरवान्वित है।

आञ्जनेय शर्मा 'वेमूरि': आप इस युगकी राष्ट्रीय धाराके प्रतिनिधि लेखक है। आपने कई रचनाओंका तेलुगुमे अनुवाद किया है, जिनमे 'शंबर-कन्या' 'विश्व-रथुडु' 'देवदत्त' उल्लेखनीय है। ये तीनों मुंशीजीकी रचनाओंके अनुवाद है। इनके अतिरिक्त काकासाहेब कालेलकरके 'कला और जीवन दर्शन' का भी आपने तेलुगुमे अनुवाद किया है। हिन्दीमे 'दक्षिणकी कहानियाँ' आपकी प्रसिद्ध रचना है। आत्रेयके 'ईनाडु' का भी आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। हिन्दी और तेलुगुके अतिरिक्त गुजरातीसे भी आपका सम्बन्ध है। पन्नालाल पटेल के 'मलेला जीवा' का आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। शर्माजीने अनुवाद कार्यकी ओर आन्ध्रके कई लेखकोंको भी प्रोत्साहित किया है। इस महत्वपूर्ण धाराके आप प्रतिनिधि एवं प्रवर्तक माने जा सकते है। आपने 'स्रवन्ति' नामक एक तेलुगु पत्रिकाका काफी समयतक सम्पादन किया है और 'दक्षिण भारती' नामक हिन्दी पत्रिकाका भी सम्पादन किया है। पत्रकार और अनुवादक के अतिरिक्त आप अभिनेता भी है। आपने राष्ट्र वाणीके प्रचारमें बहुत बड़ा योग दिया है।

विकास-युग (१९५०-६०)

साधना युगके लेखकोंकी वाङमय तपस्याने इस युगमे रचनात्मक विकासका रूप धारण किया है। इधर पिछले दस सालसे हिन्दीमे आन्ध्रके कई लेखकोंने लिखना शुरू किया है। हिन्दी पढ़ने और पढ़ानेवालोंकी संख्या भी जब बढ़ने लगी तो आवश्यक पाठ्य सामग्रीको प्रस्तुत करनेका प्रयासका भी इस दशकमे बड़ी तीव्र गतिसे होने लगा। समालोचना, तुलनात्मक अध्ययन, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, पत्र-कारिता आदि सभी क्षेत्रोंमें आन्ध्रके तरुण लेखकोंने अपनी कुशल लेखनी चलाई और इस दिशामे आशातीत सफलता भी प्राप्त की है।

पत्रकार:

साधना युगकी भाँति इस युगमे भी गद्य रचनाको पद्य रचनासे अलग करके दोनों धाराओंका पृथक् विवेचन करना सम्भव नही है; क्योंकि इस युगके गद्यकार और पद्यकार अलग अलग नही है। गद्य लिखने वाले पद्य भी लिख रहे है और पद्य लिखनेवालोंका गद्यसे भी लगाव है। पत्रकार और गद्यकार भी इसी प्रकार अलग-अलग नही है। 'शिक्षक' नामकी एक अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी पत्रिकाके सम्पादक दोनेपूडि राजाराव इसके उदाहरण है। हैदराबादसे निकलनेवाली 'कल्पना', 'अजन्ता' और 'मिलाप' आन्ध्र प्रदेशकी हिन्दी पत्रिकाएँ अवश्य है। पर तेलुगु भाषा अथवा साहित्यसे इनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, न इनके सम्पादक ही तेलुगु भाषी है। इधर कुछ दिनोंसे 'नास्तिकवाद'के प्रचारके लिए विजयवाड़ासे 'इनसान'

नामकी पत्रिका निकल रही है जिसके सम्पादक श्री 'लवणम' है। हैदराबादसे आञ्जनेय शर्माके सम्पादकत्वमें इन दिनों 'दक्षिण भारती' नामकी एक पत्रिका निकल रही है। इसके माध्यमसे दक्षिणकी भाषाओंके साहित्य का परिचय हिन्दीमें दिया जा रहा है। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा', मद्राससे निकलनेवाली 'दक्षिण भारत' का भी यही आदर्श है। आन्ध्र मे इन दोनों पत्रिकाओंका काफी प्रचार है। हिन्दीमें पत्रिका सम्पादन करनेका पहला श्रेय पं. हृशीकेश शर्माको मिलना चाहिए जिनके द्वारा प्रदर्शित मगलमय मार्गके अब तक कई अनुयायी बन चुके हैं और बन रहे हैं।

गद्यकार :

अब पत्रकारोंके पश्चात् गद्य लेखकोंका भी स्मरण करना चाहिए। अनुवादक, समालोचक और निबन्ध लेखक जिस प्रकार पूर्ववर्ती युगमें हुए है, उसी प्रकार इस युगमें भी विद्यमान है। साहित्यकी कोई धारा अछूती नही रह गई है। अब यहाँ पर इस युगके कतिपय लेखकोका परिचय दिया जा रहा है :—

कामाक्षीराव ए. सी : सन् १९४४ से आप हिन्दी क्षेत्रमे काम कर रहे है और आपने हिन्दीमें कई पाठ्य पुस्तकोंकी रचना की है। 'हिन्दी-तेलुगु-कोश' के द्वारा आपने हिन्दी सीखनेवाले तेलुगु छात्रोंको लाभान्वित किया है। पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लेख प्रकाशित होते रहते है और आप अच्छे अनुवादक भी है। हालमे आपके द्वारा किया गया 'रंगनाथ रामायण' का हिन्दी अनुवाद बिहार-राष्ट्रभाषा परिषदने प्रकाशित किया है।

नरसिंहमूर्ति 'रायकोंड' : कामाक्षीरावकी भाँति आपका भी सम्बन्ध 'साधनाकाल' से अधिक है। पर आपकी साहित्य सेवाको अभी-अभी उपयुक्त माध्यम मिला है। पिछले दो-तीन सालसे आप आकाश-वाणी, विजयवाड़ामे काम कर रहे है। आप हिन्दी और तेलुगुके माने हुए विद्वान है और दोनों भाषाओंमे कविता भी लिखते है। आपकी रचनाओंमें 'जागृति', 'आर्हतम', 'भारत नाटयम्; 'तटके बन्धन' और 'चित्रनलीय' उल्लेखनीय है। सन् १९३७ से आप हिन्दीकी सेवामे लगे हुए है।

बालशौरि रेड्डी : आन्ध्रके तरुण हिन्दी लेखकोंमें आपका प्रमुख स्थान प्राप्त है। तुलनात्मक अध्ययनकी ओर आपकी विशेष रुचि है। 'पचामृत' नामक आपकी रचना उत्तरप्रदेशकी सरकारके द्वारा पुरस्कृत है। इस पुस्तकमें तेलुगुके पाँच प्राचीन कवियोंकी चुनी हुई रचनाओंका सरस व सरल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। 'शबरी' नामका एक उपन्यास है। 'अटके आँसू', 'तेलुगु की उत्कृष्ट कहानियाँ' * नामसे अनूदित कहानी-संग्रह और 'आन्ध्र भारती' नामका आलोचना ग्रन्थ आपकी हालही की रचनाएँ है। 'आजकल', 'राष्ट्रभारती', 'दक्षिण भारत' आदि कई पत्र-पत्रिकाओमे आपके लेख प्रकाशित होते रहते है। सन् १९४९ से आप हिन्दीमें लिखने लगे है और इतनी कम अवधिमे आपने आशातीत यश व सफलता प्राप्त की है।

भीमसेन निर्मल : आप हिन्दी और तेलुगुके माने हुए विद्वान है और अब तक तुलनात्मक अध्ययन पर आपके लिखे हुए लेखोंकी संख्या सौ से भी आगे बढ़ चुकी है। कई तेलुगु कहानियोंके हिन्दी अनुवाद

---

* तेलुगुके सत्रह उत्कृष्ट कहानीकारोंके इस प्रतिनिधि कहानी-संग्रहको राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धाने दिसम्बर १९६० में प्रकाशित किया है।

भी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। रायप्रोलु सुब्बारावके 'रुप नवनीत' तथा अब्बूरि रामकृष्णरावकी 'नदी सुन्दरी' का आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। ये दोनों ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। मुनिमाणिक्यम् नरसिंहरावके उपन्यास 'दोक्षितुलु' का आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। इल्लिदल सरस्वतीकी 'आणि मुन्यालु' नामक पुस्तकका आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपकी वाङमय-तपस्या अत्यन्त धीर एवं गम्भीर गतिसे चल रही है और भविष्यमें आपसे बड़ी आशाएँ है।

दंडनूडि महीधर: आप हिन्दी और तेलुगुके अच्छे लेखक है। तेलुगुमें आपकी रचना 'मानवुडु मेलुकोन्नाडु' आप की मँजी हुई लेखनीका परिचय देती है। हिन्दीमें आपने कई कहानियाँ लिखी है। आप अच्छे अनुवादक और कवि भी है। आपकी पत्नी मंजुलता भी कहानियाँ लिखती है।

राजा शेषगिरिराव 'कर्ण': आप हिन्दी, तेलुगु और संस्कृतके योग्य विद्वान है और इधर छह-सात सालसे आपने हिन्दीमें लिखना शुरू किया है। 'आन्ध्र साहित्यकी रूपरेखा', 'आन्ध्रकी लोक कथाएँ' और 'आन्ध्रके लोकगीत' आदि आपकी उल्लेखनीय रचनाएं है। आपके पिता कर्णवीर नागेश्वर रावकी सांस्कृतिक निष्ठाने आपके व्यक्तित्वको बहुत प्रभावित किया है और आप आन्ध्रके वर्धमान हिन्दी लेखकोंमेंसे एक है। आपकी रचना 'आन्ध्रकी लोककथाएँ' केन्द्रीय सरकारके द्वारा पुरस्कृत है। आप हिन्दीके भी कवि है।

राधाकृष्णमूर्ति 'वेमूरि': सन् १९४० से हिन्दीके साथ आपका सम्बन्ध रहा है और इधर छह-सात सालसे आप हिन्दीमें अधिक लिखने लगे है। 'देश हमारा', 'रामदास', 'नागार्जुन पर्वत' आदि आपकी रचनाओंमे आपका राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक व्यक्तित्व स्पष्ट होना है। तेलुगु साहित्यकी प्रमुख विभूतियोंका परिचय राष्ट्रवाणीके माध्यमसे देनेमे आप तत्पर है। आपके लेख कई पत्र-पत्रिकाओंमे प्रकाशित होते रहते है। तेलुगुकी 'बुर्रकथा' की शैलीका आपने पहली बार हिन्दीमे प्रवेश कराया है और इसके लिए आपको सरकारके द्वारा पुरस्कार भी मिल चुका है। आप योग्य वक्ता और अनुभवी अभिनेता हैं। आप तेलुगुमें भी लिखते है और दोनों भाषाओंपर आपका समान अधिकार हैं।

उपर्युक्त लेखकोंके अतिरिक्त वर्तमान गद्यकारोंमे मुट्नूरि सगमेशम, आकेल्ल सीतारामय्य, अल्लूरि सत्यनारायण राजु, विश्वमित्र, दोनेपूडि राजाराव, अट्लूरि रामाराव, अडुसुमिल्लि कृष्णमूर्ति, शेख दाऊद, भगवान इन्नमराय शर्मा, पांडुरंगाराव 'मुरली', चिर्रावूरि सुब्रह्मण्यम, कप्पगंतुल सत्यनारायण, बूदराजु वेंकट सुब्बाराव, दयावन्ती आदिके नाम उल्लेखनीय है।

पद्यकार:

जैसे पहले कहा गया है कि इस युगके लेखकोंमे कवियोंको समालोचकोंसे अथवा समालोचकोंको कवियोंसे अलग करके बताना कठिन है। फिर भी कविताकी ओर विशेष रुचि दिखाकर आजकल पद्य-रचना करनेवाले लेखकोंमे वट्टिपर्ति चलपतिराव, बूदराजु वेंकट सुब्बाराव, भगवान इन्नमराय शर्मा, वसन्तराव चक्रवर्ती, चलसानि सुब्बाराव, रामाराव, सूर्यनारायणमूर्ति चावलि, सूर्यनारायण मूर्ति भानु, दुर्गानन्द, केसिराजु नृसिंह अप्पाराव, यलमंचिलि वेंकटेश्वरराव आदिके नाम उल्लेखनीय है।

वट्टिपर्ति चलपतिरावने पेद्दनाके महाकाव्य 'मनुचरित्र' के प्रारम्भिक तीन सर्गोका हिन्दी अनुवाद 'स्वरोचि' के नामसे किया है। पर यह अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

भगवान इन्नमराय शर्माने 'सुमती शतक', 'कुमारी शतक' और 'वेमन शतक' का अनुवाद हिन्दीमें किया है। पहलेके दोनों अनुवाद प्रकाशित है। 'वेमन शतकका' अनुवाद रामाराव और चलसानि सुब्बारावने भी किया है और ये भी दोनों प्रकाशित है।

सूर्यनारायण मूर्ति 'भानु' ने श्री. श्री. की कई कविताओंका हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपने कई गीत भी हिन्दीमे लिखे है।

बूदराजु वेंकट सुब्बारावके दो काव्य-ग्रन्थ 'प्रणय' और 'मृणालिनी' के नामसे प्रकाशित हैं। आपने 'उफान' नामका एक उपन्यास भी लिखा है। आपने 'पारिजातापहरणम' और 'दाशरथीशतकम' का भी अनुवाद किया है।

चावलि सूर्यनारायण मूर्ति मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकारकी कविताएँ लिखनेमें कुशल हैं। आपने 'समझौता' नामका एक नाटक भी लिखा है।

वसन्तराव चक्रवर्ती हैदराबादके रहनेवाले है। आपकी कवितापर जयशंकर प्रसादका जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। प्रसाद के 'आँसू' का बिम्ब ही आपकी 'पीड़ा' है जो हाल ही में प्रकाशित हुई है। 'दृष्टिदान' और 'कर्णका आत्मदान' आपके अन्य काव्य ग्रन्थ है।

दुर्गानन्दने जाषुआके 'फिरदौसी' का हिन्दीमें अनुवाद किया है। हिन्दीकी कई कविताओंका आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है।

कुमारि सुन्दरी और सरगु कृष्णमूर्ति, 'मुरली' आदिकी काव्य साधना भी भविष्यको आशा दिला रही है।

शोध-कार्य

जबसे आन्ध्रके उत्साही विद्यार्थियोंकी दृष्टि हिन्दीके अध्ययनकी ओर आकृष्ट हुई तबसे हिन्दीमें शोध कार्यका भी आरम्भ हुआ। आन्ध्र विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्रथम आचार्य श्री ओरुगंटि वेंकटेश्वर शर्माने पहली बार तुलनात्मक अध्ययनका महत्व तेलुगु भाषी विद्वानोंके सामने स्पष्ट कर दिया था और इसी बीजका पल्लवित रूप हमें 'रेणु' जी जैसे दूरदर्शी लेखकोंकी रचनाओंमें मिला है। इन दोनोंको साहित्यिक साधनाने हिन्दी और तेलुगुकी तुलना तथा हिन्दीमें शोधकार्यकी ओर कई युवकोंको प्रेरित किया है। फलतः हनुमच्छास्त्री अयाचित, पाडुरंगाराव इलयापुलूरि, नरसिंहाचार्य एस. टी. राजन राजू, वेंकट रमण, भीमसेन निर्मल, सूर्यनारायण 'धवल' आदिने अपनी रुचिके अनुकूल विषय चुनकर हिन्दीमे शोध कार्य करना शुरू कर दिया है। राष्ट्रवाणीके विकासमें आन्ध्रके युवकोंके द्वारा प्रवर्तित शोध-कार्य तथा तुलनात्मक अध्ययन की इस परम्पराने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया है। उपर्युक्त शोधकर्ताओंमें पांडुरंगराव 'मुरली' ने सन् १९-५७ में तेलुगु और हिंदीके नाटक-साहित्यकी तुलना करके नागपुर विश्वविद्यालयसे पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है।

शेष शोधकर्ताओंमेंसे नरसिंहाचार्य और वेंकटरमण क्रमशः 'साहित्य और अनुभूति' तथा 'भक्ति साहित्यका सामाजिक मूल्यांकन' पर अपने शोध प्रबन्ध तैयार कर चुके हैं।

राजन राजू हिन्दी और तेलुगुके आधुनिक काव्य साहित्यकी तुलना कर रहे हैं और सूर्यनारायण 'धवल' दोनों भाषाओंके प्रबन्धोंके काव्य-शिल्पकी तुलना कर रहे हैं। भीमसेन 'निर्मल' नादेल्ल पुरुषोत्तम

द्वारा लिखित हिन्दी नाटकोंका अनुशीलन कर रहे है। हनुमच्छास्त्री हिन्दी और तेलुगुके भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्यकी अनेक रूपात्मक साधना आज जो आन्ध्रमें दिखाई दे रही है उसका भविष्य आशासे आप्लावित है। इस विवेचनमें आन्ध्रके उन सभी लेखकोंका उल्लेख नहीं हो पाया है जिनकी मातृभाषा तेलुगु नहीं है। वास्तवमें हृषीकेश शर्मा, रामानन्द शर्मा, व्रजनन्दन, रामभरोसे, डॉ. तेजनारायणलाल, श्रीराम शर्मा, वंशीधर विद्यालंकार, गयाप्रसाद शास्त्री, डॉ. रामनिरञ्जन पाण्डेय, डॉ. राजकिशोर पाण्डेय आदि कई ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने आन्ध्रमें हिन्दीको प्रतिष्ठित करनेमें चिरस्मरणीय योग दिया है। आन्ध्रके हिन्दी लेखकोंका परिचय देना ही प्रस्तुत निबन्धका आशय रहा, अतः इनकी सेवाका यहाँपर उल्लेख करना सम्भव नहीं हो सका है; पर इनकी सेवा सदैव स्मरणीय रहेगी।

इधर आधुनिक कवियोंकी कई काव्य प्रतिभाएँ भी आन्ध्रमें सुन्दर काव्य-साहित्यका सर्जन कर रही है। करीब ४३ कवियोंकी, उनके परिचय सहित रचनाएँ, 'आन्ध्रके हिन्दी कवि' नामक पुस्तकमें संगृहीत की गई है। यह पुस्तक श्री मगनचन्द वेदी, मन्त्री सहकारी जन साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबादकी ओरसे प्रकाशित की गई है। इस पुस्तकमें श्री आर्येन्द्र शर्मा, गयाप्रसाद शास्त्री, रामजीवनलाल, भीष्मदेव शास्त्री, मधुसूदन चतुर्वेदी आदिके अलावा बी. बी. सुब्बाराव तथा श्री चक्रवर्ती की भी कविताएँ है।

कर्नाटककी हिन्दीको देन

प्रो. ना. नागप्पा

कर्नाटककी प्राचीनता

'कन्नड' (कर+नाड < कारु नाडु = काली मिट्टी-प्रधान भूमि) शब्द काफी प्राचीन है। वैसे ही कन्नड़ देश या कर्नाटक या कर्णाटक देशका प्रयोग भी काफी प्राचीन है। कर्णाटक शब्द महाभारतमें प्राप्त होता है। प्राचीन कालमें संस्कृत-काव्योंके पाठनकी शैलियोंका वर्णन करते हुए किसी प्राचीन संस्कृत कविने कहा है कि कर्णाटकी लोग टंकारके साथ संस्कृत-श्लोकोंका उच्चारण करते हैं। इन दिनों भी संस्कृत-पण्डित कर्नाटकमें संस्कृत श्लोक टंकारके साथ ही पढ़ते हैं। उडुपिसे लगे हुए माळ्वे बन्दरगाहमें परशुराम द्वारा स्थापित एक ईश्वर मन्दिर है। इसके बारेमें कहा जाता है कि सारी पृथ्वी कश्यप ऋषिको दानमें दे डालनेके बाद परशुरामने समुद्रको सुखाकर अपने लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी जहाँ वे तपस्या करते रहे। रामायणमें वर्णित किष्किन्धा हम्पी के पास कर्नाटक में ही है। ऋष्यमूक पर्वत भी यहीं है। कहते हैं कि कावेरी (मैसूर नगर से उत्तर की ओर ३७ मीलकी दूरी पर चुंचनकट्टे) में सीताने स्नान किया था। बीजापुर जिलेमें स्थित महाकूटमें अगस्त्यने तपस्या की थी। और इधर ऐतिहासिक काल तक पहुँचते-पहुँचते हम यह पाते हैं कि चन्द्रगुप्त (ई. पू. २९७) मौर्य श्रवण बेळगोळके पहाड़पर अपने धर्म गुरुसे जैनधर्म ग्रहण करके भद्रबाहुकी गुफामें तपस्या करते रहे और वहीं उनका देहावसान भी हुआ था। अशोकके (ई. पू. २८२–२७७) तीन शिला-लेख चित्रदुर्ग जिलेमें विद्यमान हैं। कहते है कि जैन और बौद्ध धर्मों का कर्नाटक देशमें प्रचार था।

कर्नाटक देशका वर्णन

प्राचीन कन्नड़ काव्योंमें कावेरीसे गोदावरी तक कर्नाटकके विस्तारका उल्लेख मिलता है। नृपतुंग (ई. सन् ८१४–८७७) नामक राष्ट्रकूट कविने (जो मानखेटमें राज्य करता था) कन्नड़ देशकी सीमाओंका इस प्रकार वर्णन किया है :—

कावेरियिंद गो—
दावरिवरमिर्द नाडदा कन्नडवोळ् ।
भाविसिद जनपदं वसु—
धावलय विलीन विशद विषय विशेषं ।।

कावेरीसे गोदावरी तक कन्नड़-नाडुका विस्तार था। आजकलकी बम्बई, पुणेके पास तकका महाराष्ट्र, कार्ला और भाजाके गुहान्तर्देवालय—सब कर्नाटकके अन्तर्गत माने जाते थे। पुणेके पास स्थित कार्ला और भाजाके प्रसिद्ध मन्दिर बनवानेवाले दक्षिण कन्नड़ प्रान्तके श्रेष्ठिवर्ग प्रसिद्ध समुद्री व्यापारी माने जाते थे। आज (कर्नाटक) मैसूर राज्यके १९ जिले है—बेळगाम, बीदर, बीजापुर, बळ्ळारी, बैंगलोर, गुल्बर्गा, चिक्कमगळूर, चित्रदुर्ग, कोडगु, हासन, मैसूर, मड्या, रायचूर, दक्षिण कन्नड़ (मंगळूर), उत्तर कन्नड़ (कारवार), धारवाड, तुमकूर, रायचूर और कोलार। पहाड़ भी कर्नाटकमें काफी है। पूर्वाद्रि और पश्चिमाद्रिका मानों सन्धिस्थान है सह्याद्रि, (जि. शिवमोग्गा) जिसके पासका सूर्यास्त (आगुंबेकी उपत्यका 'घाटी' मे) देखने योग्य है। बाबाबुडनगिरि (जि. चिक्कमगळूर) 'काफी' की पैदावारके लिए प्रसिद्ध है। ऊटी (उदक मण्डल) मद्रासके इलाकेमें है फिर भी उदक मण्डलके पहाड़ी लोगोंकी भाषा कन्नड़ है। उनकी भाषा कन्नड़ की विभाषा है। इरुळरु, सोलिगरु (बिळिगिरिरंगका पहाड़—चामराजनगर–जि. मैसूर) के लोगोंकी भाषा, भाषा-विज्ञान, संस्कृति और ऐतिहासिकताकी दृष्टिसे काफी महत्वकी है। कोडगुकी भाषा भी कन्नड़की विभाषा है। जंगली चरवाहे (गड़रिये), इरुळरु, जंगली ग्वाले, हसल लोग, मलेरु, बिळिगिरि रंगके पहाड़पर रहनेवाले सोलिग, नीलगिरि (ऊटी) पहाड़के रहनेवाले तोड़ा लोग, बडग लोग, कोड़गुके एख लोग, दक्षिण कन्नड जिलेके कोरग लोग, कुडिय लोग, दक्षिण कन्नड़ जिलेके कोट लोग, कोया लोग, क्रोड़ा लोग, मुरिया लोग और पनिया लोग कर्नाटकके आदिवासी माने जाते है। इन सबकी अपनी-अपनी बोलियाँ है। वे सब बोलियाँ 'कन्नड़' भाषाके अन्तर्गत ही है। कहते है कि सोलिग लोगोंका मूल पुरुष सोलगय्या था; तोड़ा लोग अपनेको रावणका वंशधर मानते है। बडगा लोग कदाचित् अपनेको पाण्डवोंका वंशज मानते है। जंगली ग्वाले (गोपाल-यादव) देहलीके पाससे मुसलमानोंकी मारसे बचकर मागडि (बैंगलोरके पास) आकर बस गए। दक्षिण कन्नड़की भाषा तुळुभी कन्नड़की ही विभाषा है। दक्षिण कन्नड़के 'तुळुवर' समुद्री राजा थे और पुराने जमानेसे नौका-व्यापारके लिए प्रसिद्ध थे। कर्नाटकका काफी लम्बा समुद्र-तट-प्रदेश पड़ता है। कर्नाटकमें मगळूर, माल्पे, भटकल, कारवार में बन्दरगाह बनाये जा सकते है। इन दिनों 'गोवा' तकको लोग कर्नाटकमे मिलानेकी आवाज उठा रहे है। इस प्रदेशके यानी उत्तर कर्नाटकके कन्नड़ लोग कोंकणी (मराठीकी विभाषा) सीखकर कोंकणी लोग कहलाने लगे है। उत्तर कर्नाटकमे स्थित अंकोलाके पास (गोकर्ण) प्रसिद्ध स्थान या तीर्थ है। इसे परशुराम क्षेत्र कहते हैं। इधर मैसूरसे मंगळूर तक कोई २०० मील बससे जाइए तो प्रकृति इतनी रम्य दिखाई पड़ती है कि दक्षिण कन्नड़ तक उतरते-उतरते हम मानो अपनेको कश्मीरमे पाते है। दक्षिण कन्नड़ और उत्तर कर्नाटकमें काफी मैदान प्रदेश है। हासन, शिवमोग्गा, चिक्कमगळूर, धारवाड़का थोड़ा भाग 'मलेनाड़' या पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ इलायची, काली मिर्च, सुपारी, लौंग के अलावा नारियल (गरी) और काजू पैदा होते है—जो आजकल बाहरी देशोंके साथ व्यापारकी दृष्टिसे मुख्य है। इसके अलावा कर्नाटकमें चाय,

काफी, तम्बाकू, गन्ना, धान, रागी, कपास, बाजरा, (ज्वार) मकई, मिर्च तथा इमली, चन्दन और सागौन जैसे पेड़ पैदा होते है। कोलारमें सोनेकी खानें है। मैदान, मलेनाड, जंगल, बन्दर प्रदेश—ये चारोंके चारों इतने सुन्दर और भरे-पूरे है कि उनकी पैदावारसे देशके लोग मालामाल हो सकते हैं। अभी देशकी उपज और खनिज-सम्पदाकी उन्नति हो रही है। गेरुसोप्पा (जोग) और शिवसमुद्रमें विख्यात जल-प्रपात है जिनसे बिजली उत्पन्न होती है। जोगका (शरावती नदी का) जल-प्रपात करीब १००० फुट गहरा है। ऊपरसे नदीका जल नीचेके खड्डमें गिरते ही कोई ६४० फुट तक जलकी फुहार उठती है। यहाँके प्रकृति गाम्भीर्य और महानताके सम्मुख खड़े-खड़े हम आश्चर्य-चकित हो जाते है।

कर्नाटककी ऐतिहासिकता

कर्नाटकका कोई दो हजार वर्षोका इतिहास प्राप्त होता है। कर्नाटकके राजवंशोंमेंसे मुख्य हैं :— गंग, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसळ, यादव (मैसूर) और विजयनगरके राजा, केळदिके राजा (नायक), और स्वादिके राजघराने। सभी राजा धर्म-सहिष्णु रहे। हैदरअली और टीपू सुलतानने भी हिन्दुओंके मन्दिरोंको जागीरे दी है। कर्नाटक भाषाके साहित्यमे कई राजा स्वयं कवि हो गए है। कर्नाटक भाषा-साहित्यके प्रथम कवि (आदि कवि) 'कविराज-मार्ग' के लेखक नृपतुंग (८१४-८७७) राष्ट्रकूट-राजा थे। राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मान्यखेड़ (मानखेट—जो पुराने हैदराबाद—कर्नाटकमें पड़ता है) कर्नाटकका प्रसिद्ध नगर था। कर्नाटकके लोग वीर, रसिक, सहृदय, काव्य-दोष या गुण तुरन्त पहचाननेवाले माने जाते थे। कवि सम्राट् 'पम्प' (जैन) अरिकेसरि नामक चालुक्य राजाके आश्रयमे पनपा था। इसी आश्रय-दाताका नायकत्व (अर्जुनके नायकत्वकी छायाके रूपमे) पम्प भारतमें वर्णित है। पम्प कविको 'कविता गुणार्णव' भी कहते थे। राजा वैदिक मतावलम्बी था, पर कवि जैन था। वेदव्यासकृत महा-भारत पम्पके हाथों छह महीनोमे 'विक्रमार्जुन विजय' नामक प्रसिद्ध काव्यके रूपमे पुरानी कन्नड़में उतर आया। इस पुस्तकमें 'बनवासि' (कर्नाटकका वह प्रान्त जिसमे चालुक्य लोग राज करते थे।) के प्रकृति सौन्दर्यका ऐसा ही अनूठा वर्णन किया है; यथा :—पंपने आकांक्षा प्रकट की हैं—

"वनवासिके नन्दनवनमें मै अगले जन्ममें कोयल या भ्रमर हो कर पैदा हो जाऊँगा और गाता फिरूँगा।"—पम्प।।

अरिकेसरिकी राजधानी पुलिगेरे कन्नड़ भाषाका केन्द्र माना जाता था। नृपतुगने भी इसी प्रान्तको कन्नड़-भाषाका केन्द्र माना था।

कर्नाटकमें धर्म-समन्वय

जैन, बौद्ध और हिन्दू ब्राह्मण (वैदिक), और लिंगायत, (अवैदिक) सभी धर्मोका कर्नाटकमें प्रचार हुआ था। बेलूर (जि. हासन) का प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर होयसळ राजा विष्णुवर्द्धनके जमानेमें १२ वीं सदीमे बनवाया गया था। यहाँ एक श्लोक खुदा हुआ है जिसमे धर्म समन्वयका आदर्श ही प्रस्तुत है :—

यं शैवाःसमुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हंश्चेह जैनशासनमतिः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलम् श्री केशवः सर्वदा॥

मैसूर नरेशको 'कर्नाटक-रत्न-सिंहासनाधीश्वर' कहते हैं, और शृंगेरीमठके श्री १०८ स्वामीको 'कर्नाटक-सिंहासन-स्थापनाचार्य' के नामसे अभिहित करते हैं।

इससे बढ़कर धर्म-समन्वयका आदर्श क्या हो सकता है! जैनोके मन्दिर और वैष्णव-मन्दिरोंके साथ-साथ शैव मन्दिर भी बेलूर-हळेबीडमें बनाये गए है। श्रवण बेळगोळ (जो मैसूरसे ६७ मील दूर पड़ता है) में १० वीं शताब्दीमें चामुंडरायका बनवाया हुआ श्रवण बेळगोळ पहाड़पर स्थित गोम्मटेश्वर (जिसकी नग्न प्रस्थर-मूर्त्ति एक अखण्ड शिलाके रूपमें आज भी ६० फुट ऊँची खड़ी है) सारे विश्वमें अनोखा है। कला, भक्ति, ऐतिहासिकता, वस्तु और निस्संग भावकी उत्पादनकी दृष्टिसे यह मूर्ति अपने ढंगकी एक ही है। दक्षिण कन्नड़ जिलेमें कार्कळमें और हुणसूरके पास भी ऐसी मूर्तियाँ है; पर श्रवण बेळगोळ की मूर्ति सबसे भव्य है। इसके बनवानेवाले चामुंडराय (९७८ ई.) काफी प्रसिद्ध रहे। आप गंगराज रामचमल्ल (९७७-९८४) के मन्त्री थे। आपने कन्नड़, प्राकृत और संस्कृतमें काव्य-रचना की है। आप कवियोंके आश्रयदाता भी थे। कन्नड़ साहित्यमें जैन कवियोंने साहित्य-धाराका श्री गणेश किया, जिसके बाद ब्राह्मण और वीरशैव कवियोंने अपनी काव्य-धारा जैन काव्य-धाराके साथ मिलाई। गंग राजाओंके कई उपलब्ध शिला-लेखोंसे पता चलता है कि वे हमारे देशके इस प्रदेशमें धर्म-समन्वय-भावसे राज करते थे।

कर्नाटक प्रदेशमें एक भी अखाड़ा ऐसा नहीं जिसमें हनुमान (मारुति) की तस्वीर न रखी गई हो। षण्मुखका एक मन्दिर सोण्डूरमे है। वीभद्र और मारुतिके मन्दिर कर्नाटक भरमें कई जगह पाए जाते हैं।

चालुक्य राजाओंकी राजधानी बादामिमें बनशंकरी, 'रट्ट' राजाओंकी राजधानी सवदत्तिमें यल्लम्मा, कृष्ण देवराय आदि 'रायों' की राजधानी (विजयनगरके राजाओंकी राजधानी)में भुवनेश्वरी और मलेनाडके पालक (स्वामी) केळदि वंशके राजपुत्रोंकी इष्ट देवी मूकाम्बिका, मैसूरके राजाओंकी गृह-देवी चामुण्डेश्वरी और शृंगेरीकी श्री शारदा देवीकी उपासना-पद्धतिसे अनुमान होता है कि कर्नाटकमें किसी समय शाक्त मत भी प्रचारमें था। बाळेहोन्नूरुके लिंगायतोके मठमें आज भी सालमें एक बार कुमारी-पूजा की जाती है।

कन्नड़ भाषाका इतिहास

भारतकी वर्तमान भाषाएँ मुख्यतः भारतीय आर्य भाषा परिवार, आस्ट्रिक परिवार (या मुंडा परिवार), द्राविड़ी परिवार तथा तिब्बती-बर्मी परिवारके अन्तर्गत आ जाती हैं। द्राविड़ भाषाएँ न केवल दक्षिण भारतमें ही (आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा केरल राज्योंमें) बोली जाती हैं, बल्कि उत्तर भारतमें भी गोंडावनके प्रदेशमें कहीं-कहीं और बलूचिस्तानमें ब्रहुई नामक बोलीके रूपमें प्रचलित हैं।

गोंडावनके आस-पास गोंडी, बंगालके पश्चिम भागमें कुरुख, सन्थाल परगना जिलेमें माल्तो (राजमहलकी पहाड़ियोंपर बोली जानेवाली राजमहली), उड़ीसाकी पहाड़ियोंपर खोण्ड (या कूई), पूर्व बरारमें कोलामी, पुसद तालुकामें चलनेवाली भीली और चाँदाके आस-पास रहनेवाले गोंडों कीबोली नायकी, प्रधानतया उत्तर भारतकी द्राविड़ भाषाओंके अन्तर्गत मानी जाती है। ये बोलियाँ आस-पासकी आर्य भाषाओंसे इतनी प्रभावित है कि इन्हें पहचानना भी भाषा-विज्ञानियोंके अध्ययनका फल है। इधर डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा का निष्कर्ष है कि कश्मीरमें कुछ व्यापारी लोग वाणिज्य-जगत्में परस्पर एक द्राविड़ बोली काममें लाते है। यह कुछ इसी प्रकार होगा जैसा कि पुणेके आस-पासके महाराष्ट्रके बच्चे गुल्ली-डण्डा, या गोली खेलते समय कन्नड़के आँकड़ोंका प्रयोग करते है। तात्पर्य यह है कि द्राविड़ भाषाएँ केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित नहीं हैं। भारतमें—भारतके बाहर भी—अन्यत्र भी यत्र-तत्र प्रचलित हैं। देशके अन्य सब प्रदेशोंमें आर्य भाषाएँ चलती है। केवल 'मुंडा' के रूपमें आस्ट्रिक भाषाका चिह्न देशमें शेष रह गया है। असम एवं बर्माकी सरहदपर तिब्बती बर्मी भाषाएँ बोली जाती है।

क्षेत्रफल और बोलनेवालोंकी संख्याकी दृष्टिसे द्राविड़ भाषाओंका काफी महत्व है। नीचे दी गई तालिकासे यह बात स्पष्ट लक्षित होती है :—

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील)	प्रचलित भाषाका नाम	जनसंख्या *
आन्ध्र प्रदेश	१,०५,९६२	तेलुगु	३,५९,७७,९९९
मद्रास (तमिळनाड)	५०,११०	तमिळ	३,३६,५०,९१७
मैसूर (कर्नाटक)	७४,३४७	कन्नड़	२,३५,४७,०८१
केरल	१५,०३५	मलयाळम्	१,६८,७५,१९९
		योग—	११,००,५१,१९६

भारतकी आबादीकी करीब एक चतुर्थांश जनता द्राविड़ भाषा-भाषी है।

भारतीय आर्य भाषाएँ सदियोसे द्राविड़ भाषाओंके द्वारा प्रभावित है। आज भी ईरानी भाषामे वर्त्स्य ध्वनियोंका नितान्त अभाव है। किन्तु भारतीय आर्य भाषाओंमें (जो इन्डो ईरानी कुलसे सम्बद्ध हैं) अत्यन्त प्राचीन कालसे ही—यहाँ तक कि ऋग्वेदकी भाषामे भी—वर्त्स्य ध्वनियोंका प्रयोग मिलता है। सिन्धके आस पास ब्रहुई भाषा (द्राविड़ी) का बोला जाना इस बातकी तरफ सकेत करता है कि वह भाषा मोहनजोदड़ोके आस-पासकी किसी जमानेमें प्रचलित द्राविड़ भाषाओंका अवशेष है। मोहनजोदड़ोकी सभ्यता आर्य सभ्यतासे कहीं प्राचीन है, यह बात निर्विवाद है। फलतः निष्कर्ष यह निकलता है कि द्राविड़ लोग यहाँ आर्योंके भारतमें बाहरसे आनेके पहले (यदि आर्य बाहरसे आए हों तो) या यहाँ व्यापक प्रदेशमें बस जानेके पहलेसे रहे और उनकी अपनी सभ्यता थी। तात्पर्य यह है कि एकदम प्रारम्भिक कालसे ही वर्त्स्य-ध्वनि-बहुला द्राविड़ भाषाओंका आर्य भाषाओंपर प्रभाव पड़े बिना

* १९६१ की जनगणनाके आधारपर।

देशमें न रहा। केवल भाषाकी ही बात नहीं है। शिव, पशुपति या रुद्रकी कल्पना भी द्राविड़ी मानी जाती है। यह सारा प्रभाव-ग्रहण सदियोमे जाकर कुछ इस प्रकारसे हुआ कि जनताको पता ही न चला कि ये परिवर्तन हो रहे है।

केवल ध्वनियोंकी बात ही नहीं--उच्चारणकी प्रवृत्ति तकमे द्राविड़ी प्रभाव देखनेमें आता है। द्राविड़ भाषाओंमे संयुक्त-व्यञ्जनोंके उच्चारणकी अरुचि है। 'चन्द्र' शब्द तमिळमें 'चदिरन्' होगा। ऐसा ध्वनि-परिवर्तन आर्य-भाषाओंमें भी पाया जाता है; जैसे :--

कर्म--करम, धर्म--धरम।

तमिळ भाषाके शब्दगत स्पर्श अघोष ध्वनियोंका घोषवत् उच्चारण नियमन चलता है। इसी तरह 'शोक' का हिन्दीमें 'सोग', भक्त>भकत>भगत चलते है।

द्राविड़ भाषाएँ आर्य भाषाओके क्रिया-चक्रको शिथिल कर गई। द्राविड़ भाषाओंमें प्रायः कृदन्त-घटित क्रियाएँ ही चलती है। तिङन्त क्रियाएँ बहुत कम है। संस्कृतके दस लकारोंमेसे (क्रियाओंसे) प्राकृतपालि-स्तरके बाद अपभ्रंश-काल तक पहुँचते-पहुँचते चार ही लकार रह गए--वर्तमान, भविष्यत् विधि और भूत। भूत एवं वर्तमान कालमें कृदन्तोंका भी प्रयोग होने लगा जैसे:--कुर्वन् अस्मि, पुनरायान् महाकपि:। यही कारण है कि हिन्दीकी क्रियाओंमें लिंग-भेद है, जो संस्कृतमे नहीं है। जैसे :--वह आता है, वह आती है। पर संस्कृतमे 'सः या सा आगच्छति।' तात्पर्य यह है कि द्राविड़ भाषाएँ हमारे देशमें उतनी ही प्राचीन है जितनी आर्य भाषाएँ। यदि मोहनजोदड़ोकी सभ्यतासे द्राविड़ी सभ्यताका सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो द्रविड़ भाषाओंका इतिहास काफी प्राचीन, भारतीय आर्य भाषाओंसे भी पुराना, सिद्ध होकर रहेगा।

तमिळ भाषा द्राविड़ भाषाओंमेंसे सबसे प्राचीन है। द्राविड़>द्रमिड़--दरमिड़--दर्मिळ--दम्मिळ--दमिळ--तमिळ-से पता चलता है कि 'तमिळ' शब्द 'द्राविड़' शब्दसे उत्पन्न है। पर क्या 'द्रविड़' शब्द द्राविड़ी रहा होगा-इसमें सन्देह प्रगट किया जाता है; क्योंकि द्राविड़ भाषामें किसी शब्द के आदिमें संयुक्त व्यञ्जन (असम संयुक्त व्यञ्जन) का उच्चारण नही होता। फिर भला 'द्राविड़' शब्द कैसे उत्पन्न हुआ? क्या यह शब्द स्वयं आर्योका नामकरण तो नहीं है? अपनी भाषाका नामकरण दूसरोके द्वारा होनेमे कोई आश्चर्यकी बात नही। हमारी अपनी भाषा हमारे लिए 'भाषा' है; जैसे--बच्चा (हमारा) घरमे 'बच्चा' ही सम्बोधित होगा। पर नामकरण दूसरोंके लिए आवश्यक हो जाता है। अस्तु।

कहते है कि द्राविड़ लोग इन दिनों हिन्द महासागरमें लुप्त लेमूरिया भूखण्डके आदिम निवासी थे। कुछ लोग कहते है कि एशिया माइनरसे द्राविड़ लोग भारतमें सिन्धसे होकर आये। द्राविड़ी सभ्यता काफी प्राचीन है। डॉ. काल्डवेलके कथनानुसार द्राविड़ लोग भगवानको 'को' कहकर पुकारते थे (को: राजा) ['को-इल' तमिळमें 'देवालय' को कहते है।] उनके यहाँ रीति-रिवाज अपने ढंगके थे।

---

* द्राविड़ (संस्कृत) दमिळ (पालि)

वे सामान्य धातुओंका उपयोग जानते थे। वे ग्रहोंके चलन-क्रमसे परिचित थे। वे दवा करना, शहर (गाँव) बसाना, नौका, बजरा, जहाज, बनाना जानते थे। प्राचीन द्राविड़ लोग कृषि करते थे, पशुपालन करते थे, शिकार खेलते थे और भालों और तलवारोंका लड़ाईमें उपयोग करते थे। वे लोग कपड़ा बुनना और रंगना भी जानते थे। द्राविड़ लोग मिट्टीके बरतन बनानेमें अपना सानी नहीं रखते थे।

ई. सन् ५९७ व ६०८ के बीच बादामीके पास स्थित महाकूटके राजा मंगलेशके शिला-स्तम्भमें 'द्रमिळ' शब्दका प्रयोग हुआ है।

द्राविड़ भाषाओंकी अपनी कुछ विशेषताएँ है। तमिळ भाषासे कन्नड़ और तेलुगु कुछ कम पुरानी नही हैं। कुमारिल भट्टने तन्त्रवार्तिकमे 'आन्ध्र-द्राविड़' भाषाओंका उल्लेख किया है। आन्ध्र भाषाका उस समय (यानी ८ वी सदीमे) अस्तित्व था। इतना ही नहीं कुमारिल भट्टका द्राविड़ी उच्चारण का जिक्र करना इस बातका परिचायक है कि तमिळ या आन्ध्र भाषाएँ उन दिनों काफी समृद्ध भाषाएँ थीं।

शब्दगत स्पर्श अघोष व्यञ्जनोंका घोषवत् उच्चारण द्राविड़ भाषाओंकी अपनी विशेषता है; जैसे:—शोक>सोग, आकाश>आगस (कन्नड़)

तमिळ संज्ञाएँ जहाँ 'ऐ' कारान्त है, कन्नड़-सज्ञाएँ 'ए'कारान्त और तेलुगु-संज्ञाएँ 'अ' कारान्त होती है। मलयाळम्में भी अकारान्त संज्ञाएँ होती हैं—

शब्द	तमिळ	कन्नड़	तेलुगु	मलयाळम्
सिर	तलै	तले	तल	तल

कन्नड़ भाषामे जहाँ कण्ठ्य उच्चारण होता है, वहाँ तमिळमे तालव्य संघर्षी 'श' का और तेलुगुमें तालव्य स्पर्श 'च' का उच्चारण होता है :—

कन्नड़	तमिळ	तेलुगु
किवि	शेवि	चेवि
कै	शै	चै

कन्नड़में जहाँ शब्दगत तालव्य संघर्षी 'श' कारका उच्चारण होता है वहाँ तमिळमें तालव्य-लुण्ठित[1] 'य' का उच्चारण होता है।

तमिळ	कन्नड़
पेयर्	पेसर्
वयिर्	बसिर्

नोट :—तमिळ और कन्नड़की संज्ञाएँ प्रायः हलन्त[2] होती है। तेलुगुकी संज्ञाएँ अजन्त[3] होती हैं।

कन्नड़, तमिळ, मलयाळम् और तेलुगुमेसे तमिळ भाषा सबसे प्राचीन मानी जाती है। आजकलके विद्वान् (जैसे—डॉ. कृष्णमूर्ति : प्रोफेसर आफ तेलुगु श्री वेंकटेश्वर वि. वि.) मूल आर्य भाषाके समान द्राविड़ भाषाकी खोजमें अर्थात् उसकी 'कल्पना' द्वारा रचना (reconstruction) मे लगे हुए हैं। मूल द्राविड़से १८-१९ या २० तक द्राविड़ भापाओंका धीरे-धीरे विकसित होना माना जाता है (एकसे अधिक

१. continuant, २. व्यञ्जनान्त, ३. स्वरान्त।

द्राविड़ भाषाओंमें प्रचलित शब्दोंका कोश डा. एमीनो महोदयने बनाया है।) यद्यपि अत्यन्त प्राचीन भाषा तमिळ मानी जाती है किन्तु अत्यन्त प्राचीन शिलालेख कन्नड़ भाषाका भी ई. सन्. पाँचवीं सदीमें बेलूरके पास (हल्मिडि नामक स्थानमें) उपलब्ध हुआ है। यही नहीं ई. पूर्व दूसरी शताब्दीके एक यनानी नाटकमें कन्नड़के शब्दोंका उल्लेख हुआ है, (देखिए:—कार्माइकल लेक्चर्स, डॉ. भण्डारकर—कलकत्ता)। छठी सदीसे कन्नड़के शिला-लेख बराबर मिलते हैं। पहलेके शिला-लेखोंमें गद्य उपलब्ध होता है, नवीं सदी तक पद्य और गद्य दोनों उपलब्ध होने लगते हैं। ९ वी सदी तक कन्नड़में काव्योंकी भी उपलब्धि होने लगी। तबसे आज तक कन्नड़ साहित्यका अटूट इतिहास उपलब्ध होता है। कन्नड़-साहित्य-वाहिनी और भी पुरानी रही होगी, इसमे कोई सन्देह नहीं।

कन्नड़ भाषाका अपना इतिहास है। पुरानी कन्नड़से प्राचीन कन्नड़ पुरानी है। प्राचीन कन्नड़ भाषा तमिळसे अधिक मिलती जुलती है। आधुनिक कन्नड़ भाषा तमिळसे जरा दूर पड़ती है। प्राचीन कन्नड़—दूसरी या चौथी या छठी सदीसे ई. सन् १२५० तककी भाषाको कहते हैं। ई. सन् १२५० से १५०० तककी कन्नड़ भाषा मध्यकालीन (नडुगन्नड) कहलाती है। सन् १५०० से ही भाषाका आधुनिक रूप प्रचलित है।

कुछ विद्वान् लोग 'पूर्व हळगन्नड' या प्राचीन कन्नड़को 'हळगन्नड' या पुरानी कन्नड़से भिन्न मानते है। भिन्नताके आधार है—

शब्दके आदिम 'व' का 'ब' होना; जैसे:—

(ई. सन् ८ वीं सदीसे पूर्व) प्राचीन कन्नड़	पुरानी कन्नड़ (ई.सन् ८ वी सदीके बाद)	
वॅट्ट	बॅट्ट	(पहाड़)
वित्तु	बित्तु	(बो—बीज बो)
वॅळॅ	बॅळॅ	(उगायी हुई पैदावार)

राइस साहबका उपर्युक्त मत आजकलके विद्वान् प्रायः नही मानते। उनका कहना है ई. सन् छठी सदीसे आठवीं सदी तकके कुछ शिला-लेखोंकी कन्नड़ भाषामे अत्यन्त प्राचीन रूपके कुछ चिह्न यद्यपि उपलब्ध है, फिर भी रूप, ध्वनि आदिमे इतनी भिन्नता नही है कि उसे अलग भाषा माने यानी ८ वी सदी तककी कन्नड़की अवस्था ८ वीं सदीसे ई. सन् १२५० तक उपलब्ध कन्नड़की अवस्थासे सर्वथा इतनी भिन्न नहीं है-कि ८ वी सदी तककी कन्नड़को 'प्राचीन कन्नड़' और आठवीं सदीसे १२५० तककी कन्नड़ 'पुरानी कन्नड़' मानी जाय। वैसे ही सन् १२५० से पूर्व ही मध्याकालीन कन्नड़के रूप यत्र-तत्र देखनमें आते है:—

पुरानी कन्नड़	**मध्यकालीन कन्नड़** (जिसके अस्तित्वके लक्षण ११ वीं सदीमें ही प्राप्त हैं)
'तमिळ्' शब्दमे उपलब्ध 'ळ्' ध्वनिका प्रयोग।	'ळ्' का 'ळ' में परिवर्तन
वैसे ही 'ऱ्' का प्रयोग	'ऱ्' >र
शब्दके आदिम 'प' का प्रयोग उदा:—पार्व	'प' का 'ह' में परिवर्तन; उदा:—पार्व >हारुव

भाषागत लक्षणोंकी अत्यन्त बारीक बातोंपर ध्यान देना इस लेखका उद्देश्य नहीं है। फिर भी यह बताना आवश्यक है कि प्राचीन कन्नड़से मिलती जुलती भाषा उत्तर कर्नाटकके हवीक (एक जाति) लोग आज भी बोलते हैं। इन दिनों भी पुरानी कन्नड़मे प्रसिद्ध 'चम्पू', मध्यकालीन कन्नड़-शैलीमें प्रसिद्ध षट्पदि-काव्य आधुनिक कन्नड़की भिन्न-भिन्न काव्य-शैलियोंके साथ-साथ प्रचलित हैं। श्री बी. एम. श्रीकंठय्याजी (जो आधुनिक कन्नड़ साहित्यके प्रवर्तक माने जाते हैं।) ने अपने 'अश्वत्थामन्' नाटकमें प्राचीन या पुरानी कन्नड़ भाषाका प्रयोग किया है।

कन्नड़ और हिन्दीके कतिपय भाषागत समान तत्व--

कन्नडकी कुछ अपनी भाषागत विशेषताएँ हैं जो अन्य सब द्राविड़ भाषाओंमें भी पायी जाती हैं। आर्य भाषाएँ इनसे सर्वथा भिन्न हैं :—

द्राविड़ भाषाएँ	भारतीय आर्य भाषाएँ
(१) ह्रस्व 'ए', 'ओ' का प्रयोगाधिक्य	ह्रस्व 'ए', 'ओ' का कम प्रयोग।
(२) महाप्राण ध्वनियोंका अत्यन्त कम प्रयोग	महाप्राण ध्वनियोंका प्रचुर प्रयोग।
(३) अल्प प्राणके स्थानपर महाप्राणका उच्चारण करनेसे ठेठ द्राविड़ भाषाओंमे अर्थ-भेद नहीं होता; जैसे :—कतॅ, कथॅ<कथा; बहळ (लिखित) भाळ (कथित); नात, नाथ ('बू')	दोना, धोना कल, खल जाग, झाग आदि हिन्दी शब्दोंमें अल्पप्राणके स्थानपर महाप्राणका उच्चारण करनेसे अर्थ परिवर्तन हो जाता है।
(४) द्राविड़ भाषाओंमें कर्मणि प्रयोग अत्यन्त अल्प हैं।	भारतीय आर्य भाषाओंमें कर्मणि प्रयोग एकदम मुहावरेदार है।

इधर कन्नड़ और हिन्दीका वाक्य-विन्यास अर्थात्—कर्त्ता, कर्म, क्रियाका क्रम एक-सा हो गया है।

यद्यपि कन्नड़ और हिन्दी सर्वथा भिन्न भिन्न भाषाएँ हैं, फिर भी दोनों भाषाओंमें कुछ अंशोंमें समानताएँ भी हैं :—

(१) दोनों भाषाओंकी क्रियाएँ प्रायः वर्तमान या भूत कृदन्तकी सहायतासे बनी हुई हैं। द्राविड़ भाषाओंके बारेमें भी यही बात है; उदा :—

तमिळ	कन्नड़	हिन्दी
वन्द (आन्), वन्दान्	बन्दनु	आया< सं. आगतः
आया [हुआ (वह) पुल्लिंग]		
वन्द (आळ्) वन्दाळ्	बन्दळु	आई< सं. आगता
आई [हुई (वह), स्त्रीलिंग]		
वर् (आन्) वरान्	बरुत्ता (आनॅ)	आता है
आता ((हुआ) (वह))	आता (हुआ (वह)	
वर् (आळ्)	बरुत्त (आळॆ)	आती है
आती [(हुई); वह]	आती (हुई) (वह)	

(२) दोनों भाषाओंके वाक्योंमें 'कर्म' कारकमें चिह्न प्रायः लुप्त रहता है; अर्थात् परसर्गके बिना भी 'कर्म' का तात्पर्य घटित होता है।

(३) **पक्षीगण**, पाण्डव **लोग**, जन-**समूह** जैसे प्रयोग भारतीय आर्य्य भाषानुगत प्रयोगोंसे भिन्न हैं। द्राविड़ भाषाओंमें ऐसे प्रयोग ही मुहावरेदार है; उदा:—

एकवचन	**बहुवचन**
बडव (गरीब : कन्नड)—	बडवरु, गरीब (कन्नड़), बड हुडुगरु (गरीब लड़के)
हक्कि (पक्षी)	हक्कि गळु (पक्षी-गण)

(४) हिन्दी और कन्नड़ (कन्नड़ ही क्यों सभी द्रविड़ भाषाओं) की संयुक्त क्रियाओंमें काफी साम्य है। संस्कृतमे संयुक्त क्रियाएँ बहुत कम हैं।

कन्नड़	**हिन्दी**
माडि होगु	कर जाओ।
नोडिरु	देख रखो
कोंदु बिट्ट	मार डाला
बिद्दु बिट्ट	गिर पड़ा
हॉरटु होद	चला गया

(५) कन्नड़ और हिन्दीकी शब्दावलीमें काफी साम्य है। कई तद्भव (संस्कृतोद्भव, फारसी, अरबी तुरसी, अँग्रेजीके विकृत शब्द) शब्द भी दोनों भाषाओंमें समान है:—

कन्नड़	**हिन्दी**
सेवक	सेवक
चञ्चल	चञ्चल
अपार	अपार
अन्न (पका)	अन्न (कच्चा)
हक्कि	पक्षी
सूजि	सुई ∠सं.—सूचिका
निद्दॆ, निद्रॆ	नीद, निद्रा
बीदि	वीथी
विश्वास (प्रीति)	विश्वास (प्रतीति)
विपरीत (बहुत)	विपरीत (एकदम उलटा)
शिक्षॆ (दंड)	शिक्षा (विद्या)
गुमास्ते	गुमाश्ता
कचेरि	कचहरी
रैत	रईत
लगाम्	लगाम

कन्नड़	हिन्दी
सवार	सवार
सरकार	सरकार
पोलीसु	पुलिस
टिकीटु	टिकट
कार्डु	कार्ड
लाटीनु	लालटेन

मध्यकालीन कन्नड़ भाषा तकके काव्योंमें संस्कृत-प्राकृत शब्दोंका बाहुल्य पाया जाता है। आजकलके प्रसिद्ध कवि कुवेम्पुकी गद्य एवं पद्यकी भाषामें पर्याप्त मात्रामे संस्कृत शब्दोंका प्रयोग हुआ है। कुल कन्नड़ भाषामे करीब ३५ से ४० प्रतिशत तक ऐसी शब्दावली चलती है जो हिन्दीसे सर्वथा भिन्न नहीं है। इन भाषागत तत्वोंकी पर्याप्त समानताके कारण कर्नाटकमे हिन्दी पढ़नेवालोंकी सख्या, दक्षिणके आन्ध्र, तमिळनाड और केरल प्रान्तोंसे अपेक्षाकृत अधिक है। सम्भव है कि मराठी, हिन्दुस्तानी भाषाओंके अधिक प्रचलनके कारण भी कर्नाटकके लोगोंको हिन्दी उतनी अजनबी नही लगती जितनी अन्य द्राविड़ भाषा-भाषियोंको।

कन्नड़ साहित्यका इतिहास

९ वीं सदीके 'नृपतुंग' कन्नड़ भाषाके प्रथम कवि माने जाते हैं। उनका काव्य 'कविराजमार्ग' पुरानी कन्नड़का एक लक्षण-ग्रन्थ है। उनके बाद कई जैन कवि हुए जिनमें पंप, पोन्न, रन्न प्रसिद्ध हैं। यह कन्नड साहित्यके इतिहासका प्रथम चरण या जैन काल माना जाता है। प्रसिद्ध पोन्न कवि (९४५-९५०) राष्ट्रकूट-सम्राट् कृष्ण (९३९-९६८) का 'आस्थान कवि' था। उसका 'शान्ति पुराण' अत्यन्त प्रसिद्ध काव्य है। इसमें १२ आश्वास हैं। शान्तिनाथके बारहों जन्मोंकी कथा इसमें वर्णित है।

तीसरा प्रसिद्ध कवि रन्न है। उनका 'गदायुद्ध-काव्य' प्रसिद्ध है।

कलचुरी और होयसळ राजाओंने (११००-१३५०) कितने ही कवियोंको आश्रय दिया था। पम्पा-सरोवरके किनारे 'हम्पे' नामक स्थानमे स्थित विजयनगरके भग्नावशेष पुकार-पुकारकर कहते हैं कि बहमनी राज्योंके सुलतानोंके विरुद्ध हक्क-बुक्क नामके दो वीरोंकी सहायतासे किस तरह विद्यारण्य स्वामीने विजयनगर-साम्राज्य (हिन्दू राज्य) की स्थापना की थी। यह साम्राज्य राजा कृष्णदेवरायके जमानेमें अपनी कीर्तिकी चोटीको पहुँचा हुआ था। १५२६ के तळिकोटे युद्ध तक इस महान् साम्राज्यकी श्री-वृद्धि होती रही। आपसी फूट और पीछेके राजाओंकी अदूरदर्शिताके कारण यह राज्य मुसल-मानोंके द्वारा विजित हो गया, अन्यथा इस साम्राज्यके सामने सारे दक्षिण भारतमें उस समय खड़ा होनेवाला कोई सम्राट् या बादशाह न था।

विजयनगरके राजा कन्नड़, आन्ध्र और संस्कृतके कवियोंको बराबर आश्रय देते रहे। इनके जमानेमें राजा लोग कवियोंका उत्सव कराते, उनका यश-गान कराते और खास विद्वत्सभा या

दरबारमें उनका सम्मान करते थे। सनत्कुमार चरित्र-लेखक बॉम्मरस कवि (१४८५ ई.), षट्पदि-भारतके रचयिता साळ्व (१५५० ई.), 'भरतेशवैभव' के रत्नाकर (१५५७ ई.) कवि विजयनगर-साम्राज्यमें पनपे थे।

मैसूरके यादव राजवंश (१५६५-१९४७ ई.)ने जितना प्रजा-हितैषी कार्य किया उतना कर्नाटकमें किसी भी राजवंशने नहीं किया। मुसलमानोंके समयमें बीचमें हैदरअली और टीपूके चंगुलमें फँसकर मुक्त होनेकी कोशिश करते हुए भी इन हिन्दू राजाओंने अपने आश्रित लोगोंके हितोंका बराबर ख्याल रखा। इनमेंसे कुछ राजा स्वयं प्रसिद्ध कवि हो गए है। चिक्कदेवराज ओड़ेयर कृष्ण काव्यके प्रसिद्ध लेखक है। पद्मरस कवि (१५९९ ई.), भुजबलिचरितके रचयिता पंचबाण (१६१४ ई.), बिज्जळराय-चरितके कर्त्ता कवि धरणि पंडित (१६५० ई.) मैसूरके हिन्दू राजाओंके आश्रयमें पले थे।

भक्तिका प्रादुर्भाव और उसका साहित्यपर प्रभाव

बारहवीं सदीमें शैव भक्ति और वैष्णव भक्तिकी ऐसी धारा कर्नाटकमें बही कि जनता उससे अछूती न रही। इससे चार सौ वर्ष पहले ही आठवीं सदीमें श्री आदि शंकराचार्य (७८८ ई. जन्मकाल)ने शिवमोग्गा जिलेमें तुंगा नदीके किनारे शृंगेरी नामक स्थानमें शंकर-मठकी स्थापना की थी। आप अद्वैतमत प्रतिष्ठापनाचार्य हुए। नागार्जुन इनके पहले हुए थे। वे शून्यवादी थे। इन्होंने माना था कि जगत सत्य नहीं है। वसुबन्धु (शंकराचार्यजीके गुरु) ने भी यही माना था। इसी तत्त्वको शंकरने पल्लवित किया और उपनिषदोंकी नई व्याख्या की। वास्तवमें शंकराचार्यजीके द्वारा (जिनका जन्म केरलमें हुआ था।) भारतमें ब्राह्मण-धर्मका पुनरुत्थान हुआ।

१२ वीं सदीमें शंकरके शुष्क ज्ञानवादके प्रत्यावर्तनके रूपमें रामानुजाचार्यजीका भक्ति-मार्ग निकला। आपने 'प्रपत्ति' मार्ग चलाकर शूद्रोंको (यहाँ तक कि 'अस्पृश्य' कहलानेवालोंको) भी प्रपत्ति-मार्गमें दीक्षित कर दिया। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आळ्वार लोगोंके भक्ति-पथको आगे बढ़ाया और जनतामें चलाया। श्री रामानुजाचार्यजी मैसूर राज्यके मेलकोटे नामक स्थानमें रहे और उपदेश दिये। प्रसिद्ध बेलूर-मन्दिरका निर्माता विष्णुवर्द्धन वैष्णव (रामानुजीय) था।

वीरशैव-साहित्य

शैवोंकी विचार-धारासे भी कर्नाटक अछूता न रहा। यों तो हरिहरका हरिहरेश्वर मन्दिर, पम्पा-क्षेत्रका पम्पापति मन्दिर और कूड़लिका संगमेश्वर-मन्दिर, हळेबीड़का ईश्वरालय इस बातके प्रतीक हैं कि कर्नाटकमें शैव लोग भी काफी संख्यामें थे। १२ वीं सदीमें श्री बसवेश्वर (कलिचुरी-वंशके बिज्जळ राजाके मन्त्री) ने वीरशैव मतका प्रवर्तन किया। अल्लम प्रभु ईश्वर या पर-शिवका अवतार (अनुभावी) माना जाता है। यह भी बसवेश्वरका सम-सामयिक था। अल्लमप्रभुकी 'प्रभुलिंग लीला' में इस बातका उल्लेख है कि वह गोरखनाथसे मिला था। इसमें तथ्य कितना है वह अनुसन्धान-योग्य है। अल्लम प्रभुके अलावा सर्वज्ञ, षडक्षरि जैसे कितने ही वीरशैव कवि हुए हैं। इनके "वचन" कबीर जैसे निर्गुणी सन्तोंकी बानी जैसे ही हैं।

बसवेश्वर

कर्नाटकके वीरशैव सन्त या शरण और हिन्दीके निर्गुणी सन्त दोनों एक ईश्वरको माननेवाले हैं। वे रहस्यवादी, साधक और 'ज्ञान' पर जोर देनेवाले और परमात्माके प्रति माधुर्य्य-प्रेमको लेकर चलनेवाले सन्त कवि हुए हैं। दोनोंमें 'शून्य' पर प्रतीति, वैदिक धर्मके प्रति अन्धे रूढ़िगत विश्वास की कमी, और आभ्यन्तर पवित्रता (वाह्याडम्बरके प्रति उपेक्षा) की बातें पायी जाती हैं। "वीरशैव लोग परात्पर शिवके साथ आनन्दमय मिलनके अभिलाषी होते हैं" (दे.—संस्कृतिके चार अध्याय—दिनकर पृ. २९०)। उनका अन्तिम लक्ष्य समरसैक्यकी प्राप्ति है। कूडल-संगमेश्वरका जप इनके यहाँ विधेय हैं। इनका मत शक्ति-विशिष्टाद्वैत कहलाता है। यह मत कन्नड़के वचन-साहित्य द्वारा कर्नाटकमें अभिव्यक्त हुआ है।

ब्राह्मण-साहित्य

करीब-करीब इसी समय द्वैतमत-प्रतिष्ठापनाचार्य मध्वाचार्य (जन्म ११९७ ई.) का उड़ुपिमें प्रादुर्भाव हुआ। आप वल्लभाचार्यजीके समान कृष्ण भक्त कवि थे। आप वेद, उपनिषद और गीताके माननेवाले थे। वेदोंका अधिकार सबको—स्त्रियोंको या शूद्रोंको नहीं था। प्रस्थानत्रयीकी सारी बाते आळ्वार लोग तमिळनाड़में पदोंके द्वारा कह गए। नायन्मारोंने (शैव कवि) शैव-प्रबन्धोंके द्वारा तमिळ-नाडको ये ही बातें पहुँचाईं। वैसे ही कृष्ण भक्तिकी धारा देशी भाषा (कन्नड़) में गीत या भजन या पदोंके द्वारा मध्वाचार्यजीके अनुयायी पुरन्दरदास, कनकदास, श्रीपादराय जैसे कवियोंने वैष्णव भक्ति धाराको कर्नाटकमें बहाकर वीर शैव-भक्तिके समान सरसता और सहृदयतासे परिपूर्ण कृष्ण भक्तिका प्रसार कर दिया। इनमें भी दासकूट ('अप्ट छाप' जैसे) के कवि हुए हैं। इन कवियोंने मधुर भक्ति भावमे अपनेको खोकर और पर-वश होकर श्री कृष्ण भगवानकी बाल-लीला और यौवन-लीलाका वर्णन किया है।

इस तरह जैनोंके अतिरिक्त कर्नाटकमें श्री शंकराचार्यजीका अद्वैतमूलक एकेश्वरवाद, श्री रामानुजीय विशिष्टाद्वैतमूलक प्रपत्तिवाद, श्री बसवेश्वरका शक्ति-विशिष्टाद्वैत-मूलक एकेश्वरवाद और श्री मध्वाचार्यजीके द्वारा प्रवर्तित और पुरन्दरदास जैसे कवियोंके द्वारा प्रवर्द्धित द्वैतमूलक भक्विादकी धाराएँ बहीं, पनपीं और समन्वित हुई। इस समन्वयका जन-जीवनपर काफी असर पड़ा।

नव्य कन्नड़ साहित्य (आधुनिक काल) की शैली

कन्नड़ आधुनिक या नव्य कब बनी ? पम्पके जमानेमें तत्कालीन कन्नड़ आधुनिक ही तो थी। अब हमारी कन्नड़ भाषा आधुनिक है। धारवाड़की शैली अलग, दक्षिण कन्नड़की शैली अलग और मैसूर-कन्नड़की शैली अलग जरूर है। पर इधर कर्नाटक (१९५६ ई.) की पुनःस्थापनाके बाद इन शैलियोंकी एकताका प्रयत्न हो रहा है। सारे कर्नाटकमें वृत्तपत्र, कहानी, कादम्बरी (उपन्यास), तथा अन्य प्रकारके गद्य-पद्योंके द्वारा आधुनिक गद्य-पद्य-साहित्यकी एक भाषा, एक शैली, एक-सी शब्दावली और एक ही लिपिका प्रसार हो रहा है—और हमारी अपनी आँखोंके सामने ही हो रहा है। आज कन्नड़मे टाईपराईटर-यन्त्र भी उपलब्ध है।

कर्नाटकमें हिन्दी प्रचार

कन्नड़ में सबसे पहले वयस्क-शिक्षा, प्राईमरी, मिडिल और हाईस्कूल तककी शिक्षा दी जाने लगी। १९२४ ई. से ही हमारे यहाँके स्कूलोंमे हिन्दीका प्रवेश हो गया था। हमारे राज्यमें आज एक हजार हाईस्कूल है। छठीं कक्षासे हिन्दीका अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। १० वीं कक्षामें १९६३ ई. से हिन्दी सार्वजनिक परीक्षा (सरकारी परीक्षा) के लिए एक अनिवार्य विषय हो रही है। इसके बारेमे सरकारी आदेश भी निकल चुका है। यो तो १९४८ ई. से ही हमारे सब हाईस्कूलोंमें हिन्दी भाषाका अध्ययन अनिवार्य (सार्वजनिक परीक्षा-विषय नही) कर दिया गया था।

कर्नाटकमें प्रचलित भाषाएँ

कर्नाटक राज्यमे कई धर्म और संस्कृतियोंका संगम हुआ है।

राज्यमे ६२% कन्नड़ भाषा-भाषी
११% तेलुगु भाषा-भाषी
९% हिन्दी—हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी
४% तमिळ भाषा-भाषी
६% मराठी भाषा-भाषी
३% तुळु भाषा-भाषी
१% मलयाळम् भाषा-भाषी
और २% अन्य भाषा-भाषी लोग रहते है। कर्नाटकमे हिन्दी प्रसारके लिए काफी प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

हमारे स्कूलोंमें कन्नड़, तेलुगु, मराठी, हिन्दी, उर्दू, तमिळ, मलयाळम्, अँग्रेजी और सिन्धी तथा तिब्बती भाषाओंमें प्राईमरी शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा) दी जा रही है। मिडिलमें हिन्दी और अँग्रेजी अनिवार्य है। यूनिवर्सिटीमें कन्नड़ माध्यम प्रवेशका प्रयत्न हो रहा है। हाईस्कूल-स्तर तक १९३० से ही शिक्षाका माध्यम कन्नड है।

कोलार, बैंगलोर, धारवाड़ और बेलगाँव मे चार-पांच हिन्दी मीडियमके स्कूल चल रहे है। कालेजोंमे कन्नड़के उच्चस्तरकी अनेक विषयोंपर लिखी हुई पुस्तकें मैसूर विश्वविद्यालयने प्रकाशित की है—कर्नाटक विश्वविद्यालयने भी यह कार्य अपने ऊपर लिया है।

(१९१५ के बाद) आधुनिक कन्नड़-साहित्यकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(१) भारतीय संस्कृतिसे भिन्न कर्नाटककी कोई अपनी संस्कृति नहीं है। कर्नाटककी संस्कृति ऐसीहै कि उसका योग-दान भारतीय सस्कृतिको भी प्राप्त है। यह आधुनिक कन्नड़ साहित्यमें लक्षित है।
(२) अँग्रेजी (तथा पश्चिमी) साहित्यका कन्नड़-साहित्यपर प्रभाव पड़ा है।
(३) अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओंकी तरह ही (हिन्दीके समान ही) कन्नड साहित्यमें भी गद्य-साहित्यकी विपुलता और पद्य-साहित्यकी उत्तरोत्तर कमी हो गई है। (ई. सन् १८२३ में ही कन्नड़-कवि मुद्दणने "रामाश्वमेध" में कहा था—'गद्यं हृद्यं, पद्यं वध्यं।')

(४) साहित्यमें बौद्धिकता (चिन्तन, आलोचना.....) का आधिक्य हो रहा है।
(५) कन्नड भाषामें साहित्येतर (वैज्ञानिक, टैक्निकल आदि) ग्रन्थोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।
(६) अन्य भाषाओं (खासकर अँग्रेजी, बंगला और हिन्दी) से कन्नड़में अनुवादकी वृद्धि हो रही है।
(अँग्रेजीके कई नाटक, कहानी, उपन्यास, गीत व लेखोंका अनुवाद बंकिम व रवीन्द्र साहित्य, प्रेमचन्द-साहित्य, प्रसाद व मुंन्शी-साहित्य, जैनेन्द्रकुमार, वृन्दावनलाल वर्मा, एवम् गाँधी-साहित्यका कन्नड़मे अनुवाद उपलब्ध है।)
(७) पत्रकारितामें वृद्धि हो रही है।
(८) अनुसन्धान-स्तरके साहित्यकी वृद्धि (कन्नड़में मौलिक अनुसन्धान सम्बन्धी ग्रन्थोंमें वृद्धि) हो रही है।

नव-चैतन्यका कर्नाटकमें बीज बोनेवालोंमेसे 'विद्यारण्य-काव्य' के लेखक बाळाचार्य सक्करि (शान्त कवि) का नाम स्मरण करना आवश्यक है। वंग-विभाजन (१९०६ ई.) और बंकिमके 'वन्दे-मातरम्' के बाद ही हमे इस नव-चैतन्यके चिह्न देशमें (और कर्नाटकमें भी) दिखाई पडने लगे।

करिबसप्पशास्त्री कृत शकुन्तला-नाटकका कन्नड़ अनुवाद, मुद्दण (१८२३ ई.) के 'रामाश्वमेघ' और 'मुद्रामञ्जूषा' तथा आलूर वेंकटरावके कर्नाटक-गतवैभव (१९१७ ई.)ने अपने ढंगसे कर्नाटकमें नव-चेतना जगायी।

पम्प, रन्न, पोन्न, हरिहर, राघवांक, रत्नाकरवर्णि, कुमारव्यास, बसव और पुरन्दरदास जैसे कवियोंने जिस वाणीके द्वारा कर्नाटककी संस्कृति-ज्वालाको उज्ज्वल किया और भारतीय संस्कृतिकी ज्योतिको उद्दीप्त किया, उसी वाणीके बोलनेवाले अन्य भाषाओंके प्रेम या मोहमें फँसकर मानो कन्नड़को भूल बैठे थे कि इस नई राष्ट्रीय चेतनाने भी जनताको जगाया—उसमे नवीन स्फूर्ति पैदा की।

श्री एम. एस. पुट्टण्णाका माडिद्दुण्णो महाराय (१९१५) (कन्नड़-उपन्यास), श्री मास्ति वेंकटेश अय्यंगारकी 'कॅलवु सण्ण कथॅगळु' (कुछ छोटी कहानियाँ) और अन्य लेखकोंकी कृतियोंसे कन्नड़में नई चेतनाको अमरता (साहित्याभिव्यक्ति द्वारा नित्यता) प्राप्त हुई।

जैसे हिन्दीमें भारतेन्दुने साहित्यकी नई दिशाओंका प्रवर्तन किया था वैसे ही प्रोफेसर बी. एम. श्रीकंठय्याने कतिपय अँग्रेजी गीतोंका कन्नड़-काव्यमय अनुवाद 'इंग्लिश गीतॅ' के नामसे प्रकाशमें लाकर इस नई चेतनाकी तरफ युवक लेखकोंका ध्यान आकृष्ट किया। "कन्नड़ वालोंको विश्वकी समस्त ग्रन्थों और निधियोंसे अपना साहित्य समृद्ध कर लेना चाहिए" यही "श्री" का सन्देश था।

फिर क्या था कन्नड़ साहित्यकी गुप्त गामिनी शक्ति अब जनताकी भिन्न-भिन्न कृतियोंके द्वारा कई दिशाओंमें बह निकली।

विचार-प्लुत गद्यके लेखकोमेसे सर्वप्रथम श्री डी. वी. गुंडप्पा (जीवन सौन्दर्य और साहित्य) हैं। मौलिक उपन्यासोंमेसे कारन्तका 'मरळि मण्णिगॅ' (फिर मिट्टीकी ओर—गाँवकी तरफ) और चोमन दुडि (चोमका वाद्य—दुड़ि एक वाद्य—विशेष) सर्वप्रथम है। कैलासम्के हास्य-

रस प्रधान नाटकोंने जनताको मोह लिया। बैंगलोरके सेन्ट्रल कालेजसे 'प्रबुद्ध कर्नाटक' निकला। पीछे चलकर वह महाराजा कालेज, मैसूरसे और अब मैसूर विश्वविद्यालयकी तरफसे प्रकाशित हो रहा है। कन्नड़की यह त्रैमासिक पत्रिका अनुसन्धान तथा विचारपूर्ण साहित्यके अतिरिक्त नई कविता व नये साहित्यके नये-नये प्रकारोंको प्रकाशमें लानेकी साधक बनी है। "जय कर्नाटक" (धारवाड़)—मासिक पत्रिकाने भी कर्नाटकको काफी सेवा की। इधर "सम्पदभ्युदय" (मैसूरके वृद्ध पितामह श्री एम. वेंकटकृष्णय्याके सम्पादकत्वमें), "विश्वकर्नाटक" (टी. टी. शर्माके सम्पादकत्वमें) जैसे दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंने कर्नाटक भाषाकी पत्रकारिताका स्तर एकदम ऊँचा कर दिया। "कन्नड़ साहित्य परिषद" (बैंगलोर) देश भरके कर्नाटक संघ, "कर्नाटक विद्या वर्धक संघ" (धारवाड़) जैसी संस्थाओंने साहित्य सर्जनामें योग देकर, साहित्यिकोंकी समय-समय गोष्ठियाँ (सम्मेलनमें) बुलाकर विचार विनिमयका अवसर दिया। मिंचिन बळ्ळि सीरीज़ (धारवाड़), मैसूर विश्वविद्यालयकी कन्नड़ प्रकटन-शाखा-सीरीज़, ओरिएन्टल लाईब्रेरी प्रकटन-सीरीज़, और इधर संस्कृति-प्रसारकी 'सीरीज़' में कई उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। सत्यशोधन पुस्तक भांडागार, बैंगलोरने गाँधी साहित्य व अन्य राष्ट्रीय साहित्यके अलावा अनेक कन्नड़ साहित्य-ग्रन्थोंको प्रकाशित किया। विश्वविद्यालयकी ओरसे पुरानी कन्नड़ भाषाकी हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोज की व्यवस्था हुई। कई नए ग्रन्थ प्रकाशमें आए। उनका सम्पादन करनेवाले विद्वानोंमेंसे प्रो. बी. एम. श्रीकंठय्या, प्रो. टी. एस. वेंकण्णय्या, प्रो. ए. आर. कृष्ण शास्त्री, प्रो. टी. एन. श्रीकण्ठय्या, प्रो. डी. एल. नरसिंहाचार, श्री लुई राईस, रेवरैण्ड किट्टल (कन्नड़–अँग्रेजी कोश-लेखक), हळकट्टी, श्री उच्चंगि, मद्रास यूनिवर्सिटीके श्री शेषय्यगार, श्री आर. नरसिंहाचार्य आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। यदि इनमेंसे जितने विद्वान् जीवित है वे सब अपने-अपने सम्पादनानुभव लिख दें तो ऐसे लेखोंका संग्रह 'Textual Criticism' की एक खास उपयोगी पुस्तक होगी। इन महानुभावोंने प्राचीन कन्नड़-साहित्य-रत्नोंका कन्नड़ जनताको सिर्फ परिचय ही न कराया, अपितु कन्नड़-साहित्यके इतिहास लेखनके लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। कन्नड़के जानपद साहित्यकी खोज करके, गीतोंका संग्रह करके प्रकाशित करने वालोंमेंसे मुख्य हैं:—बेन्द्रे, कृष्णमूर्ति, "क. र. कृ."। ठोस कन्नड़-व्याकरण लिखकर प्रो. टी. एन. श्रीकण्ठय्याने कर्नाटककी बड़ी सेवा की है। उनकी भारतीय काव्य मीमांसा (नामक काव्य-विमर्शात्मक ग्रन्थ १९४२ में लिखित और १९५२ में प्रकाशित) भारतीय भाषाओंमें उपलब्ध अपने ढंगकी एक अनोखी कृति है। किसी भी भारतीय भाषामें लिखित आलोचनात्मक ग्रन्थकी दृष्टिसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और उपयोगिता असंदिग्ध है। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह पुस्तक कन्नड़-साहित्यमें 'आलोचना' को बहुत आगे बढ़ा सकी है। श्री शिवराम कारन्तने अपनी 'मक्कळ पुस्तक' (Children's Encyclopaedea) प्रकाशित करके आज सरकार द्वारा हाथमें लिए हुए कन्नड़ विश्व-कोशकी नींव २५ वर्ष पहले ही डाली थी। इतना ही नहीं, कन्नड़में विज्ञान (भौतिक विज्ञान) पर लिखने वाले श्री एन. नागेशराव (अँग्रेजी–प्रोफेसर) थे। श्री डी. कृष्णय्यंगारने कन्नड़में (Agricultural Economics) पर एक पुस्तक लिखी। वैसे ही अनेक ग्रन्थ साहित्येतर विषयोंपर कन्नड़में प्रकाशित हुए। इन पुस्तकोंमें काफी सामग्री अँग्रेजीसे लेनी पड़ती थी। अतः ऐसे लेखकोंकी सहायताके लिए मैसूर विश्वविद्यालयने १९४७ ई. में 'अँग्रेजी-कन्नड़ कोश' प्रकाशित किया।

ऐसा कोश अन्य किसी भारतीय भाषामें उपलब्ध नहीं है। यात्रा-ग्रन्थोंमें श्री प्रो. वी. सीतारामय्या का (हंपॆय यात्रे) अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ है—यही इस ढंगका सर्व प्रथम ग्रन्थ है।

आधुनिक कन्नड़में सबसे प्रथम "श्री" का नाम लेना चाहिए। उन्होंने कन्नड़-साहित्य-क्रान्तिका एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया। इस आन्दोलनने हमें कुवेम्पु जैसे युग-प्रवर्तक कवि, डी. वी. गुण्डप्पा जैसे विमर्शक, श्री टी. एन. श्रीकण्ठय्या जैसे आलोचक व विद्वान्, श्री डी. एल. नरसिंहाचार जैसे सम्पादक, 'प्राच्य शोधक' तथा विमर्शक और जी. पी. राजरत्नम जैसे विद्वान् व सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली लेखक हमें दिये।

इस आन्दोलनने हमें ऐसा प्रोत्साहन दिया, हममें ऐसा उत्साह भरा और नई चेतनाका सञ्चार किया कि जब कभी हम लोग कोई नया काव्य या नाटक लेखकके मुँहसे सुनकर घर आते तो ताज़गी, आनन्द, स्फूर्ति, उत्साह एवं रसात्मकताका अनुभव करते थे। श्री ए. एन. मूर्तिरावने हमें 'भटकती आत्मा' (अलॆयुव मन—शुद्ध साहित्य मौलिक हास्य-व्यंग्य-स्वरचित लेखोंका संग्रह) दी। श्री मञ्जुनाथ (अँग्रेजी-प्रोफेसर) ने भी ऐसे अनेक लेख लिखे हैं। वास्तवमें हिन्दीमें ऐसे निबन्ध हैं ही नहीं। मेरी राय है कि कन्नड़में ऐसे कई मौलिक ग्रन्थ हैं जिनका हिन्दीमें अनुवाद करके सारे भारतके सामने लाना आवश्यक है—

(१) रामायण दर्शन—श्री कुवेम्पु
(२) भारतीय काव्य-मीमांसा—प्रो. टी. एन. श्रीकण्ठय्या।
(३) महाभारत—कुमार व्यास।
(४) भटकती आत्मा—प्रो. ए. एन. मूर्तिराव।
(५) पुरन्दरदास तथा अन्य दासोंके चुने हुए गीत।
(६) वचनकारोंके चुने हुए वचन।
(७) हम्पॆय यात्रे (यात्रा-साहित्य)—श्री वी. सीतारामय्या।
(८) कुवेम्पु, मास्ति, आनन्द तथा अन्य कतिपय कहानीकारोंकी चुनी हुई कहानियाँ।
(९) टी. पी. कैलासम्‌के सभी नाटक और 'संस' के ऐतिहासिक नाटक।
(१०) बेन्द्रेके चुने हुए भाव-गीत।

आज कन्नड़ साहित्यके सभी अंग काफी पुष्ट हैं। कई हिन्दी-ग्रन्थों, वंग-ग्रन्थों एवं अँग्रेजी तथा संस्कृत-ग्रन्थोंके कन्नड़में अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं। श्री जी. पी. राजरत्नमको बौद्ध साहित्य कन्नड़में लानेका श्रेय प्राप्त हुआ है। डा. के. कृष्णमूर्तिने कतिपय संस्कृतके लाक्षणिक ग्रन्थोंका कन्नड़में अनुवाद किया है। उदा :—दण्डीकृत 'काव्यालंकार'। सुब्बण्णाने 'दशरूपक' का कन्नड़में अनुवाद किया है। 'मुद्रामञ्जूषा' का सफल निरूपण "राक्षसकी मुद्रिका" द्वारा किया है प्रो. टी. एन. श्रीकंठय्याने। इसमें संस्कृत तथा प्राकृतके पद्योंका कन्नड़-अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत मुद्रा राक्षसके अनुवादसे भी उत्तम बन पड़ा है। 'प्रसाद' जीके 'आँसू' का एक काव्यानुवाद छप गया है। और भी कई अनुवाद हो रहे हैं। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और प्रसादकी कई कहानियाँ हिन्दीसे कन्नड़में आई है। वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'मृगनयनी' का कन्नड़ अनुवाद प्रो. एम. एस. कृष्णमूर्तिने किया है। उन्होंने

हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्टकी आत्म-कथा' का भी कन्नड़में अनुवाद किया है। इस तरह कन्नड़ साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति इस समय हो रही है।

'सिरिभूवलय'

'सिरिभूवलय' एक जैन लेखक द्वारा कई सौ वर्ष पहलेका विरचित सन्दर्भ-ग्रन्थ है जिसमें संख्याओंके हिसाबसे अक्षर जोड़कर पढ़ना होता है। इसी तरीकेसे पढ़नेसे 'गीता' के श्लोक निकलेंगे और कहीं रामायणके श्लोक पढ़े जाएँगे। मेरा अनुमान है कि ऐसे ही कुछ अन्य ग्रन्थ कहीं मिलें तो इनमेंसे सम्भव है कि मूल 'पृथ्वीराज रासो' और 'बड्डकहा' (गुणाढय) निकल आए।

कर्नाटकमें हिन्दीकी स्थिति

वैसे तो हैदर और टीपूके जमानेसे या और भी पहलेसे मैसूरमें हिन्दी गद्य व पद्य उर्दू लिपिमें उपलब्ध होते आए हैं। 'सबरस' (ब्रजभाषा-लक्षण-ग्रन्थ: दक्खनी हिन्दी-शैलीमें) की एक हस्तलिखित प्रति मैसूरमें मिली है। बिहारीकी लालचन्दी टीका (?) की फटी पुरानी अधूरी हस्तलिखित प्रति मुझे मिली है। इससे पता चलता है कि खोज करनसे हिन्दीका खजाना यहाँ भी कुछ हद तक प्राप्त हो सकता है।

१७ वी सदीके एक मुसलमान बादशाहको एक वीरशैव जंगम कविने ब्रजभाषाके दोहोंमें एकेश्वरवादका उपदेश दिया था। ये दोहे 'शिवानुभव' नामक कन्नड़ पत्रिकामें छपे हैं। हमारे यहाँके भागवत (हरिकथाकार) तुलसी, कवीर, नानक और मीराँके गीत बराबर गाते रहे हैं। कन्नड़की 'भक्ति-विजय' में कबीरका भी नामोल्लेख हुआ है। कन्हपा (कण्णप्पा) का कर्नाटकी होना विचारणीय है। कन्नड़के वचनकारोंके तत्त्व और दास कवियोंकी श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी पद हिन्दीके निर्गुणी सन्तकी वाणी और कृष्ण भक्त कवियोंके पदोंसे वस्तु तथा भावमें मिलते-जुलते हैं। वैसे, द्वैतमत-प्रतिष्ठापनाचार्य मध्वाचार्य कर्नाटकके ही हैं जिनकी शिष्य परम्परासे वल्लभाचार्यजीका सम्बन्ध अवश्य रहा होगा।

भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे कई हिन्दी—हिन्दुस्तानी शब्द कन्नड़ भाषामें आज प्रचलित हैं।

इधर कुछ कन्नड़-ग्रन्थोंका हिन्दीमें भी अनुवाद हुआ है। 'नागरिक' (नाटक: ले. एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति) का श्री दिवाकरने हिन्दीमें अनुवाद किया है। भारतीय साहित्य अकादमीकी तरफसे डॉ. हिरमण्यने कृष्णय्यरकी 'शान्तला' (उपन्यास) का हिन्दीमें अनुवाद किया है। आनन्द और कुवेम्पुकी कई कहानियाँ हिन्दीमें आई हैं। 'ईश्वर भी हँसा होगा'* (कुवेम्पु) को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके द्वारा प्रकाशित कहानी-संग्रहमें स्थान प्राप्त है। आनन्दकी एक कहानी 'पत्नीका पत्र'‡ (हेंडतिय कागद) १९३६ के 'हंस' में छपा था। पम्प-रामायणका हिन्दी अनुवाद 'दक्षिण भारत' (मद्रास) द्वैमासिक पत्रिकामें छपा था।

---

* अनुवादक : श्री कृष्णराव।

‡ अनुवादक : श्री हिरण्मय।

आजकल नई कन्नड़ भाषा-भाषी हिन्दीमें भी मौलिक रूपसे लिखने लगे हैं। लिखनेवालोंमेंसे श्री रंगनाथ दिवाकर, श्री गुरुनाथ जोशी, श्री सिद्धनाथ पन्त, प्रो. एम. एस. कृष्णमूर्ति, डॉ. हिरण्मय, श्री पं. वेंकटाचल शर्मा और श्री श्रीकण्ठमूर्तिके नाम उल्लेखनीय हैं।

कर्नाटकमें मौलिक हिन्दी साहित्यकी सर्जना अगले दशकमें होगी——ऐसी आशा है। तभी हिन्दी वास्तवमें सारे भारतकी राष्ट्र-वाणी बनेगी।

इस लेखके लिखनेमें निम्नलिखित पुस्तकोंसे काफी सहायता प्राप्त हुई है :—

(१) मैसूर राज्य——१, नवम्बर, १९५६ (मैसूर-राज्य–सरकार द्वारा प्रकाशित।)

(२) कन्नड़ कैपिडि—द्वितीय भाग (मैसूर विश्वविद्यानिलय : द्वितीय संस्करण।)

(३) मैसूर विश्वविद्यानिलयकी प्रचारोपन्यास-माला प्रचार-भाषा-मालामें प्रकाशित।

(४) कन्नड़ साहित्य चरित्रें——श्री प्रो. मुगळि (१९६० ई.)

(५) Vijayanagar Sexcentenary Commomeration Volume (Dharwar, 1936).

केरलकी हिन्दीको देन

श्री एन. वेंकटेश्वरन

केरलका भौगोलिक परिचय

केरल राज्य भारतके पश्चिम दक्षिण कोनेका एक अत्यन्त उपजाऊ एवं रमणीय प्रदेश है। यह छोटा-सा राज्य अपनी ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों, हरे-भरे जंगलों, कल कल करती नदियों, शस्य-श्यामल खेतों तथा सदाबहार नारियल, सुपारी, कटहल, आम आदिके फलोंसे लदे हुए पेड़ोंको लिए प्राकृतिक सुषमाकी अद्भुत प्रदर्शिनीके रूपमें विराजमान है। इस अनुपम सुन्दर छोटे-से देशकी पश्चिमी सीमामें गरजता हुआ अरब सागर सदा सर्वदा लहरें मारता हुआ दिखाई देता है। पूरबकी ओर भारतके पश्चिमी घाटके पहाड़ोंकी निविड पंक्तियाँ आकाशको चूमनेकी चेष्टा करती नजर आती हैं। इन्हीं पहाडोंको 'सह्य-पर्वत-माला' कहते हैं, जिनके विषयमें हमारे अत्यन्त प्राचीन पुराणों तथा सुविख्यात काव्य-ग्रन्थोंमें भी आकर्षक एवं मनोरञ्जक यथेष्ट वर्णन मिलते है।

केरल राज्यके उत्तरमें कन्नड प्रान्त अथवा मैसूर राज्य है। दक्षिणमे मद्रास राज्यका कन्या-कुमारी जिला है। भारतके स्वतन्त्र होनेके पश्चात् जब तक भाषावार प्रान्तोंका नवीन संगठन नहीं हुआ था तब तक कन्याकुमारीको भी पूर्ववत् केरलके अन्तर्गत ही माना जाता था। लेकिन वर्तमान समयमें तमिल भाषा-भाषी लोगोंकी अधिकता के कारण 'कन्याकुमारी' मद्रास राज्यके अन्तर्गत हो गई है। अतः आधुनिक केरल राज्य अरब समुद्र के किनारे-किनारे होकर उत्तरमे 'कासरकोट' से लेकर दक्षिणमें 'पारश्शाला' तक फैला हुआ प्रदेश है, जो अधिक चौड़ा न होनेपर भी काफी लम्बा अवश्य है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि केरल राज्यकी पूर्व सीमामें सर्वत्र पहाड़ ही पहाड़ हैं। उन पर्वतोंकी श्रेणियाँ इस राज्यके अन्दर भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। उनके नीचेकी कतिपय छोटी-बड़ी तराइयोंके रूपमें यह सारा देश निराले ढंगसे सुशोभित हो रहा है। इस राज्यके पूरबके उन गगनचुम्बी पहाड़ोंको पार करने पर उत्तरी कोनेमें हमको मैसूर राज्य मिलता है और शेष भागोंमें 'तमिलनाडु' अथवा मद्रास राज्यके कोयम्बत्तूर, मदुरा, रामनाड, तिरुनेलवेली, कन्याकुमारी आदि जिले हैं। वर्तमान केरल राज्यका क्षेत्रफल १५,००३ वर्गमील है और जन-संख्या १,६८,७५,४९९ है।

जिस प्रकार केरल राज्य 'पहाड़ोंका देश' कहा जा सकता है, उसी प्रकार इसको 'नदियों का देश' भी कह सकते हैं, क्योंकि सैकड़ों छोटी परन्तु गहरी नदियाँ पूरबके सह्य पहाड़से निकल कर पश्चिमकी ओर निरन्तर बहती रहती हैं। केरलकी ये नदियाँ कभी जलके अभावमें सूखती नहीं नजर आतीं क्योंकि यहाँ साल भरमें छह-सात महीनों तक बराबर वर्षा होती ही रहती है। पूरबसे निकलकर पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली ये सलिल-भरी सुन्दर नदियाँ या तो सीधे अरब समुद्रकी गोदमें शरण लेती हैं या उसके किनारोंकी छोटी-बड़ी खाड़ियों अथवा झीलोंमें गिरकर आत्म-समर्पण कर डालती हैं। इन नदियोंके संगमोंपर खाडियोंकी विशेष स्थितिके कारण केरलकी पश्चिमी सीमामें समुद्रके किनारे कुछ नैसर्गिक एवं उत्तम बन्दरगाह भी अवस्थित हैं। ऐसे बन्दरगाहोंमें बेक्कल, कण्णनूर, तलश्शेरी, बड़गरा, कोषिकोड, तिरूर, कोटुंगल्लूर, कोचिन, आलप्पी, कोल्लम, तिरुवनन्तपुरम, कोवलम आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इनमे कोचिनको ही सबसे श्रेष्ठ बन्दगाह मानते हैं। यह भारतके बड़ेसे बड़े बन्दरगाहों में एक बताया जाता है और इसको 'बन्दरगाहोंकी रानी' की पदवी भी दी जाती है। कोचिनका महत्व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिसे भी बहुत ही बड़ा माना जाता है। लोग कहते हैं कि बम्बईसे भी बढ़कर कोचिनमें एक उत्तम बन्दरगाहकी तमाम सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, क्योंकि यह एकदम प्राकृतिक बन्दरगाह है। नैसर्गिक होनेके अलावा मानवके प्रयत्नोंने भी इधर कुछ सालोंसे 'कोचिन' को पूर्वाधिक सुधारा और बढ़ाया अवश्य है। पहले कोचिनके पूरबकी तरफ जो झील थी, वह बहुत ही उथली थी। लेकिन कुछ वर्षों से मानवके प्रशंसनीय प्रयत्नोके कारण उस झीलको समुद्रकी-सी गहराई प्राप्त हुई है और उसके बीचमें मानव निर्मित एक छोटा, नया सुन्दर एवं सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न द्वीप भी बसाया गया है। कोचिनके इसी अभिनव द्वीपको "विल्लिंगटन द्वीप" (Wellington Island) कहते हैं। इसीमें वर्तमान बन्दरगाह व्यवस्था कार्यालय (Harbour Administration office), हवाई जहाजोंका अड्डा, रेलवे स्टेशन, नाविक-केन्द्र, समुद्री-व्यापारियोंके बड़े-बड़े गोदाम आदि भी बने हुए हैं। यही नाविक शिक्षाका सर्वप्रथम कालेज भी खुला है। झीलके पूरबके किनारेपर बसे एरणाकुलम शहरसे विल्लिगटन द्वीप तथा पश्चिमी किनारेके प्राचीन शहर 'कोचिन' तक पहुँचनेके लिए दो बड़े-बड़े पुल भी झीलके ऊपर बने हैं। यह अभिनव द्वीप ऐसी जगह पर बना है कि समुद्रसे बड़े-बड़े जहाज भी इसके तीनों तरफ झीलमें विश्राम पा सकते हैं और द्वीपके ठीक किनारेपर लग सकते हैं। इसलिए कोचिनका बन्दरगाह प्रकृतिकी कृपा और मानवके प्रयत्नोंके फलस्वरूप अत्यन्त सुन्दर उपयोगी एवं सम्पन्न बना हुआ है। भारतमें इसकी बराबरी करने लायक कोई दूसरा बन्दरगाह शायद ही होगा। स्वतन्त्र भारतमे समुद्री व्यापार और जल सेनाकी दृष्टिसे भी कोचिनका बड़ा महत्व है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतके व्यापारियोंके बीचमें इस बन्दरगाहका नाम केरलसे भी बढ़कर प्रसिद्ध बन गया है।

केरल राज्यकी भूमि बड़ी उपजाऊ है। यह नदियों, जंगलों और खेतोंसे भरी हुई सम्पन्न वसुन्धरा है। यहाँकी नदियाँ, पहाड़ोंसे सोना, अभ्रक, मोनोसइट आदि अनेक कीमती धातुएं तथा खनिज पदार्थ सतत प्रवाहके साथ लाकर हमें प्रदान करती हैं। केरलके जंगलोंमें हाथी, चीते, बाघ, हिरण, खरगोश आदि जानवर तथा कई प्रकारके उपयोगी पेड़-पौधे और औषधियाँ हैं। उन

पहाड़ी जानवरोंमें हाथी ही मुख्य हैं। हाथीको केरलकी बन भूमियोंकी अद्‌भुत एवं अनुपम विभूति मानते हैं। यहाँके जंगलोंमे तेक्कू (Teak), इरुमुल्लू, तम्बकम, अयनी वगैरह भवन-निर्माणके उपयोगी पेड़ तथा इलायची, काली मिर्च, अदरक, लवंग आदि बहुमल्य सुगन्धित पदार्थ प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं। यहाँकी उपजाऊ भूमिमे मुख्यत: धानकी खेती ही की जाती है। परन्तु धानके अलावा ईख, उड़द, तिल, टापियोक्का (एक प्रकारका मूलकन्द जो खाया जा सकता है।) वगैरह भी खूब पैदा होते हैं। केरलके फलदायक पेड़ोंमें नारियल ही सर्व प्रधान है। नारियलके पेड़को केरलके लोग 'कल्पतरु' मानते हैं और अपने बाग-बगीचोमे उसकी खेती भी खूब करते है। अतएव केरलमें सर्वत्र नारियल के पेड़ोंके जंगल ही जंगल दिखाई देते है और इसको कई लोग 'नारियलका राज्य' भी कहा करते हैं। आम, कटहल, सुपारी आदिके पेड़ भी यहाँ वहुत मिलते है। कितने ही देशी तथा विदेशी यात्रियोने इस सुन्दर देशकी प्राकृतिक सुषमा और वैभवसे मुग्ध होकर इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है।

केरलका ऐतिहासिक परिचय

पौराणिक दन्त-कथाओंके आधारपर यह माना जाता है कि केरलके आदि शासक महावलि थे और उनकी राजधानी 'तृक्काक्करा' थी, जो कोचिनके पूरबकी तरफ स्थित प्रसिद्ध शहर 'एरणाकुलम' के नजदीकका एक छोटा-सा गाँव है। 'तृक्काक्करा' मे इस समय भी भगवान "वामन" का एक मन्दिर है जिसको महाबलिके भूमि-दानका स्मृति-चिह्न मानते है। केरलके लोग आज भी महाबलिके सुशासनकी यादमें प्रति वर्ष "ओणम" त्योहार मनाते हैं और उस अवसरपर इसी मन्दिरके देव 'तृक्काक्करप्पन' (वामन) की पूजा भी करते है। यद्यपि इस प्रचलित कथा और प्रथाका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता है, तो भी केरलके लोग इन दोनोंको अब भी विशेष महत्व देते है। कहा जाता है कि महाबलिके जमानेमें शासनकी दृष्टिसे समूचा केरल एक अखण्ड राज्य माना जाता था और प्रजा सब प्रकारसे सुखी, सम्पन्न एवं सुशिक्षित थी।

जब हम पौराणिक कालके धुधले वातावरणसे इतिहासके उजालेमे आते है तब हमे यह पता चलता है कि आदि कालमे नम्पूतिरी ब्राह्मण लोग ही केरलमें शासन करते थे। वे ब्राह्मण राज-काज चलानेमे अत्यन्त निपुण थे। केरलमे उनके कुल चौसट गाँव थे जिनमेंसे एक सुयोग्य व्यक्ति शासकके रूपमे चुना जाता था। वह 'रक्षा पुरुष' कहलाता था और बारह वर्ष तक राज चलाता था। उस 'रक्षा पुरुष' की सहायता करनेके लिए 'तलियातिरी' नामके चार प्रादेशिक अधिपति मनोनीत किये जाते थे। चौसठ गाँवोंके चार विभाग थे और प्रत्येक विभाग 'तळि' कहा जाता था। उन विभागोंके प्रतिनिधि ही 'तळियातिरी' कहलाते थे। नम्पूतिरियोंकी यह शासन-प्रणाली बहुत दिनों तक सुचारु रूपसे चली। इतिहासज्ञ विद्वानोंकी राय है कि सम्राट अशोकके कुछ शिला-लेखोंमें केरलके 'रक्षा पुरुष' के शासनका सकेत मिलता है। जब आपसके झगड़ोंके कारण नम्पूतिरियोंका यह शासन-तन्त्र कमजोर पड़ गया तो उन्होंने निश्चय किया कि केरलके बाहरसे किसी सुयोग्य क्षत्रियको बुलाकर बारह साल तक उसको शासनका भार सौंप दिया जाए और उसके बाद दूसरे किसी राजाको बुला लिया जाए। इस निर्णयके अनुसार नम्पूतिरियोंने 'चोल', 'पाण्ड्य', 'चेर' आदि पड़ोसी तमिल देशके राजाओंको बारी-

बारीसे आमन्त्रित कर 'पेरुमाळ' के नामसे उन्हें केरलकी राजगद्दी अथवा 'रक्षा पुरुष के सिंहासन' पर बैठानेका क्रम बनाया। अतः 'रक्षा पुरुषोंके शासन-काल' के बाद पेरुमाळोंका शासन यहाँ कई सालों तक चलता रहा।

इस प्रकारका 'पेरुमाळ शासन-काल' केरलमें ११३ ई. पू. आरम्भ हुआ और ४२७ ईस्वी तक जारी रहा। पेरुमाळोंकी राजधानी पुराने बन्दरगाह और व्यापार-केन्द्र 'कोटुंगल्लूर' नगरमें थी। तमिल साहित्यमें इस नगर का "वञ्चि" नामसे उल्लेख मिलता है। इस राजधानी का असली नाम 'तिरुवंचिक्कुलम्' है। उनके जमानेमें बनाया गया एक शैव मन्दिर अब भी वहाँ मौजूद है। कहा जाता है कि केरलमें जब बुद्ध-मतका प्रचार हुआ, तब हिन्दू-धर्म की रक्षा करनेके लिए "कुशलशेखर" नामक एक पेरुमाळ राजाने इस मन्दिरका निर्माण करवाया। इस मन्दिरके आराध्य देव शिव हैं, जो पेरुमाळ राजाओंके कुलदेव माने जाते थे। आजकलके कोचिन राजवंशके लोग, जो पेरुमाळके उत्तराधिकारी माने जाते है, इस मन्दिरके भगवानको अपने कुलके परम आराध्य देव मानते हैं और उनकी विशेष पूजा भी करते हैं। इस मन्दिरमें अन्तिम चेरमान पेरुमाळ भास्कर रविवर्मा और उनके गुरु सुन्दरेश्वरकी मूर्तियाँ आज भी मौजूद है।

प्रायः सभी पेरुमाळ राजा बड़े सुयोग्य शासक रहे थे। उनका शासन-काल केरलका 'स्वर्ण-युग' माना जाता था। वे कला और साहित्य के पक्के प्रेमी और पोषक थे। उनके शासन-कालमें केरलमें खेती और उद्योग-धन्धोंकी बड़ी उन्नति हुई। समुद्री व्यापार को खूब प्रोत्साहन मिला। केरलके व्यापारी जावा, मलाया, चीन, जापान आदि सुदूरके पूर्वी प्रदेशोंमें भी अपनी नावों द्वारा माल-असबाब पहुँचाते थे। व्यापारकी वृद्धि और प्रचारके कारण देशकी धन-दौलत खूब बढ़ी और प्रजा सुखी व सम्पन्न हुई। पश्चिमी देशोंसे यहूदी और ईसाई लोग भी 'पेरुमाळ-काल' में केरल पहुँचे और उन विदेशी लोगोंने यहाँ काफी अच्छा स्वागत-सत्कार भी अवश्य प्राप्त कर लिया। पेरुमाल शासकोंने ईसाई, मुसलिम, यहूदी आदि अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ हमेशा उदारता और मैत्रीका व्यवहार किया था।

पेरुमाळोंमे अन्तिम शासकका नाम भास्कर रविवर्मा था। वे 'चेर' देश से बुलाया बुलाये गए थे जिससे उनको "चेरमान पेरुमाळ" भी कहा करते थे। वे इतने नीतिज्ञ और जनप्रिय शासक थे कि बारह सालकी पूर्व निश्चित साधारण अवधिकी पूरी समाप्तिपर भी उन दिनोंके केरलवासी लोगोंने उनको वापस नही जाने दिया, बल्कि उनसे प्रार्थना की, कि वे अपने अन्तिम दिनों तक केरलमें ही रहें और यहाँ का शासन-कार्य खूब सम्भालते रहे। अपनी प्रिय प्रजाके अनुरोध और प्रार्थनाको मानकर भास्कर रविवर्माने छत्तीस साल तक यहाँका राज-काज सम्भाला। उस समयके प्रमुख नम्पूतिरी नेताओंने उनको केरलका स्थायी राजा बनाकर अभिषिक्त भी किया था। अपनी मृत्युके पहले ही भास्कर रविवर्माने केरलके प्रादेशिक सामन्तों और शासकोंको उन-उन विभागोंका शासन-एकबार स्वतन्त्र रूपसे स्वयं सम्भालनेकी स्वयं शिक्षा भी दी, जहाँके वे अधिकारी माने जाते थे। अतः 'पेरुमाळ—काल' के बाद 'सामन्त-काल' लानेका उत्तरदायित्व भी अन्तिम पेरुमाळका माना जा सकता है।

भास्कर रविवर्माकी बहनका विवाह 'पेरुम्पटम्प्पु' नामक एक बहुत बड़े प्रतिष्ठित और सम्पन्न ब्राह्मण-परिवारके नम्पूतिरी युवकसे हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि भास्कर रविवर्माने अन्तिम दिनों

में अपनी उसी बहनके पुत्र अथवा अपने प्रिय भानजेको ही अपने राज्यके मध्य-भागका उत्तराधिकारी और शासक बनाया। उसी भानजेके कुलका नाम आगे चलकर 'पेरुम्पटप्पु स्वरूपम्' पड़ा और उसी वंशकी परम्पराके राजा लोग बहुत सालों तक मध्य केरल अथवा 'कोचिन राज्य' के शासक रह सके। यहाँ तक कि अँग्रेजोंके बाद भारतके स्वतन्त्र होने तक उनका राज्य किसी न किसी प्रकारका कायम रहा और उनकी प्रतिष्ठा और प्रभुता बनी रही।

अन्तिम पेरुमाळ भास्कर रविवर्माके बाद केरलमें सामन्त राजाओंकी प्रधानता रही। यद्यपि पहले ऐसे सामन्तोंकी संख्या पचास तक रही थी, तो भी उनमें सोलह-सत्रह ही प्रमुख माने जाते थे, जिनमें एरनाट, वल्लुवनाट, ओणाट, पषश्शी, सामोतिरी, पेरुम्पटप्पु, कटत्तनाटु, वेणाटु, चम्पकश्शेरी, तेक्कुकूर, वटक्कुंकूर, पन्तलम आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय रहे थे। इन सामन्तोंके शासन-कालका इतिहास इतना बड़ा और बिखरा हुआ है कि यहाँ पर उसका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय देना भी कठिन प्रतीत होता है। ये सामन्त राजा अपने-अपने प्रदेशके सफल शासक और वीर पुरुष माने जाते थे। उनकी वीरता, शासन-पटुता और कुलीनताके विषयमें कई प्रकारकी मनोरञ्जक बातें प्रचलित है। सामन्त राजाओंके शासन-कालको 'सामन्त-काल' कह सकते है। उस जमानेमें प्रबल सामन्तोंके बीच पारस्परिक युद्ध और पारिवारिक संघर्ष बहुत ज्यादा होते थे। प्रत्येक सामन्त राजा अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ मानते थे और अपने पड़ोसी राजासे लड़कर अपने प्रदेशकी सीमा बढ़ाने, अपने वंश और कुलकी श्रेष्ठता और उच्चता साबित करने तथा प्रभुता और प्रतिष्ठा पानेका प्रयत्न करते थे। अत. उनके आश्रयमें रहनेवाली प्रजा भी "यथा राजा तथा प्रजा" की उक्तिको सत्य साबित करनेमें तन-मनसे तत्पर रहती थी। उन दिनों देशमें प्रत्येक स्थानपर वीरोंका सम्मान किया जाता था। वीर-रस-पूर्ण काव्योंका निर्माण और प्रचार सामन्त-कालकी विशेषता थी। उस युगमें केरलकी स्त्रियाँ भी लड़ाईके क्षेत्रोंमें पुरुषोंके बराबर बहादुरी और साहसके साथ युद्ध–कला प्रकट करती थीं और वीर-स्वर्ग पाना अपने गौरवकी बात मानती थीं। सामन्त राजाओंकी तरह रानियाँ भी सेना-सञ्चालन और शत्रुसे डटकर युद्ध करना अपना कर्तव्य समझती थीं। सामन्त-कालमें आपसकी लड़ाइयोंकी तरह समय-समयपर पाश्चात्य देशोंसे आए पुर्तुगीज, डच, फ्रांसीसी, अँग्रेज आदि विदेशी आक्रमणकारियों तथा अधिकार-लोलुप व्यापारियोंसे भी युद्ध हुआ करते थे, जिनमें कभी-किसी सामन्त राजा की जीत होती, तो कभी उन आगन्तुक व्यापारियों तथा आक्रमणकारियोंकी। एक प्रकारसे वह युग केरलके इतिहासमें संघर्षोंका ही युग माना जा सकता है। उस युगमें केरलमें जितना सैनिक शिक्षा और शस्त्रों-अस्त्रोंके अभ्यासका प्रचार हुआ, उतना और किसी युगमें नहीं हुआ था। वह वास्तवमें 'युद्ध-कला और वीर-पूजा' का ही युग था।

केरलके सामन्त राजाओंके बीचमें कोषिकोडके सामोतिरी, कोचिनके राजा तथा वैणाट अथवा तिरुवितांकूरके राजा—ये तीनों सबसे प्रबल और प्रतापी माने जाते थे, क्योंकि इन तीनोंकी राजसत्ता बहुत दिनों तक कायम रहती थी। इन तीनों राजाओंके प्रताप और शासनके विषयमें इतिहासमें बहुत सी बातें मिलती है। वेणाट वंशके राजाओंमें वीरवर मार्तण्ड वर्माका नाम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध माना जाता है, क्योंकि उन्हींकी युद्ध-कुशलता और बहादुरीके कारण विशाल 'तिरुवितांकूर' राज्यकी स्थापना हुई थी, जो स्वतन्त्र भारतमें भाषावार प्रान्तोंके बनने तक कायम रही थी। उसके बाद 'कोच्चिन' (कोचिन) राज्यका

नाम लिया जा सकता है। जिसकी स्थापना करनेमें 'शक्तन् तम्पुरान' का विशेष हाथ रहा था। 'तिरु-वितांकूर' और 'कोचिन' इन दोनों राज्योंके राजाओंकी शासन-पटुता और प्रजा-प्रेमके विषयमें बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं। ये दोनों राजवंश अब भी विद्यमान है और इनको वर्तमान भारत सरकार भी पेन्शन आदि देकर खूब सम्मानित करती है। 'सामोतिरी' और 'पषश्शी' राजाओंकी प्रभुता अँग्रेज-राजके होने तक ही रही थी। अँग्रेज सरकारने उन राजवंशके लोगोंको, अन्य कई सामन्त राजाओं को जिस प्रकार पेन्शन देकर सन्तुष्ट कर रखा था, उसी प्रकार बड़ी रकम प्रतिवर्ष पेन्शनके रूपमें देनेकी व्यवस्था की थी। इस प्रकार पेन्शन पानेवाले कई सामन्त राजाओंके वंशके लोग इस वक्त भी केरलमें मिलते हैं। ऐसे राजवंशोंके लोग काफी सम्पन्न और सुखी रहते हैं और उनके कुटुम्बोंको अब भी लोग आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। वे अपने-अपने देशके जमीनदार या जागीरदारके रूपमें सुखसे जीवन बिताते है।

सामन्त-कालके समाप्त होते-होते केरलमें अँग्रेजोंकी सरकार कायम होने लगी। उत्तर केरल अथवा मलबारमें उनका पूरा आधिपत्य हो गया, क्योंकि वहाँके सामन्त 'सामोतिरी', 'पषश्शी' आदि राजाओंको उन्होंने बुरी तरहसे परास्त कर उनका राज्य अपने अधीन कर लिया। लेकिन मलबारके दक्षिण भागमें जो 'कोचिन' और 'तिरुवितांकूर' नामक प्रबल राज्य थे, उनके राजाओंको अँग्रेजोंने युद्धमें हरानेके बदले कूटनीतिके बलपर अपने काबूमें कर लिया और उनसे सन्धि कर ली। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार उन दोनों राजाओंको अपने राज्यपर शासन करनेका अधिकार प्राप्त हुआ और वे भारतसे अँग्रेजोंके चले जाने तक अपने-अपने राज्यके राजा माने गए। लेकिन भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद देशकी परिस्थिति बदल गई और भाषावार प्रान्तोंका नवीनतम संगठन भी हो गया, तो इन राजाओंके हाथसे शासनका अधिकार चला गया और राजतन्त्रके स्थानपर प्रजातन्त्रका आगमन भी हो गया। अतः इन दोनों राजाओंको अपना अधिकार छोड़ना पड़ा। इतिहास बताता है कि इन दोनों राज्योंमें जो राजतन्त्र-शासन कालों तक चल रहा था, वह काफी अच्छा और प्रशंसनीय रहा था और यहांके राजाओंके अधीन भी लोग बहुत सुखी और सन्तुष्ट रहते थे।

भाषावार प्रान्तोंके संगठनके कारण जबसे मलयालम भाषा-भाषी जनताके लिए नया केरल राज्य स्थापित हुआ, तबसे उपर्युक्त दोनों रियासतोंको उसी नवीन विशाल केरलमें विलीन होना अनिवार्य हो गया। इसलिए 'कोचिन' और 'तिरुवितांकूर' का स्वतन्त्र अस्तित्व इस वक्त नहीं है। ये दोनों राज्य, और मलबार वर्तमान राज्यके अभिन्न अंग बन गए हैं। लेकिन पुराने तिरुवितांकूर राज्यके 'कन्याकुमारी' और इर्द-गिर्दके प्रदेश इस वक्त तमिलनाडु अथवा मद्रास राज्यके अन्तर्गत माने जाते हैं, क्योंकि वहाँके अधिकांश लोग तमिल बोलते हैं। इस प्रकार वर्तमान 'केरल राज्य' मलयालम भाषा-भाषी लोगोंका राज्य माना जाता है, यद्यपि इसमें काफी तादादमे अन्य भाषा-भाषी भी रहते हैं।

केरल राज्यका सदर मुकाम तिरुवनन्तपुरम शहर है जो पुराने तिरुवितांकूर राज्यका राज-नगर था। इस वक्त केरलका हाईकोर्ट एरणाकुलममें है, जो पुराने कोचिन राज्यका सदर मुकाम रहा था और जिसके पश्चिम भागमें 'कोचिन' नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह और प्राचीन शहर भी बसे हुए हैं।

मलबारका कोषिकोड नगर, जो सामोतिरी राजाओंके जमानेमें व्यापार और शासनका केन्द्र रहा था, इस वक्त भी काफी महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि उसको केरलका प्राचीनतम शहर कहते है।

स्वतन्त्र भारतके अन्य राज्योंकी तरह केरलका वर्तमान शासन भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके एक मन्त्री-मण्डलके जरिये चल रहा है। श्री पट्टमताणु पिल्लै इस वक्त केरल राज्यके मुख्य मन्त्री और श्री वी. वी. गिरि यहाँके राज्यपाल है। पुराने 'कोचिन' और 'तिरुवितांकूर' के राजाओंका इस समय शासनके कार्यमे विशेष कोई अधिकार नही है, यद्यपि वे दोनों अभी भी 'राजा' ही कहलाते हैं। हाँ, वे भारत सरकारसे प्राप्त होनेवाली पेन्शनकी बड़ी रकमके अलावा अपनी निजी जायदाद और महलोंके मालिक अवश्य माने जाते है।

केरलके लोग

केरलके सबसे आदिम निवासियोंकी परम्परामें 'चेरुमर', 'पुलयर' आदि पुरानी द्राविड़ जातिके लोग इस समय भी मिलते है, जो अपनी आजीविकाके लिए प्राय: खेती-बारीके काम करते है। उसी परम्पराके 'मलयर', 'नायाटी', 'काटर' आदि कुछ असभ्य लोग है, जो ज्यादातर जंगलोंमें रहते है और शिकार द्वारा अपनी उपजीविका चलाते है। ये दोनों प्रकारके आदिम निवासी ज्यादा अशिक्षित और गरीब है। अपनी परम्परागत रूढ़ियों और रीति-रिवाजोंके कारण ये लोग सभ्य समाजसे सदा दूर रहते हैं। लेकिन आजकल विशेष प्रकारसे परिगणित और पतित जातियोंके उद्धारके देश-व्यापी प्रयत्नोंके फलस्वरूप इन लोगोंकी दशा भी धीरे-धीरे सुधरती जा रही है। इन आदिम निवासियोंकी संख्या भी काफी बड़ी है।

प्राचीन कालमें भारतके अन्य प्रान्तों तथा यूरोप, अरब आदि विदेशोंसे जो लोग विभिन्न समयपर केरलमें आकर आबाद हुए थे, उनको इतिहासके विद्वान 'अभ्यागत लोग' के नामसे पुकारते है। ऐसे अभ्यागत लोगोंमें 'नम्पूतिरी' और 'नायर' जातिके लोग सबसे प्राचीन और प्रमुख माने जाते है। 'नम्पूतिरि' शुद्ध आर्य रक्तके ब्राह्मण समझे जाते है, तो 'नायर' आर्य और द्राविड़के मिश्रित रक्तके शूद्र। केरलके प्राचीन इतिहाससे पता लगता है कि यहाँ पहले कई शताब्दियों तक 'नम्पूतिरी' और 'नायर' लोगोंकी विशेष प्रधानता और प्रतिष्ठा रही थी और उनके अधीन 'पुलयर', 'चेरुमर' आदि आदिम निवासी लोग किसान और मजदूर बनकर गुलामोंकी तरह दिन काटते थे।

केरलके 'नम्पूतिरियों' के विषयमें कहा जाता है कि पौराणिक कालमें भगवान परशुरामने क्षत्रिय-हत्याके पापोंसे स्वयं मुक्ति पानेके इरादेसे समुद्रके भीतरसे अपने परशुको फेंककर केरल प्रदेशको बाहर निकाल लिया और ब्राह्मणोंको उसे दानमें दे दिया। जिन ब्राह्मणोंको केरलकी भूमि प्राप्त हुई, उनको 'नम्पूतिरी ब्राह्मण' का नाम भी दिया था। परशुरामने केरल-भूमिपर शासन करनेका सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हीं 'नम्पूतिरी-ब्राह्मणों' को दिया था। केरलमें उनको स्थायीरूपसे अधिवसित करनेके उद्देश्यसे भगवान परशुरामने 'नम्पूतिरी ब्राह्मणों' की चोटी सामनेकी ओर बढ़ानेकी एक नई रीति भी प्रचलित कर डाली थी, जिससे यदि वे कभी केरल छोड़कर अपने पुराने देश या अन्यत्र कहीं चले जाते तो वहाँसे एकदम जाति-भ्रष्ट लोगोंकी तरह लाचार होकर उनको केरलकी ही तरफ लौट आना पड़ता था।

ब्राह्मण होनेपर भी 'नम्पूतिरियों' में कुछ खास खानदानोंके लोगोंको राज्य-रक्षाके लिए आवश्यक क्षत्रियोचित सैनिक-शिक्षा और शस्त्र-विद्याका अभ्यास पानेकी विशेष अनुमति और सुविधा भी पहले दी गई थी। अतः केरलमें आज भी 'यात्रा नम्पूतिरी' नामक कुछ विशेष प्रकारके ब्राह्मण है, जिनमें आज भी 'आयुधमेटुक्कल' (शस्त्र-ग्रहण) नामका एक खास रिवाज प्रचलित है। यह प्रथा उनकी पुरानी युद्ध-यात्राकी प्रतीक मानी जाती है। 'यात्रा नम्पूतिरियों' को पहले अन्य नम्पूतिरीयोंकी तरह वैदिक शिक्षा पाना अनिवार्य नही था। वे केवल 'सन्ध्यानुष्ठान' करने मात्रकी साधारण-सी शिक्षा पाकर अपना शेष समय शस्त्राभ्यास और राजनीतिके कार्यमे लगाते थे।

कहा जाता है कि जब पहली बार 'नम्पूतिरि' लोग केरलमें आकर रहने लगे थे, तब अपनी परिचर्या और सेवा-शुश्रूषाके लिए कुछ शूद्र वर्णके लोगोंको भी साथ ले आए थे। उन्हीं शूद्रोंको 'नायर' कहते हैं। 'नायर' लोग यहाँ आकर 'नम्पूतिरी-ब्राह्मणों' की सेवाके अलावा देशके शासन-सम्बन्धी अन्य कार्य भी करते थे जिससे वे देशके 'नायक' भी माने जाने लगे। 'नायर' शब्द "नायक" का तद्भव रूप है। प्राचीन कालमे केरलके नायर लोग बड़े बहादुर-योद्धा थे। नायरोंमे बहुतसे कुशल सेना-नायक भी हुए थे। केरलमें समय-समयपर सामन्तोके बीच जितने पारस्परिक युद्ध हुए थे, उन सबके वर्णनमें यहाँ के नायरोंकी बहादुरी और साहसकी घटनाओंका विशेष उल्लेख मिलता है। अँग्रेजोंके शासन-कालमें भी केरलकी 'नायर-सेना' का विशेष सम्मान किया जाता था। वास्तवमें 'नायर' जातिके लोग बड़े बहादुर और साहसी हैं। इस समय भी केरलमें नायरोके कई बड़े-बड़े प्राचीन खानदान है। उन खानदानों-के लोगोको 'नायर' के अलावा अन्य कई प्रकारके आदरपूर्ण नामोंसे भी सम्बोधित करनेकी प्रथा प्रचलित है। वे तमाम शब्द मलयालममें 'सेना' अथवा 'शासन' सम्बन्धी सम्मान-भावके द्योतक है। उनमे "कर्त्ता, मेनोन, पणिक्कर, अच्चन, कुरुप, नम्पियार" आदि इस समय भी प्रचलित है। सरदार के. एम. पणिक्कर, श्री वी. के. कृष्ण मेनोन आदि इन्हीं खानदानोंकी परम्परामेंसे है।

ऐतिहासिक युगके आरम्भमें केरलकी तमाम भूमिपर यहाँके नम्पूतिरियोंका ही एक मात्र अधिकार था। वे अपनी खेती-बारीके काम 'पुलयर', 'चेरुमर' आदि गुलामोंसे कराते थे। उन कार्योंकी देख-रेखका भार नायरोंको सौपा गया था। अपने कार्यके लिए नायरोंको नम्पूतिरियोंकी ओरसे यहाँकी जमीनपर कुछ विशेष प्रकारके अधिकार प्राप्त थे। "काणम्", "पाट्टम्", "पुरप्पाटु" आदि केरलमें इस समय भी प्रचलित भूमि सम्बन्धी जो अधिकार और कानून है, उनका आरम्भ इस युगमें हुआ था। उन दिनो जमीनके मालिक 'नम्पूतिरी' को "जन्मी" अर्थात् जमीनदार कहते थे। उनके अधीन जो किसान थे, उनको "कुटियान" (आसामी) नामसे पुकारते थे। एक "जन्मी" के कई "कुटियान" थे, जिनके अधीन अनेकों गुलाम काम करते थे। केरलमें जो "जन्मी-कुटियान" बिल नए हिन्दू कोड के बनने तक अमलमें था, उसका आधार यहाँकी ऐसी पुरानी प्रथाओंको मानना पड़ता है। 'पेरुमाळों' के शासन-कालके बाद जो कई सामन्त राजा केरलमें थे, उनके वंशज यहाँके प्राचीन क्षत्रिय माने जाते है। ऐसे क्षत्रियोंके परिवार इस समय करीब सौ-डेढ़ सौ तक ही है। ये क्षत्रिय लोग काफी सम्पन्न और सुशिक्षित है। ये अपने नामके साथ 'वर्मा' शब्द जोड़ते है। इनमें अच्छे-अच्छे कवि, साहित्यकार, चित्रकार और संगीतज्ञ भी मिलते है।

नम्पूतिरी और नायर लोगोंकी तरह केरलके निवासियोंमें प्रधान लोग 'ईषवर', 'चान्नार' या 'तीय्यर' है। विद्वानोका कहना है कि ये पहले सिंहल-द्वीपके निवासी थे और केरलके एक पुराने शासक 'चेरमान पेरुमाळ' के आदेशको मानकर सिहल-राजाकी अनुमति लेकर यहाँ आ बसे थे। इनके 'ईषवर' और 'तीय्यर' नाम इनके आदिम जन्म-देश 'सिहल-द्वीप' के सूचक है, क्योंकि "सिहलर" 'ईषवर' बना होगा और "द्वीपर" 'तीय्यर'। इन लोगोंका जातीय धन्धा नारियलके पेड़ोंकी खेती करना है। नारियलसे ताड़ी निकालना भी इनका मुख्य काम रहा है। 'ईषवर' या 'तीय्यर' लोगोंकी संख्या केरलमें नायरोंकी अपेक्षा ज्यादा है। ये नायरोंके बराबर पढ़े-लिखे और प्रबल भी हो रहे हैं। इनमें कई सम्पन्न खानदानके लोग है, जो अच्छे व्यापारी, ठेकेदार और ओहदेदार भी हुए है। 'ईषवरों' तथा 'तीय्यरों' की तरह समुद्रके किनारे 'अरयर' और 'वालर' नामक मछुए लोग भी रहते है। उनका मुख्य काम मछली पकड़ना और उसीका व्यापार करना है। केरलमें उनकी संख्या भी कम नही है।

केरलके पड़ोसी तमिलनाडुसे कई तमिल भाषा-भाषी ब्राह्मण तथा अन्य जातिके लोग 'पेरुमाळों' के जमानेसे यहाँ आया-जाया करते थे। उनमें कुछ विद्वान एवं राजनीतिज्ञ ब्राह्मण यहाँके राजाओंके दरबारोंमें मन्त्रणा देते थे अथवा अन्य प्रकारके छोटे-मोटे राज-काज करते थे, तो बाकी लोग यहाँ व्यापार करनेमें लगे हुए थे। उन ब्राह्मणोंके कई परिवार केरलमें बस गए और इस समय यहाँ उनकी परम्पराके बहुतसे लोग मिलते हैं। उन दिनों तमिल भाषा-भाषी अन्य जातिके कई लोग भी यहाँ मजदूर, व्यापारी, किसान बनकर स्थायी रूपसे रहने लगे थे, जिनकी परम्पराके लोग इस वक्त भी कम नहीं हैं। इसी प्रकार 'कन्नड़ी' अथवा 'तुळु' बोलनेवाले 'उडुप्पी' तथा 'मंगलोर' देशके कुछ ब्राह्मण 'एम्ब्रान्तिरी' लोग भी केरलमे स्थायी रूपसे रहते हैं। वे अक्सर यहाँके मन्दिरोंमें पुजारीका काम करते हैं, या होटल चलाते है। केरलके समुद्रके किनारे जो प्रमुख शहर है, उनमें 'कोंकिणी' नामक जातिवाले बहुत लोग रहते है जिनमें कुछ लोग सारस्वत ब्राह्मण है और शेष अन्य जातिके। 'कोंकिणी" लोगोंकी भाषा 'कोंकणी' है, जो एक प्रादेशिक बोली मात्र है। कहते है "गोवा" और आसपासके "कोंकण" नामक प्रदेशमें वे लोग रहते थे और पोर्तुगीजके शासन-कालमे इनको अपने धार्मिक आचार-विचारोंके पालन करनेमें अनेक कष्ट झेलने पड़े। वहाँके ईसाई शासकोंके कट्टर धर्म-प्रचारकी आँधीसे अपने धर्मको बचानेके लिए ये लोग अपना देश छोड़कर दक्षिणकी तरफ अपनी-अपनी नावोंमें चल पड़े और केरलके किनारे तलश्शेरी, कण्णूर, कोषिकोड, कोचिन, ऋांगनूर, आलप्पुषा, कोल्लम आदि बन्दरगाहोंमें आकर उतरे। इस प्रकार यहाँके उदार सामन्त राजाओंकी शरणमें आनेके कारण उनको यहींपर स्थायी रूपसे रहकर व्यापार आदि करनेकी सुविधा प्राप्त हुई। उन दिनोंके राजाओंकी उदारतासे इन लोगोंको काफी जमीन और सम्पत्ति भी प्राप्त हुई। इन लोगोंके लिए अलग मन्दिर बनवाने तथा उनमें दैनिक पूजा आदि करानेके लिए आवश्यक धन भी उन सामन्त राजाओंने प्रदान किया था। उन मन्दिरोंमें 'मट्टांचेरी-कोचिन' में जो बड़ा वैष्णव मन्दिर है, वही सबसे प्रसिद्ध और सम्पन्न माना जाता है।

विदेशोंसे आकर केरलमें जो लोग स्थायी रूपसे बस गए हैं, उनमें यहूदी और सिरियानी और ईसाई प्रधान है। ईसाइयोंने समय-समयपर यहाँके बहुतसे हिन्दुओंको भी अपने धर्ममें मिलाकर अपने संघको बढ़ाया और संगठित किया। केरलके वर्तमान कई ईसाई खानदानोंके लोग अपनेको पुराने नम्पूतिरियोंके प्रतिष्ठित

वंशज बताया करते हैं। वे अपने घरोंके नाम तथा कई विशेष रस्म-रिवाजोंका प्रमाण देकर इसका समर्थन भी करते हैं। 'कुन्नम्कुलम', 'मलयाट्टूर', 'कोटुंगल्लूर', 'कोट्टयम', 'तिरुवल्ला' आदि स्थानोंमें ईसाई गिरजे सर्व प्रथम स्थापित हुए और वहाँ ईसाई धर्मावलम्बी लोगोंकी संख्या बहुत बढ़ गई। केरलके पुराने राजा लोग भी ईसाइयोंसे बड़ी मित्रता और उदारताका सलूक किया करते थे। इसलिए उनकी प्रभुता और प्रतिष्ठा यहाँ बड़ी आसानीसे बढ़ गई और आज केरलमें ईसाई लोग इतने अधिक प्रबल और प्रतिष्ठित माने जाते हैं कि यहाँके प्रत्येक शासन-कार्यमें उनका हाथ विशेष रूपसे अवश्य रहता है। ईसाईयोंके कई संगठन (रोमन काथलिक, सिरियन, प्राटस्टन्ट आदि) भी केरलमें बहुत मजबूत बन गए हैं।

मलबार में मुसलमान लोग भी बहुत रहते हैं। कहा जाता है कि ये पहले अरब देशसे यहाँ आए और यहाँके लोगोंके साथ हिलमिलकर रहने लगे। इतना ही नहीं, बहुतसे हिन्दुओंको अपने धर्ममें मिलानेका कार्य भी बड़ी सफलतासे किया। इस तरह अपने दलकी संख्या बढ़ाने तथा इस देशमें अपनेको प्रबल बनानेमें वे पूरी तरहसे कामयाब हुए। वे मलयालममें अरबी शब्दोंको मिलाकर बोलते हैं और उनकी भाषाको 'माप्पिला-मलयालम' का विशेष नाम भी प्राप्त हुआ है, क्योंकि इन मुसलमानोंको अन्य लोग "माप्पिला" या "जोनक" (यवनक) कहते हैं। आजकल गुजराती तथा मारवाड़ी व्यापारी लोग भी केरलमें काफी संख्यामें पाये जाते हैं; फिर भी बौद्धों और जैनियोंकी संख्या कम है।

केरल राज्यके निवासियोंके इस संक्षिप्त परिचयसे हम एक विशेष बात जान सकते हैं कि यहाँ नम्पूतिरी, नायर, तीय्यर जैसे हिन्दुओंके साथ ईसाई और मुसलमान लोग भी मिल-जुलकर रहते हैं; फिर भी यहाँ बहुत कम साम्प्रदायिक झगड़े हुए हैं। जाति-भेद, भाषा-भेद या धर्म-भेदके कारण आपसकी घनिष्ठता कभी कम नहीं होती। यहाँ अन्यान्य धर्मावलम्बियोंके सुन्दर सम्मिश्रणसे केरलमें एक नया सांस्कृतिका विकास हुआ है, जिसे हम एकदम केरलकी अपनी विशेषता कह सकते हैं।

केरलकी भाषा और साहित्य

केरलके अधिकांश लोगोंकी मातृभाषा मलयालम है। मलयालमको अपनी जन्म-भूमिके नामके आधारपर कई लोग 'कैरली' भी कहते हैं। यद्यपि 'कैरली' अपनी बड़ी बहन 'तमिल' भाषाके बराबर अत्यधिक पुरानी अथवा प्राचीनतम भाषा नहीं मानी जाती है और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व केवल ९०० ईस्वीके करीब ही साबित किया जा सकता है, तो भी उसका व्याकरण और शब्द-समूह तमिलकी अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक एवं सर्वांग पूर्ण है। दक्षिण भारतकी प्राचीन द्राविड़-भाषाके कुलमे जन्म लेनेपर भी मलयालमपर अपनी जननीकी अपेक्षा धात्री संस्कृत-भाषा का बहुत अधिक प्रभाव दीख पड़ता है। प्राचीन मलयालममें भी उत्तर भारतकी कई प्रमुख भाषाओंकी तरह संस्कृतके सैकड़ों शब्द अपने तत्सम और तद्भव रूपोंमें पाये जाते हैं।

मलयालमकी वर्णमाला संस्कृतके समान ही है। दो-चार वर्ण अधिक भी मिलते हैं। मलयालमकी अपनी अलग लिपि भी है, जो अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण है। यद्यपि नागरी लिपिमें मलयालमकी सम्पूर्ण ध्वनियाँ नहीं हैं, तो भी उसके सहारेसे मलयालम भाषा अच्छी तरह लिखी और पढ़ी जा सकती है। लेकिन दो-चार वर्णोंके लिए मलयालमके नागरी-लिपिमें कुछ विशेष प्रकारके चिन्होंका

उपयोग भी करना पड़ेगा। अतः भारतकी राष्ट्र-लिपि अथवा सामान्य-लिपिके रूपमें नागरी-लिपिको अपनानेके प्रस्तावका विरोध शायद ही मलयालमके भक्त लोग करेंगे। केरलके कई वर्तमान प्रगतिशील, विकासोन्मुख विचारकों, साहित्यकारों तथा भाषा-प्रेमियोंने भारतकी सामान्य-लिपिके रूपमें नागरी लिपिको स्वीकार करनेके उपयोगी एवं महत्वपूर्ण प्रस्तावका दिलसे समर्थन भी किया है।

मलयालमका प्राचीनतम साहित्य 'लोक-गीतों' का माना जाता है। लोक-गीतोंकी भाषा आधुनिक मलयालमसे एकदम भिन्न थी। उस समयकी भाषाका नाम ही दूसरा था, क्योंकि मलयालमका स्वतन्त्र, सुन्दर रूप उन गीतोंमें पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं हुआ था। उन दिनोंकी उस भाषाको 'मलयाम्-तमिल' कहते थे। कुछ लोगोंका कहना है कि वह तमिल भाषाकी एक प्रादेशिक बोली मात्र थी। लेकिन वास्तवमें 'मलयाम्-तमिल' मे रचे हुए उन प्राचीन गीतोंमें तमिल भाषासे बहुत कुछ भिन्न एक स्वतन्त्र प्रकारकी बोली का विकासोन्मुख रूप अवश्य प्राप्त होता है, जिसका नाम ही आगे चलकर 'मलयालम' पड़ा था। अतः उन लोक-गीतोंको यदि मलयालमके प्रेमी ऐतिहासिक विद्वान मलयालमकी प्राचीन सम्पत्ति बताते है, तो तमिल के अनन्य आराधक उन्हें अपनी भाषाकी पुरानी पूंजी माननेका दावा भी अवश्य करते है। वे लोक-गीत तत्कालीन किसान रमणियोंके गानेके लिए रचे गए थे, जिनमें केरलके प्रकृति-सौन्दर्य, प्रेम, विरह, विनोद आदिके मनोज्ञ एवं मधुर वर्णन मिलते है। लेकिन उन गीतोंका कोई अच्छा प्रामाणिक संग्रह अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। केवल देहाती लोग गाया करते है।

उपर्युक्त लोक-गीतोके बाद मलयालममें 'पाट्टुकल्' नामक विशेष प्रकारका साहित्य मिलता है। तत्कालीन लोगोंको आनन्द प्रदान करने तथा सत्प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे विविध विषयोंपर रचे गए खास प्रकारके गानोंको 'पाट्टुकल्' कहते है। उन गानोंमें देवोंकी कथाएँ, वीर पुरुषोंकी जीवनियाँ, विनोद भरी सामयिक बातें, भगवानकी स्तुति, देश-भक्ति, बेकारी, गरीबी आदि विविध विषय वर्णित है। मलयालम भाषाका स्वतन्त्र रूप सबसे पहले उन्हीं 'पाट्टुकल्' नामक रचनाओंमें ही प्रकट हुआ है, जो तमिलसे थोड़ा-बहुत प्रभावित होनेपर भी उससे बिलकुल भिन्न अवश्य है। उस समयकी मलयालममें सर्वनाम, विशेषण, क्रियाओके रूपान्तर, विभक्तियाँ, कारक, प्रत्यय, क्रिया विशेषण आदि करीब-करीब आधुनिक मलयालमके अनुरूप ही पाये जाते है। अतएव 'पाट्टुकल्' को मलयालम साहित्यकी सम्पत्ति माननेमें कहीं किसी प्रकारका विरोध होना सम्भव नहीं है।

ये 'पाट्टुकल्' कई प्रकारके मिलते है। उनमे देवियोंको प्रसन्न करनेके लिए रचे गए मनोरञ्जनके गाने ज्यादा है, जिनमें काम, रति, वसन्त, नख-शिख आदि शृंगार-रस-प्रधान विषय वर्णित है। पौराणिक कथाओंपर निर्मित गाने भी कम नहीं हैं। उनमें सुरों और असुरोंके बीचके युद्ध, शिव और पार्वतीकी तपस्या, काम-दहन, देवी भद्रकालीकी असुर-संहार-लीला, हरिहर पुत्र अथवा शास्ता या अय्यप्पनकी कथा, राम-कथा आदि रोचक कहानियाँ मिलती है। इनके अलावा देशकी सामाजिक एवं सामयिक प्रथाओंके विषयमें लिखे हुए 'पाट्टुकल्' भी बहुत है। उनमें उस जमानेके विवाह, पुत्र-जन्म, व्यायाम, मृत्यु आदि प्रसंगोंका सरस वर्णन मिलता है। उन दिनोंके पचासों गीत-काव्योंमें 'वटक्कन् पाट्टुकल्' और 'रामचरित' नामक दो ग्रन्थोंका स्थान अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

कुमारान आशान

मलयालम साहित्यमें उपर्युक्त 'पाट्टुकल' के बाद 'सन्देश-काव्य', 'चम्पू-काव्य' तथा 'कृष्ण गाथा काव्य'—इन तीनों प्रकारके काव्योंका नया युग आरम्भ होता है। उस नवीन युगमें भाषाका रूप भी काफी परिवर्तित हो गया। भाषामें 'मणि प्रवालम्' नामक एक नई शैली प्रचलित हो उठी। 'मणि प्रवालम्' शैलीमें संस्कृत शब्दोंके रत्नों (मणियों) के साथ देशी शब्दोंके प्रवालोंको जोडकर प्रयोग करनेका क्रम रहता है। आधुनिक मलयालयमें 'मणि प्रवालम्' शैली ही प्रचलित है, जिससे केरलके लोगोंको संस्कृतका काफी अच्छा ज्ञान आसानीसे प्राप्त हो जाता है।

'मणि प्रवालम्' शैलीमें लिखे हुए 'सन्देश-काव्य' बहुत मिलते हैं। संस्कृतसाहित्यके 'मेघदूत' के समान मलयालममें 'उण्णुनीलि-सन्देश', 'कोक-सन्देश', 'उण्णियच्चिरु-तेवि-चरितम्', 'उण्णि-याटि चरितम्' आदि सन्देश-काव्य उत्तम ग्रन्थ माने जाते हैं। सन्देश-काव्योंके साथ उन दिनों प्रबन्ध-काव्योंकी रचना भी होती थी। 'कण्णश रामायणम्' उन्हीं दिनोंका एक श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य है। 'रामायणम्' के अलावा 'भागवत्', 'शिवरात्रि महिमा', 'भारत', 'पद्म पुराण' आदि ग्रन्थ भी उस युगमें निर्मित हुए है जिनका महत्व कम नहीं है।

मलयालमके 'चम्पू-काव्य' केवल गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ ही नहीं, बल्कि भाषाकी दृष्टिसे संस्कृत और मलयालमके मिश्रित काव्य भी हैं। उसमें ऐतिहासिक एवं पौराणिक घटनाओंके वर्णनोंके साथ सामान्य लोगोंके जीवनकी समस्याओंकी सुन्दर झाँकी भी मिलती है। केरलके लोगोंकी हास्य-रस-प्रधान सरस उक्तियाँ उनमें यथेष्ट प्राप्त होती हैं, जिनसे उन दिनोंके देशकी विविध परिस्थितियोंका, सामान्य परिचय पाठकोंको आसानीसे प्राप्त होता है। ऐसे चम्पू-काव्योंमे एक प्रसिद्ध कवि 'पुनम नम्पूतिरी' का लिखा 'रामायणम्-चम्पू' ही सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उसमें रावणका जन्म, रामका अवतार, ताडका का वध, अहल्या-मोक्ष आदि प्रसंगोंसे लेकर रामचन्द्रके स्वर्गारोहण तककी कथाका पूरा वर्णन मिलता है। उस ग्रन्थका आधार वाल्मीकि-रामायण ही है। लेकिन 'पुनम नम्पूतिरी' ने अपनी कल्पना और प्रतिभाके अनुकूल कथाके प्रसंगोंका वर्णन काफी हेरफेरके साथ मौलिक ढंगसे किया है। 'रामायणम्-चम्पू' के अलावा 'काम दहनम्', 'रावण विजयम्' 'उमा तपस्या', 'पारिजात हरणम्', 'नैषधम्', 'राज रत्नावलीयम्' आदि अन्य कई चम्पू-ग्रन्थोंके नाम भी अवश्य उल्लेखनीय हैं। इन तमाम ग्रन्थोंकी भाषा 'मणि प्रवालम्' शैलीकी है और इनमें शुद्ध संस्कृतमें लिखे प्रसंग भी काफी मिलते हैं।

उस युगमें चम्पू ग्रन्थोंकी अपेक्षा 'कृष्ण गाथा काव्य' ही अधिक लोकप्रिय बन गया था, क्योंकि उसके कवि 'चेरुश्शेरी नम्पूतिरी' ने अपने काव्यमें तत्कालीन साधारण जनतामें प्रचलित भाषाका ही प्रयोग करके उसको अधिक सरल एवं मार्मिक बनाया था। भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर उन्होंने मलयालममें जो 'कृष्ण-गाथा-काव्य' रचा है, वह हिन्दीके सूरदासके 'सूर-सागर' से भी बढ़कर श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि एक प्रबन्ध-काव्यके तमाम गुण भी उसमें मिलते हैं। 'कृष्ण गाथा' के समान 'भारत गाथा', 'भागवतम् पाट्टु', 'सेतु बन्धनम् पाट्टु' आदि रचनाएँ भी उस युगकी बहुमूल्य देन हैं।

मलयालम साहित्यका स्वर्ण युग महा कवि 'तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन' अथवा 'तुंचन्' के समयसे प्रारम्भ होता है। 'एषुत्तच्छन' का संकेतार्थ गुरु अथवा आचार्य है, क्योंकि 'एषुत्तु' माने

'लेख' और 'अच्छन' माने 'पिता' अर्थात् 'शिक्षा देनेवाले पिता' या 'गुरु' के अर्थमें ही 'एषुत्तच्छन' का प्रयोग किया गया है। वास्तवमें मलयालमकी वर्णमाला, लिपि, ध्वनियाँ भाषाके प्रयोगोंकी नवीन शैली आदिके जन्मदाता एवं प्रचारक महाकवि 'तुंचन्' ही थे। उनकी सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना 'अध्यात्म रामायण' नामक प्रबन्ध काव्य है। उस काव्यको मलयालममें 'एषुत्तच्छन-रामायणम्' भी कहा करते है। उनकी रामायणका पाठ केरलके प्रत्येक घरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ किया जाता है। वे परम भक्त और सदाचारी विद्वान थे। उनकी दृष्टिमें राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा आदि सब देवता समान थे। सबकी आराधना और प्रशंसा उन्होंने अपने काव्योंमें अवश्य की है। वे बड़े दार्शनिक और स्वतन्त्र विचारक थें। उनके रचे हुए अनेकों काव्योंमें 'रामायण', 'मातरम्', 'श्रीमद्भागवतम्', 'चिन्तारत्नम्', 'हरिनाम कीर्तनम्', 'ब्रह्माण्ड पुराणम्', 'देवी माहात्म्यम्' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

महाकवि 'तुंचन्' ने एक नवीन पद्य शैली 'किलिप्पाट्टु' (शुक-गीत) नामसे प्रचलित की थी, जिसका अनुकरण करते हुए तत्कालीन तथा बादके बहुतसे कवियोंने असंख्य काव्य रचे हैं, जिनकी एक सामान्य सूची मात्र देना भी यहाँ सम्भव नहीं है। आजकलके कितने ही उदीयमान कवि 'किलिप्पाट्टु' शैलीमें कविताएँ किया करते हैं। 'किलिप्पाट्टु' के भी कई भेद और उपभेद पाये जाते हैं, जिन सबके जन्मदाता 'तुंचन्' ही माने जाते हैं। मलयालमके पद्य साहित्यमें 'तुंचन्' का जो स्थान है, उसकी बराबरी करनेवाले दूसरे कवि शायद ही मिलते हैं।

महाकवि 'तुंचन्' के समकालीन कवियोंमें 'पूंतानम्' 'नम्पूतिरि' नामक एक कृष्ण भक्त कवि भी मिलते हैं, जो हिन्दीके सूरदास और अष्टछाप के कवियोंकी तरह कृष्ण भक्तिपूर्ण रचनाएं करके मलयालमके साहित्यको सम्पन्न बनानेमें सफल हुए है। वे सारे जगतको गोपाल कृष्णमय मानते थे। कृष्ण भगवान्की स्तुति करना ही उनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था। उनकी रचनाओंमें 'श्री कृष्ण कर्णामृतम्', 'सन्तान गोपालम्', 'पार्थसारथी स्तव', 'कृष्ण लीला', 'ज्ञानप्पाना' आदि महत्वपूर्ण काव्य हैं।

मलयालमके साहित्यमें 'कथकलि-साहित्य' का विशेष महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। 'कथकलि' एक विशिष्ट नृत्यकलात्मक नाटकाभिनय-प्रणाली है, जिसमें अभिनय, नृत्य और संगीत इन तीनोंका सुन्दर समावेश है। 'कथकलि' का साहित्य अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'कथकलि' के प्रबन्ध काव्य उच्च कोटिके होते हैं। वे प्रायः पौराणिक आख्यानोंको लेकर लिखे हुए नाट्य-काव्य हैं, जिनमें गीतों, दण्डकों, पदों तक श्लोकोंके जरिये कथोपकथनका कार्य सम्पन्न किया जाता है। उन काव्योंके पद, श्लोक, गीत आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक ढंगसे गाये जाते हैं। उनकी भाषा संस्कृत-मिश्रित मलयालम अर्थात् 'मणि प्रवालम्' शैली की है। बीच-बीचमें शुद्ध संस्कृतके श्लोक और कीर्तन भी पाये जाते हैं। कथकलि-काव्योंकी कविताएँ प्रायः अनुप्रासयुक्त एवं प्रसादगुण विशिष्ट होती हैं। प्रसंगानुकूल ओज और माधुर्यपूर्ण रचनाएं भी उनमें कम नहीं हैं।

'कथकलि-साहित्य' के सबसे प्राचीन कवि 'कोट्टारकरा' के एक राजा माने जाते हैं। उनके ग्रन्थमें रामायणकी पूरी कथाका वर्णन मिलता है। उस प्रबन्ध काव्यका पूरा अभिनय करनेके लिए कमसे-कम आठ रातोंका समय आवश्यक है। इस साहित्य-शाखाके प्रमुख प्राचीन कवियोंमें 'कोट्टुयत्तु केरल वर्मा राजा', 'तिरुवितांकूर के धर्मराजा', 'अश्विनी नक्षत्रज राजा', 'उण्णायि वारियर', 'इरयिम्मन

तंपि' आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कथकलि-काव्योंमें 'बक वधम्', 'सुभद्राहरणम्', 'नल-चरित्रम्', 'बाण युद्धम्', 'दक्ष यागम्', 'अम्बरीष चरितम्' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ग्रन्थ हैं।

कथकलि-साहित्यकी तरह 'तुल्लल-साहित्य' भी मलयालमके एक विशिष्ट प्रकारका 'नृत्य-कालात्मक पद्य-साहित्य' है। इस नवीन शाखाके जन्मदाता महाकवि 'तुंचन्' की तरह एक दूसरे प्रसिद्ध कवि 'कुंचन् नम्बियार' हैं। महाकवि 'कुंचन्' हास्य-रसके सबसे श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं, जिन्होंने 'तुल्लल पाट्टु' नामक एक 'नृत्यकलात्मक कथा-प्रवचन-पद्धति' को जन्म दिया था, और अपने ही समयमें केरलकी जनताके बीचमें उसका खूब प्रचार भी किया था। 'तुल्लल पाट्टु' एक प्रकारकी पद्य-शैली है। केरलके मन्दिरोंमें उत्सवके अवसरपर अपनी विशेष प्रकारकी वेष-भूषाओंके साथ एक नट दर्शकोंके बीचमें मञ्चपर खड़ा होकर गाते हुए अभिनयके साथ पद्यात्मक भाषामें किसी पौराणिक कथाका प्रवचन देता है, जिस समय उसके गाने 'तुल्लल पाट्टु' की शैलीमें गाये जाते हैं, बताया जाता है कि इस प्रकारके कथा-प्रवचन-का श्रीगणेश महाकवि कुंचनके प्रयत्नसे ही हुआ है, और उन्होंने स्वयं उसके लिए बीसों काव्य रचे थे, नटके लिए उपयुक्त वेश-भूषाओंका निश्चय किया था तथा अनुकूल बाजे, गायक आदिकी व्यवस्था भी की थी। 'तुल्लल कलि' नामसे यह 'नृत्यकलात्मक कथा-प्रवचन' इस जमानेमें भी केरलमें सर्वत्र, विशेष रूपसे मन्दिरोंमें बहुत प्रचलित है।

'तुल्लल कथा-साहित्य' मे अनेक उच्च कोटिके प्रबन्ध काव्य मिलते है। महाकवि 'कुंचन' के प्रमुख काव्योंमें 'इरुपत्तिनालु वृत्तम्' (बीस प्रबन्ध-काव्योंका सग्रह), 'पतिनालु वृत्तम्' (चौदह काव्योंका संग्रह), 'शीलावती', 'नल चरितम्', 'शिव पुराण,' 'विष्णु गीता', 'भागवतम्', 'भगवद् दूत' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनका एक श्रेष्ठ मणि प्रवाल महाकाव्य 'श्रीकृष्ण चरित्रतम्' हिन्दीके 'प्रिय-प्रवास' और 'कृष्णायन' नामक काव्योंके तरह श्रेष्ठ और सरल रचना है। उनके कुल साठ के करीब काव्य अभीतक उपलब्ध हुए हैं। पौराणिक कथाओंके प्रवचनके बहाने वे समाज-सुधारका कार्य करनेमें अतीव सफल हुए थे। उनकी रचनाओंमें सामयिक बातों तथा अधिकारी शासकोंके विषयमें प्रसंगानुकूल चर्चा और आलोचना मिलती है। महाकवि 'कुंचन' ने अपने काव्योंके द्वारा केरलके ब्राह्मणसे लेकर चण्डाल तक—सभी जातियोंके लोगोंके जीवनकी व्यंग्यपूर्ण आलोचना की है और उनके बीचमें प्रचलित कुरीतियों तथा मिथ्याचारोंकी निन्दा की है। उनकी निन्दाके वचन भी सबको मीठे लगते हैं, क्योंकि वे हँसी-मजाकमें सब कुछ प्रकट करनेमें विशेष सफल हुए हैं। अतः उन्होंने जो सत्य कहा है, वह प्रिय बनाकर मीठे व्यंग्य पूर्ण ढंगसे ही व्यक्त किया है, जिससे उसकी कटुता कहीं किसीको असह्य नहीं प्रतीत होती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईसाकी अठारहवीं सदीमें 'तुल्लल कथा साहित्य' की सर्वतोमुखी उन्नति करनेमें महाकवि 'कुंचन' तथा उनके कई शिष्य सम्पूर्ण रूपसे सफल हुए हैं।

'तुल्लल पाट्टुकल' के बराबर मलयालममे 'वंचि पाट्टुकल' का स्थान भी ऊँचा माना जाता है। किश्ती या नाव चलाते समयके खास प्रकारके गानोंको 'वंचि पाट्टु' कहते हैं। 'वंचि पाट्टु' की रीति और गति विशेष प्रकारकी होती है। 'रामपुरत्तु वारियर' नामक एक गरीब कविने 'वंचि पाट्टु' की नई रीतिकी कविताओंको सबसे पहले जन्म दिया था। इसलिए 'वंचि पाट्टु' के जन्मदाताके रूपमें 'वारियर' का नाम ही साहित्यमें लिया जाता है। उनका प्रथम काव्य 'कुचेल वृत्तम्'

(सुदामा चरितम्) बहुत प्रसिद्ध है। मलयालममें वारियरकी नई शैलीकी कविताओंका अनुकरण करनेवाले बहुतसे श्रेष्ठ कवि मिलते हैं। यद्यपि उनकी रचनाएँ ज्यादातर मुक्तक हैं, तो भी प्रबन्ध-काव्य भी कम नहीं हैं।

प्राचीन कालसे लेकर ईसाकी अठारहवीं सदी अथवा उन्नसवीं सदीके आरम्भ काल तक मलयालममें केवल पद्य साहित्यकी उन्नति ही अधिक हुई थी। उन्नीसवीं सदीमें गद्य साहित्यका विकास भी धीरे-धीरे होने लगा। केरलकी सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियोंके कारण गद्यके विकासकी अनिवार्य आवश्यकता भी आ पड़ी थी। अँग्रेजीके शासन-कालमें प्रायः सभी भाषाओंमे गद्य-साहित्यका विकास शीघ्र होने लगा। मलयालमकी हालत भी वैसी ही थी। ईसाई धर्मके अनेक प्रचारकोंके कारण हमारे देशके साहित्यमें गद्यका उपयोग बढ़ने लगा और उसके अनुसार रचनाओंकी संख्या भी अधिक होने लगी। यहाँतक कि प्रथम 'मलयालम कोष'के लेखक डॉ. गुण्डर्ट नामक जर्मनीके एक विदेशी सज्जनने मलयालम भाषा सीखनेके लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तकें, व्याकरण-ग्रन्थ आदिकी रचना करके पर्याप्त यश कमा लिया है। वास्तवमें गुण्डर्टकी साहित्य-सेवाएँ प्रशंसनीय हुई हैं। उनके लिखे कोषमें शब्दोंकी उत्पत्ति, अर्थ-भेद, व्यंग्यार्थ, उच्चारणकी रीति आदि विविध बातोंपर प्रकाश डाला गया है। मलयालमकी प्राचीन कृतियोंका अध्ययन करनेके लिए गुण्डर्टका कोष बहुत उपयोगी है।

मलयालमके गद्य-साहित्यमे सबसे पहले पाठ्य-पुस्तकोंकी बारी ही आती है। आरम्भमें कई ईसाई पण्डितोंने इस उपयोगी कार्यमे थोड़ी बहुत सफलता अवश्य पाई है। लेकिन 'केरल वर्मा वलिय कोयि तम्पुरान' और उनके भानजे 'राजराज वर्मा कोयि तम्पुरान' के प्रयत्नोंसे मलयालममें जो पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई थीं, उनकी बराबरी करनेवाली रचनाएँ, शायद ही किसी भाषामें अन्यत्र प्रकाशित हुई होंगी। वे दोनों राज परिवारके प्रतिष्ठित विद्वान थे, जो अच्छे कवि, और साहित्यकार भी थे। मलयालमके अभिनव साहित्यके निर्माताओंमें ये दोनों कोयितम्पुरान अत्यन्त आदरणीय साहित्य-सेवी माने जाते हैं। उन्होंने अथक परिश्रम करके गद्य साहित्यकी बड़ी उन्नति की है। उनमें राजराज वर्माने स्वयं पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा अच्छे-अच्छे रीति ग्रन्थ, व्याकरण आदिकी रचना भी की है। उनके लिखे हुए लक्षण ग्रन्थोंमें 'साहित्य साह्यम्', 'मध्यम-व्याकरणम्', 'वृत्त मंजरी', 'भाषा-भूषणम्', 'केरल पाणिनीयम्' आदि प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती है। केरल वर्माने "अकबर" नामक एक उपन्यास लिखा है। 'विज्ञान मंजरी' और 'महच्चरितम्' उनकी दूसरी श्रेष्ठ गद्य रचनाएँ है। वे गद्यकी अपेक्षा पद्य ज्यादा लिखते थे। उनके काव्योंमें 'पद्मनाभ पद पद्म शतकम्', 'मयूर सन्देशम्', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक (अनुवाद), 'ध्रुव चरितम्', 'हनुमदुत्सवम्' आदि बहुत श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध माने जाते हैं। उन दोनों 'कोयितम्पुरानों' की प्रेरणासे कितने ही गद्य-लेखक तथा कवि मलयालम साहित्यकी उन्नति करनेमें तत्पर होने लगे। उन सबके अथक प्रयत्नसे आधुनिक कालमें मलयालम साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति हो रही है।

जैसे हिन्दी साहित्यका आधुनिक काल भारतेन्दुसे शुरू होता है, वैसे ही मलयालममें भी उपर्युक्त दोनों 'कोयितम्पुरानों' से आधुनिक पद्य और गद्य साहित्यका आरम्भ होता है। वे आधुनिक युगके पथ प्रदर्शक एवं प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके समकालीन कवियोंमें के. सी. केशव पिल्ला, कोडुंगल्लूर कुंजिकुट्टन

वल्लतोळ नारायण मेनोन

तम्पुरान, चात्तुकुट्टि मन्नाटियार, पन्तलम् केरल वर्मा, नट्टुवम् नम्पूतिरी, कुण्टूर नारायण मेनोन आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय है। उपर्युक्त कवियों तथा लेखकोंकी रचनाओंमें कई महा-काव्य, खण्ड-काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी मिलती हैं, जिन सबके नामोंकी बड़ी सूची मात्र यहाँ देना अनावश्यक-सा प्रतीत होता है।

आधुनिक पद्य साहित्यकी नवीन धाराके अग्रदूतोंके रूपमें कुमारन आशान, वल्लतोळ, और उळ्ळूर के नाम लिये जाते हैं। ये तीनों महाकवि इस समय जीवित नहीं हैं। इनमें कुमारन आशान् मलयालमके दुःखवादी दार्शनिक कवि हैं। उनकी कवितामें पीड़ा और निराशाकी मार्मिक गूंज है। वे बड़े तत्वान्वेशी, जीवनदर्शी कवि थे। अतः उनकी रचनाएँ दार्शनिक और आदर्श प्रधान हैं। वे समाज-सुधारक, क्रान्तिकारी और प्रगतिशील कवि थे। उन्होंने अछूतोंकी दयनीय दुर्दशापर मार्मिक प्रकाश डालते हुए 'चण्डाल भिक्षुकि' नामक खण्ड-काव्य लिखा है। इसके अलावा 'बुद्ध चरितम्', 'वीणपूवू', 'नलिनी', 'चिन्तामग्ना सीता', 'लीला', 'करुणा' आदि बीसों उत्कृष्ट काव्य लिखें हैं।

वल्लतोळ नारायण मेनोन मलयालमके राष्ट्रीय कवि थे। समाज और राष्ट्रकी नवीन प्रवृत्तियों का प्रतिविम्ब उनकी रचनाओंपर पड़ा है। वे गाँधीजीके बड़े भक्त थे। उसी प्रकार साम्यवादी रूसके आराधक भी थे। 'चित्रयोगम्' उनका लिखा महाकाव्य है। 'बधिर विलापम्', 'कॉच्चि सीता' मग्दलन मरियम्', 'शिष्यनुँ मकनुम्', 'गणपति' आदि उनके मुख्य खण्ड-काव्य हैं। 'साहित्य मंजरी' नामक आठ भागोंमें उनकी विविध विषयोंपर लिखी फुटकर कविताएँ संग्रहीत हैं।

उळ्ळूर परमेश्वरय्यर बड़े ही विलक्षण पण्डित और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। उनकी रचनाएँ पाण्डित्यपूर्ण होनेके कारण विद्वानोंके बीचमें विशेष समादरका पात्र बनी हैं। 'उमा केरलम्' उनका एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। 'वंचीश गीति', 'मंगल मंजरी', 'पिंगला', 'हृदय कौमुदी', 'कर्ण भूषणम्', 'किरणावलि', 'काव्य-चन्द्रिका' आदि उनके मुख्य खण्ड-काव्य और पद्य-संग्रह हैं। उळ्ळूर ने पद्यकी तरह गद्यमें भी कई श्रेष्ठ रचनाएँ की है जिनमें 'विज्ञान दीपिका' उनके विद्वत्तापूर्ण निबन्धोंका संग्रह है। उन्होंने मलयालमके कई प्राचीन काव्योंकी खोजकर प्रकाशित किया। उनकी भूमिका और टीकाएँ भी लिखीं। उन्होंने मलयालम साहित्यका एक बृहत् प्रामाणिक इतिहास भी लिखा है।

मलयालमके आधुनिक जीवित कवियोंमें जी. शंकर कुरुप बड़े प्रगतिशील और छायावादी कवि हैं। वे केरलके नवयुवकोंके सबसे प्रिय कवि माने जाते हैं। उनके विचार और आदर्श आधुनिक युगके अनुकूल एवं क्रान्तिकारी हैं। दलित मानवताकी पुकार और कलाकार उनकी कविताके शब्दोंमें गूंज उठती है उन्होंने 'साहित्य-कौतुकम्' नामक चार-पाँच संग्रहोंमें अपनी सैकड़ों फुटकर कविताओंको प्रकाशित किया है। 'स्वप्न सौधम्', 'सूर्यकान्ति', 'नवातिथि', 'संध्या' आदि उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ है। रवि बाबूकी गीताञ्जलि का पद्यानुवाद भी उन्होंने किया है। अब वे हिन्दीके जयशंकर प्रसादकी 'कामायनी' का भी अनुवाद कर रहे हैं।

कोमल-कान्त पदावलियोंमें मधुर मार्मिक गीत रचनेवाले भावुक कवि 'चंगंपुषा' कृष्ण पिल्लै मलयालमके दुःखवादी कवियोंमें सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। जीवनकी निराशा, प्रेमकी पीड़ा, गरीबी और बेकारी की यातना, समाजके अत्याचार, क्रान्तिके स्वप्न आदि विषयोंपर उन्होंने बहुत सी सुन्दर मार्मिक रचनाएँ

की हैं। उनकी रचनाओंका बेहद प्रचार केरलके अपढ़ मजदूरों व देहातियोंके बीचमें भी हुआ है। 'रमणन्' नामक उनका जो खण्ड-काव्य है, उसका पैंतीसवाँ संस्करण भी अभी निकला है। 'देवता', 'आराधकन', 'बाष्पांजलि', 'हेमन्त चन्द्रिका', 'उद्यान- लक्ष्मी', 'सुगंधांगदा' आदि उनके प्रमुख खण्ड-काव्य और कविता-संग्रह है। वे केरलके सबसे अधिक लोकप्रिय कवि माने जाते है। लेकिन दुर्भाग्यवश पैंतीस वर्षकी अल्पायुमें ही उनका स्वर्गवास हो गया था।

मलयालमके आधुनिक पद्य-साहित्यमें ऐसे अनेकों उदीयमान प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं जो अपनी अमूल्य, सुन्दर, भावपूर्ण, क्रान्तिकारी एवं मधुरतम कविताओंसे साहित्यकी निरन्तर श्रीवृद्धि करते रहे है। उनमें नालप्पाडु बालामणि अम्मा और नारायण मेनोन, के. राजा, कुट्टिप्पुरत्तु केशवन नायर, वेण्णिक्कुलम् गोपाल कुरुप, वैलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, ओलप्पमण्ण, पी. भास्करन, अेन. वी. कृष्ण वारियर, पाला नारायणन नायर आदि कुछ प्रमुख कवियोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मलयालमके गद्य साहित्यमे उपन्यास, गद्य काव्य, नाटक, एकांकी, कहानी, जीवनी, निबन्ध, आलोचना आदि-सब प्रकारकी रचनाएँ मिलती हैं। उपन्यास-साहित्यके क्षेत्रमे संस्कृत, अँग्रेजी और बंगलाके उपन्यासों तथा आख्यायिकाओंका प्रभाव मलयालम पर खूब पड़ा है। अँग्रेजी और बंगलाके उत्तम उपन्यासों का अनुवाद मलयालममें काफी हो चुका है। उनके प्रभावमें पड़कर कई स्वतन्त्र मौलिक उपन्यासोंकी रचना भी हुई है। उपन्यास-लेखकोंमें सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास 'कुन्दलता' के रचयिता 'अप्पु नेटुंगाडी' माने जाते है। चन्तु मेननके 'शारदा', 'इन्दु लेखा', सी. वी. रामन पिल्लैके 'मार्ताण्ड वर्मा', 'राम राज बहादूर', 'धर्मराजा', 'प्रेमामृतम्', टी. के. वेलु पिल्लैके 'हेमलता', सरदार के. एम. पणिक्करके 'परंकिप्पटयालि', 'पुणोरकोट्टु स्वरूपम्', 'केरल सिंहम्', एन. के. कृष्ण पिल्लैके 'कनक मंगलम्', नारायण गुरुक्कलके 'सत्यग्राही', रामकृष्ण पिल्लैके 'पारप्पुरम्', गोपिनाथन नायरके 'सुधा', पोट्टकाट्टु, कषी तथा 'उरुब' के दसों उपन्यास, आदि उच्च कोटिके उपन्यास है। मलयालममें उपन्यास साहित्यकी ईर्ष्याजनक उन्नति अवश्य हो रही है, जिसकी प्रशंसा भारतकी केन्द्र सरकार भी कर चुकी है। तकषीके 'चम्मीन' नामक मौलिक उपन्यासको सरकार पाँच हजार रुपयेसे पुरस्कृत भी कर चुकी है।

कहानी-साहित्यका भी अच्छा विकास मलयालममें हो रहा है। इधर सैकड़ों श्रेष्ठ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रायः सभी उपन्यास-लेखकोंने कहानियाँ भी लिखी है। उनके अलावा पोनकुन्नं वर्की, पोट्टक्काटु, मुहम्मद बशीर, कारूर, कोवूर, तकषी, सरस्वती अम्मा, ललिताम्बिका अन्तर्जनम्, केशव देव, के. टी. मुहम्मद, पी. सी. कुट्टिकृष्णन् आदि सैकड़ों कहानी-लेखकोंके नाम भी अवश्य उल्लेखनीय हैं।

नाटक और एकांकियोंका साहित्य भी मलयालममें काफी उन्नति कर रहा है। ई. वी. कृष्ण पिल्लैने नाटक-साहित्यके विकासमें सराहनीय काम किया है। पुराने संस्कृत एवं तमिल नाटकोंके अनुवाद के बाद स्वतन्त्र मौलिक नाटकोंकी रचना करनेका क्षेत्र उन्हींके कारण सुगम हो गया। 'शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्नि मित्रम्', 'चारुदत्तम्', 'उत्तररामचरितम्' जैसे पद्यमय अनूदित नाटकोंके बाद ई. वी. कृष्ण पिल्लैके गद्य नाटकोंने विशेष लोक-प्रियता पाई। रंगमंच की दृष्टिसे उनके नाटक अत्यधिक सफल हुए। 'सीता देवी', 'इरविकुट्टि पिल्लै', 'राजा केशवदास', बी. ए. मायावी', 'पेण्णरशुनाटु' आदि

नालप्पाडु बालामणि अम्मा

उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। पोनकुन्नं वर्की, कौनिक्करा कुमार पिल्लै और पद्मनाभ पिल्लै, सी. माधवन पिल्लै, टी. एन. गोपिनाथन नायर, एन. पी. चेल्लप्पन नायर, वी. टी. भट्ट तिरि, के. रामकृष्ण पिल्लै, के. टी. महुम्मद, एन. कृष्ण पिल्लै, कप्पन कृष्ण मेनोन आदि कई सज्जन आधुनिक युगके प्रमुख नाटककार हैं। आर. सी. शर्मा जैसे कुछ लेखकोंने बंगलाके डी. एल. राय, गिरीश घोष आदिके नाटकोंका अनुवाद भी किया है।

गद्य-काव्यका भी अच्छा विकास मलयालममें हुआ है। कौनिक्करा कुमार पिल्लै और पद्मनाभ पिल्लै इस शाखाके प्रमुख लेखक माने जाते हैं। उनके अनुकरणपर बहुतसे गद्य-काव्य-लेखक अपनी रचनाओं से साहित्य-भण्डारको भरपूर बना रहे हैं।

जीवनी, निबन्ध और आलोचना-साहित्यका भी भण्डार बराबर बढ़ता जा रहा है। केरलमें चित्र-कार और गायक भी कम नहीं हैं। विश्वविख्यात चित्रकार रविवर्मा केरलके थे, जिनके चित्रोंका प्रचार सारी दुनियामें हो चुका है।

मलयालममें 'मातृभूमि', 'मलयाल मनोरमा', 'मलयाल राज्यम्', 'परिषद मासिका' 'युव केरलम्', आदि पचासों मासिक पत्र और साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित होते हैं। मलयालमके दैनिक अखबारोंकी संख्या भी पचासके करीब है।

मलयालमकी तरह संस्कृत और तमिलके भी कई कवि और विद्वान केरलमें उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यहाँ उनका भी संक्षिप्त परिचय देना बिलकुल सम्भव प्रतीत नहीं होता, तो भी केरलके शंकराचार्य, मेलप्पत्तूर नारायण भट्टतिरी, महाकवि भास, कुमार कवि आदिका स्मरण किये बिना रहना अनुचित होगा।

आखिर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि साहित्य, कला आदिकी दृष्टिसे केरल और मलयालम का स्थान निस्सन्देह महत्वपूर्ण है।

केरलमें हिन्दी प्रचार

इतिहाससे इस बातका पता लगता है कि बहुत पुराने जमानेसे भी केरलमें कहीं-कहीं हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी भाषाका थोड़ा बहुत अध्ययन हो रहा था। यहाँके प्राचीन एवं प्रसिद्ध देव-मन्दिरोंके पास पहले 'गोसाई-मठ' नामक खास प्रकारकी यें सराय अथवा मुसाफिरखाने बने हुए थे। उन मठोंमें 'द्विभाषी' नामक कर्मचारी नियुक्त होते थे, जिनका मुख्य काम उत्तर भारतसे, समय-समय पर केरल आनेवाले साधु-सन्तों, तथा तीर्थ-यात्रियोंका समुचित स्वागत-सत्कार करना था। 'द्विभाषी' अपने यहाँ आनेवाले अतिथियोंको बड़े आदर-सम्मानके साथ ठहराते थे और उन्हें अपने यहाँके प्रधान दर्शनीय स्थान आदि दिखाते थे। 'द्वि-भाषी' के पदपर नियुक्त होनेके लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानीका काम-चलाऊ ज्ञान आवश्यक माना जाता था। अतः उसके उम्मेदवारको किसी न किसी प्रकार थोड़ी हिन्दीकी जानकारी हासिल करनी पड़ती थी। इसके लिए वे लोग अपने सत्संग और साधु-सेवाके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले हिन्दी-ज्ञानको मलयालम लिपिमें लिख लिया करते थे। उन पुस्तकोंकी सहायतासे 'द्विभाषी' तथा उनके बन्धु-मित्र एक प्रकार की टूटी-फूटी हिन्दी सीख लेते थे। उनकी हिन्दीको पहले 'गोसाई-भाषा' अथवा 'हिन्दुस्तानी' के नामसे लोग पुकारते थे। 'द्विभाषी' की नियुक्ति तत्कालीन राजाओंकी सरकारकी तरफसे होती थी। इसलिए साधारणतः राजाओंके आश्रममें रहनेवाले सेवक लोग ही ज्यादातर इस पदपर नियुक्त होते थे। सरकार-

की तरफसे उन साधु-सन्तों तथा मेहमानोंको मुफ्तमें बाँट देनेके लिए गेहूँ, आटा, दाल, नमक, चावल, तरकारी, लकड़ी, बर्तन आदि चीजें दी जाती थीं। उनको समुचित रूपसे तीर्थ-यात्रियोंमें बाँट देनेका भार 'द्वि-भाषियों' का था। इस प्रकारके द्विभाषियोंके वंशज कई लोग इस वक्त भी केरलके प्रसिद्ध तीर्थोंके किनारे पाये जाते हैं। उनमें कुछ सज्जनोंके पास 'हिन्दुस्तानी' भाषा सीखनेके लिए उन दिनों मलयालममें लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें भी मिलती हैं। उन हस्तलिखित पुस्तकोंसे यह प्रमाणित होता है कि केरलमें बहुत प्राचीन कालसे हिन्दीका अध्ययन हो रहा था। इसी प्रकार प्राचीन 'गोसाई-मठों' के खण्डहर इस वक्त भी केरलमें कहीं-कही नजर आते हैं। लेकिन ऐसे 'गोसाई-मठ' और 'द्विभाषी' ज्यादातर 'तरुवितां-कूर' और 'कोचिन' में ही पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँके राजाओंकी सरकार बहुत दिनों तक कायम रही और वहीं द्विभाषियोंकी नियुक्ति भी जारी रही।

प्राचीन कालसे तिरुवितांकूर राज्यके राजा लोग बड़े धर्मनिष्ठ, कला-कुशल, साहित्यानुरागी एवं बहु-भाषा प्रेमी रहते थे। अतः वे स्वयं अपने यहाँ आनेवाले साधु-सन्तोंका सत्संग पानेके लिए बड़े उत्सुक रहा करते थे। वे अपने दरबारोंमें भी हिन्दी-विद्वानों तथा कवियोंका विशेष रूपसे स्वागत-सम्मान किया करते थे। उन पण्डितों और कवियोंकी सहायतासे वे स्वयं हिन्दी सीखनेका भरसक प्रयत्न भी करते थे। अपने प्रयत्नमें बहुतसे राजा लोगोंको काफी सफलता मिली थी। उनमे एक राजा ऐसे थे, जिन्होंने केवल हिन्दी सीखी ही नही, बल्कि हिन्दीमें अच्छी-अच्छी कविताएँ भी लिखी थीं। उनका नाम 'स्वाति नक्षत्रज राजवर्मा राजा' था। वे 'गर्भ-श्रीमान्' और 'स्वाति तिरुनाल' के नामोंसे अधिक प्रसिद्ध हुए थे। उनका जन्म १६, अप्रैल सन् १८१३ को हुआ था। वे संस्कृत, तमिल, हिन्दी, अँग्रेजी, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु आदि विविध भाषाएँ जानते थे। उन्होंने प्रायः उन सभी भाषाओंमें अच्छे-अच्छे गीत, कीर्तन, और पद भी रचे हैं। दक्षिण भारतके सुविख्यात संगीताचार्य त्यागराजके कीर्तनों और गीतोंके समान महाराजा 'स्वाति-तिरुनाल' की रचनाएँ भी संगीत-मर्मज्ञोंके बीचमें बहुत प्रसिद्ध मानी जाती हैं। 'गर्भ श्रीमान्' के हिन्दी-पद और गीत, भक्त कवि सूरदास, मीरा आदिके पदोंके समान कर्ण-मधुर एवं भावपूर्ण हुए हैं।

'राजा गर्भ श्रीमान्' भी बड़े कृष्ण भक्त कवि थे। उन्होंने हिन्दीमे कुल चालीसके करीब पद और गीत रचे हैं। पहले वे गीत और पद मलयालम लिपिमें ही लिखे गए थे। अभी तक नागरी अक्षरोंमें छपी एक पुस्तकके रूपमें उनकी हिन्दी कविताएँ प्रकाशित नहीं हुई हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने सन् १९३६ में काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी मुख-पत्रकि "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" में उन गीतोंका एक संग्रह कवि की जीवनीके साथ प्रकाशित कराया था। उस प्रकाशनमें 'गर्भ श्रीमान्' के जितने हिन्दी पद और कीर्तन तब तक उपलब्ध हुए थे, उन सबका संग्रह किया गया था।

महाराजा 'गर्भ श्रीमान्' के हिन्दी पदों और कीर्तनोंकी भाषामें खड़ी बोली और ब्रजभाषाका सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। उनमें असीम श्री कृष्ण भक्तिके सूक्ष्म तथा मार्मिक भावोंका अभिव्यञ्जन हुआ है। समुचित स्थानोंपर सार्थक शब्द-रत्नोंका सुन्दर चयन करके अपने पदों और गीतोंकी गति और गेयता में कमनीयता और कर्ण-प्रियता पैदा करनेकी कला ही 'गर्भ श्रीमान्' की लेखनीकी सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दी तथा अन्य भाषाओंमें रचे हुए उनके तमाम पदों और कीर्तनोंमें हम एक सच्चे भक्तके सम्पूर्ण आत्म

समर्पण और तल्लीनताकी अनुभूतिका अभिव्यञ्जन पा सकते है। वे एक महान तत्ववेत्ता, दार्शनिक, विद्वान, अथवा महान उपदेशक नहीं थे ?। वे मुख्यत: एक रसिक भावुक भक्त-कवि और सफल गायक मात्र थे। अपने इष्ट-देव तथा कुल-देव 'श्री पद्मनाभ' के प्रति अपनी अपार एवं अकलंक भक्तिको अभिव्यक्ति करना, उनके प्रेममें मस्त होकर अपने आपको भूल जाना, उनके प्रति होनेवाली भक्तिके सामने समस्त संसारको तुच्छ मानना, 'श्री पद्मनाभ' को छोड़कर दूसरे देवोंकी गौणता दिखाना आदि कई बातें हम 'गर्भ श्रीमान्' की प्रत्येक कवितामें पाते हैं।

'श्री पद्मनाभ' पर उनकी कितनी गहरी भक्ति और श्रद्धा थी, यह निम्नलिखित हिन्दी गीतसे प्रकट होती है :—

[राग कानडा—चौताल]

देवनके पति इंद्र, ताराके पति चन्द्र ॥ टेक ॥
विद्याके पति गणेश, दुःख-भार-हारी ॥ १ ॥
रागपति कानडा, बाजनके पति बीन।
ऋतुपति है वसन्त रति सुख कारी ॥ २ ॥
मुनिजनपति व्यास, पंछी पति हंस है।
नरपति राम अवध-विहारी ॥ ३ ॥
गिरिपति हिमाचल, भूतनके पति महेश,
तीन-लोक पति श्री पद्मनाभ गिरिधारी ॥ ४ ॥

स्वातितिरुनाल श्री रामचन्द्रजीके भी भक्त थे। नीचे दिए हुए गीतमें रामाभिषेकका सुन्दर वर्णन मिलता है :—

[काफी राग—आदि ताल]

अवध सुखदाई अब बाजे बजायो ॥ टेक॥
रतन सिंहासनके ऊपर रघुपति सीता सहित सुहायो।
यों भरत सुमित्रा-नन्दन ठाढ़े चामर चतुर डुलायो ॥ १ ॥
गालव गावत जन मंगल गावत देवन बजायो।
यों रावण मारे असुर सब मारे राज बिभीषण पायो ॥ २ ॥
मात कौसल्या करत आरती निज मन वांछित पायो।
यों पद्मनाभ प्रभु फणि-पर-शायी त्रिभुवन सुख करि आयो ॥३॥

स्वातितिरुनालके विनयके पद हमें सूर और तुलसीकी याद दिलानेवाले हैं। उसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

[अठाणा राग—आदि ताल]

सुमरण कर जदुनाथ हरीके ॥ टेक ॥
बास कियो जिन धर्म दरीके
सुमरणसे जिनके ॥ १ ॥

एक क्षणमें केते पतित सुधारे प्यारे।
पीपा तारे सुदामा तारे वेश्या तारे अजामिल तारे ॥ २॥
मीन कच्छ सूकर नरहरि प्रभु वामन रूप बलि-मद हारे।
परशुराम रघुराम राम बल कल्कि रूप धर दैत्य संहारे ॥ ३॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक जिनको निसि-दिन मनमें धारे।
सात रात भर गिरिवर धारो सो मनमोहन नन्ददुलारे ॥ ४॥
भज ले राम कृष्ण मधुसूदन पुरुषोत्तम ब्रजराज मुरारे
जप तप राखे अधम उधारण पद्मनाभ प्रभु नाथ हमारे ॥ ५॥

स्वातितिरुनालके अधिकतर पदोंमें भगवान श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओं, गोचारणके विविध प्रसंगों तथा गोपी-प्रेम और विरहका मधुर वर्णन मिलता है। कृष्ण मचलकर माता यशोदाके सामने यों शिकायत करते हैं:—

[बिहाग राग—आदि ताल]
मैं तो नहिं जाऊँ जननी जमुनाके तीर ॥ टेक॥
इतनी सुनके मात जसोदा पूछति मुरहरसे।
क्यों नहिं जावत धेनु चरावन बालक कह हमसे ॥ १॥
कहत हरी सब ग्वालिन मिलि हम भींजत घन कुल से।
जब सब लाज-भरी ब्रज बासिन कहे न कहो दृगसे ॥ २॥
तौं हूँ बात सबै मधुसूदन बोले जसुमति से।
जब सब गोपिन तब हरिके मुख ढाँकत निज करसे ॥ ३॥
ऐसी लीला कोटि कियो कैसे जायो मधु बन से।
पद्मनाभ प्रभु दीन-उधारण पालो सब दुःखसे ॥ ४॥

ऊपरके वर्णनमें प्रच्छन्न श्रृंगारकी झलक बड़ी मार्मिकतासे अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रसंगका वर्णन भक्त कवि सूरदासने दूसरे ढंगसे किया है, जहाँ उन्होंने बाल हृदयके भोलेपनके साथ माताके अपार वात्सल्यका चित्र खींचा है। देखिए, सूरका कृष्ण क्या कहता है:—

मैया हौ न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइ पिराइ॥
जौ न पत्याहि पूछि बलदाऊहि अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालिनि गारी देत रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका को आवै मन बहराइ।
"सूरस्याम" मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

स्वातितिरुनालने श्रीकृष्णके कालिय-मर्दनकी लीला का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त सुन्दर हुआ है:—

[भैरवी राग—आदि ताल]
कृष्णचन्द्र राधा मन मोहन मेरे मन में विराजो जी ॥ टेक॥

मोर पिंछ कटि काछनी राजे कर मुरली उर माल लासे।
फणिवरके पर निरत करत प्रभु देव मुनिश्वर गगन बसे ॥ १ ॥
हाथ जोड़ सब नाग-वधू-जन करें बिनती हरि चरणसे।
छोड़ों हमारे प्रीतमको हम अंचल धोवें अँसुवनसे ॥ २ ॥
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी कब इन जोबौ चितवन से।
ऐसी लीला कोटि तुमारी नहीं कहि जावे कविजनसे ॥ ३ ॥

कृष्णके हाथकी मुरली, जिसने गोकुलकी गोपियोको प्रेमसे उन्मत्त बना दिया था, कालिन्दीके तीर के कुञ्ज-बनोंमें कैसा सम्मोहन राग छेडती थी, इसका वर्णन अनेकों कृष्ण-भक्त कवियोंने किया है। मुरली-माधुरी पर स्वातितिरुनालके भी कुछ सुन्दर पद मिलते है:—

[भैरवी राग—आदि ताल]

बँसीवालेने मन मोहा ॥ टेक ॥
बोली बोले मीठी लागे
दर दर उमंग करावे ॥ १ ॥
बेणुन बाजे तान गावे।
निसि-दिन गोपियाँ रिझावे ॥ २ ॥
साँवरा रंग मोहनी अंग।
सुमरण तनकी भुलावे ॥ ३ ॥
कालिंदीके तीर ठाढ़े।
मोहन बाँसुरी बजावे ॥ ४ ॥
पद्मनाभ प्रभु दीन बन्धु।
सुर नर चरण मनावे ॥ ५ ॥

कृष्णके प्रति गोपियोंके प्रेमके वर्णनमें स्वातितिरुनालने सखी-सम्वादके रूपमे कुछ रमणीय प्रसंग उपस्थित किए है, जहाँ हर्ष, अभिलाषा, असूया आदि विविध सञ्चारियोंका मार्मिक अभिव्यञ्जन हुआ है। कृष्णकी रूप-माधुरीपर अत्यधिक मोहित हुई एक गोपिका अपनी सखीसे कहती है:—

[पूर्वी राग]

आली! मैं तो जमुना जल भरन गई ॥ टेक ॥
जब श्याम सुन्दर सों भेंट भई।
मोरनके पिंछ सीस बिराजत।
बाँसुरी मो उपजत तान नई ॥ १ ॥
गौवनके संग क्षण धावे क्षण ठाढ़े।
ग्वाल बालसे बोली बोले अमृत मई ॥ २ ॥
सोइ पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी।
मोहे निहाल करे त्रिलोक—दई ॥ ३ ॥

रास-लीलाके समयमें कृष्ण गोपियोंको धोखा देकर कहीं छिप गया। सबेरे कृष्ण जब एक गोपीके घरके सामनेसे निकला, तब उसका रूप देखकर चतुर गोपिका सारा रहस्य जान गई। वह ईर्ष्यासे जल-भुन कर अपनी जैसी दुखिया दूसरी सखीको बुलाकर यों कहती है :—

[राग भैरवी—आदि ताल]

आये गिरिधर द्वारे मोरे गोरी !
अंजन अधर ललाट महावर नयन उनींदे चल आये।
रयन समय प्रभु छलबल करिके कौन तियाको बिरमाये।
बिन गुण माल बिराजत हिय में वृढ़ गलवय्या सुख पाये।
ब्रज नारीको बंचन कर के कैसे पीतम सुख पाये।।
सोलह सिंगार करि फूलनके हार लिये विविध सुगन्धसे मन भाये।
बैठी थी मो मनके साथी कुमुद सरोवर कुम्हलाये।।
सुखके कारण दुखसे के निवारण मधुबन मुरली धुन गाये।।
पद्मनाभ प्रभु फणि-पर-शायी कोटि मयन तनछबि छाये।।

स्वातितिरुनालने संयोग शृंगारका जो चित्रण किया, उसमे शील और संयमका पूरा ख्याल रखा है, जिससे वे अन्य कृष्ण भक्त कवियोंकी मामूली गलतीसे बच गए हैं।

[सुरटि राग—आदि ताल]

फैली पिया, चाँदनी रात ।। टेक ।।
अब रहियो मोरे साथ।
बिजरीसे पीत डुलाऊँ।
भुजमें भुज ही मिलाऊँ।
सब फूल हार बनाऊँ।
मन भर भर भूषण पाऊँ ।। १ ।।
तन मों अबीर लगाऊँ।
अँगियाके कोर खुलाऊँ।
दिनके वियोग बुझाऊँ।
तोसे चुनरि हमारि रँगाऊँ ।। २ ।।

गोपियोंके विरह-दुःखके वर्णनमें प्रेमके वियोग-पक्षकी सम्पूर्ण मार्मिकता अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न किया गया है। प्रिय-प्रवास से दुखिता एक गोपी अपने दिलका असह्य दर्द अपनी सहेलीके सामने यों प्रकट करती है:—

[विहाग राग—आदि ताल]

सुनो सखि, मेरी मनकी दरद री ।। टेक ।।
जब फिरती मैं रंगमहलमें
सेज पलँगपर तड़के जाती ।। १ ।।

बेल चमेरी दौना मरुवा
चम्पे गुलाबकी हार बनाती ॥ २ ॥
जैसे जल बिन तरसत पंछी।
तरस रही मेरो पिय बिन छाती ॥ ३ ॥
सोवत नाहिं लगे गोरि। निद्राऊँ ।
बीच बीच पियाको बुलाती ॥ ४ ॥
निसि दिन भर भर चुवा रे चन्दन
अतर अरगजा अंग लगाती ॥ ५ ॥

भ्रमर-गीतका प्रसंग भी बहुत मार्मिक हुआ है ; जहाँ सूरदासकी गोपियाँ उद्धवके आगे रोकर कहती हैं—

बिनु गोपाल बैरिनि भई कुंजै।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत,
वृथा कमल फूलै अलि गुंजै।....

और यह करुण सन्देश सुनाती है कि " मधुकर, इतनी कहियहु जाई। अति कृस गात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाई।" वहाँ स्वातितिरुनालके वर्णनमे गोपियाँ उद्धवके सामने अपने प्रेम-विह्वल हृदयकी अपार विरह -व्यवस्था यों प्रकट करती है—

[पूर्वी राग--चौताल]

ऊधो, सुनिये मेरो सन्देश, चले जबसे पिया परदेश। ॥ टेक ॥
गौवां तृण नीर त्याग किन्हीं, सबै ग्वाल बाल शोक किन्हो।
जल-जमुना नहीं भावै, घडी भर कुंज कुम्हलावै ॥ १ ॥
हाथ मुरली, गले माला, चले जब नन्दके लाला।
मोह व्रजके जो नरनारी, भूले कैसे मोको बनचारी ॥ २ ॥
जब लीनो जन्म व्रजमें, हरो सब ताप क्षण भरमें।
ऐसे प्रभुके वियोग सहै, कैसे हमको सो छाँडि रहै ॥ ३ ॥
जाकी महिमा पुकारे वेद जा को नाहि लोक लोक विभेद।
जा के बल हरे मन शूल, ताके मुखचन्द्रसे कर दूत ॥ ४ ॥

स्वातितिरुनालके कुछ गीतोंके भाव मीराँबाईके विरह-गीतोंके भावोंसे मिलते-जुलते हैं। दर्द-दिवानी मीराँ गाती है:—

चलो मन गंगा जमुना तीर।
गंगा जमुना निरमल पानी, शीतल होत शरीर।
बंसी बजावत गावत कान्हो, संग लिया बलबीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल झलकत हीर।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल पै सीर।

स्वातितिरुनालका गीत यों है:—

[धन्यासी राग—चौताल (ध्रुपद)]

जमुना किनारे प्यारे कदमपर मोहन।
बाँसुरी बजावे सखि, कुंज-भवन में
मोर पिंछ गले माल मकराकृत कुंडल।
मकुटादिक भूषण सोभा देत तनमे
पद्मनाभ दीनबन्धु मेरो ताप हारो।
प्रभु गोपिनाथ गिरिधर राजो मेरे मन में

स्वातितिरुनालने भगवान शिवकी स्तुतिमे भी कुछ गीत रचे है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है :—

[धनयासी राग—चौताल]

सीस गंग भस्म अंग अरधंग गौरी संग बरधा के।
बरतुरंग ताप-भंग जगके ॥ टेक ॥
सदा नंग भरा रंग भूषणाके भये।
भुजंग ओढ़े चर्म मतंग संग की जो पग के ॥ १ ॥
हतानंग कृपापांग धारे हाथ बीच कुरंग।
बास कीन्हो हृदय-कमल पद्मनाभ प्रभु के ॥ २ ॥

महाराजा गर्भ श्रीमान की तरह मलयालम साहित्यके प्रसिद्ध कवि कुंचन् नम्वियारकी कवितामें भी उत्तर भारतसे आनेवाले संन्यासियोंकी बोलीमें हिन्दीका प्रसंगानुकूल प्रयोग किया गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि उन दिनों केरलमें हिन्दी जानने वाले लोग अवश्य रहते थे।

प्राचीन कालकी केरलीय सेनाओंमें राजपूत, मराठे, पञ्जाबी वगैरह उत्तरीय लोगोंको भी शामिल किया करते थे। उन उत्तर भारतीयोंके साथ यहाँके सिपाहियोंको पलटनमें काम करना पड़ता था। उसके लिए उन्हें हिन्दुस्तानीमें बातचीत करनेकी शक्ति हासिल करनेकी जरूरत पड़ती थी। अतः उन दिनों केरलके सैनिकोंके बीचमें एक प्रकारकी बोलचालकी हिन्दीका अध्ययन और प्रचार होता था। फौजके सिपाहियोंके सम्पर्कमे आनेवाले कुछ साधारण लोग भी उनकी हिन्दी सीखनेका प्रयत्न करते थे। मलयालम भाषाके शब्द भण्डारमें पलटनके लोगोकी बोलीका जो उदाहरण दिया जाता है, उसमें हिन्दी व उर्दूके कई शब्द मिलते है। इसका कारण यह भी बताया जाता है कि मुगल बादशाह औरंगजेबके जमानेसे लेकर दक्षिणी रियासतोंकी फौजके ओहदेदारोंको उर्दू या हिन्दुस्तानीकी थोड़ी सी जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक माना गया था।

मैसूरके बहादुर सुलतान हैदरअली और उनके बेटे टिप्पूने जब केरलके उत्तरी प्रदेशोंपर हमला किया और केरलके कई लोगोंको मुसलमान बनाया, तब यहाँके कुछ खास मुकामोंपर उर्दू भाषा जानने वाले लोगोंकी तादादमें भी तरक्की हो गई। उसका प्रभाव मलयालम भाषापर भी अवश्य पड़ा। हिन्दी-उर्दके कई तत्सम एवं तद्भव शब्द मलयालम भाषामें प्रयुक्त होने लगे। 'सुबह', 'बाकी',

'जवाब', 'सवाल', 'बदला', 'ताल्लुक', 'तहसील', 'सूबा', 'हराम', वगैरह कई शब्द मलयालममें घुल-मिलकर मलयालमके अपने से बन गए।

केरलके प्राय: सभी बन्दगाहोंपर उत्तर भारतसे मारवाड़ी, गुजराती, पारसी, मुसलमान आदि व्यापारी सैकड़ों सालोंके पहले आकर बस चुके थे। वे एक प्रकारकी बोलचालकी हिन्दी भाषामें ही यहाँके निवासियोंसे बातचीत किया करते थे। उन उत्तर भारतीय व्यापारियोंके साथ अच्छी तरह व्यापार करनेके लिए यहाँके कई आदमियोंको उनकी हिन्दी भाषाका अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि केरलके प्रधान-व्यापार-केन्द्रोंके आसपास रहनेवाले लोग एक प्रकारकी टूटी-फूटी हिन्दी या हिन्दुस्तानीसे परिचित होने लगे।

पहले ही बताया जा चुका है कि केरलमें बहुत पुराने समयसे ही संस्कृत भाषाका अध्ययन और अध्यापन हो रहा था, जिससे यहाँके साधारण लोगोंकी बोलचालकी भाषामें भी वर्तमान हिन्दीके बराबर सैकड़ों संस्कृत-शब्दोंका प्रयोग होना अत्यन्त सहज और स्वाभाविक बन गया था। इसीलिए हिन्दी का जो संस्कृतमय साहित्यिक रूप है, वह पहले ही से मलयालम-भाषा-भाषी लोगोंको काफी सरल प्रतीत हुआ। तुलसीदास की 'राम-चरित-मानस' और नाभादासकी 'भक्तमाला' जैसी रचनाओंका गद्यानुवाद मलयालममे बहुत पहले ही प्रचलित हो जानेका मुख्य कारण कदाचित् यही माना जाता है। इस प्रकार केरलके लोगोंकी दृष्टिमे आधुनिक युगके 'हिन्दी प्रचार आन्दोलन' के शुरू होनेके पहले ही, हिन्दी भाषा एक सुपरिचित एवं सुबोध भाषाके रूपमें काफी लोकप्रिय बन चुकी थी, और उस भाषाका थोड़ा बहुत अध्ययन धार्मिक, राजनैतिक तथा व्यापारिक कारणोंसे यहाँ पर अवश्य हो रहा था। लेकिन यह मानना पड़ता है कि केरलमें सगठित एवं व्यवस्थित रूपसे हिन्दी प्रचारका कार्य सिर्फ सन् १९२२ से ही आरम्भ हुआ है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका काम करनेके लिए मद्रासमें 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' नामक संस्था की स्थापना करके वास्तवमें एक बड़ा भारी राष्ट्र-निर्माणका कार्य पूरा किया है। अब इस बड़ी संस्थाकी चार प्रान्तीय शाखाएँ अथवा सभाएँ स्थापित हो चुकी हैं। इन्हीं प्रान्तीय सभाओंकी तरफसे प्रत्येक प्रान्त में गत चालीस सालोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य बड़ी सफलतासेके साथ किया जा रहा है। सबसे पहले सन् १९२२ मे मद्रासकी 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' ने एक केरलीय हिन्दी विद्वान श्री एम. दामोदरन उण्णिको उत्तर भारतसे बुलाकर केरलमें हिन्दी प्रचारका कार्य करने तथा उसके लिए आवश्यक संगठन आदिकी व्यवस्था करनेका आदेश दिया। श्रीमान दामोदरन उण्णि केरलके एट्टुमानूर नामक गाँवके निवासी थे। उत्तर भारतमें संस्कृत भाषाका विशेष अध्ययन करनेके लिए गए हुए थे। वहाँ कई सालों तक आर्य-समाजी गुरुकुलोंमें अध्ययन और अध्यापनका कार्य करते हुए, उन्होंने संस्कृत और हिन्दीका अच्छा पाण्डित्य प्राप्त किया था। इसलिए उन्होंने हिन्दी प्रचार सभाका आदेश सहर्ष स्वीकार किया और केरलमें आकर राष्ट्रभाषाका प्रचार करने लगे। श्री दामोदरन उण्णिने केरलके कई प्रधान केन्द्रोंमे भ्रमण करके यहाँ लोगोंको हिन्दी सीखनेकी जरूरत समझाई। वे स्वयं प्रत्येक केन्द्रमें पाँच-छह महीनों तक रहकर वहाँके उत्साही स्त्री-पुरुषोंको पढ़ाने लगे। उनके हिन्दी-वर्गके किसी होनहार विद्यार्थीको वे नए हिन्दी वर्ग चलाने का कार्य भी सौंप देते थे। उनकी सलाह और सहायतासे प्रोत्साहित होकर कई नए हिन्दी-प्रचारक इस

क्षेत्रमें काम करने लगे। इसलिए जब कभी वे अपने किसी एक केन्द्रका काम बीचमें छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे, तो वहाँ का काम पूर्ववत् जारी रखनेकी जिम्मेदारी उन विद्यार्थियोंपर छोड़ देनेमें कामयाब होते थे। उनके द्वारा संगठित हिन्दी केन्द्रोंमें कभी कार्यकर्ताओंका अभाव नहीं रहा है। उनकी इस सफल नीतिके कारण नए-नए हिन्दी प्रचारक अलग-अलग केन्द्रोंमें जाकर स्वतन्त्र रूपसे हिन्दीका प्रचार करने लगते। इस तरह श्री दामोदरन उण्णिने अकेले ही बहुतसे हिन्दी-केन्द्रोंका संगठन मात्र नहीं किया, बल्कि सञ्चालन भी खूब किया। वे संस्कृत, हिन्दी और मलयालमके प्रकाण्ड विद्वान थे, अच्छे वक्ता, सफल सगठक और सरस अध्यापक थे। इसलिए उनके व्यक्तित्व और प्रवचनोंसे प्रभावित होकर बहुतसे लोग हिन्दी पढ़ने और पढ़ानेमें में बड़ी दिलचस्पी दिखाते थे। उनकी मजेदार बातें सुनने के लिए कई प्रतिष्ठित सज्जन उनके वर्गोंमे शामिल हुआ करते थे। वे वास्तवमें एक आदर्श हिन्दी-प्रचारक थे। केरलके हजारों आधुनिक हिन्दी प्रचारकोंमे बहुतसे लोग ऐसे है, जो या तो श्री दामोदरन उण्णिके शिष्योंमेसे हैं अथवा उनके शिष्योंकी परम्पराके विद्यार्थी है। इन पंक्तियोंका लेखक भी उनके शिष्योंमेसे एक है। स्वर्गीय श्री दामोदरन उण्णिजी ही केरलके प्रथम "हिन्दी प्रचारक" माने जाते है।

सन् १९२५ से मद्रासकी हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे केरलमें श्री दामोदरत उण्णिके अलावा श्री के. केशवन नायर, श्री के. आर. शंकरानन्द—जैसे दो-चार नए हिन्दी प्रचारक भी नियुक्त हुए। उन प्रथम प्रचारकोंके अथक परिश्रमसे केरलके कतिपय केन्द्रोंमें संगठित रूपसे हिन्दी प्रचारका काम बढ़ने लगा। कितने ही नए हिन्दी वर्गोंका संगठन हुआ। हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए नए-नए केन्द्र खोले गए। जगह-जगह हिन्दी-प्रचारकी आवश्यकता और महत्वको समझानेके लिए प्रचारक-सम्मेलन होने लगे। केरलके उत्साही युवकोंको हिन्दी-प्रचार-सभाकी तरफसे सञ्चालित प्रचारक विद्यालयोंमें शामिल होकर पढ़नेके लिए छात्रवृत्ति देकर बुलाया गया। उन विद्यालयोंमें बीसों युवक पढ़नेके लिए गए और अपनी शिक्षा पूरी करके वापस आनेपर केरलके किसी न किसी केन्द्रमें हिन्दी-प्रचारका कार्य करनेमें लीन हो गए। इस प्रकार ज्यों-ज्यों केरलके हिन्दी केन्द्रोंकी संख्या बढ़ने लगी, त्यों-त्यों नए-नए उत्साही एवं निस्वार्थ हिन्दी प्रचारक भी इस महान आन्दोलनमें स्वेच्छासे भाग लेने लगे।

सन् १९२२ से सन् १९३२ तक केरलमें हिन्दी-प्रचारका जो कार्य हुआ, उसका पूरा उत्तरदायित्व सीधे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का ही रहा था। इस बीचमें सन् १९२८ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके प्रचार मन्त्रीके पदपर कोचिन-निवासी डब्ल्यू. पी. इग्नेशियसकी नियुक्ति हुई। उन्होंने केरलके हिन्दी प्रचार कार्यको पूर्वाधिक संगठित एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करनेमें सफलता पाई। उनके प्रयत्नोंके फलस्वरूप सन् १९२८ में कोचिन राज्यकी विधान सभामें हिन्दी-प्रचारके सम्बन्धमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसका आशय यह था कि कोचिन रियासतके तमाम हाईस्कूलोंमें अनिवार्य रूपसे राष्ट्रभाषा हिन्दी पढ़ाई जाए। उन्हीं दिनोंमें कोचिनके महाराजाके परिवारके स्त्री-पुरुष भी हिन्दी पढ़ने लगे थे। अतः महाराजा ने भी उपर्युक्त प्रस्तावका विरोध नहीं किया। उस समयके शिक्षा-निर्देशक (डी. पी. आय.) श्री सी. मत्ताईने उस प्रस्तावसे प्रेरित होकर कोचिन राज्यके कुछ प्रमुख हाईस्कूलोंमें ऐच्छिक रूपसे हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की। उन स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेके लिए आवश्यक अध्यापकोंको सभाने ही प्रदान किया था, जिनमें सभाके सवैतिनिक एवं सहायक प्रचारक श्री पी. के. केशवन नायर, श्री पी. के. नारा-

यणन नायर, श्री के. आर. शंकरानन्द, श्री के. केशवन नायर ; श्री के. वी. नायर, श्री जी. नीलकण्ठन नायर, श्री कृष्णदेव, श्री एम. नारायण मेनोन,श्री राघवन इलयिटम, श्री के. माधव कैमल, श्री के. जी. पणिक्कर आदि पुराने हिन्दी-सेवी महाशय भी शामिल थे। इस तरह दक्षिण भारतमे सबसे पहले हाईस्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था करनेका श्रेय कोचिन के महाराजाकी ही सरकारको प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे केरलमे हिन्दीका प्रचार पूर्वाधिक बढने लगा तो सन् १९३२ मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने यहाँका काम सुचारु रूपसे चलानेके लिए अपनी एक प्रादेशिक शाखा एरणाकुलम् शहरमें स्थापित की। उस शाखाके मन्त्रीके पदपर श्री ए. चन्द्रहासन नियुक्त हुए। उनके नेतृत्वमें हिन्दी-प्रचारमें बड़ी प्रगति होने लगी। थोड़े ही दिनोंके बाद तिरुवितांकूर रियासतमे हिन्दी प्रचार-कार्यको सगठित रूपसे चलानेके लिए सभाकी एक नवीन शाखा तिरुवनन्तपुरम शहरमे भी खोलनी पड़ी। उस शाखाके मन्त्री पण्डित देवदूत विद्यार्थी बनाए गए। एरणाकुलम्मे स्थापित शाखाकी देख-रेखमें कोचिन राज्य और मलबारके हिन्दी-प्रचार-कार्य सम्पन्न होने लगा; और तिरुवितांकूर रियासत मात्रका काम तिरुवनन्तपुरमकी शाखाकी तरफसे सञ्चालित एवं संगठित होने लगा। इन दोनों नवीन शाखाओंके निरन्तर प्रयत्नके कारण केरलके कोने कोनेमें नए-नए हिन्दी-केन्द्रोंका संगठन बहुत शीघ्र हो गया। हिन्दी प्रचारकों और हिन्दी वर्गोंकी संख्या भी बेहद बढ़ गई। विभिन्न परीक्षाओंमें हजारोंकी तादादमें परीक्षार्थी शामिल होने लगे। सभाके इने-गिने सवैतनिक प्रचारकोके अलावा कई उत्साही स्वतन्त्र प्रचारक भी निस्वार्थ भावसे हिन्दी प्रचारका कार्य करनेमे तन मनसे लग गए। इस प्रकार सन् १९३२ से १९३६ तक केरलके हिन्दी-प्रचार-कार्यमें जो प्रशंसनीय प्रगति हुई, उसका पूरा श्रेय सभाकी इन दोनों शाखाओंको दिया जा सकता है।

सन् १९३६ के बाद दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके आदेशानुसार उसीके तत्वावधानमें आन्ध्र तमिलनाडु, केरल और कर्नाटककी प्रान्तीय भाषाओंके आधारपर उन चारों,भाषावार प्रान्तोंमें हिन्दी प्रचारका काम स्वतन्त्र रूपसे चलानेकी प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे अलग अलग चार 'प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाएँ' स्थापित हो गई। उनमें केरलकी प्रान्तीय सभाका सम्विधान, सन् १९३६ जुलाई मासमें सभाके सदस्योंका जो विराट सम्मेलन एरणाकुलममे बुलाया गया, था, उसमे सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। उसी सम्मेलनमें सभा के तत्कालीन पदाधिकारियोंका चुनाव भी किया गया। कोचिन राज्यके अवकाश-प्राप्त शिक्षा-निर्देशक स्वर्गीय श्री सी. मत्ताई ही सर्व सम्मतिसे सभाके प्रथम अध्यक्ष चुने गए। देशके कुछ प्रमुख नेताओंकी एक कार्यकारिणी समिति भी उसी दिन बनायी गई। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने अपने सुयोग्य एवं महान कार्यकर्ता पण्डित देवदूत विद्यार्थीको केरलकी नवीन प्रान्तीय सभाके मन्त्रीके पदपर नियुक्त किया। इस तरह सन् १९३६ में जिस प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाका जन्म केरलमें हुआ था, वही अब तक वहाँका हिन्दी प्रचार-कार्य बड़ी दक्षता और सफलताके साथ करती आ रही है।

मद्रासकी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके मार्गदर्शनके अनुसार उपर्युक्त प्रान्तीय सभा अपने प्रजातन्त्रात्मक संविधानके आधारपर हिन्दी प्रचार सम्बन्धी बहुमुखी कार्य-कलाप करती है। हिन्दी प्रचार के महान कार्यमें सहयोग और सहायता देनेकी इच्छा रखनेवाले सभी बालिग स्त्री-पुरुष नियत चन्दा देकर इस संस्थाके सदस्य बन सकते हैं। सदस्योंके विराट सम्मेलनोंमें सभाकी व्यवस्थापिका समिति के सदस्य

चुने जाते हैं। उसके बाद व्यवस्थापिका समिति अपनी एक कार्यकारिणी समितिका चुनाव करती है। सभाके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, कार्यकारिणी समितिके सदस्य आदि पदाधिकारी भी नियमानुसार चुने अथवा मनोनीत हो जाते हैं। लेकिन प्रान्तीय सभाके मन्त्रीकी नियुक्ति भारत हिन्दी प्रचार सभा स्वयं करती है। इस प्रकार प्रान्तीय सभाकी जो कार्यकारिणी समिति बनती है, वही व्यवस्थापिका समितिके निर्देशानुसार इस संस्थाको सुचारु रूपसे चलानेका काम सम्भालती है। यद्यपि प्रत्येक प्रान्तीय सभा अपने बहुमुखी कार्योंके लिये अपने प्रान्तके लोगोंसे समय समयपर चन्दा, दान आदि वसूल करती है, तो भी इनकी मातृ संस्था दक्षिण भारतकी हिन्दी प्रचार सभा ही आवश्यकतानुसार अनुदान आदि देकर उसको अपना आर्थिक उत्तरदायित्व पूरा करनेका मौका देती है। इसलिए प्रत्येक प्रान्तीय सभाका अभेद सम्बन्ध दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभासे अवश्य बना रहता है।

केरलकी प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा अपने प्रान्तके हिन्दी प्रचार कार्यको बढ़ानेके लिये बीसों सवैतनिक एवं सैकड़ों सहायक हिन्दी-प्रचारकोंको नियुक्ति करती हैं। अपने सुयोग्य एवं अनुभवी संगठकोंके द्वारा नए नए हिन्दी केंद्रोंका संगठन करके,हिन्दी प्रचार मण्डल और शाखा-समितियाँ कायम करना भी सभाके कार्यक्रममें प्रधान माना जाता है। हिन्दीकी प्रारम्भिक तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेके लिए विभिन्न केन्द्रोंमें प्रारम्भिक हिन्दी विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंका सञ्चालन भी सभा करती है। प्रमुख केन्द्रोंमें हिन्दी पुस्तकालयों और वाचनालयोंकी स्थापना करके हिन्दी पढ़े-लिखे लोगोंकी जानकारी बढ़ानेकी व्यवस्था भी यही संस्था करती है। इसी प्रकार समय समय पर,हिन्दी-सप्ताह,हिन्दी मेला, हिन्दी-शिविर,हिन्दी-स्पर्धाएँ,हिन्दी प्रचारक सम्मेलन, सार्वजनिक हिन्दी प्रचार सम्मेलन, हिन्दी नाटक,-प्रदर्शन, हिन्दी-पत्रिका-प्रकाशन आदि विविध कार्यकलापोंके जरिए, केरलकी जनतामें हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि बढ़ानेमें, यह प्रान्तीय सभा काफी सफल हो रही है। विविध हिन्दी परीक्षाओंके द्वारा केरलके लोगोंमें हिन्दीकी जानकारीको सुदृढ़ एवं विकासोन्मुख बनाए रखने का प्रयत्न करना सभाका सबसे प्रधान कार्य माना जाता है। केरलके स्कूलों और कालेजोंमें हिन्दीकी पढ़ाईका प्रबन्ध करानेमें भी प्रान्तीय सभाको बड़ी सफलता प्राप्त हो गई है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज दक्षिण भारतमें केरल ही एक ऐसा अहिन्दी प्रदेश है जहाँके सभी स्कूलों और कालेजोंमें हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है।

केरलमें सभाकी "प्राथमिक" से लेकर "प्रवीण" तककी तमाम हिन्दी परीक्षाएँ इतनी लोक-प्रिय बन चुकी हैं कि, प्रत्येक बार इन परीक्षाओंमें हजारोंकी तादादमें परीक्षार्थी बैठते हैं और उत्तीर्ण होनेपर अपनी हिन्दी पढ़ाई जारी रखनेका प्रयत्न बराबर करते रहते हैं। हिन्दी अध्यापकोंको प्रशिक्षण देनेके लिए सभा जो "प्रचारक" परीक्षा चलाती है, उसमें भी कई लोग हर बार बैठते हैं और उत्तीर्ण होनेके बाद स्वयं हिन्दी पढ़ानेके कार्यमें ही लग जाते हैं। ऐसे हिन्दी-प्रचारकों और हिन्दी-सेवकोंकी संख्या केरलमें प्रतिवर्ष बढ़ती ही रहती है। आज केरलका कोई गाँव या कस्बा ऐसा नहीं होगा, जहाँ पर कोई न कोई हिन्दी-प्रचारक अपना हिन्दी-विद्यालय अथवा हिन्दी-वर्ग नहीं चलाता हो।

यद्यपि केरलकी प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाका पुराना नाम 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' था, तो भी आज इसको 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल)' का नया नाम दिया गया है। इस संस्थाका सदर-मुकाम एरणाकुलममें है। इसमें अपना निजी मकान, व्याख्यान-भवन, पुस्तक बिक्री विभाग, सहा

विद्यालय आदि भी है। इस संस्थाके तीन जिल्हा-कार्यालय, बीसों शाखा-कार्यालय, पचासों हिन्दी-प्रचार मण्डल, सैकड़ों विद्यालय, तथा अनेक हिन्दी पुस्तकालय इस समय केरलमें स्थापित हो चुके है। सन् १९४५ में इस संस्थाके सर्वप्रथम मन्त्री पण्डित देवदूत विद्यार्थीके उत्तर भारत चले जानेके बाद समय-समय पर सर्वश्री ए. चन्द्रहासन, पी. के. नारायणन नायर, एन. सुन्दर अय्यर, पी. के. केशवन नायर, एस. महलिंगम, के. आर. विश्वनाथन, जी. सुब्रह्मण्यम्, नारायण देव तथा इन पंक्तियोंके लेखकने इसके मन्त्रीके पदपर काम किया है। सन् १९४७ से लेकर सन् १९५९ तक बारह साल इन पक्तियोंके लेखकको अपने केरलकी इस प्रियतम हिन्दी संस्थाके मन्त्रीके पदपर जो सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उससे वह अपनेको अवश्य अत्यन्त धन्य मानता है; और उन दिनोंकी कठोर एवं मधुर स्मृतियाँ वह अपने जीवनमे कदापि नहीं भूल सकता। समय-समयपर केरलकी सभाके अध्यक्ष चुने जानेका सौभाग्य जिनको प्राप्त हुआ; उनमें सर्वश्री स्वर्गीय सी. मत्ताई, स्वर्गीय चेंगनाशेरी परमेश्वरन पिल्लै, स्वर्गीय राव बहादुर नारायणन पण्डाले, स्वर्गीय टी. के. कृष्ण मेनोन, स्वर्गीय डॉ. ए. आर. मेनोन, एम. अच्चुतन वैद्यर, एन. सुन्दर अय्यर, आर. कृष्ण अय्यर, के. पी. माधवन नायर, पी. के. केशवन नायर आदि महाशयोंके नाम अवश्य स्मरणीय है। सभाके संगठकोंके पदपर समय-समयपर नियुक्त हुए सर्वश्री ऐ. वेलायुधम, कृष्ण पिल्लै, परमेश्वर पणिक्कर, सी. जी. गोपालकृष्णन्, सी. आर. नाणप्पा, ए. वासु मेनोन, एन सदाशिवन, एम. पी. माधव कुरुप, नारायण दत्त, नारायण देव आदि सफल कार्यकर्ताओंने जो प्रशंसनीय सेवा की है, उसका संक्षिप्त परिचय देना भी यहाँ पर सम्भव नही है। केरलके प्रशिक्षण विद्यालयोंमे प्रधान अध्यापक तथा प्राध्यापकके पदपर काम करके अच्छे सुयोग्य प्रचारकोंको तैयार करके प्रदान करनेकी सराहनीय सेवा, जिन महाशयोंने की है, उनमे सर्वश्री का. म. शिवराम शर्मा, सोमनाथ, पी. नारायण, पन्नालाल त्रिपाठी, टी. पी. वीरराघवन, सुमतीन्द्र आदिके नाम उल्लेखनीय है। आखिर इस वक्त कुछ खास परिस्थितियोंके कारण मद्रासकी मातृसंस्था दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे केरलके लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त हुए है। अतः कुछ दिनोंसे श्री आञ्जनेय शर्माजी विशेष अधिकारीकी हैसियतसे इस संस्थाका कार्य-भार सम्भाल रहे है। इस समय इस संस्थाकी देख-रेख में हिन्दी-प्रचारके महान कार्यमे लगे हुए तीन हजारसे अधिक हिन्दी-प्रचारक है, जिनमें ज्यादा लोग यद्यपि सरकारी तथा गैर सरकारी स्कूलों और कालेजोंमें काम कर रहे है, तो भी वे सबके सब सभाकी सेवा भी यथावकाश भरसक अवश्य करते ही रहते है, और अपने को सभाके प्रचारक घोषित करनेमें बड़े गौरव और आनन्दका अनुभव भी करते हैं। इनके अलावा सभाके कुछ सवैतनिक एव सहायक प्रचारक अपना पूरा समय सभाके कार्योंमें ही लगाते है। ऐसे प्रचारकोंकी अपेक्षा उपर्युक्त स्वन्तत्र प्रचारकोंकी संख्या ही वास्तवमें ज्यादा है, और उनकी निस्वार्थ सेवाओंके कारण ही सभाकी प्रतिष्ठा प्रतिदिन बढ़ती रहती है।

हिन्दी-प्रचार सभाके अलावा केरलकी सरकार और केरलके विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) की तरफसे भी हिन्दी प्रचारका कार्य जोरोंसे चल रहा है। विश्वविद्यालयकी तरफसे "हिन्दी विद्वान" नामक एक उच्च परीक्षा चलाई जाती है। विश्वविद्यालयकी प्रेरणासे केरलके प्रायः सभी कालेजोंमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था हो चुकी है। अतः कालेजोंमें हिन्दी पढ़नेवालों और पढ़ानेवालोंकी संख्या बहुत बढ़ रही है। विश्वविद्यालयने अपने कुछ प्रमुख कालेजोंमें हिन्दीमें 'एम. ए.' तककी पढ़ाईका समुचित प्रबन्ध भी किया है। अतः केरलके कई पुराने हिन्दी-प्रचारक और वर्तमान हिन्दी अध्यापक इस समय

'एम. ए.' बननेकी कोशिश में लगे हुए हैं। उनमें सैकड़ों अध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंमें जाकर स्वय अध्ययन करके 'एम ए.' की डिग्री पहले ही प्राप्त कर चुके हैं। यहांके कालेजोंमें काम करने वाले चार पाँच प्राध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंसे पी. एच. डी. की पदवी हासिल करनेमें भी कामयाब हुए हैं।

इस समय केरलकी सरकारकी तरफसे, राज्यके हिन्दी-प्रचार-कार्यमें यथाशीघ्र प्रगति लानेके लिए एक "विशेष अधिकारी" (Hindi Special officer) भी नियुक्त हुए हैं। हिन्दी अध्यापकोंके लिए प्रशिक्षण-शिविर ट्रैनिंग विद्यालय आदि भी केरल सरकार चलाती है। अपनी सेवामे रहनेवाले योग्य हिन्दी अध्यापकोंको समय समयपर छात्रवृत्ति और मार्ग-व्यय देकर हिन्दी की उच्च शिक्षा पानेके लिए उत्तर भारत भेजनेका कार्य भी सरकार करती है। हिन्दी-प्रचारके लिए एक प्रदर्शनी-वैन (गाड़ी) भी सरकारने खरीदी है। केरलकी प्रमुख हिन्दी संस्थाओंको आर्थिक सहायता देकर यथा-सम्भव प्रोत्साहित करनेकी नीतिका पालन भी सरकार करती है। इसके अलावा अपनी विविध योजनाओंके द्वारा केन्द्र सरकारसे यथा-समय हिन्दी प्रचारके लिए भरसक अनुदान पानेका प्रयत्न भी अवश्य करती है।

केरलमे जो साम्यवादी सरकार श्री ई. एम. एस. नम्पूतिरिपाटके मुख्य मन्त्रित्वमे पिछली बार करीब तीन साल तक शासन कर रही थी, उसने भी यहांके हिन्दी प्रचारको पूर्ण रूपसे प्रोत्साहित करनेमें कोई बात उठा नही रखी थी। श्री नम्पूतिरिपाटकी साम्यवादी सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) को भवन-निर्माणके लिए दस हजार रुपए विशेष अनुदानके रूपमे दिए और पहले प्रान्तीय पुरानी कांग्रेस सरकारकी तरफसे सिर्फ एक सौ रुपए मात्रका जो मासिक अनुदान दिया जाता था, उसको बढ़ाकर दो सौ पचास किया गया। इस प्रकारके कई कारणोंसे हमको यह बात सहर्ष स्वीकार करनी पड़ती है, कि केरल राज्यकी विविध सरकारे हमेशा हिन्दी-प्रचारके कार्यमें अवश्य सहयोग और सहायता प्रदान करती ही रहती है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल), केरल सरकार, और विश्वविद्यालय, इन तीनोंके अलावा तिरुवनन्तपुरम शहरमें एक स्वतन्त्र हिन्दी-प्रचार सभा भी कई वर्षोंसे हिन्दी प्रचार कर रही है। उस सभाके मन्त्री केरलके एक पुराने प्रचारक श्री के. वासुदेवन पिल्लै हैं। वह सस्था अपनी अलग हिन्दी परीक्षाको चलाती है, और उनमे उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको पुरस्कार, प्रमाण-पत्र आदि बाँट देती है। हाल ही मे उस संस्थाकी कुछ परीक्षाओंको केरल सरकारने मान्यता प्रदान की है। अतः उनमे उत्तीर्ण लोग भी आजकल केरलके कुछ स्कूलोंमें हिन्दी अध्यापकके पदपर नियुक्त होते है।

केरलके हिन्दी प्रचार आन्दोलनमें शुरूसे पुरुषोंके बराबर महिलाएँ भी बड़ी दिलचस्पी दिखाती आ रही हैं। प्रायः यहाँके परीक्षार्थियोंमें ज्यादा महिलाएँ शामिल होती है। हिन्दी वर्गोंमें भी अक्सर स्त्रियोंकी संख्या ज्यादा पायी जाती है। हिन्दी प्रचार करनेवाले प्रचारकोंमें भी महिलाओंकी संख्या पुरुषोंसे कम नहीं है। इस समय केरलके बाहर अन्य प्रान्तों तथा राज्योंमें जाकर यहाँ की कई सुशिक्षित महिलाएँ हिन्दी प्रचार कार्य करती हैं। अतः केरल में इस महत्वपूर्ण राष्ट्र निर्माणात्मक भाषा-प्रचारके कार्यकी इतनी उन्नति, सफलता और प्रगति यहाँकी महिलाओंके अथक परिश्रम और अनुकरणीय प्रेरणाके कारण ही हो रही है, ऐसा कहना बिलकुल अनुचित नहीं होगा।

केरलके प्रायः सभी हिन्दी केन्द्रोंमें हस्तलिखित हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित करनेका कार्यक्रम बराबर चलता रहता है। ऐसी अनेकों पत्रिकाएँ प्राप्त हो सकती हैं जिनमें उच्च कोटिके हिन्दी लेख, कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं। लेकिन इसमें उन सबका परिचय देना कठिन है। केरलसे छपकर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी पत्रिकाओंमें 'युग प्रभात,' 'केरल भारती,' 'भाव' और 'रूप' आदि काफी लोकप्रिय हो रही है। 'युग प्रभात' एक पाक्षिक पत्रिका है, जो 'मातृभूमि' नामक मलयालमके प्रसिद्ध दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंके प्रकाशकोंकी तरफसे प्रकाशित हो रही है। उसके सम्पादक मलयालमके एक प्रसिद्ध कवि, समालोचक और पत्रकार श्री एन. वी. कृष्ण वारियर है और सह सम्पादक हैं श्री रविवर्मा। 'युग प्रभात' उच्च कोटिकी सांस्कृतिक एव साहित्यिक सचित्र पत्रिका है। वर्तमान हिन्दी संसारने कई बार इस पत्रिकाकी बड़ी प्रशसा की है। 'केरल भारती' प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाकी मुख-पत्रिका है। अन्य पत्रिकाओंमें 'हिन्दी मित्र', 'विश्वभारती,' 'राष्ट्रवाणी,' 'प्रताप,' 'ललकार' आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें कुछ पत्रिकाओंका प्रकाशन इस समय बन्द हो गया है, तो भी उनमें प्रकाशित पाठच सामग्री अवश्य सञ्चय कर रखने योग्य है।

हिन्दी-प्रचार आन्दोलनके फल-स्वरूप, केरलमे कई सुयोग्य हिन्दी कवि, लेखक, लेखिकाएँ, समालोचक, विद्वान आदि तैयार हो चुके है, और हो रहे है। उन सबके नामकी लम्बी सूची यहाँ स्थानाभावके कारण नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार हिन्दीसे मलयालममें और मलयालमसे हिन्दीमें श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओंका सुन्दर अनुवाद करनेवाले अच्छे अच्छे अनुवादक भी केरलमें कम नहीं हैं।

उपर्युक्त बातोंसे यह स्पष्ट है कि केरलमें हिन्दी-प्रचारका राष्ट्र-निर्माणात्मक कार्य बड़ी तीव्र गतिसे बढ़ रहा है। हिन्दी परीक्षार्थियोंकी सख्या, हिन्दी प्रचारकों तथा अध्यापकोंकी संख्या, हिन्दी केन्द्रोंकी संख्या, हिन्दी लेखक व लेखिकाओं की सख्या, हिन्दी पत्रिकाओंकी संख्या आदि सब बातोंमें यहाँ दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती रहती है। केरलके लोगोंने कभी कहीं हिन्दीका विरोध नहीं किया है। उन्होंने हमेशा हिन्दी आन्दोलनको पूर्ण रूपसे अपनाया है, और हिन्दी भाषाका अध्ययन और प्रचार करना अपना एक परम श्रेष्ठ 'राष्ट्र-धर्म' माना है। अतः इसमें कोई सन्देश नही है कि केरलमें हिन्दीका भविष्य अवश्य उज्वल होगा।
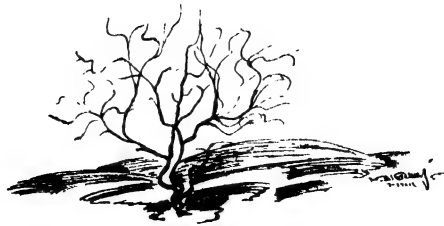
तमिलनाडकी हिन्दीको देन

श्री क. म. शिवराम शर्मा

प्राचीन द्राविड़ भाषा

भारतकी भाषाओंमे अत्यन्त प्राचीन भाषाएँ दो है संस्कृत और तमिल। कई तमिल भाषियोका तो कहना है कि तमिल संस्कृतसे भी प्राचीन है। हमारे लिए प्रश्न यह नही है कि कौन-सी भाषा किससे प्राचीन है---हमें विचार यह करना है कि तमिल और संस्कृतके---तमिल भाषा-भाषियों और सस्कृत भाषा-भाषियोके---बीचमे मेल-मिलाप कैसे हुआ। आज हम समग्र भारतको---आसेतु-हिमाचल एक राष्ट्र मानते है।

तमिल-सस्कृतके समन्वयपर विचार करते हुए हम केवल संस्कृत भाषा तक सीमित न रहकर संस्कृतसे उत्पन्न आधुनिक हिन्दीपर तमिलका प्रभाव कैसे पड़ा है---इसका भी कुछ विचार करेंगे। भारत जैसे देशमें एक भाषाका दूसरी भाषासे प्रभावित होना स्वाभाविक है। भारतकी तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, महाराष्ट्री, गुजराती, सिन्धी, पञ्जाबी, हिन्दी, बंगला, उड़िया, आदि सभी भाषाओंपर एक दूसरेका प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। प्राचीन कालमें संस्कृत भाषाका माध्यम लेकर सार्वदेशिक व्यापार चला करते थे, और आज हम हिन्दीको वह स्थान प्रदान करनेके प्रयत्नमें लगे हुए है। अन्य भाषाओंने हिन्दीपर कैसा प्रभाव डाला---यही हमारे लिए विशेष विचारणीय है। पर तमिल सुदूर दक्षिणकी भाषा है, इसलिए उसका प्रभाव हिन्दीपर किस तरहसे पड़ा---यह शीघ्र समझाना आसान नहीं है। हमे एक तरहसे आर्य-द्राविड़ समन्वयका ही कुछ उल्लेख करना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिण भारतकी भाषाएँ भिन्न परिवार की है, और उत्तर भारतकी भाषाएँ सस्कृत या प्राकृत जन्य है। यही कारण है कि सन् १९१८ ई. में गाँधीजीने जब हिन्दी-प्रचारका काम शुरू किया, तब पहले दक्षिण भारतमे हिन्दीका-प्रचार करनेकी आवश्यकता बताई थी। दक्षिण भारतीयोंके लिए हिन्दी एक विदेशी भाषा-सी थी। उत्तरके लोग तो केवल 'मद्रासी भाषा' से परिचित थे। बहुतसे लोग यह भी नहीं जानते थे कि स्वतन्त्रताके पूर्वके मद्रास प्रान्तमे, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम नामक चार साहित्य-सम्पन्न प्रमुख भाषाएँ थीं। तैलोंगे नाम उन दिनो केवल तेलुगु भाषाके लिए नहीं; अपितु

तमिल और मलयालम भाषाओंके लिए भी लागू था। अतएव गाँधीजीने राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार आवश्यक माना बल्कि उत्तर भारतीयोंको दक्षिण भारतीय किसी एक भाषाका सीखना भी आवश्यक माना था। भाई हृषीकेश शर्माजीको उन्होंने आदेश दिया था कि पहले तेलुगु भाषा सीखनेपर अधिक ध्यान दो।

यद्यपि तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम एक परिवारकी भाषाएँ हैं, तो भी यह मानना ठीक नहीं होगा कि तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम, तमिलसे उत्पन्न हैं। इसमे सन्देह नहीं कि कई शब्द इन चारों भाषाओंमें प्रयुक्त है। इसमे भी सन्देह नहीं कि केवल तमिल भाषाकी अत्यन्त प्राचीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। तेलुगु, कन्नड़, और मलयालमकी रचनाएँ दस या बारह सौ वर्षोंसे अधिक प्राचीन नहीं है। पर इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि जहाँ आजकल कन्नड़ और तेलुगु भाषाएँ प्रचलित हैं, उन प्रदेशोंमें तमिल प्रचलित थी। जहाँ मद्राससे दक्षिणकी ड़ेढ़ या दो हजार वर्ष पूर्वकी तमिल रचनाएँ उपलब्ध है वहाँ मद्राससे उत्तरकी कोई तमिल रचना उपलब्ध नहींहै। ड़ेढ़ हजार वर्ष पूर्वकी तेलुगु या कन्नड़की रचनाएँ उपलब्ध है, तो उससे पूर्व उन भाषाओंके क्षेत्रमे जो भाषा प्रचलित थी, वह कौन-सी भाषा थी? यह मानना उचित मालूम होता है कि कोई ऐसी सामान्य भाषा थी जिसका तमिलसे निकट सम्बन्ध था; उसीसे कन्नड़ और तेलुगु भाषाओंकी उत्पत्ति हुई। मलयालम आजकल जिस प्रदेशमे प्रचलित है, वहाँ करीब डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्व तमिल ही प्रचलित थी। अतः मलयालम भाषाको तमिलसे उत्पन्न माना जा सकता है। किन्तु इस प्रदेशमे भी तमिल प्रथाओंसे भिन्न प्रथाएँ ऐसी पाई जाती है कि सहसा यह माननेका साहस नहीं होता कि केरलकी संस्कृति तमिल संस्कृतिसे उत्पन्न है।

तमिल प्रदेशकी भौगोलिक स्थिति

तमिल प्रदेश भारतके दक्षिणमें है। इस प्रदेशके दक्षिणमे हिन्द महासागर, पश्चिममें केरल, उत्तरमें मैसूर और आन्ध्र तथा पूर्वमें बंगालकी खाड़ी है। भारतका नक्शा देखनेपर विदित होगा कि भारतका दक्षिणी भाग संकुचित है और अुत्तरी भाग विस्तृत है। उत्तरमें गुजरातसे लेकर बंगाल तकका भूभाग—पश्चिमसे पूर्व—करीब उतना ही लम्बा है, जितना हिमालयसे कन्याकुमारी; उत्तरसे दक्षिणतक है। पर दक्षिणकी ओर बढ़ते-बढ़ते भू-भाग तंग होता जाता है, यहाँतक कि कन्याकुमारीमे वह नुकीला बन जाता है। यह कन्याकुमारी तमिल प्रदेशकी और भारतवर्षकी दक्षिणी सीमा है। इस कन्याकुमारीके चरणोंको बंगालकी खाड़ी, हिन्द महासागर और अरब सागर सदा धोते रहते हैं। इस कन्याकुमारीमें कन्या 'उमा' का मन्दिर है। उमाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महादेवजीने उमासे विवाह करनेका निश्चय कर लिया। अपने यहाँसे उमाके घरके लिए निकल पड़े। पर वहाँतक पहुँचनेके पूर्व कलिकालका आरम्भ हो गया। कलिकालमे भला देवी उमाका विवाह हो सकता है? फलतः विवाह स्थगित हुआ। विवाहके लिए चावल, हल्दी, कुंकुम आदि जो सामग्री जमा की गई, उसे विवाह तकके लिए रेतका आकार दे दिया गया—आज भी कन्याकुमारीमें समुद्रके किनारे तरह-तरहकी रेत मिलती है जिन्हें देखकर चावल, हल्दी (चूर्ण), कुंकुम, रंगोली आदिका भ्रम होता है।

सामान्य रूपसे यह माना जाता है कि दक्षिण भारतमें गर्मी अधिक पड़ती है। कवियोंने कहा है कि सूर्य सर्दीमें दक्षिणकी ओर चला जाता है और जब दक्षिणमें गर्मी बढ़ने लगती है तब फिर उत्तरकी

ओर पहुँचने लगता है। दक्षिणमें सर्दी नहीं पड़ती, इसमें सन्देह नहीं है। पौष माघमें भी केवल एक सूतका वस्त्र ओढ़कर भी काम चलाया जा सकता है। पर गर्मीमें उत्तर भारतकी गर्मीसे कुछ अधिक गर्मी तमिल प्रदेशमें नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि उस तंग प्रदेशपर बंगालकी खाड़ी और अरब सागर दोनों जलाशयोंका प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं——तमिल प्रदेशकी उत्तरी सीमा दक्षिणके हिन्द महासागरसे अधिक दूर नही है।

तमिल प्रदेशके मन्दिर

अँग्रेजोंने तमिल प्रदेशको 'लैण्ड ऑफ टेम्पल्स' (मन्दिरोंका प्रदेश) कहा है। यह बिलकुल ठीक है। तमिल भाषाकी करीब दो हजार वर्ष पूर्वकी एक प्रसिद्ध कवियित्री "औवै" थी। उसने कहा था——'कोइलिल्ला ऊरिल कुडि इरुक्क वेण्डाम' अर्थात् जहाँ मन्दिर न हो, ऐसी बस्तीमें मत बसो। कवियित्रीके इस आदेशका तमिल लोगोंने बड़ी तत्परतासे पालन किया। यदि कहीं नई बस्ती बसाई जाती तो तमिल लोग वहाँ मन्दिरका निर्माण अवश्य ही कर डालते है। तमिल लोगोंके दैनिक कार्यक्रममें भगवान-के दर्शनार्थ मन्दिरमें जानेका क्रम अवश्य रहता है। हर मन्दिरमें समय-समयपर मेले महोत्सव मनाए जाते है और वार्षिक महोत्सव तो धूम-धामसे मनाया ही जाता है। रामेश्वर तो अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ है——मदुरा, त्रिचिनापल्ली, श्रीरंगजी, कञ्ची आदि तमिल प्रदेशके अत्यन्त प्राचीन प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। वहाँके मन्दिर बड़े-बड़े हैं। लोग समय-समयपर अन्न, वस्त्र आभरण और नकद रुपए मन्दिरोंको दान दिया करते हैं। कई मन्दिरोंमें असंख्य रत्नाभरणोंका कोष है। 'तिरुपति' नामक बालाजी क्षेत्र आजकल आन्ध्र प्रदेशमें आ गया है। इसको तमिल लोग अपने ही प्रदेशका मानते है। इस मन्दिरको आमदनी आजकल प्रतिवर्ष तीस-चालीस लाख रुपए की है। कई मन्दिरोके ऊपरके 'विमान' सोनेके पर्तसे ढके हुए हैं। मन्दिरोंमें जहाँ भगवानका मूल विग्रह रहता है, उसके उपर एक गोल गुम्बज सा बनाया जाता है——यही 'विमान' कहलाता है।

दक्षिणके मन्दिरोके द्वारपर ऊँचे 'गोपुर' बने हुए है। ये 'गोपुर' दक्षिण भारतके मन्दिरोंकी विशिष्टता है। इसी गोपुरको मद्रास राज्य सरकारने अपना 'राज्य-चिन्ह' बना लिया है। गोपुर प्रवेश-द्वार पर ऊँची दीवारोंपर बने हुए होते हैं। उसका निचला हिस्सा चौड़ा होता है और ऊपर उठते-उठते चौड़ाई कम होती जाती है। इन गोपुरोंपर सुन्दर प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं।

दक्षिणके लोगोंको वहाँके मन्दिरोंने बहुत अधिक प्रभावित किया है। वहाँके मन्दिर शिक्षाके केन्द्र रहे, कलाके पोषक रहे, और आध्यात्मिकताके प्रेरक रहे। हर मन्दिरमें प्रतिवर्ष दस दिनका मेला लगता है जो 'ब्रह्मोत्सव' कहलाता है। इसके अलावा समय-समयपर अन्य कई उत्सव हुआ करते हैं। बड़े-बड़े मन्दिरोंमें उत्सवोंका क्रम इस तरह रहता है कि साल भरमें कहीं न कहीं किसी बड़े प्रसिद्ध मन्दिरमें उत्सव चलता ही रहता है। कुछ मन्दिरोंकी विशेषता यह है कि उत्सव शुक्ल पक्षकी पञ्चमीके दिन आरम्भ होकर पूर्णिमाके दिन पूरा होता है।

दक्षिणके शैव मन्दिरोंमे कञ्ची, जम्बुकेश्वर, श्री कालहस्ति, तिरुवण्णामलै और चिदम्बरमके मन्दिरोंके शिव-लिंग क्रमशः 'पृथ्वी लिंग', 'अप लिंग'; 'वायु लिंग', 'तेजो लिंग' और 'आकाश लिंग' माने जाते हैं। कांचीका

लिग बालूका बना है---इसलिए पृथ्वी लिंग है। जम्बुकेश्वर त्रिचिनापल्लिके पास है। त्रिचिनापल्ली कावेरी नदीके दक्षिणी किनारेपर है और जम्बुकेश्वर उत्तरी किनारेपर एक द्वीपमें है। इसी द्वीपमें श्रीरंग भी स्थित है। जम्बुकेश्वर के लिंगके चारों ओर सदा पानी रहता है---इसलिये यह अप लिंग माना गया है। श्री कालहस्ती, प्रसिद्ध तिरुपति नामक बालाजी क्षेत्रके पूर्वकी ओर करीब चालीस मीलपर है। मद्रासासे बम्बई जाते हुए, मद्राससे करीब सौ मीलपर रेनिगुण्टा नामक स्टेशन पड़ता है। वहाँसे करीब छह सात मील पश्चिममें तिरुपति-बालाजी है। मद्राससे कलकत्ता जाते हुए गुडूर नामक एक स्टेशन पड़ता है। इस गुडूर से रेनिगंटा तक एक रेल मार्ग है और इसीमे श्री कालहस्ती स्थित है। यहाँके मन्दिरकी यह विशेषता है, कि जहाँपर मूल लिंग स्थित है वहाँ सदा हवा चलती है। इसलिये यह वायु लिंग है। तिरुवण्णामलैका मन्दिर एक पहाड़की तलहटीमे बना हुआ है। यह पहाड़ 'अरुणाचल' कहलाता है और वही लिंग माना जाता है। मन्दिरके अन्दरका लिंग इस पहाड़का प्रतीक और तेजोलिंग माना जाता है। चिदम्बरम्‌में एक मण्डप है जो सालमें केवल एक दिन खुलता है। साल भर बन्द, यह मण्डप जिस दिन खुलता है, उस दिन लाखों लोग लिंग के दर्शनके लिये जमा हो जाते है। जब मण्डपके परदे हटाए जाते हैं तब खाली-शून्य-मण्डप ही देखनेको मिलता है-वही आकाश–लिंग माना जाता है।

दक्षिणके मन्दिरोंकी एक और विशेषता वहाँ का शैव-वैष्णव समन्वय है। पूरी बातोंसे अपरिचित कुछ लोग, शिवकांची–विष्णुकांची नामसे कल्पनाकर लेते है कि, शैव और वैष्णवोंमे सदा संघर्ष रहता है। पर सच बात यह है कि इन दोनोंमें संघर्ष नहीं, सहयोग ही रहता है। प्राचीन कालके शैव-भक्त कवि 'नायनमार' कहलाए और वैष्णव भक्त कवि 'आळवार' कहलाए। इन नायनमारों और अळवारोंका एक सामान्य उद्देश्य था---बौद्ध और जैन धर्मोका खण्डन करना। काञ्चीके शिवमन्दिरके ब्रह्मोत्सवके आठवें दिन भगवानकी मूर्तिकी सजावटके लिए विष्णुकाञ्चीके मन्दिरसे वस्त्र व आभूषण आदि लाए जाते है। मदुराके प्रसिद्ध मन्दिरके ब्रह्मोत्सवके अन्तिम दिन बारह मील दूर परसे भगवान विष्णुकी मूर्ति लाई जाती है---शिवजी के विवाह-समारोहमे सम्मिलित होनेके लिए। शैव-वैष्णव समन्वयके अन्य अनेकों प्रमाण पेश किए जा सकते है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे तमिल प्रदेशके प्रमुख तीन राजवंश प्राचीन कालमे प्रसिद्ध थे---चोल, पाण्ड्य और चेर। चोल राज्य आधुनिक तञ्जौर और त्रिचिनापल्लीके प्रदेशमें था। पाण्ड्य राज्य उसके दक्षिणमें आधुनिक मदुरा, रामनाथपुरम और तिरुनेल्वेली जिलेमे व्याप्त था। इन दोनों राज्योंके पश्चिम में पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तीरपर, जहाँ आज कल केरल राज्य है, वहाँ चेर राज्य था। चोल राज्यके उत्तरमें पल्लव राजाओंका राज्य था। इन प्रबल राज्यों के पतनके बाद अनेक छोटे मोटे राज्य स्थापित हुए। सन् १६३९ ई. में ऐसे ही एक छोटे राजासे अनुमति प्राप्तकर अंग्रेजी व्यापारियोंने पूर्वी समुद्रतटपर 'चेन्नप्पट्टणम्' नामक नगर बसाया। यही आजकलका मद्रास शहर है।

तमिल प्रदेशकी नदियाँ

मद्रास राज्यकी अपनी नदियाँ इनी गिनी है और बहुत छोटी है। वहाँकी प्रधान नदी कावेरी है जिसकी उत्पत्ति मैसूर राज्यमें होती है। मैसूर शहरके पास इस नदीपर एक बांध है। मैसूर राज्य

पार करके यह नदी मद्रास राज्यमें प्रविष्ट होती है। वहाँके मेट्टूर नामक स्थानमें इसपर एक और बान्ध है। यहाँसे यह नदी त्रिचिनापल्ली जिलेमें बहती है। त्रिचिनापल्ली नगरके पश्चिममें यह नदी दो भागोंमे विभक्त होकर बहती है—यहीं पर श्रीरंगमका द्वीप बना हुआ है। इस द्वीपको पार करके फिर दोनों धाराएँ एक दूसरेके बहुत निकट आ जाती हैं। यहाँ प्राचीन चोल राजाओंका बना एक बान्ध है जो 'कल्लणै' (प्रस्तर बान्ध) कहलाता है। यहाँ ये दोनों धाराएँ फिर अलग हो जाती हैं—उत्तरकी धारा 'कोल्लिडम' कहलाती है और दक्षिणकी 'कावेरी'। इस नदीके कारण त्रिचिनापल्ली और तञ्जौरकी भूमि बहुत उपजाऊ बनी है।

मदुरा नगरसे होकर वैगै नामक नदी बहती है। यह पश्चिमी पहाड़ोंसे निकलकर पूर्वकी ओर बहती है। इसमे पानी कम रहता है। पश्चिमी पहाड़से उत्पन्न होकर पश्चिमकी ओर बहने वाली एक नदीपर बान्ध बनाया गया, और पहाड़में सुरंग खोदकर, उसका पानी वैगै नदीमे बहाया गया है। यह बांध 'पेरियार डैम' कहलाता है। और भी दक्षिणमें तिरुनेल्वेलीमें ताम्रपर्णी नदी बहती है। यह अत्यन्त रमणीय स्थानोंसे होकर बहती है। इस नदीकी एक शाखा "शिट्टार" है। 'कुट्रालम' नामक स्थानमे इस शाखा नदीका जल प्रपात है। कुट्रालय बड़ा स्वास्थ्य-प्रद स्थान माना जाता है, और प्रतिवर्ष जुलाई-अगस्त-सितम्बर महीनोंमे यहाँ हजारोंकी संख्यामें यात्री स्वास्थ्य लाभ करने और आराम करनेके लिअे आया करते है। कावेरीके उत्तरमे पेण्णैयार नामक नदी है। इसमे भी पानी कम रहता है। इसके भी उत्तरमे पालार (क्षीर नदी) बहती है। यह नदी भी मैसूर राज्यमे निकलती है। उस राज्यमे उद्गम परही इसका सारा पानी रोक लिया गया है। इसलिए यह नदीं प्रायः सूखी रहती है। इस नदीके तीरपर 'वेलूर' नामक नगर बसा हुआ है। इस नगरकी तीन विशेषताएँ हैं; जलविहीन नदी, राजा विहीन किला और मूर्ति विहीन मंदिर। नदी तो पालार है। वेलूर नगरमे एक बहुत बड़ा किला है। इसमे अदालत, सरकारी खजाना, पुलिस-ट्रेनिंग स्कूल आदि हैं। पर सैकड़ों वर्षोंसे इसका कोई राजा मालिक नहीं रहा। इसी किलेमे एक सुन्दर मन्दिर है। पर उसमे कोई मूर्ति नहीं है। वह जल कण्ठेश्वर मन्दिर कहलाता है।

मद्रास राज्यके दो पर्वत-प्रदेश बड़े प्रसिद्ध है। उटकमण्ड या ऊटी नामसे प्रसिद्ध 'उदकमण्ड" बड़ा ही रमणीय स्थल है। यह नगर 'नीलगिरि' नामक पहाड़ोंपर बसा हुआ। इसको लोग 'पर्वत-प्रदेशोंकी रानी' (The queen of Hill stations) कहते है। इन्हीं पहाड़ोंपर कूनूर नामक सुन्दर नगर भी बसा हुआ है। दूसरा प्रसिद्ध पर्वत -प्रदेश कोडैकानल है। यह मदुरा जिलेमे है। ऊटीकी अपेक्षा यहांका वातावरण शान्त है। कहते है कि यहाँ का वातावरण और प्राकृतिक दृश्य आदि इंग्लैंडकेसे है।

आर्य द्राविड़ समन्वय

दक्षिणकी भाषाएँ द्राविड़ परिवारकी भाषाएँ है पर यह नहीं कहा जा सकता है कि दक्षिणके लोग द्राविड़ परिवारके हैं। भारतवर्षमें द्राविड़ और आर्योंका इतना मेल मिलाप हुआ है कि अब यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि आर्य कौन है और द्राविड़ कौन हैं। दक्षिणके द्राविड़ संघम, दक्षिणके ब्रा-

ह्मणोंको आर्य और ब्राह्मणेतर लोगोंको द्रविड़ मानता है। कई लोगोंका विश्वास है कि दक्षिण भारतके तमाम लोग द्राविड़ हैं। पर इन बातोंमें कोई तथ्य नहीं है। हिटलर केवल अपनेको आर्य मानता था- उसकी दृष्टिमे भारतके आर्य, आर्य नहीं थे। अभी दो हजार वर्ष भी नहीं हुए। यवन, हूण आदि हमारे भारतमें आ बसे थे। अब क्या यह बताया जा सकता है कि कौन यवन है और कौन हूण ? द्राविड़ों और आर्योंका समन्वय तो दसों हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। लोगोंका विश्वास है कि श्री रामचन्द्रजीके कालसे यह हो रहा है। अनेक प्रकारसे द्राविड़ों और आर्योंका ऐसा समन्वय हो गया है कि अब निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि कौन आर्य है और कौन द्राविड़।

आर्य द्राविड समन्वयका एक सुन्दर उदाहरण हमको मासोंकी रचनामे देखनेमें आता है। दक्षिण भारतके तमिल और केरल प्रदेशोंमे सौरमान वर्ष चलता है। सौरमण्डल बारह राशियोंमे बँटा हुआ है——मेष, ऋषम, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक,धनुष,मकर, कुम्भ और मीन। आकाश मण्डलमे चन्द्रके मार्गमें पड़नेवाले आश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र है। सवा दो नक्षत्रोंकी एक राशि मानी गई है। अर्थात् नक्षत्रोके चार-चार पाद (पाव) माने जाएँ तो मेष राशिमे आश्विनीके चारों पाद, भरणीके चारों पाद और कृतिकाका एक पाद पड़ेगा। ऋषभ राशिमे कृत्तिकाके शेष तीन पाद, रोहिणीके चारों पाद और मृगके दो पाद पड़ेंगे। इस तरह बारहों राशियोंमे सत्ताईस नक्षत्र समा जायेंगे। सौरमान वर्षका प्रयोग अँग्रेजोंका भी चलता है। पृथ्वीको सूर्यकी एक पूरी परिक्रमा करनेमे जो समय लगता है वह 'वर्ष' कहलाता है। इस वर्षको दिनोंमे विभाजित कर, पूरे ३६५ दिनोके बाद नए वर्षका आरम्भ, अँग्रेज आदि पाश्चात्य लोगोंने भी माना है। चार वर्षमे एक बार उन लोगोंने अपना वर्ष ३६६ दिनोंका बना लिया है।

भारतवर्षके तमिल और केरल प्रदेशोंमे भी इसी क्रमसे वर्ष की गणना होती है। वर्षका आरम्भ तब माना जाता है. जब सूर्य मेष राशिमे आता है अर्थात् अश्विनी नक्षत्रपर सूर्य रहता है।'नक्षत्र' का विषय द्राविड़ोंने आर्योंसे लिया, आर्योंके प्रथम नक्षत्र अश्विनीके संयोगमें सूर्यके आनेपर वर्षका आरम्भ मानना द्राविड़-आर्य समन्वयका प्रमाण है। दूसरा प्रमाण तमिल मासोके नामकरणमे है। केरलमे महीनोंका नामकरण राशिके नाम पर हुआ है। जब सूर्य मेष राशिमे रहता है तब मेष मास, जब कन्या राशिमें रहता है, तब कन्या मास और जब धनुषमे रहता है तब धनुर्मास आदि। पर तमिल मासोंका नामकरण हिन्दी आदि अन्य प्रदेशोके मासोके नामोके अनुकरणपर हुआ है।

हिन्दी मास	तमिल मास
चैत्र	चित्तिरै
वैशाख	वैकाशि
ज्येष्ठ	आनि
आषाढ़	आडि
श्रावण	आवणि
भाद्रपद	पुरट्टाशि
आश्विन	ऐप्पिशि

हिन्दी मास	तमिल मास
कार्तिक	कार्तिकै
मार्गशीर्ष	मार्गषि
पौष	तै
माघ	माशि
फाल्गुन	पगुनि

इन मासोंमें आनि, आडि, पुरट्टाशि, ऐप्पिशि, तै माशि नाम कुछ भिन्नसे प्रतीत होते हैं।

यह तो हुआ द्राविड़ोका आर्योसे ग्रहण। आर्योंने भी काल गणनामें द्राविड़ोंसे समन्वय लानेका प्रयत्न किया है। चान्द्रमान वर्षकी गणना चन्द्रकी गतिके आधारपर हुई है। चन्द्रकी जब पृथ्वीके चारों ओर एक परिक्रमा पूरी होती है, तब एक मास माना जाता है। पूर्णिमाके दिन जिस नक्षत्र पर चन्द्र रहता है उसके आधारपर मासका नामकरण हुआ। यदि पूर्णिमाके दिन चन्द्र चित्रा नक्षत्रपर रहा, तो वह मास चैत्र कहलाता है। ऐसे बारह मासोंका एक वर्ष माना जाता है। अर्थात् पृथ्वीके चारों ओर चंद्रकी जब बारह परिक्रमाएँ हो जाती हैं, तब एक वर्ष माना जाता है। परन्तु जब चन्द्र पृथ्वीकी बारह परिक्रमाएँ पूरी करता है तब भी पृथ्वीकी (सूर्यकी) एक परिक्रमा पूरी नहीं होती। उसमें आठ दस दिन रह जाते हैं। मुसलमानों-की काल-गणना चन्द्रमान है। हम देखते हैं कि उनका रमजान कभी फागुनमें पड़ता है तो कभी भादोंमें। पर हमारे भारत वर्षमें श्रीराम नवमी, कृष्णाष्टमी, बुद्धजयन्ती आदिमें ऐसा अन्तर नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है, कि भारतमें जहाँ चान्द्रमान गणना प्रचलित है, वहां करीब तीन वर्षमें एक बार वर्षके तेरह महीने मान लिए गए हैं। यह समन्वयकी दृष्टिसे ही हुआ होगा।

प्रश्न यह उठा होगा कि वर्षके बारह मास ही माने गए और बारहों मासोंके नाम भी दे दिए गए। यदि बीचमें कभी कोई नया तेरहवा मास लाया जाए, तो उसका किस तरहसे कैसा नाम करण हो। इसके लिए निश्चय हुआ, कि जिस सौर मासमें दो अमावस्याएँ पड़े, उस महीनेका नाम देकर उसको अधिक मास माना जाए।उदाहरणके लिये यदि सूर्यके मेष राशिमें रहते दो अमावस्याएँ आएँ तो (चित्तिरै) चैत्रके दो मास माने जाएँ और एक 'आधिक चैत्र' माना जाए। एक सौर मासमें दो अमावस्याएँ करीब तीन सालमें एक बार ही पड़ती है।

हिन्दीपर तमिलका प्रभाव

ऐसा समन्वय भाषाके सम्बन्धमें भी अवश्य ही हुआ होगा। पर हमें आज अपना विचार हिन्दी तक ही सीमित रखना है। मेरा विचार है कि हिन्दीके वाक्यकी रचनामें तमिलका कुछ प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

दक्षिणके लोग हिन्दी व्याकरणके 'लिंग' के सम्बन्धमें बड़ी कठिनाई पाते हैं। उनकी समझमें नहीं आता कि, 'पैर' क्यों पुल्लिंग है और 'टाँग' स्त्रीलिंग। उनकी समझमें नहीं आता कि 'अप जय' अर्थ प्रकट करनेपर 'हार' क्यों स्त्रीलिंग है और 'माला' अर्थ प्रकट करनेपर वही शब्द क्यों पुल्लिंग है। इसपर एक सज्जनने एक सीमित क्षेत्रमें इस संकटसे मुक्ति पानेका एक सरल उपाय ढूंढ़ निकाला। उन्होंने कहा कि,

जिस वाक्यके कर्ताके साथ ने 'कारक' चिन्ह लगा है उसके 'कर्म'के साथ 'को' अवश्य लगा लो ताकि 'क्रियाका' रूप सदा पुलिंग एक वचन रहे। कौन यह निश्चय करनेका कष्ट उठाए कि, कर्म पुल्लिग है या स्त्री लिग। वे कहा करते थे ; मैंने रोटीको खाया ; उसने कहानीको सुना ; तुमने चिट्ठीको पढ़ा आदि।

इन सब 'कर्मो'के साथ 'को' लगाना कुछ अच्छा तो नहीं लगता। प्रश्न अब यह उठता है कि 'कर्म'मे कहाँ 'को' लगाना अनिवार्य है और कहाँ वह चिन्ह लुप्त रह सकता है। यही पर दक्षिण भारतीय भाषाओं का प्रभाव देखनेमे आता है।

द्राविड भाषाओंमे 'सज्ञाओं'के दो भेद हैं--महद्वाचक और अमहद्वाचक। मनुष्य वर्ग और देवता वर्गके नाम महद्वाचक सज्ञाये है। जीव जन्तु, जीव-रहित अन्य वस्तुओके नाम अमहद्वाचक है। मद्वाचक सज्ञाओंके ही स्त्रीलिग और पुल्लिगका भेद माना जाता है। गाय स्त्रीवर्ग का जीव होनेपर भी स्त्री लिंगकी नहीं मानी जाएगी क्योंकि वह अमहद्वाचक है। अहमद्वाचक 'सज्ञाओ'के साथ 'कर्म' कारक चिन्ह लगाना अनिवार्य नही है, महद्वाचक 'सज्ञाओ'मे वह अनिवार्य है।

तमिलकी विशिष्टता

'वह' शब्दके तमिलमे तीन रूप है--अवन्, अवळ् और अदु। अवन् और अवळ्, महद्वाचक शब्द है और क्रमशः पुल्लिग और स्त्री लिग है। तीसरा रूप अदु अमहद्वाचक है। वह पशु, पक्षी, पेड पौधे, आदि सब तरहके सजीव या निर्जीव वस्तुओंके नामके स्थानपर आता है। मनुष्य वर्गके शिशु शब्दके स्थानपर भी वही प्रयुक्त होता है। किसी पुरुष या स्त्रीके प्रति अपमान सूचित करना हो तो उस सर्वनामका प्रयोग हो सकता है।

इस सर्व नामके तीनों रूपोंके अनुरूप क्रियाये होती है। वह आता है, वह आया और वह आएगा, के तीन तीन रूप है .--

वह आया--	अवन् वन्दान्	पुरुष
	अवळ् वन्दाळ्	स्त्री
	अदुवन्ददु	अमहत
वह आता है--	अवन वरुगिरान्	पुरुष
	अवळ वरुगिराळ्	स्त्री
	अदु वरुगिरदु	अमहत्
वह आएगा--	अवन वरुवान्	पुरुष
	अवळ वरुवाळ्	स्त्री
	अदु वरुम्	अमहत्।

यदि ध्यानसे देखा जाए तो विदित होगा कि, तमिल क्रियाओंके पुल्लिग अन्य पुरुषके अन्तमे न्, स्त्रीलिंगमें ळ् और अहमद्वाचकमे 'दु' या 'म्' रहता है। इस आधारपर नए हिन्दी सीखनेवाले, सब क्रियाओंका अर्थ कर लेते हैं। खाया, पिया, देखा, सबको पुल्लिग मानकर तमिल भाषाका रूप प्रदान कर देते हैं। और सभी क्रियाओंके अन्तमें 'न्' लगा देते है। पर जब देखते है कि 'सीताने खाया' प्रयोग

होता है तब दंग रह जाते हैं। सीता तो स्त्रीलिंग है और 'खाया' पुंल्लिंग कैसे ? तमिल या अन्य किसी दक्षिणी भाषामें 'कर्मणि' प्रयोग या 'भावे' प्रयोग होता ही नहीं है। इन प्रयोगोंकी आवश्यकता तब पड़ती है जब किसी विशेष कारणसे वाक्यमे 'कर्ता' के साथ 'कारक' चिन्ह लगाना पड़ता है। पर दक्षिणी भाषाओंमे वाक्यके 'कर्ता' के साथ कोई विशेष चिन्ह लगाना नही पड़ता। इसलिये प्रयोगका प्रश्न ही नहीं उठता।

'सर्वनाम' का उल्लेख करते हुए द्राविड़ परिवारकी भाषाओंके उत्तम-पुरुष बहुवचनका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। यदि ध्यानसे देखा जाए तो विदित होगा कि 'हम' सर्वनामके दो भिन्न अर्थ है। यदि हम किसीसे कहें कि "भाई चलो हम सिनेमा चलें" तो इस वाक्यके "हम" मे, जिससे हम बोल रहे है, वह भी सम्मिलित है। पर यदि हम उससे कहें--"देखो भाई हम सिनेमा चलते है-- तुम यहीं ठहरो" तो इस वाक्यके "हम" मे, जिससे बातें कर रहे है, वह सम्मिलित नही है। दक्षिणकी चारों भाषाओंमें "हम" के इन दोनों अर्थोंको सूचित करनेवाले दो भिन्न शब्द है। तमिलमे "नाम्" और "नांगळ्" दो शब्द है 'नाम' मध्यम पुरुष--युक्त 'हम' है और नांगळ मध्यम पुरुष रहित 'हम' है। "नाम् पोवोम" का अर्थ होगा "हम तुम चलें"। "नांगळ पोवोम्" का अर्थ होगा (तुम्हें छोड़कर) हम चलें।"

तमिल भाषा सयोगात्मक भाषा है। 'कारक' चिन्ह 'सज्ञा' या 'सर्वनामों' के साथ जुड़ जाते है; 'क्रियाओ' के साथ उत्तम, मध्यम या अन्य पुरुष सूचक 'सहायक क्रिया' लगानेकी आवश्यकता नही पड़ती; 'प्रत्यय' 'क्रिया' के साथ जोड़ दिया जाता है। नकार सूचक प्रयोगोंमे भी 'नहीं' या मत अलग जोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती; केवल 'प्रत्यय' 'क्रिया' के साथ जोड़ दिया जाता है।

कारक चिह्न

	हिन्दी	**तमिल**
कर्म कारक	रामको	रामनै
करण कारक	रामसे	रामनोड्; रामनाल
सम्प्रदान कारक	रामके लिए	रामनुक्काग
अपादान कारक	रामसे	रामनैक्काट्टि लुम
सम्बन्ध कारक	रामका	रामनुडैय
अधिकरण कारक	राममे, रामपर	रामनिल, रामनमेल

क्रियाएँ

जाता हूँ	पोगिरेन
(तू) जाता है	पोगिराय
(वह) जाता है	पोगिरान
(हम) जाते है	पोगिरोम
(तुम) जाते हो	पोगिरीरगळ
(वे) जाते है	पोगिरारगळ

क्रियाएँ

(मैं) गया	पोनेन
(तू) गया	पोनाय
(वह) गया	पोनान

तमिल वाक्योंमें बहुधा 'कर्त्ता' का लोप कर दिया जाता है। 'क्रिया' के रूपसे ही आसानीसे 'कर्त्ता' का बोध हो जाता है।

वन्दान	(वह) आया	वर विल्लै	(नही आया)
वरुगिरान	(वह) आता है	वरुगिरानिल्लै	(नहीं आता है)
वरुवान	(वह) आएगा	वरान	(नहीं आएगा)
वा	(आ)	वरादे	(मत आ)
वेण्डुम	(चाहिए)	वेण्डाम	(नहीं चाहिए)

हिन्दीमें संयोगातमक रूप हमें केवल संभाव्य भविष्य क्रियाओंमे मिलता है जहाँ 'क्रिया' के रूपसे उत्तम मध्यम व अन्य पुरुषका बोध होता है।

तमिल वर्णमाला

यद्यपि आकारकी दृष्टिसे दक्षिण भारतीय वर्ण माला, उत्तर भारतीय वर्ण मालाओसे भिन्न हैं, तो भी भारतकी उर्दूको छोड़कर अन्य सभी वर्ण मालाओंकी एक समता है। सभीमे पहले अकारसे लेकर स्वर हैं और स्वरोंके बाद क से लेकर व्यञ्जन हैं। उत्तरमे गुजराती, गुरुमुखी, बगला, उड़िया आदिकी लिपियाँ देवनागरी लिपिसे भिन्न हैं; फिर भी एक सामान्य रूपसे उनके विकासका साफ पता मिलता है। पर दक्षिण की लिपियाँ किस लिपिसे उत्पन्न हुई हैं—इसका कोई प्रमाण नहीं है। और बात ध्यान देने योग्य यह है कि तमिल और तेलुगु लिपियोंका कोई साम्य नही है। तेलुगु और कन्नड़ लिपियाँ बहुत अधिक मिलती जुलती है। वैसे ही तमिल और मलयालमकी लिपियाँ भी बहुत कुछ मिलती जुलती है।

तमिल वर्ण मालाके अक्षर (यहाँ नागरी लिपिमे दिए जा रहे है) ये है :—

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ॲ, ए, ऐ, ऑ, ओ, औ, अक्।

व्यञ्जन—क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, व, ष़, ळ, ऱ, ऩ।

स्वरोंमें अकारादि क्रम नागरी स्वरोंके समान ही है पर 'ऋ' तमिलमे नहीं हैं; न अनुस्वार और विसर्ग ही हैं। यदि तमिल और देवनागरीका मूल स्रोत एक ही है तो तमिलमे ये तीनों क्यों नहीं है? स्वरोंके अन्तमें 'अक्' क्या है? यह भी एक तरहका अनुस्वार ही मालूम पड़ता है। जैसे, नागरी वर्ण-मालाके अनुस्वारमें 'अं' का उच्चारण 'अम्' या 'अङ'—अर्थात् स्वरके बाद हलन्त है वैसे ही तमिलके 'अक्' में भी है। आजकल यह हलन्तका चिन्ह माना जाता है, परन्तु प्राचीन तमिलमें इस विशिष्ट स्वरका अलग महत्व रहा।

व्यञ्जनोंके सम्बन्धमें देखा जाएगा कि नागरी वर्ण मालामें जहाँ 'क' से 'म' तक २५ वर्ण हैं तहाँ तमिलमें केवल १० हैं। 'क' वर्ग आदि पाँचों वर्गोंके केवल प्रथम और अन्तिम व्यञ्जन तमिलमें हैं—

बीचके दूसरे, तीसरे और चौथे व्यञ्जन नहीं है। तमिलमे महा प्राण व्यञ्जन नहीं है, इसलिए दूसरे और चौथे व्यञ्जनोका लोप अधिक खटकता नही है। पर क्या तमिलमे ग, ज, ड, द और व, का प्रयोग नही होता?

कहा जाता है कि तमिल भाषा ऐसी है कि उसके लिए 'क' च, ट, त, प---ये पांच और ङ, ञ, ण, न, म, ये पाँच कुल दस वर्ग---व्यञ्जन ही पर्याप्त है। क, च, ट, त, प, के उच्चारण सम्बन्धी नियमोंसे स्पष्ट हो जाएगा कि कहाँ उनका उच्चारण नागरीके इन अक्षरोंके समान होगा और कहाँ ग, श ड, द और व के समान होगा। तमिलमें ख, छ, ठ, थ, फ तथा घ, झ, ढ, ध, भ की कोई आवश्यकता ही नही है। ध्यान रखना आवश्यक है कि तमिलमे 'च' का कोमल रूप 'ज' नही बल्कि 'श' है।

एक सामान्य नियम है कि शब्दके आरम्भमें आनेवाले इन व्यञ्जनोंका उच्चारण नागरी व्यञ्जनके समान होता है। तब तो "दिराविड़" का उच्चारण "तिराविड" होना चाहिए। कट्टर-से-कट्टर द्राविड़ भी "तिराविड" नही दिराविड़" ही कहा करता है।

इसलिए यह प्रश्न उठता है कि यदि तमिल ने किसी अन्य भाषामे अपने वर्ण लिए तो उसने अनेक वर्ण क्यो नही लिए?

अन्तस्थ य, र ल, व, तमिलमें भी है देव नागरीमे भी है। ऊष्म श, ष., स, ह तमिलमे नही है। नए तीन व्यञ्जन है:---ष़, ळ, ऱ, ऩ; इनमे 'ळ' मराठीमे प्रचलित है। सम्भवतः द्राविड़ देशके सामीप्यका यह परिणाम है। 'ष़', एक ऐसा वर्ण है, जो केवल तमिल और मलयालम भाषाओंमे प्रचलित है। कहते है कि तेलुगु और कन्नड़ भाषाओंमे पाँच छह सौ साल पूर्व तक यह व्यञ्जन प्रचलित था। 'ऱ' एक नया रकार है---यह सामान्य रकारसे कुछ अधिक कर्कश होता है, पर 'र' से कुछ कोमल; यह अक्षर तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम---इन चारो भाषाओमे पाया जाता है।

'ऩ' केवल तमिल भाषामे है। इसके और सामान्य न के उच्चारणमे कोई अन्तर नही है। पर व्याकरणमे नियम है कि कहां कौन-सा 'न' प्रयुक्त हो सकता है और कहाँ वर्ज्य है।

इसके विपरीत मलयालममें केवल एक न कार है---पर कभी उसका उच्चारण कुछ बदल जाता है। इसके लिए भी नियम है।

इन वैषम्योंपर विचार करते हुए, हमे सोचना ही पड़ता है, कि विभेद क्यों और कैसे आए।

यहाँपर दो और बातोका उल्लेख कर लेना उचित होगा। एक यह कि तमिलमे क का दूसरा रूप ग नही बल्कि करीब-करीब ह है। "काकम" "दाकम" आदिका उच्चारण "काहम" "दाहम" आदि होगा दूसरी बात यह है, कि तमिल भाषामे केवल द्वित्ताक्षर है, सयुक्ताक्षर नही। 'सत्य' "सत्तिय" बनेगा। 'रत्न' 'रत्तिन' बनेगा।

तमिल प्रदेशमे ग्रन्थाक्षर नामक एक वर्णमाला प्रचलित है। इसके वर्णोका आकार यद्यपि तमिल वर्णोंसे है, तो भी है ये तमिल वर्णोसे भिन्न। इस वर्णमालामे देवनागरीके अनुस्वार, विसर्ग, महाप्राण, ऊष्म सभी अक्षर है। इस वर्णमालाके ज, श, ष, स, ह और क्ष तमिलमें अधिक प्रयुक्त होने लगे है।

तमिलपर हिन्दीका प्रभाव

यह कहना कठिन है कि तमिलपर हिन्दीका कोई प्रभाव पड़ा है या नही। दोनो भाषाएँ एक दूसरीसे दूर रहनेके कारण, एकका दूसरीपर अधिक प्रभाव पड़ा नही होगा। पर हिन्दू लोगोमे तीर्थ यात्राका

बड़ा महत्व माना गया है। इसलिए यात्रियोंके कारण थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता ही रहा। तमिल प्रदेशके रामेश्वर, श्रीरंग, कांची जैसे क्षेत्र उत्तर भारतीयोके लिए दर्शनीय रहे है। उत्तरसे यात्रापर आनेवाले गुजराती, महाराष्ट्री और बंगाली लोग भी अपने विचार हिन्दीमे व्यक्त किया करते रहे हैं। वैसे ही तमिल प्रदेशके यात्री चाहे पण्ढरपुर जाते, चाहे द्वारिका, अपने विचार हिन्दीमे ही प्रकट करते रहे हैं। सम्भवत: इसका कारण मुसलमानोंका राज्य शासन हो। मुसलिम शासन यद्यपि दक्षिणमे अपेक्षाकृत कम रहा तो भी वह रहा अवश्य। आर्काटके नवाबका नाम तो प्रसिद्ध ही है। वे लोग अपने साथ उर्दू दक्षिणमें ले गए। वह उर्दू दक्षिणमे हिन्दुस्तानी कहलाई। उत्तरके कई हिन्दी भाषी व्यापारी दक्षिणमे आ बसे। वे यद्यपि हिन्दी भाषा-भाषी थे, तो भी दक्षिण भारतमे उनकी भाषा भी हिन्दुस्तानी कहलाई। सामान्य लोगोंका विश्वास था कि हिन्दुस्तानी मुसलिम शासकोंकी भाषा थी और इसलिए वह राजभाषा मानी गई। धनी परिवारोंमे 'हिन्दुस्तानी' पढ़ना सभ्यताका लक्षण माना गया। तमिल प्रदेशके मध्य भागमें स्थित तञ्जौर जिलेके एक गाँवमें मुझे यह सुननेका मौका मिला :—

मुसलमानकी बाषा मुषुदुम आता तें;
वन्ददुक्कु बोले तो सोच्चतुक्कु अल्ला है।

अर्थात् मुसलमानकी भाषा पूरी-पूरी आती नहीं है। जितनी आती है उतनी बोल लूँगा और शेषके लिए अल्ला है।

इतना तो निश्चित है कि मुसलिम शासकोके कारण और महाराष्ट्रके राजाओके कारण अनेक शब्द जो हिन्दीमें प्रचलित है तमिलमे भी प्रविष्ट हुए। मेज़, कुर्सी, तमिलमे मेजै, कुर्ची, बन गई। खाली शब्द तमिलमें 'काली' बन गया और उसका इतना उपयोग बढ़ गया कि इसका समानार्थ वाची तमिल शब्द बहुत कम प्रयुक्त होता है। सरकारी व्यवहारमे जमाबन्दी, अजमाइश, किश्त, तहसीलदार, चोवदार आदि अनेक शब्द प्रचलित है।

कुछ शब्दोंकी समानता विशेष ध्यान देने योग्य है :—

तमिल	हिन्दी
पिदुग	फुदकना
पटिगारम	फिटकरी
शेरूक्क	सरकना (फिसलना अर्थमें)

विचार साम्य

इस बातका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही है कि तमिलपर हिन्दीका प्रभाव पड़ा हो अथवा हिन्दीपर तमिलका प्रभाव पड़ा हो। तमिल इतनी पुरानी और दूरस्थ भाषा है कि उसपर हिन्दीका प्रभाव पड़ नहीं सकता था। इन्हीं कारणोंसे वह स्वयं भी हिन्दीपर कोई प्रभाव नही डाल सकती थी। फिर भी दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। तमिलके आल्वरोंमे पेरियाल्वार एक है। इन्होके यहाँ 'आण्डाल' नामक प्रसिद्ध कवयित्री पली। आण्डालकी गिनती भी आल्वारोंमे है।

पेरियाल्वारने श्री कृष्णपर गीत रचे हैं। पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व किसी तमिल पत्रके दीपावली अंकमें मैंने कनक-आंगनमें घुटनोंसे चलते हुए अपने प्रतिबिम्बको पकड़नेका प्रयत्न करनेवाले बाल-कृष्णका चित्र देखा। तुरन्त मुझे सूरदासका पद याद हो आया और मैंने सोचा कि उस पदके आधारपर ही यह चित्र

बना होगा। पर उस चित्रके नीचे दिया हुआ था पेरियाल्वारका एक गीत। मुझे वह गीत सूरदासके पदका भाषान्तर-सा प्रतीत हुआ। पर पेरियाल्वारका समय सूरदाससे सैकड़ों वर्ष पूर्व था। मैं यह माननेको भी तैयार नहीं हूँ कि सूरदासने पेरियाल्वारके यहाँसे गीतका विषय लिया होगा।

सन् १९३७ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके अहातेमे हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी एक बैठक हुई थी, जिसमें महात्मा गाँधी, राजर्षि टण्डनजी, स्वर्गीय जमनालालजी बजाज आदि पधारे थे। उस अवसरपर कई तमिल विद्वान भी पधारे थे। वहाँ स्वर्गीय महामहोपाध्याय उ. वें. स्वामिनाथ अय्यरने अपना यह विचार प्रकट किया था कि तुलसीदासपर कम्बका प्रभाव पड़ा होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कम्बका काल तुलसीदाससे सैकड़ों वर्ष पूर्व था।

श्री अय्यर का यह कहना था कि उत्तर भारतीय काव्य परम्परामें स्वयंवर विवाहोंमें स्वयंवरके पूर्व नायक-नायिकाओके मिलनेका वर्णन नही रहता है। तमिल काव्य परम्परामें यह पाया जाता है। तुलसीदासके रामचरित मानसमे भी यह पाया जाता है––यह सम्भवतः कम्बका ही प्रभाव रहा हो। स्वयं तुलसीदासने "नाना पुराण निगमागम सम्मतम्" कहा है। कम्ब-रामायण नाना पुराणोंमें एक रहा हो। सुदूर काशी वासी तुलसीपर तमिल रामायणका प्रभाव कैसे पड़ा होगा? इसके सम्बन्धमें यह कहा गया––दक्षिण भारतके कई शैवमठ है जो कई सदियोसे धर्म और भाषाकी सेवा करते आ रहे है। तञ्जाऊर जिलेमे 'तिरुप्पनन्दाल' नामक एक स्थान है जहाँ एक ऐसा मठ है। उसके स्थापक अकबर और जहांगीरके समयके थे। वे काशीमे जाकर बहुत दिनो तक रहे थे इसलिए मठका नाम ही काशीवासी मठ पड़ा। उनके यहाँ काशीमें प्रतिदिन तमिल कम्ब रामायणपर प्रवचन हुआ करता था। उस समय तुलसीदास भी प्रवचनमें उपस्थित रहते थे। यह तो केवल अनुमानकी बात है।

तमिल प्रदेशमें हिन्दी

इधर तमिल प्रदेशमे "हरि कथा" नामक कथा-वाचनका क्रम चलता है। हरिश्चन्द्रोपाख्यान, रुक्मिणीपरिणय आदि कथाओंका प्रवचन होता है। बीच बीचमे गीत भी गाए जाते है। ऐसी हरि कथाको सामान्यतः 'कालक्षेपम" कहते है। ऐसे कालक्षेपोंमें 'कबीरदास', 'तुलसीदास', 'मीराबाई' आदिकी कथाओंका भी प्रवचन होता आया है। यह क्रम करीब सौ दो सौ वर्षोंसे चला आ रहा है। पर इन प्रवचनोंमे इन साहित्याकरोंको केवल भक्तोंके रूपमें चित्रित किया जाता रहा। इनकी दो चार रचनाएँ सुनाई जाती थीं।

शिवाजी महाराजके एक वंशजने दक्षिणमे अपना प्रभाव बढ़ाया और तञ्जौर जिलेके तञ्जौर (तञ्जाऊर) नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उनके वंशजोने तमिल साहित्य और कलाको प्रोत्साहन दिया और साथ-साथ महाराष्ट्र और कुछ अंश तक हिन्दी साहित्यको भी प्रोत्साहन दिया। तञ्जाऊर नगरमें "सरस्वती महल लाइब्रेरी" नामक बृहत् पुस्तकालय है। उसमें कई हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। यदि कोई उस पुस्तकालयमें जाकर खोजे तो अवश्य ही कुछ हिन्दी रचनाएँ मिल जाएँगी।

इस सदीके आरम्भमें कुछ पारसी नाटक मण्डलियाँ दक्षिण भारतमें हिन्दुस्तानी नाटक प्रदर्शित करती थीं। दक्षिणके लोगोंको हिन्दी या हिन्दुस्तानीके परिचय प्राप्त करनेके ये ही अवसर थे।

मद्रासके श्री वी. कृष्णस्वामी अय्यर बड़े देश-भक्त थे। वे महामना मालवीयजीके आप्त मित्र थे। सन् १९१० में उन्होंने काशीमें एक भाषण देते हुए कहा था कि हिन्दी ही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। सन् १९१८ ई. में. जब बापूजीने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका आरम्भ किया तब वे न रहे। खुशीकी बात है कि उनके दो पुत्र हैं और दोनों हिन्दी प्रचारके समर्थक हैं।

आर्य समाजका दक्षिणमें भी कुछ प्रचार हुआ। उसके कारण हिन्दीका भी कुछ प्रचार हुआ पर वह 'राष्ट्रभाषा' का प्रचार नहीं था---आर्य भाषाका था। मदुरा नगरमे ठाकुर खाँ चन्द्र वर्मा नामक सज्जन १९१५-१६ में ही हिन्दी वर्ग चलाते थे। उन दिनों श्री ऐनी बेसण्टका तमिल प्रदेशमे बड़ा प्रभाव था। ठाकुरजी बेसन्टका विरोध करते थे। इसलिए वे सरकारी जासूस माने गए।

सन् १९१८ में दक्षिण भारतमे जबसे हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ तबसे कुछ आदान-प्रदानका काम शुरू हुआ है। श्रीमती अम्बुजम अम्मालने रामचरित मानसके अयोध्याकाण्डका तमिलमे सरल गद्यानुवाद किया है। आपने प्रेमचन्दके 'सेवा सदन' का भी अनुवाद किया और इस अनुवादके आधारपर तमिल बोलपट भी तैयार हुआ। अनेकों उपन्यास और कहानियोंका तमिलमे अनुवाद हुआ है। श्री जमदग्नि नामक हिन्दी प्रचारकने स्वर्गीय जयशंकर प्रसादकी कामायनीका तमिलमें पद्यानुवाद किया है। ऐसे ही आँसूका भी तमिलमे पद्यानुवाद हुआ है।

तमिलसे हिन्दीमे भी कई ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ है। स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारतीके 'ज्ञानरथम' नामक गद्य-काव्यका हिन्दीमे अनुवाद हुआ है। तमिल वैष्णव कवि आल्वारोंकी कृतियोंका अनुवाद हिन्दीमें हुआ है।

सुमतीन्द्रन नामक उत्साही प्रचारकने सुन्दर कविताएँ रची है, जिनकी बड़ी प्रशंसा हुई है। अभी हालमे मुझे दो-बार हिन्दी गीत 'कर्नाटक राग' मे सुननेका मौका मिला। ये गीत मुदुराकी एक देवीने रचे है। ये गीत कृष्ण-भक्तिके गीत है और मीराकी रचनाओंसे कुछ मिलते-जुलते है।

एक तमिल भाषा-भाषीके कुछ छन्द यहाँ दिए जा रहे है :--

वर्ण मात्रका है सदा अकारका आधार।
त्यों ही सारी सृष्टिका है ईश्वर आधार॥

का होइहि जो राखिए तिय कहं कारागार।
ताकर उत्तम चरित ही ताकर राखनहार॥

वीणा नाद मृदंगको उत्तम मानै सोय।
शिशुकी बातें अटपटी जिसने सुनी न होय॥

सुत प्रति करतब बापका बस एकहि सो जान।
पाने योग्य करे उसे विज्ञोंसे सम्मान॥

सुत कर करतब सोय जातें पितुसन सब कहै।
का तय कीन्हा होय, जाकर फल उस सुन भयो॥

नारंगिका आचार, नाव निसेनी और गुरु।
आप न पावें पार, औरनको कर पार भी॥

ओड़िशाकी हिन्दीको देन

डॉ. हरेकृष्ण महताब

उत्कलकी भौगोलिक रूपरेखा

हम आजकल जिस क्षेत्रको ओड़िशा कहते हैं, उसका ऐतिहासिक नाम था उत्कल और कलिंग। किन्तु अब न तो पहलेका उत्कल ही है और न कलिंग ही। उस समयका ओड़िशा वर्तमान ओड़िशासे बहुत बड़ा था। आधुनिक ओड़िशा भारतके विभिन्न राज्योंमे से एक है। यह १७.५० उत्तरी अक्षांससे २२.३४ उत्तरी अक्षांश तथा ८१.२७ पूर्वी देशान्तरसे ८७.२९' पूर्वी देशान्तरके बीचमे अवस्थित है। यह भारतके पूर्वी उपकूलमें प्रायः ३०० मील तक फैला हुआ है। इस राज्यके पूर्वमें वंगोपसागर (बंगालकी खाड़ी), उत्तर-पूर्वमे पश्चिमी बंगाल, उत्तरमें बिहार, पश्चिममें मध्यप्रदेश और दक्षिण-पश्चिममें आन्ध्रप्रदेश है। आधुनिक ओड़िशाका क्षेत्रफल ६०१३६ वर्गमील है, जिसमें १४६ लाखसे अधिक मनुष्य रहते हैं। यह मयूरभञ्ज, केन्दुझर, बालेश्वर, कटक, पुरी, गञ्जाम, कोरापुट, कालाहाण्डी, फूलवानी,बलांगीर,सम्बलपुर, ढेंकानाल और सुन्दरगढ़——इन १३ जिलोंमें विभक्त है। सन् १९३६मे ओड़िशा बिहारसे अलग होकर स्वतन्त्र प्रान्तके रूपमे प्रतिष्ठित हुआ था। उस समय ओड़िशाका क्षेत्रफल अबसे बहुत कम था। तब इसमें कटक, पुरी, बालेश्वर, सम्बलपुर, गञ्जाम और कोरापुट——ये छह जिले ही थे। इन छह जिलों और २४ रियासतोंको लेकर ओड़िशा प्रदेश गठित हुआ था। सन् १९४७ मे अँग्रेजी सरकारके भारत छोड़नेके बाद कांग्रेस सरकारने देशी राज्योंको प्रान्तोंके साथ मिला देनेका निश्चय किया। इसके फलस्वरूप पहली जनवरी सन् १९४८ को मयूरभञ्जके अतिरिक्त शेष २३ रियासतोंका ओड़िशामे विलयन हो गया। एक सालके बाद मयूरभञ्ज भी ओड़िशामें सम्मिलित कर लिया गया।

ओड़िया भाषा

ओड़िया भाषा प्रधान रूपसे मागधी प्राकृत और अशोकके शिलालेखकी प्राच्य उपभाषाके बीचसे होकर अन्तिम वैदिक भाषासे उत्पन्न हुई है। अशोकके शिलालेखकी भाषा और वैदिक भाषा, इन दोनोंके बीचमें पालि भाषा और संस्कृत भाषा है। इसलिए ओड़िया भाषा पालि भाषासे भी संयुक्त है।

अशोकके धाउली और जउगड़ शिलालेखों और अधिकांश स्तम्भ-लेखोंमें व्यवहृत होनेवाली प्राच्य भाषा (Eastern dialect) के कई विशिष्ट लक्षण हैं। जैसे 'र' की जगह 'ल' का व्यवहार, अकारान्त शब्दके कर्तृ कारक एक वचनमे 'अ' विभक्ति और अधिकरण कारकके एक वचनमे 'असि' विभक्तिका प्रयोग तथा संयुक्त व्यञ्जन वर्णोमें समीकरण। लेकिन गिरनारमे व्यवहृत प्रतीच्य भाषा (Western dialect) में 'र' का व्यवहार, एकारान्त पुल्लिग शब्दके कर्तृ कारक एक वचनमें 'ओ' विभक्ति और अधिकरण कारकके एक वचनमे 'अम्हि' विभक्तिका प्रयोग तथा संयुक्त व्यञ्जनोंका व्यवहार (यथा--'प्र, त्र' आदि) भी देखा जाता है। प्रथमोक्त दो भाषागत वैशिष्टच संस्कृत नाटच साहित्यमें व्यवहृत और वैयाकरणोके द्वारा उल्लिखित मागधी प्राकृतमे दिखाई पड़ते हैं। सौरसेनीकी भाँति धउली और जउगड़की भाषामे भी केवल 'स' का व्यवहार मिलता है। लेकिन वैयाकरणों द्वारा उल्लिखित नाटच-साहित्यकी मागधीमें केवल 'श' का व्यवहार दिखाई पड़ता है।

नाटच साहित्यकी मागधीमे और कई लक्षण है, जो धउली और जउगड़की भाषामें नहीं मिलते हैं। यथा:--

द्य < प्य (धउली और जउगड़मे, सस्कृत अद्य <अज)
न्य् < ञअ (,, ,, ,, अन्य-अन्न)
श्चका प्रयोग (,, ,, ,, छ का प्रयोग)
संयुक्त व्यञ्जनके प्रारम्भमे 'स' का संरक्षण यथा--हस्ते = (संस्कृत हस्त)
इसके स्थानपर गिरनारमे 'अस्ति' का प्रयोग है, लेकिन धउली, जउगड़मे यह नही है।
जैन धर्मशास्त्रकी अर्द्ध मागधीके साथ धउली जउगड़की प्राच्य-भाषाका ऐक्य नहीं है।

नाटकों * में व्यवहृत साहित्यिक मागधीके उपर्युक्त तीन लक्षण है; यथा--'र' के स्थानमे 'ल' का होना, 'ष' और 'स' के स्थानमे 'श' का होना और अकारान्त पुल्लिग शब्दका कर्तृ कारक एक वचनमें 'ए' का प्रयोग। यह विहारके योगीमारा गुफाके 'सुतनुका' शिलालेखमे दृष्टिगोचर होता है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके लगभगके लिखे खारवेलके हाथीगुफा शिलालेखकी भाषा अशोककी धउली, जउगड़मे व्यवहृत प्राच्य भाषाकी परिणति नही है। यह पाली सदृश भाषा है।

खारवेलके इस लेखमे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ व्यवहृत है। 'ऐरेन' शब्दके वैकल्पिक पाठमें 'ऐ' एक ही बार देखा जाता है। पदमें कहीं-कहीं संस्कृत 'ऋ' और कहीं 'अ', किसीमें 'इ' और अत्यन्त विरल 'रु' (यथा-वृक्ष; रूख) का प्रयोग हुआ है। इसमे निम्नान्कित व्यञ्जन वर्ण भी व्यवहृत हुए हैं। क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ट, ठ, ड, त, थ, द, ध, प, ब और भ।

अनुनासिक--ण, न, म और अनुस्वार।

अन्तस्थ--य, र, ल, व और ह (मात्र 'ळ' का व्यवहार नहीं है।)

---

* नाटकोंमें निम्न स्तरके लोगों द्वारा परवर्ती मागधी प्राकृतका व्यवहार हुआ है। यह मगध देशमें व्यवहृत भाषाके पूर्ण प्रतिबिम्ब रूपसे ग्रहणीय नहीं है, अर्थात् यह मगधके राजा और ब्राह्मणोंकी भाषा नहीं है।

ऊष्म---केवल स ('श' और 'ष' के स्थानमें भी)

जैन प्राकृतमें पदके अन्तिम अक्षर और बीचमें 'ओ' के स्थानपर कभी-कभी 'ए' हो जाता है लेकिन खारवेलके लेख और पालिमे कही भी 'ओ' की जगह 'ए' का प्रयोग नहीं है। पालि और अर्द्धमागधीमें संस्कृत 'र' के स्थानमे 'ल' के न होनेकी प्रवृत्तिके साथ खारवेलके लेखका सामञ्जस्य देखा जाता है। 'न' को 'ण' मे परिवर्तन न करनेकी जो प्रधान प्रवृत्ति पालिमे दिखाई पड़ती है, वह खारवेलके लेखकी भाषामें है, पर अर्द्धमागधी मे नही है।

खारवेलके लेखकी भाषामे कई दृष्टियोंसे अर्द्धमागधीसे साम्य और पालिसे वैषम्य दिखाई पड़ता है।

अकारान्त शब्दके कर्तृकारक एक वचनमे 'ए' विभक्तिका प्रयोग (जो अशोकके जउगड़ धउली लेखमे * और नाट्य साहित्यकी मागधी प्राकृतमे देखा जाता है) आधुनिक ओड़िया भाषामे कई स्थानोंपर मिलता है। जैसे; ये, से आदि (हिन्दीमे जो, सो) जणे (एक आदमी), दडे (एक क्षण), टका या टके (एक रुपया), हाते (एक हाथ), गद्दे (एक पेड़) आदि। आधुनिक ओडियामे 'र' और 'ल' दोनोंका व्यवहार होता है। वर्तमान ओड़िया भाषी सिर्फ 'स' का उच्चारण करता है। लेकिन लिखते समय सस्कृत वर्णमालाके अनुसार 'श' 'ष', 'स', का भी व्यवहार करता है। जउगड़ और धउली भाषाके अधिकरण कारक एक वचनमे 'असि' प्रत्यय था, लेकिन आधुनिक ओड़ियामे व्यवहृत 'यहिं', 'तहि', काहि (जहाँ, तहाँ, कहाँ) मे 'हिं' विभक्ति तथा प्रत्ययका व्यवहार होता है। अनुमान है कि कृष्णाचार्यके चर्यापदमे सप्तमी एक वचनके 'हि' का प्रयोग (चर्या ७-५) 'असि' से आया है।

मोटे तौरपर ओड़िया भाषा मागधी प्राकृत और मागधी अपभ्रंशसे विकसित हुई है। अनुमान है कि इसपर अर्द्धमागधीका प्रभाव पड़ा है।

सन् १९०१ ई. मे हरप्रसाद शास्त्रीने 'बौद्धगान ओ दोहा' नामक ग्रन्थ नैपालसे खोज निकाला और सन् १९१६ में उसका सम्पादन कर प्रकाशित किया। 'चर्यापद' नामक ग्रन्थ इसी ग्रन्थमे अन्तर्भुक्त है। इस ग्रन्थमे 'लुईपाद', 'कान्हुपाद' और 'शबरपाद' आदि कई सिद्ध आचार्योंके अनेक पद या गान देखनेको मिलते हैं। इस चर्यापदकी भाषापर विचार करते हुए किसीने उसे प्राचीन बगला, किसीने प्राचीन मैथिली, किसीने प्राचीन ओड़िया और किसीने असमी कहकर ग्रहण किया है। लेकिन इसकी भाषाको प्रधान रूपसे मागधी अपभ्रंश मानना ठीक होगा। इसमें कुछ हद तक बगला, असमी, मैथिली और ओड़िया भाषाके कई लक्षण खोजे जा सकते हैं। इन पदकर्ताओंमेसे कई प्राचीन बंगाल, ओड़िया, असम तथा मिथिलाके रहनेवाले हो सकते हैं।

---

* अशोकके जउगड़ धउली लेखके कई शब्द और धातु (Root) आज भी पहलेकी भाँति तथा कुछ परिवर्तित होकर ओड़ियामे व्यवहृत होते है। किछि (some) संस्कृत, किंचित्।

तिनि=यातिनि, नतिपनति=या नाति=पणनाति, संस्कृतमे---नप्तृ, प्रनप्तृ, महालके=या, महालिके (a surname)---च घ्=या--चाहं (desire) आदि।

'लुईपाद' आदि नाम प्राचीन ओड़िया साहित्यमें मिलते हैं।[१] हरप्रसाद शास्त्रीने 'बौद्ध गान ओ दोहा' के दूसरे संस्करण पृ. ७६ में 'चौरासी नाथों' या 'सिद्धों' मेंसे ७५ लोगोंका नाम गिनाया है। उनमेंसे गोरखनाथ, मीननाथ, चौरंगीनाथ, सबरनाथ, और जलन्धरके नामोंका उल्लेख 'अमरकोष' नामक प्राचीन ओड़िया तालपत्र पोथीके प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें है।[२] इसमें मस्त्यन्दनाथ (लुईका दूसरा नाम) का भी नाम मिलता है।

हरप्रसाद शास्त्रीने 'बौद्धगान ओ दोहा'की भूमिकामे स्वीकार किया है कि चर्यापदके कई पदकर्ता और 'दोहाकार' ओड़िशाके साथ संपृक्त थे। जैसे--" मयूरभञ्जमें उनकी (लुईकी) पूजा होती थी।[३] एक पदकर्ताका घर ओड़िशामे है " उनके गीत ओड़ियामे लिखे गए है। बंगला पदमें जहाँ क्रियाके बाद 'ल' रहता है, वहीं इसमे 'ड'; जैसे--हम 'गहिल' 'गाइड।' अतः इसे ओड़िया भाषाका पद मानते है।'[४, ५]

ओड़िया भाषाके द्वितीय एक वचन का विशिष्ट परसर्ग (Post Position) 'कु' और षष्ठी एक वचनका परसर्ग 'र' क्रमशः कृष्णाचार्य और शवरीपादके चर्या-गानमें मिलते हैं; यथाः--

अविद्या करिकुं दम अकिलेसें ९।५

आधुनिक ओड़ियामे होगा--अविद्या करिकुदम अकिलेसे।

तइलाबाड़िर पासंर जोन्हाबाड़ी उएला ५०।४

(आधुनिक ओड़ियामे होगा--तइला बाड़िर पाशरे जन्हबाड़ी उइला।)

चर्यापदकी भाषाके साथ ओड़िया भाषाका घनिष्ठ सम्पर्क है।

भाषाको लेकर सारे भारतवर्षमे आज जो विभेद दिखाई दे रहे है, वे सब एक नई परिस्थितिके परिणाम स्वरूप है। अँग्रेजोके आनेके बाद जब कचहरी और अदालतोंमें व्यवहारके लिए तथा शासनके साथ जनताका सम्पर्क बनाए रखनेके लिए एक साधारण भाषाकी आवश्यकता महसूस की गई और जब अँग्रेजी भाषाको मुख्य भाषाके तौरपर, स्थानीय भाषाको गौण रूपसे स्वीकार किया गया तो उस समय

---

१. लोहिदास मठ करि थांति एठारे लय करि थांति निराकार ध्यान परे, एठारे। (प्राची नदीकूले)--शून्यसंहिता, अच्युतानन्द दास (१५-१६ वी शती, गर्गवंटुक द्वितीय सं. पृ. ७९।)

२. यह पोथी अध्यापक बंशीधर महान्तिके पास है।

३. बौद्धगान ओ दोहा, सम्पादक : हरप्रसाद शास्त्री, भूमिका पृ. १५।

४. वही , पृ. १७।

५. कृश्नाचार्य तेगुरे मनर जाय गाय ताहाके भारतवासी बलिया गिया छे। केवल एक जाये-गाय लेखा--तिनि ब्राह्मण ओड़िशा हइते आगत, से ओ आवार तर्जमाकार महापण्डित कृष्ण, तिनि ग्रन्थकार नहेक (पृ. २४)। ओड़िशार राजा इन्द्रभूति बज्रयोगिनी उपासना प्रचार करने, ताहार कन्या लक्ष्मीकंरा अेइविषये ताहाके विशेष सहायता करिया छिलेन एवं संस्कृते अनेक पुस्तक लिखिया छिलेन।

शवरीश्वर या सबर से हि दलेइर लोक छिलेन (पृ. २९)। ओड़िशा निवासी तेलीपेर एकखानी दोहाकोष छिल (पृ. ३४)।

यह देश सर्वत्र नैतिक पतनकी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। मुख्य भाषा के विरोधमें किसीको कुछ भी कहनेका साहस नहीं था, उलटे गौण भाषाके तौरपर भी स्वीकृति पानेके लिए सभी प्रादेशिक भाषाओंने जब कोशिश की तो यह समझना चाहिए कि उसी समयसे प्रादेशिक भाषाओके भीतर अन्तर्विवादका बीज बोया गया। इसी बीजके कारण धीरे-धीरे भाषानुसार प्रदेशोंकी सृष्टि हुई। आज फिर प्रान्तीय स्वतन्त्रता आदिका विकास होते-होते यह एक विषम समस्या बनकर खड़ी हो गई है। कोई भी प्रान्त एक भाषा-भाषी नहीं है। प्रत्येक प्रान्तमें एकाधिक भाषाओंके व्यवहार करनेवाले लोग आदिकालसे वास करते आ रहे हैं। भाषाओके भीतर परस्पर आदान-प्रदान बराबर चलता आ रहा था। लेकिन प्रान्तीय भाषाके नामपर जब किसी एक भाषाका निर्णय कर उसे कानूनन स्वीकार करानेका प्रयास होने लगा, तब भाषा-विवादने उत्कट रूप धारण किया। यही है आज हमारी भाषाकी समस्या !

परन्तु यदि कुछ काल पहले की स्थितिपर दृष्टि डाली जाए तो यह पाया जाएगा कि उस समय भाषाओके भीतर परस्पर समभाव तथा बन्धुता थी। इससे इस विषयपर विचार करना आसान होगा। सबसे पहले हमें यह याद रखना चाहिए कि भाषा साहित्यकी सृष्टि करती है, उसी प्रकार वह स्वय उसका विकास भी मनुष्यके भाव-विकासपर निर्भर करता है। जब भाषाके सहारे भाव व्यक्त होता है, तब वह साहित्य बन जाता है। आज जिस प्रकार जातीयता, आन्तर्जातीयता और राजनीति देशके मनोभावको वड़े पैमानेपर आलोड़ित कर रही है, वैसा पहले जमानेमे न था। पहले मानवकी ईश्वर चिन्ताने ही मनुष्यके भाव जगतपर अधिकार जमाया था। खासकर प्रायः एक हजार सालसे पहले जब भारतवर्ष विदेशियोंके द्वारा ध्वस्त-विवस्त हो गया था, जब देवाध्युपित स्थान लुण्ठित और धूलिसात हो गए थे और भारतका आत्मविश्वास लुप्त प्रायः हो गया था। भारतवासी अपनी कर्मशक्तिका विश्वास खोकर, ईश्वरका आश्रय ले किसी तरह अपनी रक्षा कर सका था। वही है भक्तिका युग। निराश्रयका जगदीश रक्षक था। उस समयके भाव-जगतका मन्त्र, उस समयका प्रायः सभी साहित्य भक्ति-भाव प्रसूत है। अन्तरकी भक्तिको प्रगट करनेके लिए कोई भाषाके विभेदका विचार नही करते थे। खासकर भक्तिभाव श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्रको केन्द्र मानकर प्रकट होता था। भक्ति कार्यके हेतु अयोध्या, वृन्दावन, जगन्नाथपुरी, आदि तीर्थक्षेत्रोंका आकर्षण उस समय बहुत था। अतः उन्ही इलाकोंकी भाषा दूसरे भाषा-भाषी भावुकोंके भाव-प्रकाशमे व्यवहृत होना स्वाभाविक था।

पुरी, पुरुषोत्तम या श्रीक्षेत्र श्री शंकराचार्यके समयसे सनातन धर्मकी पीठके नामसे प्रसिद्ध थे। शकराचार्यके बाद श्री रामानुज द्वारा जगन्नाथ क्षेत्र, पुरीमे भक्ति-भावका प्रचार होनेके बाद ही ओड़िशामें भक्ति-भावके प्रवाहक स्त्रोतका प्रभाव क्रमशः अधिकाधिक होने लगा। नरहरि तीर्थके ओड़िशामे अवस्थानने भक्ति-भावके प्रसारके लिए सुन्दर क्षत्र तैयार किया था। अन्तमें श्री चैतन्यजीका पुरीमे आगमन हुआ और उनकी सारी लीलाओंको वहीं प्रकट किया गया, जिसके कारण पुरी या श्रीक्षेत्र ही भक्ति-भावका एक पीठ हो गया। फिर भी मूल केन्द्र तो अयोध्या और वृन्दावन ही रहे। उस समय साधु-सन्तोंका परि-भ्रमण तथा तीर्थ-पर्यटन ही आन्तर प्रदेशिक सम्पर्क रक्षाका एक मात्र उपाय था। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर भारतके बहुतसे साधु-सन्त पुरी जगन्नाथजीके दर्शनके लिए आते थे, भजन गाते थे। अतः उनकी भाषाका, वाणीका ओड़िशामे प्रसरित होना अस्वाभाविक नहीं है।

उस समय उत्तर भारतकी भाषा क्या थी, यह प्रश्न है। आज जिसको हिन्दी कहा जाता है, वैसी वह नही थी। उस समय ब्रज बोली प्रधान भाषा थी। वास्तविक हिन्दीका स्वरूप वही है। आजकी प्रचलित हिन्दी भाषाने ब्रज बोली, खड़ी बोली, भोजपुरी, मैथिली आदि बहु आञ्चलिक भाषाओंको आत्मसात कर विकास किया है, उस समय ये आञ्चलिक भाषाएँ ललित, उन्नत और पुष्ट नहीं थीं, ऐसा नही कहा जा सकता; किन्तु यह मान लेना अनुचित नही, कि ये भाषाएँ आत्म-समर्पण करके साहित्य क्षेत्रसे विलीन-सी हो गई। ब्रज बोलीका मधुर भक्ति-साहित्य आज ऐतिहासिकोंका आलोच्य विषय मात्र रह गया है। एक समय यही ब्रज भाषा भी ओड़िशाके भक्तोंके द्वारा भावोंकी अभिव्यक्तिका साधन बनी थी। ओड़िया भाषा समझनेवाली जनताके लिए जिन भक्तोंने ओड़िया भाषामे साहित्य लिखा था, वे ही ब्रज भाषा समझनेवाले भक्तोंके लिए उन्हींकी भाषामे गीतोंकी रचना करते थे। उस समय जो भक्त, भारत प्रसिद्ध थे, उन्होंने ही विभिन्न भाषा-भाषियोंके लिए विभिन्न भाषाओंमे अपने भाव व्यक्त किए है। यही है ओड़िशामे हिन्दी साहित्यके विकासका मूल इतिहास।

उसके बाद जब ओड़िशामें दो सौ साल तक मुसलमानोंका राज्य चला, तो उस समय राजकीय भाषा फारसी थी, उसी समय बहु-सख्यक राजपूत और पञ्जाबी ओड़िशामे आकर बसने लगे। यद्यपि उर्दू फारसीसे विकसित हुई है, तथापि उर्दू और हिन्दीके भीतर सामञ्जस्य इतना अधिक है कि सम्भवतः हिन्दी भाषा क्रमशः उर्दू भाषाको भी आत्मसात कर ले। उस समय ओड़िशामें कुछ व्यक्तियोंने उर्दू तथा हिन्दी भाषामे प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। मुसलमानी राज्य कालके बाद फिर जब मराठोका राज्य प्रतिष्ठित हुआ, उस समय भी फारसी राजकीय भाषा बनी रही। लेकिन तब तक फारसी, उर्दू, मराठी, ओड़िया आदि सब भाषाओंमे मिल-जुलकर आमतौरपर एक हिन्दीका आकार ले लिया था। इसी समय कुछ उड़िया व्यक्तियोंने हिन्दी साहित्यमे भी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

प्रत्येक कविकी जीवनी और उनकी कविताओके नमूने देनेके लिए यहाँ स्थानका अभाव है। केवल उनका नाम तथा अनुमानित समय ही दिया जाता है। इन लोगोंकी सारी रचनाएँ पुस्तकाकारमें प्रकाशित होनी चाहिए। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पद्यांश दिए गए है।

१५ वीं सदीके अन्तमे जब श्री चैतन्यजी श्रीक्षेत्रमे आए, उस समय तक भक्तराय रामानन्द भक्ति मार्गमें बहुत अग्रसर हो चुके थे। राय रामानन्दने संस्कृत, ओड़िया तथा ब्रजबोलीमें बहुत-सी रचनाएं की थीं। राय रामानन्दके ब्रजभाषामें लिखित बहुतसे संगीत आज भी उत्कलीय तथा बंगीय वैष्णव भक्तोंके आदरके धन हैं। उनकी हिन्दी कविताका एक नमूना देखिए :—

पहिलेहि राग नयन भंगे भेल।
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल॥
ना सो रमण, ना हाम रमणी।
दुहुं-मन मनोभव पेषल जानि॥
ए सखि, से—सब प्रेम— काहिनी।
कानू—ठाने कहवि विछूरल जानि॥

ना खोंजलूं दूती, ना खोंजलूं आन।
दुहुंको मिलने मध्ये पाँचवाण।।
अब सोहि विराग, तूंहुं मेलि दूती।
सुपुरुख--प्रेमक ऐछन रीति।।
बर्धन रुद्र--नराधिप--मान।
रामानन्द--राय कवि भाण।।

(श्रीमत् सुन्दरानन्द विद्याविनोद विरचित बंगला श्रीक्षेत्र ग्रन्थ; पृ. ५०८)

इसी समय भक्त कवि श्री जगन्नाथदासजीका आविर्भाव हुआ। आज ओड़िशाकी पूरपल्लीमें इनके भागवतपका घर-घर पाठ किया जाता है। श्री चैतन्यने भक्तके हिसाबसे इन्हें 'अति बड़ जगन्नाथ दास' कहा है। इन्होंने ओड़िया भाषामें बहुत-सी कविताओंकी रचना की थी। ब्रजभाषामें भी इनकी कुछ रचनाएँ थीं। उनमेसे नमूनेके रूपमे निम्नलिखित कविता देखिए :—

बहे बहे सुगन्ध बात, रहे रहे तरुगन भुकांत।
गहे गहे खग निनजमात। पंछी सर्व विविध रूप फेर डार डार।।
घन घन घन कोला हुल, कल कल कल कोकिल कुल।
जोर जोर मारे शोर, रटे अपार अपार,
जगन्नाथ द्विज हर हर,
वृन्दावन वन्दन बलीहार बार बार।।

+ + +

सुरंग रंग माथ पाग, जरी जरकस वामें लाग।
अलख झलक शोहे भाल, विधुवर चित्त चमक हैं।

+ + +

नयन देख सफरीगन सकिल बीच दवक हैं।
नासाको ठाठ देख, खग शुग कानन उपेख,
अघर देख भोर भानु शक्र किओ सरन हैं।
दशन जोति मोती वारो कुन्द कलियाँ कौन छारों
विप्र जगन्नाथ दारों दशनकी बलिहारी हैं।

('नवजीवन' ४ थी संख्या: मई, १९५८ में प्रकाशित श्री नीलमणि मिश्रके निबन्धसे)

इसके बाद मुगलोंके राजत्वकालमें कवि श्री बंशीवल्लभ मिश्रने अपनी काव्य प्रतिभासे तत्कालीन समाजको दंग कर दिया था।

निश्चित रूपसे ज्ञात न होनेपर भी ये अठारहवीं सदीके अन्तिम चरणमें पैदा हुए थे। उनका जन्म-स्थान-भद्रकके आस-पास संगतग्राम था। वे ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके पिताका नाम

सत्यनारायण मिश्र गोस्वामी और माताका नाम सत्यवती देवी था। बचपनमे शिक्षाके प्रति अनमने-से थे। किम्वदन्ती है कि सालिन्दीके किनारे उत्तरेश्वर महादेव और शीहट नागर आदि प्रत्यक्ष देवताओंकी कृपासे वे कवि बन सके। फारसी भाषामे वे प्रवीण थे। उन्होंने फारसी भाषामें कई लोकनाटच लिखे हैं। इनके लिखित 'मोगल तामसा', 'फकीर तामसा', और 'राधाकृष्ण तामसा' आदि लोकनाटच चैत महीनेमें अभिनीत होते है। इसलिए इन्हें चैती तामसा कहते हैं। इनकी रचनाओंकी कुछ बानगी देखिए :—

शिव वन्दना

जयहटेश्वर महिमा सागर मन्दिर शोहे चउतारा।
त्रिशूल ऊपर बाना उड़े घेरत घटकत है पारा॥
अद्योग नाशी भुक्तक दासी जटा-जुट गंग तेरा।
अधीन वल्लभ दीन हो भावें जयहटनागर बम् भोला॥

('मोगल तामसा' से)

सालन्दी नद तीर्थराज है त्रेता युग अवतारी।
राम, लछुमन, सीता मायी अवगाहन कुण्ड् जारी॥
जात चयत जो मात रही है अघनन मानस मेला।
नाथ कहे चान्दनीका ऊपर सितार बोले बम् भोला॥

('योगी तामसा' से)

मोगल उक्ति

मर हवाये पयग मुस्ता कावे दहे पयगामे दोस्त।
ता कुन सज़ा अजसरे रगवत फिदाये नामे दोस्त॥
किर मुकायेम सममुका खास वरद रक्ता कर दयन।
रतनके बाज़ारे अंजम राबि गारद वुर दयन॥

('मोगल तामसा' से)

भिश्तीके प्रति

बदजात भिश्तीवाला अबतक न लाया पानी।
पानी बिगैर हमारा हयरान परेशानी॥
गोस्ताख़ी करके दिलमें करता है बेइमानी।
दरमा न मिलेगा जबतक न लावे पानी॥

('मोगल तामसा' से)

ग्वालिनके प्रति

ए यार दिल नवाज हमारी सलाम है।
अहे नाजनीन निगार हमारी सलाम है॥
करता हूं नित सलाम नसुद हासिले कलम।
तू अबरू एक मानके मेरे सलाम है॥

घूंघट तू खोल आ तू चली यार मय यबिन ।
तेरे निरेकु मेरे हजार सलाम है ।।

('मोगल तामसा' से)

चार फकीरोंकी उक्ति

कवा सरीफ़ जान नकि खास्ती मैं ।
उसमें बिछड़ गया मेरा हमदम सुनो मैं ।।
मरजी खुदाके छूट गयी संगी ।
कुदरती इलाहीके यहाँ पौहुँची जी मैं ।।

('फकीर तामसा' से)

ग्वालिन उक्ति

काहां गयोजी गुलजार चौड़ा मेरे दिल आवर जान ।
मादर फेदर उवर बिरादर छोड़ा मयर मुकान ।।
देखले दिखाके लेडु भड़ुये आंखमें देके चश्मा ।
चिखल चिखाके लेडु भड़ुये नामरदाना खसमा ।।

('चउड़ा तामसा' से)

इनके द्वारा रचित शुद्ध हिन्दी गान और दोहे आज भी 'मोगल तमासा' के नामसे अभिहित हो प्रचलित है। परन्तु इनका कोई ओड़िया लेख आज तक नही मिला है। लेकिन हिन्दी साहित्यमे ये एक उच्च कोटिके लेखक थे।

१७ वी तथा १८ वीं सदीमें कई सुप्रसिद्ध ओड़िया तथा हिन्दी साहित्यिकोंके लेख हम पाते है। इनमें निम्नलिखित कवि प्रधान है। उनके नाम तथा उनकी रचनाएँ नमूनेके तौरपर यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

ब्रजनाथ बड़जेना :

देख ओ वलदेव ताल—
—ध्वज रथरथी कामपाल।
धवल वरण दइत काल, मन्द मन्द हासी।
कादम्बरी मदिर मत्त बहत करुणा राशि।
प्रबल अमल भ्रमित नेत्र
याके नाहि बैरि मित्र।
रेवती पति कुमुद चन्द्र मंगलमय हरष कन्द
वृन्दारक बृन्द बन्द्य सुन्दर नील वासी।

\+ + + (गुण्डिचा बिजे पृ. १०)

नन्दिनिकेतन स्पन्दनके पर बैठक जो जगन्नाथ सो प्यारे।
बादल काल कलाम्बुज कान्ति सुकान्त कलामुख राजत जारे ।।

चारु कलाधर चान्द बराबर लाल प्रवाल जवाधर तारे।
आप बिशाल भुज दुइ तोल के दीनको रखनेका पुकारे॥

\+ \+ \+ (गुण्डिचा बिजे पृ. १०)

ओ देवी सुभद्रा उए भक्त भद्रा
संगे लोक माता भवानी दयाद्री।
बल्लि हेम-गोरी सदा हे किशोरी
सुभोगी बिलासी अनाशी अछिद्रा॥

\+ \+ \+ (गुण्डिचा बिजे पृ. १०)

मसक मिठाई रस कोई पाई
लवणी के 'चुरमा' सब से हैं नरमा।
विरी लड्डु नाडी, हरिमन वेड़ी
'कान्ति' सुकान्ति भान्ति कुभान्ति ।

\+ \+ \+

आरिसा बहुपुरा 'सुकाकरा'
टाकुआ मित गजा मनोहरा।
वुन्दिआसर अमालू इण्डुरी
हंसकेली खुरुमा गजापुरी
बन्तल रम्भा श्रेणी वात्तोकी संयुत मरीच पानी
दधिरस सहिता 'राई' जिह्वा--लोभकारी संतोषदानी॥

('गुण्डिचा बिजे'; १७, १८)

रामदास :

सिद्धन कों छुटत ध्यान, मानिनी सब तेज मान
ग्यानीकों भूल्यो ध्यान, योगी मन भटको।
कहत अधीन श्रीराम, नवजलधर सुन्दर श्याम,
छिनतुं हैं कोटि काम, मेरो मनमें अटकी।

\+ \+ \+

पीतपट पहरे पीत पछोरी उघारे,
गोवर्द्धन धारे नन्दके वुलारे।
कहुं तुह ए श्रीराम रटतु हैं वाही नाम
मेरो प्राणप्यारे मुरली वारे॥

\+ \+ \+

श्याम सजल जलद घनघटा
वरन छवि छटा

मस्तक तीर फेण्टा
लगि हैं जरिगोटा।
कर मुरली लकुटा
वसन पीतपटा
राजित कटि तटा,
ठेरे यमुनाको तटा।
गोपीयन घर पैठा, माखन दधि लूटा,
व्रज के ओ चोठा,
जाहि भार अर्जुन तरु टूटा,
निशिदिन श्रीराम वाहाको रटा ओ रटा ओ रटा।

('नवजीवन' तृतीय वर्ष : ४ थी सख्यामे
श्री नीलमणि मिश्रके निबन्धसे)

जगबन्धु हरिचन्दन या जगबन्द :

सुगन्ध गन्ध झर झर मधुर बहे समीर
तरु गन सब छन छन छन लह लह लह
पल्लव सब होइये।
लपट सब लटाजाल वापर सब पंछी माल
छुटकत सब हार डाल
कोयल सब कुहु कुहु कुहु कोलाहुल बोलि हएं।
+ + +
जगबन्द बन्ध गुन गुन गुन वृन्दावन किये वन्दन
बलीहारी बार बार वृन्दावन वास हे।
+ + +
महीभारको निवारन जन्म लियो जो मोहन
पूरन ब्रह्म सनातन वैकुण्ठवासवाला।
पुतुना कोहि जो मारे, शकटा चरनको तोड़े
तृणा को सँघारे जो घोर रन में डाला।
जगबन्द बन्द ओहि श्रीकृष्ण सदा प्रकटि वृन्दावन
नवघन कान्हु काला

('नवजीवन' तृतीय वर्ष : ५ वीं संख्यामें
श्री नीलमणि मिश्रके निबन्धसे)

कविचन्द्र नरसिंह राय गुरु :

अरे तुम क्या नवाब हो अनगुल राजा बड़ा।
सारे जहां में हुकुम फिराए यहीं हांके घोड़ा॥

घड़ी घड़ीमें फौज चलाए हिन्दोल गड़ दिया मड़ा।
कुरु मिठा हवेली कबेली जितना दौलत पोड़ा॥

\+ + +

राजा कहे में क्या खून किया
यात्री लोगों की मुलाकात न पाया॥
कन्ध अन्ध सब दौलत लिया।
बउद बरवाद अनुगुल हुआ॥
तुम क्या पूछ रहे, चिड़िया सत नवावे
नरपति लोगोंको दोष लगाना कम्पनी जात स्वभावे॥

\+ + +

साहेब कहे तुम दाखल राए,
कम्पनी घर तुमको खूनी बताए।
सारा जहां में लोग मराए
घाट बाट खूनी नाट को जाए।
राजा तुम क्या मन कहे जल्दी रांची चलो।
विप्र श्रेष्ठ कविचन्द्र कहे विहि लिहि बामको पाओ॥

(श्री सुधाकर पटनायक द्वारा सम्पादित, कविचन्द्र श्री नृसिंहराय गुरु लिखित 'राजा सोमनाथ सिंह जगदेव' नामक पुस्तकसे उद्धृत और 'आसन्ता कालि'की पूजा सख्या १९६१ मे प्रकाशित श्री नीलमणि मिश्रके लेखसे।)

सम्बलपुर राजदरबारके कवि श्री विप्र प्रह्लाद रायकी कविताका नमूना देखिए:—

कौशलमें मुखमान महानद पाटनमें बसुधा वसुधाई।
सम्बलपुर पवित्रपुरी प्रल्हाद कहे मोहीं वर्णि न जाई।

\+ + +

कौशलमुख्य सम्बलपुर देशां। जहाँ वसत चौहान नरेशां॥
बसे नगुपुर गदी सोभाहि। जेहि छबी जम्बो द्वीपमें नाहीं॥
चित्रोतपल गढ बहें बढ़तीरा। जहं उपजे मनी कञ्चन हीरा॥
शस्त्र सशास्त्र पुरन पुरवासी। विद्यामें मन लहुरें काशी।
अलकापुरी पटान्तर देशा। पहुचें नहीं पापुके लेशा॥
आपु बैठी सिरजो समलाई। ताते समलपूर कहाई॥
बसें सहर छतीसों जाति। महारम्य सों भावहुं भाति।

कोशि विशाशए कीचहुं तरे। नग्र सीमायो अतुल धनें रें।
अष्तादश गढ सेवा करइ। दण्डपाट ते रह अनुसरइ।
दुर्गम दुर्ग बुर्ज बहु बांके। खाई महानद है, जाके।
चढ़े चरख तोपें अनलेखे। दंग होहीं दुश्मन जेह देखे।

(ओड़िशा म्यूजियममे संरक्षित 'जय चन्द्रिका ग्रन्थ' से
उद्धृत, 'आसन्ता कालि' पूजा सख्या १९६१ मे प्रकाशित)

इनके अतिरिक्त रुद्रराय, अनंग भीम, मधुपुर नरेन्द्र, वानपुर हरिचन्दन आदि कवियोंने भी हिन्दीमे रचनाएँ की है। श्री राय रामानन्दके ब्रजबोलीके पद्योंकी चर्चा बंगला भाषामें लिखे 'श्रीक्षेत्र' से मिलते हैं।

शेष ओड़िया तथा हिन्दी दोनों भाषाके साहित्यिकोके बारेमे ओड़िसा म्यूजियमके श्री नीलमणि मिश्रने मासिक साहित्योंमे आलोचना की है। इनकी हिन्दी रचनाएँ अबतक प्रकाशित नही हुई है। श्री बशीबल्लभ मिश्रकी रचनाएँ आज तक म्यूजिमयके हस्तगत भी नही हुई है। लेकिन जिस स्वर और भावमे इन कवियोंकी रचनाएँ देखनेमें आती है, इसमे सन्देह नही कि इन्होने उस समयके हिन्दी साहित्यमे उच्च स्थान प्राप्त किया था।

२० वी शताब्दीमे श्रीमती कुन्तलाकुमारीका नाम हिन्दी साहित्यमे अनुपम रहा है। इन्होने हिन्दीमें कई पुस्तकें, उपन्यास, काव्य आदि लिखे है।

पञ्जाबकी हिन्दीको देन

डॉ. धर्मपाल मैनी

पञ्जाबकी ऐतिहासिकता

वेदोंके गायक 'मन्त्र द्रष्टारः' ऋषियोंकी पवित्र भूमि तथा आर्योंका आरम्भिक प्रदेश पञ्जाब भारतका गौरव है। उन्नत ललाट, रक्त-आभान्वित कपोल, तेजपूर्ण नेत्र, सांद्र केश राशि, विस्तृत वक्ष-स्थल, विशाल बाहु, गौर वर्ण और ओजमय आनन——सब मिलकर जिस सात्विक तेजोमय सौम्य आकृतिको सजीव और साकार बनाते हैं, वह आर्यत्वको सार्थक करती है। ब्रह्मावर्तका ब्रह्मतेज और वीरप्रसू-भूमिके योद्धाका वीरत्व मानों यहीं साकार हुआ है। सरस्वती तो ब्रह्मावर्त्तमें सरस्वतीको ही प्रवाहित करने चली आई थी तथा दृषद्वतीने यहाँके लोगोंको विशेष दृष्टि प्रदान की; दोनोंने मिलकर मध्यवर्ती ब्रह्मावर्त्त प्रदेशमें ही ऋषियोंको प्रादुर्भूत किया। विश्वके प्राचीनतम वाङमय ऋग्वेदकी ऋचाओं से सर्व प्रथम यही प्रदेश निनादित हुआ था। ऋग्वेदमे इसका प्राचीनतम उपलब्ध नाम सप्तसिन्धु है, जिसमें सरस्वती, शतद्रू (सतलुज), विपासा (व्यास), परुष्नी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम), तथा सिन्धु इन सात नदियोंका उल्लेख है। सरस्वतीको छोड़कर शेष पाँचो नदियाँ सिन्धुमें आकर मिलती हैं, वही सबसे प्रमुख नदी है; अतः इस प्रदेशका नामकरण उसीके आधारपर हुआ। 'स' के स्थानपर 'ह' का प्रयोग करनेवाले ईरानियोंने इसे 'हप्तहिन्दु' भी कहा है। महाभारतमें जिन सात द्वीपोंके राजाओंका उल्लेख है, वे इन नदियों द्वारा निर्मित द्वाबोंके ही नृप हैं। उन दिनों इस प्रदेशके लिए वाहीक या आरट्ट नामका भी प्रयोग मिलता है। चिनाब और सिन्धके संगमपर पञ्चनद नामक छोटा-सा स्थान है। सम्भवतः इसी नदका स्थान 'अम्बु' (जल) ने लिया और धीरे-धीरे 'पञ्चाम्बु' से 'पञ्जाब' नाम प्रचलित हुआ। दूसरी सम्भावना यह भी है कि 'नद' का स्थान फारसीके 'आब' [सं. आप्ञ्जल] शब्दने लिया, जिससे 'पञ्जाब' बना। राजस्थानके कवि सुन्दरदास (१७ वी शताब्दी) ने सर्व प्रथम अपनी कवितामें 'पञ्जाबी' शब्दका प्रयोग किया है। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा साहित्यमें उल्लेखके अभावमें यह अनुमान करना बहुत असंगत न होगा कि प्रागैतिहासिक कालसे ही इस सम्पूर्ण

प्रदेशके लिए 'सप्त-सिन्धु' के अतिरिक्त अन्य कोई एक नाम प्रचलित नहीं हो सका। महाभारत कालमे इस भूखण्डकी भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार थी :—

कुरु जांगल : कुरुक्षेत्रके पास दृषद्वती (चितंग?) से लेकर यमुनाके समीप खडवा तकका प्रदेश है, जो इसकी दक्षिण-पूर्वी सीमा बनाता है। इसके साथका प्रदेश 'बहु धान्यक' है, जिसके प्रमुख नगर रोहिताक (रोहतक) का उल्लेख भी मिलता है। इसमें आधुनिक गुड़गाँव, रोहतक तथा हिसार आदि जिलोंको लिया जा सकता है।

ब्रह्मावर्त्त : मनुस्मृतिमें सरस्वती और दृषद्वती (चितंग?) के मध्यवर्ती प्रदेशको ब्रह्मावर्त्त कहा गया है। यही ऋचाओके गायक ब्रह्मर्षियोंका पवित्र प्रदेश है। इसीलिए मनुने इस प्रदेशके परम्परागत आचारको ही 'सदाचार' कहा है। ऋग्वेदमे सरस्वती, दृषद्वती नदियों तथा इस पवित्र ऋषि-भूमि ब्रह्मावर्त्त का विशेष उल्लेख है। यहाँ बहुतसे ऋषि-आश्रम थे। यहाँ शैरीषक (सिरसा) ऋषियोंकी प्रधान नगरी थी। ईसाकी प्रथम शताब्दीमे शतद्रू (सतलुज) तक इसका विस्तार हो गया था, जिसपर मालव-वंशका अधिकार था। कुरुक्षेत्रमे अम्बालाकी ओर तथा उससे भी आगे पर्वतीय प्रदेशमे एक ओर शिमला तथा दूसरी ओर देहरादून तकका प्रदेश कालकूट कहलाता था।

त्रिगर्त : शतद्रू (सतलुज) और इरावती (रावी) के मध्यवर्त्ती प्रदेशका नाम त्रिगर्त था। जालन्धर इसके केन्द्रमे प्रमुख नगर था। पाणिनिने छह बाहरी कबीलोंका आकर यहाँ बस जानेका भी उल्लेख किया है। आधुनिक जालन्धर, होशियारपुर, गुरदासपुर, चम्बा, कांगड़ा, मण्डी, सुकेत आदिका यह प्रदेश है। सम्पूर्ण 'सप्तसिन्धु' का मध्यवर्त्ती प्रदेश मध्यमिका (माझ) आधुनिक लाहौर और अमृतसरका प्रदेश था, जिसमें बादमे सम्भवतः त्रिगर्तका भी कुछ भाग मिल गया था।

मद्रदेश : इरावती (रावी) और चन्द्रभागा (चिनाब) के मध्यवर्ती अधिकतर पर्वतीय प्रदेशको मद्रदेश कहा गया है। कुछ विद्वानोंने इसे रावीसे झेलम तकका प्रदेश माना है। परवर्ती समयमें यह सीमा ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। व्यापारका बहुत बड़ा केन्द्र शाकल (स्यालकोट) इसकी राजधानी थी। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगने भी इसका वर्णन किया है। गाय, दूध तथा घीके लिए प्रसिद्ध झंग, मघियानाके प्रदेशको उशीनर नाम दिया गया था।

पूर्व गन्धार और अपर गन्धार : सिन्धुके दोनों ओरके प्रदेशको पूर्व गन्धार तथा अपर गन्धार कहा गया है। इसी प्रदेशमें प्रसिद्ध तक्षशिला (जिला रावलपिंडी), पुष्करावती (पेशावर), अटकटका (अटक) तथा उरसा (हजारा) आदि नगर अवस्थित थे। तक्षशिला गन्धार राज्यकी राजधानी थी। पाणिनीने भी इसका उल्लेख किया है। यहाँके लोग सभ्य तथा समृद्ध थे और ई. पू. तीसरी शताब्दीमें यह शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था।

कैकेय प्रदेश : रामायण में व्याससे आगेके प्रदेशको तथा महाभारतमें आधुनिक झेलम, शाहपुर आदि जिलोंको 'कैकेय' प्रदेश कहा गया है। झेलमके पश्चिमी किनारेसे लेकर चिनाबसे इसके संगम तकका यह प्रदेश है। इसी भूमिको 'वीर प्रसू' भी कहा गया है।

सौवीर : सिन्धका पुराना नाम था। इसकी राजधानी रोरुका (रोहरी) में पुराने सिक्के आदि भी मिले हैं। इसीके सामने शारकर (सक्खर) भी प्रसिद्ध नगर था।

महाभारत कालके बाद इस प्रदेशके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंपर विभिन्न राजा राज्य कर रहे थे। वीर एव स्वाभिमानी पोरसको तक्षशिलाके राजाकी सहायतासे हराकर महान योद्धा सिकन्दरने ई. पू. ३२६ में बहुतसे भागोपर अपना अधिकार कर लिया था। उसके लौटनेके कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त मौर्यने उस प्रदेशको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया तथा उसके पौत्र सम्राट् अशोकने तक्षशिलाको ही अपने उत्तरी राज्यकी राजधानी बनाया था। कलिंग-विजयके बाद बौद्ध धर्मका आश्रय लेकर अपने सम्पूर्ण साम्राज्यमे सुख, शान्ति और समृद्धि लानेमे उसने कोई कसर न उठा रखी थी। ईसाकी पहली शताब्दीमे शक तथा कुशाण बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा विजित पञ्जाबके कुछ प्रदेशको ईसाकी चौथी शताब्दीमे समुद्रगुप्तने वापस लिया। उसके पुत्र विद्या और कला-प्रेमी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने अपने राज्यकी सर्वांगीण प्रगतिकर हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृतिकी पुनः प्रतिष्ठा की। छठी शताब्दीमे हूणोंका आक्रमण हुआ और सातवी शताब्दीके आरम्भमे उन्हें पराजित कर हर्षवर्धनने थानेश्वरको अपनी राजधानी बनाई। उसके बाद यहाँ छोटे-छोटे राज्य रह गए। ग्यारहवी शताब्दीके आरम्भमे महमूद गज़नवीके हाथों जयपालकी हारने पञ्जाबमे हिन्दू राज-सत्ताको लगभग समाप्त कर दिया। १६ वी शताब्दीमे पानीपतके प्रसिद्ध युद्ध इसी प्रदेशमे हुए, पर रणजीतसिंहसे पहले कोई इस प्रदेशका उद्धार न कर सका। मौका पाकर अनेक छोटी-छोटी रियासतें भी स्थापित हुई। अँग्रेजोंका राज्य स्थापित होनेके बाद बीसवी शताब्दीके आरम्भमे उन्होंने इस प्रदेशको सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पञ्जाब इन तीन प्रान्तोंमे विभाजित कर दिया और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय युग-युगसे चली आने वाली राष्ट्रीय सांस्कृतिक दायादके धनी पञ्जाबको पूर्वी और पश्चिमी पञ्जाबके रूपमे भारत और पाकिस्तान दो भिन्न राष्ट्रोका अंग बना दिया गया। धर्म और जातिके आधारपर विशाल जन-समूह का स्थानान्तरित व विपन्न होना इस विभाजनकी अनचाही देन है। इतना ही नही, धर्मके नामपर धर्मान्ध लोगों द्वारा ही नर-संहारका नग्न-नृत्य मानवताके पाशविक इतिहासमे भी अविस्मरणीय है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् सन् १९४८ मे आठ रियासतोंको मिलाकर बनाए हुए पैप्सू राज्यको सन् १९५६ मे पञ्जाबमे मिलाकर इस प्रदेशको एक बनानेका भारत सरकारने प्रयत्न किया था, लेकिन 'भाषाके आधारपर प्रान्त निर्माण' के नारे और आन्दोलनके परिणाम स्वरूप प्रान्तको न केवल हिन्दी और पञ्जाबी भाषा-भाषी दो क्षेत्रोमे विभक्त कर दिया गया है, अपितु इसी आधारपर राज्य विधान सभाकी भी दो प्रादेशिक समितियाँ बना दी गई है। संक्षेपमे इस प्रदेशके ऐतिहासिक विकासकी यही कहानी है।

प्रदेशकी भाषा

ब्रह्मावर्त्तमे वैदिक ऋचाओका गान आरम्भ हुआ था। धीरे-धीरे ऋषियोकी वैदिक संस्कृतके अतिरिक्त जन-समाजमे जो भाषा प्रचलित हुई, उसे लौकिक संस्कृत कहा गया है। महाभारत-काल तक इसीका प्रचलन रहा। सम्भवतः इसीलिए वेदव्यासने इसे साहित्यिक माध्यमके रूपमे अपनाया तथा भगवान कृष्णने भी इसी भाषामे गीताका सन्देश दिया। भगवान बुद्धके समय जन-भाषाका आसन ग्रहण करनेवाली 'पालि' को बुद्ध-भक्त पाल वंश के राजाओंने विशेष रूपसे प्रचलित किया। इसी समय संस्कृतको विकृत होनेसे बचानेके लिए ही पञ्जाबके प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिने अष्टाध्यायीकी रचना की, परिणाम-

स्वरूप संस्कृत केवल शिक्षितोंकी भाषा रह गई। सिकन्दर आदि विदेशियोंके आक्रमणोंके कारण अभारतीय भाषाओंके शब्दोंको अपनानेवाली प्राकृत जन-भाषाके अधिक निकट होती गई और ईसाकी पहली शताब्दी तक आते-आते 'पालि' धार्मिक ग्रन्थोंकी भाषा बन गई। पाणिनिकी परम्परामें 'महाभाष्य' के द्वारा संस्कृतके स्वरूपको सुरक्षित करनेवाले पतञ्जलिने भ्रष्ट भाषाको सर्वप्रथम 'अपभ्रंश' नाम दिया। पुनः शक कुशाण आदि विदेशियोंके भारतपर आक्रमण एवं विजय तथा निवासने अपभ्रंशके विकासमें विशेष योग दिया। गुप्त कालमें उच्च शिक्षित वर्गकी भाषा संस्कृत तथा निम्न व अशिक्षित वर्ग (जन सामान्य) की भाषा प्राकृत थी। कालिदासके नाटक इसके प्रमाण है। हूणोंके आक्रमणोंके बाद अपभ्रंश अधिक प्रचलित हुई और हर्षकी मृत्युके बाद तो वह स्वस्थ साहित्यका माध्यम भी बन गई। ८ वीं से १३ वीं–१४ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश-काव्यका निर्माण होता रहा। हम कह सकते है कि आधुनिक भारतीय भाषाओके विकास तक सम्पूर्ण उत्तरी भारतपर—साहित्य और जन-भाषाके माध्यमके रूपमें विभिन्न अपभ्रंशोंका ही राज्य रहा। इन्हींमें आरम्भिक भारतीय आर्य भाषाओंके तत्त्व देखनेको मिलते हैं, जिन्होंने धीरे-धीरे विकसित होकर स्वतन्त्र भाषाओंका रूप ग्रहण किया। पैशाची, शौरसेनी तथा महाराष्ट्री अपभ्रंश इनमे प्रमुख थीं, जो इन्ही नामोंकी प्राकृतोंसे विकसित हुई थी। पञ्जाबी भाषाकी उत्पत्तिपर वैज्ञानिक दृष्टिसे अभी सन्तोषप्रद कार्य नही हो पाया है। पी. डी. गुणे, दुनीचन्द, डॉ. गोपाल-सिंह दर्दी तथा सुरिन्दर सिंह कोहली शौरसेनी अपभ्रंशको इसकी जननी मानते है। तारापुरवालाने इसपर शौरसेनीका प्रभाव स्वीकार किया है। ग्रियर्सनने 'माझ' की भाषाको पैशाची बताते हुए कहा है कि पैशाची की नींवपर शौरसेनीने जो प्रासाद बनाया, वही पञ्जाबी है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा प्रेमप्रकाश सिंह इसकी उत्पत्ति 'कैकेय' अपभ्रंशसे मानते है। प्रेमप्रकाश सिंहके अतिरिक्त अन्य किसी भी विद्वानने युक्ति-युक्त विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है। मेरे विचारमें मूल प्रश्न यह है कि आधुनिक पञ्जाबीका विकास लहंदा या केन्द्रीय पञ्जाबी—उसकी किस उपभाषा या बोलीसे हुआ है? इसका समाधान किए बिना यह समस्या सुलझने वाली नहीं। अन्यान्य मतोंपर विचार तथा भाषाका विश्लेषणात्मक अध्ययन करनेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि पञ्जाबी शब्द-रूपोंकी दृष्टिसे लहंदा (पश्चिमी पञ्जाबी) तथा भाषाकी प्रकृतिकी दृष्टिसे केन्द्रीय पञ्जाबी (पूर्वी पञ्जाबी)के अधिक निकट हैं। भाषाके ये ही दो मूल तत्त्व है। लहंदाका पुराना शब्द-भण्डार कुछ पैशाचीसे और अधिक तथा कैकेय अपभ्रंशसे प्रभावित तथा विकसित प्रतीत होता है तथा 'माझ' (पूर्वी पञ्जाबी) की प्रकृति और प्रवृत्ति शौरसेनी अपभ्रंश की देन है। अब तक के अध्ययनके आधारपर इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके अतिरिक्त सम्पर्क में आनेवाली ब्रजभाषा, फारसी आदिका प्रभाव भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। सतलजसे रावी और उससे भी आगे तक इस भाषाका प्रचलन हुआ। इधर पूर्व दक्षिणी भागमें यमुना तक ब्रजभाषा और खड़ी बोली विकसित होती रहीं। महमूदके आधिपत्यके बाद फारसी का जो प्रभाव यहाँ-की भाषाओंपर पड़ा, वह सोलहवीं शताब्दीके बाद और अधिक बढ़ा। महाराजा रणजीत सिंह (१८ वीं शताब्दी) के राज्यमें पञ्जाबीको महत्व मिला। इधर ब्रजभाषा साहित्यका माध्यम चली आ रही थी, उसीको रियासतोंने गुरुमुखी लिपिमें अपनाया तथा पञ्जाबी वहाँ बोल चालकी भाषाके रूपमें प्रचलित हुई। अँग्रेजी राज्यके साथ-साथ यहांकी भाषाओंपर उसका कुछ प्रभाव पड़ा। प्रचलित अँग्रेजी शब्दोंके कुछ विकृत

रूपोंको इन भाषाओंने अपनाया। इस प्रकार पञ्जाबमें ब्रजभाषा और पञ्जाबीका विकास साथ-साथ हुआ। सिख गुरुओंकी वाणीका माध्यम कहीं ब्रजभाषा है, तो कहीं पञ्जाबी। आजतक उसका वैज्ञानिक विश्लेषण न करनेके कारण कुछ विद्वानोंने उसे हिन्दी तथा दूसरोंने पञ्जाबी कहा है। गुरुमुखी लिपिमें पञ्जाबीसे प्रभावित ब्रजभाषाका बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है, जिसे लिपिके कारण पञ्जाबीके अन्तर्गत रख दिया गया है। वस्तुतः शौरसेनी अपभ्रंशकी कुछ विशेषताएँ दोनोंमें सामान्य रूपसे देखनेको मिलती हैं। अतः एक भाषामें दूसरेका भ्रम हो जाना बहुत कुछ स्वाभाविक भी है। इतना होते हुए भी संक्षेपमें हिन्दी और पञ्जाबीकी प्रकृतिमे निम्नलिखित भेद उपलब्ध है :—

१. पञ्जाबीमें हिन्दीके—को, से, का, के, की, में तथा परसर्गोंके स्थानपर क्रमशः—नूं, तों, दा, दे, दी, विच तथा ते का प्रयोग होता है।

२. हिन्दीके 'ता' तथा 'न' के स्थानपर पञ्जाबीमें क्रमशः—'दा' तथा 'ण' का प्रायः प्रयोग मिलता है।

३. पञ्जाबीमें स्त्रीलिंग बहुवचनके साथ सहायक क्रिया भी उसके अनुरूप ही परिवर्तित हो जाती है, लेकिन हिन्दीमें नहीं। (हि.—वे जाती है। पं.—ओ जांदियाँ हण।)

४. भूतकालमें हिन्दी 'था' के स्थानपर पञ्जाबीमें 'सी' का प्रयोग होता है।

नाथ-साहित्य

विश्वकी महान् विभूतियाँ काल-प्रसूत होती हैं। मध्यकालीन भारतीय वाङमयके क्रान्तिदर्शी साहित्यिक नेता गोरखनाथ ऐसी ही विलक्षण विभूति थे। ईसाकी दसवीं शताब्दीमें केन्द्रीय एवं स्थानीय राज्य शक्ति के अभावमें निराश्रित, विक्षुब्ध एवं विश्रृंखलित भारतीय जनता साहस, शक्ति, धर्म और सन्तोष आदि मानवके आन्तरिक गुणोंका महत्व समझा कर निष्प्राण सामाजिक जीवनमें चेतना फूंकनेवाले व्यक्ति की ओर आँखें लगाये बैठी थी। ऐसे समय वाह्य प्रभावोंसे आन्तरिक जीवनको विक्षुब्ध न होने देनेकी अपूर्व शक्तिका क्रियात्मक सन्देश लेकर गुरु गोरख अवतीर्ण हुए। विश्वके इतिहासमें बाहुओंके अशक्त हो जानेपर अनेक बार वाक् शक्तिने समाजका साथ दिया है—वह वाक् शक्ति जो जीवन शक्तिकी अभिव्यक्ति हो और वैयक्तिक जीवनकी अनुभूति जिसकी आधार-भूमि हो। गोरखकी जोगेसुरी वाणी इन तत्त्वोंका ही घोल है।

सिद्धोंसे सन्तोंका सम्बन्ध जोड़नेवाली महत्वपूर्ण नाथोंकी लड़ीके मूर्धन्य गोरखनाथ पञ्जाबकी ही विभूति थे। इन्होंने न केवल अपने गुरु मत्स्येन्द्र (मच्छेद्रर) को जगाया; अपितु इस विशिष्ट ज्ञानकी प्रसारक परवर्ती अमर परम्परा भी प्रचलित कर दी, जिसके सम्पर्कमें आकर उत्तरी भारतका बहुत-सा वाङमय महान् बन गया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'भाषा' और 'सम्प्रदायिक प्रवृत्ति' (शिक्षा मात्र) के आधारपर इन रचनाओंको यह कहते हुए कि 'जीवनकी स्वाभाविक अनुभूतियों और दशाओंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं' शुद्ध साहित्यके अन्तर्गत नहीं रखा। डाक्टर रामकुमार वर्मा इनके काव्यत्वको उभारे बिना ही इनके सिद्धान्तोंका परिचय देकर इसे 'विविध साहित्य' के अन्तर्गत रखते हैं। 'शुद्ध' विशेषण जोड़ते हुए शुक्लजीने इनकी

साहित्यिकताको दबी आवाजमें स्वीकार किया है। 'साधन मूलक विधियों और वैराग्योत्तेजक विचारोंका बाहुल्य होनेसे नीरसताका आधिक्य' मानते हुए भी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने इनके कुछ 'सबदों' मे सञ्चरित 'मानव रस' में पाठकको मग्न कर उनका काव्यत्व उभारा है और इस प्रकार शुक्लजीकी दबी आवाजको प्रखर स्वर दिया है। इतना ही नही 'परवर्ती हिन्दी साहित्यमे चरित्रगत दृढ़ता, आचरण-शुद्धि और मानसिक पवित्रताका जो स्वर सुनाई पडता है उसका श्रेय इस साहित्यको ही है। इसलिए इस पथके साहित्यसे परवर्ती हिन्दी साहित्यका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।' यह लिखकर उन्होंने हिन्दी साहित्य सापेक्ष उनका महत्व भी दिखाया है। जहाँ तक भाषाका सम्बन्ध है न केवल गोरख वाणी अपितु अब तो "नाथ सिद्धोकी बानियाँ" से भी जिस भाषाका परिचय मिलता है, विद्वान् उसे हिन्दीका ही आदिम रूप स्वीकार करते हैं। प्राप्त प्रमाणोंके आधारपर गुरु गोरखका समय नवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध मानना ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। राहुल सांकृत्यायन इस मतके प्रवर्त्तक थे। डॉक्टर मोहनसिहकी खोजसे इसे बल मिला तथा सभी प्रमाणोंको एकत्रित कर तर्क सगत ढगसे प्रस्तुत कर आचार्य द्विवेदीको इसे सर्वाधिक प्रामाणिक एवं लगभग निश्चित बना देनेका श्रेय प्राप्त है।

अब तक की खोजके आधारपर गुरु गोरखकी २८ के लगभग सस्कृतमे तथा ४० के लगभग हिन्दीमे रचनाएँ प्राप्त हुई है। संस्कृत रचनाओंका विशेष विवरण 'नाथसम्प्रदाय' मे प्राप्त है। हिन्दी रचनाओमे बहुत-सी पृष्ठ भरसे अधिक की नही हैं। पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने 'शब्द', 'पद', 'शिष्या-दर्शन', 'प्राणसकली', 'नखैबोध', 'आत्मबोध', 'अभय मात्रा योग' 'पद्रह तिथि', 'सप्तवार', 'मछिन्द्र गोरख बोध', 'रोमाली', 'ज्ञान तिलक', 'ज्ञान चौंतीसा' और 'पचमात्रा' इन चौदह रचनाओंको प्रामाणिक माना है। इनमेसे 'ज्ञान चौंतीसा' को छोड़कर शेष सभीको गोरख वाणी सग्रहमे प्रकाशित भी किया था।

सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे डॉ. मोहनसिंह इनमे से 'मच्छिन्द्र गोरखबोध' को अति प्रामाणिक व महत्वपूर्ण समझते है। लेकिन प्रबोधचन्द्र बागची तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि गोरखने उसे स्वयं न लिखा होगा; तो भी यह मत्स्येन्द्रके सिद्धान्तोंपर प्रकाश डालने वाला अवश्य है। गोरखके पदोंमेंसे कुछ कबीर, गुरु नानक, दादू आदि परवर्ती सन्तोके नाम से भी प्रचलित है। अतः उन सबकी प्रामाणिकताके विषयमे निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता। फिर भी इतना निश्चित है कि उनका मूल स्वर गोरखका ही है। सभी रचनाओमेसे 'सबदी' को गोरखकी सबसे अधिक प्रामाणिक रचना माना जा सकता है। इनमे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक दुष्प्रवृत्तियोंसे बचकर मनको दृढ़ एव एकाग्र करनेका सन्देश दिया गया है। इस प्रकार वाह्य आडम्बरोंके स्थानपर आन्तरिक शुद्धिका महत्व दर्शाया गया है। वज्रयानी योगको व्यवस्थित करके उन्होंने काया-शोधकी निश्चित प्रणाली प्रचलित की और योग-साधनाको देह-साधनाका समुचित अंग बना दिया। सब मिलाकर उन्होंने सहज जीवनका वह मार्ग प्रस्तुत किया, जो परवर्ती सन्तोंमे अधिक स्पष्ट और प्रखर होता गया है। शुद्धाचरण सहज-जीवनकी आधार-भूमि है। 'कथनी' और 'करनी' मे ऐक्य उसका प्राण है। इसमें सिद्धान्तोंसे कहीं अधिक क्रियात्मक जीवनपर बल दिया है। कोरा ज्ञान नहीं, उसकी जीवनके माध्यमसे अभिव्यक्ति ही जीवन्त सत्य है।

इनकी भाषा रचनाओंमे कई 'गोष्ठ' भी प्राप्त हैं। सिद्धान्तोंकी व्याख्याके लिए सम्भवतः इस शैलीका आश्रय लिया गया है। इसी परम्परामे यह शैली परवर्ती सन्तोंमें भी प्रचलित हुई तथा हिन्दी साहित्यको 'उलटबाँसियाँ' भी इन्हीकी देन है।

जालन्धरनाथ : तिब्बतसे प्राप्त भोट ग्रन्थोंके आधारपर नाथ-सम्प्रदायमें इन्हें मत्स्येन्द्रनाथका गुरु तथा आदि नाथ माननेकी परम्परा चली आ रही है। लेकिन भारतीय योग-परम्परामें इन्हें मत्स्येन्द्रका गुरुभाई स्वीकार किया गया है। जो हो, ये मत्स्येन्द्रनाथके समसामायिक अवश्य थे। उसीसे इनका समय ९ वीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध उचित जान पडता है।

यज्ञाग्निसे उद्भूत होनेके कारण इन्हें ज्वालेन्द्रनाथ कहा गया है तथा उसीका विकृत रूप जालन्धर-नाथ है। पर इनके प्रधान शिष्य कृष्ण पाद (कानपा) ने उन्हें जालन्धरिपा कहा है तथा अन्य प्राचीन उद्धरणोंमे भी इनका यही नाम प्राप्त है। अतः यही इनका वास्तविक नाम प्रतीत होता है। इनके नामसे ही इनका जालन्धर पीठसे सम्बन्ध स्पष्ट है, जिसे प्रायः सभी विद्वानोने स्वीकार किया है। इनके नामपर सात ग्रन्थोंका उल्लेख मिलता है। परन्तु 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ' मे इनके केवल १३ पद संगृहीत है जिनमें नाथ पन्थी विचार धारा ही मिलती है। सद्गुरुके माध्यममे ही परम पदकी प्राप्तिका भी उल्लेख है तथा कर्मानुकूल फल प्राप्ति पर विशेष बल दिया है।

पहलै कीया सो अव भुगतावै।
जो अब करै सो आगै पावै॥
जैसा दीजै तैसा लीजै।
ताठै तन-धर नींका कीजै॥

चरपटीनाथ : चम्बाकी रियासत राजवंशावलीमे इनका उल्लेख है तथा राज प्रासादके सम्मुख इनका एक मन्दिर भी मिलता है। नाथ-परम्परामे इन्हें गोरखका शिष्य और तिब्बती परम्परामे इन्हें मीनपा का गुरु माना गया है। सम्भवतः इनका समय दसवीं शताब्दी है। इनकी 'चतुर्भवाभिवासन' नामक एक कृतिका तिब्बतीमे अनुवाद प्राप्त है। गुरु नानककी 'प्राण संकली' मे इनकी गुरुसे जो बात-चीत है उससे स्पष्ट है कि ये किसी मृत्युञ्जयी रसायनकी खोजमें थे और वाह्य वेशका इन्होंने विरोध किया है। "नाथ सिद्धोंकी वानियाँ" मे इनके ५९ पद और ५ श्लोक संगृहीत हैं। उनमें भी इन्होंने वाह्याडम्बर तथा वेषका यथाशक्ति विरोध किया है। एक उदाहरण देखिए :—

इक पीत पटा इक लम्ब जटा।
इक सूत जनेऊ तिलक ठटा।
इक जंगम रहीए भसम छटा।
जडतउ नहीं चीनै उलटि घटा।
तब चरपट सगले स्वांग नटा॥

'योग-प्रवाह' में भी इनके कुछ हिन्दी पद संग्रहीत हैं।

चौरंगीनाथ : पिण्डीके जैन ग्रन्थ भण्डारमें इनकी 'प्राण संकली' मिली है जिसमें इन्होंने अपने को राजा शालिवाहनका पुत्र, मत्स्येन्द्रका शिष्य तथा गोरखका गुरुभाई कहा है। राहुलजीके अनुसार

इन्हें तिब्बती परम्परामे गोरखका गुरुभाई ही माना जाता है। पञ्जाबकी लोककथाओंमें इन्हें स्यालकोटका 'पूरन भगत' कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी उपयुक्त प्रमाणके अभावमें तथा 'प्राण संकली' की भाषाके आधारपर इस मतसे सहमत नही हैं। यही मत समीचीन प्रतीत होता है। 'प्राण संकली' की प्रारम्भिक भाषा पूर्वी है तथा बादकी राजस्थानीके निकटकी। तनजुरमें इनकी 'वायुतत्व भावनोपदेश' पुस्तकका तिब्बती अनुवाद भी प्राप्त है। 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ' मे इनकी 'प्राण सकली' (जिसकी अन्तिम संख्या १४६ है, लेकिन बीचमें बहुत-सी वाणीके अभावमें वस्तुत: १००से ज्यादा नहीं) सबदीके चार पद तथा 'श्री नाथाष्टक' नामसे आरतीके आठ पद संग्रहीत हैं। इनके विचार नाथ-परम्पराके ही है।

हिन्दीका सन्त साहित्य सभी दृष्टियोंसे गोरखके माध्यमसे पञ्जाबका ऋणी है। कबीर, गुरु नानक दादू आदिके साहित्यपर इनका विशेष प्रभाव देखनेको मिलता है। आचार्य द्विवेदीके शब्दोंमें "केवल हिन्दीके साहित्यपर ही नहीं, बगला, मराठी, उड़िया, नैपाली आदि भाषाओके साहित्यमें भी इस सम्प्रदायके विश्वासों-की स्मृति रह गई है। कबीर आदि सन्तोके अनेक पद थोड़े परिवर्तनके साथ पूर्ववर्ती नाथ-सिद्धोंकी रचना है।" विकृत ब्राह्मण-धर्मके वाह्याडम्बरोंका विरोध कर, चित्त-शुद्धि व मनोनिग्रहका सन्देश, लौकिक आकर्षणोंसे बचकर जीवनके उच्च मूल्योंको समझना-समझाना, मायाका विरोध और वैराग्यका महत्व--'कहणि रहणि बिण थोथी' का क्रियात्मक प्रचार तथा कुछ अंश तक योगका महत्व, पथ प्रदर्शक गुरु ही सर्वेसर्वा आदि नाथ-पन्थके विचार ही सम्पूर्ण सन्त-साहित्यको आप्लावित किए हुए है। अपने मतको जन-सामान्यके निकट लानेके लिए उन्होंने लोक भाषाका आश्रय लिया और सन्तोंने भी उनका अनुकरण किया। न केवल इतना ही, अपितु शैलीकी दृष्टिमे भी सिद्धान्तोंकी व्याख्या व अपने मतकी विजय दिखानेके लिए प्रश्नोत्तर रूपमे 'गोष्ठ' का आश्रय, वैराग्योत्तेजक भावोंके प्रचारके लिए पद तथा अपने मतके प्रति लोगों-की उत्सुकता बढ़ानेके लिए थोड़ी-सी उलटबाँसियोंका प्रयोग सम्पूर्ण सन्त साहित्यकी, विशेष रूपसे गोरख व नाथ-सप्रदायकी ही देन है।

अब्दुल रहमान

सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य तथा उसकी परम्पराओके ज्ञाता इस कविका आविर्भाव ग्यारहवीं शताब्दीमें मुलतानमे हुआ था। उनका 'सन्देश रासक' तीन प्रक्रमोंमें २२३ छन्दोंमे आबद्ध है। उनकी अन्य प्राकृत रचनाएँ व गीत आज तक अप्राप्य ही है, जिनका उल्लेख उनकी इस कृतिमें है। सदेश रासकमे प्रोषित पतिका नायिका एक पथिक द्वारा अर्थ-लोभके कारण गए हुए पतिको सन्देश भेजना चाहती है। बार-बार उसे रोकनेपर भी वह सन्देश पूर्ण नहीं कर पाती और अनायास ही रो पड़ती है। पथिकके जाते ही पति आ जाता है और मिलनमें काव्यका अन्त होता है। भाव-साम्यकी दृष्टिसे कालिदासके मेघदूतकी अप्रत्यक्ष छाया इसपर दृष्टिगोचर होती है। उसमें वाह्य वर्णनकी अपेक्षा आन्तरिक वृत्तियोंका उल्लेख अधिक आत्मीयतापूर्ण बन सका है। कविके नामको छोड़कर उसके काव्यसे उसके अहिन्दू होनेका कोई चिह्न-मात्र भी प्राप्त नहीं। इसमें विरह-दशाकी अनुभूतियोंके वर्णनका प्रयत्न है। 'चाहे जिस दृश्यका वर्णन हो, 'व्यञ्जना हृदयकी कोमलता और मर्म वेदनाकी होती है', द्विवेदीजीके इस कथनसे ही इस काव्यका गौरव स्पष्ट है। यह प्रधानत: अपभ्रंश काव्य है, लेकिन विरह-काव्योंमें प्रयुक्त उन सभी भारतीय रूढ़ियों

और काव्य-परम्पराओंका बहुतायतसे निर्वाह हुआ है, जो संस्कृत और हिन्दी काव्यमे देखनेको मिलती हैं। इस दृष्टिसे यह इन दोनोंकी 'संयोजक लड़ी है। पद्मावत की विरहिणी नागमतीमे इसकी छाया देखी जा सकती है।

चन्द (चदबरदाई)

मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें विशेष स्थान रखनेवाले महाराज पृथ्वीराज (१३ वीं शताब्दी) के अभिन्न सखा, वीर योद्धा, कुशल सलाहकार व मन्त्री महाकवि चन्द लाहौरमें ही उत्पन्न हुए थे। उनके हिन्दीके प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकतापर पर्याप्त विचार हो चुका है। सभी दृष्टियोंसे विचार करनेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि रासोंमें पर्याप्त अनैतिहासिक वर्णन महाकवि और उसकी कृतिकी ऐतिहासिक सत्तामें व्याघात पहुँचानेमें अक्षम है। कविका समय और उसकी कृतिका मूल रूप वाद-विवादका विषय हो सकते हैं, पर उनकी सत्ता नहीं, विशेषतः जबसे 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में मुनि जिन विजयजीने चन्दके छप्पय दिए है, जिनका आधार १५ वीं शताब्दीका हस्तलेख भी है। ६९ समयोंमे विभक्त २५०० पृष्ठोंके 'रासो' के आकारकी दृष्टिसे बहत् मध्यम, लघु तथा लघुत्तम-चार रूप किए गए हैं। लघुत्तम रूप बहत्का संक्षिप्त रूप ही है, फिर भी इसमें प्रक्षेप कम और प्रामाणिकता अधिक होनेकी सम्भावना अवश्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीके अनुसार इसमें निम्नलिखित प्रामाणिक अंश हैं :--

आरम्भिक अंश, इच्छिनी विवाह, शशिव्रता का गन्धर्व विवाह, तोमर पाहारका शहाबुद्दीनका पकड़ना, संयोगिता का जन्म, विवाह तथा इच्छनी और संयोगिताकी प्रतिद्वन्द्विता और समझौता।

'रासक' शृंगार काव्य है और 'रासो' शृंगाराधारित वीर काव्य। इसमें पथ्वीराजके युद्धोसे कही अधिक तीन विवाहोंका (इच्छिनी, संयोगिता और शशिव्रतासे) सजीव वर्णन है। इनमें भी सयोगिता वाला प्रसंग निस्संदिग्ध रूपसे मूल रासो का सर्वप्रधान अंग था; यद्यपि प्रक्षिप्त अंशने उसे भी बहुत कुछ विकृत कर दिया। 'रासो' में पूर्वप्रेम व रागकी सभी दशाओं तथा उससे उत्पन्न अन्यान्य परिस्थितियोंका सरस वर्णन है। कवि प्रथाके अनुसार नख-शिख वर्णन भी मिलता है। जन सामान्यका चित्रण करनेवाला काव्य न होकर यह ह्रासोन्मुखी सामन्ती शक्तियोके अन्तर्विरोधका चित्रण करनेवाला महाकाव्य है। कविने ऐतिहासिक तथ्योंमेंसे जीवन्त सत्यको अपनी उर्वर कल्पना शक्तिसे चारु बनाकर सहृदय पाठकोंके लिए सरस मानवीय महाकाव्यका प्रणयन किया है। ऐतिहासिक शुष्क कथात्मकताका उसमें नितान्त अभाव है, पर इससे उसका काव्यगत मूल्य कम करनेका हमें कोई अधिकार नहीं। मानवीय सत्योंमेंसे जीवन्त रस निकालकर उसे काव्य-रसमे परिणत कर देनेकी तथा जीवनकी विषय परिस्थितियोंको भी सरस तूलिकासे रंग देनेकी अपूर्व क्षमता इस महाकविमें है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके शब्दोंमें--कथाकार की अद्भुत योजना शक्ति, कथाका घुमाव पहचानने की अपूर्व क्षमता, भावोंका उतार-चढ़ाव चित्रित करनेकी मोहक भंगिमा तथा मार्मिक स्थलोंका सरस वर्णन महाकविकी प्रतिभाके कुछ विशिष्ट पग-चिन्ह हैं। उनका शब्द-भण्डार तथा शब्दोंका उचित प्रयोग आधुनिक पाठकको भी चकित कर देता है। भाषापर

उनका विशेष अधिकार था। शिवसिंह सरोजने उन्हें 'छप्पयोंका राजा' कहा था, पर डॉ. नामवरसिंहने तो उन्हें 'छन्दोंका राजा' की उपाधिसे विभूषित किया है।

संस्कृतके अन्तिम महाकाव्यके बहुत देर बाद हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होनेके कारण इसपर महान दायित्व था। उसका पर्याप्त सफलता पूर्वक निर्वाह करनेके कारण इसका साहित्यिक मूल्य अत्यधिक है। संक्षेपतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि प्राचीन सांस्कृतिक तथा साहित्यिक मान्यताओं तथा कथानक रूढ़ियों का चन्द एवं प्रक्षेपकोंको पर्याप्त ज्ञान था। 'रासो' न केवल उनका पोषक रहा है,अपितु परवर्ती महाकाव्योंका दिग्दर्शक भी। प्राचीन भारतीय साहित्यिक परम्पराको नवीन तक पहुँचानेके लिए यह मध्यस्थ प्रकाश-स्तम्भ है। परवर्त्ती हिन्दी साहित्य इसका प्रमाण है।

सन्त-काव्य

गोरख, जालन्धर आदि नाथोंकी जो परम्परा पञ्जाबमें प्रचलित थी, उपयुक्त प्रतिभाके अभावमें तथा परिस्थितियोके परिवर्तित हो जानेके कारण वह बहुत देर तक उसी रूपमें आगे न बढ़ सकी अथवा उनका साहित्य न मिलनेके कारण वह लुप्त प्रतीत होती है। उसी परम्परासे बहुत कुछ लेकर सम्पूर्ण उत्तरी भारतमें जिस सन्त काव्यका प्रणयन हुआ, उसे सगृहीत कर समन्वित रूप देनेका बहुत कुछ श्रेय पञ्जाबमें सन्त काव्यके उन्नायक गुरु नानक को ही दिया जा सकता है।

गुरु नानक देव (सं.१५२६–१५९६): जन्मसे क्षत्रिय, कर्मसे गुरु, यात्राओंसे भ्रमणशील, चतुर्दिक ज्ञानके भण्डार, उदात्त भावनाओके अजस्र-स्रोत अध्यात्म-पथके अविचल पथिक गुरुनानक महान् व्यक्तित्व लेकर संसारमें आए। 'मोदी खाने' में बैठा-बैठा उनके अन्तरका ब्रह्म तिलमिला उठा। प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और 'जेहो दिट्ठा मैं तेहो कहिआ' के माध्यमसे उनकी वाणी अभिव्यक्त हुई। अनुभूति सम्पूर्ण वाणीका आधार है। उनके प्रधान विषय हैं, ब्रह्म तथा उसकी प्राप्ति का उपाय, 'नाम'––उसका महत्व तथा निरन्तर स्मरण। माया, हउमैं (अहं), विषय-विकार, बाह्याडम्बर, (जप, तप, तिलक, माला, पूजा, तीर्थ-स्नान आदि) अवरोधक शक्तियोंकी निद्गुसारता तथा सत्संग, सत्गुरु और अभ्याससे मनको वशमें करना, 'नदरि' (भगवत् कृपा) का महत्व, तथा निष्काम कर्मण्यताका महत्व स्थापित कर धर्मपराङ्मुख अकर्मण्य जनता को कर्मण्य बनाते हुए धर्मोन्मुख करना। वस्तुतः सैद्धान्तिक सत्योंको ही व्यावहारिक रूप देना उनकी वाणीका मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने सभी सन्तोंकी वाणियोंका संग्रह करनेमें अपनी समन्वयात्मिका बुद्धिका परिचय दिया। इसीलिए गुरु नानककी विरोध करनेवाली वाणी में भी कबीर की कटुता नहीं, उनके धार्मिक विश्वासोंमें वैष्णव आचार्योंकी दार्शनिकता नहीं, उनके जीवन-यापनमे योगियोंकी शारीरिक कष्टमयी साधनाएँ नहीं, उनकी भक्तिमें पुष्टिमार्गका आडम्बर नही, उनके 'नाम-स्मरण' में वैष्णवोंकी 'तोता-रटन्त' नहीं, उनके ज्ञानमें शंकरकी शुष्कता नहीं, और इन सबसे बढ़कर उनके कर्ममें 'हउमैं' (अहंकार का गर्व नहीं। यही कारण है, कि उनकी वाणी बहुत जनप्रिय और प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। उनकी भाषा योगी, पण्डित व मुल्लाके अनुकूल बदलती चलती है। वह सदा ही भावानुसारिणी रही है। जपुजी आदिमें समास शैलीके दर्शन होते हैं। उन्होंने ब्रज और पञ्जाबी-दोनोंमें ही काव्य रचना की है। भावका महत्व होने के कारण अभी तक उनकी भाषाका विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं हो सका। रागका उनकी वाणीमें विशेष
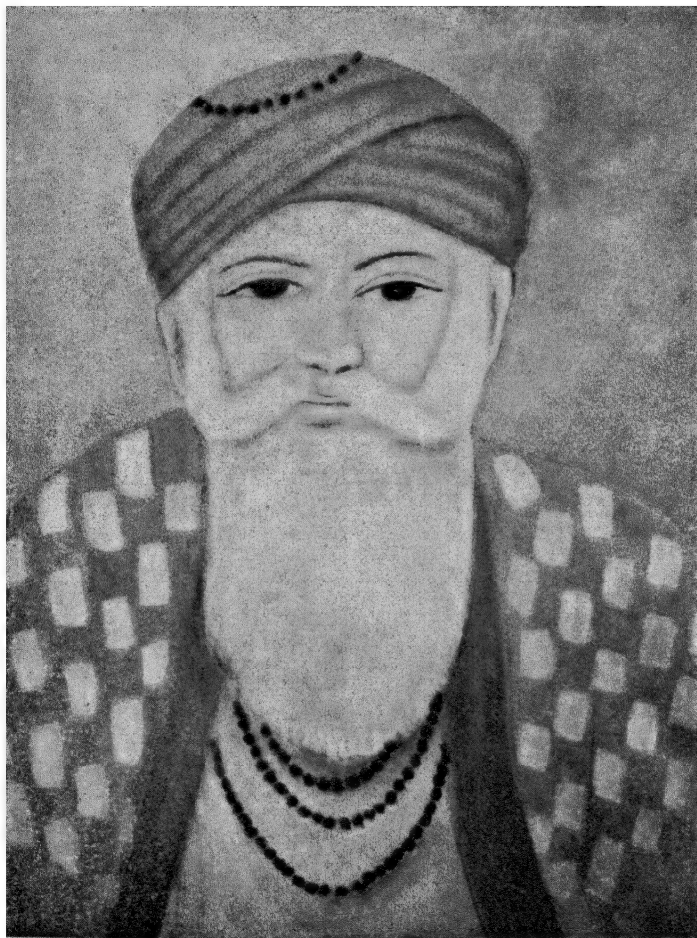
नानकदेव

स्थान है। उन्होंने कबीर, रैदास, धन्ना, बेनी आदि सन्तोंकी न केवल विचार धारा, अपितु शब्दावलीको भी निस्संकोच अपनाया, लेकिन अपने अनुकूल ढालकर। इसीसे सम्पूर्ण काव्यपर उनके 'सन्त-व्यक्तित्व' की अमिट छाप है। इसी परम्परामें द्वितीय गुरु अंगद (सं. १५६१–१६०९) ने भी ६२ श्लोक लिखे हैं, जिनमें भगवत् प्रेमकी अनन्यताका स्वर प्रधान है। इनमें ब्रज कम और पञ्जाबी अधिक है। सम्भवतः इसीलिए इन्हें पञ्जाबी (गुरुमुखी लिपि) का जन्मदाता भी कहा जाता है। तृतीय गुरु अमरदास (सं. १५२६–१६३१) अपने प्रारम्भिक जीवनमें वैष्णव थे, अतः उन्हें पर्याप्त ज्ञान, और अनुभव था। सम्भवतः अपने प्रारम्भिक जीवनमें 'निगुरे' रहनेके कारण उन्होंने सद्गुरु पर विशेष बल दिया है, इनकी भाषामें भी ब्रज और पञ्जाबी-दोनोंका ही निखरा हुआ रूप देखनेको मिलता है। उन्हीं विषयोंको अधिक बुद्धि संगत बनाकर सरल भाषामें प्रकट किया है। 'सच्ची वाणी' का पाठ करनेके लिए 'ग्रन्थ' निर्माणकी प्रेरणा भी पञ्चम गुरु अर्जुनको इन्हींसे मिली। पौराणिक आख्यानों एवं भारतीय साहित्यिक परम्पराओंका स्वर इनके काव्यमें अधिक देखनेको मिलता है। चतुर्थ गुरु रामदास (सं. १५९१–१६३८) की वाणी में प्रेमकी प्रधानता है और उनके जीवनमें सेवाका विशेष महत्व था। इनकी लम्बी वाणियोंमें प्रायः एक ही भाव छिपा रहता है, लेकिन उसका सुन्दर गठन, सरस-शब्दावली तथा मधुर-संगीत अनायास ही पाठकको अपनेमें मग्न किये रखता है। उनके शब्द-चित्र भी बड़े प्रभावोत्पादक हैं। रामसरका निर्माण प्रारम्भ कर उन्होंने धर्मको एक स्थान प्रदान किया। पञ्चम गुरु अर्जुन (सं. १६२०–१६६३) ने लगभग २३०० पदोंकी रचना की। इनकी सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टिसे जीवनका कोई क्रिया-व्यापार न बच सका। भक्तोंके उद्धरण देकर भक्त-रक्षक भगवानका इन्होंने बहुत वर्णन किया है। निर्गुणसे अधिक सगुण को इन्होंने अपनाया है। समास-शैलीमें 'सुखमणी' इनकी उत्कृष्ट रचना है। ब्रज और पञ्जाबीके साथ-साथ इन्होंने लहंदाको भी कहीं-कहीं अपनाया है। कलाके निखरे हुए रूपके भी इनमें दर्शन होते हैं। कविके साथ-साथ सम्पादकके रूपमें भी इनका विशेष महत्व है। 'आदि ग्रन्थ' में पूर्ववर्ती गुरुओं और सन्तोंकी वाणियोंको क्रम-बद्ध कर, रागोंके अनुकूल घरों आदि में विभक्त कर ऐसे वैज्ञानिक रूपसे सम्पादित किया है कि देखते ही बनता है। 'ग्रन्थ' इन वाणियोंका प्रामाणिक संग्रह है। इससे इनका साहित्यिक महत्व और भी बढ़ जाता है। नवम गुरु तेगबहादुर (सं. १६७८–१७३२) की वाणीमें ब्रज भाषाका निखरा हुआ रूप देखनेको मिलता है। इनकी वाणी अधिक नहीं, लेकिन दुःखमें आन्तरिक शान्ति प्रदान करनेकी उसमे अपूर्व क्षमता है। कटु व शुष्क न होनेके कारण शिक्षा-प्रद होते हुए भी ग्राह्य है। सम्पूर्ण सन्त-काव्यका पुनरुक्ति दोष इनमें भी खटकता है। महान योद्धा एवं भक्त गुरु गोविन्द सिंह (सं. १७२३-१७६५) सिख-धर्मके संस्थापक हुए है। उपयुक्त शिष्यके अभावमें 'आदि ग्रन्थ' को ही इन्होंने सदाके लिए 'गुरु पद' प्रदान कर दिया और स्वतः इनकी वाणी 'ग्रन्थ' में न होकर भी उसमें प्रतिपादित धर्म को दार्शनिक आधार देती है। न केवल धार्मिक व राजनैतिक, अपितु साहित्यिक दृष्टिसे भी वे युगान्तरकारी सिद्ध हुए। 'दशम ग्रन्थ' इनकी रचनाओं का संग्रह है। जापु, अकाल उसतति तथा ३२ स्फुट सवैयोंमें इनका भक्ति-काव्य मिलता है। विचित्र नाटकमें अपनी कथा हिन्दी साहित्यका प्रथम आत्म-चरित्र है। घटनाओंके भावमय चित्रणमें उसका काव्यत्व उभरा है। ८६४ छन्दोंके रामावतारके चित्रणमें वन-गमन, सीता-हरण आदि मार्मिक स्थलोंका सरस अंकन विविध छन्दोंमें हुआ है। बाल-लीला, रास-मण्डल, गोपी-विरह और युद्ध-प्रबन्धमें विस्तार पूर्वक २४८२ छन्दोंमें कृष्णावतारका वर्णन है। योद्धा कृष्णके विशद

रूपके अतिरिक्त वात्सल्य, संयोग एवं वियोग श्रृंगारका भी अच्छा चित्रण हुआ है। प्रमुख छन्द सवैया होते हुए भी बीच-बीच में कवित्त, चौपाई, दोहा आदिका आश्रय लेकर तथा गोपी-विरहमें बारह मासाको अपनाकर उन्होंने हिन्दी काव्य-शैलियोंका सफल अनुसरण किया है। चण्डी-चरित्रमें युद्ध-वर्णन प्रधान है, जिसमें आसुरी शक्तियोंपर दैवी शक्तियोंकी विजय दिखाई है। युद्धके गत्यात्मक एवं ध्वन्यात्मक चित्रोंने वीर रसके प्रतिपादनमें तथा पद्धटिका शैलीने उसकी अभिव्यक्तिमें सहयोग देकर उसे सफल वीर-काव्य बना दिया है :—

केतक गिरे धरन विकरारा,
जन सरताके गिरे करारा। ('दशम–ग्रन्थ' १७७)

गुरु भारतीय परम्पराके सजग प्रहरी थे। २४ अवतारोंकी कथाओंका सरस वर्णन, ४०० के लगभग उपाख्यान, (जिनमें बहुतसे पुराणोंसे लिये गए है), अवतार वादकी स्वीकृति, वर्णाश्रम धर्मकी सत्ता, सुगृहिणीका महत्व तथा उदार धार्मिक दृष्टिकोण आदि सम्पूर्ण पौराणिक मान्यताओंको आत्मसात् कर न केवल उन्होंने अपने पूर्णतया भारतीय होनेका परिचय दिया है, अपितु परवर्ती साहित्यको भी इस परम्परासे प्रभावित करनेमे सशक्त माध्यम सिद्ध हुए। अपने राज-दरबारमे ५२ कवियोको आश्रय देना उनके काव्य-प्रेमी होने का ज्वलन्त प्रमाण है। कहते है, 'विद्याधर' ग्रन्थमे उनकी रचनाएँ संगृहीत थी, जिसका कुछ अंश ही प्राप्त हो सका है।

भाई गुरुदास : 'आदि ग्रन्थ' के लिपिकार भाई गुरदास तीसरे से छठे गुरु तक सबके साथी रहे थे। ये 'ग्रन्थ' के सबसे अच्छे व्याख्याता माने जाते है। इन्होंने पञ्जाबीमें केवल एक 'वार' तथा हिन्दीमें ६७५ कवित्त-सवैये लिखे हैं। ५०–६० कवित्त माधुर्य-भक्ति के है। लगभग ६०० कवित्तोंमें भावपूर्वक गुरु-भक्ति व गुरु-महिमा का गान किया है। औपचारिक रूपसे सुसज्जित नायिकाके दर्शन भी इनके काव्यमे होते है। कलाकी ओर भी इनका विशेष ध्यान है। पञ्जाबके परवर्ती कवियोंको शुद्ध और परिनिष्ठित ब्रज भाषा इनकी सबसे बड़ी देन है।

वीरभान : 'सत्तनामी' पन्थके प्रवर्त्तक वीरभानका प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं होता। अनुमान है कि ऊधोदाससे प्रेरणा पाकर सं. १६०० के आसपास ये बिजेसर (नारनौल, पञ्जाब) में अपनी विचार धाराका प्रचार करने लगे। ईश्वरको 'सत्यनाम' संज्ञा देनेके कारण ही सम्भवतः इनके सम्प्रदाय का नाम 'सत्तनामी' पड़ा। 'बानी' नामक संग्रहमें इनके पद संग्रहीत है, जिनमें सन्त मतके सिद्धान्तोंके प्रतिपादनके साथ सदाचरणके नियमोंपर विशेष बल दिया है। जोगीदास (सम्भवतः इनके सहोदर) इस पन्थके विशेष प्रचारक हुए, जिससे यह परवर्त्ती साध सम्प्रदायके रूपमे विकसित हुआ।

बाबालाल : 'बाबालाली' सम्प्रदायके प्रवर्त्तक बाबालालका जन्म कसूर (लाहौर) में स. १६४७ में हुआ। दाराशिकोह से ज्ञान-चर्चाके कारण इन्होंने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके दोहे, साखियोंमें सन्त-मतका ही प्रतिपादन हुआ है। इन्द्रिय-निग्रह व आन्तरिक मानवीय गुणोंके विकासपर इन्होंने बल दिया है। कुछ पञ्जाबी शब्दोंका प्रयोग भी इनकी भाषामें मिलता है। भाषा सरल व स्पष्ट है।

सहजराम (१८ वीं शताब्दीका प्रारम्भ) : ने 'सेवापन्थ' के प्रवर्त्तक सेवारामजीका गुणगान 'परचियाँ भाई सेवारामजी' ग्रन्थ में किया है। सन्त-महिमाको स्वीकार करते हुए 'ग्रन्थ' आरम्भ किया।

आगे चलकर स्वस्थ समाज-निर्माणके लिए नैतिक दृष्टिका महत्व बताया है तथा गुरुसे अधिक ध्यान शिष्यपर दिया है। 'आसावरियाँ' उनकी अन्य-कृति है। इनके अतिरिक्त ५, ६ मौलिक तथा ३, ४ अनूदित कृतियाँ भी है, जिनमें 'योगवासिष्ठ' का अनुवाद भी मिलता है। इनका तथा अन्य सेवा पन्थियोंका खड़ी-बोली-परक गद्य विशेष महत्व रखता है।

गरीबदास : गरीब पन्थके प्रवर्त्तक सन्त गरीबदास सं. १७७४ में छुड़ानी (रोहतक) मे उत्पन्न हुए। २४००० वाणियोंका 'हिखर बोध' नामक संग्रह' इनके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचायक है, जिसमे बहुत-सी कबीर आदि पूर्ववर्त्ती सन्तोंकी वाणियाँ भी संगहीत है। आमरण गृहस्थ रहकर भी सन्त मतके प्रचारक गरीबदासकी वाणीमे 'नाम-स्मरण' तथा 'गुरु-महिमा' पर विशेष बल दिया गया है। खड़ी बोलीके क्रियारूप इनकी भाषाको आधुनिक बनाए हुए है।

संतरेण (१८ वीं शताब्दी) : उदासी साधु सन्त रेण की ४, ५ कृतियाँ मिलती है। 'श्री अनभय अमृत' उनके वेदान्त विषयपर वचनोंका सग्रह है तथा 'श्री उदासी बोध' मे उदासी वेषका विस्तार पूर्वक वर्णन है। उनके महाकाव्य 'श्री गुरुनानक विजय' का परिचय अन्यत्र दिया है।

डेढ़राज : 'नांगी' सम्प्रदायके प्रवर्त्तक डेढ़राजका जन्म सं. १८२८ मे नारनौलमे हुआ था। इन्होंने तीन ग्रन्थ लिखे थे, जो प्राप्त नही हैं। सम्प्रदायमें प्राप्त इनकी वाणीसे स्पष्ट है कि शुद्धाचरणके साथ-साथ इन्होंने सत्यका विशेष महत्व स्वीकार किया है। प्रभावशाली शिष्य-परम्पराके अभावमे इनके पन्थका अधिक प्रसार न हो सका।

साधु निश्चलदास : हिसार जिलेमें दादू पन्थके सशक्त साहित्यकार हुए है। बंगला, मराठी, अँगरेजी आदि कई भाषाओंमें इनके 'विचार-सागर' का अनुवाद प्राप्त है। इसीसे इनके साहित्य का महत्व स्पष्ट है। गत तीन शताब्दियोंमे अत्यधिक प्रभावशाली रचना रहकर स्वामी विवेकानन्द ने भी इसका महत्व स्वीकार किया है। इनकी प्रकाशित 'वृत्ति प्रभाकर' तथा 'मुक्ति प्रकाश' के अतिरिक्त अन्य कुछ रचनाएँ भी है। विधिवत् शिक्षित होनेके कारण इनकी विचार धारामे जहाँ सम्बद्ध दार्शनिक विचार धाराके दर्शन होते हैं, बहाँ उत्कृष्ट काव्यत्व भी मिलता है। सं. १९२० मे देहली में इनका देहान्त हुआ। बीसवीं शताब्दी में गणितके एम. ए. व प्राध्यापक स्वामी रामतीर्थ बन गए। उन्होंने अध्यापक जीवन और संसारमें रहते हुए भी उसे त्याग कर अपने सन्त व्यक्तित्वका परिचय दिया। उनकी रचनाओंमें अनुभूति और प्रतिभाका अद्भुत संयोग है। उनकी वाणियोके बहुतसे संग्रह प्रकाशित हुए है। आधुनिक युगके भारतीय सन्तोंमें उनका विशेष स्थान है। छोटी ही आयुमे उनकी इहलीला समाप्त हो गई।

पञ्जाबकी सन्त-परम्परा को दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम गुरु व उनसे सम्बन्धित व्यक्ति जिनका क्षेत्र प्रायः मध्य पञ्जाब रहा है। दूसरा कबीरकी सन्त-परम्पराको उसी रूपमें विकसित भी करके अपन नवीन पन्थोंके प्रवर्त्तक-जिनका क्षेत्र हरियाणा रहा है। प्रथम वर्गने राजनैतिक अत्याचारोंकी प्रतिक्रियामें—न केवल विश्व की प्रधान वीर जाति को ही जन्म दिया, अपितु उनके साहित्यने भारतीय पौराणिक मान्यताओंको पूर्णतया अपनाये रखा तथा पञ्जाबमें विकसित होनेवाले सम्पूर्ण हिन्दी व पञ्जाबी साहित्यको राष्ट्रीय दायाद के रूपमें वे सब मान्यताएँ—कथानक रूढ़ियाँ एवं काव्य-शैलियाँ प्रदान कीं। इसी परम्पराका अनुसरण करते हुए २० वीं शताब्दी के अन्त तक इस प्रदेशके प्रायः सम्पूर्ण काव्यने ब्रजभाषा

को गुरुमुखी लिपिमें अपनाया। प्रान्तीय शब्दों तथा शब्दोके पञ्जाबी रूपों के दर्शन अवश्य होते हैं, पर भाषाकी प्रकृति और प्रवृत्ति सब कहीं ब्रज की ही है। जिसे हिन्दी-साहित्यके सभी मूर्द्धन्य इतिहासकारोंने सम्भवतः कृतियों के अप्रकाशित होने तथा लिपि का ज्ञान न होनेके कारण भुलानेकी भूल की है। इतना ही नहीं, पञ्जाबके कृष्ण व राम-काव्यको रीतिबद्ध होने तथा अश्लील शृंगारसे बचाए रखनका श्रेय भी इस वातावरणको ही दिया जा सकता है।

हरियाणाके विभिन्न सन्त मतोंके प्रवर्त्तकों व प्रसारकों ने स्वस्थ साहित्य और खड़ी बोलीके स्पष्ट रूप का समुचित विकास किया। इस दृष्टिसे भाषा और साहित्यके विकासमें इनका सहयोग भी महत्वपूर्ण है।

सूफ़ी-काव्य

सूफी-काव्यके विकासमें पञ्जाबका विशेष हाथ रहा है, लेकिन प्रधानतः इसका माध्यम हिन्दी न था, क्योंकि काव्यगत परम्पराओंके साथ भाषा भी बहुत कुछ वे अपने साथ ही लाए थे और उसे अपनाये भी रखा; फिर भी यहाँके लोगोंने उसे अपनी भाषामें भी अभिव्यक्ति दी। शेख फरीद (सं. १२३०–१३२२) प्रसिद्ध सूफी हुए हैं। उन्हींकी कुछ रचनाओंको गुरु नानकने उनकी परम्परामें ११ वें शिष्य शेख इब्राहीमसे प्राप्तकर अपनी वाणीके साथ ही संग्रहीत किया था, जिन्हें आगे चलकर 'गुरु ग्रन्थ' मे स्थान मिला। इन्होंने सीमित मानव-जीवनमें युवावस्थामें ही विषयोंका त्यागकर 'नाम' कमानेका उपदेश दिया है। इनमें उपदेशका स्वर प्रधान होते हुए भी लौकिक-व्यावहारिक उद्धरणों व उदाहरणोंने उसे शुष्क और बोझिल नहीं होने दिया। भाषामें प्रयुक्त फारसी शब्द भावानुकूल होनेके कारण प्रायः खटकते नहीं। पञ्जाबीके प्रारम्भिक तत्व इनकी भाषामें मिलनेके कारण इन्हें 'Father of Modern Punjabi' (आधुनि कपञ्जाबी का जनक) कहा गया है। यद्यपि बुल्लेशाह (१८ वीं शताब्दी) का अधिक साहित्य पञ्जाबीमें प्राप्त है, तो भी उनकी कुछ रचनाओंमें हिन्दीके भी दर्शन होते हैं। इनके 'दोहरे', 'काफी','बारह मासा' आदि रचनाओंका एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। इनके अतिरिक्त सूफी होते हुए भी अलखदास (१६ वीं शताब्दी) के दोहोंमें कबीरका प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। शाह हुसैन (१६ वीं शताब्दी) सूफी सिद्धान्तोंके सूक्ष्म विश्लेषक विरह काव्यके स्रष्टा माने गए है। उनकी भाषामें उर्दू शब्दोंका पर्याप्त प्रयोग मिलता है। जालन्धरके मीरा शाहके काव्य को देखकर तो उनके साकारोपासक होनेका भ्रम हो जाता है। सभाचन्द सौंधीके काव्यमें भी खड़ी बोलीके दर्शन होते है।

सूफी प्रेम-काव्य मुस्लिम और हिन्दू-संस्कृतिकी साहित्यिक सम्मिलन भूमि है। पञ्जाब इस सम्मिलन को प्रस्तुत करनेमें अग्रणी रहा है—चाहे वह राजनैतिक,सामाजिक,धार्मिक व साहित्यिक किसी भी क्षेत्रमें क्यों न हो। यह पञ्जाबकी भौगोलिक स्थिति की देन है। अभारतीय तत्त्वोंके भारतमें प्रवेशका द्वार तथा स्थितिका स्थान वह बना रहा है, अतः उसके लिए यह आवश्यक भी था। पञ्जाबके प्रधानतः मुस्लिम तथा कुछ हिन्दू साहित्यकारोंने इस प्रकार के साहित्यिका निर्माणकर मानवीय भावनाओंके स्तर पर ऐक्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। सच्चे प्रेमका महत्व, विरह की तड़पन, मिलनके लिए आकुलता तथा त्यागकी भावना सर्वत्र प्राप्य है। काव्यमें ऐसी ही भावनाओंकी अभिव्यक्ति में मार्मिक स्थलोंकी योजना होती है। सूफी सिद्धान्तों

और मसनवी शैलीका चाहे पूर्णतया पालन न भी हुआ हो, पर सब मिलाकर इस प्रकार की प्रेम-कथाओंने हिन्दी साहित्यमें सरस काव्य का सृजन कर उसे अधिक लौकिक धरातलपर ला बिठाया। 'हीर-रांझा', 'सोहनी-महीवाल' तथा 'ससी-पुन्नू' से सम्बन्धित प्रेम-कथाएँ सम्पूर्ण पञ्जाबी साहित्यमें बिखरी पड़ी हैं। 'लैला-मजनू' तथा 'शीरी-फरहाद' मे ये और अधिक स्वाभाविक व सरस बन गई हैं, यह सूफी-परम्परा की ही देन है।

कृष्ण-काव्य

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयको जीवन्त रससे सञ्चारित करनेवाले गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हैं। मानव-जीवनकी सभी अवस्थाओंका सरस एवं मनोहर चित्रण करनेके लिए शायद कृष्णसे उपयुक्त पात्र न कवियोंको मिला और न ही रसिक पाठकोंको। कृष्णकी बाल-लीलाओं और युवा-क्रीडाओंका सरस एव मोहक चित्रण कर सूरने उत्तरी भारतको रसाप्लावित कर दिया था। परवर्त्ती कवि और सहृदय पाठक भी इससे दूर न जा सके, यह उनके व्यापक प्रभावका द्योतक है। पञ्जाबमें इस परम्पराके उन्नायक बल्लू आणा (भटिंडा) के हरिया जी (१७ वी शताब्दी) को कहा जा सकता है। उनके बाल-लीला और भँवरगीतको देखनेसे ज्ञात होता है कि न केवल विषय, अपितु सूर और अष्टछापकी गीत-शैलीका भी उन्होंने अनुकरण किया है। इनके कुछ पद निर्गुण सम्बन्धी भी मिलते हैं, तो भी उसपर सगुणका महत्व स्थापित करते हुए इन्होंने पुष्टि मार्गीय परम्पराको ही पुष्ट किया है। गोपी-विरहमें बाँसुरी और कुब्जा-सभीका सजीव चित्रण हुआ है। ब्रजका 'माखन-चोर' दूध, दहीसे अधिक यहाँ 'सागु', 'सत्तू' तथा खिचड़ी खाना पसन्द करता है। यह प्रान्तीय वातावरण उपस्थित करना उनकी मौलिकता है। उनकी राधाकी तल्लीनता की हद है, कृष्णसे आत्मीयता बढ़ाते-बढ़ाते वह स्वतः ही कृष्ण हो गई—'कान्ह चवन्ती कान्हो होई।'

जहाँ केवल कृष्ण-कथाका वर्णन उन्होंने ब्रज भाषामें सूरकी पद शैलीमें किया है, वहाँ राम-कथाको पञ्जाबी वार-शैलीमें लिखा है। राम और श्याम में उन्होंने कोई भेद नहीं देखा। सभी पौराणिक परम्पराओं व मान्यताओंके दर्शन हमें उनके काव्यमें होते हैं। गुरु गोविन्दसिंहके २४९२ छन्दोके 'कृष्णावतार' में भारतीय परम्पराके आलोकमें कृष्णके अन्य रूपोके साथ-साथ योद्धारूप का विशेष वर्णन मिलता है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इतिहासकार खुशहाल चन्द (राय) (१८ वी शताब्दी) के 'बिन्द्रावनकी कुञ्ज गलिनमें' आए हुए कृष्णके साथ गोपियोके होली खेलनेका वर्णन तथा कुछ अन्य पद भी ब्रजभाषा में मिलते हैं। पटियालाके 'महाराजा अमरसिंह की वार' के प्रसिद्ध लेखक राजकवि केशवदास (१९ वीं शताब्दी) ने 'बारहमासा कृष्णजी का' लिखकर बदलते हुए वातावरणमें सरस ब्रजभाषामें कृष्णके मधुर व सजीव चित्र अंकित किए हैं। जातिराम (१९ वीं शताब्दी) ने 'सुदामा मंगल', 'रुक्मिणी मंगल' तथा 'गौरा मंगल' लिखकर अपना कृष्ण-प्रेम जतलाया है। अमीरदास (१९ वी शताब्दी) के 'श्रीकृष्ण साहित्य सिन्धु' में कृष्ण सम्बन्धी भक्ति तथा प्रेमके पद मिलते हैं, जो इनकी प्रौढ़ काव्य-रचनाके परिचायक हैं। लगभग १५, १६ ग्रन्थोंके रचयिता उमादास (१९ शताब्दीका अन्त) ने 'सुदामा-चरित' मे सुदामाके चरित्रको तथा 'संयोगी बारह माह' में राधा और कृष्णके वियोग तथा मिलनके चित्र अंकित किए हैं। कृष्ण-भक्ति गुलाबके 'रुक्मिणी मंगल' में कृष्ण और रुक्मिणीके संयोगकी सरस कथा है। नथमल (२० वीं शताब्दी) ने 'बारह मासा' में राधा-कृष्णके प्रेम और विरहके चित्र अंकित किए हैं।

पञ्जाबका हिन्दीका कृष्ण-काव्य प्रायः अप्रकाशित रहा है, अतः उसका उचित मूल्यांकन तो दूरकी बात है, परिचय-मात्र भी हिन्दी जगतसे न हो सका। यह अभी शोधका विषय है।

भारतीय परम्पराओं तथा कृष्ण-काव्यकी विशेषताओंको यहाँके कवियोंने भी सफलतापूर्वक अपनाया, लेकिन प्रान्तीय वातावरणका निर्माण कर लौकिक नायक श्रीकृष्णको अश्लील श्रृंगारके पंकसे बचाकर तथा वही वीर रसका आश्रय प्रदान कर उनके नायकत्वको सार्थक किया है। इस प्रकार जहाँ भगवानको 'श्रेष्ठ मानव' के स्तरसे गिरनेसे बचाये रखा, वहाँ पञ्जाबके राज-दरबारोंमें भी ब्रजभाषाको काव्यका माध्यम बनाए रखनेमे सहयोग दिया।

राम-काव्य

तुलसीने निर्गुण रामको 'मानस' के माध्यम से जब मानवीय जीवनकी अभिव्यक्ति दी, तब हिन्दी काव्य गौरवान्वित हो तथा उत्तरभारतीय जन-मन रामचरितमें अनुरक्त उठा। पञ्जाबके हृदयराम (सं. १६८०) ने 'हनुमन्नाटक' लिखकर अपने सरस कवि हृदयका परिचय दिया है। संस्कृत नाटक उसका आधार होते हुए भी प्रतिपादनकी दृष्टिसे यह मौलिक ही है। यह प्रबन्ध काव्यके अधिक निकट है। वातावरणका निर्माण करनेमें कविने प्रकृतिका प्रयोग कुशलता-पूर्वक किया है। मार्मिक स्थलोंकी पहचान करने में भी कवि चूका नहीं। वनगमन, विरह वर्णन आदिमे उन्माद, प्रलाप आदि सभी दशाओंका उसने विस्तार-पूर्वक चित्रण किया है :—

जानकी न पाई रोइ उठे रघुराई ॥५॥६॥

कहकर मानो उसने रोते रामको ही प्रस्तुत कर दिया है। रामचन्द्र शुक्लजीने भी इसकी कविताको बड़ी सुन्दर और परिमार्जित स्वीकार किया है तथा इस कृतिको उस कालका इस प्रकारका सबसे प्रसिद्ध नाटक स्वीकार किया है। हिन्दीमें इसके अनुकरणपर कई नाटक लिखे गए। विषयवस्तु, भाषा और छन्दकी दृष्टिसे यह न केवल 'दशम ग्रन्थ'; अपितु परवर्ती सगुण भक्ति परक प्रबन्ध-काव्यका आलोक-स्तम्भ सिद्ध हुआ। इसीलिए पञ्जाबमें राम-कथा ब्रजभाषामे कवित्त-सवैयोंमें प्राप्त है।

तुलसीके उद्देश्य स्वान्तःसुखायका अनुसरण कर सोढी मिहरबान (१७ वीं शताब्दी) ने 'आदि रामायण' की रचना कुछ पद्य और अधिक गद्यमें की। ब्रजमें अबाध प्रवाह ही इसकी विशेषता है। 'कथा श्री रामचन्द्रजीकी', 'आदि महाभारत' आदि अन्य ५, ६ कृतियाँ भी प्रसिद्ध है। निर्मल साधु गुलाबसिंह (१९ वीं शताब्दी) की 'अध्यातम रामायण' के बहुतसे अंशको संस्कृतका भावानुवाद तथा कुछ अंशको मौलिक भी कहा जा सकता है। 'राम नाम प्रताप प्रकाश' के दोहोंमें अन्यान्य ग्रन्थोंमें वर्णित रामके भिन्न-भिन्न रूपोंपर प्रकाश डाला है। सिक्ख धर्मको भारतीय वैदान्तिक दार्शनिक आधार देनेका श्रेय इन निर्मल साधुओंको ही है। भाव रसामृत तथा 'मोक्षपथ' पथमें इनका महत्व बनाये रखनेवाली अन्य कृतियाँ है। सन्तोख सिंह (१९ शताब्दी) ने भी 'रामायण' की रचनाकर रामकाव्य परम्पराको आगे बढ़ाया। यद्यपि इनका महत्व 'श्री गुरु प्रताप सूर्य' के कारण है, जिसे सिक्ख गुरुओंका इतिहास कहा जा सकता है। जपुजीकी गर्व गजनी टीका भी इनकी प्रसिद्ध रचना है। इनमें उच्च कोटिका कवित्व दृष्टिगोचर होता है। पञ्जाबके प्रमुख राजदरबारोंमें रहने वाले राजकवियोंने रामचरित का गानकर प्रचलित प्रथाका पालन किया है। बुद्ध

सिंह (अद्‌भुत नाटक रामायण), लालसिंह (फूल माला रामायण) वीर सिंह (सुधा सिन्धु रामायण), कृष्ण लाल, (रामचरित रामायण) निहाल (रामायण चन्द्रोदय), गोविन्द दास (श्रीराम गीता तथा राम स्तोत्र)–ये सभी लगभग १९ वीं शताब्दीके अन्त तक हुए। कीर्ति सिंह (बींसवी शताब्दीके प्रारम्भमे) की 'सतसैय्या रामायण' सात सौ दोहोंमें लिखी होनेके कारण सतसई परम्पराका निर्वाह करती है तथा 'अनूप रामायण' भी इस विषयसे सम्बन्धित दूसरी कृति है। गुरदाससिंहका 'बारह माह श्रीरामचन्द्रिका' एक सामान्य-सी कृति है। कवि राम रचित 'राम गीते' नाटक पद्यमें लिखा गया है, जिसकी अपूर्ण प्रति मिलती है। कवि रामदासकी 'सार-रामायण' भी उल्लेखनीय है।

पञ्जाबमें प्रभावशाली निर्गुण मतके साथ-साथ सगुण भक्ति परक रामकाव्यकी अखण्ड परम्पराको बनाये रखना ही इस काव्यकी सबसे बड़ी देन है। भारतीय पौराणिक आख्याओंके माध्यमसे जीवनकी विषम परिस्थितियोंमें भी क्रियात्मक समाधान प्रस्तुत कर, जन साधारणको आदर्शमय एवं मर्यादापूर्ण जीवनका महत्व बताया तथा राजदरबारोंके विलासी वातावरणको भी साहित्यिक अश्लीलतासे बचाए रखनेमें सहयोग दिया। बीसवीं शताब्दी तक ब्रजभाषाको ही राजदरबारोंके भी साहित्यका माध्यम बनाये रखनेमें सहायता दी तथा प्राचीन परम्परा एवं शैलियोंको भी जीवित रखा।

जैन साहित्य

वीर प्रसू पञ्जाबमें शान्त रस प्रधान जैन साहित्यकी भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। लाहौरमें कवि कृष्ण दास (सं.१६५१)ने 'दुर्जन सप्त वाबनी', 'आध्यात्म वाबनी' तथा 'दानादिरास'की रचना की। अन्तिम कृतिमें दान, शील, तप तथा भाव–इन चार गुणोंका परस्पर सम्वाद मिलता है। अम्बाला के भगवती दास (संवत १७००) ने २३ ग्रन्थोंकी रचना की जिनमें से 'आदित्य व्रत रास' आदि दस रास ग्रन्थ हैं। सीताके सतीत्वका सरस चित्रण भी इन्होंने 'सीता सतु' में किया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित काव्य, 'गोरा बादल की बात' के लेखक नाहर जटमल (सं. १६८०) लाहौर के निवासी थे। उसकी अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं। उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर इसके मूल रूपको पद्यमें ही स्वीकार किया जा सकता है। उनकी 'लाहौर गज़ल' में नगरका सजीव वर्णन है। शैली, छन्द व भाषा-सभी दृष्टियोंसे अनेक नगरोंका वर्णन परवर्ती जैन कवियोंने भी किया है। उनकी वाबनी पर पञ्जाबीका प्रभाव स्पष्ट है। 'प्रेम विलास चौपाई' उनका प्रेमकाव्य है। उनकी कुछ अन्य रचनाएँ भी प्राप्त हैं। 'तिलोक दर्पण' के रचयिता लाहौर निवासी खड़्ग सेन (संवत् १७१३) थे। शास्त्र-स्वाध्यायके लिए लिखे गए इन ग्रन्थोंमें वंश-परम्पराओं का विस्तृत परिचय भी मिलता है। फगवाड़ा निवासी मेघ कवि (संवत् १८१७) ने 'मेघमाला', 'मेघ विनोद' तथा 'गोपीचन्द' कथाकी रचना की। उनका 'मेघ विनोद' वैद्यकका बहुत उपयोगी ग्रन्थ सिद्ध हुआ। छन्द व काव्य शास्त्रके मर्मज्ञ कसूर निवासी हरजस राय (सं १८६४) ने 'साधु गुण रत्न माला' में 'देवार्चना' तथा 'देवाधिदेव' की रचना कर अपने सरस कवित्वका परिचय दिया। मुनि 'आत्माराम' (सं. १८९४) ने 'नरतत्व प्रकरण,' 'जैनतत्व दर्शन' आदि रचनाओं द्वारा काव्यत्वसे अधिक अपने ज्ञानका प्रसार किया। पूर्णतः धार्मिक काव्य होनेके कारण जैन-काव्य शान्त रस प्रधान तथा आध्यात्मिक प्रेरणाका स्रोत है। यह काव्य पद्यके साथ-साथ गद्यके विकासमें भी सहायक है। विविध विषयोंके ज्ञानके प्रसारक ग्रन्थोंकी रचना इस साहित्यकी महत्ता है।

वीर-काव्य

गुरुओंके सन्त काव्यने वीर पञ्जाबीको शान्त रससे इतना प्रभावित किया कि उनका वीरत्व काव्यमें इतना प्रस्फुटित नहीं हुआ, जितना राजनैतिक जीवनमें। हिन्दी वीर काव्यके उज्वल आलोक स्तम्भ चन्द (बरदाई) पञ्जाबके ही रत्न थे, जिनका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। रत्नसेन और अलाउद्दीनके युद्धके वर्णनमें गोरा-बादलकी वीरता और विजयका सजीव चित्रण जिस ओजपूर्ण शैलीमें हुआ है, उसने उसे 'गोरा-बादलकी कथा' नामक लोक-काव्यके रूपमें प्रचलित कर दिया। यह नाहर जटमलकी लगभग १५० पद्योंकी रचना है। पद्मावतीकी प्राप्ति तथा चित्तौड़की चढ़ाई इसके मुख्य स्थल हैं। गुरु गोविन्द सिंह (सं. १७२१) की 'अपनी कथा' हिन्दी का प्रथम आत्मचरित है। संघर्षमय जीवनकी ऐतिहासिक घटनाओंके भावमय चित्र प्रस्तुत कर गुरुने अपने काव्यत्वका परिचय दिया है। कृष्णावतारके युद्ध-प्रबन्धमें भी कृष्णके योद्धा रूपका ही विशद चित्रण हुआ है, जो वीर गुरुको वीर रसका सफल कवि सिद्ध करता है। 'चण्डी चरित्र' का भी मुख्य उद्देश्य युद्ध वर्णन ही है। इसमें पद्धटिका शैलीका आश्रय लिया गया है। दशम गुरुके दरबारके प्रसिद्ध ५२ कवियोंमें से बहुतोंने वीरतापूर्ण युद्धोंका वर्णन कर वीर काव्यका सृजन किया, जिनमें से लगभग २० कवियोंकी रचनाएँ देखनेको मिलती हैं। सेनापति, (सं. १७५८) ने अपने प्रबन्ध काव्य 'गुरु शोभा' में जहाँ ऐतिहासिक युद्धोके वर्णनमें उनके युद्धवीर रूपको उभारा है, वहाँ उनके दानवीर होनेका भी बड़ा सजीव वर्णन किया है। उन्होंने खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा का आश्रय लिया है। अप्पिरायने अपने 'जंगनामा' में औरंगजेबके सेनानी अजीमखाँपर गुरु गोविंद सिंहकी विजयका वर्णन किया है। इनके काव्यमे युद्धका चित्रण ही प्रधान है। इसी से वह अधिक सजीव भी बन सका है। इसमें उर्दूके कुछ शब्दोंका प्रयोग मिलता है। केशवदास (सं. १७७०) की 'अमरसिंहकी वार' इस दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। पटियाला नरेश अमरसिंहने लोक-कल्याणके लिए युद्ध किया; इसलिए उसे 'दनुज-दल-दलन' कहा है और युद्ध-वर्णनमें उनकी वीरताका परिचय दिया गया है। गुरु गोविद सिंहके सहयोगी योद्धा हीर कविने भी ओजपूर्ण भाषामें कुछ युद्धोके चित्र खीचे है। इनके कुछ पदोंकी तुलना महाकवि 'भूषण' से की जासकती है।

पञ्जाबका वीर-काव्य शृंगाराधारित न होकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का उन्नायक है। धर्मकी रक्षाके लिए जीवनकी बलि देनेवालोंकी कहानी है। राजाओंकी वीरताका अनावश्यक, अनैतिहासिक एवं उपहासास्पद वर्णन इसमें प्रायः नहीं मिलता। राज-दरबारोंमें शृंगारके स्थान पर वीर-परम्पराको विकसित कर प्रान्तीय वीरताकी भावनाका काव्य में उचित रूपसे प्रस्फुटन किया गया है। वीर रसके उपयुक्त ओजपूर्ण भाषाका माध्यम बनाकर मधुर ब्रजभाषाकी सामर्थ्यको भी बढ़ाया है।

चरित काव्य

राम और कृष्णके अतिरिक्त सिख गुरुओंके भी चरित्र सम्बन्धी काव्योंका यहाँ प्रणयन हुआ है। 'ग्रन्थ' के लिपिकार भाई गुरुदासने लगभग ६०० कवित्तोंमें गुरु-महिमाका भावपूर्ण गान किया है। वीर-काव्यके गायक सेनापति आदिका ऊपर उल्लेख हो ही चुका है। उनके अतिरिक्त स्वरूपचन्द भल्ला (सं. १८३३) ने 'महिमा प्रकाश' लिखकर दसों गुरुओंके जीवन-चरित्रपर प्रकाश डालनेका

प्रयत्न किया है। यह ऐतिहासिक नहीं है। और अधिकांश प्रायः सरल पद्यमें है, परन्तु इसका कुछ भाग गद्यमें भी है। यह साधारण काव्य खड़ी बोलीमें है, यही इसकी विशेषता है। सन्तदास छिब्बर (सं. १८३४) ने 'जन्म साखी नानक शाहकी' में महामानव गुरु नानकके जीवनपर सर्व प्रथम सफलता पूर्वकप्रकाश डाला है। असुरों (मुसलमानों) का विरोध करनेके लिए देव (गुरुनानक) आए थे। पौराणिक मान्यताओंके साथ-साथ उन्होंने अवतारवादका समर्थन किया है। भूदन (मालेरकोटला) के प्रसिद्ध सन्त रेणका विशालकाय 'श्री गुरु नानक विजय' (सं. १८६०) उनकी अद्भुत रचना शक्तिका परिचायक है। २० खण्डोके ३२८ अध्यायों में ३६२० पृष्ठोंमें गुरु नानक के जीवनका विशद ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। इसे 'सिक्खों का पुराण' भी कहते हैं। इनकी अन्य चार कृतियोंमेंसे एक 'गुरु नानक बोध' भी है। सन्तमतके प्रसारक ये उदासी साधु थे। अत्याचारी मुसलमानोके विरोधी थे :—

करी मसीता आपनी देव सथान गिराइ।
दूध पीयै जिन गऊ का तिन ही को फिर खाइ।२।४।२४।१२१।।

यह कहकर उन्हें समझानेका भी प्रयत्न किया है। इनके काव्यका प्रधान रस शान्त रस है। पञ्जाबीका भी पर्याप्त प्रभाव इनकी रचनाओंमें देखनेको मिलता है। केशवगढ़के ग्रन्थी सुक्खासिंहका 'गुरविलास' गुरु गोविन्दसिंहका धीरोदात्त नायकके रूपमें सर्वांगीण चित्रण प्रस्तुत करता है। यह ऐतिहासिक होते हुए भी चमत्कारोंसे बच न सका तथा पौराणिक प्रभावने इस काव्यमें अवतारवादकी प्रतिष्ठा की है। गुरुओके अतिरिक्त सहजराम (सं. १८३८) ने 'परिचया भाई सेवारामजी' लिख कर सेवा पन्थी सन्तका महत्वपूर्ण नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। शिष्यकी ओर पाठकका ध्यान दिलाया है। भाई मनीसिंहके नामपर प्रचलित दो 'गुरु विलास' छठे तथा दसवें गुरुकी जीवन-कथा पर प्रकाश डालते हैं।

ऐतिहासिक तथ्योंकी, आदर्श गुरुकी, प्रबन्ध काव्यकी तथा ब्रज भाषाकी रक्षाका श्रेय इन काव्योंको दिया जा सकता है। इस प्रकार सिख-धर्मके उच्च आचरणको बनाए रखनेमें भी इनका सहयोग है।

प्रेम-काव्य

पञ्जाबकी प्रसिद्ध लोक-कथाएँ, कुछ फारसीसे आई हुई प्रेम-कथाएँ तथा अन्य पौराणिक गाथाएँ ही पञ्जाबकी प्रेम कथाओंका प्रेरणा-स्रोत हैं। लोक-भाषामें यह 'किस्सा काव्य' नामसे प्रसिद्ध हैं तथा परवर्ती पञ्जाबी साहित्यमें यह परम्परा पर्याप्त विकसित हुई। भाई गुरदास के ५०, ६० माधुर्य भक्तिके कवित्त तथा नायिक भेद आदिके प्राप्त श्रृंगारिक चित्रणोंका पहले उल्लेख हो ही चुका है। गुरु गोविन्द सिंहके चरित्रोपाख्यानमें ४०५ उपाख्यान प्राप्त हैं, जिनका केन्द्र नारी है। 'हीर-रांझा' (चरित्र ९८), 'सोहनी-महीवाल', 'ससी-पुन्नू', 'रत्नसेन-पद्मावती', 'कृष्ण-राधिका' तथा 'नल-दमयन्ती' आदि १२ प्रेम-कथाओंमें रूप और प्रेमका व्यापक चित्रण देखनेको मिलता है। इसमें नारी-पात्रोंका प्रायः गौरवमय चित्रण हुआ है। कैकेयीका रथ सञ्चालन व तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओंसे सम्बद्ध स्त्रियोके शौर्यकी भी अनेक कथाएँ मिलती हैं। इनके अतिरिक्त रूपसी पत्नियों व अभिसारिकाओंके प्रसाधनके लिए श्रृंगारकी सब सामग्री प्रस्तुत की है। इस प्रकार रीति कालीन विलासपूर्ण दूषित समाज व राजदरबारोंके कामोद्दीपक चित्र अंकित कर समाजको अधिक नैतिक होनेका सन्देश दिया है। यद्यपि उनमें उपदेशात्मकता कम और

कथा कहनेकी प्रवृत्ति अधिक है, तो भी शौर्य, एकनिष्ठा आदि सद्‌गुणोंके साथ-साथ चरित्र पर विशेष बल दिया है। वस्तुतः पञ्जाबके हिन्दी प्रेम-काव्यको अश्लीलतासे बचाकरमर्यादित प्रेमसे परिपुष्ट करने वाले गुरु ही परवर्ती प्रेम-काव्यके पथ-प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

औरंगजेबके मुन्शी गुरदास गुणी (सं. १७६०) ने गणेश-वन्दना से प्रारम्भ कर 'कथा हीर रांझेकी' ब्रजभाषामें लिखी है। रांझेका सौन्दर्य कामदेवसे कम थोड़े ही है, 'मानो मन्मथ आनि उतरयो' और नयनोंके बाणोंसे घायल करनेके चित्र भी देखनेको मिलते हैं :—

नैनि सैनि के हम तोहि मारें
घायल होंहि है हम सारें॥ (पृ. २३७)

इस प्रकार लौकिक श्रृंगारका बहुत सरस और सजीव चित्रण हुआ है। प्रचलित हीर-रांझेकी प्रेम-कथाके वर्णन मे कुछ सूफी मान्यताओंका भी पालन हुआ है। कथा सुखान्त है। राजाराम दुग्गल (१८ वीं शताब्दी) ने 'सूर-रंझवत' की प्रेम-कथाका गान किया है। श्रृंगारके आधार–रूप तथा शौर्यका अच्छा वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रति-विहारके उपयुक्त वातावरणका भी निर्माण हुआ है। प्रसिद्ध 'प्रेमकी पीर' का गायन भी यहाँ मिलता है। इसकी ब्रजभाषामें खड़ी बोलीके भी दर्शन होते है। पटियाला दरबार के कवियोंमें भी केशवदाससे ही श्रृंगारी कवित्त-सवैयोंका प्रचलन हो गया था और वह परम्परा बराबर बनी रही। धीरे-धीरे इनपर रीति कालीन प्रभाव भी परिलक्षित होता है। चन्द्रशेखरने तो नरेश-रक्षिताओंका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्रचलित रीतिकालीन रीतिबद्धता तथा अश्लीलतासे यह काव्य प्रायः अछूता रहा तथा स्वस्थ प्रेमका गायक सिद्ध हुआ। कथा-काव्य और प्रबन्ध-परम्पराके विकासमें सहयोगी रहा।

रीति-काव्य

हिन्दीमें रीतिबद्ध काव्यकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि शुक्लजी-जैसे महान् साहित्यके इतिहासकार ने इस परम्पराके आधारपर इस साहित्यिक युग (सं. १७००–१९००) का नामकरण ही 'रीतिकाल' किया था। लेकिन पञ्जाबके कवि इस आचार्यत्वके चक्करसे प्रायः बचे रहे। गुरु गोविन्द सिंहकी काव्य शक्ति अपार थी। सभी प्रचलित विषयों, काव्य-पद्धतियों एवं शैलियोंका आश्रय लेकर उन्होंने पर्याप्त काव्य की रचना की। 'चण्डि चरित्र उक्ति विलास' उनकी अलंकार प्रधान रचना है, जिसके २३३ छन्दोंमें लगभग १८० अलंकारोंका प्रयोग हुआ है।

जयकिशन (१८ वी शताब्दी) की 'रूपदीप' मंगल भाषा तथा निरञ्जनी साधु हरिरामदासकी 'छन्द रत्नावलीसे उनके छन्दशास्त्रके पाण्डित्यका बोध होता है। कवि हरनामका 'साहित्य बोध' उसके आश्रयदाता कपूरथलाके राजा निहालसिंहके नामसे प्रचलित है। यह एक सुन्दर लाक्षणिक ग्रन्थ है, इसमें न केवल नायक-नायिका भेदका विस्तार से वर्णन है, अपितु रस और अलंकारोंपर भी कविने प्रकाश डाला है। टहल सिंह (१८ वीं शताब्दी) ने 'अलंकार सागर सुधा' में अलंकारोंका विशद विवेचन तथा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। 'सुमेरु भूषण' में बाबा सुमेर सिंहने भी अलंकारोंपर प्रकाश डाला है। नाभानरेशके कवि नवीन (सं. १८९९) ने "रस तरंग' में विभाव, अनुभाव, सञ्चारी तथा रसका अच्छा वर्णन किया है। परम्पराके

अनुसार प्रधानतया शृंगार तथा वीर रसका ही वर्णन हुआ है। उदाहरणोंमें अच्छे, काव्यत्वके दर्शन होते है। केशवदासका 'अष्ट नायिका', नायिका-भेदका अच्छा ग्रन्थ है। अमृतरायका चित्र विलास भी लक्षण ग्रन्थके रूपमें प्रसिद्ध है। वीरकवि के 'रस-प्रबोध' नामक लक्षण-ग्रन्थमें प्राचीन परम्पराका अनुसरण करते हुए हाव भाव तथा नायक-नायिका के भेद तथा लक्षण दिए हैं। कवि ब्रह्मके लक्षण ग्रन्थ 'रस नायिका' की कविता स्पष्ट और सरस भी है। हिन्दीके अन्य उत्कृष्ट रीतिकाव्य कारोंसे इसकी तुलना की जा सकती है। मथुरा के ग्वाल कविने बहुत दिनों पञ्जाबके राज-दरबारोंमें रहकर कविता की। 'कृष्णजू को नख-शिख', 'दूषण-दर्पण', 'रस रंग' आदि इनके रीति ग्रन्थ हैं। ये कुशल कवि थे तथा इनकी कविताओंमें रीतिकालीन प्रभाव देखनेको मिलता है। मौजाबादके चन्द्रशेखर बाजपेयी भी प्रौढ़ावस्थामें कुछ समयके लिए पटियालाके राज-दरबारमें रहे थे। रीति परम्परामें 'नख-शिख' तथा 'रसिक विनोद' इनकी कृतियाँ है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य विभिन्न विषयोंपर भी लिखकर उन्होंने अपने पाण्डित्यका परिचय दिया है। पञ्जाबके कवियोंमें इस रीति पद्धतिका विशेष प्रचलन न हो सका। आचार्यत्वके अभावमें उनका इस प्रकारका काव्य गौरवपूर्ण नहीं, तो भी प्रचलित परम्पराका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है--यह काव्य इसीका प्रमाण है।

विविध साहित्य

रामप्रसाद निरञ्जनीके 'भाषा योग वासिष्ठ' को देखकर शुक्लजी इन्हें प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक माना है। इनकी शुद्ध भाषा व आधुनिक प्रतीत होनेवाली शैली देखते ही बनती है:—'इतना सुन अगस्त मुनि बोले कि हे ब्रह्मण्य! केवल कर्मसे मोक्ष नहीं मिलता और न केवल ज्ञानसे मोक्ष मिलता है, मोक्ष दोनोंसे प्राप्त होता है। कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरणकी शुद्धि बिना केवल ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती।' इनका महत्व इतनेसे ही स्पष्ट है।

'जो सुख बलख न बुखारे वह छज्जूके चौवारे।' के प्रसिद्ध लेखक छज्जू भगतने भी 'योग वसिष्ठ' को छन्दोंमें लिखा है। साधु ज्ञानदासने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकको भाषामें, छन्दोबद्ध किया तथा वेदान्त सम्बन्धी 'वाक्य-विलास', 'मोक्ष-पंथ प्रकाश' और 'वैराग्य शतक' पुस्तकें भी लिखीं; जो इनके गम्भीर ज्ञान और सफल अभिव्यक्ति की परिचायक हैं। पटियाला दरबारके आनन्दराम ने सरल व स्पष्ट भाषामें 'भगवद्गीता-भाषा' नाम से गीताका छन्दोबद्ध अनुवाद किया। अन्यान्य कृतियोंका सारांश लेकर प्रेम सिंहने 'बुद्धि वारिधि' नामक विशालकाय ग्रन्थ तैयार किया, जिसका गद्य महत्वपूर्ण है। 'गुरु-ग्रन्थ' के प्रसिद्ध कोषकार कान्ह सिंहने 'गुरु शब्द रत्नाकर' नामक लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठोंके कोषके अतिरिक्त गुरु-मत पर प्रकाश डालने वाली 'गुरुमत प्रभाकर', 'गुरुमत सुधाकर' तथा कुछ अन्य पुस्तकें भी लिखीं। इनकी ब्रजभाषा में "है" आदि खड़ी बोली के कुछ क्रिया-पद भी दृष्टिगोचर होते हैं। पण्डित तारासिंह ने भी 'गुरु गिरार्थ' 'कोष' तथा 'गुरुमत निर्णय सागर' आदि गुरुमत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंकी रचना की तथा कुछ टीकाएँ भी लिखी हैं। निर्मला-पन्थ सिख धर्मकी वेदान्तिक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओंका सिक्ख धर्म सौर साहित्यमें स्थान बनाने में उसका पर्याप्त सहयोग रहा है। 'आध्यात्म रामायण' के अतिरिक्त गुलाबसिंहकी 'भाव रसामृत', 'मोक्षपन्थ' आदि कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। संस्कृत का ज्ञान और उसीके कारण परिनिष्ठित ब्रजभाषाके भी उनमें दर्शन होते है। ज्ञान सिंहका 'श्री गुरु

पन्थ प्रकाश' पन्थ पर प्रकाश डालता है। सन्तोख सिंहके 'श्री गुरु प्रताप सूर्य' का सिख धर्म व साहित्यमें विशेष महत्व है। आदर्श व्यावहारिक जीवन व मान्यताएँ प्रस्तुत करने वाले इन आचार्योंने साहित्य और समाजको नैतिक धरातल से नीचे गिरनेसे बचाया तथा भाषाको ही साहित्यका माध्यम बनाये रखनेमें सहयोग भी दिया। यह सम्पूर्ण साहित्य पञ्जाबके साहित्यकारोंकी विविध रुचियों, उनकी अभिव्यक्तिकी अन्यान्य शैलियों तथा ब्रज भाषाके बदलते हुए रूपों आदि सभीका परिचायक है।

आधुनिक युग

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्रामने भारतका राजनैतिक मानचित्र ही बदल दिया। उसके परिणामस्वरूप यहाँके धार्मिक व सामाजिक जीवनमें विशेष परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गए। जीवनके मूल्य व मान्यताएँ बदलने लगीं। अँग्रेजी शासनने शिक्षित समाजके जीवनको अधिक प्रभावित किया और साहित्यकार इसी वर्गकी उपज होते हैं। अतः तत्कालीन भारतीय साहित्यपर इसका विशेष प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया—दोनों ही आवश्यक थे। पश्चिमके बुद्धिवादने विश्वके तथाकथित बौद्धिक-वैज्ञानिक युगमें बुद्धिजीवी मानवका महत्व बढ़ा दिया। विज्ञानकी विशेष प्रगति तथा बौद्धिकताके प्रसारने मानवको अधिक व्याख्या-परक तथा तर्कशील बना दिया है। जीवन रस अब मस्किष्क द्वारा उप-भोग्य हो गया। साहित्यकी अन्य विधाओंका तो कहना ही क्या, अब तो कविता भी न केवल छन्दोंका बन्धन छोड़कर, अपितु लय, ताल और सुरसे भी नाता तोड़कर बौद्धिक विलास मात्र रह गई है। जीवनके साथ-साथ साहित्यके मूल्य भी बदल गए और इसलिए विश्वके साहित्य की मान्यताओं व उपलब्धियोंमें आमूल परिवर्तन हो गया। विज्ञानने न केवल ज्ञान-विज्ञानका प्रसार किया, अपितु उसकी प्रगतिने यातायात की सुविधा, छापेखानेकी तत्परता तथा अब रेडियो और टेलिविजनके चमत्कार स्वरूप उपयुक्त साधन प्रस्तुत कर सम्पूर्ण विश्वके क्रिय—ाकलापोंको परस्पर इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध कर दिया कि देश-कालका व्यवधान तो मानो समाप्त ही हो गया। २० वीं शताब्दीमें जो साहित्य राज-दरबारोंकी वस्तु न रहकर सामाजिकोंसे सम्बद्ध होने लगा था, आज वह प्रान्तीय और राष्ट्रीय बन्धन समाप्तकर अन्तर्राष्ट्रीय या मानवतावादी हो रहा है, जिससे स्पष्ट है कि साहित्य का क्षेत्र अति विस्तृत हो गया है। 'साहित्यिक दृष्टिसे भौगोलिक सीमाओके टूट जानेसे मानव-जीवनकी गति भी अति तीव्र हो गई है। ज्ञानके प्रसार, विचारोंकी अभिव्यक्ति तथा समस्याओंके समाधानके लिए सामाजिकों को गद्यकी आवश्यकता अनुभव हुई। बौद्धिकों के तर्क तथा वैज्ञानिकोंकी व्याख्याके लिए भी गद्य ही अभिव्यक्ति को—–सरलता और स्पष्टताके माध्यमसे-सफल बना सकता था। अतः इसका अनायास ही महत्व बढ़ गया और यह गद्य-युग हो बन गया। तब गद्य के माध्यमसे ही नाटक, निबन्ध व लेख और धीरे-धीरे उपन्यास, कहानी तथा जीवनीने भी जन्म लिया। रचना-त्मक साहित्यके साथ-साथ आलोचना का भी साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश स्वाभाविक ही था। यह बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य की कहानी है।

उपन्यास

पञ्जाबमें आर्यसमाजकी प्रतिक्रियाएँ श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'सत्यामृत-प्रवाह' की रचना कर सनातन हिन्दू-धर्मकी मान्यताओंका महत्व बताया। 'भाग्यवती' (सं. १९३४) उनका सामाजिक

उपन्यास है। जिसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास भी माना जाता है, इस दृष्टिसे उनका विशेष महत्व है। मूलतः वह सनातन धर्मके प्रचारक व पुनरुद्धारक थे, लेकिन साहित्यिक दृष्टिसे भी उनकी कृतियाँ हिन्दीमें अपना स्थान रखती हैं। १४०० पृष्ठोंकी उनकी जीवनी प्रारम्भिक गद्यको विशिष्ट देन है। भारतेन्दुके समयमें वह भाषाके दूसरे प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी आध्यात्म सम्बन्धी अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध हैं, इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ़ तथा परिमार्जित है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' : प्रेमचन्द हिन्दीके मूर्धन्य उपन्यासकार हैं, तो कौशिक उनकी परम्पराको सफलतापूर्वक आगे बढ़ानेवाले सबसे सशक्त उपन्यासकार। 'माँ' और 'भिखारिनी' अपने दोनों उपन्यासोंमें वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़े हैं। वर्णन-शैली, कथोपकथन, सजीव पात्र-निर्माण, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा चलती भाषा-सभी दृष्टियोंसे वह प्रेमचन्दके अनुवर्ती हिन्दी उपन्यासकारोंमें सबसे अधिक उनके निकट है। उनकी कथाका विकास और पात्र बहुत स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक हैं। भावात्मक शैलीमें कथानक का विकास, उनकी हिन्दी साहित्यको देन है। कम समस्याओं व पात्रोंको लेकर उनकी गहराई में उतरना भी उनकी कलाकी विशेषता है। बंगलाकी रागात्मक प्रवृत्तिको अपनानेके कारण वर्णन-शैली तथा कला-कौशलकी दृष्टिसे वे प्रेमचन्द और प्रसादसे भी आगे बढ़े हैं। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी उपन्यासको मौलिक दृष्टिकोण एवं नवीनता प्रदान की।

यशपाल : क्रान्तिकारी यशपाल साम्यवादसे विशेष रूपसे प्रभावित रहे। उन्होंने समाजके उत्कृष्ट यथार्थवादी चित्रण उपस्थित किए हैं। राजनैतिक व सामाजिक विचारोंकी अभिव्यक्तिके साधन स्वरूप 'दादा कामरेड' लिखकर उन्होंने हिन्दी उपन्यासको नए क्षेत्रमें प्रविष्ट कराया। जहाँ राजनैतिक सिद्धान्त व मानवीय प्रेम, एक साथ ही विकसित होते हैं। प्रकृतिको वातावरणके माध्यमसे सजीव बना देनेमें तथा मानवीय भावनाओंके चित्रण में यशपाल कुशलहस्त हैं। 'देशद्रोही' इसका प्रमाण है। 'दिव्या' में उनकी सांस्कृतिक–ऐतिहासिक यथार्थ दृष्टि साकार हुई है। थोथे आदर्शसे उनका कोई समझौता नहीं। मानवीय गुण व दुर्बलताएँ देशकालातीत हैं। 'गोदान' के अन्तकी तरह 'दिव्या' का अन्त हिन्दी ही नहीं, विश्व-साहित्यमें अपना विशेष स्थान रखता है। तत्कालीन समाजका इतना कलात्मक चित्रण शायद ही कहीं हो? पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्थाके दूषित वातावरणसे उत्पन्न आधुनिक समस्याओंका नग्न चित्रण 'मनुष्यके रूप' में देखा जा सकता है। कलिंगपर आक्रमण और युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा करने वाले अशोकका ऐतिहासिक प्रसंग इनके 'अमिता' उपन्यासका आधार है। प्रेमचन्द केवल ग्रामीण वातावरण के चित्रणमें सिद्धहस्य हैं, पर यशपाल अपने अगाध ज्ञान और वर्णन-कौशलके सहारे जिस अशोक कालीन समाज को सजीव कर सके हैं, वह उनकी प्रतिभाका परिचायक है। 'झूठा सच' इनकी अन्य उत्कृष्ट कृति है, जिसमें इनकी उच्चकोटिकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने इसे हिन्दीका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना है। इनका अनुभव विशाल है। इनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही सूक्ष्म है। त्रिभुवन सिंहके कथनानुसार 'प्रेमचन्दके बाद यशपाल सही मानेमें जन साधारणके लिए हिन्दी कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं'। शान्तिप्रिय द्विवेदीने इन्हें 'प्रेमचन्दकी तिरोहित प्रतिभाकी तरुण शक्ति' कहा है, तो इनकी कृतियोंके कारण; 'अब हिन्दी कथा साहित्य देने लायक भी हो गया है,' यह कहकर मैथिलीशरण गुप्तने इनकी प्रतिभाका महत्व स्वीकार किया है। बहुत सी कहानियोंके अतिरिक्त निबन्धोंके भी सात संग्रह इनके बौद्धिक-

विचारक व्यक्तित्वके परिचायक हैं। समाजवादके प्रचारने यदि उन्हें बाँधा न होता, तो इनकी कला और निखर पाती, तब इनके साहित्यमें हमें और अधिक स्थायित्व मिलता।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : पश्चिमी शिक्षा और सभ्यतासे प्रभावित लाहौरमें युवक 'अश्क' के साहित्यकार ने विषम आर्थिक परिस्थितियोंमे पनपना आरम्भ किया। निम्न मध्य वर्गकी आशाओं-आकांक्षाओंका सरस व सजीव चित्रण उनके उपन्यासोंमे देखनेको मिलता है। 'सितारों के खेल' के बाद उनके दूसरे उपन्यास 'गिरती दिवारें' ने हिन्दी उपन्यास जगतमे इनका स्थान बनाया। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यताके अनमेलसे उत्पन्न विषम परिस्थितिमें विकसित होनेवाले युवक चेतन की जीवन दशाओंका यथार्थ चित्रण कर 'अश्क' ने अपनी उत्कृष्ट तूलिकाका परिचय दिया है। 'गर्म राख' में जन समाजके प्रतिनिधियोंको व्यापक जीवन-क्षेत्रसे लेकर चित्रित किया है। 'पत्थर अलपत्थर' में घोड़ेवाले हसनदीन की दर्द भरी जीवन -गाथा है। जो केवल टंगमर्गसे अलपत्थर जाने और वापिस पहुँचने में ही पूर्ण हो गई है। 'अश्क' में यथार्थ चित्रणों की अद्भुत क्षमता है, लेकिन प्रेमचन्दसे मित्र-शैली अपनाकर। यही उनकी मौलिक देन है। उर्दूसे आनेके कारण आपकी भाषामें प्रवाह स्वाभाविक ही है। भाषा सरस और प्रभावोत्पादक है।

गुरुदत्त : हिन्दुत्वकी रक्षाके प्रयत्नमें विज्ञानका प्राधापक हिन्दीका सफल उपन्यासकार बन जाएगा, इसकी किसी को सम्भावना भी न थी। 'स्वाधीनताके पथपर' के बाद 'पथिक', 'बहती रेखा', 'भावुकता का मूल्य' आदि १५, १६ उपन्यास इन्होंने लिखे हैं। हिन्दू राष्ट्रीयताके प्रबल समर्थक व प्रचारक लेखकका रूप उनकी कृतियोंमें दृष्टिगोचर होता है। सन् १९२० से लेकर आज तक के राजनैतिक भारतका चित्रण उन्होंने सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमिपर किया है। उनका सुसंगठित कथानक, स्वाभाविक व आकर्षक चरित्र-चित्रण, तर्कपूर्ण एवं पात्र---परिस्थितिके अनुकूल कथोपकथन, स्वाभाविक सजीव वातावरण तथा सरस प्रवाहमयी शैली, सब मिलकर अनायास ही पाठक को अपने साथ ले चलती है। कहीं-कहीं विचारधाराके प्रचार ने उन्हें उपदेष्टा मात्र ही बना दिया है। इतना होते हुए भी विषय और शैली, दोनों दृष्टियोंसे उनकी हिन्दी उपन्यासको विशेष देन है। भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमिमें राष्ट्रीय कांग्रेसकी असफलताओं का इससे अच्छा विवरण व चित्रण शायद ही कहीं और मिले !

कञ्चनलता सब्बरवाल : आपने भी 'मूक तपस्वी,' 'संकल्प' आदि उपन्यास लिख कर हिन्दी उपन्यास साहित्यको समृद्ध किया है। नायकके उच्च सात्विक प्रेमका दिग्दर्शन 'मूक तपस्वी' में करवा कर समाजके लिए उच्चादर्शकी स्थापना की है।

सत्यकाम विद्यालंकारका सामाजिक उपन्यास 'सीमा' अच्छा बन पड़ा है। 'मुक्ता' आदि कुछ अन्य उपन्यास भी उन्होंने लिखे है। रजनी पनिकरके 'ठोकर,' 'पानीकी दीवार', आदि कई उपन्यास नारी-हृदयका भावात्मक चित्रण प्रस्तुत कर देते हैं। 'युग सन्देश' तथा 'समस्या नारी' आदि कुछ उपन्यास लिखकर पृथ्वीनाथ शर्माने तथा 'कली मुसकराई', 'घरकी शान' आदि उपन्यास लिखकर इतिहासके प्राध्यापक सत्यप्रकाश संगरने भी हिन्दी-उपन्यासमें अपना स्थान बनाया। मोहन राकेश आदि नई पीढ़ीके लेखकों ने भी इस क्षेत्रमें सफलतापूर्वक पदार्पण किया है। पञ्जाबीके प्रसिद्ध लेखक करतारसिंह दुग्गल तथा कवयित्री अमृता प्रीतम ने भी हिन्दी-उपन्यास को समृद्ध करनेमें पर्याप्त सहयोग दिया है।
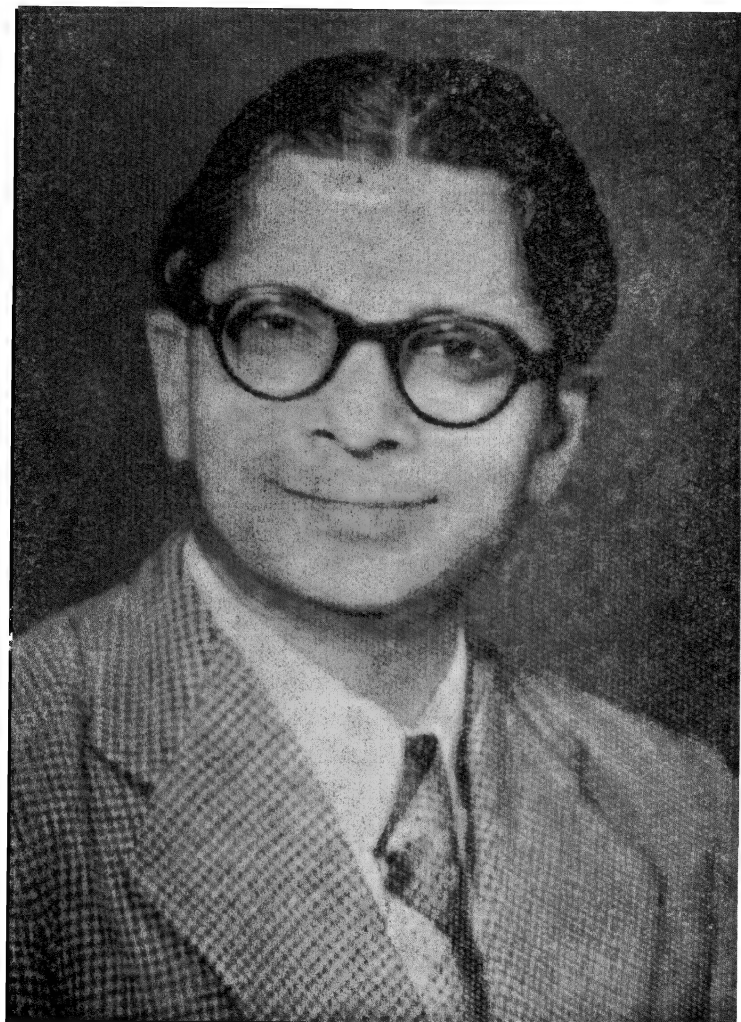
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

कहानी

हिन्दीके उत्कृष्ट कहानीकारोंमें चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने केवल तीन ही कहानियाँ लिखी हैं, जिनमेंसे 'उसने कहा था' ने उन्हें अमर कहानीकार बना दिया है। यथार्थका स्वाभाविक ढंगसे रुचिकर व प्रभावोत्पादक चित्रण, दैनिक सामान्य घटनाओंके माध्यम से सजीव पात्रोंकी अमिट छाप सहृदयोंपर छोड़ जाता है। यथार्थ जीवन और आदर्श प्रेमका मञ्जुल समन्वय उनकी कलाकी विशेषता है। देश-काल तथा पात्रके अनुकूल भाषा-शैलीका प्रयोग उनकी कहानी को नितान्त आत्मीय बना देता है। प्रेमचन्दकी परम्परामें कौशिकजीने भी कहानियाँ लिखीं। 'चित्र शाला' (दो भाग), 'कल्लोल', 'मणिमाला' आदि इनके कहानी संग्रह हैं। 'ताई' इनकी एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी है। स्वाभाविक जीवनका सजीव चित्रण इनकी सफलताका रहस्य है। इन्होंने प्रधानतः इतिवृत्तात्मक सामाजिक कहानियाँ ही लिखी हैं। अशिक्षित का हृदय, तथाकथित शिक्षित व सभ्यसे कहीं अधिक सुसंस्कृत होता है। शीर्षक की सार्थकता भी इसीमें है। मानव अन्तर्मन का स्वाभाविक उद्‌घाटन कर यथार्थ के माध्यम से आदर्शोन्मुख होना इनकी कलाकी विशेषता है। 'रक्षा-बन्धन' और 'विधवा' भी इनकी उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। प्रेमचन्दकी परम्पराको आगे बढ़ानेमें इनका सबसे अधिक योग रहा है। प्रेमचन्दकी तरह उर्दू से हिन्दीमें आने वाले सुदर्शन भी, हिन्दीके प्रसिद्ध कहानीकार है। 'सुदर्शन सुधा', 'नगीने', 'पनघट', 'फूलवती' आदि से भी अधिक इनके कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें 'फूलवती' (पृ. १०५), 'पत्थरोंका सौदागर' (पृ. १०२) आदिको तो लगभग उपन्यास ही कहा जा सकता है। 'हारकी जीत' में बाबा भारतीके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, हृदयग्राही चित्रण तथा सुधारवादी दृष्टिकोणके माध्यमसे जिस आदर्शको लेखकने प्रस्तुत किया है, वह पाठकके मर्मको छू लेता है। मानव हृदयको प्रभावित करनेवाली 'न्याय मन्त्री' तथा मानव भावनाओंके मूल्य व महत्व को साकार करनेवाली 'प्रेमतरु' इनकी अन्य उत्कृष्ट कहानियाँ है। प्रधानतः इनकी कहानियोंके विषय भी सामाजिक है, जिन्हें सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हुए, प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रस्तुत कर इन्होंने प्रेमचन्दकी परम्पराको प्राणवान बनाकर आगे बढ़ाया है। 'अश्क' को तो उर्दू से हिन्दीमें लानेका श्रेय प्रेमचन्द को ही प्राप्त है। उन्होंने न केवल उनकी उर्दू कहानियोंके हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित करवाए, अपितु इनके कहानी-संग्रहकी भूमिका लिखकर हिन्दीमें कहानी लिखनेकी ऐसी बलवती प्रेरणा दी, जो उनके परवर्ती कहानी-संग्रहों में साकार हुई। 'पिंजरा' और 'अंकुर' अश्ककी प्रारम्भिक कहानियोंमें प्रेमचन्द और सुदर्शनका आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत है। लेकिन धीरे-धीरे वे अधिक यथार्थवादी होते गए और उनके चित्रण भी अत्यधिक सजीव होने लगे। व्यक्तिके माध्यम से ही इन्होंने सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डाला है। प्रेम और उसके रूप इनके मुख्य विषय रहे हैं। बादकी कहानियोंमें ये प्रगतिशील कहे जा सकते है। आदर्शके कठघरेमें ये बन्द न रह सके। इनकी कुछ कहानियाँ एक-दो पृष्ठोंकी भी हैं। कुल मिलाकर इन्होंने पूर्ववर्ती हिन्दी कहानीकी विशेषताओंको अपनाया और परवर्त्ती हिन्दी कहानीको उसीके विकास में एक नई दिशा भी प्रदान कर रहे हैं। हास्य रसकी भी कुछ कहानियाँ इन्होंने लिखी हैं। '७० श्रेष्ठ कहानियाँ' इनका अच्छा कहानी-संग्रह है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार उत्कृष्ट भाव-प्रधान कहानी लेखक हैं। दैनिक जीवन गत सत्योंको जिस मार्मिक ढंगसे उन्होंने अभिव्यक्त किया है, उससे उनकी

कहानियाँ, रुचिकर एवं प्रभावोत्पादक बन गई हैं। 'चन्द्रकला', 'अमावस', 'भयका राज्य' आदि इनकी मौलिक कहानियोंके संग्रह हैं। हार्डीकी कहानियोंका इन्होंने अनुवाद भी किया है। सामाजिक कहानियोंके अतिरिक्त इन्होंने राजनैतिक, क्रान्तिकारी तथा भावात्मक कहानियाँ भी लिखी हैं। सुघड़ भावात्मक कथानक और रोचक शैलीमें इनकी कहानीकी सफलता निहित है। जीवनके विविध क्षेत्रोंसे कथानक की सामग्री चुनकर इन्होंने हिन्दी कहानीको व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है। मार्क्सवादी आदर्शों पर आधारित साहित्यके स्रष्टा क्रान्तिकारी यशपालका हिन्दी-कहानी-साहित्यमें विशेष स्थान है। आर्थिक विषमताके कारण विभिन्न वर्गोंके सामाजिक मूल्य व मान्यताएँ उनकी कहानियोंके केन्द्र बिन्दु हैं। आर्थिक शोषण के कारण चरमराये हुए इस सामाजिक ढाँचेका जैसा यथार्थवादी सजीव चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है, वैसा प्राय: दुर्लभ है। इसीसे उनकी लेखनीका कौशल स्पष्ट है। अपने कथानकके चुनावमें उन्होंने पौराणिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक सामग्रीका भी आश्रय लिया है। स्त्री तथा पुरुषके विविध सम्बन्धों व प्रेमके विभिन्न रूपोंपर भी इन्होंने प्रकाश डाला है। उनकी सम्पूर्ण कला सोद्देश्य है। वह मनोरञ्जनसे उच्चतर उद्देश्य और आदर्श प्रस्तुत करती है। उनका आधार चाहे कुछ भी हो, जहाँ कहीं प्रचारकी भावना उभरी नहीं है, वहाँ उनकी कला विशेष रूपसे निखरी है। 'पिंजरेकी उड़ान', 'वो दुनियाँ', 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त' आदि एक दर्जन से भी अधिक उनके कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। संक्षेपमें हिन्दीमें समाजवादी आधार पर उत्कृष्ट यथार्थवादी कहानी लेखकके रूपमें यशपालका महत्व भुलाया नहीं जा सकता। नई पीढ़ीके लेखकोंमेंसे मोहन राकेशने हिन्दी-कथा-साहित्यमें अपना स्थान बना लिया है। 'इन्सान के खंडहर,' 'नए बादल', 'जानवर और जानवर' तथा 'एक और जिन्दगी' उनके कहानी संग्रह हैं। वीरेन्द्र मेंहदीरत्ताके 'शिमलेकी क्रीम' आदि कहानी संग्रहोंमें भी कहानीकारकी प्रतिमाके दर्शन होते हैं। भीष्म साहनी और कृष्णा सोबतीकी कहानियोंमें विशेष आकर्षण है। इनके अतिरिक्त सत्यवती मलिक, पृथ्वीनाथ शर्मा, रजनी पनिकर, सत्यप्रकाश सेंगर, हंसराज 'रहबर', बलराज साहनी, सत्यपाल आनन्द, पुष्पा महाजन, जयनाथ नलिन, तथा पञ्जाबीके प्रसिद्ध लेखक कर्तारसिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम ने भी हिन्दी-कथा-साहित्यको समृद्ध किया है और कर रहे हैं। अत: अभी उनके कथा साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकता।

नाटक

उदयशंकर भट्ट और हरिकृष्ण प्रेमीकी साहित्य साधनाका क्षेत्र बहुत काल तक पञ्जाब रहा है। हिन्दी-नाटक-साहित्यको समृद्ध करनेमें, उसे नयी दिशा देनेमें इनका जो हाथ रहा है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

सुदर्शनने ऐतिहासिक नाटक 'दयानन्द' में आर्य समाजके प्रवर्त्तक ऋषिके तपस्वी जीवनका चित्रण किया है। पौराणिक आख्यान पर आधारित 'अञ्जना'को ऐतिहासिक पद्धति पर लिखा है। उसमेंसे अस्वाभाविक अंशोंको निकालकर भरसक विश्वसनीय बनानेका प्रयत्न किया है। भावना प्रधान संवादोंने प्रेम-कथाको रोचक बना दिया है। 'आनरेरी मजिस्ट्रेट, उनका सफल प्रहसन है, जिसमें न्यायके नामपर अन्याय कैसे होता है, इसका चित्रण है।

उदयशंकर भट्ट

कथाकार अश्क सफल नाटककार भी हैं। 'जय-पराजय, ' के बाद, उन्होंने 'स्वर्गकी झलक' 'कैद,' 'उड़ान', 'छठा बेटा' आदि सामाजिक नाटक लिखे हैं। पश्चिमी सभ्यतामें नारी गृहिणी नहीं रह पाती, 'स्वर्गकी झलक' में यही दिखाया गया है। 'कैद' तथा 'उड़ान' में विवाह समस्याको केन्द्र बनाया गया है। 'जय-पराजय' को छोड़कर उनके अन्य नाटकोंमें सकलन-त्रय, कलात्मकता, अभिनेयता आदिका अच्छा निर्वाह हुआ है। उनकी भाषा परिस्थिति एवं पात्रानुकूल होनेके कारण प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। इस प्रकार उनके नाटक सजीव है। 'देवताओंकी छायामें', 'तूफान से पहिले' आदि एकांकी संग्रहोंमें इनके ३० के लगभग एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं। सामाजिक समस्याओं को ही उन्होंने अधिकतर अपनाया है। 'अधिकार का रक्षक' आदिमें तिलमिला देनेवाला व्यंग्य है, तो परवर्त्ती एकांकी अपेक्षाकृत गम्भीर है तथा कुछमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत हैं। संकेतों और प्रतीकों द्वारा मार्मिक रहस्यका उद्‌घाटन करनेवाले 'अश्क' हिन्दीके प्रथम लेखक है। कुल मिलाकर 'अश्क' ने मध्यम-वर्गकी सामाजिक कुरीतियों, अभावों और खोखलेपनको ही अपने एकांकियोंका केन्द्र-बिन्दु बनाया है और उन्हीके माध्यमसे सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डालनेमें वे सफल भी हुए हैं। पृथ्वीनाथ शर्माने भी 'दुविधा', 'अपराधी' आदि सामाजिक नाटक लिखे हैं। यथार्थका महत्व स्वीकार करते हुए भी वे आदर्शका मोह नहीं छोड़ सके हैं। इस असन्तुलनने उनके नाटकोंको अधिक सफल नहीं होने दिया। उर्मिलाके चरित्रका गौरव दिखाने के प्रयत्नमें लिखा गया 'उर्मिला' अपेक्षाकृत अधिक सफल कृति है। कला का अधिक निखरा हुआ रूप इसमें देखनेको मिलता है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने 'रेखा' और 'अशोक' दो ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। प्रसादसे प्रभावित होते हुए भी वे उनकी ही तरह सफल नाटकोंका प्रणयन न कर सके। कहीं इतिहासकी परिधिका उल्लंघन है, तो कहीं असम्भाव्य दृश्योंका विधान। इन्होंने भी सांस्कृतिक आधार प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है, पर वह भी बहुत सशक्त नहीं बन सका। इतना होते हुए भी वातावरणके निर्माण व चरित्र-चित्रणमें इनकी कलाकी सफलता दृष्टिगोचर होती है। 'ताँगेवाला, 'मनुष्यकी कीमत' आदि आपने कुछ एकांकी भी लिखे हैं।

हिन्दी नाटक साहित्यमें 'आषाढ़का एक दिन' ने मोहन राकेशका स्थान बना दिया है। उसमें जिस सांस्कृतिक सरसताके दर्शन होते हैं, वह सहृदय की रुचिका परिष्कार और मनोविनोद दोनों ही करती है। कलाका निखरा हुआ रूप उसमें दृष्टिगोचर होता है। डॉ. कैलाशनाथ भटनागरने 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'कुणाल', 'श्रीवत्स' आदि कुछ सफल नाटक लिखे है। कवि देवराज 'दिनेश' के 'रावण' और 'मानव प्रताप' भी सफल नाटक है। इनके अतिरिक्त अन्य भी कुछ लेखकोंके एकांकी नाटक देखनेको मिलते हैं लेकिन अभी साहित्यमें उनका स्थान नहीं बन सका है।

कविता

दृश्य काव्य, कथा साहित्य तथा निबन्ध लेखनमें पञ्जाबके लेखकोंने हिन्दी साहित्यमें अपना जो स्थान बनाया है कविताके क्षेत्रमें वे वैसा न बना सके। बालमुकुन्द गुप्तकी 'स्फुट कविता' काव्य रचनाका प्रयास है, लेकिन मूलतः वे सम्पादक और गद्य लेखक थे। अतः उनकी प्रतिभाका, काव्य क्षेत्रमें उचित रूपसे विकसित न हो सकना स्वाभाविक ही था। पञ्जाबमें रहकर उदयशंकर भट्ट तथा हरिकृष्ण प्रेमी ने जिस काव्यका प्रणयन किया उसका हिन्दी काव्य में विशेष स्थान है।

प्रथम पत्नीकी मृत्युने 'अश्क' के प्रसुप्त भावुक कविको जगाया और 'सूनी अँधियारी रातोंमें' जब कि वह 'एकाकी और मौन!' बना रहता था, तभी शोकाकुल हृदय से कविता फूट निकली। इसीलिए उसमें उन भावोंका स्वाभाविक आवेग है जो मर्मस्पर्शी है। निराश कविकी वेदनापूर्ण कविताएँ 'प्रातः दीप' में संगृहीत हैं। ' 'उर्मियाँ' में कवि पुनः जीवनकी ओर बढ़ा है। 'बरगद की बेटी' तथा 'अजगर और चाँदनी' इनके दो खण्डकाव्य हैं। इनका काव्य सुबोध है। उसमें विचारों और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे कोई वक्रता नहीं है।

शम्भूनाथ 'शेष' के 'उन्मीलिका', 'सुवेला', 'अन्तर्लोक' आदि कविता संग्रह प्रकाशित हुए है। 'काश्मीर' आपका खण्डकाव्य है। आपने कहीं तुकान्त छन्दोंमें नवयुगका निर्माण करनेके के लिए आजके मानवको ललकारा है, तो कहीं सुखद जीवनके मधुर गीत गाए है। हिन्दीमें सफल रुबाइयाँ और गजलें भी इन्होंने लिखी है, जिनमें स्वस्थ जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। आकाश–वाणीके जालन्धर केन्द्रमें काम करते हुए आपनें बहुतसे कवि सम्मेलनोंका आयोजन भी किया था।

देवराज 'दिनेश' जन सामान्यके कवि हैं। देशके विभाजनका करुणापूर्ण चित्रण और कवि-सम्मेलनोंमें उसका प्रभावोत्पादक पठन कितने ही श्रोताओंको रोने के लिए विवश कर देता है। उनकी वाणीमें ओज है तथा भावोके अनुरूप ही सशक्त अभिव्यक्ति भी है। इन्होंने अभाव-ग्रस्त जीवनका आजके ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया है, जो जन मानसको अनायास ही स्पर्श कर लेता है। इनके मजदूर ने भी 'अगणित बार धरा पर स्वर्ग बनाये है' इसीलिए वह गर्वोन्नत है तथा इनका 'नाविक' सागरकी उत्ताल तरंगोंसे घबराने वाला नहीं। इनकी वाणीमें अदम्य प्रेरणा व उत्साह भरा है। आज इस प्रदेशके राजकवि होनेका इन्हें गौरव प्राप्त है।

विद्याभास्कर 'अरुण' को उनके काव्य-संग्रह 'सबेरा और साया' ने अच्छे कवियोंकी पंक्तिमे ला बिठाया। समाजमें विद्यमान आर्थिक विषमता एवं शोषणने इनके भावुक हृदयको विशेष रूपसे प्रभावित किया है। मधुर और कोमल भावनाओंके उद्रेकमें इन्होंने प्रेमके भी कुछ गीत गाए हैं। अब हिन्दी और पञ्जाबी भाषाका विश्लेषणात्मक अध्ययन करनेमें व्यस्त है। शायद इनका कवि सो चुका है। जयनाथ 'नलिन' की प्रतिमा बहुमुखी है। 'यामिनी' उनका काव्य है। जीवनकी विषमताओंसे जूझने वाला कवि भ्रमणशील भी रहा है। अतः इनके काव्यमें शक्ति पूर्वक खड़े होनेका स्वर मिलता है। देश-विभाजनके करुण दृश्योंने प्रत्येक कविके अन्तस्को आन्दोलित कर दिया और कितने ही सहृदयोंको कवि भी बना दिया। 'नलिन' ने पश्चिमसे चले आनेवाले 'काफिले' का चित्रण बड़ा ही सजीव तथा मर्मस्पर्शी किया है। अध्यापक 'नलिन, कवि, 'आलोचक, कहानीकार, एकांकीकार और निबन्धकार भी है।

उदयभानु 'हंस' हिन्दीमें रुबाइयों के सफल प्रयोगके कारण प्रसिद्ध हुए। 'हिन्दी रुबाइयाँ' इनका पहला प्रकाशित संग्रह है। 'धड़कन और सरगम' इनके अन्य काव्य-संग्रह है। मानवतावादी धरातलपर इन्होंने 'मै मानव हूँ, हर मानवसे प्यार करता हूँ' कहकर भेदभावकी दृष्टिको दूर कर मानव मात्रके सामान्य भावों (प्रेय आदि) को कविताका विषय बनाया है। परमानन्द शर्माकी ओजस्वी वाणी 'छत्रपति' और 'वैरागी' प्रबन्ध काव्योंके माध्यमसे सार्थक हुई। वीरप्रसू पञ्जाबका वास्तविक प्रतिनिधित्व इनके ही वीर रस प्रधान काव्यमें हुआ है। दुष्ट दर्प-दलनके लिए इन्होंने वीर प्रभुका आह्वान किया है। इनकी वाणीमें

ओज के साथ-साथ वेग, शक्ति और सामर्थ्य भी है। खुशीराम शर्मा वसिष्ठ प्रेमके गायक रहे हैं। 'प्रेमोपहार' इनकी कविताओंका संग्रह है। इनके गीतोंमें मधुर मदिराकी मादकता है। शोषितोंके प्रति सहानुभूति भी इनके परवर्त्ती काव्य का विषय रहा है। अभयकुमार यौधेयके 'प्रतीची की ओर' आदि काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' ने भी पञ्जाबमें रहकर पर्याप्त साहित्य साधनाकी है, जिसमें उनका कवि रूप भी उभरा है। इनके काव्यमें सुलझे हुए जीवन-दर्शनके दर्शन होते हैं। चिरंजीतने कुछ राष्ट्रीय और रोमाण्टिक कविताएँ लिखी हैं। 'चिलमन' इनका कविता संग्रह है।

मदनलाल 'मधु' ने 'उन्माद' में अपने यौवनका उन्माद भर दिया है। उनके प्रेम गीत बड़े ही मार्मिक है। भावोंके साथ लय, ताल और सुरका ऐसा सन्धान कम ही गीतोंमें देखनेको मिलता है। मञ्चपर कविता पाठमें उन्हें अद्वितीय सफलता मिलती रही है। सुदर्शन बाहरी तथा शकुन्तला श्रीवास्तवके मधुर गीत भी अच्छे बन पड़े है। त्रिलोकीनाथ रञ्जनने प्रेमकी कविताओंमें भावनाओंको साकार किया है। प्रो. शैवाल, ओमप्रकाश आनन्द, पुरुषोत्तम कुमार, मनसाराम 'चञ्चल', विकल, सत्या शर्मा आदिके अतिरिक्त कालेजोंकी पत्रिकाओं तथा अन्यान्य प्रान्तीय पत्रिकाओंमें भी तरुण कवियोंके अनेक गीत पढ़नेको मिलते है। पञ्जाबमें हिन्दी काव्यके विकासमें इन सभीका योगदान है। उपर्युक्त सभी लेखक पञ्जाबके हैं और उन लोगोंने शुरूमें उर्दू अथवा पञ्जाबीमें लिखना शुरू किया, किन्तु बादमें वे हिन्दीके ही हो गए।

निबन्ध आलोचना तथा विविध साहित्य

बाबू बालमुकुन्द गुप्त पञ्जाबके पहले हिन्दी निबन्धकार कहे जा सकते हैं। उर्दू पत्रोंके सम्पादनके बाद हिन्दी 'भारत मित्र' के प्रधान सम्पादक बने थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीसे टक्कर लेनेकी क्षमता इन्हींमें थी। 'शिव शम्भु का चिट्ठा' उनकी प्रसिद्धिका कारण है। 'गुप्त निबन्धावली' इनके निबन्धोंका संग्रह है। राजनैतिक परिस्थितिपर व्यंग और सामाजिक जागरणके दर्शन इनके निबन्धोंमें होते हैं। इनके विनोदपूर्ण निबन्धोंमें भावोंका विशेष स्थान है। उनका वाक्य-विन्यास अर्थपूर्ण व चुस्त होते हुए भी सरल है। उनका व्यंग्य तीखा और संयत है। व्याकरण, भाषा और लिपि आदि पर भी कुछ निबन्ध इन्होंने लिखे है।

माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' के सम्पादक थे। पर्व, त्योहार व तीर्थस्थानोंपर उन्होंने अपने भावना-प्रधान निबन्ध लिखे। 'माधव मिश्र निबन्धमाला' नामसे आपके निबन्धोंका संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। 'सब मिट्टी हो गया' इनका उत्कृष्ट निबन्ध कहा जा सकता है। सनातन धर्म व भारतीय संस्कृतिके प्रति इनकी श्रद्धा भी इन निबन्धोंमें देखनेको मिलती है। 'धृति', 'क्षमा' आदि इनके कुछ गम्भीर निबन्ध हैं। उनमें पाण्डित्यके भी दर्शन होते हैं। इनकी भाषा-शैली संस्कृत-गर्भित, विषयानुकूल एवं प्रौढ़ है। कुल मिलाकर ये अपने युगके सफल निबन्धकार हुए हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी प्रतिभा उनके निबन्धोंमें भी प्रस्फुटित हुई है। गम्भीर-से-गम्भीर शास्त्रीय विषयोंके प्रतिपादनमें भी ये विनोदके छींटे देते चलते है। रूढ़िवादी समाजपर व्यंग करनेके लिए ही इन्होंने 'कछुआ धर्म, 'मारेसि मोहि कुठाँव' आदि निबन्ध लिखे। इनके तिलमिला देनेवाले व्यंग्य सशक्त शैली में अभिव्यक्त हुए। 'शैलीकी जो विशिष्टता, और अर्थ गर्भित वक्रता गुलेरीजीमें मिलती है वह और किसी लेखकमें नहीं।' यह लिखकर शुक्लजीने भी उनकी शैलीकी महत्ता स्वीकार की है।

अध्यापक पूर्णसिंहने 'आचरणकी सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता' आदि थोड़े ही निबन्ध लिखे हैं। मानवीय धरातलपर ऐक्य, कर्मण्य जीवन तथा आन्तरिक जीवनका महत्व उनके निबन्धों को सांस्कृतिक बनाए रखनेके लिये पर्याप्त हैं। उनकी भावात्मक शैली निबन्धको आत्मीयतापूर्ण बना देती है। 'भाषा और भाव की एक नयी विभूति उन्होंने सामने रखी।' इतना ही नहीं, इनकी लाक्षणिकताको भी शुक्लजीने हिन्दीमें नया ही माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लसे पूर्व निबन्धकी इस 'बृहत्त्रयी' का सम्बन्ध पञ्जाबसे ही था।

श्री सन्तरामजी लम्बे अरसेसे कुछ सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक जीवनमें चारित्रिक महत्व बतानेवाले निबन्ध लिखते रहे हैं। ये प्रायः पत्रिकाओंमें ही मिलते हैं। अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकारने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय आर्थिक समस्या-सम्बन्धी बहुतसे ज्ञान-बर्धक निबन्ध लिखे हैं। प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति, आचार्य विश्वबन्धु आदि प्रौढ़ लेखकोंके कुछ अच्छे निबन्ध पत्र-पत्रिकाओंमें निकलते रहे हैं।

आलोचनाके क्षेत्रमें डॉक्टर इन्द्रनाथ मदानने आधुनिक हिन्दी-साहित्य प्रबन्धपर पी एच. डी. प्राप्त की थी। उसके बाद 'प्रेमचन्द : एक विवेचना' मे उपन्यास सम्राट्का सामाजिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया। 'हिन्दी कलाकार' में मूर्धन्य कलाकारोंकी कलापर इन्होंने प्रकाश डाला है। अभी हाल ही में उनका 'आधुनिक कविताका मूल्यांकन' प्रकाशित हुआ है, जिसमे आधुनिक कवियोंकी विश्लेषणात्मक आलोचना प्रस्तुत है। इस कृतिमें उनके प्रौढ़ आलोचकके दर्शन होते है। जयनाथ 'नलिन' ने 'हिन्दी निबन्धकार' और 'हिन्दी नाटककार' दो अच्छी आलोचना-पुस्तकें लिखी है। 'विद्यापति' में उन्होंने उनके काव्यका सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है। 'नलिन' की शैली सरस, स्पष्ट और सशक्त है। आलोचककी निष्पक्षता के दर्शन उनमें होते है। यशदेव शल्यने पन्तके काव्यका सन्तुलित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त पी एच. डी. की उपाधि के लिए शिवनारायण बोहरा, रामधन शर्मा, सरनदास मनोत, हरदेव बाहरी, किरणचन्द्र शर्मा, संसारचन्द्र, दुर्गादत्त मेनन, गोविन्दराम, वेदपाल खन्ना, भीष्म साहनी, शङ्करलाल यादव, सुषमा धवन, आशा गुप्ता, वेणीप्रसाद, ब्रजलाल गोस्वामी आदिने प्रबन्ध प्रस्तुत कर सफलता प्राप्त की है, जिनमेसे अभी थोड़े ही प्रबन्ध प्रकाशित हुए है। प्रो. वुल्लरके समय पञ्जाब विश्वविद्यालयमें संस्कृतका विशेष अध्ययन हुआ था। संस्कृतके विशिष्ट विद्वानोंने भी हिन्दीके विकासमें विशेष योग दिया। डॉ. सूर्यकान्तने पञ्जाबमें रहकर 'हिन्दीका विवेचनात्मक इतिहास' तथा 'साहित्य-मीमांसा' लिखकर अपनी विद्वत्ता और गम्भीर अन्वेषण-शक्तिका परिचय दिया। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा और डॉ. बनारसीदास जैनने भाषा विषयक गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ. रघुवीरने देश-विभाजनके बाद शब्द निर्माण और बृहत् कोष निर्माणका कार्य कर जो ख्याति पाई है, उसका श्रीगणेश वे यहाँ ही कर चुके थे। आचार्य विश्वबन्धुने उच्च कोटिके वैदिक साहित्यके प्रकाशनके लिए हिन्दीको माध्यम चुना और सांस्कृतिक विषयोंपर लेख लिखनेके साथ साथ नैतिक साहित्यके प्रकाशनमें भी सहयोग दिया।

'आर्य समाज' के प्रसिद्ध प्रचारक सत्यदेव परिव्राजकने जीवन-सम्बन्धी अन्यान्य विषयोंपर लगभग ५० पुस्तकें लिखकर हिन्दी साहित्यको समृद्ध किया और अन्तमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भी नागरी प्रचारिणी सभा काशीको दान देकर हिन्दी प्रेमका परिचय दिया। पं. भीमसेन विद्यालंकारने 'वीर मराठे', 'शिवाजी', 'वीर पञ्जाबी' आदि लिखकर पञ्जाबी युवककी वीर भावनाको

जगाया तथा अन्यान्य पत्रों व 'हिन्दी सन्देश' का सम्पादन कर और दीर्घ काल तक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मन्त्री-पदपर कार्य कर हिन्दीके प्रसार और प्रचारमें सक्रिय सहयोग दिया। आनन्दस्वामीने १९२९ में 'हिन्दी मिलाप' आरम्भ किया था तथा भक्ति सम्बन्धी कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं। उनके सुपुत्र 'यश' (आजकल पञ्जाबके शिक्षा-मन्त्री) ने भी पत्र-सम्पादनके कार्यको सफलतापूर्वक वहन करनेके साथ-साथ 'कारावास' और 'आग' दो कहानी संग्रह भी प्रकाशित किए हैं। 'वीर अर्जुन' के प्रकाशक कृष्णके हिन्दी-प्रेमकी परम्परामें उनके सुपुत्र वीरेन्द्र भी 'वीर प्रताप' का सम्पादन कर रहे हैं। 'हरियाना सन्देश' के माध्यमसे उस प्रदेशमें हिन्दीके प्रचारका श्रेय महेशचन्द्रको दिया जा सकता है। 'भारती' और 'युगान्तर' के सम्पादन करनेके बाद सन्तरामजीने 'विश्वज्योति' के प्रकाशनमें हाथ बँटाया। भारतीय संस्कृतिसे प्रेम होनेके कारण तथा सुधारवादी दृष्टिकोण रखनेके कारण इन्होंने नैतिकता-प्रधान, उपदेशात्मक, व्यावहारिक एवं उपयोगी ६० से भी अधिक पुस्तकें लिखकर हिन्दी साहित्यको समृद्ध किया है। भाई परमानन्दकी वाणीका ओज 'वीर वैरागी' में उनकी लेखनीके माध्यमसे साकार हुआ। उन्होंने 'भारत रमणी रत्न' आदि अन्य भी कुछ सशक्त विचारपूर्ण पुस्तकें लिखीं। पं. भगवद्दत्तने 'वैदिक वाङ्मयका इतिहास' तथा 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास' आदि कई ग्रन्थोंकी रचना कर भारतीय संस्कृतिका स्वरूप सामने रखा। उनकी लेखनीमें ओज है और तर्कमें अद्भुत शक्ति। जयचन्द्र विद्यालंकारने भारतीय इतिहासका गवेषणात्मक अध्ययन कर मौलिक मान्यताएँ स्थापित की हैं। उनका 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' (दो भाग) मानसिक दासताको उतार फेंकनेका निष्पक्ष एवं निर्भय प्रयत्न है। इसपर मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ है। 'भारत भूमि और उसके निवासी' भी उनकी अन्य उल्लेखनीय कृति है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृतिके इतिहास लेखनमें भी उनकी लेखनीको सफलता मिली है। लाला लाजपतरायने स्वामी दयानन्दका जीवन-चरित लिखा था। ये सभी लेखक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे 'आर्य-समाज' की देन हैं। डॉ. हरदेव बाहरीने शब्द-विज्ञान व कोश-निर्माणमें विशेष ख्याति अर्जित की है। भदन्त आनन्द कौसल्यायनने बौद्ध धर्म सम्बन्धी साहित्य का सर्जन किया है, जिनमेंसे 'बुद्धवचन' और 'जातक' (दो भाग) अधिक प्रसिद्ध हैं। हंसराज अग्रवालने भी 'संस्कृत साहित्यका इतिहास', 'हिन्दी साहित्यकी परम्परा', 'हमारी सभ्यता और विज्ञान' आदि कृतियोंका निर्माण कर हिन्दीके विकासमें योग दिया है। डॉ. परमानन्दने 'जपुजी साहिबका टीका', 'भारतकी दिव्य विभूतियाँ' आदि पुस्तकें लिखकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। श्रीधरानन्दने पिंगलपर कार्य किया है, जो पञ्जाबकी हिन्दी परीक्षाओंमें नियत होनेके कारण पर्याप्त प्रचलित रहा है। जगन्नाथ पुच्छरत ने गत ५० वर्षोंसे पञ्जाब विश्वविद्यालयकी हिन्दी परीक्षाओंके लिये उपयुक्त पुस्तकोंकी रचना की, तथा परीक्षाओंके प्रचारके लिए सभी सम्भाव्य प्रयत्न किए, जो प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे उपेक्षणीय नहीं। मदनमोहन गोस्वामी विविध पत्रोंका सम्पादन करनेके बाद आजकल पञ्जाब सरकारके मासिक पत्र 'जागृति' का सम्पादन कर रहे हैं। शमशेर सिंह 'अशोक' ने गुरुमुखी लिपिमें लिखित हिन्दीके साहित्यको प्रकाशमें लानेके लिए सराहनीय प्रयत्न किए हैं। कुछ लोगोंने इधर अच्छे अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं। इतिहास, भूगोल, सामाजिक ज्ञान आदि सभी विषयोंके साथ-साथ गणित, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि वैज्ञानिक विषयोंपर भी विद्यार्थियोंको ध्यानमें रखकर कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं तथा लिखी जा रही हैं। सब मिलाकर

ज्ञान-विज्ञानके साहित्यका भण्डार भरनेमें पञ्जाबके हिन्दी साहित्यकार भी अपना पूरा सहयोग दे रहे हैं।

आधुनिक युगमें पञ्जाबमें हिन्दी-प्रचार और प्रसारका श्रेय ऋषि दयानन्द को दिया जा सकता है। अँग्रेजी राज्यकी स्थापनाके साथ ही यहाँ हिन्दीके लिए कोई स्थान नहीं रह सकता था। स्वामी दयानन्दने अपनी मातृभाषा गुजरातीको छोड़कर राष्ट्रीय एकताके लिए, हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार कर, अपने विचारोंके माध्यमके रूपमें अपनाया। यहाँ मुसलमान उर्दूको अपनाए बैठे थे और विधिवत् शिक्षाके आरम्भ होते ही अँग्रेजी उच्च शिक्षाका माध्यम बन बैठी। उससे पहले देशके इस भागमें हिन्दीके प्रचलित न होनेके कारण, इसे जन-भाषामें कोई स्थान न मिल सका। स्वामी दयानन्दका आर्य समाजका धार्मिक आन्दोलन जहाँ ईसाइयतका विरोध करता था, वहाँ समाजको राष्ट्रीय जागरणका सन्देश भी दे रहा था। पञ्जाब और उसकी राजधानी लाहौर 'आर्य समाज' का सबसे प्रमुख केन्द्र बना। इसके परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें जहाँ एक ओर डी. ए. वी. स्कूलों तथा कालेजोंकी स्थापना हुई, वहाँ कुछ गुरुकुलोंकी भी नींव रक्खी गई। स्कूलों और कालेजोंमें तो राजकीय विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंको स्थान दिया गया, पर माध्यम प्रायः हिन्दी ही रहा, लेकिन गुरुकुलोंमें तो प्राचीन ऋषि-परम्पराका अनुसरण करनेके प्रयत्नमें संस्कृतके माध्यमसे संस्कृतिका मधु-पान करवानेका प्रयास किया गया, जिसका सशक्त माध्यम परिष्कृत हिन्दी ही थी। परिणामस्वरूप बोलीके रूपमें पंजाबीको अपनानेवाले एक बहुत बड़े जन-समुदायने भी भाषाके रूपमें हिंदीको ही अपनाया और यह परम्परा आज तक उसी प्रकार चली आ रही है। भाषाके इस प्रकारके महान् आन्दोलनमें 'ब्रह्मसमाज' के माध्यमसे नवीन चन्द्र राय तथा उनके अनुवर्तियोंने भी पर्याप्त सहयोग दिया। देव समाज तथा सनातन धर्म आदि सभी हिन्दू धार्मिक संस्थाओंने हिन्दीको न केवल जीवित रखने, अपितु जीवन्त भाषा बनाए रखनेमें कोई कसर न उठा रखी। वस्तुतः वाई. एम. सी. ए. (Y.M.C.A.) के अँग्रेजी, 'अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू'के उर्दू तथा 'चीफ खालसा दीवान'के पञ्जाबी-प्रचारकी प्रतिस्पर्धामें ही हिन्दी विकसित हुई। 'Divide and Rule' की नीतिके आधारपर शासन करनेवाली राजनैतिक सत्ताके विरुद्ध इन धार्मिक, सामाजिक व साहित्यिक संस्थाओंने ही भाषाको जीवनी शक्ति प्रदान की, तथा उसमें प्राण-तत्त्वको उद्भासित कर उसे साहित्य-सर्जनके लिए सक्षम बनाया। गत तीन-चार दशकोंमें प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भाषाके प्रचारमें विशेष योग दिया है। लाहौर इसकी गतिविधियोंका केन्द्र था। इसके वार्षिक अधिवेशनोंमे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं द्वारा हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें विकसित करने और अपनाने पर जोर दिया जाता था। देश-विभाजनके पश्चात् जालन्धर, अम्बाला आदि केन्द्रोंमें स्थानीय साहित्यकार कभी-कभी मिलकर नवीन रचनाओंका पठन व आलोचना करके, साहित्यिक रुचिको जागृत रखने तथा परिष्कृत करनेका प्रयत्न करते हैं। इससे नवोदित लेखकोंको प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार भाषाके प्रचारसे भी अधिक साहित्यके विकासमें इसका विशेष योग रहा है। पेप्सूका पञ्जाबी-विभाग जब भाषा-विभागमें परिणत हुआ, तो उसमेंसे हिन्दी-विभाग भी विकसित हुआ। नाटक, भाषण, लेख तथा वाद-विवाद-प्रतियोगिता द्वारा हिन्दी-विभाग भाषा-प्रचार का कार्य कर रहा है। यह विभाग वर्षकी सर्वोत्कृष्ट कृतियोंपर पुरस्कार देकर, तथा अन्य उपयोगी व स्वस्थ साहित्यके प्रकाशनके लिए आर्थिक सहायता देकर साहित्यिक वातावरणके निर्माणमें प्रयत्नशील है। वार्षिक शोध-गोष्ठियोंमें विशिष्ट विद्वानोंके शोध-निबन्धोंपर विचार-विमर्श

भी इसी दिशा में स्वस्थ प्रयत्न है। हिन्दीके साहित्यिक वातावरणके निर्माणमें इन सब शक्तियोंका विशेष योग रहा है, जिसके महत्वको भुलाया नहीं जा सकता।

संक्षेपमें पञ्जाबकी हिन्दी साहित्यको देनका मूल्यांकन इन शब्दोंमें किया जा सकता है। गोरख व उनके अनुगामियोंकी योग-साधना, अब्दुल रहमानके शृंगार तथा चन्दके शृंगाराधारित वीर काव्यने अनुवर्त्ती सम्पूर्ण हिन्दी काव्यको प्रेरणा दी और अपनी पद्धतिसे प्रभावित भी किया। राजनैतिक विक्षोभ तथा धार्मिक अव्यवस्थाके समय गुरुओंकी आध्यात्मिक वाणी, तथा अन्य सन्तोंके काव्यने ही समाजको नैतिक सम्बल देकर उसके धर्म और आचारकी रक्षा की। रीतिकालीन रीतिबद्धता और अश्लीलतासे पञ्जाबके साहित्यकारोंका बचे रहना कम महत्व की बात नही, और गुरुमुखी लिपिमें लिखित ब्रजभाषाके उपेक्षित साहित्यका जब कभी उचित मूल्यांकन होगा, तो जिस 'रीतिकाल' का नाम अभी 'शृंगार काल' रखा गया है उसमे और भी परिवर्तन की बहुत कुछ सम्भावना दिखाई देगी, क्योंकि यहाँका वीर और चरित-काव्य महत्ता और परिमाणकी दृष्टिसे अब और अधिक देर तक उपेक्षणीय नहीं रह सकता। गुलेरी, यशपाल और अश्क आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्यके उज्ज्वल नक्षत्र इस भूमिके ही रत्न है। उनपर किसे गर्व न होगा। डॉ. रघुवीर और आचार्य विश्वबन्धुके प्रयत्नोंकी कौन सराहना न करेगा। प्रचारकी दृष्टिसे आर्य-समाज और उसकी शिक्षा संस्थाओं द्वारा उत्पन्न वातावरणका महत्व भी अविस्मरणीय है। न केवल उदयशंकर भट्ट तथा हरिकृष्ण प्रेमीका साधना-क्षेत्र पञ्जाब रहा है, बल्कि अब तो भारतके मूर्धन्य सरस सांस्कृतिक साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी यहीं से सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्तिके उपयुक्त पोषक तत्वोंको संगृहीत कर रहे है। कौन जानता है कि अपने साहित्यिक व्यक्तित्वका पूर्ण विकास करने ही वे ऋषिभूमिमें चले आए है। यह गौरव भी पञ्जाबको ही प्राप्त है।

मणिपुरकी हिन्दीको देन

श्रीमती विमला रैना
और
श्री. छत्रध्वज शर्मा

मणिपुरकी सृष्टि और उसका नाम

मणिपुरकी सृष्टि कैसे हुई और उसका नाम कैसे पड़ा, इसके सम्बन्धमें यहाँ एक जनश्रुति है। कहा जाता है कि आजसे १० हजार वर्ष पहले मणिपुरका यह मैदान जलसे भरा हुआ था। कोई स्थल नहीं था। चारों तरफ पानी ही पानी था। उस समय उत्तरकी ओरसे हर-पार्वती (शिव दुर्गा) यहाँ आए। यहाँका प्राकृतिक दृश्य देखकर वे मुग्ध हो गए। महादेवने अपने मनमें सोचा कि यहाँका पानी निकाल दिया जाए और इसे रंग-भूमि बनाया जाए। उन्होंने अपने त्रिशूल द्वारा पानीको सुखा दिया। यह मैदान सूख गया और प्रकृतिकी लीला-स्थली बन गया। महादेव खुश हुए। उन्होंने अपनी दुर्गा देवीके साथ यहाँ 'लाइहराओबा' क्रीड़ा खेली। यह 'लाइहराओबा' मणिपुरकी सबसे पुरानी लीला है। इससे यहाँ के विभिन्न प्रकारके लोक-नृत्य, लोक-गीत तथा नागा-नृत्य आदि की उत्पत्ति हुई। अत: 'लाइहरओबा' को यहाँकी क्रीड़ाओंकी जननी भी कहते है। इसी प्रकार महादेवने मणिपुरकी सृष्टि की। अब तक यहाँके लोगोंके मनमें यह धारणा है कि मणिपुरके लैशेम्बा (सृष्टि-कर्ता) तो महादेव है।

शिव-दुर्गाकी इस रमणीय क्रीड़ाको देखकर देवी—देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इससे आनन्दित होकर उन्होंने स्वर्गसे मणि-माला गिराई। जिससे सारी जगह मणियोंकीसी रोशनी फैल गई। इससे इस प्रदेशका नाम मणिपुर पड़ा। इसके सम्बन्धमें इतिहासकारोंका विभिन्न मत है। ऐसा भी कहा जाता है है कि अनन्त जिसका नाम पाखंग-बा (नागराज) भी है, वह यहाँका सर्वप्रथम राजा था। वह मणियों-का मुकुट पहनता था। उसके ताजसे सारा स्थान चमकता था, जिससे भी इस प्रदेशका नाम मणिपुर रखा गया।

आजकलके इतिहासकार ऐसा भी कहते हैं, कि यह प्रदेश चक्रकी भाँति पहाड़ों द्वारा घिरा हुआ है जिससे भी इस प्रदेशका नाम मणिपुर पड़ गया है। कुछ भी हो, यह तो नितान्त सत्य है कि भारतवर्षमें अपनी

विशिष्ट कलाकी वजहसे मणिपुरका अपना एक स्थान है। वास्तवमें यह प्रकृतिकी लीला-भूमि है। कलाका एक विशुद्ध केन्द्र है।

कंगला और इम्फाल

बाहर लोग कंगलाका नाम कम सुनते और जानते हैं। पर इम्फालका नाम तो काफी सुनते हैं। इसी इम्फालके बीच ही में कंगला नाम की एक प्राचीन नगरी है। यह ऐतिहासिक स्थान है। यह मणिपुरकी पुरानी राजधानी थी। इसी स्थानपर आजकल असम राइफल पलटनका कैम्प बना हुआ है। यह स्थान समुद्रकी सतहसे २,६०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित है। आजसे पाँच हजार वर्ष पहले यह नगरी बसी हुई थी।

इम्फाल मणिपुरका शहर और राजधानी है। पर पहले इस शहरका नाम इम्फाल नहीं था। असलमें युम्फाल था। इसके सम्बन्धमें एक जनश्रुति है कि इस शहरमें लगातार घर बसे हुए थे और घनी आबादी थी जिससे इस शहरका नाम युम्फाल रखा गया। 'युम'का अर्थ घर और 'फाल'का अर्थ लकड़ीकी बनी हुई आसनी है। अँग्रेज लोग मणिपुरपर शासन करने लगे। वे शासनके साथ-साथ अपनी भाषा अँग्रेजीका जबरन प्रचार करने लगे, जिससे यहाँकी भाषा, संस्कृति और साहित्य आदि नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। वे यहाँके नामोंका उच्चारण ठीक-ठीक नहीं कर पाए। इसलिए अपनी सुविधानुसार नामोंमें परिवर्तन किया। अतः उन्होंने युम्फालको इम्फाल और विष्णुपुरको विशेनपुर कर दिया। उनके राज्य कालसे ही अब तक इम्फाल चलता आया है। स्वतन्त्रता प्राप्तिके इतने वर्षों बाद अब स्थानोंके नामोंमें परिवर्तन की आवश्यकता है।

मणिपुरकी भौगोलिक सीमा

मणिपुरके उत्तरमें नागा-पहाड़, पूर्वमें बर्मा-देश, दक्षिणमें लुशाई-पहाड़, चीन-पहाड़ और पश्चिममें कछार जिला है। यह मणिपुरकी आधुनिक सीमा है। मणिपुरकी सीमा किसी जमानेमें नागा-पहाड़से आगे ब्रह्मपुत्र तक फैली थी, जिसका प्रमाण यह है कि महाराज गौरीश्यामने ता. ११ सितम्बर, १७६३ में युनाइटेड ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो एक पत्र लिखा था, जिससे हम जान सकते हैं—"The River Brahmaputra in the Dominions of Meckley" इस पत्रमें सारा विवरण है। पुराने जमानेमें बाहरके लोग मणिपुरको मेखलीके नामसे समझते थे। असम और कछारमें वहाँके लोग मणिपुरको मगलु कहते थे। बर्मा-देशके निवासी मणिपुरको कासे और काते कहकर पुकारते थे। किसी जमानेमें मणिपुरने बर्मा-देशके कुछ अंश व हिस्से पर अधिकार कर लिया था। सन् १७२५ से १७४५ के बीच महाराज गरीबनिवाजने बर्मा-देशके कुछ प्रमुख नगर अपने हाथमें ले लिये थे। सन् १८२६ के फरवरी महीनेमें महाराज गम्भीर सिंहने कबो-वेली (बर्मा-देश) पर आक्रमण किया और विजय पाई। इन महाराजके समयमें यह कबो-वेली मणिपुरके अधीन रही।

किसी जमानेमें कछारका यह प्रदेश मणिपुरके अधीन रहा। सन् १८१९ में मणिपुरके तीन राजाओंने कछारके राजा गोविन्दचन्द्रको राज-सिंहासनसे निकाल दिया और वे वहाँके प्रशासक और राजा बने। मणिपुरके राजा-महाराजाओंके साहस, बुद्धिमत्ता और प्रयाससे मणिपुरकी सीमा काफी दूरतक फैली हुई थी।

मणिपुरकी वर्तमान परिवर्तित सीमा

सन् १८३३ में महाराज गम्भीरसिंहने अपनी सेना लेकर नागा-पहाड़पर आक्रमण किया और नागाओंपर कब्जा कर लिया। मणिपुरकी उत्तरी सीमा नागा-पहाड़ तक फैली जिसका प्रमाण कोहिमा (नागा-लैण्डकी राजधानी) पर स्थापित पत्थर परसे मिल सकता है जिसपर पद-चिन्ह भी अंकित हैं।

सन् १८३५ से सन् १८७७–७८ तक पुनः मणिपुरकी सीमा निश्चित नहीं की जा सकी। इसका कारण यह था कि नागा-निवासियोंको अधिक समय तक वशमें रखना सम्भव नहीं था। फिर सन् १८७७–७८ में मणिपुर पहाड़ी-स्थानोंको चाहता था। पर ब्रिटिश-सरकारने मणिपुरको पहाड़ी स्थान देनेमें असमर्थता प्रकट की और स्वीकार भी नहीं किया। किसी-न-किसी तरह सीमा तो निश्चित करनी ही थी। अतः ब्रिटिश-सरकार और मणिपुरके अधिकारियोंने एक सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर कर मणिपुरकी सीमा माओ-पहाड़ तक निश्चित की।

पूर्वमें बर्मा देश

कई ऐसी भी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करनेकी आवश्यकता महसूस नहीं होती। फिर भी महाराज गम्भीरसिंहके जमानेमें ता. ९ जनवरी, १८३४ में मणिपुरके अधीन यह कबो-वेली बर्मा-देशको लौटा दी गई। इसके लिए भारतके वाइसराय लॉर्ड विलियम बेंटिकने क्षति-पूर्तिके रूपमें ५००–५०० रु. मासिक सरकारकी तरफसे दिए जानेकी घोषणा की।

सन् १८९४ मे कौसुरी कमीशनकी बैठक हुई, जिसमें तत्कालीन मणिपुरके पोलिटिकल एजेन्ट और चीन-पहाड़के पोलिटिकल आफिसरमें एक शर्त निश्चित हुई ; जिसके अनुसार ५००–५०० रु. मासिक बन्द कर देने और कबो-वेली भी लौटानेकी बात सामने आई। इस निश्चयके अनुसार रुपया भी नहीं दिया गया और कबो-वेली भी बर्मा देशको लौटा दी गई।

लुशाई पहाड़

सन् १८७२ में मणिपुरके महाराज चन्द्रकीर्तिसिंहने लुशाई–पहाड़पर चढ़ाई की। बादमें उन्होंने लुशाईको मणिपुरके अधीन कर लिया। मणिपुरकी दक्षिण-सीमाकी जानकारीके लिए दो पत्थर गाड़े गए थे। इससे मणिपुर और लुशाईकी सीमा निश्चित की जाती थी।

कछार-जिला

ता. १८ अप्रैल, १८३३ में महाराज गम्भीरसिंह और ब्रिटिश-सरकारमें एक शर्त हुई जिसमें मणिपुर और कछारकी सीमा निश्चित की गई। जिस समय भारतवर्षके गवर्नर जनरल और सुप्रीम कोर्टने घोषणाकी कि ईस्ट इन्डिया कम्पनीकी ओर से हमने बराक नदीके निकटस्थ दो पहाड़ जैसे कालाना और नुंगजाई पहाड़ोंको महाराज गम्भीरसिंहको दे दिया है। इस घोषणाके अनुसार जिरी-नदी और बराक नदी, पश्चिम मणिपुर और कछारकी सीमा हो गई। इसी समयसे जिरी नदीके पूर्व तटपर मणिपुरका पुलिस स्टेशन बसाया गया।

मणिपुरकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

मणिपुर एक छोटा-सा प्रदेश है, फिर भी उसका अपना एक इतिहास और अपनी एक संस्कृति है। आज भारतवर्षमें कला व संस्कृतिकी वजहसे मणिपुरका अपना एक स्थान है। सब लोग जानते ही है कि मणिपुर एक ऐतिहासिक स्थान व केन्द्र है। इसमें अनेक राजा-महाराजा हुए। कई ऋषि-मुनियों, महात्माओं तथा कई वीर महापुरुषोंने इस प्रदेशमें जन्म लिया। गोविन्द-भक्त राजर्षि महाराज भाग्यचन्द्रजीका नाम किसने नहीं सुना? देश-भक्त वीर पाओना व्रजवासी और शहीद वीर टेकेन्द्रजीतका नाम कौन नहीं जानता? महाभारतके सुप्रसिद्ध नायक वीर अर्जुन अपने पुत्र वीर बभ्रुवाहनके हाथों इसी प्रदेशमें हार गए थे।

महाभारतके जमानेसे ही मणिपुरका भारतवर्षसे ही सम्बन्ध रहा। वास्तवमें यह प्रदेश भारतवर्षका सिंहद्वार है। अतः आज किसी भी हालतमे यह प्रदेश भारतवर्षसे पृथक नही हो सकता। भारतके सुप्रसिद्ध नेता तथा राष्ट्रनायक पं. जवाहरलालजी नेहरूने एक जगह कहा 'मणिपुर भारतवर्षका हीरा (मणि) है।' पण्डितजीकी इस उक्तिसे आधुनिक जगतमें मणिपुरकी ख्याति और भी बढ़ गई।

कहते है कि सृष्टिके समय लाइहराओबा–क्रीड़ा खेली गई। यह मणिपुरकी सबसे पुरानी लीला है। इससे यहाँके विभिन्न प्रकारके लोक-नृत्य, लोक-गीत आदिकी उत्पत्ति हुई। असलमें 'लाइहराओबा' मणिपुरकी संस्कृति है।

आज मणिपुरी नृत्यके नामसे 'रास-लीला' जगत प्रसिद्ध है। यह अत्युक्ति न होगी कि रासकी उत्पत्ति भी लाइहराओबा से ही हुई। पर लाइहराओबा और 'रास' दोनोंका स्थान-अलग-अलग है। ग्रामोंमें ग्रामीण लोग देवी-देवताओंको खुश करनेके लिए प्रति वर्ष उत्सवका आयोजन किया करते है। उसको लाइहराओबाकी संज्ञा दी जाती है। इस अवसरपर ग्रामीण लोग नाचते और गाते है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्राममें श्रीवृद्धि होनेसे या कुलमें श्रीवृद्धि होने से है।

मुख्यतः रास-लीला ऐसे स्थानोंपर खेली जाती है, जहाँ पवित्र स्थान तथा मन्दिर हों; जैसे श्रीगोविन्दजी तथा श्रीविजयगोविन्दजी के मन्दिर (मण्डप)। बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति-भावनाके साथ रास-लीला खेली जाती है और लोग इसे देखते है। लोग इसे गोपनीय समझते हैं। यहाँके लोगोंकी धारणा है कि श्रीकृष्णके प्रति रास-लीला सर्मपित की जानेसे पूर्वजोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

जमानेके अनुसार और समयका रूप बदलनेके साथ-साथ रास-लीलाका कुछ रूप भी बदल गया; जैसे, पहले रास-लीला रंगमञ्चपर, रंगभूमि व स्टेजपर नही खेली जाती थी। आज जहाँ पैसा है, वहाँ रास-लीला खेली जाती है। रास बाजारू चीज हो गई है। आज मणिपुरी कला देशमें ही नही, विदेश तक पहुँच गई है। पर खेद इस बातका है कि आज कला-कलाके लिए नहीं है, कला पैसेके लिए हो गई है।

मणिपुरी तथा उसकी लिपिकी उत्पत्ति

मणिपुरी भाषाकी उत्पत्ति कब हुई और यह कितनी पुरानी भाषा है, इसके सम्बन्धमें कोई ठीक-ठीक नहीं कह सकता; फिर भी यहाँ एक जनश्रुति प्रचलित है कि हरिचक (सत्ययुग) में अतिया गुरु-शिदबा (शिव) ने इस जल-प्लावित भूमि की सृष्टि की। इस भूमिको लीला-स्थल बनाया और एक नया

संसार बसाया। तब उन्होंने अपने सुतों--सनामही और पाखंगबा को शिक्षा-दीक्षा दी। मैतैरोल (मणिपुर) मे ही शिक्षा दी जाती थी।

गुरु (शिव) ने अपने शिष्योंको जो धर्म-ग्रन्थ पढ़ाया था। उसीका नाम 'शिबिगा' (शिवकी आज्ञा) था। सर्व प्रथम जो अक्षर पढ़ाया जाता था उसीका नाम 'शिबाखर' (शिवका अक्षर) था। गुरुने अपने शिष्योंको वरदान दिया था कि 'जिस अक्षरको जानते ही तुम्हें साहित्यका पूरा ज्ञान हो। इसी प्रकार मणिपुरी भाषा और लिपिकी उत्पत्ति हुई।

मणिपुरी भाषा

मणिपुरकी मुख्य भाषा मणिपुरी है। इसको मैतैरोल भी कहते हैं। मणिपुरी पुराने जमानेसे यहाँकी राष्ट्रभाषा रही और आज भी है। इस भाषाको बोलनेवाले लोग भारतके विभिन्न स्थानों तथा पड़ोसी देशों; पाकिस्तान और बर्मामें रहते है। इस भाषाके अलावा मणिपुरके आस-पास पहाड़ी इलाकोंमें बोली जानेवाली लगभग ३० बोलियाँ भी है। मणिपुरमें ऐसी परिस्थिति है कि पहाड़में एक गाँवकी बोली दूसरे गाँवके लोग बोल और समझ नहीं पाते। पहाड़में प्रत्येक गाँवमें अपनी-अपनी बोली है। अतः आदिम जातिके लोग तथा नागा भाई-बहन मणिपुरी माध्यम द्वारा दूसरे गाँवके लोगोंके साथ अपने भाव प्रकट कर बातचीत करते है।

लोग जानते ही है कि यह भाषा बहुत पुरानी है। इस भाषामें बहुत प्राचीन साहित्य है। शिला-लेख भी बहुत मिलते है। इस भाषाके सम्बन्धमें मणिपुरके सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा इतिहासकार पण्डितराज श्रीअतोम्बापू शर्माजी, विद्यारत्न गवेषणा शिरोमणिने एक जगह कहा 'भारतके प्राचीन साहित्य-जगतमे मणिपुरी साहित्यका भी अपना एक स्थान है। भारतके प्राचीन साहित्यमें कृष्ण-यजुर्वेद साहित्य भी एक है। जिस साहित्यके पश्चात् मणिपुरी साहित्य भी एक है।' इस भाषाको कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा गौहाटी विश्वविद्यालयने स्वीकार किया। बी. ए. तक मणिपुरी भाषाकी पढ़ाई होती है।

मणिपुरी साहित्यके ह्रासका कारण

मणिपुरी भाषाके सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री एल. इबुङोहल सिंहजी बी. ए., बी. एल. ने एक जगह कहा है कि सन् १७३२ में मणिपुरमें एक धर्म-युद्ध हुआ था। सिलहट्से शान्तिदास शर्मा नामक एक पण्डित मणिपुरमें आया। वह रामानन्दी धर्मका प्रचारक था। वह राजाकी शरणमें आया। राजाने बड़े प्रेमसे पण्डितका स्वागत किया। शान्तिदास शर्मा मणिपुरमें रामानन्दी धर्मका प्रचार करना चाहता था। अतः उसने इस धर्म पर जोर दिया। उस समयके राजा गरीबनिवाजने भी इस धर्मको चाहा और स्वीकार किया, परन्तु उस समयके गुरु लौरैम्बाखोंगनांगथाबा ने इस धर्मका घोर विरोध किया और कहा कि यह धर्म हमारे धर्मसे कोई दूसरा नया धर्म नहीं है। अतः फिर मणिपुरी समाज तथा जनतामें इस धर्मका प्रचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मणिपुरके अधिकांश लोग गुरु लौरैम्बाखोंगनांगथाबाकी बात का समर्थन करने लगे। एक दो आदमियोंके अलावा राजाकी आज्ञा माननेको सारी जनता तैयार न थी। जिससे नाराज होकर राजाने अपने समयके सब मणिपुरी साहित्य तथा प्राचीन साहित्यके ग्रन्थ जलवा दिए। इतना ही नहीं,

उन्होंने अभिशाप भी दिया था कि 'मणिपुरी–भाषामें गाना नहीं गा सकते। भजन-कीर्तन आदि नहीं कर सकते। पाप होगा। यदि मणिपुरी भाषामें गाना गाए और दिनमें तुम्हारी मृत्यु हुई तो कौएका रूप तथा रातमें तुम मर गए तो उल्लूके रूपमें तुम अपना जन्म ग्रहण करो अर्थात् तुम कौए तथा उल्लूका शरीर धारण करो। पेना (प्राचीन काल का एक बाजा) पर रोए तो नरकमें पड़ जाओ।' पुराने जमानेमें प्रजा राजाको विष्णु समझती थी। राजाकी आज्ञाको ईश्वरका आदेश मानती थी। प्रजा राजासे बहुत डरती थी। वह राजाके समक्ष कुछ नहीं कर सकती थी। अतः राजाके इस शापसे डरते हुए आज तक मणिपुरी गायक अपनी मातृभाषा मणिपुरीमें गाना गानेको तैयार नहीं होते। वे इस भाषामें गाना नही गाना चाहते है। इन कारणोंसे मणिपुरी और उसका साहित्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। राजाको भी पदच्युत किया गया और शान्तिदास शर्माको भी मार डाला गया।

मणिपुरी लिपि

मणिपुरी भाषाकी अपनी लिपि है। उसको मैतैमयेक कहते है। पर अब यह लिपि प्रचलित नहीं है। यह कितनी पुरानी लिपि है और इसका ब्राम्ही लिपिसे सम्बन्ध है या नहीं, इसके सम्बन्धमें कोई भी नहीं बता सकता। साधारणतः देखनेमें तो ऐसा लगता है कि मणिपुरी अक्षर देवनागरी अक्षरके समान है। मणिपुरी अक्षरकी अपनी एक विशेषता है कि स्वर-वर्ण एक ही 'अ' (अंजी) है। 'अंजी माने 'अ' जिसमे मात्राएँ लगानेसे बाकी के अन्य स्वर-वर्ण बन जाते हैं। इसी लिपिमें मणिपुरी भाषाका बहुत प्राचीन साहित्य है। अतः अब इस लिपिकी गवेषणा करने तथा संस्कार करनेकी सख्त जरूरत है।

मणिपुर प्रदेश और हिन्दी

यद्यपि हिन्दी भाषा कभी किसी धर्म विशेषके अनुयायीके साथ नही बँधी रही है। फिर भी मन्दिरों मठों और तीर्थ-स्थानोंमें रहनेवाले साधु-सन्तों और पुजारियोंके विचारोंकी अभिव्यक्तिका वह माध्यम रही। ये सभी लोग चूंकि जनसाधारणके कल्याणका चिन्तन करते थे,अतः इनकी भाषा भी जनताकी ही भाषा थी। इसका एक सबसे बड़ा कारण यह भी रहा कि जनताका बहुत बड़ा अंश इस प्रकारकी भाषामें अभिव्यक्त विचारों को सरलतापूर्वक समझ सकती थी एवं उन्हें हृदयंगम कर सकती थी।

मणिपुरका सम्बन्ध आर्य-संस्कृतिसे अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है। राजकुमारी चित्रांगदा, मणिपुरके राजा चित्र वाहनकी पुत्री थी। राजकुमारी चित्रांगदाके यौवन जन्य अनुपम लावण्य एवं सौन्दर्यसे मोहित होकर अर्जुनने उससे विवाह किया था। चित्रांगदा नाम ही आर्य संस्कृति और संस्कृत भाषाके प्रचलित होनेका संकेत है।

यह सर्व विदित है कि मणिपुरके अधिकांश लोग वैष्णव-सम्प्रदायके है। वे धर्म-परायण, धर्म-निष्ठ तथा धर्म-भीरु हैं। उन्हें हिन्दू-धर्मके प्रति बड़ी श्रद्धा है। तीर्थ-यात्राकी परम्परा व प्रथा वर्षोंसे चली आई है। अतः यहाँके लोग प्रतिवर्ष नवद्वीप, जगन्नाथपुरी, गया, काशी, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार आदिके मन्दिरों तथा तीर्थस्थानोंकी यात्रा करते ही रहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मणिपुरके जन-जीवन पर हिन्दीके संस्कारों का काफी प्रभाव पड़ा।

मणिपुरका सांस्कृतिक सम्बन्ध विशेष रूपसे वृन्दावनसे रहा। फलतः वहाँके मन्दिरों का प्रभाव मणिपुरकी संस्कृति पर बहुत अधिक अंशोंमें पड़ा। मणिपुरके मन्दिरों और वहाँके जन-जीवनमें वृन्दावन की झाँकी सरलतासे मिल सकती है। वृन्दावन की गली-गलीकी ही भाँति मणिपुरके गाँव-गाँवमें और गली-गलीमे राधाकृष्णके मन्दिर मिलते है। इसका परिणाम यह हुआ कि व्रजभाषा एवं ब्रजकी संस्कृति का काफी प्रभाव वहाँके जन-जीवनपर पड़ा। वृन्दावन और राधाकुण्डमें मणिपुरके राजा महाराजाओं द्वारा निर्मित कराये हुए मन्दिर अब तक विद्यमान हैं। इन मन्दिरोंमें कई मणिपुरी रहते है। और ब्रजवासी लोग भी प्रतिवर्ष मणिपुर आते-जाते रहते है। परिणाम यह होता है कि मणिपुरियोंपर ब्रजभाषाका प्रभाव है और यहाँ आनेवाले ब्रजवासियोंपर मणिपुरीका। ये ब्रजवासी मणिपुरी भाषा समझ और बोल लेते है।

इस तरह यह माननेमे कोई आपत्ति नहीं है कि मणिपुरका हिन्दीसे निकट सम्बन्ध रहा है। यहाँके राजा-महाराजाओं, सन्तों, महापुरुषों, कवियों, साहित्यकारों तथा नेताओंने हिन्दीका कभी विरोध नही किया। उन्होने हिन्दीका समर्थन ही किया है। पुराने जमानेमे यहाँके राजाओं और प्रशासकों ने अपने प्रशासनिक कार्योमें हिन्दीको भी स्थान दिया। इसके कई प्रमाण उपलब्ध है।

सिक्का और देवनागरी

पुराने जमानेमें मणिपुरमे जातीय सिक्का चलता था इसको मणिपुरी भाषामे 'शेल' कहते है। 'शेल' में देवनागरी तथा हिन्दीका उल्लेख किया गया था। इससे ज्ञात होता है कि पुराने जमानेमे मणिपुरमें राजा-महाराजाओं और प्रशासकोने अपने दरबारमे और प्रशासनके कार्यमें देवनागरी तथा हिन्दीका प्रयोग किया था।

सनामही मे 'श्री' का उल्लेख

मणिपुरके प्रत्येक घरमे एक-एक गृह-देवता रहता है। उसीका नाम है सनामही। मणिपुरी लोग सनामहीको सूर्य-प्रतीक (सिंबल) मानते है। उसीमें 'श्री' का उल्लेख किया गया था। आश्चर्यकी बात तो यह है कि मणिपुरके बुजुर्ग लोगोंने अपनी भाषा तथा लिपिके रहते हुए भी धार्मिक क्षेत्रमे, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक क्षेत्रमे देवनागरी और हिन्दी को अपनाया था।

अस्त्र-शस्त्र और हिन्दी

पुराने राजा-महाराजाओंके अस्त्र-शस्त्र और कृपाण (तलवार) आदि आज राजमहलमें सुरक्षित रखे हुए है। इससे प्रतीत होता है कि पुराने जमानेमें राजाओंने अपने अस्त्र-शस्त्र और कृपाण (मणिपुरीमे थांगशांग कहते है) पर देवनागरी और हिन्दीका प्रयोग करवाया। कृपाण चलानेमें जो बोली बोली जाती थी, वह हिन्दी थी।

पद और हिन्दी

मणिपुरमें पुराने जमानेमें लोइशंग (कोर्ट, पञ्चायत, दरबार) की प्रथा प्रचलित थी। लोइशंग

(कार्यालय) कार्यकर्ताओं, कर्मियों और पदाधिकारियोंको राजा व प्रशासक की तरफसे पद व उपाधि दी जाती थी। यह उपाधि और पद हिन्दीमें ही दिया जाता था।

सेनापति टेकेन्द्रजीत के युगमें हिन्दी

सन् १८९० का समय मणिपुरके भाग्याकाशमे दुर्भाग्यपूर्ण था। जिस समय ब्रिटिश सरकारने मणिपुरपर आक्रमण किया और अधिकार कर लिया। मणिपुरके सिंह वीर सेनापति व जनरल टेकेन्द्रजीत ब्रिटिशके जालमें फँस गए। उनपर मुकदमा चलाया गया और दोष लगाया गया। मुकदमेके वक्त उन्होंने अपना बयान (स्टेटमेन्ट) हिन्दीमे ही दिया था और उन्होंने अपने हस्ताक्षर हिन्दीमे किए थे। उस समय उन्होंने अपना सारा काम हिन्दीमे किया था। अतः इन कारणोसे हम जान सकते है कि मणिपुरमे हिन्दीका काम नया नहीं है। विगत कई वर्षोसे मणिपुर हिन्दीका एक क्षेत्र रहा, इसमे कोई शक नहीं है।

महोत्सव और हिन्दी

मन्दिरमे सब लोग मिल कर भोग चढ़ाये जानेके बाद भोजन करते है, या किसीके निमन्त्रण पर लोग भोजन करते है, उसको 'उत्सव' या 'महोत्सव' की संज्ञा दी जाती है। भोजनके वक्त सबसे प्रथम पंक्तिमें गुणवान पण्डित ब्राह्मण बैठते है। इसके बाद उम्र, अवस्थाके अनुसार साधु-वैष्णव लोग बैठते है और भोजन करते है। श्रीगणेश व शुरूसे पहले सर्व प्रथम पण्डित-पंक्तिमे बैठनेवाले ब्राह्मण बोलते है, वे हिन्दी ही बोलते है। जब तक ब्राह्मण नहीं बोलेंगे, तब तक कोई भी भोजन नही कर सकता, चाहे बच्चा हो क्यों न हो; ब्राह्मणकी बोली इस प्रकारसे है:--

महाप्रसाद लेवानन्द हरि बोल।

[महाप्रसाद आनन्दके साथ ले लो, भोजन पाओ और हरि (श्रीकृष्ण) बोलो।]

संकीर्तन और हिन्दी

मणिपुरी समाजमे संकीर्तन का अपना एक महत्त्व है। यहाँके लोग संकीर्तनका बहुत आदर और सम्मान करते है। लोगोंका विश्वास है कि संकीर्तनमे ही भगवान है। इसी सम्बन्धमें भगवानकी एक उक्ति है :--

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !

लोग बंगला व ब्रजबुलीमें ही सकीर्तन करते है। आजकल लोग मणिपुरी भाषामे गाने लगे है। संगीत तथा संकीर्तन प्रारम्भ होनेसे पहले एक ब्राह्मण बोलता है, उसको मणिपुरी भाषामें 'माण्डप मपू' (मण्डपका (स्वामी व प्रधान पुरुष)की सज्ञा दी जाती है। उसका बहुत मान है। ऐसे ब्राह्मण हिन्दीमे ही जय-ध्वनि करते है :--

श्रीमद्राधा-गोविन्द, बल्लभ प्रेमसे कह।

[श्रीमद् राधा-गोविन्द तथा वल्लभ (वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य)] उनका नाम प्रेमसे कहो और स्मरण करो।

गोपाष्टमी और ब्रजबोली

मणिपुरमें कार्तिक शुक्ला अष्टमीको राष्ट्रीय उत्सवके रूपमें दो मन्दिरों—श्रीगोविन्दजीके मण्डप (राजमहल) तथा श्रीविजयगोविन्दके मण्डप पर प्रति वर्ष गोपाष्टमीका आयोजन किया जाता है। इस अवसरपर नृत्य होता है। प्रारम्भसे अन्त तक राम-कृष्ण तथा गोप व्रजबोलीमें ही गाते हैं। इस नृत्य पर व्रजबोलीका पूरा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार मणिपुरके जन-जीवनोंपर हिन्दीका प्रभाव पड़ा है। मणिपुरका हिन्दीसे सम्बन्ध आजका नहीं, सैकड़ों वर्षसे है। अतः यह सम्बन्ध अविच्छिन्न है। क्योंकि मणिपुरियोंके नैतिक जीवन पर काफी हद तक हिन्दीका असर हुआ।

मणिपुरमें हिन्दी-प्रचारका श्रीगणेश

मणिपुर राज्यके ग्रामोंके नाम कुछ खण्डहरोंकी जाँच, मन्दिरोंके निर्माण तथा उनकी व्यवस्था और मूर्तियाँ इस बातका प्रमाण हैं कि संस्कृत और हिन्दी-भाषी राजाओंका इन प्रान्तोंमें राज्य था। बिशमाक नगर और तामेश्वरी कुण्ड, ब्रह्म कुण्ड, लोहितमें मायापुर, सुबन श्रीमें, दुईमुख तेजपुर और कमांगमें यह घोषित करते है कि यहाँ संस्कृत और हिन्दी किसी मात्रामें प्रचलित थी और किसी अज्ञात कारणसे बिलकुल लुप्त हो गई। भाषाएँ कैसी बनती बिगड़ती हैं, इसका उदाहरण मणिपुर भाषाकी अद्‌भुत कहानी है। बहुत समयसे न जाने कब और कैसे इनकी अपनी भाषाकी लिपि खो गई। अब इनकी भाषा अपनी है, पर उसकी लिपि बंगला है। संस्कृत जाननेवालोंने हिन्दीकी लिपि क्यों न अपनाई ? मणिपुर भाषाकी लिपि कैसे मिट गई ? और बंगला लिपि कैसे प्रचलित हो गई, इसका प्रमाण कुछ ताम्र-पत्रों तथा कुछ पुराने बचे-खुचे ग्रन्थोंसे मिलता है, पर दुख इस बातका है कि यहाँके लोग अब पुरानी लिपि पढ़ नहीं पाते। कुछ ऐसे पण्डित अवश्य है जो खोज करनेपर उस लिपिके अक्षर और शब्दोंका अर्थ लगाते अवश्य है, उन अर्थोंपर भी पण्डितोंमे आपसमे मतभेद हो जाता है। पण्डित लोग अभी तक पूरी तरह पुरानी लिपिके अन्तरोंसे बने हुए शब्दोंके उच्चारण और अर्थको सिद्ध नहीं कर पाए हैं। मणिपुरी लिपिके कुछ अक्षर देवनागरी लिपिसे मिलते है, कुछ चीनकी लिपि जैसे हैं, कुछ पालिके अक्षरों जैसे और कुछ शायद किसी अन्य लिपिसे नही मिलते। मणिपुरी बोलीमे कुछ शब्द हिन्दीके हैं। इन शब्दोंके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वे शब्द मणिपुरीमें कब और कैसे सम्मिलित हो गए। पृथ्वी, राजा, प्रजा, शान्ति इत्यादि शब्द अब भी मणिपुरीमें बोले जाते हैं, पर इससे अधिक कोई विशेष सम्बन्ध नहीं।

कहा जाता है कि मणिपुरी भाषाकी अपनी लिपि नष्ट हो जानेका उत्तरदायित्व मणिपुरके एक राजापर है। अठारहवीं शताब्दीमें पामहैबा नामक एक मणिपुरके राजा थे। वे इतने लोकप्रिय हुए कि "गरीब नवाज" की उपाधि मिली थी। ये अपनी उपाधिसे इतने प्रसिद्ध हुए कि उनका नाम ही गरीब नवाज पड़ गया। अधिकतर मणिपुरी अब भी इन्हें इनके नाम से नहीं वरन् इनकी उपाधिसे ही इन्हें सम्बोधित करते हैं। गरीब नवाज कुछ साल राज्य करनेके बाद वैष्णव धर्मके प्रचारक गोस्वामी शान्तिदाससे अति प्रभावित हुए। राजा पामहैबाने पहले स्वयं मैतेई धर्म (जो शिवकी उपासनामें शैव्य

धर्म ही मानते थे।) छोड़कर वैष्णव-धर्म ग्रहण किया, फिर राज्यके कर्मचारियों तथा राजमहलके सभी लोगोंको वैष्वण धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया। देखते-देखते बहुतसे मैतैई राजाको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे वैष्णव हो गए, पर ग्रामोंमें, राज नगर और राजमहलसे दूर रहनेवाले लोग अब भी अपना पुराना धर्म ही मानते थे। कुछ ही कालमें गोस्वामी शान्तिदासके आदेशसे अथवा अपने राज्य के सम्पूर्ण रूपसे वैष्णव हो जानेकी चाहसे उन्होंने मैतैई धर्मकी मनाही कर दी और सारे मैतैई धर्म-ग्रन्थोंको जलवा डाला। उस समय मणिपुरमें शिक्षा कुछ पण्डितों तक ही सीमित थी। और अधिकांश धर्म-ग्रन्थों की पुस्तकें मणिपुरी लिपिमे ही थीं। चूंकि जनतामें विद्याका प्रचार एवं प्रसार अधिक नहीं था, अतः इन पुस्तकोंके जल जानेपर मणिपुरी लिपि ही जल गई और पामहैबा गरीब-निवाज, आदेशका काम तथा धर्मका प्रचार बंगला लिपिमें होने लगा। पाठशालाओंमें केवल बंगला लिपि सिखाई जाती थी और मैतैई धर्म पालन करनेवालोंको दण्ड दिया जाता था। कहा जाता है कि कुछ पण्डित इस अन्यायके विरोधमें कुछ ग्रन्थ बचाकर अपने साथ जंगलोंमे ले गए और वहाँ जा बसे। इन्ही पण्डितोके वंशजोके पास वे मैतई लिपि के ग्रन्थ है। इस युगके लोग तो उन्हें पढ़ भी नहीं सकते। और यह सब ग्रन्थ और कुछ बचे हुए ताम्र-पत्र ही इस सत्यका प्रमाण है कि मणिपुरी लिपि कभी रही अवश्य थी। सबसे आश्चर्यजनक तो यह बात है कि राजा पामहैबाकी उपाधि 'गरीब-निवाज' न तो संस्कृत है, न हिन्दी और न मणिपुरी। गरीब नवाज उर्दू है। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मणिपुरकी प्रजाने यह उपाधि इन्हें कैसे दी? वास्तवमे बात यह है कि मणिपुरमे संस्कृतका ही नही, अपितु उर्दूका भी कभी प्रचार था। इतिहासमें लिखा है कि १६६२ में मीर जुमलाने आसामपर आक्रमण किया था और बहुतसे राज्योंपर विजय पाई थी। हो सकता है उसी सम्पर्कके परिणाम स्वरूप मणिपुरीमें उर्दू भाषाके कुछ शब्द प्रचलित हो गए हों। मणिपुरमें अब भी मुसलमान बसते है, पर वे अब उर्दू नही जानते।

सुनते है कि गरीब-नवाजने मैतई धर्मके मन्दिरोंमेकी मूर्तियाँ नष्ट करवा दीं, उनके भजनों और पूजन करनेवालों पर मृत्यु-दण्ड लगा दिया और अपने राज्यमें केवल वैष्णव धर्मका प्रचार किया। हो सकता है कि ऐसी व्यवस्थाके पीछे गोस्वामी शान्तिदासका अनुरोध अथवा ऐसा आदेश हो कि नए धर्मके साथ नई लिपि हो, ताकि यदि कुछ ग्रन्थ बचे भी हों तो आनेवाले नए युगमे उन्हें कोई पढ़ न सके और फिर पुराना धर्म कभी वैष्णव धर्मको पुनः मिटा न सके।

समयकी पुकार व माँगके अनुसार देशमें हिन्दीका प्रचार व प्रसार होने लगा। भारतके अन्य प्रान्तोंमे हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके कार्यका मणिपुरपर असर होना स्वाभाविक ही था। यहाँके लोगोंमें भी हिन्दी-प्रचारके कार्यके प्रति प्रेम जागा। परिणामतः सन् १९२७–२८ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी तरफसे यहाँ हिन्दीके प्रचार-कार्यका श्रीगणेश हुआ। हिन्दीके प्रचार-कार्यका श्रीगणेश तो हो गया, परन्तु उस समय हिन्दीके इस कार्यमें काफी रुकावटें हुई। खद्दर-पोश व्यक्ति और हिन्दी-प्रचारकको देश-विद्रोही माना जाता था। तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्टका यह आदेश था कि मणि-पुर स्टेटमें बाहरके आदमी तथा नेता आकर हिन्दीका प्रचार-कार्य नहीं कर सकते और इस सम्बन्धमें भाषण

वगैरह नहीं कर सकते। ऐसा मालूम होता है कि उस समय उन्हें हिन्दीके प्रचार-कार्यसे काफी डर लगता था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी तरफसे परीक्षा-केन्द्र खोल दिया गया। 'राष्ट्रभाषा' नामक परीक्षा ली गई। इसी प्रकार बड़ी कठिनाइयोंका सामना करते हुए सम्मेलनने हिन्दी-प्रेमियोंके सहयोगसे यहाँ हिन्दीका प्रचार-कार्य शुरू किया। इस समय हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियोंकी संख्या नगण्य थी।

महात्मा गाँधीजीकी प्रेरणा से सन् १९३६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। इस संस्था का केन्द्रीय कार्यालय भारत के राष्ट्र-तीर्थ वर्धामें रखा गया। इस केन्द्रीय कार्यालयके द्वारा देशके विभिन्न कोनों और हिन्दीतर प्रान्तों में राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य करनेके लिए राष्ट्रभाषा हिन्दीके योग्य प्रचारक तथा सञ्चालक भेज दिए गए। देशमे राष्ट्रभाषाका आन्दोलन जोरोसे सक्रिय रूपमें होने लगा। मणिपुरमें भी राष्ट्रभाषा प्रचारका सुसन्देश आ पहुँचा।

मणिपुरमें सम्मेलन तथा समितिसे पहले हिन्दीका कार्य करनेवाली कोई संस्था नहीं थी। असलमे सोचा जाए और विचार किया जाय तो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्रान्तीय समितिने ही मणिपुरमे हिन्दीका काफी काम किया है। अतः आज इस संस्थाको जनतामें बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई है। आशा है कि भविष्यमे भी इस संस्थाके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी-सीखनेमे मणिपुरी जनताको बड़ी सुविधा होगी।

मणिपुरकी घाटी और पहाड़ोंमें हिन्दी भाषाका प्रचार हो रहा है। यहाँके लोगोंमें विशेष कर नागाओके उन्नतिशील ग्रामोंमे हिन्दीको ओर रुचि है। यहाँके विद्यालयोंमे कुछ कक्षाओं तक हिन्दी भाषा का अध्ययन अनिवार्य है। पर खेद है कि दसवीं कक्षा तक हिन्दी पढे-लिखे विद्यार्थी हिन्दी पढ़ सकते है. पर ठीक से बोल नहीं पाते और कभी-कभी तो जो वे पढ़ते लिखते हैं वह पूर्णतः समझ भी नहीं पाते। इसका मुख्य कारण शायद यह है कि स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापक अधिकतर मणिपुरी है, जिन्होंने स्वय इसी प्रकार हिन्दी पढ़-लिखकर हिन्दीकी योग्यता प्राप्त की है। वे स्वय पढ़ सकते है, लिख सकते हैं, पर हिन्दी बोल नहीं सकते। और वार्तालापकी हिन्दी ठीकसे समझ भी नहीं पाते। यह समस्या भी वैसी ही है, जैसी हिन्दी बोलने वालोके लिए प्रायः उन गांवोंकी स्कूलोंमे होती है, जहाँ हिन्दी बोलने वाले अध्यापक थोड़ी सी किताबी इंग्लिश पढ़कर इगलिश पढ़ाते है, अथवा हिन्दी भाषा वालेकी अपने ही भाषाके पण्डितसे मणिपुरी पढ़ने पर होती है। ऐसे विद्यार्थी किसी तरह किताब रटा रटा कर पास हो जाएँगे। किताबी मणिपुरी पढ़कर कुछ समझ भी लेगे। कुछ लिख लेंगे। पर वार्तालापमें न मणिपुरी ठीकसे बोल पाएँगे और न ठीकसे समझ पाएँगे।

आश्चर्यजनक बात यह है कि यहाँके लोग जो ऊँची कक्षा तक हिन्दी पढ़ते हैं, बहुत ही शुद्ध और वार्तालापके लिए क्लिष्ट हिन्दीका प्रयोग करते है। उच्चारण मे थोड़ा भेद होता है, पर भाषा एकदम शुद्ध होती है। अधिकतर हिन्दी-भाषी लिखनेमें शुद्ध लिखते है, पर बोलनेमें हिंदुस्तानी ही बोलते हैं। एक तरहसे कहा जा सकता है कि हमारी लिखनेकी हिन्दी भाषा और बोलनेकी भाषामें विशेष अन्तर होता है। मणिपुरमें ऐसा नहीं है। जो अरुचि से केवल परीक्षा पास करनेको हिन्दी पढ़ते है, वे हिन्दी न तो बोल ही सकते हैं और न बोली हुई हिन्दी समझ ही सकते हैं, पर जो उच्च श्रेणीके विद्यार्थी है—वे कुछ सही और

स्वच्छ हिन्दी बोलते हैं। हिन्दुस्तानी यहाँ बाजारकी भाषा कहलाती है। यह भी साहित्यिक हिन्दुस्तानी नहीं है, टूटी-फूटी हिन्दी है।

मेरा अनुमान है कि हिन्दी-प्रचार और हिन्दीका स्कूलोंमे अनिवार्य होनेसे अधिक हिन्दी सिनेमाओं ने यहाँके विद्यार्थियोंको हिन्दी समझना सिखाया है। यह एक प्रकार से श्रव्य दृश्य शिक्षा है। पर सिनेमा इन्हें हिन्दी समझना अधिक सिखा पाया ! हिन्दीका इस देशमें अधिक प्रयोग न होनेसे जहाँके लोग सहज भावसे हिन्दी बोल नहीं पाते।

किसी भी शिक्षाका की सफलताके लिए यह आवश्यक है, कि उस भाषाको अधिकाधिक बोला जाए। यदि शिक्षा विभाग, विशेष ध्यान दे तो यह कमी भी दूर हो सकती है। पहले तो कोई भी भाषा सिखानेवाला उस भाषाका बोलनेवाला होना आवश्यक है। दूसरे किताबी परीक्षाके साथ बातचीतकी परीक्षा और उसके पुरस्कारों को बढ़ानेसे विद्यार्थियोंकी इस शिथिलताको दूर करने लिए उत्साहित कर अधिकाधिक बोलनेकी ओर अग्रसर करेगी। हिन्दी नाटक प्रतियोगिता, हिन्दी विषय वाद विवादमें अच्छे पुरस्कार भी बहुत कुछ भाषाको सफल बना सकते हैं। नहीं तो किसी भाषाकी लिपिको पढ़-लिख लेना, भाषाका मुख्य हेतु पूरा नहीं कर सकता।

मणिपुरके स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेकी कई संस्थाएँ है, जो हिन्दी-प्रचारके कार्यमे सहयोग दे रही है। उन्हें अपने इस प्रयत्नमे कुछ सफलता भी मिली है, अभी तक हिन्दी बोलना तथा पूर्णतः बोली हुई हिन्दी या हिन्दुस्तानी समझना यहाँके हिन्दी छात्रोको कठिन ही है।

मणिपुरमें मणिपुर राष्ट्रभाषा समिति, मणिपुर हिन्दी प्रचार सभा, मणिपुर हिन्दी परिषद, नागरी लिपि प्रचार सभा इत्यादि संस्थाएं चल रही हैं। स्कूलोंमे कूंगलातोंबी हिन्दी हायर सेकण्डरी, पूर्व भारत हिन्दी हायस्कूल, भैरवदान हिन्दी स्कूल, जय हिंदी मात्री पुखाई संस्थाएँ जो मणिपुरमे हिन्दीकी प्रचार कर रही है। वैसे प्रायः सभी सरकारी स्कूलोंमे हिन्दी सिखाई जाती है। हर साल हिन्दीमें विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होते है। आशा है, हिन्दी सीखनेवाले विद्यार्थियोंको सुविधा और प्रोत्साहन देनेसे मणिपुरमें अवश्य हिन्दी भाषाकी पूर्ण सफलतामें देर नहीं लगेगी।

बंगालकी हिन्दीको देन

डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

भारतमें आर्यभाषाके इतिहासकी आलोचनाको सुविधाकी दृष्टिसे मोटे तौरपर तीन स्तरोंमें विभक्त कर लिया गया है। प्रथम स्तरका नामकरण हुआ है—(१) आदि भारतीय-आर्य, छान्दस या वैदिक संस्कृत व प्राचीन लौकिक संस्कृत—यह आद्यस्तरकी प्रकाशक या प्रतिभू स्थानीय भाषा है; द्वितीय स्तर है (२) मध्य भारतीय-आर्य, या मध्ययुगीन भारतीय-आर्य—पालि, भारतमें तथा भारतके बाहरके शिलालेख व साहित्यमें व्यवहृत विभिन्न प्रकारकी प्राकृतें, तथा अपभ्रंश—ये सारे मध्ययुगीन भारतीय आर्यके निदर्शन हैं। अन्तमें आता है तृतीय या आधुनिक स्तर—(३) नव्य अथवा आधुनिक भारतीय-आर्य—भारतमें (भारत-के बाहर भी) प्रचलित आजकालकी आर्य भाषाएँ—हिन्दी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंहली आदि भाषाएँ इसके, इस पर्यायके अन्तर्गत आती हैं। अत्यधिक वैज्ञानिक मीन-मेषके चक्करमें न पड़-कर साधारणतः इन तीन स्तरोंको क्रमशः (१) "संस्कृत", (२) "प्राकृत" तथा (३) "भाषा" का नाम दिया जा सकता है। धारावाहिक तथा स्वाभाविक परिवर्तनके फलस्वरूप "संस्कृत" प्राकृत बन गई, बादमें "प्राकृत" अपभ्रंशके माध्यमसे होकर आधुनिक आर्य "भाषा" में परिणत हो गई। भाषाकी धारा नदीकी भाँति प्रवाहित होती रहती है जो सदा परिवर्तनशील है। भाषाकी गतिमें कुछ विशेष-विशेष लक्षणोंको ध्यानमें रखकर इस भाषा-प्रवाह अथवा परिवर्तनकी धाराको विभिन्न युगोंमें विभक्त किया जा सकता है। आलोचनामें भी सुविधाके लिए ऐसा किया जाता है। कारण और कार्यका विवेचन, परम्परा या सिलसिला अर्थात् शृंखलाका पौर्वापर्य निश्चित करनेके लिए कुछ तिथियोंका निर्देश इस युग-विभाजनके लिए अपरिहार्य बन जाता है। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि भारतीय आर्यभाषाके इन तीनों स्तरों अथवा परम्परागत इतिहासका काल निर्णय इस प्रकार किया गया है :—

(१) आदि भारतीय-आर्य अथवा "संस्कृत" युग—old Indo-Aryan (जर्मन भाषामें: Alt Indo-Arische)—भारतमें आर्योंके आगमनके समयसे बुद्धदेव तथा महावीरके समय तक—अनुमानतः ईसापूर्व १५०० या १४०० से ईसापूर्व ६०० तक;

(२) मध्ययुगीन भारतीय आर्य अथवा "प्राकृत" युग—Middle Indo-Aryon (जर्मन भाषामें: Mittel Indo-Arische) ईसापूर्व ६०० से १००० ईस्वी तक; तथा

इस स्तरको पुनः चार उपस्तरोंमें विभाजित किया जाता है :—

(क) आद्य या प्राथमिक प्राकृत—ईसापूर्व ६०० से २०० तक;

(ख) प्रथम सन्धि युगकी प्राकृत—ईसापूर्व २०० से २०० ईस्वी तक;

(ग) साहित्यिक प्राकृतका स्तर—२०० ईस्वीसे ६०० तक तथा

(घ) द्वितीय सन्धि युगकी प्राकृत या अपभ्रंश—६०० ईस्वीसे १००० तक।

(३) नव्य भारतीय आर्य अथवा "भाषा" युग—New Indo-Aryan (जर्मन भाषामें: New Indo-Arische)] १००० ईस्वीके पश्चात्।

इन विभिन्न स्तरों तथा उपस्तरोंके लक्षणों और इतिहासको लेकर अभी विवेचन करनेका अवसर नहीं है तथा इन विषयोंपर यथेष्ट आलोचना भी हो चुकी है। संस्कृत (वैदिक सहित), प्राकृत, अपभ्रंश, भाषा—इस धारामें, आदि भारतीय आर्य-भाषाको आधुनिक भारतकी नव्य भाषा तथा उपभाषा-समूहमें परिणत किया है।—हिन्दी (पँछाही या पश्चिमी हिन्दी—विशेषतः ब्रजभाषा और खड़ी बोली), कोसली (तथा-कथित पूर्वी हिन्दी—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी), भोजपुरी, मैथिली व मगही, बंगला, ओड़िया, असमिया, हलवी, मराठी व कोंकणी, गुजराती, राजस्थानी, सिन्धी व कच्छी, पूर्वी पंजाबी या पंजाबी, हिन्दी या लहन्दी या पश्चिमी पंजाबी, पश्चिमी हिमाली, मध्य हिमाली (गढ़वाली व कुमायूँनी) तथा पूर्वी हिमाली (नेपाली, गुरखाली या खसकुंरा)—ये सारी आधुनिक भारतीय भाषाएँ और उपभाषाएँ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाकी—वैदिक जिसका प्रथम साहित्यिक रूप है, चरम परिणति हैं।

लोगोंकी बोलचालमें संस्कृत, प्राकृत व भाषा–इन तीन स्तरोंमेंसे होती हुई अपनी गति अव्याहृत रख सकी। किन्तु ईसापूर्व १५०० से १००० ईस्वीकी प्रायः ढाई हजार वर्षकी लम्बी अवधिमें जब "संस्कृत" तथा "प्राकृत" अर्थात् आदि भारतीय आर्य तथा मध्ययुगीय भारतीय-आर्य भाषाकी गति प्रवाहित हो रही थी, तब कथ्य भाषाके आधारपर, उसके सहारे ही धीरे-धीरे कई एक साहित्यिक भाषाओंका भी निर्माण होता रहा और सभीने उन साहित्यिक भाषाओंको सम्मानके साथ स्वीकार कर लिया, फलस्वरूप मौखिक बोलचालकी कथ्य-भाषा इन सारी साहित्यिक भाषाओंके प्रभावमें व दबावमें पड़कर प्रायः एक प्रकारसे लुप्त-सी हो गई, ढँक सी गई। उदीच्य अर्थात् उत्तर-पश्चिम पंजाबके आर्यभाषी जन समाजमें प्रचलित "लौकिक" या कथ्य भाषाके आधारपर तथा ऋग्वेदादि प्राचीन वेद-संहितामें व्यवहृत प्राचीनतम साहित्यिक भारतीय आर्यभाषा वैदिक या छान्दसके आधारपर ईसापूर्व प्रथम सहस्रके प्रथमार्द्धमें ही "संस्कृत" भाषा, Classical Sanskrit अथवा "लौकिक संस्कृत" का रूप प्रस्तुत हो गया। ईसापूर्व पाँचवी शताब्दीमें (ईसापूर्व ५००–४०० शतकमें) उदीच्यके अधिवासी, सिन्धु नदीके तटपर आधुनिक अटक नगरके समीप शालातुर ग्राममें जिनका गृह था, उन महर्षि पाणिनिने इस लौकिक संस्कृतका जो व्याकरण रच डाला, उसीके द्वारा इस भाषाका स्वरूप सदाके लिए स्थिर हो गया। पाणिनिने अपने इस अष्टाध्यायी व्याकरणमें छान्दस अथवा वैदिक संस्कृतके प्रयोग तथा नियमका पूरा उल्लेख किया है। वैदिक संस्कृतकी उत्तराधिकारिणी प्राचीन व मध्ययुगके भारतकी मुख्य साहित्यिक भाषाके रूपमें, संस्कृत भाषा, इस प्रकार भारतीय संस्कृत,

प्रधानतम प्रकाश भूमिके रूपमें प्रतिष्ठित हुई। सदासे भारतमें "देवभाषा" के रूपमें संस्कृत मर्यादा व प्रतिष्ठा पाती आ रही है और पिछले ढाई हजार वर्षोंकी अवधिमें संस्कृतमें साहित्य रचना, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन आदि गम्भीर विषयोंकी ग्रन्थ रचना कभी बन्द नहीं हुई—काश्मीरसे केरल, अफगानिस्तानसे ब्रह्मदेव तक भारतके इस विशाल भूखण्डमें संस्कृतने ही केवल संस्कृतिकी स्वर्णश्रृंखला बनकर खण्ड, छिन्न, विक्षिप्त समस्त भारतको एक धर्म-राज्य पाशमें बाँध रखा है। बादमें हिन्दू सभ्यताके—ब्राह्मण्य तथा बौद्ध सभ्यताके प्रचारके साथ-साथ सिंहलमें, इन्दोचीनमें (बर्मामें, श्याममें, कम्बोजमें, चम्पामें), इन्दोनेशियामें, (यवद्वीपमें, बलिद्वीपमें, बोर्नियो आदिमें) तथा तिब्बतमें और मध्य एशियामें, चीनमें, सुदूर जापानमें, संस्कृतने प्रसार लाभ किया। संस्कृतके बराबर-बराबर संस्कृतकी प्रतिष्ठाको धक्का न लगाकर, बल्कि उस प्रतिष्ठाको और भी सुदृढ़ बनाकर कई एक साहित्यिक भाषाएँ भारतीय आर्यभाषाके मध्ययुगके इतिहासमें पनपने लगीं। वे भाषाएँ इस प्रकार हैं :—

(१) महाराज अशोकके शिलालेखोंमें तथा अन्यत्र व्यवहृत उत्तर पश्चिमी, दक्षिण-पश्चिमी और पूर्वी, इन तीनों प्रकारकी प्राकृत।

(२) पालि; मूलतः शूरसेन या मथुरा अञ्चलकी भाषापर आधारित—मगधकी भाषापर नहीं—यह हीनयान बौद्धोंके थेरवादी सम्प्रदायकी धार्मिक-साहित्यिक भाषाके रूपमें ईसाके जन्मकालके आसपासके समय मान ली गई थी (सिंहलमें तथा अन्यत्र भी)।

(३) अर्धमागधी प्राकृत—जैनगणोंके प्राचीनतम धर्म साहित्यकी भाषा—इस भाषाका प्राचीनतम रूप यथायोग्य रूपसे सुरक्षित नहीं रखा जा सका।

(४) बौद्ध संस्कृत अथवा गाथा—विभिन्न प्राकृत कथ्य-भाषाओंको यथासम्भव संस्कृतके रंगमें रँगने तथा संस्कृतके ढंगपर प्राकृतको ढालनेकी चेष्टाके फलस्वरूप ईसाके जन्मके कुछ पूर्वसे ही संस्कृत-प्राकृत मिश्रित साहित्यकी यह अभिनव भाषा दिखाई देने लगी थी—इसमें विराट बौद्ध साहित्य रचा गया है। इस साहित्यमें महायान बौद्धोंने अपने धर्मशास्त्र ग्रन्थोंको सुरक्षित रख छोड़ा है।

(५) ब्राह्मण्य, बौद्ध तथा जैन साहित्यमें—काव्योंमें, धर्मविषयक ग्रन्थोंमें, कविताओंमें, तथा संस्कृत नाटकोंमें, व्यवहृत विभिन्न प्रकारकी प्राकृत, जैसे शौरसेनी, महाराष्ट्री, "गान्धारी" या मध्य एशियामें प्राप्त उत्तर-पश्चिम पंजाबकी भाषा। तथा, मध्यमयुगीन भारतीय आर्यका—अर्थात् प्राकृतका—अन्तिम रूप,

(६) "अपभ्रंश"। आधुनिक भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे यह अपभ्रंश प्राकृतकी अन्तिम अवस्था अथवा स्तरका साधारण नाम है। विभिन्न अञ्चलोंमें व्यवहृत प्राकृत (जैसे "मागधी", "अर्ध मागधी", "शौरसेनी", "गान्धारी", "ब्राचड़", "सौराष्ट्री") तथा उन्हीं अञ्चलोंसे उद्भूत आधुनिक भाषाओंके बीच (बंगला, ओड़िया, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, पंजाबी, हिन्दीकी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, नेपाली, गढ़वाली, कुमायूंनी प्रकृतिकी) यह स्तर जैसे 'संयोग सेतु' है। "प्राकृत" के और "भाषा" के बीच जैसे मिलन क्षेत्र है। विभिन्न प्रादेशिक अपभ्रश भी कई रहे होंगे; किन्तु एक मात्र शौरसेनी अपभ्रंशके सिवाय दूसरोंका कोई निदर्शन उस प्रकार प्राप्त नहीं होता।

जिस समय आधुनिक आर्यभाषाओंने अपना-अपना नवीन रूप धारण किया था यानी ईसाके १००० वर्षके कुछ अनन्तर, भारतमें कई साहित्यिक भाषाएँ विशेष रूपसे प्रचलित थीं :—

(१) संस्कृत—खूब उन्नत, बढ़ी-चढ़ी और अुसका खूब बोलबाला था, सभी उसे देवभाषाके रूपमें जानते थे, भारतमें सभी जगह संस्कृतके पण्डित-विद्वान पाये जाते थे और उसका विराट साहित्य और भी वृहद्, समर्थ तथा पुष्ट होता जा रहा था।

(२) विभिन्न प्रकारकी प्राकृतें—इनका साहित्यिक प्रयोग पाली-रूपमें भारतके बाहर सिंहलमें तथा बर्मामें विस्तृत होता जा रहा था और जैनोंके बीच विभिन्न प्राकृतोंमें खूब जोरोंसे साहित्य-रचना हो रही थी। ब्राह्मण पण्डितोंके लिखे संस्कृत नाटकोंमें कहीं-कहीं कुछ-कुछ प्राकृतोंका प्रयोग भी होता था। इसके अलावा ईसाके जन्मके प्राय: ८०० वर्ष पश्चात्;

(३) शौरसेनी अपभ्रंश एक लोकप्रिय साहित्यकी भाषाके रूपमें माना जाने लगा। यह एक ओर प्राकृतके प्रतिस्पर्धीके रूपमें दिखाई दिया तो दूसरी ओर विभिन्न आधुनिक भाषाओंकी अव्याहत गतिको, साहित्यमें उनके प्रयोगको एक सीमातक रोकता दिखाई दिया। अन्यान्य अपभ्रंशोंकी तुलनामें शौरसेनी अपभ्रंश उत्तर भारतमें सर्वत्र एक विशिष्ट सम्मान तथा लोकप्रियताका अधिकारी बन गया। आधुनिक पश्चिम उत्तर-प्रदेश तथा उससे सटे राजस्थानकी लोकभाषा अथवा मौखिक भाषाके आधारपर यह शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषाके रूपमें विकसित हो गई। पूर्व पंजाबकी भाषा, गुजरातकी भाषा इस शौरसेनी अपभ्रंशके बहुत ही पास की थीं, इसलिए कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत स्थानीय रूपभेद रहने पर भी, यह शौरसेनी अपभ्रंश अथवा "नागर" अपभ्रंश संस्कृत तथा जैन प्राकृतके बराबर सहज ही में अपना स्थान बना ले सकी। उस समय समग्र उत्तर-भारतमें क्षत्रिय राजपूत राजाओंका युग था। राजस्थानमें, गुजरातमें, पंजाबमें, उत्तर-प्रदेशमें, सुदूर बंगाल और नेपालमें—जहाँ कहीं भी राजपूत राजवंश अथवा राजपूतोंके साथ सम्पर्क स्थापित अन्य हिन्दू राजवंश राज्य करते थे, वहीं शौरसेनी अपभ्रंशको थोड़ी-बहुत स्वीकृति मिल ही गई। उस युगके प्रधान जनप्रिय साहित्यके योग्य लोकभाषाके रूपमें इसका प्रचार होता गया। राजपूत राजाओंका शौर्य-पराक्रम, उनका साम्राज्य, सामयिक तथा राजनैतिक जगतमें उनकी सर्वजन स्वीकृत प्रतिष्ठा, इन सबने मिलकर उनके द्वारा पृष्ठपोषित और उनकी राजसभाओंके कवियों तथा अन्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त इस शौरसेनी अपभ्रंशकी मर्यादाको और भी बढ़ा दिया।

इस कारण उधर पश्चिम पंजाब, सिन्ध, गुजरात और महाराष्ट्रसे नेपाल और बंगाल तक समस्त उत्तर भारतके साहित्य-क्षेत्रमें उदीयमान स्थानीय कथ्य भाषाओंके साथ-साथ पश्चिम उत्तर-प्रदेश, पूर्व पंजाब तथा राजस्थानके स्वकीय साहित्यिक अपभ्रंश शौरसेनी अपभ्रंशने (या पश्चिमी अपभ्रंशने) अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया, सर्वत्र ही इसका पठन-पाठन प्रचलित होता गया तथा इसमें "भाषा साहित्य" की रचनाएँ होती रहीं। बंगालमें भी यही बात दिखाई देती है। ईस्वी सन् १००० के आसपास बंगालके कविगण संस्कृतके अलावा और भी दो भाषाओंकी जोड़ी गाड़ी हाँक रहे हैं—और उनमें एक स्थानीय प्राचीन बंगला भाषा है तथा दूसरी भाषा पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश है।

यह शौरसेनी अपभ्रंश राजस्थान और पछाँहा यानी पश्चिम उत्तर प्रदेशकी भाषापर प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा है—मथुरा अंचलकी ब्रज, कान्यकुब्जकी कनौजी, मध्यप्रदेशकी बुन्देली, राजस्थानकी 'डिंगल' और 'पिंगल' नामसे परिचित मध्ययुगकी दो साहित्यिक भाषाओं, तथा उपरन्तु पूर्व पंजाबी, 'जानपद हिन्दुस्तानी', बांगरू या जाटू और दिल्लीकी हिन्दुस्तानीका आदिरूप कहा जा सकता है। इस आधारपर यह भी कहा जा सकता है कि एक हजार वर्ष पूर्व शुद्ध बंगला भाषाके पास-पास बंगालके साहित्यिकोंके बीच शौरसेनी अपभ्रंश नामसे परिचित, प्राचीनतम पछाँही हिन्दीका एक प्राचीनतर साहित्यिक प्रकार-भेद प्रचलित था। अतः प्रथम युगके बंगाली कवि तथा अन्य लेखकगण बंगालके साथ-साथ पछाँही हिन्दीकी एक प्रकारकी, प्राचीन साहित्यिक रूपकी चर्चा करते थे तथा उसमें गान और कविता रचते थे। यह परवर्ती कालमें कुछ-कुछ बंगाली वैष्णव कवियों द्वारा मैथिल-मिश्र कविताकी भाषा "ब्रजबुली" के प्रयोगके समान है—ब्रजबुलीमें लिखनेकी परम्परा रवीन्द्रनाथ तक चली आई है।

हजार वर्ष पहलेकी बंगलाके प्राचीनतम निदर्शन हमें "चर्यापद" गानोंमें मिलते हैं। ओड़िया, बंगला और असमिया भाषाएँ इतनी घनिष्ट रूपसे गुथी हुई हैं कि हजार वर्ष पहले ये भाषाएँ जैसे एक ही भाषाके तीन प्रान्तीय रूपभेद मात्र थीं—तीनों एक ही प्राचीन भाषामें, जिसे "मागधी" अपभ्रंश कहा जा सकता है, सम्मिलित थीं।" "चर्यापदों" की भाषा इस अधुना लुप्त तथा अप्राप्य "मागधी" अपभ्रंशकी अत्यन्त निकटवर्ती होनेके कारण, ओड़िया तथा असमिया साहित्यिक और भाषा तात्विकगण "चर्यापदों" की भाषामें प्राचीन बंगला न मानकर प्राचीन ओड़िया तथा प्राचीन असमिया कहकर अपनी माँग उपस्थित कर रहे हैं। सिर्फ यही नहीं, मैथिली भाषा तथा साहित्यके ऐतिहासिकगण, "चर्यापदों" को प्राचीन मैथिल बता रहे हैं और एक-दो हिन्दी-लेखकोंने, "चर्यापदों" को हिन्दी कहकर उनपर हिन्दीके हककी माँग की है। जो भी हो, चर्यापदोंके साथ-साथ बंगालके कवियोंने—विशेषतः बौद्ध वज्रयान सहजिया सम्प्रदायके गुरु और उपदेशकोंने शौरसेनी अपभ्रंशमें भी पदोंकी रचना की है, यह निर्विवाद है। हिन्दीके आदिकालसे पश्चिमकी यह हिन्दी-पूर्व साहित्यिक भाषा पश्चिमी अपभ्रंश, बंगालमें पहुँच चुकी थी, इसपर चर्चा होती थी, इस प्रदेशके कविगण उसका प्रयोग भी करते थे, इसका प्रकृष्ट प्रमाण मिलता है।

बंगालमें शुद्ध बंगला भाषामें साहित्य-सृजनका श्रीगणेश ईसाकी दशम शताब्दीमें हुआ। द्वादश शताब्दीमें बंगाली संस्कृतज्ञ पण्डित श्रीधर दासने अपनी "सदुक्तिकर्णामृत" नामक संस्कृत श्लोकोंकी एक संग्रह-पुस्तकमें "बंगाल कवि" अर्थात् बंगदेश अथवा पूर्वी बंगालके "बांगाल कवि" नामके एक अज्ञातनामा कविकी संस्कृतमें रची इस बंग भाषा प्रशस्तिको संकलित कर उपस्थित किया है:—

घनरसमयी बंकिमसुभगा उपजीविता कविभिः।
अवगाढ़ा च पुनीते गंगा बंगालवाणी च॥

"गंगा नदी और बंगला भाषा—इन दोनोंमें एक प्रचुर जलपूर्ण (घनरसमयी) है, दूसरी बहु रसोंका आकर है, एक सुन्दर छन्दोमयी है, दूसरी टेढ़ी-मेढ़ी होकर प्रवाहित होनेके कारण सुन्दर है, बहुतसे कवियोंने दोनोंकी सेवाएँ की हैं, तथा अवगाहन करनेपर, दोनों ही मनुष्यको पवित्र करती हैं।"

अतएव ईस्वी १२०० से पूर्व ही बंगला भाषामें एक विशिष्ट साहित्य रचा जा चुका था। उस साहित्यका इतिहास सुविदित है तथा बंगालके विद्वान पण्डितोंने उसकी आलोचन भी की है। किन्तु प्राचीन

बंगलाके बराबर-बराबर पश्चिमी अपभ्रंशको भी बंगालमें स्थान दिया गया था, यह स्मरण रखने योग्य बात है। इसके माध्यमसे उत्तर और पश्चिम भारतके साथ बंगालका हजार वर्ष पूर्वसे सांस्कृतिक संयोग साहित्यके माध्यमसे दृढ़तर हुआ प्रतीत होता है। हाँ, पृष्ठभूमिके रूपमे देवभाषा संस्कृतके बाद ही संभव हुआ होगा।

ईस्वी १००० के आसपास बंगला भाषाके उद्भवके साथ ही साथ यह भाषा साहित्य सृजनके कार्यमें व्यवहृत होने लगी। इधर ईस्वी १२०० के उपरान्त बंगालके पश्चिम और उत्तर भाग, विदेशसे आगत तुर्की मुसलमानों द्वारा जीत लिए गए उत्तर भारतके साथ बंगालका सम्पर्क इसके पूर्वके कालके समान बना नहीं रहा। उस समय नेपाल और मिथिला और उड़िया भी स्वतंत्र राज्य बने हुए थे। इन तीन अंचलोंके साथ बंगालका योग सम्पर्क अटूट बना रहा। उत्तर भारतके साथ राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध घट जानेपर, बंगालमें पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश तथा उसके बाद नूतन उद्भूत पश्चिमी हिन्दीकी भी चर्चा और उसमें रचना बंगालमें प्रायः बन्द-सी हो गई। मिथिलामें स्वतंत्र हिन्दू राज्य होनेके कारण वहाँ प्राचीन हिन्दू-रीति-नीति और संस्कृतकी चर्चा अव्याहत रही। इतना ही नहीं, बंगालमें तुर्की-विजयके पश्चात् बंगाली-संस्कृत शिक्षार्थी विशेषतः स्मृति तथा न्यायमें उच्च शिक्षाध्यायनके लिए कई एक शताब्दी तक पहुँचते रहे। उन दिनों मिथिलाकी लोकभाषा मैथिलीका स्वर्णयुग था, आजकलकी भाँति मैथिलीभाषा विपन्न-दुर्दशाग्रस्त नहीं हो गई थी। मैथिल पण्डितगण केवल संस्कृत-चर्चा तथा संस्कृतमें ग्रन्थ ही नहीं रचते थे, उपरन्तु वे अपनी मातृभाषा मैथिलीमें भी एक उच्चकोटिका साहित्य भी रच रहे थे। बंगाली-संस्कृत विद्यार्थी भी मिथिलामें केवल संस्कृत पाठाभ्यास करते थे, ऐसी बात नहीं, वे भी मैथिली भाषामें रचित राधाकृष्ण विषयक तथा अन्य गान जिनसे वे आकृष्ट होते थे, उन सब गानोंको सीख लेते थे और बंगालमें भी उन गानोंको बिखेर देते थे। मैथिली भाषामें रचित विद्यापति आदि प्रमुख कवियोंके गान बंगालमें (यहाँ तक कि आसाम और ओड़िसामें) इतने लोकप्रिय हो गए कि बंगालके कई वैष्णव कवियोंने इन सब गानोंके भाव-भाषाका अनुकरण कर गान व पद रच डाले। फलस्वरूप बंगालमें बंगला भाषाके बराबर एक नई कृत्रिम साहित्यिक भाषा पनपने लगी, जो टूटी-फूटी मैथिलीमिश्र बंगला है। यह भाषा बंगला वैष्णव साहित्यमे "ब्रजबुली" नामसे परिचित है। इस ब्रजबुलीमें वृन्दावनके गोस्वामियोंके प्रभावसे पश्चिमी-हिन्दी ब्रजभाषाके रूप और शब्द भी पाये जाते हैं। श्रीकृष्णकी ब्रजलीला इस भाषाके पदोंमें वर्णित होनेके कारण इस भाषाका नाम "पाँचाइल ब्रजबुली" (पछाँही ब्रज बोली) पड़ गया। पर यह भाषा ब्रजमंडल यानी मथुरा-वृन्दावन, आग्रा-कोइल-गवालियारकी ब्रजभाषासे बिलकुल भिन्न है। ब्रजबुलीमें पद रचनाकी धारा बंगालमें आज भी चली आ रही है—स्वयं रवीन्द्रनाथने इस अति मधुर कृत्रिम मिश्र बंगला-मैथिल कविताकी भाषामें "भानुसिंह ठाकुरकी पदावली" के नामसे परिचित अति मनोहर कुछ पद अथवा कविताएँ लिखी है :—

सतिमिर रजनी, सचकित सजनी
शून्य निकुंज अरण्य।
कलयित मलये, सुबिजन निलये
बाला बिरह-विषण्ण !

नील आकाशे, तारक भासे
यमुना गावत गान,
पादप मरमर, निर्झर झरझर
कुसुमित बल्लि बितान।
तृषित नयाने, बन-पथ पाने
निरखे ब्याकुल बाला,
देख न पावे, आँख फिरावे
गाँथे बन-फुल माला।
सहसा राधा चाहल सचकित
दूरे खेपल माला,
कहल "सजनि शुन, बाँशरि बाजे
कुंजे आवल काला!"
चकित गहन निशि, दूर दूर दिशि
बाजत बाँशि सुताने।
कण्ठ मिलावल ढलढल यमुना
कल कल कल्लोल गाने।
भने भानु अब शन गो कानु
पियासित गोपिनी प्राण।
तोँहार पीरित बिमल अमृत रस
हरखे करबे पान।

\+ + +

को तुँह बोलबि मोय?
हृदय-माह मझु जागसि अनुखण,
आँख उपर तुँह रचलहि आसन,
अरुण नयन तब मरम संगे मम
निमिख न अन्तर होय,
को तुँह बोलबि मोय?

हृदय कमल, तब चरणे टलमल,
नयन युगल मम उछले छलछल,
प्रेमपूर्ण तनु पुलके ढलढल
चाहे मिलाइते तोय।
को तुँह बोलबि मोय?

बाँशरि ध्वनि तुहु अमिय गरलरे,
हृदय बिदारइ हृदय हरलरे,
आकुल काकलि भुवन भरलरे,
उतल प्राण उतरोय,
को तुंहु बोलबि मोय ?

हेरि हासि तब मधुऋतु धावल,
शुनइ बाँशि तब पिककुल गावल,
बिकल भ्रमरसम त्रिभुवन आवल,
चरण-कमल युग छोंय,
को तुंहु बोलबि मोय ?

गोपबधूजन बिकशित-यौवन,
पुलकित यमुना, मुकुलित उपबन,
नील नीरपर धीर समीरण,
पलके प्राणमन खोय,
को तुंहु बोलबि मोय ?

तृषित आँखि, तब मुखपर बिहरइ,
मधुर परश तब, राधा शिहरइ,
प्रेम-रतन भरि हृदय प्राण लइ,
पदतले अपना धोय,
को तुंहु बोलबि मोय ?

को तुंहु को तुंहु सब जन पुछइ,
अनुदिन सघन नयन जल मुछइ,
याचे भानु, सब संशय, घुचइ,
जनम-चरणपर गोय ।
को तुंहु बोलबि मोय ?

तुर्की राज्यकी स्थापनाके उपरान्त, समग्र बंगालके साथ उत्तर भारतका संयोग कुछ कालके लिए बन्द हो गया। किन्तु पुन: पठान तथा भारतीय मुसलमान राजशक्तिकी स्थापनाके फलस्वरूप जब उत्तर भारतमें और बंगालमें अराजकताके स्थानपर थोड़ी शान्ति और शृंखलाकी प्रतिष्ठा हुई, तब फिर

बंगालका और उत्तरभारतके साथ छिन्न योगसूत्र नवीन रूपसे पुनर्ग्रथित हुआ। उत्तरभारतसे जत्थेके जत्थे भारतीय तथा अन्य मुसलमान फौजी सिपाही, व्यापारी, सूफी-दरवेश, मुल्ला और अन्य इसलाम-धर्म-प्रचारक तथा साथ ही साथ हिन्दू व्यापारी सेठ-साहूकार बंगाल आने लगे। इसमें बंगालकी मुसलमान राजशक्तिका आवाहन था तथा स्थानीय हिन्दू जमींदारोंकी पृष्ठ पोषकता थी। चतुर्दश तथा पंचदश शताब्दीमें (सन् १३००–१५०० ईस्वीके बीच) इस प्रकार पुनराय उत्तरभारतकी हिन्दू संस्कृति तथा मुसलमान सूफी संस्कृतिके साथ बंगालका नये रूपसे सम्पर्क स्थापित हुआ। उस समय पश्चिम उत्तर प्रदेशमें सूरदास प्रमुख कवियोंकी कृतियोंके आधारपर जो नया ब्रजभाषा साहित्य सम्बर्द्धित हो रहा था, उसका पता बंगालको तब तक न था। चैतन्य देवकी ब्रजमण्डलकी तीर्थ यात्राके बाद षोडश शताब्दीके प्रथमार्द्धमें जब बंगालके गौड़ीय गोस्वामियोंने वृन्दावनमें अपनी बस्ती स्थापित की, तबसे फिर नये सिरेसे पछाँहा या पश्चिमी-हिन्दी प्रदेशकी धर्म संस्कृति और साहित्यके साथ वैष्णवोंके माध्यमसे बंगालका सम्मेलन हुआ।

चतुर्दश शताब्दीके द्वितीयार्द्धसे षोडश शताब्दीके प्रायः अन्तिम चरण तक "कोसली" भाषाके प्रदेशमें—अब जिसे साधारणतः "पूर्वी-हिन्दी" अञ्चल कहा जाता है, उस अंचलमें (यह 'कोसली' या पूर्वी-हिन्दी भाषा इस समय एक विशिष्ट साहित्य-समृद्ध भाषा थी—तथा इसकी तीन विशिष्ट उपभाषाएँ थीं—अवधी या बैसवाड़ी, बघेली और छत्तीसगढ़ी या महाकोसली—इनमेंसे अवधीके दानसे भारतीय साहित्य विशेष रूपसे गौरवान्वित हुआ था—अवधीमें ही मलिक मुहम्मद जायसीने "पदुमावति" और गोस्वामी तुलसीदासने "रामचरितमानस" ग्रन्थ लिखा।) एक विशेष उल्लेख योग्य काव्य साहित्य स्थानीय मुसलमान सूफी कवियों तथा साधकोंके द्वारा रचा जा रहा था। इनमेंसे सबसे पुराने अवधी सूफी कवि, मुल्ला दाऊद हैं, जिनकी रचना उपलब्ध है—सन् १३७५ ईस्वीके आसपास 'लोर और चन्द्राकी' कहानी लेकर यह काव्य रचा गया है। ये सूफी कविगण हिन्दू नायक-नायिकाओंको लेकर अवधी भाषामें चौपाई और दोहोंमें रूमानी या प्रेम और वीरताकी कहनियाँ लिखा करते थे। इनके द्वारा प्रवर्तित यह अवधी काव्यधारा कई शताब्दियोंसे आज तक प्रवाहित होती आ रही है। मंझनका "मधुमालती", कुतबनका "मृगावती" और मलिक मुहम्मद जायसीका "पदुमावति" इसी धाराके अन्तर्गत समाविष्ट ग्रन्थ है। प्रेमाख्यानके माध्यमसे सूफी-साधनाके आदर्शका प्रचार करना इनका अन्यतम प्रधान उद्देश्य था। मानवात्मा और परमात्मा—ईश्वरके बीच प्रेमका जो सम्पर्क है, उसे प्रेम-कहानीके रूपकके रूपमें ही इन ग्रन्थोंमें वर्णित किया गया है। अनुमान है कि इस समय बंगालमें जो-जो सूफी गुरु और मुल्ला इस्लाम धर्मके प्रचारार्थ मुसलमान फौज, लश्कर और सौदागरोंके साथ-साथ बंगालमें आए, वे सभी अधिकांश संख्यामें आजकलके उत्तर प्रदेशके पूर्वांचलके निवासी रहे होंगे। पन्द्रहवीं शताब्दीमें जौनपुर इन लोगोंका प्रधान केन्द्र था। ये लोग अधिकतर अवधी भाषा बोलते थे। कुछ-कुछ भोजपुरी भी बोलते थे। इन्हीं लोगोंकी अवधी भाषामें ये सारे सूफी काव्य विशिष्ट साहित्यिक देन माने जाते हैं। कई एक घटनाओंसे यह बात प्रमाणित होती है कि इनका विस्तार सुदूर पूर्वी बंगालके श्रीहट्ट (सिलहट) तथा चट्टग्राम (चटगाँव) तक हो गया था। शाह जलाल नामके एक सूफी सन्त चौदहवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें श्रीहट्ट गये थे। उस समय श्रीहट्ट बंगालके पठान तथा उत्तर भारतीय मुसलमानों द्वारा विजित हो चुका था तथा शाह जलालके प्रभावसे

उस अञ्चलके हिन्दुओंमें मुसलमान धर्म काफी फैल गया था। अनुमान है कि शाह जलालके अनुचरोंने, उस अञ्चलमें उत्तर भारत—कोसल अञ्चलसे लाये गए सूफी काव्य साहित्य, अवधी भाषा और अवधी भाषाकी अपनी लिपि—नागरीका श्रीहट्टमें और उसके आसपासके स्थानोंमें तथा पूर्वी बंगालके अन्याय स्थानोंमें प्रचार किया और स्थापित भी किया। सूफी मुसलमान कवियोंकी रचनाओंकी नकलें तथा बहुत-सी अवधी काव्यों-की पोथियोंकी नकलें फारसी अक्षरोंमें की गई थीं, पर साथ-साथ स्थानीय लिपिका भी प्रयोग होता था। और आज तक पूर्व उत्तर प्रदेश तथा बिहारके मुसलमानोंके बीचमें से फारसी लिपि नागरी और नागरीका संक्षिप्त रूप—कैथी लिपिको निकाल बाहर नहीं कर सकी। श्रीहट्ट या सिलहटके मुसलमानोंके बीच अब भी उत्तर भारतके मुसलमान धर्म गुरुओंकी देन "सिलहट नागरी" प्रचलित है—कम-से-कम कुछ साल पहले तक तो थी। इस सिलहट नागरीमें छेनीसे काटकर सीसेके अक्षर तैयार किये गए है और उनमें पुस्तकें छापी गई है जिनका विषय मुसलमानी सूफीयत है, भाषा बंगला है किन्तु अक्षर बंगलाके न होकर "सिलहट नागरी" के हैं।

अवधी भाषा काव्य इस प्रकार जब कोसल या पूर्वी हिन्दी प्रदेशसे पूर्वी बंगाल तक पहुँच रहा था तब पछाँहामें ब्रजभाषाका बोलबाला बढ़ रहा था और खड़ी बोलीका उद्भव नहीं हुआ था। दक्षिणमें बहमनी साम्राज्य तथा उसके पश्चात् गोलकुण्डा, बीजापुर आदि पाँच मुसलमानी राज्योंमें हिन्दीके प्राचीन दक्षिणी रूपमें—"दखनी" या "दक्नी" भाषामे भी एक प्रौढ़ साहित्य रचा जा रहा था। चौदहवी-पन्द्रहवी सदीमें मुसलमानी प्रभावसे बंगालमें उत्तर भारतकी भाषाके रूपमें सिर्फ अवधी भाषाका ही प्रचार व अध्ययन चालू था। बंगालमें इस भाषाका नाम "गोहारी" या "गोयारी" था। पूर्वी बंगालके मुसलमान पंडित लोग सोलहवीं सदीमें अपने धार्मिक साहित्यके अंगके रूपमें इस "गोहारी" भाषामें काव्य-पाठ करते थे तथा अपनी सूफी भावधारा सहित इन सब काव्योंका व्याख्याके साथ पाठ मुसलमान जन-साधारणके बीच किया जाता था व सुनाया जाता था (जिस प्रकार हिन्दुओंमें रामायण-महाभारत तथा भागवत, पुराण आदिका पाठ किया व सुनाया जाता है।) सत्रहवीं सदीसे इन सब काव्योंका अनुवाद या अनुकरणके माध्यमसे प्रचार कार्य चट्टग्रामके मुसलमानों तथा चट्टग्रामके पाश्ववर्ती ब्रह्मदेशके अराकान अञ्चलमें बसे हुए बंगाली मुसलमानों द्वारा आरम्भ हो गया था। दौलत काजी तथा आलोओल (अल-अव्वल) सत्रहवीं सदीके इन चट्टग्राम तथा अराकानके बंगाली मुसलमान कवियोंमें प्रधान है। इनमें आलाओल रचित मलिक मुहम्मद जायसी कृत "पदुमावती" काव्य समधिक समादृत तथा बंगला साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान अधिकार किये हुए है।

"गोहारी" या "गोयारी" भाषाके बंगालमें प्रचलित इस नामका मूल क्या है? चट्टग्रामके बंगाली मुसलमान कविगण गर्वके साथ कहते हैं—वे बंगला, संस्कृत, फारसी, अरबी और "गोहारी" इन सभी भाषाओंसे परिचित हैं। इससे मेरी प्रथम धारणा यह बनी कि यह शब्द हिन्दी "गँवारी" शब्दका विकृत रूप है—उत्तर भारतकी अन्यतम देश-भाषाका मुसलमान आलिम और शायर लोग, जो फारसी साहित्य-का रसास्वादन कर विभोर थे, अरबी और फारसी—ये ही दो भाषाएँ जिनके लिए एकमात्र सम्मानित भाषाएँ थीं, उनके लिए देश-भाषाको, भारतीय भाषाको हिन्दुओंकी भाषाको "गँवारी"; अशिक्षितोंकी भाषाको, इस नामके सिवा दूसरा नाम क्या दिया जा सकता था?" "ग्रामीण" अर्थात् ग्रामवासी गरीबोंकी भाषा थी,

इसलिए वे यह "गँवारी" शब्द प्रयोगमें लाते थे और बंगालियोंके कानोंमें, जीभ व कलमसे वह "गाँओयारी, गाओयारी, मोयारी, गोहारी" बन गया। किन्तु अब देख रहा हूँ कि कोसली भाषाकी उपभाषाओंमें यह अन्यतम है; उत्तर प्रदेशके बाँदा जिलेमें यमुना नदीके दक्षिणमें तिरहनी उपभाषाकी "गहोरा" अञ्चलकी यह बोली है। "गहोरी" बोलीकी कोई भी विशेष प्रतिष्ठा अब और नहीं रही, पर शायद चार सौ साल पहले कोसली भाषाकी यह अन्यतम प्रधान उपभाषा रही हो और यह "गहोरी" नाम, कोसली साहित्यके साथ-साथ उत्तर भारतके मुसलमान सूफी सन्तोंके द्वारा बंगाल पहुँच गया हो और यह नाम बंगालके मुसलमान कवियोंने चालू कर दिया।

सत्रहवीं सदीके बादसे यह "गोहारी" या "गोयारी" भाषाका प्रभाव बंगालसे एकदम मिट-सा गया। "गोहारी" के बाद बंगला भाषामें किसी सीमा तक ब्रजभाषाकी छाप वृन्दावनके गोस्वामियोंके प्रभावसे पड़ती रही। सन् १५८० ईस्वीके लगभग कवि कृष्णदास कविराज द्वारा वृन्दावनमें पुरानी बंगलामें लिखित अन्यतम उच्च कोटिका दार्शनिक ग्रन्थ "श्री चैतन्यचरितामृत" प्राप्त होता है। इस ग्रन्थकी भाषामें ब्रजभाषा हिन्दीका प्रभाव मिलता है। इस समयसे जिस प्रकार सूरदास प्रमुख ब्रजभाषाके कवियोंके राधाकृष्ण लीला विषयक पद ब्रजमण्डलके बंगाली वैष्णवोंके बीच प्रचाशित हुए, उसी प्रकार बंगला भाषापर भी उन सब पदोंका प्रभाव थोड़ा-बहुत पड़ा। सन् १६५० के कुछ बाद ब्रजभाषा हिन्दीकी एक बड़ी पुस्तक नाभादासजीका "भक्तमाल" ग्रन्थ बंगला भाषामें अनूदित हुआ। सन् १५७५ ईस्वीमें बंगालमें पठान राज्य शासनका अन्त हो गया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा एक सूबे या प्रदेशके रूपमें आगरा और दिल्लीके मुगल साम्राज्यके साथ समिलित हो गए। इस समयसे उत्तर भारतकी राजनीति, भाषा तथा संस्कृतिके साथ बंगालका बन्धन और भी दृढ़ होता गया। बंगाली राजकार्यके लिए फारसी पढ़ने लगें; व्यवसाय-वाणिज्यके लिए पश्चिमसे आये हुए सेठ-साहूकारों और महाजनोंके सम्पर्कमें आकर (जो पंजाबी, राजस्थानी तथा उत्तर प्रदेशीय थे) ब्रजभाषा और नये सिरेसे खड़ीबोलीके साथ परिचय प्राप्त कर अभ्यस्त होते रहे। फलस्वरूप बंगालियोंकी भाषा और साहित्यपर फारसी और हिन्दीका (ब्रजभाषा और खड़ी बोलीका) प्रभाव पड़ता हुआ दिखाई देने लगा। मकसूदाबाद या मुर्शिदाबाद, ढाका, हुगली, वधमान, चट्टग्राम—इन सभी स्थानोंपर फारसीकी चर्चा हुआ करती थी तो कहीं-कहीं पश्चिमसे आये जैनों और खत्रियोंके (व्यापारीके रूपमें) प्रभावसे (विशेषकर मुर्शिदाबाद अंचलमें) उस समय मिश्र हिन्दी भी स्थायी रूपसे प्रतिष्ठित हो गई। फारसी और संस्कृतके साथ नागरी अक्षरोंमें हिन्दी या ब्रजभाषाकी जानकारी उस समय किसी-किसी राजा या जमीं-दारकी सभा तथा नवाबके दरबारमें विद्वत्ताके प्रमाणस्वरूप गिनी जाती थी। अठारहवीं सदीके मध्यभागमें रामेश्वरने सत्यनारायणजीकी कथा "रामेश्वरी सत्यनारायण" की रचना की थी। इस ग्रन्थमें फकीरके द्वारा हिन्दी भाषाका प्रयोग कराया गया है। साधु-संन्यासी, पीर-फकीर आदि काफी संख्यामें उत्तर भारतसे बंगालमें आते रहते थे, आज भी आते रहते हैं। इस सम्प्रदाय द्वारा बंगालमें हिन्दी (खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा व अवधी) दोहा-चौपाईका कुछ-कुछ प्रचार हो गया तथा कबीरके वचन, तुलसीदासकी वाणी, सूरदास और मीराबाईके पद काफी प्रचारित हुए। पश्चिमके कलावन्त उस्ताद गवैयोंके कारण भी हिन्दीका प्रचार विशेष रूपसे अठारवीं सदीमें बंगालमें पाया जाता है। अष्टादश शताब्दीके प्रारम्भमें तानसेन-घरानेके

कोई एक उस्ताद पश्चिम बंगालके विष्णपुरके राजा द्वारा आमन्त्रित हुए थे। वे विष्णुपुरमें ही बस गए थे। उनकी शिष्य परम्परासे विष्णुपुरमें हिन्दी ध्रुपद-खयालका एक बड़ा केन्द्र स्थापित हो गया जो आज भी चालू है।

बंगालमें सोलहवी, सत्रहवी, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदीमें हिन्दी प्रचारका एक उल्लेखनीय कारण था। बगालके उत्तर पश्चिममें ही उत्तर भारत पड़ता है। बंगालकी संस्कृतिके साथ इस उत्तर-भारतकी संस्कृतिका एक योगसूत्रका आकर्पण है। नाड़ियोके बीचका सम्पर्क जैसा है जिससे बंगालमें "पश्चिम" कहते ही हमारा मन कैसे मोहाविष्ट जैसा हो जाता है। यह बंगालका "पश्चिम" उत्तर भारत ही है जो हिन्दू धर्म तथा संस्कृतिका अपना क्षेत्र या प्रकाशभूमि है। यह पश्चिम गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वतीका देश है; उससे और भी पश्चिममें पंजाब पड़ता है, जहाँ शतद्रु, विपासा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता अठखेलियाँ करती है और सिन्धुका देश है। रामायण, महाभारत, भागवतके रामसीता, पञ्च पाँडव, कृष्ण-राधा—इनकी यह पश्चिम लीला-भूमि है। भारतकी हिन्दू संस्कृतिकी प्राथमिक पुस्तकें—आदि वेद, रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराणोंका प्रचार पश्चिमके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, नैमिषारण्य तथा तमसा नदीके तटपर हुआ था। हमारे जितने भी प्रधान-प्रधान तीर्थ है—गया, काशी प्रयाग, अयोध्या, हस्तिनापुर, पुष्कर, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन—सभी पश्चिममें है और उत्तरमें हिमालयके बीच केदार बद्री, यमुनोत्री, गंगोत्री तथा कश्मीरमे अमरनाथ पड़ता है। प्राचीन तथा मध्य युगमे जितने भी पुण्यश्लोक महान-महान ऋपि-महर्पि, राजा-महाराजा, महामहिम नारियोंने जन्म लिया, सभीने इस पश्चिममे ही जन्म लिया। भारतके धर्मकी कथा, इतिहासके गौरव-स्तम्भ, शौर्य, पराक्रम तथा रोमान्स, जैसे सबके सब यही पश्चिममे पूँजीभूत हो गए है, एकत्रित हुए है। बंगालके ब्राह्मणोंकी किंवदंतिके अनुसार वे पम्मिके कान्यकुब्जके ब्राह्मणोंकी सन्तान है। अतएव सहज, सरल, तथा स्वाभाविक रूपसे ही प्रत्यन्त प्रदेशके मनुष्योंके मनमें विशेष रूपसे बगालके लोगोंके मनमें पश्चिम या उत्तर भारतके विपयमे इतना आग्रह है, तथा यहाँकी भाषाके प्रति मर्यादा-प्रतिष्ठा प्रदान करनेके लिए वे सदा प्रस्तुत है। मुगल शासन कालसे जब बगाल उत्तर भारतका एक अविभाज्य अंग बन गया, तबसे यह आग्रह और भी बढ़ गया। ऊपरसे वृन्दावनके वैष्णवोंका संयोग भी था, अतः प्रबल हो गया।

अष्टादश शताब्दीके सर्वविख्यात बंगाली कवि भारतचन्द्र रायगुणाकरने अपना अनवद्य काव्य बंगलामें लिखा, किन्तु अपनी लिखी ब्रजभाषा तथा पछाँही हिन्दीमें रचित कुछ कविताएँ भी उन्होंने अपने काव्यमें संग्रहीत कर दी हैं:—

भाटके प्रति राजाकी उक्ति :

गंग कहो : गुणसिन्धु महीपति : नन्दन सुन्दर : क्यों नहीं आया।
जो सब भेद : बुताय कहा : किधौं नहीं तँह : समुझाय शुनाया॥
कान लिये : तुझे भेज दिया : सुधी भुल गई : अरु मोहि भुलाया।
भट्ट हो : अब भंड भया : कविताई भटाई में : दाग् चढ़ाया॥

यार कहा : बहु प्यार किया : गजबाजी दिया : शिर ताज धराया।
ढाल दिया : तलवार दिया : जरपोष किया : सब काव्य पढ़ाया।
ग्राम इनाम : महाकवि नाम : दिया मणिदाम : बढ़ाई बढ़ाया॥
काम गया : बरबाद सब : अरु भारतीरे : नहीं भेद जनाया॥

भाटका उत्तर :

भूप में तिहाँरी भट्ट काँचीपुर जायके। भूपको समाज-माझ राजपुत्र पायके॥
हात जोरि पत्र दीह्न सीस भूमि लायके। राजपुत्रोंकी कथा विशेष में शुनायके॥
राजपुत्र पत्र बाँचि पुछो भेद भायके। एक्रमें हजार लाख मे कहा बनायके॥
बुझके सुपात्र राजपुत्र चित्त लायके। आयने भया महावियोगिचित्त धायके॥

यही में कहा भया कँहा गया भुलायके। बाप-मा महावियोगी देख्ने न पायके॥
सोचि सोचि पाँच माह मैं तँह गमायके। आगुही कहा हूँ बात् बर्द्धमान आयके॥
याद् नहीं हैं महीप में गया जनायके। पुछहूँ दीवानजीसों बख्सिके मंगायके॥
बूझके कहा महीप भट्टको मनायके। चोर कौन् हं तू चिह्न देख् देख् जायके॥
भूपको निदेश पाय गंग जाय धायके। चोरको विलोकि चिह्न सीस भूमि लायके॥

बेगमें कहा महीप-पास भट्ट आयके। सो हि यही है कुमार काँचीपराज-रायके॥
भाग है तिहाँरो भूप आप यहीं आयके। वासमें रहा तिहाँरी पुत्रीको बिहायके॥
चोरको मशानमें कहाँ दिओ पठायके। भाग मानि आप जाय लावहूँ मनायके॥
भट्टको कहे महीप चित्तमोद लायके। लायने चले मशान भारती बनायके॥

महिषासुरकी उक्ति :

सोन् रे गोयार् लोग : छोड़् दे उपास् रोग : मानहुँ आनन्द-भोग : भैषराज योगमें।
आगमें लगाओ घीउ : काहे को जला ओ जीउ : यक रोज प्यार पिउ : भोग येही लोगमें॥
आपको लगाओ भोग: कामको जगाओ योग : छोड़ देओ याग-योग : मोक्ष यही लोगमें।
क्या एगान् क्या बेगान् : अर्थ नार आब जान : यहीं ध्यान यहीं ज्ञान : आर सर्व्व रोगमें॥

बंगालके और एक लेखक कलकत्ताके निकटवर्ती भूकैलाशके राजा जयनारायण घोषाल थे जो अपने अन्तिम जीवनकालमें काशीमें रहते थे; उन्होंने तथा उन सरीखे बहुत-से बंगाली ब्राह्मण पण्डितोंने काशीमें वास करते हुए उत्तर भारतके साथ बंगालके नूतन योगसूत्रका कार्य किया था।

सन् १७५७ में बंगाल और विशेषतः कलकत्ता नगरीमें अँग्रेजोंकी जड़ जमी। ईस्ट इंडिया कम्पनीके अग्रेज राजकर्मचारी फारसी तथा भारतीय भाषामें ही राजकाज चलाने लगे। सन् १७६५ के बादसे बंगाल बिहार और उड़ीसाकी दीवानी कम्पनीके हाथों पहुँच गई। तथा सन् १७९९ में विलायतसे आये हुए प्रशास-

कीय व सैन्य विभागीय अँग्रेज अधिकारियोंके लिए कलकत्तामें फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना हो गई तथा जॉन गिल्क्राइस्ट साहब उसके अध्यक्ष बने। इस कालेजमें नवागत अँग्रेजोंको फारसी, अरबी, संस्कृत, हिन्दुस्थानी (हिन्दी और उर्दू) और बंगला सिखानेकी व्यवस्था की गई। एक तो इन सब आधुनिक भारतीय भाषाओंमें अच्छे गद्य ग्रन्थोंका अभाव था, ऊपरसे पठन-पाठनोपयोगी बंगला, हिन्दुस्तानी (हिन्दी और उर्दू) की गद्य-पुस्तकें भी नहीं थीं, अतः गिलक्राइस्ट साहबने पण्डितों तथा मौलवियोंको इस उद्देश्यसे नियुक्त किया कि वे आवश्यक साहित्य प्रस्तुत करें। इन सब भाषाओंमें गद्य-सृजनकी यही प्रथम प्रेरणा प्राप्त हुई। तभीसे कलकत्ता समस्त उत्तर भारतकी प्रतिभूस्थानीय नगरी बन गई। यहाँ उत्तर भारतसे आये हुए ब्रजभाषा और हिन्दुस्थानी (हिन्दी और उर्दू) के जानकार लोग भी काफी थे और उनकी अवस्थिति तथा उपस्थितिके ही कारण बंगालमें प्रायः समान मर्यादा हिन्दी और उर्दूको इसी कलकत्तामें मिली। तारिणीचरण मित्र जैसे बंगाली-हिन्दी लेखक भी यहीं दिखाई देने लगे। अब हिन्दी और उर्दू साहित्यका एक प्रधान तथा छापेखानेकी बदौलत व सहूलियतसे काफी दिनोंके लिए कलकत्ता एक प्रधानातम केन्द्र बन गया। हिन्दी और उर्दू साहित्यके इतिहासमें बंगाल तथा कलकत्ताका दान अपरिसीम है। यहाँसे थोड़ी दूरपर, श्रीरामपुरमें बैपटिस्ट मिशनरियोंने जो छापाखाना स्थापित किया था, वहाँसे उन लोगोंने हिन्दी पुस्तकें (बाइबलका अनुवाद आदि) प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १८२६ में राजा राममोहन रायने फारसी और उर्दूमें प्रथम समाचार पत्र प्रकाशित किया था, किन्तु उर्दू अंश लोकप्रिय न होनेके कारण उसके कई अंक प्रकाशित होनेके बाद उसे बन्द कर दिया गया। इसी उन्नीसवीं सदीके मध्यभागमें एक और व्यक्तिका उल्लेख आवश्यक है—वे हैं पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जो हिन्दीके जानकार भी थे। उन्होंने हिन्दी "बैताल पचीसी" का एक सुन्दर बंगला अनुवाद प्रकाशित किया था। सन् १८५७ में कलकत्ता विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई, साथ ही बंगलाके साथ-साथ हिन्दी, उर्दू, ओड़िया, असमियाने भी अपना-अपना स्थान बना लिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय कलकत्ता विश्वविद्यालयमें हिन्दीके परीक्षक बनाये जाते थे; तथा वे बंगालियोंके बीच नागरी लिपिके ज्ञानविस्तारके लिए विशेष आग्रहशील थे, बंगालमें प्रचलित शब्दके स्थानपर उत्तर भारतमें प्रचलित विक्रम संवत की गणनाके अनुसार वर्ष प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा भी उन्होंने की थी। तारिणीचरण मित्र जैसे बंगाली-हिन्दी लेखक भी कलकत्तामें दिखाई दिए।

इस युगमें जितने भी बंगाली विद्वान पण्डित व्यक्ति राष्ट्रीयता-बोधके कारण हिन्दुस्तानी या हिन्दी भाषाके प्रति आकृष्ट हुए, प्रायः वे सभी संस्कृत निष्ठ नागरी लिपिमें लिखित खड़ी बोली हिन्दीके पक्षपाती थे। सन् १८५० के बादसे जो-जो बंगाली बंगालसे बाहर निकलकर बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाबमें बस गए, उनमेंसे बहुतोंने नागरी हिन्दीका प्रचार किया। इनमेंसे बिहारके भूदेव मुखोपाध्याय, उत्तर प्रदेशके (प्रयागके) वेणी माधव भट्टाचार्य, सारदाप्रसाद सान्याल, प्यारी मोहन वन्द्योपाध्याय, रामकाली चौधुरी और नीलकमल मित्र तथा पंजाबके नवीनचन्द्र रायका नामोल्लेख किया जा सकता है। सन् १८७८ में मुंगेरसे कृष्णानन्द सेनने "धर्म प्रचारक" नामकी एक हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की थी। विशेष रूपसे भूदेव मुखोपाध्यायकी प्रशंसामें कवि अम्बिकाने भोजपुरीमें एक गीत तक रच डाला था, जिसका उल्लेख सर जार्ज ग्रियर्सनने: 'Seven grammars of the Dialects and sub-dialects of

the Bihari Language, Part 11, the Bhojpuri Dialect, Calcutta, 1884' मे किया है :—

धन्य धन्य गवरमिंट, प्रजा-सुख-दायी।
जामनीके दूर करी, नागरी चलायी॥
भुवनदेब (भूदेव) करि पुकार, लाट ढिग्ग जाई।
प्रजा-दुख दूर करह, जामनी दुराई॥

तथा शिवनन्दन सहायने अपनी आत्मकथामें लिखा है :—

उक्त बाबू भूदेव मुखोपाध्यायके कारण ही बिहार प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार हुआ। उन्होंने इसके लिए बहुत कुछ यत्न किया था। उन्हींके समयमें बिहारियोंकी कुछ रुचि हिन्दीकी ओर झुकी, उन्हीके समयमे बिहार प्रान्तके शिक्षा विभागके कर्मचारियोंने विद्यार्थियोके उपयोगी कई एक प्रस्तावोंकी रचना की। पूर्वोक्त "गुरु-गणित-शतक" की समालोचनामें तत्कालीन हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध समाचार-पत्र "उचित-वक्ता" में लिखा था कि "हम लोग आशा करते हैं कि भूदेव बाबूके यत्नसे बिहार प्रान्तमे हिन्दीकी सभी प्रकारकी पुस्तकें (जिस प्रकार बंगलामें हैं) प्रकाशित हो जाएँगी, क्योकि जबसे उक्त महाशय बिहार प्रान्तमें आए हैं, तभीसे दिनों-दिन हिन्दी पुस्तकें बढ़ती जाती हैं। यह देखकर हम लोगोंको जान पड़ता है कि कुछ दिनोंमें बिहार प्रान्तमें पश्चिमोत्तर प्रदेशकी अपेक्षा पुस्तक संख्या अधिक हो जाएगी।" जो हो, पर बिहारमें इस प्राथमिक उद्योगका श्रेय निस्सन्देह ही भूदेव बाबूको ही है, और सदैव रहेगा।

बंगालके कुछ बड़े-बड़े साहित्यिकों तथा महान नेताओंने भी हिन्दीके पक्षका समर्थन किया था। सन् १८७३ में बंगालमें ब्राह्म समाजके अन्यतम प्रख्यात नेता ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेनने अपनी सम्पादित "सुलभ समाचार" पत्रिकामें इस प्रकार लिखा था :—

यदि भाषा एक न होनेपर भारतवर्षमें एकता न हो तो उसका उपाय क्या है ? समस्त भारतवर्षमें एक भाषाका प्रयोग करना इसका उपाय है। इस समय भारतमें जितनी भी भाषाएँ प्रचलित है, उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषाको यदि भारतवर्षकी एक मात्र भाषा बनाई जाय तो अनायास शीघ्र ही सम्पन्न हो सकती है। किन्तु राजाकी सहायता न पानेसे कभी सम्पन्न नही हो सकती। अब अँग्रेज लोग हमारे राजा है। वे जो इस प्रस्तावसे सहमत होंगे, यह विश्वास नहीं किया जा सकता। भारतवासियोंमें अनैक्य नहीं रहेगा, वे परस्पर एक हृदय हो जाएँगे, यह सोचकर अँग्रेज शायद डर जाएँगे। वे सोचे बैठे है कि भारतवासियोंमें अनैक्य न रहनेसे ब्रिटिश साम्राज्य टिका नही रह सकता........ भारतवर्षमें जो-जो बड़े-बड़े राजा है वे ध्यान दें तो यह कार्य प्रारम्भ हो जाय...... जिस प्रकार एक भाषा करनेमें कष्ट उठाना कर्तव्य है, उसी प्रकार उच्चारण भी एक रूपमें करनेके लिए कष्ट उठाना कर्त्तव्य है..... भाषा एक न होनेपर एकता नही हो सकती..........

अनुरूप आशयसे युक्त बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित "बंग-दर्शनमें' में बिना नामसे एक लेख सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था। इस लेखके लेखक स्वयं बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय रहें होंगे, ऐसा लगता है। लेखका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

उपसंहारमें मै सुशिक्षित बंगभाषियोंको एक बात बतलाना चाहता हूँ। भारत भरमे वे ही सबसे अधिक पाश्चात्य ज्ञानोपार्जनमें सफल हुए हैं ....अँग्रेजी भाषा द्वारा जो भी हो, किन्तु हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त न करनेसे किसी भी प्रकार काम चलानेका नहीं। वे हिन्दी भाषामें पुस्तक रचना तथा भाषण द्वारा भारतके अधिकांश स्थानोंका मंगल-साधन करेंगे, केवल बंगला और अँग्रेजीकी चर्चासे यह होनेका नहीं। भारतके निवासियोंकी संख्याकी तुलनामें बंगला और अँग्रेजीके बोलने और समझनेवालोंकी संख्या कितनी है ? बंगालकी तरफ हिन्दीकी उन्नति नहीं हो रही है, यह दुर्भाग्यका विषय है। हिन्दी भाषाकी सहायतासे भारत वर्षके विभिन्न प्रदेशोंके बीच जो लोग ऐक्य-बन्ध स्थापित कर सकेंगे, वे ही सच्चे भारत-बन्धुकी संज्ञा पानेके योग्य होंगे। सभी चेष्टा करें, प्रयत्न करें, जितने भी समयके क्यों न हो, मनोरथ पूर्ण होगा।

सन् १८९२ से पहले महान शिक्षाशास्त्री तथा लेखक भूदेव मुखोपाध्यायने अपनी "आचार-प्रबन्ध" पुस्तकमे अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया था :—

भारतवासियोंके बीच प्रचलित भाषाओंमें हिन्दी-हिन्दुस्थानी ही प्रधान है। परन्तु मुसलमानोंकी कृपासे यह सर्वत्र महादेशव्यापक बन गई है। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसीके सहारे और अवलम्बन मानकर ही कभी भविष्यमे भारतवर्षकी समस्त भाषाएँ सम्मिलित हो सकेगी।

स्वदेशी आन्दोलनका प्रारम्भ होते ही उपेक्षित मातृभाषाके प्रश्नपर चर्चा होने लगी और इस विषय-पर बडा बल दिया जाने लगा। विशेषरूपसे बगालमें, जहाँ कि भाषा विभक्त प्रदेशका अमर प्रतीक बन गई। परन्तु अब भी हिन्दुस्तानीको अपना महत्त्व नहीं दिया गया था। बंगालके एक राजनैतिक नेता पत्रकार कालीप्रसन्न 'काव्य विशारद' ने उस समयमें भी हिन्दीके महत्त्वको स्वीकार किया था और उत्तर भारतमे जनप्रियताका भी ध्यान रखा था। उन्होंने एक अत्यन्त प्रचलित राष्ट्रीय गान भी रच डाला था, जिसे सन् १९०५–१२ के स्वदेशी आन्दोलनके दिनोंमें बंगाली नवयुवक कलकत्ताकी सड़कोंपर तथा बंगालके सभी स्थानोंपर गाते फिरा करते थे। उस गानकी प्रारम्भिक पंक्ति इस प्रकार थी :–

भैया, देशका ई क्या हाल ?
खाक मिट्टी जौहर होती सब, जौहर है जंजाल

और इस पंक्तिसे समाप्त होता था :—

हो भारत मात देशकी सन्तान, करो स्वदेश हित।

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम दशक पर्यन्त कलकत्ता हिन्दी साहित्य तथा पत्र-पत्रिकाओंका एक प्रधान केन्द्र था। हिन्दी रचनाओंमें बंगाली लेखकोंका भी यथेष्ट हाथ था। कलकत्ताकी बंगला "बंगवासी" पत्रिकाके हिन्दी संस्करण "हिन्दी बंगवासी" ने पचीस वर्षोंसे भी अधिक काल तक लगातार हिन्दी भाषा और साहित्यकी सेवा की है। इस पत्रिकाके गौरवपूर्ण दिनोंमे बंगाली-हिन्दी लेखक अमृतलाल चक्रवर्ती तथा ब्रजमण्डलके पण्डित प्रभुदयाल पाण्डे और हरियाणा प्रान्तके बालमुकुन्द गुप्त इसका संचालन करते थे। बंगालके बाहर भी कई एक बंगाली-हिन्दी लेखकोंने विशेष साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है जिसमें स्वर्गीय किशोरीलाल गोस्वामी, स्वर्गीय डाक्टर नलिनीमोहन सान्याल, ऊषारानी मित्रा, मन्मथनाथ गुप्त आदि हैं तथा बंगलासे हिन्दीमें अनुवाद-साहित्यके क्षेत्रमें भी कई एक बंगाली-हिन्दी अनुवादकोंने अपनी प्रतिभाका अच्छा परिचय दिया है। इसी प्रकार उर्दूके क्षेत्रमें बंगाली लेखक बाबा जमनादासका उल्लेख किया जा

सकता है। प्रयागकी बंगाली संस्था इण्डियन प्रेसकी हिन्दी सेवाएँ सुपरिचित हैं। इसके बंगभाषी प्रतिष्ठाता तथा सत्वाधिकारीने "सरस्वती" पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया था एवं इसका नाम सार्थक प्रमाणित हुआ है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके सम्पादनकालमें इसी "सरस्वती" के माध्यमसे आधुनिक हिन्दी गद्य शैली परिष्कृत और परिमार्जित, प्रसाद गुण सम्पन्न और ओजस्विनी एवं व्यंजना शक्तिकी अधिकारिणी बन सकी। इसी संस्थाने अति जनप्रिय एक साप्ताहिक पत्रिकाका प्रकाशन भी आरम्भ किया था जो उस युगके लिए अनुकरणीय घटना–जैसी थी। इस युगमें भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य देखकर आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। इसी प्रकार कलकत्तासे रामानन्द चट्टोपाध्यायने अपनी सम्पादित बंगला मासिक "प्रवासी" तथा अँग्रेजी मासिक "माडर्न रिव्यू" के साथ-साथ समपर्याय मुक्त मान "विशाल भारत" नामसे हिन्दी मासिक पत्रिका प्रकाशित कर बंगवासियोंकी ओरसे हिन्दीकी सेवा की थी।

इस प्रसंगमें हिन्दी साहित्यकी आलोचना तथा बंगालियोंके बीच उसके प्रसारके लिए जिन विद्वान, पण्डित तथा सुलेखकोंने आत्मनियोजित किया था, उनका भी यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। इन व्यक्तियों-में विश्वभारतीके पण्डित क्षितिमोहन सेनका नाम सर्वप्रथम आता है। कबीर और दादूकी रचनावली तथा मध्ययुगीन सन्त परम्पराके साधु-सन्तोंकी वाणीको बंगाली पाठक-समाजमें प्रचारित कर पण्डित सेनने बंगाली तथा हिन्दी भाषी उभय जनसमाजको कृतार्थ किया है। कई एक बंगाली लेखकोंने "रामचरितमानस" का बंगलामें अनुवाद किया है। स्वर्गीय नलिनीमोहन सान्यालने एक ओर हिन्दीमें पुस्तकें लिखी हैं तो दूसरी ओर सूरदासके निर्वाचित पदोंका बंगलामें अनुवाद भी किया है। इनके अलावा छोटे-बड़े बहुतेरे बंगाली हिन्दी भाषा और साहित्य विषयके अनुवादकों तथा निबन्धकारोंके नामोंका उल्लेख किया जा सकता है।

उत्तर भारतके साहित्य और संस्कृतिके साथ, उत्तर भारतके मनन और चिन्तनके साथ, मध्ययुगके उत्तर भारतकी आत्माके साथ परिचय प्राप्त कर स्वयं लाभवान होनेके लिए बंगवासी और बंगभाषी जन-गणसे इस प्रकार गत हजार वर्षसे आत्म नियोजित कर रखा है। यह कार्य बंग भाषियोंने किया है— "स्वान्तः सुखाय।" स्वेच्छासे बंगालियोंने हिन्दी सीखी है, स्वेच्छासे सीख रहे हैं, स्वेच्छासे भविष्यमें सीखेंगे।

कश्मीरकी हिन्दीको देन

लेखक
श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप'
संशोधक और संवर्धक
प्रो. जे. डी. जाडू

प्राचीन कालसे ही कश्मीर सरस्वतीकी साधनाका प्रमुख स्थल रहा है। पीयूषवर्षिणी संस्कृत भाषा एवं साहित्यको कश्मीरने अपूर्व देन दी है। संस्कृत साहित्यके इतिहासमे मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन, क्षेमेन्द्र, बिल्हण, कतृण, सोमदेव, गुणाढ्य, अभिनवगुप्त, उत्पल, कैयट, मम्मट, मंख और कवि जगद्धर भट्ट आदि बीसियों सरस्वती पुत्रोंका स्वर्णाक्षरोंमें नामांकन है।

संस्कृत ही नहीं, अपितु मुस्लिम राजकालमें कश्मीरने फारसी साहित्यको भी प्रचुर विपुलता प्रदान की है। साकी और मयखाना के खुमारसे पूर्ण उर्दू अदबके निर्माणमें भी कश्मीरका काफी हाथ रहा है। भला यह कैसे सम्भव होता कि कश्मीर भारतीय जन-जनके मनकी धड़कनोंकी भाषा हिन्दीको अपनाने और इसके साहित्यको समृद्ध करनेमें विपुलता देनेमे पीछे रहता। हाँ, कालचक्रकी गतिने इसमें शिथिलता अवश्य लाई है।

कश्मीर प्रान्तमे हिन्दीका प्रचलन कबसे आरम्भ हुआ ? देश और देशवासियों तथा उनकी भाषा-पर इसका कितना प्रभाव पड़ा है ? यहाँके शिष्ट वर्ग और सन्त कवि इससे कितने प्रभावित हुए ? इन प्रश्नोंका एक लम्बे अनुसंधानसे सम्बन्ध है। परन्तु इतिहासका अनुशीलन करनेके पश्चात् इस तथ्यकी ओर स्पष्टतया संकेत मिलता है कि चिरकालसे काशी और कश्मीरका पारस्परिक सम्पर्क रहा है। दोनों देश विद्याके केन्द्र माने गए हैं। दोनों के नाम आदरसे लिए जा रहे है। धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओंकी जटिलताके सुलझानेमें यहींके आचार्य प्रवीण माने जाते हैं। विद्याके केन्द्र होनेके कारण यहाँके आचार्यों तथा विद्वानोंका भिन्न-भिन्न विषयोंके सम्बन्धमें विचार-विनिमय होना आवश्यक था। असीम विद्यानुराग, दीर्घकाल साध्य दुर्गम यात्राके क्लेशोंकी अवहेलना करते हुए, यहाँके आचार्य एक दूसरेकी ओर

आकृष्ट होते थे, दोनों एक दूसरेकी सौहार्द-सुधाके पिपासु थे। दोनों स्थानोंके पण्डित एक दूसरेके साहित्य-भंडारके समालोचक थे। ये समालोचनाएँ, तर्क, विचार तथा एक दूसरेके विषयमें सम्मतियाँ किस भाषामें हुआ करती थीं? अथवा राजसभाओंमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर तर्क-वितर्क, वाद-विवाद अथवा देशोंके महापण्डितोंका विचार विनिमय किस माध्यमसे हुआ करता था? निस्संदेह ही यह कहा जा सकता है कि यह सब कार्य भारतकी उस समयकी राष्ट्रभाषा संस्कृतमें अथवा जनताकी भाषा हिन्दीमें होता था। दोनों देशोंके तत्कालीन बहुसंख्यक शिष्ट वर्गमें संस्कृति, सभ्यता तथा शास्त्रीय विचारोंका पारस्परिक आदान-प्रदान देशीय भाषाओंमें ही पर्याप्त-रूपसे रहा है। अतः एक सहस्र वर्षसे पूर्व भी यदि कश्मीरमें हिन्दी भाषाके किसी रूपान्तरका आगमन स्वीकार करें तो इसमें कोई आपत्ति नही हो सकती।

हिन्दी भाषाके रूपान्तरोंका सम्मिश्रण अथवा प्राकृत अपभ्रंशोंका समावेश बहुधा संस्कृत कविताओंमें पाया जाता है। यह रीति चिरकाल तक संस्कृत कवियोंमें आदरणीय रही है। इसी परम्पराके अनुकूल अन्य देशी भाषाओंमें भी द्वि-भाषीय रचनाओंका प्रचार हुआ है। जितनी भाषाओंका सम्मिश्रण जिसकी रचनामें पाया जाता था, उतना ही उसे विलक्षण बुद्धिका चमत्कारी कवि स्वीकार किया जाता था। इस कलाका व्यवहार यहाँ तक बढ़ गया कि कविगण द्वि-भाषा मिश्रित ही नहीं, अपितु बहुभाषा मिश्रित रचनाएँ करने लगे। कई रचनाएँ ऐसी भी मिलती हैं कि एक तरफसे पढ़ो तो संस्कृत ही संस्कृत है और दूसरी तरफसे पढ़ो तो प्राकृतकी कविता जान पड़ती है। उदाहरण अनेक हैं। सबके निर्देश करनेकी आवश्यकता नही। केवल इस बात पर ध्यान आकर्षित किया जाता है कि दसवीं शताब्दीके कश्मीरके प्रसिद्ध कवि श्री आनन्द-वर्द्धनाचार्यकी रचना 'ईश्वर शतक' मे एक ऐसा श्लोक पाया जाता है जिसमे कविके कहनेके अनुसार छह भाषाओंका समावेश है—(षड्-भाषा मिश्रितोऽयं श्लोकः) श्लोककी मुख्य भाषा संस्कृत और उसीमे छह भाषाएँ समाविष्ट हैं। टीकाकार भी इन छह भाषाओंका पृथक् पृथक् उल्लेख नहीं कर पाए है। सम्भव है, हिन्दीका भी कोई रूपान्तर इसमे समाविष्ट हो।

ग्यारहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध कवि श्री क्षेमेन्द्रकी कई रचनाओंसे यह स्पष्ट होता है कि कश्मीरमें तत्कालीन विद्यालयोंमें भारतीय छात्र अध्ययन करते थे जिनमे गौड़ छात्रोंका विशेष उल्लेख किया गया है। इनके लिए शिक्षाका माध्यम संस्कृत तो था ही, परन्तु यदि किसी-न-किसी रूपमे हिन्दीका माध्यम भी उपयोगमे लाया गया हो तो यह असम्भव प्रतीत नही होता।

यशकी प्राप्ति तथा धनार्जनके लिए कश्मीरके अनेक कवि समय-समयपर भारतीय नरेशोंकी सभाओको सुशोभित करते थे। संस्कृतके अद्वितीय कवि होनेके कारण उनका सम्मान और उनकी पूजा सर्वत्र हुआ करती थी। विक्रमाङ्कदेव चरित्रके रचयिता कवि बिल्हणका जीवन इस विषयमे विशेष उल्लेखनीय है। घर लौटनेपर ये सामान्य कविवृन्द, धन और मानके साथ, भारतीय भाषा हिन्दीके संस्कारोंको अपने साथ लेना कब भूल सकते थे।

परन्तु कश्मीर, कश्मीरवासियों तथा उनकी भाषापर जो हिन्दीका उत्तरोत्तर प्रभाव पड़ता गया, उसका मुख्य श्रेय प्रथम तो काशीके पुराने आचार्योंको, तदनन्तर भारतीय साधु-सन्त समाजको, तत्पश्चात् भारतीय पर्यटक वर्गको है। भूस्वर्ग कश्मीरके शारदा पीठके विश्वविद्यालय, इसके ऋषि मुनियोंका आध्यात्मिक ज्ञानपूर्ण पावन सम्पर्क, इसके विश्वविख्यात अलौकिक तीर्थस्थानोंकी महिमा, इसकी प्राकृतिक सुषमा, इसके

नानाविध मोहक दृश्य, इसके स्वच्छ सरोवरोंमें विकसित कमलोंका सुगन्धित समीर, इसकी पौष्टिक जलवायु, इसके स्वास्थ्यप्रद स्थान, इसके मधुर फलोंके रसास्वादकी लालसा, किस योगी, रोगी, भोगीके लिए आकर्षणके कारण नहीं हुए हैं ? कश्मीरमें भारतीयोंका आगमन अति प्राचीन कालसे होता आया है। इनके सम्पर्कसे कश्मीर वासियोंको भारतकी भाषाओंका परिचय भी प्राप्त हुआ है; विशेषकर हिन्दीका। उनके रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रस्मसे भी कश्मीरी पर्याप्त मात्रामें प्रभावित हुए है। अभिप्राय यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकृतिके भारतीय आगन्तुकोंसे कश्मीरवासियोंने अपनी प्रतिभा-प्रशस्तिके अनुकूल विद्यामें, कलामें, अध्यात्ममें, आचारमें, कवितामें, भाषणमें कुछ-न-कुछ शिक्षा ग्रहण की है, जिससे इसके मानसिक क्षेत्रमें परिवर्तन होना अनिवार्य था, विशेषकर साधु, सन्त और परमहंस-संन्यासी इत्यादिसे जो हिन्दी भाषा द्वारा उसके विचार विनिमय हुआ करते थे, उनसे भी वह बहुत प्रभावित हुआ है। हिन्दी समझना या सीखना कश्मीरीके लिए अधिक कठिन नहीं था, क्योंकि हिन्दीके तद्भव-तत्सम शब्द कश्मीरी भाषासे भिन्न नहीं है। यद्यपि प्रान्तीयताके कारण उच्चारणमें कुछ अन्तर अवश्य है। उदाहरणार्थ—

कश्मीरी	हिन्दी	कश्मीरी	हिन्दी
कन	कान	अथ	हाथ
दन्द	दान्त	पोन्य	पानी
वुठ	होंठ	सिर्य	सूर्य
अंछ	आँख	जल	जल
निथ्र	नेत्र	रस	रस
मूख	मुख	रूप	रूप
परुन	पढ़ना	स्वन्दर	सुन्दर
लेखुन	लिखना		इत्यादि,

और भी अनेक शब्द हैं जिनका निर्देश करना यहाँपर वांछित नहीं। शुद्ध हिन्दीमें दिया हुआ भाषण कश्मीरीके लिए सुबोध है। सारांश यह है कि कश्मीरमें हिन्दी भाषाका प्रचार अनायास ही साधु-सन्तों द्वारा हुआ है। बहुभाषा प्रिय कश्मीरीने भी सन्तोंकी वाणी ग्रहण करनेमें अपनी रुचि प्रदर्शित की। आस्तिक तथा धार्मिक जनतापर इसका अधिक प्रभाव पड़ता गया। यहाँ तक कि कश्मीरी भाषाका कवि भी द्वि-भाषामयी अर्थात् हिन्दी-कश्मीरी मिश्रित कविता करनेमे अपना उत्कर्ष समझने लगा। लोग भी इसकी कला-प्रवीणतापर मुग्ध होने लगे। क्रमशः कश्मीरी भाषाके कवि भी हिन्दीमे कविता करने लगे जिसका वर्णन अगले पृष्ठोंपर अंकित किया गया है।

यहाँपर इस बातका उल्लेख करना अनुचित न होगा कि उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तर कालमें श्री महाराणा रणवीरसिंहने हिन्दी और डोगरी भाषामें देवनागरी लिपि द्वारा अपना सारा राज्यकार्य चलाया था। संस्कृतकी पुस्तकोंका भी हिन्दीमें अनुवाद काशीके पण्डितोंसे करवाया था जो अनुवाद पुस्तकालयोंमें सुरक्षित है। परन्तु महाराजा प्रतापसिंहके शासनकालमें पंजाबसे आए हुए उर्दू-फारसी पढ़े हुए मन्त्रियोंने अपनी सुविधाके लिए, हिन्दी-डोगरीको पदच्युत करके उर्दू-फारसी को ही राज्य-कार्यवाहीके लिए प्रचलित किया। साथ-साथ ही अँग्रेजीका भी समावेश होता गया।

इतना तो बिलकुल स्पष्ट है कि महाकवि परमानन्दके समय तक (१७९१–१८७९ ई.) कश्मीरमें हिन्दीने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था। यहाँके लेखक और कवि अब कश्मीरी कविताओंके साथ-साथ हिन्दीमें भी रचनाएँ करने लगे थे। महाकवि परमानन्द कृत 'राधास्वयवर' नामक कश्मीरी प्रवन्ध काव्य-ग्रन्थमें कई हिन्दी कविताएँ भी संग्रहीत हैं। उपलब्ध सामग्रीके आधारपर कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दीसे कश्मीरमें हिन्दी काव्य रचना किसी-न-किसी रूपमें की जाने लगी थी।

अठारहवीं शताब्दीसे लेकर बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध तक स्वतन्त्र रूपसे किसी भी कश्मीर प्रान्तीय कविने ठेठ हिन्दीमें रचना नहीं की है।इस अवधिमें कश्मीरी पद्यके साथ ही कई कवियोंने हिन्दी पद्यमें भी इनी-गिनी रचनाएँ कीं। कई कवियोंने तो कश्मीरी और हिन्दी पद्यकी मिली-जुली रचनाएँ भी की। हाँ, बीसवी सदीके पूर्वार्द्धसे कश्मीर प्रान्तमें हिन्दी लेखन कार्यका हिन्दी प्रचार कार्यके साथ-साथ, श्रीगणेश हुआ है। अतः मेरी धारणा है कि कश्मीर प्रान्तमें हिन्दीके इतिहासको निम्नलिखित दो कालोंमे विभाजित करना चाहिए :–

१—अठारहवी शताब्दीसे बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध तक—सहभाषा काल।

२—बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्धसे—प्रचार-सृजन काल।

सहभाषा कालके कवियोंने, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कश्मीरके साथ ही हिन्दीकी कुछ इनी-गिनी रचनाएँ की है। इन कवियोंकी हिन्दी रचनाओंमें कश्मीरीपन है। साथ ही इनकी रचनाओंमे पजाबी, उर्दू तथा फारसीके शब्दोंकी पुट है। हिन्दीकी इन रचनाओंका विषय भक्ति, ज्ञान, अथवा वैराग्य ही है। भाषा एवं भावोंकी दृष्टिसे ये रचनाएँ अपरिमार्जित हैं। क्रमानुसार इन रचनाओका अध्ययन करनेसे स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि धीरे-धीरे इनकी भाषाका परिष्कार होता गया है।

उपलब्ध सामग्रीके आधारपर सहभाषा कालका आदि कवि (कश्मीर प्रान्तमे हिन्दीका आदि कवि) महाकवि परमानन्दको माना जा सकता है। परमानन्द इनका उपनाम था और इनका वास्तविक नाम था नन्दराम। यह सीरग्राम निवासी (विख्यात मार्तण्ड-क्षेत्रसे ३ मीलकी दूरीपर) श्री कृष्णदासके सुपुत्र थे। श्री कृष्णदास पट्टनके कसबेमे पटवारीके पदपर नियुक्त थे और अपने गाँव सीरसे आकर सपरिवार यहीं रह रहे थे।

परमानन्दका जन्म १७९१ ई. में हुआ। इन्होंने एक मकतबमें फारसी-उर्दूकी शिक्षा पाई। अपने कालगुरुसे षट्चक्र उपासनाका ज्ञान प्राप्त किया और श्री आत्मानन्द परमहंससे वेदान्त दर्शनकी शिक्षा ग्रहण की। अपने पिताजीके सरकारी-सेवासे निवृत्त होनेपर परमानन्दजी पटवारी नियुक्त हुए। कुछ काल तक काम करनेके उपरान्त इन्होंने पटवारी पदको त्याग दिया और अपनी साधनामें ही लीन रहे।

कहा जाता है कि मार्ताण्ड-क्षेत्रकी यात्रा करते हुए किसी भारतीय यात्रीसे परमानन्दने हिन्दीमें श्रीभागवतकी कथा सुनी। सम्भव है कि कथा सुननेके उपरान्त परमानन्दको हिन्दी लिखनेकी प्रेरणा मिली होगी। श्री आत्मानन्दजी परमहंस तथा परमानन्दमे हिन्दीके माध्यमसे ही विचार-विनिमय तथा वार्तालाप चलता रहा होगा। अतः श्री आत्मानन्दजी भी इनकी हिन्दी कविताओंके प्रेरणास्रोत रहे होंगे।

महाकवि परमानन्दकी हिन्दी कविताएँ इनके कश्मीरी प्रबन्धकाव्य—"राधास्वयंवर" में संग्रहीत हैं। इस प्रवन्धकाव्यमें कुल मिलाकर हिन्दीकी चौदह कविताएँ हैं। इनकी हिन्दी, कश्मीरीपन तथा पंजाबीकी पुट लिये हुए है। नीचे इनकी हिन्दी कविताओंके कुछ उदाहरण दिए जा रहे है :—

१—भिक्षा माँगन खांन बनायो,
आयो शिवजी गोकुलमें।
ना कुछ समझा ना कुछ बोला,
खोला नहीं नेत्र विशाल।
मौनी होके धोनी तपायो—आयो० ॥
अन्तर्यामी स्वामी देखा
भीतर बाहर पूरण-मय।
बालकृष्ण मुख उससे छुपायो—आयो० ॥
२—चाहे देखो सुदर्शनका
मनका दीवा भाल।
हृदि मन्दिरमें श्यामसुन्दरको
सोऽहं जप जप जपो ओंकार।
प्रणव उपासन करो निशिदिनका—मनका० ॥
३—क्या है जग कोई जानता नाहीं,
ज्ञान बिना पहचानता नाहीं।
मन कंसा तन मथुरा होन्दा
कृष्ण आतमा हृदि गोकुल रहन्दा।
नारद विवेक सच सनेहा वेंदा........॥
४—जागो जागो श्यामा चढ़ गया दिन,
आ दूध पीने जायो न्हायो बदन।
+ + +
परमानन्दको भी ले चल साथ,
टुर न सके तुम पकडो हाथ।
आजसे बिचारेको ना रखो भिन्न.......॥
५—भज गोविन्दका नाम और क्या काम।
इस वाणीका स्वाद पावे सद्गुरुका प्रसाद।
सद्गुरुका प्रसाद पावे कोई होवे साद।
काया लेकर माया छोडो यह टूटी उपाध।
माने सच पैगाम—भज गोविन्दका नाम॥

महाकवि परमानन्दके पश्चात् क्रमशः जो महानुभाव हिन्दीसे प्रभावित हुए, इनमेसे उल्लेखनीय व्यक्तियोंकी नामावली इस प्रकार है:—

श्री **लक्ष्मणजी**:—यह महाकवि परमानन्दके समकालीन तथा इनके अनन्य शिष्य थे। यद्यपि इनकी स्वतन्त्र हिन्दी कविता उपलब्ध नहीं है, परन्तु इन्होंने अपनी कश्मीरी कविताओंमें हिन्दीका पर्याप्त

प्रयोग किया है। उदाहरणार्थः—

१—गोविन्द नामा श्याम कलेवर निष्कामा।
राम सुदामा गोपियन हन्दि विश्रामा।
योगी भोगी सत् विचारी ब्रह्मचारी॥
क्षमा-कारो कुछ त बु मा कुनि जोगा।
छरिसुय डोलस आसि गौगा व्यथि होगा।
होगा क्या जब तुम न होगे उपकारी॥

२—हर मुख हरनस छे हर चे लाहर,
भीतर बाहर हर हर ओम्।........

श्रीकृष्णदास = श्रीकृष्ण राजदान

आप कश्मीरी भाषाके एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इनका जन्म १८५० ई. के. लगभग अनन्त नाग तहसीलमें स्थित 'वनपुट्ट' ग्राममें हुआ था। इनकी रचनाओंमें हिन्दी मिश्रित कविताएँ प्राप्त होती हैं। कविताओंके विषय हैं—भक्ति, उपासना, योगधारणा, मुक्तिफलावाप्ति इत्यादि इत्यादि।

बाल्यावस्थामें ही ये महादेवके प्रमादसे कश्मीरीमें निरर्गल कविता करने लगे थे। अन्य-अन्य कविताओंके अतिरिक्त आपका "शिवलग्न" अर्थात् शिव परिणय काव्य कश्मीरी जनतामें बहुत प्रसिद्ध है। यह काव्य म. म. पं. मुकुन्दराय पून द्वारा रचित संस्कृतानुवाद सहित एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता, ने १९१३ ई. में प्रकाशित किया है। आपकी काव्य-शैली प्रवाहयुक्त तथा नाना छन्द अलंकारोंसे सजी हुई है। कई कविताएँ तो बहुत सुन्दर हैं।

कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :—

१—शकर वुठव म कर शिवनाथ-शिवनाथ,
सुनाता हूँ तुझे अब मैं धर्मकी बाथ्।

[मधु-ओष्ठोंसे मत करो अब शिवनाथ-शिवनाथ अर्थात् शिवनाम मत जपो—मैं तुम्हें सच्चे धर्मकी बात सुनाता हूँ—हे पार्वती!]

२—बनी सरतील स्वन कन भव च मेय कुन,
अरे राजेकी कुमारी गल मेरी सुन।

[तुम्हारा पीतल सोनेमें परिवर्तित होगा, कान अर्थात् ध्यान मेरी तरफ रखो। हे राज कुमारी! मेरी गल अर्थात् बात सुनो।]

३—राधाकृष्ण रामा श्यामा
अरे नन्द लाला अरे निष्कामा।

+ + +

त्रिजगत्-पाला बालगोपाला,
देवकीनन्दना दीनदयाला,
अरे नन्द लाला बँसरीवाला।

४—सूर्यरूप माया छह (है) चानी (तेरी) छाया।
जिस माया का भेद किसीने न पाया।
पानु (स्वयं) छुख (हो) मायायि मंज (मायामें) निमीया,
वह माया देवलोक देखने आया——......।

श्रीकृष्ण राजदानकी बहुत सारी कविताएं श्री महाकवि परमानन्दकी कविताओंसे प्रभावित हुई देखने में आती है। अनुप्रास, श्लेष तथा यमक अलंकारोंकी प्रचुरतासे आपकी धारावाहिक कवितामें चार चाँद लगे हैं। विवाहोत्सवोंपर आपके रचित गीत महिलाएँ घर-घर गाती हैं।

श्री **ठाकुर जू मनवटी**:—हिंदी काव्य रचना की दृष्टिसे कवि परमानन्दके पश्चात् (१८५० ए. डी. १९२६ ए. डी.): का नाम उल्लेखनीय है। श्रीमनवटी सनातन धर्मानुयायी वेदात मार्गी पंडित थे। आपकी कविताएँ वेदान्तके विचारोंसे भरी पड़ी हैं। आप अपने समयके एक प्रसिद्ध एवं सफल अध्यापक थे। आपने अपनी कविताओंका एक संग्रह 'अमृत सागर' नामसे छपवाया था। इसमे दोनों भाषाओंकी (हिंदी और कश्मीरी) कविताएँ संग्रहीत है। श्री नीलकण्ठ शर्माने मुझे इनकी कई हिन्दी कविताएँ सुनाई। महाकवि परमानन्दकी कविताओंकी अपेक्षा इनकी कविताएँ सुगमतासे समझमें आती है। इनकी भाषामे यद्यपि उर्दूका पुट है, परन्तु वे हैं अत्यन्त सुलझी हुई। इनकी रचनाओंका नमूना देखिए :—

कर दया तू हे दयालु, दे तू आँखें ज्ञानकी,
तमसे गममें थम गया हूँ चाह मुझे निर्वाणकी।
मायाका विलास सारा तुमने जो उत्पन्न किया।
मैं उसीमें सो गया हूँ तुम जगाओ कर दया।
ना बुरा में जानता हूँ ना भला मैं जानता
तुम हरे सबसे परे तेरी दया मैं मानता।

\+ \+ \+

२—मन तुझ बिन तड़पता है श्रीकृष्ण मुरारी,
श्रीराम राम राम राम राम राम जी।
जूमर जैसा मैं घूमता गम पाता हूँ बहुत,
भ्रमसे मुझे गम ना छुटे फिर भ्रमसे जन्म-मृत।
जन्मादिकोंके दुःखसे चाहता हूँ निवृत्ति,
श्रीराम राम राम राम राम रामजी ॥

\+ \+ \+

४. श्री **हलधर जू कूकरू**:—श्री कूकरू जी पं. ठाकुर जू मनवटीके समकालीन तथा इनके शिष्य हुए हैं। आप भी वेदान्त दर्शनानुयायी कश्मीरी संत कवि हुए हैं। आपकी कई कविताओंकी एक हस्तलिखित प्रति श्री नीलकण्ठ शर्माके पास सुरक्षित है। इस पांडुलिपिके पढ़नेके पश्चात् मुझे इसमे कुछ हिन्दीकी कविताएँ भी मिलीं। अपने गुरुकी भाँति ही इनकी कविताओंमें भी उर्दूका संमिश्रण है। अपने गुरुकी अपेक्षा इनकी हिन्दी कविताओंमें प्रेषणीयताका गुण कम है। मुझे इनकी एक ऐसी कविता भी मिली, जिसकी पहली दो

पंक्तियाँ हिन्दी और पिछली दो पंक्तियाँ कश्मीरीमे है जो हमें बरबस रहीमकी याद दिलाती हैं। इन पंक्तियोंका आस्वादन कीजिए :—

तुम बिन मुझको ना है करार
आ बन मुझको साक्षात्कार।

\+ + +

यरि उर हरि हो मुट्टय यलि गले
त्यलि फूलि च्यथ-वजि सत् विचार।
सबसे पहले सबसे पिछिले
बजले हरीहर साराबि सार........॥

इनकी काव्य रचनाका नमूना भी देखिए:—

१—जब तुम ने ढूंढ़ा अब पहचान ओं हरे।
साक्षात् सन्मान नाराण ओं हरे।
हरिभक्ति में डर नहीं करना,
बाहर भीतर आप ही अपना।
वदि सर छोड़ कर घर ध्यान ओं हरे।

\+ + +

आई बाप न पुत्र न भाई,
धन के लोभी धन बिना नाही।
इनके पीछे क्यों परेशान ओं हरे।
जो जो जिसके मथे पर लिखा है,।
सो सो उस को मिले क्या डर है।
अपना जान पछान (पहचान),
जान जहान ओं हरे।

२—सो हमने पाया जो भूल गया था।
घरमें गंगा सन्तन नजरसे।

\+ + +

हम तुम ना है हम तुम रमना,
रमना में बोलना और सुनना।
निष्क्रिय निर्भय बन हरी हर से।
घर में गंगा सन्तन नजर से॥

३—हाथ जोड़कर सद्गुरु के पास जाकर,
सद्गुरु करुणाकर बन हरीहर।
मेरी न चर्खी सूतर न तेरी।

सद्गुरु ढूंढ़कर बन कर अमीरी,
छोड़कर दविसर पकडकर फकीरी . . . . .॥

मास्टर जिन्दा कौल (मास्टरजी):—श्री जिन्दा कौलजी १८८० ई. में श्रीनगरके शिहलीट नामक स्थानमें पैदा हुए हैं। आप अपने समयके एक सुयोग्य अध्यापक समझे जाते थे। आप महाकवि परमानन्दके परम भक्त हैं। आधुनिक कश्मीरी सन्त कवियोंमें आपका प्रमुख स्थान हैं। आपको अपने एक मात्र कविता संकलन "स्मरण" पर साहित्य एकादमीका ५००० का पुरस्कार मिल चुका है।

सन् १९४१ ई.में मास्टरजीकी 'पत्र पुष्प' नामसे एक पुस्तिका छपी है। इसमें आपकी पाँच हिन्दी कविताएँ संग्रहीत हैं। ये क्रमशः निम्नांकित हैं:—

१. नववर्ष (नवर्यह) सम्बन्धी सन्देश।
२. प्रेम कन्हैया।
३. ध्रुव नारायण सम्वाद।
४. भ्रातृभाव
५. पतझड़में चिनारका पत्ता।

इन कविताओंका साहित्यिक मूल्य अधिक नही है, परन्तु ऐतिहासिक महत्वकी न्यूनता भी नही है। कुल मिलाकर "पत्र पुष्प" की कविताओमे प्रेम और विश्वबन्धुत्वने प्रधान स्वर पाया है। दो-एक उदाहरणोंका अवलोकन कीजिए:—

१—प्रेम तो सुख प्रत्यक्ष है
द्वेष प्रकट संताप।
प्रेम समान तो पुन नहीं
द्वेष समान न पाप।

२—सारे देशमें चल पड़े जिस से प्रेम की लहर।
सींचे सूखे खेतको यह गंगा की नहर॥

२—स्वामिन् सर्वेश्वर सर्वाश्रिय,
सर्वाकार प्रणाम।
भगवन् विश्वात्मन् विश्वंभर,
विश्वाधार प्रणाम॥
आप हैं बन्धु भ्राता,
आप पिता और माता।
आप ही धन और दाता,
प्रतिपालक और त्राता,
आप को बारंबार प्रणाम॥

३—ईश्वर इच्छा इन सब में से,
जीव को हांके जाती है।

जड़ प्रकृति तब कालान्तर में
क्रम से उन्नति पाती है।
अन्त में प्रेम और प्रज्ञा द्वारा
प्रभु में जाय समाती है ॥

पण्डित नीलकण्ठ शर्मा :—श्री शर्माजी सन् १८८८ ई. में "डब" (शादीपूर) नामक गाँव—तहसील गान्दरबलमे एक मध्यम-वर्गीय कश्मीरी पंडित घरानेमें उत्पन्न हुए हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा घरपर ही हुई। अल्पवयसे ही आप कश्मीरी में कविताएँ करते थे। आप आधुनिक कश्मीरी साहित्यके शीर्षस्थ भक्तकवि माने जाते हैं। आपकी सुप्रसिद्ध कृति "रामायणि शर्मा", अर्थात् कश्मीरी रामायणका अध्ययन करते हुए मुझे इसमें हिन्दीकी कई रचनाएं दृष्टिगोचर हुई। आपकी हिन्दी सुलझी हुई है। हिन्दी कविताएँ भी आपकी कश्मीरी कविताओंकी भाँति भक्तिरस-सनी तथा प्रसाद-गुणयुक्त है। कुछ कविताओंका आस्वादन कीजिए:—

१—जय जय प्रभु विभु दीनदयाला,
जय जय राम खरारी।
जय परिपूरण पीताम्बर-धर
अक्षर कष्ट निवारी।
सर्वाधारा निर्-आकारा
त्रिभुवन सारा प्यारा।
तू है सब में व्यापक निर्मल
तू है सब से न्यारा।
कर्ता धर्ता हर्ता भर्ता
भक्तनके हितकारी।
ना मैं जानूं भक्ति तेरी
ना मैं जोग पछानूं।
ना मैं धर्मी ना मैं कर्मी
ना कोई साधन जानूं।
मैं हूँ मतिमन्द बालक जैसा,
तू मेरा रखवारी ॥
२—हे रघुनंदन जय रघुनंदन,
जय जय त्रिभुवन सार।
\+ \+ \+
अन्त तुम्हारा किसने जाना,
किसने जाना भेद।

कहते गाते वर्णन करते
ऋषि मुनि चारों वेद।
कह कह सब गए हार॥ जय.॥
नीलकंठ है दास तुम्हारा
त्रास निवारो जी।
दिखलाओ अपना सुन्दर मुख,
दुःख संहारो जी।
तू है सरजन हार॥ जय.॥

श्री **दीनानाथ "नादिम"**:—कश्मीरी काव्यको नया मोड़ देने वाले कवि श्री 'नादिम' भी पहले पहल हिन्दी कविताएँ किया करते थे। श्री नादिमजी सन् १९१६ ई. मे श्रीनगरमें पैदा हुए। आजकल आप हिंदू हाइस्कूलके प्रिंसिपल है। आपकी हिन्दी कविताएँ काफी लोकप्रिय बनी थी। इनकी कविताओंमे गजबका प्रवाह है। आपकी "कलिंगसे राजघाट तक" नामक कविता काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इसी कविताके एक अंश का अवलोकन कीजिए :—

१—यह कर दिया
वह कर दिया।
यह किसलिए
वह किसलिए?
विजय के लोभ के लिए?
विजय के लोभ के लिए-अशोकने।
२—कलिंगके ललाटपर कथा लिखी।
विजयकी हारकी कथा।
स्वदेश प्यारकी कथा।
मनुष्य रक्तसे नहा नहाके।
लाल रंगसे........॥

सहभाषा कालके अनन्तर प्रचार सृजन कालका आरम्भ होता है। बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धसे कश्मीरमे हिन्दी प्रचारको काफी गति मिली, जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी लेखनकी ओर साहित्यकारोंका झुकाव बढ़ता गया और कई हिन्दी पत्र पत्रिकाओंका जन्म हुआ। हिन्दी प्रचार कार्य तथा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंके जन्मसे ही बहुतसे आधुनिक कश्मीरी लेखकोंको हिन्दी लिखनेकी प्रेरणा मिली है। अतः निम्नलिखित पंक्तियोंमें हम कश्मीरमे हिन्दी प्रचार कार्य तथा कश्मीरकी हिन्दी पत्रिकाओंपर प्रकाश डालेंगे।

कश्मीरमें हिन्दी प्रचारका बीजारोपण कई समितियों द्वारा हुआ है। इस बीजने क्रमशः अंकुरित होकर एक पौधे और अब एक वृक्षका रूप धारण किया है। इस हिन्दी-वृक्षकी समय-समयपर अनेक शाखाएँ एवं उपशाखाएँ निकली। कई शाखाएँ कालपदाघातसे टूटकर गिरीं और कई आज पुष्ट होकर फल दे रही है। इन सभी शाखाओं और उपशाखाओंका परिचय निम्नलिखित पंक्तियोंमें दिया जा रहा है:—

आर्य समाज श्रीनगर शाखा :—सन् १९०० ई. के लगभग श्रीनगरमें लाहौर आर्यसमाजकी शाखा प्रतिष्ठित हुई थी। प्रति रविवारको प्रातः इसकी बैठक हुआ करती थी जिसमें भिन्न भिन्न विषयोंपर विद्वान् सभासदों द्वारा हिन्दीमें व्याख्यान हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त समाज की वार्षिक बैठकोंमें पंचनद तथा अन्य प्रान्तोंसे विद्वानों और प्रचारकोंको निमन्त्रित करके संयोजक उनसे महान् गम्भीर विषयोंपर हिन्दीमें भाषण करवाते थे, जिससे लोगोंमें हिन्दीकी ओर रुचि बढ़ती जाती थी। हिन्दी-प्रेमियोंमें हिन्दीकी पुस्तकें भी बाँटते थे। नवयुवकोंको हिन्दीके प्रचारके लिए पुरस्कार भी प्रदान किया जाता था। संक्षेपमें हिन्दी शिक्षाका सूत्रपात कश्मीरमें इन्हीं सज्जनोंके यत्नोंसे हुआ है।

सनातन-धर्म सभा :—हिन्दी प्रचारमें इसका कश्मीरमें काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु जो उत्साह समाजियोंमें देखा गया है, वह सनातनियोंमें नही था। मगर सनातनियोंका प्रचार कार्य स्थिरतासे तथा धीरे-धीरे चलता रहा है। महाराजा प्रतापसिंहके सनातनधर्मी होनेके कारण सभाका भी अधिक सम्मान था और समय समयपर बाहरसे वयोवृद्ध विद्वानोंको बुलाकर सनातनी संयोजक श्री दिवंगत महाराजके सभा-पतित्वमें बड़ी बड़ी सभाएँ आयोजित करते थे और अनेक विषयोंपर चर्चा होती थी। परन्तु सारी कार्यवाही हिन्दीमें ही हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त इनकी भी साप्ताहिक बैठकें शामको हुआ करती जिनमें विद्वानोंके भाषण तथा रामायण-महाभारतकी कथाएँ भी हिन्दीमें होतीं थी। इससे भी कश्मीरियोंमें हिन्दी सीखनेकी तरफ रुचि बढ़ती गई; और बालक बालिकाएँ भी पर्याप्त लाभ उठाने लगीं। इसका स्थापना काल १९०० ई. है।

हिन्दू सहायक सभा :—इसकी स्थापना लगभग १९०५ में हुई थी। इस युगके संचालकोंमें लाला शिवदास, बावा बलवनसिंह डॉ. कुलभूषण तथा तथा पं. दौलतरामके नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब सज्जन हिन्दी संस्कृतके अनन्य प्रेमी होते हुए सामाजिकता तथा धार्मिक कार्योंमे भी विशेप भाग लेते थे। इनका हिन्दी प्रचार-कार्य-सराहनीय है। ये सभी हिन्दी-निबन्ध प्रतियोगिताओंका आयोजन करती थीं। इस सभा द्वारा आयोजित सन् १९१३ ई. की निवन्ध-प्रतियोगितामें श्रीनायडूजी तथा श्री मधुसूदन कौलजी (भूतपूर्व अध्यक्ष, रिसर्च विभाग), जो उस समय श्री प्रताप कॉलेजके विद्यार्थी थे, वे निबन्ध सर्वश्रेष्ठ घोषित किए गए थे।

जीवन सुधार सभा :—यह लगभग सन् १९१० ई. में प्रतिष्ठित की गई थी। इसके संचालकोंमें से स्वर्गीय श्री लाला लक्ष्मीचंद खोसलाका नाम उल्लेखनीय है। सभाके कार्यालयमे एक सुन्दर छोटा-मोटा हिन्दी-पुस्तकालय भी था, जिसमें उस समयके मासिक—सरस्वती, माधुरी, चाँद, शारदा, हंस इत्यादि रखे जाते थे। नवीनतम छोटी-मोटी पुस्तक पुस्तिकाएँ भी प्रचुर मात्रामे थी। नवयुवकोंको आकर्षित करनेके लिए और उनमें हिन्दी-साहित्यानुराग बढ़ानेके लिए श्री खोसलाजी काफी प्रयत्न करते थे। उनकी ही प्रेरणासे कार्यालयोंके बड़े बड़े अफसर भी हिन्दी प्रचारके लिए दत्तचित्त हुए थे। समयका विचार करके हिन्दीके विषयमें उस समयका उनका यत्न काफी प्रशंसनीय है।

इन पंचनदीय महानुभावोंकी प्रेरणासे स्थानीय नवयुवकगण भी हिन्दी प्रचारमें रुचि लेने लगे और स्कूलों कालेजोंमें भी उर्दूके स्थानपर हिन्दी पढ़ना ही पसन्द करने लगे। उन्होंने हिन्दी-प्रचारके लिए

छोटी-छोटी सभाएँ स्थापित कीं जिसके फलस्वरूप कई अन्य संस्थाओंका प्रादुर्भाव हुआ जिनका वर्णन अगले पृष्ठोंमें अंकित किया जा रहा है।

हिन्दी प्रचारिणी सभा :—यह सभा १९५० ई. तक काम कर रही थी, परन्तु कार्यकर्ताओंके इतस्ततः स्थानान्तरित होनेसे, अचानक बन्द हो गई। १९५० ई. की कश्मीरकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनी रही जिनके फलस्वरूप हिन्दीके प्रचार कार्यमें बाधा पड़ गई। यह स्थिति शीघ्र ही १९५३ ई. से सुधर गई।

२. **हिन्दी साहित्य परिषद** :—१९५३ ई. के लगभग यह परिषद कई नवयुवकोंके उत्साहसे प्रस्थापित हुई। बादमें इसी परिषदने कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलनका रूप धारण कर लिया, जो वर्तमान कालमें भी हिंदी-प्रचार कार्यके साथ-साथ हिन्दी साहित्य-निर्माणके कार्यमें भी संलग्न है। सम्मेलन विचार गोष्ठियों, साहित्यिक बैठकों एवं मासिक पत्रिका 'कश्यप' के प्रकाशन द्वारा कश्मीरके हिन्दी साहित्यकारोंको प्रोत्साहन दे रहा है। कश्मीरी साहित्यकारोंकी नई पौध किसी न किसी रूपमें सम्मेलनकी ही उपज है।

३. **जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति**:—यह संस्था सन् १९५६ में स्थापित हुई है। यह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध है। इसके संचालकोंमेंसे श्री प्रो. जाडूजीका नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य है। श्री जाडूजी युवावस्थासे ही हिन्दी-प्रचार-प्रसार कार्योंमें लगनके साथ भाग लेते रहे हैं। राजकीय हिन्दी प्रसार बोर्डके मंत्रित्व कालमें आपने गाँव गांवमें हिन्दीकी पाठशालाएँ खुलवाकर वहाँपर हिन्दी पढ़नेकी ओर, बालक बालिकाओंमे ही नही, बल्कि वयस्कोंमें भी रुचि बढ़ाई। हिन्दी संस्कृत विभागके अध्यक्षत्व कालमें भी अपने कॉलेजके हिन्दी विद्यार्थियोंमें काफी संख्या बढ़ानेके अतिरिक्त उनमें आपने राष्ट्र-भाषाके प्रति श्रद्धा-सम्मानकी भावना बढ़ाई, जिसके फलस्वरूप आधुनिक पीढ़ीके युवक-युवतियोंमें हिन्दी प्रचारके लिए महान् अनुराग है और पढ़नेके लिए प्रवृत्ति भी है। आजकल श्री जाडूजीके अध्यक्षत्वमें जम्मू-कश्मीर-राष्ट्रभाषा समिति पूरी लगनसे हिन्दीका प्रचार कार्य कर रही है। अब तक इस समितिने हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ हजारों कश्मीरवासियोंको राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शिक्षा प्रदान की है। हिन्दी-लेखन स्पर्धाओं, हिन्दी भाषण स्पर्धाओं, हिन्दी साहित्यकारोंके सम्मानार्थ पारितोषिकों तथा अन्य प्रोत्साहन पारितोषिकोंका आयोजन करके यह समिति अपने उद्देश्यको पूर्ण कर रही है। समितिका साहित्य-विभाग भी कुछ कालसे कार्यरत है।

कश्मीरके अहिन्दू, जो हिन्दीको एक सांप्रदायिक भाषा समझते थे, के दिमागोंसे भी धीरे-धीरे समितिने इस भ्रमको दूर किया। समिति प्रति सत्रमें, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित भिन्न भिन्न हिन्दी-परीक्षाओंमें अनेक अहिन्दुओंको भी उनकी रुचिसे सम्मिलित कर रही है।

४. **अभिनव लेखक मण्डल** :—तरुण हिन्दी लेखकोंकी इस मण्डलीका प्रादुर्भाव सन् १९५९ ई. में हुआ था। प्रचार कार्यका शानदार कार्यक्रम भी इसके दिमागमें था। परन्तु कई कार्यकर्ताओंकी स्वार्थ प्रवृत्ति और कपट भावनाके कारण यह एक वर्षके जीवनान्तरमें ही विलीन हो गई।

५. **हिन्दी प्रचार सभा** :—यह सभा हिन्दी प्रचारकी दिशामें काफी लगनसे काम कर रही है। जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी सहयोगी संस्थाके रूपमें यह सभा राष्ट्रभाषा हिन्दीकी परीक्षाओंके लिए छात्र-छात्राओंको तैयार कर रही है।

हिन्दी पत्रिकाएँ

कश्मीरकी हिन्दी संस्थाओं एवं हिन्दी प्रचारकोंके अथक प्रयत्नोंसे कश्मीरमें कई हिन्दी पत्रिकाओं का जन्म हुआ। आज तक यहाँसे लगभग सात हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। अर्थाभाव तथा उचित राजकीय सहायताएँ मिलनेपर कुछ कालके पश्चात् अधिकांश पत्रिकाएँ बन्द हुई। क्रमानुसार कश्मीरकी हिन्दी पत्रिकाओंकी सूची इस प्रकार है:—

१–महावीर, २–वितस्ता, ३–चन्द्रोदय, ४–योजना, ५–कश्यप, ६–प्रकाश, ७–बालविकास।

इन पत्रिकाओंमेंसे आजकल केवल ‘ कश्यप ’ तथा ‘ प्रकाश ’ ही प्रकाशित होते हैं। ‘ कश्यप ’ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कश्मीरकी साहित्यिक पत्रिका है। यों तो यह मासिक पत्रिका है, परन्तु अभी नियमित रूपसे निकल नहीं पा रही है। इस पत्रिकामे कश्मीरके प्रतिनिधि कृतिकारोंके साथ ही नवोदित लेखकोंकी रचनाएँ भी छपती है। कुल मिलाकर ‘कश्यप’ का स्तर बुरा नहीं। ‘प्रकाश’ एक पाक्षिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन ब्राह्मण महामण्डल, कश्मीर द्वारा हो रहा है। मण्डल मठाधीशोंके अनुसार यह एक साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक पत्रिका है। परन्तु जितने भी अंक अभीतक प्रकाशमें आए है, उनसे मठाधीशोके कथन की सत्यता प्रमाणित नहीं होती। इस पत्रिकाका सम्पादन और स्तर कुछ उन्नत नहीं है।

कश्मीर सरकारने भी हिन्दी प्रचारकी दिशामें थोड़ा बहुत योग दिया है। स्कूलों, कॉलेजों और पाठशालाओंमें हिन्दीके सुयोग्य अध्यापकोंकी व्यवस्था कर सरकारने हिन्दी शिक्षा प्रसारमें सहयोग दिया। १९१६ ई.मे महाराणा प्रतापसिहने एक बोर्ड भी नियत किया था, जिसका उद्देश्य यह था कि हिन्दी और संस्कृत का प्रचार दूर दूर तक फैल जाए। भिन्न-भिन्न स्थानोंपर पाठशालाएँ भी स्थापित की गई थीं जिनका संचालन सरकारी आर्थिक सहायतासे बोर्ड कर रहा था। इसके सदस्य थे—स्व. रामलाल कांजीलाल, स्व. नित्यानन्द शास्त्री, स्व. मधुसूदन कौल, एम. ए., और श्री जाडूजी जिन्होंने कुछ कालतक बोर्डका मन्त्री पद स्वीकार किया था। जाडूजीके मन्त्रित्वकालमें पाठशालाओंकी संख्या भी बढ़ गई थी। आजकल इनका निरीक्षण शिक्षा विभाग द्वारा हो रहा है। कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भी इन पाठशाला टीचरोंकी थोड़ी-बहुत पारितोषिक रूपसे आर्थिक सेवा करती है; इस आशासे कि ये लोग राष्ट्रभाषा परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंकी संख्या बढ़ानेमें यत्न करें। इसके अतिरिक्त सरकारी संस्कृत रिसर्च डिपार्टमेंट, प्रकाशन विभाग तथा जम्मू-कश्मीर कलचरल अकादमीके द्वारा भी राज्य सरकारने हिन्दीकी अनन्य सेवा की है। जम्मू-कश्मीर-संस्कृत-रिसर्च विभाग, श्री महाराजा प्रतापसिहने १९००ई.में संस्कृत-अध्ययनकी उन्नति करनेके लिए विशेषकर कश्मीर-अद्वैत-शैवदर्शनके शास्त्रोंको सम्पादित करनेके लिए, स्थापित किया था। इसके अध्यक्षोंमें श्री जे. सी. चटर्जी, श्री महामहोपाध्याय मछकराम शास्त्री, श्री मधुसूदन कौल तथा प्रो. जाडूजीके नाम उल्लेखनीय है। संस्कृतकी साहित्यिक पुस्तकोंका संशोधन तथा सम्पादन करनेके साथ-साथ उपर्युक्त विद्वानोंने कई संस्कृत तथा हिन्दी रचनाओंका हिन्दी अनुवाद भी करवाया था जो अभी तक अमुद्रित पड़ी है। महाकवि परमानन्दकी कई कविता-संग्रहोंका हिन्दी अनुवाद भी उसी रिसर्च विभागमें श्री जाडूजीके द्वारा हुआ था; वह भी अभीतक अप्रकाशित ही पड़ा है। इसके अतिरिक्त सन १९१३ ई. की श्री जाडूजीकी लिखी हिन्दी कविता—“ आतिथ्य-आदर्श ”—का यहाँपर निर्देश करना भी अनुपयुक्त न होगा। यह कविता गृह-लक्ष्मी पत्रिकामें, जो उस वक्त श्रीमती उमा बहनके सम्पादनमें प्रयागसे निकलती थी, सम्पादिकाके सुन्दर

नोट सहित छपी थी। महाभारतके कपोत-कपोती नामक आख्यानका यह पद्यमय स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद है।

सरकारी विद्यालयोंमें भी कई वर्षोंसे त्रैमासिक तथा षाण्मासिक पत्रिकाओंमें, हिन्दी स्तम्भोंमे, हिन्दी प्रोफेसरोंके निरीक्षणमें, बहुतसे उत्साही, हिन्दी प्रेमी छात्र-छात्राओंके हिन्दी लेख छप चुके है और आजकल छप भी रहे है। इनमेंसे कई लेख सुन्दर और सराहनीय हैं।

सन् १९५७ मे राज्य संचालित लालारूख पबलिकेशनसकी ओरसे हिन्दीमें "कश्मीरी लोककथाएँ" नामक एक पुस्तक छपी है।

सन् १९५३ से हिन्दीको सरकारकी ओरसे थोड़ा-बहुत संरक्षण और भी मिला है। सूचना निदेशालयकी ओरसे एक दो हिन्दी पत्रिकाएँ निकलीं और "कलचरल अकादमी" की स्थापना भी की गई। सूचना विभागने "योजना" तथा "बाल-विकास" नामक दो हिन्दी पत्रिकाएँ सम्पादित की। गत चार पाच-छः वर्षोंसे "योजना" का सम्पादन योग्य सम्पादकोंके हाथोंमें आकर बहुत परिमार्जित हो गया था। इसमें जम्मू कश्मीरके प्रतिनिधि हिन्दी कृतिकारोंके अतिरिक्त भारतके शीर्षस्थ हिन्दी लेखकोंकी रचनाएँ छपती थीं। "बाल-विकास" बच्चोंकी पत्रिका थी। इसके दो ही अंक निकल सके। दोनों अंकोंकी सजावट मनोहर थी। एक और पाक्षिक पत्र भी उक्त निदेशालय द्वारा "कश्मीर समाचार" नामसे सम्पादित होने लगा था, परन्तु संकटकालमें इन सबका सम्पादन और मुद्रण रुक गया है।

जम्मू-कश्मीर कलचरल अकादमीकी हिन्दी उपसमितिके संयोजक श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' तथा उनके सहयोगियोंके श्रम तथा लगनसे जम्मू-कश्मीरके हिन्दी साहित्यकारोंके दो संग्रह—'गद्यांजलि' तथा 'पद्यांजलि', सम्पादित होकर मुद्रित हुए है। इन संग्रहोंमें राज्यके लगभग सभी प्रतिनिधि कृतिकारोंको स्थान दिया गया है। श्री पुष्पजीके प्रयत्नोंसे उक्त उपसमितिकी ओरसे राज्यके हिन्दी साहित्यकारोंकी साहित्यिक बैठकोंका आयोजन भी किया गया था। परन्तु कई बैठकोंके होनेके पश्चात् ही इस आयोजनका अन्त हुआ।

कश्मीरके हिन्दी कृतिकार

कश्मीरमें हिन्दी-संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओंकी संक्षिप्त परिचयात्मक पृष्ठभूमि देनेके पश्चात् अब यहाँपर कश्मीरके कृतिकारोंका अवलोकन किया जाता है। उक्त पृष्ठभूमि इस कारणसे आवश्यक है, क्योंकि इनके प्रोत्साहन स्वरूप ही कश्मीरके बहुतसे हिन्दी लेखक प्रादुर्भूत हो गए है।

यहाँके कृतिकारोंको दो श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है:—

१—कश्मीरके वे हिन्दी लेखक जो कश्मीरसे बाहर रहते है।

२—कश्मीरके वे हिन्दी लेखक जो पूर्णतः कश्मीर निवासी है।

कश्मीरके बाहर रहनेवाले कश्मीरी हिन्दी लेखकोंकी संख्या काफी है। इनमेसे प्रमुख हिन्दी-लेखिकाओंका उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियोंमें कर रहे हैं:—

श्रीमती शचीरानी गुर्टू—श्रीमती गुर्टूका हिन्दी-आलोचना क्षेत्रमे अपना एक विशेष स्थान है। आपने हिन्दीमें बहुत से आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं और कई आलोचनात्मक ग्रन्थोंका सम्पादन भी किया

है। आपका 'साहित्य दर्शन' नामक ग्रन्थ हिन्दी आलोचना-क्षेत्रमें काफी समादृत है। इस सुन्दर ग्रन्थमें आपने हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवियोंके साथ यूरोपके प्रसिद्ध कलाकारोंकी तुलना की है। आपकी तुलना का ढंग मोहक एवं सुन्दर है।

श्रीमती **सत्यवती मल्लिक**—आपका जन्म सन् १९०६ ई. में श्रीनगरमें लाला चिरंजीलाल-जीके घरमें हुआ। आपके पिताजी कश्मीरके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित आर्य समाजी कार्यकर्ता रहे हैं। आजकल आप दिल्लीमें रहती हैं। विशाल भारतके द्वारा आपने हिन्दी साहित्य-जगतमें काफी ख्याति प्राप्त की। हिन्दी-कहानी-क्षेत्रमें आपका एक अपना स्थान है, आपकी कहानियोंमें नारी-जीवनका अच्छा चित्रण हुआ है। कहानियोंके साथ-साथ आपने निबन्ध, यात्रा-विवरण, संस्मरण तथा रेखाचित्र आदि भी लिखे हैं और कई स्केचों तथा संस्मरणोंका भी सम्पादन किया है। कहानी-साहित्यमें आपके कहानी संग्रह—'दो फूल' तथा 'वैशाखकी रात'—काफी समादृत हैं। इनके अतिरिक्त आपके "मानव रत्न", "अमिट रेखाएँ", "कश्मीर-की सैर", "अमर पथ", "दीपक" तथा "दिन रात" नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमेंसे "अमर पथ" तथा "दिन रात" पर आपको उत्तर प्रदेश सरकारसे पुरस्कार भी मिल चुका है।

आपकी पहली कहानी "दो फूल" सन् १९३५ ई. में विशाल भारतमें छपी थी। हिन्दी गद्य-लेखनके साथ श्रीमती मल्लिक हिन्दी कविता लिखनेमें भी रुचि रखती हैं। १९३८ में आपकी पहली कविता "अन्तरमें जो क्रीड़ा करते", "हंस" में छपी थी।

श्री **प्रेमनाथ दर**—श्री दर आजकल दिल्लीमें रहते हैं और आकाशवाणी, दिल्लीमें काम करते हैं। आप हिन्दीमें भी लिखते हैं और उर्दूमें भी। आप एक सुलझे हुए कहानीकार तथा नाटककार हैं। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित "भारतीय कविता" १९५३ के कश्मीरी भागका सुन्दर हिन्दी अनुवाद आपने ही किया है। आपका हिन्दी नाटक 'घरकी बात' एक सफल नाटक है। साहित्य-जगतमें यह नाटक काफी प्रसिद्ध हो चुका है। इस नाटकपर आपको कश्मीर कलचरल अकादमीका १९६२ का एक हजार रुपयेका प्रथम पुरस्कार मिल चुका है।

श्री **जीवनलाल "प्रेम"**—श्री जीवनलाल कश्मीरके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री टीकालाल शास्त्री—'रेन बो हिन्दी व्याकरण' के यशस्वी लेखकके सुपुत्र हैं। आपका जन्म १९१८ ई. में लाहौरमें हुआ है। आज-कल आप दिल्लीमें रहते हैं और 'नवभारत टाइम्स' के कार्यालयमें काम कर रहे हैं। आप एक सफल हिन्दी कवि होनेके साथ-ही-साथ एक सफल अनुवादक भी हैं। अबतक आपके तीन कविता-संकलन—पतझड़, बसन्त बहार तथा तारावली—प्रकाशित हो चुके हैं। आपने गुरु गोविन्दसिंहकी जीवनी हिन्दीमें लिखी है और गीतांजलिका भी हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपकी ये दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीमती **विमला रैना**—श्रीमती रैना एक प्रतिभा सम्पन्न हिन्दी कथाकार एवं नाटककार हैं। इनकी अबतक कुल मिलाकर आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके कहानी संकलन "हम तुम और वह" तथा "बुझे दीप" सराहनीय हैं। इनका नाटक "खाली साहब" भी काफी प्रसिद्धि पा चुका है।

श्री **नन्दलाल चत्ता**—इनका जन्म बरामुला कश्मीरमें हुआ है। आप सन् १९४७ ई. तक बारामुला नेशनल हायस्कूलमें अध्यापकका काम करते रहे। तदनन्तर आप भारत आए। आजकल आप दिल्लीमें रहते हैं और भारत सरकारके सूचना विभागमें काम करते हैं। आपके लेखन विषय हैं—कश्मीरका

लोक साहित्य और कश्मीरका इतिहास। आपकी कश्मीरकी लोककथाएँ दो भागोंमें प्रकाशित हुई हैं। कश्मीरके इतिहास विषयक आपके अनेक निबन्ध कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें छपे हैं।

श्री **मोहनकृष्ण दर**—श्री दर कश्मीरके एक उदीयमान साहित्यकार हैं। आपका जन्म श्रीनगरमें नरपीर स्थान मुहल्लेमे १९३१ ई. में हुआ है। आप एक सुलझे हुए हिन्दी कहानीकार हैं। आपके कहानी संग्रह—'चिनारके पत्ते' तथा 'केसरके फूल' हिन्दी साहित्य ससारमें काफी प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी अधिकांश कहानियोंकी पृष्ठभूमि कश्मीर ही है। "मनोरम कश्मीर" नामसे भी आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। आपका व्यवसाय पत्रकारिता है। आजकल आप दिल्लीमें निवास करते हैं।

श्री त्रिलोकीनाथ वैष्णवी तथा श्रीमती निर्मला 'कसम' भी हिन्दी साहित्य साधनामें चिरकालसे संलग्न हैं। आप पहले "रफीक" उपनामसे कश्मीरी कविताएँ लिखा करते थे, परन्तु बादमें हिन्दीमे लिखने लगे। आपके कई हिन्दी कविता संकलन अप्रकाशित पड़े हैं। श्री वैष्णवीजी आजकल उत्तर प्रदेशमे नौकरी करते हैं।

सुश्री निर्मला 'कुसुम' ने भी कई हिन्दी कविताओंकी रचना की है। आप धारावाहिक शैलीमें लिखती हैं। आपका विषय है समाज और नारीका चित्रण। आप आजकल दिल्लीमे रहती हैं।

प्रचार-सृजन काल

इस कालके कवियोंमें सर्वप्रथम स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद कायस्थका नाम उल्लेखनीय है। श्री कायस्थ का जन्म सन् १९०८ ई. मे श्रीनगरमें हुआ। आप हिन्दी-संस्कृतके एक अच्छे विद्वान् थे। कश्मीरमें हिन्दी प्रचार प्रसारके लिए आपने काफी काम किया। आपने अपने सुयोग्य अनुज स्वर्गीय दीनानाथ 'दीन' को भी हिन्दी-सेवाकी शिक्षा दी थी। आप कश्मीर सरकारके शिक्षा सचिवालयमें अण्डर-सेक्रेटरीके पदपर नियुक्त थे। साहित्य साधनाके अतिरिक्त आप समाज सुधार तथा सांस्कृतिक कार्योंमे भी सक्रिय भाग लेते थे। कश्मीरके प्रथम हिन्दी साप्ताहिक 'चन्द्रोदय' को १९३९ में आपने श्री पृथ्वीनाथ पुष्पके सहयोगसे सम्पादित किया था।

हिन्दी कविताके साथ-साथ ही आप हिन्दी तथा अँग्रेजी गद्य भी लिखते थे। कश्मीरके सुप्रसिद्ध संस्कृत आचार्य उत्पलकी आपने अँग्रेजीमें एक संक्षिप्त जीवनी भी लिखी है। कश्मीरकी आदि कवयित्री ललद्यदपर भी आपने "ललद्यद" नामक प्रसन्ध लिखा है, जिसे कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलनने प्रकाशित किया है। १९५३–५५ ई. में कश्मीरी कवितापर आपने एक लेखमाला लिखी जो "ज्योतिः" पत्रिकामें प्रकाशित हुई। आपका हिन्दी कविता संकलन "अश्रुकण" आपकी अकाल मृत्युके कारण अधूरा ही मुद्रित हो सका। प्रस्तुत पंक्तियोंके लेखकनें आपके श्रीमुखसे कई बार आपकी रचनाएँ सुनी है। आपकी कविताओंमें वेदनाका संचार है। इनपर छायावादी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविताओंमेंसे एक नमूना देखिए। कवि "पंकज" नामक कवितामें लिखता है :—

बाल कुसुम का रे तू प्राण,
अवलम्बी शिशु सा नादान,
उलझी अलक सुगन्ध समान,

मुलझी मृदुल सुरीली तान।
मादकता का मधु आख्यान।
प्रकृति का साक्षात् विनय।
दूर गीत की सुमधुर लय।
शीतलताका वर संचय।
दीन कवि का भाग्योदय।
संस्कृति का रसपूत हृदय।

श्री **पृथ्वीनाथजी 'पुष्प'**—श्री 'पुष्प' कश्मीरके सर्वतोमुखी साहित्यकार है। आपका जन्म सन् १९१७ ई. में हुआ। आप कश्मीर सरकारके शिक्षा-विभाग पुंछ कालेजके प्रिन्सिपलके पदपर इस समय नियुक्त है। कश्मीरमे हिन्दी प्रचार-प्रसारमे आपका काफी योग है। जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित "१५ दिनोमे ही उर्दूसे हिन्दी सीखिए" नामक पुस्तिका आप ही की रचना है। आप राजभाषा आयोगके एक मान्य सदस्य थे। आप हिन्दीमें कविताएँ-कहानी लिखते है तथा आपके प्रिय विषय कश्मीरी भाषा साहित्य और संस्कृति है। आलोचनामें आपकी विशेष रुचि है। आजकल आप आलोचनात्मक निवन्ध ही लिखते है। हिन्दीके अतिरिक्त आप अँग्रेजी, उर्दू और कश्मीरीमें भी लिखते है। आपने कई हिन्दी कवियोंकी रचनाओंका कश्मीरीमे तथा कई कश्मीरी कृतियोंका हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपकी सर्व प्रथम प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार है—

१. लेख—स्वर्गीय प्रेमचन्द, 'प्रताप', श्रीनगर, १९३६ ई.
२. कविता—दो दृश्य, 'प्रताप', श्रीनगर, १९३७ ई.
३. कहानी—अहिंसा, 'प्रताप', श्रीनगर, १९३७ ई.

जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालयकी कई परीक्षाओंके लिए आपने अनेक पाठ्य पुस्तकोंका सम्पादन भी किया है। आपकी शैली आकर्षक एवं भाषा सुबोध है। शोषितों और श्रमिकोके प्रति आपके मनमे सहानुभूति तथा समवेदना है। नवजीवन नामक कवितामे आप लिखते है :—

वसुधा के मुरझाए मुंह पर।
माधव नव आभा ले आया।
पतझर से पथराई आँखों में
सोया चेतन अँगड़ाया।
\+ \+ \+
पर ठिठुरे श्रमिकों के भी
जीवनको मधु सरसाएगा क्या?
शोषण भीषण जाड़े से
धरती ने छुटकारा पाया?

श्री पुष्पकी कविता प्रसाद गुण युक्त है। इन्होंने कई नवीन छन्दोंको भी अपनाया है। देखिए :—

डर लगता है
सच्चाई से
डर लगता है,
सच्चाई जो
सौ-सौ बहकावों में खुलकर,
मानव कुल को
युग हत्या का
वर देती है।

("डर लगता है"—कवितासे)

श्री पुष्पजीके गद्यका भी नमूना देखिए :—

"ललद्यदने होश सम्भाला तो कश्मीरके सांस्कृतिक जीवनमें भारी उथल-पुथल मची हुई थी। इधरसे शैवदर्शनकी जीवन-पोषक परम्पराओंको बाह्य आडम्बरोंने घेर रखा था। और उधरसे इस्लामके प्रचारक (सूफी फकीर) एक नया दृष्टिकोण पेश करने लगे थे। बुद्धिभेदके कारण भिन्न भिन्न जातियों और संस्कृतियोंके बीच वैमनस्य उपजाकर समाजमें गड़बड़ मचानेवालोंकी भी कमी न थी। अतः आवश्यकता इस बातकी थी कि दर्शनकी मानवतावादी परम्पराओंको पाखण्ड और कर्मकाण्डके कड़े बन्धनोंसे छुटकारा दिलाया जाए।"

(योजना—कश्मीरी साहित्यको नारीकी देन)

श्री घनश्याम सेठी—आप कहानीकार है और लेख भी लिखते हैं। आप १९३४ ई. में पैदा हुए। आपका व्यवसाय यों तो व्यापार है परन्तु लेखनसे काफी दिलचस्पी रखते हैं। आपकी रचनाएँ, यात्रा संस्मरण, कहानियाँ तथा लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रहती हैं। आपकी एक पुस्तक—'नगरी-नगरी फिरा मुसाफिर'—प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तकमें आप ने अपनी विदेश यात्राओंके संस्मरण संकलित किए हैं। आपके वर्णन करनेका ढंग बहुत सुन्दर है। आपकी भाषा शैली में सरलता और सरसता है। उक्त पुस्तकसे उद्धृत "डेजर्ट बसमें" नामक यात्रा संस्मरणके एक अंशका अवलोकन कीजिए :—

"....... फ्रेंच कॉस्मटिक्स भी खुशबुओंमें बसे, चिकने फर्शपर नाचते हुए अमेरिकन और अँग्रेज जोड़े, नाम मात्रके लिए कपड़ेको शरीरसे लगाए, अरबी साजोंकी 'रम्भा' धुनोंपर शरीरका प्रत्येक अंग नचाती हुई "कबरे" की अरबी नर्तकियाँ, बुझाती और बुझ-बुझकर जलती रोशनियाँ, गर्म-गर्म साँसोंका स्पर्श, लम्बे-लम्बे निःश्वास और आहें, शॅम्पियनकी स्कॉचके कलात्मक गिलासोंका टकराव उनमें बसी मदिराका छलकाव,—अर्द्धरात्रि की इस घड़ीमें जैसे 'अरेबियन नाइट्स' का बगदाद जीवित हो गया है—"

श्री **पृथ्वीनाथ 'मधुप'**—प्रस्तुत पंक्तियोंके लेखकका जन्म १९३४ ई. में हुआ। आपको कश्मीरके सुविख्यात भक्तकवि, कश्मीरी रामायणकार, श्री नीलकण्ठ शर्माका आत्मज होनेका गौरव प्राप्त है। आप १९५० ई. से हिन्दीमें लिख रहे हैं।

पहले पहल आपने हिन्दी कहानियाँ लिखीं जो "ज्योतिः" में प्रकाशित हुई है। आप अब केवल कविताएँ और आलोचनात्मक निबन्ध ही लिखते है। आपकी पहली रचना "तुम कहाँ हो ?" सन् १९६०

ई. में प्रकाशित हुई थी। 'नई कविता' ने आपको काफी प्रभावित किया है। आप हिन्दीमें मुक्तक (रुबाइयाँ तथा कतए) भी लिखते हैं। कानपुरके 'साहित्यायन' के तत्वावधानमें प्रकाशित बृहत्ग्रन्थ 'सुकवि कुंजबिहारी स्मृतिग्रन्थ'––में आपका एक लेख "कवि वाजपेयीका कृतित्व" संकलित है। आपने 'गल्प सौरभ' नामसे प्रतिनिधि हिन्दी कहानी संग्रहका भी सम्पादन किया है। कई कश्मीरी कवियोंकी रचनाओंका हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमे आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती है। "योजना" नव वर्ष विशेषांक (जनवरी-फरवरी १९५१) के सम्पादकीय––"अपनी बात"––से दो पंक्तियाँ उद्धृत कर आपके कुछ कवितांश नीचे अंकित किए जाते है। श्री 'मधुप'जी कश्मीरके उदीयमान कवि है। बड़ी प्यारी कविताएँ रचते है। इनकी भाषा और भाव––दोनोंमें बड़ा प्रभाव और मिठास है :––

१––मधुर मूकता इसको भाती,
नीरव हो सब कुछ कह पाती,
अर्थ भार से दब-सी जाती,
रोम-रोम को पुलकित करके,
जता रही सोई अभिलाषा
नील-नलिन-नयनों की भाषा

(योजना––'नयनोंकी भाषा' कवितासे)

२––पहाड़ की ढलान पर खड़ा,
झाड़ियों पत्थरों से घिरा,
अनेक पक्षियों की बीटों से अभिषिक्त,
चींटियों की माला धारे,
यह अकम्प
विचार-मग्न ठूंठ
तलहटीकी––
दूब औ'
अंकुरित,
पल्लवित,
पुष्पित,
वृक्षोंकी ओर घूर-घूर
सोच रहा है
क्या ? ? क्या ? ? ?

("एक प्रश्न"––'कश्यप'–अगस्त, ६१ से)।

३––हृदय-हृदय में व्याप्त हमारे, गीताका सन्देश,
आत्मा अमर रहा करती है, मृत्यु ; बदलना वेष।
हम दधीचि है वज्र बनेंगे,

हँस हँस देंगे प्राण,
प्यारे हिन्दुस्तान !

(राष्ट्रभाषा—मार्च, ६३ से)

४—प्रकाश को नहीं पूजूंगा मैं, तम को ही,
जय कहूँगा प्यार की न, ठोकरों की।
हँसी नहीं निश्वासें ही बनें अपनी ;
इन सबने मुझे पीर दी, परख दी॥

\+ + +

बेगुनाह मिलें धूल में पापी रहें उच्चासन पर,
चोरों के हों पौ बारह बस अभाव हो साधुके घर।
ढोंग है, धोखा है, व्यर्थ का भ्रम है केवल,
स्वार्थी पंडितों की चतुराई का फल है ईश्वर॥

(अप्रकाशित—मुक्तक-संग्रह "पंखुरियाँ" से)

श्री **मोहनलाल** 'निराश'—आप कश्मीरके उदीयमान कवि हैं। पहले पहल आप उर्दूमें लिखते थे, बादमें हिन्दीमे लिखने लगे। पहले आप कहानियाँ लिखते थे, परन्तु बहुत समयसे आपकी कोई कहानी देखनेमें नहीं आई है।

आपकी पहली हिन्दी रचना–'शान्ति विहंग'–'नया समाज', कलकत्तामें सन् १९५७ में छपी थी। 'नई काव्य धारा' से आप काफी प्रभावित है। आपने पंतजीकी कई कविताओंका कश्मीरीमें अनुवाद किया है। आपका जन्म श्रीनगरमें १९३४ ई. में हुआ। आजकल आप आकाशवाणी श्रीनगरमें, काम कर रहे हैं। आपकी कविताओंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:—

१—वह चेतन निश्चेतन जगमें,
चेतनता लाने में रत है।
('वह' "मानव" है—
वह शब्द कोषमें "संभव" है।)
निर्माण पर्व है, नया समय ;
हो रहा धरा पर स्वर्णोदय !!

(योजना '५८—"अरुणोदय" से)

२—पत्थर,—
और उड़ा,
और उड़ा,
समय हुआ,
और हुआ,
और हुआ,

यह हुआ :
कि पंखों में जुड़ गए पत्थर,
आकृतिका पत्थर।
प्रकृतिका पत्थर।
पत्थर बस पत्थर।
तो पत्थर आ गिरा नीचे;
पतन की होती है गति।

(पद्यांजलि—"दायरे और दायरे और दायरे" से)

३—माटी से माटी जुड़ती है
बन जाता है चन्द्र खिलौना।
कोई मोहन कोई राधा ;
हँसी रत्ती भर मन भर रोना।
खिलनेवाली कलि माधवकी,
झरनेवाला फूल शरद का।
सृजन प्रलय के आख्यानों से
यह इतिहास रचा जाता है।

(पद्यांजलि से)

श्री **हरिकृष्ण कौल**—आप कश्मीरके एक अच्छे हिन्दी-कहानी लेखक हैं। आपकी अधिकांश कहानियोंमें कश्मीरी पण्डित समाजका चित्रण हुआ है। आपकी कहानियोंका शिल्पविधान चरित्र चित्रण, एवं भाषा शैली मनोरम होती है। आपका जन्म श्रीनगरमें १९३४ ई. में हुआ। आपकी एक प्रतिनिधि कहानी—"यक्ष और टोपी" के एक अंशका अवलोकन कीजिए :—

"मोहन और विजया खिड़कीमें बैठे आपसमें कुछ खुसर-फुसर कर रहे थे। माँ उन्हें डाँट रही थी कि इतनी सर्दी होनेपर भी वे खिड़की बन्द क्यों नहीं करते? लेकिन बच्चे उसकी बात मानें, तब ना! वे फिरनोंके भीतर काँनडियाँ छिपाकर यक्षकी ताकमें थे। यक्ष आ के रहेगा, ऐसा उनका विश्वास था। वह शीघ्र ही उनके आँगनमें घुसकर किसी अँधेरे कोनेमें छिप जाएगा। फिर जब माँ पूजा समाप्त करके आँगनकी दीवारमें बने ताकचेपर खिचड़ी रखेगी तो वह झट निकलकर खिचड़ी खाने लगेगा और यही वह अवसर है जब वह उसकी टोपी चुरा सकते हैं।"

श्री **चमनलाल सप्रू**—आप लेखकसे अधिक प्रचारक है। श्रीनगरमें आपका जन्म सन् १९३५ ई. में हुआ। आपने कई हिन्दी पाठ्य पुस्तिकाओंका सम्पादन किया है। कश्मीरी भाषा एवं साहित्यसे सम्बद्ध आपने अनेक लेख लिखे हैं जो कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं।

श्री **शशिशेखर तोषखानी**—आप कश्मीरके मेधावी युवा कवि है। आप बचपनसे अब तक बराबर लिखते आ रहे हैं। आपका जन्म १९३५ ई. में श्रीनगर, कश्मीरमें हुआ है। श्री बच्चनजी तथा अज्ञेयजीकी कविताओंसे आप बहुत प्रभावित हुए हैं, बल्कि कविता लिखनेकी प्रेरणा आपको उन्हीसे मिली है। फलतः

आप 'नई कविता' खूब लिखते हैं। आपकी कविताएँ सरस तथा मार्मिक हैं जो आजकी पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रहती हैं।

कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

१—मैं प्रभात का बुझता तारा,
मरु में सूख रही जलधारा,
मैं गिरती दीवार उठाना व्यर्थ मुझे।

२—नाचती हर साँस मेरी आज बन पुलकित मयूरी,
हो रही है क्या तुम्हारे रूप की बरसात रंगिनि ?
जो कि सूने मन गगन पर
लिख गई चिर स्नेहलेखा
करुणाई अंकित नयन में
जो सहज सौन्दर्य-रेखा
तमपटी भी मुक्त कुन्तलराशि, पूनमचन्द्र सा मुख !
(मैं दिवसका ताप शापित कंठसे जिसको बुलाता—)
क्या नहीं तुम वह अमर छबि की सलोनी रात रंगिनि ?

(योजना '५९—"रूपकी बरसात" से)

३—नहीं है दर्द
(आत्माका उदित वह पुण्य !)
क्रास पर लटके मसीहा सा कहूँ,
लो, बाद में कीलें नुकीली हाथ में ठोंको
तुम्हारे वास्ते मैं तो
घृणा में कीच में
अपमान में धँस कर
अछूता सत्य लाया हूँ
उसे मैं
आज तुम को सौंपता हूँ।

(पद्यांजलि से—)

श्री **जवाहर कौल**—आप कश्मीरके उन तरुण कहानीकारोंमेंसे हैं, जिनकी साहित्य-साधनाको देखकर निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह मेधावी कहानीकार हिन्दी कहानी क्षेत्रमें, निकट भविष्यमें ही अपना विशेष स्थान बना लेगा। श्री कौल सफापुरा ग्राम (कश्मीर) में एक मध्यवर्गीय कश्मीर घरानेमें १९३७ ई. में उत्पन्न हुए। आप अपने पिताजीके साथ बचपनमें लद्दाखमें काफी समय तक रहे। अतः आपकी कई अच्छी कहानियोंमें लद्दाखके जीवनकी झाँकियाँ देखनेमें आती हैं। आपकी भाषा सुबोध है।

आपकी कहानियोंके प्राण आपके कथापात्रोंके सुन्दर वार्तालाप हैं। गद्यांजलिमें संकलित "ढोलया" नामक कहानीका एक वार्तालाप देखिए :—

'कहाँ रहती हो ?'
'संकर गुम्पा'
'क्या तुम्हारे भाई बहन है ?'
'न'।
'माँ' ?
'मालूम नहीं'।
'क्या वह तुम्हारे पिताके पास नहीं ?' मैंने आश्चर्यसे पूछा।
'नहीं'।
'क्या पतिसे झगड़ा हो गया है ?'
'वे उसके पति नहीं'।
'तो वे तुम्हारे असली पिता नहीं ?'
'नहीं'.....................।

श्री **रतनलाल 'शान्त'**—आप कहानियाँ, कविताएँ तथा आलोचनात्मक निबन्ध लिखते हैं। आपकी कला धीरे-धीरे प्रगतिकी ओर बढ़ती जा रही है। 'नई कविता' ने आपको खूब प्रभावित किया है। आप विमर्शशील तरुण लेखक हैं। आपका जन्म १९३९ ई. में श्रीनगर, कश्मीरमें एक कुलीन वंशमें हुआ है। आप मेधावी है और आपको शोधग्रन्थोंके लिखनेमें काफी रुचि है। आपकी कविताके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

सूरज कभी मेरे यहाँ से नहीं गुजरा,
अपनी अँधेरी कोठरी के झरोखे से
मैंने बाहर झाँक कर
उषा के फूल सम्हालती मालिन से
और तारों की बन्द होती दूकानों से,
जितनी भी किरणें खरीदी थीं।
वे सब खोटी निकलीं।

(पद्यांजलिसे)

दूसरा खण्ड

हिन्दी साहित्यका इतिहास

[राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे]

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

प्रस्तावना :

[हिन्दीको राष्ट्रभाषाका यह स्थान और पद उसकी उस व्यापक और आन्तरिक शक्ति के कारण मिला है, जो उसे समय-समयपर धार्मिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक नेताओं कवियों, लेखकों, और धर्म-प्रचारकोंके पोषणसे प्राप्त हुई। राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमे यह तथ्य जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि यह भाषा कहीं की बोल-चालकी भाषा नही है। इसे उत्तर भारतके मनीषियों, धर्म-प्रचारकों, सन्तों और व्यापारियोंने मिलकर देशव्यापी रूप दिया, मुसलमान शासकोंने अपनी राज सभाओंमें इसकी नई शैली उर्दूके नामसे चलाई, क्योंकि यह पहलेसेही व्यापारियोंकी (बाजारकी) व्यावहारिक भाषा बनी हुई थी।

देशकी अखण्डताके साथ देशके लिए भाषाका एक होना आवश्यक है। यह प्रधान तत्व गाँधीजी जैसे महापुरुषने भलीभाँति समझकर उसे राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रतिष्ठित किया। संयोग या कुयोगसे राजनैतिक द्वारसे इसका प्रवेश करा देनेके परिणाम स्वरूप इसका कहीं-कहीं विरोध भी किया गया और यह कहकर किया गया कि उत्तर भारतकी यह भाषा हम पर बलपूर्वक लादी जा रही है। किन्तु तथ्य यह है कि यह भाषा उत्तर प्रदेश और बिहारके लिये भी वैसे ही नई है, जैसे दक्षिणके लिए। किन्तु उत्तर भारतने इसे कुछ दिन पहले अपने व्यवहारके लिये स्वीकार किया और अन्य प्रदेशोंने अब किया है।

इस प्रयासमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यह प्रदर्शित किया गया है कि कई शताब्दी पूर्वसे ही भारतके विचार-शील महापुरुष भारतीय जनताकी भावात्मक एकता सिद्ध करनेके लिए एक व्यापक भाषाकी सृष्टि करते जा रहे थे, जिसके परिणाम-स्वरूप आजकी हिन्दी भाषा अपना पूर्ण प्रौढ़ रूप ग्रहण कर सकी है और जिसकी विस्तृत परिधिमें पूर्वमें बिहारसे पश्चिममे पंजाब तक और उत्तरमें नेपाल और पार्वत्य प्रदेशसे लेकर विन्ध्य-मेखला तक के बीच बोली जानेवाली सभी बोलियाँ समविष्ट हो जाती है।

इस इतिहासमें हिन्दी साहित्यकी परिधिमें भोजपुरी और उर्दूका भी समावेश किया गया है; क्योंकि भोजपुरी भी अब बोलीसे ऊपर उठ रही है और उर्दू तो हिन्दीकी शैली ही है, जिसका विचार हिन्दी साहित्य के ही अन्तर्गत होना चाहिए। इसी प्रकार नेपाली भाषा भी हिन्दीकी ही आतमीय भाषा है। उसका साहित्य

भी समृद्ध है। उसका समावेश भी हिन्दी साहित्यके अन्तर्गत होना चाहिए। हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

इस इतिहासमें भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियोंका विशेष विवेचन किया गया है। इन प्रवृत्तियोंके विवेचनके अन्तर्गत यथासम्भव अधिकसे अधिक कवियों और लेखकोंका समावेश किया गया है, फिरभी ज्ञात-अज्ञात, प्रचारवादसे दूर रहनेवाले, बहुतसे कवियों और लेखकोंके नाम छूट गए होंगे। किन्तु जहाँ तक साहित्यिक प्रवृत्तिका प्रश्न है, कोई प्रवृत्ति छूटने नहीं पाई। इसे राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत करनेका प्रयास ही समझना चाहिये। हिन्दी साहित्यका विस्तृत इतिहास नहीं। हमारे गुरु आचार्य शुक्लजीने अपने प्रसिद्ध 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' के प्रथम संस्करणकी भूमिकामें लिखा है—'वर्त्तमान सहयोगियों तथा उनकी अमूल्य कृतियोका उल्लेख भी थोड़े-बहुत विवेचनके साथ डरते-डरते किया गया', किन्तु मैंने भय और पक्षपात छोड़कर निर्धारित कसौटीपर कसकर परीक्षण करनेका प्रयत्न किया है, इसलिए कुछ वर्त्तमान-कालीन लेखकोंकी रचनाओंका मूल्यांकन करनेमें स्वभावतः सत्य-समीक्षाकी दृष्टिसे कुछ रुक्ष होना पड़ा है, किन्तु विश्वास है कि वे और उनके पक्षपाती उसे सहन करने और उस दृष्टिसे आत्म-परीक्षण करनेकी उदारता दिखावेंगे। यह कहना तो नितान्त मिथ्याहंकार होगा कि इस प्रबन्धमें शुद्ध न्याय किया गया है; फिर भी न्यायशील होनेका प्रयत्न सात्विक निष्ठासे किया गया है। मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे यह इतिहास लिखनेका अवसर दिया। मैं उन मित्रोंका कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थोंसे मुझे सहायता मिली है। मुझे विश्वास है कि कृपालु पाठक अपने अनमोल सुझाव देकर और छूटे हुए नामोंका विवरण देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे, जिससे अगले सस्करणमें उचित परिष्कार किया जा सके।]

इतिहासकी रूपरेखा

भारतकी प्राकृत भाषाओंने देश-भेदमे अथवा भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार देशी भाषाओंका रूप धारण कर लिया और इस क्रियामें जहाँ एक ओर संस्कृतने अपनी शब्दावली तत्सम और तद्भव रूपमे दी, वहीं विभिन्न प्रदेशोंकी बोल-चाल और व्यवहारमे प्रयुक्त होनेवाले देशी शब्द भी साहित्यमे स्थान पाने लगे। परिणाम यह हुआ कि देशी भाषाओंका साहित्य भी अपना उदार शब्द-वैभव लेकर साहित्यकी सृष्टि करने लगा। इस सम्पूर्ण प्रयासमे लोक-कवियोंने अपनी सामूहिक लोक-भावना, लोक-संस्कृति और लोक-चरित्रका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया जिसके परिणाम-स्वरूप भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें व्याप्त अनेक देशी भाषाओंमें प्रचुर मात्रामे साहित्यका सर्जन होने लगा।

संस्कृतका आधार

उत्तर भारतकी समस्त देशी भाषाओंका आकर संस्कृत भाषा ही थी इसलिए स्वभावतः जहाँ उनमें एक ओर देशी शब्दोंके अपनानेकी प्रवृत्ति थी वहीं दूसरी ओर संस्कृतके तत्सम और तद्भवको भी आत्मसात् करनेकी उदारता विद्यमान थी। इस उदारता का दूसरा सुफल यह हुआ कि उच्चारणमें थोड़ी-बहुत विचित्रता और विलक्षणता होनेपर भी वे इतनी अधिक एक-दूसरेके साथ घुल-मिल गईं कि उत्तर

भारत के एक प्रदेशके निवासी दूसरे प्रदेशकी देशी भाषाको बड़ी सुविधाके साथ समझ सकते थे। यह व्यापकता लानेका श्रेय उन महात्माओं, साधुओं, विद्वानों तथा धर्म-प्रचारकों और व्यासोंको था जिन्होंने समस्त उत्तर भारतमें घूम-घूमकर धर्मका प्रचार किया। साथ ही यह श्रेय उन चारणोंको भी था जिन्होंने भारतीय इतिहासके वीर चरितोंको अपनी ओजःपूर्ण भाषामें जनताको सुना-सुनाकर उन्हें अपनी आन तथा अपने मान-सम्मानकी रक्षाके लिये उद्‌बोधित किया था। इस धार्मिक तथा वीरता-पूर्ण प्रचारके साथ ही समस्त उत्तर भारतमें वैष्णव धर्मके प्रचारके कारण एक विचित्र प्रकारकी धार्मिक चेतना व्याप्त हो गई, जिसमे एक ओर तो भारतीय धर्म और दर्शनके आधारपर भगवद्-भक्ति, उपासना और साधनाका प्रचार किया जा रहा था और दूसरी ओर हिन्दू जनताके हृदयमे अपने धर्मकी रक्षाके लिए आत्मबल, शौर्य और तेजका भाव भरकर उन्हें उद्दीप्त किया जा रहा था। प्रारम्भमें तो भाषाके व्यापकत्वकी इस वृत्तिका कोई महत्व नहीं समझा गया किन्तु हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहासकार, सशक्त समालोचक, अप्रतिम निबन्धकार और प्रभावशील कवि आचार्य रामचन्द्र शुक्लने उत्तर भारतमे व्याप्त इन दोनों प्रवृत्तियोंको परस्पर मिलती-जुलती भाषाओंमे पल्लवित करने और बल देनेवाली साहित्य-शक्तियोंको एक सूत्रमे गूँथनेका जो अत्यन्त स्तुत्य कार्य किया, वह राष्ट्रीयताकी भावना और राष्ट्रभाषाको व्यापक स्वरूप प्रदान करनेकी भूमिकाके रूपमे बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, अन्यथा पजाबीके समान सभी प्रादेशिक भाषाएँ अपनी बोली और उसके जैसे-तैसे साहित्यको ले-लेकर अपनी ढपली, अपना राग गाते और अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाकर भाषावार प्रान्तकी बड़ी विषम समस्याएँ उत्तर भारतमे खड़ीकर देते, किन्तु उन्होंने अत्यन्त सुचारु रूपसे और अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोणसे पूर्वमे मैथिली और मगहीसे लेकर पश्चिममे राजस्थानी और पंजाबीकी बोलियोके साहित्यको हिन्दी भाषा के एक साहित्य सूत्रमे आबद्ध कर दिया क्योंकि इस समस्त प्रदेशकी लोकभावनाका एक ही संस्कार सूत्र था, उनकी एक ही प्रकारकी समस्याएँ थी और उस समस्याओंके समाधानके लिए एक ही प्रकारका सम्मिलित भावात्मक प्रयास था। इसीलिए आचार्य शुक्लजीने चन्द और उनके अनुगामी वीर कवियोको तथा विद्या-पति-जैसे श्रृंगार और भक्तिके कवियोंको एक ही साथ प्रस्तुत करनेका आयोजन किया, क्योंकि उत्तर भारतमें जहाँ एक ओर शैव और वैष्णव धर्मकी तथा हिन्दुत्वके रक्षणको भावनाकी प्रबलता थी वहीं दूसरी ओर हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंका समन्वय करनेवाले कबीर-जैसे निर्गुण सन्तोंकी प्रधानता थी। इसके साथ-साथ विश्वके लोक-मानसमें शाश्वत विहार करनेवाली श्रृंगारकी भावना सभी देशोमें समान रूपसे व्याप्त थी ही। इसी युगमे उत्तर भारतमे विशेषतः राजस्थानमे क्षत्रिय वीरों और वीरागनाओंने अपने शौर्य, पराक्रम और आत्म-बलिदानसे उदात्त मनुष्यताके जो तेजस्वी आदर्श प्रस्तुत किए, उन्हें केवल क्षत्रिय ही नही अन्य जातियाँ भी सराहनीय, आदरणीय और अनुकरणीय समझती थी। वे आदर्श कवियोंकी वाणीसे अधिक सशक्त हो-होकर लोक मानसमें इतने अधिक सजीव रूपसे प्रतिष्ठित हो गए कि साधारण जनता भी तन्मय होकर चारणोके वीर काव्यको श्रवण करती और अपने मनोविनोदके लिए भी जगनिक जैसे वीर कविके आल्हाका गायन करती थी।

हिन्दी साहित्यका राष्ट्रीय रूप

इस दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका रूप प्रारम्भमे ही पूर्णतः राष्ट्रीय हो गया था और उस राष्ट्रीयताका

अर्थ उस युगकी दृष्टिसे था विदेशी मुसलमानी संस्कृतिको देशसे बाहर करना, तत्कालीन धर्मान्ध शासकोंके अत्याचार को रोकना और बलपूर्वक तलवारकी ताकतसे लादी जानेवाली प्रवृत्तिका विरोध करना। साहित्यके इस प्रारम्भिक रूपमें इसीलिए दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ व्यापक रूपसे दृष्टिगोचर होती हैं---एक तो दार्शनिक और धार्मिक कर्मकाण्डकी प्रवृत्ति जो दार्शनिक दृष्टिसे जनताके मनमें भारतीय देवता, धर्म या उपासनाकी वृत्ति जागरित करके उपासनाकी पद्धति प्रवर्तित करे अथवा उदार भावसे सब धर्मोंका समन्वय करके सहनशीलताका पाठ सिखावे। दूसरी, वीरतापूर्ण प्रवृत्ति जो भारतीय प्राचीन पूर्व-पुरुषोंके वीरता-पूर्ण चरितोंकी काव्यात्मक उद्धरणी कराते हुए लोगोंमे आत्म-सम्मान, उनकी आत्म-चेतना और धर्मकी रक्षाके लिए प्राण उत्सर्गकी भावना भरती चल रही थी। यह प्रयास सामूहिक रूपसे पञ्चनदसे लेकर बिहार तक निरन्तर होता रहा और यही हिन्दी साहित्यका आदिकाल है, जिसमें ऐतिहासिक दृष्टिसे भी उत्तर भारतके क्षत्रिय शासकोंने सम्मिलित रूपसे या एकाकी होकर पश्चिमोत्तरसे आक्रमण करनेवाले आक्रामकोंका प्रतिरोध किया था। ऐसे लोकोपकारी पराक्रमी वीरोंका वरण करनेके लिए भी मुन्दरी क्षत्रिय कुमारियाँ लालायित रहती थीं, इसलिए इस वीरताके साथ उदात्त शृंगार भी साथ-साथ पल्लवित हुआ और यह वीर तथा शृंगारकी भावनाएँ काव्य और साहित्यमे एक साथ विकसित हुई।

साहित्यमें दर्शनका अनधिकृत प्रवेश

इधर हिन्दीके कुछ साहित्यकारोंने हिन्दी साहित्यकी भूमिकाके रूपमें वज्रयानी सिद्धोंकी ऊटपटाँग अटपटी वाणीको भी हिन्दी साहित्यमे प्रविष्ट करनेका बीड़ा उठाया है, किन्तु वह सिद्धोंकी समूची वाणी न तो साहित्य ही है, न तो काव्य ही। वह पूर्णतः एकांगी ठेठ दार्शनिक पारिभाषिक शब्दोंसे लदी हुई अस्पष्ट उक्तियोंका समूह है, जिसमें वज्रयानियोके सिद्धान्त, कर्मकाण्ड और आचार मात्रका वर्णन या नैतिक उपदेशका भाण्डार है जिसे साहित्यमें सम्मिलित नही किया जा सकता। यही बात कबीर आदि सन्त महात्माओके वचनोंके साथ भी है। उसे सर्वप्रथम मिश्र-बन्धुओंने अपने 'हिन्दी नवरत्न' मे स्थान देकर इतना अनावश्यक महत्व दे दिया और कबीर भी हिन्दी साहित्यके महारथियोंके साथ पाँचवें सवार मान लिए गए और 'कौवा कान ले गया' की कहावतके अनुसार सभी इतिहासकारोंने उसी भूलका अन्धानुकरण किया। वास्तवमें ऐसी सब कृतियाँ साहित्यकी सीमासे बाहर है और बाहर रहनी भी चाहिएँ। राजशेखरने अपनी 'काव्य-मीमांसा' में इसीलिए स्पष्ट घोषित कर दिया है कि सम्पूर्ण वाङमयके दो भाग होते हैं---शास्त्र और काव्य। इसलिए सन्त कवियोंकी समस्त रचनाएँ शास्त्र या नीति-ग्रन्थोंके अन्तर्गत तो आ सकती हैं, काव्यके अन्तर्गत नहीं, क्योंकि काव्यका सबसे बड़ा आधार उसका मूर्त्त आलम्बन होता है। जब तक यह मूर्त्त आलम्बन पुष्ट न हो तब तक काव्यका कोई अस्तित्व ही नहीं होता है। सन्तोंकी वाणीमें प्रसंगवश उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि आ जानेसे या कहीं-कहीं कोई सूक्तिका चमत्कार आ जाने मात्रसे हो वह साहित्यकी कोटिमें नहीं आ सकती। उसके काव्यत्व या साहित्यकी स्थापनाके लिए स्पष्ट और मूर्त्त आलम्बनका होना आवश्यक है। यह आलम्बन-तत्व सम्पूर्ण सन्त साहित्यमें स्वभावतः अनुपस्थित है और इसीलिए उसमें कहीं भी न तो काव्यानन्द ही प्राप्त होता और न उसमें रसकी तन्मयता ही आ सकती।

हिन्दी साहित्यमें भारतीयता और मानवता

हिन्दी साहित्यके इतिहासका एक और भी महत्वपूर्ण पक्ष है। वह यह है कि हिन्दी साहित्यमें अन्य साहित्योंके समान केवल मानवीय भावनाओंके चित्रणका ही नहीं, वरन् राष्ट्रीय और सार्वभौम दृष्टिसे उनके उदात्तीकरणका भी प्रयास किया गया। इस प्रयासमें साहित्य केवल मनोविनोदका साधन ही नहीं वरन् समाजके उद्धारका साधन भी बन गया. जिससे उसका महत्व राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे और भी अधिक बढ़ गया। ऐसी स्थितिमें हिन्दी साहित्यका परीक्षण और अध्ययन चार दृष्टियोंसे करना उचित होगा— १—हिन्दी साहित्यमें भारतीय धर्म और दर्शनकी वृत्ति जगाने और उसकी स्थापनाके लिए प्रयत्न। २—हिन्दी साहित्यमे आत्म-रक्षा, धर्म-रक्षा, देश-रक्षा, आनकी रक्षा और समाज रक्षाके लिए किस प्रकारकी काव्यमयी प्रेरणायें प्राप्त होती है। ३—मनुष्य-मात्रके हृदयमे शाश्वत रूपसे व्याप्त श्रृंगार आदि रसोंकी निष्पत्तिके लिए सामग्री। ४—समाजको आदर्श रूपसे सुव्यवस्थित और सुसंगठित करनेके लिए कवियोंके प्रयास। ये चारों ही राष्ट्रीय भावनाएँ है, क्योंकि इनमे आत्म-रक्षा, समाज या जातिके संस्कारों और भावनाओंकी रक्षा, मनुष्यकी सामान्य वृत्तियोंका पोषण और सामाजिक आदर्शकी स्थापना चारों समान रूपसे निहित है।

हिन्दी साहित्यके इतिहासकी नवीन विवेचन-पद्धति

आचार्य शुक्लजीने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' नामक ग्रन्थमें हिन्दी साहित्यके नौ सौ वर्षोंके इतिहासको चार कालोंमें विभक्त किया है—आदिकाल (वीरगाथा-काल: सम्वत् १०५० से १३७५); पूर्व मध्यकाल (भक्ति-काल: सं. १३७५ से १७००); उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल: सं. १७०० से १९००); आधुनिक काल (गद्यकाल: सं. १९०० से १९८४)। किन्तु यहाँ यह खण्ड-क्रम इसलिए नहीं ग्रहण किया गया कि जिस अवधिमें काल बाँध दिए गए है, उस अवधिके पश्चात भी आज तक वे सभी साहित्य-धाराएँ विभिन्न प्रदेशोंमें निर्बाध गतिसे निरन्तर चलती रही, कभी बन्द नहीं हुईं। राजस्थानी साहित्यमें वीरगाथा कालकी परम्परा १३७५ तक ही समाप्त नहीं हो गई। आज भी राजस्थानके कवि अपनी उसी श्रृंगारसे पुष्ट वीरकाव्य-परम्परामें रचनाएँ करते चले आ रहे हैं। इसी प्रकार ब्रजभाषा में भी भक्ति और श्रृंगार-समन्वित काव्यकी जो परम्परा चली वह बीचमे कभी लुप्त नहीं हुई। वह भी आज तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। यद्यपि व्यावाहारिक क्षेत्रमे नागरी (खड़ी बोली) का ही प्रचार अधिक है, किन्तु ब्रजभाषाके कवि आज भी उसी प्रकार, उसी धारामे, उसी पद्धतिके अनुसार, उसी ओजसे भक्ति और श्रृंगारकी रचनाएँ करते जा रहे है। मैथिली साहित्य कभी हिन्दी साहित्यसे उतना सम्पर्क नहीं प्राप्त कर सका जितना स्वभावतः उसे प्राप्त कर लेना चाहिए था। यही कारण है कि मैथिलीके अनेक प्रसिद्ध कवियोंमेंसे एकमात्र कवि विद्यापति ही हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें प्रसिद्धि पा सके और अध्ययनके विषय बन सके। यद्यपि उन्हें भी बँगलावाले अपना कवि मानते हैं। इसलिए मैथिली साहित्यके प्रसंगमें हम विशेष काव्य चर्चा न करके केवल विद्यापतिके साहित्यकी विशेषता बताकर छोड़ देगे।

नागरी (हिन्दी) साहित्य

नागरी साहित्यका प्रारम्भिक काल अन्य भाषाओंके समान ही अत्यन्त प्राचीन है जिसमें पहले

तो कविता ही होती थी, किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समयमें और उसके कुछ पहलेसे गद्यमें भी रचना होने लगी थी। भारतेन्दुजीने अपने समयमे नागरी गद्यके विविध प्रकारोंको अपने समाचार-पत्र और अपनी रचनाओंके द्वारा इतना प्रोत्साहन दिया कि वह प्रौढ़ होकर आगे बढ़ चला और उसमें नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, गद्यकाव्य और जीवन-चरित आदि भी लिखे जाने लगे। इन रूपोके अतिरिक्त साहित्यिक समीक्षाएँ, समीक्षात्मक निबन्ध तथा योरोपीय गद्य शैलियोके प्रभावसे अनेक प्रकारकी साहित्यिक रूप-शैलियोंमे रचनाएँ होने लगी। अतः नागरी साहित्यका विवेचन करते हुए निम्नांकित क्रमसे उसका इतिहास स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, गद्यकाव्य, निबन्ध, और समीक्षा। इन सब रूपोके विकासके क्रमके साथ उनकी विभिन्न अवस्थाएँ तथा उन विभिन्न रूप-शैलियोंके विशिष्ट लेखको और कवियोंका समीक्षात्मक परिचय भी दिया जायगा।

विवेचन-पद्धति

इतिहासके इस क्रममे यही विशेषता होगी कि हिन्दीके व्यापक रूपके अन्तर्गत आनेवाली प्रत्येक विभाषा की प्रकृति, उसके साहित्यकी विशेष प्रवृत्तियों और लक्षणोंका सामान्य परिचय देकर उस साहित्यके विशिष्ट कवियों और लेखकोंकी निम्नांकित क्रमसे विश्लेषणात्मक व्याख्या की जायगी—१—कविका परिचय, २—कविका अध्ययन तथा पाण्डित्य, ३—कविको काव्यकी ओर उन्मुख करनेवाली प्रेरणाएँ, ४—कविकी रचनाएँ, ५—कविका काव्य-कौशल और ६—उसका प्रभाव।

अपभ्रंश और हिन्दी

जबसे पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरीने काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी पत्रिकामे 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक लेख लिखा तबसे हिन्दीके सभी इतिहासकार यह मानते चले आए कि हिन्दीकी उत्पत्ति उस अपभ्रंशसे हुई है जो हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरणमे अथवा सोमप्रभदेव और सिद्धपाल आदिकी रचनाओंमे पाया जाता है। किन्तु तथ्य यह है कि जैन ग्रन्थोंमें और हेमचन्द्रके प्राकृत व्याकरणमे जिस अपभ्रंशकी व्याख्या की गई और जिसके उदाहरण दिए गए है, वे सब 'पुरानी हिन्दी' के नही वरन 'पुरानी गुजराती' और 'पुरानी राजस्थानी' के है। जिसे डॉ. ग्रियर्सनने नागर अपभ्रंश, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने सौराष्ट्र अपभ्रंश और कन्हैयालाल मुनशीने सौराष्ट्री अपभ्रंश कहा है। आज भी राजस्थानके अनेक कवि उसी अपभ्रंशकी विकृत भाषा (डिंगल) मे रचना करते है। राजस्थानी बोलियोंमे अब भी वैसे ही शब्दोंका प्रयोग होता है। वह भाषा ट वर्ग प्रधान विशेषतः 'ण' प्रधान है। वहाँ 'वचन' के लिए 'वयण' और 'शयन' के लिये 'सयण', और 'विशेष' के लिये 'विएस' का प्रयोग होता है, किन्तु ब्रज और अवधीकी प्रकृति इससे भिन्न है। वह नकार-प्रधान है, वहाँ 'वचन' और 'शयन' का 'बैन' और 'सैन' तथा 'विदेश' का 'बिदेस' हो जाता है। इसके अतिरिक्त रासक, रासो तथा अपभ्रंशकी प्रकृतिमे लिखनेवाले लेखकोंकी रचनाएँ, जो उदाहरणमें गुलेरी जीने दी हैं, वे सब उन्हीं लेखकोंकी हैं जो गुजरात या पश्चिमी राजस्थानके आसपासके रहनेवाले थे। अतः, उस अपभ्रंशको हिन्दीकी अर्थात् नागरी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदिकी माता मानना अत्यन्त अनुचित और असंगत है, फिर भी हिन्दीके इतिहासकारोंकी

परम्परासे विश्रृंखलित न होनेकी भावनासे अपभ्रंश भाषा और साहित्यका भी समुचित विवेचन कर दिया गया है।

नागरी भाषा *

नागरी भाषाकी उत्पत्ति अन्तर्वेदमें हुई और वह सीधे संस्कृतसे स्वयं प्राकृत बनकर फूट निकली। जिन दिनों (चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमे) गुजरात और पश्चिमी राजस्थानके अनेक कवि अपनी अपभ्रंश बोलियोंमें रचनाएँ कर रहे थे, उन्हीं दिनों मियाँ खुसरो दिल्लीमे बैठे उस नागरीमे बातचीत कर रहे थे और अपनी मुकरियाँ लिख रहे थे जो वास्तवमे ठेठ देशी नागरीकी प्राकृतिक भाषा है और जिसके उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट है :—

एक नारने अचरज किया, साँप मार पिंजरेमें दिया।
तरवरसे एक तिरिया उतरी, उसने खूब रिझाया।
बापका उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।

उर्दूवालोंने भी इन्हीं उदाहरणोंको उर्दूका आदिरूप माना है। इतना ही नहीं, जब फारसी भाषाको नागरी भाषामे बदलनेकी बात चली और अमीर खुसरोने खालिकबारी लिखी, वह इस बातका प्रमाण है कि १४ वी शताब्दीमें दिल्लीके आस-पास मेरठ, मुजफ्फरनगर जिलोंकी वह बोलचालकी भाषा साहित्यिक रूप धारण करती जा रही थी जिसमे अमीर खुसरोने अपनी पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखीं। खालिक बारीके पहले ही पद्य—'खालिकबारी सिरजनहार। वाहिद एक, विदा करतार।' में 'सिरजनहार', 'एक' और 'करतार' शब्द नागरी भाषाकी प्रकृतिके वे प्रारम्भिक रूप हैं, जो संयोगसे आज भी ज्योंके त्यों मेरठ प्रदेशके घरोंमे बोले और समझे जाते हैं, और जिसमे हरिऔधजीने 'चुभने चौपदे,' 'चोखे चौपदे' आदि ठेठ भाषाके ग्रन्थोंकी रचना की है।

इसका अर्थ यह है कि १४वीं शताब्दीसे पूर्व न जाने कितनी शताब्दियों पहलेसे आज तक इस अन्तर्वेद मे वह भाषा बोली जाती रही और उसमें काव्य भी रचे जाते रहे, जिसे हम 'ठेठ नागरी' कह रहे है और जिसमें अमीर खुसरोने उपर्युक्त रचनाएँ की। यह भाषा कितनी व्यापक थी इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि खुसरोसे भी पहले नामदेवने अपनी कुछ रचनाएँ इसी नागरी भाषामे प्रस्तुत की। अतः निश्चित रूपसे हेमचन्द्र द्वारा प्रतिपादित अपभ्रंश भाषाका नागरी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि हिन्दीकी किसी भाषासे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नही था।

भारतमें ही नहीं, संसारके सभी प्रदेशोंमे जिस प्रकार नदियों, पहाड़ों आदि भौगोलिक सीमाओंसे घिरे हुए प्रदेशोंमें अलग-अलग बोलियाँ उपजीं और पनपीं उसी प्रकार अन्तर्वेदमे संस्कृतसे सीधे नागरीका विकास हुआ।

---

* वर्त्तमान हिन्दी (खड़ी बोली)

राष्ट्रभाषा

हमारी राष्ट्रभाषाका स्वरूप नागरी भाषाका वह व्यापक रूप है, जिसे समूचे भारतमें तथा भारतके बाहरके भी कुल मिलाकर कमसे कम ३५ करोड़ प्राणी बोलते और समझते हैं, और जिसमें देश-भेद के अनुरूप संज्ञा, विशेषण आदिके लिए तत्तत्प्रदेशीय शब्दोंका प्रयोग होता रहता है। राष्ट्रभाषासे अपरिचित लोग अपने देशके अन्य प्रान्तोंमे जानेपर भारी कठिनाइयोंमे पड़ सकते हैं। हम भले ही राष्ट्रभाषाके विद्वान् न हो, राष्ट्रभाषा भली प्रकार बोल भी न सकें, पर समझ सकनेका अभ्यास तो हमें अवश्य करना ही चाहिए। राष्ट्रभाषाका अध्ययन इसी उद्देश्य से किया जाता है कि हम प्रत्येक देशवासीको अपनी बात समझा सकें और उसकी बात समझ सके।

राष्ट्रभाषाकी समस्या

भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रभाषाका प्रश्न निर्णीत हो जानेपर भी कुछ लोगोंने उसे जटिल बना रखा है। सच पूछिए तो संस्कृत ही भारतकी वास्तविक राष्ट्रभाषा है, जिसे समझने और बोलनेवाले आज कश्मीरसे लेकर लंका तक और सीमा प्रान्तसे लेकर ब्रह्मा तक मिलेंगे। यह संस्कृतका ही प्रताप है कि भारतकी सभी देशी भाषाओंमे अधिकांश शब्द संस्कृतके तत्सम या तद्भव रूपमें व्यवहृत होते है। अतः हमारी राष्ट्रभाषाका जो भी स्वरूप होगा उसकी पहली पहचान तो यह होगी कि उसमे अधिकांश शब्द संस्कृतके तत्सम या तद्भव होंगे अर्थात् वह संस्कृत निष्ठ होगी, अरबी, फारसी, अँग्रेजी निष्ठ नही। कुछ लोग समझते हैं कि संस्कृत-निष्ठ बनाकर नागरी भाषा कठिन और दुर्बोध की जा रही है। यह तो अवश्य सत्य है कि नागरी भाषाकी मूल या ठेठ प्रकृति वास्तवमे सरल तद्भवात्मिका है, किन्तु वह प्रकृति उस परिमित क्षेत्रके लिए ही सरल हो सकती है जहाँ वह शताब्दियोंसे लोगोंकी बोलीमे मँज चुकी है और लोक-व्यवहृत होनेके कारण लोक-बोध्य हो चुकी है। किन्तु अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके लिए नागरीके उन तद्भव शब्दोंकी अपेक्षा तत्सम संस्कृत शब्द अधिक सुगम और बोधगम्य होंगे। एक उदाहरण लीजिए। ठेठ नागरी भाषामे हम कहते है :—

'पराई सम्पदा देखकर तुम्हें क्यों बाई चढ़ती है ?'

इस वाक्यमे सम्पदा शब्द तो संस्कृत-मूलक भाषा वाले समझ जाएँगे किन्तु 'बाई चढ़ना' हमारे लिए जितना सरल है उतना ही दूसरोंके लिये कठिन है। यदि हम कहें—

'दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर तुम्हें क्यों ईर्षा होती है', तो सब प्रदेशोंके लोग सरलतासे समझ जाएँगे।

दूसरी बात यह है कि राष्ट्रभाषा उसी प्रदेशकी भाषा हो सकती है जिसमें राज-क्षेत्र या धार्मिक क्षेत्र हों, क्योंकि सम्पूर्ण देश चाहे और कहीं जाय या न जाय किन्तु राजक्षेत्र और धार्मिक क्षेत्रमे अवश्य जाता है। भारतके राजक्षेत्र और धार्मिक क्षेत्र सब उत्तर भारतमे ही हैं। गंगोत्री, यमुनोत्री, कैलास, बदरीनाथ, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, चित्रकूट आदि हिन्दुओंके शैव और वैष्णव केन्द्र तथा राजधानी दिल्ली सब गंगा-जमुनाके आस-पास ही है। अतः यहाँकी भाषासे मिलती-जुलती भाषा ही भारतमे सांस्कृतिक क्षेत्रकी भाषा होनेके कारण राष्ट्रभाषा हो सकती है।

तीसरी बात यह है कि घने बसे हुए होनेके कारण उत्तर प्रदेशके लोग व्यवसाय और नौकरीके लिए भारत और भारतके बाहरके प्रदेशोंमें जा बसे हैं। वे सभी लोग बाहर जाकर भी अपनी भाषा की परम्पराका निर्वाह कर रहे हैं। जिन देशोंमें वे गए हैं, वहाँकी भाषा भी उन्होंने सीखी, पर वहाँ वालोंको अपनी भाषा सीखनेको भी उन्होंने बाध्य किया। भारतके अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें भी बड़े हाटोंके व्यापारी सेवक, बैंकोंके चपरासी, ट्राम तथा मोटर चलानेवाले, दूध, तरकारी फल आदि बेचनेवाले तथा घरोंमें भोजन बनाने और नौकरी करनेवाले प्रायः उत्तर प्रदेशके लोग ही हैं। भारतके पुतलीघरोंमें काम करनेवाले भी अधिकांश उत्तरप्रदेशके ही हैं। इनके अतिरिक्त मौरिशस, ट्रीनीडाड, डच-गाइना, ब्रिटिश गाइना, नैटाल और दक्षिण अफ्रिका आदि देशोंके निवासी भारतीयोंकी भी व्यवहार भाषा नागरी ही है। और वे भारतसे नागरी की पोथियाँ मँगाकर अपने बच्चोंको नागरी ही पढ़ाते हैं। अतः इस दृष्टिसे नागरी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

चौथी बात यह है कि राष्ट्रभाषा वही होनी चाहिए जिसे अधिकांश लोग बोलते और समझ सकते हों। यदि हम उत्तरप्रदेशमें कहते हैं कि 'मुझे आपसे एक बात कहनी है', तो हमारे पंजाबी मित्र कहेंगे--'मैंने आपसे इक्क बात कैणी ऐ!' राजपूतानेके सज्जन कहेंगे,--'मुजै आपसैं एक बात बोलणी है।' हमारे बंगाली मित्र कहेंगे--'हाम आपको एक बात बोलने माँगता है।' ये सब वक्तव्य नागरीके ही प्रान्तीय रूपान्तर हैं, जो किसी प्रकारसे भी वक्तामें भावको व्यक्त करने या समझनेमें बाधा नहीं डालते। अतः व्यापक रीतिसे नागरी ही एक ऐसी भाषा है जिसे हिमालय और भारतीय सागरके बीच रहनेवाले लगभग पैंतीस करोड़ नर-नारी किसी-न-किसी रूपमें बोलते और समझते हैं।

हमारी भाषाकी समस्याएँ

अपनी मातृभाषाको हम लोग प्रायः हिन्दी कहा करते हैं; पर वास्तवमें हिन्दी भाषाओंके उस समूहका नाम है जो आर्यवर्तमें बोली जाती है। आज हमारी शिष्ट और सामाजिक भाषा नागरी (हिन्दी) है। जिसे लोग 'खड़ी बोली' के नामसे पुकारनेकी व्यापक भूल करते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो खड़ी, पड़ी, टेढ़ी और सीधी बोली किसी भाषाका नाम नहीं हुआ करता। भाषाका नाम या तो उस भूभागसे सम्बद्ध होता है जहाँ वह बोली जाती है, जैसे--मराठी, गुजराती, बंगला, पंजाबी आदि या उस भाषाके लक्षणके आधारपर जैसे 'बिगड़ी हुई भाषा' का 'अपभ्रंश' स्वच्छ, मँजी हुई भाषाको 'संस्कृत' और नागरिकों और शिष्ट व्यक्तियों द्वारा बोली जानेवाली भाषाको 'नागरी'। इस प्रकार या तो हिन्दीकी भाषा का नाम 'हिन्दी' मानना होगा या उसके लक्षणके कारण 'नागरी' नाम स्वीकार करना होगा क्योंकि वह नगरों और नागरिकोंकी भाषा है।

हिन्दीकी व्यापकता

हिन्दी वास्तवमें उस भाषा समूहका नाम हैं जिसके अन्तर्गत पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, मगही, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू तथा प्रादेशिक भाषाएँ और शैलियाँ आती हैं, जिस शैलीका नाम आज उर्दू है वह भी पहले हिन्दी' या 'हिन्दवी' कहलाती थी। पर दिन-दिन बढ़नेवाले-

साम्प्रदायिक विद्वेषने हिन्दीकी इस शैलीमें अरबी, तुर्की, फारसी आदि भाषाओंके शब्द धीरे-धीरे खपाकर उसे हिन्दीकी प्रतिद्वन्दिनी भाषाका रूप दे दिया है। फिर भी उसके व्याकरणका बाँध देखते हुए जानकारोंके लिए वह हिन्दी (नागरी) ही जानी और मानी जाएगी। इस प्रकार हमारे बोल-चालका माध्यम बनी हुई वर्तमान नागरी भाषा वह भाषा है जिसका संस्कृतसे अविच्छेद सम्बन्ध बना हुआ है, जिसके क्रियापद स्वाभाविक लोक वाणीमें अपना लोक-व्यवहृत रूप स्थिर करके साहित्य और पत्र-व्यवहारमें प्रयुक्त होते हैं, जिसमें देशीय उपसर्गों और प्रत्ययोंके साथ साथ संस्कृत प्रत्यों और उपसर्गोंका भी प्रयोग होता है, जिसमें संज्ञा और विशेषण विशेषतः संस्कृतके तत्सम और तद्भव होते हैं, और जिसमें उन विदेशी शब्दोंका भी नागरीकी ध्वनि और रूपके अनुसार स्वीकणर हो गया है जिनका पर्याय नागरी और संस्कृतमें नहीं है; या जिनका पर्याय बनानेमें उन विदेशी शब्दोंके ठीक भावका बोध होनेमें बाधा या भ्रान्ति होनेकी सम्भावना होती है।

नागरी भाषा

जिस नागरी भाषाकी हम चर्चा कर रहे हैं उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'खड़ी बोली' के नामसे स्मरण किया था। इस सम्बन्धमें इस भाषाका 'नागरी' नाम उल्लेखनीय है। संसारमें सर्वत्र प्रायः लिपि और भाषाका एक ही नाम हुआ करता है अतः नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली भाषा भी 'नागरी' ही कही जानी चाहिए। उत्तरप्रदेशमें मेरठ और मुजफ्फर नगर जिलोंमें अभी तक खड़ी बोलीके नामसे पुकारी जानेवाली भाषाको नागरी ही कहते हैं। यही नागरी हमारी साहित्य-रचनाका माध्यम है। इसका गद्य और पद्य रूप हिन्दीके अन्तर्गत ही आता है। ऐसी स्थितिमें हमारी राष्ट्रभाषा और मातृभाषाका नाम नागरी ही है। भले ही हम अपने घरोंमें ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी आदि उन भाषाओंमें बोलते रहें जिनकी गणना उपभाषाओं और प्रादेशिक बोलियोंमें ही हो सकती हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

अतः हिन्दी भाषा या राजभाषाके नामसे जिस भाषाका परिचय हम दे रहे है वह देवनागरीमें लिखी जानेवाली वह नागरी भाषा है जिसे अब व्यापक रूपसे हिन्दी कहा जाने लगा है और जो भारतकी राष्ट्रभाषा स्वीकार कर ली गई है।

हमारा पद्यात्मक साहित्य प्रायः अवधी और ब्रज इत्यादि हिन्दीकी उन भाषाओंमें हैं जिन्हें पुराने हिन्दू और मुसलमान 'भाखा' कहते थे और जिनका ह्रास होते देखकर मुंशी सदासुखलालने रोते हुए कहा था :—

'रस्मो रिवाज भाखाका दुनियासे उठ गया।'

अतः सब बातोंपर विचार करते हुए निःसंकोच कहा जा सकता हैं कि जिस भाषाको हम आज हिन्दी कहते हैं उसका गद्य-भाग नागरी और शेष व्यापक साहित्य हिन्दी है, जिसके अन्तर्गत सिन्धु नदीके पूर्वी तटसे लेकर बिहार तक तथा हिमालयकी दक्षिणी उपत्यकासे लेकर ताप्तीके उत्तरीय तट तक उत्तर भारतमें बोली जानेवाली सभी भाषाएँ, उपभाषाएँ और बोलियाँ आ जाती हैं।

कुछ दिन पूर्व हिन्दीवालोंकी प्रसिद्ध संस्थामें ऐसा प्रस्ताव रखा गया था कि केवल नागरी (खड़ी बोली) को ही हिन्दीके अन्तर्गत स्थान दिया जाय, किन्तु सभाने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया; क्योंकि हिन्दी साहित्यके क्षेत्रसे उस साहित्यको अलग नहीं किया जा सकता जिसका वर्तमान हिन्दीसे सांस्कृतिक सम्बन्ध है।

अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी

अपभ्रंशके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा अत्यन्त निर्मूल है कि वर्तमान हिन्दी (नागरी या खड़ी बोली) अवधी और ब्रजका उद्भव अपभ्रंशसे हुआ। अपभ्रंश शब्दका सर्वप्रथम प्रयोग पतञ्जलिके महाभाष्यमें ईसासे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ। महाभाष्यमें लिखा है :—

अल्पीयांसः शब्दः भूयांसोऽपशब्दाः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः।
तद्यथा एकस्य गो शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवादया शब्दाः।

[मूल शब्द तो थोड़ेसे होते हैं किन्तु अपशब्द बहुत होते हैं। यहाँ तक कि एक ही शब्दके बहुतसे बिगड़े हुए रूप (अपभ्रंश) होते हैं, जैसे—एक ही 'गो' शब्द 'गावी', 'गोणी', 'गोता', 'गोपोतलिका' इत्यादि अपभ्रंश शब्द मिलते हैं।]

उन्होंने छन्दस् (वेद) और भाषा (संस्कृत) के शब्दोंको ही साधु शब्द और शेषको अपशब्द माना है। अतः पाणिनिकी दृष्टिसे अपभ्रंश शब्द वे हैं जो लौकिक और वैदिक शब्दोंसे भिन्न है। उनके अनुसार संस्कृतके शब्दोंको बिगाड़कर, बढ़ाकर, हेरफेर करके जो रूप बनाए गए हैं वे ही अपभ्रंश है। कुछ लोगोंका मत है कि अपभ्रंशका अर्थ बिगड़ा हुआ या विभ्रष्ट नहीं है क्योंकि 'गावी' शब्द तो 'गो' के विकारसे बन भी सकता है पर 'गोपोतलिका' तो किसी प्रकार भी नहीं बन सकता। किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि 'गो' में 'पोतलिका' शब्द लाड़में प्रयुक्त हुआ है जैसे अपने कुत्ते 'मोती' को लोग प्यारसे 'मोतिया', 'सोनमोतिया' और 'मोतीलाल' भी कहते हैं। शब्दागम भी तो विकारमें ही आ जाता है। एक कृष्ण शब्दको लीजिए। उसके इतने रूप मिलते हैं—कान्ह, कन्ह, कान्हा, कन्हैया, कान्धा, कान्हरो, कन्हैयालाल' आदि। किन्तु ये सबके सब कृष्णके अपभ्रंश ही हैं।

भरतने अपने नाट्य शास्त्रमें तत्सम, तद्भव और देशी तीन प्रकारके शब्दोंका अस्तित्व स्वीकार करते हुए संस्कृतके बिगड़े हुए रूपको ही प्राकृत माना है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है :—

एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्॥

यह प्राकृत पाठ्य भी भरतने तीन प्रकारका बताया है—समान शब्द, विभ्रष्ट और देशी। इसे स्पष्ट करते हुए उसने कहा है कि कमला, अमल, रेणु, तरंग, लाल, सलिल आदि शब्द तो समान या तत्सम शब्द हैं, जो प्राकृतमें पहुँचकर भी अपना संस्कृत रूप बनाए रखते हैं। विभ्रष्ट शब्द वे हैं जो उच्चारण-दोषसे बिगड़कर विरूप हो जाते हैं। जैसे—'ग्रीष्म' का 'गिम्हो', 'कृष्ण' का 'कण्हो', 'पर्यंक' का 'पल्लंक' आदि। इसका अर्थ यह है कि विभ्रष्ट और देशी भी प्राकृत ही है।

देशी भाषाके सम्बन्धमें भरतने कहा है कि प्रयोग के अनुसार भाषाएँ चार प्रकारकी होती हैं—

अतिभाषा, आर्यभाषा, जाति भाषा तथा जात्यन्तरी भाषा। देवताओंकी भाषाको अतिभाषा और राजाओंकी भाषाको आर्य भाषा कहते हैं। जाति भाषा भी दो प्रकारकी होती है---एक तो वह जिसमें म्लेच्छ शब्दोंका प्रयोग होता था और दूसरी वह जो भारतवर्षमें बोली जाती थी। जात्यन्तरी भाषा वह थी जो गाँव या जंगलके पशुओं या अनेक पक्षियोंकी बोलीसे मिलती-जुलती होती थी। इसका अर्थ यह है कि भरतके समयमें भी भाषा बोलनेकी प्रकृति यह थी कि शिष्ट लोग संस्कृतका प्रयोग करते थे, सामान्य लोग प्राकृतका अर्थ संस्कृतको ही उलट-पलट कर या विभ्रष्ट अर्थात् बिगाड़कर बोलते थे या अपनी देशी भाषाएँ बोलते थे और ये सब प्राकृतके अन्तर्गत ही थीं। इसके अतिरिक्त अलग-अलग प्रदेशोंमें अलग-अलग देशी भाषाएँ बोली जाती थीं। इस प्रकार देश भेदसे उन्होंने सात भाषाएँ गिनाई हैं---मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शोरसेनी, अर्द्धमागधी, वाह्लीका और दक्षिणात्या। शबर, आभीर और द्रविड़ भाषाओंकी गणना उन्होंने देशीमें की है, क्योंकि उनका उच्चारण भ्रष्ट होता है। उन्होंने विभ्रष्टको ही विभाषा बताया है।

भरतने आभीरों (सौराष्ट्र-वासियों) की भाषाको उकार-बहुला बताया है और उसके उदाहरण में 'मोरिल्लउ नच्चन्तउ' दिया है। इसी आधारपर बहुतसे विद्वान् मित्र यह समझ बैठे हैं कि केवल अपभ्रंशकी ही प्रकृति उकार-बहुला है इसलिए निश्चय ही आभीर भाषा ही अपभ्रंश है। यदि और भी आगेका साहित्य देखा जाय तो प्रतीत होगा कि अपभ्रंश शब्द संस्कृतके बिगड़े हुए शब्दोंके रूपमें प्राप्त होते हैं।

वलभीके राजा हरिषेणके शिलालेखमें एक वाक्य आता है :---

संस्कृत-प्राकृतापभ्रंश-भाषात्रय-प्रतिबद्ध-प्रबन्धरचना-निपुणान्तःकरणः।

[वे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओंमें प्रबन्ध रचना करनेमें निपुण थे।]

छठी सदीके इस लेखसे बहुत पहले भासने भी अपने नाटकोंमें प्राकृतोंका प्रयोग किया और कालिदासने भी अपने नाटकोंमें प्राकृत और अपभ्रंशका खुलकर प्रयोग किया है। स्वयं भरतने ही यह प्रमाणित कर दिया है कि नाटकोंमें अमुक-अमुक प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग किया जाना चाहिए। भामहने काव्यके गद्य और पद्य भेद बताकर भाषाकी दृष्टिसे उनका भेद बताते हुए कहा है कि---काव्य तीन प्रकारकी भाषाओंमें लिखे जा सकते हैं---संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। दण्डीने अपने काव्यादर्शमें लिखा है :---

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशः प्रयोजितम्॥

[काव्योंमें तो आभीर आदि जातियोंकी भाषा अपभ्रंश कहलाती है और शास्त्रोंमें संस्कृतके अतिरिक्त भाषाको अपभ्रंश कहकर जोड़ा गया है।]

अर्थात् केवल आभीरोंकी ही नहीं वरन् आभीरोंके समान अन्य असंस्कृत जातियोंकी भाषाको भी अपभ्रंश कहा गया है। इस दृष्टिसे उन्होंने प्राकृतको भी अपभ्रंश मान लिया है।

नवीं शताब्दीमें अपने काव्यालंकारमें रुद्रट्ने छह् प्रकारकी भाषाएँ मानी हैं---प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी, और अलग-अलग देशोंकी अपभ्रंश। इसका तात्पर्य यह है कि संस्कृतके साथ-साथ प्राकृत भी चल रही थीं किन्तु विभिन्न देशोंके असंस्कृत लोग उसे (प्राकृत या संस्कृतको) बिगाड़-बिगाड़कर अपभ्रंश बोल रहे थे।

ग्यारहवीं शताब्दीमें काव्यालंकारकी टीका करते हुए नमिसाधुने प्राकृतका अर्थ लोकभाषा अर्थात् साधारण जानपदीय भाषा बताया है जो पाणिनिके महाभाष्य भरतके नाट्य शास्त्र और दण्डीके काव्यादर्शके सिद्धान्तसे मिलता है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश सब साथ-साथ

इस शास्त्रार्थका परिणाम यह निकला कि भाषाके ये सब रूप एक साथ चलते थे। अत्यन्त पढ़े-लिखे, विद्वान्, तथा शिष्ट पण्डित लोग संस्कृतका प्रयोग करते थे। साधारण जनता जब संस्कृत बोलने-वालोंका अनुकरण करनेके प्रयत्नमें बिगाड़कर संस्कृत बोलती थी तब वह प्राकृत हो जाती थी और गाँव जंगलके लोग उसीको और भी बिगाड़कर अपभ्रंश कर देते थे। इस प्रकार सब कालोंमें भाषाके ये तीनों रूप विद्यमान रहे। आज भी अँग्रेजी पढ़ा-लिखा व्यक्ति प्लेटफार्म कहता है, स्टेशनोंपर काम करनेवाले अनपढ़ लोग पलेटफारम कहते हैं और गाँवके लोग उसे लेटफारम कहते हैं। यह अपभ्रंशकी प्रकृति इस श्रेणी तक पहुँच जाती है कि काशीमें मुकदमा लड़नेवाले देहाती लोग इजलासको गिलास कहते हैं। अर्थात् यह विकार दो प्रकारका होता है——१—सीधे संस्कृत (शिष्टजन-भाषा) को बिगाड़कर बोलनेसे; २—प्राकृत या जनभाषाको बिगाड़कर बोलनेसे। इस प्रकार जिस युगमें कोई नया शब्द शिष्ट लोग चलाते हैं तत्काल उसका प्राकृत और अपभ्रंश रूप उसी समय चलने लगता है। अतः, यह मूल धारणा ही अशुद्ध है कि पहले वैदिक संस्कृत रही और सब लोग शुद्ध रूपसे वैदिक संस्कृत ही बोलते रहे। यदि ऐसी बात होती तो शिक्षाकी आवश्यकता ही न पड़ती और यह कभी न कहा जाता :——

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।

(स्वर या वर्ण बिगाड़कर अनुचित ढंगसे प्रयुक्त किया हुआ दुष्ट शब्द उसी प्रकार वाग्वज्र होकर यजमानको मार डालता है जैसे स्वरके दोषपूर्ण वाचनसे इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर मारा गया।)

और महाभाष्यकारको भी यह न लिखना पड़ता कि——

उदात्ते कर्तव्ये योऽनुदात्तः करोति खण्डिकोपाध्यायः तस्मै चपेटां ददाति।

[जो शिष्य उदात्तके बदले अनुदात्त उच्चारण करता है उसे पाधाजी एक चाँटा जड़ देते हैं।]

भाषाका विकास और इतिहास

वैज्ञानिकोंका मत है कि प्राचीनतम मनुष्यका जन्म डेढ़ करोड़ वर्ष पहले हुआ, किन्तु वर्तमान रूपवाला मनुष्य साढ़े बारह लाख वर्ष पूर्व अन्य जीवोंसे पृथक् होकर मनुष्य रूपमें व्यक्त होने लगा। उसके पश्चात् अनेक प्रकारकी मानव जातियां (भूमध्य सागरके उत्तरमें नियेन्डर्थल और अरिग्नेशी, उत्तर अफ्रीका या दक्षिण एशियामें क्रोमेग्न और ग्रिमाल्डी और उसके पश्चात दक्षिण स्पेनमें ऐजीलियन और पश्चिमी योरपमें मन्दग्लिनियन नामक मनुष्य जातियाँ) प्रकट हुईं जो पाषाण-युग और नवपाषाण-युगकी मानव जातियाँ मानी जाती हैं। उसके पश्चात् ७००० से ६००० वर्ष ई. पू. में मनुष्य धातुका प्रयोग करने लगा। फ्लैण्डर्स पेत्रीने नील नदीके कछारमें मिस्री सभ्यताका प्रारम्भ १०००० ई. पू. से माना है।

लोकमान्य तिलकका मत है कि जिस समय योरप तथा अन्य भूभागोंमें वन्य मानव जातियाँ रहती थीं उस समय (१८ सहस्र वर्ष ई. पूर्व) वेद की रचना होने लगी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पामें जो खुदाइयाँ हुई हैं उनसे ज्ञात होता है कि ईसासे ६००० वर्ष पूर्व भारतसे मिस्र तकके देश (मिस्र, असूरिया, बाबुल, ईरान, और आर्यावर्त) परस्पर एक दूसरेसे बहुत सम्बद्ध हो चुके थे। जब छह सहस्र वर्ष पूर्व ऐसे समृद्ध नगरोंका विवरण मिलता है तब यह निश्चय है कि ये जातियाँ कई सहस्र वर्ष पूर्वसे पर्याप्त विकास कर चुकी होंगी; क्योंकि सप्तसिन्धु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा, सुमेरियामें निपर नगर, मिस्रके फराओंकी राजधानी मेम्फिस और असूरियामें असुर नगर तथा असुर देवताकी प्रतिष्ठा लगभग एक समय (६००० से ४००० ई. पू. तक) हो चुकी थी। भारतके उत्तरमें प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक यो-किङ्ताओके मूल ग्रन्थकी रचना ३४६८ ई. पू. में हो चुकी थी अर्थात् ईसासे चार सहस्त्र वर्ष पूर्व चीनमें भी पर्याप्त सांस्कृतिक जागर्ति हो चुकी थी। इधर उत्तर भारतमें गान्धारसे, हस्तिनापुर लिए हुए काशी तथा अनेक प्रतापी राजा राज्य कर रहे थे जिनमेसे शान्तनु, भीष्म, विचित्रवीर्य तथा महाभारतके सम्पूर्ण राजाओंका पूरा विवरण विस्तारसे मिलता है। कलियुगके आगम (३१०२ ई. पूर्व) के समय उत्तर भारतके विभिन्न क्षेत्रोंमें अनेक प्रतापी राजा राज्य कर रहे थे। इसके पश्चात्का भारतका इतिहास भाषा-वैज्ञानिकोके लिए विशेष महत्वका है। महाभारतके पश्चात् भगवान कृष्णका निर्वाण होनेपर, जब उनकी पत्नियोंको लेकर अर्जुन आ रहे थे तब बीचमें आभीरोंने घेरकर कृष्णकी पत्नियाँ उनसे छीन लीं। इसका अर्थ यह है कि सौराष्ट्र और शूर-सेन प्रदेशके बीच ३००० वर्ष ई. पू. दस्युओके रूपमें आभीर विद्यमान थे। उसी समय मिस्रमें पिरामिड बन रहे थे और सारगोन प्रथमने आकर सुमेरी साम्राज्यका अन्त कर दिया था अर्थात् मिस्रवालोंने सुमेरिया (ईरान) तक अपनी साम्राज्य-सीमा बढ़ा ली थी। इसके पश्चात् हम्मूरबीने बाबुल (बेबलोनिया) जीता (२१०० ई.पू.), अरबोंने मिस्रको जीता (१५८० ई.पू.) और इसके पश्चात् १४३५ ई. पू. में पश्चिमी एशिया तक भारतके आर्योंका राज्य रहा। १४००से १२००ई. पूर्व तक यहूदी लोग फिलस्तीन पहुँचे। १३७५ई. पूर्वमें मितन्नी (पश्चिम एशिया) में आर्य देवताओंकी पूजा होने लगी थी और मिस्रमें सूर्यका मन्दिर बन गया था। आर्य सभ्यताका विस्तार इतना होने लगा था कि १००० ई. पू. में यूनानी लोग एशिया-कोचक तक फैल गए और ७७० ई. पू. में यूनानके साथ भारतका व्यापार होने लगा था। असूरियोंने ७२२ ई. पू. में इसराइल और फिर ६७० में मिस्र जीत लिया, किन्तु ६१२ ई. पूर्वमें खल्दियोंने असूरी साम्राज्य उखाड़ फेंका। इसके पश्चात् ६०० ई. पूर्वमे ईरानियोंने मिस्र जीत लिया। ५८६ ई. पू. में बाबुलके राजा नबूशदनजरने यरूसमल ध्वस्त किया और वह सहस्रों यहूदी नागरिकोंकाको बन्दी बनाकर बाबुल ले गया। ५३९ ई. पू. में कुरुने खल्दी साम्राज्य नष्ट करके ईरानी राज्य स्थापित किया। ५२५ ई. पू. में ईरानियोंने मिस्रपर अधिकार जमाकर ५५२ ई. पू. भारतीय सीमा तक अधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् सिकन्दर का आक्रमण हुआ और फिर चन्द्रगुप्तसे हारकर सेल्युकसने भारत की पश्चिमी सीमाके पश्चिमी प्रदेश चन्द्र-गुप्तको दे दिए और अपनी कन्याका विवाह भी चन्द्रगुप्तसे कर दिया। इसके पश्चात् शक, सिथिआई, हूण, अरब, तुर्क, और मंगोल क्रमशः भारतपर आक्रमण करने आते रहे और यहाँ बस जाते रहे। तात्पर्य यह है कि भारतकी सीमासे छेड़छाड़ पहली बार ईरानी राजा कुरुने ५२२ ई. पू. में की। इससे पूर्व उत्तर भारतमें संस्कृतका बोलबाला था।

भाषा विज्ञानके पण्डित यदि इन घटनाओंपर दृष्टिपात करेंगे तो उन्हें प्रतीत होगा कि मिस्रसे लेकर ईरान तकका प्रदेश निरन्तर परस्पर मिस्री, यूनानी, असूरी, बाबुली, सुमेरी, ईरानी, अरबी, हूण और शक जातियोंके परस्पर संहार, उथल-पुथल और आदान-प्रदानसे बने हैं। अतः जिस समय पण्डित और राजा लोग संस्कृतका पोषण कर रहे थे। उस समय राजनैतिक महत्वाकांक्षी राजा और व्यापारी एक दूसरे देशसे सम्पर्क स्थापित करके स्वतन्त्र रूपसे इधरसे उधर आ जा रहे थे। और जो इन युद्धोंमें विजयी होता था वह विजित देशके सैनिकों और नागरिकोंको बन्दी बनाकर अपने देशमें ले जाता था। अतः, यह कहना अत्यन्त भ्रामक है कि पहले संस्कृत हुई फिर प्राकृत हुई, फिर अपभ्रंश। संस्कृतके साथ-साथ पास पड़ोसके प्रदेशोंकी न जाने कितनी प्रकारकी भाषाओंका मेल यहाँकी भाषाओंमें होता रहा, हुआ और बाहरकी अनेक जातियों के यहाँ आ बसनेके कारण पंजाब, राजस्थान, सिन्ध और सौराष्ट्रके विभिन्न प्रदेशोंकी भाषाएँ बहुत रूपोंमें वैसे ही ढल चलीं। जैसे हमारे देशके दुर्भाग्यसे पाकिस्तान बननेके कारण सिन्धके जो लोग भारतमें आए वे भारतमें रहकर अपना भी संस्कार बनाए हुए है और साथ ही यहाँकी भाषाका भी प्रयोग करते हैं। वैसे ही मिस्र और भारतके बीचकी अनेक प्रतापी और समृद्ध जातियोंके परस्पर संघर्षसे जो भगदड़ मची उनमेंसे कुछ (यहूदियों और पारसियों) ने तो आकर भारतमें आश्रय लिया। ऐसी विप्लवकी परिस्थितिमें भाषाका निर्माण शान्तिपूर्वक नहीं हुआ। जो जातियाँ आती गई वे अपने उच्चारण-क्रमके अनुसार संस्कृतका या यहाँ की प्राकृतोंका उच्चारण करती रहीं और वे जहाँ-जहाँ आकर बसीं वहाँ-वहाँ उनकी अपनी प्राकृत बन गई। विभिन्न प्रदेशोंमें बसनेके कारण ही उनके द्वारा उच्चरित भाषा ही उस देशकी अपभ्रंश बन गई, अर्थात् उन प्रदेशोंमे जो वहाँके प्राकृत लोग (स्वाभाविक देशवासी) जिस भाषाका प्रयोग करते थे उसीको बिगाड़ कर ये नए आगन्तुक जो बोलने लगे वही अपभ्रंश बन गई। जैसे संस्कृतका 'कुतः' लोकभाषामें तो 'किधर हुआ किन्तु अंगरेज इसे और भी बिगाड़कर 'किढर' कहने लगा। यही अपभ्रंश है। इससे यही निष्कर्ष निकला कि जिस समय संस्कृतका बोलबाला था उस समय भी दुष्ट शब्दोंका प्रयोग करनेवाले लोग विद्यमान थे और वे प्राकृत बोलते थे। उसमें भी जो लोग बाहरसे आकर अपनी नई ध्वनि प्रणालीके अनुसार उच्चारण करने लगे वह अपभ्रंश हो गया। यह तथ्य इस बातसे भी प्रमाणित है कि राजशेखरने अपभ्रंशका जो क्षेत्र बताया है वह वही है, जहाँ उत्तर-पश्चिमके मार्गोंसे ईरानी, यूनानी, शक, सिथियाई, हूण और अरबी लोग आकर बसते रहे।

> **गौडाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः**
> **सापभ्रंश-प्रयोगाः सकल मरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।**
> **आवन्त्याः पारियात्राः सहदशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते।**
> **यो मध्ये मध्यदेशे निवसति स कविः सर्वभाषा-निषण्णः**

[गौड़ (बंगाल) आदि आर्यावर्त्तके लोग संस्कृतका व्यवहार करते हैं, लाट (गुजरात) के लोग प्राकृत-प्रिय हैं, सारे मरुस्थल (राजस्थान), टक्क, (पूर्वी पंजाब या बाँगर देश) और भादानक (मालवा) के लोग अपभ्रंशका व्यवहार करते हैं और मध्यदेश (वर्त्तमान उत्तर-प्रदेश) के निवासी सब भाषाओंके पण्डित होते हैं]

अपभ्रंश तथा अवहट्टका सम्बन्ध—विद्यापति ने अपनी कीर्तिलताके प्रारम्भमें कहा है :—

सक्कयवाणी बहुय न भावइ
पाउअ-रसको मम्म न जानइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा
ते तैसन जम्पेओं अवहट्ठा॥

[संस्कृत वाणी बहुत लोगोंको अच्छी नहीं लगती और प्राकृतका मर्म बहुतसे लोग जानते नहीं। किन्तु देशी बोली सबको मीठी लगती है इसलिए मैंने यह अवहट्ट कहा है।]

राजशेखरने भी कर्पूरमञ्जरीकी भूमिकामें कहा है :—

परुसा संक्किअबन्धा पाउअ-बन्धोवि होई सुउमारो।
पुरुस-महिलाणं जेत्तिअ तेत्तिअ अभिमाणं॥

अर्थात् संस्कृतकी कविता कठोर हाती है और प्राकृतकी कोमल। दोनोंमें वही अन्तर है जो पुरुष और स्त्रीमें होता है। किन्तु प्रश्न यह है कि विद्यापति ने जब देसिल बअना कह ही दिया है तब उन्हें यह कौन कहनेकी आवश्यकता पड़ी कि मैं अवहट्ट कह रहा हूँ। यह अवहट्ट कोई भाषा है या शैली है या केवल किसी विशेष प्रकारकी रचनाका नाम है जैसे रासो एक प्रकारकी रचना है या भोजपुरमें 'विदेसिया' एक प्रकारकी रचना है। वैसे ही क्या अवहट्ट कोई रचना पद्धति तो नहीं है? कीर्तिलतामें वर्णनात्मक इतिवृत्त है। अतः अवहट्टका अर्थ क्या कोई चलती कथा तो नहीं है? यह अवहट्ट शब्द 'आवसथ्य' अर्थात् गाँव या घरका भी अपभ्रंश हो सकता है जिससे अर्थ होगा घरेलू या गाँवकी बात।

अपभ्रंशके विषय

यदि हम अपभ्रंशके विषयोंका विश्लेषण करें तब भी ज्ञात होगा कि उनमें जो ऐतिहासिक अंश प्राप्त होते हैं वे सबके सब कच्छ, गुजरात और मारवाड़के पश्चिमी प्रदेशके ही हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणिमें उदाहरण दिया गया है :—

ऊग्या ताविउ जहिं न किउ, लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहड़ा, के दहक अहवा अट्ठ॥

[जिस उदित अर्थात् (प्रसिद्धि प्राप्त) वीरसे (शत्रु लोग) तापित नहीं किए गए अर्थात् जिस वीर ने शक्ति पाकर भी अपने शत्रुओंको आक्रान्त नहीं किया तो कुशल लक्खा कहता है कि उसे कुल गिनतीके दस या आठ दिन मिलते हैं, उसका यश नहीं टिकता।]

इस दोहेमें कच्छके प्रसिद्ध राजा लक्खाका वक्तव्य दिया हुआ है जो मूलराजके हाथसे ९८० ई. में मारा गया था। दूसरा उदाहरण लीजिए :—

मुंज खडल्ला दोरडी, पेक्खेसि न गम्मारि।
आसाढ़ि घण गज्जीइं, चिक्खिलि होसे वारि॥

[हे मुंज गँवार! यह जो प्रेमकी डोरी ढीली हो गई है इसे अभी नहीं समझ रहे हो, किन्तु आषाढ़ आनेपर जब बादल गरजने लगेंगे और चारों ओर पानीकी फिसलन हो जायगी तब देखता हूँ तुम कैसे अपनेको रोक पाओगे? अर्थात् यह जो प्रेमकी डोरीका ढीलापन आज दिखाई पड़ता है वह बरसात में नहीं रहेगा।]

मुंज भणइ मुणावलइ, जुव्वण गयुं न झूरि।
जो सक्कर सय खंड थिय, तो इस मीठी चूरि॥

[मुंज कहता है कि हे मृणालवती! तुम अपने इस बीते हुए यौवनके लिए चिन्ता न करो; क्योंकि शक्कर चाहे जितनी चूर-चूर हो जाय, फिर भी उसकी मिठास नहीं जाती।]

झाली तुट्टी किं न मुउ, किं न हुयउ छारपुंज।
हिंडइ दोरी बंधीयउ, जिम मंकड़ तिम मुंज॥

[मैं जलकर टुकड़े-टुकड़े होकर क्यों नहीं मर गया? क्यों नहीं राख का ढेर हो गया कि आज मेरे होते हुए मुंज इस प्रकार बन्दरके समान डोरीमें बँधा हुआ घूम रहा है।]

इस प्रकार अधिकांश उदाहरण मुंज-मृणालवतीके सम्बन्धके ही हैं जिनका सम्बन्ध गुजरातसे ही है। इसके अतिरिक्त उसमे रुद्रादित्य, भोज, सिद्धराज जयसिंह, वर्द्धमानपुर (बढ़वाण), गिरनार आदिकी चर्चा है जिन सबका सम्बन्ध सौराष्ट्र, राजस्थानके दक्षिणी पश्चिमी भाग और मालवासे ही है। सोमप्रभसूरि की कविताओंमे भी नलगिरि हाथीकी चर्चा है जो उज्जयिनीके राजा चण्डप्रद्योत के यहाँ था :--

नलगिरि हत्थिहिंमि ठितइं, सिवदेवेहि उच्छंगि।
अग्गिभीरु रह दारुइहि, अग्गि देहि मह अंगि॥

यह पद भासके नाटकसे लिया गया है जो तीसरी चौथी शताब्दी ई. पू. मे माना जाता है। इसमें भी जो कथा आई है वह पश्चिमी भारत (उज्जयिनी, राजस्थान और मालवा) की ही है। हेमचन्द्रने अपभ्रंश प्रकाशमे जो उदाहरण दिए है उनमे जितने ऐतिहासिक दोहोंका समावेश है वे निश्चित रूपसे उसी प्रदेशका प्रतिनिधित्व करते है।

अत:, अपभ्रंश निश्चय ही पश्चिमी प्रदेश (पश्चिमी राजस्थान तथा सौराष्ट्र) की भाषा थी जहाँ विदेशी जातियाँ आकर मुख्यतः वसीं।

अपभ्रंश और हिन्दीका सम्बन्ध

वहुतसे आचार्योंने :--

पुत्तें जाएँ कवँणु गुणु, अवगुणु कवँणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहड़ी, चम्पिज्जइ अवरेण॥

उदाहरण लेकर और इसमें आए हुए 'बप्पीकी' में विद्यमान 'की' को सम्बन्ध कारकका चिह्न मानकर उसे हिन्दी की जननी बता दिया। किन्तु भाषाकी परीक्षा करनेपर जान पड़ेगा कि उसका सम्बन्ध गुजराती और पश्चिमी राजस्थानीसे अधिक है। कालिदासकी विक्रमोर्वशीय से जो दोहा दिया जाता है वह यदि कालिदासका मान भी लिया जाय (क्योंकि उसे कुछ लोग प्रक्षिप्त मानते है) तब भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि उस भाषाका सम्बन्ध मालवा और राजस्थानकी ही भाषासे रहा है जो आज भी है, क्योंकि कालिदास स्वयं उज्जयिनी के थे। अतः इससे भी सिद्ध होता है कि अपभ्रंश उधरकी ही भाषा थी, हिन्दीसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अपभ्रंशकी ध्वनियाँ

अपभ्रंशमें :—

१–ऋ का अ हो जाता है। आज भी गुजरातमें कसण (कृष्ण) भाई नाम मिलेंगे।

२–भातृका आज भी भात्र हो जाता है जो कच्छ और सिन्ध तक प्रचलित है।

इसी प्रकार 'न' के बदले 'ण' का प्रयोग राजस्थान, पंजाब और गुजरातमें है, हिन्दीमें नहीं। हिन्दीकी प्रवृत्ति शुद्ध रूपसे 'न' की है, 'ण' की नहीं। एक विचित्र प्रयोग अपभ्रंशमें 'ज' का है, जिसका अर्थ है (ही)। आज भी गुजराती भाषामें उसका प्रयोग किया जाता है। 'एक ज' = 'एक ही'। इसके लिए मराठी 'च' का प्रयोग होता है—'एक च प्याला'। इस प्रकार अपभ्रंशको हिन्दीकी जननी मानना नितान्त भ्रमात्मक है।

इस सबसे यह परिणाम निकला कि एक ही समय सब भाषाओंमें जहाँ एक ओर शिष्टजन किसी शब्दको भली भाँति व्युत्पन्न करके विशेष नियम के अनुसार उसे गढ़कर उसका प्रयोग करते हैं वहीं असंस्कृत लोग उसका अनुकरण तो करने लगते हैं किन्तु ठीक उच्चारण न करनेके कारण उसे बिगाड़कर बोलते है। इसका परिणाम यह होता है कि एक साथ एक भाषाके शिष्ट (संस्कृत) प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों रूप चल पड़ते है। एक विद्वान् जहाँ दूसरे विद्वान्से कहता है कि तुम 'कुछ धर्म-कर्म नहीं करते' वहाँ वही विद्वान् किसी अपढ़से कहता है—'अरे भाई!' तुम लोग कुछ धरम-करम किया करो।अतः, शिष्ट लोग भी जिस योग्यताके व्यक्तिसे बातें करते है उसकी भाषा प्रकृतिके अनुसार अपनी भाषाको प्राकृत या अपभ्रंश रूपमें ढाल लेते है। इसलिए यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है कि किसी युगमें कई सौ वर्ष तक संस्कृत रही, फिर कई सौ वर्षों तक प्राकृत रही फिर कई सौ वर्षों तक अपभ्रंश रही और इसी प्रकार भाषाओंका क्रम चलता रहा। यदि व्याकरण-बद्ध हो जानेके कारण संस्कृत आज तक ज्यों की त्यों बनी रही तो प्राकृत और अपभ्रंश भी व्याकरण बन जानेपर ज्योंकी त्यों क्यों नहीं बनी रही। क्या कारण है कि पालि नामकी तथाकथित भाषा अथवा अन्य प्राकृतें सहसा समाप्त हो गईं और अकारण अपभ्रंशकी प्रधानता हो चली। वास्तविक बात यह है कि प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश सब साथ रहीं जैसा कि भास और कालिदास के नाटकों तथा भरतके नाट्य शास्त्रसे सिद्ध भी है। संस्कृतमें लिखनेवाले समस्त देश भरमें व्याप्त रहे, किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाएँ किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग या प्रदेश तक सीमित रहीं या राजाश्रयसे पुष्ट होती रहीं। जब सम्प्रदाय धर्म, वर्ग या प्रदेशकी साहित्य प्रवृत्तिका ह्रास हो गया तो वह प्राकृत या अपभ्रंश समाप्त हो गई अथवा अन्य प्रकारके प्रभावोंसे (भाषा, शासन, संस्कार) प्रभावित होकर दूसरे रूपोंमें ढल गई।

८०० ई. पू. से ५०० ई. पू. तक उत्तर भारतमें १६ महाजनपद थे। जिनमे से दो-दो के मेलसे एक-एक युग्म जनपद बन गया था। अंग-मगध, काशी-कोशल, वृज्जि-मल्ल, चेदि-वत्स, कुरु-पाञ्चाल, मत्स्य-शूरसेन, अश्मक-अवन्ती और गान्धार-काम्बोज। अब यदि भरतके बताए हुए सूत्रके अनुसार हम परीक्षा करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि भरतने जो सात भाषाएं गिनाई हैं उनमेसे मागधी तो अंग-मगधकी भाषा थी, प्राच्या भी काशी-कोशलकी थी ; अर्द्ध मागधी भी वृज्जि-मल्लकी थी; वाह्लीका भी कुरु-पाञ्चालकी थी ; दाक्षिणात्या भी दक्षिणकी थी ; अवन्ति भी अश्मक-अवन्ती की थी और शौरसेनी भी मत्स्य-शूरसेन की थी। उस समय गान्धार-कम्बोज की भाषा जाति भाषा थी जिसमें म्लेच्छ शब्दोंका प्रयोग

होता था। इस प्रकार भरतकी बताई हुई उस समयकी सातों देशी भाषाओंका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भरतने इन भाषाओंको स्पष्ट रूपसे देशभाषा कहा है, प्राकृत नहीं। प्राकृतके लिये उन्होंने अलग वर्णन दिया है कि नाटकोंमें संस्कृत और प्राकृतके साथ चार प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग करना चाहिए—अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभापा, जात्यन्तरी भाषा। ये भेद इस दृष्टिको रखकर किए गए हैं कि नाटकमें देवताओंसे अतिभाषा अर्थात् अतिशय संस्कृतनिष्ठ भाषा, राजाओंसे श्रेष्ठ या आर्य संस्कृत भाषा, विभिन्न प्रकारकी जातियोंसे उनकी जाति भाषाएँ और पशु-पक्षियोंके अनुकरणके लिए जात्यन्तरी भाषा बुलवानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि एक संस्कृत भाषामें भी शैली के अनुसार कई प्रकारके वर्ग बनाए जा सकते है। अतः अपभ्रंशको हमें कोई अलग ढलकर बनी हुई भाषा नहीं समझना चाहिए। यदि ऐसा होता तो हमें ऐसी कड़ियाँ अवश्य मिलती चलतीं जिससे ज्ञात हो सकता कि अमुक-क्रमसे, अमुक-अमुक समयमें, अमुक-अमुक कारणोंसे अमुक-अमुक परिवर्तन हुए और भाषाका रूप बदला। पर ऐसे क्रमिक प्रमाणोंका पूर्ण अभाव है।

अपभ्रंशमें सिद्धोंकी बानियाँ

कुछ हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोंने भूलसे सब प्रकारकी पद्य-बद्ध रचनाओंको साहित्यकी सीमा के भीतर समाविष्ट कर लिया है। अरस्तूने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य-शास्त्र' (पेरिपोइतिरवीस) में स्पष्ट रूपसे इसीलिए लिख दिया है कि प्रत्येक पद्य-बद्ध रचना को काव्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि आयुर्वेद ग्रन्थ भी पद्यमे लिखे गए है, इसलिये वे काव्य नहीं माने जा सकते। किसी प्रकारकी रचनाको काव्यकी श्रेणीमें पहुँचनेके लिए कुछ विशेष गुणोंसे समन्वित होना चाहिए और वे गुण निम्नांकित हैं:—

१—रचयिताने काव्य-रचना की दृष्टिसे उसका ग्रथन किया हो।

२—काव्य- शास्त्रमे वर्णित गुणोंसे युक्त, यथासम्भव दोषोंसे रहित, शब्द-शक्तियोंसे समन्वित तथा अलंकारोंसे सुसज्जित होनी चाहिए।

३—भाव और रसके अनुसार शब्द-योजना और छन्दो-योजना होनी चाहिए।

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु सोहत नहीं, कविता, बनिता, मित्त॥

४—सहृदय साहित्य-रसिकोंके लिए आस्वाद्य हो अर्थात् सहृदय-संवेद्य हो।

इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्वतः सिद्ध हो जाएगा कि वज्रयानी सिद्धों और नाथ सम्प्रदायके सन्तोंने अपने मतके प्रचार और प्रसार तथा सिद्धान्तोंके निरूपणके लिए साखी, सबद, रमैनी, उलटवाँसी आदिके रूपमें जिन दोहों या पदों की रचना की वे न तो काव्य-मर्मज्ञोंके लिए लिखे गए न काव्य-शास्त्रों की मर्यादाके साथ लिखे गए वरन् उनका उद्देश्य अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका संरक्षण और प्रचार करना मात्र था कि जिससे उनके अनुयायी तथा शिष्य लोग उन सिद्धान्तोंको सुविधापूर्वक और भली भाँति कण्ठस्थ किए रक्खें।

कबीरने अपने निम्नांकित दोहोंमें जिन चौरासी सिद्धोंकी चर्चा की है वे सब सं. ७९७ से संवत् १२५७ के बीच तक हुए :—

धरती औ असमान विच, दोई तू बड़ औध ।
षट दर्शन संसय खड्या, औ चौरासी सिद्ध ।।

सरहपासे प्रारम्भ होने वाले इन चौरासी सिद्धोंमें भसुकिपा, लुइपा, निसपा, डोम्बिप्पा, दारिकपा, गुंडरिपा, कुकरिपा, कमरिपा, कण्हपा, गोरक्षपा, तिलोपा, शान्तिपा, तन्तिपा, भद्दिपा, मदेपा, धर्मपा, आदि सिद्धोंने अपढ़ होनेके कारण अपने सिद्धान्तों, उद्देश्यों और व्यावहारिक कर्मकाण्ड आदिके साथ नीति-परक उपदेशोंको साधारण जनभाषामें ही वर्णित किया। साहित्यकी दृष्टिसे इन सम्पूर्ण रचनाओंका कोई महत्व नहीं है। हाँ, भाषाकी दृष्टिसे इन रचनाओंका महत्व हो सकता है क्योंकि इन रचनाओंका अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि आठवीं शताब्दीसे तेरहवीं शताब्दी तक लगभग पाँच सौवर्षोंमें उत्तर भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके सन्तोंमें पारस्परिक साम्प्रदायिक व्यवहारके लिए किस प्रकारकी भाषाका प्रयोग होता था।

इन सिद्धोंमेंसे गोरक्षपाने ही ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यमें पश्चिमी भारतमें अपने सम्प्रदायका प्रचार किया। अन्य वज्रयानी सिद्ध लोग पूर्वी भारतमें ही अपनी वाममार्गी बीभत्स तान्त्रिक प्रक्रियाओंका प्रचार कर रहे थे। गोरखनाथने अपने हठ-योगमें नाद और बिन्दुको अपनी उपासनाका केन्द्र बनाया, सम्पूर्ण कर्मकाण्ड-मूलक बाह्याचारका खण्डन किया। सामान्य जनको भी अपने मण्डलमें प्रविष्ट करनेकी छूट दी। इसलिए अपढ़, शूद्र तथा अन्य अपठित वर्गोंके लोग यहाँ तक कि मुसलमान भी इस पन्थकी ओर आकृष्ट हुए। साहित्य-रचनाके विचारकी तो बात दूर रही, इस सम्प्रदायके अन्तर्गत जितनी भी रचना हुई, उसका स्रष्टा कौन है, यह भी अभी तक सन्दिग्ध है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उन रचनाओंका महत्व केवल भाषाकी दृष्टिसे ही हो सकता है। यह बड़े खेदकी बात रही है कि बहुत बड़े-बड़े विद्वानोंने इस सम्पूर्ण अप्रमाणिक रचना-संग्रहको बल-पूर्वक हिन्दी साहित्यमें प्रविष्ट करनेका प्रयत्न किया,अनेक डाक्टरोंने बड़े-लम्बे-चौड़े ग्रन्थ भी लिखे, किन्तु उनमेंसे किसीने भी विशेष युगकी भाषाकी प्रवृत्ति और प्रकृतिकी दृष्टिसे इन रचनाओंका अध्ययन, विश्लेषण और विवेचन नहीं किया। गोरखनाथके नामसे प्रसिद्ध रचनाओंमें सबदी, पद, अभैमात्राजोग, मिथ्यादरसन, प्राणसंकली, आतमबोध, मछीन्द्र-गोरखबोध, जाती-भौरावली, गोरख-गणेश-सम्वाद, गोरख दत्त सम्वाद, सिद्धान्त जोग, ज्ञानतिलक, कैथड़ा-बोध प्रसिद्ध है। ये रचनाएँ भाषाकी दृष्टिसे भी बड़ी अव्यवस्थित और बहुभाषा-मिश्रित हैं। पश्चिम भारतमें इस सम्प्रदायके प्रचार होनेके कारण इन रचनाओंकी भाषामें राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी तथा नागरी (हिन्दी या खड़ी बोली) के उस प्राचीन मिश्र रूपकी स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है जिसे सर्वसुलभ भाषा बनानेके निमित्त तत्कालीन सिद्ध और सन्त प्रयत्नशील थे। गोरखनाथका इस दृष्टिसे महत्व माना जा सकता है कि उन्होंने या उनके नामसे लिखने वाले व्यक्तिने गद्यमें भी रचना की है जिससे पश्चिम भारतमें साम्प्रदायिक व्यवहारके लिए प्रयुक्त होनेवाली व्यापक जन-भाषाका परिचय प्राप्त करनेमें सुविधा हो सकती है। इनके सम्प्रदायके अन्तर्गत जालन्धर और कणेरी आदि साधकोंकी रचनाओंमें भाषाका कुछ अधिक निखरा हुआ रूप दिखाई पड़ता है।

वज्रयानी सिद्ध

जिस समय अपने पट्ट-शिष्य आनन्दके आग्रहपर गौतम बुद्धने स्त्रियोंको अपने भिक्खु-समाजमें प्रव्रजित

होनेकी आज्ञा दी थी उसी समय उन्होंने कहा था—'यदि मेरा धर्म एक सहस्र वर्ष चलता तो अब केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा।' यह बात सत्य सिद्ध भी हुई। विनयपिटक स्वतः इस बातका साक्षी है कि स्वयं बुद्धके ही समयमें बौद्ध विहारोंमें अनेक प्रकारके पापाचार होने लगे थे जिनके निवारणके लिए गौतम बुद्धने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तोंका विधान किया था। विक्रम सम्वत्के प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही बौद्ध धर्ममें बहुत विकार आने लगा था। पुष्यमित्र शुंगने वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञका पुनः प्रवर्तन करके उस मरणासन्न बौद्ध धर्मको आघात पहुँचाया। अशोकका साम्राज्य विशीर्ण हो जाने तथा वैष्णव धर्मकी प्रबलताके कारण बौद्ध धर्ममें इतनी विकृति आ गई कि वज्रयानी बौद्ध भिक्षु अपने धर्मकी ओटमें गुह्याचारकी साधनाका आश्रय लेकर अनेक प्रकारके पापाचार करने लगे और मांस, मदिरा तथा सुन्दरीका उपभोग करने लगे। ये सब सिद्ध अधिकांश नालन्दा, राजगृह, विक्रमशिला आदि बौद्ध केन्द्रोंमें ही रहा करते थे और अपढ़ होनेके कारण स्वभावतः उनकी भाषामें उस क्षेत्रमें बोली जानेवाली उस लोक-भाषा मगहीका अधिक प्रयोग मिलता है, जिसे मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंशका विकार कहा जा सकता है। इन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पै और चर्या गीतोंमें रचनाएँ की हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालना सहज है कि तत्कालीन लोक-जीवन और लोक-गीतोंमे इन छन्दोंका बहुलतासे प्रयोग होता था। इन रचनाओंमे स्थान-स्थानपर रागोंका भी निर्देश मिलता है जिससे यह समझनेमे भी सुविधा होती है कि इन लोगोंने जनताको आकृष्ट करनेके लिए संगीतको भी माध्यम बनाया था। साथ ही साथ यह भी सरलतासे ज्ञात हो जाता है कि उस समय पूर्वी भारतमें किन रागोंका अधिक लोक-व्यवहार होता था। तात्पर्य यह है कि इन सम्पूर्ण रचनाओंका महत्व साहित्यकी दृष्टिसे तो नहीं किन्तु भाषाकी दृष्टिसे अवश्य है, और वह इसीलिए कि उन्हें पढ़नेमे तत्कालीन लोक-प्रचलित तद्भव और देशी शब्द, मुहावरे, अभिव्यक्ति-कौशलकी प्रकृति और अलंकारोंके प्रयोगकी शैलीका ज्ञान हो जाता है। यह भी ऐसा विषय है जिसपर विस्तारसे खोज होनी चाहिए।

मागधी और हिन्दी

जैन धर्मके अनेक प्रसिद्ध तीर्थंकरोंने पूर्वी भारतमें ही जन्म लिया। जिनमें महावीरकी प्रसिद्धि उतनी ही हुई जितनी बौद्ध धर्मके प्रचारमे गौतम बुद्धकी। जैन धर्मावलम्बियोंका विश्वास है कि मागधी ही वास्तवमे मूल या आदि भाषा है—'सा मागधी मूल भाषा'। उनका विश्वास है कि ४५४ ई. में देवर्षिगणने प्रेरणा देकर सम्पूर्ण जैन साहित्यको लेख-बद्ध कराया और यह सब लेखन-कार्य प्राकृत (मागधी प्राकृत) में हुआ। किन्तु जब ये प्राकृतें भी लोक-जीवनमें प्रविष्ट होकर विकृत होने लगीं, उस समय स्वभावतः लोक-रुचिका आदर करनेवाले धर्म-प्रचारक लोग जन-भाषामें ही अपनी रचना करने लगे। इस प्रयासमे पहले तो केवल धर्म-ग्रन्थोंके लिए प्राकृत और अपभ्रंशका प्रयोग हुआ, किन्तु पीछे चलकर लोक-काव्यों तथा लोक-गीतोंमें व्यवहृत जन-भाषाकी शक्तिसे प्रभावित होकर अनेक कवियोंने उस लोक-भाषामें काव्य भी लिखने प्रारम्भ कर दिए। यद्यपि जैन धर्मका सूत्रपात और प्रारम्भ तो पूर्वी भारतमे हुआ, किन्तु उसका अधिक प्रचार पश्चिमी भारतमें हुआ और यही कारण है कि जैन साहित्यके अधिकाश विद्वान् पश्चिम भारत (राजस्थान, गुजरात और मालवा) में ही अधिक हुए। उसका यह भी एक कारण रहा कि वहाँके जैन धर्माचार्यों और लेखकोंको राजाश्रय भी प्राप्त हो गया था।

महावीरके पश्चात् जैन धर्ममें दो सम्प्रदाय चल पड़े--१-भद्रबाहुका दिगम्बर सम्प्रदाय और २-स्थूलभद्रका श्वेताम्बर सम्प्रदाय। इनमेसे दिगम्बर सम्प्रदायका अधिकांश साहित्य अपभ्रंश भाषामें रचा गया जिसे भूलसे पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जैसे विद्वानोंने हिन्दीका पूर्ववर्ती स्वरूप मानकर उसे 'पुरानी हिन्दी' संज्ञा दी है, यद्यपि उसे कहना चाहिए पुरानी गुजराती या पुरानी मेवाड़ी। जिन जैन कवियोंने साहित्यिक रचनाएँ की है उनमें 'जैन रामायण' लिखनेवाले स्वयभूदेवका नाम अधिक प्रसिद्ध है जिसके सम्बन्धमें हिन्दीके कुछ लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानोंने यहाँ तक भ्रामक प्रचार कर डाला कि गोस्वामी तुलसीदास जीने भी उसीसे प्रभावित होकर रामचरितमानसकी रचना की है। किन्तु यह निराधार है, क्योंकि एक तो उसमें रामका चरित भी बहुत विकृत है और दूसरे उसमें रामके बदले रावणके चरितका अनावश्यक विस्तार किया गया है। स्वयंभूकी निम्नांकित चार रचनाएँ मानी जाती है :--

१--पउम चरिउ (पद्म चरित--जैन रामायण)। २--रिटिठमि चरिउ (अरिष्टेनेमि चरित या हरिवंश पुराण)। ३--पंचमि चरिउ (नाग-कुमार चरित)। ४--स्वयंभू छन्द।

कुछ लोगोंने इन्हीको हिन्दीका प्रथम कवि पुष्प माना है जिसका उल्लेख शिवसिंह सेंगरने किया है, किन्तु पुष्पकी कोई भी रचना अभी तक कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुई।

हमारे कुछ साहित्यके इतिहासकारोंने स्वयंभूको हिन्दीका आदि कवि मान लिया है जिसने पउम-चरिउ (पद्मचरित) नामसे रामायणकी रचना की थी। पहली बात तो यह है कि स्वयंभूकी रचना यों भी बहुत उच्च कोटिकी नही है, जैसा कुछ विद्वानोंने बताया है। उसमें इतिवृत्त अधिक और काव्यत्व अत्यन्त कम है और वह भी सब संस्कृतके ग्रन्थोंसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर लिया गया है। उसकी कथा भी अध्यात्म या वाल्मीकि रामायणकी कथाकी परम्परामें नही है। उसमें इतने अनावश्यक विस्तारसे रावणका वर्णन किया गया है कि वह रामचरित न होकर रावणचरित बन गया है। उसमें दशरथकी चार रानियाँ बताई गई है और बहुत-सी ऐसी असंगत कथाएँ भरी पड़ी है जो सभी प्रसिद्ध राम-काव्यों और कथाओंसे भिन्न हैं। स्वयं स्वयंभूने अपने पउम चरिउमे स्थान-स्थानपर यह घोषणा भी की है कि मै कथा आदि कुछ जानता नही। २३ वीं सन्धिके प्रारम्भमें ही वह कहता है :--

हउँ किंपि ण जाणमि मुक्खु मणे।
णिय बुद्धि पयासमि तोवि जणे॥
जं सयल वि तिहुवणे वित्थरिउ।
आरंभिउ पुणु राहवचरिउ॥

यह उक्ति केवल उम प्रकारका नम्रता-प्रकाशन नही है जैसा गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसके प्रारम्भमें किया है--

कबित बिबेक एक नहीं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

पउमचरिउकी कथा पढ़नेसे भी प्रतीत होता है कि स्वयंभूने रामचरितकी कथा उसने अपने मनसे गढ़ी है और उसे यहाँ तक नही ज्ञात था कि दशरथके कितनी रानियाँ थी और रामकी माता कौन थीं।

जैन आचार्योंमें सौराष्ट्र-निवासी हेमचन्द्र मेरुतुंगाचार्य और सोमप्रभदेव सूरिका अत्यधिक सम्मान है। हेमचन्द्र (संवत् १२१६ से १२२९) ने 'सिद्ध हैमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक बहुत बड़ा व्याकरणका ग्रन्थ लिखा जिसमें उन्होंने प्राकृतके उदाहरणोंके साथ-साथ अपभ्रंशके अनेक साहित्यिक उदाहरण दिए हैं। ये सभी उदाहरण गुजराती भाषाके पूर्ववर्ती अपभ्रंशके ही मानने चाहिए। इन उदाहरणोंमें केवल गुजरातीकी पूर्ववर्ती भाषा ही नहीं, अपितु सौराष्ट्रके इतिहास और दृश्योंका भी चित्रण है। अन्हेलवाड़ (सौराष्ट्र) के जैन पण्डित सोमप्रभूसूरिने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक अपने प्राकृत ग्रन्थके बीच-बीचमें कुछ अपने पूर्ववर्ती और कुछ स्वयं अपने रचे हुए अपभ्रंशके दोहे दिए हैं जिन्हें गुजराती भाषाका ही पूर्ववर्ती मानना चाहिए, हिन्दीका नहीं। इनके अतिरिक्त पद्मसूरि, विजय-चन्द्रसूरि (संवत् १२५७), धर्मसूरि (संवत् १२६६) और विजयसिंह सूरि (संवत् १२८८) आदि अनेक जैन कवियोंने बहुत-सी साहित्यिक रचनाएँ कीं, किन्तु उनका हिन्दीसे सम्बन्ध जोड़ना अत्यन्त असंगत है।

इसी प्रदेशमें अर्थात् सौराष्ट्र और पश्चिमी राजस्थानके क्षेत्रमे प्रवास-वियोग-प्रधान श्रृंगार-कथाओंके आधारपर 'रासक' लिखनेकी पद्धति चली, जैसे भोजपुरी भाषाम बिदेसिया लिखा जाता है। विदेश गए हुए प्रियतमके विरहमें त्रस्त विरहिणीकी कथाओके आधारपर सौराष्ट्रमें लिखी हुई इन प्रेम-कथाओंमें संयोग और विप्रलम्भके साथ-साथ प्रासंगिक वीर कथाएँ भी मिलती हैं। इन कवियोंमें 'अब्दुर्रहमान' का सनेह रासय (सन्देश रासक) अधिक प्रसिद्ध है। अब्दुर्रहमान (संवत् १३६७) जुलाहे थे जिन्होंने अपनी रचनामें हिन्दू आदर्शोंका पालन करते हुए बारह-मासेकी शैलीमें प्रियके पास वियोगिनीके सन्देश भेजनेका मधुर चित्रण किया है।

इसी युगमे करणपुरीके राजा कर्णके आश्रित जबलपुर निवासी जल्लरने श्रृंगारकी अत्यन्त उदात्त फुटकर रचनाएँ की है।

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शार्ङ्गधर आदिकी रचनाएँ भी बहुत उच्च कोटि की नहीं हैं। इस अपभ्रंश साहित्यसे हिन्दीका कोई सम्बन्ध नही रहा इसलिए हम यहाँ निरर्थक सौराष्ट्री अपभ्रंश साहित्यकी विशेष चर्चा नहीं करेगे।

कुछ विद्वानोंने बौद्ध तान्त्रिक वज्रयानी साधु सरहपा आदि की रचनाओसे भी हिन्दीका सम्बन्ध जोड़नेका प्रयत्न किया है, किन्तु वे रचनाएँ तो काव्यकी श्रेणीमें ही नहीं आतीं। उनका न तो हिन्दी साहित्यसे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध ही है और न इस प्रकारकी रचनाने हिन्दी साहित्यको प्रभावित ही किया है, फिर भी उनकी रचनाओंकी प्रकृति और प्रवृत्तिका विवेचन इस दृष्टिसे कर दिया गया है कि नागरी (हिन्दी) भाषाके विकासके अध्ययनमें उनसे बहुत सहायता मिलती है।

हिन्दीकी पूर्वगामिनी अपभ्रंश

ऊपर यह बताया जा चुका है कि सोमप्रभदेव और हेमचन्द्र आदिने जिस अपभ्रंशका व्याकरण लिखा या जिसके उदाहरण दिए हैं वह गुर्जुरी या सौराष्ट्री अपभ्रंश है। नागरी (हिन्दी) का उद्गम सीधे संस्कृतसे हुआ और यदि उसकी कोई पूर्व गामिनी अपभ्रंश रही है तो वह 'मध्यदेशीय' अपभ्रंश होगी जिसकी गणना प्राकृतचन्द्रिकामें इस प्रकार सत्ताईस अपभ्रंशोंमें की गई है :—

व्राचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
बार्बरावन्त्यपाञ्चालटाक्कमालवकैकयाः।।
गौडोड्ढैवपाश्चात्यपाण्डयकौन्तल सैंहलाः।
कालिंगप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविडगौर्जराः।।
आभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः।
सप्तविंशत्यपभ्रंशाः वैतालादिप्रभेदतः।।

इस मध्यदेशीय अपभ्रंशका स्वरूप कैसा था इसका कोई विवरण नही मिलता, किन्तु वह कुछ इस प्रकारका रहा होगा जैसा मेरठ–मुजफ्फरनगरकी निम्नांकित जनपदीय भाषामें प्राप्त होता है :––

'दिके धार लिकड़गी हो तो लवारा बाँध दीए। मन्नै हारेमॅंड दूध चढ़ा रख्या। मका रई परे स ठाला तो मट्ठा बिलो लूं। कुठलेमॅं नाज रख्या हो तो परातमॅं घालल्या। किघै जाह्‌रा। लोट्टा बी ठात्ता लाय्ये।'

[देख! दूध दूह गया हो तो बछड़ा बाँध देना। मैंने दूध गरम करने रख दिया है। मै कहती (कहता) हूँ कि उधरसे मथानी उठा लाओ तो छाछ मथ लूं। अन्नागारमे अन्न हो तो बड़ी थालीमे डालकर ले आओ। किधर जा रहा है। लोटा भी उठाते लाना।']

इस मध्यदेशीय अपभ्रंशकी कुछ अपनी विशेषताएँ है––

१–दीर्घ मात्रावाले वर्णके पश्चात दीर्घ मात्रावाले व्यंजनमे द्वित्व हो जाता है जैसे 'लोटा' का 'लोट्टा'।

२–दीर्घ मात्रावाले शब्दोंके पहले आनेवाला एकमात्रिक स्वर लुप्त हो जाता है जैसे––'उठा' का 'ठा', 'अनाज' का 'नाज'।

३–'रहा' में वर्ण विपर्यय हो जाता है–– 'जा रहा' का 'जा ह्‌रा' हो जाता है।

४–'मैंने' का 'मन्नै' हो जाता है।

५–'मैंने कहा' का 'मका', 'उसने कहा' का 'उन्नेका' हो जाता है आदि। इस प्रदेशकी अपभ्रंशकी प्राचीन रचनाएँ अप्राप्य है।

जिस अपभ्रशका व्याकरण हेमचन्द्रने लिखा है उसमे दर्शन श्रृंगार और वीरतापूर्ण सुन्दर रचनाएँ हुई है। इसके प्रमुख कवियोंमें सरहपा और कण्हपा आदि वज्र यानी सिद्ध तथा देवसेन (सावयधम्म दोहा), जोइन्दु (परमातम प्रकाश––योगसार), रामसिंह (पाहुड़ दोहा), अब्दुर्रहमान (सन्देशरासक), सोमप्रभ (कुमारपाल–प्रतिबोध, प्रबन्ध-चिन्तामणि), हेमचन्द्र (प्राकृत-व्याकरण) हैं। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय है :––

जो सिउ-संकरु विण्हु सो, सो रुद्द वि सो बुद्धु।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु।।

––परमातमप्रकाश योगसार

[शिव, शंकर, विष्णु, रुद्र, बुद्ध, जिन, ईश्वर, ब्रह्म, अनन्त और सिद्ध सब एक ही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं।]

बहुयइँ पठियइँ मूढ़पर, तालू सुक्कइ जेण।
एक्कुजि अक्खरु तं पढ़हु, सिवपुरि गम्मइ जेण।। —पाहुड़ दोहा

[अरे मूर्ख! तूने वही सब बहुत पढ़ा है जिसके पढ़नेमें तालू सूखता है। एक ही अक्षर (ॐ) क्यों नहीं पढ़ लेता जिससे मोक्ष प्राप्त हो जाय।]

जसु पवसंत ण पवसिया, मुइअ विओइ ण जासु।
लज्जिज्जउ संदेसडउ, दिंतो पहिय पियासु।। —सनेह रासअ

[हे पथिक! जिस प्रियके विदेश जाते समय मैं न तो साथ गई, न उनके वियोगमें मर सकी, उस प्रियको सन्देश भेजते मैं लज्जासे गड़ी जा रही हूँ।]

माणि पणट्ठइ जइ न तणु, तो देसडा चइज्ज।
मा दुज्जन-कर-पल्लवेंहि, दंसिज्जन्तु भमिज्ज।।
मइँ जाणिउँ पिय विरहियह, कवि धर होइ वियालि।
णवरु मयंकु वि तिह तवइ, जिह दिणयरु खयकालि।।
भरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय पह देह।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह।।
चूडउ चुन्नी होइसइ, मुद्धि कवोलि निहत्तु।
सासानलिण झलक्कियउ, वाह-सलित-संसत्तु।।
अम्हे थोवा रिउ बहुअ, कायरु एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहालहि गयणयलु, कइ जण जोण्ह करन्ति।।

—कुमारपाल प्रतिबोध

[यदि मान नष्ट होनेपर प्राण न छोड़ा जा सके तो देश छोड़ देना चाहिए, किन्तु दुर्जनोंकी उँगलियोंका लक्ष्य बनकर घूमना ठीक नहीं।

हे प्यारे! मैंने तो समझा था कि विरहिणियोंको संध्या या रात्रिको कुछ शान्ति प्राप्त होगी, किन्तु यहाँ तो चन्द्रमा ही प्रलयका सूर्य बनकर जलाए डाल रहा है।

नीलम रंगवाले (साँवले) प्रियकी छातीपर लेटी हुई वह चम्पेके वर्णवाली प्रिया ऐसी सुहावनी लग रही है जैसे कसौटीपर खिंची हुई सोनेकी रेखा हो।

अरी पगली! गालोंपर हाथ धरकर बैठेगी तो उष्ण श्वासोंकी गर्मीसे तपकर और आँसुओंसे भीगकर चूड़ियाँ चूर चूर हो जाएँगी।

हम थोड़े हैं और शत्रु बहुत हैं, यह बात तो कायर लोग ही सोचा करते हैं। अरी पगली! देख, आकाशमें कितने (ग्रह) हैं जो प्रकाश देते हैं (सूर्य और चन्द्रमा ही न!)]

जा मति पच्छह सम्पजइ, सा मति पहिली होइ।
मुंज भणइ मुणालवइ, बिघन न बेढइ कोइ।। —प्रबंध चिन्तामणि

[मुंज कहता है कि हे मृणालवती ! जो विवेक किसी घटनाके हो चुकनेके पश्चात् होता है वह यदि पहले हो जाय तो कोई बाधा नहीं पड़ सकती।]

ढोल्ला महँ तुहुँ वारियां, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी, दडवडु होइ विहाणु।।
अंगहिं अंग न मिलिउ हलि, अहरें अहरु न पत्तु।
पिउ जोअन्तिहे मुह-कमलु, एम्वइ सुरउ समत्तु।।
जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ, जज्जरियाउ नहेण।।
जो गुण गोवइ अप्पणा, पयडा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो, बलि किज्जउँ सुअणस्सु।।
भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जन्तु वयंसियहु, जइ भग्गा घर एंतु।।
वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्टि तडत्ति।।
हियडा फुट्टि तडन्ति करि, कालक्खेवें काइँ।
देक्खउँ हयविहि कहिं ठवइ, पइँ विणु दुक्ख सयाइँ।।
जइ ससणेही तो मुइअ, अह जीवइ निन्नेह।
बिहि वि पयारेंहिं गइअ धण, किं गज्जहि खल मेह।।
महु कंतहो बे दोसडा, हेल्लि म झंखहि आलु।
देन्तहो हउँ पर उव्वरिउ, जुज्झंतहो करवालु।।
जइ भग्गा पारक्कड़ा, तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहँ तणा तो तें मारिअडेण।।
पुत्ते जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहड़ी, चम्पिज्जइ अवरेण।।
जइ केवउँ पावीसु पिउ, अकियाकुड्डु करीसु।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ, सव्वंगे पइसीसु।।
पियसंगमि कउ निद्दड़ी, पिअहो परोक्खहो केम्व।
मइँ विन्निवि विन्नासिआ, निद्द न एम्व न तेम्व।।
गयउ सुकेसरि पिअहु जल, निच्चिन्तइँ हरिणाइँ।
जसु केरए हुंकारडए, मुहहुँ पडन्ति तृणाइँ।।
अज्ज वि नाहु महुज्जि घर, सिद्धत्था वन्देइ।
ताउँ जि विरहु गवक्खेंहिं, मक्कड-घुग्घिउ देइ।।
अम्मडि पच्छायावडा, पिउ कलहिअउ विआलि।

घइँ विवरीरी बुद्धडी, होइ बिनासहो कालि ॥
बाह बिछोडवि जाहि तुहुं, हउँ तेवइँ को बोसु ।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज सरोसु ॥ --प्राकृत व्याकरण

[हे प्रिय ! मैंने तुझे (कितनी बार) रोका है न, कि तुम बहुत देरतक न रूठे पड़े रहा करो। देखो, इस प्रकार सोओगे तो रात निकल जाएगी और सबेरा हो जाएगा।

प्रिय इतना सुन्दर था कि अंगसे अंग और अधरसे-अधर भी न मिल पाए। केवल उसका मुख-कमल एकटक निहारनेमें ही सुहागरात बीत गई।

प्रियने विदेश जाते समय जो लौटनेके दिन बताए थे उन्हें गिनते-गिनते उँगलियाँ नखसे जर्जर हो गई हैं।

जो व्यक्ति अपने गुण छिपाकर, दूसरेके गुण प्रकट करता है उस कलियुग-दुर्लभ सज्जनपर मैं बलिहारी जाता हूँ।

हे बहन ! अच्छा हुआ कि हमारा पति युद्धमें काम आया। यदि वह भागकर घर लौट आता तो सखियोंमें मेरी बड़ी हँसाई होती।

(प्रियके आगमनके शकुनके लिए वह) नायिका जब कौआ उड़ा रही थी कि सहसा प्रिय आते दिखाई दे गया, अतः आधी चूड़ियाँ तो (उड़ाते समय विरहकी दुर्बलताके कारण पतले हाथसे) निकलकर धरतीपर जा गिरीं, आधी (प्रियको सहसा देखकर मोटे होनेके कारण) तड़ककर टूट गईं।

अरे हृदय ! तू देर क्यों कर रहा है, झट तड़ककर फूट जा, फिर मैं देखती हूँ कि यह अभागा विधि, सारे दुःखोंको कहाँ समेटकर रखता है।

अरे दुष्ट मेघ ! तू क्या गरजे जा रहा है। यदि मेरी प्रिया मुझसे स्नेह करती होगी तो वह कबकी मर चुकी होगी और यदि अब भी जी रही है तो निश्चय है कि मुझसे स्नेह नहीं करती। मेरी प्रिया तो दोनों प्रकारसे हाथसे जाती रही।

अरी सखी तू क्या झूठ बकती है। मेरे प्रियमें तो दो ही दोष हैं। दान देते-देते तो मैं बची रह गई हूँ और युद्ध करते-करते करवाल।

अरी सखी ! यदि शत्रु भाग रहे हैं तो मेरे प्रिय द्वारा मारे जानेपर भाग रहे है और यदि हमारे पक्षके लोग भाग रहे हैं तो मेरे प्रियके मारे जानेपर भाग रहे होंगे।

उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ और मरनेसे क्या हानि है जिसके पिताकी भूमिपर दूसरे अधिकार कर लें।

यदि मैं किसी भी प्रकार अपने प्रियको पा लूं तो ऐसा अनोखा करतब कर दिखाऊँ कि जैसे मिट्टीके नये पात्रमें पानी समा जाता है वैसे ही मैं भी सब अंगों सहित उनमें समा जाऊँगी।

बताओ प्रियके 'संगम' में (साथ) कैसे नींद आ सकती है और प्रियके विरहमें भी कैसे आ सकती है। मैं तो दोनों ओरसे मारी गई, न ऐसे नींद आती है, न वैसे।

अरे हरिणो ! अब निश्चिन्त होकर जल पीओ क्योंकि वह सिंह चला गया जसकी हुंकार-मात्र सुनकर तुम्हारे मुँहसे घास गिर पड़ती थी।

अभी मेरे पति घरमें बैठे सिद्धार्थों (जैन तीर्थंकरों) की पूजा कर ही रहे है कि विरह अभीसे खिड़कीसे बन्दर-घुड़की देने लगा है ।

अरी अम्मा ! अपने प्रियसे सही साँझ झगड़ा कर लेनेपर बड़ा पछतावा हो रहा है। सचमुच विनाशके समय बुद्धि उलटी हो जाती है ! 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि :।'

तुम बाँह छोड़कर जाते हो तो जाओ, मैं तुम्हें क्या दोष दे सकती हूँ किन्तु हे मुंज ! तुम्हें रूठा हुआ तो तब समझूँ जब तुम हृदयसे बाहर हो सको।]

तइँ गडुआ गिरनार, काइँ मणि मत्सर धरेउ।
मारीतां खेंगार, इक्कउँ सिहरु न डारेउ।

[अरे विशाल गिरनार ! तूने यह कबका बैर निकाला कि खेंगार राजाके मारे जानेपर तू (शत्रुके सिरपर) अपना एक शिखर भी नहीं डाल सका (कि वह दबकर मर जाय)]।

राजस्थानी हिन्दीका साहित्य

राजस्थानी भाषा और साहित्यका सम्बन्ध सीधे अपभ्रंशसे है। उसका साहित्य समझनेके लिए यह जान लेना चाहिए कि राजस्थान वीरोंका देश रहा है। उसकी उदात्त परम्परामें पुरुषों और स्त्रियों दोनोंने समान रूपसे अद्‌भुत पराक्रम, तेज और आत्म-त्यागके अत्यन्त समुज्वल उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

जहाँ तक भाषाके विकासका प्रश्न है, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाएँ साथ-साथ चलती रहीं। विभिन्न प्रदेशोंमें वहाँ-वहाँकी भाषा-प्रकृतिके अनुसार उनकी प्राकृत और अपभ्रंश भाषा बनती रही। मरुभूमि अथवा जांगल प्रदेश अधिकांश वीर और व्यवसायी लोगोंका प्रदेश रहा है। इसलिए वहाँ पढ़ने-लिखनेकी पद्धतिका बहुत प्रचलन नहीं रहा। युद्ध-विद्या ही वहाँकी प्रधान विद्या थी, इसलिए उस प्रदेशमें अपभ्रंशका ही बोलबाला रहा—जैसा कि राजेश्वरने अपनी काव्य मीमांसामें कहा है :—

सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च ।

'राजस्थान' नामसे जो भूभाग यमुनाके पश्चिमसे समुद्र तक चला गया है उस क्षेत्रमें संस्कृत या प्राकृतकी अपेक्षा अपभ्रंशका ही व्यापक रूपसे प्रयोग होता रहा। यही कारण है कि राजस्थानी बोलियाँ और गुजराती भाषामें बहुत कुछ साम्य है, किन्तु राजस्थानीका क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण है। उसके अन्तर्गत जो अनेक बोलियाँ आती हैं उनमें चार मुख्य मानी जाती हैं—उत्तरमें मेवाती, दक्षिण-पूर्वमें मालवी, पश्चिममें मारवाड़ी और मध्यवर्ती क्षेत्रमें जयपुरी। इनमें भी जयपुरी और मारवाड़ीमें साहित्यिक रचना बहुत हुई है क्योंकि उन प्रदेशोंके राजाओंने सुकवियोंको बहुत आश्रय दिया था। जयपुरी-मिश्रित सधुक्कड़ी भाषामें दादूदयाल और उनके शिष्योंने बहुत रचनाएँ कीं। मारवाड़ीमें चारणोंकी रचनाएँ प्रधान हैं जिनका साहित्य प्राचीन भी है और विस्तृत भी।

चारण काव्य

आज जब हम राजस्थानी भाषा और साहित्यका नाम लेते हैं तब हमारे सामने सहसा वहाँके राज-

भक्त चारणोंकी ओजस्विनी रचनाओंका ही रूप उठ खड़ा होता है। कुछ तो भाषा-ध्वनिके कारण और कुछ उसमें वर्णित विषयके कारण राजस्थानी साहित्य और वीर-रस पूर्ण काव्य एक प्रकारसे समानार्थी हो गए हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि राजस्थानी भाषामें अन्य रसोंमें रचनाएँ हुई ही नहीं या राजस्थानी भाषाके कवियोने जो कुछ लिखा वह वीर रसमें ही। अपने आश्रयदाता राजाओंकी प्रशस्तिमें ही अधिक रचनाएँ करनेके कारण चारणोंने स्वभावतः अपने आश्रयदाता राजाओंके थोड़े गुणोंका भी अत्यन्त विस्तारके साथ बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। इस प्रशस्ति-गानमें उनके शौर्य और पराक्रमका वर्णन--चाहे वह अतिरञ्जित ही क्यों न हो--अनिवार्य था। यही कारण है कि राजस्थानी भाषाका साहित्य राजाओंके शौर्य और पराक्रमके वर्णनसे भरा पड़ा है। उसमें 'डींग' अर्थात् अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनकी प्रचुरता होनेसे ही लोगोंने इस प्रकारके काव्यको 'डींगल' कहना प्रारम्भ किया, जो आगे चलकर राजस्थानी भाषाके उस सम्पूर्ण साहित्यके लिये रूढ़ हो गया जिसमें युद्धोंका वर्णन किया गया हो।

डिंगल शब्द

१--डॉक्टर टैसीटरीका मत है कि डिंगल शब्दका अर्थ गँवारू है। ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा थी जिसमें सब प्रकारके नियमोंका पालन होता था, किन्तु डिंगलमें सब प्रकारकी छूट थी। २--डॉक्टर हरप्रसाद शास्त्रीका विचार है कि प्रारम्भमें इस भाषाका नाम डगल (जांगल देश अथवा मरुदेशकी भाषा) था परन्तु आगे चलकर पिंगलके तुकपर उसका नाम डिंगल कर दिया गया। ३--श्री गजराज ओझाके मतसे इस भाषाकी रचनाओंमें 'ड' वर्णकी प्रचुरतासे इसका नाम डिंगल पड़ा। ४--बाबू श्यामसुन्दरदासका मत है कि जो लोग ब्रजभाषामें कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी। उसीसे भेद करनेके लिए मारवाड़ी भाषाका नाम डिंगल पड़ा। ५--श्री किशोर सिंह बारहठ मानते हैं कि डिंगल शब्दकी उत्पत्ति संस्कृतके डीङ धातुसे हुई है। इसी प्रकारके कुछ और भी अनेक मत हैं किन्तु अधिकांश लोग यही मानते हैं कि यह नाम पिंगलके तुकपर रखा गया है। परन्तु ये सभी मत भ्रमपूर्ण हैं। 'डिंगल' शब्द डींगल (गप्प) से बना है। डिंगलका साहित्य विस्तृत और प्राचीन है। चारणोंने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ इसीमें प्रस्तुत की हैं और उन्होंने बड़ी सावधानीसे व्याकरण एवं छन्द शास्त्रके नियमोंपर बराबर ध्यान रखा है।

राजस्थानी-काव्य

वीररसका वर्णन करनेमें टवर्ग एवं द्वित्ववर्ण-युक्त पदावलीका प्रचुर प्रयोग आवश्यक माना गया है। अवधी और ब्रज-जैसी मधुर भाषाओंमें भी युद्धादिके वर्णनोंमें कवियोंने इसी प्रकारकी पदावलीका सहारा लिया है। फिर राजस्थानीकी पदावली तो यों ही ओजपूर्ण है। इसलिए उसमें वीर रसकी रचनाएँ अधिक ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली हो पाई हैं।

राजस्थानीके अन्तर्गत जयपुरीमें प्रायः नीति और शृंगार की रचनाएँ हुई हैं और मारवाड़ीमें वीर रसकी। नीति और शृंगार आदिकी रचनाएँ अधिकतर दोहोंमें और वीर रसके पद छप्पयमें रचे गए हैं। वीर रसमें रचना करनेवाले ब्रजभाषाके कवियोंने भी अधिकतर छप्पय और कविताका ही प्रयोग किया है।

चारण और भाट

राजस्थानमें वीर रसकी रचनाएँ करनेवाले चारण और भाट कलमके ही नहीं, तलवारके भी धनी रहे हैं। उच्च कोटिकी कवित्व-शक्तिसे युक्त होनेके साथ ही वे अत्यन्त पराक्रमी और वीर भी होते थे और अपने आश्रयदाताओंके पक्षमें युद्धोंमें भाग भी लेते थे। यही कारण है कि उनके युद्ध-वर्णन अत्यन्त सजीव हो सके हैं। चारणोंमेंसे कुछने तो अपने आश्रयदाताओंको तुष्ट करके स्वार्थ-साधनकी ही चेष्टा की परन्तु कुछ उनके सब समयके साथी, अन्तरग मित्र और प्रिय बने रहे। चन्द भी पृथ्वीराजके ऐसे ही साथी थे। इन चारणोंकी प्रतिष्ठा भी थी। कुछ चारणोंने तो राजाओंकी चाटुकारी-प्रियताका लाभ उठाया और कुछ ने वस्तुतः उनके संगी बनकर। इन्हें आश्रयदाता राजाओंने प्रसन्न होकर लाख पसाव, करोड़ पसाव और अरब पसाव बराबर दिए हैं। इसका अर्थ यह है कि उन्हें रुपये, हाथी, घोड़ा, सिरोपाव (मानवस्त्र) आदि देकर सम्मानित किया जाता था। कुछ कवियोंको गाँव भी दिए जाते थे। लाख पसाव प्रायः बड़े पुरस्कार (एक लाख रुपयेके पुरस्कार) को कहते थे। करोड़ पसाव और अरब पसाव उससे क्रमशः बढ़कर होते थे। बच्छराज (वत्सराज) की प्रशंसामें कहा गया यह दोहा कलतक राजाओं-को आवश्यक परिवर्तनके साथ सुनाकर उनसे धन-लाभ करता रहा है :—

देता अड़ब पसाव नित, धिनो गोड़ बछराज।
गढ़ अजमेर सुमेरसूं, ऊंचों दीसै आज॥

इन चारणोंने राजाओंके शौर्योका व्यक्तिगत गान ही गाया, कभी अखण्ड भारतकी दृष्टिसे राष्ट्रीय भावनाको उत्तेजित नहीं किया। यहाँ तक कि अँग्रेजी शासन काल तक भी जब कि राजाओंके पारस्परिक विग्रह और युद्ध समाप्त हो गए, चारण लोग उनके पराक्रमका ही वर्णन करते रहे। युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर चारों रूपोंमें ये वर्णन राजाओंको आलम्बन बनाकर हुए है और आज भी नेताओंके लिए हो रहे हैं। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि हिन्दी साहित्यमें वीरगाथा किसी एक विशेष-युगकी प्रवृत्ति रही है तथा डिंगलकी रचनाओंका युग समाप्त हो गया।

वयण-सगाई

राजस्थानके कवि अलंकार-प्रदर्शनके फेरमें तो बहुत नहीं पड़े किंतु 'वयण सगाई' या 'बैण सगाई' पर उन्होंने अधिक ध्यान दिया। 'वयण सगाई' एक प्रकारका अनुप्रास है जिसके कई भेद हैं। इसका साधारण नियम यह है कि किसी छन्दके एक चरणका प्रथम शब्द जिस अक्षरसे आरम्भ हो, उसी चरणका अन्तिम शब्द भी उसी अक्षरसे आरम्भ हो, जैसे निम्नांकित सोरठेमें :—

पटकूं मूंछा पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली वात इक॥

यद्यपि 'वयण सगाई' का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना जाता, किन्तु पहलेके कवियोंने इसका पालन इस दृढ़ताके साथ किया कि आगेके कवियोंके लिए यह ऐसा काव्य-नियम सा बन गया कि जिसकी उपेक्षा करना कवित्व-शक्तिका अभाव समझा जाता था।

राजस्थानी रचनाओंका समय

राजस्थानीमें जो रचनाएँ आज उपलब्ध हैं उनके दो रूप हमारे सामने हैं—प्रबन्ध काव्यका काव्यात्मक रूप और मुक्तक काव्यका गीत या दोहा रूप। रासो या रासक ग्रन्थ प्रबन्ध-काव्यके रूप हैं। अपभ्रंशके क्षेत्र (राजस्थान और गुजरात) में ही रासक ग्रन्थोंकी परम्पराका विकास हुआ और अपभ्रंश, गुजराती तथा राजस्थानी साहित्यके प्रारम्भिक कई सौ वर्षों तक प्रबन्ध काव्यके रूपमें कितने ही रासक (रासो) ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ। उस समय ग्रन्थोंका हस्तलिखित रूप होनेके करण उनका प्रचार अधिक नहीं हो पाता था और इसलिए उनमें प्रक्षेप और हेर-फेर की बहुत अधिक सम्भावना रहती थी। इसीसे इन रासकोंकी भाषा, कथावस्तु और घटना-क्रममें ऐसी असंगतियाँ आ गई हैं कि यही ज्ञात नहीं होता कि कौन रचना किस समय की है। बहुतसे कवियोंने तो किसी प्राचीन राजाका वृतान्त लेकर उसका वर्णन वर्तमान कालमें इस प्रकार किया है कि उससे यह भ्रम हो जाता है कि कविने अपने समयकी घटनाका वर्णन किया है, परन्तु चारण कवियोंकी यह एक अपनी वर्णन-शैली है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण केसरी सिंह वारहठका 'प्रतापचरित्र' है जिसकी रचना संवत् १९९२ में हुई थी। अतः न तो यही कहा जा सकता है कि राजस्थानीके अनेक रासक-ग्रन्थोंकी रचनाका ठीक समय क्या है न चरित नायकके आधारपर ही रचनाओंका समय निर्धारित किया जा सकता है। फिर अनेक कवियोंका भी कोई प्रारम्भिक इतिवृत्त नहीं मिलता। भाषामें भी इतनी अधिक मिलावट है कि उसका आधार लेना भी उचित नहीं है। अतः, परम्परासे ग्रन्थकारका जो समय निर्धारित है उसे ही आधार मानकर, उनकी रचनाओंका समीक्षण किया जा रहा है।

डिंगल, पिंगल और हिन्दी

हिन्दीकी व्यापक परिभाषाके अन्तर्गत राजस्थानसे लेकर बिहार तक और गढ़वाल कुमाऊँसे लेकर विन्ध्य मेखला तकके प्रदेशोंकी सब बोलियाँ हिन्दीके अन्तर्गत मान ली गई हैं, और राष्ट्रीय अखण्डताकी तथा भावात्मक एकताकी दृष्टिसे उचित भी है, किन्तु भाषाकी प्रकृतिकी दृष्टिसे डिंगल या राजस्थानी भाषा हिन्दीके अन्तर्गत आनेवाली अन्य सब भाषाओंसे कुछ भिन्न है। इस राजस्थानी भाषाका एक रूप 'पिंगल' भी है जो राजस्थानी भाषासे प्रभावित ब्रजभाषाका एक रूप है। इसमें मुख्य पाँच बोलियाँ आती हैं—मारवाड़ी, ढूंढ़ाड़ी, मालवी, मेवाती और वागड़ी।

रासक या रासो

राजस्थानी साहित्यमें रासक या रासो नामसे अनेक प्रबन्ध-काव्योंकी रचना की गई है। पहले यह व्यापक भ्रम था कि इस 'रासो' शब्दकी उत्पत्ति 'रहस्य' या 'रसायण' से हुई है, किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि गुजरात और राजस्थानमें छठी-सातवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दी तक बराबर रासक ग्रन्थोंकी रचना होती रही है। अपभ्रंशके लक्षण-ग्रन्थोंमें रासक-काव्यका सर्व प्रथम उल्लेख विरहांक कृत वृत्तजाति-समुच्चयमें मिलता है जिसका समय आचार्योंने ९ वीं शताब्दीके पूर्व ही माना है। वृत्तजाति-समुच्चयमें रासक काव्यको एक परिभाषा यह बतलाई गई है कि विस्तारिक या द्विपदी छन्दमें उसकी रचना हो और अन्तमें बिहारी छन्द आवे। दूसरी परिभाषा इस प्रकार बताई गई है :—

अडिलाहि दुवहएहिं व मत्ता रड्डहिं तह अ ढोसाहिं ।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम ॥

[जिसकी रचना अधिकांशतः अडिला (अड़िल्ल), दुवहअ (द्विपथक या दोहा), मात्रा, रड्डा और ढोसा छन्दोंमें की जाती है उसे रासक कहते हैं।]

स्वयम्भूकृत स्वयम्भूच्छंदसमें रासकके सम्बन्धमें लिखा है :—

धत्ता घड्डणिआहि पद्धडिआ (हिं) सु-अण्णरूएहिं ।
रासाबंधो कव्वे जण-मग अहिरामो (याओ ?) होइ ॥

[धत्ता, छड्डणिया, पद्धडिया और अन्य छन्दोंसे युक्त रासाबन्ध काव्य लोगोंको अच्छे लगते हैं।]

इसके पश्चात् एक पद्यमें रासा नामक एक २१ (१४+७) मात्राओंके छन्दकी परिभाषा दी गई है जिससे प्रकट होता है कि रासा छन्दका रासकबन्धमें विशेष प्रयोग होता था।

इन बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि रासक या रासामें रासा छन्दकी ही मुख्य रूपसे योजना की जाती थी और बीच-बीचमे अपभ्रंशके अन्य छन्द भी रख दिए जाते थे। अब्दुर्रहमानके 'सन्देश रासक' में भी यही प्रणाली अपनाई गई है। उसमें व्यवहृत रासक छन्द (१२+९) मात्राओंका है। श्रीधरकृत रणमल्ल छन्दमें भी यही परम्परा अपनाई गई है। (अपभ्रंशकी इस प्रणालीसे भिन्न रासकका एक और प्रकार भी मिलता है जिसमें मात्राबन्धके साथ गेयबन्धका भी प्रयोग किया गया है। 'भरतेश्वर वाहुबली रास' इसी ढंगका रासक है।

रासकोंमें किसी प्रवासी तथा उसकी पत्नीके संयोग-वियोगका वर्णन होता था, अपभ्रंश तथा मात्रा-बन्धके साथ गेयबन्धवाली परम्परामें राजस्थानी भाषामें भी अनेक प्रकारके साहसपूर्ण कृत्यों तथा संयोग-वियोगकी कथाओंसे भरे हुए अनेक काव्य लिखे गए, जिनका नाम रासकसे बिगड़कर 'रासअ' या 'रासो' हो गया और जिनमें खुमाण-रासो, बीसलदेव-रासो और पृथ्वीराज-रासो अधिक प्रसिद्ध हुए।

दलपतविजयके नामसे प्राप्त 'खुमाणरासो' की रचना १० वीं शताब्दीकी बताई जाती थी किन्तु अब लोगोंका मत है कि इसकी रचना १८ वीं शताब्दीके पूर्वकी नहीं हो सकती। इसमें यद्यपि बापा रावलसे लेकर महाराणा राजसिंह तकका वर्णन है किन्तु खुमाणका वृत्तान्त अधिक विस्तारसे है। इसीसे जान पड़ता है इसका नाम 'खुमाण रासो' रखा गया।

राजस्थानी साहित्य

जिस भाषामें प्रारम्भिक राजस्थानी साहित्य लिखा गया है उसे योरोपीय भाषा-शास्त्रियोंने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी कहा है और गुजराती साहित्य समालोचकोंने जूनी गुजराती (पुरानी गुजराती) कहा है, क्योंकि उस भाषामें वर्तमान राजस्थानी और वर्तमान गुजराती दोनोंका प्रारम्भिक रूप सममिश्रित है। उसके साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंशकी जो विशेषताएँ प्राकृत व्याकरणके आचार्योंने निर्दिष्टकी हैं उनमेंसे अधिकांश इसमें मिलती हैं। इतना ही नहीं वरन् जिस प्रकार प्राकृत साहित्यके निर्माणका अधिक श्रेय जैन पण्डितोंको है उसी प्रकार राजस्थानी साहित्यके प्रारम्भिक काल (ग्यारहवीं विक्रम शताब्दीके मध्यसे लेकर पन्द्रहवी विक्रम शताब्दीके मध्य तक) की राजस्थानी रचनाओंका श्रेय जैन

साहित्यकारोंको ही है--जिसमें साहित्यिक सौन्दर्य तो कम है किन्तु भाषाके विकासकी दृष्टिसे जिसका महत्व निःसन्देह अपरिमेय है। इस कालकी रचनाओंके साथ एक यह भी दैव संयोग हुआ है कि जैन धर्मावलम्बियों द्वारा की हुई रचनाओंको तो जैन-धर्मावलम्बियोंने सुरक्षित कर रखा, किन्तु अन्य असंख्य साहित्यकारोंकी रचनाएँ निरक्षरता, अज्ञान, असावधानता, दीमक, पुस्तक-कीट, वर्षा तथा अन्य प्राकृतिक उत्पातोंसे समाप्त हो गईं और जो इधर-उधर कुछ लोगोंके पास पड़ी भी रह गईं उनका उद्धार नहीं हो पाया। ऐसी रचनाओंमें सारंगधर, (शार्ङ्गधर), असायित और श्रीधरकी प्राप्त रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

शार्ङ्गधर, असायित और श्रीधर

राघवके पौत्र और दामोदरके पुत्र शार्ङ्गधरने वैद्यक ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर संहिता' के अतिरिक्त 'सुभाषित ग्रन्थ' तथा शार्ङ्गधर-पद्धतिका भी संवत् १४२० में संग्रह किया जिसमें कुछ सूक्तियाँ अपनी और कुछ अन्य कवियोंकी संगृहीत हैं। प्रसिद्धि यह है कि इन्हीं 'शार्ङ्गधर' ने तत्कालीन जन-भाषामें 'हमीर रासो' और 'हमीरकाव्य' नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनके कुछ पद 'प्राकृत पैंगल' में और कुछ इधर-उधर ग्रन्थोंमें विकीर्ण मिलते हैं। राजस्थानी कवियोंके समान इनकी भाषामें ओज, प्रवाह, प्रेरणामय शब्दावली, उत्तेजनापूर्ण वर्णन और वीरोंको उकसानेवाली शक्ति विद्यमान है।

सिद्धपुरके औदीच्च ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न प्रसिद्ध कथाकार राजारामके पुत्र असयितने संवत् १४२७ में दोहे-चौपाईमें 'हंसावली' नामकी एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है जिसके अन्तर्गत तीन विरह-गीत भी हैं। यह रचना शृंगार रससे ओत-प्रोत अत्यन्त सरस, भावमयी और आकर्षक है।

ईडरके राजा रणमलके समकालीन कवि श्रीधरने संवत् १५१४ के लगभग 'रणमल-छन्द' नामका छोटा-सा खण्डकाव्य लिखा था जिसमें पाटणके सूबेदार ज़फरखाँ और रणमलके युद्ध (संवत् १४५४) का अत्यन्त भावपूर्ण, ओजपूर्ण तथा सूक्ष्म वर्णन है।

दलपत

जैन साधु शान्तिविजयके शिष्य दलपतने उनसे दीक्षा लेकर अपना नाम 'दौलतविजय' रख लिया था। इन्होंने संवत् १७३० से १७६० के बीच 'खुमाण रासो' नामक प्रबन्ध काव्य लिखा जिसमें बापा रावळ (संवत् ७९१) से लेकर महाराज राजसिंह (संवत् १७०९-३७) तकके मेवाड़के शासकोंका काव्यात्मक वर्णन होनेपर भी खुंमाणका अधिक विस्तृत विवरण होनेके कारण इसका नाम 'खुंमाण रासो' रख दिया। कुछ विद्वानोंने भ्रमसे इन्हें मेवाड़के रावळ द्वितीय खुंमाण (संवत् ८७०) का समकालीन मान लिया, क्योंकि इन्होंने काव्यमें वर्तमान कालकी क्रियाओंका प्रयोग किया है। वास्तवमें जिस प्रकार संवत १९९२ में बारहठ केशरी सिंहने 'प्रताप चरित्र' में वर्तमान कालमें ही वर्णन किया है उसी प्रकार दलपतने भी। यहाँ तक कि राजस्थानके सभी चारण-भाट आज भी प्राचीन कथाओंका वर्णन वर्त्तमान कालकी क्रियामें ही करते हैं।

'खुंमाण रासो' की रचना पिंगल (ब्रज) भाषासे मिश्रित और प्राकृत तथा अपभ्रंशके प्रभावसे छूटी हुई राजस्थानी भाषामें है। यह काव्य आठ खण्डोंमें विभाजित है जिसमें अत्यन्त सरल भाषामें

प्रभावशाली विस्तृत वर्णन किए गए हैं। सम्पूर्ण काव्य भरमें प्रसाद गुणकी ही प्रधानता है और अलंकारों का प्रयोग भी अत्यन्त स्वाभाविक प्रवाहमें किया गया है, बलपूर्वक नहीं।

नल्लसिंह

विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी राजा विजयपालके राजकवि भाट नल्लसिंहने महाराज विजयपालके दिग्विजय और पंगके युद्ध (संवत् १०९३) का वर्णन 'विजयपाल रासो' नामक खण्डकाव्य ४२ छन्दोंमें पिंगल भाषामें लिखा है। तत्कालीन राजाश्रित कवियोंकी परम्पराके अनुसार इन्होंने इस खण्ड काव्यमें बहुतसे इतिहास-विरुद्ध अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अत्युक्तिपूर्ण वर्णन दिए है। यद्यपि मिश्र बन्धुओंने इसका रचना-काल संवत् १३५५ माना है तथापि यह ग्रन्थ स्पष्टतः बहुत पीछेका रचा हुआ है। इसकी भाषापर १८ वीं शताब्दीके पृथ्वीराज रासो और संवत् १९९७ के वंश-भास्कर दोनोंका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसमें वीरताके वर्णन अत्यन्त सुन्दर, सरस और प्रभावपूर्ण हैं।

नरपति नाल्ह

अनावश्यक रूपसे प्रसिद्धि-प्राप्त ग्रन्थ बीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्हका कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। बीसलदेव रासोमें कहीं-कहीं कविने अपने लिए 'व्यास' शब्दका जो प्रयोग किया है उसके आधारपर यह अनुमान किया गया है कि ये 'सेवग' या 'भोजक' जातिके ब्राह्मण थे। कुछ विद्वानोंने इस ग्रन्थमें आए हुए 'बारह सै बहोतराहाँ' शब्दके आधारपर यह मान लिया है कि ये अजमेरके चौहान राजा बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के समकालीन थे, किन्तु इसमें इतिहास विरुद्ध इतनी अधिक घटनाएँ हैं कि न तो नरपतिको किसी भी प्रकार इतना प्राचीन माना जा सकता और न नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'बीसलदेव रासो' में दिया हुआ संवत् १२७२ भी स्वीकार्य हो सकता है। अब तक बीसलदेव रासोकी जो १५ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं जिनमें सबसे प्राचीन संवत् १६६९ की हैं। इन विभिन्न प्रतियोंमें रचनाकाल १०१३ से १३१३ तक दिए हुए हैं किन्तु भाषा और ऐतिहासिक तथ्योंकी दृष्टिसे यह १६ वीं शताब्दीसे पहलेका नहीं है। इसलिए यही अनुमान अधिक प्रामाणिक है कि 'नन्द-बत्तीसी' (सवत् १५४७), विक्रम पञ्च-दण्ड (संवत् १५६०), 'स्नेह-परिक्रम' और 'निःस्नेह-परिक्रम' नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता १६ वी शताब्दीके गुजराती कवि नरपतिने ही बीसलदेव रासोकी भी रचना की है, जिसके आधारपर बीसलदेव रासो नामक काव्य संवत् १५५०–६० के आस-पास रचा गया होगा। इस ग्रन्थमें चार खण्ड और दो सौ सोलह छन्द हैं। इसकी भाषा देखनेसे जान पड़ता है कि यह मूलतः गुजरातीमें रही होगी जो पीछे चलकर राजस्थानी चारणों, भाटों और लेखकोंके हाथमें पड़कर आधी गुजराती और आधी राजस्थानी बन गई। यह ग्रन्थ इतना अव्यवस्थित है कि न तो इसका एक भी छन्द नियमित है, न इसमें काव्यत्व ही है और न यह वीर रसका ही ग्रन्थ है। इसे व्यर्थ ही लोगोंने अनावश्यक महत्त्व देकर साहित्यकी कोटिमें ला रखा है।

नीचे नरपति नाल्हकी रचनासे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं—

प्रणमूं हणुमन्त अंजनी पूत। भूल्यो आखर आणज्यो सूत।
कर जोड़े नरपति कहइ। धार थी आवज्यो भोज नरेस ॥१॥

हुअउ पइसा रउ बीसलराव। आवी समय अतेवरी राव।
रूप अपूरब पेषियइ। इसी अस्त्री नहिं सयल संसार ॥२॥

यह बात जान लेनी चाहिए कि बीसलदेव रासो वीर रस प्रधान काव्य नहीं है। इसमें कविने संयोग-वियोगके ही गीत अधिकतर गाए हैं और सारा ग्रन्थ राजमतीके विरह-वर्णनसे भरा पड़ा है।

चन्द बरदाई

चन्द बरदाईको अमर बनानेवाला ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' हिन्दीकी उपभाषाओं या विभाषाओंका सर्वप्रथम महाकाव्य माना जाता है। किन्तु चन्द और रासो दोनोंके सम्बन्धमें पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणोंका इतना अभाव है कि इनके सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ भी कह सकना कठिन है। चन्दके सम्बन्धमें जो कुछ पृथ्वीराज रासोमें लिखा है उसे सन्दिग्ध कहा जाता है। चन्द और पृथ्वीराजका जन्म रासोके अनुसार एक ही दिन हुआ और दोनोंकी मृत्यु भी एक ही दिन हुई। पृथ्वीराजका समय संवत् १२२०–१२४९ माना जाता है। अतः, रासोके उल्लेखके अनुसार चन्दका भी यही समय होना चाहिए।

चन्दकी ख्याति अत्यधिक है और रासो उनकी ही रचना कही जाती है, किन्तु रासोमें वर्णित घटना-ओंके इतिहास-विरुद्ध होनेसे लोगोंने इसे जाली ग्रन्थ माना है और यह मत व्यक्त किया है कि भले ही चन्द नामक किसी कविने इसकी रचनाकी हो, किन्तु न तो वह पृथ्वीराजका समसामयिक था, न इतिहासका उसे ज्ञान था और न उसने यह पूरा ग्रन्थ लिखा है। रासोमें चंगेज और तैमूरका नाम आनेसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि यह ग्रन्थ अपने वर्त्तमान रूपमें बहुत पीछे पूर्ण हुआ, क्योंकि महाराणा राजसिंहके समय में 'राजप्रशस्ति' नामक एक संस्कृत महाकाव्यमें ही पृथ्वीराज रासोकी कोई चर्चा नहीं मिलती। राजप्रशस्तिका रचना-काल संवत् १७१८-३२ है। अतः, कुछ लोगोंका विचार है कि रासो भी इसके कुछ पूर्व रचा गया होगा। परन्तु इसका वास्तविक लेखक कौन है यह नहीं कहा जा सकता। अधिक सम्भव यह है कि चन्दने मूलतः रचना की हो और पीछे अनेक चारणोंने उसमें बहुत-कुछ जोड़ दिया हो।

पण्डित मोहनलालविष्णु पण्ड्याके अतिरिक्त रासोके प्रमाणिक होनेका समर्थक और कोई भी नहीं है। पण्ड्याजीने रासोके संवतोंको प्रमाणिक ठहरानेके लिए रासोका यह दोहा लिया —

एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपुजय पुरहरनको, भए पृथिराज नरिंद ॥

और कहा कि विक्रम संवत्मेंसे ९० वर्ष घटा दिए जाएँ तो रासोके सभी संवत् ठीक ठहरते हैं। पर ये ९० वर्ष घटाए क्यों जायँ। इसका उत्तर वे नहीं दे पाए। जब संवतोंके व्यतिक्रमका समाधान वे नहीं कर पाए तब इतिहास-विरुद्ध घटनाओंका वे क्या समाधान करते। पृथ्वीराजकी राजसभामें जयानक नामक कश्मीरी कवि भी था जिसने पृथ्वीराज विजय नामक एक संस्कृत काव्य लिखा है। उसमें उसने चन्द नामके किसी कविकी कहीं चर्चा तक नहीं की है। उसने पृथ्वीराजके मुख्य भाटका नाम पृथ्वीभट्ट लिखा है। आश्चर्य है कि जो चन्द कवि पृथ्वीराजका मित्र, स्नेही और सखा कहा जाता है और जिसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वह और पृथ्वीराज दोनों एक प्राण दो शरीर थे, उसकी पृथ्वीराज-विजयमें कहीं चर्चा न हो।

आचार्य शुक्लजीका मत है कि 'पृथ्वीराजके वंशजोंके यहाँ सम्भवतः चन्द नामका कोई भाट रहा होगा जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराजकी प्रशस्तिमें कुछ छन्द रचे हों। बादमें बहुत-सा कल्पित भट्ट-भणन्त इसमें जुड़ता गया और उसीपर रासोकी यह बड़ी इमारत खड़ी कर दी गई।'

रासोके 'षट्-भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया' से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थमें कई भाषाओं और बोलियोंका मेल है परन्तु अन्य छन्दोंकी भाषा पूर्णतः बेठिकाने है। इसमें कहीं तो प्राकृत और अपभ्रंशके प्रयोग मिलते हैं और कहीं आधुनिक साँचेमें ढली भाषा मिलती है। इसलिए यह निर्णय करना सम्भव नहीं कि कितना अंश सच्चा और कितना जाली है। पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, कविराज मुरारीदान और श्यामलदान तो इस सम्पूर्ण ग्रन्थको ही जाली मानते हैं। किन्तु हालमें ही मुनि जिनविजयजीको जो चार छप्पय मिले हैं वे भाषाकी कसौटीपर खरे उतरते हैं और उनके आधारपर यह माना जा सकता है कि चन्द कवि पृथ्वीराजके समयमें अवश्य था।

इन सब इतिहास-सम्बन्धी पचड़ोंको छोड़कर शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे परखा जाय तो पृथ्वीराज-रासो वस्तुतः महाकाव्य है। इसमें ६९ समय या अध्याय हैं। इसकी भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रजभाषा है जिसमें प्राकृत, अपभ्रंश अरबी, फारसी और तुर्की शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है। इसमें साटक, दोहा, पद्धरि, गाहा, तोमर, भुजंगी और कवित्त (छप्पय) छन्दोंका प्रयोग हुआ है, किन्तु छप्पय छन्दकी संख्या सबसे अधिक है। गाहा (गाथा) छन्दका प्रयोग रासोके पश्चात् अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता। वैदिक कालसे प्रयुक्त यह छन्द रासो तक आकर रुक गया है। रासोकी कविता बहुत ही ओजस्विनी और सबल है। इस ग्रन्थमें वीर रसका प्राधान्य है। साहित्य-शास्त्रके अनुसार महाकाव्यमें जिन-जिन बातोंका वर्णन आवश्यक बताया गया है उन सबका समावेश इसमें किया गया है। रासोके वर्णन इतने सजीव हैं कि पढ़ते ही वे नेत्रोंके सम्मुख मूर्त्तिमान् होकर घूमने लगते हैं। कथाका प्रबन्ध-निर्वाह करनेमें, वर्ण्य विषयोंको साकार रूप देनेमें, पात्रोंका चरित्र-चित्रण करनेमें रासोकारको अद्भुत सफलता मिली है। रासोकी कथामें बड़ी गति, बड़ा प्रवाह, बड़ा वेग है। इसके सभी पात्र सजीव और क्रियाशील हैं।

रासोके कुछ पद्य यहाँ परिचयार्थ दिए जाते हैं:—

त्रिण्हि लक्ष तुषार सवल पाषरिअंइ जसु हय।
चऊवसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय॥
बीस लक्ष पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कु जाणय तांह१र॥
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहिविनिडिओ हो किम भयउ।
जइ चन्दन जाणउ जल्हूकइ गयउ कि मुउ कि धरि गयउ॥१॥
प्रिय प्रिथिराज नरेस जोग लिपि कग्गर दिन्नौ।
लगन वरग रचि सरब दिन्न द्वादस ससि लिन्नौ॥
सौ ग्यारह अरु तीस साष संवत परमानह।
जो नित्री-कुल सुद्धवरन, वरि रक्खहु प्रानह॥

विक्खंत विट्ठि उच्चरि वर इक पलंक्क विलंब न करिय।
अलगार रयनि दिन पंचमहि ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय ॥२॥
वचि कागज चहुआंन नें, फिरन चंद सह थान।
मनोवीर तनु अंकुरे, मुगति भोग बनि प्रान ॥
मची कूह वल हिन्दु के कसे सनाह-सनाह।
वर चिराक वस सहस भइ बजि निसान अरिदाह ॥३॥

रासोके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि निम्नलिखित दोहेके पश्चात्का अंश चन्दके चतुर्थ पुत्र जल्हणका रचा हुआ है——

आदि अन्तलगि वृत्तिमन वृन्नि गनी गजराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गजन नृपकाज ॥

इस दोहेसे स्पष्ट हो जाता है कि जल्हण भी उच्च कोटिके कवि रहे होंगे।

इतिहासकारोंने सभी प्रकारके इतिहासोंका काल विभाजन आदि, मध्य और वर्त्तमानके आधारपर किया है। देशोके इतिहास, साहित्योके इतिहास सबमें इस परम्पराका पालन दिखाई पड़ता है। राजस्थानी भाषाका आदिकाल विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्य तक माना जाता है। तबसे लेकर १८ वीं शताब्दीके अन्त तकका काल मध्यकालके नामसे सम्बोधित होता है और उसके पश्चात्का समय आधुनिक-काल कहा जाता है। आदिकालके कुछ ही कवियोंकी रचनाएँ आज उपलब्ध हैं। रासो कहलानेवाले ग्रन्थ-लेखनकी परम्परा आदिकालसे लेकर १८ वीं शताब्दी तक हुई। मध्यकालमें प्रबन्धके रूपमें चारणोंने अपने आश्रयदाताओंका प्रशस्ति—गान ही किया। इसमें सन्देह नहीं कि चारणोंकी रचनाएँ अधिकतर राजाओके यशःगानसे युक्त होती रहीं तथापि ये लोग फुटकर गीत आदि ही लिखनेमें व्यस्त रहे। ये मुक्तक बहुत ही ओजस्वी और प्राणवान् हैं तथा इनमें वेग और गतिके साथ कला और काव्य भी है। इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ़ है। वास्तवमें यह राजस्थानी साहित्यका अत्यन्त समृद्धिका युग रहा है। इसी युगमें केवल राजस्थानीमें ही नहीं वरन् संसारकी सभी प्रचलित भाषाओंमें उच्च कोटिके कवि हुए और सभी देशोंमें श्रृंगारका वर्णन सर्वाधिक रुचिके साथ हुआ। देशमें शान्ति और सुव्यवस्थाके समय श्रृंगारका किसी-न-किसी रूपमें वर्णन स्वाभाविक ही था।

राजस्थानीमें इस कालमें श्रृंगार रसके दो अपूर्व ग्रन्थ रचे गए——'ढोला मारूरा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमिणीरी।' राजस्थानी भाषामें भाव और भाषा दोनों दृष्टियोंसे इनकी जोड़के ग्रन्थ दूसरे नहीं है।

गागनोरगढ़के अधिपति अचलदास खीचीके आश्रित कवि शिवदासने संवत् १९९० के लगभग 'वचनिका अचलदास खींचीरी' की रचना की जिसकी भाषा प्रौढ़ और कविता रस-भावपूर्ण है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं।

कल्लोल

कल्लोल कविके जन्म, निवास आदिके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनकी कृति 'ढोला मारूरा दूहा' बेजोड़ है जिसका अन्तिम दोहा इस प्रकार है :—

पनरह से तीसं बरस, कथा कहीं गुण जांण ।
वद्वि बैसाखें बार गुरु, तीज जाण सुभ वांण ।।

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थकी रचना संवत् १५३० में पूर्ण हुई।

यह प्रेम-गाथात्मक काव्य है। राजस्थान भरमें इस कहानीका प्रचार है। जैसे पंजाबके घर-घरमें हीर-राँझाकी कहानी प्रसिद्ध है और आज भी लोग उसे सुनकर नहीं अघाते उसी प्रकार राजस्थानके लोग 'ढोला' और 'मारू' का प्रेम वृत्तान्त सुनते नहीं अघाते। राजस्थानीका यह अमर प्रेम काव्य पूर्ण रूपसे राजस्थानकी भावनाको अभिव्यक्त करता है। इसमें उक्तियाँ, कविकी मौलिक सूझ और भावोंकी रमणीयता अद्भुत है। इन दोहोंकी प्राचीनताका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कबीरकी साखियोंमें 'ढोला-मारू' के दोहे ज्यों-के-त्यों पाए जाते हैं। लिखित रूप न रहनेके कारण इसके कुछ दोहे लुप्त हो गए थे जिससे कथाकी कड़ी बीच-बीचमें टूट गई थी। जैन कवि कुशल लाभने चौपाइयाँ जोड़कर कथाका क्रम पूरा कर दिया। इस ग्रन्थके कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं:—

राति सखी इण ताल मइं, काइज करली पंखि ।
उबं सरि हूं धर आपणो, बिहुं न मेलीं अंखि ।।१।।
अकथ कहाणी प्रेमकी, किण सूं कही न जाय ।
गूंगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताय ।।२।।
यहु तन जारी मसि करूँ, धूआँ जाहि सरग्गि ।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावे अग्गि ।।३।।

ईसरदास

ईसरदासका जन्म जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँवमें संवत् १५९५ मे हुआ था। इन्होंने १२ ग्रन्थोंकी रचना की जिनमें 'हरिरस' और 'हालां झांला रा कुण्डलियां' बहुत प्रसिद्ध हैं। शेष ग्रन्थ साधारण और छोटे हैं। ईसरदास सिद्ध और भक्त कवि थे। इनके काव्यमें इनकी तल्लीनता और दृढ़ भगवद्भक्ति प्रकट होती है। इनकी मृत्यु संवत् १६७५ में हुई।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश रायसिंहके छोटे भाई थे। इनका जन्म संवत् १६०६ में बीकानेरमें तथा मृत्यु ५१ वर्षकी अवस्थामें संवत् १६५७ में मथुरामें हुई। पृथ्वीराज देशभक्त, वीर और हिन्दुत्वाभिमानी व्यक्ति थे। अकबरके दरबारमें रहते हुए भी ये अत्यन्त निर्भीक और तेजस्वी थे। भाषा, साहित्य पिंगल, संगीत और ज्योतिषके अच्छे पण्डित और उच्च कोटिके भक्त भी थे। नाभादासजीने भक्तमालमें इनको भी स्थान दिया है। इनकी पत्नी चम्पादे भी काव्य-रचनामें अत्यन्त प्रवीण और सहृदय थीं।

पृथ्वीराजके रचे पाँच ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं १—'वेलि क्रिसन रुकमणी री', २—'दसम भागवत रा दूहा' ३—'गंगालहरी' ४—'वसदेवरावउत' और ५—'दसरथरावउत'। 'वेलि क्रिसम रुकमणी री' की रचना वेलयाँ गीत छन्दमें हुई है। यह ३०५ पद्योंका खण्डकाव्य है जिसमें कृष्ण-रुक्मिणीके परिणयकी कथा दी

हुई है। पृथ्वीराजकी रचनाओंमें यह सर्वोत्कृष्ट है। यह रचना अत्यन्त प्रौढ़ और मार्मिक है। इसका रचना-काल अब तक १६३७ माना जाता था परन्तु उदयपुरकी नई हस्तलिखित प्रतिके अनुसार इसकी रचना संवत् १६४४ में हुई। पृथ्वीराजके शेष चारों ग्रन्थ दोहोंमें हैं। 'दसम भागवतरा दूहा' में १८४ दोहे हैं जो कृष्ण-भक्तिपरक हैं, 'दसरथरावउत' में ५० दोहे राम-स्तुति सम्बन्धी हैं, 'वसदेवरावउत' में १६५ दोहे श्रीकृष्ण-सम्बन्धी है और 'गंगालहरी' में ८० दोहे गंगाजीकी महिमा-सम्बन्धी है। इनके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं जो वीर रसकी रचनाके उत्कृष्टतम उदाहरण है।

वेलिकी कथाका आधार भागवतका दशम स्कन्ध है परन्तु कविकी वर्णन-शैली अपनी है। भाषाकी विशुद्धता और शब्दोंके चयनका ऐसा ध्यान रक्खा गया है कि पढ़ते ही उनके ध्वनिमात्रसे भावनाका चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। कविकी अलंकार-योजना भी बहुत सटीक है। 'वयण सगाई' का ध्यान रखनेपर भी कहीं भाव दबने नही पाए है। उपमा और रूपकका पृथ्वीराजने प्रचुर प्रयोग किया है। इसमे कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों एक-से-एक बढ़कर हैं। बेलिमें पृथ्वीराजका प्रकृति वर्णन अत्यन्त उत्तम हुआ है। यह वर्णन षड्ऋतु वर्णनके रूपमे है किन्तु इसमे पिष्टपेषण नहीं है।

पृथ्वीराजकी कुछ कविताएँ नीचे दी जा रही हैं :—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै सांप ॥१॥
परपंच लाज दीठ नह व्यापण, खाटो लाभ अलाभ खरो।
रज वेचवा न आवै राणा, हाट मीर हमीर हरो ॥२॥
गत प्रभाथियौं ससि रयणि गलती, वर मन्दा सइ वदनवरि।
दीपन परजलतौ इन दीपै, नास फरिम सू रतनि नरि ॥३॥
काया लागौ काट सिकलौ गर छूटै नहीं।
निरमल हुवै निराट, मेद्यां सूंभागीरथी ॥४॥

दुरसाजी आढ़ा

यदि भाषाकी प्रौढ़ता और विशुद्धतामें पृथ्वीराजके समकक्ष कोई कवि खड़ा हो सकता है तो वे हैं आढ़-गोत्रीय चारण कवि दुरसाजी जो संवत् १५९२ में जोधपुरके भूदला गाँवमें उत्पन्न हुए थे और १२० वर्ष की लम्बी आयु भोगकर संवत् १७१२ में काल-कवलित हुए। ये छह वर्षकी अवस्था में अनाथ हो गए। इनका पालन-पोषण बगड़ीके ठाकुर प्रतापसिंहने किया। इनके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि अकबरके दरबारमें इनका अत्यधिक सम्मान था तथा उसमें इन्हें बहुत बहुत बार पुरस्कृत किया था, किन्तु यह बात संदिग्ध लगती है; क्योंकि इन्होंने अकबरको अधम, लालची आदि विशेषणोंसे तिरस्कृत किया है। ये कविके साथ-साथ योद्धा भी थे और अनेक युद्धोंमें लड़ चुके थे। इसीसे इनकी कविता वीरदर्पपूर्ण है। इनमें हिन्दुत्वका अभिमान कूट-कूटकर भरा था। हिन्दू जाति और धर्मकी महिमा इनकी कविताओंमें स्पष्ट लक्षित होती है। इनकी भाषा सरल और ओजपूर्ण है तथा राजस्थानमें बहुत प्रचलित है। इनका 'विरुद छिहत्तरी' उत्तम ग्रन्थ है। स्फुट छन्द भी इनके मिलते हैं। दो दोहे नीचे दिए जाते हैं :—

अकबर गरब न आण, हिन्दू उह चाकर हुआ।
दीठौ कोई दीवाण, कर तो लटका कटहेड़।
अकबर समंद अथाह, तिह डूबा हिन्दू-तरक।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥

बांकीदास

आशिया शाखाके चारण कविराजा बांकीदासका जन्म जोधपुर राज्यमें संवत् १८२८ में हुआ था। अनेक गुरुओंसे विद्या प्राप्त करके ये अच्छे विद्वान् और कवि निकले। संवत् १८६० में महाराज मानसिंहने इन्हें अपना राजकवि नियुक्त किया। बांकीदास कवि तो उच्च कोटिके थे ही इतिहासके भी प्रकाण्ड पण्डित थे। महाराज इन्हें बहुत मानते थे। १८९० में इनकी मृत्यु होनेपर महाराजको असीम दुःख हुआ था।

बांकीदासकी २७ पुस्तकें नागरी प्रचारिणी सभाने बांकीदास ग्रन्थावलीके नामसे तीन भागोंमें प्रकाशित की है। इनके अतिरिक्त इन्होंने बहुतसे फुटकर गीत और २८०० के लगभग छोटी-छोटी ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। बांकीदास राजस्थानीके प्रथम श्रेणीके कवि थे। इनकी भाषा प्रौढ़, प्रवाहपूर्ण और परिमार्जित है, वर्णन-शैलीमें स्वाभाविकता है, अलंकारोंका भी इन्होंने जो अधिक प्रयोग किया है वे सर्वत्र स्वाभाविक रूपसे आए हैं। यद्यपि नीति और उपदेशकी बातें इन्होंने अधिक कही है तथापि वीर रसकी इनकी उक्तियाँ भी कहीं-कहीं बड़ी अनूठी है। इनके दो पद्य नीचे दिए जाते हैं:—

केल रहै नित कांपती, कायर जणे कपूर।
सीहण रण साकै नहीं, सीह जणे रणे सूर॥१॥
दाता धन जे तो दियै, जस तेतौ घर पीठ।
जेतो गुळ लै थाळियां, तेतौ जीमण मीठ॥२॥

सूरजमल (सूर्यमल)

सूरजमलका कवियोंमें बड़ा सम्मान है। चारणोंका तो कहना है कि सूरजमल जैसा कवि न हुआ, न होगा। इसमें सन्देह नहीं कि अपने समयमे सूरजमलका इतना प्रभाव था कि इनके सामने राजस्थानीका कोई कवि टिक न सका। इनका जन्म संवत् १८७२ में बूंदीमें हुआ। ४८ वर्षकी आयु भोगकर संवत् १९२० में ये संसार छोड़कर चल बसे।

सूरजमल उच्च कोटिके जन्मजात कवि थे। वे अनेक शास्त्रों एवं अनेक भाषाओंके अद्भुत विद्वान् थे। इनके रचे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं–'वंशभास्कर','वीर सतसई', 'बलवन्त विलास' और 'छन्द मयूख'। इसके अतिरिक्त इनके स्फुट छन्द भी बहुत-से इधर-उधर मिलते हैं। 'वंश भास्कर' बूंदी राज्यका इतिहास है जिसमें युद्धादिका वर्णन अत्यन्त सजीव और काव्यमय है। वीर सतसईमें केवल ३०० ही दोहे है किन्तु उनको वीर रसका प्रतिभावान्, ओजस्वी और सर्वश्रेष्ठ कवि प्रमाणित करनेके लिए ३०० दोहे ही पर्याप्त हैं। इन दोहोंमें उनका हृदय बोलता है। इनकी भाव-गम्भीरता सराहनीय है। शेष दोनों ग्रन्थ साधारण हैं। इनकी कविताके दो उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

फहरक्कि दिसान बड़े, बहरक्कि निसान उड़ै बियरैं ।
रसना अहिनायककी निकसैं कि पराझल होरियकी प्रसरैं ।।
गजघंट ठनंकिय मेरि भनंकिय, रंग रनंकिय कोच करी ।
पखरान फनंकिय वान सनंकिय चाप तनंकिय ताप परी ।।१।।
सुतधारां रज-रज थियो बहू बलेबा जाय ।
लखिया डूगर लाजरा सासू उन न समाय ।।२।।

यद्यपि ब्रजभाषाके प्रचारके कारण अनेक राजस्थानी कवि भी ब्रजभाषामें रचना करने लगे किन्तु राजस्थानीमें भी रचनाएँ होती रहीं। कविराजा मुरारीदासने (दोनों-सूरजमलके दत्तक पुत्र बूँदीवाले तथा जसवन्त जसोभूषणके रचयिता जोधपुरवाले केसरी सिंह वारहठ आदिने अधिकतर रचनाएँ ब्रजभाषामें ही की हैं फिर भी राजस्थानीमें जो कुछ उन्होंने लिखा है वह कम महत्वका नहीं है ।

ब्रजभाषाके हटते-हटते जब नागरीका प्रचार हो गया तब राजस्थान में भी कवियोंकी रचनाका माध्यम नागरी ही हो गई। फिर भी आजकलके अनेक कवियोंने राजस्थानीमें बड़ी सजीव और ओजस्वी रचनाएँ की है जिनमें केसर सिंह वारहठ, मुकुल, पतराम गौड, आदि प्रमुख है। जबसे जयपुरमें रेडियो केन्द्र स्थापित हुआ है तबसे राजस्थानीके अनेक कवियोंकी अत्यन्त उत्कृष्ट और रसभावपूर्ण रचनाएँ प्रायः सुननेको मिला करती है। उनका कोई संग्रह न होनेसे उनकी समीक्षा कर सकना सम्भव नहीं है। इन कवियोंमें अनेक प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवि भी है जो राजस्थानी भाषामें अपनी उदात्त परम्परा भुलाकर इन निरर्थक, थोथे वादोंका पोषण कर रहे हैं।

राजस्थानीके संवाद ग्रन्थ

कम ही लोग जानते होंगे कि राजस्थानीमें संवाद काव्य-लिखनेकी भी एक विशिष्ट परम्परा थी। वाद-विवाद अथवा प्रश्नोत्तरकी शैलीमें प्रस्तुत उस साहित्यको ही संवाद साहित्य कहते हैं, जो बौद्ध और जैन साहित्यमें धर्मतत्त्वनिरूपणके लिये प्रयुक्त हुआ है। किन्तु मध्यकालके राजस्थानी कवियोंने विनोदके रूपमें कुछ अवस्थाओं और वस्तुओंको व्यक्ति मानकर भी उनसे संवाद कराए हैं।

वैसे संवादोंका प्रयोग नाटकों तथा काव्योंमें तो प्राचीन कालसे ही होता आया है परन्तु सम्पूर्णतः और स्वतन्त्र संवाद-काव्यका सर्वप्रथम उदाहरण हमें 'कृपण-नारि संवाद' (१४३७)के रूपमें मिलता है। इसके पश्चात् तो सोलहवीं शताब्दीसे बराबरही इस शैलीकी काव्य-रचनाके उदाहरण मिलते आते हैं। इन संवाद काव्योंमें दन्त-जिह्वा संवाद, सुखड़चम्पक-संवाद, रावण-मन्दोदरी संवाद, गोरी-साँवलीं-संवाद, मोती-कपामिया-संवाद, उद्यम-कर्म-संवाद, हरिणा व्याध संवाद १६ वीं और १७ वीं शताब्दीकी रचनाएँ है। १८ वीं १९ वी शताब्दीमें भी इस शैलीकी रचनाएँ प्रचुर परिमाणमें हुईं। अधिकांश ये रचनाएँ जैन पण्डितोंकी हैं। जैनेतर कवियोंकी भी कुछ रचनाएँ इस शैली की है, पर बहुत अल्प हैं। दाता और सूमका संवाद, मारवली-मालवणी संवाद, गुरू-चेला-संवाद, सोना-गुँजा संवाद, (गद्यमें) इसी ढंगकी रचनाएँ है। किन्तु यह परम्परा अब समाप्त हो गई है।

राजस्थानी साहित्यके उपर्यंकित प्रारम्भिक कालमें राजस्थानी और गुजराती भाषा दोनों हाथमें हाथ डाले हुए एक साथ चल रही थीं किन्तु धीरे-धीरे जब राजस्थानीकी विभिन्न बोलियोंमें साहित्यिक रचनाएँ अधिक प्रकाश पाने लगीं तब राजस्थानी और गुजराती दोनोंका स्वरूप स्पष्टतः अलग हो गया। राजस्थानकी जिन अनेक बोलियोंमें साहित्यिक रचनाएँ हुई उनमें सबसे अधिक प्रौढ़ता मारवाड़ी भाषामें विद्यमान थी जिसका साहित्य अब डिंगल या डींगल साहित्यके नामसे व्यक्त किया जाता है। इस मारवाड़ी बोलीका साहित्य इतना अधिक लोक-प्रिय हुआ कि यही भाषा धीरे-धीरे सम्पूर्ण राजस्थानकी साहित्यिक भाषा बन चली। उसका कारण भी यह था कि उत्तर भारतमें मुसलमानी शासन भली प्रकार जम चुका था, युद्ध बन्द हो चले थे, इसलिए स्वभावतः कुछ तो शृंगार परक रचनाएँ हुई, कुछ तत्कालीन भक्ति-आन्दोलनके फल-स्वरूप भक्ति-परक रचनाएँ हुई और आश्रयदाता राजाओंका गौरव-वर्णन तो मानों वहाँकी साहित्य-परम्परा ही थी। शृंगार परक रचनाओंमें 'ढोला मारूरा दूहा' और 'बेलि क्रिसन, रुकमणीरी' नामक शृंगारके अत्यन्त प्रौढ़ काव्योंकी रचना हुई। शृंगार-रसकी मधुरता और मादकतासे ओत-प्रोत ये दोनों काव्य डिंगल भाषाके सिरमौर हैं, जो वर्णन, भाषा शैली, उक्ति मोहकता आदि सब दृष्टियोंसे अनुपमेय हैं। भक्त कवियोंमें मीराबाई तो राजस्थानकी ही नही, गुजरात और समस्त उत्तर भारतकी या यों कहिए कि हिन्दी संसारकी प्रसिद्ध कवयित्री हैं जिन्होंने माधुर्य रसका अकेले हिन्दी साहित्यको अत्यन्त मनोहर सुधा-कलश प्रदान किया है। भक्त कवियोंकी कोटिमे 'ईसरदास' की रचनाओंका भी चारणोंमें बड़ा सम्मान है।

अपने आश्रय दाता राजाओंके यशः वर्णन करनेवाले चारण कवियोंकी रचनाओंमें राजभक्ति और शौर्य-वर्णनका ही वैशिष्ट्य रहा है जिनमें उन्होंने निःसंकोच होकर अपने आश्रय-दाता राजाओंका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। यद्यपि इस वर्गके कवियोंने कोई महाकाव्य तो नहीं लिखा तथापि इनके मुक्तक, गीत और दोहोंमें भी कहीं-कहीं ऐसी मार्मिक उक्तियाँ, प्रभावशील भाव और हृदयको सद्यः झकझोर कर उद्बुद्ध करनेकी तड़प विद्यमान है। इसी युगमें दादू पन्थके जन्मदाता दादूदयाल भी हुए जिनका वर्णन यथा-प्रसंग आगे किया जायगा।

शिवदास

आश्रय दाता राजाओंकी कीर्तिके वर्णकारोंमें चारण, शिवदास सामान्य ने डिंगल भाषामें गद्य-पद्य मिश्रित 'अचलदास खीचीरी वचनिका' नामक छोटा-सा खण्ड काव्य लिखा है जिसमें माण्डुके पातशाह और गागरीन गढ़के खीची राजा अचलदासके युद्ध (संवत् १४८५ का) वर्णन है। इसके गद्य-खण्डको कविने वात (वार्ता) के नामसे अभिहित किया है।

तत्ववेत्ता

सम्वत् १५५० के लगभग जोधपुर राज्यके जैतारण नगरवासी निम्बार्क सम्प्रदायके सन्त तत्वेवत्ताने कवित्त नामका पिंगल (राजस्थानीसे लदी हुई ब्रज) भाषामें ९८ छप्पयोंका संग्रह ग्रन्थ लिखा जिनमें जनक, नारद तथा रामकृष्ण आदि महापुरुषोंका महत्त्व बखाना गया है।

सूजाजी

सम्वत् १५९१ और ९८ के बीच चारण सूजाजीने कामरान और बीकानेरके राजा रायजैतसीके युद्धका वर्णन लिखा है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे अधिक महत्वपूर्ण है। राजस्थानीके वीर कवियोंकी परम्पराके अनुसार इनकी यह रचना अत्यन्त प्रवाहशील और ओजपूर्ण है।

मीराबाई

सुप्रसिद्ध भक्त कवयित्री मीराबाईकी रचनाएँ देश-व्यापी होनेके कारण और विभिन्न प्रदेश-वासियोंकी अपनी बोलियोंसे रंग जानेके कारण राजस्थानी, गुजराती, ब्रज और नागरीके मेलसे इतने विचित्र और विविध रूपोंमें प्राप्त है कि उसे शुद्ध राजस्थानीकी कोटिमें रखना सम्भव नहीं है, इसलिए उन्हें ब्रजभाषाके कवियोंमें स्थान दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी बहुत-सी रचनाएँ तो शुद्ध राजस्थानीमें ही है और वह राजस्थानी भी बोल-चालकी है, न तो चारणोंकी है न कवियोंकी। उनकी सम्पूर्ण वाणी हृदयसे निकली है क्योंकि उन्होंने जो रचना की थी वह अपने प्रियतम कृष्णके लिए की थी। यह संयोगकी बात है कि वह रचना साहित्यके लिए न की जानेपर भी साहित्यके सभी तत्वोंसे पूर्णतः ओतप्रोत है क्योंकि माधुर्य रसपूर्ण होनेके कारण शृंगार और भक्ति रसके समस्त अंग उसमें अनायास आ गए हैं। मीराबाईका जन्म सं. १५५५ के लगभग कुड़की गाँवमें मेड़तेके राठौर राज्य वंशके राव दूदाजीके चतुर्थ पुत्र रत्नसेनके यहाँ हुआ था। बचपनमें माताका देहान्त हो जानेके कारण दूदाजीने मेड़तेमें ही इनका लालन-पालन किया और १९ वर्षकी अवस्थामें मेवाड़के महाराणा संग्रामसिंह प्रथम (१५६५ से सं. १५८४) के कुँवर भोजराजके साथ विवाह कर दिया। विवाहके थोड़े ही दिनों पश्चात भोजराजका शरीर-पात हो गया और मीराके पिता रत्नसेन भी थोड़े दिन पीछे खानवाके युद्धमें काम आए। इस पारिवारिक विपत्तिके कारण विरक्त मीराने भजन-पूजन और साधु-संगमें जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। मीराकी यह प्रवृत्ति उनके देवर राणा विक्रमादित्य (१५८८–९३ संवत्)को अच्छी नहीं लगी। इसीलिए कहा जाता है कि उन्होंने मीराके प्राण लेनेकी अनेक असफल चेष्टाएँ की। संवत् १६०३ के आसपास द्वारकामें मीराबाई रणछोड़जीमें लीन हो गई। कहा जाता है कि उन्होंने अपने जीवनकी अन्तिम बेलामें निम्नांकित पद कहा था:—

साजन सुध ज्यूं जानै त्यूं लीजै हो।
तुम बिन मेरे और न कोई, कृपा रावरी कीजै हो।
दिवस न भूख, रैन नहिं निन्द्रा, यूं तन पल-पल छीजै हो।
मीरा कहँ प्रभु गिरिधर नागर मिलन-बिछुरन नहिं कीजै हो॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मीराकी रचनाओंमें जो भाव-तन्मयता विराजमान है वह दूसरे किसी कविमें नहीं प्राप्त होती। उनके रचे हुए पाँच ग्रन्थ कहे जाते हैं—'गीत गोविन्दकी टीका', 'नरसी-जीरो माहिरो', 'सत्यभामा जीनू रूषणु।' 'राग सोरठ और राग गोविन्द।' किन्तु इनमेसे एक भी रचना मीराकी प्रतीत नहीं होती और यों भी मीराकी प्रकृति ग्रन्थ लिखनेकी नहीं थी। उन्होंने तो अपने प्रिय कृष्णके भावोन्मादमें कुछ आतम-निवेदन, कुछ उपालम्भ, और कुछ अपने प्रिय कृष्णके संयोग-

वियोग गीत, झाँकियाँ तथा मनको प्रबोधनात्मक पद ही कहे है---जो सभी गेय मुक्तक हैं। उनकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। इसलिए उन्होंने अपने पारमार्थिक या अलौकिक श्रृंगारसे पूर्ण भक्तिमय और प्रेममय रचनाएँ की हैं।

राजस्थानके अन्य कवि

राजस्थानके अन्य कवियोंमें सं. १५७५ में 'पंच सहेली रा गुहा' के रचयिता छीहल और संवत् १५६३ के लगभग जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँववासी चारण आशानन्द भी अच्छे कवि हुए हैं। इन्हीके भतीजे प्रसिद्ध राजस्थानी कवि ईसरदास हुए।

ईसरदास

रोहड़िया शाखाके चारण ईसरदासका जन्म संवत् १५९५ में जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँवमें हुआ था। अपने गुरु पीताम्बर भट्टसे संस्कृत विद्या और पुराणका अध्ययन करके ये जामनगर जा पहुँचे जहाँ कि, रावळ जामने इन्हें अपना पोलपात (पुरस्कार-प्राप्त) सभासद बनाकर 'लाखपसावा' जागीर दे दी थी। चालीस वर्ष वहाँ रहकर ये पुनः भाद्रेस लौटकर लूणी नदीके तटपर एकान्तवास करने लगे। इन्होंने डिंगल भाषामें 'हरिरस', 'छोटा हरिरस', 'बाल-लीला', 'गुण भागवत हंस', 'गरुड़ पुराण', 'गुणआगम', 'निन्दास्तुति', 'देवयान', 'वैराट', 'रास-कैलास', 'सभापर्व', 'हाला झाँला रा कुण्डलिया' नामक १२ ग्रन्थ लिखे जिनमेसे 'हरिरस' और 'हाला-झालारा कुण्डलिया' अधिक प्रसिद्ध है। मीराकी तन्मयताके समान इनमें भी भक्ति-तन्मयता और इष्ट देवमे अपार भक्तिका अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन है।

केशवदास

जोधपुर राज्यके चीड़िया ग्रामवासी डिंगल भाषाके प्रसिद्ध कवि केशवदासका जन्म संवत् १६१० में तथा निधन संवत् १६९७ में हुआ था। इन्होंने 'गुण-रूपक', 'राव अमरसिंहजी रा दूहा', 'विवेक वार्ता' और 'गज-गुण-चरित्र' शीर्षक ग्रन्थ लिखे थे। इनकी रचनाएँ बड़ी प्रौढ़, ओज-पूर्ण और प्रवाहशील हैं।

फुटकर छप्पयोंके रचयिता अल्लूजी चारणने अत्यन्त सरल डिंगल भाषामें कुछ छप्पय लिखे हैं।

संवत् १६२५ के लगभग जल्ह नामके कविने चम्पावती नगरीके राजकुमार और जलधि तरंगिनी नामक सुन्दरीकी कल्पित कथाके आधारपर 'बुद्धि रासो' लिखा है जो अपभ्रंशसे प्रभावित राजस्थानी भाषामें बड़ी सरस रचना है।

अन्य कवि

इस कालके अन्य कवियोंमें जैनाचार्य अभय-धर्मके शिष्य कुशल लाभ (संवत् १५८० के लगभग) साहित्यके उभद्ट विद्वान और कुशल कवि थे। उन्होंने 'ढोला मारूरी चौपाई', 'माधवानल कामकन्दला चौपाई', 'तेजसार रास', 'अगड़दत्त चौपई', 'पार्श्वनाथ स्तवन', 'दौड़ी छन्द', 'लौकार छन्द', 'भवानी छन्द', 'पूज्य वाहणगीत जिनपालित', 'जिन-रक्षित-संधिगाथा' और 'पिंगल शिरोमणि' नामक ११

ग्रन्थ लिखे हैं। ये अत्यन्त सरल, सुबोध और मनोहारिणी शैलीमें गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषामें लिखते थे।

इस युगके अन्य राजस्थानी कवियोंमें माधवदास चारण (सं. १६१० से १५ के) सम्भवतः जोधपुरके वलूंड़ा ग्राममें उत्पन्न हुए थे। ये बड़े उच्च कोटिके भक्त कवि थे। इन्होंने डिंगल भाषामें 'राम रासो' और 'भाषा दशमस्कन्ध' नामक ग्रन्थ लिखे जिनमें 'राम रासो' अत्यन्त सुन्दर कलात्मक प्रबन्ध काव्य है।

संवत् १७०० से १९०० के बीच तत्कालीन काव्य-रीतिके अनुसार अनेक रीति-ग्रन्थों तथा शृंगार-प्रधान और श्रीकृष्णकी प्रेम लीलासे सम्बद्ध अनेक रचनाएँ की गई किन्तु प्रधानता मुक्तक पदों और कवित्तोंकी ही रही। इनके अतिरिक्त स्वभावतः वीररसपूर्ण अनेक सुन्दर रचनाएँ हुई। १७ वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें माधवदास दधवाड़ियाने रासो शैलीपर राम-रासो की सुन्दर रचना की जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है और इसी युगमें खुम्माण रासो, पृथ्वीराज रासो, हमीर आदि अनेक रासो ग्रन्थ लिखे गए। कुछ चारणोंने मुक्तक पदोंके बदले 'राजरूपक' और 'सूरज प्रकाश' आदि प्रबन्ध काव्योंकी भी सृष्टि की।

इस युगके रचनाकारोंमें जोधपुर-महाराज गजसिंहके द्वितीय पुत्र जसवन्त सिंह (१६८३) डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओंके कवि थे। इन्होंने 'भाषा-भूषण', 'सिद्धान्त बोध', 'सिद्धान्त सार', 'अनुभव प्रकाश', 'अपरोक्ष सिद्धान्त', 'आनन्द विलास', 'चन्द्र प्रबोध' (नाटक) 'पूली जसवन्त संवाद' और 'इच्छा-विवेक' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे।

मुहणौत नैणसी (सं. १६६७) बड़े आत्माभिमानी कवि थे। ये डिंगल भाषाके पद्य और गद्य दोनों अत्यन्त प्रवाह शील और रोचक भाषामें लिखते थे।

कल्याण दासने (१७०० मे) डिंगल भाषामें गुण गोविन्द नामक ग्रन्थमें राम और कृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त भावमय वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त साईदान, डूंगरसी, जग्गाजी, किशोरदास, गिरधर, जोगीदास, कुशलधीर, मानजी, वादर, दयाल, वीरभाण, करणीदान, सूदन, नन्दराम, खेतसी, जोधराज, हम्मीर, कृपाराम, मानसिंह, ओपाजी, वांकीदास, मनछाराम, रामदान, चण्डीदान, किसनजी, आदि अनेक कवियोंने इस युगमें सुन्दर रचनाकी जिनमें चारण कुम्भकरण, हरिदास भाट, पृथ्वीराज, गोपीनाथ चारण और भीमाजी चारण उल्लेखनीय है।

वर्तमान कालका राजस्थानी साहित्य

राजस्थानीका वर्तमान युग संवत् १९०० से प्रारम्भ समझना चाहिए। जिसमें प्रारम्भिक प्रथम चरणमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली कवि बूंदीके चारण सूरजमल हुए। चारण सूरजमल (१८७२) अनेक शास्त्रोंके पण्डित और कई भाषाओंके ज्ञाता थे। इन्होंने वंश-भास्कर, वीर सतसई, बलवन्त विलास और छन्दोमयूख नामक ग्रन्थोंकी रचना की। डिंगल भाषाके ये अद्वितीय कवि हैं। सूक्ष्म प्रभावशाली और ओजपूर्ण रचनामें कोई इनसे टक्कर नहीं ले सकता। इस युगके अन्य कवियोंमें शंकर दास या स्वरूप दास संस्कृत, पिंगल और डिंगलके प्रौढ़ विद्वान थे और अनेक रजवाड़ोंमें उनका सम्मान था। इन्होंने

हृन्नयनाञ्जन, उक्ति---चन्द्रिका, भक्तिबोध, पाण्डव यसेन चन्द्रिका आदि कई ग्रन्थ लिखे। किन्तु इनके अधिकांश ग्रन्थोंकी भाषा पिंगल है। डिंगल और पिंगलमें रचना करनेवाले दूसरे कवि नटनागर (१८६५) अपने 'नटनागर विनोद' के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार राव बख्तावरजी (सं. १८७०) ब्रज और राजस्थानी दोनों भाषाओंमें रचना करते थे। उन्होंने ११ ग्रन्थ लिखे जिनमें "केहर प्रकाश" बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसमें कमल प्रसन्न नामक वेश्या और उसके प्रेमी केशरीसिहके प्रेमका विस्तृत वर्णन है। राजस्थानी भाषामें यह अत्यन्त सुन्दर कलात्मक और मनोहर प्रबन्ध काव्य है। ब्रज भाषा और डिंगल दोनोंमें रचना करनेवाले हिन्दीके राजकवि गुलाबजी (१८८७) बड़े प्रसिद्ध हुए जिन्हें कानपुरकी रसिक-सभाने 'साहित्य भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था किन्तु इन्होंने ब्रजभाषामे अधिक रचना की है। बूंदीके प्रसिद्ध कवि सूरजमलके दत्तक पुत्र मुरारिदानने भी (सं. १८९५) डिंगल और पिंगलमें रचना की और डिंगल कोष भी लिखा है। राजस्थानी भाषामें लिखनेवाले मस्त कवि ऊमरदानका जन्म जोधपुरके ढाढर-वाड़ामें सं. १९०९ मे हुआ था। इन्होंने बोल-चालकी राजस्थानी में किन्तु कुछ ग्राम्य प्रयोगोके साथ 'ऊमर काव्य' लिखा है। करजालीके महाराज चतुसेनने (१९३३) में राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनोंमे कविता की है। इसी प्रकार जयपुरके हणतिया ग्रामवासी बारहट्ट बाला बख्स (सं. १९१२) ने भी डिंगल पिंगल दोनोंमें लगभग १९ रचनाएँ की। चारण केसरीसिहके पुत्र ठा. नाथूदान (१९४८) ने अनेक मुक्तक रचनाएँ डिंगल भाषामे की तथा वीर-सतसई नामक ग्रन्थ लिखा। इनकी रचनामें ओज, प्रवाह और प्रभावशीलता विद्यमान है। इनकी देशभक्ति-परक रचनाएँ बहुत उत्कृष्ट है। राजस्थानी, ब्रजभाषा और और नागरी तीनोंमें समान रूपसे शक्ति शाली रचना करनेवाले कवियोंमें जोधपुरके कुचेरा ग्राम-वासी अमृतलाल माथुर (१९५५) अधिक शक्तिशाली कवियोंमें हैं।

डिंगल और पिंगल दोनोंमें रचना करनेवाले मेवाड़के वसी ग्रामवासी मोहनसिंह (सं. १९५६) ने अत्यन्त प्रौढ़ कौशलके साथ लगभग १७ ग्रन्थ लिखे। पतराम गौड़ (१९७०) नागरी और राजस्थानी दोनोके अच्छे कवि और लेखक है। दूसरे राजस्थानी और नागरीके कवि है--बीकानेरके विरकाली, ग्रामवासी चन्दसिह, जिन्होंने कई रचनाएँ की है जिनमे वादळी अधिक प्रसिद्ध हुई।

मोड़जी म्हैयारियाने डिंगल भाषामे वीर सतसई लिखी है। बारहठ हिंगलाजदान भी डिंगल भाषाके बड़े विद्वान और कवि थे। मनोहर शर्मा और भीमराज विरुभमने क्रमश: 'अरावलीकी आत्मा' और 'मूंधा मोती' नामक राजस्थानी कविताओंसे बड़ी प्रसिद्धि पाई है। मेघराज मुकुलने 'सेनाणी' नामक राजस्थानी रचनासे कवि सम्मेलनोंमें बड़ी ख्याति पाई है।

इस प्रकार राजस्थानी भाषाके कवि आज तक राजस्थानी भाषामें रचना करते चले आ रहे हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि राजस्थानने हमारे देशको अपने काव्यसे बड़ी नैतिक-शक्ति प्रदान की। उस युगमें जब भारत वर्षपर विदेशी मुसलमान दस्युओंका निरन्तर आक्रमण हो रहा था और समस्त भारतकी धर्मप्राण जनता उनके अत्याचारोंसे त्रस्त हो गई थी उस समय राजस्थानके चारणों और कवियोंने ही अपनी शक्ति-शालिनी और ओजस्विनी रचनाओंसे कड़खों, कवित्तों और गीतोंसे सञ्जीवनी शक्ति भरी थी। इसलिए राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे उन सभी कवियोंका बड़ा महत्व है जिन्होंने अपने-अपने युगके अनुसार, राष्ट्र-भावना, राष्ट्र-धर्म और राष्ट्रीय जीवनकी शक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा अनुप्राणित किया।

स्वभावत: जब ब्रजभाषाका प्रभाव बढ़ा और भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके प्रयाससे ब्रजभाषा और नागरी (खड़ी बोली) का प्रचार और प्रसार अधिक होने लगा उस समय राजस्थानके प्रतिभाशाली कवियोंने ब्रज और नागरी दोनोंमें अपनी काव्य प्रतिभाका चमत्कार दिखाना आरम्भ किया, किन्तु जिस प्रकार भारतेन्दुजीने छन्द तथा अलंकारके साथ साथ अन्य लोक हितकारी धार्मिक, नैतिक, भक्ति-परक तथा देश-भक्तिपूर्ण रचनाएँ की वैसी रचनाओंका राजस्थानी साहित्यमें अभाव रहा। वीर रसके साथ भक्ति और श्रृंगारकी अवश्य कुछ रचनाएँ हुईं। स्वतन्त्र देशी रजवाड़ोंका प्रभाव अधिक होनेके कारण वहाँ देश-प्रेम और देश-भक्तिकी व्यापक उदात्त भावनाका विकास नहीं हो सका। किन्तु राजस्थानके कवि और लेखक ब्रज और नागरीमें भी प्रौढ़ रचना तो करते रहे पर साथ ही राजस्थानी भाषाको भी उन्होंने छोड़ा नही। इसलिए यह कहना न्याय्य नहीं होगा कि वीरगाथा कालका एक विशेष युग था जो एक विशेष कालावधिमें समाप्त हो गया। वह तो अपनी भाषा और भावकी विशिष्ट परम्परा लिये आजतक ज्यों-का-त्यों सजीव और सप्राण रूपसे विद्यमान है। राजस्थानी कविताके कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे--

एकणि वंनि वसन्तड़ा, एवड़ अन्तर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्खि बिकाई॥
गैवर गळै गळत्थियो, जहँ खंचै तहँ जाइ।
सीह गलत्थणजे सहै, तो दह लक्ख बिकाइ॥ --शिवदास

[एक ही वनमें बसनेपर भी इतना अन्तर क्यों हो जाता है कि सिंहको कोई कौड़ीके मोल नहीं लेता और हाथी लाखोंमें बिकता है। हाथीके गलेमें सांकल पड़ी रहती है इसलिए उसे जिधर खीचो उधरको चल देता है। यदि सिंह भी अपने गलेमें इस प्रकार रस्सी बँधवा सकता तो वह दस लाखमें बिकता।]

बाबहियौ वै विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब बरसै घण घणौ, तब ही कह प्रीपाव॥
बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर तूं ही लज्जि।
सूनी सेच विदेसप्रिय, मधुरै मधुरै गज्ज॥
यहुतन जारी मसि करूँ, धूआँ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होई करि, बरसि बुझावै अग्गि॥
डूंगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥ --कल्लोल

[पपीहे और विरहिणी दोनोंका एक-सा स्वभाव है। जब बादल जमकर बरसने लगते है तो दोनों पी-आव, पी-आव पुकारने लगते है।

हे जलधर! बिजलियाँ तो निर्लज्ज हो गई है इसलिए तू ही कुछ लाजकर। मेरा पलंग सूना है और प्रिय विदेशमें है इसलिए गरजना हो तो धीरे-धीरे गरज।

यह तन जलाकर ऐसा कोयला कर दूंगी कि उसका धुआँ स्वर्ग तक उठ जाय जिसे देखकर मेरा प्रिय बादल बनकर बरसता हुआ उस आगको बुझा दे।

पहाड़ियोंके झरने और क्षुद्र लोगोंका प्रेम बहता तो वेगसे है पर थोड़ी ही देरमें समाप्त हो जाता है।]

चम्पा केरी पंखुडी, गूथूं नवसर हार।
जो गलि पहिरूं पीय विण, लागै अंग अँगार॥ —छीहुल

[चम्पाकी पंखुड़ियोंको गूँथकर मैं नवेला हार तो बना लूँगी पर यदि मैं अपने प्रियके वियोगमें गलेमें डाल लूँगी तो वह शरीरको अंगारेके समान जलाने लगेगा।]

सावूळौ आपै समौ, बीजौ कवण गिणंत।
हाक बिड़ाणी किम सहै, घण गाजियै मरन्त॥
सीहण हेको सीहजण, छापर भंडै आळ।
दूछ विटालण कापुरुष, बौहळा जणै सियाळ॥
केहर मूंछ, भुजंगमग, सरणाई सोहडाँह।
सती पयोधर, कृपणधन, पड़सी हाथ मुवाँह॥
सैल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजवन्त।
कठण पयोधर लागतां, कसमसौ तू कन्त॥ —ईसरदास

[सिंह अपने समान दूसरे किसको गिनता है (किसीको नहीं), इसलिये वह दूसरेकी ललकारको कैसे सह सकता है। वह तो बादल गरजनेपर ही मरता है।

सिंहिनी ऐसे एक सिंहको जनती है जो खुले सामने धावा करता है और सियारी बहुतसे दूध लजानेवाले कायरोंके झुण्डको जन्म देती है। सिंहकी मूँछ, सर्पकी मणि, वीरोंका गढ़ या अड्डा, सती स्त्रीके स्तन, और कञ्जूसका धन, उनके मर जानेपर ही हाथ लग पाता है, जीते जी नहीं।

हे कन्त! तू तो यहाँ कठोर स्तनोंका सामना करनेसे घबरा जाता था, वहाँ युद्धमें बरछोंकी चोटें कैसे सहीं, हाथियोके दाँतको कैसे सहा।]

माइ एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतौ ओझकै, जाण सिराणै साँप॥
अकबर समँद अथाह, सूरापण मरियौ सजळ।
मेवाडौ तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥ —पृथ्वीराज

[हे माता। ऐसा पुत्र उत्पन्न करो जैसा राणा प्रताप है जिसके डरसे अकबर ऐसा डरा सोता है, मानो सिरहाने साँप बैठा हो।

अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता लबालब भरी हुई है किन्तु मेवाड़का प्रतापसिंह उसमें कमलके फूलके समान उसके ऊपर उठा हुआ है!]

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दूअवर।
जागै जग-दातार, पोहरै राण प्रतापसी॥ —दुरसाजी

[अकबर-रूपी घोर अन्धकारमे और सब हिन्दू, इसलिए निश्चिन्त होकर सो गए, कि पहरेपर जाग देनेवाले राणा प्रतापसिंह विद्यमान हैं।]

गाज इतं उखेड़ गज, भांझळ वनतर मूळ।
नागै नहँ थहमें जितै, सझ हायळ सांदूळ॥ —बाँकीदास

[अरे हाथी ! जब तक सिंह अपनी खोहमें जागता नहीं और अपने पंजे नहीं ठीक करता तब तक तू गरज ले और जंगलके वृक्षोंकी जड़े उखाड़ ले ।]

घोड़ाँ घर, ढालाँ पटल, मालाँ, थंभ बणाय ।
जो ठाकर भोगे जमी, और किसूं अपणाय ।।
भाभी देवर नींद-बस, बोलीजै न उताळ ।
चवताँ घावाँ चूंकसी, जै सुणासी त्रंबाळ ।।
भाभी हूँ डोढ़ी खड़ी, लीधां खेटक रूक ।
थे मनुहारो पावणाँ, मेड़ी झाल बंदूक ।।
ठकुराणी सतियाँ मणें, चून समप्यो सेर ।
चूड़ो जिण दिन चाहसी, उण दिन केय अबेर ।। —सूरजमल

[जो राजपूत अपने घोड़ोंको ही घर, ढालोंको छत और भालोंको ही खम्भे बना लेता है वही भूमिका उपभोग करता है और कौन उसे प्राप्त कर सकता है । वीर-भोग्या वसुन्धरा ।

हे भाभी ! युद्धमे घायल तुम्हारा देवर सोया हुआ है, ऊँचे स्वरसे न बोलो । कहीं नगाड़ेका स्वर उसके कानमें पड़ गया तो अपने बहते घावोंके होनेपर भी चौंककर उठ खड़ा होगा ।

हे भाभी ! मैं तो ढाल-तलवार लेकर द्वारपर खड़ी हो जाती हूँ, तुम ऊपर मुंडेरपर बन्दूक लेकर पाहुनों (वैरियों) का स्वागत (वध) करो ।

ठकुरानीसे सती नारियाँ कहती हैं कि हे सरदारनी ! हमें सेरभर आटा दे दो । इसके बदले जिस दिन तुम्हें सुहागकी (युद्धके लिए हमारे पतियोंकी) आवश्यकता होगी, उस दिन तनिक देर नहीं लगेगी ।]

सुत भरियौ हित देसरे, हरख्यो बंधु-समाज ।
माँ नहँ हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ।। —नाथूदान

[सारे बन्धु-बान्धव यह जानकर बड़े प्रसन्न हुए कि पुत्रने अपने देशके लिए प्राण दिए हैं और माताको भी आज जितनी प्रसन्नता हुई है उतनी इसके जन्मके समय नहीं हुई थी ।]

राजस्थानीका गद्य साहित्य

राजस्थानी भाषाका गद्य साहित्य भी लगभग उतना ही पुराना है जितना पद्य साहित्य । कुछ विद्वानोंने राजस्थानी गद्यका प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दीके मध्यसे माना है, किन्तु चौदहवीं शताब्दीमें जो राजस्थानी गद्यकी कृतियाँ मिली हैं वे इतनी मँजी हुई, पुष्ट और प्रवाहशील हैं कि निश्चय ही उस रूप तक पहुँचनेमें राजस्थानी गद्यको दो-तीन सौ वर्ष तो लगे ही होंगे ।

जिस प्रकार राजस्थानी पद्य-साहित्यकी प्रारम्भिक रचनाओंका श्रेय जैन विद्वानोंको है उसी प्रकार प्राचीन गद्य-लेखनका श्रेय भी जैन आचार्योंको ही है, जिन्होंने अत्यन्त सरल और सरस राजस्थानी भाषामें जैन सिद्धान्तोंका निरूपण किया है । राजस्थानी भाषामें ख्यात और बात जैसी गद्य शैलीकी रचनाएँ हुआ करती थीं और राज-कार्योंमें भी राजस्थानी गद्यका प्रयोग होता था । जोधपुरके डिडवाणा

ग्रामवासी शिवचन्द भरतिया (१९१०) ने राजस्थानी भाषामें केशर विलास नाटक, फाटका जंजाल नाटक, बुढ़ापाकी सगाई नाटक, कनक सुन्दर, मोतियोंकी कण्ठी, वैश्य प्रबोध, विश्रान्त प्रवासी, संगीत मानकुंवर नाटक और बोध दर्पण ग्रन्थ गद्यमें लिखे हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल, प्रवाहपूर्ण और सरस है। रामकरण (संवत् १९१४) का जन्म जोधपुर राज्यके वड़ल् गाँवमें हुआ था। ये भी संस्कृत नागरी और डिंगल भाषाओंके बड़े पण्डित थे। इन्होंने राजस्थानी भाषामें 'नैणसीकी ख्यात' के अतिरिक्त मारवाड़ी व्याकरण भी लिखा है। किन्तु इधर राजस्थानी गद्य लिखनेकी प्रवृत्ति बहुत कम हो गई है। राजस्थानके कुछ साप्ताहिक पत्रोंमे राजस्थानीके लेख कभी-कभी देखनेको मिल जाते हैं। कुछ कहानियाँ भी इधर राजस्थानीमें लिखी गई है। किन्तु उत्कृष्ट कोटिका गद्य साहित्य राजस्थानीमे उपलब्ध नहीं है। वास्तवमें साहित्यकी प्रकृति तो पद्य ही है और वह प्रारम्भ कालसे आज तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। यह विश्वासके साथ कहा जा सकता है कि वर्त्तमान कवि राजस्थानी भाषामें विभिन्न साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक वादोंके साथ-साथ सभी नवीन शैलियोंका समावेश अपनी नवीन कवितामें कर रहे है और यह प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे वर्त्तमान हिन्दी साहित्य प्रौढ़ और सशक्त होता जाएगा वैसे-वैसे उससे प्रेरणा, सहायता और शक्ति पाकर राजस्थानी भाषाका साहित्य भी समृद्ध होता चला जाएगा।

सधुक्कड़ी हिन्दीकी रचनाएँ

ऊपर बताया जा चुका है कि सन्त साहित्य वास्तवमे साहित्यकी सीमामे नहीं आता क्योंकि वह समस्त वाङमय आलम्बन हीन निर्गुण उपासना या तत्सम्बद्ध दार्शनिक विवेचन है। केवल कहीं-कहीं नीतिके कुछ पद या दोहे आ जाने भरसे या छन्दमे रचना होने मात्रसे न तो वह साहित्यकी कोटिमें आता है और न उनके रचनाकारोंने ही साहित्यकी दृष्टिसे उनकी रचना की है। यही कारण है कि एक सन्तकी वाणी विभिन्न प्रदेशोंमें पहुँचकर वहाँकी बोलीके संस्कारमें मँजकर भाषा और शैलीकी दृष्टिसे उस प्रदेशकी बन गई। इसीलिए सन्तोंकी वाणीकी भाषामें विभिन्न प्रदेशोंमे प्राप्त ग्रन्थोंमें भाषाकी घोर असमानता व्याप्त है। इससे भिन्न राजस्थानी भाषाके कवियोंने चारण होते हुए भी काव्यकी दृष्टिसे रचना की है किन्तु सन्त कवियोंमेंसे किसीने भी न तो अपनी वाणीके काव्यपक्ष पर ध्यान ही दिया और न ध्यान देनेकी आवश्यकता ही समझी; क्योंकि वे कवि थे ही नहीं। उनका उद्देश्य तो अपने सिद्धान्त और मतका प्रचार करना मात्र था, इसलिए उनकी गणना साहित्यमे नहीं की जा सकती। फिर भी हिन्दी साहित्यके अनेक इतिहासकारों और विद्वानोंने इसे भी बलपूर्वक हिन्दीमें ठूंस दिया है और रस, अलंकार तथा कल्पनाका आनन्द लेनेवाले साहित्यके छात्रों और अध्येताओंको बल-पूर्वक इड़ा-पिंगलाकी थाह लेने, कुण्डलिनीका पीछा करने, षट्चक्रको भेदने और अनाहत नाद सुननेके लिए घोर परिश्रम करनेको बाध्य किया है अर्थात् उन्हें काव्यानन्दके क्षेत्रसे बलपूर्वक भगाकर और ठेलकर अष्टांगयोग और हठयोग साधनेको विवश किया है।

सन्त साहित्य जिस प्रकारकी भाषामें प्रस्तुत हुआ है उसका नाम आचार्य शुक्लजीने 'सधुक्कड़ी भाषा' रक्खा है, किन्तु 'सधुक्कड़ी' वास्तवमें कोई उस प्रकारकी भाषा नहीं जिस प्रकारकी भाषाएँ राजस्थानी,

अवधी, ब्रज अथवा नागरी हैं। वैसे पंजाबके पूर्वी भागसे लेकर बंगालके पश्चिम तक और राजस्थान एवं मध्यप्रदेशसे लेकर हिमालयके दक्षिण तकका सारा प्रदेश हिन्दी भाषा-भाषी माना जाता है, किन्तु इस विशाल भू-भागके अन्तर्गत कितनी ही स्थानीय और क्षेत्रीय बोलियाँ भी है जिनमेसे कुछ में तो अत्यन्त प्रौढ़ साहित्यकी रचना हुई है और कुछ बोलियोंके रूपमें रह गईं। राजस्थानी, अवधी, ब्रज, नागरी, मैथिलीमें प्रचुर साहित्य विद्यमान है जब कि मगही, भोजपुरी, कुमाऊँनी, बुन्देली, मालवी, मेवाड़ी आदि अधिकांशतः क्षेत्रीय बोलियोंके रूपमें ही व्यवहृत होती रही हैं। इसलिए हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकोंने उपर्युक्त जिन पाँच बोलियोंको भाषाके रूपमे ग्रहण किया उन्हीके प्रस्तुत साहित्यपर विचार किया और निर्गुण सम्प्रदाय वाले सन्तों द्वारा प्रस्तुत साहित्यका परिगणन भी उन्हीके अन्तर्गत कर लिया।

सधुक्कड़ी भाषा

गद्यका विकास न होनेके कारण निर्गुण मतके प्रवर्तक सन्तों और उपदेशकोंने सुविधाके साथ अपने मतका प्रचार करनेके लिए पद्यका आश्रय लेकर अपनी रचनाओंमें ऐसी भाषाका प्रयोग किया जिसे विशुद्धताकी दृष्टिसे हम किसी एक भाषाके अन्तर्गत नहीं रख सकते। इनकी रचनाओंमें पंजाबसे लेकर बिहार तक और हिमाचलसे लेकर विन्ध्य तकके बीच प्रचलित सभी बोलियों और भाषाओंका प्रयोग हुआ है।

इस प्रकारकी मिश्रित भाषाका प्रयोग होनेके अनेक कारण हैं :--१-ये साधु अधिकांशतः अपढ़ थे जिन्हें किसी भी भाषाके ठीक स्वरूपका बोध न था। इन्होंने साहित्य-रचना नहीं की। २-समय-समय-पर ये लोग जो मौखिक उपदेश देते थे उन्हें इनके शिष्य लिपिबद्ध या कण्ठाग्र कर लेते थे। इन उपदेशोंके लिपिबद्ध होनेका कार्य कभी-कभी तो इनकी मृत्युके पश्चात् हुआ। ३-ये सदा एक स्थानपर नहीं रहते थे। निरन्तर घूमते रहनेसे स्थान-स्थानकी भाषाओं और बोलियोंका प्रयोग इनके उपदेशोंमें आना अनिवार्य था। उनके लिए ऐसी भाषामें अपने मतका प्रचार करना आवश्यक हो गया जिसे सब स्थानोंके लोग समझ सकें। ४-इन्हें साहित्य-शास्त्र और छन्दः शास्त्रका ज्ञान नहीं था, इसलिए इनकी रचनाओंमें अधिकतर छंदोभंग तथा काव्य-दोष पाए जाते हैं। इनकी रचनामें भाषा की भी कोई व्यवस्था नहीं है। एक ही रचनामें नागरी, पंजाबी, भोजपुरी सबके रूप अलग-अलग दिखाई पड़ जाते हैं। इसीलिए इस खिचड़ी भाषामें रचे हुए सन्त साहित्यकी गणना सधुक्कड़ी भाषाके अन्तर्गत की गई है। अपने मतका प्रचार करनेके लिए तथा सभी क्षेत्रों और वर्गोंको अपने मतका अनुयायी बनानेके लिए उन्होंने सुगमता पूर्वक कण्ठ की जा सकनेवाली एवं सुविधापूर्वक प्रचारित हो सकनेवाली पद्य-बद्ध रचनाओंका सहारा लिया और इसमें सन्देह नहीं कि इन्हें अपने कार्यमें सफलता भी मिली। इस प्रकारके कलाकारोंमें कबीर, नानक, दादू आदि मुख्य हैं।

ऐतिहासिक आधार

हिन्दी साहित्यमें निर्गुण मतकी दृष्टिसे विस्तृत साहित्यकी रचना सबसे पहले कबीरकी ही मिलती है। कबीर हमारे सामने दो रूपोंमें आते हैं---एक और वे हठयोग और वेदान्तका आश्रय लेकर भगवान्के सगुण रूप अथवा साकारोपासनाका विरोध करके निराकार ब्रह्मकी उपासनाका उपदेश देते हैं,

दूसरी और भगवन्नामके जपकी शिक्षा देकर भक्तिका पथ भी प्रशस्त करते हैं। कबीर अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने देख लिया था कि नाथ-पन्थी योगियोंने हृदय-पक्ष-विहीन अन्तस्साधनाका जो प्रचार किया उससे मनुष्य प्रभावित नहीं हो सका। नाथ-पन्थी योगियोंने जो पन्थ निकाला था वह समाजके लिये हितकारक भी नहीं सिद्ध हुआ क्योंकि उसमे सामाजिक भावनाओंका पूर्ण अभाव था। इसीलिए वह लोगोंको आकृष्ट नहीं कर सका। कबीरने इस बातका अनुभव किया। रामानुजाचार्यने शंकरके केवलाद्वैतवादका खण्डन करके विशिष्टाद्वैतवादकी स्थापना की और साथ ही ब्रह्मकी सगुण भक्तिका (लक्ष्मी-नारायणके रूपमें) निरूपण किया। उसने जन समाजको बहुत कुछ आकृष्ट किया। कबीरने यह अनुभव किया कि केवल अन्तस्साधनाकी बात लोगोंको समझमें नहीं आ सकती। इसलिए अपने मतमें उन्होंने भक्तिका भी समावेश कर लिया। परन्तु वे थे नाथ-पन्थी योगियोंसे ही प्रभावित। अतः उन्होंने निराकार ब्रह्मकी उपासना पर बल देकर, उसका नाम जपकर, उसे हृदयमें अनुभव करनेका उपदेश दिया। 'सन्त' नामसे अभिहित सभी प्रचारकोंने इसी मार्गका अवलम्बन लिया।

नाथ पन्थ

बौद्ध धर्म धीरे-धीरे विकृत होकर वामाचारमें परिणत हो चला था। इस वामाचारका आचरण करनेवाले लोग वज्रयानी कहे जाते थे जिनका गढ़ पूर्वी भारत था। तन्त्र साधना ही इनकी प्रधान क्रिया रह गई थी और उसीके माध्यमसे ये मानवकी हीन प्रवृत्तियोंको उभाड़कर अपनी वासनाओंकी पूर्ति किया करते थे। इन्होंने अपना रंग-ढंग कुछ इस प्रकार जमा रखा था कि जनता इन्हें अलौकिक शक्तियोंसे सम्पन्न समझकर इनसे डरती थी।

आठवीं और दसवीं शताब्दीके बीच प्रचलित परम्परासे अपनेको अलग करके गोरखनाथने महर्षि पतञ्जलिके योग-दर्शनको आधार मानकर, हठयोग का सहारा लेकर अपना अलग नाथ-पन्थ चलाया। इस नाथ-पन्थमें नौ नाथ हो गए हैं। गोरखनाथने जिस प्रकार वज्रयानियोंसे अलग होकर कनफटे योगियोंका अपना अलग नाथ-पन्थ चलाया उसी प्रकार वज्रयानियोंकी लीलाभूमि (पूर्वी भारत) का भी त्याग करके इन्होंने अपने मतका प्रचार पश्चिमी भारतमें किया। इस सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें इस बातपर बल दिया गया कि योगकी साधनासे ईश्वरको घटके भीतर ही प्राप्त किया जा सकता है। ये लोग सिद्धान्ततः शैव थे। कनफटे साधु लोग गोरखनाथको साक्षात् शिवका अवतार मानते हैं।

नाथ पन्थी कनफटे योगी दीक्षाके समय पत्थर, बिल्लौर, गैण्डेके सींग, मिट्टी या लकड़ीका कुण्डल कानमें पहनते हैं जिसे कुण्डल मुद्रा या दर्शनी कहते हैं। इसीलिए इन कनफटे योगियोंको दर्शन-योगी भी कहते है। इसके अतिरिक्त ये लोग दो-तीन अंगुल लम्बा एक काला-सा पदार्थ ऊन या बालके डोरे में बाँधकर गलेमें लटकाए रहते हैं। इस डोरेको 'सेली' और उस काले पदार्थको 'नाद' कहते हैं। ये लोग जटा बढ़ाते, गेरुआ वस्त्र पहनते, भस्म लगाते और भभूतका त्रिपुण्ड्र लगाते हैं। इन लोगोंका प्रचार मुख्य रूपसे पश्चिमी भारतमें था, अतएव स्वभावतः इनकी बानियों और उपदेशोंमें उधरकी भाषाके ही दर्शन होते हैं। इन्होंने जो भी रचनाएँ की हैं वे नागरी, पंजाबी, राजस्थानी-मिश्रित भाषामें हैं। इनकी बानीसे प्रभावित
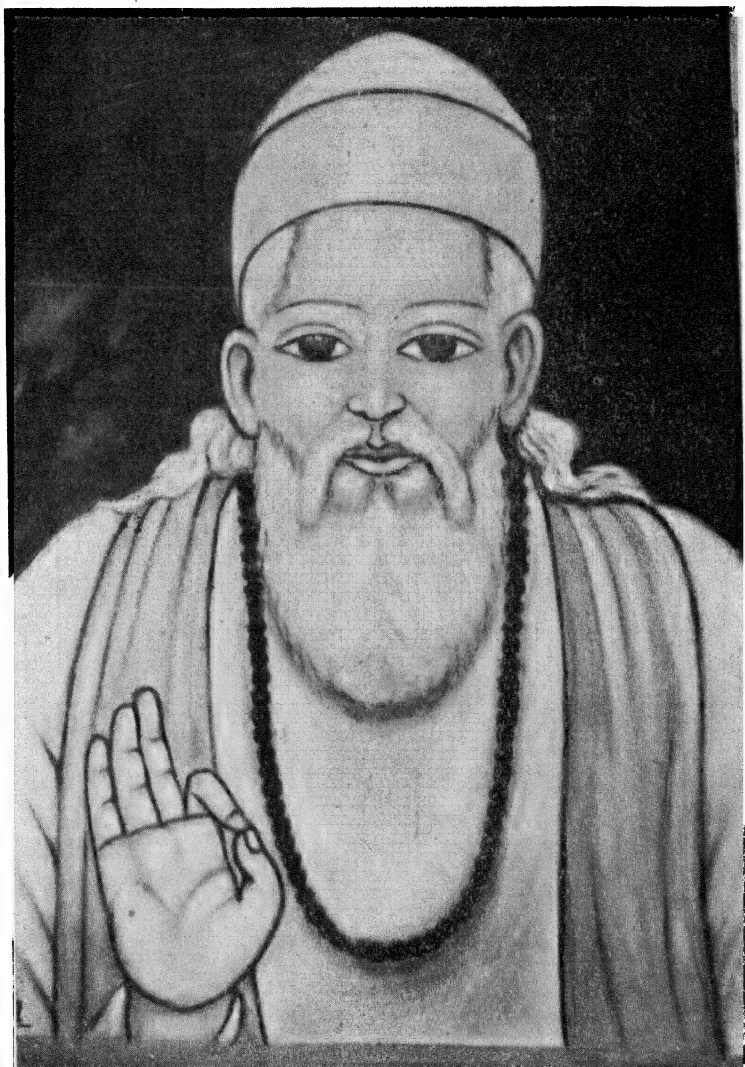
कबीर

कबीर आदिने भी इसी भाषाका सहारा लिया क्योंकि वह मिश्रित भाषा उत्तर भारतके सभी प्रदेशोंमें लोक-व्यवहार (धर्म-प्रचार, व्यापार तथा दो प्रदेशोंके लोगोंके परस्पर व्यवहार) की भाषा थी।

कबीरदास

जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि निर्गुणवादी सन्तोंको हमारे यहाँ साहित्यमें अनुचित महत्त्व देकर उन्हें साहित्यमें प्रविष्ट तो कर लिया गया किन्तु न तो उनकी रचनाओंके मूल पाठ ही प्राप्त होते हैं, न उनके सम्बन्धमें यही निश्चय है कि उन्होंने स्वयं उस प्रकारकी रचना की थी या नहीं, और यदि की भी थी तो उसमें उनकी अपनी कितनी है और कितनी उन्होंने दूसरोंसे ली है। इन सन्तोंकी अधिकांश वाणी परस्पर इतनी मिलती-जुलती है कि यहाँ कहना कठिन हो जाता है कि वास्तवमें मूल वाणी किसकी है और फिर यह जानना तो और भी कठिन है कि उनका साहित्यिक महत्त्व क्या है। जिन लेखकों और आलोचकोंने ऐसे सन्त महात्माओंको बलपूर्वक कवियों और साहित्यकारोंकी श्रेणियोंमें ला घसीटा उन्होंने केवल साहित्यके साथ ही अन्याय नहीं किया वरन् उन सन्तोंके साथ भी घोर अन्याय किया है और हिन्दी साहित्यके साथ तो भयंकर अत्याचार यह किया गया कि इन सन्तोंकी वाणीके बेतुके प्रवेश काव्य और साहित्यका अनुशीलन होनेके बदले दार्शनिक मन्थन होने लगा है। ऐसे अनिर्णीत रचनावाले तुक्कड़ सन्तोंमें कबीरदासको सबसे अधिक आवश्यक महत्त्व दे दिया गया है। उनका परीक्षण इसलिए आवश्यक है कि उन्होंने साहित्य भले ही न दिया हो किन्तु ऐसी सर्व व्यापक भाषाका प्रयोग वे निश्चय ही कर रहे थे जो उत्तर भारतके अधिक-से-अधिक प्रदेशोंमें समझी जाती थी। राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे उनकी यह सार्वजनीन प्रवृत्ति अवश्य स्तुत्य है और उन लोगोंको विशेष रूपसे उनका अध्ययन करना चाहिए जो अभी तक इस अज्ञानान्धकारमें पड़े चक्कर लगा रहे हैं कि नागरी अर्थात् हमारे वर्त्तमान साहित्यिक प्रयासोंका माध्यम बनी हुई नागरी भाषा (जिसे भूलसे खड़ी बोली कहा गया है) या गद्यकी हिन्दीको केवल आज ही राष्ट्रीय भावात्मक एकताके लिए प्रयुक्त करनेकी बात नहीं की जा रही है वरन् सर्व प्रथम सन्तोंने ही नैतिक दृष्टिसे राष्ट्रीय भावात्मक एकता समृद्ध करनेके लिए इस भाषाका प्रयोग चार सौ वर्षों पहलेसे प्रारम्भ कर दिया था और वह भी पद्य-बद्ध करके।

कहा जाता है कि कबीरका जन्म एक विधवा ब्राह्मणीसे हुआ था जिसे रामानन्दजीने भूलसे पुत्रवती होनेका आशीर्वाद दे दिया था। लोक-लज्जावश उसने बालकको जन्मते ही फेंक दिया जिसे नीरू नामक एक जुलाहेने घर ले जाकर पाला-पोसा। कबीरका जन्म कुछ लोग संवत् १४५५ मे, कुछ १४५६ में और कुछ लोगोंने १४३७ में माना है। किन्तु कबीर-पन्थियोंमें प्रचलित :—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायतको, पूरनमासी प्रगट भए।।

वाले दोहेके अनुसार इनका जन्म संवत् १४५६ ही ठहरता है और अधिकतर वही लोगोंको मान्य भी है।

कबीर धर्मकी भावना

यद्यपि कबीरका पालन-पोषण मुसलमान जुलाहेके घर हो रहा था तथापि उनके मनमें आरम्भसे ही हिन्दू धर्म भावना और भक्ति-पद्धतिके प्रति अनुराग था। निश्चय ही उनके माता-पिताने इसका विरोध किया होगा किन्तु उस विरोधका कबीरदासजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे निरन्तर राम-नामके जपकी ओर प्रवृत्त होते गए। इन्हीं दिनों स्वामी रामानन्दका प्रभाव और उनके कारण रामनाम तथा राम-कथाका प्रचार बढ़ रहा था। सम्भव है कबीरको रामनामके जपकी प्रेरणा वहींसे मिली हो। कबीर जब धीरे-धीरे कुछ वयस्क हुए और रामनामके जपकी ओर उनका अनुराग बढ़ता गया तो उनके मनमें स्वामीजीसे दीक्षा लेनेकी भावना उत्पन्न हुई। मुसलमान होनेके नाते स्वामीजीसे प्रत्यक्ष रूपसे वे दीक्षा ले नहीं सकते थे इसलिए उन्होंने सीढ़ियोंपर लेटनेवाला ढंग निकाला। इस प्रकार स्वामीजीसे रामनाम-जपका उपदेश पाकर कबीरदासजीने स्वामीजीको अपना गुरु मान लिया और उस उपदेशके अनुसार रामनामका जप करने लगे। आरम्भमें रामको वे जो कुछ भी मानते रहे हों पर आगे चलकर उनका मत भिन्न हो गया और कहने लगे :—

दसरथ-सुत तिहुं लोक बखाना।
रामनामका मरम है आना॥

इस प्रकार कबीरके राम निराकार निर्गुण ब्रह्मके पर्याय हुए जब कि उनके गुरु रामके साकार रूपके उपासक थे।

नेता बननेकी लालसा

स्वामी रामानन्दके प्रभावमें आनेसे वे रामनामकी ओर प्रवृत्त हुए सही किन्तु उन्होंने वैष्णवोंकी श्रेणीसे अपनेको पृथक् रखा। इसके कई कारण हैं—१—मुसलमानी संस्कारोंमें पलनेके कारण उनका अन्तस् अवतारवादके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता था। २—कबीरको स्वयं अपना महत्व सिद्ध करना था। यदि वे रामानन्दी वैष्णवोंका ढंग अपनाते तो वे उस धारामें ही बह जाते और उनका अलग कोई महत्त्व ही न रहता। ३—कबीरकी बुद्धि प्रखर थी, प्रतिभा विलक्षण थी। उन्होंने देख लिया कि इस समय ऐसा अवसर है कि लोगोंको प्रभावित करके अपने नामसे एक नया मत खड़ा कर दिया जाय। आजकल जो काम चतुर राजनैतिक नेता करते हैं वही उस समय कबीरने किया। वे पढ़े लिखे न थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है "मसि कागद हम छुयौ नहीं, कलम गही नहिं हाथ' किन्तु अन्य साधनोंसे उन्होंने पर्याप्त अर्थात् सत्संगसे श्रुत ज्ञान अर्जित किया था और उसका उपयोग उन्होंने अपना लक्ष्य सिद्ध करनेके लिए किया भी।

कबीरके ज्ञानका आधार

स्वामी रामानन्दके सम्पर्कसे उन्होंने वैष्णवोंका अहिंसावाद, प्रपत्तिवाद (शरणागतिवाद) और रामनाम लिया। नाथ-पन्थी योगियोंके साथ रहकर उनके हठयौगिक सिद्धान्त और साधनात्मक रहस्यवाद-का पल्ला पकड़ा और अपने पन्थमें भक्तिका समावेश करनेके उद्देश्यसे उन्होंने सूफियोंकी उपासना-प्रणाली ग्रहण की। सूफी ईश्वरको प्रियतम (माशूक) के रूपमें मानकर चलते हैं और उसकी प्राप्ति ही जीवन

का लक्ष्य मानते हैं। सूफीवाद वेदान्तके अद्वैतवादका ही मुसलमानी रूप है। मुसलमानोंको अपनी ओर लुभानेके लिए यह आवश्यक था कि कबीरदासजी मुसलमानोंकी भी कुछ बातें ग्रहण करते किन्तु इसलामका जो रूप उस समय प्रचलित था उसे कबीरदास खपा नहीं सकते थे। इसलिए उन्होंने सूफियोंका ढर्रा अपनाया जिसमें भारतीय एकेश्वरवादके समर्थनके साथ-साथ मनुष्यकी रागात्मक वृत्ति को आकृष्ट और उद्दीप्त करनेवाले तत्त्व भी विद्यमान थे।

पीरोंसे सम्पर्क

कबीरपन्थी मुसलमान तो उन्हें शेख तकीका ही शिष्य मानते हैं किन्तु कबीरका यह कथन कि 'घट-घट है अविनासी, सुनहु तकी तुम सेख' शेख तकीको कबीरके गुरुके आसनपर प्रतिष्ठित होने देनेमें बाधक सिद्ध हो रहा है। सूफी पीरों और मुसलमानी फकीरोंका संग कबीर बराबर करते थे और उनसे बहुत कुछ तत्त्व भी ग्रहण करते थे किन्तु कबीर किसीको अपनेसे बड़ा नहीं मानते थे, सबको स्वयं उपदेश देते थे और अपनेको ईश्वरका ऐसा दूत घोषित करते थे जो जगके उद्धारके लिए ही भेजा गया हो :—

काशीमें हम प्रगट भए हैं, रामानन्द चेताए।
समरथका परवाना लाए, हंस उबारन आए॥

गुरु-माहात्म्य

स्वामी रामानन्दका नाम कबीरने सर्वत्र बड़े आदरसे लिया है और उन्हें ही अपना गुरु माना है। गुरुकी महिमाके वचन कबीर या इस धाराके सन्तोंकी बानियोंमें बराबर मिलते हैं। स्वयं कबीरने गोविन्दसे गुरुको बड़ा बताया है :—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दिया बताय॥

गुरु-माहात्म्यकी यह बात कबीरको नाथपन्थियोंसे प्राप्त हुई थी। सिक्खोंमें 'गुरु' लगानेकी जो परम्परा चली वह गुरुके माहात्म्यके कारण ही और यह परम्परा तथा माहात्म्य-भावना 'गुरु' गोरखनाथ और 'गुरु' मत्स्येन्द्रनाथकी ही देन है। कबीर तथा उनके बादके सभी सन्तोंने नाथपन्थियोंसे जहाँ ज्ञानवाद और योगवाद लिया वहाँ यह गुरुवाद भी लिया। इन सन्तोंकी परम्परामें गुरुको जब गोविन्दसे भी बढ़कर मान लिया गया है तो शास्त्रका क्या महत्त्व है। यदि शास्त्रोंके वचन और गुरु-आदेशमें विरोध पड़ता हो तो शास्त्र-वचनकी उपेक्षा की जा सकती है। इनकी परम्परा हालमें राधास्वामी सम्प्रदाय तक बराबर चली आई है।

कबीरका साहित्य

कबीर कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। इसलिए उन्होंने कुछ लिखा नहीं है। उनके मौखिक उपदेशोंका संग्रह उनके शिष्योंने विशेष कर धर्मदासने आगे चलकर किया। कबीरकी बानियोंका संग्रह बीजकके नामसे प्रसिद्ध है। इस बीजकके तीन भाग हैं—साखी, रमैनी और सबद। साखी दोहोंमें है और इसमें स्वमत-

प्रतिपादन, परमत-खण्डन तथा विविध उपदेश हैं। यद्यपि कबीरदासने स्पष्ट कहा है ' बोली मेरी पुरुब की ' तथापि उनके नामसे जो रचनाएँ मिलती है उनकी भाषापर राजस्थानी और पंजाबीसे लेकर भोजपुरतकका प्रभाव है। रमैनी और सबदकी भाषा पर ब्रजका प्रभाव अधिक है क्योंकि इनमें गेय पद हैं, किन्तु पूरबी बोलीके रंगसे यह भी रंगी हुई है। तात्पर्य यह है कि काशीके होनेके कारण उन्होंने कहा तो होगा पूरबी अर्थात् बनारसीमें, किन्तु भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें पहुँचकर वह उन-उन प्रदेशोंकी बोलियोंकी प्रकृतिमें ढल गई।

कबीरके सम्पूर्ण साहित्यमें वेदान्त-तत्त्व, हिन्दू-मुसलमानोंको फटकार, हिन्दुओंके समस्त धार्मिक ग्रन्थों और देवताओंकी कुत्सा, संसारकी अनित्यता, मायाकी प्रबलता आदि अनेक विषयोंका प्रतिपादन हुआ है।

कबीरकी बानियोंका सबसे पहला संग्रह धर्मदासने संवत् १५२१ में किया जब कबीरदासजी ६५ वर्षके थे। कबीर-बचनावलीकी प्राचीनतम प्रति संवत् १५६१ की मिली है। सिक्खोंके गुरु-ग्रन्थ साहबमें भी उनके बहुतसे पद संगृहीत हैं।

कबीर जब पढ़े-लिखे नहीं थे और साहित्य स्रष्टा भी नहीं थे तो उनकी बानियोंमें काव्य-तत्त्व या दार्शनिक तत्त्व ढूंढ़नेका प्रयास व्यर्थ है। वे बहुपठ नहीं, बहुश्रुत थे। उन्होंने सतसगसे जो कुछ प्राप्त किया था उसका समावेश अपने उपदेशोंमें भलीभाँति किया है। वेदान्त और हठयोगके गूढ़ और पारिभाषिक पद, सूफियोंकी रहयस्वादी भाषा, रूपकों और अन्योक्तियोंके माध्यमसे कही हुई ज्ञानकी बातें तथा चुटीली और व्यंगपूर्ण उक्तियोंने कबीरकी ओर साधारण श्रेणीके लोगोंको आकृष्ट किया। वे कबीरकी उलटबासियोंके रहस्योंमें डूबते-उतराते हुए उनको महान् सिद्ध पुरुष मानते थे। साधारण समाजपर अपना आतंक जमानेके लिए ही कबीरने इस प्रकारकी अस्पष्ट भाषाका प्रयोग किया। इस आतंक जमानेकी भावनाका ही यह परिणाम हुआ कि कबीर काशी छोड़कर महगर चले गए जहाँ संवत् १५७५ में उन्होंने शरीर त्याग किया।

कबीरके कुछ पद्य उदाहरणके रूपमें नीचे दिए जा रहे है:—

कबीर संगत साधुकी, कदे न निरफल होय।
चन्दन होसी बावना, नीम न कहसी कोय॥
मेर संगी द्वै जणा, एक वैष्णव एक राम।
वोहै दाता मुक्तिका, वो सुमिरावे नाम॥

इन उदाहरणोंसे प्रकट होता है कि कबीरदास वैष्णवोंके समर्थक और शाक्तोंके विरोधी थे।

सुर नर मुनि जन औलिया, ए सब उरली तीर।
अलह रामकी गम नहीं, तहँ घर किया कबीर॥

यह उदाहरण इस बातका सूचक है कि कबीर अपनेको ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म-विद्याका मर्मज्ञ समझते थे। ऐसी-ऐसी गर्वोक्तियाँ उनकी बानियोंमें बहुत मिलती हैं।

सूफियोंकि रहस्यमय माधुर्य भावकी जो उपासना पद्धति कबीरने अपनाई उसका उदाहरण यह पद है।

साईंके संग सासुर आई।
संग न सूती, स्वाद न माना, गा जीवन सपनेकी नाईं ॥
जना चार मिलि लगन सुधायो, जना पाँच मिलि माँडो छायो।
भयो बियाह चली बिनु दूलह, बाट जात समधी समझाई ॥

कबीर आदि सन्त कवि नहीं थे। वे मत-प्रवर्तक प्रचारक मात्र थे। केवल पद्य-बद्ध रचनाएँ करनेके कारण उनको साहित्य-स्रष्टाओंमें गिन लिया गया है। कहीं-कहीं उनकी रचनाओंमे, विशेषकर पदोंमें मोहकता, भावुकता और प्राञ्जलता मिलती है। अन्य सन्तोंकी अपेक्षा कबीरमें यह गुण अधिक है और यह प्रभाव काशीमे रहनेका है। कितने ही पद ऐसे मिलते है जो सूर और कबीर दोनोंके नामसे प्रचलित है। एक उदाहरण लीजिए :—

है हरि भजनको परमान।
नीच पावै ऊँच पदवी बाजते नीसान ॥
भजन परताप ऐसो जल तरै पाषान।
अजामिल अरु भील, गनिका चढ़े जात विमान ॥
चलत तारे सकल मण्डल चलत ससि अरु भान।
भक्त ध्रुवको अटल पदवी रामको दीवान ॥
निगम जाको सुजस गावत सुनत सन्त सुजान।
सूर हरिकी सरन आयो राखि ले भगवान ॥

ठीक यही पद कबीरके नामसे प्रचलित है। अन्तिम चरणमें यह अन्तर है :—

जन कबीर तेरी सरन आयो राखि लेहु भगवान।

स्वामी रामानन्द जैसे अद्भुत महात्मा सौभाग्यसे ही उस समय भारतमें अवतरित हुए। उनके द्वारा हिन्दू जाति और हिन्दी भाषाकी जो सेवा हुई वह वर्णनातीत है। उन्होंने जाति-पाँतिके कोई बन्धन नही माने और सबको अपना शिष्य बनाया। इस दृष्टिसे भावात्मक एकताको भारतमे प्रचारित करनेका श्रेय श्री रामानन्दजी और उनके शिष्योंको है और उनकी सर्वबोध्य भाषाका भी यह महत्व है कि इन सन्तोंने ही पहले पहल राष्ट्रभाषा हिन्दीका महत्त्व समझकर उसका स्वरूप निर्माण किया और उसमे अपने सिद्धान्तोंका प्रचार किया। उन्होंने स्वयं जो कुछ किया वह तो किया ही, उनकी शिष्य-परम्पराने, जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजी भी हो गए है, हिन्दी साहित्यका अपूर्व श्रीवर्द्धन किया। स्वामी रामानन्दजीके ही शिष्य कबीर थे। कबीरके अतिरिक्त रैदास, सेन नाई, धन्ना जाट और पीपा भगत भी उनके मुख्य शिष्य थे जिन्होंने निर्गुण ढंगकी भक्ति-पद्धति अपनाई।

रैदास

रैदासको रामानन्दजीके बारह शिष्योंमें गिना जाता है। रामानन्दजीने निम्न श्रेणीके लोगोंको अपनाकर बहुत आगे बढ़ा दिया। जुलाहे होकर भी कबीर उनके ही प्रतापसे इतनी अधिक प्रतिष्ठाके पात्र हुए। उसी प्रकार रैदास भगत चमार होनेपर भी सन्त श्रेणीको प्राप्त हुए। रैदासकी साधना

अवश्य ऊँची श्रेणीकी रही तभी तो मीराने भी उनका नाम बड़े आदरके साथ लिया है।

रैदासने स्वयं अपनेको चमार कहा है—

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।

रैदास काशीके ही रहनेवाले थे। इन्होंने भी निर्गुण पन्थ पकड़ा। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। जब ये पढ़े-लिखे ही न थे तो ग्रन्थ रचना ही कैसे करते। इनके कुछ फुटकर पद इधर-उधर मिलते हैं, जिनमेसे कुछ तो गुरु ग्रन्थ साहबमे ही संगृहीत हैं।

रैदासका एक पद लीजिए :—

फल कारन फूलै बनराई, उपजै ज्ञान तो करम नसाई।
जलमें जैसे तूम्बा तिरै। परिचे पिण्ड जीव नहि मरै॥
जब लगि नदी न समुद्र समावै, तब लगि बढ़ै हँकारा।
जब मन मिल्यो राम सागर सों, तब यह मिटी पुकारा॥

धर्मदास

धर्मदासजी कबीरके शिष्य थे और उनके मरनेपर बीस वर्ष तक उनकी गद्दीपर रहे। कबीरकी बानियोंका संग्रह इन्होंने ही किया। इनकी रचनाएँ कबीरकी अपेक्षा अधिक सरल और भाव-व्यञ्जक है। इन्होंने अधिकतर पूर्वी बोलीका ही प्रयोग किया है। कबीरकी शिष्य-परम्परामें कमाल, भग्गूदास और श्रुतिगोपाल भी हो गए है। साहित्यकी दृष्टिसे इन लोगोकी रचनाओंका विशेष महत्त्व नहीं है। अतएव इनपर अधिक विचार करना व्यर्थ है।

गुरु नानकदेव

गुरु नानकदेव लाहोरके वेदी खत्री थे। इनका जन्म संवत् १५२६ में हुआ था। ये जन्मसे ही साधु स्वभावके थे। यद्यपि इनकी गणना निर्गुण पन्थवालोमे की गई है, तथापि ये भगवानके साकार रूपके उपासक थे और शंकरकी आराधनामे बराबर रत रहते थे। कबीरकी भाँति इन्होंने किसी मतका खण्डन नहीं किया और न किसी प्रकार दम्भ और सिद्धईका ढिढोरा पीटा। सीधी सरल भाषामें इन्होंने अपनी बातें कहीं। ये हिन्दू धर्मके रक्षकके रूपमे प्रकट हुए और देशभरमें भ्रमण करके इन्होने हिन्दू जातिको शक्ति और सान्त्वना प्रदान की। ये भी विशेप पढ़े-लिखे न थे। समय-समयपर जो भजन इन्होंने गाए उन्हींका संग्रह गुरुग्रन्थ साहबमे किया गया है। ये भजन पंजाबी, ब्रज, नागरी आदि मिली-जुली भाषाओंमें है —जैसा उस समय धार्मिक प्रचारकोंमें प्रचलन था। एक उदाहरण लीजिए :—

पवणु गुरू पाणी पिता, माता धरति महत्तु।
दिवस रात दुइ दाई दाया खेले सकल जगत्तु॥
चँगियाइयाँ बुरियाइयाँ वाचै धरमु हदूरि।
करनी आपो आपणी, कै नेड़ै कै दूरि॥
जिन्नी नाम धेयाइया, गए मसक्कति घालि।
नानक ते मुख उज्जले केती छुटी नालि॥

गुरु नानकदेवके अतिरिक्त अन्य सिक्ख गुरुओंने भी कुछ-कुछ रचनाएँ की है। गुरु गोविन्द सिंहने तो प्रचुर परिमाणमे रचनाएँ की है। ये शुद्ध ब्रजभाषामें बड़ी ओजपूर्ण रचना करते थे। इनका चण्डी-चरित्र प्रौढ़ ब्रजभाषामें प्रणीत अच्छा काव्य है। सिक्ख गुरुओंमे इन महात्माके मनमे भगवानके सगुण रूपके प्रति बड़ी आस्था थी।

गुरु नानकके पुत्र श्री चन्द्राचार्यने अलग उदासीन पन्थ चलाया और ठेठ नागरी भाषामें अपने सम्प्रदायका सिद्धान्त ग्रन्थ 'मात्राशास्त्र' लिखा जिसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है:—

ओइम् कदु रे बाल !
किसने मूंडा किसने मुँडाया। किसका भेजा नगरी आया।
सद्गुरु मूंडा लेख मुँडाया। गुरुका भेजा नगरी आया।।

तात्पर्य यह है कि उस समय पंजाबमे नागरी (खड़ी बोली) भाषा ही शिष्ट जनके लोक-व्यवहार, धर्म-व्यवहार और ग्रन्थ-व्यवहारकी भाषा बन चुकी थी और श्री चन्द्राचार्यने तो उसी नागरी भाषाके पद्यमें अपने सिद्धान्त ग्रन्थकी भी रचना कर दी, यद्यपि अन्य सन्त लोग ब्रज भाषा या मिली-जुली भाषाका प्रयोग करते थे। इस दृष्टिसे राष्ट्रभाषाकी प्रथम सैद्धान्तिक रूपमे प्रतिष्ठा करनेवाले श्री चन्द्राचार्य ही थे।

दादू

निर्गुनिए साधुओंमें दादूकी गणना बड़े आदरके साथ की जाती है। दादूके जन्मके सम्बन्धमे भी विचित्र कथाएँ प्रचलित है। दादूका जन्म उनके भक्त लोग सम्वत् १६०१ मे मानते हैं। उनके गुरुका भी कोई विवरण नहीं मिलता। परन्तु उनकी बानीमें कबीरका नाम आदरपूर्वक लिया गया है। इधर-उधर घूमते हुए वे जयपुरके पास भरानेकी पहाड़ियोंमे आकर अन्तिम समयमे रहे और वहीं सम्वत् १६६० में शरीर छोड़ा। दादू पन्थियोंका प्रधान गढ़ वहीं है और वहाँ दादूके वस्त्रादि आजतक रखे है। दादू-पन्थी निराकार ब्रह्मके उपासक है। ये तिलक, कण्ठी आदि नही धारण करते। ये हाथमे एक सुमिरनी रखते है और परस्पर सत्तराम कहा करते है।

दादू पश्चिम प्रदेशके रहनेवाले थे इसलिये स्वभावतः उनकी भाषामे पच्छिमीपन है। पंजाबी और जयपुरी मिश्रित राजस्थानीका उन्होंने प्रयोग किया है जिसमें गुजराती और नागरीका भी मेल है। गुजराती और पंजाबीमें अलगसे भी कुछ पद उन्होंने लिखे है। उनकी भाषामे फारसी, अरबी और तुर्की शब्दोंका भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। दादूकी रचनाओंमें संयम और गम्भीरता है। उन्होंने विरोधियोको गाली नही दी। नम्रता उनमें इतनी थी कि वे सबको दादा कहते थे। इसीसे उनका नाम दादू पड़ गया। दादूकी रचनाओंके कुछ उदाहरण लीजिए—

जे सिर सौंप्या रामको, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसके हाथ।।१।।
जब मन लागै रामसो, तब अनत काहेको जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों, ऐसे रहै समाइ।।२।।

अजहूँ न निकसे प्रान कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर।।३।।
चार पहर-चारहु जुग बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गए अजहूँ नहीं आये कतहुँ रहे चित चोर।।४।।
कबहूँ नैन निरखि नहि देखे, मारत चितवत तोर
दादू अइसहि आतुरि विरहिनि, जैसहि चन्द चकोर।।५।।

सन्तोंके निर्गुणवाद, सीधी-सादी जन-भाषामें उपदेश, सब धर्मोके आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्डका विरोध और सब प्रकारके भेद-भाव दूर करनेकी भावनाका प्रभाव इतना व्यापक रूपसे देशभरमें फैला कि अनेक पन्थ लगभग कबीरके ही सिद्धान्तोंसे मिलते-जुलते समुद्भूत हो गए जिनमें अधिकांश राजस्थानमें पनपे। ये सभी पन्थ चलानेवाले सन्त लोग विशेष पढ़े-लिखे नही थे और सधुक्कड़ी भाषा (स्थानीय जन-भाषासे प्रभावित नागरी भाषा) मे अपने उपदेश देते या सिद्धान्त-निरूपण करते थे। इनके अनुयायी भी अधिकांश अपढ़ लोग ही होते थे। यद्यपि इनमेसे अधिकांशने काव्य लिखनेकी चेष्टा नही की किन्तु कुछ काव्य-प्रतिभा सम्पन्न सन्तोंने जहाँ-तहाँ काव्यत्व लानेका भी प्रयत्न किया हैं और उन कवियोंकी भाषा भी सधुक्कड़ी भाषासे ऊपर उठकर काव्य-भाषा बन गई।

दादूपन्थी रचनाकार

दादूपन्थमें चार प्रकारके साधु होते है---खाकी, विरक्त, थाम्भाधारी और नागा। ये लोग हाथमें सुमरनी रखते है, सत्त राम कहकर परस्पर नमस्कार---प्रणाम करते हैं और कबीरके ही समान ये लोग निराकार, निर्गुण, निरञ्जन और ब्रह्मकी ही सत्ता मानते हैं।

सं. १६०० और १६१० के बीच जयपुरके नरायणा ग्राममे वखनाजी नामके सन्त हुए जिन्होंने कुछ राजस्थानीसे प्रभावित सरल सधुक्कड़ी भाषामे अपनी वाणीकी रचना की।

अन्य सन्तोंके समान रज्जबजी (स. १६२४) बहुपठ तो नही थे बहुश्रुत बहुत थे। जातिके पठान मुसलमान होते हुए भी दादूजीके सम्पर्क से ये भी सन्त हो गए और इन्होंने वाणी और सर्वगी नामक दो संग्रह-रचनाएँ की।

दादूदयालके ज्येष्ठ पुत्र और उनके उत्तराधिकारी गरीबदास (सं. १६३२) ने भी अपने पिताजी की शैलीमे ही साखी, पद, अनभै-प्रबोध और अध्यातमबोध नामक रचनाएँ की।

जगन्नाथदास

दादूजीके शिष्य जगन्नाथदास कायस्थ (सं. १६४०) बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इन्होंने वाणी, गुण-गंजनामा, गीतासार और योग वाशिष्ठसारकी रचना की थी।

दादूके शिष्य जनगोपाल (सं. १६५० के लगभग) ने सीकरीमें गुरुमन्त्र लेकर 'दादू जन्म-लीला-परची', 'ध्रुव-चरित्र', 'प्रह्लाद-चरित्र', 'भरत-चरित्र', 'मोह-विवेक', 'चौबीस गुरुओंकी लीला',

'शुक-सम्वाद', 'अनन्तलीला', 'बारहमासिया', 'मटके सवैये', 'कवित्त', 'जखड़ी', 'काया-प्राण सम्वाद', 'साखी', पद आदि बहुत-सी प्रौढ़ रचनाएँ की।

दादूके प्रधान शिष्य जगजीवन (सं. १६५० के लगभग) बड़े अच्छे सन्त और विद्वान् थे। इन्होंने 'वाणी' नामक बड़ा ग्रन्थ लिखा जिसमें वैष्णव धर्मके सिद्धान्तोंका भी पर्याप्त समावेश है।

दादूजीके प्रशिष्य दामोदर दास (लगभग सं. १६५०) ने 'मार्कण्डेय पुराण' का गद्यानुवाद किया है किन्तु कुछ नीति-परक दोहे भी लिखे है।

मारवाड़के गूलर ग्रामवासी माधोदास (सं. १६६१) ने 'सन्त-गुण-सागर-सिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें दादूजीके जीवनका पूरा विवरण छन्दोबद्ध रूपमें दिया है।

फतहपुर निवासी भीखजन (सं. १६८३) ने छोटा-सा 'भीख-बावनी' नामक नीति-ग्रन्थ लिखा है। दादूजीके बावन प्रधान शिष्योंमेंसे एक शिष्य सन्तदास (समाधिकाल सं. १६९६) ने बारह हजार छन्दोंमे वाणी लिखी थी और जीवित समाधि ले ली थी।

सुन्दरदास

जयपुर राज्यकी द्यौसा नगरीके निवासी सुन्दरदास (जन्म सं. १६५३) भी छह वर्षकी अवस्थामें ही दादूके शिष्य हो कर अुनके साथ ही रहने लगे थे। वर्षभरके पश्चात् जब दादूका अवसान हो गया (सं. १६६०) तो ये जगजीवनजीके साथ अपने गाँव द्यौसा होते हुए काशी आए जहाँ २० वर्ष तक वेद, वेदांग, साहित्य और दर्शनका व्यापक और गम्भीर अध्ययन करके राजस्थान लौट गए। प्रायः ९३ वर्षकी अवस्थामें सर्वांग सुन्दर, सुरुचि-सम्पन्न, मृदुल, स्त्री-भीरु, बाल ब्रह्मचारी साधुका देहावसान सांगानेरमें हुआ।

निर्गुण मतवालोंमे सुन्दरदासजी ही ऐसे महात्मा हो गए है जिन्हे काव्य, व्याकरण, छन्दशास्त्र इतिहास, पुराणादिकी सम्यक् शिक्षा मिली थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और राजस्थानीके अतिरिक्त इनको फारसीका भी बहुत अच्छा ज्ञान था। इसीलिए इनकी रचनाएँ बहुत ही सरस हैं। भाषा इनकी मँजी हुई, प्राञ्जल और काव्य-गुण सम्पन्न है। अन्य सन्तोंके समान इन्होंने केवल दोहे और पद ही नहीं कहे है वरन् कवित्त सवैया आदिमें भी रचनाएँ की है। शास्त्रोंका व्यापक अध्ययन होनेके कारण इन्होंने मनमानी ऊटपटाँग बातें नहीं कही। उदाहरण लीजिए:—

देखहु दुर्मति या संसार की।
हरिसों हीरा छांडि हाथ तें, बांधत मोट विकार की॥
नाना विधिके कर्म कमावत, खबर नहीं सिर मार की।
झूठे सुखमें भूलि रहे हैं, फूटी आँख गँवार की॥
बारम्बार पुकार कहत हौं, सौहं सिरजनहार की।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक में छार की॥

यद्यपि इन्होंने अधिकतर रचनाएँ ब्रजभाषामें की है किन्तु नागरी और राजस्थानीका मेल कहीं-कहीं हो ही गया है। इनके रचे ४० ग्रन्थ कहे जाते है।

इन्होंने 'ज्ञान-समुद्र', 'सर्वांग-योग', 'पञ्चेन्द्रिय-चरित्र', 'सुखसमाधि', 'स्वप्न प्रबोध' 'उक्त अनूप', 'अद्‌भुत उपदेश', 'पंच प्रभाव', 'गुरु सम्प्रदाय', 'गुन उताति', 'सद्‌गुरु महिमा-बावनी'. 'गुरुदया षटपदी', 'भ्रम-विध्वंस अष्टक', 'गुरु-कृपा अष्टक', 'गुरु उपदेश अष्टक', 'गुरु महिमा अष्टक', 'रामजी अष्टक', 'नाम अष्टक', 'आतमा-अचल अष्टक', 'पञ्जाबी भाषा अष्टक', 'ब्रह्मस्तोत्र अष्टक', 'पीर मुरीद अष्टक', 'अजब ख्याल अष्टक', 'ज्ञान झूलना अष्टक', 'सहजानन्द ग्रन्थ', 'गृह वैराग-बोध ग्रन्थ', 'हरि बोल चेतावनी', 'तर्क चेतावनी', 'विवेक-चेतावनी', 'पवंगम-छन्द ग्रन्थ', 'अडिल्ला छन्द ग्रन्थ', 'मडिल्डा छन्द ग्रन्थ', 'बारह मासी आर्युबल भेद', 'आत्माविचार', 'विविध अन्तःकरण भेद ग्रन्थ', 'पूर्वी भाषा बरवै ग्रन्थ', 'सवैया' (सुन्दर विलास), 'साखी ग्रन्थ', 'उत्तरपद कवित्त' आदि अनेक महत्वपूर्ण प्रौढ़ साहित्यिक रचनाएँ की। इनकी रचनाएँ वास्तवमें साहित्यिक ओजसे पूर्ण है। और यदि निर्गुण सन्तोंमे किसीका भी कविकी दृष्टिसे अधिक सम्मान हो सकता है तो सुन्दरदासका ही होना चाहिये।

रज्जवजीके शिष्य खेमदास (सं. १७४०) ने अत्यन्त शक्तिशाली और मँजी हुई भाषामे 'कर्म-धर्म सम्वाद', 'सुख-सम्वाद', 'चितावनी', 'योग-संग्रह' और 'साखी' नामक चार ग्रन्थ लिखे।

प्रह्लाददासजीके शिष्य राघवदासने भक्तमाल नामक ग्रन्थ (स. १७७०) मे दादूपन्थके प्रधान महन्तोंकी जीवनियाँ राजस्थानीसे प्रभावित सधुक्कड़ी ब्रज भाषामें लिखी हैं।

पठान वाजिदजी (सं.१७०८) ने दादू पन्थ स्वीकार करके, 'अरिलै', 'गुणकठियारा नाम', 'गुण उत्पत्तिनामा', 'गुण श्रीमुख नामा', 'गुण-घरिया नामा', 'गुण हरिजन-नामा', 'गुण नाँवँ माला', 'गुण-गंज नामा', 'गुण-निर्मोही', 'गुण-प्रेम कहानी', 'गुण विरहका अंग', 'गुण-निशाणी', 'गुण छन्द', 'गुणहित उपदेश ग्रन्थ', पद्य और राजकीर्तन नामक रचनाओंकी सृष्टि की।

जयपुर राज्यके जाखल गाँवके पास ढाड़ीमें रहनेवाले मंगलरामने लगभग सौ ग्रन्थोंकी रचना की जिनमें 'सुन्दरोदय' (सं. १९०० के लगभग) में नागा जमातका अत्यन्त भव्य वर्णन किया है।

दादूपन्थियोंमें मोहनदास, रामदास, घड़सीदास, नारायणदास, प्रयागदास, कान्हड़दास, चतरदास, प्रह्लाददास, टीलाजी, कल्याणदास, चैनदास आदि सन्त कवि हुए है जिन्होंने राजस्थानी मिश्रित नागरी या राजस्थानीसे प्रभावित सधुक्कड़ी ब्रज भाषामे प्रौढ़ रचनाएँ की है।

सुन्दरदाससे कुछ समय पूर्व इलाहाबादके कड़ा मानिकपुरमे मलूकदासजीका जन्म हुआ था जिनकी परम्परागत गद्दी अब भी वहाँ है। इनकी गद्दियाँ काबुलसे नेपाल तक फैली है। इन्होने भी कुछ रचनाएँ की है। इनका वह दोहा तो लोक-प्रसिद्ध है :—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम॥

सन्तोंकी यह परम्परा देशभरमे व्याप्त होकर बराबर चलती आई। तुकाराम औघड़पन्थी सन्त ही थे। सन्तोंके चामत्कारिक दंगलोंकी बातें भी सुनी जाती हैं। राधास्वामी सम्प्रदायवाले अब भी सन्त ही कहे जाते है। किन्तु सामान्यतः ये सन्त लोग काव्य-शास्त्रसे प्रायः अनभिज्ञ होते थे और इनका अध्ययन भी अधिक नहीं होता था, इसलिए इनमें काव्य-तत्त्व ढूँढ़ना व्यर्थ है।

चरणदासी पन्थके रचनाकार

कबीर पन्थकी निगुर्णवादी पद्धतिसे मिलता-जुलता चरणदासी पन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है जिन्होंने शब्दमार्ग चलाया और गुरुके चरणको ही सर्वश्रेष्ठ साध्य माना। ये साधु शरीरपर पीला वस्त्र, माथेपर गोपी चन्दनका पतला-सा तिलक, सिरपर पीले रंगका कुल्हा देकर पीली पगड़ी बाँधते है।

इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक चरणदासका जन्म मेवातके डहरा गाँवमें मुरलीधर और कुंजी देवीके घर (सं. १७६०) में हुआ। सात वर्षकी अवस्थामें अपनी माँके साथ दिल्लीमे ननिहालमे चले आए जहाँ १९ वर्षकी अवस्थामें शुकदेव मुनिने इन्हें शब्दमार्गका ज्ञान दिया। इन्होंने 'अष्टांग-योग', 'नासकेत', 'सन्देहसागर', 'भक्तिसागर', 'हरिप्रकाश-टीका', 'अमर लोक-खण्ड धाम', 'भक्ति-पदारथ', 'शब्द', 'मन-विरक्त-करन गुटका', 'राममाला', 'ज्ञान-सारोदय', 'दानलीला', 'ब्रह्मज्ञान-सागर', 'कुरुक्षेत्र की लीला' नामक चौदह ग्रन्थ लिखे। इनकी भाषा भी सधुक्कड़ी नागरी भाषा थी।

चरणदासकी दो शिष्या दयाबाई (सं. १७५० के लगभग) और सहजोवाई (सं. १८०० के लगभग) बहुत प्रसिद्ध हैं। दयाबाईने 'दयाबोध' और 'विनय-मालिका' नामक ग्रन्थोंमे गुरुकी महिमा तथा दैन्य और वैराग्यसे युक्त भावनाएँ भरी है। सहजोबाईने अपनी रचनाओंमे गुरुका बड़ा माहात्म्य वर्णित किया है जिसमे सरल भाषामें प्रेमका उल्लासपूर्ण वर्णन है।

रामस्नेही पन्थके रचनाकार

निर्गुण वादियोंमें रामचरण द्वारा प्रवर्त्तित राम-स्नेहियोंका भी बड़ा विचित्र पन्थ है। ये लोग निर्गुण परमेश्वरको ही राम कहते है और उन्हींकी उपासना करते है। ये लोग न तो मूर्त्ति-पूजा करते और न कपड़े पहनते केवल लँगोट बाँधकर चादर ओढ़े रहते है। ये साधु राम-द्वारोमें रहकर भजन कीर्तन करते है। इनके तीन मुख्य केन्द्र राजस्थान मे है—शाहपुरा, खैड़ापा और रैण। ये शाहपुराको अपना गुरु-द्वार समझते है जहाँ फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा से चैत्र कृष्ण षष्ठी तक मेला लगता है।

खैड़ापेका राम-स्नेही पन्थ हरिरामदासजीने चलाया जिन्होंने सं. १८०० मे एक जयमलदास नामक रामानन्दी वैष्णव साधुसे दीक्षा ली थी। इनके शिष्य रामदासजीने खैड़ापेमे गद्दी स्थापित की थी। रामदासजी गृहस्थ थे और उन्होंने अपने शिष्योंको गृहस्थ आश्रम धारण करनेका उपदेश दिया था किन्तु इनके पुत्र दयाल दास और पौत्र पूर्णदासने अपने पन्थवालोंके पाँच भेद कर दिए—विरक्त, विदेही, परमहंस, प्रवृत्ति और घरबारी। इनका गुरुद्वारा सिंहथल है। खैड़पे और सिंहथल दोनों स्थानोंपर होलीके दूसरे दिन मेला लगता है जिसमे साधु लोग भजन-कीर्तनके साथ-साथ पचवाणीकी कथा करते है।

रैण (मेड़ता) के राम स्नेहियोंके आदि गुरु दरियावजी हुए है जिनका गुरु द्वारा रैण है—जहाँ वर्षमें एक बार इस पन्थके अनुयायी एकत्र होते है।

जयपुर सोड़ा ग्राम-वासी विजयवर्गीय वैश्य रामचरण (सं. १७७६) ने कृपारामसे दीक्षा लेकर शाहपुरेमे अपनी गद्दी स्थापित की और २२५ शिष्य बनाए। इन्होंने आठ हजार छन्दोंमें अपनी वाणी लिखी है जिनकी रचना भावपूर्ण तो है पर छन्दकी कोई व्यवस्था नही है।

बीकानेर राज्यके सिंहथल ग्रामके ब्राह्मण भालचन्द्रके पुत्र हरिरामदास (सं. १७८० के लगभग) ने जयमलदाससे दीक्षा ग्रहण करके सैकड़ों शिष्यपर शिष्य बनाए और फुटकर साखियाँ और पद लिखे तथा छोटी-छोटी बहुत-सी रचनाएँ की। जिसमें 'निसाणी' बड़ी प्रसिद्ध है।

जोधपुरके बीकोकोर ग्रामवासी रामदास (सं. १७८३) ने बारह गुरुओंसे सन्तुष्ट न होकर सं. १८०९ में हरीराम दासजीसे राम-सनेही पन्थकी दीक्षा ली और खैड़ापेमें अपनी गद्दी स्थापित की। इन्होंने 'गुरु-महिमा', 'भक्तमाल', 'चेतावनी', और 'अंग-बद्ध अनुभव वाणी' की रचना की, जिसके चार अंग है—दास, उदास, सम्भव, और खुदवह।

रामदासजीके पुत्र और खैड़ापेकी गद्दीके अधिकारी दयालदासजी (सं. १८८६) बड़े उच्च कोटिके साधु थे। इनका 'करुणा-सागर' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है।

जोधपुर राज्यके जेतारण नगर-वासी दरियावजी (सं. १७३७) का नाम साधु होनेके पश्चात् दरियासाजी हो गया और अब वे दरिया साहब कहलाते है। इन्होंने प्रेमदासजीसे दीक्षा लेकर रैण गाँवमे अपनी गद्दी स्थापित की। ये नागरी, संस्कृत फारसी आदि कई भाषाओंके ज्ञाता थे। इन्होंने दस हजार छन्दोंमे 'वाणी' नामक वृहद ग्रन्थ लिखा था जिसकी भाषा बड़ी प्रौढ़ और काव्य-गुण-पूर्ण है।

राम स्नेही साधुओंमे बालक राम (स. १८९९के लगभग) ने 'भक्तदास गुण चित्रणी' टीका, नामक ग्रन्थ अनेक छन्दोंमें लिखा है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण और साहित्यकी दृष्टिसे बड़ा सरस है।

रामस्नेही पन्थियोंमे जयमलदास (सं. १७६०), सन्तदास (सं. १६८६ से सं. १८०६), नारायणदास (सं. १८०६–५३), परसराम (सं. १८२४–९६), हरिदेवदास, (सं. १८३५), पूर्णदास (सं. १८८५), अर्जुनदास (सं. १८९२) और सेवकराम (सं. १९००) भी अच्छे सन्त कवि हुए है।

निरञ्जनी पन्थके सन्त रचनाकार

सोलहवीं विक्रमी शताब्दीके मध्यमे हरिदासजीने निराकार, निर्गुण निरञ्जन परमेश्वरकी आराधनाके आधारपर निरञ्जनी पन्थ चलाया जिनके दो भेद है—घरबारी और निहंग। इनका केन्द्र है मारवाड़में डिडवानेके पास गाड़ा नामक स्थान। इस सम्प्रदायके घरबारी गृहस्थ तो सामान्य वेश-भूषाके साथ रामानन्दी तिलक लगाते है किन्तु निहंग लोग गलेमे खाकी गुदड़ी या सेली बाँधते है। हरिदासजी बड़े प्रभावशाली, सहृदय साधु पुरुष थे। इन्होंने 'भक्त विरदावली', 'भरथरी सम्वाद', 'साखी', 'नाममाला ग्रन्थ', 'पद-नाम निरुपण ग्रन्थ', 'ब्याहलों', 'योग ग्रन्थ' और 'टोडरमल योग' शीर्षक रचनाएँ की थी। इनके बावन शिष्य थे जिन्होंने 'हरिदा सोत', 'पूर्णदा सोत', 'अमरदा सोत', नारायणदा सोत आदि कई थाम्भे स्थापित किए जिनमें बहुतसे अब भी विद्यमान है।

सधुक्कड़ी भाषामें अथवा स्थानीय भाषाओंसे प्रभावित नागरी भाषामें रचना करनेवाले इन सन्तोंका बहुत बड़ा समुदाय आज भी देशमें विद्यमान है और विचित्र बात यह है कि वे आज भी इसी प्रकार भाषामे अपने यहाँ साधुओं और गृहस्थोंको प्रवचन करते, इसी प्रकारकी रचना करते और इसी बोल-चालका व्यवहार करते है। यह सम्भव है कि बहुत पढ़-लिख जानेपर यह प्रवृत्ति बदल जाय किन्तु धर्मनिपेक्ष राज्यमें धर्म और सम्प्रदायोंके प्रति जिस प्रकार विरोधका भाव प्रदर्शित किया जा रहा है उसे दृष्टिमें रखते

हुए यह प्रतीत होता है कि यह सम्प्रदाय अधिक दिन तक नहीं टिक सकेगी और ज्यों-ज्यों नागरी भाषा राष्ट्र-भाषाके पद पर हिन्दीके रूपमें प्रवर्द्धमान होती चली जा रही है, उसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि सधुक्कड़ी भाषा अधिक दिनोंतक नही टिक सकेगी।

राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे इन निर्गुणवादियोंका बहुत अधिक महत्त्व है, क्योंकि इन्होंने ही उत्तर-भारतको एक विचार-सूत्रमे बाँधने या भावात्मक एकताके लिए एक व्यापक भाषाकी आवश्यकताका अनुभव किया, उसका निर्माण किया, उसमें रचनाएँ कीं और उसमें अपने कथन, उपदेश, नीति, सन्देश तथा वाणीकी रचना करके उसे पुष्ट तथा समृद्ध किया।

अवधी-साहित्य

आजकी नागरीको छोड़कर राजस्थानीके पश्चात् सबसे अधिक व्यापक भाषा अवधी रही है। आज जिस प्रदेशको अवध कहते है, उसके अतिरिक्त बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़में भी यह थोड़े बहुत परिवर्त्तनों-के साथ बोली जाती है। अवधी और बघेलीमे तो कोई अन्तर नही है; किन्तु छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़ियाका थोड़ा-थोड़ा प्रभाव दिखाई पड़ता है। अवधीके दो रूप मिलते है—पश्चिमी और पूर्वी। पश्चिमी अवधी लखनऊसे कन्नौज तक बोली जाती है। इस प्रकार ब्रजभाषाके निकटतम पहुँच जानेके कारण यह उससे प्रभावित भी हुई है। पूर्वी अवधीका क्षेत्र अयोध्यासे गोंडा तक और इलाहाबादके दक्षिण तक चला गया है।

अवधीका साहित्य

अवधीका अधिकांश साहित्य प्रबन्ध या कथा-काव्यके रूपमे मिलता है। जहाँ अवधीमें अधिकतर प्रबन्ध काव्योंकी रचना हुई है, वहाँ ब्रजभाषामे मुक्तक काव्यकी। अवधीकी प्रकृति भी कथा-काव्यके अधिक अनुकूल है। सूफी सम्प्रदायवालोंकी सभी रचनाएँ अवधीमे ही है। उन्होने प्रबन्धों रूपक या अध्यवसान का आश्रय लेकर ऐतिहासिक या कल्पित कथाओं द्वारा अपने मतका प्रचार किया। सूफियोंने हिन्दुओंके घरोंमे प्रचलित इस प्रकारकी अनेक कथाएँ लेकर उनमे आवश्यकतानुसार हेरफेर करके अपने मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे उन्हें प्रबन्ध-काव्यका रूप दिया। इसीसे उनकी रचनाएँ कुछ लोगोंमे अधिक प्रचलित हुई। इन प्रबन्ध काव्योंके लिए सूफियोंने दोहे-चौपाईका क्रम ग्रहण किया।

अवधीकी सबसे प्राचीन रचना अबतक ईश्वरदास-कृत 'सत्यवती कथा' (१६ वी शताब्दी) मानी जाती थी, किन्तु इधर जो खोज हुई है, उनसे ज्ञात होता है कि मुल्ला दाऊने संवत् १४२७-२८ मे 'चन्दायन' नामक एक कथा-काव्यकी रचना की थी, जिसकी एक खण्डित प्रति मनेरशरीफ़ ख़ानकाह पुस्तकालयमें मिली है। इसके अतिरिक्त ईश्वरदासकी ही रची हुई दो और रचनाएँ 'अंगद पैज' और 'भरत मिलाप' का भी विवरण मिला है। ईश्वरदासकी रचनाएँ १६ वी शताब्दी की है। इसके पश्चात् तो अवधीमे साहित्य-रचनाके उदाहरण बराबर मिलते है, जिसका क्रम आजतक चला आ रहा है। अवधीका उत्कर्ष काल १६ वीं और १७ वीं शताब्दी है। इसी समयमे ही जायसीका 'पदमावत' और तुलसीका 'रामचरित मानस' रचा गया।

अवधीके प्रबन्ध काव्य

अवधीके प्रबन्ध काव्य दो रूपोंमें पाये जाते हैं—पहला पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानोंके आधारापर और दूसरा, कल्पित कहानियोंके आधारपर। इनमेंसे हिन्दू कवियोंकी सब रचनाएँ पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओंको आधार बनाकर चली है तथा सूफी कवियोंकी (जिनमें प्राय: सभी मुसलमान है।) रचनाएं प्राय: कल्पित कहानियोंको आधार बनाकर चली हैं। अत: हम इन्हें चरित काव्य और रूपक-काव्य इन दो श्रेणियोंमें बाँट सकते है।

चरित काव्य

चरित काव्योंमें 'सत्यवती-कथा' के अतिरिक्त ईश्वरदासकी दो और रचनाएँ मिली है—'अंगद पैज' और 'भरत मिलाप'। 'सत्यवती-कथा' का आरम्भ तो पौराणिक ढंगसे होता है; किन्तु आगे चलकर वह कल्पित कथाका रूप ग्रहण कर लेती है। 'अंगद पैज' और 'भरत मिलाप' निश्चय ही पौराणिक कथाएँ है। उनकी कथा उनके नामसे ही स्पष्ट हैं। इसके पश्चात् कालक्रमसे अवधीके चरित काव्योंमे गोस्वामी तुलसीदासजीका 'रामचरितमानस', 'जानकी मंगल', 'पार्वतीमंगल' 'रामलला-नहछू' और 'बरवै रामायण' आते है।

गोस्वामी तुलसीदास

कविकुलकमलदिवाकर, हिन्दी काव्यगगनके सूर्य, कलिके वाल्मीकि, कलियुगमें रामकथाके सशक्त विस्तारक और उन्नायक, भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासजीका प्रादुर्भाव हिन्दू जाति, वर्णाश्रम धर्म और हिन्दी भाषाके लिए भगवानकी ओरसे बरदानके रूपमे ही हुआ। गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंके माध्यमसे रामके लोक-मंगलकारी पावन चरितका आदर्श उपस्थित करके म्रियमान हिन्दू जातिकी धमनियोंमें नवरक्तका सञ्चार किया। रामके लोकसंग्रही, लोकरञ्जक चरितने मुमूर्षु हिन्दुओंको कर्त्तव्य-पथकी ओर अग्रसर होनेके लिए प्रवृत्त किया। मुसलमान शासकोंके अत्याचारोंसे त्रस्त और दलित भारतीय हिन्दू समाज कोई आश्रय न पाकर नैराश्यकी अवस्थामें पड़ा हुआ था। गोस्वामीजीका ही यह कौशल था कि उन्होंने यह अवस्था दूर की और हिन्दुओंको उठ खड़े होनेका सामर्थ्य प्रदान किया और समस्त राष्ट्रको व्यापक रूपसे नैतिक चेतना प्रदान की।

गोस्वामीजीका जीवन-वृत्त

गोस्वामीजीका जन्म कब और कहाँ हुआ, इस सम्बन्धमें आज तक विवाद चल ही रहा है। कुछ लोग उन्हें सोरोंका निवासी सिद्ध करनेका भी विफल प्रयत्न कर चुके है। उनका तर्क इस दोहे पर आधृत है:—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, जब अति रहेऊँ अचेत॥

कुछ लोग उनका जन्म स्थान अयोध्या ही बताते हैं। उनका तर्क यह है कि गोस्वामीजीकी रचनाओंमें जिस प्रकारकी अवधीका प्रयोग हुआ है, वह अयोध्याके आसपास की ही है। किन्तु वे अयोध्यामें

अधिक समय तक रहे और वह उनके इष्ट देव रामकी पुरी रही है, इसलिए वहाँकी भाषापर उनका अधिकार स्वाभाविक है। वास्तवमे उनका जन्म बाँदा जिलेके राजापुर ग्राममे यमुनाके तटपर हुआ था।

गोस्वामीजीके जन्म-संवत्‌के सम्बन्धमें भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न मत प्रचलित है। 'गोसाई-चरित' और 'तुलसी-चरित' में उनका जन्म-संवत् १५५४ दिया हुआ है। इन दोनों पुस्तकोंकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें विद्वानोंमे मतभेद है। इनमें दिए हुए कतिपय वर्णन परम्परासे प्रचलित जनश्रुतियोंसे मेल नहीं खाते। इसीलिए लोगोंने संवत् १५५४ की प्रामाणिकता में भी सन्देह किया है। मिरजापुरके श्री रामगुलाम द्विवेदीने गोस्वामीजीका जन्म संवत् १५८९ माना है। रामनगरके चौधरी छुन्नीसिहके यहाँ गोस्वामीजीके समकालीन श्रीकृष्णदत्त मिश्रकी रची 'गौतम चन्द्रिका' नामकी एक पोथीके कुछ अंश है, जो उन्होंने वहीपर उतार रक्खें है। 'यह गौतम-चन्द्रिका' दोहे-चौपाइयोंमें है और इसमें उक्त मिश्रजीने अपने वंश-परिचयके प्रसंगमे गोस्वामीजीके सम्बन्धमे भी पर्याप्त विवरण दिया है। उससे गोस्वामीजीके सम्बन्धमे कुछ नई बातें प्रकाशमे आई है। 'गौतम-चन्द्रिका' के अनुसार गोस्वामीजी संवत् १६८० की श्रावण कृष्णा तीज के दिन ८० वर्षकी आयुमें साकेतवासी हुए। इस विवरणके अनुसार उनका जन्म-संवत् १६०० ठहरता है। किन्तु अभी इस पोथीके सम्बन्धमें निश्चयात्मक रूपसे कुछ नही कहा जा सकता। एक ही बात निश्चित है कि गोस्वामीजीका जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमीको हुआ और उनका देहावसान संवत् १६८० की श्रावण कृष्णा तीजको काशीमें हुआ; जैसा इस दोहेसे प्रकट है :—

संवत सोलह सौ असी, असी गंगके तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामीजीके सम्बन्धमें यह परम्परासे प्रसिद्ध है कि वे पत्यौजाके पराशर गोत्रीय दुबे ब्राह्मण थे :—

'तुलसी पराशर गोत दूबे पतियौजाके।'

यह भी प्रसिद्ध है कि उनके पिताका नाम आत्माराम तथा माताका हुलसी था। हुलसी नामके प्रमाणके सम्बन्धमे रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) का यह दोहा प्रसिद्ध ही है :—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी-सो सुत होय॥

तुलसीदासजीके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वे अभुक्त मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुए थे, जिससे उनके पिताने उन्हें त्याग दिया। इसका प्रमाण उनकी इन उक्तियोंसे भी मिलता है :—

(१) **मातु-पिता जग जाइ तज्यो। (कवितावली)**
(२) **जननी-जनक तज्यो जनमि।**
(३) **तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिताहू। (विनयपत्रिका)**

कहा जाता है कि पिताकी इस उपेक्षा और त्यागके कारण माताने उनके पालन-पोषणका भार अपनी दासी मुनियापर छोड़ा। मुनिया बालकको लेकर अपनी ससुरालकी चली गई। मुनियाकी मृत्युके समय बालक पाँच वर्षका था। पिताने जब उस समय भी उसे रखना स्वीकार न किया तब वह मारा-मारा फिरने लगा। अन्तमें नरहरिदास नामके महात्माने उसपर अनुग्रह करके उसे अपने साथ रख लिया। ये

महात्मा गोंडा जनपदके अन्तर्गत सूकरक्षेत्र (सोरो नही) के रहनेवाले थे, जहाँ वे बालकको लिवाते गए। वहीं गुरुसे तुलसीदासजीने 'राम-कथा' सुनी। इसके पश्चात् गोस्वामीजी अपने गुरुजीके साथ काशी चले आए और पञ्चगङ्गा घाटपर शेष सनातनजीसे पन्द्रह वर्ष तक शास्त्र, काव्य, इतिहासादिका अध्ययन करते रहे। इसके अनन्तर गोस्वामीजी राजापुर लौट गए और वाल्मीकि रामायणकी कथा कहकर निर्वाह करने लगे। वहीं भारद्वाज-गोत्री एक ब्राह्मणने अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। अपनी पत्नीमे गोस्वामीजी इतने अनुरक्त थे कि एक दिन जब इनकी पत्नी मायके चली गई तो ये भी उसके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे। इस पर क्षुब्ध होकर उसने कहा:—

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमको, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भव-भीति॥

इसी बातपर गोस्वामीजीको विराग हुआ और वे गृह-त्याग करके काशी, अयोध्या, चारों धाम तथा अन्य तीर्थोंकी यात्रा करते हुए कैलास-मानसरोवर तक घूम आए। वहाँसे लौटकर उन्होने संवत् १६३१ की रामनवमीको अयोध्यामे रामचरितमानसकी रचना आरम्भ की जो ढाई वर्षमे पूर्ण हुई। 'मानस' के कुछ अंश अयोध्या में और कुछ काशीमे रचे गए थे।

'गौतम चन्द्रिका' के अनुसार गोस्वामीजी २८ वर्षकी अवस्थामें तीर्थाटनके लिए निकले और ३१ वर्षकी वयमे अयोध्या आकर मानसकी रचनामे जुट गए। सूकर खेतके सम्बन्धमे 'गौतम चन्द्रिका' मे उल्लेख है कि वह घाघरा और सरयूके संगमपर है, शाण्डिल्य ऋषिका वहाँ आश्रम है और नरहरि स्वामी शाण्डिल्य गोत्रीय थे भी।

गोस्वामीजीके स्नेहियों और मित्रोंकी एक लम्बी सूची भी 'गौतम चन्द्रिका' मे दी हुई है। रहीम और नाभाजीसे उनका स्नेह सम्बन्ध था। मीरासे भी उनका पत्र-व्यवहार हुआ था, किन्तु उनके सबसे घनिष्ठ मित्र थे काशीमे भदैनीके टोडर जिनके निधनपर गोस्वामीजीने चार दोहे कहे है। गोस्वामीजीने नरकाव्य लिखा ही नहीं। अनन्य मित्रके शोकमे इन चार दोहोंके रूपमे उनके भावोंका उद्रेक हुआ था।

गोस्वामीजीकी रचनाएँ

'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली', 'कवितावली', 'रामाज्ञा-प्रश्न', 'रामलला नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'बरवै-रामायण', 'कृष्ण-गीतावली' और 'वैराग्य-सन्दीपिनी' ही गोस्वामीजीकी प्रमाणिक रचनाएँ मानी जाती है। इनमे 'रामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'रामाज्ञाप्रश्न' तो बडे ग्रन्थ है और शेष सात छोटे।

रामचरितमानसकी रचना गोस्वामीजीने सबसे पहले की। उसके प्रारम्भ करनेकी तिथि उन्होने स्वयं मानसमे इस प्रकार दी है:—

संवत सोरह सौ एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥
नवमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

यह प्रसिद्ध है कि उस दिन प्रायः वैसा ही योग उपस्थित था जैसा कि भगवान् रामके जन्मके दिन था। मानसकी रचनामे दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन लगे। सम्वत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षमें राम-विवाह की तिथिके दिन ग्रन्थकी रचना पूर्ण हुई। यह पूरा ग्रन्थ दोहे, चौपाई, छन्द, सोरठा, पद्धतिपर अवधी भाषामे रचा गया है। रामचरितमानसकी भाषा संस्कृतकी कोमलकान्त पदावलीसे सरस, भावमय और मनोमुग्ध-कारी हो गई। गोस्वामीजी सर्व शास्त्र-पारंगत विद्वान् थे। अतः उनकी शब्द-योजना साहित्यिक और संस्कृत-निष्ठ है। रामचरित मानसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रबन्ध काव्य होनेके साथ-साथ नाटकके रूपमे रामलीलाके लिए भी व्यवहृत होता है। स्तोत्रके रूपमे भी पाठ किया जाता है, गेय काव्य भी है और इसके कुछ दोहे तथा कुछ चौपाइयाँ मन्त्रके रूपमे भी जपी जाती है। ये विशेषताएँ संसारके किसी काव्यमें भी नहीं है।

'मानस' के अतिरिक्त 'बरवै रामायण', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'दोहावली', 'रामाज्ञाप्रश्न', और 'वैराग्य-संदीपिनी' की रचना अवधीमे हुई है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'कृष्ण-गीतावली' की रचना व्रजभाषामें हुई है।

'बरवैरामायण' छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमे बरवै छन्दके मुक्तक पदोमे रामकथा कही गई है। कहा जाता है कि अपने मित्र रहीमके अनुरोधपर ही गोस्वामीजीने अवधीके इस सर्वप्रिय छन्दमे रामकथा कही। 'रामललानहछू' में बीस सोहर छन्दोंमें रामके किसी मंगल-संस्कारपर नहछूका वर्णन है। 'जानकी-मंगल' और 'पार्वती-मंगल' मे भी 'बरवै रामायण' और 'रामलला-नहछू' की ही भाँति ठेठ अवधीकी मिठास मिलती है। ये ग्रन्थ ही इस बातके प्रमाण है कि कवि अवधीके क्षेत्रका रहनेवाला है। 'जानकी-मंगल' में सीताजीके और 'पार्वती–मंगल' मे पार्वतीजीके विवाहका वर्णन है। इनकी भाषमें इतना प्रवाह है कि शब्द एकके पश्चात् एक फिसलते चले जाते है। एक उदाहरण लीजिए :––

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेस सुकवि स्तुति सन्त सरलपति॥
हाथ जोड़ करि विनय सबहिं सिर नावौं।
सिय-रघुबीर-विवाह जथामति गावौं॥

'दोहावली' मे सूक्ति-पद्धति पर रचे हुए पाँच सौ से ऊपर दोहे है, जिनमे नीति, भक्ति तथा नाम-माहात्म्यका वर्णन है। इसमें प्रायः डेढ़ सौ दोहे मानसके है। बहुतसे और दोहे भी अन्य ग्रन्थोंमें पाए जाते है। ज्ञात होता है कि इनका संग्रह अन्तमे किया गया।

'रामाज्ञा प्रश्न' के सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषीके अनुरोधपर गोस्वामीजीने इसकी रचना की थी। इसमे सात सर्ग है। प्रत्येक सर्गमें सात-सात दोहेके सात सप्तक है। इसमें भी पूरी रामकथा कही गई है। 'जानकी-मंगल' की ही भाँति इसकी राम-कथामे भी मानससे यह अन्तर है कि इसमे परशुरामका आगमन वाल्मीकिकी राम-कथाके अनुसार तब होता है, जब बारात मिथिलासे अयोध्या के लिए प्रस्थान कर चुकती है। इसमें शकुन-विचार किया गया है। इसके अनेक दोहे मानससे भी लिये गए है। गोस्वामीजीके केवल इसी ग्रन्थमे सीताके वनवासकी कथा-प्राप्त होती है।

'वैराग्य-सन्दीपिनी' दोहे-चौपाइयोंमें रचा गया लघुकाव्य ग्रन्थ है, जिसमें सन्त महिमाका वर्णन है।

इसकी शैलीसे यह नहीं प्रतीत होता कि यह गोस्वामीजीकी रचना है। सम्भवतः यह उनकी प्रारम्भिक रचना हो।

'गीतावली'में पूरी रामकथा सात काण्डोंमें अनेक राग-रागिनियोंके निर्देशके साथ गेय पदोंमे कही गई है। इसके आरम्भमे रामका बालरूप-वर्णन और अन्तमे रामरूप-वर्णन अत्यन्त मनोरम हुआ है। 'गीतावली' में अनेक पद ऐसे है जो 'सूर-सागर' मे केवल राम-श्याम और सूर-तुलसीके अन्तरके अतिरिक्त ज्यों-के-त्यों आए हैं। इसकी रचना शुद्ध प्रौढ़ और साहित्यिक व्रज भाषामे हुई है।

'कवितावली' मे गंग आदि कवियोंकी कविता-सवैया पद्धतिपर सात काण्डोंमें रामकथा कही गई है। व्रजभाषामे रचे गए इस ग्रन्थकी भाषा बड़ी ओजस्विनी है! हनुमानवाहुकको कुछ लोग इसीके अन्तर्गत मानते है, कुछ लोग पृथक्। ऐसा प्रतीत होता है कि समय-समयपर राम-कथा-सम्बन्धी जो विविध प्रसंग गोस्वामीजीकी वाणीसे विविध छन्दोंमे मुखरित होते रहे, उनका संग्रह आगे चलकर उन्होंने ही या उनके भक्तोंने कर दिया और उसका नाम 'कवितावली' या 'कवित-रामायण' रख दिया।

ऐसा कहा जाता है कि 'कृष्णगीतावली' की रचना वृन्दावन-यात्राके अवसरपर की गई थी। इसमे श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ६१ अत्यन्त सरस और भावपूर्ण पद हैं।

'विनयपत्रिका' की गणना गोस्वामीजीके मुख्य ग्रन्थोंमे की जाती है। कुछ लोग उसे स्फुट पदोंका संग्रह मानते है, किन्तु जिस प्रकार और जिस क्रमसे इसकी रचना हुई है, उसे देखते हुए इसे स्फुट पदोंका संग्रह नहीं कहा जा सकता। 'विनयपत्रिका' के सम्बन्धमे प्रसिद्ध है कि जब तुलसीदासजीने रामनामका व्यापक प्रचार करके जीवोंके उद्धारका मार्ग प्रशस्त करना आरम्भ किया तो कलि घबराया और उसने उन्हें त्रस्त करना प्रारम्भ किया। गोस्वामीजीने हनुमानजीसे सारी स्थिति कही। इसपर हनुमानजीने कहा कि भगवान्‌की सेवामे प्रार्थनापत्र लिखिए तो मै उसे उनके पास पहुँचा दूंगा और तब सारा कष्ट निवृत्त हो जायगा। तब गोस्वामी-जीने यह पत्रिका लिखी जिसपर भगवान् रामने 'सही' की अर्थात् उसे स्वीकार किया। जो पत्रिका गोस्वामीजीने लिखी है, उसका ठीक वही स्वरूप है, जो किसी राजाके पास भेजनेके लिए प्रार्थना-पत्रका होता है। मंगलमय गणनायकी प्रार्थना तो आवश्यक है ही, उसके पश्चात् क्रमसे अनेक देव-देवियोंकी प्रार्थना की गई है। काशी और चित्रकूटकी प्रार्थनाके अनन्तर हनुमानजीसे प्रार्थना तथा रामके तीनों भाइयोंकी स्तुति की गई है। यह सब हो चुकनेपर जगदम्बा जानकीसे निवेदन किया गया है :—

> कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
> मेरिऔ सुधि द्याइवी कछु करुन चलाइ॥

और फिर ४३ से ४८ वे पद तक रामकी स्तुति है। इसके पश्चात् अनेक प्रार्थनाओंके अनन्तर ६४ वें पदसे २७१ वें पदतक महिमा, अपनी दीनता, कलिजन्य दुःख आदिका वर्णन करके २७२ वें से २७६ वें पद तक बाल्यावस्थासे तब तकके दुःख बतलाये गए हैं और भगवान्‌से प्रार्थना की गई है कि आप मेरी पत्रिका स्वयं बाँचें। २७८ वें पदमे हनुमान आदिसे सभामें पत्रिका उपस्थित करनेका निवेदन किया गया है, जिसे लक्ष्मणजीने सबकी रुचि जानकर भगवान्‌के सामने उपस्थित कर दिया। अन्तिम पदमें भगवान द्वारा पत्रिकापर 'सही' होनेकी बात कही गई है। इस प्रकार यह पत्रिका एक प्रकारका खण्ड काव्य है

जिसमें पत्रिकाका पूरा इतिहास अत्यन्त प्रौढ़ ब्रज भाषामें किया गया है। पत्र विश्व साहित्यमें अपने ढंगका निराला है।

गोस्वामीजीकी काव्य-भाषा

जिस समय गोस्वामीजीने काव्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया, उस समय अवधी और ब्रज भाषा-दोनोंका प्रयोग काव्य-जगत् मे भली-भाँति होने लगा था। काव्य-रचनाके लिए ब्रज-भाषाका प्रयोग किसी-न-किसी रूपमें पहलेसे ही चला आ रहा था, किन्तु वह भाषा लोक-व्यवहारकी भाषासे दूर पड़ गई थी। सूरदासजीने उस लोक-व्यवहारकी भाषाका साहित्यिक भाषाके मेलमे लाकर काव्य-भाषाका एक नया चलता रूप प्रदान किया। आगे काव्य-रचनाके लिए यही भाषा आदर्श बनी। उसी प्रकार अवधीका प्रयोग सूफी कवियोंने भी पर्याप्त रूपसे किया था। गोस्वामीजीने अपने काव्योंमे इन दोनोंका प्रयोग इस सुन्दरतासे किया कि दोनों भाषाओंको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया। 'सूर-सागर'मे ब्रजभाषाका जो माधुर्य है, उससे भी बढ़कर माधुर्य गोस्वामीजीकी ब्रजभाषाकी रचनाओंमे मिलता है और अवधीका जो माधुर्य हमे 'जायसी' आदिमें मिलता है, उससे कहीं अधिक बढ़कर गोस्वामीजीकी रचनाओंमे मिलता है। इतना ही नही, गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंमें इन दोनों भाषाओंको माँजकर अधिक परिष्कृत, कोमल और मधुर बना दिया है। दोनों भाषाओंके शब्द और अर्थपर समान रूपसे अधिकार रखनेवाला ऐसा दूसरा कवि नही हुआ।

अवधी और ब्रज भाषाके अतिरिक्त वे संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित और फारसीके भी मर्मज्ञ थे। वे शुद्ध राष्ट्रीय कवि थे जिन्होंने प्रियमान राष्ट्रको नवजीवनका सन्देश दिया, नैतिक चेतना प्रदान की, सामाजिक शील और मर्यादाका पाठ पढ़ाया, आत्मसम्मान और लोक-कल्याणके लिए बड़ेसे बड़ा त्याग करनेकी प्रेरणा दी और केवल भारतके ही नही, विश्वभरकी कल्याणकारी भावनाको सम्पुष्ट किया। इस दृष्टिसे वे केवल भारतके ही नही, विश्वके महाकवि है।

गोस्वामीजीकी रचना-पद्धति

गोस्वामीजीने अपने समयकी पाँचों प्रकारकी काव्य रचना पद्धतियोका प्रयोग किया: १—चारण कवियोंकी छप्पय-पद्धति, २—विद्यापति और सूरकी गीत-पद्धति, ३—सूफियोंकी दोहे-चौपाईवाली पद्धति, ४—सन्तोंकी दोहा-पद्धति, जो नीति और उपदेशके लिए प्रयुक्त होती थी और ५—गंग आदिकी कवित्त-पद्धति।

उन्होंने अवधेश रामकी मुख्य कथा अवधकी भाषामे कथा काव्यके लिए, अवधकी भाषामें प्रचलित दोहे-चौपाई की पद्धतिपर लिखी। यही ग्रन्थ (रामचरितमानस) उनकी सभी रचनाओका सिरमौर हुआ। शीलवश लिखी हुई 'कृष्ण गीतावली'को छोड़ दे, तो गोस्वामीजीने जो कुछ लिखा है, वह अपने आराध्य भगवान् रामकी कथाके ही प्रसंगमे। रामकी यह कथा अनेक छन्दों और काव्यकी प्रचलित सभी शैलियोंमें गोस्वामीजीने इस कौशलसे कही है कि सभी शैलियोंपर उनका समान अधिकार प्रतीत होता है। इस क्षेत्रमें भी उनकी समताका कोई कवि आज तक हिन्दीमे नहीं हो पाया है। गोस्वामीजीकी रचनाओंसे हम इन पाँचों शैलियोंके उदाहरण दे रहे है :—

(१) दोहे-चौपाईवाली पद्धति—गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरितमानसकी इसी

पद्धतिपर या इसी काव्य-शैलीमें है। मानसकी यह शैली इतनी प्रिय हुई कि व्यास लोग प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारतमे मानसकी ही कथा कहने लगे। इसके दो फल हुए---एक तो रामकी कथाका व्यापक प्रचार हुआ और लोगोने रामके आदर्शमय तथा मर्यादापूर्ण जीवनसे शिक्षा लेकर नैराश्यजन्य भावनासे अपना त्राण प्राप्त करके जीवनके उच्च आदर्श ग्रहण किए। दूसरे-सन्तोकी अटपटी बानियोंसे सामाजिक व्यवस्थाके विशृंखल हो जानेकी जो भयावनी आशंका उत्पन्न हो चली थी, वह दूर हो गई। गोस्वामीजीने मानसकी रचना भाषामें तो अवश्य की, किन्तु उसमे संस्कृतकी कोमल-कान्त-पदावलीका सहारा लिया, जिससे वह भाषा पुष्ट और साहित्यिक हो गई। रामचरितमानस इसीलिए आज तक लोगोंका कण्ठहार होता चला आया है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसकी लोकप्रियता बढ़ती ही जाती है। नीचे संस्कृतनिष्ठ और ठेठ दोनों प्रकारकी अवधीके उदाहरण दिए जाते है :—

अमिय मूरिमय चूरन चारु। समन सकल भवरुज-परिवारू।
सुकृत सम्भुतन बिमल बिभूती। मञ्जुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जन-मन मञ्जु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी ॥१॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं कहउँ मै भाई।
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती, ना हित मौन रहब दिन-राती ॥२॥

(२) गेयपदोंवाली गीत-पद्धतिपर गोस्वामीजीकी रचनाएँ कम नहीं है। 'विनय-पत्रिका' और 'गीतावली'—जैसी दो बड़ी-बड़ी पोथियाँ इसी शैलीमे है। सन्तोने भी इस शैलीमे पर्याप्त रचनाए की थी, किन्तु उनका भाषा-साहित्य सम्बन्धी ज्ञान कुछ भी नही था। इसलिए उनकी रचनाएँ साहित्यकी दृष्टिसे विचारके योग्य नहींहै। विद्यापति और सूरने लोकमे चलती भाषामें मधुर, ललित और रसपूर्ण रचना करके इस शैलीको परिपुष्ट किया। गोस्वामीजीने इस शैलीमे दो बड़े-बड़े ग्रन्थ प्रस्तुत करके ब्रजभाषाकी इस शैलीमे और भी बल दिया। विनय-पत्रिका' के आरम्भमे जो सकृतनिष्ठ पदावली आई है, वह अन्यत्र कही नहीं मिलती। साथ ही वह रसके अनुकूल कही मधुर और कहीं ओजपूर्ण है। आगे चलकर पदोंकी भाषा बहुत ही सरल हो गई है, किन्तु उसका लालित्य एवं माधुर्य निरन्तर बना रहता है। गीतावलीके पद तो कही-कही अधिक मार्मिक और भाव-व्यंजक है। दो उदाहरण दिए जा रहे है:—

कौसलेन्द्र नवनील कंजाभतनु, मदन-रिपु कंज हृदि चंचरीकं।
जानकी-रवन सुख-भवन, भुवनैक प्रभु समर भंजन परम कारुणीकं ॥१॥
जौ हौ मातुमतै महँ ह्वैहौं।
तौ जननी जगमें या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहों ॥२॥

(३) कवित्त–सवैया-पद्धतिपर गोस्वामीजीकी रचनाएँ तो अल्प है, किन्तु रसानुकूल भाषाकी योजना अत्यन्त स्वाभाविक और आल्हादकारक है। दो उदाहरण लीजिए :—

बर दन्तकी पंगति कुन्द कली अधराधर-पल्लव खोलनकी।
चपला चमके घन बीच जगं छबि मौतिन माल अमोलनकी ॥
घुंघरारी लटं लटकं मुख ऊपर कुण्डल लाल कपोलनकी।
निउछावरि प्रान करं तुलसी बलि जाउँ लला इन भोलनकी ॥१॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ
लंक लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवार सी उघारी है ॥२॥

(४) चारणोंकी छप्पय-पद्धतिपर हनुमान-बाहुकके कुछ छन्दोंकी रचना बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें की गई है। कवितावलीका यह छन्द लीजिए :—

डिगति उर्वि अतिगुर्वि, सर्व पब्बै समुद्रसर।
ब्याल बधिर तेहिकाल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकण्ठ मुक्ख भर।
सुरबिभान हिम-भानु, संघटित होत परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो॥
ब्रह्माण्ड खण्ड कियो चण्ड धुनि, जबहि राम सिवधनु दल्यो॥

(५) नीतिके उपदेशोंवाला सन्तोंकी सूक्ति-पद्धतिपर 'दोहावली' की रचना हुई है। रामाज्ञा प्रश्नमें भी यही शैली ली गई है। दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

आवत ही हरखें नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कञ्चन बरसै मेह॥१॥
अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करी करतार।
प्रेम बैरकी जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥

गोस्वामीजीका युग

जिस समय गोस्वामीजीका प्रादुर्भाव हुआ उस समय देशमें उन यवन शासकोंका बोलबाला था जो यहाँकी संस्कृति ही मिटा देना चाहते थे। उनका भी शासन स्थिर न होनेसे और दिन-रातके उनके पारस्परिक झगड़ोंसे जनताका जीवन अशान्त और कष्टमय हो गया था। उधर सन्तोंने अपनी अटपटी बानियोंसे सारा सामाजिक जीवन ही विश्रृंखल कर डाला था। इसके पूर्व वज्रयानियोंके वामाचारने हिन्दू समाजको जर्जर कर ही रखा था। जयदेव, विद्यापति और सूरने अपनी रचनाओंसे हिन्दू समाजका हृदय रसाप्यायित अवश्य किया परन्तु सामाजिक जीवनकी मर्यादा और उसकी विधिका कोई स्वरूप या आदर्श सम्मुख न रहनेसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय लोग नही कर पाते थे क्योंकि कृष्णचरितके लोक-मंगलमय लोक-कल्याणकारी, लोकानुरञ्जनकारी और लोक-संग्रही स्वरूपका आदर्श सामने नही आया। अतः, रामके मर्यादापूर्ण जीवनका आदर्श उपस्थित करके गोस्वामीजीने यह कार्य पूर्ण कर दिया। यदि तुलसीदास न होते तो निश्चय ही हिन्दू समाज डूब गया होता। गोस्वामीजीने रामलीलाका व्यापक प्रचार करके रामके उदात्तचरित्रका लोक-जीवनमें व्यापक प्रचार कर दिया।

गोस्वामीजीका दार्शनिक पक्ष

गोस्वामीजी विशुद्ध रूपसे भक्त कवि थे। उन्होंने अपने सभी ग्रन्थोंमें एक मात्र भक्तिका ही प्रति-

पादन किया है। मानसमें स्थान-स्थानपर इसे योगादिसे श्रेष्ठ इसलिए बताया गया है कि भक्त अपने आराध्यके प्रति जब आत्मसमर्पण कर देता है तब उसे और कुछ करना शेष नहीं रह जाता। फिर तो उसकी सब व्यवस्था, उसके योग क्षेमका पूरा दायित्व आराध्य पर ही आ जाता है। अन्य उपासना-पद्धतियोंमें जहाँ स्खलित और विचलित हो जानेके अनेक अवसर होते हैं वहाँ भक्तके सामने इसका कोई भय नहीं होता। वह सदा निर्भय रहता है। काकभुशुण्डिने जिस उत्तम ढंगसे भक्तिका प्रतिपादन किया और उसे श्रेष्ठतर साधन ठहराया है, उसका खण्डन करके अन्य उपासना-विधियोंको श्रेष्ठतम नही बताया जा सकता। ज्ञान और कर्मकी महत्ता स्वीकार करते हुए भी भक्तिको उन्होंने श्रेष्ठ बताया है और इस युगमे उसे ही एक मात्र साधन माना है।

कलि हरि-भजन न साधन दूजा।

तुलसीदासजीने रामको ही अपना सर्वस्व और एक मात्र आराध्यदेव माना है। उन्होंने जगतको सत्य, असत्य और सत्य भी असत्य भी माननेवालोंका खण्डन करके कहा है कि यह जगत सत् और असत्से विलक्षण (सदसद्‌विलक्षण) बताते हुए कहा है कि यह सत् है, न असत् है, न सत् और असत् ही है।

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपुनि पहिचानै॥

तुलसीदासजीने रामका जो स्वरूप खड़ा किया है उसमे रामके जगदुद्धारक-स्वरूपके कारण उनके प्रति पूज्य भाव सदा बना रहता है। इसी कारण उनका लोकरञ्जनकारी रूप अधिक निखर आया है। यह विशेषता अन्य किसी कविमें नहीं मिलती। इस भावनासे प्रेरित होकर ही गोस्वामीजीने अपने पात्रोंको सर्वत्र आदर्श रूपमें उपस्थित करते हुए, उनके शील, उनकी मर्यादा, उनके चारित्रिक वैशिष्टताका सदा ध्यान रखा है। ऐसे पात्रोंके चरित्रका उत्कर्ष दिखानेके लिये कुछ हीन चरित्रोंवाले पात्र भी आए है जिनके आ जाने से काव्यका सौष्ठव बढ़ गया है। शील और मर्यादाका ध्यान रखनेके कारण उन्होंने श्रृंगार का वर्णन भी कहीं अमर्यादित नहीं होने दिया है। सीताजीके रूप वर्णनमे एक भी शब्द ऐसा नही है जिसे पढ़कर कोई नाक-भौं सिकोड़ सके। इसी प्रकार उमा-महेश्वर-विवाहके पश्चात् गोस्वामीजीने स्पष्ट लिख दिया है :—

जगत-मातु-पितु सम्भु-भवानी।
तेहि सिंगार न कहौं बखानी।

इसी प्रकार भरतके शीलका वर्णन करके गोस्वामीजीने उसे पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। ऐसे कितने ही प्रसंग मानसमे स्थान-स्थान पर भरे पड़े है।

मार्मिक स्थलोंका चित्रण

गोस्वामीजीकी सबसे बड़ी विशेषता मार्मिक स्थलोंके चित्रणमें पाई जाती है। जहाँ भी ऐसे प्रसंग आए है उनका वर्णन बहुत ही भावपूर्ण भाषामें किया गया है। जनककी फुलवारी, राम-सीताका परस्पर दर्शन, धनुष-भंगके पूर्व और पश्चात् सीताकी मनःस्थिति, राम-वनवासके पश्चात् भरतका प्रसंग, लक्ष्मण-मूर्च्छा, रामके लौटते समय हनुमान और भरतका मिलन आदि ऐसे प्रसंग हैं जो बरबस मनको खींच लेते हैं। रामके लौटनेके ठीक पूर्व भरतकी मनस्थिति देखिए :—

जो करनी समुझें प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

गोस्वामीजीका काव्यानुपात

अनेक कवि अपने काव्योंमें अनुपातका ध्यान नहीं रखते। किसी प्रसंगमें यदि वे किसी वस्तुका वर्णन करने लगते हैं तो उसका विस्तार इतना बढ़ा देते है कि मूल कथाका रस ही समाप्त हो जाता है। प्रबन्ध काव्योंमे यदि अनुपातका ध्यान न रखा जाय तो वह व्यर्थ हो जाता है। गोस्वामीजीकी रामकथा (मानस) में ऐसा दोष कहीं नहीं पाया जाता। उन्होंने इतिवृत्त, वस्तु या व्यापारका वर्णन, भावव्यञ्जना और सम्वाद सबके अनुपातका इतना ध्यान रखा है कि कथाके प्रवाहमे कहीं भी व्याघात नही पड़ता। कोई भी वर्णन न तो लम्बा होने पाया है न न्यून।

रामकी कथाको रसपूर्ण बनाना ही उनका उद्देश्य था। अतः न तो वे किसी प्रकारके चमत्कार-प्रदर्शनके फेरमें पड़े और न शब्दोंका रूप विकृत करनेके फेरमें। स्वाभाविक रूपसे जो कुछ जहाँ आता गया, अपने आप खपता गया।

इस प्रकार हम देखते है कि गोस्वामीजी केवल हिन्दीके ही नहीं विश्वके सर्वश्रेष्ठ कवियोंके मूर्धन्य है।

अवधीके अन्य कवि

गोस्वामीजीकी रचनाओंके अतिरिक्त कुछ अन्य लोगोंकी भी रचनाएँ आगे चलकर इस प्रकार की मिलती है जिन्हें चरितकाव्यकी श्रेणीमें रखा जा सकता है। जौनपुरके जैन कवि बनारसीदास (१६४३ मे जन्म) ने अवधीमे 'अर्द्ध कथानक' नामक अपना जीवनचरित लिखा। इसमे सम्वत् १६९८ तककी घटनाएँ दी हुई है। हिन्दीकी यह पहली आतम-कथा है, इसलिये इसका अधिक महत्त्व है। १८ वी शताब्दीमे रचा हुआ सबलसिहका 'महाभारत', श्रीपति-कृत 'कर्णपर्व', क्षेमकरण-कृत 'कृष्णचरितामृत', सहजराम-कृत 'प्रह्लाद-चरित' और 'रघुवंश दीप', मुकुन्दसिंह-कृत 'नलचरित', बुलाकीनाथ-कृत-रामायण, साधारण कोटिकी रचनाएँ हैं। १९ वीं शताब्दीमे झामदासने 'श्रीरामायण', सूरजदासने 'रामरहारी' (लवकुश कथा), नवलदासने 'भागवत दशम स्कन्ध', बेनीबख्सने 'हरिचन्द-कथा', मधुसूदन चौबेने 'रामाश्वमेध' और सूरदासने 'रामजन्म' (विवाह तककी कथा) लिखा। २० वी शताब्दीमें सहजरामने रामायण (सुन्दरकाण्ड) लिखा। अभी कुछ दिन पूर्व श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रने दोहे चौपाईकी पद्धतिमे अपना विशाल कथा-काव्य 'कृष्णायन' प्रस्तुत किया है।

मधुसूदन चौबे

ऊपर जो सूची दी गई है उनमेसे दो-एकको छोड़कर प्रायः सभी अप्रकाशित है। मधुसूदन-कृत 'रामाश्वमेध' उत्तम काव्य है। मधुसूदनकी भाषा गोस्वामीजीकी भाषासे इतनी मिलती-जुलती है कि उसे रामचरित-मानसका परिशिष्ट कहा जा सकता है। 'रामाश्वमेघ'की कथाका आधार 'पद्मपुराण' है।

गोस्वामीजीके अनुकरणमें चौबेजीको पर्याप्त सफलता मिली है। यद्यपि इसका प्रचार बहुत कम हो पाया है, किन्तु ग्रन्थ अत्यन्त उच्च कोटिका है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

सिय रघुपति पदकञ्ज पुनीता। प्रथमहि वन्दन करौं सप्रीता॥
मृदु मञ्जुल सुन्दर सब भाँती। ससिकर सरिस सुभग नखपाँती॥
चिन्तामणि पारस सुरधेनू। अधिक कोटिगुन अभिमत देनू।
जन-मन-मानस रसिक मराला। सुमिरत भञ्जन बिपति बिसाला।

मधुसूदन चौबे मथुराके रहनेवाले थे। इन्होंने इस ग्रन्थकी रचना सम्वत् १८३९ में की।

अध्यवसान या रूपक-काव्य (ऐलेगरी)

अवधीके प्राप्त साहित्यमे काल-क्रमसे सबसे पहली रचना सूफी कवि मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' है। इसके पश्चात् ईश्वरदासकी 'सत्यवती कथा' है जो कल्पित कथाका आधार लेकर चली है। सत्यवती-कथामे पाँच-पाँच अर्द्धालियोंपर एक दोहा है और ५८ वें दोहेपर पुस्तक समाप्त हो गई है। इसकी भाषा अयोध्याके आस-पास की ठेठ अवधी है।

आगे चलकर सूफी कवियोंने यही क्रम ग्रहण किया। इस प्रकारकी सबसे पहली रचना कुतबन-की 'मृगावती' (सम्वत् १५५८) है। इस कथाके द्वारा कविने प्रेममार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप दिखाया है। इसके पश्चात सम्वत् १६०२ मे मंझनने 'मधुमालती' की रचना की। 'मधुमालती' के वर्णन अपेक्षाकृत अधिक हृदयग्राही और विस्तृत हैं। कल्पना भी विशद है। किसी समय 'मधुमालती' और 'मृगावती' का इतना अधिक चलन था कि बनारसीदासने भी अपने अर्द्ध-कथानकमें इनकी चर्चा की है।

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसीका स्थान सूफी रचनाकारोंमें सबसे प्रमुख है। उनकी भाषामें भी ठेठ अवधी (पूर्वी) की जो मिठास है वह कम कवियोंमे पाई जाती है। जायसीके पूर्व सूफी कवियोंने अपने मतका प्रचार करनेके लिए कल्पित कथा, अवधी भाषा और दोहे-चौपाईकी शैली अपना रखी थी। जायसीने भी यह सारा ढंग अपनाया किन्तु प्रेमाख्यान लिखनेकी उनकी प्रणाली अन्य सूफी कवियोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है तथा उसमें सूफी भावोंका चित्रण भी मनोरम है। जायसीने अपने पूर्वके पाँच काव्योंकी चर्चा की है—'स्वप्नावती', 'मृगावती', 'मधुमालती', 'प्रभावती' और 'मुग्धावती'। उनमेसे 'मृगावती' और 'मधुमालती' का ही उद्धार हो सका है। जायसीके पश्चात् भी सूफी मतके प्रचारके उद्देश्यसे इस प्रकारके काव्य लिखे गए किन्तु इस क्षेत्रमे जो स्थान जायसीको प्राप्त हुआ वह औरोंको नहीं मिल सका।

जायसीका जीवनवृत्त

जायसीने अपना बहुत कुछ जीवन-वृत्त अपने ग्रन्थोंमे लिख दिया है। अपने जन्मस्थानके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है :—

जायस नगर धरम अस्थानू। नगर क नाँव आदि उदयानू।

अपने जन्मकालके सम्बन्धमें आखिरी कलाममें इनका कहना है :—

भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।

फिर आखिरी कलामका रचनाकाल उन्होंने इस प्रकार दिया है :—

नौ से बरस छतीस जो गए। तब एहि कथा क आखर कहे।।

इससे यह अर्थ निकलता है कि इनका जन्म हिजरी ९८ सौ सदीके पश्चात् हुआ। तीस वर्ष की अवस्थामे (९३६ में) उन्होंने कविता की। इस प्रकार वे ९०६ में उत्पन्न हुए। विक्रम सम्वत्के अनुसार यह समय लगभग १५५५ मे पड़ता है।

पद्मावतके सम्बन्धमें जायसीने कहा है—

सन् नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा।।

इसके अनुसार २१ वर्षकी अवस्थामे उन्होने पद्मावतकी रचना आरम्भ की। किन्तु इस ग्रन्थके आरम्भमे शेरशाहकी प्रशंसा है। इससे यह अनुमान होता है कि ग्रन्थ १९-२० वर्षोकी लम्बी अवधिमे जाकर पूरा हुआ और शेरशाहवाला अंश बादमे जोड़ दिया गया। जायसीकी मृत्युका काल ९४९ हिजरी लिखा है। इस प्रकार जायसीकी मृत्यु ४३ वर्षकी अवस्थामे हुई।

ये काने और कुरूप हानेके साथ ही कुछ ऊँचा भी सुनते थे। शेरशाह जब इन्हें देखकर एक बार हँसा तो इन्होंने निर्भीकतापूर्वक कहा—मोहिंका हँसेसि कि कोहरेहि" (मुझपर हँसे या मेरे बनानेवाले कुम्हार (ईश्वर) पर। ये पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे और इसीसे अमेठीके राजघरानेमें इनका बहुत सम्मान था। अमेठीसे दो मील दूर जंगलमें ये रहा करते थे। वहीं इनकी मृत्यु भी हुई।

जायसीने अपने तीनों ग्रन्थोंमें अपने गुरुका उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चिश्ती सम्प्रदायके निजामुद्दीन औलियाकी शिष्य परम्परामे थे जिसकी दो शाखाएँ थी—एकमे सैयद अशरफ जहाँगीर हुए और दूसरीमे शेख मुहीउद्दीन हुए। इन्होंने दोनों परम्पराओंका अपने गुरु रूपमे स्वीकार किया है।

जायसीकी रचानाएँ

जायसीके रचे ग्रन्थोंकी संख्या बीस कही जाती है किन्तु इनमें आज तीन ही उपलब्ध है—'अखरावट', 'आखिरी कलाम' और 'पदमावत'।

'अखरावट' को सूफी-तत्त्व-मंजूषा कह सकते है। इसमें वर्णमालाके एक-एक अक्षरको लेकर ईश्वर, सृष्टि, जीव, संसारकी असारता, ईश्वरीय प्रेम और ईश्वर-प्राप्तिके साधनोंका वर्णन, बोध-सुलभ रीतिसे किया गया है।

'आखिरी कलाम' में कयामतके दिन अन्तिम निर्णय के दिन का वर्णन है।

'पद्मावत' ही वस्तुतः उनको अमर बनानेवाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थसे विदित होता है कि जायसीको प्रेमकी पीरसे भरा कवि-हृदय मिला था। इसमें सात अर्द्धालियोंके पश्चात् एक दोहेका क्रम रखा गया है। इसकी रचना मसनवी (दो-दो चरणोंकी तुकान्त रचना) पद्धतिपर हुई है। आरम्भमें ईश्वर, मुहम्मद

साहब, खलीफाओं और तत्कालीन राजा तथा गुरुकी स्तुति की गई है। इसके पश्चात् कथाका प्रारम्भ किया गया है जो सर्गबद्ध न होकर प्रसंगबद्ध है। इसमे चित्तौड़की महारानी पद्मिनीको आधार बनाकर एक कल्पित कथाका रूपक खड़ा करके उस कथाके माध्यमसे सूफी सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। इसीलिए कहानीके उस भागमें जहाँ प्रेम-सम्बन्धी व्यापारोंका वर्णन आया है वहाँ ग्रन्थ बहुत ही सरस तो हो ही गया किन्तु ग्रन्थकारने सूफीवादके प्रेम-पन्थका भी भली-भाँति व्यक्त करनेका अवसर हाथसे नहीं जाने दिया। इसका पूर्वार्द्ध सर्वथा कल्पित है। अतः यह शुद्ध रूपक-काव्य है। केवल पात्र और आगेकी कुछ घटनाएँ ऐति-हासिक है। इसमे ५८ प्रसंग है जिनमें चित्तौड़के राजा, रत्नसेन और सिंहलकुमारी पद्मिनीके विवाहकी कथा तथा आगे चलकर अलाउद्दीनके पद्मिनीके विवाहकी कथा तथा आगे चलकर अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनीकी ख्याति सुनकर चित्तौड़पर आक्रमण करने, पद्मिनीके कौशलसे अलाउद्दीनके मूर्ख बन जाने तथा चित्तौड़में प्रवेश करनेपर पद्मिनीके स्थानपर राखका ढेर पानेका विवरण विस्तारके साथ दिया हुआ है।

जायसीकी भाषा

हम पहले बता चुके है कि पश्चिमी अवधीपर ब्रजभाषाका प्रभाव कुछ-कुछ पड़ा है। इसका मुख्य कारण यह है कि अवधीके अधिकांश रचनाकार, विशेषकर सूफी कवि पठित नही थे। उन्होंने इस बातका विचार करके लिखा ही नही कि हम अवधी लिख रहे हैं या ब्रज-भाषा। उन्होंने अपने आस-पासकी भाषामे रचना की। यही उनकी बोलचालकी भाषा थी। अन्य प्रदेशवालोंसे भी उनका सम्पर्क रहता था इसलिए उनकी कवितामे बोलचालकी भाषाके भी बहुत शब्द आ गए है। काव्य-रचनाके प्रसंगमें उपयुक्त शब्द न मिलनेपर शब्दोंको तोड़ने-मरोड़नेकी प्रवृत्ति अवधी और ब्रज भाषा दोनोंके कवियोंमें बराबर मिलती है। जायसी भी इस दोषके अपवाद नही थे। उन्होंने बराबर अन्य प्रदेशोंकी भाषाके शब्दोंका प्रयोग मूल रूपमे ही किया है। नीचे हम इस प्रकार के कुछ उदाहरण दे रहे है :—

१– **बेधि रहा सगरौ संसारा।**

२– **लागेउ माघ परै अब पाला।**

३– **ऐसे जानि मन गरब न होई।**

इन उदाहरणोंमे 'सगरौ' शब्द शुद्ध रूपसे ब्रज भाषाका है। 'लागेउ' ब्रजभाषाके 'लाग्यौ' का ही रूप है। अवधी रूप 'लगा' होगा। 'ऐसे' भी ब्रज भाषाके 'ऐसो' का एक रूप है जिसमें एक मात्रा घटा दी गई है। अवधीमें इसका रूप अस या अइस होगा। इस प्रकारके प्रयोग पद्मावतमें एक दो नहीं सैकड़ों पाये जाते है।

बिरिछ उपारि पेड़ि स्यों लेई।

'स्यों' शब्द बुन्देलखण्डी है। इसका प्रयोग 'सह' के स्थानपर होता है। केशवने लिखा है—'अलिस्यों सरसीरुह राजत है।' जायसीने अरबी-फारसीके कठिन और दुर्बोध शब्दोंका भी प्रयोग पर्याप्त संख्यामें किया है। संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग भी कही-कहीं पाया जाता है। इनके अतिरिक्त जायसीकी भाषामे शब्दोंके बिगड़े हुए रूप कम नहीं मिलते :—

१– कीन्हेसि राकस भूत परीता ।
२– कीन्हेसि भोकस देव दईता ।
३– वह अवगाह दीन्ह तेहि हाथी ।

परीता, दईता और हाथी शब्द क्रमशः 'प्रेत, दैत्य और हाथ' के लिए आए हैं। राजस्थानीके चारण कवियोंकी भाँति उन्होंने 'सुक्ख सुहेला उग्गवै, दुःख झरे जिमि मेह' भी लिखा है।

ऊपर दिए हुए उदाहरण इस बातके सूचक हैं कि जिस ग्रन्थमे इस प्रकारके प्रचुर प्रयोग हुए है उसकी भाषा ठेठ अवधी नहीं कहीं जा सकती। यह अवश्य है कि जायसीका पद्मावत मुख्य रूपसे बोलचालकी अवधीमें है और अन्य सूफी कवियोंने जो मार्ग दिखाया था उसपर चलकर जायसीने अवधीमे ग्रन्थ रचना करनेमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की ।

जायसीका वर्ण्य-विषय

जायसीपर विचार करते समय केवल पद्मावतकी ही बात सामने आती है। काव्यकी दृष्टिसे उनकी अन्य रचनाओंका कुछ भी महत्त्व नही है। पद्मावतमे चितउर (चित्तौड़) के राजा रत्नसेनका सिहल कुमारी पद्मावतीके साथ विवाह और अन्तमे युद्धमे रत्नसेनके खेत रहने तथा पद्मावतीके सती हो जानेका वर्णन है। इसमें विवाहतककी कथा कल्पित है और आगेकी ऐतिहासिक किन्तु यह कथा ऐतिहासिक काव्यकी दृष्टिसे नहीं, रूपक काव्यकी दृष्टिसे लिखी गई है जैसा कि जायसीने ग्रन्थकी समाप्ति पर स्वयं कहा है :—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरू सुआ जेई पन्थ दिखावा। बिनु गुरु जगतको निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोई न एहि चित बन्धा।
राघवचेतन सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू ।।

इसलिए जायसीका वर्ण्यविषय तो है सूफी मत जिसके प्रचारके लिए कविने हिन्दू समाजमें प्रचलित कहानीको हिन्दुओंकी बोलीमे इस सहृदयताके साथ कही कि उनके जीवनकी मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओंके साथ कविके हृदयका उदारतापूर्ण पक्ष भी सामने आ गया। कुतबन और मंझनने जो मार्ग प्रदर्शित किया था उसपर चलने, उसको पुष्ट करने और पद्मावतके वर्ण्य-विषय द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानोंके रागात्मक सम्बन्ध दृढ़ करनेमे जायसीको अद्भुत सफलता मिली।

जायसीकी काव्यगत विशेषताएँ

जायसीकी भाषामें बहुत दोष आ गए है फिर भी अवधीपर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी भावव्यञ्जना, मार्मिकता और कवि-सुलभ प्रतिभा कहीं-कहीं अत्यन्त उत्कर्षपर पहुँच गई है। पद्मावतसे जायसीकी हिन्दू-भाव मर्मज्ञता और हिन्दू-पुराण-शास्त्रोंकी अभिज्ञताका भली-भाँति परिचय मिलता है। इसी से वे हिन्दू जीवनके रहस्योंका चित्रण सहानुभूतिपूर्वक एवं निरपेक्षताके साथ कर सके। रहस्यवादके चित्रणकी उनकी प्रणाली तथा वर्णन-शैली सभी उत्तम है। कथाका चुनाव करने और उसका

अन्त करनेमें भी उन्होंने अपनी कुशलता दिखाई है। कोई कल्पित कथा न लेकर उन्होंने ऐसी ऐतिहासिक कथा ली जिसपर प्रत्येक हिन्दू गर्व करता था और इसीलिए उस कथाके मर्मस्पर्शी स्थलोंका वर्णन करनेमें वे सफल हो सके। हाँ, उस कथामे उन्होंने स्वच्छन्दतापूर्वक अन्य अनेक घटनाएँ यथास्थान जोड़ दी हैं।

जायसी और हिन्दी साहित्य

आचार्य शुक्लजीने जायसीके काव्यकी समीक्षा लिखकर वस्तुतः उसे प्राण-दान दिया। हिन्दीके कवियोंमें उनकी गणना पहले नहीं की जाती थी। इसका एकमात्र कारण यह था कि जायसीका ग्रन्थ फारसी लिपिमे लिखा गया था। उसमें सूफी मतका प्रतिपादन था और नायक-नायिकाके ऐतिहासिक होते हुए भी उसकी कथाका एक अंश कल्पित था। इन सब कारणोंसे हिन्दू जनताको आकृष्ट करनेवाले तत्त्व उसमें बहुत कम थे। सूफीवाद भी कभी लोकप्रिय न हो सका, अतः ग्रन्थका प्रचार भी बहुत ही कम हुआ। पहले कबीर और फिर तुलसी-सूर ऐसे छा गए कि केवल राम-कृष्ण सम्बन्धी काव्यके लिये ही स्थान रह गया। श्रृंगार और शौर्य-पराक्रम-सम्बन्धी काव्यके लिए कविताकी तबतक की मान्य परिभाषाओंके साथ भी जायसी-की कविता मेल नही खाती थी। इसीलिए उनका पद्मावत दबा पड़ा रहा।

रूपक काव्योंकी परम्परा जायसीके पश्चात् भी कुछ दिनों तक चलती रही। सूफी कवियोंमें जायसीके पश्चात् उसमान-कृत 'चित्रावली' तथा नूरमुहम्मद-कृत 'इन्द्रावती' और 'अनुराग-बाँसुरी' का मुख्य स्थान है। शेख निसारने 'यूसुफ-जुलेखां' और भूपनारायणने 'कथा चार दरवेश' १९ वीं शताब्दीमे लिखी। २० वीं शताब्दीमें प्रतापगढ़के ख्वाजा अहमदने नूरजहाँ और गाजीपुरके मुहम्मद नसीरने चित्रमुकुटकी कथा एवं प्रेमदर्पण या यूसुफ-जुलेखां लिखा। ये समस्त रचनाएँ साधारण कोटि की है। वस्तुस्थिति यह है कि चरित काव्योंमें रामचरितमानस एवं रूपक काव्योंमें पद्मावतके समीप तक भी पहुँच सकने वाले ग्रन्थ नहीं तैयार हो पाए, उनके जोड़का पाना तो दूरकी बात थी।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

द्वारकाप्रसाद मिश्र मध्यप्रदेशके रहनेवाले हैं। रामायणके ढंगपर उन्होंने कई वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् कृष्णायन नामका एक महाकाव्य दोहे-चौपाईके क्रमसे कृष्णचरितपर लिखा। यह श्रीकृष्णके बिखरे हुए चरित्रोंको एक सूत्रमें पिरोकर प्रबन्धके रूपमे लिखा गया है और भाषा तथा शैलीकी दृष्टिसे तुलसीके मानसकी छाया ग्रहण की गई है। इसमे एक ओर पुरानी परम्पराको विकसित करनेका प्रयास है, दूसरी ओर यह सम्मार्जित संस्कृतनिष्ठ भाषामे नवीन व्याख्या, विचार और अभिव्यक्तिसे युक्त है।

कृष्णायनकारने यह सिद्ध कर दिया है कि अवधीमें अब भी प्रबन्धत्व और चरित्र-सर्जनकी शक्ति उसी प्रकार मौलिक रूपसे विद्यमान है जिस प्रकार तीन चार सौ वर्ष पूर्व थी।

अबतक अवधीका रामत्व शील, शक्ति और सौन्दर्यका प्रतीक था किन्तु उसे कृष्णत्वने भोग और योग, राग और विराग, शक्ति और दया, उत्साह और पराक्रम, राजनीति और धर्मकी वह समन्वयकारी शक्ति दी जिससे साहित्यके छूटे हुए प्रायः सभी आदर्शोंका उद्बोधन हुआ। इसके कृष्ण विद्यापतिके रसिया, सूर के दैवी आरोपोंसे पूर्ण अवतारी, रीतिकालके छैले और भागवतकारके परात्पर ब्रह्म ही नहीं, वरन् महान्

क्रान्तदर्शी कूट राजनीतिज्ञ, कुशल राजा, कर्मठ कर्मयोगी और लोकप्रिय महापुरुष भी हैं। अत्याचारोंका विरोध एवं दमन करनेके साथ ही साथ नाशमेंसे निर्माण और प्रलयके पेटसे सृष्टिके अंकुर निकालनेमे समर्थ युगके नेताके रूपमे प्रतिष्ठित है।

इस दृष्टिसे यह एक समन्वयकारी विशाल काव्यग्रन्थ है। इसमे कृष्णके कर्मयोगका विस्तार, बाल्यकाल, यौवनकाल, एवं प्रौढ़ावस्थाके उचित वात्सल्य, प्रेम और नैतिक बलमें सन्धि बनाकर पत्थरको फोड़कर निकली हुई दूबके समान है।

सम्पूर्ण काव्यमे विकासात्मक, विचारात्मक एवं भावात्मक तत्व भरे पड़े है। इससे प्रबन्धत्वके साथ-साथ मार्मिक जीवन घटनाओंका सविस्तर गुम्फन है।

अवधीका मुक्तक-काव्य

अवधीमें मुक्तक-काव्यकी रचना बहुत कम हुई है। गोस्वामीजीके कुछ दोहों, सोरठों और बरवै छन्दोंके अतिरिक्त रहीमका बरवै नायिका भेद ही उस समयकी स्फुट रचनाएँ है। सूफी कवियोंने कथाकाव्य ही लिखे। अवधीके अन्य रचनाकारोंने भी कोई न कोई कथा ही लिखी है।

इधर कुछ दिनोंसे लोक-साहित्यकी बड़ी चर्चा है। सभी भाषाओं और बोलियोंमें लोक-साहित्य-सम्बन्धी रचनाएँ धड़ाधड़ प्रस्तुत की जा रही हैं। नागरीके इस युगमें भी इन भाषाओं या बोलियोंकी कुछ पत्रिकाएँ निकलती है। जब से लखनऊमे रेडियो केन्द्रकी स्थापना हुई है तबसे अवधी साहित्यिक-गीत और लोकगीत बराबर सुननेको मिला करते हैं। अवध प्रदेशके कवि सम्मेलनोंमें भी इस प्रकारकी रचनाएँ सुननेमें आती है। इस समय अवधीमें रचना करनेवाले कितने ही अच्छे कवि हैं। द्वारका प्रसाद मिश्रका उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। इस युगमे एकमात्र उन्होने ही अवधीमे प्रबन्ध काव्य लिखा है। अन्य सभी कवियोंने मुक्तक ही लिखे है। चन्द्रभूषण त्रिवेदी (रमई काका) के तीन काव्य संग्रह (बौछार, भिनसार और फुहार) प्रकाशित हो चुके हैं। कानपुरके वागीश शास्त्रीका छोटा-सा संग्रह 'ठोकर' नामसे प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त, वंशीधर शुक्ल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, युक्तिभद्र दीक्षित, केशवचन्द्र वर्मा, बेकलजी, रमई काका, श्याम तिवारी आदि ने अवधीमे अच्छे-अच्छे गीतोंकी रचना की है। आजका युग अधिकतर गीतकार ही उत्पन्न कर रहा है। अतएव अवधीमें भी गीत ही लिखे जा रहे हैं। अवधीके वर्तमान गीतकार किस प्रकारकी रचनाएँ कर रहे है इसके दो उदाहरण देकर अवधी साहित्यकी चर्चा समाप्त की जाती है :—

एहो निसापति ! ऐसे सासनु तुम्हारे है कि,
गुनसील कम्बलमें संकट महान माँ।
जेतने तुम्हार तालमेली हैं सनेही मीत,
कुमुद कुमुदिनी हैं फूली अभिमान माँ॥
मेड़हा सियार भरे लेत हैं भँभारी निज,
गीदड़ उड़ान भरैं अब तौ गुमान माँ।

चकई चकोर चुनें चिनगी बिचारे मुंइ।
तुम्हारे सहारे चढ़े उल्लू आसमान माँ।।

—रमई काका

यह कवित्त है। अवधीमें कवित्त सवैया आदिकी रचना प्राचीन कवियोंने नहीं की है। इस प्रकारके प्रयाससे अवधी इस शैलीमें भी मँज जायगी। इस अन्योक्तिके व्याजसे वर्तमान शासनके-स्वरूप पर व्यंग्य किया गया है।

परियनके मुंह अइस चिकनई चमकई मोरि दुवारि।
छाहँ करय निमियां अलबेली, गझिन डारि फललाय।
फुलवनसे माती रस-भीनी झोगदनि फरय अघाय।।
जेहिके पतियनि कां छुइछुइ कै बेना झलइ बयारि।
परियनके मुंहं अइस चिकनई चमकई मोरि दुवारि,
सावन रसय अकास बवरिया लमय बिजुरिया सारी,
धानी धरती झलसआ पउंढ़य उहै नीविकी डारी।।
सराबोर दिन राति करय मन कजरिन कै बौछारि।
परियनके मुंह अइस चिकनई चमकई मोरी दुवारि।।

——श्याम तिवारी

ब्रजभाषा साहित्य

ब्रजभापाका केन्द्र चौरासी कोसमे फैला ब्रजमण्डल है जिसके अन्तर्गत, मथुरा, वृन्दावन, आगरा, अलीगढ और हाथरसका प्रदेश आता है। लोक-व्यवहारमे भी ब्रजभाषाका क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। दक्षिण-पश्चिममे यह आगरा, भरतपुर, करौली, ग्वालियरके पश्चिमी भाग, धौलपुर, जयपुरके पूर्वीभाग, अुत्तरकी ओर गुड़गांव, अुत्तर पूर्वकी ओर एटा, मैनपुरी, अलीगढ़, बुलन्दशहर, बदायूँ, बरेली होते हुए नैनीतालकी तराई तक फैली हुई है। बुन्देलखण्डमे भी कुछ परिवर्तनोंके साथ ब्रजभाषा ही बोली जाती है, इसलिए बुन्देलखण्डीको अलग भाषा न मानकर इसीका रूप मानना चाहिए।

इस भाषाका प्रचार मध्यकालमें इतना अधिक था कि हिन्दी पढ़े-लिखे लोग इसी भाषामे अधिकतर रचनाएँ करते थे। हिमालयकी तराईसे लेकर विन्ध्यके उत्तरतक और राजस्थानके पूर्वी भागसे लेकर मगधके डाँड़ेतक साहित्यमें इसी भाषाका एकछत्र राज्य था। प्रत्येक साहित्यकारको इसी भाषाका प्रौढ़ ज्ञान रखना पड़ता था, तभी तो दासजी कह गए है—व्रजभाषा हेतु व्रजवास ही न अनुमानौ।

ब्रज-भाषाकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृतसे हुई है। शौरसेनी प्राकृतका क्षेत्र गुजरात, राजस्थानसे लेकर देशके उस भूभागतक है जहाँकी भाषा ब्रज मण्डलकी भाषा है। आगे चलकर इसका भी क्षेत्र भिन्न होगया और राजस्थानमे राजस्थानीका, गुजरातमें गुजरातीका तथा ब्रजमण्डलमे स्थानीय बोलियोंका विकास हुआ और उनमें साहित्य-सर्जन भी होने लगा। लोक- व्यवहारकी ये भाषाएँ साहित्यकी भाषाएँ बन गई और उनके स्वरूप भी भिन्न हो गए। ब्रजभाषामें रचे हुए प्रारम्भिक ग्रंथोंकी आज कोई जानकारी हमें नहीं है।

पृथ्वीराज-रासोकी भाषापर ब्रजभाषाका पर्याप्त प्रभाव है। उसमें कितने ही शब्दरूप तो शुद्ध ब्रजभाषाके मिलते हैं। राजस्थानीके कितने ही कवियोंने पिंगलमें अर्थात् ब्रजभाषामें रचनाएँ की है। खुसरोंकी भी कुछ रचनाऍं ब्रजभाषामे है। नामदेवने भी कुछ रचनाएँ शुद्ध ब्रजभाषामें की हैं। इस प्रकार हम देखते है कि ब्रजभाषाकी रचनाऍं हमें १३ वीं शताब्दीसे बराबर मिलती आ रही है और जो रचनाऍं मिली है वे इतनी पुष्ट और शुद्ध भाषामे है कि प्रतीत होता है कि कमसे कम दो सौ वर्ष पूर्वसे उसमें साहित्य-रचना अवश्य होती आ रही होगी।

किन्तु कविवर सूरदासजीने उस साहित्यिक भाषाको लोक-व्यवहारकी भाषासे प्राणवान् बनाया और ब्रजराज कृष्णका गुणगान करके उसमें वह शक्ति फूँक दी कि ब्रज भाषा आगे चलकर एक प्रकारसे उत्तर भारतकी ऐसी राष्ट्रीय और साहित्यिक भाषा हो गई कि असमके कुछ कवियोंने भी ब्रजभाषामें रचना की।

सूरदासजीके पश्चात् ब्रजभाषामें अधिकतर रचनाऍं कुछ समयतक तो कृष्णको ही लेकर हुई किन्तु आगे चलकर इसमें सभी प्रकारका साहित्य रचा जाने लगा। सूरदासजी ही वस्तुतः ब्रजभाषाके प्रथम-महा कवि है। शिवसिंहसरोजमे तो उनके पूर्वके सेन नामक किसी कविका भी उल्लेख हुआ है और कालिदास त्रिवेदीने अपने हजारामे उक्त कविका एक कवित्त भी उद्धृत किया है किन्तु इस कविका काल भी सन्दिग्ध है और फिर उसकी अपेक्षा तो सन्त कवियों तथा नामदेवने ही ब्रजभाषामे बहुतसे पद कहे है। अतः सेन कवि हों भी तो उसका कोई महत्व नही। ऐसी अवस्थामे महाकवि सूरदास और उनके परवर्ती कवियोंपर ही यहां विचार किया जायगा।

यह बताया जा चुका है कि अवधी मुख्यतया कथा-काव्यकी भाषा है और ब्रजभाषा मुक्तक-काव्य की। ब्रजभाषाके आदि महाकवि सूरदासजीने जयदेव और विद्यापतिके दिखाए मार्गपर चलकर गेय पदों में कृष्णके बालजीवनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। आगे जितने भी कृष्ण-भक्त कवि हुए सबने इसी प्रणाली पर कृष्णके बालजीवनके सम्बन्धमें रचनाऍं कीं। कृष्ण-साहित्यके अतिरिक्त ब्रजभाषामे रचना करनेवालोंमें मुख्य स्थान रीत-विषयक साहित्य रचनेवालोंका है। इनकी सभी रचनाएँ स्वभावतः मुक्तक काव्यके रूपमे है। तीसरा वर्ग उन लोगोंका है जिन्होंने कवित्त सवैयोंमें फुटकर रचनाऍं की है। किन्तु ऐसा नहीं है कि ब्रजभाषामे प्रबन्ध काव्योंकी रचना हुई ही न हो। केशवकी रामचन्द्रिका ब्रजभाषामे ही है। यद्यपि कुछ लोग उसे फुटकर पदोंका संग्रह भी कहते है किन्तु वह पूरेका पूरा काव्य ब्रजभाषामे प्रबन्धकाव्यकी शैलीमे रचा गया है। बीच-बीचमे ब्रजभाषामें प्रबन्ध काव्योंकी रचनाएॅ बराबर होती भी रही है। इनका क्रम आचार्य रामचन्द्र शुक्लजीके 'बुद्ध-चरित' और रत्नाकरजीके 'गंगावतरण' तक चला आया है। ब्रज-भाषाकी मूल प्रकृति मुक्तक छन्दात्मक है और इसी प्रकारकी रचनाओंका उसमे बाहुल्य है इसलिये पहले उसीपर विचार किया जायगा।

ब्रजभाषाका मुक्तक काव्य

ब्रजभाषाके मुक्तक काव्य-साहित्यको सुविधाकी दृष्टिसे तीन श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है—१ श्रीकृष्ण सम्बन्धी काव्य, २ स्फुट काव्य और ३—रीति विषयक काव्य।

(क) श्रीकृष्ण सम्बन्धी काव्य

यद्यपि महाभारत तथा अनेक पुराणोंमें कृष्णचरितका वर्णन आया है तथापि ब्रजभाषामे कृष्ण-चरित का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है। किन्तु भागवतमें और इनकी कथामें एक बड़ा भारी अन्तर यह है कि कि भागवतमे जहां केवल श्रीकृष्णकी चर्चा आयी है वहाँ ब्रजभाषा-काव्यमें कृष्णके साथ राधाका नाम भी भी जुट गया है। राधाका व्यापक प्रचार जयदेवके गीत-गोविन्दसे हुआ जिसे विद्यापतिने ज्यों का त्यों ले लिया। यह नहीं कहा जा सकता कि जयदेवने राधाकी कल्पना ब्रह्मवैवर्त पुराणके आधारपर खड़ी की या उस समय लोकमें ही राधाका नाम इसी रूपमें प्रचलित था जिसे जयदेवने ले लिया। राधाकी चर्चा जयदेव से व्यापक हुई है बस इतना ही निश्चित है। ब्रज-भाषाके कवियोंमें सूरदासजी ही पहले पहल कृष्णके साथ राधाको वे ले आए। फिर तो कृष्ण-सम्बन्धी कोई रचना ही राधाको अलग करके नहीं प्रस्तुत हुई।

विद्यापति संवत् १४६० में वर्तमान थे। उन्होंने राधाकृष्ण—सम्बन्धी पदोंकी रचना विशुद्ध श्रृंगारके भावसे की क्योंकि वे स्वयं शैव थे। वस्तुतः वैष्णव धर्मका देशव्यापी आन्दोलन तो १५ वी और १६ वीं शताब्दीमे ही फैला जिसका विद्यापतिसे कोई लगाव न था। वैष्णव धर्मकी कृष्ण-भक्ति शाखाके उन्नायक महाप्रभु वल्लभाचार्यका प्रादुर्भाव संवत् १५३५ में हुआ। इसी समय बंगाल (तत्कालीन गौड़ प्रदेश) में चैतन्य महाप्रभु हुए जिन्होंने देशके पूर्वी अन्चलमें कृष्ण-भक्तिकी धारा बहाई।

महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने विशुद्धाद्वैती पुष्टिमार्गमे शंकराचार्यजीके मायावादका खण्डन करके भगवान्के सगुण रूपको वास्तविक रूप और निर्गुणको उसका तिरोहित रूप घोषित किया। भक्तिको भी पूर्ण रूपसे स्वीकार न करके उन्होंने उसका केवल प्रेमवाला पक्ष ग्रहण किया और कहा कि इस प्रेम-लक्षणा भक्तिकी ओर जीव तभी प्रवृत्त होता है जब उसपर श्रीकृष्णका अनुग्रह होता है। अपने मतका व्यापक प्रचार करनेके पश्चात् उन्होंने वृन्दावनमे अपनी गद्दी स्थापित की, गोवर्द्धन पर्वतपर श्रीनाथजीका मन्दिर बनवाया तथा सेवाका ऐसा भारी उपक्रम रचा जिसमें भोग, रास तथा विलासकी प्रधानता हुई। इसके लिये कृष्णका बालरूप और उनकी व्रजलीलाको ही ग्रहण करना आवश्यक था क्योंकि ब्रजसे मथुरा जानेके अनन्तर तो कृष्णका जीवन संघर्षशील कर्मयोगीका हो गया। यही कारण है कि व्रजभाषाके सभी कृष्ण-भक्त कवियोंने कृष्णके बालजीवनके ही गीत गाए। यह निश्चित था कि कृष्णका सम्पूर्ण जीवन-चरित न लेनेसे उनके सम्बन्ध की काव्यकी रचनामें प्रबन्धत्वका समावेश नहीं हो पाया और इसीलिये ब्रजभाषाके कवियोंकी रचनाओंमें जीवनकी अनेकरूपता और उसके मार्मिक पक्षोंका पूर्ण उद्घाटन न हो पाया। इस परम्पराके आदि कवि सूरदासजी श्रीमद्-वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे।

सूरदासजी

ब्रजभाषाके श्रेष्ठतम कवि, श्रीकृष्णके अनन्य भक्त, उक्ति, चोज, अनुप्रास वर्णोकी स्थिति तथा शब्दसे अद्भुत अर्थ उत्पन्न करनेवाले महाकवि सूरदासजी जिस प्रकार व्रजभाषाके आदि कवि माने जाते है। उसी प्रकार अपने वर्ण्य विषयकी उत्तमताके कारण अन्तिम भी। सूरदासके सम्बन्धमे यह उचित उक्ति सर्वथा सटीक बैठती है :—

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी ।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब जूठी ।।

सूरदासजीका जीवनवृत्त

सूरदासजीका थोड़ा बहुत जो भी वृत्तान्त हमे मिलता है वह चौरासी वैष्णवनकी वार्तासे ही। यह वार्ता वल्लभाचार्यजीके पौत्र गोकुलनाथजीकी लिखी कही जाती है किन्तु उसमें स्थानस्थानपर श्रीगोकुलनाथजी जीने ऐसो कह्यो' आदि वाक्योंसे यही प्रतीत होता है कि यह किसी अन्य व्यक्तिकी रचना है। फिर भी यह पोथी प्राचीन है और उक्त सम्प्रदायमें यह गोकुलनाथजीकी कृतिकी भाँति मान्य है।

इस पोथीसे सूरदासजीके सम्बन्धमे दो ही तीन बाते निश्चयात्मक रूपसे विदित होती है— १—सूरदासजी गऊघाटपर रहकर विनयके पद गाया करते थे। २— आचार्यजीने एक बार उनके पद सुने तो उनसे प्रसन्न होकर कहा कि तुम हमारे साथ चलो। ३—सूरदासजीको साथ लाकर उन्होंने दीक्षित किया और फिर उन्हें श्रीनाथजीके मन्दिरकी कीर्तन-सेवा सौपी। ४— तबसे सूरदासजी गोवर्द्धन पर ही रहने लगे ५ वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथके सामने ही गोवर्द्धन की तलहटीमे परसोली ग्राममे उनकी मृत्यु हुई।

सूरदासजीका एक ग्रन्थ सूरसारावली है जिसकी रचना सूरसागरके पश्चात् हुई। उसमें सूरदासजीने अपनी अवस्था ६७ वर्ष की बताओी है।

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन।'

इस ग्रन्थके पश्चात् सूरदासजीने साहित्य-लहरी नामक एक ग्रन्थकी रचना की। यद्यपि इसमें जिस विषयका वर्णन है वह सूरदासजीकी प्रवृत्तिके अनुकूल नही लगता तथापि वह सूरदासकी रचना मानी जाती है। अतः उसको आधार मानकर यदि चलें तो साहित्य लहरीकी रचना सूरदासजीने सम्वत् १६०७ में की—

मुनि पुनि रसनके रसलेख ।
दसन गौरी नंदनको लिखि सुबल सम्वत पेख ।।

यदि दो-तीन वर्ष पूर्व सूरसारावलीका रचनाकाल माना जाय तो १६०४—१६०५ में सूरदासजी ६७ वर्ष के रहे होंगे। इस प्रकार उनका जन्म सम्वत् १५३९—४० ठहरता है। उनकी अवस्था ८०—८२ वर्षकी मानें तों वे सम्वत् १६२०—२१ में गोलोकवासी हुए होंगे।

सूरदासजीको कुछ लोग चन्द बरदाईका वंशज बताते है और अपने कथनकी पुष्टिमें साहित्य -लहरी का एक पद उपस्थित करते है किन्तु जब साहित्य-लहरी की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है तब उक्त पदका ही क्या कहना जो बहुत समय सम्भव है किसी ब्रह्मभट्टने उसमें पीछे से जोड़ दिया हो क्योंकि चौरासी वैष्णवनकी वर्ता की भावप्रकाश टीकाके रचयिता श्रीहरिरावने सूरदासजीको सीही ग्रामनिवासी जन्मान्ध सारस्वत ब्राह्मण कहा है।

भक्तमालमें भी सूरदासके जन्मान्ध होनेकी बात कही गई है। किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि सूरदासजी एक बार एक कुएँमें गिर पड़े और छह दिन उसीमें पड़े रहे। सातवें दिन श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि

देकर अपना दर्शन दिया। सूरदासजीने भगवानसे वर मांगा कि जिन नेत्रोंसे मैंने आपका दर्शन किया है उनसे और कुछ न देखूँ तथा नित्य आपके भजन कीर्तनमें लगा रहूँ। फिर भगवान्‌ने उन्हें कुएँसे निकाला। सूरदासजी के नेत्रोंकी ज्योति जाती रही और वे व्रजमें आकर रहने लगे। इसके पश्चात् जब विट्ठलनाथजीने पुष्टिमार्गी आठ सर्वोत्तम कवियोंको चुनकर अष्टछापकी प्रतिष्ठाकी तो सूरदासजी उनमें प्रमुख हुए। उन्हें दिव्य दृष्टि अवश्य प्राप्त थी क्योंकि जिस दिन श्रीनाथजीका जैसा शृंगार होता वैसा ही वर्णन वे गाकर करते थे। एक दिन उनकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीनाथजीको बिना वस्त्र पहनाए सूरदासजीसे कहा—गाइए और तत्काल सूरदासजी गा उठे—

आजु हरि देखेउँ नंगम-नंगा ॥

सूरकी रचनाएँ

सूरके सम्बन्धमें कुछ सूक्तियाँ प्रसिद्ध है—

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास,
अबके कवि खद्योत सम, इतउत करत प्रकास॥
किधौं सूरको सर लग्यौ, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरकौ पद लग्यौ, बेधत सकल सरीर॥ (बरबस धुनतः सरीर)

महाकवि सूरदासजीके नामसे तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी।

सूरसागर वस्तुतः सागर है। कहा जाता है कि सूरने भागवतके आधारपर लगभग एक लाख पदोंमें कृष्ण-चरितका गान किया किन्तु आज तो इसका दसवाँ भाग भी उपलब्ध नहीं है। भागवतकी कथाके आधारपर रचे हुए सूरसागरके १२ स्कन्धोंमे अन्य अवतारोंकी कथाओंका भी वर्णन है किन्तु नवम स्कन्धमें रामावतारका वर्णन और दशम स्कन्धके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्धमे श्रीकृष्णके चरितका वर्णन ही अधिक प्रशस्त है। इस दशम स्कन्धमें भी वर्णन तो अनेक विषयोंका है किन्तु विनयके पद, बालकृष्णका वर्णन और भ्रमरगीत-वाला अंश सर्वोत्तम है। सूरकी ख्यातिका एक मात्र आधार कृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन है। यह वर्णन इतना विस्तृत और चित्रात्मक है कि उसके पश्चात् अब उस विषय पर कहनेके लिये कुछ नहीं रह जाता। भ्रमर गीतवाला अंश सूरसागरका सबसे मर्मस्पर्शी अंश है। यद्यपि भागवतमे ही यह अंश सर्वप्रथम आया है किन्तु सूरने इसमें सगुणोपासना का अंश अपनी ओरसे जोड़ दिया है जिससे इसमे रोचकता एवं सरसता अधिक बढ़ गई है क्योंकि सगुण पक्षका समर्थन सूरने तर्कके आधारपर नही, अनुभूतिके आधारपर किया है।

सूरसारावलीमे सूरसागरकी ही कथाको संक्षेपमें कहा गया है। इसमें कथाके कुछ अंश या कृष्ण के जीवनकी कुछ घटनाएँ आगे-पीछे हो गई हैं। सागर और सारावलीमें एक अन्तर यह भी है कि सूरसागरमे जहाँ सरल और बोधगम्य भाषामे कथा गाई गई है वहां सारावलीमें कुछ कूट पद भी आए है।

साहित्य-लहरीमें सूरसागरके तो कुछ पद है ही, अनेक पद ऐसे भी हैं जो नायिकाभेद, अलंकार और रस आदिके उदाहरणके रूपमे रखे गए प्रतीत होते है। इसीलिए इसे सूरदासजीकी रचना न मानकर लोग कहते है कि चौथे आश्रममें जाकर भला वे ऐसी रचना कैसे कर सकते है? जो भी हो, साहित्य-लहरी उनकी ही रचना मानी जाती है।

गीतोंकी परम्परा और सूरदासजी

प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ गाता है। गीतोंकी यह परम्परा सम्भवतः मानव-समाजमें किसी न किसी रूपमें तबसे चली आ रही है जब से मनुष्यने बोलना सीखा है। धीरे-धीरे जब मनुष्यमे साहित्यिक प्रवृत्तियों का उदय हुआ तो वह अपने इन गीतोंको भी लिपिबद्ध करने और साहित्यिक रूप देने लगा। राधा-कृष्णको आलम्बन बनाकर साहित्यिक गीतोंकी रचना सबसे पहले जयदेवने संस्कृत मे की। ब्रजमण्डलमे भी इस प्रकारके गीत लोक-भाषामें प्रचलित थे जिनको आधार बनाकर भक्त-प्रवर सूरदासजीने उन्हें साहित्यिक रूप दिया और महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके मुँहसे श्रीकृष्णकी लीलाएँ सुनकर उन्हे ब्रजभाषाके गेय पदोंमे गाकर अमर कर दिया।

सूरदासजी ब्रजभाषाके प्रथम कवि हैं जिन्होंने गीतोंकी रचना राग-रागिनियोंके निर्देशके साथ साहित्यिकभाषामें की। सूरदासजीके शृंगारी पदोंपर विद्यापतिकी छाप भी निश्चित है क्योंकि अनेक पद ऐसे मिलते हैं जिनमे दोनों कवियोंने एक ही भावका एक ही प्रकारसे वर्णन किया है। आगे चलकर ब्रजभाषामें राधाकृष्ण विषयक गेय पदोंकी रचना करनेवालोंने सूरदासजीकी प्रणालीका ही अवलम्बन किया जो आजतक अविच्छिन्न रूपसे चली आई और जिसका लगभग सभीने अनुसरण किया।

सूरदासजीका काव्य-क्षेत्र

सूरदासजीके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि वल्लभाचार्यजीसे दीक्षा लेनेके पूर्व वे मथुराके गऊघाटपर विनयके पद गाया करते थे। वल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमे आनेपर वे कृष्ण-चरितका गान करने लगे। सन्तोंके नीरस उपदेशोंके कारण हिन्दुओंके जीवनमे नीरसता आ गई थी। अतएव उसको सरसता प्रदान करना आवश्यक समझकर श्री वल्लभाचार्यजीने कृष्ण-चरितके बालरूप (जो मानव जीवनका प्रियतम और मधुरतम अंश है।) की आराधनाका ही प्रचार किया। वस्तुतः आराध्यके बालभावकी उपासनाकी कल्पना ही मधुर है। श्रीवल्लभाचार्य ही उसके प्रवर्तक हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने बाल रामकी आराधनाका समर्थन काक भुशुण्डिके मुखसे कराया है। बाल भावकी उपासनाके पीछे सबसे बड़ी बात यह है कि उपासक कालान्तरमें बालकोंके समान निर्दोष, निरीह और निश्छल अवस्था प्राप्त कर लेना है। आगे भाँति-भाँतिके प्रेम-व्यापारोंका प्रवेश हो जानेसे इस उपासना-पद्धतिमें राधाकृष्ण और गोपियोंका प्राधान्य हो गया जिससे प्रेमी-प्रेमिका भावकी उपासना-पद्धति ही प्रबल होती चली गई।

सूरदासजीने भी यद्यपि इस प्रेमी-प्रेमिकाकी भक्ति-पद्धतिको लेकर बहुतसे अतिशय उद्दाम शृंगारी पदोंकी भी रचनाएँ की हैं और कृष्णके मथुरा गमनके पश्चात गोपियोंकी अवस्थाओंको लेकर विप्रलम्भ शृंगार-के भी कितने ही पद गाए हैं तथापि कृष्णकी बालरूप-विषयक उनकी रचनाएँ अद्भुत है। बाल-सुलभ चापल्य और क्रीड़ाएँ इस विस्तारके साथ सूरकी रचनाओंमे मिलती है कि लगता है सूरके समान बाल-प्रकृतिका ज्ञाता कोई हुआ ही नहीं। गोस्वामीजीका काव्यक्षेत्र सूरदासजीकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत है जिसमें उन्होंने जीवनके सम्पूर्ण अंगोंका समावेश करके मनुष्यकी भिन्न-भिन्न दशाएँ और मानव-जीवनमे आने-वाली विविध परिस्थितियाँ उपस्थित करके उनके समाहारका प्रयत्न किया है, किन्तु सूरदासजीने जीवनका एक ही पक्ष लिया है और इस एक ही पक्षमें जो विस्तार और व्यापकता सूरदासजीने दिखाई है, वर्णनोंकी जो

प्रचुरता और परिस्थितियोंकी जो विचित्रता प्रस्तुत की, वह किसी भाषाके किसी कविके काव्यमें नहीं आई है। ये वर्णन प्रचुर ही नहीं, इतने मनोमुग्धकारी है कि मन उनमे ही रम जाता है। उदाहरण लीजिए :—

१– मैया मैं नाही दधि खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छीके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो।।
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।

२– सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तनुमंडित मुख दधि लेप किए।

३– जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगें कब धरनी पग द्वैक धरै।

४– मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
मोसों कहत मोलको लीनों, तोहिं जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर।

इस प्रकारके सैकड़ों पद सूरसागरमें भरे पड़े हैं।

सूरदासजीका संयोग शृंगार

वालरूपके अतिरिक्त शृंगारके उभय पक्षका भी वर्णन सूरदासजीने अत्यन्त उत्तम किया है। जब तक कृष्ण गोकुलमें रहे, तब तकका उनका सारा जीवन संयोग शृंगारसे अभिभूत है। कृष्णके प्रति राधा और गोपियोंका जैसा प्रेम है, वह वर्णनातीत है। इनकी ही छाया लेकर आगेके कवियोंने संयोग-शृंगार विषयक उच्छृंखल रचनाएँ आरम्भ कर दी। सूरदासजीने जिस भावसे इन पदोंकी रचना की, वे तो रह गए, उनके बदले विद्यापतिका शृंगार भाव अधिक व्याप्त हो गया। सूरके दो-तीन उदाहरण लीजिए :—

१– नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुनतर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया।।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों मरकत मनि कंचनमें जरिया।

२– धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुंचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

३– स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यों चक्रवाक रवि जैसे।।

शृंगार-वर्णनके प्रसंगमे सूरदासजीने अन्योक्तियों और व्यंग्योक्तियोंकी ऐसी झड़ी लगा दी है कि उनका वर्णन स्वाभाविक और सरस हो उठा है। नेत्रोंका वर्णन, मुरलीका वर्णन, मुरलीके कारण गोपियोंके मनमें ईर्ष्या आदि बड़े अनूठे वर्णन हैं। मुरलीके सम्बन्धमे गोपियोंकी यह उक्ति कितनी मार्मिक है :—

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढ़े करि, अति अधिकार जनावति ।

इस श्रृंगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपंचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोंमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार सम्बन्धी सूरदासजीका वर्णन तो बजोड़ है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) श्रृंगार उससे भी बढ़कर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमे गोपियोंकी पीड़ा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमे डूबकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नहीं सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए :—

१— **बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें ।**
तब वे लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वालकी पुंजें ।

२— **मधुबन तुम कत रहत हरे ।**
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढ़े क्यों न जरे ।

३— **अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना ।**
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना ।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते है।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर मे कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमें गोपियोंका विरह वर्णित है; किन्तु उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढंगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोंका प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढंगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँव ही उखड़ गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड़ दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढंग निराला है। वे बहुत सीधे-सादे ढंगसे गोपियोंसे कहला देते है :—

१— **ऊधो तुम अपनो जतन विचारौ ।**
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररौ ।

२— **जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी ।**

गोपियोंकी इन उक्तियोंमें कितना सहज भाव, कितना सहज रोष है !

उनका तर्क भी देखिए :—

१— **मधुकर हम अयान मति भोरी।**
जाने तई योगकी बातें जो हैं नवलकिसोरी।
कंचनको मृग कवने देख्यौ किन बाँध्यो गहि डोरी।
सबतें ज्ञान तुम्हारो परबल हम अहिरी मति भोरी।
सूरज कृष्णचन्द्रको चाहत अखियाँ तृषित चकोरी॥

२— **निर्गुन कौन देसको वासी ?**
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दे बूझति साँच न हाँसी।

३— **सुनिहैं कथा कौन निर्गुन की, रचि पचि बात बनावत।**
सगुन सुमेरु प्रगट लखियत तुम, तृनकी ओट दुरावत॥

और अन्तमें वे कह ही देती हैं :—

साँच कहौ तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने।
सूरस्याम जब तुम्हें पठाये तब नेकहु मुसुकाने॥

स्पष्ट बात है। उद्धव तुम अपना ज्ञान इतना बघार रहे हो किन्तु कहीं कृष्ण तुम्हें भेजते समय मुस्काए तो नहीं थे। यदि मुस्काए थे तो निश्चय ही उन्होंने तुम्हें यहाँ भेजकर मूर्ख बनाया है। कितनी स्वाभाविक और मनोहारिणी व्यञ्जना है।

सूरदासका कला-पक्ष

सूरका कला-पक्ष भी कम विचारणीय नहीं है। सूरदासजी जन्मान्ध थे और अधिक पढ़े-लिखे भी नहीं थे। वे आरम्भमें विनयके पद गाकर उसी प्रकार निर्वाह करते थे जिस प्रकार आजकल कितने ही सूर किया करते हैं, किन्तु श्री वल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमें आनेपर उन्होंने कृष्णकी भक्ति अपनाई। भक्ति-भावका उन्मेष होनेसे प्राक्तन संस्कारोंके कारण उनमें कवित्व शक्तिका स्फुरण हुआ और अपनी बोलचालकी भाषामें वे ऐसी प्रसिद्ध रचना करनेमें सफल हुए। इसलिए उनके काव्यमें भाव-पक्षके साथ कला-पक्षका जो उत्तम रूप व्यक्त हुआ है, उसका महत्त्व स्वयं प्रकट है। इस दृष्टिसे देखनेपर सूरके काव्यमें सभी गुणों, सभी वृत्तियों, सभी मुख्य रसों और उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक आदि अलंकारोंका स्वाभाविक समावेश मिलता है। वर्णनोंमें वे अपने आप आते और खपते गए हैं, किन्तु जहाँ भी ऐसे वर्णन आए हैं, वे मनको रसाभिभूत कर देते हैं। उत्प्रेक्षाओंका तो उन्होंने अत्यधिक प्रयोग किया है। उदाहरण लीजिए :—

१— **कटितट पीत बसन सुदेष।**
मनहुँ नवघन दामिनी सजि रही सहज सुवेष॥

२— **राजत रोम राजिव रेष।**
नील घन मनो धूम धारा रही सूछम सेष॥

अनुप्रास भी सूरकी रचनाओंमें कहीं-कहीं बहुत अच्छे आए हैं। सूरने दृष्टिकूट पदोंकी भी रचनाएँ की हैं। सारंग शब्दको लेकर रचा हुआ यह पद देखिए :—

१– पदमनि सारंग एक मझारि।
आपुहि सारंग नाम कहावै सारँग बरनी वारि।
तामे एक छवीलो सारंग अर्ध सारँग उनहारि।
अध सारँग परि सकलइ सारंग अधसारंग बिचारि॥
तामहि सारंगसुत सोभित है ठाढ़ी सारग सँभारि।
सूरदास प्रभु तुमहू सारंग बनी छवीली नारि॥

इसी प्रकारका एक कूट पद यह है जिसमे सखी रूपकातिशयोक्ति-द्वारा राधामें बागका आरोप करती हुई कृष्णसे कहती है :—

अदभुत एक अनूपम बाग।
युगल कमलपर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फलपर पुहुप पुहुपपर पल्लव तापर सुक पिक मृग मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग॥

सूरदासजीने प्रकृति-वर्णन भी किया है, किन्तु वह सर्वत्र उद्दीपनके ही रूपमे आया है।
इस प्रकार भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों दृष्टियोसे सूरदासजीकी रचनाएँ अपने क्षेत्रमें अद्वितीय है।

कृष्णकाव्यके अन्य रचनाकार

ब्रजभाषामे कृष्ण-काव्यकी एक परम्परा ही चल पड़ी जिसमें सूरदासजीके साथ नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास आदि तो वल्लभ-सम्प्रदायके अन्तर्गत अष्टछापके ही कवि है। इनके अतिरिक्त गदाधर भट्ट, मदनमोहन आदि चैतन्य सम्प्रदायके, श्री भट्टजी आदि निम्बार्क-सम्प्रदायके, हरिदासजी आदि हरिदासी सम्प्रदायके, श्री हितहरिवंश आदि राधावल्लभीय सम्प्रदायके और सैकड़ो अन्य भक्तिकालीन हुए जिनकी उदात्त परम्परामे मीरा और रसखान आदि हुए। यह क्रम अविच्छिन्न रूपसे नागरीदास, अलबेली ललितकिशोरी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण कविरत्न आदिकी रचनाओंमें चलता हुआ अनूप शर्मा, रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' और गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' वियोगी हरि, हृददयालु सिंह जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवियोंकी सजीव वाणीमे अबतक मुखरित हो रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदासजीने ब्रजभाषामे गीतावली और कृष्णगीतावलीकी रचना अत्यन्त सरस ब्रज-भाषामें की है। उनकी रचनाओंमें वही माधुर्य और रसात्मकता विद्यमान है जो सूर या अन्य ब्रजभाषाके प्रतिष्ठित कवियोंमें है।

मीराबाई

मीराबाईका जन्म सम्वत् १५७३ में मेड़तेके राठौड़ राजा रत्नसिंहके घर हुआ। इनका विवाह

उदयपुरके राणा-परिवारमें हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् इनके पतिका स्वर्गवास हो गया। आरम्भसे ही इनमें कृष्ण-भक्तिके अंकुर विद्यमान थे जो समय पाकर बढ़ते गए और इनके हृदयमें कृष्ण-भक्तिका विशाल तरु उत्पन्न हो गया। मीराकी भक्ति प्रेमोन्मादिनी गोपियोंकी भक्ति-सी थी। इनके यहाँ कृष्ण-भक्तोंका नित्य ही जमघट लगा रहता था। मन्दिरमें भी जाकर वे कृष्ण-मूर्तिके समक्ष भजन-कीर्तन करती रहती थीं। इनके परिवारके लोग इससे बहुत ही रुष्ट रहा करते थे। कई बार उन्हें विष देकर मारनेकी भी चेष्टा की गई, परन्तु विष का कोई प्रभाव न पड़ा। इन्होंने द्वारिका और वृन्दावन की भी यात्राएँ कीं, जहाँ इनका सर्वत्र देवियों-सा सम्मान होता था। इनकी मृत्यु सम्वत् १६०३ में हुई। इसलिए गोस्वामीजीके साथ इनके पत्र-व्यवहारवाली बात निराधार प्रतीत होती है। इसी प्रकार रैदासके इनके गुरु होनेकी कथा भी असंगत है, क्योंकि न तो रैदास ही मीराके समकालीन थे और न मीरा ही कभी काशी आई थीं।

मीराकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। वे कृष्णको पति-रूपमें भजती और कृष्णके अतिरिक्त संसारमें किसीको पुरुष नही मानती थी।

मीराके अधिकांश पद कृष्णकी रूप-माधुरी और बाल-लीलाको लेकर रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने विनयके भी अनेक पद गाए हैं जिससे इनका दैन्य भाव ही प्रकट होता है। फिर भी मीरा अपनेको—

मीराबाई प्रेम दिवानी साँवलिया बर पाना।

ही कहती है।

मीराका प्रेमभाव वियोगपक्ष-प्रधान है। इन्हें प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई अतः उसके विरहमें ये तड़पती रहती हैं।

हेरी मैं तो दरद–दिवाणी मेरो दरद न जाणै कोय।

इस भावकी भक्तिके कारण कुछ लोग इनपर सूफियोंके रहस्यवादकी भी छाप मानते है, किन्तु प्रेमाभक्ति तो हमारे यहाँकी अत्यन्त प्रौढ़ भक्ति मानी गई है। सूफी लोग तो अपनेको प्रेमी और ईश्वरको प्रेमिका मानते है, पर मीराने तो साक्षात् कृष्णको ही अपना प्रिय और प्रेमी माना है।

मीराकी रचनाएँ राजस्थानी, राजस्थानी-मिश्रित ब्रज और शुद्ध ब्रजभाषामें हैं। यह कवयित्री नहीं थी भक्त थीं। उसीके उद्वेगमे इनके भाव मुखरित हुए है। इसलिए जहाँ जो भाषा आ गई, आ गई। इन्होंने राग-रागिनियोंमे पद गाए हैं। मीराकी रचनाओंसे दो उदाहरण दिए जा रहे है। मीराके नामसे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिनमें एकका भी ठिकाना नही, केवल स्फुट पद ही मिलते है—

१— **बसे मेरे नैननमें नँदलाल।**
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भगत-बछल गोपाल।

२— **बंसीबारा आज्यो म्हारे देस।**
थारी साँवरी सूरत बारी बेस॥

आऊं आऊं कर गया साँवरा, कर गया कौळ अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उँगळी, घिस गई उँगळीकी रेख ।।
मै बैरागिन आदि की थारी, म्हारे कदको संदेस।

रसखान

रसखान राजवंशके थे, यह तो उनके इस दोहेसे ही प्रकट है :—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंसकी ठसक छाँडि रसखान ।।

इसके पश्चात् :—

प्रेमनिकेतन श्रीबनहि, आय गोबरधन धाम।
लह्यों सरन चित चाहिकै, जुगल-स्वरूप ललाम ।।

यह कहना तो कठिन है कि किस गदरकी इन्होंने चर्चा की है और किस राजवंशसे इनका सम्बन्ध था, किन्तु 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' मे इनका उल्लेख हुआ है। साथ ही इन्हें गोस्वामी विट्ठलदासजीका कृपापात्र भी बताया गया है। विट्ठलनाथजी सम्वत् १६४० मे स्वर्गवासी हुए थे अतः इसके आस-पास ही इनका रचनाकाल मानना चाहिए।

रसखानकी रचनाएँ इतनी मधुर और हृदयस्पर्शी है कि मन उनमे तल्लीन हो जाता है। इनके शब्द-शब्दसे रस टपकता है। चलती, स्पष्ट और सरल भाषामे रसभाव-युक्त रचना कम ही कवियोंने की है, और उनमें रसखानकी भी गणना की जाती है। इनकी एक विशेषता यह है कि इन्होंने पद न गाकर कवित्त-सवैयोंमें कृष्णकाव्यकी रचना की है। इन्होने दोहे भी रचे है जो प्रेमवाटिकामे संगृहीत है। ये ब्रजभूमि, व्रजराज और ब्रजमण्डलके अद्भुत प्रेमी थे। इनकी रचनाओंके उदाहरण लीजिए :—

मानुष हौं तो वहै रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरौ चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तो वहै गिरिको जो कियौ हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदि कूल कदम्बकी डारन ।। १।।
मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पीताम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी।
भावतो सोई मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ।।
पै मुरली मुरलीधरकी अधरान-धरा अधरा न धरौंगी ।।२।।
प्रेम फाँसि सों फँसि मरै, सोई जियै सदाहि।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवन नाहि ।। (३)

रसखानके पश्चात् भी कितने ही कवियोंने कृष्ण-चरितका गान किया है किन्तु उनमेसे अधिकांशने अन्य प्रकारके काव्योंकी भी रचनाएँ की है।

आजकलके नये कवियों और तथाकथित विद्वानोंने भक्ति-काव्यपर यह आरोप लगाया है कि इसमें राष्ट्रीयताका अत्यन्त अभाव रहा है। उन महानुभावोंने झडेके गीत, किसानों जागो, 'भारत वर्ष हमारा है' को ही राष्ट्रीयता समझ लिया है। वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि अपने देशके महापुरुषोंका जीवन-चरित, उनके उदात्त गुण, देशके पर्वतो, नदियों और प्रदेशोंकी शोभा और सबसे अधिक एक भाषाके माध्यमसे सारे राष्ट्रमें शुद्ध नैतिक, धार्मिक आध्यात्मिक और भावात्मक एकताकी प्रतिष्ठा करना ही वास्तवमें सबसे बड़ी राष्ट्रीयता है। बाहर राष्ट्रीयताका झूठा नारा लगाकर भीतर जातीयता, प्रान्तीयता तथा संकुचित भाई-भतीजेवादको आश्रय देना मिथ्या राष्ट्रीयता है। भक्त कवियोंने राष्ट्रभाषाके रूपमें ब्रजभाषाको प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण भारतीय जन-मानसमे इतनी भावात्मक एकता भरी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उस रंगमें रंगकर एकमना हो गए।

स्फुट काव्य

आजसे ५०वर्ष पूर्वतक काव्य-रचनाके लिए व्यापक रूपसे ब्रजभाषाका ही प्रयोग होता रहा है। इसलिए सभी क्षेत्रोंके निवासी प्रायः अपने काव्योद्गार इसी भाषामे प्रकट करते रहे है। ब्रजभाषामें रचना करनेवाले कवियोंने अधिकतर मुक्तकोंकी ही रचना की चाहे वह कृष्णपरक रहा हो अथवा अन्य प्रकारका। कृष्ण-परक काव्य रचनेवालोंके अतिरिक्त जिन लोगोंने मुक्तक छन्दोंमे रचना की है उनकी दो श्रेणियाँ है—१–वीर, शृंगार आदि रसोंमें कविता करनेवाले सर्वथा स्वतन्त्र कवि तथा २-रीतिको आधार बनाकर काव्य रचनेवाले।

स्वतन्त्र कवि

साहित्य (काव्य) रचना करनेवालोंमें एक वर्ग सब कालमें और सब भाषाओंमें ऐसा रहता है जो किसी प्रकारकी परम्परासे बँधकर नही चलता और न किसी निश्चित उद्देश्य या निश्चित विषयको लेकर चलता है। इस प्रकारके कवि मौजमे आने और मनमे भावोद्रेक होनेपर कुछ लिख दिया करते है जो पीछे चलकर उनके नामपर संगृहीत हो जाता है। ब्रजभाषाके जिस पहले कविकी चर्चा मिश्र बन्धुओंने की है वह सेन कवि है। किन्तु पुष्ट प्रमाणोंके अभावमे यह कहना कठिन है कि वह सूरदासजीसे पहले हुआ या पीछे। उसका कोई ग्रन्थ भी प्रकाशमे नही आया। उक्त कविका केवल एक प्रचलित कवित्त नीचे दिया जा रहा है जिसकी भाषा अवश्य ही पुष्ट है:—

जबते गोपाल मधुबनको सिधारे आली।
मधुबन भयो मधु दानव विषम सौ।
सेन कहै सारिका सिखण्डी खंजरीट सुक।
मिलिकै कलेस कीनों कालिन्दी कदमसौ।
जामिनी वरन यह जामिनी मे जाम-जाम।
बधिककी जुगुति जनवि टेरि तम सौ।
देह करै करज करेजो लियो चाहति है,
काग भई कोयल कगायो करै हमसौं ॥

इसके पश्चात् ब्रजभाषामें रचना करनेवालोंमे कृष्ण-भक्त कवियोंका ही क्रम आता है। बीच-बीचमें नीति, श्रृंगार आदिकी फुटकर रचनाएँ भी होती रही है—जिसका क्रम अबतक चला आया है। इस प्रकारके फुटकर काव्यकी रचना करनेवालोंमें सर्वप्रथम जिस मुख्य कविका नाम आता है वह है ब्रह्मभट्ट गंग कवि जो अकबरी दरबारके प्रमुख कवि थे। उस समय अकबरके दरबारमे नरहरि कवि जैसे प्रतिष्ठित कवि भी थे किन्तु गंग जैसा स्वतन्त्र प्रकृतिका कवि उस दरबारमे दूसरा कोई नही था जिसे तुलसीके समान ही आदरणीय माना जाता था :—

तुलसी गंग दुवौ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कवितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार।।

गंग

ये अत्यन्त निर्भीक और सरस हृदय कवि थे। रहीम इनको बहुत मानते थे। इनके एक ही छप्पयपर प्रसन्न होकर रहीमने उनको ३६ लाख रुपये दे डाले थे। गगकी अधिकतर रचनाएँ श्रृंगार-विषयक है किन्तु वीररस-सम्बन्धी रचनाऍ भी इन्होंने की है। गगमे प्रचुर परिमाणमें वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है। प्रसिद्ध है कि किसी नवाबने अप्रसन्न होकर इन्हें हाथीके पैरके नीचे दबवाकर मरवा डाला था। मरते समय इन्होंने यह दोहा कहा था

कबहुं न भंडुवा रन चढ़े, कबहुं न बाजी बंब।
सकल समाहि प्रनाम करि, विदा होत कवि गंग।।

इनका एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है :—

बैठी थी सखिन संग, पियको गवन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिविधि सुगन्ध ले पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी।
प्यारीको परसि पौन गयो मानसर पहँ।
लागत ही औरै गति भई मानसरकी।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो।
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी।

इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, स्फुट छन्द ही मिलते है।

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना अकबरके संरक्षक बैरमखाँके पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् १६६० में हुआ था। ये संस्कृत, अरबी फारसी, तुर्की हिन्दी कई भाषाओंके अच्छे विद्वान थे और सबमे बड़ी अच्छी कविताएं करते थे। कवियों और विद्वानोंका ये इतना आदर करते थे कि इनके दरबारमें कवियोंकी भारी भीड़ लगी रहती थी। दानी और परोपकारी इतने बड़े थे कि इन्होंने अपना सब कुछ दीन-दुखियोंको लुटा

दिया फिर भी कभी नामकी कामना न की। इनका अन्तिम समय बड़े संकटमें बीता और ये चित्रकूटपर जाकर रहने लगे। गोस्वामीजीसे भी इनकी मैत्री थी। यह प्रसिद्ध है कि इनके अनुरोधपर ही गोस्वामीजीने बरवै रामायण लिखा।

रहीम उच्च कोटिके परोपकारी और दानी सज्जन तो थे ही, उन्होंने कवि-हृदय भी बड़ा विशाल पाया था। रहीम मुख्यत: अपने दोहोंके लिये ही प्रसिद्ध है। इनके दोहे लोगोंकी जिव्हापर नाचते रहते हैं। अपने दोहोंमें इन्होंने जीवनकी सच्ची परिस्थितियोंका अत्यन्त मार्मिक अनुभव व्यक्त किया है। इसीसे इनके दोहे इतने लोकप्रिय हो पाए हैं। इन्होंने कभी कल्पना की उड़ान नहीं भरी। दोहोके अतिरिक्त रहीमने बरबै, कवित्त, सोरठे आदि भी लिखे हैं और इन सबमे इतनी अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है कि उनकी जोड़के कवि अधिक नही हुए। ब्रजभाषा और अवधी दोनोमे इनकी रचनाएँ सफल हुई है। इनका बरबै नायिका-भेद अवधीमें लिखी अत्यन्त मधुर रचना है। इसमेंसे रस छलका पड़ता है। रहीमका एक भी छन्द ऐसा नहीं मिलेगा जो सरस न हो, मधुर न हो।

इनकी कुछ रचनाएँ हिन्दी-संस्कृत-संयुक्त, कुछ संस्कृत-फारसी संयुक्त और कुछ केवल संस्कृतमें भी है।

रहीमका देहावसान सम्वत् १६८३ में हुआ। इनकी रचनाओंके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है:—

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिनको सुख होत ॥१॥
ज्यों रहीम गति दीपकी, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़ै अँधेरो होय ॥२॥
भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़ पछिताय।
धरी एक भरि सजनी, रहु चुप जाय ॥३॥
सघन कुंज अमरैया, सीतल छाँहि।
झगरती आइ कोइलिया, पुनि उड़ि जाहि ॥४॥
आग लागि घर जरिगा, बिधि भल कीन।
पियके हाथ घइलवा, भरि भरि दीन ॥५॥
जाति हुती सखि गोहनमें मनमोहनको लखि ही ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रजकी उनहूँ नन्दलालको रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानकमें फिरि तीरसों मारि लै जात निसानो ॥६॥

सेनापति

ब्रज-भाषाके कवियोंमें यदि किसीने प्रकृति-निरीक्षण करके ललित पदविन्यासके साथ मधुर ब्रज-भाषामें प्रकृति-वर्णन किया है तो वे एक मात्र सेनापति ही है। तभी तो उन्होंने गर्वपूर्वक अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

दीक्षित परशुराम दादा है विदित नाम
जिन कीन्हें जज्ञ जाकी विपुल बड़ाई हैं।
गंगाधर पिता गंगाधरके समान जाके
गंगातीर बसति अनूप जिन पायी है ।।
महाजानमनि विद्यादान हमें चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित तें पाई पण्डिताई है।
सेनापति सोई सीतापतिके प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है ।।

ये अनूपशहरके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मकाल सम्वत् १६४१ के लगभग माना जाता है। इन्होने 'कवित्त-रत्नाकर' और 'काव्य-कल्पद्रुम' नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की है। 'कवित्त रत्नाकर' की रचना सम्वत् १७०६ में हुई। इस ग्रन्थमें पाँच भाग है। पहले भागमे अलंकारोंका वर्णन, दूसरे मे श्रृंगारिक कवित्त, तीसरेमे षड्ऋतु वर्णन, चौथेमे राम-कथा और पाँचवेंमे भक्ति-सम्बन्धी छन्द है। इनकी कविताएँ बड़ी उच्च कोटिकी है। भाषापर भी इनका बड़ा अच्छा अधिकार है। इनके काव्योंमे विशुद्ध और सरस ब्रजभाषाका माधुर्य विद्यमान है। इनकी कवित्व शक्ति भी अद्भुत थी। प्रकृति और मानव-हृदयका इनका अध्ययन गहरा था। अलंकार प्रियता होनेपर भी इनकी कवितामें कही कृत्रिमता नहीं आने पाई है। सेनापतिने अधिकतर कवित्त ही लिखे है और इस शुद्धतासे लिखे है कि कहीं एक भी शब्द इधर-से-उधर नही किया जा सकता। इनका ऋतु-वर्णन ऐसा सजीव है कि प्रायः जनसाधारणको उनके बहुतसे छन्द कण्ठ है।

सेनापतिकी रचनाओंके दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे है :—

सिसिर तुषारके बुखारसे उखारतु है
पूस बीते होत सून हाथ पाँय ठिरिकै।
द्योसकी छुटाईकी बड़ाई बरनी न जाय
सेनापति गाई कछू सोचिकै सुमिरिकै ।।
सीतते सहस कर सहस चरन ह्वैके
ऐसो जात भाजि तम आवत है घिरिकै।
जौलौं कोक कोकी सों मिलत तौ लौं होत राति
कोक अति बीच ही ते आवतु है फिरिकै ।।१।।
महामोह-कन्दनिमें जगत जकन्दनिमें
दीन दुख दुन्दनिमें जात है बिहायकै।
सुखको न लेस है कलेस सब भौतिनको
सेनापति याही ते कहत अकुलायकै ।।
आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं
डारौं लोक लाजके समाज विसरायकै।

हरिजन-पुञ्जनमें वृन्दावन-कुञ्जनिमें
रहौं बैठि कहुं तरवर-तर जायके ।।२।।

सेनापति कबतक रहे यह तो ज्ञात नही, किन्तु अन्तिम कालमें इन्होंने क्षेत्र-सन्यास ले लिया था।

बिहारी

कविवर बिहारीलाल ब्रजभाषा काव्यके अद्भुत रत्न हैं। इनकी रचनाएँ सब प्रकारसे अनूठी हैं। ७०० से कुछ ऊपर दोहेवाली उनकी 'बिहारी सतसई' की जितनी टीकाएँ हुई है, उससे ही इसकी लोकप्रियता सिद्ध हो जाती है। इन दोहोंमें श्रृंगार-सम्बन्धी बड़ी मार्मिक उक्तियाँ भरी पड़ी है, इसलिए लोगोंने इनके प्रति बड़ा अनुराग दिखाया।

बिहारीलालका जन्म संवत् १६५० मे ग्वालियरके निकट बसुवा गोविन्दपुरमें माना जाता है। ये माथुर चौबे थे। लड़कपनमें ये बुन्देलखण्डमें रहे तथा युवावस्थामे अपनी ससुराल मथुरामें जा रहे। इसके पश्चात् ये जयपुर चले गए जहाँके तत्कालीन नरेश महाराज जयसिंहके दरबारमें इन्हें वह सम्मान, प्रतिष्ठा, आदर और साथ ही सम्पत्ति प्राप्त हुई कि जिसका ठिकाना नहीं।

जब ये कवीश्वर जयपुर पहुँचे तब राजा तो महलमें रँगरलियाँ मना रहे थे और मन्त्री, सेनापति आदि चिन्तित बैठे थे। बिहारीलालको ज्ञात हुआ कि नवपरिणीता बाला महारानीके प्रेममें पड़कर राजा जयसिंह सब सुधबुध खो बैठे है और दरबारमें आ ही नहीं रहे हैं। फलतः राज-काजमें कठिनाई हो रही है। किसी कौशलसे बिहारीने महाराजके पास यह दोहा लिखकर भिजवाया :—

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल ।।

दोहा पढ़ते ही महाराज बाहर आ गए और यह ज्ञात होनेपर कि बिहारीलालकी वह कृति है, महाराजने उन्हें दरबारमें रख लिया और निवेदन किया कि आप ऐसे ही सरस दोहे नित्य सुनाया करें। बिहारीलालको यों ही सब कुछ प्राप्त हो गया था, किन्तु इन दोहोंपर भी महाराज प्रति दोहा एक स्वर्णमुद्रा देने लगे। धीरे-धीरे दोहोंकी संख्या सात सौ तक पहुँच गई, जिन्हें संगृहीत करके 'बिहारी-सतसई' का नाम दे दिया गया। अनुमानतः इनका जीवन-काल सम्वत् १७२० तक था।

बिहारीकी ख्यातिका कारण

बिहारीने सतसईके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ नहीं रचा और दोहेके अतिरिक्त अन्य कोई छन्द भी नहीं लिखा। फिर भी ब्रजभाषाके अन्य बहुतसे अच्छे कवि बिहारीकी लोकप्रियता न प्राप्त कर सके। इसका कारण यही है कि १—उनके दोहे श्रृंगार रसकी ऐसी अनूठी उक्तियोंसे भरे हैं। कि वे सहज ही पाठक या श्रोताका ध्यान आकर्षित कर लेते है। २—कविने अपनी बातें सक्षेपमें और मार्मिक ढंगसे कह दी है कि वे चट जिव्हापर चढ़कर मानस-पटलपर अंकित हो जाती हैं। ३—इनके दोहे इतने स्पष्ट है कि पढ़ते ही उनका भाव मर्मतक पहुँच जाता है। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है :—

सतसैयाके दोहरे, ज्यों नावकके तीर ।
देखतमें छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ।।

बिहारीकी रस-व्यञ्जना

बिहारीने दोहोंमे जो रस और भाव भरा है, वह कम कवियोंमे पाया जाता है। इनकी रस-व्यञ्जनाका आनन्द लेना हो तो इनके उन सूक्ष्म अनुभवोंपर दृष्टि डालनी चाहिए—जिनकी इन्होंने अत्यन्त मधुर और सजीव योजना की है—देखिए :—

नासा मोरि नचाई दृग, करी ककाकी सौंह ।
काटे सी कसकति हिये, वहै कँटीली भौंह ।।१।।
ललन-चलन सुनि पलनमें, अँसुवा झलके आइ ।
भई लखाइ न सखिन्ह हूँ, झूठे ही जमुहाइ ।।२।।

बिहारीकी वस्तुव्यञ्जना

बिहारीमे वस्तुव्यञ्जनाकी भी मार्मिकता कम नहीं है। तन्वंगता विरहताप-विदग्धता, कान्ति आदिके वर्णनमे बिहारीका कौशल देखते ही बनता है। यह ठीक है कि ऐसे वर्णन कही-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाते है, तथापि ये उदाहरण पूरी सतसईमें दस-पाँच ही मिलेंगे। कही-कहीं यह व्यञ्जना क्लिष्ट भी आ गई है और इसे समझनेमें रूढ़ि ही पाठककी सहायता कर सकती है।

छाले परिबे के डरन, सकै न हाथ छुवाइ ।
झिझकति हियैं गुलाब कैं, झँवा झँवावति पाइ ।।१।।
नये बिरह बढ़ती बिथा, खरी बिकल जिय बाल ।
बिलखी देखि परौसिन्यौ, हरषि हँसि तिहि काल ।।२।।

बिहारीका वर्ण्य-विषय

बिहारीके दोहोंमे श्रृंगारके प्रसंगमे नायक-नायिकाके रूपमे कृष्ण और राधाका नाम ही लिया गया है। इसलिए उसमें स्वभावतः मुरली, राधा आदिका वर्णन आया है। बिहारीका वर्ण्य विषय अधिकतर नखशिख-वर्णन और नायिका—भेद ही है। इसीलिए इन्होंने नायिका और उनकी विभिन्न दशाओंको अनेक रूपोंमे चित्रित कियाहै। बिहारीकी मुख्य नायिकाएँ है—स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्राप्त-यौवना, मध्या, प्रौढ़ा, प्रौढ़ा-खण्डिता, अधीरा, विश्रब्ध नवोढ़ा, पूर्वानुरागिनी, खण्डिता, प्रौढ़धीरा खण्डिता, उत्तमा खण्डिता, स्वयंदूतिका, प्रोषितपतिका, अन्य सम्भोग दुःखिता, ग्रामीणा, प्रेमगर्विता, अनूढा, परकीया, मुदिता, अनुशयाना, प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका, क्रियाविदग्धा, आगमिष्यत्पतिका, अंकुरित-यौवना, प्रवत्स्यत्पतिका, लक्षिता, कलहान्तरिता, कुलटा और गणिका। नायिकाओंका ऐसा विस्तृत वर्णन होनेसे ही कुछ लोग ऐसा मानते है कि यद्यपि बिहारीने लक्षण ग्रन्थके रूपमें अपने दोहोंकी रचना नहीं की तथापि उदाहरण उन्होंने इसी विचारसे रखे, किन्तु वह युग ही कुछ इस प्रकारकी रचनाओंका था और बिहारीको राजदरबारमें

रहकर इस कोटिकी रचना करनी थी, अतः, इन्होंने नायिकाओंके इतने रूपोंका वर्णन किया। बिहारीने नीति-विषयक भी कुछ दोहे रचे हैं।

बिहारीके कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं :—

पलनु पीक, अञ्जनु अधर, धरे महावरु भाल।
आज मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल ॥१॥
बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हँसे, देन कहै नटि जाइ ॥२॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥३॥
सघनकुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुनाके तीर ॥४॥
पत्राही तिथि पाइए, वा घरके चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै, आनन-ओप उजास ॥५॥
इत आवति चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासन साथ ॥६॥
मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ॥७॥

घनानन्द

घनानन्द, आनन्दघन या धनआनन्द एक ही व्यक्तिके नाम हैं। अब तक घनानन्दका जन्म सम्वत् १७४६में और देहावसान सम्वत् १७९६में माना जाता था; किन्तु इधरकी खोजोंके अनुसार उनका जन्म और मृत्युसम्वत् क्रमशः १७३० और १८१८ स्थिर किया गया है। ये दिल्लीके रहनेवाले और बादशाह मुहम्मद शाहके मीरमुन्शी (प्रधान लिपिक) थे। बादशाहपर इनका अद्भुत प्रभाव देखकर कुछ लोगोंने इन्हें उस पदसे हटवानेका कुचक्र रचा और उनसे कहा कि मीरमुन्शी गान-विद्याके अच्छे मर्मज्ञ और स्वयं उच्च कोटिके गायक हैं। बादशाहकी आज्ञा हुई पर वे टाल गए। अब षड्यन्त्रकारियोंको अवसर मिल गया। उन्होंने कहा कि अपनी प्रेमिका सुजान वेश्याके कहनेपर ये तत्काल गाएँगे। वह बुलाई गई और उससे कहलवाया गया। इन्होंने उसकी ओर मुंहकरके और बादशाहकी ओर पीठ करके ऐसा अच्छा गाना गया कि सब लोग रसाभिभूत हो गए। बादशाह इनके गानेपर तो बहुत ही प्रसन्न हुआ और इसीलिए इनकी बेअदबी पर इन्हें प्राणदण्ड न देकर केवल दिल्लीसे निकलवा दिया। इन्होंने सुजानको भी साथ ले चलना चाहा, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इससे ये इतने दुखी हुए कि वृन्दावन चले गए और निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित होकर वहीं रहने लगे। अहमदशाह अब्दालीके द्वितीय आक्रमणके समय पठानोंने इनको घेर लिया और जर जर जर (रुपये) चिल्लाने लगे। किन्तु इस विरक्तके पास था क्या। इन्होंने तीन बारके लिये तीन मुट्ठी वृन्दावनकी धूल उनपर फेंक दी। क्रुद्ध पठानोंने इनका हाथ ही काट लिया। इसीमें ये मर गए। मरते समय अपने रक्तसे इन्होंने भूमिपर यह कवित्त लिखा था :—

बहुत दिनानकी अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं, उठि जानको।
कहि कहि आवन छबीले मन भावनको,
गहि गहि रखति हैं दै दै सनमानको ॥
झूठी बतियानिकी पत्यानितें उदास ह्वैकैं,
अब ना घिरत घनआनन्द निदानको।
अधर लगे हैं आनि करिके पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजानको ॥

इन्होंने अपनी कवितामें जो बारबार सुजानको सम्बोधित किया है, वह श्रृंगार पक्षमें नायकके लिए और भक्ति पक्षमें कृष्णके लिए प्रयुक्त हुआ समझना चाहिए। सुजानका नाम इन्हें इतना प्रिय था कि विरक्त होकर भी ये उसे न छोड़ सके।

घनानन्द जैसी शुद्ध रसमयी और शक्ति-प्रवाह समन्वित ब्रजभाषा लिखनेवाले कवि कदाचित ही हुए हों! स्वयं इन्होंने भाषापर अपने अधिकार की चर्चा इस सवैयेमें की है :—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरताहुके भेदको जानै।
योग-वियोगकी रीतिमें कोविद, भावना भेद स्वरूपको ठानै ॥
चाहके रंगमें भीन्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्ति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घनजूके कवित्त बखानै ॥

इनके रचे चालीस ग्रन्थ कहे जाते हैं किन्तु उनमेंसे बहुतोंका विवरण नहीं मिलता। इनका एक ग्रन्थ विरह लीला है जिसकी रचना अरबी छन्दोंमें हुई है; परन्तु भाषा उसकी ब्रज ही है।

घनानन्द श्रृंगार रसके ही प्रधान कवि है। यद्यपि इन्होंने श्रृंगारके दोनों पक्ष लिए है पर वियोग-की अन्तर्दशाओंका ही वर्णन इन्होंने प्रधान रूपसे किया है। इसीसे इनकी रचनाओंसे प्रेमकी पीर फूट निकली है। इनके वियोग वर्णनकी विशेषता यह है कि उसमें बाह्यार्थ-निरूपण तथा बाहरी उछलकूद न होकर अन्तरवृत्ति-निरूपण ही मुख्य है।

इनकी रचनाओंसे रस टपक पड़ता है। इनकी रचनाएँ वैदर्भी वृत्तिमें हैं। अत: उनमें स्वाभाविक मधुरता और सरसता पाई जाती है। भाषापर पूरा अधिकार होनेसे इनकी रचनाओंको और भी बल मिल गया है और ये अपनी बात इस ढंगसे कह जाते हैं कि पाठकका हृदय भी घनानन्द की ही भाँति अनुरागमय हो जाता है।

इनकी भाषाकी एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने ब्रजभाषाकी सिद्धोक्ति तथा लोक-व्यवहारमें प्रचलित भाषाके माधुर्यका भी भरपूर प्रयोग किया है।

घनानन्दकी रचनाओंके कुछ उदाहरण लीजिए :—

निसि द्यौस खरी उन माँझ अरी छवि रंग भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहैं, ढरिगो हिय ढोरनि वाहनि की ॥

चट दै कटि पै बट प्रान गए गति सों मतिमें अवगाहनि की ।
घनआनन्द जान लख्यौ जब तें जक लागियै मौहि कराहनि की ।।१।।
अति सूधो सनेहको मारग है, जहँ नैकु सयानप बांक नहीं ।
तहँ सांचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं ।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक तें दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।२।।
परकारज देहको धारि फिरौ, परजन्य ! जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधाके समान करौ सबही विधि सज्जन ले सरसौ ।।
घनआनन्द जीवनदायक हो कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजानके आँगन मो अँसुवानकों लै बरसौ ।।३।।
गुरुनि बतायो राधा मोहन हू गायो
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे ।
अद्भुत अभूत महिमण्डन परे तें परे
जीवनको लाहू हा हा क्यों न ताहि लहुरे ।
आनन्दको घन छाया रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेय सों पपीहापन बहुरे ।
जमुनाके तीर केलि कोलाहल भीर
ऐसे पावन पुलिनपर पतित परि रहुरे ।।४।।

इस कवित्तसे घनानन्दका वृन्दावन-प्रेम प्रकट होता है ।

अन्य मुक्तक कवि

घनानन्दके पश्चात् स्फुट रचना करनेवालोंमें आलम, बोधा, ठाकुर, पजनेस आदि अच्छे कवि हो गए हैं जिन्होंने शृंगार-विषयक मनोहारिणी रचनाएँ की है। इधर वर्तमान कालमे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी मित्र मण्डलीने बहुत ही अनूठे और मधुर छन्द ब्रजभाषामे रचे। यद्यपि भारतेन्दुने नागरी गद्यका प्रचार किया और उसे व्यवस्थित रूप दिया, तथापि काव्य उन्होंने प्रायः ब्रजभाषामे ही लिखा। उनका और उनकी पूरी मण्डलीका विश्वास था कि नागरी भाषामें सरस रचनाएँ नहीं हो सकती। वे पुष्टि-मार्गी वैष्णव थे। अतः उनकी कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ पुरानी परम्परा और प्रणाली पर ही हुई हैं। किन्तु वे अत्यन्त प्रेमी जीव थे इसलिए उन्होंने फुटकर रचनाएँ भी बहुत की हैं। अपने नाटकोंके पद्यांश उन्होंने ब्रजभाषामें ही लिखे। प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, राय देवीप्रसाद पूर्ण, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, वियोगीहरि, बिहारीलालकी परम्पराके वर्तमान कवि गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही’ आदिने ब्रजभाषामे अच्छी स्फुट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। आज भी ब्रजभाषामें रचनाएँ हो रहीं है और कवि-सम्मेलनोंके अवसर-पर ये कविताएँ प्रायः सुननेको मिला करती हैं। पुरानी परम्परामें बहुत कुछ परिवर्तन तो भारतेन्दुने ही कर दिया और भाषाको चलता रूप प्रदान किया था; किन्तु इधर उसका और भी परिष्कार हुआ। इसका

मुख्य श्रेय सत्यनारायण कविरत्नको है, जिन्होंने भाषाके शुद्ध चलते रूपका प्रयोग किया तथा अप्रचलित और बिगड़े हुए शब्दोंका त्यागकर नया मार्ग दिखाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके बुद्धचरितमें भी भाषाकी विशुद्धता और चलतेपनपर अधिक बल दिया गया है। आज के नवीन ब्रजभाषाके कवि भी इसी प्रणालीका अवलम्बन कर रहे हैं।

रीति-काव्य

पर्याप्त संख्यामें लक्ष्य ग्रन्थोंकी रचना हो चुकनेपर लक्षण ग्रन्थोंकी रचना स्वाभाविक है। हिन्दीमें साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी जो रचनाएँ हुई हैं, उनका आधार संस्कृतका तद्विषयक साहित्य ही है। प्रायः सभी कवियोंने या रीतिविषयक ग्रन्थ रचनेवालोंने संस्कृतकी प्रणालीका ही अवलम्बन लिया है या ऐसा कहिए कि ठीक उसीको हिन्दीमें उतार दिया है, अपनी ओरसे किसी प्रकारकी मीमांसा नहीं की है। हिन्दीके सबसे पहले रीति-विषयक रचनाकार कृपाराम हैं जिन्होंने सम्वत् १५९८ मे रसके विषयमें कुछ निरूपण किया था। इनके पश्चात् मोहनलाल मिश्र और करनेसने इन विषयोंपर लेखनी चलाई किन्तु जिस कविने अधिक विस्तार-पूर्वक व्यवस्थित ढंग और शास्त्रीय पद्धतिपर इसका विवेचन किया वे थे केशवदास। आगे चलकर तो प्रायः अधिकांश कवियोंने यही धन्धा उठा लिया और जो कुछ भी रचनाएँ उन्होंने की वह रीति-पद्धतिको सामने रखकर ही। इनमे सबसे बड़ा दोष यह था कि ये लोग आचार्य तो थे नहीं, कोरे कवि थे। कुछ लिखना इन्होंने आवश्यक समझा तो काव्यांशोंके विवेचनके माध्यमसे शृंगारिक रचनाएँ करने लगे। इसलिए न तो इनकी कवित्त-शक्तिसे और न इनकी काव्य-शास्त्रकी विवेचनासे ही साहित्य-रसिक कोई लाभ उठा सके क्योंकि लक्षणोंके अनुसार उदाहरण प्रस्तुत करनेमें काव्य-सौष्ठव नष्ट हो गया और विवेचक-मीमांसक बुद्धि न होनेसे काव्यांगोंका सम्यक् समीक्षण न हो सका। ये लोग पुरानी लकीर ही पीटते रहे। इनमें उल्लेख-योग्य सर्वप्रथम केशवदास है।

केशवदास

कविवर केशवदासजीका जन्म संस्कृतके गम्भीर और उच्चकोटिके विद्वानोके कुलमे सम्वत् १६१२ में हुआ। ६२ वर्षकी आयु भोगकर संवत् १६७४ के आसपास इन्होंने शरीर त्याग किया। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और कृष्णदत्तके पौत्र तथा काशीनाथके पुत्र थे। ओरछानरेश रामसिहके भाई इन्द्रजीत सिह इनको बहुत मानते थे। ये प्रायः उन्हीके यहाँ रहते थे और उन्हींके द्वारा राजा रामसिह तक भी इनकी अच्छी पहुँच थी। इन्द्रजीतसिहपर किया गया एक करोड़का अर्थदंड भी बीरबलकी मध्यस्थतासे अकबरको प्रसन्न करके इन्होंने क्षमा करा दिया। अकबरके पश्चात जब जहाँगीर सम्राट् हुआ तो उसने वीरसिहको ओरछेका राज्य दे दिया। केशवदास वीरसिहके दरबारमे भी रहे। जहाँगीरके यहाँ भी सम्मभवतः ये गए थे। क्योंकि इन्होंने उसकी प्रशस्तिमे 'जहाँगीर जय चन्द्रिका' भी लिखी है। इसी प्रकार वीरसिहकी प्रशस्तिमें वीरसिह-देव-चरित लिखा है। इनके अतिरिक्त केशवदासके पाँच ग्रन्थ और मिलते हैं—रामचन्द्रिका कविप्रिया, रसिकप्रिया, रतनबावनी और विज्ञानगीता।

वीरसिह देवचरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जय-चन्द्रिका तो साधारण कोटिके

ग्रन्थ है। काव्यकी दृष्टिसे न इनका कोई महत्व है न ये विचारणीय हैं। केशवदासकी प्रतिष्ठाके आधार केवल तीन ग्रन्थ हैं—गकविप्रिया, रसिकप्रिया, और रामचन्द्रिका।

कविप्रियाकी रचना सम्वत् १६५८ मे हुई। यह अलंकार-शास्त्रका ग्रन्थ है। केशव अलंकारवादी कवि थे। दण्डी, भामह आदिकी भाँति ये अलंकारोंको ही काव्यका मुख्य तत्त्व मानते थे तथा रस, रीति आदिको उसके अन्तर्गत ही लेते थे। चमत्कारप्रियता अधिक होनेसे इनकी दृष्टिमें वह काव्य ही महत्त्वहीन था जिसमे अलंकारोंकी छटा न हो। दण्डीके आधारपर ही इन्होंने अलंकारोंका विवेचन किया है और उदाहरण बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंके उठाकर हिन्दी रूपमे रख दिए हैं। अनुवादमे कही कही ऐसी गड़बड़ी भी हो गई है कि कुछ-का-कुछ अर्थ कर दिया गया है। इसमे इनकी मौलिक विवेचना शक्तिके दर्शन नही होते।

रसिकप्रियाकी रचना कविप्रियासे दस वर्ष पूर्व हुई थी। यह रसशास्त्रका ग्रन्थ है। इसमे नखशिख और नायिकाभेदका भी वर्णन किया गया है। केशवदासने इस ग्रन्थमे श्रृंगारका रसराजत्व सिद्ध किया है और उसके प्रच्छन्न और प्रकाश्य ये दो भेद भी कर दिए है। यही भेद नायिका-भेदमें भी रखा गया है। इस ग्रन्थमे जो उदाहरण दिए गए हैं वे सरस और हृदयग्राही है।

केशवकी सहृदयता

वस्तुतः केशवदासकी कवि-प्रतिभा, उनकी सहृदयता, उनकी भाव-व्यञ्जना, उनका शब्द विन्यास और उनकी भाषाका लोच और माधुर्य देखना हो तो इन दोनों ग्रन्थोंको देखना चाहिए। कुछ महानुभावोंने केशवदासजीको हृदयहीन कहा है। कविके लिये इससे बढ़कर निन्दात्मक दूसरी बात हो ही नहीं सकती।

केसव केसनि अस करि, जस अरिहूँ न कराहि।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहि।।

जो व्यक्ति ऐसा रसिक और सरस-हृदय हो उसके सम्बन्धमे यह नहीं कहा जा सकता कि वह कवि हृदय हीन है।

रामचन्द्रिका केशवदासजीका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसीके कारण केशवको कठिन काव्यका प्रेत कहा जाता है और कहा जाता है—कविको देन न चहै बिदाई। पूछै केसवकी कविताई।। केशव-विषयक ये उक्तियाँ रामचन्द्रिकाको लेकर ही कही गई हैं। इस ग्रन्थमे रामचरितका वर्णन किया गया है। इसकी रचना कविने सम्वत् १६५८ मे की। ऐसा प्रतीत होता है कि केशवने बहुतसे स्फुट छन्दोंकी रचना करनेके पश्चात् महाकाव्यकी रचना का भी विचार किया और इसके लिये रामको नायक चुना। केशव पण्डितोंके घरमें उत्पन्न हुए थे। उनको अपनी विद्वताकी धाक भी जमानी थी तथा एक कथा-काव्य भी रचना था। इस सम्बन्धमें संस्कृतमें प्रचुर परिमाणमें साहित्य उपलब्ध था ही। केशवने उसका खुलकर उपयोग किया और इस प्रकार महाकाव्यका एक ढाँचा खड़ा कर दिया।

केशवका प्रवन्ध-कौशल

महाकाव्यका रूपक केशवदासने उपस्थित अवश्य किया किन्तु ये कथाकाव्यकी रचनाके अधिकारी नहीं थे यह निर्विवाद है। कथाकाव्यकी रचनाके लिए कविमे जिन गुणोंकी स्वभावतः आवश्यकता होती

है वे केशवमें रत्तीभर नहीं थे। शास्त्रपारंगत विद्वान् होनेके कारण शास्त्रोंमे वर्णित महाकाव्यके लक्षण तो उन्होंने रामचन्द्रिकापर ला घटाए परन्तु बाहरी ढाँचेसे आगे वे नहीं बढ़ सके। कथाकाव्यकी रचनामे चार मुख्य बातें है जिन्हें केशव नही सँभाल पाए। पहली बात है कथाकी धाराका प्रवाहमयी होना। केशव छन्दोंका जाल इस प्रकार फैला गए है कि रामचन्द्रिका का पाठक यह अनुभव करने लगता है कि हम किसी प्रवाहमयी कथाका आनन्द न लेकर छन्दोंकी जन्तु-शालामे विचर रहे है। दूसरी बात है काव्यानुपात, जिसका केशवने तनिक भी ध्यान नही रखा है। रामके जन्मसे लेकर विश्वामित्रके अवध पहुँचने तककी पूरी कथा इतनी संक्षिप्त कर डाली कि उसका सारा रस ही समाप्त हो गया। तीसरी बात है मार्मिक स्थलोंकी पहचान। या तो केशव उन्हें पहचान ही नही पाए या फिर उनका वर्णन नही कर पाए। चौथी बात है पात्रोंका शील-निदर्शन या चरित्र-चित्रण जिससे कथामे आदर्शकी सृष्टि होती तथा सजीवता आती है। इसका भी केशवदासके हाथ निर्वाह नहीं हो पाया। दो उदाहरण पर्याप्त है। वन जानेके पूर्व राम अपनी माताको पातिव्रत्यका उपदेश करते है तथा भरत-जैसे साधु-चरित व्यक्तिपर सन्देह करके लक्ष्मणको आदेश देते है कि भरतसे सतर्क रहना तथा उनपर दृष्टि रखना। इन प्रसंगोंने रामके चरित्रका सम्पूर्ण आदर्श ही नष्ट कर दिया। इनके अतिरिक्त केशवके वर्णन इतने जटिल और अस्वाभाविक हो गए है कि कथा समझने और उसका आनन्द लेनेमें निरन्तर बाधा पड़ती है। अलंकार-नियोजन और पाण्डित्य-प्रदर्शनकी भावनाने इस ग्रन्थको और भी चौपट कर दिया। इस दृष्टिसे प्रबन्ध-काव्यकी रचनामे केशव सर्वथा विफल रहे। हाँ, मुक्तक काव्य-रचनामें वे अवश्य ही सिद्ध-प्रतिभ थे और उनमे उनके रस-मर्मज्ञत्वका परिचय भली प्रकार मिलता भी है।

रामचन्द्रिकामे सम्वाद बड़े अच्छे उतरे है। उसका कारण यह है कि एक तो इन्होंने संस्कृत ग्रन्थोंसे सीधे अनुवाद कर दिया है, दूसरे दरबारी कवि होनेके कारण इन्हें इस बातका पूर्ण ज्ञान था कि किस समय, किसके मुँहसे, किस प्रकार, किन शब्दोंमें सम्वाद कहलाना उपयुक्त हो सकता है। अवसरानुकूल सम्वादोंकी योजना करनेमें केशवको जो सफलता मिली है वह कम कवियोंको प्राप्त होती है। इसीलिए कुछ लोग इसे सम्वाद-ग्रन्थ भी कहते है।

केशवकी कविताके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है :—

चञ्चल न हूजै नाथ अञ्चल न खैंचो हाथ,
सोवै नेक सारिकाऊ सुक तौ सोवायो जू।
मन्द करौ दीपदुति चन्दमुख देखियत,
दौरिकै दुराय आऊँ द्वार तौ दिखायो जू।।
मृगज मराल बाल बाहिरै बिडारि देउँ,
भायो तुम्हें केशव सो मोहूं मन भायो जू।
छलके निवास ऐसे बचन-विलास सुनि,
सौगुनो सुरत हू तें स्याम सुख पायो जू।।१।।
फल फूलन पूरे तरुवर रूरे कोकिल कुल कलरव बोलें।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी बन-बन प्रति नाचत डोलैं।।

सारी सुक पण्डित गुनगन मण्डित भावनमय अर्थ बखानैं।
देखे रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानैं ॥२॥
आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री,
मनो विराजै अति चारु भेषा।
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं,
गणेश भालस्थल चन्द्र रेखा ॥३॥
कुन्तल ललित नील भ्रुकुटी धनुष, नैन
कुमुद कटाच्छ बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन
मध्य देश केशरी सु जग गति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्द्रकी चमू, राजश्री बिभीषनकी,
रावनकी मीचु दर कूच चलि आई है ॥४॥

भूषण

केशवने बहुत विस्तारके साथ काव्यशास्त्रके सम्पूर्ण अंगोंपर ग्रन्थ लिखा सही किन्तु रीतिग्रन्थ लिखनेवाले कवियोंकी परम्परा केशवके बहुत पीछे चिन्तामणि त्रिपाठीसे आरम्भ हुई। चिन्तामणिको भूषण और मतिरामका बड़ा भाई बताया जाता है। रीतिकी जो परम्परा उन्होंने आरम्भ की वह अखण्डित रूपसे पद्माकर तक चलती रही यद्यपि पद्माकरके बहुत पीछे हरिऔध जीने भी रीति-विषयक अपना ग्रन्थ 'रसकलस' ब्रजभाषा पद्यमें ही लिखा। चिन्तामणिके भाइयोंमें भूषण और मतिराम बहुत-ही यशस्वी कवि हो गए है। ये रीति-ग्रन्थकार शुद्ध रूपसे कवि ही थे। उन्होंने रीतिको अपनी कविताका माध्यम मात्र बनाया; काव्यांगोंके विवेचनसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं मानना चाहिए। उस युगमें उत्पन्न होकर महाकवि भूषणने भी यही ढर्रा पकड़ा। अन्य कवियोंमें और भूषणमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ औरोंने रसकी दृष्टिसे शृंगारको अधिक महत्त्व दिया वहाँ भूषणने वीररसको। इनके सभी उदाहरणोंके नायक छत्रपति शिवाजी महाराज ही हैं।

भूषणका जीवन-वृत्त

परम्परासे प्रसिद्ध है कि भूषणके तीन भाई और थे—चिन्तामणि, मतिराम और जटाशंकर। किन्तु भूषण-विमर्शके रचयिताका मत है कि मतिराम थे तो भूषणके समकालीन अवश्य परन्तु उनके सहोदर न थे। भूषणने अपनेको—

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।

लिखा है। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि रत्नाकरके पुत्र भूषण कश्यप-गोत्रीय थे। इन्होंने अपने निवास स्थानकी भी सूचना स्वयं दी है—

बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर।

किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई विवरण इनके सम्बन्धका इनकी रचनाओंसे नहीं मिलता।

भूषणके जन्मकालके सम्बन्धमें दो मत हैं। यदि भूषणको शिवाजीके दरबारका रत्न माना जाय-जैसा कि लोक-प्रचलित है—तो शिवाजीकी मृत्युतक तो भूषण अवश्य ही वहाँ रहे होंगे। शिवाजीकी मृत्यु-तिथि संवत् १७३७ है। जो कवि शिवाजीकी सभाका रत्न रहा हो और जिसने अपने वीरतापूर्ण काव्यसे हिन्दू जाति और धर्मके रक्षक शिवाजीको उस परम पुनीत कार्यके लिए अग्रसर किया हो वह निश्चय ही अत्यन्त प्रौढ़ अवस्थाका अर्थात् ५० वर्षसे कम का न रहा होगा। ऐसी अवस्थामें भूषणका जन्मकाल संवत् १६७२ के आस-पास माना जा सकता है जैसा कि मिश्रबन्धुओंका मत है। किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि भूषण वास्तवमें शिवाजीके यहाँ नही, उनके पुत्र साहूके यहाँ थे। साथ ही शिवा-बावनीमें वर्णित बहुतसी घटनाएँ संवत् १७६८-६९ तककी है। इससे माना जा सकता है कि साहूके यहाँ भी भूषण रहे। भूषणका निधनकाल संवत् १७७२ माना जाता है। यदि प्रचलित बाते मान ली जाएँ और भूषणका जन्मकाल सम्वत् १६७२ माना जाय तो भूषणकी मृत्यु १०० वर्षकी अवस्थामे हुई और यह कोई असम्भव बात नहीं है। यदि शिवसिंहकी बात मानकर भूषणका जन्म सवत् १७३८ माना जाय और उनका साहूके यहाँ रहना ठीक समझा जाय तो भी यह आपत्ति तो है ही कि जो भूषण युवावस्था तक यों ही घूमते रहे वे ४२ वर्षकी अवस्था तक इतना सारा कार्य और प्रतिष्ठा कैसे अर्जित कर गए। सारी बातोंपर विचार करनेपर यही प्रतीत होता है कि भूषणका जन्म १६७२ मे और मृत्यु १७७२ में हुई तथा वे शिवाजीके यहाँ तो अवश्य ही रहे और सम्भव है साहूके यहाँ भी रहे हों।

भूषणके वास्तविक नामपर भी विवाद है। भूषणको चित्रकूटाधिपति सोलंकी राजा रुद्रने कवि-भूषण की उपाधिसे सम्मानित किया था।

कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥

आगे चलकर भूषण नाम ही प्रसिद्ध हो गया। वास्तविक नामका कोई ठिकाना नहीं रहा।

भूषणकी रचनाएँ

भूषणकी तीन कृतियाँ आज उपलब्ध है—शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, और छत्रसालदशक। इनके तीन ग्रन्थ और कहे जाते है—दूषणउल्लास, भूषणउल्लास और भूषणहजारा, जो अप्राप्त हैं। उनके कुछ फुटकर छन्द भी इधर-उधर पाए जाते हैं।

शिवराज-भूषणकी रचनाके सम्बन्धमें कवि लिखता है :—

सिवा चरित लखि यों भयो कवि भूषणके चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥
भूषन सब भुवननिमें, उपमहि उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै बरनत सकल निवाहि॥

इसका अर्थ यह हुआ कि शिवाजीके उत्तम चरित्रका बखान करनेके उद्देश्यसे ही कविने शिवराज-भूषणकी रचना की। किन्तु रीतिबद्ध रचनाका युग होनेसे उन्होंने विविध अलंकारोंके उदाहरणरूप ही शिवाजीकी कीर्तिका वर्णन किया। अलंकार-शास्त्रकी दृष्टिसे शिवराज-भूषण किसी कामका ग्रन्थ नहीं है। कविने आरम्भमे ही स्पष्ट भी कर दिया है कि हमे तो शिवाजीके चरित्रका वर्णन करना है और इसके लिए अलंकारोंका माध्यम इसलिए चुना गया है कि भूषणको हिन्दूकुलभूषण का वर्णन भूषणोंके माध्यमसे सुहाता है।

भूषणने शब्दोके रूप बहुत बिगाड़े हैं और अनेक भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग भी तोड़-मरोड़कर किया है।

शिवा-बावनीके वर्त्तमान स्वरूपमें ५२ छन्द तो हैं किन्तु सब शिवाजी-परक नही हैं। हाँ, इसके छन्द अत्यन्त ओजस्वी अवश्य हैं।

छत्रसालदशकमें छत्रसाल-सम्बन्धी दस छन्द हैं। छत्रसालने भूषणकी पालकीमे कन्धा लगाकर जो भूषणका सम्मान किया, उसपर उन्होंने ये दस छन्द कहे थे।

'सिवाको बखानौं की बखानौं छत्रसालको।'

जिन दोनों वीरोंका चरित्रगान भूषणने किया है उन्हें सम्पूर्ण हिन्दू जाति उत्साह और श्रद्धाके साथ स्मरण करती थी। अतः, भूषणने कोई चाटुकारी नहीं की वरन् अपनी कविताके द्वारा उसी जन-भावनाकी व्यञ्जना की। इसीसे भूषणको अल्प-कालमे ही लोक-प्रियता और लोक-प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। जिस ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण भाषा और भावनाकी व्यञ्जना भूषणने की है उसके सम्बन्धमे अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। उन्होंने उस कालमें भी वीर रस की ही रचनाएँ की और वे शुद्ध रूपसे वीर-रसके ही कवि थे। उनके कुछ कवित्त नीचे दिए जा रहे है :—

इन्द्र जिमि जम्भपर बाड़व सुअम्भपर,
रावन सदम्भपर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाहपर सम्भु रतिनाहपर,
ज्यों सहस्रबाहुपर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्डपर,
भूषण वितुण्डपर जैसे मृगराज है।
तेज तम अस पर कान्ह जिमि कंसपर,
त्यों मलेच्छ-वंसपर सेर सिवराज है॥१॥
दाराकी न दौर यह रार नहि खजुवेकी,
बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहवालको।
मठ विश्वनाथको न वास ग्राम गोकुलको
देवीको न देहरा न मन्दिर गोपालको।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है सालको।

बूड़ति है दिल्ली सो सँचारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकालको ॥२॥
चाकचक चमूकै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पतिके लालकी।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना करेरी करवालकी ॥
सुनि सुनि रीति विरुदैतके बड़प्पनकी,
थप्पन उथप्पनकी बानि छत्रसालकी।
जंग जोति लेवा तेऊ ह्वैकै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महेबा-महिपालकी ॥३॥

मतिराम

रीति ग्रन्थकारोमे मतिराम, दास, देव और पद्‌माकर बहुत प्रसिद्ध हो गए है, किन्तु साहित्य-शास्त्रके आचार्यकी दृष्टिसे इनका उतना महत्त्व नहीं है जितना कविकी दृष्टिसे। मतिरामने अत्यन्त स्वच्छ, प्राञ्जल और चलती भाषामे अत्यन्त सरल और मधुर छन्दोंकी रचना की है। इनमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता नहीं है और भावव्यञ्जना भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

देव

मतिरामके कुछ समय पश्चात् देव कविका समय आता है। देव इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जैसा कि उनके प्रपौत्र भोगीलालने लिखा है :—

कश्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत्‌में, भए देव रमनीय।

स्वरचित भावविलासमें देवने दो दोहे लिखे है जिनसे उनका कुछ परिचय मिलता है —

द्यौसरिया कवि देवको, नगर इटायो वास।
जोबन नवल सुभाव रस, कीन्हों भावविलास ॥
सुभ सत्रहसै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव-मुख देवता, भावविलास सहर्ष ॥

इन दोहोसे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती है—१–देव इटावाके रहनेवाले थे। २–उनका जन्म संवत् १७२० में हुआ था। ३–वे द्यौसारिया (देवसरिया, दुसरिहा) कान्युकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। ४–उनका प्रथम ग्रन्थ भावविलास है जिसकी रचना उन्होंने संवत् १७४६ मे सोलह वर्षकी अवस्थामे की थी।

इन्हें कोई स्थायी आश्रयदाता नहीं मिला। अतः, ये इधर-उधर भटकते ही रहे। इनके अन्तिम आश्रयदाता पिहानीके अली अकबरखाँ थे, जिन्हें उन्होंने सुखसागर तरंग सर्मापित किया है। इसके पीछेका

उनका और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। अली अकबरखाँका समय संवत् १८२४ से आरम्भ होता है। अतः, ज्ञात होता है कि उसके कुछ ही पश्चात् देवका परलोकवास हुआ।

देवकी रचनाएँ

देवकी रची ७२ पुस्तकें बताई जाती है किन्तु उनमे २७ का नाम ज्ञात है और मिलती केवल १८ है— भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, प्रेमतरंग, कुशलविलास, जातिविलास, रसविलास, प्रेमचिन्द्रका, सुजानविनोद, रागरत्नाकर, शब्द-रसायन, देवचरित, देवमाया प्रपंच, जगद्दर्शन-पचीसी, आत्मदर्शन-पचीसी तत्त्वदर्शन-पचीसी, प्रेमपचीसी और सुखसागर-तरंग। इनमे अधिकांश रचनाएँ श्रृंगार रसकी है और कुछ उनके संसारसे विरक्ति-भावकी सूचक है। इनकी रचनाओंका श्रेणी-विभाजन किया जाय तो तीन कोटियाँ सामने आती है—१—श्रृंगार और प्रेमकी भावनासे ओतप्रोत, जिसके अन्तर्गत अष्टयाम, जातिविलास, रसविलास और सुजानविनोद आते है। २—रीतिके विवेचनके लिए लिखे हुए ग्रन्थ, जिसके अन्तर्गत भाव-विलास, भवानीविलास और शब्दरसायनकी गणना की जा सकती है; तथा ३—दार्शनिक विचारोंसे युक्त जिसके अन्तर्गत देव-चरित्र, देवमायाप्रपच, प्रेम-पचीसी, तत्त्वदर्शन-पचीसी, जगद्दर्शन-पचीसी और आत्मदर्शन-पचीसी आते है। शेष पाँचमें रागरत्नाकर तो संगीतका ग्रन्थ है और सुखसागर तरंग उनके विभिन्न ग्रन्थोंसे लिया हुआ संग्रह ग्रन्थ है। यही अवस्था उनके तीन अन्य ग्रन्थोंकी भी है। इस प्रकार अब तक प्राप्त ग्रन्थोंमें तेरह ही ऐसे है जिन्हें देवकी स्वतन्त्र रचना कहा जा सकता है।

देव सब प्रकारसे महाकवि थे। रीतिकालके कवियोंमे उनका प्रमुख स्थान है। भाषा और भावपर पूर्ण अधिकारके साथ प्रत्येक विषयका ठीक ढगसे सरस चित्रण कर देना देवका सबसे बड़ा कौशल है। देव स्वतन्त्र विचारोंके निर्भीक व्यक्ति थे। इनको न किसी का बन्धन अच्छा लगता था, न ये किसीकी चाप-लूसी अधिक करते थे। इसीलिए ये किसीके यहाँ टिक नही पाए।

देवकी भाषा प्रौढ़ और प्राञ्जल है। उसमें प्रवाह है। इनके कवित्तोंमें जितना प्रबल प्रवाह, ओज, अनुप्रास और यमक की छटा मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इनके सवैये सरलता और माधुर्यसे ओतप्रोत हैं। इनकी रचनाएँ प्रसाद-गुण सम्पन्न होनेके साथ ही गम्भीर और गूढ़ भी है, इनका शब्द विन्यास ललित और मनोमुग्धकारी है। शब्दोंको तोड़ा-मरोड़ा भी इन्होंने कम है। देशाटनसे प्रभावित होकर अन्य भाषाके शब्दोंका प्रयोग तो अवश्य इन्होंने किया है किन्तु इस कौशलसे कि भाषाओंके प्रवाहमें वे पूर्णतः घुलमिल गए है। जैसे-जैसे ये वयमें बढ़ते गये वैसे-वैसे इनकी भाषा और इनके भावमें निखार आता गया। इनकी रचनाओंके कुछ उदाहरण लीजिए :—

पाँयन नूपुर मञ्जु बजे कटि किंकिनि में धुनिकी मधुराई।
साँवरे अंग लसे पट पीत, हिए हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चञ्चल, मन्द हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्रीब्रजदूलह देव सहाई॥१॥
धारमें धाय धँसी निरधार ह्वै जाय फँसी उकसीं न उघेरी।
री! अगराय गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न, घिरीं नहिं घेरी॥

देव कछू अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भई चेरी।
वेग ही बूड़ि गई पखियाँ अँखियाँ मधुकी मखियाँ भई मेरी ॥२॥
झहरि झहरि झीनी बूंद हैं परति मानो।
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मोसों चलौ झूलिबे कौं आज।
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में।
आँख खोलि देखौं तौ न घन है न घनस्याम,
वेई छाई बूंदें मेरे आँसु ह्वै दृगनमें ॥३॥

एक वाक्यमें कहा जा सकता है कि देव बहुज्ञ थे और शृंगार रसका जैसा सशक्त वर्णन इन्होंने किया है वैसा कम कवि कर सके हैं।

पद्माकर

रीति-ग्रन्थकार कवियोंमे पद्माकरका स्थान अत्यन्त ऊँचा है। बिहारीके अतिरिक्त इनके-जैसी लोकप्रियता भी किसीको नहीं मिली और इसका कारण है इनकी कविताकी रमणीयता।

पद्माकरका जन्म मोहनलाल भट्टके घर संवत् १८१० में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे और बाँदामें ही उत्पन्न हुए थे। सस्कृतके अच्छे विद्वान् और भाषाके सुकवि होनेके कारण अनेक राजधानियोंमें इनका सम्मान हुआ था। पद्माकरने अपनी कवित्व-शक्तिसे करोड़ोंकी सम्पत्ति, नाम और प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। सबसे पहले ये नीमे अर्जुनसिहके यहाँ रहे। उसके पश्चात् गोसाई अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर) के यहाँ कुछ समय रहकर ये रघुनाथ रावके यहाँ चले गए। वहाँसे ये जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर और बूंदी होते हुए बाँदा चले आए। जीवनके अन्तिम सात वर्ष पद्माकरने कानपुरमे गगा तटपर बिताए जहाँ सम्वत् १८९० मे इनकी मृत्यु हुई।

पद्माकरकी रचनाएँ

पद्माकरकी सबसे पहली रचना हिम्मतबहादुर-बिरुदावली है जिसमे फड़कती भाषामें इन्होंने हिम्मतबहादुरके गुणोंका वर्णन किया है। यह खण्ड कथा-काव्य है। अपने जयपुर-निवास-कालमें इन्होंने महाराज जगतसिहके नामपर जगद्विनोदकी रचना की। रस-शास्त्रपर लिखा हुआ इनका यह जगद्विनोद अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। वहीं सम्भवतः इन्होंने अलंकार-विषयक अपना ग्रन्थ 'पद्माभरण' भी लिखा जो दोहोंमें है। बाँदा लौटनेपर इन्होंने भक्ति और वैराग्य-सम्बन्धी ग्रन्थ 'प्रबोधपचीसी' की रचना की। कानपुर-निवासकालमे इन्होंने 'गंगालहरी' की रचना की जिसमे गंगाजी की स्तुति है। रामरसायन नामसे दोहे चौपाइयोंमें लिखा। इनके नामसे एक और ग्रन्थ प्रसिद्ध है किन्तु उसकी रचना साधारण होनेसे कहा जाता है कि सम्भवतः यह किसी दूसरेकी रचना हो।

यद्यपि इनकी अन्य रचनाएँ भी कम महत्व की नही है किन्तु पद्माकरकी ख्यातिका मुख्य आधार इनका जगद्विनोद है। काव्यरसिकों और काव्याभ्यासियों दोनोंके लिए इस ग्रन्थका समान महत्त्व रहा है।

पद्माकरकी रचनाओंमे भाषा और भाव दोनोंकी चुस्ती और सजीवता प्राप्त होती है। जैसा प्रौढ़ इनका शब्द-विन्यास है वैसा ही भावको साकार कर देनेका कौशल भी। उनके शब्दोंमे झंकार है, प्रवाह है और सरलता है और इनके प्रयोगमें इस कौशलसे काम लिया गया है कि पद्माकरके कवित्त-सवैयोंसे रस छलक पड़ता है। अनुप्रासका ध्यान इन्होंने बराबर रखा है किन्तु कदाचित् ही कही ऐसा लगता हो कि भाषा या भाव उसके कारण दब गए हों। जैसे इन्होंने अन्य भाषाओंके शब्द भी कही-कही लेकर पचाए है उसी प्रकार अन्य कवियोंके भाव भी इन्होंने इस प्रकार लिए है कि वे इनके हो गए है।

पद्माकरका काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इन्होंने वीररसकी कविता भी उसी कौशलके साथ लिखी है जिस कौशलके साथ शृंगार रस की। अन्तिम दिनोंमें इन्होंने ज्ञान-भक्ति विषयक जो दो ग्रन्थ लिखे वे भी कविका महत्त्व घटाते नही, बढ़ाते है।

पद्माकरकी रचनाओंके कुछ उदाहरण लीजिए :—

फागुकी भीर, अभीरिनमें गहि गोविन्दै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मनकी पदमाकर, ऊपर नाई अबीरकी झोरी॥
छीनि पितम्बर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी॥१॥
ए व्रजचन्द चलो किन वा व्रज लूकैं वसन्तकी ऊकन लागीं।
त्यों पदमाकर पेखौ पलासन पावक-सीं मनो फूंकन लागीं॥
वै व्रजनारी विचारी वधू, वन बावरी लौं हिए हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइनै ये सु कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागीं॥२॥
कूलनमें केलिमें कछारनमें कुञ्जनमें,
क्यारिनमें कलिम कलीन किलकन्त है।
कहै पदमाकर परागनमें पौन हूँ मे,
पाननमें पीकमे पलासन पगंत है।
द्वारमें दिसानमें दुनीमें देस-देसनमें,
देखौ दीप दीपनमें दीपति दिगन्त है।
वीथिनमें व्रजमें नेबलिनमें बेलिनमें,
बननमें बागनमें बगरो बसन्त है॥३॥

रीति-ग्रन्थकारोंकी परम्परामे अन्तिम कवि प्रतापसाहि थे जिन्होंने व्यग्यार्थ कौमुदी लिखी। उसके पश्चात् नागरीके गद्यका प्रचार हो जानेसे साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी जो भी ग्रन्थ लिखे गए सब नागरी गद्यमें ही। इस नागरीके युगमें केवल एक ही कवि हरिऔधजीने व्रजभाषा पद्यमें रीति-विषयक अपना ग्रन्थ 'रसकलस' प्रस्तुत किया।

ब्रजभाषाके प्रबन्ध काव्य

ब्रजभाषाकी प्रकृति मुक्तक काव्यके अधिक अनुकूल है सही परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें सफल प्रबन्ध काव्योंकी रचना नहीं हो सकती। ब्रजभाषाके प्रथम महाकवि सूरदासजीने श्रीमद्भागवतको आधार मानकर भी सूरसागरकी सम्पूर्ण रचना मुक्तक शैलीमें ही की, क्योंकि उन्होंने जो पद कहे है वे तो श्रीनाथजीकी कीर्त्तन-सेवामें ही कहे हैं। किन्तु उसका प्रभाव यह हुआ कि उन्हींके अनुकरणपर ब्रजभाषामें कृष्ण-सम्बन्धी जो विशाल साहित्य रचा गया वह सब मुक्तक छन्दों या पदोंमें ही रह गया। इसीलिए ब्रजभाषा मुक्तकोंमें ही मँजी।

सूरदासजीका सूर-सागर यदि छोड़ दिया जाय तो ब्रजभाषाका सबसे पहला प्रबन्ध-काव्य नन्ददास-की रासपञ्चाध्यायी है। उसमे कृष्णके बालचरितकी एक झाँकी दिखाई गई है। इसी समयके आस-पास नरहरि कविने रुक्मिणी-मंगलकी रचना की। किन्तु खण्डकाव्यके रूपमे जिस ग्रन्थकी सबसे अधिक प्रसिद्धि हुई और जिसे आज भी प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति जानता है वह है नरोत्तमदासजीका सुदामाचरित। इसकी रचना अत्यन्त सरस और हृदयग्राहिणी है। रामचन्द्रिकाको यदि स्फुट छन्दोंका सग्रह न मानकर महाकाव्य मानें तो सवत् १६५८ मे ही ब्रजभाषाका प्रथम महाकाव्य प्रकाशमे आ गया था। इसके पश्चात् प्रायः सभी अच्छे-अच्छे कवियोंका ध्यान रीति-ग्रन्थोंकी रचनाकी ओर ही आकृष्ट हो गया और किसीने भी कथाकी ओर रुचि न दिखाई। जो छोटे-मोटे कथा-काव्य रचे भी गए, वे भी बड़े महत्त्वहीन है। हाँ, कुछ अन्य कवियोंने कथा-काव्योंकी रचनाएँ अवश्य की है जिनमे सबसे पहला नाम लाल कविका आता है जिन्होंने दोहे-चौपाईमे 'छत्रप्रकाश' की रचना की। यह वीर-रस प्रधान रचना है। छोटी-मोटी अन्य प्रबन्ध रचनाओं-के पश्चात् सूदनके 'सुजानचरित' का नाम आता है। इसमें भरतपुरके सुजानसिंहके शौर्य और पराक्रमका वर्णन बड़े ही ओजस्वी छन्दोंमे किया गया है। वीररसके ग्रन्थोंमे इसका विशेष महत्त्व है। पद्माकरकी 'हिम्मतबहादुर बिरुदावली' भी वीर रसका छोटासा अच्छा खण्ड-काव्य है। चन्द्रशेखर वाजपेयीका 'हम्मीर हठ' भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। बीसवीं शताब्दीके प्रथम चरणमे भारतेन्दुके पिता गिरिधरदासजीने भी कई प्रबन्ध-काव्योकी रचना ब्रजभाषामे की। ब्रजभाषामे काव्य-रचना कुछ दिन आगेतक भी चलती रही किन्तु भारतेन्दु-मण्डलके अवसानके साथ उसकी व्याप्ति समाप्त हो गई और उसका स्थान नागरीने लिया। इसका यह अर्थ नही कि ब्रजभाषामे काव्य-रचना बन्द हो गई। वह तो आज भी हो रही है और कितने ही अच्छे-अच्छे कवि ब्रजभाषामें बड़ी उच्च कोटिकी रचनाएँ करते जा रहे है किन्तु अब यह छिटफुट प्रयासके रूपमे ही है। ब्रजभाषाके वर्तमान मुक्तक रचनाकारोंकी चर्चा हम पहले कर आए हैं। इस युगके प्रबन्ध-काव्य रचनेवालोंमे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने 'धाराधर-धावन' के नामसे मेघदूतका अनुवाद किया। बीसवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे कथा-काव्य रचनेवालोंमें जगन्नाथदास 'रत्नाकर', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रामनाथ ज्योतिषीका नाम आता है। इस प्रकार हम देखते है कि ब्रज भाषामें कथा-काव्यकी परम्परा अब भी चल रही है, यद्यपि उसमें रचनाएँ अब बहुत कम हो रही है।

रत्नाकर

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशीमें संवत् १९२३ में और निधन हरिद्वारमें सं. १९८६ में

हुआ। नागरीके इस युगमें भी इन्होंने एकनिष्ठ होकर ब्रजभाषाकी सेवा की। गंगावतरण, हरिश्चन्द्र, और उद्धवशतक इनके तीन प्रबन्ध काव्य हैं। 'समालोचनादर्शन' अँग्रेजीका अनुवाद है। इनके काव्योंका संग्रह 'रत्नाकर-ग्रन्थावली' नाम-से प्रकाशित हुआ है। ब्रजभाषापर इनका जैसा अखण्ड अधिकार था वैसा कम कवियोंका देखा जाता है। इनकी रचनाओंमें इतनी सरसता कूट-कूटकर भरी है कि बड़े-बड़े पुराने कवि भी इनकी सुघरताके आगे नहीं ठहरते। इनकी सूझ और उक्ति-वैचित्र्य भी अद्भुत है। इनकी भाषामे प्रवाहके साथ बड़ी चुस्ती भी पाई जाती है। बिहारी-सतसईकी बहुत अच्छी और प्रामाणिक टीका इन्होंने प्रकाशित की थी। इनकी रचनाओंमें ओज और प्रवाह के साथ माधुर्य भी है। रत्नाकरजी महा-कवि थे इसमें सन्देह नहीं। और सच पूछिए तो इस युगमें यदि कोई कवि हुआ है तो रत्नाकरजीही, शेष सब यों ही है। इनकी रचनाओंके उदाहरण लीजिए :—

कान्ह दूत कैधों ब्रह्मदूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरनको मति ब्रजवारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यो हम कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यो जो तुम,
तो हू हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहैं बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूंदता बिलैहै बूंद बिबस बिचारी की॥१॥
भुज उठाइ हरषाइ बाँकुरो विरद सँवारयो।
दियो विसद वर राज भूपकौ काज सँवारयो॥
हम लैहें सिर गंग वंग जग होहि जाहि ज्वै।
यों कहि अन्तर्धान भए, नृप रहे चकित ह्वै॥२॥

रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्म वस्तीमे संवत् १६४१ में तथा निधन काशीमें संवत् १९९८ में हुआ। शुक्लजी प्रधानतया समीक्षक और निबन्धकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्तु वे हिन्दीके आदि कहानी-कार ब्रजभाषा और नागरीके उत्कृष्ट कवि तथा अँग्रेजी, संस्कृत, फारसी तथा बँगलाके मर्मज्ञ थे। नागरीमें उन्होंने कई कविताएँ प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी लिखी थीं। संवत् १९७९ में उनका 'बुद्धचरित' प्रकाशित हुआ। ब्रजभाषामे आठ सर्गोमे तथा विविध छन्दोंमें रचा हुआ यह अत्यन्त प्रौढ़ और सशक्त महाकाव्य है। यद्यपि अँग्रेजी' पुस्तक 'लाइट ऑफ एशिया' के आधारपर इसकी रचना हुई है किन्तु यह अनुवाद नहीं है, पूर्णतः मौलिक रचना है। 'बुद्धचरित' की भाषा इतनी प्रवाहशील है कि चलती ब्रजभाषाके पूरे मेलमें लाई गई है। अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग उसमें कहीं नहीं मिलता है। प्राकृतिक वर्णन भी उसमें यथेष्ट हैं। कुछ उदाहरण लीजिए :—

चमकाय श्रृंगन चन्द्र चढ़ि अब अमल अम्बर पथ गह्यो।
झलकाय निद्रित भूमि, रोहिनिके हिलोरनको रह्यो॥

रसधामके बाँके मुंडरनपर रही द्युति छाय है।
जहँ हिलत डोलत नाहिं कोऊ कतहुँ परत लखाय है॥१॥
पथ फूलन सों यदि भाँति भरें।
जहँ पाँव कुमार तुरन्त धरें॥
धँसि टापन तासु लखाय परें।
मिलि लोग सबै जयनाद करें॥२॥

सोलहवीं शताब्दीसे पूर्व ही ब्रजभाषा इतनी व्यापक काव्य-भाषा हो गई थी कि सम्पूर्ण उत्तर भारतमें पिछली पाँच शताब्दियोंसे गुजरातसे असम तक ब्रजभाषामें रचनाएँ होने लगीं। इसका कुछ कारण तो वैष्णव-धर्मका प्रचार था किन्तु दूसरा कारण काव्यके लिए ब्रजभाषाकी स्वाभाविक प्रकृति भी थी। ब्रज-भाषाकी माधुरीके लिये पुरानी उक्ति ही प्रसिद्ध है—

वाचि श्रीमाथुरीणां जनक-जनपदस्थायिनीनां कटाक्षे
दन्ते गौडाङ्गनानां सुललितजघने चोत्कल-प्रेयसीनाम्।
माहाराष्ट्री नितम्बे सजलघनरुचौ केरलीकेशपाशे।
कर्णाटीनां कटौ च स्फुरति रतिपतिर्गुजरीणां स्तनेषु॥

[ब्रज नारियोंकी वाणीमें, मैथिल नारियोंके कटाक्षमे, बंगालियोंके दाँतमे, उड़िया स्त्रियोंके जघनमें, महाराष्ट्री स्त्रियोंके नितम्बमें, केरलकी नारियोके घने काले जूड़ोंमे, कन्नड़ी स्त्रियोंकी कमरमे और गुजराती नारियोंके स्तनोंमे कामदेव स्फुरण करता है।']

ब्रजभाषाके माधुर्यका यह प्रभाव इसी बातसे स्पष्ट है सुदूर पश्चिम गुजरातमे ब्रजभाषामे साहित्य रचनेवालोंकी संख्या लगभग चार सौ है और असम—जैसे सुदूर पूर्वमे भी शंकरदेव जैसे प्रौढ़ कविने ब्रज-भाषामें ही रचना करके प्रसिद्धि पाई।

निर्गुणिए सन्तोंका ब्रज-साहित्य

पीछे बताया जा चुका है कि राजस्थानमे निर्गुणवादी सन्तोंने सधुक्कड़ी तथा राजस्थानी भाषामें तो बहुत रचनाएँ की किन्तु ब्रजभाषाके प्रभावसे भी वे मुक्त नही हो सके। इसलिए उनमेसे बहुतोंने पिंगल (ब्रजभाषा) मे भी प्रौढ़ रचनाएँ की। विशेषतः अधिक विद्वान् और व्युत्पन्न सन्तोंने तो ब्रजभाषाका ही आश्रय लिया।

दादू पन्थका प्रचार जयपुर राज्यमे अधिक था। इनका समाज चार भागोंमे विभक्त है—खालसा, विरक्त, उतराधा, और नागा। इस पन्थसे सम्बद्ध भक्तोंने अधिकांश सधुक्कड़ी तथा राजस्थानी भाषामे रचना की। किन्तु ब्रजभाषाकी सर्वश्रेष्ठ रचना यदि किसीने की तो सुन्दरदासने, जिनके कवित्त और सवैयोंमें वही चोज, उक्ति-सौन्दर्य और प्रवाह है जो रीति-कालीन कवियोंमे दृष्टिगोचर होता है। इनका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

देह तज्यो अरु नेह तज्यो अरु खेह लगाअि कै देह सँवारी।
मेह सहे सिर सीत सहे तन धूप से जो पँचागिनी जारी॥

भूख सही रहि रूख तरे पर सुन्दरदास सबै दुःख भारी
डासन छाँड़ि कै आसन ऊपर आसन मार्यौ पै आस न मारी

चरणदासी सम्प्रदायके प्रवर्त्तक सन्त चरणदासने एक ओर निर्गुणके गीत गाए हैं। वहीं सगुण भक्तिके आवेगमें ब्रज-चरित्र या ब्रज-चरित वर्णन ब्रजभाषामें भी लिखा है।

राम-सनेही पन्थके अनुयायियोंमें राम जन (सम्वत् १८३९) ने अपनी राम-पद्धति, दृष्टान्त सागर और फुटकर वाणियोंमे, जगन्नाथ (सम्वत् १८५५) ने ब्रह्म समाधि विलीन जोग ग्रन्थमें, हरिरामदास (सम्वत् १८३५) ने निशांणीमे, रामदास (सम्वत् १८०९ से १८२१) ने गुरु महिमा, भक्तमाल, चेतावनी आदि ग्रन्थोंमें, दयालदासने (सम्वत् १८१६ से १८८५) करुणा-सागर नामक ग्रन्थमे और दरियावजीने (सम्वत् १७३३ से १८०५) वाणीग्रन्थमें पिंगल या ब्रजभाषाका प्रयोग किया है।

लालदासी पन्थके प्रवर्त्तक लालदास (१५९७) ने यद्यपि नागरी (खड़ी बोली) में रचना की; किन्तु उनके अनुयायी सन्त कवियोंने पिंगल या ब्रजमें ही रचना की।

तुलसी साहब या साहबजीका सम्बन्ध सम्भवतः महाराष्ट्र सन्त परम्परासे रहा है। इनका महत्त्व इसलिए अधिक है कि ये अपनेको गोस्वामी तुलसीदासजीका अवतार मानते थे। इन्होंने राम-चरित मानसको ब्रजभाषाके माध्यमसे 'घट रामायण' के रूपमें प्रस्तुत किया है। इनकी मुख्य रचनाओंमें 'घटरामायण' 'शब्दावली', 'रत्नसागर' तथा 'पद्म-सागर' उल्लेखनीय है।

राजस्थानके ब्रजभाषाके कवि

राजस्थानके ब्रजभाषाके कवियोंमें तत्त्ववेत्ता, कृष्णदास, अग्रदास, नाभादास, मीराबाई, परशुराम, महाराज यशवन्त सिंह, बिहारी, जानकवि, नरहरिदास, कुलपति, वृन्द, हरिराम, नागरीदास, हित वृन्दावनदास, दलपतिराय और वंशीधर (अहमदाबाद-निवासी), हरिचरणदास, सुन्दर कुँवरि, उम्मेदराम, जोधराज, बुद्ध सिंह, प्रतापसिंह, गवरीबाई, कृष्णलाल, जवानसिंह, चंडीदान आदि अनेक कवि हुए और सम्वत् १९०० के पश्चात् भी नटनागर, जीवनलाल, बख्तावरजी, प्रताप कुँवरिबाई, गणेशपुरी, गुलाबजी, मुरारीदान, विड़द सिंह चन्द्रकला, केशरी सिंह, रामसिंह, अमृत लाल, मोहन सिंह आदि अनेक ब्रजभाषाके अच्छे कवि हुए हैं।

वास्तवमें ब्रजभाषाका सर्वाधिक सुन्दर साहित्यिक स्वरूप कृष्णभक्तोंमे ही देखनेको मिलता है। वल्लभ सम्प्रदायके अष्ट छापके आठों कवि-कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीत स्वामी, और चतुर्भुज दास सभीने अत्यन्त रसमय साहित्यिक रचना की। इनमे सूरदासजीने विशेष प्रसिद्धि पाई।

चैतन्य सम्प्रदायके ब्रजभाषाके कवियोंमें गदाधर भट्ट, माधवेन्द्रपुरी राम रायजी, सूरदास मदनमोहन, वल्लभरसिक, केशव भट्ट, वृन्दावनदास ब्रह्म गोपाल, माधवदास, जगन्नाथ, चन्द्रगोपाल स्वामी, कल्याण-दास, ललित किशोरी, कृष्णदास ब्रह्मचारी, प्रियादास और रामहरि मुख्य हैं। इनमें भी गदाधर भट्ट (१५८०) और सूरदास मदनमोहन (१५९०) की रचनाएँ अधिक सरस हैं।

निम्बार्क सम्प्रदायके ब्रजभाषा कवियोंमें भट्टजी, परशुराम देव, तत्त्व-वेत्ता, गोविन्द देव, सुन्दर

कुँवरि, हरिव्यास देव, रूपरसिक, वृन्दावन देव, बाकांवती, बनीठनीजी, गोविन्दशरण देव, छत्रकुँवरि तथा रसिक गोविन्दजी अधिक प्रसिद्ध हैं।

निम्बार्क सम्प्रदायकी दूसरी हरिदासी शाखामें स्वामी हरिदासजी, विट्ठल विपुलजी, बिहारीन देवजी, सरसदेवजी, नरहरि देवजी, रसिक देवजी, ललित किशोरी देवजी, सहचर्य शरण तथा भगवत रसिक अपनी सरस ब्रजभाषाकी रचनाओंके लिये अधिक प्रसिद्ध हैं।

राधावल्लभीय सम्प्रदायमे सबसे अधिक ब्रजभाषाके कवि हुए है। इस सम्प्रदायमें १६ वीं सदीमें हित हरिवंश, विट्ठलदास, नरवाहन, मेघा (मेहा), खेमहित, अली भगवान, सेवकजी तथा नवलदास और इसके पश्चात् १७ वीं से २० वीं शताब्दी तकके लगभग दो सौ अच्छे प्रौढ़ कवि हुए हैं। इनमें हित-हरिवंश, नरवाहन, सेवकजी, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, भावुक, हरिराम व्यास, ध्रुवदास, नागरीदास और रूपलाल अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

भक्तिकालके अन्य कवियोंमें लालजी, केवलराम, मदन मोहन प्रभुदास खेम, गोपीनाथ, नाथ, नारायण भट्ट और रामदास आदि अनेक प्रसिद्ध कवि हुए। ब्रजसे बाहरके अन्य कवियोंमें आसकरणदास, कल्याणसिंह, कृष्णदास चालक, चन्द्रसखी, हृदयराम, रसखान, अभयराम, कल्याणदास, कल्याणी, गोविन्दस्वामी, जगन्नाथ-दास, तुलसीदास, माधवदास, मुरारीदास, विद्यादास, कृष्णदास पैहारी और कील्हजीका नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त छीहल, कृपाराम, महापात्र नरहरि वन्दीजन, नरोत्तमदास, महाराज बीरबल, महाराज टोडरमल, गंग मनोहर कवि, वलभद्र मिश्र, जमाल, केशवदास, होलाराय, रहीम, नादिर, मुबारिक, बनारसीदास, सेनापति, पुहकर कवि, सुन्दर, लालचन्द्र तानसेन और अकबरका नाम भी गिना जाता है।

ब्रजभाषाका रीतिकालीन साहित्य

रीतिकालीन (१७००से १९०० सम्वततक) साहित्यमें काव्य शास्त्रके लक्षण-ग्रन्थ लिखे जा रहे थे और अधिकांश रचनाएँ शृंगार-परक थीं। सभी प्रतिभाशीली कवि नायिका-भेदके वर्णनमें अपनी सारी शक्ति लगा रहे थे, या अलंकार ग्रन्थ लिख रहे थे। किन्तु इसी युगमें भक्ति और शृंगारके समन्वयसे माधुर्य भक्तिका भी निरूपण होने लगा था, आश्रय दाता राजाओंकी प्रशंसा भी की जा रही थी और भूषण–जैसे कुछ लोग वीर रसकी रचनाएँ भी कर रहे थे। इनमेंसे पहली श्रेणीमे वे कवि आते है जिन्होंने काव्य-शास्त्रकी पद्धतिपर तत्सम्बन्धी सभी विषयोंका निरूपण किया है। इनमें मुख्य कवि और उनकी रचनाएँ निम्नांकित है :—

१–**सेनापति**–काव्य-कल्पद्रुम।
२–**चिन्तामणि**–कविकुलकल्पतरु और काव्यविवेक।
३–**कुलपति मिश्र**–रस-रहस्य।
४–**देव**–काव्य-रसायन।
५–**सूरति–मिश्र** काव्य-सिद्धान्त।
६–**श्रीपति**–काव्य सरोज।
७–**दास**–काव्य-निर्णय।
८–**सोमनाथ**–रसपीयूषनिधि।
९–**कुमारमणि भट्ट**–रसिकरसाल।
१०–**रतनकवि**–फतेहभूषण।
११–**करनकवि**–साहित्य-रस।
१२–**प्रतापसाहि**–काव्य-विलास।
१३–**रसिकगोविंद**–रसिक गोविंदानन्दघन।

जिन कवियोंने विशेष रूपसे नायिका-भेदका अथवा शृंगार रसके विभिन्न विषयों और अंगोंका विवेचन किया है, उनमें निम्नांकित कवियोंकी रचनाएँ आती हैं---

१--**केशव**--रसिकप्रिया। २--**मतिराम**--रसराज।
३--**सुखदेव मिश्र**--रस रत्नाकर, रसार्णव। ४--**देव**--भावविलास, रसविलास, भवानीविलास आदि।
५--**कवीन्द्र**--रस-चन्द्रोदय। ६--**दास**--रस निर्णय।
७--**तोष**--सुधानिधि। ८--**बेनी प्रवीन**--नवरसतरंग।
९--**पद्माकर**--जगद्विनोद।

कुछ ऐसे भी विद्वान कवि हुए हैं जिन्होंने केवल ऐसे अलंकार ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें केवल लक्षण देकर उदाहरण दे दिए गए हैं। इनमें करनेसका 'श्रुतिभूषण' और जशवन्त सिंहका 'भाषा-भूषण' मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रतिभा-सम्पन्न कवि हुए हैं जिनमें लक्षण देकर केवल लक्ष्य या उदाहरण ही मुख्य रूपसे दिए गए हैं, जैसे---

१--**मतिराम**--ललितललाम। ५--**दत्त**--लालित्यलता।
२--**भूषण**--शिवराजभूषण। ६--**ग्वाल**--रसिकानन्द।
३--**रघुनाथ**--रसिकमोह। ७--**प्रतापसिंह**--अलंकार चिन्तामणि।
४--**दूलह**--कविकुलकंठाभरण।

केशवदास

इन रचनाओंमें आचार्य केशवदास अपने आचार्यत्त्वके लिए अधिक प्रसिद्ध हैं जिनकी 'राम-चन्द्रिका', 'रसिक-प्रिया' और 'कवि-प्रिया' अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उन्होंने 'वीरसिंह देव-चरित', 'विज्ञान-गीता' और 'रतन-बावनी' की रचना भी की थी। प्रसिद्ध सन्त सुन्दरदासने इनकी 'रसिक-प्रिया' पर बड़ी कठोर आलोचनात्मक टिप्पणी की थी:---

रसिक-प्रिया रसमंजरी, और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत बिधि, विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि, लगत विषयिनको प्यारी।
जागे मदन प्रचंड, सराहें नख-सिख नारी॥
ज्यों रोगी मिष्टान्न खाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तो रसिक प्रिया धारै॥

इन्हें कठिन काव्यका प्रेत कहते हैं। इनके सम्बन्धमें यह उक्ति प्रसिद्ध है :---

कवि को देन न चहैं बिदाई।
पूछे केशव की कविताई॥

चिन्तामणि

चिन्तामणि (सम्वत् १६६६) ने छन्द-विचारके अतिरिक्त रामायण काव्य विवेक, शृंगार-मंजरी, रस-मंजरी, काव्य-प्रकाश तथा कवि-कुल कल्पतरु, शीर्षक ग्रन्थोंकी रचना की है।

महाराज जसवन्त सिंह (१६८३) ने अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण देकर रस-नायक, नायक-नायिका-भेद आदिपर 'भाषा भूषण' नामक ग्रन्थ लिखा है जिनमें आचार्यत्व अधिक और कवित्व कम है।

बिहारी, मतिराम, भूषण और देव

कुलपति मिश्रने (सम्वत् १७२७) रस-रहस्य, द्रोण पर्व, युक्ति-तरंगिणी, नखशिख और संग्राम-सार पाँच ग्रन्थ लिखे। आगरा-निवासी सूरति मिश्र ने (१८ वी शतीके अन्तिम चरण) अलंकार-माला, रस-रत्न-माला, सरस रस, नख-शिख, काव्य सिद्धान्त, रस-रत्नाकर तथा रस ग्राहक-चन्द्रिका ग्रन्थोंके अतिरिक्त बिहारी सतसई, रसिकप्रिया और कविप्रियापर ब्रजभाषामें गद्यमे टीकाएँ लिखी हैं। कृष्ण कवि (सम्वत् १७८५) ने बिहारीके दोहोंपर सवैयोंमे टीका लिखी है। रसिक सुमति (सम्वत् १७८५) ने अलंकार-चन्द्रोदय की रचना की। भिखारीदास (सम्वत् १८०३ में) ने काव्य-निर्णय, रस सारांश, छन्दार्णव पिंगल, शृंगार, नाम प्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छन्द प्रकाश, शतरञ्ज शतिका तथा अमर प्रकाश शीर्षक ग्रन्थोंकी रचना की है। आचार्यत्वकी दृष्टिसे इनकी रचना अत्यन्त प्रौढ़ और उच्च कोटिकी है।

आलमने ब्राह्मण होनेपर भी शेख रंगरेजिनसे विवाह करके अत्यन्त मादक शृगार-पूर्ण रचनाएँ (१७४०–१७६०) की हैं जिनका संग्रह 'आलम केलि' नामसे प्रकाशित हुआ है। लाल कवि (सम्वत् १७६४) ने छत्र प्रकाश और विष्णुविलास ग्रन्थकी रचना की जिनमें छत्र-प्रकाशका महत्त्व इतिहास और काव्य दोनों दृष्टियोंसे अधिक है। घनानन्द (सम्वत् १७४६) के मनमे कृष्णके प्रति प्रेमा भक्ति उत्पन्न हुई। इन्होंने सवैयों और कवित्तोंमें भक्ति, विरह और करुणके अत्यन्त मधुर छन्दोंकी रचना की है। इन्होंने स्वयं अपने काव्यके सम्बन्धमें कहा है :—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरतानिके भेदको जानै।
योग-वियोगकी रीतिमें कोविद भावना भेद सरूपको ठानै॥
चाहके रंगमें भीज्यो हियो बिछुरे—मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घनजीके कवित्त बखानै॥

रीतिकालीन कवियोंमें इनका-सा माधुर्य किसीको नहीं प्राप्त है।

कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावन्तसिंहने (नागरीदास) सम्वत् १७५६ ने विरक्त होकर लगभग ७३ ग्रन्थोंकी बहुत ही प्रौढ़ रचनाएँ कीं। सोमनाथ (सम्वत् १७८६ से १८१२) भरतपुरके राजा वदन सिंहके राज-कवि थे। ये शशिनाथ और नाथके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इन्होंने संग्राम-दर्पण, सुजान-विलास, रस-विलास, शृंगार-विलास, राम-चरित-रत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की।

इनके अतिरिक्त रसलीनने अंग-दर्पण तथा रस-प्रबोध, चाचा हित वृन्दावनदास (सम्वत् १७६०) में लगभग दो सौ ग्रन्थ लिखे। निम्बार्कके टट्टी सम्प्रदायमें दीक्षित भगवत-रसिक (सम्वत् १७९५) ने अनेक पद, छप्पय और कवित्त लिखे। सूदन (सम्वत् १८०२) ने सुजान-चरितकी रचना की। दूलह (१८०० से १८२५) ने कविकुलकंठाभरण लिखा। रसिक कवि बोधा (सम्वत् १८३०–६०) ने बड़े चुभते हुए प्रेम-परक सवैये लिखे। बुन्देलखण्डी लाला ठाकुरदास (सम्वत् १८२३) ने अत्यन्त सरल, स्वाभाविक और सटीक शब्दोंमें बहुत ही सुन्दर सवैये और कवित्त लिखे जो 'ठाकुर ठसक' के नामसे प्रकाशित हैं।

ग्वाल

ग्वाल (सम्वत् १८४८) ने सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जिनमें मुख्य हैं—यमुना लहरी, रसिकानन्द, हमीर हठ, राधा-माधव-मिलन, श्रीकृष्ण जू की नखसिख, कवि-दर्पण, रसरंग, साहित्यानन्द, अलंकार-भव-भञ्जन, प्रस्तार-प्रकाश, नेह-निवाह और कवि-हृदय-विनोद।

प्रताप साहि (१८८० से १९००) ने व्यंग्यार्थ कौमुदी, काव्य-विलास, जयसिंह प्रकाश, शृंगार मञ्जरी, शृंगार शिरोमणि, अलंकार-चिन्तामणि तथा काव्य-विनोद नामक ग्रन्थ लिखे। ये अत्यन्त उच्च कोटिके कवि भी थे और आचार्य भी। अयोध्याके महाराजा मानसिंह (द्विजदेव) ने शृंगार-लतिका और शृंगार-बत्तीसीकी रचना की।

इनके अतिरिक्त ब्रजभाषाके जिन प्रसिद्ध कवियोंकी सम्मानपूर्ण गणना होती है उनमे निम्नांकित मुख्य हैं :—

बेनी, मंडन, सुखदेव मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, राम, नेवाज, श्रीधर, कवीन्द्र, श्रीपति, वीर, गजन, अलीमुहीवखाँ, भूपति, तोषनिधि, दलपतराय, बंसीधर, रघुनाथ, कुमार, मणि भट्ट, शम्भुनाथ मिश्र, शिव-सहायदास, रूपसाहि, ऋषिनाथ, वैरीसाल, दत्त, रतन, नाथ, मनीराम मिश्र, चंदन, देवकीनन्दन, रामसिंह, भान, थान, बनी बन्दीजन, बेनी प्रवीन, जसवन्त सिंह द्वितीय, यशोदानन्द, करन, गुरदीन, ब्रह्मदत्त, रसिक-गोविन्द, बनवारी, सबलसिंह चौहान, वृंद, छत्रसिंह, बैताल, गुरु गोविन्द सिंह, श्रीधर, रसनिधि, विश्वनाथ सिंह, जोधराज, बख्शी, हंसराज, किशोरीशरण, अलबेली, अलि, गिरधर, हठीजी, गुमान मिश्र, सरजूराम, भगवन्त राय, खीची हरनारायण, ब्रजवासीदास, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, रामचन्द्र, मधुसूदनदास, मनियार-सिंह, कृष्णदास, गणेश, सम्मन, ठाकुर (असनी वाले) ललकदास, खुमान, नवलसिंह कायस्थ, रामसहायदास, चन्द्रशेखर, बाबू दीनदयाल गिरि, पजनेस तथा गिरधरदास।

राजस्थानके ब्रजभाषा कवियोंकी जो सूची ऊपर दी जा चुकी है उनकी निम्नांकित रचनाएँ प्रसिद्ध है—जान (सम्वत् १६७६) का रस-कोष, कवि वल्लभकी रस-मंजरी और रसतरंगिणी, केहरि (१७१०) का रसिक-विलास, जगन्नाथ (१७१४) का रति-भूषण, सूरदत्तका रसिक हुलास, उदय चन्द्र (१७२८) का अनूप रसाल, नन्दराम (१७२८) का अलसभेदनी, भान (१७३१) का संयोग द्वात्रिंसिका, सतीदासव्यास (१७३३) का रसिक आराम; रूपजी (१७३९) का रसरूप, अभयराम (१७५४) का अनूप शृंगार, लोकनाथ चौबे (१७६०) का रस-तरंग, त्रिलोकराम (१७६७) का रस-प्रकाश, अजीत सिंह (१७७०) का भाव-विरही, बुधसिह (१७८४) का नेह-तरंग, श्रीकृष्ण भट्ट (१७६९–९१) का शृंगार-रस-माधुर्य तथा अलंकार-कला-निधि, दलपतिराय (१७९८) का अलंकार-रत्नाकर और पीथल (१८००) का युगल-विलास।

इनके अतिरिक्त भी इस रीति-युगके पश्चात् कुछ प्रसिद्ध कवि हुए है जिनमें उरदाम (उड़दाम चौबे), नवीन कवि (१९००), लाला साधुराम (१९००), किशोर खडगजी (भड़ौवेंके लेखक), हर-देवजी, कृष्णानन्द व्यास, राजकुमार, रत्न सिंह नटनागर, सेवक कवि, महाराज रघुराज सिंह, रावल पिण्डीके नारायण स्वामी, रंगीलाल, राजा लक्ष्मण सिंह, काशीके बेनी द्विज और सरदार कवि, गुजरातके गोविन्द गिल्ला भाई, अयोध्याके बाबा रघुनाथदास, पं. नकछेद तिवारी, अजान, हनुमान कवि, लखनऊके मिश्र

बन्धु, कुन्दनलाल (ललित किशोरी) तथा फुन्दन लाल (ललित-माधुरी), वस्तीके लक्ष्मी राम, गोकुलके गोप भट्ट, वृन्दावनके लाल बलवीर विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दुसे अब तक ब्रज-साहित्य

भारतेन्दुकी सभामें ब्रजभाषामें कविता रचनेवालों और समस्या-पूर्ति करनेवालोंमे प्रसिद्ध रहे हैं पं. सुधाकर द्विवेदी, अम्बिकादत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण बर्मा, ब्रजचन्द वल्लभीय, बेनी द्विज, बाबा सुमेर-सिंह, श्रीमती चन्द्रकलाबाई (बूँदी), बाबू शिवनन्दन सहाय, गोविन्द गिल्ला भाई, ठा. रामेश्वरबख्स सिंह, कविराय, लच्छीराय और नवनीत चतुर्वेदी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी (१९१७) की ब्रजभाषामे की हुई काव्य-रचना अपने माधुर्य, प्रसाद, प्रवाह और सरसताके कारण प्रसिद्ध थी। उनके अतिरिक्त वर्त्तमान युगके प्रारम्भसे लेकर आजतक ब्रजभाषाकी साहित्यिक रचना करनेवालोंमे राजा कृष्णदेवशरण सिंहजी, गोप, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (१९१२), प्रताप नारायण मिश्र (१९१३), नाथूराम शंकर शर्मा (१९१६), ठा. जगमोहन सिंह (१९१४), लाला सीताराम (१९१५), राधाचरण गोस्वामी (१९१५), अम्बिकादत्त व्यास (१९१५), बाबू राधाकृष्णदास (१९२२), ब्रजचन्द्रजी वल्लभीय (१९२० के लगभग), नवनीत जी (१९१५)---जो ब्रजभाषाके अमर पीयूष-वर्षी कवि हुए है, श्रीधर पाठक (१९१६) अयोध्या सिंह उपाध्याय (१९२२), महापात्र लालजी (१९१४), जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (१९२३), लाला भगवानदीन (१९२३), राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (१९२५), ब्रजेशजी (१९२८), सेठ कन्हैयालाल पोद्दार (१९२८), मिश्र बन्धु (श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र), राजारामसिंह (सीतामऊ) (१९३६), वंचनेशजी (१९३२), लाला किसन लाल या कृष्ण कवि (१९३१), वल्लभसखा (१८६०), सत्यनारायण कविरत्न (१९३७), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१९४५), श्याम सेवक (१९४८), रामाधीन (१९४१), पुरुषोत्तम दास सैयद (१९४२), नाथूराम माहौर (स. १९४२), नबीबक्स फलक (१९५०), रामप्रसाद त्रिपाठी (१९४६), ब्रजनन्दन कविरत्न (१९४९), वियोगी हरि (१९५३), हरदयाल सिंह, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामशंकर शुक्ल 'रसाल' (१९५५), सीताराम चतुर्वेदी (१९६४), अमृतलाल चतुर्वेदी, पं. रामदयाल, उमराव सिंह पाण्डे, अम्बिकेश, जगनसिंह सेंगर, रामलला, विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', उजियारे लाल ललितेश, धनीराम शर्मा, ठा. उल्फतसिंह निर्भय, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, अनूप शर्मा, दुलारेलाल भार्गव, रामलाल श्रीवास्तव लाल, जगदम्बा प्रसाद हितैषी, सरजू शरण शर्मा, श्यामनारायण मिश्र श्याम, प्रणयेश शुक्ल, भद्रदत्त शर्मा शास्त्री, उत्तरराम शुक्ल नागर, बालमुकुन्द चतुर्वेदी मुकुन्द, रामनाथ ज्योतिषी, रामचन्द्र शुक्ल सरस, लक्ष्मी नारायण सिंह ईश, राजेश दयाल, सेवकेन्द्र त्रिपाठी, गोविन्द चतुर्वेदी, बलराम प्रसाद मिश्र 'द्विजेश', किशोरी शरण अलि, जगदीश गुप्त, छबीले लाल गोस्वामी, बचऊ चौबे, महामहोपाध्याय अयोध्यायनाथजी अवधेश, डा. बैजनाथ सिंह किंकर, रामगोपाल वर्मा, चुन्नीलाल शेष, गोपालदत्त चञ्चलजी, गोपालप्रसाद व्यास, दीनानाथ सुमनेश, सरवनलाल अग्रवाल, कैलास चन्द्र कृष्ण, भगवानदत्त चौबे, बरसानेलाल चतुर्वेदी, रामनारायण अग्रवाल, और इन वर्तमान अखाड़ियोंके गुरु पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी मुख्य है।

इनके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें निम्बार्क सम्प्रदायके

बाबा नरहरि अलि, हरिदासीय सम्प्रदायके गोस्वामी नवनागरीदास, गौड़ीय सम्प्रदायके ललित लड़ैतीजी, वल्लभ सम्प्रदायके लालजीने भी ब्रजभाषामे सुन्दर, ललित रचनाएँ कीं। वल्लभ सम्प्रदायमे लालजीकी परम्परामें गोस्वामी बलदेवजी, कुजलाल, सुन्दर लाल और दयाल चन्द्र तथा राधा वल्लभीय सम्प्रदायके राधा-लाल, प्रीतमलाल, प्रियादास शंकर दत्त, प्रियतमदास, गोपालप्रसाद, मनोहर वल्लभ, भोलानाथ, युग वल्लभ, गोवर्धनदास, कुँवर गजराज सिंह, नन्दनन्दन, रोशनलाल वेदपाठनी, किशोरीलाल गोस्वामी और कविवर प्रेमीजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त वृन्दावन, हाथरस, आगरा, ब्रज-मंडल और ब्रजके बाहरके निम्नांकित कवि उल्लेखनीय है—

गोस्वामी मदन मोहन, किशोरी शरण अली, रामहरि शास्त्री, गोस्वामी छबीले वल्लभ, बल्लभ शरण, दान बिहारी लाल शर्मा, ललिताचरण गोस्वामी, बाबा हितदास, गोस्वामी बिन्दुजी, रामकृष्ण गर्ग, चिन्तामणि, शुक्ल, प्रेमानन्द परिब्राजक, ब्रज भूषण मिश्र, मुकुन्द कवि, श्यामलाल, शिवलाल, खूबीराम, बाबा शीतलदास मौनी, शीतलजी, शत्रुघ्न दुबे, मरालजी, मुरलीधरजी, अजयराम लवानियाँ, पन्नालाल प्रेमपुंज, देवी प्रसाद दिव्य, श्यामलाल शुक्ल, ऋषिकेश चतुर्वेदी।

नई पीढ़ीके जिन अनेक प्रतिभाशील उदीयमान कवियोंने ब्रज भाषामें प्रौढ़ रचनाएँ की है और कर रहे है उनमें राजेश दीक्षित, जगदीशचन्द्र पाठक, राजेन्द्र चतुर्वेदी, थानसिंह सुभाषी तथा लक्ष्मण स्वरूप कुल-श्रेष्ठ उल्लेखनीय है।

ब्रज मण्डलके बाहर श्री केशरी सिंह बारहट्ट, द्वारिका प्रसाद मिश्र, रायकृष्णदास, उमाशंकर बाजपेयी, रामचरण मित्र, वचनेश, विलेले, ललन प्रिया, लल्लूजी, भास्कर दत्त दीक्षित, सिद्धनाथ शुक्ल, द्वारिका प्रसाद शुक्ल 'शंकर', शिवरत्न शुक्ल, सूर्यकुमार पांडे, अवध बिहारी, पण्डित दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी, सेवक, शंकर, श्याम-सुन्दर मिश्र, शिवराखन बाजपेयी, लाल, ब्रजेश, कृष्ण ब्रह्मभट्ट, हंसदास, दत्त कवि, रामदत्त नाथ, मून कवि, भवानीदास, ललदेव, चतुरेश, कवि गोपाल, रामरतन शुक्ल, मनीराम, प्रागदास, बेचूलाल, सील चन्द्र, ललित रत्नेश, नवीन तथा सेवक कवि प्रसिद्ध है।

ब्रजभाषाका गद्य-साहित्य

चौदहवीसे १९ वीं शताब्दी तक उत्तर भारतका अधिकांश व्यापक, धार्मिक, कथात्मक और व्यव-हारात्मक साहित्य ब्रजभाषामे ही रचा गया। इस सम्पूर्ण गद्य-साहित्यमे वचनिका, वार्ता और भाषा नामसे गद्य-साहित्य प्राप्त होता है। इस गद्य-साहित्यके निर्माणमें धर्मोपदेशकों, धर्म प्रवर्त्तकों अथवा सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्योका हाथ अधिक रहा है। ब्रजभाषाका सर्व प्राचीन गद्य गोरखपन्थी साधुओंका (१४००) है। इसके दो सौ वर्ष पश्चात् वल्लभ सम्प्रदायका वार्ता-साहित्य है जिनमें हरिवंशजी और गोस्वामी विट्ठलनाथजी द्वारा अपने सेवकोंको लिखे गए पत्र हैं। इन वार्ता निर्माताओंमें गोकुलनाथ जी (१६०८) और हरिरायजी (सं. १६४३) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त श्री द्वारकेशजीने भी वार्ता-साहित्यकी रचना की है। इन वार्ताओंकी देखा-देखी राधा वल्लभीय सम्प्रदायमें ध्रुवदास, दामोदर स्वामी, प्राणनाथ, अनन्य अली, गोस्वामी चतुरशिरोमणि लाल, गोस्वामी रंगी लाल और श्री स्वामिनी शरणने अनेक उल्लेखनीय

गद्य रचनाएँ कीं। किसन-गढ़ नरेश सावन्त सिंह (नागरी दास) ने भी अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया। इनके अतिरिक्त नाभाजीका अष्टयाम और ललित किशोरीजी और श्री स्वामीजी महाराजकी वचनिका प्रसिद्ध है। गौड़ीय कवि रूप गोस्वामीके विदग्ध माधव नाटकके आधारपर राधा-माधव लीला-विलास, माधव-राधा-विलास, राधा-मिलन, पूर्णमासीजीकी कथा तथा विदग्ध माधव नामकी कई गद्य रचनाएँ कीं।

१७ वी शताब्दी के अन्तमें वैकुण्ठमणि शुक्लने वैशाख और अगहन महात्म्य लिखा। १८ वीं शताब्दीके आरम्भमे साधु दामोदरदासने मारकण्डेय पुराण, मेघराज प्रधानने अध्यात्म रामायणका अनुवाद, महाराज यशवन्तसिंहने प्रबोध चन्द्रोदय नाटक और माथुर कृष्ण देवने भागवत भाषाकी रचना की। गीतापर तो अनेक टीकाएँ ब्रजभाषामें लिखी गई। सम्वत् १८०० मे किसी अज्ञात व्यक्तिने ब्रजभाषामे नासिकेतो-पाख्यान भी लिखा।

जैन आचार्यो और साहित्यकारोंने ब्रजभाषामें बहुतसे गद्य-ग्रन्थ लिखे है जिनमें सबसे प्राचीन बनारसीदास (१६४३–१७००) हुए है। उनके पश्चात् पाण्डे हेमराज, पं. दौलतराम, विलास राय, नन्दराम, और भागचन्द्रके ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इनके अतिरिक्त केशव, बिहारी, मतिराम आदिके ग्रन्थोंकी टीकाएँ ब्रजभाषामें लिखी गई। इन ग्रन्थोके अतिरिक्त वैद्यक, ज्योतिष, कथा, कहानी तथा, इतिहासके अनेक ग्रन्थ भी गद्यात्मक ब्रजभाषामे लिखे गए।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि २० वी शताब्दीसे पूर्व काव्य भाषा और गद्य भाषाके रूपमें ब्रजभाषा-का विस्तृत प्रचलन था। यदि ब्रजभाषाके सम्पूर्ण पद्य-साहित्यको एकत्रित किया जाय तो लगभग साढ़े तीन करोड़से ऊपर छन्दोंका विशाल-भण्डार मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि संस्कृतको छोड़कर संसारकी सब भाषाओंमें जितना कुछ साहित्य आज तक रचा गया उससे लगभग बारह गुना साहित्य केवल ब्रजभाषामें रचा गया।

इस सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्यमे हमारे देशकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक परम्पराएँ, धर्म, सम्प्रदाय, पन्थ, दर्शन, इतिहास, काव्य-शास्त्र, धर्मशास्त्र, जन-भावना, राष्ट्र-भावना, देश-प्रेम, आदि समस्त मानवीय आन्तरिक और बाह्य अभिव्यक्तियोंका सम्पूर्ण भण्डार निहित है। इतना ही नही, बहुतसे ग्रन्थ तो ऐसे है जिनमें भारत-के सभी प्रदेशोंके रहन-सहन, खान-पान, भाषा, भौगोलिक स्थिति और इतिहास सबका बड़ा सटीक और सूक्ष्म वर्णनके साथ-साथ भारतके तीर्थों, नदियों, नदों, पर्वतों, मन्दिरों, महापुरुषों, वीरों तथा वीरांगनाओंका सम्पूर्ण वर्णन अक्षुण्ण रूपसे संगृहीत है। खेदकी बात यह है कि अिस ब्रजभाषा-साहित्यका अध्ययन न तो राष्ट्रीय दृष्टिसे किया गया और न इस दृष्टिसे किया गया कि इस भाषाने सम्पूर्ण भारतको अपने काव्य-सौष्ठव तथा काव्य-शक्तिसे और समस्त भारतको अपनी भाव-सम्पत्तिसे प्रभावित और आप्यायित किया है। राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-साहित्यकी दृष्टिसे ब्रजभाषा साहित्यका अत्यन्त मार्मिक विश्लेषण करने और उसका विवेचनायुक्त इतिहास प्रस्तुत करनेकी नितान्त आवश्यकता है।

मैथिली साहित्य

मैथिलीको साहित्यिक रूप प्रदान करनेका श्रेय विद्यापतिको है। उनके पूर्व वह बोलचाल की ही

भाषा रही। यदि उसमे कुछ साहित्य रचा भी गया हो तो उसका कोई ठिकाना नहीं। विद्यापतिकी मैथिली तो हिन्दीके बहुत मेलमे है किन्तु उनके पश्चात् वह हिन्दीसे दूर होती चली गई। अतएव हिन्दीके प्रसंगमें मैथिली साहित्यपर केवल विद्यापति तक ही परिमित रह जाना पड़ता है और वह भी उतने ही अंशपर जितना उन्होंने मैथिलीमें लिखा है।

विद्यापतिका जन्म दरभंगा जिलेके विसपी गाँवमें हुआ था जो आगे चलकर उनके आश्रयदाता महाराज शिवसिंहने मैथिल-कोकिलको दे दिया जो उनके वंशजोंके पास तबतक रहा जबतक अँग्रेजोंने उसे छीन नही लिया। विद्यापतिका जन्म-सम्वत् १४०७ है। इनके पिताका नाम गणपति ठाकुर था। इनकी मृत्यु सम्भवतः सम्वत् १४९७ मे हुई।

गणपति ठाकुर राजा गणेश्वरके राजकवि और मन्त्री थे। गणेश्वरके पश्चात् जब कीर्तिसिंह सिंहासनासीन हुए तब विद्यापति उनके सभा–कवि हुए। इन्हींके नामपर अवहट्ठ भाषामें उन्होंने कीर्तिलता-की रचना की। विद्यापति संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओंके विलक्षण विद्वान् थे। इनके बहुतसे ग्रन्थ संस्कृतमें और कुछ प्राकृतमें भी है। सर्वशास्त्र निष्णात होनेसे इन्होंने सफलतापूर्वक अनेक विषयोंपर लेखनी चलाई किन्तु यहाँ मैथिलीमें रचित उनकी पदावलीपर ही विचार किया जाएगा।

विद्यापतिकी ख्याति जिसलिए है और जिसलिए वे अभिनव-जयदेव और मैथिल-कोकिल कहे जाते. जाते है वह उनकी पदावली है जिसे उन्होंने मिथिलाकी लोक-प्रचलित भाषामे लिखा और उसे साहित्यिक रूप दिया। जिस प्रकार सूरदासजीने आगे चलकर ब्रजभाषामे मधुर और सरस पदोंकी रचना करके राधा-कृष्णके माध्यमसे अमृतमयी काव्यधारा बहाई उसी प्रकार विद्यापतिने भी। विद्यापति पहले हुए हैं इसलिए गीति-काव्य प्रणालीका भी आरम्भ विद्यापतिने किया। जयदेवने राधा-माधवके नामपर सरस गीतोंकी रचना करके मार्गदर्शन कर ही दिया था। विद्यापतिने राधा-माधव विषयक गीतोंको लोकभाषाके कलेवरमें ढाला। इस प्रकार आगेके कवियोंके लिये मार्ग खुल गया।

विद्यापतिने इस गीतोंकी रचना शुद्ध शृंगारके भावसे की। वे कट्टर शैव थे। राधाकृष्णकी भक्ति से उनका कोई सम्पर्क नही था। किन्तु जयदेव राधाकृष्णोपासक थे। उनके गीत भक्ति-भावसे भी प्रेरित है। यदि हरिस्मरणे रमते मनः परन्तु उन्हीसे प्रभावित होकर रचना करनेवाले विद्यापतिने तो राधा-कृष्णका नाम प्रत्येक पदमे इसलिए जोड़ दिया कि कही आगे चलकर लोग उनपर अश्लीलताका दोष न लगावें, और उनकी कुत्सा न करें। इन पदोसे रहस्यवादका भी कोई सम्बन्ध नही है जैसा कि कुछ लोग कहा करते हैं।

विद्यापतिके रसभावपूर्ण दो पद नीचे दिए जा रहे हैः—

१– केउ पतिया लए जायतो रे मोरा पिय पास।
हिय नहि सहै असह दुख रे भल साओन मास।।
एकसर भवन पिया बिनु रे मोरा रहलो न जाय।
सखियन कर दुख दारुनरे जगके पतिआय।।
मोर मन हरिहरि लै गैल रे अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बसि रे कित अपजस लेल।।

बिद्यापति कवि गाओलरे धनि धरु पिय आस।
आओत तोर मन-भावन रे एहि कातिक मास॥

२— सरस बसन्त समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप बचन एक भाखिय मुखसे दूरि करु चीरे॥
तोहर बदन सम चाँद होअथि नहिं कैयो जतन बिह केला॥
कै बेरि काटि बनावल नव कै, तैयो तुलित नहि भेला॥
लोचन तूअ कमल नहि भै सक, से जगके नहि जाने?
से फिरि जाइ लुकैलन्ह जल भए, पंकज निज अपमाने॥
भने विद्यापति सुनु वर जोवति ई सभ लछमि समाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन 'लखिमा देइ' प्रति भाने॥

नागरी हिन्दी (खड़ी बोली) का साहित्य

बहुतसे लोगोंने हिन्दी शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि संस्कृतके सिन्धु और सिन्धी शब्दोंसे फारसीमें 'हिन्द' और 'हिन्दी' हो जाते हैं। यह 'स' को 'ह' कहनेकी प्रवृत्ति केवल फारसीमें ही नहीं गुजरात और पश्चिमी राजस्थानमे भी है। उदयपुरमें 'साढ़े सात' को हाड़े हात' कहते है। पश्चिमी भारतके लोग (जहाँ अब भी स को ह बोला जाता है।) व्यापारके लिए बाहर जाते थे और वहीं ये लोग अपनेको सिन्धवी (सैन्धव या सिन्धी और अपनी बोलीमें हिन्दी) कहते थे। फारसीमें 'हिन्दी' का अर्थ है 'हिन्दसे सम्बन्ध रखनेवाला'। भारतके जितने भी मुसलमान हज करने मक्का जाते है या व्यापारके लिए पश्चिमी देशोंमें जाते है उन्हें वहाँ के लोग हिन्दी ही कहते है और इसी नाते यहाँकी भाषा भी हिन्दी कहलाती है। पड़ोसी फारस, अरब आदि देशवाले भारत भरके लोगोंको हिन्दी और यहाँ की सब बोलियोंको भी हिन्दी कहते है। जहाँतक हिन्दी शब्दकी बात है, फारसवाले मुसलमान लोग उन लोगोंको हिन्दू कहते है जो इस्लाम धर्मको नहीं मानते और हिन्दमें रहते है। यह अर्थ इसलिए लगाया गया है कि जब मुहम्मद साहबने अपना इस्लाम धर्म चलाया और सम्पूर्ण अरब, फारस, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान और चीनतकका प्रदेश मुसलमान बन बैठा तब भी हिन्दुस्तानवाले उनके धार्मिक सिद्धान्तोंसे प्रभावित नही हुए, वरन् उलटे शैव और वैष्णव धर्मका प्रचार करके विष्णु या शिवके मन्दिर बनवाते रहे। इसीलिए 'हिन्दी' शब्दका दूसरा अर्थ इस्लाम धर्म न माननेवाले' और 'हिन्दके निवासी' माना गया। हमारे देशमें हिन्दू शब्दका अर्थ वह व्यक्ति है, जो ईसाई या मुसलमान न हो अर्थात् जो हिन्दू धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले धर्म मानता हो। यहाँ तक कि सिक्ख, जैन आदि भी व्यापक अर्थमें हिन्दू ही माने जाते हैं। जहाँतक हिन्दी भाषीकी बात है, हिन्दू-मुसलमान सभी यहाँकी बोलियाँ अर्थात् व्यापक दृष्टिसे हिन्दी ही बोलते है।

यद्यपि बाहरके पड़ोसी देशवाले भारतकी सभी भाषाओंको हिन्दी मानते है किन्तु भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे हिन्दी वह भाषा है जो उत्तर भारतमे जयपुरसे लेकर पटनेतक विन्ध्याचलके उत्तरमें बोली जाती है, अथवा उत्तर-पश्चिममे अम्बालेसे लेकर और पश्चिममे जयपुरसे लेकर पूर्वमे भागलपुर और पटना, उत्तरमें शिमलेसे लेकर नैपालके पूर्वी छोरतकके सम्पूर्ण पहाड़ी प्रदेशके दक्षिणसे लेकर दक्षिण-पूर्वमें रायपुर-बिलासपुर

तक और दक्षिण-पश्चिममें खण्डवातक बोली जाती है जिसके अन्तर्गत पूर्वी राजस्थानी, जयपुरिया, छत्तीसगढ़ी, बुन्देलखण्डी, मैथिली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही, पहाड़ी आदि सब भाषाएँ आ जाती है। किन्तु यदि पत्र-पत्रिका, शिक्षा-माध्यम और साहित्य-सर्जनकी भाषाकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो सम्पूर्ण राजस्थानसे लेकर बिहारतक, उत्तरमें पहाड़ी भाषाओंके क्षेत्र से लेकर विन्ध्याचलके दक्षिणमें सतपुड़ा तक उस नागरी (हिन्दी) का ही बोल-बाला है जिसे कुछ लोग भूलसे खड़ी बोली कहते हैं। इस प्रकार नागरी भाषाका व्यवहार करनेवाले लोगोंकी संख्या लगभग २२ करोड़ है। पहले इस क्षेत्रमे भी ब्रजभाषा ही काव्य-भाषा या साहित्य-भाषा थी। किन्तु अब ये सब भाषाएँ अर्थात् ब्रज, अवधी, मैथिली आदि केवल जन-पदीय भाषाएँ रह गई हैं।

यह नागरी भाषा, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, किसी भी प्रदेशकी बोलचालकी भाषा नही है। पहले इसे सन्तोंने देशी तद्भव शब्दोंके योगसे अपने साम्प्रदायिक प्रचारके लिए गढ़ा, फिर दिल्लीके शासकोंने अपने दरबारकी भाषाके रूपमे इसका पोषण किया और व्यापारियोंके व्यापारकी सार्वभौम भाषाके लिए इसका व्यापक व्यवहार किया, ईसाई पादरियोंने धर्म प्रचारका माध्यम बनाया, ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकारने अपने शासनकी सुविधाके लिए इसे बल दिया, साहित्यकारोंने और धार्मिक सुधारकोंने पुस्तक और पत्रके लिए माध्यम बनाया और अन्तमें स्वतन्त्र भारतने इसे राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार किया, जिसके संस्कृत तत्सम शब्द रूपोंसे समन्वित भाषाको हिन्दी और फारसी-अरबीसे भरी भाषाको उर्दू कहते है।

इस सम्पूर्ण नागरीके क्षेत्रमें चार मुख्य प्रादेशिक भाषाएँ मानी जाती थीं, जिनके शिष्ट (साहित्यिक) और ग्रामीण (लोगोंकी बोलचाल) दोनों रूप मिलते हैं।

राजस्थानी---राजस्थानकी सब बोलियाँ।

मैथिली---दरभंगाके चारों ओरकी बोलियाँ।

भोजपुरी---पटना गयासे लेकर बनारस-गोरखपुरतकके बीच की।

पहाड़ी बोलियाँ---हिमालयकी तराईके पहाड़ी प्रदेशोंकी बोलियाँ।

बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और मालवाकी बोलियोंको पाँचवीं प्रादेशिक श्रेणी माना जा सकता है। कुछ लोगोंने इन सब भाषाओंके समूहको दो भागोंमें विभक्त कर दिया है---पूर्वी और पश्चिमी। किन्तु इनके रूप तीन माने जाने चाहिए---पूर्वी, पश्चिमी और बीच की। इन सब बोलियोंके समूहको ही भाषा-शास्त्रवाले हिन्दी मानते है।

अतः हिन्दी शब्दके तीन अर्थ हुए---

१---हिन्दुस्तानभरकी सब बोलियाँ।

२---उत्तर-भारतकी पंजाबी, सिन्धी, बंगला और उड़ियाको छोड़कर शेष भाषाएँ।

३---राजस्थानसे लेकर बिहारतककी भाषाओंका समूह।

उर्दू

उर्दू कृत्रिम भाषा है। विदेशी मुसलमान शासकोंने यहाँ आकर दिल्लीके आस-पासकी भाषामें फारसी और अरबीके शब्द भर-भरकर नागरीको ही कृत्रिम भाषाके रूपमें परिवर्तन करके ऐसी खिचड़ी भाषा

बना लिया जो आज कुछ भाषान्ध लोगोंके द्वारा हिन्दीकी प्रतियोगिनीके रूपमें खड़ी कर दी गई है।

हिन्दुस्तानी

अँग्रेजी तथा अन्य योरोपीय विद्वानोंने भारतकी उस बोलचालकी भाषाको हिन्दुस्तानी माना जो मुसलमानी शासन-कालमें उनके राजदरबारमें पनपी और फूली-फली और जिसमे अरबी-फारसीके तत्सम शब्दोंका तेजीके साथ प्रयोग हुआ। इसे उर्दूका पर्याय ही समझना चाहिए क्योंकि भारतवर्षमें इंग्लैण्डसे जो शासक भेजे जाते थे उन्हें यह भाषा (उर्दू कहलानेवाली हिन्दी) पढ़ाई जाती थी और इसीको वे लोग हिन्दुस्तानी कहते थे। यद्यपि इसमें उर्दूवालोंका-सा यह दुराग्रह नहीं है कि छाँट-छाँटकर बलपूर्वक फारसी और अरबीके शब्द भरे ही जायँ और संस्कृत या देशी शब्द मतरूक (त्याज्य) समझे जायँ। किन्तु यह निश्चय है कि उसकी प्रवृत्ति उर्दूकी ओर ही अधिक है। अँग्रेजोंके जानेके साथ उसका अस्तित्व लुप्त हो गया है और वह स्वाभाविक अवसान प्राप्त कर चुकी है। अँगरेजोंके शासनके कारण यह भाषा इतनी व्यापक हो गई थी कि समस्त उत्तर भारतमें यह समझी और शिष्ट समाजमें बोली भी जाती थी क्योंकि निर्गुणी सन्तोंने इसके आधार रूपको पहले ही व्यापक बना दिया था। किन्तु इसका क्षेत्र शासन-क्षेत्र तक ही परिमित था, लोक-भाषाके क्षेत्रके क्षेत्रमें नहीं। यद्यपि लोक-भाषा-भाषी लोग भी इसे भली प्रकार समझते थे क्योंकि कचहरियोंमें इसी का बोलबाला था।

नागरी

ठेठ नागरी भाषा संस्कृत, अरबी और फारसी आदिके तत्सम शब्दोंसे रहित होती है। नीचेके उदाहरणसे उसका रूप स्पष्ट हो जायगा :—

'टीलेकी ऊँची रेतीली चोटीपर चढ़कर जो मैंने चारों ओर आँखें घुमाई तो देखता क्या हूँ कि दूरपर धरती-आकाशके मिलनकी झिलमिलीपर, अटपट फैली हुई हरियालीकी झुरमुटमें, अपने लाल खपरैलोंपर पच्छिमकी गोदमें ढलते हुए सूरजकी पिछली धूप-छाँह भरी किरनें लहराता हुआ, एक सुहावना-सा लुभावना-सा नन्हा-सा झोंपड़ा उस साँझकी ललाईमें हँसता, मुसकराता और बुलाता-सा चमक रहा है। मेरे साथ मेरी घरनी चलते-चलते थककर चूर हो चली थी। उसकी साँस फूलने लगी थी और वह रह-रहकर पूछती जा रही थी—"कहिए अभी कितनी दूर चलना है।"

इसीको आजके नागरी (हिन्दी) वाले इस प्रकार लिखेंगे :—

वप्रके समुन्नत बालुकामय शिखरपर आरूढ़ होकर जो मैंने चतुर्दिक् दृष्टि-निक्षेपण किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि सुदूर धरणी-आकाशके सम्मिलित तीर्थपर अनियमित रूपसे विकीर्ण हरीतिमाकी छायामें अपने रक्तिम खपरैलोंपर पश्चिम दिशाके क्रोड़में अंकस्थ होते हुए भास्करके अन्तिम आलोककी छाया-पूर्ण किरण-माला अंकित करता हुआ एक सुशोभन, मनोहर, अत्यन्त लघु कुटीर, उस सांध्य लालिमामें मन्द स्मितिसे हँसता और निमन्त्रण देता-सा उद्भासित हो रहा है। मेरे साथ मेरी धर्म-पत्नी इस सुदूर यात्रासे अत्यन्त श्रान्त और क्लान्त हो चली थी। उसका प्रश्वास-वेग बढ़ चला था और क्षण-क्षण पर वह आतुर जिज्ञासा करती जा रही थी—कहिए अभी कितना मार्ग शेष है ?

इसी ऊपर दिए वाक्यको उर्दूवाले यों लिखेंगे :—

'खरसंगके बलन्द पुर-रेग कुलहपर सवार होकर जो मैंने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाई तो मअलूम हुआ कि एक फासलेपर जमीन-आसमानके इत्तेहाय-उफुक्की बेनूरीमें निहायत बे-करीने दराज सब्जी-गयाहकी पुश्तमें मग़रिबमें गुरूब होते हुए आफताबकी आखरी शुआएँ अपने सुर्ख खपरैलोंपर शाया करता हुआ एक निहायत खुशनुमा, दिलकश मुख्तसर-सा झोंपड़ा उस शामकी शफकम हँसता, मुस्कराता और दावत-सा देता आशकार है।'

इससे प्रतीत होता है कि वर्त्तमान संस्कृतनिष्ठ नागरी भी नागरीकी वास्तविक ठेठ तद्भवात्मिका प्रकृति छोड़कर तत्समात्मिकाके कृत्रिम रूपमें ढल रही है। उर्दूमें भी वाक्यकी बनावट हमारी अपनी है, केवल उसमें कुछ थोड़ी-सी संज्ञाएँ और विशेषण फारसी और अरबी से लाकर भर दिए गए है। उसकी रूप-रेखा यों तो नागरीके सज्ञा विशेषणके बदले अरबी-फारसी संज्ञा विशेषण भरनेसे बनी किन्तु कभी-कभी उसके वाक्योंकी बनावट फारसीके ढंगपर भी होने लगी थी जैसे—"आना राजा इन्दर का' यह वाक्य-रूप फारसी के 'आमद राजा इन्दर' का अनुवाद है। हिन्दीकी इस फारसी शैलीवाली उर्दू भाषामें कभी-कभी बहुवचनका निर्माण भी फारसीके ढंगपर होने लगा, जैसे—'काग़ज़' का 'काग़ज़ात' आदि। कहनेका अर्थ यह है कि उर्दू भाषा कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है। वह हिन्दीकी ही एक शैली है जिसमें नागरी (हिन्दी) के प्रचलित देशी या तद्भवात्मक शब्द हटाकर उनके बदले फारसी और अरबीके शब्द ला भरे जाते है। ठीक यही बात वर्त्तमान साहित्यिक हिन्दीके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। अर्थात् उसमे भी छाँट-छाँटकर देशी और चलते शब्दोंके बदले संस्कृतके शब्द भरनेकी प्रवृत्ति आ गई है। ये दोनों अतिकृत प्रवृत्तियाँ सराहनीय नहीं कही जा सकती।

ग्रियर्सनने भाषा सर्वेक्षण (लिंग्विस्टिक सर्वे) में दिल्ली—मेरठके पास बोली जानेवाली इस भाषा-का बड़ा बेढंगा और बेतुका नाम 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' दिया है। कुछ लोगोंने इसका नाम खड़ी बोली और सिर-हिन्दी रखा है। किन्तु ये सब नाम ठीक नही है। इसका वास्तविक नाम नागरी ही उचित है जिसका अर्थ है नगरवासियोंके लिए नगरोंमें प्रयोगके लिये बनी हुई भाषा। वास्तवमे यह कहीकी बोल-चालकी भाषा नही है।

कुछ लोगोने खड़ी बोली, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देलखण्डी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी आदिको ग्रामीण बोलियाँ बताया है। किन्तु ये ग्रामीण बोलियाँ नहीं है। इनमसे नागरी (खड़ी-बोली), ब्रज भाषा, कन्नौजी (अवधी) को तो ग्रामीण कहना अत्यन्त अनुचित है। क्योकि इनमें साहित्य भी है। हाँ, बाँगरूको अवश्य ग्रामभाषा कहा जा सकता है। आगे चलकर यदि इसमें भी साहित्य रचा जाने लगा तो इसके भी दो रूप हो जाएँगे—

१—शिष्टजन-भाषा या साहित्य भाषा और २—ग्रामीण भाषा।

नागरी-साहित्य

जिस प्रकार अवधी, राजस्थानी ब्रज और मैथिलीके विशेष क्षेत्र हैं उसी प्रकार नागरीका भी। पंजाब और राजस्थानके डाँड़ेसे लेकर मध्य प्रदेशके मध्यभागमें होती हुई उड़ीसाको छूती हुई बिहारके

पूर्वी छोरतक अपना हाथ फैलाकर नेपालकी तराईके नीचेसे आकर भारतकी राजधानीके पश्चिम पड़नेवाले सम्पूर्ण भू भागको अपने अंकमें नागरी समेट लेती है। जितने विस्तृत प्रदेशकी ऊपर चर्चा की गई, उतने की तो भाषा हिन्दी ही है। यद्यपि आजकी हिन्दीका अर्थ नागरी ही लगाया जाता है, किन्तु व्यापक भाषा हिन्दीके अन्तर्गत जितनी भाषाएँ आती है, उनमे नागरी भी है। आजसे ६० वर्ष पहले तक हिन्दी-भाषी क्षेत्रमें साहित्य-की रचनाका सर्वप्रधान माध्यम ब्रजभाषा थी। समयके प्रवाहके साथ वह चल नहीं पाई, क्योंकि जो वैज्ञानिक युग संसारमे आ रहा था, उसके लिए ऐसी भाषा आवश्यक थी जो सब प्रकारकी रचनाओंके लिए समर्थ हो, जिसमें गद्य-साहित्यके विकासकी सम्भावनाएँ निहित हों और जो देशके अधिक भू भागोंमें बोली और समझी जाती हो। सन्तोंने यह शक्ति पहले ही नागरीको प्रदान कर दी थी। ब्रजभाषाका जो रूप बन चुका था वह संसिद्ध (स्टैंडर्ड) भाषा इसलिए भी नहीं बन सकती थी कि उसके रूपोंमें स्थिरता नहीं थी। एक कृष्ण शब्द ही कन्ह, कान्हा, कन्हैया, काँधा, कान्हरो आदि अनेक रूपोंमें प्रयुक्त होता है। किसी भी ससिद्ध शिष्ट जनकी सर्व व्यवहारणीय भाषामे इतनी विकृतियाँ ग्राह्य नहीं हो सकतीं। यह सब देखते हुए ब्रजभाषासे यह आशा नही की जा सकती थी। यही बात अवधी और राजस्थानीमे भी थी। हिन्दीकी जिस क्षेत्रीय भाषाकी ओर इस उद्देश्यसे ध्यान गया वह नागरी थी। इसका वास्तविक क्षेत्र तो मेरठ, मुजफ्फरनगर तथा दिल्लीका पार्श्ववर्ती प्रदेश है, किन्तु इसका व्यवहार दिल्लीके व्यापारियों द्वारा दूर तक होता रहा। दिल्लीके मुसलमान शासकोंको तथा उनकी परिषदोंको वहाँके लोगोंसे सम्पर्क स्थापनके निमित्त उक्त क्षेत्रकी बोली ही सीखनी पड़ी। उनका नित्यका व्यवहार उसके बिना चल ही नही सकता था। आगे चलकर जब ये शासक देशके अनेक भागोंमें फैलते गए तो ये अपने साथ यहाँकी बोली भी लेते गए। नित्यके व्यवहारके लिए वे उनका ही प्रयोग करने लगे जिससे भारतभरमें किसी-न-किसी रूपमे नागरीका प्रचार हुआ। इसके प्रचारका एक मुख्य कारण यह भी हुआ कि राम-कृष्णकी जन्मभूमि, काशी, हरिद्वार और उत्तरा-खण्डकी यात्रा करनेवाले सभी लोगोंको नागरीके क्षेत्रमें रहनेवालोंके बीच कई-कई मास तक निवास करना पड़ता था। मुहम्मद तुगलकने अपनी राजधानी दिल्लीसे हटाकर सुदूर दक्षिणमें दौलताबाद ले जाकर पहुँचाई तो दिल्ली निवासियोंके साथ यहाँकी भाषा भी वहाँ पहुँच गई। और तुगलकोंके पश्चात् उनके दक्षिणके सूबेदार जफरखाँने बहमनी राज्य स्थापित किया और स्थानीय भाषाओंके साथ अरबी-फारसी मिलाकर एक व्यवहार भाषा राजकार्यके लिए बना ली गई जिसे पहले हिन्दवी, फिर धीरे-धीरे हिन्दी और फिर 'दक्षिणी' (दक्खिनी हिन्दी) कहने लगे। इस प्रकार हिन्दी (नागरी) का व्यापक प्रचार और प्रसार पहलेसे ही रहा। नागरीके व्यापक प्रचार तथा शक्तिशाली गद्य प्रस्तुत कर सकनेकी उसकी क्षमताके कारण लोगोंका ध्यान उसकी ओर ही आकृष्ट हुआ और कुछ ही कालके भीतर नागरीमें इतना अधिक साहित्य प्रस्तुत हो गया, जितना हिन्दीके अन्तर्गत आनेवाली सब भाषाओंको मिलाकर भी नहीं है। इसके कारण तो कई हैं, किन्तु तीन मुख्य है :—१—छापेका आविष्कार और उसका व्यापक प्रयोग, २—समाचार-पत्रोंका प्रचार ३—ज्ञान-विज्ञानके अनेक क्षेत्रोंका विकास जिनकी अभिव्यक्तिके लिए गद्यका प्रयोग अनिवार्य था।

नागरी भाषाका प्रयोग बहुत पहलेसे हो रहा है। जिस क्षेत्रकी यह आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व बोली रही है, उस क्षेत्र (मेरठ और मुजफ्फरनगर) में प्रायः ठीक उसी रूपमें आज भी बोली जाती है। यद्यपि अमीर खुसरो और नामदेवकी ही कुछ रचनाएँ नागरीकी सर्वप्रथम रचनाके रूपमें उपलब्ध है, तथापि उनकी भाषाका

जो पुष्ट रूप प्राप्त है, उसे देखते हुए यह असन्दिग्ध रूपसे कहा जा सकता है कि इस भाषामे पहलेसे रचना होती रही जो आज मिल नही रही है। विक्रमकी आठवीं शताब्दीमे रचे हुए आचार्य कुमुदेन्दु मुनिके 'भूवलय' ग्रन्थमें जहाँ उन भाषाओंके नाम गिनाए गए है, जिनमे उस ग्रन्थका पढ़ा जाना सम्भव है, वहाँ नागरीका भी उल्लेख किया गया है। इससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि आजसे १२०० वर्ष पूर्व भी आजकी नागरी (जिसे कुछ लोग भूलसे खड़ी बोली इसलिए कहते है कि ब्रजभाषाकी अपेक्षा उसमें कठोरता, रूखापन, अक्खड़पन अधिक है।) की प्रसिद्धि मुख्य भाषाके रूपमे ही थी। उस समय दिल्लीके निकटवर्ती प्रदेशों और स्वयं राजधानी दिल्लीमें किस प्रकारकी भाषा बोली जाती थी—इसका प्रमाण अमीर खुसरो (सन् १२०५) की ये पहेलियाँ (मुकरियाँ) है :—

१– अरथ तो इसका बूझेगा। मुँह देखो तो सूझेगा।।
२– एक थाल मोती से भरा। सबके सिर वह औंधा धरा।।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।।

संवत् १३४० के लगभग प्रसिद्ध फारसीके विद्वान तथा लेखक, जनप्रिय कवि अमीर खुसरोने गीत पहेलियाँ, मुकरियाँ और दोहोंकी रचना की है, जिनमेसे पहेलियाँ और मुकरियाँ तो हमारी वर्तमान नागरी (खड़ी बोली) का प्रारम्भिक स्वरूप है, किन्तु गीत सब ब्रज भाषामे लिखे गए है। वर्तमान हिन्दीके अबतकके प्राप्त प्रमाणोंमें इन्हींकी रचना वास्तवमे हिन्दीकी आदि रचना है। इनका वास्तविक नाम अबुल सहन था। सं. १३२४ (सन् १२६७) में अलाउद्दीन शाहने इन्हें एक सहस्र रुपये मासिक वेतनपर अपने यहाँ राजसभामें नियुक्त करके 'खुसरूये शाअरा" की उपाधिसे विभूषित किया। वे कवि, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, सैनिक, सन्त और हँसोड़ सभी कुछ थे। वे इतने भावुक और कोमल-हृदय थे कि सं. १३३१ में ख्वाजा निजामुद्दीन औलियाकी मृत्युसे प्रभावित होकर उनकी समाधिपर ही उन्होने प्राण दे दिया। वे हिन्दी, संस्कृत, फारसी तुर्की और अरबीके विशेषज्ञ थे। उन्होंने बुझौवल और पहेली दोनोंकी रचना की है। बुझौवलका उदाहरण लीजिए :—

बीसों का सिर काट लिया, न मारा ना खून किया। (नाखून)

एक नारि जब बनकर आवे
मालिकको अपने पर लावे।
है वह नारी सबके गौंकी
खुसरो नाम लिए तो चौंकी (चौकी)

जल जल चलती वसता गाँव
वस्तीमें नहि वाको ठावँ।
खुसरु वाको दियो है नाँवँ।
बूझ अरथ नहि छोड़ो गाँवँ। (नाव)

गोरी सुन्दर पातली, केशर काले रंग।
ग्यारह देवर छोड़के, चली जेठके संग।

(**अरहर**, जो ११ महीने तैयार होकर जेठमें काटी जाती है।)

पहेलियाँ लीजिए :—

आना जाना उसका भाए।
जिस घर जाये लकड़ी खाए। (आरी)
एक राजाकी अनोखी रानी।
नीचेसे वह पीवे पानी। (दिएकी बत्ती)

इस प्रकार यदि देखा जाय तो नागरी (वर्तमान हिन्दी या खड़ी बोली) के आदि कवि और लेखक अमीर खुसरो ही सिद्ध होते हैं। उनके हँसोड़पनकी एक कथा बड़ी प्रसिद्ध है। एक बार वे एक कुएँपर पहुँचे और वहाँ पानी भरती हुई स्त्रियोंसे जल माँगने लगे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि ये अमीर खुसरो हैं तो उनमेंसे एकने कहा—खीरपर कुछ कहिए। दूसरीने कहा—चर्खेपर कहिए। तीसरीने कहा—कुत्तेपर कहिए और चौथीने कहा—ढोलपर कहिए। इन्होंने झट तुक मिलाते हुए चारोंपर एक कह दिया :—

खीर पकाई जतनसे, चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।।
ला पानी पिला।

इनकी मुकरीका भी एक उदाहरण लीजिए जिसे काव्य-शास्त्रकी भाषामे अपह्नुति कहते है :—

बरस-बरस वह देशमे आवे।
मुँहसे मूँह लगा रस प्यावे।
वा खातिर में खर्चे दाम।
क्यों सखि साजन ना सखि आम।।

इन सब उदाहरणोंसे यह समझने और माननेमें तनिक भी सन्देह नही हो सकता कि वास्तवमें अमीर खुसरो ही उस हिन्दी भाषाके आदि आचार्य हैं जिन्होंने अत्यन्त प्रौढ़, व्यवस्थित, सरल, मुहावरेदार और प्रवाहशील भाषामें सर्वबोध्य, ललित और रोचक स्फुट रचनाएँ की थी।

इसमे नागरीका कितना निखरा हुआ रूप विद्यमान है। आज जिस नागरीका सर्वत्र व्यवहार होता है, उसीका व्यवहार उस समय भी साहित्य-सर्जनमे होता था; यह खुसरोकी पहेलियाँ स्पष्ट कह रही हैं। इस भाषाकी पुष्टता ही बता रही है कि कई सौ वर्ष पूर्व इस भाषामे साहित्य रचना आरम्भ हो गई थी। किन्तु खुसरोके पश्चात् नागरीमे साहित्य-रचनाका उदाहरण हमें लगभग पाँच सौ वर्षकी लम्बी अवधिके अनन्तर ही जाकर मिलता है। इसके दो कारण हुए है—एक तो यह कि यह प्रदेश इतना धन-धान्य-सम्पन्न है कि वहाँ वालोंको खेती-बारी और खाने-पीनेसे ही इतना अवकाश नहीं मिलता कि वे अपनी कलात्मक प्रवृत्तियोंका विकास करके साहित्य-सर्जनादिकी ओर उन्मुख हों। दूसरे वहाँ वालोंका समय सदा राज्य-फल भोगनेमे ही बीत जाता था, वे साहित्य-रचना क्या करते। जो कुछ साहित्य वहाँके लोगों द्वारा रचा भी विप्लवोंका गया वह उपलब्ध नही है।

सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें सिक्खोंके गुरु श्री नानक देवके पुत्र श्री श्रीचन्द्रजी हुए, जिन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेके लिए 'मात्राशास्त्र' नामक ग्रन्थकी रचना की। उसकी रचना इसी नागरीमें हुई। कुछ उदाहरण देखिए :—

१– किसने मूंड़ा किसने मुंड़ाया।
किसका भेजा, नगरी आया।।
२– गुरु अविनासी खेल रचाया
आगम निगमका पन्थ बताया।

यह भाषा लगभग चार सौ वर्ष पुरानी है। आजकी भाषामें और इस भाषामें तनिक भी अन्तर नहीं है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि १—अन्य देशी भाषाओंके साथ-साथ नागरी भी चलती रही है, २—नागरी नई नहीं, बहुत पुरानी भाषा है, ३—नागरीके रूपमें परिवर्तन भी नहीं हुआ।

जब इस देशपर अँग्रेजोंका अधिकार हुआ तो उन्होंने जन-सम्पर्क बढ़ानेके उद्देश्यसे यहाँकी देशी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा। देश भरमे फैल जानेसे नागरीका प्रचार तो अवश्य हो गया किन्तु कालान्तरमे शाहजहाँके शासन-कालमें उसका रूप फारसी की शैलीमे ढालना आरम्भ कर दिया। उसकी शब्दावली मे बलपूर्वक अरबी, फारसीके शब्द ठूँसे जाने लगे। इस खिचड़ी उर्दू भाषामें और औरंगजेबके समयमें काव्यकी रचना भी होने लगी जो बहुत दिनों तक नागरी-प्रधान फारसी शब्दावलीमें होती थी। किन्तु आगे चलकर क्रम उलट गया और उर्दूमें इस अंश तक अरबी-फारसीकी शब्दावलीका प्रयोग होने लगा कि हिन्दी-संस्कृतके शब्द मतरूक (त्याज्य) समझे जाने लगे, उर्दू और फारसीका अन्तर केवल क्रिया पदसे प्रकट होता था। जिस प्रकार यह भाषा कृत्रिम होती गई, उसी प्रकार उसीमें वर्णित भाव और विचार भी कृत्रिम तथा अभारतीय होते गए। हिन्दीकी इस शैलीका वर्णन आगे किया जाएगा।

जिस समय अँग्रेजोंका आधिपत्य भारतपर हुआ, उस समय यहाँकी सरकारी भाषा तो फारसी थी किन्तु हिन्दी (नागरी) का गद्य समान्यतया किसी-न-किसी रूपमें सम्पूर्ण उत्तर भारतमें प्रचलित था। दूसरा रूप उन्होंने वह उर्दूका देखा जो सर्वथा कृत्रिम था, जिसे मुसलमानोंने चला रखा था और जिसके सम्बन्धमें अँग्रेजोंने ठीक ही समझ रखा था कि उसका लगाव किसी प्रकार भी जन-जीवनसे नहीं है। किन्तु मुसलमानोंका प्राबल्य बना हुआ था, इसलिए फोर्ट विलियम कालेजकी ओरसे हिन्दी-और उर्दू—दोनोंमें पुस्तकें लिखवानेका प्रबन्ध हुआ और अँग्रेजोंके इन दोनोंको एक नाम दिया 'हिन्दुस्तानी'।

अँग्रेजी राज्यके जम जानेसे पश्चिमकी विचारधाराका भी भारतमें प्रवेश हुआ। नये-नये विषय तथा ज्ञान-विज्ञानके अनेक क्षेत्र सामने आने लगे। मुद्रण यन्त्रोंके प्रयोगसे विचारोंके प्रचारकी गति भी बहुत तीव्र होती गई। इस प्रकार नागरीके गद्यके लिए अपने आप मार्ग बनता गया। नागरीमें साहित्य का सर्जन वस्तुतः इसी युगकी घटना है। खुसरो और नामदेवकी रचनाओंसे उदाहरण देकर तो यही सिद्ध किया जा सकता है कि यह नागरी भाषा पुरानी है, क्योंकि उस समय उसका प्रयोग हुआ है परन्तु क्रमबद्ध रचना तो इसी युगमें हुई। प्रारम्भमें जब नागरी गद्यका प्रचार हुआ, उस समय लोग यही समझते रहे कि गद्य की भाषा नागरी और पद्यकी ब्रज है। बहुत समय तक यह विवाद चलता भी रहा किन्तु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीके समयमें यह झगड़ा समाप्त हो गया। नागरीमें जो इक्की-दुक्की पद्य-रचना होती थी वह अब जमकर उसीमें होने लगी। द्विवेदीजीने तो 'सरस्वती' में ब्रजभाषाकी रचनाएँ छापनी भी बन्द कर दी थीं।

नागरीका प्रचार गद्यसे ही आरम्भ हुआ, गद्यसे ही बढ़ा और गद्य ही उसका प्रधान क्षेत्र है। अतः नागरी साहित्यके गद्यपर ही पहले विचार करना उचित होगा।

नागरीका श्रीगणेश

संसारकी सभी जातियोंमे प्रारम्भ-कालसे ही साहित्यके साथ-साथ अन्य सभी विषयोंपर पद्यमें ही रचना करनेकी प्रथा चली आती रही है। उसका कारण यही था कि शीघ्र कंठाग्र और जिह्वाग्र करने तथा परम्परागत रूपसे उसे जन समाजकी स्मृतिमें बनाए रखनेके लिए पद्य निश्चित रूपसे सहायक रहा है। ऐसे ऐतिहासिक विवरणोंकी कमी नही है कि बाहरसे आनेवाले दस्युओंने पुस्तकों और पुस्तकालयोंको नष्ट या भस्म कर दिया जिससे बहुत-सा संचित ज्ञान भण्डार नष्ट हो गया। भारतमें जो बहुतसे विदेशी दस्यु आए, उन्होंने भारतीय साहित्य और संस्कृतिका विनाश करनेके लिए यहाँके विद्वानोंको तलवारके घाट उतारा, सांस्कृतिक केन्द्रोंका विनाश किया और पुस्तकालयोंकी होली जलाई; किन्तु चीनमें तो ऐसे भी विचित्र सनकी शासक रहे हैं जिन्होंने केवल इसीलिए सब विद्वानोंको मरवा डाला और सब पुस्तकें जलवा डालीं कि जिससे इतिहासकार यह लिखें कि इनसे पहले कोई साहित्य नहीं था---इन्होंने ही साहित्यका श्रीगणेश किया। ऐसे सब दुर्वृत्त पशुओंसे विद्याकी रक्षा करनेका एक मात्र साधन था पद्य-बद्ध रचना करना और उसे शिष्योंको सिखा देना। ऋषि-ऋणसे उऋण होनेका यही उपाय था। जब तक मुद्रण-यन्त्रका आविष्कार नहीं हुआ था, तब तक यही पद्धति ज्ञान-विज्ञानके संरक्षण की एक मात्र रीति मानी जाती थी।

मुद्रण यन्त्रोंका आविष्कार होनेसे पूर्व भी पुस्तकोंकी रचना होती रही और अच्छे ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करनेका भी पर्याप्त प्रचार सभी देशोंमें रहा है। फिर भी इन प्रतिलिपि किए हुए ग्रन्थोंकी संख्या उतनी नही होती थी जितनी छपे हुए ग्रन्थोंकी सम्भव है। इसलिए स्वभावतः मुद्रण यन्त्रोंका प्रचलन हो चलनेके पश्चात् ज्ञान-विज्ञान और साहित्यको परम्परागत एक कंठसे दूसरे कंठ तक श्रुति बनाकर संरक्षण करनेकी आवश्यकता नही रह गई। परिणाम यह हुआ कि पद्यमे लिखनेकी प्रथा भी इसीके साथ-साथ समाप्त हो गई और गद्यमे रचनाएँ होने लगी। संयोगवश नागरीका प्रचार उस युगमें प्रारम्भ हुआ जब मुद्रण यन्त्र भली प्रकार प्रचलित हो चुके थे। इसलिए स्वामी दयानन्दजीको अपना 'सत्यार्थप्रकाश' पद्यमे लिखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। इधर समाचार पत्रोंकी धूम भी मची हुई थी, विचार-पत्र भी निकल रहे थे और अनेक देशोंके साथ भारतका सम्पर्क होनेके साथ स्वभावतः समाचार पत्रोंकी माँग और आवश्यकता बढ़ती जा रही थी। यद्यपि हमारे यहाँ आज भी ऐसे कवि हैं जो चाहते तो पद्यमे ही समाचार-पत्र छापा करते किन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सभी अच्छे लेखक और सम्वाददाता कवि हों। इसलिए समाचार पत्र गद्यमें निकलने लगे, विचार-पत्रोंमें भी विभिन्न विषयोंपर गद्यमे लेख प्रकाशित होने लगे और इस प्रकार गद्य चल निकला। कथा-कहानियोंकी माँग होना स्वाभाविक था। इन सब अनेक परिस्थितियों और साधनाओंने हिन्दी गद्यको विकसित होनेमे पर्याप्त सहायता दी।

अमीर खुसरोने जिस बोलीमें अपनी मुकरियाँ, पहेलियाँ आदिकी रचना की थी, वह मेरठ, मुजफ्फरनगर और देहलीके आस पास बोली जानेवाली जन भाषाको सँवारकर बनाई गई थी जिसे पीछे चलकर खड़ी बोलीका दुर्नाम दे दिया गया। सन्तोंने अपनी वानियोंमें इसी भाषाका प्रयोग किया ; निरंजनी पन्थके

प्रवर्त्तक हरिदासजीने इसी भाषामें गद्य लिखा। लालदासी पन्थके प्रवर्त्तक लालदास (१५९७) ने इसी नागरी (हिन्दी) भाषामें रचना की। नानकदेवके पुत्र श्रीचन्द्राचार्यने अपने उदासीन सम्प्रदायका सिद्धान्त ग्रन्थ 'मात्राशास्त्र' इसी भाषामें लिखा। अकबरके समय गंगने 'चन्द-छन्द वर्णन की महिमा' मे इसी नागरी (खड़ी बोली) से मिलती-जुलती भाषाका प्रयोग किया है। दिल्ली उजड़नेपर जहाँ-तहाँ (लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद और दक्षिण) में मुसलमानी शासन चलता रहा, वहाँ शासन और राज्य सभा तथा उनसे सम्बद्ध शिष्ट लोगोंकी भाषा यही नागरी बन चली। सन् १७४१ में पटियालाके श्रीरामप्रसाद कथावाचकने ललित नागरीमें भाषा योगवाशिष्टकी रचना की थी।

अमीर खुसरोकी भाषा देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि दिल्लीके आसपासके प्रदेशमें जो भाषा बहुत पहलेसे लोक-भाषाके रूपमे व्यवहृत थी, उसे ही परिमार्जित करके कवि लोग अपनी कवितामे और शिष्ट लोग अपने पारस्परिक व्यवहारके काममे लाते थे। आज भी मेरठ कमिश्नरीकी लोक भाषाका स्वरूप देखकर यह समझनेमें कोई कठिनाई नही होगी कि संस्कृतसे सीधे निकली हुई इस भाषाका अपना इतिहास रहा है। हरिद्वार आदि तीर्थोके पंडोंके यहाँ रखी हुई बहुत प्राचीन बहियोंका परीक्षण करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा एक सहस्त्र पहलेसे भी यहाँ बोली जाती रही है। इस प्रदेशके लोग जहाँ-जहाँ तीर्थ करने जाते रहे, वहाँ-वहाँकी बहियोंमे वे अपने हाथसे इसी भाषामें अपना नाम ठिकाना लिखते रहे। अभी इस क्षेत्रमें पूर्ण खोज नहीं हो पाई अन्यथा विद्वान् लोग यह न कहनेकी भ्रामक भूल न करते कि अपभ्रंशसे इसकी उपत्ति हुई है। पहले बताया जा चुका है कि हेमचन्द्र, सोमप्रभु सूरि आदिने जिस अपभ्रशका व्याकरण लिखा है और जिसके उदाहरण दिए है, वह गुजराती और राजस्थानीकी पूर्ववर्त्तिनी अपभ्रश है, नागरीकी नहीं।

संयोगसे नागरीका गद्य-साहित्य उस युगमें पनपा जिस युगमे योरोपसे आनेवाले अँग्रेज, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली और हुंशाश् (डच) देशोंके साहसी व्यापारियोंने यहाँ आकर हमारे व्यवसायको भारी आघात पहुँचाकर, यहाँके नवाबों और राजाओंमे परस्पर कलह कराकर धीरे-धीरे हमारे देशके भू-भागोंपर अधिकार प्रारम्भ कर दिया। योरोपीय देशोंके इन व्यापारी जातियोके संघर्षमें अँग्रेजोने अधिक सफलता पाई और उन्होंने 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' स्थापित करके सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक दृष्टिसे भारतको दास बनाकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हीके प्रयाससे कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजमें हिन्दी और उर्दूके अध्यापक गिलक्रस्ट साहबने हिन्दी और उर्दूकी पुस्तकें लिखवानी आरम्भ की। इन्होंने लल्लूजी लालसे 'प्रेम सागर' और सदल मिश्रसे 'नासिकेतोपाख्यान' लिखवाया। स्वतन्त्र रूपसे भी दिल्लीके सदासुख लाल (१७४६–१८२४) ने 'सुखसागर' नामसे भागवतका रूपान्तर किया था और लखनऊके मुन्शी इंशाअल्लाखाँने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। सन् १८१७ में कलकत्तेकी स्कूल बुक सोसायटी और आगरेमें 'आगरा स्कूल बुक सोसायटी' ने विद्यालयोंके लिए स्कूल पाठ्य-ग्रन्थोंका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया।

इन सबसे अधिक व्यवस्थित नागरी भाषाका प्रचार करनेका श्रेय ईसाई पादरियोंको है जिन्होंने हिन्दू धर्मका खण्डन करनेके लिए हिन्दू धर्म ग्रन्थ, संस्कृत और नागरी भाषाका अध्ययन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थोंका नागरी (हिन्दी) में अनुवाद कराया। इस प्रकारके कार्यका श्रीगणेश किया डैनिश मिशनके पादरी कैरे, मार्शमैन और वार्डने। उन्होंने यह भली भाँति अनुभव कर लिया था कि अपने धर्म-प्रचारके

लिए यदि कोई भाषा सपूर्ण उत्तर भारतमें समान रूपसे समझी जा सकती है तो वह नागरी भाषा ही है; कुछ तो इसलिए कि दिल्ली, सहस्राब्दियोंसे उत्तर भारतकी राजधानी रही है, कुछ इसलिए कि सभी देशोंके व्यापारी दिल्लीसे सम्पर्क रखते रहे हैं, कुछ इसलिए भी कि समस्त भारतके प्रमुख तीर्थ उत्तर प्रदेशमें ही है, इसलिए भी कि घने बसे होनेके कारण उत्तरप्रदेशके लोग छोटे-मोटे व्यवसाय और नौकरीके लिए सारे भारत और भारतके बाहर देशों (आसाम, मलाया, बर्मा, स्याम, फिजी, मौरीशस, दक्षिण अमरीकाके डच गायना, ब्रिटिश गायना और अफ्रीकाके प्रदेशों) में अपनी भाषा और सस्कृति, वेश और रहन-सहन लेकर बसे हुए है, जिन्होंने अपनी नागरी भाषाको समुद्रके पार भी आज तक सशक्त और जीवित कर रखा है। इस भाषाकी व्यापकताके कारण कलकत्तेसे हिन्दीका प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' और 'वंगदूत' नामक जो हिन्दीके समाचार-पत्र निकले, उनके प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार तीनो ही बगाली थे। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का 'वनारस' पत्र तो काशीसे सन् १८४४ मे प्रकाशित हुआ।

इस नागरीके दो रूप चले—हिन्दी और उर्दू। यद्यपि व्यवहारत: नागरी और उर्दूमे कोई अन्तर नही था, किन्तु फारसी-अरबी शब्दोंसे लदी होनेके कारण और मुसलिम शासकोंकी मुंह-चढ़ी होनेके कारण इसीका बोलबाला था। शासन-प्रिया होनेके कारण उर्दूकी व्यवस्थित पढ़ाई भी होती थी और वे लोग उच्चारण और भाषा दोनोंका ध्यान रखकर शिक्षा देते थे। हिन्दीको इस प्रकारकी कोई सुविधा नही मिली। यही कारण है कि उत्तर भारतके विभिन्न प्रदेशोंमे उसका उच्चारण अभी तक व्यवस्थित नही हो सका और न भाषारूप ही अधिक सँवर पाया, यद्यपि वास्तवमे लोक-व्यवहार, जन-सम्पर्क, धार्मिक प्रवचन और शिष्ट लोगोंमे पारस्परिक लेख-व्यवहार और निमन्त्रण-पत्र आदि की भाषा हिन्दी ही थी। इसी अंधकारमें चन्द्रके समान प्रकाश लेकर भारतेन्दुका उदय हुआ।

राष्ट्रीयताकी चेतनाका आधार नागरी (हिन्दी)

अँग्रेजोंने भारतमे आकर अपनी 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के द्वारा भारतीय राजा और महाराजाओंको पदच्युत किया, उनके अधिकार छीन लिए और उनके दत्तक पुत्रोंको स्वीकार नहीं किया। स्वभावत: अनेक राजे-महाराजे और नवाव अँग्रेजोंसे चिढे बैठे थे। अँग्रेजोंने अपने शोषणसे देशका सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य लूटकर देशको दरिद्र बनाकर यहाँका सारा व्यापार विनष्ट कर दिया, इसलिए व्यापारी-वर्ग असन्तुष्ट हो उठा। योरोपसे आनेवाले पादरी निरन्तर भारतीयोंको विधर्मी बनाते चले जा रहे थे। इसलिए देशका कुलीन वर्ग विचलित हो उठा। इन राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक कारणोंसे सारा देश विक्षुब्ध हो उठा था। ऐसे समय नागरी भाषा (हिन्दी) ने इस सम्पूर्ण असन्तुष्ट हुई शक्तियोंको एक सूत्रमें ग्रथित होनेमे बड़ी सहायता की। सम्पूर्ण उत्तर भारतमे एक साथ क्रान्ति की ज्वालाएँ भड़क उठीं, क्योंकि सबके परस्पर मिलने-जुलने और बात करनेका एक सरल माध्यम नागरी भाषा ही बन गई थी। यदि उसी समय समस्त देशमें एक भाषा होती तो निश्चय ही हम लोग सन् १८५७ में स्वतन्त्र हो गए होते। यह कम आश्चर्यकी और दु:खकी बात नहीं है कि इतिहासकी इस प्रमुख घटनासे कोई लाभ न उठाकर आज भी लोग भारतकी एक राष्ट्रभाषा होनेका विरोध करनेका अराष्ट्रीय कार्य कर रहे हैं।

नागरीका गद्य

विश्वकी सभी भाषाओंमें गद्यका विकास पिछले पाँच सौ वर्षोंके भीतर हुआ है। गद्यके ग्रन्थ पहले भी लिखे जाते रहे, परन्तु उनका प्रचार तभी हो पाया, जब वे अत्यन्त उच्च कोटिके होते थे। संस्कृतमें प्रसिद्ध ही था—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" (गद्य ही कवियोंकी कसौटी है।)। छापेकी व्यवस्था होनेसे और उसका अधिकाधिक प्रचार होनेसे गद्यमे साहित्य रचनाको भी बल मिला। उद्योग और विज्ञान प्रधान युग होनेसे काव्यका ह्रास स्वाभाविक था, किन्तु काव्यके ह्रासके साथ गद्य समृद्ध होता गया। पहले जहाँ साहित्य और काव्य एक ही वस्तु समझे जाते थे, वहाँ अब काव्य (छन्दोमय रचना) भी साहित्यका एक अंग गिना जाता है। अतः इस युगमें गद्यका महत्त्व सर्वाधिक बढ़ गया।

नागरी गद्यका प्राचीनतम उदाहरण हमे गंग कविकी 'चन्द-छन्द वरननकी महिमा' में मिलता है। देखिए :—

सिद्धि श्री १०८ श्री पातसाहजी श्री दलपतिजी अकबर साहजी आमखासमे तखत ऊपर विराजमान हो रहे।

गंगके पश्चात् रामदास निरंजनका नाम आता है जिन्होंने संवत् १७९८ में 'भाषा योगवाशिष्ठ' की रचना की। इसकी भाषा स्पष्ट रूपसे आजकलकी नागरीका पूर्व रूप कही जा सकती है। दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। एक वाक्य देखिए :—

जिसने आतमतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसे ही तुम भी स्थित हो। इसी दृष्टिको पाकर आतम तत्त्वको देखो तब विगत-ज्वर होंगे और आतमपदको पाकर फिर जन्ममरणके बन्धनमे न आवोगे।

आजकलकी नागरीसे यह नागरी पूर्णतः मिलती-जुलती है। आगे चलकर १८१६ में दौलत-रामने हरिषेणाचार्यकृत 'जैन पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया; किन्तु उसकी भाषा उतनी पुष्ट नहीं है, जितनी योग वाशिष्ठ की। दो-एक और छोटी-मोटी पुस्तकें भी निकालीं, किन्तु फिर अँग्रेजोकी प्रेरणासे नागरी गद्यमें रचनाएँ आरम्भ हुईं। कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजके आश्रयमे लल्लूजी लालने 'प्रेम सागर' और सदल मिश्रने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की।

लल्लूजी लाल

लल्लूजी लाल थे आगरेके निवासी। उन्होंने जिस भाषाका प्रयोग किया, वह थी तो नागरी, किन्तु इसमें ब्रज भाषाके शब्दोंका प्रचुर प्रयोग हुआ है। यह अवश्य है कि उन्होंने अरबी-फारसीके शब्दोंका प्रयोग बचानेकी चेष्टा की है। लल्लूजी लालकी भाषाकी सबसे बड़ी विशेषता है इनकी अनुप्रास-प्रियता। 'प्रेम-सागर' की भाषाका एक उदाहरण देखिए :—

बालोंकी श्यामताके आगे अमावास्याकी अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख-नागिन अपनी केंचली छोड़ सटक गई। भौंहकी बँकाई निरख धनुष धधकाने लगा। आँखोंकी बड़ाई-चंचलाई पेख मृग-मीन-खंजन खिसाय रहे।

सदल मिश्र

सदल मिश्र आरेके रहनेवाले थे इसलिए इनकी भाषामें स्वभावतः कही-कहीं पूर्वी प्रयोग पाए जाते है—देखिए :—

तब नृपने पंडितको बोला दिन विचार बड़ी प्रसन्नतासे राजा वो ऋषियोंको नेवत बुलाया। लगनके समय सबोंको साथ ले मण्डलमे जहाँ सोनन्हके थम्भपर मानिक दीप बलते थे जा पहुँचे।

सदासुखलाल

ठीक इसी समय सदासुख लाल 'नियाज' ने कम्पनीकी नौकरी से अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् विष्णुपुराणके कुछ अशोंका अनुवाद प्रस्तुत किया। इनकी रचना स्वतन्त्र है और किसीकी प्रेरणासे नहीं लिखी गई है। इन्होंने उर्दू शैली और फारसीमें भी कुछ पुस्तकें लिखी है। ये दिल्लीके रहनेवाले थे तथा नौकरीसे अवकाश पाकर प्रयागमें ही बस गये थे। शेष जीवन इन्होंने वही भगवद्भजनमें व्यतीत किया। इनकी भाषा ठीक वही है जो उस समय शिक्षित हिन्दू समाजकी बोलचालकी भाषा थी। इन्होंने तत्सम शब्दोंका बराबर प्रयोग किया और अपनी भाषाका स्वरूप वही रक्खा जो उस समय कथावाचकों द्वारा व्यवहृत होता था। देखिए :—

"विद्या इसी हेतु पढते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उसके निज स्वरूपमे लय हूजिए।"

इंशा अल्लाह खाँ

इन्हीके ढगके दूसरे लेखक हो गए है सैयद इंशा खाँ। इंशा खाँ उर्दू शैलीके बहुत बड़े कवि थे। किसी समय वे लखनऊ दरबारके रत्न रहे, किन्तु पीछे ये बहुत दुर्दशा भोगकर मरे। इन्होंने 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकीकी कहानी' लिखी जिसका उद्देश्य इंशाके शब्दोंमें था—"कोई ऐसी कहानी कहिए जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोलीका पुट न मिले और बाहरकी बोली और गँवारी कुछ उसके बीचमें न हो, भाषापन भी न हो।"

इस प्रकार बाहरी (अरबी, फारसी आदि), गँवारी (ब्रजभाषा, अवधी आदि) तथा भाषा (सस्कृत) तीनोंसे मुक्त भाषामें उन्होंने रचना करनेका निश्चय किया। इसमें सन्देह नही कि इस प्रयत्नमें तो इंशा सफल हो गए, किन्तु कहीं-कही फारसीके ढगका वाक्य-विन्यास रखकर इन्होने भाषाकी प्रकृति अस्त-व्यस्त कर दी है। इनकी भाषामे अनुप्रास और शब्दोंमे लोच और चंचलता उसी ढंगकी है जैसी प्रेम-कहानियोंके लिए आवश्यक होती है। इन्होंने कहानी भरमे ठेठ नागरीका प्रयोग किया है जिसमें स्थान-स्थानपर सिद्धोक्तियों (मुहावरों) का पुट है।

उदाहरण लीजिए :—

"सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवालेके सामने जिसने हम सबको बनाया और बात-की-बातमें वह कर दिखाया जिसका भेद किसीने न पाया।"

पादरियोंका प्रयास

ऊपर जिन चार लेखकोंकी चर्चा की गई है वे सम्वत् १८६० के आस पासके है। उन्होने नागरी गद्यका जो स्वरूप निर्धारित किया, उससे और लोगोंने तो कोई लाभ नही उठाया, किन्तु ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाले पादरियोंने अपने छापेघर खोलकर अपनी बाइबिलका अनुवाद तथा अन्य पुस्तकोंका प्रकाशन उसी नागरी (हिन्दुस्तानी) गद्यमे प्रकाशित करनेमे किया। हिन्दी (नागरी) गद्यकी पुष्ट और अविच्छिन्न धारा वस्तुतः उपर्युक्त चारों लेखकोके पचीस वर्ष पश्चात् आरम्भ हुई। इसी बीच कुछ पत्र भी नागरीमे निकले जो भाषाका रूप स्थिर करनमे सहायक हुए।

राजा शिवप्रसाद

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने विक्रमकी बीसवी शताब्दीके आरम्भमे शिक्षा विभागमें निरीक्षक पदपर नियुक्त होकर कितनी ही पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई जिससे नागरीके लिए भली-भाँति मार्ग बन चला। किन्तु राजा साहबका भाषा-विषयक कोई सिद्धान्त नहीं था। कभी तो वे फारसी मिश्रित शब्दावलीका प्रयोग करते कभी संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीका और कभी ठेठ भाषाका।

उर्दूवालोंका कुचक्र

उर्दूकी शैली अलग करके उसके पोषकोंने संस्कृतनिष्ठ हिन्दीको गिरानेका निरन्तर दुष्प्रयत्न किया। सम्वत् १८६० में हिन्दी और उर्दू—दोनों ही न्यायालयोंकी भाषा मान ली गई थी और ३३ वर्ष पश्चात् इसी आशयकी घोषणा पुनः की भी गई, किन्तु उर्दूके कुचक्रियोंने प्रयत्न करके वर्ष भरके पश्चात् यह घोषणा समाप्त भी करा दी और केवल उर्दू ही न्यायालयोंकी भाषा मान ली गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि राजा शिव-प्रसाद भी फारसी मिश्रित भाषाकी ओर ही ढल गए थे। परन्तु दूसरी ओर राजा लक्ष्मणसिंहने उसे उस संजीवनीका पान कराया कि नागरी गद्य पुनः जीकर उठ खड़ा हुआ। दोनोंकी भाषाके उदाहरण लीजिए :—

१—"हम लोगोंकी ज़बानका व्याकरण किसी क़दर कायम हो गया है। जो बाकी है जिस क़दर क़ायम हो जावे बहतर। इस जबानका दरवाजा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा।"—

—राजा शिवप्रसाद

२—"तुम्हारे मधुर वचनोंके विश्वासमें आकर मेरा जी यह पूछनेको चाहता है कि तुम किस राज-वंशके भूषण हो और किस देशकी प्रजाको विरहमें व्याकुल छोड़कर पधारे हो। क्या कारण है कि जिसने तुमने अपने कोमल गातको कठिन तपोवनमें आकर पीड़ित किया।"—

—राजा लक्ष्मणसिंह

स्वामी दयानन्द सरस्वती

ठीक इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वतीने संवत् १९३२ में आर्यसमाजकी स्थापना की और अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' नागरी भाषामे लिखा जिसका नाम उन्होंने आर्य भाषा रखा है। गुजराती होते हुए भी स्वामीजीने नागरी भाषाको ही आर्य समाजके सिद्धान्तोंके प्रचारका माध्यम बनाया क्योंकि यह

महर्षि दयानन्द

भाषा अधिक व्यापक रूपसे बोली और समझी जाती थी। स्वामीजीकी भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान होती थी। एक उदाहरण लीजिए :—

"राजा भोजके राज्यमें और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़ेके आकारका एक मानयन्त्र कलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ीमें ग्यारह कोस और एक घण्टेमे सत्ताईस कोस जाता था।"

इन तीनों लेखकोंने एक ही समयमे तीन प्रकारकी शैलियाँ उपस्थित कीं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका अभ्युदय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (जन्म संवत १९०७–१९४२) ३५ वर्षकी आयुमे ही वर्तमान नागरी गद्यका प्रवर्तन करके अस्त हो गए। भारतेन्दु जिस समय साहित्य-जगतमे अवतरित हुए उस समय तक राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द और पंजाबके प. श्रद्धाराम फुल्लौरीने गद्यको एक रूप प्रदान कर दिया था, किन्तु वह पूर्णत: व्यवस्थित नही था। भारतेन्दुजीने गद्य और पद्य दोनोंको सुव्यवस्थित, परिमार्जित, चलता, स्निग्ध और आकर्षक रूप प्रदान किया और साहित्यको भी नए मार्गपर लाकर खड़ा किया। इसीलिए वे वर्तमान गद्यके जनक माने जाते हैं।

भारतेन्दुके सहयोगी तथा समकालीन प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', जगमोहन सिह, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकोका एक अच्छा मण्डल तैयार हो गया था जो नये ज्ञान-विज्ञानसे परिचित था, जिसके हृदयमे अपनी भाषाके प्रति प्रेम था और जो संसारकी अन्य समृद्ध भाषाओंकी भाँति अपनी भाषाको भी समृद्ध देखना चाहते थे। भाषाका स्वरूप स्थिर हो जानेसे और उपर्युक्त लेखकोंकी व्यक्तिगत विभिन्नताजन्य शैलियोंके कारण भाषाकी शक्ति और सामर्थ्यमे वृद्धि होनेसे नये विचारोंके नये लेखकोंको भी यह सुविधा हुई कि वे अपने विचार नागरीमें प्रकट कर सकें।

भारतेन्दुका अवसान सम्वत् १९४२ मे हुआ। यद्यपि भारतेन्दु और उनके युगके कुछ शीर्षस्थ लेखक उस समय साधु और व्याकरण सम्मत भाषा लिखते थे। किन्तु उस समयके लेखक किसी विषय-पर सोचते-विचारते तो थे अँग्रेजीमें और लिखते थे अपनी भाषामे। ऐसे लोगोंके लिए हिन्दी शब्दोंका अभाव अनिवार्य था। जिसकी पूर्ति वे अँग्रेजी-संस्कृत कोष लेकर किया करते थे क्योंकि उस समय अँग्रेजी-. हिन्दीका कोई अच्छा कोष नही था। परिणाम यह होता था कि वे व्याकरण, सिद्धोक्ति, वाक्य-विन्यास आदि की कोओ चिन्ता न करके जैसा चाहते वैसा लिखते और फिर भाषा भी वैसी ही रह जाती। यह अवस्था बहुत दिन नहीं चलने पाई। सम्वत् १९५८ मे प. महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण किया। 'सरस्वती' द्वारा उन्होंने प्रकाशित पुस्तकोंमे व्याकरण और भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ दिखा-दिखाकर तथा प्रकाशनार्थ आए हुए लेखकोंका संस्कार करके नये लेखकोंको बहुत सावधान कर दिया और इस प्रकार हिन्दीपर बहुत बड़ा उपकार किया। गद्यकी भाषापर द्विवेदीजीका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आगे आनेवाले लेखकोंने अपनेको बहुत सँभाल लिया और आगे चलकर उन्हींके द्वारा निर्दिष्ट पथपर चलने लगे। द्विवेदीजीके समय तक साहित्यके विभिन्न अंगोंपर बहुत अधिक संख्यामें पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। नागरी-गद्य अनेक धाराओंमें बह निकला और आगे भी यही क्रम चलता रहा। कोई भी ऐसा ज्ञात विषय

नही रहा जिसपर न लिखा गया हो। शुद्ध साहित्य, दर्शन, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष राजनीति, अर्थनीति आयर्वेद, चिकित्सा, विज्ञान आदि अनेक विषयोंपर साधारण और उच्च कोटिकी सभी प्रकारकी पुस्तकें लिखी जाने लगी और आज भी लिखी जा रही हैं। शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे भी निबन्ध, समीक्षा, उपन्यास, कहानियाँ नाटक जीवन-चरित्र आदि कितने ही नये रूपोका समावेश हुआ। इनके अतिरिक्त भ्रमण-सम्बन्धी साहित्य, आखेट-सम्बन्धी साहित्य, अनुसन्धान-सम्बन्धी साहित्यका भी पर्याप्त परिमाणमे प्रणयन हुआ। पत्र-पत्रिकाओंका अलगसे ही बहुत विशाल साहित्य प्रस्तुत हो गया।

आधुनिक गद्य-साहित्यकी परम्पराका प्रवर्त्तन नाटकोसे हुआ। अतएव हम सर्वप्रथम नाटकोंपर ही विचार करेंगे।

नागरीका नाट्य-साहित्य

संस्कृत नाटकोंका इतना समृद्ध साहित्य होते हुए भी हिन्दीमें नाटकोंकी रचना की ओरसे कविगण उदासीन से रहे। इसका सबसे प्रधान कारण व्यवस्थित रूपसे रंगमंचका अभाव भी था। मुसलमानोंने इस ओर कोई रुचि नहीं दिखाई। तुर्कों और पठानोके समयमे स्थापत्य कला की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया। मुगलोने अवश्य काव्य, सगीत चित्रकला आदि की ओर भी ध्यान दिया, परन्तु रंगमंचकी उन्होंने उपेक्षा की। इसीलिए न रंगमंचका विकास हो सका, न नाटक लिखे जा सके, नाटकोके नामपर जो कुछ लिखा गया वह सम्वादमात्र था। उनमे अभिनेयताका गुण न होनेसे उन्हें नाटक कहा ही नहीं जा सकता। यद्यपि भारतेन्दुजीने महाराज विश्वनाथसिंहके 'आनन्द रघुनन्दन' नाटकको हिन्दीका सर्वप्रथम नाटक ठहराया है किन्तु वास्तविक प्रथम नाटककार स्वयं भारतेन्दु ही हैं। भारतेन्दुकी देखा-देखी उनकी मित्र मण्डलीने भी कई नाटकोंकी रचना की। मौलिक रचनाओंके अतिरिक्त सस्कृत, बंगला, अँग्रेजी तथा दो-चार अन्य भाषाओंके नाटकोंके अनुवाद भी पर्याप्त संख्यामे प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जन्म सम्वत् १९०७ मे काशीमें हुआ। इनके पिता गोपालचन्द उपनाम 'गिरधरदास' भी बहुत अच्छे कवि हो गए हैं। कुल ३५ वर्षकी आयु भोगकर भारतेन्दुजी सम्वत् १९४२ में परलोकवासी हुए। इस २५ वर्षकी आयुमे ही भारतेन्दु जी जो काम कर गए वह पचासों वर्षमें भी किसीके किये नहीं हो सकता था। १८ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपना सबसे पहला नाटक 'विद्या सुन्दर' प्राकशित किया जो बंगलाके एक नाटकका अनुवाद था। भारतेन्दुने कुल सत्रह नाटक प्रस्तुत किए, जिनमें ८ मौलिक और ९ अनुवाद हैं। मौलिक नाटक है :—

वैदिकी हिसा हिसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अन्धेर-नगरी, प्रेम-जोगिनी, सती प्रताप (अपूर्ण)।

अनूदित नाटक ये हैं :—

रत्नावली मुद्राराक्षस, पाखंड-विडम्बन, धनंजय-विजय, कर्पूर मंजरी (संस्कृतसे), विद्यासुन्दर, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी (बंगलासे), दुर्लभबन्धु (अँग्रेजी) से।

भारतेन्दुके पूर्वतक हिन्दीमें नाट्य शास्त्रपर कोई भी सामग्री न थी। इन्होंने 'नाटक' नामका एक निबन्ध लिखकर इस अभावकी पूर्ति तो कर दी और साथ ही साथ आगेके लेखकोंके लिए मार्ग भी खोल दिया।

भारतेन्दुके नाटकोंमें मुख्य बात यह है कि इन्होंने जीवनके अनेक क्षेत्रोंसे सामग्री ली है। देश-प्रेम, समाजकी वास्तविक स्थिति, देशी नरेशोंके दरबारोंमे चलनेवाले षड्यन्त्रमय-जीवन, हिन्दू-नारीके शौर्य और तेजकी कहानी, प्रेमके आदर्श—ये सभी इनके नाटकोंमें आए हैं। इस प्रकार भारतेन्दुजीने अपने समयमे व्याप्त सभी परिस्थितियोंका चित्रण करके अपने नाटकोंका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रखा है।

भारतेन्दुकी शैली

भारतेन्दुका जीवन ही समन्वयवादी था। न तो वे कोरे आदर्शवादी थे, न तथ्यवादी। इनकी यही प्रवृत्ति इनकी रचनाओंमें भी प्रकट होती है। ये प्राचीन काव्यके भी प्रेमी थे, किन्तु नये काव्यकी परम्पराके जनक। उसी प्रकार गद्य शैलीमें भी भारतेन्दुने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। यही अवस्था नाट्य-रचना की भी हुई। न तो उन्होंने भारतकी शास्त्रीय प्रणालीसे अपनेको पूर्णतः आबद्ध किया और न बगला-वालोंके समान उसको सर्वथा त्यागकर अँग्रेजी ढंग अपनाया। काल एवं परिस्थितिका विचार करके जो कुछ उपयुक्त और अच्छा लगा, उसे ही इन्होंने भी ग्रहण किया। समन्वयवादीकी इस भावनाका ही यह परिणाम हुआ कि इन्होंने दो प्रकारकी भाषा-शैलियोंका प्रयोग किया—१. भावावेशकी शैली जिसमें बोलचालकी सरल भाषामे छोटे-छोटे वाक्योंका प्रयोग होता है; और २. स्थायी विचारोंकी व्यञ्जनाकरनेवाली तथ्यनिरूपण शैली, जिसमें अपने समयके अन्य लेखकोंकी अपेक्षा भारतेन्दुकी भाषा अधिक साधु और परिष्कृत होती थी।

दोनोंका उदाहरण लीजिए :—

१—नाम बिके लोक झूठा कहें, अपने मारे मारे फिरें. वर वाह रे शुद्ध बेहयाई—पूरी निर्लज्जता ! लाजको जूतों मारके पीटके निकाल दिया है।

२—जब मुझे अँग्रेजी रमणी लोग मद-सिंचित केशराशि, कृत्रिम कुन्तल जूट, मिथ्यारत्नाभरण, विविधवर्ण वसनसे भूषित, क्षीणकटि देश, कसे, इधरसे उधर फरफर कलकी पुतलीकी भाँति फिरती हुई दिखाई पड़ती हैं, तब इस देशकी सीधी-सादी स्त्रियोंकी हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःखका कारण होती है।

भारतेन्दुके नाटक अधिकतर अभिनेय है ओर खेले भी जा चुके हैं।

भारतेन्दु युगके अन्य नाटककार

भारतेन्दु युगके प्रमुख लेखकोंने भी उनकी देखा-देखी अन्य प्रकारकी रचनाओंके अतिरिक्त नाटक भी लिखे। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', श्रीनिवासदास, तोताराम, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री, राधाकृष्णदास आदिने कुछ नाटक लिखे। किन्तु भारतेन्दुके पीछे बहुत समय तक नाम लेने योग्य मौलिक नाटक कोई-कोई ही दिखाई पड़े। हाँ, बंगला,

संस्कृत, अँग्रेजीसे अनुवादकोंका काम बराबर चलता रहा। किशोरीलाल गोस्वामी आदिके दो-चार मौलिक नाटक भी निकले परन्तु इन सब रचनाओंको नाटक नहीं कहा जा सकता।

योरोपीय पद्धतिका समावेश

विक्रमकी बीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें जो बहुतसे नाटक रचे गए, उनमें बहुत कुछ नया विदेशी रूप प्रकट हुआ, किन्तु उचित रंगमंचके अभावमें ये नाटक भी प्रसिद्धि न पा सके। इसी बीच फारसी रंगमंचके व्यापक प्रचारके कारण उर्दू शैलीमें शेक्सपियरके नाटकोंने हिन्दीमें साहित्यिक नाटकोंके प्रणयनको बड़ी गहरी क्षति पहुँचाई। उस समय काशीके आगा हश्र काश्मीरी, दिल्लीके नारायणप्रसाद 'बेताब' और बरेलीके 'राधेश्याम' कथावाचक न उत्पन्न हो गए होते तो जनरुचि और भी विकृत हो जाती। इन लोगोंने पौराणिक कथाओंका आश्रय लिया जिससे रंगमंचमें भारतीयताका समावेश हो चला। बँगलाके अनेक नाटकोंका अनुवाद भी हुआ जिनका एक प्रभाव तो यह हुआ कि नाटकोंमें योरोपकी चरित्र-चित्रण-पद्धतिका समावेश होने लगा। और दूसरा लाभ यह हुआ कि हिन्दीके नाटकोंसे शेरबाजी उठ गई।

चार प्रवृत्तियाँ

इस अवधिमें चार प्रकारकी प्रवृत्तियाँ नाटक-रचनामें काम कर रही थी :—

(१) संस्कृत नाट्य-शास्त्रके नियमोंके अनुसार तथा भारतेन्दु रचना-पद्धतिसे प्रभावित शैलीका प्रयोग;

(२) दूसरी भाषाओंका अनुवाद;

(३) बंगला और अँग्रेजी नाटकोंके ढंगपर मौलिक नाटकोंकी रचना; और

(४) भारतीय गाथाओंको फारसी रंगशालाके लिए उर्दू नाटकोंके अनुसार ढालना।

इनमेंसे पहली प्रवृत्ति तो राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के 'चन्द्रकला-भानुकुमार' तथा मैथिलीशरण गुप्तके 'चन्द्रहास' नाटकके पश्चात् समाप्त हो गई। दूसरी प्रवृत्ति भी बहुत नहीं चल सकी। क्योंकि विदेशी भाषाओंके अच्छे नाटकोंके एक तो अनुवाद हो चुके थे, दूसरे ढंगके नाटकोंके विषय और उनका भाषा-विधान हिन्दीके साथ मेल नहीं खाता था। तीसरी प्रवृत्ति अवश्य ही श्लाघ्य है क्योंकि चाहे अनुकरणके रूपमें ही हुई हो, किन्तु हिन्दीमें कुछ मौलिक नाटकोंकी रचना अवश्य हुई। इसमें सबसे अधिक यशके भागी जयशंकर प्रसाद हुए जिन्होंने कुल मिलाकर १३ नाटक रचे जिनमें आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक हैं।

अपने 'विशाख' नाटककी भूमिकामें प्रसादजी लिखते हैं—"मेरी इच्छा भारतीय इतिहासके अप्रकाशित अंशमेंसे उन प्रकाण्ड घटनाओंका दिग्दर्शन करानेकी है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थितिको बनानेका बहुत कुछ प्रयत्न किया और जिनपर हमारे वर्तमान साहित्यिककी दृष्टि कम पड़ी है।" यह उद्देश्य उनके मस्तिष्कमें इस दृढ़तासे पैठ गया कि इसकी रक्षाके प्रयत्नमें प्रसादजी संवाद, भाषा, चरित्र-चित्रण, दृश्य-विधान आदि सब नाटकीय तत्त्व भूल गए और नाटक रचते-रचते वस्तुतः उन्होंने 'नाटकीय उपन्यासात्मक गद्य-काव्य' लिख डाले। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटक, रंगमंचके उपयुक्त न हो

जयशंकर प्रसाद

सके। इधर काशीमें अभिनव रंगशाला स्थापित करके अभिनव भरतने अजन्ता, अंगुलिमाल, शबरी, रजिया, अनारकली, वसन्त, मेरी माँ, मगल प्रभात, प्रसाद, बेचारा केशव, देवता, सेनापति पुष्यमित्र, अलका, विक्रमादित्य, अपराधी, जय सोमनाथ, पारस, सिद्धार्थ, भगवान बुद्ध, मायावी, पापकी छाया नामक नाटक लिखे जिनका अभिनय काशी अभिनव रंगशालाके मंचपर तथा देशके अन्य भागोंमें नए प्रकारके रंगमंचोंपर सफलता-पूर्वक किया जा चुका है।

चौथी प्रवृत्तिके अनुसार जिन नाटकोंकी रचना हुई उन्हें साहित्यिक नाटक नहीं कहा जा सकता, अतएव उनकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है।

इधर पश्चिमी देशोंकी देखादेखी समस्या, नाटक, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक आदि भी हमारे यहाँ पर्याप्त संख्यामे रचे जा रहे हैं। एकांकी नाटक तो आजकल बहुतसे लिखे जा रहे है। किन्तु वे पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशनार्थ ही लिखे जाते है। लक्ष्मीनारायण मिश्रने सामाजिक समस्याओंसे सम्बद्ध विषयों स्ट्रिंडबर्ग तथा इब्सनकी शैली पर अनेक समस्या नाटक लिखे किन्तु रगमचकी दृष्टिसे वे सफल नहीं हो पाए। अन्य नाटककारोंमें गोविन्दवल्लभ पन्त, हरिकृष्ण प्रेमी मुख्य है।

जयशंकर प्रसाद

प्रसादजी काशीके बड़े सम्पन्न व्यवसायी थे। सम्वत् १९४६ में काशीमें उनका जन्म हुआ और सम्वत् १९९४ मे वहीं उनका निधन भी हुआ। प्रसादजी अध्ययनशील व्यक्ति थे और व्यावसायिक कार्योंमे लगे रहनेपर भी इन्होंने घरपर ही पर्याप्त अध्ययन किया था। प्रसादजीकी ख्याति कवि, कहानीकार और नाटककार---तीनों रूपोंमें है किन्तु प्रसादजी प्रधानतः कवि थे, अतः इनके नाटक भी नाटक न होकर काव्य ही हो गए है। प्रसादजीने तेरह नाटक लिखे :---सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री, विशाख, अजात-शत्रु, जनमेजयका नागयज्ञ, कामना, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, एक घूंट और ध्रुवस्वामिनी। 'यशोधर्मदेव' नाटक भी इन्होंने लिखा था किन्तु उसे नष्ट कर दिया। राज्यश्री प्रसादजीका पहला नाटक है जिसमें उन्होंने सम्राट् हर्षवर्धनकी बहन राज्यश्रीके जीवन-घटनाओके एक अंशका चित्रण किया है। नाटकका कथानक विशृंखल-सा है तथा अजातशत्रुका चरित्रचित्रण भी ठीक नहीं हो पाया है। स्कन्दगुप्तको प्रसादजीका सर्वोत्तम नाटक माना जाता है। इसमें स्कन्दगुप्तके चरित्रका विकास उत्तम ढंगसे दिखाया गया है। नायकमे जो गुण होने चाहिए उन सबका समावेश स्कन्दगुप्तमे किया गया है। चन्द्रगुप्तकी कथावस्तु अत्यन्त जटिल कर दी गई है। कहीं-कहीं तो ऐसे दृश्य उपस्थित किए गए है जो केवल समय काटनेके लिए ही रखे गए प्रतीत होते है किन्तु इस नाटकमे चाणक्य और कल्याणी ये दो पात्र अत्यन्त सजीव और उदात्त है।

प्रसादजीको ऐतिहासिक नाटकोंमें ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिका स्वरूप उपस्थित करनेमें अच्छी सफलता मिली है। उन्होंने अपने नाटकोंमें चरित्र चित्रण किसी निश्चित आदर्शको सामने रखकर नहीं किया वरन् प्रत्येक पात्रकी परिस्थिति, उसकी अवस्थाएँ उसकी विचार-सरणि और उसके संगीत आदिका ध्यान करके उसका चरित्र चित्रित किया गया है। साधारणतया उनके नाटकोंमें घटनाओं और पात्रोंके चरित्र-विकासकी श्रृंखला नहीं टूटने पाई। किन्तु प्रसादजीने जो कथा ली उसे नाटकका रूप देनेमें अधिकांशतः

उन्होंने परिमाण, विस्तार, प्रयोग, भाषा तथा दृश्य विधानके उचित अनुपातका ध्यान नहीं रखा, इसीसे वे रंगमंचके योग्य नाटक न रच सके।

प्रसादजीके अतिरिक्त ऐतिहासिक नाटक लिखनेवालोंमें हरिकृष्ण प्रेमीका नाम लिया जाता है। इन्होंने मुसलिम शासनकालकी घटनाएँ ली हैं। 'रक्षाबन्धन' इनका प्रसिद्ध नाटक है। इन दोनोके नाटकोंमें सबसे बड़ा दोष यही है कि लोगोंने उनमे आधुनिक भावनाओंका रग चढ़ानेका उपक्रम किया है।

गोविन्दवल्लभ पन्तके भी दो नाटक 'वरमाला' और 'राजमुकुट' प्रसिद्ध हुए है। उदयशंकर भट्टने भी 'सिन्ध-पतन' आदि १२ नाटक लिखे हैं जिनके कथानकका आधार पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाएँ है। इनमें 'मत्स्यगधा' अधिक आकर्षक है। लक्ष्मीनारायण मिश्रने स्ट्रिंडबर्ग, इब्सन और शॉके अनुकरणपर अनेक समस्या नाटकोकी रचना की—'मुक्तिका रहस्य', 'सिन्दूरकी होली', 'राक्षसका मन्दिर' आदि, किन्तु उनमे न समस्या स्पष्ट हुई न उसका समाधान ही।

आधुनिक हिन्दी नाटक और नाटककार

नागरी (हिन्दी) के आधुनिक नाटककारका प्रादुर्भाव अँग्रेजी विद्यालयोंके पठित वर्गासे हुआ; जिनमे भारतीय अध्ययन और संस्कारका अभाव था, अतः योरोपीय और अमरीकी प्रभावोंके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। पिछले दो भीषण युद्धों तथा विश्वमें व्याप्त बेकारी, दरिद्रता, निराशा और कुण्ठाने हमारे नाटककारोंको भी प्रभावित किया। योरोपमें इस भावनाके कारण समस्त प्राचीन परम्पराओं, नियमों, सिद्धान्तों और व्यवहारके प्रति घृणा और अनास्था उत्पन्न होनेके कारण एक विशेष प्रकारकी व्यक्तिवादिता समुद्भूत हो चली थी। जिस प्रकार पहलेके साहित्यकार काव्य-शास्त्र तथा अनेक विज्ञानों और विद्याओंको मन्थन करके उत्पत्ति-ज्ञान-सम्पन्न रचना करते थे, वह सारी प्रवृत्ति ही लुप्त हो गई। एक छलांगमे एक दिनमें साहित्य महासागर पार करके साहित्य महारथी होनेकी लालसा उद्दीप्त हो उठी। अपने पल्ले कुछ न होनेके कारण स्वभावतः इन लोगोने साहित्यक रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह किया—क्योंकि न उन्हे उन साहित्यिक परम्पराओका ज्ञान था न अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति। इसीसे प्राचीन परम्पराके संयत, पठित, उत्पन्न साहित्यकारोंसे कोई सम्मान न पाकर ये लोग अपनी अलग-अलग बैठक और मण्डली बनाकर विदेशी वादोंसे अनेक नाम ग्रहण करके अपनी-अपनी ढफली और अपना-अपना राग अलापने लगे। थोथा चना घना बजने लगा, अध जल गगरी छलकती चलने लगी।

योरोपमे इस व्यक्तिवादी भावनाके कारण समाजवादी यथार्थवाद (सोशल रीअलिज्म), अभिव्यंजनावाद, (एक्सप्रेशनिज्म), प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म), प्रकृतिवाद (नेचुरलिज्म), मनोविश्लेषणवाद (साइकोएनिलिज्म), अतियथार्थवाद (सररीअलिज्म) आदि अनेक वादोंका प्रचलन हुआ। जोला, हाउप्टमान, गोर्की और चेखव आदि नाटककारोने प्रकृतिवादका आश्रय लेकर मानव-जीवनके अत्यन्त घृणित वीभत्स और कुरूप पक्षोंका यथार्थवादके नामसे चित्रण किया। अनेक रूपोंमें पुरुष और स्त्रीके वासनात्मक सम्बन्धका विश्लेषण किया गया। अचेतन मनका रहस्य खोलनेके नामपर ऐसी-ऐसी बेढंगी कल्पनाएँ प्रस्तुत की गईं जिनका कोई तुक नहीं था। अभिव्यञ्जनाकी नाटकोंमे अचेतन और अर्द्ध चेतन मानसिक संघर्षोका प्रदर्शन कराया गया। अस्तित्ववाद (एक्जिस्टसलिज्म) से प्रभावित नाटकोंमें प्रतीकोंके द्वारा कष्ट,

व्यथा, अनैतिकता आदिका उद्घाटन किया गया और रंगमंचपर सड़ी लाशोंकी दुर्गन्ध और मक्खियोंकी भिनभिनाहट तथा स्त्रियोंका करुण क्रन्दन सुनाई पड़ने लगा क्योंकि सार्त्रने इसी प्रकारके चित्रणको अस्तित्ववादी कला माना है। तथ्यातिरेकवादियोंने स्वप्न, मन और अचेतन मनकी सब वासनाओं, निराशाओं और कुंठाओंको व्यक्त करना ही अपना सिद्धान्त स्थिर किया और इससे प्रभावित हिन्दी नाटककारोंने अपने नाटकोंमें इनका समावेश प्रारम्भ कर दिया और यह भी नहीं सोचा कि हमारे देशके समाजकी रीति-नीति, आचार-व्यवहार और भाव-संस्कारसे इनका कोई सम्बन्ध है भी या नही।

हमारे देशके नाटककारोंपर जहाँ एक ओर अपने स्वतन्त्रता-आन्दोलन, देश-विभाजन, विज्ञानके आविष्कार, पूँजीवाद और जमीदारी प्रथाके प्रति विद्रोह तथा स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् व्याप्त होनेवाले भयंकर भ्रष्टाचारकी प्रतिक्रिया ही हमारे साहित्यमें हुई, वही दूसरी ओर विदेशीवादोंका भूत भी उनपर भली भाँति सवार हुआ! परिणामस्वरूप वर्तमान नाटकोंमे वर्तमान भारतकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषमताओंके साथ-साथ योरोपीयवाद भी अपने सारे दोषोंके साथ विद्यमान है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, पृथ्वीनाथ शर्मा, और उपेन्द्रनाथ अश्कपर इब्सन और शॉके विचार-प्रधान नाटकोंका प्रभाव पड़ा। सुमित्रानन्दन पन्तके प्रतीकवादी नाटकोंपर यीट्स, मैटरलिंक आदिके प्रतीक-वादका प्रभाव पड़ा। जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती और उपेन्द्रनाथ अश्ककी रचनाओंपर स्ट्रिण्डवर्ग, पिरैंडेलो और ओनिलका प्रभाव पडा। कुछ लेखकोंने अपने देशकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओंपर विदेशी नाटककारोंकी नवीन शैली और कौशलोंके साथ व्यंग्य और विस्तृत रंग विधानके साथ नाटक लिखे है उनमे गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, अश्क, जगदीश-चन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, रामनरेश त्रिपाठी, मोहनलाल महतो वियोगी, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, सुधीन्द्र और वीरदेव वीरके नाम लिए जा सकते हैं। इनमे भी सेठ गोविन्ददास, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, रामवृक्ष बेनीपुरी, नरेश मेहता, सुधीन्द्र और वीर देव वीरके नाटकोंमें नाटकीयता कम है, विचार अधिक है और ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने किन्ही विशेष सिद्धान्तों या भावोंका प्रचार करनेके लिए रंगमंचको आधार बनाया है।

मनोविश्लेषणके अनुसार विकृत प्रेमका चित्रण भी लक्ष्मीनारायण मिश्रके 'सिन्दूरकी होली' में, गोविन्ददासके 'पतित सुमन' में और उदयशंकर भट्टके 'नया समाज' में प्राप्त होता है। चेखव, स्ट्रिण्ड-वर्ग आदिसे प्रभावित उपेन्द्रनाथ अश्कने समस्याओंका भीतरी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेका असफल प्रयत्न अपने 'कैद और उड़ान' मे किया है। स्ट्रिण्ड वर्गके 'दि अण्डर स्टॉर्म' की छायापर अश्कने 'छठा बेटा' नाटक और सामाजिक समस्याके रूपमें 'अलग-अलग रस्ते' नामक सामाजिक समस्या नाटक लिखा है जिसकी कथावस्तु बड़ी छिछली, सस्ती और पिटी-पिटाई है। इनके 'अंजो दीदी' पर भी योरोपीय नाटकोंका प्रभाव स्पष्ट है जिनमें सांकेतिक प्रतीकोंके द्वारा अन्तश्चेतनाकी गाँठ खोलनेका प्रयत्न किया गया है।

जगदीशचन्द्र माथुरने रंग-कौशल, विषय तथा सम्वाद—सभी दृष्टियोंसे सजाकर 'कुँवरसिंह', 'शारदीया', 'बन्दी' और 'कोणार्क' नामक नाटक लिखे हैं जिनमें 'कोणार्क' की बड़ी प्रतिष्ठा हुई है। डा.

लक्ष्मीनारायण लालने 'अन्धा कुआँ' नाटकमें स्वाभाविकताके साथ अत्यन्त सजीव सम्वादोंसे युक्त समाजकी यथार्थवादी विवेचना करनेका स्तुत्य प्रयास किया है। किन्तु सम्वाद कहीं-कहीं आवश्यकतासे अधिक लम्बे हो गए हैं जिससे प्रभाव शिथिल पड़ गया है। भगवतीचरण वर्माका 'रुपया तुम्हें खा गया' नाटक बहुत साधारण कथानकके आधारपर अत्यन्त सामान्य ढंगसे लिखा गया है और इसीलिए वह अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाया। मोहनलाल महतो वियोगीने 'अफजल वध' (ऐतिहासिक), 'डांडी यात्रा' (राजनीतिक) 'कसाई' और 'वे दिन' नामक चार नाटक लिखे हैं। प्रतीकवादी शैलीमें समस्यात्मक नाटक 'कसाई' बहुत प्रभावशाली ढंगसे लिखा गया है। किन्तु इसमें भी सम्वाद बहुत लम्बे हो गए हैं और ठूंस-ठूंसकर ज्ञान भरनेका अधिक प्रयास किया गया है। रामवृक्ष बेनीपुरीने 'तथागत', 'शकुन्तला', 'सीताकी माँ', 'अम्बपाली' तथा 'अमर ज्योति' नामक पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक तथा 'खूनकी याद', 'गाँवके देवता', 'विजेता' और 'नया समाज' नामक सामाजिक नाटक लिखे हैं जिनमें प्राचीन परम्पराओं और सिद्धान्तोंपर कटु कठोर व्यंग्य किये गए हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी नाटककारकी अपेक्षा कवि अधिक थे। उन्होंने 'जयन्त', 'प्रेम लोक', 'वफाती चाचा', 'अजनबी', तथा 'पैसा परमेश्वर' नामक नाटक लिखे; किन्तु ये सभी नाटक नाट्य-कलाकी दृष्टिसे बहुत निम्न कोटिके हैं। विनोद रस्तोगीने अपने 'आजादीके बाद' नाटकमें स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् देशमें व्याप्त भ्रष्टाचारका अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण शैलीमें विवेचन किया है। उनका दूसरा नाटक 'सुबहके घण्टे' प्रतीक शैलीमें लिखा हुआ अत्यन्त असफल नाटक है क्योंकि सम्वाद, विषय-निरूपण और नाटक प्रस्तुत करनेके कौशल सभी दृष्टियोंसे 'अज्ञेय' शिथिल हैं।

नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने गार्ल्सवर्दीके 'स्ट्राइक्स' से प्रभावित होकर 'मुकुट' नामक एक नाटक लिखा है जिसमे नाटकीयता कम है, प्रचारवाद अधिक है। नाटकीय दृष्टिसे कथानकमें जो प्रौढ़ता होनी चाहिए, उसका भी इसमें पूर्ण अभाव है। अन्य आधुनिक नाटककारोंमें राजनैतिक समस्यापर चतुरसेन शास्त्रीका 'पग-ध्वनि', राजा राधिकारमण सिंहका 'अपना पराया' और 'धर्मकी धुरी', वीरदेव वीरके 'भूख और न्याय', पं. गौरीशंकर मिश्रके 'ठोस आजादी किसे', हिन्दू राज्य पाकिस्तानी स्वप्न कबतक', 'हिन्दुस्तान, पाकिस्तान साथ रहेंगे', 'आजाद हिन्दुस्तानसे नशा ले चल' और 'शबरी अछूत' शीर्षक प्रचारात्मक नाटक लिखे हैं। इनमें भी नाटकीयताका व्यापक अभाव है। विष्णु प्रभाकरने प्राचीन और नवीनका संघर्ष दिखलाया है, भैरवलाल व्यासने करुणामें सामाजिक सौख्य की विधि बताई है और श्री रामनारायण शास्त्रीने 'देवता' में मानव-जीवनकी महत्ता प्रदर्शित की है।

गाँधीवादी विचार-धारा और गाँधीजीके जीवनसे सम्बद्ध अनेक नाटक लिखे गए हैं जिनमें मातादीन भगेरियाका 'तीन दृश्य' रामचरण महेन्द्रका 'उजले नोआखालीमें प्रकाश,' देवीलाल सामरका 'बापू', प्रभाकर माचवेका 'गाँधीके राहपर' और 'सेवाग्रामका सन्त' विष्णु प्रभाकरका 'स्वाधीनता संग्राम', दीनदयाल 'दिनेश' का 'सत्याग्रह', ठा. लक्ष्मण सिंहका 'असहयोग', सुधीन्द्रका 'ज्वाला और ज्योति' मधुकर खरेका 'नव-निर्माण', विराजका 'तिरंगा झण्डा,' और 'सीमान्तका सन्तरी', राजेन्द्र सेक्सेनाका 'नवयुगका प्रारम्भ', जयनाथ नलिनका 'डेमोक्रसी', उदयशंकर भट्टका 'गाँधीजीका राम राज्य' तथा 'एकला चलो रे', गोविन्ददासका 'सूखे सन्तरे', 'कृषि-यज्ञ' तथा 'भूदानी यज्ञ', रामचन्द्र तिवारीका 'स्वतन्त्रता तथा

राष्ट्र निर्माण' और 'शक्ति', विष्णु प्रभाकरका 'शक्तिका स्रोत', हरिशंकर शर्माका 'बापूके स्वर्गमें स्वागत समारोह', यज्ञदत्त शर्माका 'विश्वशान्तिके पथपर', रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इन सबमें भी नाटकीयता कम, प्रचारवाद अधिक, लम्बे सम्वाद और अभिनेयता शिथिल है। गोपाल शर्माने 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' नामक एक नाटकमें अत्यन्त शिथिल कथावस्तुके सहारे मध्यम-वर्गीय परिवारका चित्रण किया है।

इससे स्पष्ट होगा कि वर्तमान नाटकोंमें ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकोंकी बड़ी कमी है, क्योंकि वैसे नाटकोंके लिए जितना अनुसंधान, सांस्कृतिक आत्मीयता, अध्ययन, मनन और संविधान-रचनाका कौशल अपेक्षित है, उसके अभाव और रंगमंचका व्यावहारिक ज्ञान न होनेके कारण अच्छे ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक नहीं लिखे गए। अत्यन्त अप्रौढ़ अभिनेय ऐतिहासिक नाटकोंमें आचार्य सीताराम चतुर्वेदीके 'सेनापति पुष्पमित्र', 'गौतम बुद्ध', 'रज़िया', 'अनारकली', 'मीराबाई', 'जय सोमनाथ' और 'विक्रमादित्य' ने रंगमंचपर बड़ी ख्याति पाई। इसी प्रकार आचार्य सीताराम चतुर्वेदीके पौराणिक नाटक 'शबरी' की तो इतनी धूम रही कि साहित्य समारोहों और विद्यालयोंके अनेक उत्सवोंपर वह अनेक बार अभिनीत किया जा चुका है। इस सफलताका कारण यह है कि आचार्य चतुर्वेदी स्वयं कुशल अभिनेता, नाट्य-शास्त्रके आचार्य और इतिहासके पण्डित हैं।

आजकलके अन्य नाटक अधिकांश सस्ती सामाजिक सस्याओंपर वह भी अधिकांश नारीके चारों ओर या राजनैतिक पुटके साथ प्रस्तुत किए गए हैं जिनमे गीत और स्वगत-भाषण समाप्त कर दिए गए। इन सभी नवीन नाटकोंपर योरोपीय और अमरीकी नाटककारों और विचारकोंका प्रभाव इतना अधिक पड़ा है कि वाद उभर आया है, नाटकीयता दब गई है।

वर्तमान एकांकी नाटक

वर्तमान युगमें एकांकी नाटकका बड़े वेगसे पर्याप्त विकास हुआ है क्योंकि इसमे बहुत थोड़े समयमें एक घटना भाव या विचार या परिणाम के आधारपर मानव जीवनके किसी पक्षकी एक झाँकी प्रस्तुत कर दी जाती है, जिसका उद्देश्य मनोरंजनके साथ-साथ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक समस्याओंका निरूपण, विश्लेषण और समाधान होता है। इन नाटकोंका प्रयोग विद्यालयोंके उत्सवोंपर अधिक होता है क्योंकि छात्रोंके कई मण्डल थोड़े पात्रोंको अल्प समयमें शिक्षित करके छोटा-सा एकांकी नाटक खेलकर अतिथियोंका मनोरंजन मात्र करते है। अतः ये सभी नाटक विनोदात्मक अधिक होते हैं। एक दूसरे प्रकारके गम्भीर नाटक वे हैं जो खेले नहीं जाते, छापे जाते हैं; अभिनीत नहीं किए जाते, पढ़ाए जाते हैं और फिर भी विचित्र बात यह है कि वे नाटक कहलाते हैं।

यदि एकांकीका अर्थ केवल एक अंकका नाटक हो तो उसका प्रारम्भ भारतमें बहुत पहले अर्थात् विक्रम शताब्दीसे पूर्व ही भासके समय हो गया था। नागरी (हिन्दी) में भारतेन्दुका 'भारत-जननी', 'धनंजय विजय' और 'पाखण्ड विडम्बन' के अनूदित एकांकी और 'प्रेम-योगिनी', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर-नगरी', 'विषस्य विषमौषधम्' को मौलिक एकांकी कह सकते हैं। भारतेन्दुके युगमें उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवास दास, किशोरीलाल गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी, देवकीनन्दन त्रिपाठी आदि लेखकोंने भारतेन्दु-शैलीके अनुसार एकांकी

नाटकोंको रचना की थी। किन्तु ये रचनाएँ उस प्रकार की नही थी जैसे आजकलके एकांको नाटक होते है। उपरूपकोंके अठारह भेदोंमेसे गोष्ठी, नाट्य-रासक, उल्लाप्य, कविरासक, प्रेखण, श्रीगदित, विलासित, हल्लीश और भाणका तथा रूपकोंमे व्यायोग, अंक और वीथी——सब एक ही अंकके होते थे। किन्तु इनका भी अनुकरण भारतेन्दु कालीन नाटककारोंने नहीं किया। अधिक-से-अधिक 'धनजय-विजय' को 'व्यायोग' कहा जा सकता है। प्रसादके 'एक घूंट' को भी कुछ लोगोंने वर्तमान शैलीका प्रथम व्यवस्थित एकांकी नाटक माना है किन्तु उसमे नाटकीयता ही नही है, उसे तो गद्य काव्य समझना चाहिए।

वर्तमान शैलीके हिन्दीके एकांकी नाटककारोंमें रामकुमार वर्मा, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पन्त, जैनेन्द्रकुमार, चतुरसेन शास्त्री, सद्गुरुशरण अवस्थी, रामनरेश त्रिपाठी, गोविन्ददास, लक्ष्मीदास, गणेश प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, भुवनेश्वर, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, देवेन्द्रनाथ शर्मा, भगवतीचरण शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, यशपाल, जैनेन्द्र और वृन्दावनलाल वर्माका नाम लिया जा सकता है, किन्तु इनमेसे बहुत कम लोग ऐसे है जिनके एकांकी रगमचपर खेले गए है या खेले जा मकने योग्य है। इन एकाकी नाटककारोंमे आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पन्त, जैनेन्द्रकुमार, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, सत्येन्द्र, सद्गुरुशरण अवस्थी और रामनरेश त्रिपाठीपर योरोपीय नाटककारो और लेखकोका कोई प्रभाव नही पड़ा। किन्तु भुवनेश्वरप्रसाद, गणेशप्रसाद द्विवेदी और धर्म प्रकाश आनन्द तो पूर्णत: कौशल और विचार दोनों दृष्टियोसे पाश्चात्य शैलीसे प्रभावित है।

रामकुमार वर्मा, गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर तथा भगवतीचरण वर्मा उन लोगोंमें है जिन्होंने पाश्चात्य कौशल लेकर भारतीय सामग्रीको एकांकी रूपकोंमे प्रस्तुत किया है।

अभिनेय नाटक

हिन्दी साहित्यमे अभिनेय नाटक लिखने और रंगमंच स्थापित करने, नाटकोंको खेल कर प्रकाशित करानेकी यदि व्यवस्थित योजना किसीने की तो वह अभिनव भरत (आचार्य सीताराम चतुर्वेदी) ने। उन्होंने काशीमे 'अभिनव रंगशाला' की स्थापना करके काशी, बम्बई, लखनऊ आदि स्थानोमे विभिन्न प्रकारकी शैलियोंके रंगमंचोंपर विभिन्न शैलीके नाटकोंकी रचना करके उनका अभिनय कराया। उनके नाटकोंमे ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनैतिक, सामाजिक, नृत्य-नाट्य, गीति-नाट्य आदि सभी प्रकारके नाटक है जो अत्यन्त सफलतापूर्वक भारतके प्रसिद्ध नगरोंमे अभिनीत किये जा चुके है जिनमें स्वत: लेखकने या तो भूमिकाएँ ग्रहण कीं या शिक्षण किया है।

यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि नाटक दृश्य काव्य है। वह खेले जानेके लिए लिखा जाता है पढ़े या पढ़ाए जानेके लिए नहीं। उसका कौशल इसी बातमे है कि दर्शकोंके सर्वसामान्य भावोंका परिष्कार और उदात्तीकरण उसके द्वारा हो। जो नाटक किसी भी वादके आधारपर लिखा जाएगा वह चाहे जितने अच्छे कौशलके साथ क्यों न प्रस्तुत किया जाय, वह कभी सामाजिकोंका भाव-परिष्कार नहीं कर सकता। इसलिए उसका होना या न होना बराबर है चाहे उसमे जितनी भी साहित्यिकता क्यों न लाकर भर
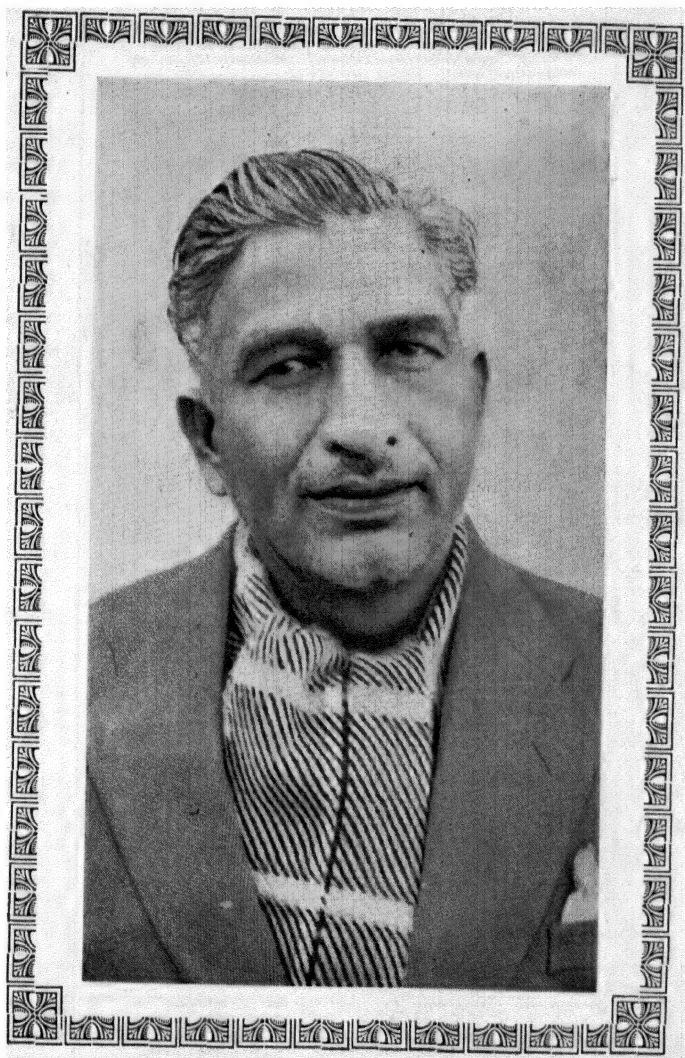
रामकुमार वर्मा

दी गई हो। हिन्दीमें उचित रंगमंच न होनेके कारण और अधिकांश नाटक लिखनेवालोंका रगमंच कौशलसे अनभिज्ञ होनेके कारण हिन्दीमें पाठ्य नाटक अधिक लिखे गए, अभिनेय कम; क्योंकि अधिकांश नाटककार अपने नाटक रगमंचके लिए न लिखकर पाठ्यक्रमके लिए लिखते है, इसीलिए वे नाटक नहीं हो पाते। यदि किसी एक व्यक्तिको अभिनेय नाटक लिखनेका श्रेय दिया जा सकता है वह केवल अभिनव भरतको।

रेडियो नाटक

रेडियोके लिए आजकल श्रव्य-नाटक (ध्वनिरूपक, ध्वनिनाटक या ध्वनि एकांकी) भी लिखे जा सकते है जो एकांकी भी होते है और अनेकांकी भी। जहाँतक अनेकांकियोंकी बात है, उनके बीच-बीचमे कथा जोड़नेवाला कथन देकर उसे ऐसा मिला देते है कि वह आदिसे अन्त तक एक प्रतीत होता है। इसलिए उसे कुछ लोग एकाकी ही कहने लग गए हैं। ये श्रव्य नाटक कुछ कल्पनाशील (फॅन्टेसी), कुछ सीधे श्रव्य नाटक, कुछ वास्तविक घटना-प्रधान नाटक (रेडियो फीचर, जो किसी वास्तविक घटनाका नाटकीय प्रदर्शन होता है।) गीति-रूपक, एकांकी कथन, (मोनोलोग) और रेडियो रूपान्तर आदि अनेक रूपोमे मिलते है। रेडियोके लिए नाटक लिखनेवालोमे अभिनव भरत (सीताराम चतुर्वेदी), रेवतीरमण शर्मा, सिद्धनाथ कुमार, रामचन्द्र तिवारी, बालकराम नागर, अज्ञेय, उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जगदीश-चन्द्र माथुर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, भगवतीचरण वर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, रामचरण शर्मा, राजा-राम शास्त्री, जगदीशचन्द्र खन्ना, देवराज दिनेश, अनिलकुमार, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिजाकुमार माथुर, और भृग तुपकरी उल्लेखनीय है।

गीति नाट्य

गीति नाट्य भी नाटक होते है जिनमे गीतोंके द्वारा नाट्य प्रदर्शित किया जाता है। ऐसे नाटकोंमे उदयशकर भट्टके 'मत्स्यगधा', 'विश्वामित्र', 'राधा', 'कालिदास', 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अशोक', 'वन-वन्दिनी', तथा अभिनव-भरतके 'सिद्धार्थ' और 'मदन दहन' प्रसिद्ध हैं।

प्रतीकवादी नाटक

प्रतीकवादी नाटकोंमे रूपकों या प्रतीकोंके सहारे कोई भी नाट्य कथा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दो अर्थोमे प्रस्तुत की जाती है जिसके लिए कवि भावात्मक प्रतीकोंकी योजना करता है। इस प्रकारकी रचनाओंमे संस्कृतमे कृष्ण मित्रका 'प्रबोध चन्द्रोदय', यशपालका 'मोहराज-पराजय' (तेरहवी शताब्दी), वेंकट नाथका 'संकल्प सूर्योदय' (चौदहवी शताब्दी), कवि कर्णपूरका 'चैतन्य चन्द्रोदय' (सोलहवीं शताब्दी), 'विद्या परिचय' (सत्रहवीं शताब्दी) और 'जीवानन्द' (अठारहवी शताब्दी) प्रसिद्ध है। इनमे नाटकीयता कम होती है, केवल किसी दार्शनिक या साम्प्रदायिक सिद्धान्तका प्रतिपादन मुख्य होता है। योरोपमें ईसाई धर्मख्यान (क्रिश्चियन पैरेबिल) के रूपमे ऐसे अध्यवसान (ऐलेगरी) बहुत मिलती है। इसके पश्चात् इसी अध्य-वसानके रूपमे वहाँ नैतिक नाटक (मोरेलिटी प्लेज) तथा रहस्य नाटक (मिस्ट्री प्लेज) आदि प्रतीका-त्मक रचनाएँ की गई। तेरहवीं शताब्दीमे फ्रांसमें रोमा दला रोज और अँग्रेजीमे स्पेंसरका 'दि फेयरी

क्वीन' तथा जोन बनियनका 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' इसी प्रकारकी अध्यावसानात्मक प्रसिद्ध रचनाएँ है। इसके पश्चात् आधुनिक युगमें तो इब्सन, यीट्स, मैटरलिंक, हाउप्टमान, स्ट्रिडबर्ग, रोसटेंड तथा सन्डरमैनने इसी प्रकारके प्रतीकात्मक नाटकोंकी रचना की है, जिनमें मैटरलिंक अधिक प्रसिद्ध हैं। हाउप्टमान और सन्डरमैनने स्वप्न रूपक लिखे हैं जिनमें किसी प्रकारके नैतिक निर्देशके लिए स्वप्नका आश्रय लिया जाता है। किन्तु इस प्रकारके अध्यवसित रूपकोंका सम्मान नही हुआ और वे अत्यन्त शीघ्र समाप्त हो गए।

हिन्दीमें सर्व प्रथम देव कविने 'देव-माया' प्रपञ्च और केशवने 'विज्ञान गीता' की रचना की थी किन्तु ये दोनों रचनाएँ भी अन्य तत्सम रचनाओंके समान अत्यन्त शिथिल हैं। प्रतीकात्मक मौलिक नाटकोंमें प्रसादका 'कामना' और 'एक घूंट', भगवतीप्रसाद बाजपेयीका 'छलना', गोविन्ददासका 'निवास', पन्तका 'ज्योत्स्ना', सियारामशरण गुप्तका 'उन्मुक्त' और शम्भूनाथ सिंहका 'धरती और आकाश' उल्लेखनीय हैं। किन्तु अभिनयकी दृष्टिसे इनमेंसे किसीका भी कोई महत्त्व नहीं है। कुछ नाटककारोंने अपने नाटकोंमे प्रतीकोंका प्रयोग भी किया है; जैसे अश्कने 'अलग-अलग रास्ते' तथा 'कैद और उड़ान' में, लक्ष्मीनारायण लालने 'अन्धा कुआँ' और 'तीन आँखोंवाली मछली' में, किन्तु इन्हें रूपककी कोटिमें नहीं रखा जा सकता।

नागरी (हिन्दी) में यद्यपि इतने अधिक प्रकारके नाटक लिखे गए और इतनी अधिक संख्याओंमे भी लिखे गए, किन्तु रंगमंच न होनेके कारण उनकी नाटकीयताका ठीकसे परीक्षण नही किया जा सका। इन सब नाटकोंमें केवल उन्हीं नाटकों और नाटककारोंने प्रसिद्धि पाई जिनके तथाकथित नाटक विभिन्न परीक्षाओंके पाठ्यक्रमोंमें सम्मिलित कर लिए गए। विचित्र बात यह है कि नाट्य समीक्षकोंने भी उनकी समीक्षा करते हुए उनकी नाटकीयताका परीक्षण न करके ऊपर-ऊपरसे कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा सम्वाद-की साहित्यिकताका ध्यान करके परीक्षार्थियोंकी दृष्टिसे उनकी आलोचना की। यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर अच्छे नाटकोंके प्रकाशनके लिए घातक, है, वहाँ स्वस्थ आलोचनाके लिए भी हानिकर है।

नाट्य समीक्षा

अभी तक नाटकीय समीक्षा या तो नाट्य-रचना और नाट्य-प्रयोगके सिद्धान्तोंके प्रतिपादन तक ही परिमित रही या नाटकों और उनके प्रयोगोंपर किन्हीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आदर्शोंके अनुसार व्यक्तिगत निर्णयों-के रूपमें थी। योरोपमे त्रासद (ट्रेजेडी) के सिद्धान्तोंका सर्व प्राचीन व्यवस्थित विश्लेषण अरस्तूके काव्य-शास्त्र (पेरि पोइतिखोस) में मिलता है। अरिस्ता फ़ेनसने अपने मेंढक (फ्रौग्स) में व्यंग्य-परिवृत्ति (पैरीडी) के रूपमें कुछ चलती-सी आलोचना की है। रोममे भी महाकाव्य (ईपिक) और त्रासदके रूपोंकी कवितापर विचार हुआ। सर्वप्रथम हौरसने अपने 'आर्स पौएतिका' मे नाटकका पूर्ण सैद्धान्तिक विवेचन दिया है। सिसरो, क्विन्तीलियन और आउलस गोलियसकी रचनाओंमें भी नाटक और नाटककारों-के सम्बन्धमें कुछ विवेचन मिलते हैं। प्रारम्भिक ईसाई आलोचकोंने भी स्वभावतः नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे नाट्यालोचन किया। ह्रासोन्मुख नाट्यशालाओंकी बढ़ती हुई विलास-प्रियता और स्वच्छन्दताका उन लोगोंने विरोध भी किया। पुनर्जागरण कालमें जब अरस्तूका काव्यशास्त्र मिल गया, तबसे समीक्ष्य-वादियोंने भाव-रेचन (कथार्सिस), सत्यतुत्यता था सम्भवता (वैरीसिमिति टयूड), तीनों एकत्त्व (एक

स्थान, एक समय और एक व्यापारका होना) की समस्याओंपर तथा अरस्तूके सिद्धान्तके साथ ही रसके विचारोंका सामञ्जस्य करने और उदात्तवादी नियमोंके साथ नये प्रयोगकी संगति बैठानेको ही कई शताब्दियों तक नाट्यालोचनका आधार बनाए रखा। सेण्ट-एवेरमोण्डने अरस्तूके करुणा और भयके रेचनके विरुद्ध 'भली भाँति अभिव्यक्त आत्मा की महत्ता' को अधिक महत्त्व दिया।

इन मौलिक सिद्धान्तोंके साथ-साथ फ्रान्समें रंगशालाकी दृष्टिसे नाटकपर विचार होने लगा। मौलिएने 'आनन्द देना' ही नाटकका सबसे बड़ा नियम माना, प्रहसनमें समाजकी आलोचनाको ही ठीक समझा और शेक्सपियरकी इस नाटकीय समीक्षामें अधिकांश नाटककारों, अभिनेताओं तथा रंगशालासे सम्बद्ध अन्य कार्य-कर्ताओंका ही हाथ रहा। इंग्लैंडमें रैस्टोरेशन-कालमें फौक्स कौर्नमें नाटकीय समीक्षकोंका एक दल ही उठ खड़ा हुआ। किन्तु अठारहवीं शताब्दिमें पत्रोंमेंकी हुई आलोचना ही मुख्य रूपसे प्रभावशाली हुई यहाँ तककी कुछ पत्रोंने तो नाटकीय समीक्षाकी प्रणाली ही स्थिर कर दी।

नवोदात्तवादियोंके नियमोंके विरुद्ध जर्मनीमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ—जहाँ शेक्सपियर ही नाटकीय पूर्णता और स्वतन्त्रताका प्रतीक मान लिया गया था। लैसिंगने नए राष्ट्रीय थिएटरकी जो समीक्षा (हाम्बुर्गिशे ड्रामाटुर्गी : १७६७ से ६९ तक) लिखी, उसे ही योरोपमें वर्तमान नाटकीय समीक्षाका प्रारम्भ समझना चाहिए। हेगेलने अपने इस सिद्धान्तके अनुसार कि 'विरोध ही सब वस्तुओंको गति प्रदान करता है', त्रासदीय संघर्षको नाटकीय व्यापारकी प्रेरणाशक्ति माना है। इसके कारण अरस्तूके व्यापार-सिद्धान्तको फिर नाटकमें प्रधानता मिल गई और श्लेगेल तथा कौलरिज—दोनोंने इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया, गुस्टाव फ्रेटागने इसे पल्लवित किया और ब्रनेतिएने अपने संकल्प (वोलिशन) के सिद्धान्तके साथ संघर्षका सिद्धान्त मिलाकर इसे त्रासदसे आगे ले जाकर सब प्रकारके नाटकोंपर आरोपित कर दिया। विलियम आर्चरने इसमें द्वन्द्व (कौन्फ्लिक्ट) को छोड़कर विषमावसर (क्राइसिस) को अधिक महत्त्व दिया। हेगेलके इन विचार-विस्तारोंका परिणाम यह हुआ कि इब्सन आदि पीछेके नाटककारोंने इनके सहारे नये नाट्य-कौशलोंका आविष्कार किया,यहाँ तक कि बर्नार्ड शॉने तो अपने नाटकोंमें भी इस प्रकारके विचार-सिद्धान्तकी व्याख्याको प्रमुख स्थान दिया है। इस प्रकार हेगेलने सामाजिक नाटक और सामाजिक भावनाओं द्वारा प्रेरित समीक्षाको जन्म दिया।

स्वैरवाद फिर भी चलता ही रहा। आलोचनाके क्षेत्रपर ए. डब्लू. श्लेगेलका 'अन्तर्वादकी श्रेष्ठता' का सिद्धान्त तथा अन्तः प्रेरणा (इन्टयूशन), इन्द्रियोंके प्रभाव, ससीमका असीमके रूपमें रहस्यात्मक परिवर्तन आदि भाव ही व्यापक रूपसे छाये हुए थे। उसका मत था कि वास्तविक संसारसे जो अनेक व्यक्ति प्रकार (टाइप्स) या प्रतीक लिए जाते हैं, वे कविकी निजी अन्तः प्रेरणाओं (इन्टयूशन) को उस स्पष्ट सीमामें पहुँचा देती है जिसे कला कहते हैं और जो प्रकृतिकी नग्न प्रतिकृति होती है। कवि की ये अन्तः प्रेरणाएँ अत्यन्त महान रहस्यात्मक और दार्शनिक होती हैं और यही कारण है कि उनके सहारे वास्तविक संसारके प्रतीक कला-रूपमें परिणत हो जाते हैं। ये सिद्धान्त स्वैरवादी नाटक-सिद्धान्तसे इतना मेल खाते थे कि एक ओर मैटर्लिंक, यीट्स, सोलोगुब और आन्द्रयेव जैसे नव-स्वैरवादी नाटककारोंके लिए नया क्षेत्र खड़ा हो गया और दूसरी ओर स्ट्रिंण्डबर्ग तथा गैओर्ग कैसरके अभिव्यंजनावादके लिए भी नया क्षेत्र खुल गया।

कौलरिजने भी इसी मतका समर्थन किया। वर्त्तमान समीक्ष्यवादी एलार्डिस निकल, जौर्ज जीन नैथन, स्टार्क यग, जोसेफ वुडक्रचने तथ्यवाद तथा सामाजिक नाटकोंका विचार करते हुए इसीका प्रयोग किया है है। ह्यूगोने फ्रान्सीसी नाटकके नवोदात्तवादी रूपवादको यह कहकर ललकार दिया कि संसारमें किसी बातके लिए नियम और आदर्श नही हुआ करता। उसने नाटकको 'पृथ्वीकी वस्तु' (स्वाभाविक) बनानेका प्रयत्न किया। उसने लिखा है कि 'हमें उदात्त और हास्यास्पद दोनों प्रकारोंका वैसा ही सुन्दर समन्वय करना चाहिए, जैसा हम जीवन और सृष्टिमें पाते है। दूसरा व्यक्ति या जर्मन नाटककार फ्रीडरिक हैवेल, जिसने स्वैरवादी नाटककारोंपर टिप्पणी करते हुए प्रारम्भिक तथ्यवादका समर्थन किया। इंग्लैडमे विलियम हैजलिट्ने 'मौर्निंग क्रौनिकल' पत्रमें केवल प्रकाशित नाटकोंकी आलोचना करनेके बदले खेले हुए नाटकोंकी आलोचना प्रारम्भ की जो स्वस्थ प्रथा आज तक भी वहाँ पत्रोंमे चली आती है।

धीरे-धीरे सामाजिक नाटक और तथ्यवादके पक्षमें समीक्षा बल पकड़ने लगी। समाधानयुक्त-नाटक (थीसि प्ले) का पक्ष ग्रहण करके 'एलेग्जान्देर दयूमाके पुत्रने फ्रान्सीसी आलोचक सारसेको एक खुली चिठ्ठी लिखी, जिसमे उसने कहा कि व्यक्तिगत और सामूहिक सुधारके लिए उपादेय नाटक ही अत्यन्त आवश्यक साधन हैं। उसकी इस प्रेरणापर औगिए और इब्सनने नाटक लिखे और स्वयं उसने भी अपने उपदेशात्मक नाटकोंमे अपना पक्ष स्थापित किया। परिणाम यह हुआ कि प्रसिद्ध व्यवसायी फ्रान्सीसी आलोचक फार्सिक सारखेका मुँह ही बन्द हो गया जो सुरचित, सघर्षपूर्ण सुचारु नाटकोंका विशेषतः स्क्राइबे और सारदूके नाटकोंका समर्थक था। दर्शकोंको सन्तुष्ट करनेवाले नाट्य कौशलके फेरमें सारसेने अपना सीन आफेयर (वह दृश्य जिसमे जनता ऊब न जाय जनताको प्रसन्न करनेवाला वह, जिसमें जनताकी रुचिका ध्यान हो।) का सिद्धान्त निकाला। विलियम आर्चरने इसका अनुवाद करके इसका नाम रखा था' औपचारिक दृश्य (औब्लीगेटरी सीन)। सन् १८७३ में एमील जोलाने फ्रान्समें नाटकीय स्वाभाविकता या प्रकृतिवादका प्रदर्शन किया। व्यवसायी आलोचक जीन जूलियनने उसका समर्थन करते हुए कहा कि वास्तविक जीवन, मनोवैज्ञानिक विवेचन, विस्तृत सूक्ष्म विश्लेषण तथा मनुष्यकी पाशविक प्रवृत्तियोके प्रदर्शनसे युक्त स्वाभाविक नाट्य-कौशलसे नाटक रचे जाने चाहिए---जो सुरचित नाटककी जटिलताओं और रचना-कौशलोंसे मुक्त है। अपनी नाट्यशालामे असफल हो जानेपर नाट्य प्रयोक्ता आन्त्वाँ भी समीक्षक बन बैठा, किन्तु उसने अपने अतिशय प्रकृतिवादको थोडा शिथिल कर दिया। जर्मनीमे जिम विद्वत्तापूर्ण और स्वैरवादी प्रवृत्तिका प्रतिनिधित्व गुस्टाव फ्रेटाग कर रहा था, उसके विरुद्ध डर्च नामकी साहित्यिक गोष्ठीने बर्लिन और म्युनिखमे केवल आलोचना ही नही की वरन रंगमंचपर स्वयं व्यावहारिक प्रयोग करके दिखलाए। इनमेसे ब्राह्मने पहला प्रकृतिवादी रगमंच जर्मनीमें स्थापित किया, जिसमें उसने अभिनय, नाट्य-निर्देश और नाटकपर अपने आलोचना-सिद्धान्तोंका प्रयोग किया। स्कैन्डीनेवियामें इब्सन, स्ट्रिण्डबर्ग और ब्योर्नसनने नाटकीय समीक्षा प्रारम्भ की, जिन्हें तत्कालीन प्रसिद्ध उदार समीक्षावादी गेओर्ग ब्रान्डिसका प्रबल समर्थन मिला हुआ था। रूसमें भी उदार समीक्षकोंने प्रकृतिवादका ही समर्थन किया, जिसका प्रवर्त्तन और जिसकी अभिव्यक्ति मॉस्को आर्ट थिएटरके संस्थापक स्तानिसलवस्की और दान्तशेन्के द्वारा हुई, जिन्होंने अभिनय, दृश्य-विधान और नाट्य-निर्देशपर भी विशेष ध्यान दिया और नाटककी तथ्यवादी आलोचना भी लिखी।

अमरीकामें यह तथ्यवाद बहुत धीरे और बहुत पीछे आया, जहाँ हैनरी जेम्स और विलियम डीन हौवेल्सने थोड़ा-थोड़ा समर्थन किया, किन्तु विलियम विन्टरने उसकी कसकर भर्त्सना की। वह विक्टोरिया-युगका नीतिवादी था इसलिए उसने इब्सनका बड़ा विरोध किया। दूसरी ओर ब्रान्डेर मैथ्यूज और क्लेटन हैमिल्टन केवल विचारोंके बदले नाटकीय प्रभावकी ओर अधिक सरुच थे। बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशकोंमें जौर्ज जीन नैतन् और लुडविग ल्युइसोन्हने उम स्वाभाविकतावादका स्वागत किया जो हाउप्टमान ओनीलके प्रारम्भिक नाटकोंमें प्रकट हुआ था। इग्लैंडमें इब्सनका प्रबल समर्थन बर्नार्ड शॉने किया जिसने स्वैरवादको बड़ी खरी-खोटी सुनाई। उसने मिथ्या प्रशसकों (वार्डोलेटर्स) को कोसते हुए कहा कि शेक्स-पियरके नाटकोंको रंगशालामें काम करनेवालेकी दृष्टिसे जाँचना चाहिए। वह 'कालार्थ कला' का भी पोषक था अर्थात् वह सामाजिक दृष्टिसे सगत और प्रभावशाली नाटकका पक्षपाती था। उसने विभिन्न पत्रोंमें जो नाट्य-समीक्षाएँ लिखी, उन्होंने नाटकीय समीक्षाके क्षेत्रमें नया मानदण्ड ही स्थापित कर दिया। विलियम आर्चर, जे. टी. ग्रीन, नाट्यकार सर आर्थर विंग पिनरो और हेनरी आर्थर जोन्सने अत्यन्त समीक्ष्यवादी शक्तिसे तथ्यवादको प्रदीप्त किया। ये लोग बर्नार्ड शॉकी अपेक्षा अधिक उदार थे। इसलिए इनका प्रभाव भी शॉकी अपेक्षा अधिक रहा। ए. बी. वाक्ले, क्लीमेंट स्कॉट और मैक्स बीरबोह्मने अपनी शिष्ट तथा तर्कपूर्ण शब्दावलीसे नाटकोंकी समीक्षा प्रारम्भ की। यही प्रभाववादिताके साथ उदार मानदण्ड स्थापित करनेकी प्रवृत्ति ही आजकल इग्लैंडमें प्रचलित समीक्षा-पद्धति है। यद्यपि ब्रिटेनकी समीक्षा-पद्धतिमें उदारवादिता है, किन्तु शॉका प्रशंसक होते हुए भी नाटककार समीक्षक सेन्ट जौन इरविन क्रान्तिकारी नाटक तथा सिद्धान्त दोनोंका विरोधी है। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम दशकमें प्रकृतिवादकी अतिरेकताओं और बन्धनोंके विद्रोह स्वरूप तथा वर्तमान नाटकोंमें बहुत कुछ अति साधारण अनगढ़ शैलीकी भरतीने एक नवस्वैरवादी या प्रतीकात्मक समीक्षाको जन्म दिया। इस सिद्धान्तका कुछ तो रिचार्ड वैगनरको नाट्य-सिद्धान्तसे समर्थन मिला और कुछ फ्रान्सकी प्रतीकात्मक कवितासे। उसके सर्वश्रेष्ठ प्रवर्त्तक कुछ तो मैटरलिक जैसे नाटककार थे जिन्होंने सिथर, तथा गम्भीर नाटकोंका आदर्श स्थापित किया और कुछ यीट्स-जैसे लोग थे जिन्होंने रंगमंचमें कविता लानेका प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त, सिन्जे, एशेले, ड्यूक्स सोलोगुब, एवरीवो आदि तथा विधायक गोर्डन क्रेग, अडोल्फी, अप्पिया-जैसे व्यक्ति थे, जिन्होंने कला रंगशाला आन्दोलन (आर्ट थिएटर मूवमेंट) को अनुप्राणित किया। अलार्डिस निकल अभीतक भी आध्यात्मिक और काव्यात्मक नाटकके पक्षपाती हैं। इटलीमें पिरान्देलो, चियारेली और सान सेकन्दो-जैसे लोग अलंकृत शैलीके समर्थक हैं। जर्मन अभिव्यंजनावादके समर्थक भी इसी प्रकृतिवादविरोधी दलमें गिने जा सकते हैं।

तथ्यवादियों और तथ्यवाद-विरोधियोंका विभिन्न पक्ष स्पष्ट करते हुए एलेक्जेंडर वाक्सीने रंग-शालाके दो भेद माने हैं—१. प्रतिनिधित्व पूर्ण (रिप्रेजेन्टेशनल) अर्थात् अधिक यथार्थतापूर्ण तथा भ्रान्तिपूर्ण। २. आदर्श (प्रेजेन्टेशनल) अर्थात् वास्तविकतायुक्त, अभ्रान्तियुक्त, विशिष्ट शैलीयुक्त तथा नियम-सिद्ध। आजके समीक्षक लोग नाटककी भावना और उद्देश्यके अनुसार दोनों शैलियोंको ठीक समझते हैं। कम-से-कम अमरीकी समीक्षामें, तो यह बात ठीक ही है; जहाँ उदारतावादी और प्रभाववादी समीक्षकों की ही प्रधानता है। इन लोगोंकी समीक्षा-पद्धतिके विरोधमें सन् १९३० में एक

वामपक्षीय समीक्षा-पद्धति चली जिसके आचार्य थे अनिता ब्लौक, जौन हौवर्ड, लासन, इलियानीर फ्लेक्सनोर। जौन गैसनरने मध्यम मार्ग ग्रहण किया जिसने राजनैतिक परोक्षणका विरोध करके रंग-कौशल तथा सार्वजनिक भौमताको आवश्यक बताया और साथ ही यह भी स्वीकार किया कि रंगशालाको सामाजिक बना देना चाहिए। सोवियत रूसकी नाटकीय समीक्षा शुद्ध रूपसे मार्क्सवादी है, यद्यपि अपने लेखों और छोटे भाषणोंमे मैक्सिम गोर्कीने नाटकको मानवित करनेकी भी प्रेरणा दी है। नात्सीवाद प्रारम्भ होनेसे ठीक पहले जर्मनीमे 'आलफ्रेड कर' के लेखोंमें सुन्दर बौद्धिक उदारतावाद मिलता है और जुलियस वाव तथा कुर्ट पिन्थसके लेखोंमे सामाजिक लोकतन्त्रात्मक समीक्षा प्राप्त होती है।

वर्त्तमान नाटकीय समीक्षाकी मुख्य प्रवृत्ति यह है कि रंगशालाका इस दृष्टिसे गम्भीर परीक्षण किया जाय कि उसमे अनेक कलाओंका नियोजन किस प्रकार किया गया है, अनेक शैलियोको ग्रहण करके उन सम्भावनाओंकी खोज करनी चाहिए जिनसे कि हम रगशालाको अपने समयके जीवनके लिए उपयुक्त और संगत बना सकें। किन्तु हिन्दीमे इस प्रकारकी समीक्षाका श्रीगणेश भी नही हुआ। आजकल समाचार-पत्र और रेडियोवालोंका बोलबाला है। इसलिये ये लोग जैसा चाहें वैसा नाटकको बना-बिगाड़ सकते है यद्यपि कई देशोंमे यह प्रयत्न किया गया है कि इन लोगोंपर थोड़ा अंकुश रहे। रूसमे यह नीति बना ली गई है कि किसी नाटककी समीक्षा तबतक नही छापी जाती तबतक वह थोड़े दिन चल न ले। इसके अतिरिक्त नाटक प्रारम्भ करनेसे पहले ऐसे समालोचकोंको बुलाकर उनसे परामर्श भी कर लिया जाता है कि हमारे यहाँ तो नाटककी समीक्षा छपनेसे पहले हो जाती है और खेले जानेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

नाटककी अभिनव भावना

देनिस दिद्रो (१७१३ से १७८४) नामक फ्रान्सके प्रसिद्ध नाटककार, दार्शनिक और सम्पादकने एक नये प्रकारकी अभिनेय रचना 'द्रामे' का प्रवर्तन किया। उसका कहना था कि इस नाटकका उद्देश्य शिक्षा देना, गुणोंके प्रति प्रेम और सद्गुणोंके प्रति घृणा उत्पन्न करना है। वह चाहता था कि नाटकका प्रयोजन सामाजिक और दार्शनिक विवेचन करना हो, वह दार्शनिक प्रचारका साधन बने, विश्वविद्या-प्रसारकोंके भावोंको प्रचारित करनेका साधन बने और इस प्रकार स्वाभाविकता और विवेकके आधारपर नया समाज स्थापित करनेमे सहायक हो। इसोलिये उसने अपने नाटकोंमें व्यक्तियोंको चित्रित करनेके बदले जीविका-वृत्तियों (प्रोफेशन) को स्थान देना प्रारम्भ किया। उसका कहना है कि नाटककारको साधारण व्यक्तिगत मनुष्यकी अपेक्षा सामाजिक मनुष्यको अधिक ध्यानमें रखना चाहिए और जैसे फ्रान्सीसी त्रासदोंमें चरित्रके प्रकार (टाइप्स ऑफ कैरेक्टर्स) चित्रित किए जाते है वैसे ही व्यवसायके प्रकार (टाइप्स ऑफ प्रोफेशन्स) को चित्रित करना चाहिए। वह चाहता था कि भावों और आवेगोंकी सीधी अभिव्यक्ति हो अर्थात् आवेगात्मक सम्वादोंका स्वाभाविक अक्खड़पन और उजड्डपन ज्यों-का-त्यों रखा जाय, लम्बे सवाद छोटे कर दिये जायँ, अधिक अभिव्यजक भाव, सामूहिक अभिनय और स्थिर दृश्य (टेबलो) या मूकाभिनय (पेन्टोमीम) के समान पात्रोंके समूहको चित्रमय रूपमें अुपस्थित करनेकी अधिक योजना हो। दिद्रोने दृश्य-विधान रंग निर्देश, दृश्य-सज्जा और अभिनयके सम्बन्धमें जो विस्तारसे विचार किए उनके कारण नाटककी भावना ही बदल गई। उसने बताया कि नाटक पढ़नेकी वस्तु नहीं है, रंगमंचपर खेलनेकी है। अभीतक हिन्दीके

साहित्यकारों, समीक्षकों, विद्यालयोंके प्राध्यापकोंने नाटकके इस महत्वपूर्ण पक्षका कोई ध्यान नहीं रखा।

अभिनीत नाटककी समीक्षा

किसी नाटकका प्रयोग करना और उस नाटकका पढ़ना दो अलग वस्तुए है। जब हम किसी प्रयोग हुए नाटकपर विचार करते है तब हम उस विशेष कार्यकी समीक्षा करते है जिसमे नाट्य-निर्देश, अभिनय, दृश्य-विधान, वेषभूषा, रंग-प्रदीपन तथा नाटकके अन्य तत्त्व मिलकर एक सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करते है। विलियम आर्चरने गम्भीर नाटककी समीक्षाके लिये सिद्धान्त बताया है कि नाटकके समीक्षक को तीन प्रश्नोंका उत्तर देना चाहिए।

१---क्या उस नाटकने रूढ़ि-परिवर्तन अथवा भद्दे अनुकरण या प्रतिरूप अपस्थित किए है। २---क्या कथा इस प्रकार विकसित हुई और चरित्र इस प्रकार उपस्थित किए गए है कि वे रंगमंचके पूरे साधनोंका श्रेष्ठतम उपयोग करके जनतामे अत्यन्त प्रभावशाली रूपमे रुचि, आकस्मिक और प्रत्यक्ष अनुभूतिके ऐसे भावोंको उत्पन्न कर सके है जो नाटक-द्वारा अवश्य उत्पन्न होने ही चाहिए। ३---ऐसा तो नही है कि नाटकमे कहा कुछ जा रहा हो और अर्थ कुछ और हो। जो कुछ कहा जा रहा है क्या वह आचार और विचारकी दृष्टिसे व्यावहारिक है। ४---नाटकमें विनोद-मात्र ही है या उसमे हमें कुछ अनुभव भी हुआ है। अर्थात् हमे यह देखना चाहिए कि उस नाटकको देखकर हमारे ज्ञान और सदाचारमे कुछ वृद्धि हुई या नही।

कुछ लोगोंका कहना है कि कुछ नाटक तो विशेष रूपसे मनोविनोदके साथ ज्ञान तथा सदाचार भी प्रदान करते है और कुछ ऐसे है जिससे केवल मनोविनोद ही होता है। इन सबके अलग-अलग स्तर या परिधि होती है। इस प्रकार प्रत्येक नाटकको उसकी विशेषता के साथ समझना और परखना चाहिए।

नाटकीय आलोचक

अत्यन्त अनुभवी और नाट्य-शास्त्रके सब अंगोके पण्डित लुई जूएने बताया है कि साहित्यिक और नाटकीय आलोचनामें बड़ा अन्तर है। हमारे साहित्यिक आलोचकोके लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। लुई जूएके अनुसार नाटककी आलोचनाका सम्बन्ध सजीव वस्तुसे है। वह ऐसा सावयव पदार्थ है जो प्रयोग या अभिनयके समय ही अपने पूर्ण श्रेष्ठत्वके साथ प्रस्तुत होता है। उसका सम्बन्ध केवल एक कलासे नही वरन् अनेक कलाओंसे है जिनमे सगीत, गीत, दृश्य-कलाएँ (चित्रकला आदि) नृत्य और अभिनय सभी आ जातीं है। लिखा हुआ नाटक तो नाट्यके जटिल स्वरूपका एक छोटा-सा अग है और वही ऐसी सामग्री है जिसकी साहित्यिक समीक्षा हो सकती है। वह तो महत्वका एक भाग मात्र अर्थात नाटकका ढाँचा ही होता है, वह पूर्ण नाट्य नहीं होता। इसलिए वास्तविक नाट्य-समीक्षकको अभिनयका समीक्षक या नाट्य-शालाका समीक्षक होना चाहिए क्योंकि उसकी समीक्षाकी श्रेष्ठता इसीमे है कि वह श्रेष्ठ नाट्य प्रयोगको समझे और उसका गुण परखे। उसमें रंगमंच वृत्ति (थिएट्रिकल सेन्स) की भावना वैसी ही होनी चाहिए जैसे मूर्तिकार-में रूपकी, चित्रकारमें रगकी और संगीतकारमे श्रुतिकी; क्योंकि जबतक उसमें यह भावना न होगी तबतक न तो वह नाटकको ठीक परख सकता न इस जटिल कलाके ठीक रूपकी समीक्षा कर सकता। उसका काम

दुहरा हो जाता है। उसे जानना चाहिए कि १—क्या श्रेष्ठ है या उसमें क्या गुण है ? वह केवल इसलिये नहीं कि वह उसे अच्छा लगता वरन् इसलिये कि उसके मस्तिष्क, उसके अनुभव और उसकी शिक्षाने उसे इस योग्य बना दिया है कि वह निर्णय कर सके कि इसमे जितने कलाकारोंका समन्वय हुआ है उनके उद्देश्य क्या हैं तथा कितनी पूर्णता और सहयोगिताके साथ उन्होंने अपना उद्देश्य सिद्ध किया। २—यह बात कहाँतक कलाके उद्देश्योंको पूर्ण करती है ? क्या यह कलाकी सीमाओंका विस्तार करती हैं ? उसकी परिधिको बढ़ाती है ? और अनुभव तथा प्रयोगके लिए नये मार्ग खोलती है। ३—जो नाटक प्रस्तुत किया गया है उसमे कौन-सा तत्व ऐसा है जिसका उद्देश्य अत्यन्त सुखकर रूपसे सिद्ध हुआ है। लिखे हुए नाटकसे निकाल देने योग्य वे कौन-कौनसे गुण है जो शिक्षा ठीक न दी जानेके कारण या भद्दे अभिनयके दुर्गणोंसे दब गए हैं। ४—किसी मौलिक कलाकारने किसी चलते दृश्यको किस प्रकार शक्ति और अर्थ प्रदान किया है ? यह सब करनेके लिये उसे स्पष्टत: रंगमंचके रूपके साधारणसे अनुभवके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ जानना चाहिए। १—उसे रंगमंचकी पृष्ठभूमिका अर्थात् उन सभी धाराओंका ज्ञान होना चाहिए जिन्होंने विभिन्न युगोंकी करोड़ों भावनाओं, आचार-विचारों, अभ्यासों, रूढ़ियों, विश्वासों और स्वप्नोंको बहाकर आजके रंगमंच तक ला पहुँचाया। २—उसे रंगमंचकी प्रयोग समस्याओंका भी परिज्ञान होना चाहिए कि उसमें कितना श्रम लगता है ? उसके श्रमिकोंकी क्या समस्याएँ है ? रग-मंच कैसे बनता है ? कितने भागोंमे उसका कार्य होता है ? नाटकका, चुनाव, अभिनेताओंका चुनाव, उनकी शिक्षा, रंगमंचका निर्णय, वेशभूषा, मुखराग, रंगप्रदीपन, प्रेक्षा-गृहमे जनताको एकत्र करनेके लिये विज्ञापन, बैठानेकी सुविधा आदि कार्य किस प्रकार होता है। ३—उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि नाटकमे कौनसी ऐसी बाते आवश्यक हैं जो जनताको मन्त्रमुग्ध और तन्मय किए रह सकती हैं, अर्थात् उसे जनताकी मनोवृत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी रुचि और प्रवृत्तिका ज्ञान होना चाहिए और उसके साथ ही यह भी जानना चाहिए कि ये दर्शक कहाँसे आ रहे है, अर्थात् गाँवके है या नगरके और नगरके भी है तो किस वृत्ति और संस्कारके है। यह सब उसे जानना तो चाहिए किन्तु जैसे ही वह नाटकीय प्रयोगकी पहली रात्रिको परदेके सामने बैठे वैसे ही उसे यह सब भूल जाना चाहिए और उसी उत्सुकताके साथ उस रहस्य-भरे परदे की ओर देखना चाहिए जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिकाके लिये प्रतीक्षा करता हुआ उत्सुकता, आशा और प्रसन्नतासे गद्गद और उत्कंठित हुआ रहता है।

'ज्योंही नाटक समाप्त हुआ कि समीक्षाका कार्य झटसे उपस्थित हो गया। कभी-कभी तो समीक्षकसे यह आशा की जाती है कि नाटक समाप्त होनेके कुछ ही घण्टोंके भीतर उसकी समीक्षा पत्रोंमें प्रकाशित हो जाय। इस प्रकार पत्रकारिताने समीक्षाके क्षेत्रपर आधिपत्य जमा लिया है। और इस कारण वेचारा समीक्षक भी साधारण सम्वाददाता या पुस्तक-समीक्षकके समान बन गया है। उससे समीक्षा, सत्य-शंसन और निर्णयात्मक समीक्षाका कार्य ही छीन लिया गया है। सच्चा समीक्षक चाहे अपने पास प्रतिलिपि करनेवालेको बैठाकर लिखे अथवा एक सप्ताह या महीनेमें जमकर लिखे किन्तु उसका कार्य यही होना चाहिए जैसा जौन मेसन ब्राउनने कहा है कि उसको ध्वज वाहक या मार्ग-दर्शकके समान कार्य करना चाहिए। जहाँ डण्डेकी आवश्यकता हो वहाँ उसे डण्डा भी चलाना चाहिए किन्तु उसका मुख्य कार्य यही होना चाहिए कि वह सब कलाकारोंके सर्वश्रेष्ठ प्रयत्नोंके सम्मिलित प्रभावका ही समीक्षण करे, अर्थात् अदृश्य प्रकाश डालनेवाले

कलाकारसे लेकर उस अभिनेता तकका उसे ध्यान रखना चाहिए जिसपर प्रकाश पड़ता है। किन्तु उसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व तो यह है कि वह उन आगे आनेवाले प्रतिभाशाली नाटच-कलाकारोंके लिये मार्ग-दर्शक और अग्रदूतका काम करे जो रंगमंचके लिये अपना जीवन देनेवाले हैं।

नाटच समीक्षण

नाटककी समीक्षा हमें दो दृष्टियोंसे करनी चाहिए। १---नाटच-रचना और २---नाटच प्रयोग। रचनाकी समीक्षामें हमे इन प्रश्नोंका उत्तर देना चाहिए---१---नाटककारने किस उद्देश्यसे नाटककी रचना की है। २---उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये नाटककारने किस प्रकारके कितने पात्रों और किन घटनाओंका समावेश किया है ? ३---किस प्रकार नाटककारने घटनाओं और पात्रोंके सयोजनमे कुतूहलका निर्वाह करते हुए पात्रों और घटनाओंका सामंजस्य स्थापित किया है। ४---जितने पात्रोंका प्रयोग किया गया है उनमेसे कितने ऐसे है जिनका संयोजन अनिवार्य है ? ५---कितने पात्र ऐसे है जिनके बिना भी नाटच-व्यापार सरलता और सुचारु रूप, से संचालित किया जा सकता था ? ६---कितनी घटनाएँ ऐसी है जो पात्रोंके चरित्र-विकास और कथा-प्रवाहके सम्बर्द्धनकी दृष्टिसे उचित और अपरिहार्य थीं। ७---उनमेसे कितनी घटनाएँ अनावश्यक, असम्भव और अस्वाभाविक है और कितनी घटनाएँ सम्भव, स्वाभाविक और आवश्यक है। ८---नाटककारने जो परिणाम निकाला है वह उसके उद्देश्यकी दृष्टिसे कहाँतक संगत है ? ९---उस घटनाके परिणामको किसी दूसरे रूपमे प्रस्तुत करनेसे उस उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती थी या नहीं ? १०---स्वाभाविक होते हुए भी वह परिणाम कहाँतक वांछनीय और घटनाओंके प्रवाहके अनुकूल है ?

विभिन्न पात्रोंके लिये प्रयुक्त की हुई भाषा शैली का भली प्रकार परीक्षण करते हुए नाटच-समीक्षकको देखना चाहिए कि--१---विभिन्न श्रेणीके पात्र जिस भाषाका प्रयोग करते है वे उस श्रेणीके पात्रकी मर्यादाके अनुकूल है या नही ? २---भाषाके प्रयोगमे सम्भावना और आवश्यकताके साथ-साथ स्वाभाविकता तथा औचित्यका विचार भी किया गया है या नहीं ? (औचित्यका तात्पर्य यह है कि सम्वादोंमे परस्पर जोड़-तोड़, उत्तर-प्रत्युत्तरकी संगति और क्रम पात्रों और परिस्थितियोंके अनुसार ठीक है या नहीं ?) ३---उसका कितना अंश कथा-प्रवाहको आगे बढ़ाने तथा पात्रोंका चरित्र स्पष्ट करनेके लिये आवश्यक है ? ४---कितना भाग ऐसा है जिसे निकाल देनेसे नाटकके सौन्दर्य और कथा प्रवाहमें किसी प्रकारकी कोई त्रुटि उपस्थित नहीं होगी ? ५---उस सम्वादको सुनकर सामाजिक या दर्शक उसे सरलतासे समझकर भली-भाँति उसका रस ले पावेंगे या नहीं ? अर्थात् उसमे इतना रस, विनोद, जोड़-तोड़के प्रत्युत्तर, प्रत्युत्पन्नमतित्व-पूर्ण उक्तियाँ है या नहीं जिन्हें सुनते ही दर्शक या सामाजिक तदनुकूल प्रभावसे रस-मग्न हो जाय ? वास्तवमें सम्वाद ही नाटककी प्रेरणाशक्ति होती है। अभिनेताओंको अभिनय करनेमें और दर्शकोंको नाट्यका वास्तविक आनन्द लेनेमें सबसे अधिक सहायता सम्वादसे ही मिलती है। अतः, सम्वादका परीक्षण इस दृष्टिसे नहीं करना चाहिए कि नाटककारने इसमें काव्य कितना भरा है, वरन् इस दृष्टिसे करना चाहिए कि नाटककारने जिस उद्देश्यसे नाटक लिखा है उस उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त अभिनेताओंके सहयोगसे वह जो विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसकी सम्भावनाएँ सम्वादमे है या नहीं। इस दृष्टसे परीक्षण किया

जाय तो प्रतीत होगा कि काव्य-कलाकी दृष्टिसे जो सम्वाद 'अत्यन्त' भावपूर्ण और सरस प्रतीत होते हैं वे नाटच प्रयोगकी दृष्टिसे अत्यन्त नीरस और प्रभावहीन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिए कि गीत, नृत्य, वाद्य आदिका संयोजन कहाँतक, उचित उपयुक्त और आवश्यक हुआ है?

प्रयोगकी दृष्टिसे भी नाटककी परीक्षा करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि १---नाटककारने दृश्य-विधान इस क्रमसे रखा है या नहीं कि निर्बाध रूपसे नाटच प्रयोक्ता उन दृश्योंका सरलतासे विधान कर सके और उस दृश्य-क्रमसे नाटककी कथा-धाराका क्रम ठीक बनाए रखे। २---नाटककारने जो रंग-निर्देश दिए है, वे असंभव, अयोजनीय, अस्वाभाविक और अप्रयुक्त तो नही है। प्रायः नाटककार या तो रंग-निर्देश देनेमे अत्यन्त संकोची होते हैं या इतने उदार होते है कि वे कई पृष्ठ रग-निर्देशमें रंग डालते हैं। ३---रंग निर्देशमें रंग-व्यवस्थापकको दृश्य-सज्जाके लिए, नेपथ्य विधायकको वेश और रूप-सज्जाके लिए, प्रकाश विधायक को रंग-दीपनके लिए और अभिनेताको अभिनयके लिए स्पष्ट, उचित और आवश्यक निर्देश मिले है या नहीं। ४---नाटककारने अभिनेताके, वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनयके लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ उपस्थित की है या नही? अर्थात् सम्वादोंमे उसने इतनी गति भरी है या नही कि अभिनेता उसके अनुसार अभिनय करते समय अपना सम्पूर्ण अभिनय-कौशल प्रदर्शित करके उचित नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर सके अर्थात् नाटककारने व्यापार-योजना, क्रिया-योजना इतनी पर्याप्त रखी है या नहीं कि अभिनेता उसका अनुसरण करके नाटककार द्वारा उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सके। प्रायः आजकल ऐसी प्रवृत्ति बन गई है कि जब हम किसी बड़े लेखककी कृतिका समीक्षण करने बैठते है, तब उस लेखककी महत्वकीर्तिका आतंक हमें तत्काल दवा बैठता है और हम समीक्षण करते-करते बलपूर्वक उसके दोषोंको भी गुण बतानेके लिये बाध्य हो जाते है। ५---समीक्षकको इस प्रकारके दुष्ट आतंकसे सदा बचे रहना चाहिए और उसे निष्पक्ष होकर यह देखना चाहिए कि यह जिन दर्शकोंके लिये लिखा गया है उनकी समझमें आ सकेगा या नही। ६---इसके संविधानक या कथावस्तुका क्रम ऐसा तो नही उलझा दिया गया है कि कथा समझनेमें ही दर्शकोंको कठिनाई हो। ७---इसका दृष्य विधान इतना अव्यवस्थित, असम्भव, अटपटा (बहुत छोटा, बहुत बड़ा या अक्रम) और दुरूह तो नहीं है कि नाट्च प्रयोक्ता उसे प्रस्तुत ही न कर सके? ८---उसका पात्र-विधान इतना जटिल तो नही है कि नाटच-प्रयोक्ताको वैसे पात्र ही न मिल सकें। ९---उसका सम्वाद-विधान ऐसा कठिन तो नहीं कि अभिनेता उसमें अभिनयकी सम्भावनाएँ ही न पा सकें। १०---सम्वाद इतना पांडित्यपूर्ण तो नही है कि दर्शक तो दूर, स्वयं अभिनेता ही उसका अर्थ न समझ पाए। ११---वह जिस प्रकारके रंगमंचके लिए लिखा गया है उसके लिए कहाँतक उपयुक्त है? दर्शकोंपर उसका क्या मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक प्रभाव पड़ता है और वह कहाँतक सफल हो पाया है? १२---उससे कोई अनैतिक या असामाजिक प्रभाव तो नही पड़ता है? इतने प्रश्नोंका उत्तर देनेपर ही नाटचसमीक्षा पूर्ण होती है।

अभीतक हमारे यहाँ नाटच-समीक्षा व्यवस्थित नहीं हो पाई है और यही कारण है कि बड़ी असम्बद्ध रचनाएँ नाटकके नामसे पाठचक्रमे चला दी गई हैं। अभिनव भरतके नाटचशास्त्रके द्वारा इस कमीकी पूर्ति अवश्य की गई है किन्तु अभीतक भी प्रौढ़ नाटच समीक्षाकी कमी दृष्टिगोचर अवश्य होती है।

नागरीका कथा-साहित्य उपन्यास

गद्यका विकास होनेके पश्चात् साहित्य क्षेत्रमें बहुत-सी नई रूप-शैलियोंका प्रवेश हुआ। जैसे— उपन्यास, छोटी कहानियाँ, समीक्षा, विबन्ध आदि। उपन्यास योरोपीय साहित्यकी ही देन है। भारतीय साहित्यमें कथाओंकी रचनाएँ तो हुई किन्तु जिस ढंगसे आधुनिक उपन्यास रचे जाते है उस ढंगकी कथाएँ नहीं मिलतीं। हिन्दीमें उपन्यास-रचनाकी प्रवृत्ति बंगलासे आई और बँगलावालोंने यह रूपशैलीसे ली।

पहले तो नागरीमें बँगलाके उपन्यासोंका अनुवाद ही हुआ फिर अँग्रेजीमें भी हाथ लगाया गया। रामकृष्ण वर्मा उर्दूसे भी कुछ अनुवाद कर चुके थे। कार्तिक प्रसाद खत्रीने बँगलाके अनुवादोंसे हिन्दीका भण्डार भरनेकी स्तुत्य चेष्टा की और दो वर्षके भीतर ही चार उपन्यासोंका अनुवाद कर डाला। गोपालराम गहमरीने बँगलाके कई सामाजिक उपन्यासोंका अनुवाद किया। अनुवाद करनेवालोंमें ईश्वरी प्रसाद शर्मा रूप नारायण पांडेय विशेष उल्लेखनीय हैं। अँग्रेजी बँगलाके अतिरिक्त कुछ अन्य देशी विदेशी भाषाओंसे भी अनुवाद हुए।

नागरीमें सबसे पहले देवकीनन्दन खत्रीके मौलिक उपन्यास निकले जिनकी ख्याति वस्तुतः चन्द्रकान्ता सन्तति आदि घटना-वैचित्र्य युक्त उपन्यासोंके कारण हुई। ये उपन्यास इतने प्रसिद्ध हुए कि हिन्दी न जाननेवालोंको भी इन्हें पढ़नेके लिए नागरी भाषा पढ़नी पड़ी। पर इनकी गणना साहित्यिक उपन्यासोंकी श्रेणीमे नहीं की जा सकती।

मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखनेवालोंमे सबसे पहला नाम किशोरीलाल गोस्वामी का आता है जिन्होंने छोटे-बड़े कुल मिलाकर पैंसठ उपन्यास लिखे है। इनसे कुछ उपन्यास तो बहुत ही हलके ढंगके और वासनात्मक प्रवृत्तिको उद्दीप्त करनेवाले है। भाषाके साथ इन्होंने खिलवाड़ भी बहुत किया है। कही तो संस्कृत शब्दोंसे युक्त समासबहुला भाषाका प्रयोग किया है और कही घोर उर्दूका। इस प्रवृत्तिने उनके उपन्यासोंका साहित्यिक गौरव घटा दिया है। इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे किन्तु उनमे अनैतिहासिकता आ जानेसे उपन्यास नष्ट हो गए।

कुछ और लोगोंने भी थोड़ा-बहुत लिखा किन्तु हिन्दी उपन्यासोंमे क्रान्तिका युग प्रेमचन्दजीके साथ आया और फिर उन्हीकी शैली व्यापक रूपसे स्वीकृत हो गई। विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक', सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, पाण्डेय बेचन शर्मा, उग्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, यशपाल, अज्ञेय भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदिने उपन्यासके क्षेत्रको अधिक समृद्ध किया। इधर कई अच्छे उपन्यासकारोंने उपन्यासके क्षेत्रमे अपनी विशिष्ट प्रतिभाका प्रदर्शन किया है किन्तु फ्रायड़ मार्क्स और वैज्ञानिकताके फेरमें पड़कर इधरके सभी उपन्यास पठनीय और विनोदजनक न होकर मननीय और दार्शनिक होनेके कारण नीरस हो चले हैं और इस दृष्टिसे उपन्यासोंका भविष्य उज्वल नहीं प्रतीत होता।

प्रेमचन्द

नागरीमे लेखन-कार्य आरम्भ करनेके पूर्व प्रेमचन्दजीने उर्दूमें उपन्यास और कहानियाँ लिखकर पर्याप्त यश अर्जित किया था। नागरीमें कुछ कहानियाँ लिखनेके पश्चात् इन्होंने अपना पहला उपन्यास

सेवासदन प्रकाशित किया। सेवासदनके प्रकाशित होनेके पश्चात् प्रेमचन्दजीकी धाक इस क्षेत्रमें जम गई और दिन-दिन उन्हे प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त होता गया। सेवासदनमें सामाजिक कुरीतियों विशेषकर दहेज प्रथा, का विरोध किया गया है। इसके पश्चात् प्रेमाश्रममे गाँवोके दीन-हीन किसानोंपर जमीदारों-द्वारा होनेवाले अत्याचारोंका वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर रंगभूमिमें दो कथाएँ साथ-साथ चलती हैं जिनमें वह कथा तो अत्यन्त उत्कृष्ट है जिसका नायक सूरदास है। किन्तु दूसरी कथा अनावश्यक और निकृष्ट है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति और राजनैतिक स्थितिकी इसमे स्पष्ट प्रतिध्वनि है। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा रचना-कौशल आदि दृष्टियोंसे यह उपन्यास उत्कृष्ट कोटिका है। रंगभूमिके पश्चात् उन्होंने कर्म-भूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा और गबनकी रचना की। गबन सार्वकालिक महत्वका उपन्यास है। प्रेमचन्दका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास गोदान है। यही इनकी अन्तिम कृति भी है जिसमे ग्राम-जीवनकी समस्याओं-के बीच होरीका चरित्र अत्यन्त उदात्त चित्रित हुआ है। गोदान विश्व-साहित्यकी अनूठी कृति है। इन सभी उपन्यासोमें प्रेमचन्दजीने उपदेष्टाका रूप नही छोड़ा और उपन्यासोंको आवश्यकतासे अधिक बढ़ा दिया। प्रेमचन्दजीका उपन्यास लिखनेका ढग बड़ा विचित्र था। वे अँग्रेजीमें कथा-सूत्र बनाते थे, उर्दूमे लिखते थे और फिर उसे हिन्दीमें रूपान्तरित करते थे। वे बाबू प्रेमचन्दके नामसे लिखते थे। उनका नाम वास्तवमें धनपतराय था। जब उन्होंने श्री कन्हैयालाल मुन्शीके साथ बम्बईमें 'हंस' नामक मासिक पत्र निकाला तब उसपर सम्पादक मुन्शी—प्रेमचन्द लिखा जाता था जो द्वन्द्व समास था। पीछे अज्ञानतावश लोगोंने कन्हैयालाल मुन्शीके मुन्शी शब्दको प्रेमचन्दजीके कायस्थ होनेके कारण उनका जाति-विशेषण बना कर बाबू प्रेमचन्दको मुन्शी प्रेमचन्द कहना और लिखना प्रारम्भ कर दिया।

प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंकी व्याप्ति पूरे मानव-जीवन तक है। इन्होंने अपने उपन्यासोमें ग्रामीण समाजका चित्रण बड़े विस्तारके साथ किया है। इनके उपन्यासोंमें मानव-समाजका चित्रण जितने विविध रूपों और विविध परिस्थितियोंके प्रकाशमे किया गया है उतना कम लोगोंने किया है। नगरोंकी अपेक्षा ग्राम इन्हें अधिक प्रिय थे। क्योंकि वे स्वय मूलतः लमही ग्रामके निवासी थे। समाजके निम्नस्तरवालोके साथ और आर्य समाजके प्रभावके कारण अस्पृश्यों और विधवाओंके साथ लेखककी सहानभूति और ब्राह्मणोके प्रति विरोध-वृत्ति बराबर रही है। अपनी इस विचारधाराके कारण ही वे मानववादियों तथा प्रगतिशीलोंका साथ करते हुए तथ्यवादी लगते है किन्तु वे आदर्शवादी मुख्य थे इसलिये उनकी वृत्तिको लोगोंने आदर्शोन्मुख यथार्थ-वादका भ्रामक नाम दिया है। वस्तुस्थिति यह है कि समाजके निम्नस्तरवालोंके प्रति इनके मनमे सहानुभूतिका जो भाव है वह राष्ट्रीय आन्दोलन और तत्कालीन जन-भावनाके कारण उत्पन्न है किसी सैद्धान्तिक वादसे प्रेरित होकर नही जैसा प्रगतिवादी कहते है। ये मूलतः आदर्शवादी है और भारतीय आदर्शकी अपनी आर्य समाजी और राष्ट्रीय भावनाके अनुसार ही इन्होंने सारे चित्र खड़े किए है। गाँधीवादकी प्रतिध्वनि इनकी कृतियोंमे बराबर मिलती है और लगता है कि लेखककी दृष्टिमें मानव समाजके उत्थानका वही एक मात्र उपाय है। इनके उपन्यासोंमे शुद्ध आदर्शवाद ही व्याप्त है। जो लोग उसमे तथ्यवादीकी खोज करते है वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि मानव जीवनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण करनेवाला कोई भी उपन्यासकार स्वभावतः सामाजिक उपन्यासोंमें अपने युगके समाजके व्यक्तियों और वस्तुओंका स्पष्ट तथा यथार्थ चित्र उतारा है। प्रेमचन्दजीने मनुष्यकी आन्तरिक प्रवृत्तियों और मनोवेगोंके द्वन्द्वोंके उद्घाटनकी कभी चेष्टा

नहीं की। सामाजिक-जीवनको आधार बनाकर बाह्य द्वन्द्वपर ही इन्होंने लेखनी चलाई और उसमे ये पूर्ण रूपसे सफल हुए। विविध पात्रोंके पद-प्रेम परिस्थितियोंके अनुसार स्वाभाविक लोक-सिद्ध सम्वादोंके कारण प्रेमचन्दजीकी भाषामें ओज, प्रवाह और शक्ति आ गई है।

जयशंकर प्रसादने भी 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास लिखे हैं; किन्तु ये बहुत अच्छे नहीं बन पड़े। सुदर्शनपर तो प्रेमचन्दजीकी स्पष्ट छाप है। किन्तु प्रसादजीने भाषाके सम्बन्धमें अपनी अलग संस्कृतनिष्ठ शैलीका प्रयोग किया। रईसोंके जीवनका चित्रण करनेवाला प्रताप नारायण श्रीवास्तवका 'बिदा' उपन्यास भी अपने ढंगका अच्छा उपन्यास है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्रका 'चन्दहसीनोंके खतूत, 'दिल्लीका दलाल' और 'बुधुआकी बेटी' की भी कुछ दिनतक बड़ी धूम रही किन्तु इन्होंने मनुष्यकी पशु-प्रवृत्तियोंके वर्णनसे अपनी कथाएँ सजाई इसलिए वह भले लोगोंके पढ़नेके योग्य नहीं रह गए। फिर भी उनका कथा कहनेका ढंग बहुत अद्भुत है और भाषामें बड़ा ओज, प्रवाह और प्रभाव है। जैनेन्द्रकुमारने 'परख' और 'सुनीता' आदि उपन्यास लिखकर हिन्दीमें मनोवैज्ञानिक उपन्यासोंका श्री गणेश किया किन्तु जैनेन्द्रकी भाषा बड़ी कुण्ठित और प्राणहीन है।

ऐतिहासिक उपन्यासोंमें वृन्दावनलाल वर्माकी 'मृगनयनी', 'झाँसीकी रानी', 'गढ़कुण्डार', 'विराटाको पद्मिनी' अधिक प्रसिद्ध हैं। इसकी भाषामें प्रवाहका अभाव है, कल्पना प्रभूत है। कृष्णकान्त मालवीयका 'सिंहगढ़ विजय' भी अच्छा ऐतिहासिक उपन्यास है।

भगवती चरण वर्माका 'चित्रलेखा', 'टेढ़ेमेढ़े रास्ते', और 'तीन वर्ष' तथा इलाचन्द्र जोशीका 'सन्यासी', 'सुबहके भूले', 'जिप्सी' 'जहाजका पंछी' आदि अच्छे उपन्यास है।

चतुरसेन शास्त्रीने भी आँखकी किरकिरी, 'हृदयकी परख', 'वैशालीकी नगर वधू' आदि कई अच्छे उपन्यास लिखे है।

इधरके उपन्यासकारोंमें यशपालको घटनागुम्फन तथा कथा कहनेके ढंगमें अधिक सफलता मिली है। किन्तु यशपालमें सबसे बड़ा दोष यही है कि ये खुल्लमखुल्ला कम्यूनिस्ट-प्रचारक तथा काम-वासनाओंके चित्र-कारके रूपमें प्रकट होते हैं। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' आदि इनके इसी प्रकारके उपन्यास है। अमृतलाल नागरके उपन्यास भी नवीन वादोंकी वात्यामें उलझे हुए है।

प्रेमचन्दको छोड़कर कम उपन्यासकारोंमें भाषा शैलीका ध्यान रखा गया है। प्रसादजीकी भाषा भी अधिक संस्कृतनिष्ठ शैलीकी होनेके कारण सर्वसामान्यके लिये ग्राह्य नहीं हो सकी। ये लोग कथा सँवारनेके फेरमें पड़े रहे। भाषापर किसीने ध्यान नहीं दिया।

हिन्दीके उपन्यास

संसारके सभी देशोंमें कथाओंका प्रचार आदि कालसे रहा है। इन कथाओंमें अधिकांश काल्पनिक कथाओंका प्रभुत्व रहा है। इन कथाओंमें परियों, भूत-प्रेतों, दैत्यों और राक्षसोंकी कथाओंके साथ-साथ देवी-देवताओं और अदृष्ट शक्तियोंका वर्णन अधिक होता था जो प्रायः भले आदमियोंकी सहायता और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। हमारे यहाँ इसीलिए कथाओंके दो प्रकार निश्चित हुए—१. आख्यायिका, जो सत्य घटनापर आश्रित हो और २. कथा, जो कल्पित घटनापर अवलम्बित

हो। किन्तु इन कथाओंके साथ-साथ कुछ साहित्यिक स्वरूप भी विकसित हुए---जैसे संस्कृतमें कादम्बरी सम्भवतः इसीलिए महाराष्ट्रमें उपन्यासको कादम्बरी ही कहते हैं। जैसे पहले राज-सभाओं या गाँवोंकी चौपालोंमें कहानी कहनेवालोंकी कहानियाँ सुननेके लिए लोग एकत्रित हुआ करते थे और सब कुछ भूलकर अत्यन्त रुचिपूर्वक कहानियाँ सुनते थे वैसे ही आजकल लोग उपन्यास पढ़ते हैं। जिनमें कुतूहल निर्वाहके अतिरिक्त मानसिक व्यसन की मात्रा अधिक होती है। इस प्रकारकी रचनाको अँग्रेजीमें नॉवेल, फ्रान्सीसीमें रोमा मराठीमें कादम्बरी और हिन्दी तथा बँगलामें उपन्यास कहते है।

कलाकी दृष्टिसे वर्तमान उपन्यासोंको निम्नांकित वर्गोंमें विभक्त कर दिया गया है---सामाजिक, मध्यवर्गीय, मनोवैज्ञानिक, स्थानीय-चित्रण-युक्त, अपराध-चित्रक और भावावेगपूर्ण; किन्तु ये भेद न पर्याप्त हैं और न अन्तिम। इनके अतिरिक्त भी ऐतिहासिक, विवरणात्मक, नाटकीय पत्रात्मक, भावुकतापूर्ण, जासूसी वैज्ञानिक, क्रमिक प्रमापूर्ण (डॉक्युमैंटरी) तथा नीली पोथी (पैनी ड्रेडफुल, शिलिंग-शौकर, ब्ल्युवुक, डांइंग नाबेल, या यलोबैक) आदि अनेक भेद किए गए है और किए जाते रहेंगे। अभी हिन्दीमे इतने प्रकारके भेद दृष्टि-गोचर नही होते।

उपन्यास कौशलके आचार्योंने उपन्यास रचनाके सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त निर्धारित किए है। उनका कहना है कि उपन्यास किसी अत्यन्त प्रभावशाली स्थलसे आरम्भ करना चाहिए। २---इसमे ऐसा आधार स्थल (प्लाऊ या खूँटा) होना चाहिए जिसके आधारपर सम्पूर्ण कथा संचालित होती हो और जिसके परिणामके लिए पाठक साँस रोककर उत्सुकता पूर्वक व्यग्र रहे। ३---प्रायः उपन्यासका आरम्भ मूल कथाके बीचसे लिया जाय और फिर पहलेकी घटना प्रत्यावर्तन कौशल (फ्लैश बैक या कट बैक टेकनीक) से दिखा दी जाय। ४---उपन्यासमे सत्यता या सत्यतुल्यता (वैरीसिमिलिटयूड) होनी चाहिए। ५---उसमे काव्य-न्याय (पोएटिक जस्टिस) होना चाहिए अर्थात् अपराधीकी विजय और सज्जनकी पराजय नही दिखानी चाहिए। वरन् अपराधीको दण्ड और सज्जनकी विजय दिखानी चाहिए। ६---चरमोत्कर्ष दिखानेसे पहले ऐसा विश्राम या अन्तरालका स्थल प्रस्तुत करना चाहिए जहाँ चरमोत्कर्षके लिए पूरी तैयारी दिखा दी जाय और पाठकके मनमें अत्यन्त वेगपूर्ण उत्सुकता और कुतूहल उत्पन्न कर दिया जाय। उपन्यासमें मनोवैज्ञानिक क्षणकी भी योजना करनी चाहिए जहाँ पाठक किसी विशेष घटनाकी आशा करे और वह घटना हो जाय। ८---इसके साथ ही उत्कंठित प्रत्याशा (पोज्ड एक्स्पेक्टेन्सी) का भी आयोजन किया जाय जहाँ पाठक हृदयकी धुक-धुकीके साथ आकस्मिक दुर्घटनाके आनेवाले परिणामकी प्रतीक्षा करे। यह परिणाम कभी तो अनिश्चित होता है और कभी पहलेसे कल्पित कर लिया जाता है किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि परिणाम कब होगा। तीसरा दयनीय उत्कण्ठा (आयरॉनिक सस्पेन्स) का स्थल वह होता है जहाँ पाठकके मनमें नायक पर आनेवाली विपत्ति पहलेसे जान लेनेके कारण यह इच्छा होती है कि क्यों न मै जाकर नायकको बता दूं कि यह घटना होनेवाली है। इस उत्कण्ठित प्रत्याशाके लिए ऐसी परिस्थिति या घटनाओंका संयोजन किया जाता है जो स्वाभाविक, सम्भावनीय और अपरिहार्य हों। उपन्यासमें चरमोत्कर्षका क्षण ऐसा शक्तिशाली होना चाहिए कि उसके पश्चात् जो कथाकी धारा वेगपूर्ण घुमावके साथ दूसरी ओर घूमे वह आवश्यक और अनिवार्य प्रतीत हो, बलपूर्वक जोड़ी हुई नहीं। इस चरमोत्कर्षको शुद्ध करनेके लिए प्रवृत्ति (मोटिवेशन) अर्थात् परिस्थितियोंका समन्वय उत्पन्न किया जाता है, जो अतीतकी घटनाओंको विवेकपूर्ण

आधार देकर पात्रोंके कार्योंको प्रशंसनीय बना देती है। उपन्यासमे कभी न तो भविष्यवाणी करनी चाहिए न भविष्यमे होनेवाली घटनाकी सूचनाका सकेत करना चाहिए। उपन्यासमे विनोद-तत्व पर्याप्त मात्रामे होना चाहिए जो पाठकको आगे पढ़नेके लिए प्रेरणा देता रहे। उपन्यासमें कुतूहलका तत्त्व आदिसे अन्ततक व्याप्त होना चाहिए। उपन्यासके वर्णनकी भाषा-शैली मनोहर, कलात्मक, सर्वबोध्य, मुहावरेदार और सूक्ष्म वर्णनसे युक्त होनी चाहिए। यह वर्णन उतना ही हो जितना कथाके प्रवाहको आगे बढ़ाने और पात्रोंका चरित्र, स्पष्ट करनेमें सहायक हो। सम्वादकी भाषा-शैली प्रत्येक पात्रकी योग्यता, मनःस्थिति और परिस्थितिके अनुकूल हो। उपन्यासमे अधिक एक रस (फ्लैट) या स्थिर (स्टैटिक) चरित्र वाले पात्र नहीं लेने चाहिए, गतिशील (डायनॉमिक) लेने चाहिए जिनके जीवनमें परिस्थितियों और चारित्रिक गुणोंका पर्याप्त उतार-चढ़ाव हो। किसी भी उपन्यासमें पात्रोंका मृत्यु द्वारा अन्त करा देना उपन्यासकारकी दुर्बलता और कलाहीनताका परिचायक होता है। उपन्यासकारको अपने उपन्यासका अन्त ऐसा करना चाहिए कि उपन्यासके परिणामसे पाठकको मानसिक सन्तोष और नैतिक तृप्ति प्राप्त हो।

इन सिद्धान्तोंके अनुसार यदि उपन्यास लिखे जाएँ तो निश्चय ही सफल और शक्तिशाली सिद्ध होते है।

वैदिक कहानियों, महाकाव्य तथा पुराणकी कथाओं, जातक कथाओं तथा अन्य प्रकारकी कथाओं-का युग सस्कृतके साथ समाप्त हो गया या यों कहना चाहिए कि सस्कृतमें ही रह गया। प्रारम्भिक युगमें हिन्दीमे जो कथाएँ कही गई उनमे अधिकांश या तो प्रेमाख्यानके रूपमें थी अथवा सिहासन-बत्तीसी अथवा बैताल पचीसीके रूपमें संस्कृतके अनुवादके रूपमें थी। भारतेन्दुसे पूर्वकी इन कथा-पुस्तकोंमे रानी केतकी की कहानी, प्रेम सागर, बैताल पचीसी, सिहासन बत्तीसी, किस्सा तोता मैना, किस्सा साढ़े तीन यार, चहार, दर्वेश, बागो बहार, किस्सा हातिमताई, माधवानल, कामकन्दला, शकुन्तला आदि मुख्य है। उस समय अधिकांश लोग पढ़े लिखे नही थे। गाँवमे एक आध पढ़े-लिखे सज्जन पोथी लेकर बैठ जाते थे और अन्य लोग उनके मुखसे पढ़ी हुई कहानी सुनते, बीच-बीचमें हुँकारी भरते और टिप्पणी करते चलते थे। हिन्दी उपन्यासोंका श्री-गणेश भारतेन्दुने ही 'कादम्बरी' और 'दुर्गेश-नन्दिनी' का अनुवाद कराकर किया। उनके मौलिक उपन्यास 'एक कहानी कुछ आप बीत कुछ जग बीतीका कुछ अंश कवि वचन-सुधामे प्रकाशित हुई थी जिसमे उन्होंने स्वयं अपना आत्म-चरित्र लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनके अनुरोधसे राधारानी, स्वर्णलता, चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाशका भी अनुवाद कराया गया था। उन्होंने एक नवीन उपन्यास 'वीर हठ' भी प्रारम्भ किया था किन्तु वह पूर्ण न हो सका, यहाँ तक कि उसे पूर्ण करनेका संकल्प करनेवाले श्री-निवास और प्रतापनारायण मिश्र भी उसे अधूरा छोड़कर चल बसे। उनकी प्रेरणासे गोस्वामी राधाचरणने 'दीप-निर्वाण' और 'सरोजिनीका गदाधर सिंहने 'कादम्बरी' का और 'दुर्गेश नन्दिनी, रमाशंकर व्यासने 'मधुमती' और राधाकृष्ण दासने 'स्वर्णलता' का अनुवाद किया था। इन उपन्यासोंमें तत्कालीन समाज और व्यक्तियोंका व्यंग्यपूर्ण, रोचक और सूक्ष्म चित्रण करनेका प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु यह प्रयास ज्योंका त्यों पड़ा रह गया क्योंकि देवकी नन्दन खत्री, गोपाल लाल गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामीने जो अनक उपन्यास लिखे उनमे विनोद और घटनाओंकी महत्ता अधिक थी, सामाजिक जीवनका चित्रण करने-की पूर्णतः शून्य। तत्कालीन उपन्यासोंको सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी और भाव-

प्रधान पाँच वर्गोंमें विभक्त कर सकते हैं। सामाजिक उपन्यासोंमें लाला श्रीनिवासदासका परीक्षा गुरु ', बालकृष्ण भट्टका ' नूतन ब्रह्मचारी ', तथा ' सौ अजान एक सुजान ', अमृतलाल चक्रवर्तीका ' सती सुखदेवी, ', लोचनप्रसाद पाँडेयकी दो मित्र ' और लज्जाराम शर्माका ' आदर्श दम्पति ' तथा 'बिगड़ेका सुधार', जगत चन्द रमोलाका ' सत्य-प्रेम ' प्रसिद्ध हैं जिनमें सामाजिक कुरीतियों आदिका विरोध, आदर्श गृहिणी, मित्र, चरित्र-बल सत्यपालन आदिका निरूपण किया गया है। गोपाल राम गहमरीके ' नव बाबू ' में विधवा, विवाह और स्त्री-स्वातन्त्र्यकी निन्दा की गई है : उन्होंन सास-पतोहू ' डबल बीबी,' ' देवरानी-जेठानी ', दो बहन, तीन पतोहू, आदि कुछ ऐसे भी उपन्यास लिखे जिनका सम्बन्ध पारिवारिक जीवनसे है। इस कालके सामाजिक उपन्यासमें प्रेमकी अधिक प्रधानता है विशेषत: किशोरीलाल गोस्वामीके ' अंगूठीका नमूना ', ' चन्द्रावली ', ' लीलावती ' और ' चन्द्रिकामे,' ' मोरेश्वर पोतदारके प्रणयी माधवमें हरिप्रसाद जिजलके ' शीला ' और ' काम कन्दला ' आदि उपन्यासोंसे प्रेम कथाओंका ही चित्रण है। जिस रूपमे प्रेमचन्दजीने अपने उपन्यासोंमें सामाजिक समस्याओंका विश्लेषण किया उसका इन उपन्यासोंमे पूर्ण अभाव है।

देवकीनन्दन खत्रीने चन्द्रकान्ता और चन्द्रकाता संतति (१८९७) की रचना तिलस्मी (चमत्कार-पूर्ण घटनाओंसे ओत-प्रोत) ढंगसे की है। उन्हींसे प्रेरणा पाकर गोपालराम गहमरीने जासूसी उपन्यास लिखे। जैसे एडगर एँलेन पो, आर्थर कॉनन डायल तथा वायकी कौलन्स आदिने अँग्रेजीमें लिखे थे। किशोरीलाल गोस्वामीने लवंग लता, कुसुमकुमारी, चपला, शाही महल, सरा तारा, राजकुमारी आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। जिनमे प्रेम-प्रसंग अधिक, वासनात्मक तथा नग्न हो गए है। बलदेव प्रसाद मिश्र, गंगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त, बलभद्र, दुर्गादास खत्री आदि अनेक उपन्यासकारोंने ऐतिहासिक उपन्यासोंकी रचना की। ठा. जगमोहन सिंहने सौन्दर्य उपासक, राधाकान्त, राजेन्द्र मालती जैसे अत्यन्त शिथिल भाव-प्रधान उपन्यास लिखे जिनमे घटना और चरित्र दोनों निष्प्राण है और भाषा भी अत्यधिक आलंकारिक हो गई है।

इस युगके अन्य उपन्यासकारोंमें देवदत्तका ' सच्चा मित्र ', राम गुलामका ' सुजाता ', कार्तिक प्रसाद खत्रीका ' दीनानाथ ', बल्देवप्रसादका ' संसार ', नवल रायका ' प्रेम ', सकल नारायण पाण्डेका 'अपराजिता', राम नरेश त्रिपाठीका, ' मारवाड़ी और विशाचीनी, ', जगत चन्द्र रमोलाका 'सत्य प्रेम', योगेन्द्रनाथका ' मानवती ' हर स्वरूप पाठकका ' भारत माता ', राधा प्रसादका अखौरी सामाजिक उपन्यासोंमें उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक उपन्यासोंमे बल्देवप्रसाद मिश्रका अनारकली, पृथ्वीराज चौहान और पानीपत, गंगा प्रसाद गुप्तका नूरजहाँ, तथा वीर पत्नी, कुमार सिंहका सेनापति, पूनामें हलचल और हमीर, मथुरा प्रसाद शर्माका नूरजहाँ, लालजी सिंहका वीरवाला, जैनेन्द्र किशोरका गुलेनार, जयरामदासका काशमीरका पतन, रंगमे भंग, माया रानी, नबाबी परिस्तान, कलावती तथा मलका चाँद बीबी प्रमुख हैं।

ऐयारी तिलस्मीके उपन्यास-लेखकोंमें देवकीनन्दन खत्री और हरेकृष्ण जौहर दो प्रमुख हैं। जासूसी उपन्यास-लेखकोंमें गोपालराम गहमरी ईश्वरी प्रसाद शर्मा, जयरामदास गुप्त और माधव केशरी आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्द

इस युगमें बँगला, गुजराती मराठी अँग्रेजी और संस्कृतकी कथाओं और उपन्यासोंमें बहुत अनुवाद हुए और अुर्दूका रूपान्तर भी। इस प्रकार प्रेमचन्दसे पूर्व उपन्यासके क्षेत्रमें विविध भाषा-शैलियों और कथा-शैलियोंमें अनेक उपन्यास लिखे जा चुके हैं।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द (धनपतराय) ने उर्दू नवाबरायके नामसे अपनी रचनाएँ विशेषतः कहानियाँ प्रारम्भ की और फिर हिन्दीमें प्रेमचन्दके नामसे लिखना प्रारम्भ किया वे अपने उपन्यासोंकी सूत्र-योजना अँग्रेजीमें बनाते थे, उर्दूमें लिखते थे और हिन्दीमें उसका रूपान्तर करते थे। उनके समयमें भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उनसे पूर्व राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्दने ब्रह्म-समाज और आर्य समाजके द्वारा सामाजिक सुधारका आन्दोलन खड़ा कर दिया था। जमींदारोंका किसानोंपर अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच गया था। समाजमें चारों ओर सामाजिक और आर्थिक कारणोंसे जो अनेक प्रकारकी विषमताएँ व्याप्त हो गई थीं उन्हें दूर करनेके उपाय व्यापक रूपसे होने लगे थे। इस सम्पूर्ण सामग्री-को लेकर प्रेमचन्दजी और उनके समयके लेखकोंने अपनी रचनाएँ प्रारम्भ की। इस युग (१९१५–१९४०) के बीच अवध नारायणने 'विमाता', श्रीनाथ शास्त्रीजीने 'मँझली बहू', विश्वम्भर नाथ शर्माने 'माँ', शम्भु दयाल सक्सेनाने 'बहूरानी', केशव चरण जैनने 'भाई' और सियाराम शरण गुप्तने 'याद' आदि पारिवारिक समस्याओंपर उपन्यास लिखे। तत्कालीन नारी-समस्याको लक्ष्यकरके प्रेमचन्दने युवती विधवाके लिए सेवाका निर्देश करते हुए 'प्रतिज्ञा' उपन्यास लिखा। इसी धारामें चतुरसेन शास्त्रीने अमर अभिलाषा, तेज रानी दीक्षितने हृदयका काँटा', चन्द्र शेखर शास्त्रीने 'विधवाके पत्र', जैनेन्द्रने 'परख' और तपोभूमि', प्रसादने 'कंकाल' और भगवती प्रसाद बाजपेयीने 'पतिताकी साधनामें विधवाओंकी समयाओंपर विचार किया है। इसी प्रकार प्रेमचन्दने 'सेवा सदन' और 'गबन' मे कौशिकने 'माँ' मे, ऋषभचरणने 'वेश्या पुत्र' में, उग्रने 'शराबी' में, और निरालाने 'अप्सरा' में वेश्या-जीवनका चित्रण और तत्सम्बद्ध समस्याओंका समाधान किया है। अनमेल विवाहकी समस्यापर प्रेमचन्दने 'निर्मला' और 'कायाकल्प' मे, श्रीनाथ सिंहने 'क्षमा' मे, भगवती प्रसाद वाजपेयीने 'मीठी चुटकी और 'अनाथ' पत्नी' में और मुक्तने 'तलाक' में विस्तृत विचार किया है। भारतीय नारी समाजका किस प्रकार शोषण होता है, अनाथालयों तथा विधवा-श्रमोंमें उनपर किस प्रकार भीषण अत्याचार होता है, इसका चित्रण उग्रने अपने 'दिल्लीके दलाल' 'बुधुवाकी बेटी' और 'शराबी' में, चतुरसेन शास्त्रीने हृदयकी परख' और 'व्यभिचार' में ऋषभचरण जैनने 'दिल्लीका व्यभिचार', 'दिल्लीका कलंक और 'दुराचार' शीर्षक उपन्यासमें किया है। प्रबुद्ध नारीके जीवनके सम्बन्धमें प्रेमचन्दने रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान, मालती और बिदामें अच्छा चित्रण किया है। वृन्दावनलाल वर्माके गढ़ कुंडार, प्रेमकी भेंट, कुंडली-चक्र और विराटाकी पद्मिनीमें, उग्रके 'चन्द हसी-नोंके खतूत' में और निरालाकी निरुपमामें स्वैरवादी (रोमानी) प्रेमका चित्रण हुआ है। प्रेमचन्दने भी अपने रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि तथा गोदानमें तो इस प्रकारके स्वैरवादी प्रेमकी असफलता दिखाई है किन्तु केवल उनके योदानमें मालती और मेहताका प्रेम अन्तमें विवाहके रूपमें परिणत हुआ। लेकिन कौशिक ने भी अपने 'विहारिणी' उपन्यासमें इसी प्रकारके स्वैरवादी प्रेमकी असफलता व्यक्त की है।

पूंजीपतियों और जमींदारोंके अत्याचार और शोषण तथा सूदखोर महाजनों द्वारा ग्रामीणोंके शोषणकी कथाओके भी अत्यन्त यथार्थ चित्रण प्रेमचन्दके प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि और गोदान आदि उपन्यासोंमें, शिव पूजन सहायके ' देहाती दुनियामें, ऋषभचरण जैनके ' सत्याग्रह ' और ' भाई ' में, निराला के ' अलका ' में, प्रसादकी ' पुतली ' मे और श्रीनाथ सिहके ' जागरण ' में अधिक व्यक्त रूपसे चित्रित हुए हैं। अन्ध-विश्वास, अशिक्षा तथा अन्य आर्थिक सामाजिक शैक्षणिक हीनताओंपर प्रसादने ' कंकाल और ' तितली ' में, सियाराम शरण गुप्तने गोद तथा ' अन्तिम आकक्षा ' में, निराला ने ' अप्सरा ' और ' अलका ' में वृन्दावन लालने प्रेमकी भेंट और कुण्डली-चक्रमें धार्मिक आडम्बर, पण्डे, पुरोहित, ओझा, साधु, फकीर आदिके हथ-कण्डों और भोली जनताकी मूर्खताओंका बड़ा विशेष चित्रण किया है। इसी युगमें जी. पी. श्रीवास्तव तथा अन्नपूर्णानन्दने अत्यन्त व्यंग्य प्रधान हास्यात्मक उपन्यास लिखे हैं।

यद्यपि किशोरीलाल गोस्वामीने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने प्रारम्भ कर दिए थे। किन्तु उनमे यथार्थ चित्रणका सर्वथा अभाव था। ब्रजनन्दन सहायने (१९१६ मे) ' लाल चीन ' उपन्यासकी रचना की। इनके अतिरिक्त मुरारी लाल पण्डितने विचित्र-वीर्य, दुर्गादास खत्रीने ' अनंगपाल, मिश्र-बन्धुने ' वीर मणि ', गोविन्द वल्लभ पन्तने 'सूर्यास्त', विश्वम्भरनाथ जिज्जाने 'तुर्क तरुणी', ऋषभ चरण जैनने 'गदर' और कृष्णानन्दने ' केन ' नामक उपन्यास लिखे थे। इसी युगमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लने राखालदासके करुणा और शशांक उपन्यासोंके अनुवादोंको प्रस्तुत किया। उसके पश्चात वृन्दावन लाल वर्माने गढ़-कुण्डार, विराटाकी पद्मिनी, मुसाहवजू, झाँसीकी रानी लक्ष्मी बाई, कचनार १७१९, महादजी सिन्धिया, टूटे काँटे और मृग नयनी नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। और भगवती चरण वर्माने चित्रलेखाकी रचना की।

प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंको लोग आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहते है किन्तु उन्हें जानना चाहिए कि असाधारण यथार्थ ही आदर्श होता है। अतः आदर्शोन्मुख भी शुद्ध यथार्थवाद हो है। इस प्रकारके असाधारण यथार्थवादका चित्रण प्रसादकी ' तितली ' में तथा कौशिक, वृन्दावन लाल वर्मा तथा ऋषभ चरण जैन आदिकी प्रारम्भिक कृतियोंमें तथा जैनेन्द्र के ' परख ' मे चित्रित हुआ है। प्रेमचन्द्रजीके आदर्शवादके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उन्होंने आदर्श और यथार्थका समन्वय किया। वह वास्तवमें सत्य नहीं है। उन्होंने कोई समन्वय किया ही नहीं। उन्होंने यथार्थके आधारपर वास्तविक जीवनके आदर्श व्यक्तियोंको चित्रित किया है जो सामान्य जीवन स्तरसे लिये गए हैं। इसीको भ्रमसे बहुतसे विद्वानोंने आदर्शोन्मुख यथार्थ-वाद कह डाला है।

प्रेमचन्दने प्रायः समाज और देशकी सभी समस्याओंको सामने रखनेका प्रयत्न किया किन्तु उनके उपन्यासोंमें भी सम्पूर्ण देशके समाजका चित्रण न होकर केवल उसी समाजका चित्रण हुआ है जिसमें वे निवास करते थे और जिसका उन्हें पूर्ण और कटु अनुभव था। उनके उपन्यासोंमें ' वरदान, प्रतिज्ञा, सेवा-सदन , निर्मला, गबन और गोदान ' का सम्बन्ध सामाजिक और पारिवारिक जीवनके चित्रणसे है। प्रेमाश्रम, रंग-भूमि, काया कल्प और कर्मभूमिमें सामाजिक और पारिवारिक जीवनका चित्रण तो है ही साथ ही समकालीन आन्दोलनोंकी भी झलक है। प्रेमाश्रममें जमींदार और किसानका संघर्ष चित्रित किया गया है। रंगभूमिमें पूंजीवाद, जमींदारी-वाद आदि शीषक वर्गोंके विरुद्ध मन्त्र फूंका गया है। कायाकल्पमें हिन्दू मुस्लिम द्वन्द, मजदूर-किसान आन्दोलनके साथ-साथ पुनर्जन्मके सिद्धान्तका विवेचन हुआ है और कर्म-भूमिमें अछूतोद्धार

आन्दोलन तथा लगान बन्दी आन्दोलनकी झाँकी दी गई है। यद्यपि प्रेमचन्दके उपन्यास अस्वाभाविक रूपसे बड़े हो गए हैं, घटनाओं का भी पिष्ट-पेषण हुआ है, पात्रोंके चरित्रोंका भी अन्तिम निर्वाह ठीक नहीं हुआ किन्तु अपनी भाषाके सरस और सरल प्रवाहके तथा मुहावरोंके प्रयोगके कारण ये सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। अध्यापक होनेके कारण उनकी प्रवृत्ति स्वभावतः उपदेश देनेकी थी इसलिए उनके उपन्यासोंमें स्थान-स्थान पर इस प्रकारके उपदेशोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

जयशंकर प्रसाद

प्रसादने अपने कंकाल (१९२९) में प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा और वृन्दावन आदि धर्म-स्थानों-में धर्मकी आड़में पापाचरण करनेवालोंका विस्तृत चित्रण किया है जिसमें एक भी पात्र असली माता-पिताका नहीं है। उनके दूसरे उपन्यास 'तितली' (१९३४) में प्रेमका आदर्श स्वरूप चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है किन्तु यह उपन्यास बहुत अच्छा नहीं हो पाया है। पात्रोंका चयन और चित्रण दोनों बड़ी शिथिलताके साथ किये गए हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्माने यद्यपि सामाजिक नाटक भी लिखे किन्तु उनकी प्रसिद्धि अग्रांकित ऐतिहासिक उपन्यासोंके कारण ही हुई। गढ़कुण्डार, विराटाकी पद्मिनी, झाँसीकी रानी, मुसाहिब जू, कचनार, सत्रह सौ उन्नीस, माधवजी सिन्धिया, मृगनयनी, टूटे काँटे, अहल्याबाई, और भुवन विक्रम। सामाजिक उप-न्यासोंमें—संगम, लगन, प्रत्यागत, कुण्डली-चक्र, प्रेमकी भेट, अचल मेरा कोई और अमर बेल प्रसिद्ध हैं। वर्माजीके उपन्यासोंमें स्थानीय चित्रण बहुत अच्छे हैं। चरित्रोंके स्वरूप भी ऐतिहासिक उपन्यासोंमे साव-धानीसे सम्हाले गए हैं किन्तु भाषामे जो शक्ति होनी चाहिए उसका अभाव खटकता है। उनकी भाषामें न चुस्ती है, न ओज है, न रोचकता है और प्रवाह है किन्तु सरलता अवश्य है।

चण्डीप्रसाद हृदयेश

साहित्यिक उपन्यासमें जिस प्रकार की ओजःपूर्ण कलात्मक अलंकृत भाषा होनी चाहिए, उसका प्रयोग यदि किसीने अपने उपन्यासोंसे किया तो वह है चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'। इनके दो उपन्यास हैं—मनोरमा और मंगल-प्रभात, जिनकी वर्णन शैली बड़ी मोहक और अलंकृत है किन्तु उनकी प्रवृत्ति भी उपदेश देनेकी अधिक थी। इसलिए बीच-बीचमें कथाकी धारा रोककर धार्मिक और दार्शनिक विवेचन स्थान-स्थानपर दे दिये गए।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

कुछ लोगोंने विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिकको प्रेमचन्दका अनुयायी कहा है किन्तु यह भावना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। कौशिकजी पहले उर्दूमें लिखते थे और फिर हिन्दीमें लिखने लगे। इसलिए स्वभावतः उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहशील और मुहावरोंसे पूर्ण होती थी। उन्होंने सामाजिक उपन्यासोंमें भावावेगोंका

अधिक चित्रण किया है। उनके उपन्यासोंमें 'माँ' और 'भिखारिणी' दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं जिनमेंसे पहले में पारिवारिक और सामाजिक जीवनका चित्रण किया गया है और भिखारिणीमें एक दुःखान्त प्रेम-कथा अंकित की गई है। 'माँ' उपन्यासका अन्त भी दुःखपूर्ण करके उन्होंने उपन्यासका प्रभाव कुण्ठित कर दिया है। ये दोनों उपन्यास सुखान्त बनाकर अधिक रोचक, सरस और प्रभावशाली बनाए जा सकते थे।

चतुरसेन शास्त्री

हिन्दीमें अत्यन्त वेगपूर्ण शैलीमें लिखनेका श्रेय चतुरसेन शास्त्रीको है जिनमें हृदयकी परख, व्यभिचार, हृदयकी प्यास, अमर अभिलाषा और आत्मदाह तो बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु उन्हें अधिक प्रसिद्धि 'वैशालीकी नगर-वधू' के कारण प्राप्त हुई। इसके पश्चात् उन्होंने पूर्णाहुति, रक्तकी प्यास, बहते आँसू, नरमेघ, अपराजिता, मन्दिरकी नर्तकी, दो किनारे, वयं रक्षामः, सोमनाथ और आलमगीर नामकके उपन्यास लिखे। ये तीनों अन्तिम उपन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिके हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र

अत्यन्त नग्न यथार्थवादी या वास्तविकतावादी समाजके घृणित तथा बीभत्स पक्षोंके चित्रण का श्रेय प्राप्त किया पाण्डे बेचन शर्मा उग्रने निम्नांकित उपन्यास लिखकर—'दिल्लीका दलाल' चन्द हसीनोंके खतूत, बुधुआकी बेटी, शराबी और सरकार तुम्हारी आँखोंमें। इसके पश्चात् उनके 'जी जी' उपन्यासमे आदर्शवादी चित्रण देखकर स्वभावतः आश्चर्य होता है। भाषामें उद्दाम गति और प्रवाह यदि किसीको देखना हो तो उन्हें उग्रजीकी रचनाएँ पढ़नी चाहिए।

ऋषभ चरण जैन

ऋषभ चरण जैनने सामान्य जनताकी मानसिक दुर्बलताओंका लाभ उठाकर उसे ही तृप्त करके द्रव्योपार्जन करनेकी वृत्तिसे अत्यन्त दरिद्र प्रकारके उपन्यास लिखे—'मास्टर साहब, वेश्या-पुत्र, गदर, सत्याग्रह, बुरकेवाली, भाग्य, भाई, रहस्यवमयी, चाँदनी रात, मधुकरी, मन्दिर, दीप, मुर्दाफरोश, चम्पाकली, मयखाना, दिल्लीका व्यभिचार हर हाइनेस, तीन इक्के और दुराचारके अड्डे। भाषा, भाव, कथा और विषय निरूपण सभी दृष्टिसे ये उपन्यास दरिद्र हैं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

संयत उपन्यास लिखनेके लिए यदि किसी लेखकको सम्मानके साथ स्मरण किया जा सकता है तो वे हैं व्यक्तिवादी उपन्यासोंकी परम्पराका प्रवर्तक और पोषण करनेवाले सामाजिक उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी, जिनमें आदर्शवादी भावनाके साथ-साथ समाज और परिवारका अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। उनके उपन्यासोंमें प्रसिद्ध हैं—मीठी चुटकी, अनाथ पत्नी, प्रेमपथ, लालिमा, पतिताकी साधना, पिपासा, दो बहनें, त्यागमयी, निमन्त्रण, गुप्तधन, चलते-चलते, पतवार, यथार्थसे आगे और सूनी राह। उनके प्रायः सभी उपन्यासोंमें अधिकांश प्रेमका चित्रण है और उसीके सहारे सामाजिक समस्याओंके समाधानकी भी

योजना की गई है। पीछेके उपन्यासोंमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और पात्रोंमें वैयक्तिकताकी विशेषता अधिक दिखाई पड़ती है।

जैनेन्द्रकुमार

जैनेन्द्र कुमारने मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे हैं अर्थात् उन्होंने कुछ पात्र लेकर उन्हें विशेष परिस्थितियोंमें डालकर उन परिस्थितियोंके प्रति उनकी मानसिक प्रतिक्रियोंका दिग्दर्शन और विवेचन किया है और उन सबका समाधान किसी रूढ़ नैतिक आधारपर न करके मानवीय व्यापक भावनाके अनुसार किया है। उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता उनकी भाषा है जो बहुत टूटी, उखड़ी और असम्बद्ध है। उनके उपन्यासोंमे भाषाकी अशुद्धियाँ भी पग-पगपर मिलती हैं। परन्तु उनका प्रचार आवश्यकतासे इतना अधिक किया गया है कि उनकी प्रसिद्धि अधिक हो गई। उनके उपन्यासोंमें 'परख, तपोभूमि, सुनीति, त्याग-पत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त और 'व्यतीत' प्रकाशित हो चुके हैं। वे थोड़ेसे पात्रोंको लेकर उनका आन्तरिक परीक्षण और विश्लेषण अधिक करते हैं।

भगवतीचरण वर्मा

भगवती चरण वर्माने पतन, चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते और आखीरी दाँव नामक उपन्यास लिखे जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्धि चित्रलेखाने पाई। उन्होंने भी अपने युगके लेखकोंके समान यथार्थवादी दृष्टिसे और उदात्त व्यापक मानवीय भावनासे सामाजिक समस्याओंका समाधान किया है जिनके पात्रोंमें स्वाभाविकता का पुट बहुत कम है किन्तु उनकी वर्णन शैली ऐसी रोचक है कि ये अस्वाभाविक पात्र खटकते नही और कथा पढ़ते चलनेकी उत्कण्ठा बनी रहती है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

प्रतापनारायण श्रीवास्तवने सरकारी अधिकारियोंकी श्रेणीके लोगोंका सामाजिक चित्रण अत्यन्त सफलताके साथ किया है। उनका 'बिदा' उपन्यास इस दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट है जिसमे उन्होंने भारतीय आदर्शकी स्थापना पूर्ण रूपसे की है। इसके पश्चात् उनके 'विजय' और 'विकास' नामक दो और उपन्यास निकले किन्तु वे उतने सफल न हो सके; जितना 'बिदा'। कहीं-कही उनकी भाषा बड़ी अस्वाभाविक और आलंकारिक हो गई हैं। साथ ही उसमें वह प्रवाह नहीं है जो कौशिक या प्रेमचन्दमे है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निरालाजी कवि थे इसलिए स्वभावतः इनके उपन्यासोंमे काव्यत्व अधिक है और सच पूछिए तो साहित्यिक उपन्यासमें काव्यत्व होना ही चाहिए जिससे पाठक उसकी कथाका आनन्द लेनेके साथ-साथ भाषा शैलीका भी आनन्द लें। उन्होंने अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, और बिल्लेसुर बकरिहा, चोटीकी पकड़' आदि बहुतसे उपन्यास लिखे परन्तु इन सबमें 'निरुपमा' अत्यन्त सरस, रमणीय सजीव और नाटकीय परिस्थितियोंसे पूर्ण है। 'अप्सरा' उपन्यास दर्शन और काव्यसे लदा हुआ है। प्रभावती उपन्यास

ऐतिहासिक होते हुए भी ऐतिहासिकताकी शक्तिसे शून्य है। बिल्लेसुर बकरिहामें ग्रामीण व्यंग्यात्मक चित्रोंका विनोदपूर्ण वर्णन है। 'चोटीकी पकड़' में बंगालके जमींदारोंके विलास और वैभवका पूर्ण चित्रण है।

सियारामशरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्तने तीन उपन्यास लिखे—'गोद, अन्तिम आकांक्षा और नारी।' गोदमें एक भाभीके वात्सल्य-स्नेहका चित्रण करनेके साथ साथ भारतके ग्रामीण जीवनका एक पक्ष चित्रित किया गया है। अन्तिम आकांक्षामें एक घरेलू नौकर रामलालको नायक बनाकर यह प्रदर्शित किया गया है कि साधारण व्यक्तिमें भी महत्ता होती है। किन्तु इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है 'नारी'; जिसमें नायिका यमुनाकी आन्तरिक सरलता, सत्यशीलता, दयालुता आदि गुणोंका चित्रण किया गया है।

राधिका रमण प्रसाद सिंह

सूरजपुरा (बिहार) के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंहके उपन्यासोंमें राम-रहीम, सावनी समा, पुरुष और नारी तथा सूरदास प्रसिद्ध हैं। इन सबमें व्यञ्जना-शैलीका चमत्कार लिए हुए राम-रहीम अधिक प्रसिद्ध हुआ जिसके वास्तविक या तथ्यवादी वातावरणमें भारतीय समाजके प्रायः सभी वर्गोंकी नैतिकताका सुन्दर निरूपण किया गया है। 'पुरुष और नारी' में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्रामकी आधार भूमिपर प्रणय-कथा चित्रित की गई है। इनकी भाषा उर्दू हिन्दी मिश्रित होते हुए भी स्वाभाविक नहीं है। कहीं-कहीं वह इतनी अधिक अलंकृत हो गई है कि उससे कथा-प्रवाह भी कुण्ठित हो जाता है। इस फेरमें इनके सम्बाद भी बहुत लम्बे हो गए हैं।

श्रीनाथ सिंह

ठा. श्रीनाथ सिंहने चार उपन्यास लिखे—'उलझन, जागरण, प्रभावती और प्रजा-मण्डल' जिनमें जागरणने अधिक प्रसिद्धि पाई। इन्होंने अपने उपन्यासोंमें उपदेश और शिक्षा अधिक दी है और सम्भवतः इसीलिए लिखे भी है।

गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्द वल्लभ पन्तने 'सूर्यास्त, प्रतिमा, मदारी, जूनिया, अमिताभ, एक सूत्र, अनुरागिनी, नूर-जहाँ, मुक्तिके बन्धन और यामिनी आदि अनेक निराले उपन्यास लिखे जिनमें अमिताभ अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इस युगके उपन्यासकारोंके उपन्यासोंमें अवध नारायणका विमाता, मन्नन द्विवेदीका रामलाल और कल्याणी, जगदीश झा का 'आशा पर पानी, विश्वम्भर नाथ जिज्जाका तुर्क तरुणी, धनीराम प्रेमका 'मेरा देश' और वेश्याका हृदय, शिवनाथ शास्त्रीका 'मँझली बहू', यदुनन्दन प्रसादका 'अपराधी', विश्वनाथ सिंह शर्माका 'कसौटी', शम्भुदयाल सक्सेनाका 'बहूरानी', प्रफुल्लचन्द्र ओझाका 'पाप और पुण्य', जहूरबख्शका 'स्फुलिंग', शिवरानी देवीका नारी-हृदय, चन्द्र शेखर शास्त्रीका 'विधवाके पत्र', और दीपनारायण पाण्डेका 'कपटी' अधिक प्रसिद्ध है।
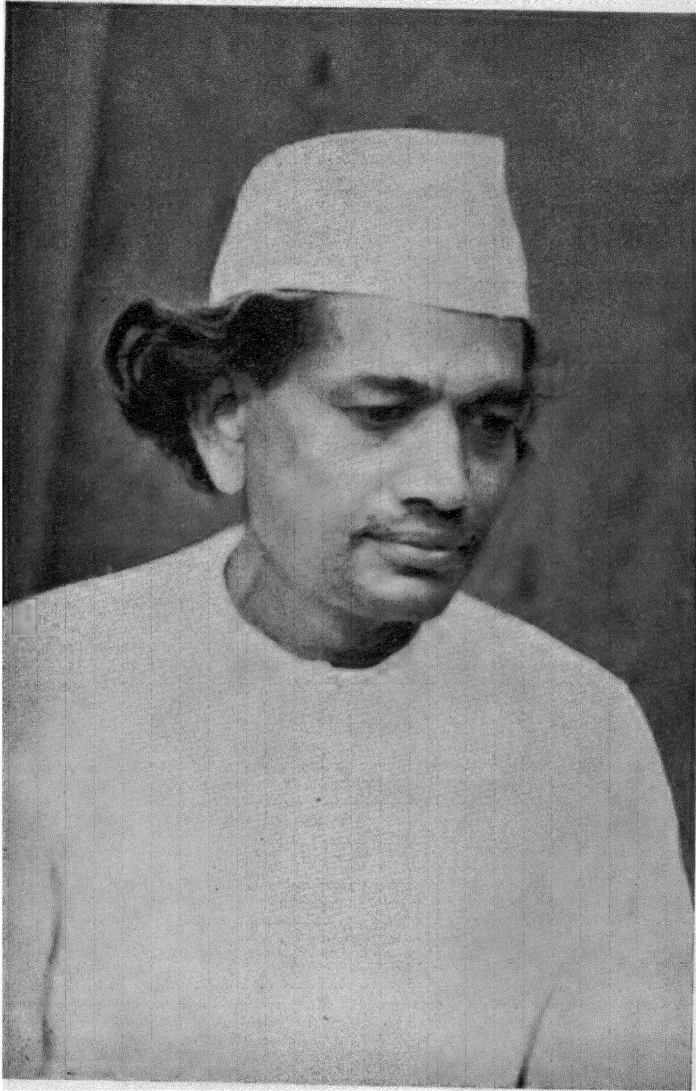
सियारामशरण गुप्त

वर्तमान युग (सन् १९४० से आजतक)

देशव्यापी स्वातन्त्र्य आन्दोलन, रुढ़ियोंके प्रति, विद्रोह, सामाजिक बन्धनोंसे मुक्त होनेकी छटपटाहट, मानववादका प्रचार, मानसिक ग्रन्थियोंका विश्लेषण; सामाजिक यथार्थ तथा काम-वासनाके आधारपर सम्पूर्ण जीवन-क्रियाओंका विश्लेषण नवीन प्रकृति-वाद, तथ्यवाद, अभिव्यञ्जना-वाद, मनोविश्लेषण-वाद और मानवता-वादके रूपमें चले और उन्हें वर्तमान सभी उपन्यासकारोंने ज्यों-का-त्यों विदेशी मुद्राके साथ ग्रहण कर लिया इन्होंने अपनी ओरसे अपने देशकी भाव-परम्पराकी दृष्टिसे तनिक सोचने समझनेका प्रयत्न नहीं किया। इसलिए पिछले २२ वर्षके उपन्यासकारोंमें इन वादोंकी ही धुन दिखाई पड़ती है, जीवनके उदात्त व्यावहारिक पक्षकी नहीं। इन लेखकोंमें इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय, अश्क, रांगेय राघव, अमृतराय, भारती, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिधर गोपाल और महेश मेहता आदि प्रमुख हैं।

मनो-विश्लेषण सिद्धान्तके अनुसार इलाचन्द्र जोशीने घृणामयी, सन्यासी, पर्देकी रानी, प्रेत और कथा, निर्वासित, लज्जा, (घृणामयी का नवीन संस्करण), मुक्ति-पथ, सुबहके भूले, जिप्सी तथा जहाजका पंछी' अधिक प्रसिद्ध हुए हैं जिनमें जोशीजीने चेतना लोकमें दबी और भरी पड़ी मूल-पशु-प्रवृत्तियों और उनके सस्कारोंका मनुष्यके विचार एवं आचरणपर पड़े हुए प्रभावका चित्रण किया है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन (अज्ञेय) ने मनोवैज्ञानिक तथा अन्तर्द्वन्द-पूर्ण उपन्यास लिखे जिनमें 'शेखर एक जीवनी' नामका अत्यन्त असम्बद्ध और अनर्गल कथानकवाला उपन्यास लिखा। यह इतना बड़ा और इतना उलझा हुआ है कि इसे उपन्यासके बदले मनोविज्ञानकी पुस्तक कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसमें न कथा है न उत्सुकता उत्पन्न करनेवाली घटनाएँ; न मनको उलझाए रखनेवाली चरित्र-वृत्तियां और न भाषा-शैलीका सौन्दर्य। अज्ञेयका दूसरा उपन्यास है 'नदीके द्वीप' जिसमें मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व तो उतना नही है, कथा भी व्यवस्थित है किन्तु लेखकके व्यक्तिवादसे वह इतना दब गया है कि कथा अस्पष्ट और गौण हो गई है। इस उपन्यासको समस्या है प्रेम, वासना, तृप्ति और विवाह। कही कही पर सामान्य लोक शीलको भी लेखकने लांघ दिया है। इस प्रकारके उपन्यास किसी भी साहित्यके लिए कलंक कहे जा सकते है। यशपालने अपने दादा कामरेड, देश-द्रोही, उपन्यासोंमें राजनैतिक और सामाजिक विचारोंका प्रतिपादन किया है जिससे सबका सहमत होना सम्भव नही है। तीसरे 'दिव्या' नामक ऐतिहासिक उपन्यासमे बौद्ध कालीन कथाके आधारपर अत्यन्त अस्वाभाविक रूपमें सार्वभौम और सर्वयुगीन समस्याओंका समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है। उनके चौथे उपन्यास 'अमिता' मे कलिंग पर अशोकके आक्रमण और भयंकर मार-काटको देखकर अशोकके हृदय परिवर्तन की कथाका चित्रण किया गया है जिसमें उदार मानवताके भावों और चरित्रोंका उदात्त वर्णन है।

उपेन्द्रनाथ अश्कने वास्तविक जीवनके आधारपर छोटे घटना प्रसंगों और परिस्थितियोंके स्वाभाविक वर्णन किए है जिनमे निम्न मध्य वर्गका स्वभाव, रहन-सहन, आचार-विचार तथा उनकी मानसिक वृत्तियोंका चित्रण किया है। इनके 'सितारोंके खेलमें' आधुनिक ढंगके स्वैरवादी प्रेमकी कथा है। इनके गिरती दीवारें, गर्मराख, बड़ी-बड़ी आँखे और पत्थर अल पत्थर उपन्यास अधिक प्रसिद्ध है।

रांगेय राघवने लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकतासे पूर्ण कालेजके वातावरण तथा तत्सम्बद्ध सामाजिक समस्याओंका निरूपण अपने 'घरौंदे' मे किया है। इसी प्रकार 'कबतक' पुकारूँ' भी बहुत बड़ा सामाजिक उपन्यास है जिसमे नटोंके जीवनका विवेचन किया गया है। किन्तु ये उपन्यास इतने बड़े हैं कि पाठकका जी ऊब जाता है। रांगेय राघवने और भी कई उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'मुर्दोंका टीला, विशाद मठ, चीवर, सीधा-सादा रास्ता, हूजूर और काका उल्लेखनीय है। इनमे ऐतिहासिक और सामाजिक जीवनका पर्याप्त चित्रण है किन्तु कथानकको संगठित रूपमें प्रस्तुत करनेका कौशल तनिक भी नही है।

अमृतलाल नागरने अत्यन्त सूक्ष्मताके साथ देश-कालके चित्रण की गहन विचित्रताका वर्णन करते हुए सामाजिक समस्याओंका समाधान किया है। इनके उपन्यासोंमें 'नवाबी मसनद, सेठ बांके मल, महाकाल तथा दूध और समुद्र नामक उपन्यास हास्य, व्यंगमय रेखा-चित्रोंसे सजीव है। नागार्जुनने रति नाथकी चाची, वलचनबा, नई पौध, बाबा वटेसरनाथ और बड़ेके बेटेमें मिथिलाकी सामाजिक, भौगोलिक और राजनैतिक स्थितिका तथा वहाँके स्त्री पुरुषोंके आचार-विचार रीति परम्पराका अच्छा चित्रण किया है। वर्तमान कालके उपन्यासकारोंमे धर्मवीर भारतीने 'गुनाहोंके देवता तथा सूरजका सातवां घोड़ा', फणीश्वर-नाथ रेणुके मैला अँचल और परती परिकथा, प्रभाकर माचवेने 'परन्तु, सांचा तथा दावा', उदयशंकर भट्टने 'वह जो मैंने देखा', नये मोड़, तथा 'सागर, लहरे' और मनुष्य', देवराजने 'पथकी खोज; लक्ष्मीनारायण लालने 'धरतीकी आँखें, बयाका घोंसला और साँप तथा काले फलका पौधा ; शिवप्रसाद मिश्र, रुद्रने बहती गंगा; अमृत रायने 'वीज, नागफनीका देश तथा हाथीके दांत', गिरिधर गोपालने 'चाँदनीका खण्डहर', राजेन्द्र यादवने 'उखड़े हुए लोग और प्रेत बोलते हैं', विष्णु प्रभाकरने निशिकान्त और तटके बन्धन' शीर्षक उपन्यास लिखे है। इनमें सबसे सरस शिवप्रसाद मिश्रका 'बहती गंगा' है।

इनके अतिरिक्त राहुल सांकृत्यायन, अनूप लाल मण्डल, अंचल, यज्ञदत्त शर्मा, गुरुदत्त, मोहनलाल महतो, कंचन लता सब्बरवाल नरोत्तम प्रसाद नागर, देवेन्द्र सत्यार्थी, भैरवप्रसाद गुप्त, कमल जोशी, यादवेन्द्र-नाथ शर्मा चन्द्र, इन्द्र विद्या वाचस्पति, करतार सिंह दुग्गल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नरेश मेहता, कृष्ण बल्देव वैद्य, कमलेश्वर गिरीश अस्थाना, ओम प्रकाश, जितेन्द्र, गोविन्द सिंह, हर्षनाथ, करुणेन्द्र, अरुण प्रकाश जैन, राधाकृष्ण, कृष्णचन्द्र शर्मा, इन्दिरा नूपुर, राम प्रकाश कपूर आदि अनेक उपन्यासकार हमारी नागरी (हिन्दी) उपन्यासका श्रृंगार कर रहे हैं। अभी इन नए लेखकोंके सम्बन्धमें कुछ कहना सम्भव नहीं है किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि वादोंपर आधार करके जो उपन्यास लिखे जा रहे है वे पाठ्य पुस्तकोंमे भले ही रख लिए जाएँ किन्तु न तो सामान्य उपन्यास-पाठक उनका आदर करेंगे न कलाकी दृष्टिसे ही वे सराहनीय होंगे। उपन्यासमें भाषा-शैलीकी सजीवता और कुतूहलके तत्व अवश्य विद्यमान होने ही चाहिए और उससे पाठकका भावात्मक सस्कार भी होने चाहिअे। अन्यथा वह उपन्यास उपन्यास न होकर किसी विशेष वादका पोषक ग्रन्थ मात्र रह जायेगा।

उपन्यासकी समीक्षा

उपन्यासकी समीक्षा करते समय निम्नांकित प्रश्नोंको ध्यानमें रखकर निर्णय करना चाहिए :—

१—उपन्यासकी कथावस्तु कहाँसे ली गई है ?

२—यदि कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक है तो लेखकने उसमें क्या परिवर्तन करके क्या विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है ?

३—इस परिवर्तनके निमित्त लेखकने किन नवीन पात्रों या घटनाओंका समावेश किया है ?

४—इन पात्रों या घटनाओंमेंसे कितनी वास्तवमें आवश्यकताएँ हैं और कहाँतक उचित है ?

५—यदि कथा काल्पनिक है तो कहाँतक सम्भव, विश्वसनीय, स्वाभाविक और संगत है और उपन्यासकारने जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है उसमें उसे कहाँतक सफलता मिली है ?

६—लेखक अपना उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करनेमें कहाँतक सफल हुआ है और वह प्रभाव भाषा शैली, घटना-संयोजन, पात्र-संयोजन, कथा की प्रकृति तथा पाठकोंकी योग्यतासे कहाँतक मेल खाता है।

८—सम्वादोंकी भाषा-शैली उपन्यासके पात्रोंकी प्रकृति तथा परिस्थितिके कहाँ तक अनुकूल स्वाभाविक तथा उचित मात्रामें है।

९—लेखकने पाठकका मन उलझाए रखनेके लिए किस कौशलका प्रयोग किया है :—

(क) प्रारम्भ उचित ढंगसे किया है या नहीं ?

(ख) घटनाओंका गुम्फन अधिक जटिल तो नहीं हो गया और मार्मिक स्थलोंपर उचित ध्यान दिया गया है या नहीं।

(ग) कथाका चरमोत्कर्ष दिखानेमें शीघ्रता या विलम्ब तो नहीं हुआ और इस चरमोत्कर्षको दिखानेमे अनुचित, अनावश्यक, अस्वाभाविक तथा असगत घटनाओंका समावेश तो नहीं किया गया ?

(घ) उपन्यासका अन्त जिस प्रकार किया गया है वह कथा की प्रकृति, घटना-प्रवाह, पात्रोंके चरित्र और उपन्यासके वर्णित युगकी मर्यादाके अनुकूल संगत, आवश्यक अपरिहार्य और स्वाभाविक है या नहीं ? अनावश्यक रूपसे उपन्यासको दुःखान्त या सुखान्त तो नहीं बना दिया ?

(ङ) किस पुरुषमे कथा कही गई ? क्या वह रीति कथाके लिए उपयुक्त है ?

(च) किस रूपमे कथा कही गई ? वर्णन, पत्र, भाषण, समाचार, सम्वाद आदि।

(छ) रूपकी नवीनता उत्पन्न करनेसे उपन्यासके कथा-प्रवाहमें क्या दीप्ति या दोष आ गए ?

१०—उपन्यासमें वर्णन कहाँतक उचित परिमाण मे आवश्यक और स्वाभाविक है ?

११—जो बातें (पात्रोंका स्वभाव आदि) व्यंजनासे बतानी चाहियें थीं वे अपनी ओरसे तो नहीं कह दी गईं। पात्रोंका चित्रण उनकी मर्यादा और प्रकृतिसे भिन्न, अस्वाभाविक असंगत या अतिरंजित तो नहीं हो गया।

१२—उपन्यासकारने किस विशेष वाद, सम्प्रदाय, नीति या सिद्धान्तसे प्रेरित होकर लिखा है, और उसकी सिद्धिमें वह कहाँतक सफल हो पाया है ?

१३—उपन्यासकारने अपने व्यक्तिगत जीवन या अनुभवकी जो अभिव्यक्ति की है वह कितनी प्रत्यक्ष है और कितनी व्यंग्य है और वह कहाँतक उचित है या अनुचित ?

१४—उस उपन्यासका साधारण पाठकके मनपर क्या प्रभाव पड़ सकता है और वह पाठक की वृत्ति, प्रवृत्ति, स्वभावचेष्टा आदिको कहाँतक अपने पक्षमें ला सकता है ? सामाजिक तथा नैतिक दृष्टिसे वह प्रभाव कहाँतक वांछनीय है ?

१५—उपन्यासमें क्या मौलिकता है और उसमें सुन्दर, अद्‌भुत तथा असाधारण तत्वका सन्निवेश कहाँ और किस प्रकार किया गया है ?

१६—अलौकिक तत्त्वोंका प्रयोग कहाँतक उचित और बुद्धि-संगत हुआ है ?

१७—उपन्यास की कथावस्तु, घटना गुम्फन, भाषा-शैली, चरित्र चित्रण और परिणाम आदिमें जो दोष हों उनको सुधारके लिए क्या सुझाव दिए जा सकते हैं।

हिन्दीके क्षेत्रमें आजतक उपन्यासकी आलोचना केवल उसके विषय और सन्देश या प्रतिपाद्यके आधारपर होती है। मार्क्सवादी आलोचनामें जैसे विषय या परिणामको अधिक महत्व दिया जाता है वैसे ही विषय और सन्देशको अधिक महत्व दिया जाने लगा है और इस दृष्टिसे अधिक विचार किया जाता है कि अमुक लेखकने कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण किया अथवा अमुक वादकी दृष्टिसे उसका क्या महत्व है, इस दृष्टिसे नही कि समाजके भाव-परिष्कारके लिए उपन्यासकारने क्या व्यवस्था की है और साहित्यकी दृष्टिसे अर्थात् अभिव्यक्तिको अधिक हृदयग्राही और प्रभावशाली बनानेके लिए उपन्यासकारने अपनी भाषा-शैली और अभिव्यंजना शैलीमें क्या शक्ति भरी है। इसीलिए आजके उपन्यासोंको तबतक साहित्यिक कहना बड़ा कठिन है जबतक उनमें पर्याप्ति मात्रामें साहित्यिक तत्त्वोंका सन्निवेश न हो।

उपन्यासके क्षेत्रमें आजकल भयंकर अराजकता व्याप्त है। आजके सभी उपन्यास फ्रायडकी पूँछ पकड़कर मानव-मनका विश्लेषण तथा काम-वृत्तियोंके प्रदर्शनका पोषण अथवा मार्क्सके सिद्धान्तका पल्ला थामकर वर्गहीन समाज बनानेकी दुन्दुभि बजा रहे हैं। उपन्यासके काव्यतत्व अर्थात्, भाषा, शैली आदि का कोई ध्यान नहीं रखता। साहित्यके विकासमें यह प्रवृत्ति बड़ी घातक है।

छोटी कहानियाँ

जिस प्रकार उपन्यासोंकी भीड़ नागरीमे लग गई उसी प्रकार छोटी कहानियोंकी भी। इस समय संसारकी सभी भाषाओंमे यदि साहित्यके किसी एक अंगकी सर्वाधिक पूर्ति हो रही है तो छोटी कहानियो की। जितने भी पत्र निकलते हैं सबमें दो-चार कहानियाँ देनेका नियम हो गया है। पाठकको मनोरञ्जन चाहिए ही और इस मनोरञ्जनके लिए छोटी कहानियाँ सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई हैं : इस यान्त्रिक और व्यस्त युगमें मनुष्यके पास अवकाश की कमी हो गई है। इसलिये बड़े-बड़े उपन्यास पढ़नेका समय किसके पास है। जीवन सघर्षमय हो जानेसे गम्भीर चिन्तनात्मक विषयोंके अध्ययनकी प्रवृत्ति अब समाप्त हो गई है। इसीलिए अब वेगसे बुद्धिका भी ह्रास हो रहा है। ऐसी अवस्थामें छोटी कहानियाँ लिखने और पढ़नेका चलन बहुत बढ़ चला है।

आधुनिक छोटी कहानियाँ भी उपन्यासोंकी भाँति पूर्णतः पश्चिमकी देन है, कहानी कहने और सुननेकी चाल इस देशमें भी बहुत प्राचीन कालसे है। जातक-कथाएँ, कथासरित्सागर, पंचतन्त्र सब कहानियाँ ही हैं किन्तु आजकल जिस ढंगकी कहानियाँ लिखी जा रही है उसकी चाल पहले नहीं थी।

भारतेन्दु कालमें लेखकोंका ध्यान कहानियोंकी ओर नहीं गया। वास्तविकता यह है कि योरपमें भी इस प्रकारकी कहानीका विकास विक्रमकी २० वीं शताब्दीके आरम्भसे ही हुआ ;। कुछ लोगोंने इंशाकी 'रानी केतकीकी कहानी' को हिन्दीकी प्रथम कहानी माना है किन्तु आजकलकी कहानियोंसे उनका तनिक

भी मेल नहीं है। इसी प्रकार राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत 'राजा भोजका सपना' और भारतेन्दु कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' आधुनिक कहानी की परिधिमें नहीं है। इसलिए हिन्दीमें कहानियोंका आरम्भ द्विवेदी युगसे मानना चाहिए जिसका पिछले पचास-साठ वर्षोंमें तीव्र गतिसे विकास हुआ है।

कहानीका विकास पत्र-पत्रिकाओंके विकाससे सम्बद्ध है। सरस्वती निकलनेके समय (सम्वत् १९५७) से ही छोटी कहानियोंका लिखा जाना आरम्भ हुआ। प्रारम्भिक दस वर्षोंके भीतर रचनाओंके अनुवाद कहानीके रूपमें प्रकाशित हुए। सरस्वतीके प्रथम वर्षमें ही किशोरीलाल गोस्वामीकी 'इन्दुमती' कहानी प्रकाशित हुई। कुछ लोग इसे बंगलाका अनुवाद और कुछ लोग शेक्सपियरके 'टेम्पेस्ट' नाटककी छाया कहकर इसे मौलिक कहानी ही नहीं मानते। इसी अवधिमें बंगलासे बंग महिला एवं गिरजाकुमार घोषने कई अच्छे अनुवाद प्रकाशित किए। मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा आदिने भी मौलिक कहानियाँ लिखनेको चेष्टा की परन्तु वे सफल न हो पाए। सम्वत् १९६० में आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी 'ग्यारह वर्षका समय' सरस्वतीमे प्रकाशित हुई और १९६४ में वंग महिलाकृत 'दुलाईवाली' दूसरी कहानी। इसके पश्चात् इन्दुका प्रकाशन आरम्भ हुआ और १९६८ मे 'प्रसादजीकी पहली कहानी 'ग्राम' उसमें छपी। फिर तो उन्होंने आकाशदीप, स्वर्गके खण्डहर, प्रतिध्वनि आदि न जाने कितनी कहानियाँ लिखीं। कौशिकजीकी 'रक्षाबन्धन' कहानी भी इसी समय प्रकाशित हुई। गुलेरीजीकी प्रथम कहानी, 'सुखमय जीवन' और अन्तिम कहानी 'उसने कहा था' १९७२ के पूर्व छपी। किन्तु उपन्यासके समान ही कहानीके क्षेत्रमें भी उर्दूसे हिन्दीके क्षेत्रमें प्रेमचन्दके आगमनके अनन्तर क्रान्तिका युग आया। उनकी पहली कहानी 'पंचपरमेश्वर' सम्वत् १९७३ मे प्रकाशित हुई और फिर तो उन्होंने हिन्दीमें कितनी ही बेजोड़ कहानियाँ लिखी। सम्वत् १९९० तक कहानी-कला अपने पूर्ण रूपमे प्रतिष्ठित हो चुकी थी और नागरीमे कितने ही उच्च श्रेणीके कहानीकार उत्पन्न हो गए थे। इन्होंने विभिन्न प्रकारकी विभिन्न शैलियोंमें, विभिन्न मनोभावों और परिस्थितियोंको अंकित करनेवाली ढाई तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। संख्या, कला और शैली सब दृष्टिसे देखनेपर प्रेमचन्दजी इन सबसे आगे निकल जाते हैं। प्रेमचन्दकी मौलिक कहानियोंका क्षेत्र भी मुख्यत: ग्रामीण जीवन, ग्रामीण जनता, दलित कृषकवर्ग, सामाजिक तथा कौटुम्बिक समस्याएँ है। प्रेमचन्दजीने चरित्र-चित्रणकी प्रत्येक प्रणालीका अवलम्बन किया है। उन्होंने प्राय: पात्रोंके सवादके माध्यमसे ही उनकी चारित्रिक विशेषता उद्घाटित करानेकी चेष्टा की है। उनकी भाषा बड़ी बलशाली, वेगवती और सिद्धोक्तियों (मुहावरों) के योगसे आकर्षक हो गई है। सामयिक घटनाओं और आन्दोलनोंका प्रभाव भी इनकी कहानियोंपर बहुत पड़ा है।

सुदर्शन और कौशिकने अधिकतर प्रेमचन्दका पन्थ ही पकड़ा।

जयशंकर प्रसादने भी साठसे ऊपर कहानियाँ लिखीं जिनमें उनकी कलाका विकास बराबर देखनेको मिलता है। प्रसादजीकी कहानियाँ सीधे हृदयको स्पर्श करती है। मनोभावोंके आन्दोलनोंसे हृदयको क्षुब्ध कर देनेमे प्रसादजी अद्वितीय है। कहानियोंका कथानक प्राचीन होनेपर भी प्रसादजीने अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा उसे आकर्षक और मनोरंजक बना दिया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्रने अपने उपन्यासोंकी भाँति कहानी कहनेमें भी सफलता प्राप्त की। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी शैली पूर्ण रूपसे मौलिक और अपने ढंगकी अकेली है।

विनोद शंकर व्यासने छोटी-छोटी अनेक भाव-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियाँ प्रायः सबकी सब अत्यन्त छोटी हैं। दो-तीन पात्रोंसे ही ये अपना काम चला लेते हैं।

जैनेन्द्र कुमारने मनोवेगोंको आधार मानकर कुछ कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु उनकी भाषामें बल नही है। वे मनोभावोंके विश्लेषणमें ही अधिक शक्ति लगाते हैं। अज्ञेयने भी इसी ढंगकी बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द जोशी, यशपाल आदिने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

विनोद-व्यंग्य प्रधान कहानीकारोंमे अन्नपूर्णानन्द और बेढब ब भारती का नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं। स्वागत दृश्योंको विशेष महत्व प्रदान करके लिखी हुई कहानियोंमें शिवप्रसाद मिश्र रूद्र कृत 'बहती गंगा' का अपना अलग स्थान है। कुछ लोगोंने इसे ऐतिहासिक उपन्यास भी माना है क्यों कि इसकी कहानियाँ क्रमसे काशीके पिछले दो सौ वर्षोंके सांस्कृतिक इतिहासका भी परिचय देती हैं।

भाषा, विषय और कौशलकी दृष्टिसे तान्त्रिक और अतिमानवीय विषयोंपर कहानियाँ लिखनेमें बलदेवप्रसाद मिश्र अद्वितीय हैं।

उपन्यासके समान कहानीके क्षेत्रमें भी यह अराकता व्याप्त हो गई है कि लोग कथा, मनो-विश्लेषण, सिद्धान्त और बादके फेरमें अधिक पड़ गए हैं, भाषा-सौष्ठव तथा पाठकके चित्तको कुतूहलसे भरकर उसकी मानसिक तुष्टि और भाषा-शैलीके चमत्कारसे काव्यास्वादन करानेकी प्रवृत्ति समाप्त हो गई है इसलिए ऐसी सब रचनाएँ काव्यके क्षेत्रमेंसे बाहर समझी जानी चाहिए जिसमें विषय ही प्रधान हो, भाषा और शैली गौण हो जाय।

छोटी कहानी

छोटी कहानी वह सुसम्बद्ध, संक्षिप्त तथा पूर्ण कहानी है, जो कौशलपूर्ण रचना-शैली और भावा-नुकूल भाषा-शैलीमे कही गई हो और जो पाठकके मनपर एक ही प्रभाव डाले या जिसका एक ही परिणाम हो।

छोटी कहानीकी समीक्षा

छोटी कहानीकी समीक्षा करते समय निम्नांकित प्रश्नोंपर ध्यान देकर रचना करनी चाहिए :—

१—कथा-कारका क्या उद्देश्य है ? कथा-कार कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है या केवल मनोविनोद ?

२—कथाकारने एक ही घटना ली है या नहीं ? उसने भूलसे किसी अनेक घटनाओंवाली कथाको छोटा करके कहनेको ही तो छोटी कहानी नहीं समझ लिया ?

३—वह कथा अपने आदि, मध्य और अन्तसहित पूर्ण है या नही और वह साधारणतः एक बैठकमें पढ़ी जाकर (आध या पौन घण्टेमें) एक ही प्रभाव उत्पन्न करती है या नहीं।

४—उसकी भाषा-शैली कथाके अनुरूप तथा पाठकोंकी समझमें आ सकनेवाली है या नहीं ?

५—पात्रोंके चरित्र और सम्वादकी उसमें वर्णित युगकी मर्यादा प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुकूल है या नहीं ?

६——कहानीको रुचिकर बनानेके लिये लेखकने किस कौशलका आश्रय लिया है——

क——प्रारम्भ कैसे किया है ?

ख——बाह्य द्वन्द तथा पात्रोंके मानसिक द्वन्दका किस प्रकार समन्वय किया है ?

ग——चरमोत्कर्षपर कहानी समाप्त कर दी या उपसंहार भी किया है ?

घ——कहानीका अन्त कहाँ तक उचित और न्याय-संगत हुआ है ?

ङ——किस पुरुषमें कहानी कही गई——प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, या उत्तम पुरुषमे ?

च——किस रूपमें कही गई——वर्णन पत्र, सम्वाद, भाषण, समाचार आदि।

७——किस वाद, सम्प्रदाय, नीति, सिद्धान्त या प्रभाव को दृष्टिमे रखकर लिखी गई और उसकी सिद्धिमें लेखक कहाँ तक सफल हुआ।

८——लेखकका व्यक्तित्व या उसकी अपनी धारणाएँ कहाँ तक व्यक्त हुई है ?

९——अनावश्यक वर्णन या विस्तार तो नही है ?

१०——कथाका साधारण पाठकके मनपर क्या प्रभाव पड़ सकता है और वह प्रभाव कहाँतक नैतिक है ? सामाजिक दृष्टिसे वह कहानी और उसका परिणाम कहाँ तक वांछनीय है ?

११——उसमे क्या मौलिकता है और लेखकने किन सुन्दर, अद्भुत तथा असाधारण तत्वोंका सन्निवेश उनमें किया है ?

१२——उसमे जो दोष प्रतीत होते है उनका कैसे मार्जन किया जा सकता है।

हिन्दीमे कहानियोंकी समीक्षा भी विशेष वादों, व्यक्तिगत सम्बन्धों और प्रचारवादी हथकण्डोंके साथ हुई। भारतमे प्रकाशित होनेवाली हिन्दीकी अगणित पत्र-पत्रिकाओंमें इतनी अधिक और इतने विविध प्रकारकी सुन्दर कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं और हो रही है कि कुछ थोड़ेसे प्रतिष्ठा प्राप्त या प्रचारित लेखकोंका नाम देकर उनका महत्व कम करना उचित नही प्रतीत होता क्योंकि सभी कहानीकारोंकी सभी कहानियाँ अच्छी नही है। कभी-कभी अप्रसिद्ध लेखककी कोई कहानी बहुत अच्छी बन गई है और सुप्रसिद्ध लेखककी कहानी बड़ी दरिद्र हो गई है अतः यह रेखा खींचकर कहना न्याय संगत नही होगा कि अमुख-अमुक लेखक ही अच्छे कहानीकार है क्योंकि कहानीकी अच्छाईका आधार है विषय और उसे प्रस्तुत करनेकी शैली। जबतक ये दोनों तत्व नहीं होते तबतक कहानी अच्छी नही बन सकती, जैसे रसोई कभी-कभी अच्छी बनती है वैसे ही साहित्यक रचना भी कोई-कोई ही सफल हो पाती है, सब नहीं।

हिन्दीके प्रसिद्धि प्राप्त कहानी लेखकोंमें निम्नांकित मुख्य है :——

किशोरीलाल गोस्वामी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रधर गुलेरी, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चंडी, प्रसाद 'हृदयेश', विनोद शंकर व्यास, ज्वालादत्त शर्मा, शिवपूजन सहाय, शिवनारायण द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, ठाकुर श्रीनाथ सिंह,विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री, बलदेव उपाध्याय, सीताराम चतुर्वेदी, करुणापति त्रिपाठी, बेढब बनारसी, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, पहाड़ी, व यशपाल। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गोविन्द वल्लभ पन्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', कमलाकान्त वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, वाचस्पति पाठक, देवेन्द्र सत्यार्थी, भगवती चरण वर्मा, शिवप्रसाद मिश्र रुद्र, ऋषभ चरण जैन, सद्गुरु शरण अवस्थी, कमला चौधरी,

होमवती, उषादेवी मित्रा, सुमित्राकुमारी सिनहा, सत्यवती मल्लिक, आरसीप्रसाद सिंह, भुवनेश्वर प्रसाद सिंह, अन्नपूर्णानन्द, रांगेय राघव, अमृतराय, रामचन्द्र तिवारी, प्रभाकर माचवे, शम्भुनाथ सक्सेना, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा।

हिन्दीमें केवल कहानियोंकी तो अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती ही हैं, अन्य मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओंमें भी कहानियाँ निरन्तर प्रकाशित होती रहती है जिनमेंसे कुछ ही शैली और कौशलकी दृष्टिसे कलात्मक होती हैं। इन पत्रिकाओंमें काशीके 'बेढब' बनारसीके संपादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली 'आँधी' नामक पत्रिकामें बहुत ही उच्च कोटिकी कलात्मक कहानियोंका प्रकाशन हुआ था। कहानी लिखनेवालोंकी संख्या इतनी अपरिमित है कि सबकी गणना कराना सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि हिन्दीकी कहानियोंमें विषय और कौशल (टेकनीक) की विविधता तो बहुत है किन्तु शैलीके सम्बन्धमें हमारे सभी कहानीकार बड़े, उदासीन और शिथिल हैं। कहानीके विषय और भावके अनुसार शब्द योजना और भाषा-शैलीका प्रवाह लानेका प्रयत्न तनिक भी न हुआ है, न हो रहा है।

नागरीका काव्य-साहित्य

१९ वीं शताब्दी ईसवीके मध्यसे अर्थात् लगभग १८५० से आगे भी यद्यपि ब्रजभाषामें ही भक्ति और शृंगारकी कविता होती चली आई फिर भी भारतीय स्वतन्त्रताके प्रथम युद्ध अर्थात् सन् १८५७ के पश्चात् भारतेन्दुके समय में ही और उन्हींकी प्रेरणासे नागरीमें कविता होने लगी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने नागरी गद्यको सँवारनेका जितना प्रयत्न किया उतना कविताको नहीं; फिर भी उन्होंने नागरीमें उर्दूके ढंगकी लावनियाँ और खयाल लिखे।

भारतेन्दुजीके गोलोकवासी होनेके थोड़े ही दिन पीछे लोगोंके मनमें यह बात खटकने लगी कि जब गद्य नागरीमें लिखा जाय तो पद्य ब्रजभाषामें क्यों लिखा जाय, वह बात बड़ी असंगत है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने भी दशरथ-विलाप नामसे एक कविता नागरीमें लिखी थी—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़कर हमको सिधारे॥

नागरीमें नामदेव, कबीर, खुसरो आदि पहले भी रचना कर आए थे। फिर भी काव्यके क्षेत्रमें तो ब्रजभाषाका ही बोलबाला था। नागरीदास तथा नजीर अकबराबादीने भी नागरीमें कुछ रचनाएँ की हैं:—

यारो सुनो ये दधिके लटैयाका बालपन।
और मधुपुरी नगरके बसैयाका बालपन॥

आदि। लखनऊके शाह कुन्दनलाल और फुन्दनलालने ललितकिशोरी और ललितमाधुरीके नामसे ब्रजभाषाके अतिरिक्त नागरीमें कुछ झूलना छन्द लिखे हैं।

जंगलमें सब रमते हैं, दिल बस्तीमें घबराता है।
मानुस गन्ध न भाती है, संग मरकट मोर सुहाता है॥

इसके पश्चात् मिरजापुरके तुकनगिरी गोसाईंने नागरीमे लावनी चलाई जिसमे ब्रह्मज्ञान ही रहता था। इस प्रकार नागरीकी तीन ढंगकी छन्द-प्रणालियाँ चलीं जिनमे कुछ कवित्त-सवैयेकी प्रणाली थी, कुछ उर्दू छन्दोंकी प्रणाली और कुछ लावनी की। प. श्रीधर पाठकने १८५६मे लावनीके ढंगपर एकान्तवासी योगी लिखा जिसकी भाषा चलती बोल-चालकी नागरी थी।

प्रान पियारेकी गुनगाथा साधु कहाँतक मैं गाऊँ।
गाते-गाते चुके नहीं. वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ ॥

इसके पश्चात् नागरी या खड़ी बोलीके आन्दोलनका झण्डा उठाया। मुंजफ्फरपुरके बाबू अयोध्या-प्रसाद खत्रीने जिन्होंने 'खड़ी-बोली-आन्दोलन' नामक पुस्तकमे चार शैलियोंकी चर्चा की—मौलवी स्टाइल, मुन्शी स्टाइल, पण्डित स्टाइल, और मास्टर स्टाइल। उन्होंने बहुतसे लोगोंसे नागरी अर्थात् खड़ी बोलीमे कह-कहकर अनेक कविताएँ लिखवाईं।

ललितकिशोरी

भारतेन्दुके समयमे ही स्वतन्त्र रूपसे भी रचनाकी प्रवृत्ति बढ़ रही थी जिसे लावनी बाज़ों और खयाल बाज़ोंने बड़ा आश्रय दिया। इस प्रकारकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित नागरीमे स. १८१३ के लगभग लखनऊ-निवासी ललित किशोरीने झूलना छन्द भी लिखे—

जंगलमें अब रमते हैं दिल बस्तीसे घबराता है।
मानुष गंध न भाती है सँग मरकट मोर सुहाता है॥
चाल गरेबाँ करके दमदम आहें भरना आता है।
ललितकिशोरी इश्क रात-दिन यह सब खेल खिलाता है॥

स्वैरवाद

इस युगके पश्चात् नागरीके क्षेत्रमे वह युग आया जिसे हम स्वैरवादी या आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमे सच्चा या नैसर्गिक स्वच्छन्दतावादी, कह सकते हैं जिसमे लेखकों और कवियोंने प्राचीन रूढ़ियोंसे मुक्त होकर नये विषयों और लोकभावनाके साथ सामञ्जस्य स्थापित किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके सह-योगियोंने भी यद्यपि नए-नए विषयोंपर रचनाएँ कीं किन्तु भाषा ब्रज ही रही और पद्य-निर्माण की शैली, भावाभिव्यंजनके स्वरूप तथा प्रकृति-चित्रणमे कोई नवीनता नहीं आई। वास्तविक स्वैरवादका स्वरूप यदि कहीं मिला तो श्रीधर पाठकके एकान्तवासी योगीमें, जिसमे उन्होंने अपने नेत्रोंके सामने व्यक्त होती हुई प्रकृतिका अर्थात् मूली-मटर जैसी वस्तुओंका भी वर्णन किया और नागरी पद्यके लिए नए छन्द भी दिये। अपनी 'स्वर्गीय वीणा' मे उन्होंने आध्यात्मिक भावनाओंका भी रहस्यपूर्ण सकेत किया इसलिए श्रीधर पाठक ही वास्तवमे हिन्दी कविताके प्रथम स्वैरवादी कवि कहे जा सकते हैं। किन्तु प्राचीनतावादी पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके प्रभावके कारण यह पद्धति चल न पाई और नीरस इतिवृत्तात्मक तुकांत पद्य धुआँधार रचे जाने लगे। इसके पश्चात् तो लोग योरपसे बँगला-द्वारा हिन्दीमे प्रविष्ट होनेवाली रहस्यभरी कविताओंके रंगमे ऐसे रंगे कि इतिवृत्तात्मकता छूट गई और हिन्दी कविता भी विदेशी रहस्य धारामे बह चली।

पण्डित श्रीधर पाठकने नागरीमें 'श्रान्त पथिक' (गोल्डस्मिथके ट्रैवलरका अनुवाद) और बहुत-सी छुटपुट कविताएँ लिखीं। इन्होंने कई नए ढाँचेके छन्द भी निकाले और अन्त्यानुप्रास-रहित छन्द भी लिखे। इनके उदाहरण लीजिए :—

विजन बन प्रान्त था, प्रकृति-मुख शान्त था,
अटनका समय था, रजनिका उदय था।
कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है।
सुरोंके संगीतकी-सी कैसी, सुरीली गुंजार आ रही है।।

इनकी कवितामें सभी प्रकारके विषय होते थे। इन्होंने प्रकृतिका वर्णन जितना किया है इस युगके बहुत कम कवियोंने किया है। इसलिए इन्हें प्रकृतिका कवि कहा जाता है। इनका जन्म १८७६ में और मृत्यु १९२८ में हुई।

हरिऔध

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधने हिन्दीमें क्रान्तिकारी युग उपस्थित किये। इन्होंने संस्कृत और उर्दूके छन्द लिए, नागरी भाषा ली और नागरी भाषामें भी ठेठ बोलीसे लेकर संस्कृतकी तत्समाश्रित समास-बहुला शैलीतक सबका प्रयोग किया। भाषापर इनका असामान्य अधिकार था। उर्दू, फारसी, हिन्दी, संस्कृत, ब्रज सभीका इन्हें विस्तृत ज्ञान था। ये वास्तवमें कवि थे, जिन्होंने आजीवन नित्य नियमसे पाँच छन्द रचकर कविताकी थी।

सन् १९१४ मे इनका 'प्रियप्रवास' नामक प्रबन्ध काव्य निकला जिसके सम्बन्धमें बहुत दिनोंतक यही चर्चा चली कि वह महाकाव्य है या खण्ड-काव्य। उसमें अक्रूरके आगमनसे लेकर श्रीकृष्णके मथुरा चले जाने और उनके वियोगमें गोप-गोपियोंके वियोगका पूरा चित्रण है। इसलिए वह महाकाव्य ही है। उसमें श्रीकृष्णको ब्रजके रक्षक नेता के रूपमें चित्रित किया गया है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पूरा काव्य संस्कृतके वर्णवृत्तोंमें रचा गया। प्रियप्रवासके अतिरिक्त हरिऔधजीने वैदेही-वनवास भी लिखा जो प्रियप्रवाससे अधिक प्रौढ़ होनेपर भी उतनी प्रसिद्धि न प्राप्त कर सका। रसकलस तो निश्चय ही इनकी एक विशिष्ट विभूति है। प्रियप्रवाससे दो उदाहरण लीजिए :—

दिवसका अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।।
तरु शिखापर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभकी प्रभा।।

× × ×

रूपोद्यान-प्रफुल्लप्राय-कलिका, राकेन्दु बिम्बानना,
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली।।
शोभावारिधिकी अमूल्य मणि-सी लावण्य-लीलामयी।
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य सम्मूर्ति थीं।।
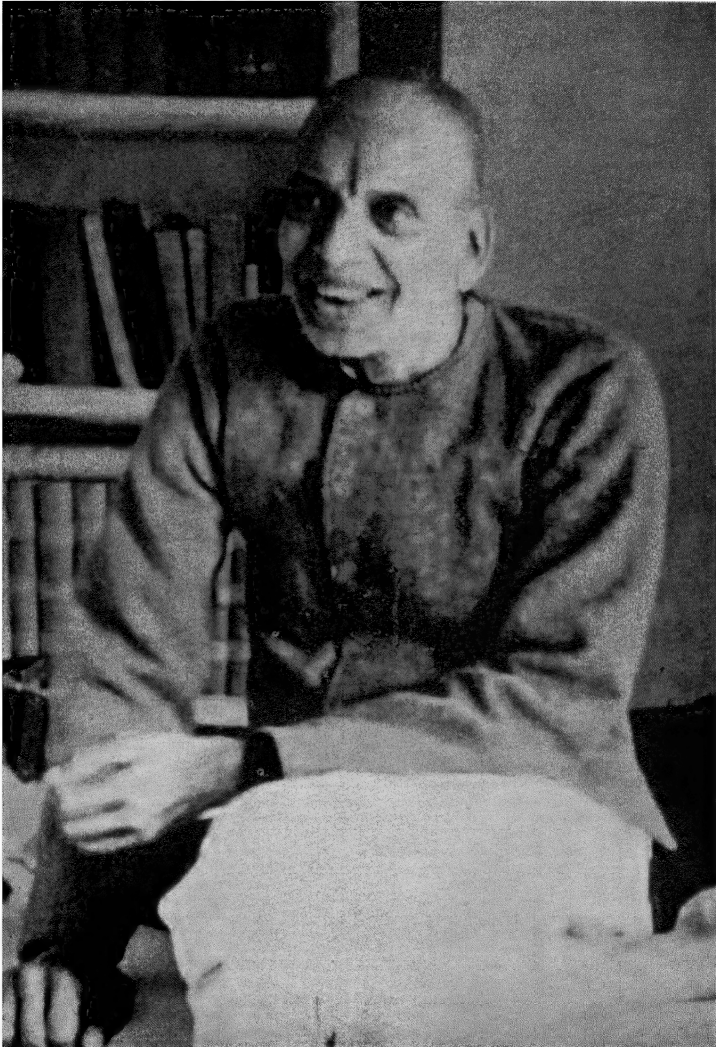
मैथिलीशरण गुप्त

चोखे चौपदेसे एक उदाहरण लीजिए :—

क्यों पले पीसकर किसीको तू।
है बहुत पौलिसी बुरी तेरी॥
हम रहे चाहते पटाना ही।
पेट तुझसे पटी नहीं मेरी॥

यद्यपि पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने भी पद्य-रचना की; और ये सानुप्रास कोमल पदावलीका प्रयोग करते रहे किन्तु इनकी और इनके सभी अनुयायियोंकी कविता ऐसा नीरस पद्यमात्र बनी रही जैसे गद्यमें कहीं जानेवाली कोई बात छन्दमें बाँधकर रख दी गई हो। उनमें न व्यंजना थी न भावोंका चित्रमय विन्यास और न अभिव्यक्तिकी वक्रता।

मैथिलीशरण गुप्त

द्विवेदीजीके शुद्ध अनुयायी और शिष्य मैथिलीशरण गुप्तजीने नागरी कविताका ढेर लगा दिया जिनमें तुकबन्दी अधिक है, काव्यका सौन्दर्य, आकर्षण, चमत्कार और लालित्य कम है। इन्होंने सरलताके कारण अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होंने सबसे पहले 'रंगमे भंग' नामका प्रबन्ध काव्य लिखा जिसमें चित्तौड़ और बूँदीके राजघरानोंकी कथा और राजपूतोंकी आनका चित्रण था। इसके पश्चात् ऐतिहासिक पद्य-प्रबन्धके रूपमे 'भारत-भारती' निकली जिसमें भारतीयों या हिन्दुओंके अतीत और वर्तमान दशाका चित्रण करके भविष्यके लिये प्रेरणा दी गई है। इन्होंने रंगमें-भंग, दयद्रथवध, विकट भट, पलासीका युद्ध, गुरुकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, द्वापर और यशोधरा नामके अनेक छोटे बड़े काव्य लिखे जिनमेसे जयद्रथ वध और पंचवटी अधिक प्रसिद्ध हुए। जहाँ गुप्तजीको कोई प्रसिद्ध कथा मिल जाती है वहाँ तो वे कुछ सफलता पा जाते है किन्तु जहाँ इन्हें अपनी कल्पनासे काम लेना पड़ता है वहाँ इनकी कल्पना इन्हें धोखा दे जाती है। यह बात यशोधरा और साकेत दोनोंमे है।

साकेतमें उर्मिलाको नायिका बनाकर रामायणकी कथा कही गई है किन्तु विदेहराज जनककी पुत्री, दशरथकी पुत्रवधू और यती लक्ष्मणकी पत्नी जिस उच्छृंखल और क्षुद्र रूपसे व्यवहार करती है वह उर्मिला और रघुकुलकी उदात्त मर्यादाके सर्वथा विपरीत है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थानपर उन्होंने जो संवाद कराए है या गीत जोड़े है वे ऐसे अव्यवस्थित और असंगत है कि वे काव्यकी धाराको अनावश्यक रूपसे नष्ट कर देते है। प्रारम्भमें उर्मिला और लक्ष्मणका परस्पर अत्यन्त निम्नकोटिका परिहास, उर्मिलाका विविध प्रकारसे विलाप, हनुमानकी सूचनापर अयोध्याकी सेना सजनेपर भी उर्मिलाका झण्डा लेकर निकलना और वशिष्ठजीका ताली बजाकर राम-रावणके युद्धका चलचित्र दिखाने लगना केवल कवि कौशलकी कमीको ही सूचित नहीं करते वरन् अत्यन्त हास्यप्रद भी लगते है। इसमे इन्होंने किसानोंके साथ सहानुभति, प्रजाका अधिकार सत्याग्रह और विश्वबन्धुत्व आदि इस युगके आन्दोलनोंका स्थान-स्थानपर संकेत करके पूरे काव्यकी महत्ता इतनी नष्ट कर दी है कि वह प्रचार-साहित्य बन गया है। इनकी अधिकांश कविता अत्यन्त हीन कोटिकी है।

एक उदाहरण लीजिए :—

प्रभु नहीं फिरे क्या तुम्हीं फिरे,
हम गिरे, अहो तो गिरे, गिरे।

यह भी कुछ कविता है !

यशोधराकी रचना नाटकीय गीत (ड्रेमेटिक लिरिक) के ढंगपर हुई है जिसमें गद्य-पद्य दोनोंका सम्मिश्रण है। यह न नाटक ही हो पाया है न चम्पू ही।

द्वापरमें नाटकीय आत्म-विश्लेषण (ड्रेमेटिक मोनोलोग) की शैलीका प्रयोग किया गया है जिसमें यशोदा, राधा, नारद, कंस, और कुब्जा आदि अपनी-अपनी मनोवृत्तियोंका चित्रण करते हैं। किन्तु इनमेंसे भी किसीमें भी कोई ऐसा काव्यात्मक आकर्षण नहीं है कि उसे पढ़कर चित्त फड़क उठे।

गुप्तजीने तिलोत्तमा, अनघ और चन्द्रहास नामके कुछ रूपक भी पद्यमें लिखे हैं पर उनमें भी कोई विशेष रस नहीं है।

गुप्तजी शुद्ध अवसरवादी कवि हैं। वे समय समयपर अवसरके अनुसार रचनाएँ करते आए हैं और देशमें जब जिस भावनाकी प्रधानता देखते रहे उसी भावकी रचना करते रहे। इसी दृष्टिसे वे राष्ट्र-कवि कहे जाते हैं। किन्तु काव्यकी दृष्टिसे उन्होंने काव्य-रसिकोंको बड़ा निराश किया है।

अन्यकवि

इस युगके नागरीके प्रेरक कवि पं. महावीर प्रसाद द्विवेदीके अतिरिक्त गाजीपुरके रामचरित उपाध्याय झालरापाटनके गिरिधर शर्मा नवरत्न, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि सरस्वतीमें अपनी रचनाएँ भेजते रहे। किन्तु उस युगकी अधिकांश रचनाओंमें तुकबन्दी ही रहती थी, वास्तविक काव्य सौष्ठवका बड़ा अभाव था। द्विवेदीजीके प्रभावके बाहर राय देवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शंकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवानदीन, रूपनारायण पाण्डेय, अनूप शर्मा, ठा. गोपाल शरणसिंह, सियाराम शरण गुप्त, और रामनरेश त्रिपाठीने सुन्दर रचनाएँ की। इनमेंसे कुछ तो ब्रज-भाषाके भी कवि थे। नाथूराम शंकर शर्मा और राम-नरेश त्रिपाठीने निश्चय ही प्रभावपूर्व रचनाएँ की किन्तु उचित विषय न खोज पानेके कारण वे आगे न बढ़ पाए।

वर्तमानकालके कवि

बीसवीं शताब्दीके दूसरे दशकके पश्चात् सन् १९२० के लगभगसे द्विवेदी युगकी तुकबन्दीपूर्ण कविताओंकी प्रतिक्रियाके परिणाम स्वरूप हिन्दीमे बंगला से प्रभावित और योरपके मिथ्या रहस्यवाद (स्यूडोमिस्टिसिज्म) के प्रभावसे नागरीमे एक नई शैलीकी रचना चली जिसमें कवि लोग रहस्यवादी या सूफी साधनके समान प्रकृतिके प्रत्येक पदार्थमे किसी पारमार्थिक सत्ताका अनुभव करनेकी उससे प्रेरणा पानेकी अथवा उससे एकात्म प्राप्त करनेकी भावनासे प्रेरित रहनेका प्रदर्शन करते थे। यह भावना कहीं प्रत्यक्ष रूपसे और कहीं अप्रत्यक्ष रूपसे नागरीमें छायावादके नामसे चलती रही। यह केवल पलायनवादी, शुद्ध काल्पनिक अंधानुकरणवृत्ति ही थी जिसका हृदयसे या मनसे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं था। उसमें

स्थान-स्थानपर टूटी हुई हृत्तन्त्रीके तारकी झंकार, अभिसार, अनन्त, नीरव, हाहाकार आदि विचित्र अर्थहीन भावोद्रेक व्यक्त करनेवाले शब्द भरे रहते थे और इस प्रकार पाठक या श्रोताको भ्रान्त पूर्ण ढंगसे प्रभावित करनेवाली रचनाएँ निरन्तर होने लगीं। प्राय: इसमें कलावाद और विचित्र अभिव्यञ्जना प्रणालीकाही प्राधान्य था। इस धारामें प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी का नाम लिया जाता है किन्तु निराला वास्तवमें छायावादी थे नहीं।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसादजी पहले तो ब्रजभाषामे कविताएँ रचते थे फिर इन्होंने नागरीमें रचनाएँ प्रारम्भ कर दीं। इसके अतिरिक्त इन्होंने कुछ द्विवेदी कालकी और कुछ श्रीधर पाठककी शैलीपर अतुकान्त रचनाएँ भी की है। चित्रात्मक व्यञ्जनाकी नई स्वैरवादी धाराके अनुसार रची हुई उनकी कुछ कविताएँ 'झरना' में संग्रहीत है। इस संग्रहके अगले संस्करणमें जो रचनाएँ आई उनमें अभिव्यञ्जनाकी विचित्रता, रहस्यवाद और विचित्र व्यञ्जना सभीका समावेश है। 'खोलो द्वार' शीर्षक रचना इस रहस्य-भावनाका सबसे सुन्दर उदाहरण है।

प्रसादजीका 'आँसू' खण्डकाव्य या मुक्तक-संग्रह आजकल बहुत लोगोंके लिए पहेली बन गया है। हिन्दीके बहुतसे अध्यापक उसमे बात-बातपर ब्रह्म उतारनेके फेरमे पड़े हुए है। किन्तु वास्तवमे प्रसादजी भावुक, सहृदय प्रेमी व्यक्ति थे। जिन्होंने अपने स्नेहास्पद व्यक्तियोंकी मधुर स्मृतिमे ही आँसू की सृष्टि की। आचार्य शुक्लजीने ठीक ही कहा है—'आँसू वास्तवमे है तो श्रृंगारी विप्रलम्भके छन्द, जिनमे अतीतके सयोग-सुखकी खिन्न स्मृतियोंकी रह रहकर झलक मारती है। पर जहाँ प्रेमीकी मादकता की बेसुधीमे प्रियतम नीचेसे ऊपर आते और सज्ञाकी दशामे चले जाते है, जहाँ हृदयकी तरंगे उस अनन्त कोनेको नहलाती चलती है, वहाँ आँसू उस अज्ञात प्रियतमके लिए बहते जान पड़ते है। स्वयं प्रसादजीने आँसूके प्रारम्भमे लिख दिया है :—

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तकमें स्मृति सी छाई,
दुर्दिनमें आँसू बनकर वह आज बरसने आई।

इतना स्पष्ट विवरण देनेपर भी यदि लोग उसमे वेदान्त और हठ योग ढूंढ़नेका प्रयत्न करते है तो उनको क्या कहा जाय।

कवि के रूपमे प्रसादजीकी अधिक प्रसिद्धि 'कामायनी' के कारण हुई जिसमे उन्होंने यह दिखलाने-का प्रयत्न किया है कि मनुष्य जबतक 'इडा' या 'बुद्धि' के फेरमे पड़ा रहेगा तबतक उसे सांसारिक द्वन्द्वोंसे मुक्ति नहीं मिलेगी किन्तु जब वह श्रद्धा-समन्वित होकर ससार छोड़कर एकान्तवास करनेके लिए निकल पड़ेगा तब उसे चारों ओर आनन्द ही आनन्द मिलेगा। उनका यह आनन्दवाद वाह्य आनन्दवाद है। अर्थात् ससारके द्वन्द्वोंसे अलग होकर प्रकृतिकी मधुमय गोदमे स्वच्छन्द विचरण करनेकी भावनावाला आनन्द-वाद। इधर कुछ लोगोंने 'कामायनी' में शैव प्रत्यभिज्ञा-दर्शनका आरोप करना भी प्रारम्भ कर दिया है। उनका कहना है कि प्रसादजीने 'कामायनी' मे शैव आनन्दवादकी प्रतिष्ठा की है किन्तु प्रसादजीने जिन सूत्रोंसे कामायनीकी कथा और उसका रूपक लिया है उसमें कहीं उन्होंने कश्मीरके शैवागमकी बात नहीं लिखी।

दूसरी मुख्य बात यह है कि प्रत्यभिज्ञादर्शनके अनुसार आनन्दकी वह स्थिति होती है जब पशुपति भगवान शिव-की कृपासे यह पशु अर्थात् जीव, माया-रूपी पाश से मुक्त होकर शिवोऽहंका अनुभव करने लगता है अर्थात् जब वह स्वयं अपनेको 'शिव' के रूपमें पहचान लेता है। किन्तु कामायनीमें कहीं इस प्रकारकी बात नहीं है। कामायनीका पूर्वार्द्ध जितना सरस है उसका उत्तरार्द्ध उतना ही जटिल हो गया है। प्रसादजीने दार्शनिक और वैज्ञानिक बननेके फेरमे अपने कविको पीछे छोड़ दिया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अल्पज्ञ पाठक उसीके आतंकसे त्रस्त होकर उसमें नए-नए दार्शनिक सिद्धान्त बैठे ढूंढ़ा करते है। इस काव्यमें काम, चिन्ता, लज्जा आदि विशेष मानसिक भावोंका बड़ा अच्छा निरूपण और चित्रण किया गया है किन्तु न तो कथाकी दृष्टिसे इस काव्यमें कोई विलक्षणता है न इसका नायक मनु ही महाकाव्यके नायकके गुणोंसे युक्त आदर्श व्यक्ति है। अतः महाकाव्यकी श्रेणीमें तो कामायनी नहीं आती किन्तु यह अपने प्रकारकी अलग रचना है जिसकी अपनी अलग श्रेणी और जिसका अपना अलग लक्ष्य है। यद्यपि कामायनीमें काव्यका लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता है और कथा प्रसग भी कहीं-कही असम्बद्ध है फिर उसके कुछ सर्ग अत्यन्त मार्मिक और सुन्दर हैं, विशेषतः लज्जा सर्ग। यह आश्चर्य की बात है कि जिस प्रसादने 'भारत-महिमा' नामक कवितामें मनुको अत्यन्त प्रशंसाके साथ स्मरण करते हुए कहा है—

बचाकर बीज रूपसे सृष्टि नावपर झेल प्रलयका शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ, वरुण पथमें हम बढ़े अभीत॥

उसीने कामायनीमें मनुको इतना भीरु, चिन्तित, कामुक और और स्त्रैण क्यों बना दिया कि उसे आनन्दकी प्राप्तिके लिये कामायनीका आश्रय लेना पड़ा।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्तकी प्रारम्भिक कविता प्रकृतिकी गोदमे हुई। इसलिए उसमें शब्द-चित्रोका माधुर्य अधिक मिलता है किन्तु आगे चलकर दार्शनिक प्रभावके कारण उनकी रचनाएँ दार्शनिक हो गईं जिसमे वे सृष्टिकी नश्वरतापर विचार करने लगे। किन्तु इस प्रकारकी काव्य-तत्वहीन सब रचनाओंको काव्यकी श्रेणीसे हटाकर दर्शनकी श्रेणीमे रख देना चाहिए। इनकी तीसरी धारा युगके साथ चलने लगती है और ये अपने चारों ओर बिखरे हुए मानव समाजके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। पन्तजीके चार कविता-सग्रह प्रसिद्ध है। वीणा, पल्लव, गुंजन और ग्राम्यामें उनकी तीनों भाव-पद्धतियोंका क्रमिक परिचय भली-भांति मिल जाता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

बँगलाके छायावादको नए अतुकान्त स्वच्छन्द छन्दोंमे नागरीमे प्रवर्तित करनेका श्रेय यदि किसी एक व्यक्तिको है तो वह है सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को। संगीत और काव्य-तत्व, संस्कृत हिन्दी और बंगला भाषाओंपर जितना आपका अधिकार है उतना इस युगके अन्य किसी कविका नहीं है। इनकी भाषामें और शब्दोंमें, पदावलीमें विचित्र प्रकारका काव्यात्मक ओज भरा हुआ है जिनमे यह शक्ति है कि वे अपने साथ पाठकको बहा ले जा सकते है। इनकी मुक्तक रचनाओंके अतिरिक्त 'तुलसीदास' और 'रामकी शक्तिपूजा' दो काव्य अत्यन्त महत्वके है जिनमें मधुर कल्पना, भावपूर्ण-व्यञ्जना, सुन्दर चित्र-भावोंको

आन्दोलित कर देनेवाली परिस्थितियोंका मधुर समन्वय है। इन्होंने कुकुरमुत्ता' गरम पकौड़ी' और 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी भी कुछ खेलवाड़ी रचनाएँ की है किन्तु वे इनकी कविता प्रतिभाकी नहीं, शुद्ध मरतीकी परिचाययिका हैं। कविके रूपमे जो इन्होंने रचनाएँ की है वे सचमुच बड़ी मनोहर और प्रौढ़ है। वर्त्तमान कालमें इतना प्रौढ़, सशक्त और प्रतिभाशाली दूसरा कोई कवि उनकी जोड़का नही हुआ।

महादेवी वर्मा

आचार्य शुक्लजीने छायावादी कहे जानेवाले कवियोंमें महादेवीको ही रहस्यवादी माना है और कहा है कि 'उस अज्ञात प्रियतमके लिए वेदना ही इनके हृदयका भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकारकी भावनाएँ फूट-फूटकर झलक मारती रहती हैं। वेदनासे इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है; उसीके साथ ये रहना चाहती है और आगे मिलन-सुखको भी ये कुछ नहीं गिनतीं।' किन्तु महादेवी जीने स्वयं 'आधुनिक हिन्दी कवि: महादेवी' की भूमिकामें लिखा है कि 'मेरे जीवनमे वेदनाका स्थान नही है। मैं सदा सुखी रही।' इससे प्रतीत होता है कि इनकी कविताका इनके हृदयसे कोई सम्बन्ध नही। मनोविश्लेषण-शास्त्रके अनुसार कहा जा सकता है कि वैवाहिक जीवन असफल और शून्य रहनेके कारण इनकी ये वेदनात्मक रचनाएँ इनके अचेतन मनसे उद्भूत अतृप्तिके परिणाम हैं। योरपमें प्रारम्भिक स्वैरवादियोंको रोदन वादी (ड्राउंड इन टीअर्स) या श्मशानवादी (ग्रेवयार्ड स्कूल) कहा गया है क्योंकि वे लोग जीवनसे ऊवनेकी और वेदना की बाते किया करते थे। १८ वीं शताब्दीमे टौमस पार्नेल, एडवर्ड यग, रॉवर्ट ब्लेयर, टौमस ग्रे आदिने जो रचनाएँ कीं उनमे केवल दुःख और मृत्युकी ही बाते भरी रहती थीं। अतः उन सब लोगोंको रोदनवादी कवियोंकी संज्ञा दे दी गई। इसी प्रकार हिन्दीमे भी प्रसादजीकी अधिकांश रचनाएँ और महादेवी वर्माकी सब रचनाएँ रोदनवादी ही है। ये कविताएँ इतनी अधिक लाक्षणिक हो गई है कि जितने पण्डित है उतने ही अर्थ निकालते है यहाँतक कि हमारे कुछ मित्र तो उसमे भी वेदान्त और अष्टांग योगके दर्शनका स्वप्न देखा करते है। महादेवी वर्माका एक ही संग्रह है 'यामा' जिसमे इन्होने चित्र-सहित अपने गीत छापे है। किन्तु इन गीतोंका मनुष्यके हृदय और जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं और स्वयं कवयित्रीके शब्दोंमे 'उनके जीवनसे भी उनका सम्बन्ध नहीं है।' फिर ये रचनाएँ क्यों की गईं? क्या केवल कलाके लिए?

पद्मकान्त मालवीय

जिन दिनों महादेवी वर्मा अपने काव्यके स्वर साध रही थीं उन्हीं दिनों सन् १९२६ मे प्रयागके सुप्रसिद्ध और लब्ध प्रतिष्ठ कवि पद्मकान्त मालवीयने अपनी कविताओके द्वारा हिन्दी साहित्य-जगतमे धूम मचा रखी थी। कोई ऐसा कवि-सम्मेलन न होता जिसमे वे निमन्त्रित न किए जाते और जिसमे वे सबसे इक्कीस न ठहरते हों। सन् १९२९ में उनकी पहली काव्य रचनाओंकी मालिका 'त्रिवेणी' के नामसे प्रकाशित हुई। हृदयसे देश-भक्त होनेके कारण वे तत्कालीन सत्याग्रह आन्दोलनमें कूद पड़े और सन् १९३० में वे दण्डित होकर कारागारवासी हो गए। सन् १९३२ में उनका दूसरा काव्य-संग्रह 'प्याला', सन् १९३३ में 'प्रेमपत्र', सन १९३४ में 'आतम-वेदना' तथा आतम विस्मृति' सन् १९३६ में 'हार' और अब १९४० मे

पुनः कारागारमें पहुँच गये तो वहीं 'कूजन' की रचना हुई जिसका प्रकाशन १९४१ में हुआ। पद्मकान्त मालवीय ही उस हाला प्यालावादके वास्तविक जनक हैं जिसका अधिक प्रचार कविवर बच्चनने अपनी 'मधुशाला' और तत्सम्बद्ध रचनाओंके द्वारा किया।

पद्मकान्त मालवीयने सन् १९२४-२५ के लगभग हिन्दी काव्य क्षेत्रमें पदार्पण किया था अर्थात् उस युगमें जब पन्त, प्रसाद और निराला छायावादी युगकी सृष्टि कर रहे थे और भावात्मक जगत्से प्रेरणा लेकर कोमलकान्त पदावलीमें नवीन प्रकारकी रहस्यात्मक रचनाएँ की जा रही थीं। जिसके प्रस्तावसे हिन्दीकी एक अपनी भाषा-शैली निर्मित हो चली। किन्तु पद्मकान्त मालवीय इस शैलीसे अलग हटकर स्वाभाविक बोल-चाल और व्यवहार की हिन्दी भाषामें अडिग होकर रचनाएँ करते रहे।

उन्हीं दिनोंकी एक बड़ी विचित्र घटना उल्लेखनीय है। प्रयागके एक कवि जिनकी आज साहित्य-जगतमें प्रसिद्धि भी है, उस समय पद्मकान्तजीके पास पहुँचे और उन्होंने उनसे कहा—'मालवीयजी! 'हिन्दीके सप्तर्षि' नामसे एक काव्य-संग्रह प्रकाशित किया जाय जिसमें तीन तो पन्त, प्रसाद निराला हो गए, तीन वर्मा-त्रयी (महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा और रामकुमार वर्मा) और एक आप।' इसपर पद्मकान्तजीने कहा कि—'हरिऔध, रत्नाकर, मैथिली-शरण गुप्त आदिके रहते हुए यह धृष्टता मैं नहीं कर सकता।' इस कथाका उल्लेख करनेका तात्पर्य यही है कि उस युगमें जब हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें कुछ लोग बल-छल कौशलसे, मिथ्या ख्याति और सस्ती प्रशंसा प्राप्त करके महाकवियोंकी पगड़ी उछालकर और सबको लाँघकर महाकवि बननेका कुचक्र कर रहे थे उस समय अत्यन्त सत्य-निष्ठा और चारित्रिक महत्ताके साथ पद्मकान्तजीने उस प्रकारकी सस्ती प्रसिद्धिके साधनों और प्रवृत्तियोंका तिरस्कार किया था और किसी प्रकारकी भी सुलभ प्रसिद्धि की चिन्ता न करके अकेले अपनी काव्यधाराका निर्माण किया। उनकी रचनाओंके अनुशीलन और परिशीलन करनेसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनके काव्यमे कितनी स्वाभाविकता, सरलता, सुबोधता और स्पष्टता है।

आजकल बहुतसे कवि रुबाइयाँ लिखने लगे हैं किन्तु हिन्दी रुबाइयोंका श्रीगणेश भी पद्मकान्त मालवीयने ही किया था। उनकी 'मधुशाला' से एक रुबाई दी जाती है—

देता जा साकी मुझको हाला पर हाला।
जिसमें खूब लबालब भर जाये यह प्याला।
और गिरे तो रोप पात्रमें लेना अपने।
जिसमें चलती रहे सदा ही यह मधुशाला।

राष्ट्रीय आन्दोलनके समय उन्होंने यह प्रेरणात्मक कविता लिखी—

चले चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो. चले चलो
प्रचंड सूर्य तापसे न तुम चलो, न तुम गलो
हृदयसे तुम निकाल दो अगर हो पस्त हिम्मती
नहीं' खेल मात्र ये ये जिन्दगी है जिन्दगी।
न रक्त है न स्वेद है न हर्ष है न खेद है
यह जिन्दगी अभेद है यही तो एक भेद है॥

पद्मकान्तके द्वितीय काव्य-संग्रह, 'प्याला' (१९३२) पर टिप्पणी करते हुए डा. रामप्रसाद त्रिपाठीजीने लिखा—"पद्मकान्तजीके विचारोंपर उर्दू कविताका प्रभाव प्रत्यक्ष है। कुछ दिनोंसे ऐसा लगता है कि उनपर उर्दू कविताका प्रभाव दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। यदि वे अन्तिम रूपसे उर्दू काव्यकी परम्परापर चलनेका ही निश्चय करते है तो वे अपने साहित्यिक जीवनको हानि पहुँचाएँगे और अनुकरण करनेवालेके नीचे स्तरपर गिर जाएँगे। यदि वे छोटी-छोटी कविताएँ और गीत ही लिखे तो उनके लिए बहुत अच्छा होगा। यह सन्देह की बात है और सम्भव भी नहीं प्रतीत होता कि हिन्दी साहित्यकी परम्परा और परिपाटी कभी भी मदिरा, प्याला या वायजके लिये उपदेशक शब्द स्थायी रूपसे ग्रहण कर सके।'

इतना ही नहीं, सन् १९३३ की सरस्वतीमे भी यह लिखा गया कि 'हिन्दीके प्रतिभाशाली कवियोंमे हाला और प्यालाका ही जोर नही बढ़ रहा है, वरन् वे कब्रके लिए भी लालायित है।' सम्भवतः यही कारण रहा कि हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोंने पद्मकान्त मालवीयका नाम सूचीसे अलग कर दिया। आचार्य शुक्लजीने स्वयं अपने साहित्यके इतिहासमे लिखा है कि बहुतसे लोग अपना नाम साहित्यके इतिहासमें सम्मिलित करानेके लिए प्रेरणा भी देते रहे और तंग भी करते रहे। पद्मकान्तजीने यह सब कुछ नहीं किया और इसी लिए सम्भवतः हिन्दी साहित्य के इतिहासकारोंने उनकी उपेक्षा की। नीचे उनकी रचनाओंके कुछ उदाहरण दिये जा रहे है जिनसे उनकी कविताकी सरलता, सुबोधता और स्पष्टताका परिचय मिलेगा। साथ ही यह भी ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य जगतमें उनकी काव्य-शैली अपनी निराली है। सुनिए :—

दावा नहीं मुझे मैं कवि हूँ।
शशि बन गया या कि मै रबि हूँ
उजड़े कविता-काननकी मैं
स्मृति हूँ उसकी अंतिम छवि हूँ॥
मेरी भाषामें है गंगाजीकी बहती हुई रवानी
सभी शब्द पावन हो जाते पाकर जिसका पावन पानी
भारतीय नारी-सी सीधी सादी सुन्दर भाषा मेरी
जिसमें उर्दूकी शोखी है हिन्दीकी मधु-मिश्रित बानी
पीना है पी लूंगा विष हो या हो हाला
जब तक खाली न हो जाये यह मेरा प्याला
मैं पीता जाऊँगा नभमें लुक-छिपकर
सुलझाएंगी गूढ़ पहेली तारक-माला।

सुभाष बाबूका क्रान्ति आह्वान

सभी दिशाओंसे हे क्रान्ति! तुम्हारी जय-जयकार उठे
भारतीय प्रत्येक युवा नर-नारी फिर हुंकार उठे
परतंत्रता होलिकामें अब लगने ही वाली है आग।
खेलेंगे हम रंग रक्तसे जो जीवे सो खेले फाग।

नवयुवकोंसे—

समय आ गया है अब बदलो सभी पुरानी बातोंको
उठो बदल डालो तुम दिनसे अपनी काली रातोंको ।।
बूढ़े जो शरीर हों उनमें खून जवानीका भर दो ।
पानीकी लघु बूंदोंमें तूफान एक पैदा कर दो ।।
रवि शशि नये बनाओ उज्ज्वल तारे नये उगें नभपर ।
फेंको तुम उखाड़ तरुओंको लगें नये पल्लव सुन्दर ।।
सभी पुरानी चीजोंको आओ आज बदल डालें
टूटे साजोंको बदलें, टूटी आवाज बदल डालें ।।
जो लेते तलवार करोंमें नहीं कभी वे छिपते हैं ।
किन्तु अहिंसाके परदेमें कायर भेष बदलते हैं ।।
राजमार्गको छोड़ चलो, अब चलें आज अंगारोंपर ।
बन्द खेल शब्दोंका हो अब खेलें असिकी धारोंपर ।।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनके कवियोंमें माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्राकुमारी चौहान मुख्य हैं। पर इनमें या तो अधिक शब्दाडम्बर है या सीधी तुकबन्दी अर्थात् कविता कम है, स्वदेश-भक्तिका उद्वेग अधिक है—जैसा कि इस प्रकारकी कविताओंमें होना स्वाभाविक है।

वर्तमान कवियोंमें बच्चनने अँग्रेजोकी गीतिका (सौनेट) शैलीपर हिन्दीमें उमर खैयामकी हाला-वादी और मस्तीवादी भावना भरकर कविताकी एक नई धारा प्रवाहित की जिसका प्रभाव हिन्दीके कवियोंपर यह पड़ा कि कुछ दिनों तक लोग कवि सम्मेलनोंमें उसी शैलीपर गीत अलापते रहे। बच्चनने फारसीके हाला, प्याला, मधुशालाको अनेक रूपकों और प्रतीक भावनाओंके साथ हिन्दी साहित्यमें प्रस्तुत किया। सरकारी नौकरी करनेसे जैसे पन्तजीकी काव्य-धारा विकृत होकर सूख गई वैसे ही बच्चनकी भी काव्य धारा दिग्भ्रान्त होकर सूख चली है। उनकी रचनाओंमें एकान्त संगीत, मधुशाला, मधुबाला और निशा-निमन्त्रण प्रसिद्ध हैं।

महाकाव्यका युग—

यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि इस युगमें अर्थात् पिछले कुछ वर्षोंमें हिन्दीमें अनेक महाकाव्योंके दर्शन हुए जिनमें श्यामनारायण पाण्डेयका हल्दी घाटी और जौहर, डा. आनन्दका अंगराज, गुरुभक्त सिंहका नूरजहाँ और विक्रमादित्य, उदय शंकर भट्टका मत्स्यगन्धा, भारती नन्दनका पार्वती, सोहनलाल द्विवेदीका कुणाल और दिनकरका 'कुरुक्षेत्र' और उर्वशी' प्रसिद्ध हैं। इन सबमें भारतीनन्दनका 'पार्वती' महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ है और उसके पश्चात् यदि किसी दूसरे महाकाव्यका नाम लिया जा सकता है तो वह डा. आनन्दका अंगराज है। किन्तु पुराणोंके महापुरुषोंका चरित्र अत्यन्त अमर्यादित ढंगसे चित्रण करनेके कारण वह महा-काव्य अभिशप्त हो गया है। कुरुक्षेत्रमें वर्तमान युगकी युद्ध समस्याओंपर विश्वव्यापी अभिनव भावनासे

विचार किया गया है। यद्यपि इसका कथानक महाभारतपर आश्रित है फिर भी इसे स्वतन्त्र रचना समझना चाहिए। इसमें कवि ने सब प्रकारके अन्यायोंके विरुद्ध शस्त्र उठाकर मानवताकी भावनाके अनुसार नवीन समाजके निर्माणका सन्देश दिया है। इसमें भी काव्यत्व कम है, दार्शनिकता अधिक भरनेका प्रयत्न किया गया है।

इधर जबसे भारत सरकारने पुरस्कार देने प्रारम्भ किए हैं तबसे नित्य नये महाकाव्य गढ़नेकी धुन भी बढ़ती जा रही है और जान पड़ता है कि आगे आनेवाले कुछ वर्षोंमे हिन्दीमे इतने महाकाव्य प्रस्तुत हो जायेंगे जितने पिछले दो सौ वर्षोंमे नहीं लिखे गए।

अन्य कवि

इस युगके अन्य कवियोंमे माखनलाल चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, सोहनलाल द्विवेदी, रामेश्वर दयाल दुबे, अंचल, तारा पाण्डेय, नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय, शिवमगल सिंह सुमन, केदार-नाथ अग्रवाल, गोपालसिंह नेपाली, हसकुमार तिवारी, चन्द्रमुखी ओझा, विद्यावती कोकिल, शिवप्रसाद मिश्र, रुद्र, मोती बी. ए., शम्भुनाथ सिंह, नीरज आदि बहुतसे उल्लेखनीय हैं। आजके कवियोको कवि-सम्मेलनोंमें परखा जाता है और पत्रों द्वारा प्रचारित किया जाता है अतः जो लोग काव्यकी एकान्त साधना करते हैं उनका इस युगमें कोई स्थान नही है। इसीलिये बहुतसे वास्तविक प्रतिभाशील कवि प्रकाशमे आनेसे वंचित रह गए हैं। साथ ही कवियों और कवयित्रियोंकी संख्या इतनी अधिक हैं कि सबका नाम गिनाना भी सम्भव नहीं है। केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऊपर उल्लिखित कवियोंके अतिरिक्त अगणित कवि समस्त भारतमें बिखरे हुए हैं जिनकी कविताओंके अनेक सुन्दर संग्रह प्रकाशित हो चुके है किन्तु हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोंने उनकी प्रवृत्तियोंकी उपेक्षा की है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

छायावादी कवियोंकी रोदनवादी, पलायनवादी और कल्पनावादी प्रवृत्तियोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें प्रगतिवादका प्रचलन हुआ जिसे यथार्थवाद और प्रकृतिवादका गतिशील रूपान्तर समझना चाहिए और जिसमे छायावादी रचनाओंके शुद्ध काल्पनिक तथा यथार्थ वर्णनोंके बदले यथार्थ अवस्थाओंका वर्णन और चित्रण किया जाने लगा। इसलिए इनके विवरणोंमें कुछ राजनैतिक, कुछ सामाजिक और कुछ आर्थिक भावनाके साथ नए युगकी असन्तुष्टि, ऊब, कुण्ठा, और स्वातन्त्र्य प्रिय प्रवृत्तियोंका अधिक अभिव्यञ्जन होने लगा और यह कहा और समझाया जाने लगा कि काव्य या साहित्यक रचना सोद्देश्य होनी चाहिए—उसका लक्ष्य होना चाहिये समाजका चित्रण और समाजकी भावनाओंकी अभिव्यक्ति अर्थात् कला केवल कलाके लिए नहीं वरन् कला व्यवहारके लिए और समाजके लिए होनी चाहिए। इस प्रकारके साहित्यिक आदर्शकी भावना रूससे उधार ली गई थी जहाँ प्रसिद्ध जर्मन आर्थिक दर्शनवादी कार्लमार्क्सके वर्गवादका बोलबाला था। इसलिए इन सभी नवीन रचनाओंमें 'रोटी' और 'भूख' का चित्रण किया गया, प्राचीन युगके सामन्तवादके विरोधके नारे लगाए गए, रिक्शेवाले, धोबी, चमार, घासवालों या घासवाली पर कविता लिखी जाने लगी और वे कवि

जिनका इस प्रकारके वर्गोंसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा, न उनके दुःख सुखका अनुभव रहा वे अपनी कविताओंमें उनपर आँसू बहाने लगे। इस प्रकारके सामाजिक यथार्थवादी कविताओं या रचनाओंकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं :—

१—बुरजुआ (मध्यवर्गीय) राष्ट्रीय सरकारके विरुद्ध आक्रोश।

२—सामाजिक विषमताके विरुद्ध विद्रोह।

३—शोषित और पीड़ित वर्गके कष्टोंके प्रति सहानुभूति और समवेदनाका उद्‌गार।

४—समकालीन राजनीतिपर आक्षेप।

५—वर्गहीन समाजकी रचनाके लिए प्रेरणा।

६—ग्रामीण जीवनका वर्णन और चित्रण।

७—साम्राज्यवादका विरोध।

८—समस्त प्राचीन आदर्शों, भावनाओं और सस्थाओंका विरोध।

इन लेखकों और कवियोंने सरल, व्यावहारिक, लोकजीवनमें व्यवहृत भाषाका प्रयोग किया और तुकान्त छन्दोंके साथ अतुकान्त और वेतुके छन्द बनने लगे। यति और छन्द-रचनाके बदले गति, लय और प्रवाहका ध्यान रखा जाने लगा। काव्य-शास्त्रके सब नियम तोड़ डाले गए क्योंकि इन कवियों या लेखकोंका काव्य शास्त्र या छन्द शास्त्रका न तो ज्ञान था न उसका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया गया। इससे काव्य का कला-पक्ष अर्थात् मनुष्यके हृदयको प्रभावित करने वाले पक्षका सर्वथा अभाव हो गया, केवल बुद्धिको प्रभावित करनेकी बात रह गई। इसलिये वह बहुत दिन तक न चल पाई और स्वतः समाप्त हो गई। दूसरा कारण यह भी था कि उसमें शाश्वत भावोंको पल्लवित करनेकी भावना तनिक भी नहीं थीं। समाजमें नए युगकी चेतना फैलनेके कारण इन प्रगतिवादियोंके विचारोंका कोष ही समाप्त हो गया। इसलिए उसका अवसान स्वाभाविक था।

इसे इस प्रकार समाप्त होते देखकर कुछ लोगोंने योरपके प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री फ्रायडके उपचेतन या अर्द्ध-चेतन और अचेतनकी धाराणाओंका पल्ला पकड़ कर और योरपसे सार्त्रके अस्तित्ववाद (एग्जिस्टेंसिलिजम) और अति यथार्थवाद (सरराअलिज्म), वर्तमानवाद (बौर्टिसिज्म); भविष्यवाद (फ्यूचरिज्म) विश्वबन्धुत्ववाद (ऐक्टिविज्म), मानव-महत्तावाद (ईगोफ्युचरिज्म), अभिनव-भविष्य-वाद (क्यूवोफ्यूचरिज्म) आदि अनेक वादोंसे प्रभावित होकर विशेषतः टी. एस. इलिएटकी नई भावधारासे प्रेरणा लेकर प्रयोगवादका प्रवर्तन किया जिसमें मुख्यतः या तो कविके अन्तःकरण और मानसिक द्वन्द्वों तथा प्रक्रियाओंका चित्रण होता है या मनुष्यके उपचेतन या अचेतन मनके मूर्त्त अमूर्त्त, व्यवस्थित अव्यवस्थित, संगत, असंगत, पूर्ण या अपूर्ण, कुण्ठित या अतृप्त इच्छाओं, वासनाओं भावनाओं और विचारोंको अभिव्यक्त करनेकी वृत्ति रहती है और उनको स्वाभाविक रूपसे या भावनात्मक तृप्तिके रूपमें व्यक्त कर देना ही उसकी कलाकी सत्यता मानी जाती है। इनमें नए छन्दों, नए प्रतीकों, नए उपमानों और नए बिम्बोंके द्वारा मनुष्यके आन्तरिक जीवनकी सम्वेदनाओंको थोड़े शब्दों, अनेक प्रकार विराम चिन्हों (?–,–;–.....) आदिके द्वारा प्रतीकात्मक रूपसे व्यक्त किया जाता है। ये लोग विचार-सम्बन्धी सभी प्रकारके परम्परागत नियमों, भावनाओं, अभिव्यक्तियों, शैलियों, और रूपोंका त्याग करके अपने मानसिक भावको काव्यरूप देना ही अपनी

कविताका ध्येय समझते हैं। इन लोगोंने प्राय: मनुष्यकी काम-वासनाको अधिक महत्व देकर यथासम्भव उसे चित्रण करनेका और उसे ही मानवीय प्रेरणाओंका मूल स्रोत समझनेका राग अलापा है। इनकी भी काव्य-प्रेरणा विलायती है। इन्होंने वाल्ट ह्विटमैन, टी. एस. ईलियट, और ई. ई. कर्मिग्स आदि अमरीकी कवियोंको ही अपना अग्रज और नेता माना है।

इन प्रयोगवादियोंके कई रूप हो गए हैं—प्रयोगवादी कवि, प्रयोगशील कवि और नई कविताके कवि। इन प्रयोगवादी कवियोंने अपने साहित्यिक वादका नाम प्रपद्यवाद या नकेनवाद रखा है। (न–केन–जो किसीने न रचा हो) वे केवल कौशल (टेकनीक) के विभिन्न प्रयोगों तक ही अपनी रचना परिमित रखना चाहते हैं और विषय तथा शैलीको अधिक महत्व देना चाहते हैं। किन्तु नई कविताके कवि समाजकी चेतनाको मुखरित करनेके साथ ही व्यक्ति चिन्तनका भी राग अलापते हैं। किन्तु ये सभी कवि पथभ्रष्ट है। हिन्दुस्तानके सात अन्धेके समान काव्यके अलग-अलग अंगोंको पकड़कर सब या तो उसीको काव्य समझ बैठे ह या विलायतसे उधार और जूठनमें पाई हुई अनैसर्गिक, अस्वाभाविक और अभारतीय भावनाओंको पल्लवित करनेका प्रयास कर रहे हैं जो चिरस्थाई तो नहीं ही होगी, वरन् हमारे सम्पूर्ण परम्परागत काव्य वैभवको भी भ्रष्ट करके व्यभिचरित कर देगी। काव्यके क्षेत्रमें इस भयंकर अराजकता और साहित्य-व्यभिचारको तत्काल रोकना चाहिए।

इनका एक ही उदाहरण पर्याप्त है—

सनातन-कथा

मात्र
××
मौन
××
मृत्यु
लीजिए हो गई कविता, अब आप अर्थ लगाइए बैठकर।

प्रगतिवाद

'प्रगति' शब्दको 'गति' के साथ 'प्र' लगाकर 'तीव्र' के अर्थमें स्वीकार कर लिया गया है। भारतमें यह वाद अँग्रेजीके 'प्रोग्रेसिविज्म' का अनुवाद बनकर आया। सन् १९३५ मे ई. एम. फौरेस्टरकी अध्यक्षतामें लन्दनमें प्रगतिशील लेखक-संघ '(प्रोग्रेसिब राइटर्स एसोशियन) नामकी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाका श्रीगणेश हुआ जिसमें भारतसे मुल्कराज आनन्द और सज्जाद अली जहीर सम्मिलित हुए थे। वहाँसे लौटनेपर इन सब लोगोंने भारतकी स्वाभाविक अनुकरण प्रवृत्तिके अनुसार यहाँ भी प्रगतिशील साहित्य नामसे भारतमें उसकी एक शाखा खोल कर प्रेमचन्दजीको उसका प्रथम सभापति बना दिया। इसी संस्थाके द्वारा प्रचारित साहित्य ी प्रगतिवादी साहित्य कहलाया जिसकी प्रेरणा दी प्रेमचन्दजीके अध्यक्षीय भाषणने

प्रगतिवादका आधार मार्क्सवादी अर्थात् आर्थिक है और जब साहित्यका आधार आर्थिक बन जाता है तब वह साहित्य न हो कर सौदेकी, व्यवसायकी वस्तु हो जाती है। मार्क्सवादी सिद्धान्तोंपर आश्रित होनेके परिणाम स्वरूप बहुतसे आलोचकोंने कुछ भ्रमवश और कुछ व्यंग्यसे इसे 'मार्क्सवादका साहित्यिक संस्करण' कहा है किन्तु यह वाद समकालीन सामाजिक परिस्थितियोंका चित्रण करनेका आडम्बर लेकर भारतीय परिस्थितियोंको मार्क्सवादी आधारपर साहित्यके रूपमें ढालनेका प्रयत्न था।

प्रगतिवादके इस सर्जनात्मक पक्ष या साहित्यिक स्वरूपके अतिरिक्त इसका समीक्षण-पक्ष भी उतना ही विचित्र है। वह भी इसी दृष्टिसे साहित्यकी आलोचना करना उचित समझता है कि साहित्यमें शोषितका समर्थन करके शोषकोंकी निन्दा की जाय और यह प्रयत्न किया जाय कि शोषितोंकी हीन दशाका चित्रण करके उनके मनमें शोषकोंके प्रति विद्रोह जगाया जाय। इस समीक्षात्मक प्रवृत्तिके कारण एक प्रगतिवादी समीक्षा-पद्धति भी प्रचलित हो गई किन्तु उसका क्षेत्र भी एक विशेष वर्ग तक सीमित रह गया।

प्रयोगवादी रचनाओंमे मुख्य रूपसे वर्ग-संघर्षकी भावना, दलित, पीड़ित और शोषित वर्गकी विजय, सामाजिक विषमताओंका वह चित्रण जिसमे सामाजिक रूढ़ियोंका विरोध करनेवाले तत्वोंका समर्थन हो, सब प्रकारकी व्यक्तिगत सामूहिक और सामाजिक समस्याओंका उच्च मानवी स्तरपर बौद्धिक समाधान, धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं, विचारों रूढ़ियों और रीति नीतियोंपर टिप्पणीके साथ उन्हें शंका पूर्ण दृष्टिसे देखनेकी प्रवृत्ति उद्देश्यकी प्रधानता और सामाजिक भावनाओंकी विशेष आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति अधिक थी। आलोचनाके क्षेत्रमें प्रयोगवादियोंने ऐतिहासिक समीक्षा-पद्धतिको अधिक महत्व दिया।

प्रयोगवादके लेखकों आलोचकों और कवियोंमें राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, अश्क, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन, रामविलास शर्मा, प्रकाश चन्द्र गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, राधाकृष्ण, भवानीप्रसाद मिश्र, रांगेय राघव, त्रिलोचन, चन्द्रकुंवर बर्त्वाल, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, अमृतराय, तेज बहादुर, चौधरी, भीष्म सहानी, भैरवप्रसाद गुप्त, प्रेमचन्द गुप्त, महेन्द्र भटनागर प्रमुख है। इन लोगोंने प्रेमचन्दजीको अपने दलमें सम्मिलित करनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु संयोगवश वे इसमे आकर भी अलग ही रहे।

गीतलहरी या गीतवाद

छायावादकी गीत-पद्धतिसे विद्रोह करते हुए उसके आध्यात्मिक और पारमार्थिक छाया-स्वरूपकी अवहेलना करते हुए वर्तमान युगके लोक-जीवनके वास्तविक स्वरूपका स्पष्टतासे निरूपण करनेके लिए नए प्रकारके गीतोंका प्रचलन हुआ जिसकी बीचकी कड़ीमे आए बच्चन और अंचल। बच्चनने उमर खैयामके मस्तीवादी सिद्धान्तका आश्रय लेकर रूपकों प्रतीकों और अध्यवसानोंके माध्यमसे नए प्रकारके गीत लिखे जो बड़े लोकप्रिय हुए। इन सभी गीतोंमें मुख्य रूपसे श्रृंगार अथवा प्रेमकी तथा पूर्ण लौकिक सामान्य भावनाओंका अभिव्यंजन हुआ। परिणाम स्वरूप हिन्दीमें गीतकारोंकी बाढ़ आ गई और हिन्दीके कवि-सम्मेलन बहुत दिनों तक संगीत सम्मेलन बने रहे। इन सभी प्रकारके प्रेम काव्योंमें प्रायः प्रेमकी विफलताका ही विशेष अंकन था क्योंकि छायावादी कवियोंके समान इनके सभी प्रेम-पात्र अस्पष्ट और अज्ञात थे। दूसरी इनकी विशेषता यह रही कि अँग्रेजीके रोदनवादी और छायावादी कवियोंके समान इनका भी करुण स्वर ही अधिक मुखर था जिसमें आदिसे अन्त तक सारी अनुभूतियाँ आसुओंसे तर और वेदनासे कराहती हुई दिखाई पड़ती

थी। प्रायः इस प्रकारके कवियोंको कण्ठ सुन्दर मिला हुआ था इसलिए कवि-सम्मेलनोंमें इन्हें बड़ी ख्याति मिली और इन्हींके कारण उनका प्रचार भी हुआ। जनताने भी इन्हें हाथों हाथ ऊपर उठा लिया और नए कवि भी इन्हींके पीछे दौड़ पड़े। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रगतिवादी और प्रयोगवादी रचना-कौशल और बौद्धिक व्यायामके मरुस्थलोंके बीच यह गीत-लहरी निश्चित रूपसे मरुद्यानकी सरस पुष्करिणी थी।

पीछे चलकर ये सभी गीतकार करुणाके साथ-साथ मानवताका भी आडम्बर-पूर्ण आलाप भरने लगे और उन्होंने कल्पना की मधुर स्वप्निल अनुभूतियोंके साथ साथ सामाजिक समस्याओंकी अभिव्यक्तिका भी प्रयास किया; किन्तु वह प्रयास नितान्त असफल हुआ क्योंकि उसकी भाव-भूमि पूर्णतः मिथ्या और खोखली थी। इसलिए इनकी रचनाएँ यथार्थवादी न होकर केवल भावात्मक बनी रह गई जो श्रोताओंकी मानस तृप्तिके लिए तो सहायक हुई किन्तु समाजके भावात्मक परिष्कारके लिए निष्फल ही सिद्ध हुईं।

इन गीतकारोंमें स्वभावतः स्त्रियाँ अधिक थीं—इसके मुख्य कवि हुए हैं तारा पाण्डे, विद्यावती कोकिल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शकुन्तला सिरोठिया, शम्भुनाथ सिंह, मोती बी. ए., हंसकुमार तिवारी, गोपीकृष्ण गोपेश, श्रीपाल सिंह क्षेम, गिरिधर गोपाल, शान्ति मेहरोत्रा, रमानाथ अवस्थी, जगदीश गुप्त, नर्मदेश्वर उपाध्याय और बालस्वरूप राही।

प्रयोगवाद

प्रयोगवादकी सर्वप्रथम चर्चा 'तारसप्तक' (१९४३) से प्रारम्भ हुई। जिसे 'प्रतीक' पत्रिका (१९४७ से ५२) ने पर्याप्त प्रचारित करनेका प्रयत्न किया। द्वितीय तार सप्तक (१९५२) तक आते-आते जब उसकी स्थापना होनेको हुई उसी समय वह काल कवलित हो गया। इस प्रयोगवादके 'प्रयोग' शब्दका मनोरञ्जक इतिहास यह है कि तारसप्तककी भूमिका मे अज्ञेय ने नवीन काव्य-प्रवृत्तिको तत्कालीन परम आवश्यकता बताया, उसे 'प्रयोग' शब्दसे सम्बोधित किया। छायावाद तो सन १९४० तक पहुँचते-पहुँचते स्वतः आत्मलीन हो गया था क्योंकि उसका सम्पूर्ण दर्शन और उसकी सामग्री सबका दिवाला निकल चुका था। यहाँतक कि छायावादके कवि स्वयं अपने पथसे विचलित होकर चले थे। उधर प्रगतिवाद भी विश्व व्यापक समाजवादका प्रचारक बनकर नया अखाड़ा बनाकर बैठ गया और इसीलिए वह भी अल्पायु होकर समाधिस्थ हो गया क्योंकि वह समकालीन लोकानुभूतियों या यों कहिए कि राजनैतिक तथा समाजवादी अभिव्यक्तियोंके लिए निरन्तर व्याकुल रहा। वास्तवमे यही उसकी सृष्टिका प्रेरणा-मन्त्र भी था।

इस प्रयोग वादके प्रवर्त्तन और समर्थनका आधार भी शुद्ध विदेशी था। इसलिए भारतकी भूमिमें अस्वाभाविक होनेके कारण यहाँकी जलवायुमे वह पनप नहीं सका। सन् १९६२ में लन्दनसे प्रकाशित 'न्यू सिगनेचर्स' नामसे एक संकलन प्रकाशित हुआ था जिसमे औड़ेन, जूलियन वेल, सेसिल, डू, लुइस, रिचर्ड, एवरहर्ट, विलियम एम्सन, जौन लेमन, विलियम प्लोवेर, स्टीपेन, स्पेडर तथा टेसीमोन नामक नवयुवक कवियोंकी नवीनतम रचनाएँ संकलित थीं जिसकी भूमिका माइकेल रौबर्ट्सने लिखी थी। ये सभी युवक कवि द्वितीय महायुद्धके पीछेकी समस्त विश्रृंखलताओं, विभीषिकाओं और जीवनकी अव्यवस्थितताओं से विक्षुब्ध थे। नवीन युगकी भावनाके अनुकूल प्रगतिशील विचारोंसे प्रेरित होकर साहित्यमे नई भावनाएँ

लेकर उपस्थित हुए। यह संकलन लगभग उसी प्रकारका था जिस प्रकारका यहाँ 'तारसप्तक' प्रकाशित हुआ क्योंकि 'तार सप्तक' के सब कवि भी या तो अपने समयकी समस्त सामाजिक विषमताओंसे और द्वितीय महायुद्धके पश्चात् उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण व्यक्तिगत सामूहिक मानसिक विभीषिकाओंसे पूर्णतः प्रभावित होनेका रूपक लेकर उपस्थित हुए; अथवा छायावादी कवियोंके समान पारमार्थिक भावनाओंके अनुकरण-पर या जन-मानसकी कल्पित व्याकुलताको अभिव्यक्त करनेके लिए या अपने अतृप्त अहम्को पाठकोंके सिरपर पटकनेके लिए व्याकुल थे। इनमेंसे कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसे व्यक्तिगत रूपसे समाजकी विषमताओंने प्रभावित किया हो। यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस युगकी अतृप्त भावनाको इन सभी वर्तमान लेखकोंने अंकित करनेका सचाईके साथ प्रयत्न किया है।

प्रयोगवादके प्रवर्त्तकोंने (विशेषतः अज्ञेयने) इस प्रयोगको 'साध्य' नहीं अपितु अपनी तीव्र अनुभूतिको व्यक्त करनेका 'साधन' माना है। किन्तु प्रयोगवादियोंका एक ऐसा भी मडल था जिन्होंने इसे साध्य मानकर अपने नामोंके पहले अक्षरसे नाम देकर 'नकेन' वाद' या प्रपद्य वाद चलाया। 'नकेन' के अन्तर्गत 'न' से नलिन विलोचन शर्मा, 'के' से केशरीकुमार और 'न' से नरेश मेहता का तो बोध होता ही है किन्तु इसका अर्थ यह भी है कि हम ऐसा कर रहे हैं जैसा किसीने पहले नहीं किया (न केन)। उनका स्पष्ट मत था कि कवि तो परम्परा-मुक्त होता है। अपनी कवितामें प्रयुक्त किए हुए प्रत्येक शब्द और छन्दका वह स्वयं निर्माता होता है। हमारे यहाँ तो पहले भी कहा जाता था :—

लीक लीक गाड़ी चलै, लीक हि चलै कपूत।
लीक छाँड़ि तीनै चलैं, सायर, सिंह, सपूत॥

स्वयं वाल्मीकिने वेदके छन्दोंको छोड़कर नये छन्दोंमें रामायणकी रचना की। महाकवि कालिदासने पूरे रघुवंशको अपने काव्यका आधार नायक बनाया। अन्य सभी प्रौढ़ कवि निरन्तर इसी प्रकारके प्रयोग करते रहे। अच्छे कविका लक्षण ही यही था। किन्तु एक बातमें वे सभी एक मत थे कि काव्यका प्रतिपाद्य विषय ऐसा अवश्य होना चाहिए जो मानवीय भावनाओंका परिष्कार करे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरित मानसके प्रारम्भमें कहा था—

सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदर सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, सादर करहिं बखान॥

उसी कविताको सुजान लोग आदर रसिक समझते है जो सरल हो, जिसमें किसीकी विमल कीर्त्तिवालेका चरित्र वर्णित हो। उसकी कसौटी यही है कि स्वाभाविक बर भुलाकर शत्रु भी उसका बखान करने लगे।

कविताके इस महत्वपूर्ण तत्वपर इन कवियोंने कोई ध्यान नहीं दिया। अज्ञेयने यद्यपि परम्पराकी शक्तिको अस्वीकार तो नहीं किया किन्तु यह आग्रह अवश्य किया कि उसमें समयकी आवश्यकताके अनुरूप भावनाओं और प्रवृत्तियोंके विश्लेषण और निरूपणका योग अवश्य होना चाहिए।

इन्हीं भावनाओंके कारण प्रयोगवादी रचनाओंमें मध्यवर्गीय जीवनके वास्तविक चित्रोंके प्रदर्शनका अधिक प्रयत्न किया गया जिनमें मध्यवर्गीय समाजकी विवशतापूर्ण अवस्था, दीनता, जीवनकी कटुताएँ, पलायनवादी प्रवृत्ति, आत्महीनता, कुंठा आदि सबका अंकन किया गया है। इस वस्तु-नियोजनके अतिरिक्त

उनकी विशेषता यह है कि वे रचना-कौशलके स्वरूपके प्रति विशेष रूपसे सजग और सचेष्ट है। इसीलिए उनकी रचनाओंमें अनेक प्रकारकी विचित्रताओंके दर्शन होते है।

इस वादके मुख्य कवियोंमें अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, नेमिचन्द, भारतभूषण, शमशेर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नलिन बिलोचन शर्मा, केशरी कुमार और नरेश मेहता मुख्य हैं।

किन्तु वादकी वात्यामे पड़कर इनकी रचनाएँ इतनी निष्प्राण हो गई है कि किसी भी प्रकारके समाजको न इनसे प्रेरणा मिलती, न उनका कोई कल्याण हो सकता। यदि इनका उद्देश्य यही था कि हम मध्यवर्गीय समाजके जीवनकी विषमताओंका चित्रण करके उन्हें नव-चेतनाके लिए उद्बोधन दे अथवा उनके मनमें क्रान्ति उत्पन्न करें तो उनका यह प्रयास भी नितान्त असफल सिद्ध हुआ। यह वाद कुछ विशेष व्यक्तियोंकी सीमामे आबद्ध होकर रह गया जो या तो इस वादके प्रचारक थे या समर्थक, समाजपर इसका कोई भी प्रभाव नही पड़ा और यह वाद भी अपनी अल्प सम्पत्ति लेकर अकाल ही कालग्रस्त हो गया।

नई कविता

इन प्रयोगवादी कवियोंकी रचनाओंको नया नाम दिया गया 'नई कविता' क्योंकि 'नई कविता' के इन रचनाकारोंमे कुछ नए कवियोंको छोडकर शेष सभी प्रयोगवादी दलके ही थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सन् १९५० तक आते-आते इन्होंने प्रयोगकी वृत्ति छोड़कर नए भाव-बोधसे प्रेरित होकर कुछ नए प्रकारकी रचनाएँ प्रारम्भ कर दीं जिसे वे बदलते हुए नए सामाजिक बोधकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न बताते है। हमारा नया समाज स्वतन्त्रताके पश्चात् चार नए वर्गोमें विभक्त हो गया—एक नेता वर्ग, दूसरा अधिकारी (नौकरशाही) वर्ग, तीसरा प्रबुद्ध किसान मजदूर वर्ग और चौथा दलित मध्यवर्ग। इनमेसे नेतावर्ग और अधिकारी वर्ग हमारे वर्तमान युगकी बहुत बड़ी समस्या हैं क्योंकि उनका भ्रष्टाचार पराकाष्ठापर पहुँच गया है। यद्यपि जमींदार लुप्त हो गए और राजवाड़े भी समाप्त हो गए किन्तु उनकी सब बुराइयाँ सत्तारूढ़ नेताओं और राज्याधिकारियोंमे व्याप्त हो गईं। मंहगाईके कारण किसान और मजदूरोंकी दशा बहुत सुधर गई। अतः इस समय केवल एक ही वर्ग अत्यन्त असन्तुष्ट, दलित और पीड़ित रह गया है और वह है मध्य वर्ग। किन्तु 'नई कविता' मे इन सबकी भावनाओंका प्रतिनिधित्व और इस नवीन सामाजिक विषमताका कोई समाधान नही किया वरन् नए प्रतीकों, बिम्बों और उपमानोंके साथ एक विचित्र काल्पनिक अस्वाभाविक कुंठाका चित्रण उसी प्रकार किया जैसे छायावादियोंने किया था। अन्तर इतना ही है कि लोग सड़ाँध, घुटन और तड़पन जैसे शब्दोंका प्रयोग करते है वे 'मूक वेदना, मौन, हाहाकार, और टूटी वीणाके तार बजाते थे। मदिरा वही है, सुराही बदल गई है। 'निकष' नामक पत्रने इस 'नई कविता' को बहुत सिर चढ़ानेका प्रयत्न किया, इसका बहुत ढिंढोरा पीटा, पर पाडुरोगके रोगीको पहलवान घोषित करके अखाड़ेमे नहीं उतारा जा सकता। सयोगसे इसका क्षेत्र कुछ थोड़ेसे प्रचारकों, और प्रयोगकी परिमल और 'साहित्य सहयोग' आदिकी संस्थाओंकी परिचर्चा तक ही बँध कर रह गया। कुछ और भी पत्रोंने इधर-उधर इनकी वकालत की पर वे भी ठहर न सके।

इस नई कविताकी विशेषता यह थी कि जिसे कोई न पूछे उसकी ये वकालत करते थे। सामान्य वस्तुओं और परिस्थितियोंसे भी इन्होंने नाता जोड़ा, गहरे और तीखे व्यंग किये, नई छन्द-योजना चलाई, व्यापक और उदार मानववादी भावनाओंका रूपक रचा और योरोपके भविष्यवाद (फ्यूचरिज्म) और अहं-भविष्यवाद (यूगोफ्यूचरिज्म) के अनुकरण पर यान्त्रिक सभ्यताका अंकन किया। इन लोगोंने सर्वथा लयपर बल दिया, तुक तालका बन्धन तोड़ा किन्तु लयपर भी ठहर न सके क्योंकि ये सभी बेसुरे और बेतुके थे।

प्रयोगवादी कवियोंके अतिरिक्त 'नई कविता' के कवियोंमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्सायन, केदारनाथ सिंह, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अजित कुमार, जगदीश गुप्त, रमासिंह और शरद देवड़ा मुख्य हैं।

हास्य-काव्य

कुछ कवियोंने इन सब विदेशी प्रभाववाली धाराओंसे हटकर अकबर इलाहाबादीकी काव्यरीतिके अनुसार सामाजिक और राजनैतिक व्यंग्यका मार्ग ग्रहण करके हास्य-विनोदात्मक कविताएँ लिखीं जिनमें बेढब, बेधड़क गोपाल प्रसाद व्यास और बरसानेलाल चतुर्वेदी मुख्य हैं। इन्होंने अँग्रेजी, हिन्दी उर्दू-मिश्रित भाषामें तथा दोहे चौपदे आदि द्वन्द्वोंमें समाजपर अत्यन्त मार्मिक चोटें की हैं किन्तु इन्हें मनोरञ्जन मात्र समझना चाहिए, ये काव्यकी श्रेणीमें नहीं रखे जा सकते।

आजका कवि और लेखक अध्ययन न करनेके कारण अपनी समस्त प्राचीन भाव-परम्पराओं, काव्य-परम्पराओं और ऐतिहासिक परम्पराओंसे अनभिज्ञ होनेके कारण विदेशी आर्थिक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रभावोंसे अभिभूत होनेके कारण इतना पथ-भ्रष्ट हो गया है कि वह स्वतः भारतीय उदात्त काव्य-परम्पराका अनुसरण करनेमें अपने को सर्वथा अशक्त पा रहा है। इसी कमीके कारण वह इतनी आत्महीनताका अनुभव करता है कि विद्वानों द्वारा आदर न पा सकनेके कारण वह कुण्ठा-ग्रस्त होकर अपने मनकी कुण्ठाको दूसरोंपर आरोपित करनेका ढोंग करनेके लिए एक नए वादका पल्ला पकड़कर अपना झण्डा,गाड़कर अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाना चाहता है। अपनी और अपने साथियोंकी बेतुकी रचनाओंका अर्थ समझानेके लिए वह अखाड़ा जमाता है, पत्र निकालता है, प्रचार करता है किन्तु उनकी पूंजी इतनी कम, इतनी अनर्गल और इतनी अभारतीय है कि भारतीय जनता उसे आत्मसात् नहीं कर सकती। विचित्र बात यह है कि जिस जनमानसको उद्‌बुद्ध करनेका ये लोग संकल्प करते हैं उस जन-मानससे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार छायावादी कवियोंको पाठ्यपुस्तकोंमें रखकर जिलाया जा रहा है उस प्रकार यदि इन प्रगति-वादी, प्रयोगवादी, नई कविता-वादी या नकेन-वादी कवियोंको जिलानेका प्रयत्न किया गया तो सम्भवतः ये लोग साँस लेते रह जायँ अन्यथा इनका अवसान बहुत कुछ हो गया है, जो शेष है उसमें भी विलम्ब नहीं है। इस अव्यवस्थाके लिए वे कवि और लेखक भी उत्तरदायी हैं जो राजधानियोंमें बैठकर नेताओंके तलवे सहलाते हैं। उनसे अपने काव्योंकी भूमिका लिखवाते हैं, पुरस्कार, पद और उपाधि पानेके लिए उनकी चाटुकारी करते हुए उनके मिथ्या गीत गाते हैं।

हिन्दी कविताका भविष्य अत्यन्त उज्वल अवश्य है किन्तु आजके अधिकांश कवियोंकी रचनामें शक्ति और सौष्ठवका अभाव है क्योंकि न तो वे प्राचीन काव्यों और कवियोंका अध्ययन करते हैं न उतनी

व्यापकताके साथ अपने, देश, समाज और जीवनका अनुभव करते जैसा प्राचीन कवि किया करते थे। इसीलिए उनमें व्यापक पांडित्य, व्युत्पत्ति और कल्पनाका अभाव है। जबतक ये शक्तियाँ पुनः भली प्रकार व्यवस्थित रूपसे सिद्ध नहीं की जातीं तबतक काव्यमें शाश्वत चमत्कार और ओज नहीं आ सकता। फिर भी जो प्राचीन परम्पराके इने-गिने कवि और लेखक विद्यमान हैं वे अवश्य इस प्रकारकी प्रेरणा देगें कि आजका पथभ्रष्ट कवि पुनः सुमार्गपर आकर अपने देश और समाजको सम्पूर्ण मानवताको, उन भावों और विचारोंकी प्रेरणा देगा जिनसे मनुष्यमें सेवा, त्याग, आत्मोसर्ग, परोपकार और पररक्षा आदिके उदात्त भावोंका सर्जन होता है और जिससे सम्तुष्ट होकर मानवीय संस्कृति और सभ्यता उदात्त होकर बल पाती और पल्लवित होती है।

निम्नांकित नवीनतावादी रचनाओंको पढ़नेसे ही ज्ञात हो जाएगा कि वे कितनी बेतुकी, अस्पष्ट और काव्यगुण विहीन हैं। कुछ कहना मात्र कविता नहीं कहलाती। ऐसे चमत्कारी ढंगसे कही हुई बातको ही कविता कह सकते हैं जिसे श्रोता तत्काल समझकर फड़क उठे और कविका उद्दिष्ट तथा शैली दोनोंसे प्रभावित होकर वाद कह उठे। वर्त्तमान रचनाओंके इन सभी तत्वोंका अभाव है। पढ़िए:—

ज्ञात
दुःख सबको मांजता है
और—
चाह स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।
चित्रकारीके
रंगोंके बन
स्वयं
फैल-फैल मैं गया
हूँ कहां-कहां
कविता
मैं अब वह था कुल—
होगी कल—यह दुनिया
मेरे जीवनमें।
आओ–ले जाओ
मुझसे मेरा
प्रणयका धन
सर्वः
वह है सब तुम्हारा ही—

तुम----
वह तुम है।

× × ×

जी हां हूजूर मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह तरहके
गीत बेचता हूँ।
मैं सभी किसिमके गीत
बेचता हूँ।
जी माल देखिए दाम बताऊंगा
बेकाम नहीं है काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे ह मस्तीमें मैंने
कुछ गीत लिखें है पस्तीमें मैंने
यह गीत सख्त सरदर्द भुलाएगा,
यह गीत पियाको पास बुलाएगा।
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको।
जी लोगोंने तो बेंच दिए ईमान।
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ,
जी हाँ हूजूरमें गीत बेचता हूँ

(गीत फ़रोश)

आमाशय.
यौनाशय,
गर्भाशय
जिसकी जिन्दगीका यही आशय,
यही इतना भाग्य......
कितना सुखी है वह भाग्य उसका
ईर्ष्याके योग्य।
हाय पर मेरे कलपते प्राण
तुमको मिला कैसी चेतनाका विषम जीवन-मान
जिसकी इंद्रियोंमेंसे परे जाग्रत हैं अनेकों मुख।

(आशय : कुँवरनारायण)

प्रबन्धकाव्यकी समीक्षा

प्रबन्ध काव्यकी समीक्षा करते समय समीक्ष्यवादीको अग्रांकित प्रश्नोंका समाधान करना चाहिए—

१—कविने जो कथा चुनी या कल्पित की है वह ग्राहकोंके भाव-संस्कारके अनुकूल है या नहीं ? उसमें विश्व-मात्रके भाव-संस्कारको आकृष्ट करनेकी शक्ति है अथवा किसी विशेष वर्गके ?

२—घटना-संयोग उचित, आवश्यक, सम्भव, विश्वसनीय, आकर्षक तथा कुतूहलजनक है या नहीं ? यदि ऐतिहासिक कथा है तो उसमें कविने क्या घटना-परिवर्तन, क्यों किया है और उससे कथामे क्या विशेषता या त्रुटि आ गई है ?

३—पात्रोंके चयनमें कविने क्या नीति अपनाई है ? उसने अनावश्यक पात्र तो नहीं लिए हैं ? उसने जो पात्र लिए हैं उनका चित्रण वर्णनीय युगकी मर्यादा, परिस्थिति तथा मन:स्थितिके अनुकूल हुआ है या नहीं ? किसीका चित्रण अतिरंजित तो नहीं हो गया है या किसीके साथ अनुचित पक्षपात तो नहीं किया गया ? यदि किया गया तो क्यों और उस पक्षपातसे क्या दोष आ गया ?

४—कवि क्या प्रभाव या रस उत्पन्न करना चाहता है ? उसमें कितनी सफलता मिली है और उस सफलताके लिए उसने किन गुण-तत्वोंका कहाँ-कहाँ किस कौशलसे सन्निवेश किया है ?

५—कविका उद्देश्य क्या है ? वह अपने उद्देश्यमे कहाँ तक सफल हुआ अर्थात् पाठकोंने उस उद्दिष्ट अर्थका कहाँ तक स्वागत और समर्थन किया ?

६—वर्णन कितना आवश्यक, सगत और सानुपात हुआ है और इस वर्णनमें भी सटीकता और सूक्ष्मता कितनी है ? किन मार्मिक स्थलोंपर वर्णनका चमत्कार आवश्यक पर्याप्त और सुन्दर अथवा अनावश्यक, या अत्यन्त अल्प असुन्दर हुआ है ?

७—भाषा-शैली उस कथाकी प्रकृति, विभिन्न स्थलोंपर वर्णित विषयों तथा भावोंके कहाँतक अनुकूल प्रभावशील आकर्षक और सुबोध है ? वाक्योंकी जटिलता, वर्णनोंकी भरमार और अलंकारोंके अतिशय प्रयोगसे भाषा कृत्रिम तो नही प्रतीत होती और उसके कारण मुख्य भाव दब तो नही गए है ? या ऐसा तो नही हुआ कि विषय निरूपणके फेरमें भाषाकी उपेक्षा कर दी गई हो।

८—कथा-विषय, रस और भावके अनुकूल है या नहीं ? यदि है तो उसकी गति, यति शुद्ध और लय-युक्त है या नहीं ? यदि केवल लयात्मक पद्यमें ही कथा-काव्य लिखा गया है तो लयकी धारा ठीक है या नहीं ? काव्यके गुणों (अलंकार प्रसाद, ओज माधुर्य, आदि गुणों) से युक्त है या केवल गद्यको पद्यमय बना दिया गया है।

९—कविने अपने सम्बन्धमें जो परिचय अपने काव्यमें दिया है वह उस काव्यके उद्देश्य या उसकी वृत्ति समझनेमे कहाँतक सहायक होता है ?

१०—कविने अपने काव्यके आधार, उसकी प्रेरणा तथा अपने जीवन-सिद्धान्तका जो परिचय काव्य या उसकी भूमिकामें दिया है उसका काव्यसे क्या सम्बन्ध है ?

११—जैसे जर्मनीमें किसी कविके अनुकरणपर निम्नकोटिका अनुकरण-साहित्य (एपिगोवेनडि-स्टूंग) रचा जाता था उस प्रकार कविने केवल अनुकरण मात्र तो नहीं किया है ? यदि अनुकरण किया है तो (अनुकरणीय ग्रन्थ या शैलीसे) अच्छा है या बुरा ?

भावात्मक-काव्यके तत्त्व

शुद्ध, सात्त्विक या भावात्मक कविताओं या गीतोंके अन्तर्गत ही वर्णनात्मक और विचारात्मक कविताएँ भी आती हैं क्योंकि कथाके प्रसंगके अतिरिक्त कवि जब किसी वस्तु, दृश्य या व्यक्तिका वर्णन करता है कोई विचार या सिद्धान्त स्थापित करता, कोई प्रतीक उपस्थित करता अथवा नीतिके द्वारा उपदेश देना चाहता है तब उसके साथ कविकी बौद्धिक अनुकूलताके साथ-साथ उसका भाव पक्ष भी समन्वित रहता है। क्योंकि इसी प्रकारके भावात्मक प्रभाव तथा अनुभवकी मानसिक प्रतिक्रियाके रूपमें ही इस प्रकारकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। इस प्रकारकी भावात्मक कविताके विषय, साधन और सत्व ये हैं :—

१—कोई वस्तु, जैसे फूल; कोई दृश्य जैसे—पर्वत; कोई व्यक्ति जैसे—सुन्दर, अद्‌भुत, या असाधारण पुरुष या स्त्री; कोई भाव जैसे देश-भक्ति, कोई क्रिया जैसे किसीका मुसकराना।

२—उस वस्तु, दृश्य, व्यक्ति, भाव या क्रिया की परिस्थिति अर्थात् किस ऋतु, काल, अवसर तथा मन:स्थितिमें कविने उसे देखा।

३—उस वस्तु, दृश्य, व्यक्ति, भाव या क्रियाके लिये अप्रस्तुत विधान (उपनाम) या प्रतीक।

४—मानसिक भाव अनुराग, विरक्ति, क्रोध, श्रद्धा आदि।

५—भावानुकूल शब्द, श्रुति-मधर, श्रुति-कटु, समस्त पद आदि।

६—भावानुकूल लय, छन्द और राग।

ऐसी भावात्मक रचनाओंमें रस न होकर केवल भाव होता है और उसका उद्देश्य केवल उस भावका सशक्त रूपसे व्यक्त कर देना मात्र होता है, अतः उसमे उद्देश्य भी नहीं होता। ऐसी रचनाएँ भावावेगकी अवस्थामें व्यक्तिगत तुष्टि अथवा कलाके लिए रची जा सकती है। और वे मुक्तक, प्रगीत या गीत-रूपमे ही हो सकती हैं।

भावात्मक कविताकी समीक्षा

भावात्मक कविताकी समीक्षाके लिए निम्नाकित प्रश्नोका समाधान करना आवश्यक है :—

१—कवि किस परिस्थितिमे विद्यमान किस दृश्य, व्यक्ति, भाव या क्रिया (घटना) से किस मन:स्थितिमे प्रभावित हुआ है ?

२—इस प्रभावका क्या भाव-स्वप्न था (अनुराग या विराग) ?

३—इस प्रभावको व्यक्त करनेके लिए उसने जो अप्रस्तुत-विधान या प्रतीक उपस्थित किए वे कहाँ तक संगत या उचित है। ?

४—इस प्रभावकी अभिव्यक्तिके लिए उसने अभिव्यक्तिकी जिस रूप शैली (वर्णन, रूपक, संस्मरण या विश्लेषण) का प्रयोग किया वह कहाँतक उचित और प्रभावशाली है।

५—अपनी अभिव्यक्ति-शैलीके लिए उसने जो भाषा-शैली ग्रहण की वह कहाँतक उचित है, प्रभाव-शाली, भावानुकूल और सुबोध है ?

६—जिस लय, छन्द और रागमे बाँधकर कविता लिखी गई वह भावानुकूल है या नहीं ?

७—वह कविता अपने शब्द, उपमान, और छन्दके समन्वयसे पाठक या श्रोता हृदयपर भी वर्ण्य विषय और भावके प्रति वही भाव उत्पन्न करती है या नहीं; जो कविके हृदयमे उत्पन्न हुआ था ?

चित्र-काव्य

केवल कलाके लिए जो चित्र-काव्य रचा जाता है उसमें चमत्कार-प्रधान होता है। उसमें केवल एक ही तत्व होता है " चमत्कार "। ऐसी रचनाओंका समीक्षण केवल इस दृष्टिसे करना चाहिए कि उसमें कविने शब्दों या अर्थमे किस प्रकार चमत्कार उत्पन्न किया और उस चमत्कारमे उक्ति-सम्बन्धी कुछ सौन्दर्य, अद्भुत तत्व या असाधारण तत्त्व विद्यमान है या नहीं या वह केवल शाब्दिक बाजीगरी मात्र है। बहुतसे कवियोंने केवल भाषा-कौशल (जबानदानी) के लिए ही रचना की है। अतः उनके कौशलकी समीक्षा करते समय भावोंकी गहराई नापनेके फेरमे न पड़कर सीधे यह देखना चाहिए कि कविने कितने सरल तथा संक्षिप्त शब्दोंमे कितने बड़ा अर्थ भर दिया है।

आजका युग गद्यका युग है। मनुष्य आज भौतिकवादके कारण तथ्यवादी और प्रत्यक्षवादी हो गया इसलिए उसकी कल्पनाशक्ति और बिंब-ग्रहण शक्ति कुंठित हो गई है। अनेक प्रकारके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक वादोंके कारण काव्यको प्रचारका आधार बनाया जाने लगा है इसलिए काव्यमे न तो कल्पनाका चमत्कार ही रह गया है न अभिव्यक्ति-कौशलका आकर्षण। कविता तो सत्त्व प्रेरक होती है, बाह्य सुधारक नही किन्तु यह महत्वपूर्ण तत्त्व भुला देनेके कारण काव्य व्यभिचरित होकर निष्प्राण हो गया है।

निबन्ध

गद्यका प्रचार और प्रसार होनेके साथ ही बहुतसे लोगोंको विभिन्न विषयोंपर चिन्तनपूर्वक अपने मत व्यक्त कर सकनेमें सुविधा हो गई क्योंकि पद्य रचनामें इतने विस्तारके साथ सब बातें कह लेना सम्भव नही था। इसलिए निबन्धोंका चलन भी गद्यके साथ ही हुआ।

नागरी-गद्यका विकास होनेपर हिन्दीमे अनेक निबन्धकार निकल आए। भारतेन्दु-कालीन लेखकोंने बहुत-से अच्छे लेख चुह-चुहाती भाषामें लिखे किन्तु गम्भीर निबन्धोंकी कोटिमें वे नहीं रखे जा सकते। मासिक अथवा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओंका प्रकाशन आरम्भ होनेके साथ ही उनके लिए लेखोंकी समस्या सामने आई और उनके लिए ही लेख लिखनेका ढंग भी चल पड़ा। परन्तु निबन्ध केवल लेख मात्र नहीं होता। उसमें गम्भीर और विचारात्मक भाव भी अपेक्षित है अतएव पत्र-पत्रिकाओंमे निकलनेवाले सभी लेखोंको निबन्ध की संज्ञा नही दी जा सकती। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारतेन्दु कालके लेखकोंने विभिन्न शैलियोंमें लेख लिखकर भाषाकी शक्ति प्रदर्शित की और यह सिद्ध कर दिया कि गम्भीर विचार प्रकट करनेकी शक्ति नागरीमें है क्योंकि उन्होंने वर्णनात्मक, भावात्मक और विचारात्मक सभी प्रकारके लेख लिखे हैं।

निबन्धके तत्व

निबन्धके पाँच तत्व होते हैं—१—विचार, २—विचारोंके समर्थक तर्क, ३—विचारोंके विरोधी तर्क, ४—विचारोंका समन्वय और ५—मत-स्थापना। प्रत्येक निबन्धकारको इन तत्वोंका संग्रह करनेके अनन्तर आगे दिए हुए एक विशेष क्रमसे उपर्युक्त तत्त्वोंका विधान करना चाहिए— १—प्रस्तावना या विषय प्रवेश, २—विरोधी तर्कोंका खण्डन, ३—दोनों पक्षोंके मतोंका तुलनात्मक विवेचन, ४—अपने पक्षकी स्थापना और ५—उपसंहार या निर्णय।

निबन्धकी शैली

निबन्धकी भाषा-शैली गम्भीर, पारिभाषिक तथा दार्शनिक होनी चाहिए क्योंकि निबन्धोंकी रचना केवल उच्च श्रेणीके विचारकोंके लिए की जाती हैं। उसमें वाक्य रचना अत्यन्त संश्लिष्ट, सुगठित, सन्तुलित स्पष्ट तथा संक्षिप्त होनी चाहिए। उसमें कहीं शिथिलता, लघुता तथा कृत्रिमता और आवेग पूर्ण भावात्मकता नहीं आनी चाहिए। निबन्ध लेखकोंको यही प्रयत्न करना चाहिए कि हम कमसे-कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक भाव भर दें और पाठकको मनन करनेका अवसर दें।

निबन्धकी समीक्षा

निबन्धकी समीक्षा में समीक्ष्यवादीको निम्नांकित समस्याओंका समाधान करना चाहिए :—

१—लेखकने जो विषय चुना है वह कहाँ तक निबन्धके योग्य है।

२—उसके लिए जो भाषा शैली चुनी गई है वह कहाँ तक उपयुक्त है।

३—लेखकमें इस विषयके विवेचन की निर्वाह-शक्ति किन बातोंसे व्यक्त होती है।

४—दार्शनिक, संक्षिप्त और पारिभाषिक बननेके फेरमे लेखक अस्पष्ट तो नहीं हो गया ?

५—लेखकके तर्क कितने प्रामाणिक और सशक्त है ?

६—उद्दिष्ट विषय स्पष्ट रूपसे विविक्त हो पाया है या नहीं ?

द्विवेदी कालमें आकर निबन्धोंका पूर्ण विकास हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीने सरस्वतीके माध्यमसे जहाँ लोगोंकी भाषाका संस्कार किया वहाँ उन्होंने निबन्धोंके लिए भी मार्ग खोल दिया। द्विवेदीजी का आचार्यत्व भाषा-संस्कारतक ही परिमित है परन्तु उन्होंने अच्छे-अच्छे निबन्धकार भी उत्पन्न किए। यद्यपि द्विवेदीजीने गूढ़ विषयोंपर गम्भीर निबन्धोंकी सृष्टि नहीं की तथापि विचारात्मक और मुख्यतः विवरणात्मक निबन्ध उन्होंने वहुतसे लिखे। उस समयके बहुत उच्च कोटिके निबन्ध लेखकोंमें माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह और गुलाबराय हैं। सबसे अधिक प्रौढ़ निबन्ध आचार्य शुक्लजीके हैं जिन्होंने गम्भीर विषयोंपर प्रौढ़ भाषामें ऐसे श्रेष्ठ निबन्ध लिखे कि उनसे नागरी भाषाकी अभिव्यंजना-शक्तिका सिक्का जम गया। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शिवपूजन सहाय, नन्ददुलारे बाजपेयी, चन्द्रबली पाण्डेय, हजारी प्रसाद द्विवेदीने भी अच्छे निबन्ध लिखे हैं पर शुक्लजीको कोई नहीं पा सका। नागरी गद्यकी शक्तिकी पूर्ण व्यञ्जकता निबन्धोंमें ही दिखाई पड़ी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

गद्य-काव्य

हिन्दी साहित्यके अन्य क्षेत्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुरको गीताञ्जलिपर जब नोबेल पुरस्कार मिला तो इसकी ओर बहुतसे लोग आकृष्ट हुए। वह पुस्तक गद्य-काव्यके रूपमें लिखी गई थी। अतः नागरीके अनेक लेखकोंने उसी प्रकारका भावात्मक गद्य (गद्य-काव्य) लिखनेकी चेष्टा की। वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, भँवरलाल सिंघी आदिने—इस शैलीमें कई पुस्तकें लिखीं किन्तु अब इसका चलन बन्द हो गया है।

पत्र-साहित्य

पत्रोंके रूपमें विचार प्रकट करना भी निबन्ध-लेखनकी एक शैली है। विदेशोंमे इस प्रकारके निबन्ध लिखे गए। है तो वस्तुतः ये गूढ़ निबन्ध ही किन्तु ये पत्रोंके रूपमे लिखे गए है। नागरीमें भी इस प्रकारके कुछ पत्रात्मक निबन्ध लिखे गए हैं जो विचारात्मक और भावात्मक दोनों श्रेणियोंमें आते हैं। इस प्रकारकी दो महत्वपूर्ण पुस्तकें हमारे देखनेमें आई है—एक है कमलापति त्रिपाठी कृत 'बन्दीकी चेतना' जो बहुत ही प्रौढ़ प्रवाहशील और प्रभावशील ओज-पूर्ण रचना है और दूसरा है रामनाथ कृत 'भाईके पत्र'।

जीवनचरित्र

चरितकाव्य लिखनेकी परम्परा सभी भाषाओमे आदिकालसे ही रही है। नागरीमे गद्य-साहित्यका प्रसार होनेपर जहाँ साहित्य-सेवियोंने अनेक विषयोंपर पुस्तकें लिखी वहाँ जीवन-चरित भी बहुतसे लिखे गए। इसमे आचार्य चतुर्वेदी कृत 'महामना पण्डित मालवीय' साहित्यिक दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। शेष केवल जीवन-चरितकी दृष्टिसे लिखे गए हैं, साहित्यकी दृष्टिसे नहीं।

हिन्दीमें सबसे पहला जीवन-चरित जैन कवि बनारसीदास कृत 'अर्द्ध कथानक' है। उसके पश्चात् फिर नागरीमे ही जीवन चरित लिखे गए। नागरीमे लिखी गई पहली आत्मकथा स्वामी श्रद्धानन्द-कृत कल्याण मार्गका 'पथिक' है।

माधवप्रसाद मिश्रकी 'विशुद्ध चरितावली' का अपना अलग महत्व है। शिवपूजन सहाय-कृत गोस्वामी तुलसीदासका जीवन चरित तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जीवन चरित उच्च कोटिकी रचनाएँ है। देवी-प्रसादकृत 'मीराकी जीवनी' भी अच्छी पुस्तक है। बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'सत्यनारायण कवि-रत्नकी जीवनी बहुत अच्छी बन पड़ी है। भाषा शैलीकी दृष्टिसे बहुत व्यवस्थित न होते हुए भी राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादकी 'आत्मकथा' अच्छी पुस्तक है। छोटी-मोटी जीवनियाँ तो बहुत निकली है।

प्रचार-कार्य

पत्र-पत्रिकाएँ

आरम्भसे ही नागरीके प्रचारके लिए प्रचार-सम्बन्धी कार्य भी होता रहा है। इस प्रसंगमें सबसे पहला महत्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपनी दो पत्रिकाओं 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका'

द्वारा किया। इसके साथ ही प्रताप नारायण मिश्र 'प्रेमघन' तथा बालकृष्ण भट्ट आदिने भी पत्रिकाएँ निकालकर बड़ा भारी कार्य किया। इस क्षेत्रमे महामना पंडित मदनमोहन मालवीयने 'हिन्दुस्तान' पत्रका सम्पादन करके बड़ा यश अर्जित किया। देशके अनेक भागोंसे समय समयपर पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रहीं। इन पत्र-पत्रिकाओंके कारण जहाँ नागरीका प्रचार होता था वहाँ सबसे बड़ी बात यह हुई कि भाषाकी शक्तिके संवर्धनमें भी उन्होंने बहुत बड़ा हाथ बँटाया। सरस्वती और नागरी प्रचारिणी-पत्रिकाके निकलनेके पश्चात् नागरी-गद्यका रूप अत्यन्त सुव्यवस्थित हो गया। आगे चलकर विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ भी निकलने लगीं। सम्प्रति इस ढंगकी पत्रिकाओंमे सरस्वती और साहित्य-सन्देश उल्लेखनीय हैं। इस समय नागरीमें निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओंकी सख्या एक सहस्रसे कम न होगी।

प्रचार-संस्थाएँ

नागरीके प्रचारके उद्देश्यसे सर्वप्रथम नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना आचार्य श्यामसुन्दरदास, रामनारायण मिश्र और शिवकुमार सिंहने सन १८९० मे की। सभाने सबसे बड़ा कार्य यह किया कि महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके नेतृत्वमे प्रबल आन्दोलन करके नागरीको पुनः न्यायालयोंकी भाषाके रूपमें प्रतिष्ठित कराया। इसके पश्चात् हिन्दीके ग्रन्थोंका खोज-कार्य हाथमें लेकर अनेक महत्वके ग्रन्थोंका प्रकाशन किया और हिन्दी पुस्तकोंका सबसे बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया। नागरी प्रचारिणी सभाके अधिकारियोंके प्रयत्नसे ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई जिसने हिन्दीमे उच्च कोटिकी परीक्षाएँ लेनेका प्रबन्ध करके हिन्दी साहित्यके अध्ययनकी और लोगोंको प्रवृत्त किया और जिनकी ओरसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रमे हिन्दी प्रचार-सम्बन्धी कार्य भली भाँति कर रही है।

नागरी या हिन्दीके देशव्यापी प्रचारमें सबसे अधिक योग दिया है हिन्दीके चल चित्रोंने जिन्होंने प्रेम कथाओं और कामोत्तेजक दृष्योंके कारण जहाँ एक ओर लोक मानसको बहुत दूषित किया वहीं उनसे अनजाने और अनचाहे यह हित भी हो गया कि जिन प्रदेशोंमें लोग हिन्दीका विरोध करते हैं, वहाँ भी लोग बड़े चावसे हिन्दी चित्र देखते है और उन चलचित्रोंके गीत अलापते है यहाँतक कि कर्नाटक संगीतवालोंको यह आशंका होने लगी है कि कहीं कर्नाटक-सगीत-पद्धति ही न लुप्त हो जाय।

समीक्षा

प्राचीन समीक्षा-प्रणालीके अनुसार एक श्लोक या एक दोहेमें कविके सम्बन्धमें कुछ कह देना ही पर्याप्त समझा जाता था। किन्तु इधर जबसे योरोपीय साहित्यसे लोगोंका परिचय हुआ तबसे समीक्षाका मानदण्ड सर्वथा बदल गया। समीक्षा अब गुणदोष-कथन तक ही न रहकर कविकी विशेषताओं, उसकी अंत: प्रवृत्तियोंके उद्घाटन, उसकी सामयिक परिस्थितियों और ग्रन्थ रचना की प्रेरक शक्तियोंकी छान-बीन तक जा पहुँची। इसके अतिरिक्त अपने यहाँके काव्य विषयक सिद्धान्तों तथा योरोपीय साहित्यिक सिद्धान्तों एवं वादोंपर भी गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ। इस प्रकारकी समीक्षाकी प्रौढ़ पद्धतिके विकासका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्लको है।

नागरी-गद्यका विकास होनेके पश्चात् और विदेशी साहित्योंसे परिचित होनेके अनन्तर हमारे यहाँके लेखकोंने कवियोंकी रचनाओंको आलोचनात्मक दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। किन्तु विचार करनेवालोंकी दृष्टि काव्यके बाह्य आवरण तक ही परिमित रही। कालिदासकी निरंकुशता, हिन्दी कालिदासकी आलोचना आदि इसी ढंगकी पुस्तकें हैं। आलोचनाकी निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक दोनों पद्धतियोंमेंसे आरम्भ में हमारे यहाँ निर्णयात्मक पद्धतिका ही बोलबाला रहा। निर्णयात्मक पद्धतिका मुख्य आधार तुलनात्मक समीक्षा है। यह ढंग संस्कृतमें भी किसी-न-किसी रूपमे चलता था। सबसे पहले मिश्रबन्धुओंने हिन्दी नवरत्नके द्वारा इसे नई शैलीमें ढाला। उसके पश्चात् तो देव बिहारीको लेकर हिन्दीके साहित्यकारोंमें एक प्रकारका द्वन्द्व ही खड़ा हो गया। इस प्रकारकी समीक्षा उन दिनों इतनी चली कि लोगोंने तुलनात्मक समीक्षाको ही मुख्य मान लिया। पत्र-पत्रिकाओंमें कवियोंपर आरम्भसे ही समीक्षात्मक लेख निकलते रहे। सरस्वतीमें आचार्य द्विवेदीजीने समीक्षाके लिए आई हुई पुस्तकोंकी भाषा आदिकी दृष्टिसे उचित समीक्षाएँ कीं किन्तु उस समयतक व्याख्यात्मक समालोचनाका उदय न हो पाया था।

सम्वत् १९७५ के पश्चात् हिन्दीमे सब प्रकारसे स्वस्थ समीक्षाका आरम्भ हुआ। सूरदास, तुलसीदास और जायसीपर शुक्लजीने जो प्रसिद्ध विद्वत्तापूर्ण समीक्षाएँ लिखीं उनके अनुकरणपर नए-पुराने सभी साहित्यकारोंके विषयमें सैकड़ों समीक्षाएँ लिखी गई। विभिन्न परीक्षाओंमें समीक्षात्मक प्रश्न पूछे जानेकी दुष्ट परम्पराके कारण भी अतिशय दरिद्र समीक्षात्मक पुस्तकोंका प्रकाशन हुआ। पुस्तक-प्रकाशनकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह समीक्षा-युग है। पिछले २५-३० वर्षोंमे समीक्षा-सम्बन्धी साहित्य का अम्बार लग गया। स्वतन्त्र रूपसे तो समीक्षात्मक ग्रन्थ निकले ही, साथ ही पुराने कवियोंने, ग्रन्थोंके सम्पादकोंने भी ग्रन्थके आरम्भमें लम्बी-चौड़ी भूमिकाएँ लिखकर कवियोंके समय, परिस्थिति और उनके जीवन-क्रमके प्रसंगमें ग्रन्थकी विस्तृत समीक्षाएँ प्रस्तुत कीं। कुछ लेखकों और कवियोंने स्वयं भी अपने ग्रन्थोंकी भूमिकाके रूपमें साहित्यके या उससे सम्बद्ध अंगपर विस्तारपूर्वक विचार करके अपनी पोथीके सम्बन्धमें भी अपना मत उपस्थित किया जैसे हरिऔधजीने प्रियप्रवासकी भूमिकामें, शुक्लजीने बुद्ध-चरितकी भूमिकामें और पन्तजीने पल्लवकी भूमिका में। आजकल डाक्टर बननेकी धुनने भी इस प्रवृत्तिको पर्याप्त बल दिया। कुछ साहित्यकारोंने स्वयं अपनी रचनाओंकी समीक्षाकी है जैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित आधुनिक हिन्दी कवि: पन्त, आधुनिक हिन्दी कवि: महादेवी, बहुतसे कवि, लेखक और उपन्यासकार अपने शिष्यों प्रशंसकों आदिसे अपनी प्रशंसामें या अपने प्रचारके लिए अपनी रचनाओंकी आलोचना प्रकाशित कराते रहते हैं और कुछ सज्जन तो पैसा देकर भी आलोचना लिखवाते हैं। कुछ लोगोंने अपना दल बना लिया है जिसके सदस्य परस्पर एक-दूसरेकी प्रशंसा करते रहते हैं—परस्परं प्रशंसन्ति अहोरूपमहो ध्वनिः। इसलिए ऐसी समीक्षाका कोई महत्व नही रह गया।

भारतीय साहित्यशास्त्रके विविध अंगोंपर तथा योरोपीय साहित्यिक वादोंपर भी अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थोंका इस बीच प्रकाशन हुआ; जिनमें गम्भीरता पूर्वक और आधुनिक दृष्टिसे इन सब विषयोंका बहुत विस्तारके साथ विवेचन किया गया है। इस ढंगकी पहली पुस्तक आचार्य श्यामसुन्दरदासकी साहित्यालोचन है; जिसमें हड्सनके अँग्रेजी साहित्यके अध्ययनकी भूमिका (इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंग्लिश लिटरेचर) के आधारपर साहित्य-समीक्षापर विचार किया गया है। आचार्य चतुर्वेदीने समीक्षा-शास्त्रमें

देशी-विदेशी साहित्योंके समीक्षा-सिद्धान्तोंपर विवेचन किया है और अभिनव नाट्यशास्त्रमें साहित्यके मुख्य अंग 'नाट्य' पर देशी और विदेशी नाट्य शास्त्रीयकी दृष्टिसे विस्तृत विचार किया है।

कवियोंकी समीक्षाके साथ ही साहित्यके विकास-क्रमपर भी इस बीच पर्याप्त रूपसे विचार हुआ। आचार्य शुक्लजीने ही सर्वप्रथम ९०० वर्षोंके हिन्दी साहित्यके इतिहासको व्यवस्थित करके उसे युग प्रवृत्तियोंके अनुसार कालकी सीमामे बाँधा, प्रत्येक युग और प्रत्येक युगके कविकी सटीक शास्त्रीय समीक्षा भी की। इससे पूर्व 'शिवसिंह सरोज' और 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु वे कालक्रमानुसार कवि-वृत्त-सग्रह मात्र थे। साहित्यके इतिहासके रूपमें उनका कोई महत्व न था। कुछ पुस्तकें अँग्रेजीमें अवश्य निकली थी, किन्तु शुक्लजीने जिस व्यवस्थित ढंगसे हिन्दी साहित्यका इतिहास लिखा उसे देखते हुए वैज्ञानिक पद्धतिपर हिन्दी-साहित्यके प्रथम इतिहासकार वेही हैं। फिर तो उनके अनुकरणपर एक एक युग और कालको लेकर या समग्र दृष्टिसे न जाने कितने छोटे-बड़े इतिहास निकल गए जिनमे युगकी समीक्षाके साथ कवियोंकी समीक्षा करनेकी चाल भी चल निकली। हिन्दी साहित्यके इतिहास भी इतने अधिक निकल चुके कि उनकी गणना करना व्यर्थ है। किन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि प्रायः सभी लेखकोंने शुक्लजीकी प्रणाली ही अपनाई।

भोजपुरी साहित्य

अवधी और मगही भाषा क्षेत्रोंके बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहारका वह प्रदेश आता है जहाँ हिन्दीकी पूर्वी बोली भोजपुरी बोली जाती है और जिसमें कबीरने अपनी रचना करनेकी घोषणा की थी। प्रयाग, काशी, गोरखपुर, गाजीपुर, आजमगढ़, बस्ती, मिर्जापुर, आरा, छपरा, पटना, तक बहुत बड़ा भू-भाग इस बोलीकी सीमामें है। अधिक घना बसा होनेके कारण यहाँके लोग समस्त भारतमें फैलकर 'भइया' के नामसे प्रसिद्ध है और जीविकाकी खोजमे घूमते हुए ब्रह्मा, स्याम, मलाया, ट्रिनिडाड, मोरीशस, फ़िजी, डच गायना, ब्रिटिश गायना, नैटाल आदि प्रदेशोंमे अपनी भोजपुरी भाषा बोलचालके लिए और नागरी भाषा (हिन्दी खड़ी बोली) व्यवहार और लिखा-पढ़ीके लिए लेकर जमे हुए है।

इस भोजपुरी क्षेत्रका लोक-साहित्य इतना सम्पन्न है कि उसके विविध अंगोंको लेकर कई सज्जन डाक्टर हो गए। यह तपोभूमि और वीर-भूमि है भारतीय स्वातंत्र्य सग्रामके प्रथम युद्ध (१८५७) का श्री गणेश करनेवाला मंगल पांडे इसी प्रदेशके बलिया जनपदका निवासी था और १९४२के अन्तिम स्वातन्त्र्य-युद्धकी सफलताका श्रेय भी इसी जनपदको है। इधर कुछ वर्षोंसे भोजपुरी बोलीको समुन्नत करनेका और उसे भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करनेका अत्यन्त स्तुत्य प्रयास हो रहा है। 'भोजपुरी' और 'विहान' नामक दो साप्ताहिक पत्र भोजपुरी बोलीमें आए और बलियासे प्रकाशित हो रहे है। अनेक कवि भोजपुरी बोलीमें उच्च तथा प्रौढ़ साहित्यिक रचनाएँ कर रहे हैं। काशीके प्रसिद्ध दैनिक-पत्र 'आज' के रविवासरीय संस्करणमे नियमतः भोजपुरी कविताएँ प्रकाशित होती है और पत्र छपते हैं। आकाशवाणी प्रयाग और पटनासे नई शैलीमें प्रायः भोजपुरी कवियोंकी कविताएँ और उसके गीत सुननेको मिल जाते है। भोजपुरी बोलीमें कुछ कहानियाँ भी प्रकाशित हुई है, गीत-संग्रह भी निकले है और काव्यकी अनेक शैलियों और छन्दोंका भोजपुरीमें सफल प्रयोग हो रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व आरेमें जो भोजपुरी सम्मेलन हुआ था उसमें तो भाषावार प्रान्तके आधारपर भोजपुरी प्रान्त बनानेकी भी माँग की गई थी किन्तु अत्यन्त सन्तोषकी बात है कि देश-विघटक संकुचित प्रवृत्ति अधिक बल नहीं प्राप्त कर सकी। वास्तवमें वर्त्तमान हिन्दी (नागरी) के जन्मदाता, स्रष्टा और पोषक सब (भारतेन्दु, हरिऔध, प्रेमचन्द, प्रसाद, आचार्य शुक्ल, रत्नाकर आदि) इसी प्रदेशके थे जिन्होंने अपनी बोलीका संकुचित मोह छोड़कर भारत-व्यापी राष्ट्रीयताको पुष्ट करनेवाली नागरी (हिन्दी) को समृद्ध करनेका संकल्प लेकर उसीका भण्डार भरा। एक बार आचार्य शुक्लजीसे किसी भोजपुरी प्रचारकने कहा भी था कि आपने अपनी बोलीके लिए कुछ नहीं किया। आचार्यजीने स्वाभाविक व्यंग्यके साथ कहा---'अपनी बोली तो मैं बोलता हूँ पर हमें तलैयामें ही उछलकूद मचाकर सन्तोष नहीं करना चाहिए, समुद्रमें तैरनेका अभ्यास करना चाहिए, प्रदेशकी सकुंचित दृष्टि छोड़कर देशको व्यापक दृष्टिसे देखना चाहिए।' राष्ट्रभाषाको समुन्नत करनेकी इस उदार दृष्टिके कारण ही इन मनीषियोंने अपनी बोलीका मोह त्यागकर नागरी साहित्यको श्री-सम्पन्न और शक्ति सम्पन्न किया, यह भी कम त्याग और तपस्याकी बात नही है। यह भी राष्ट्रकी बड़ी अमूल्य और महत्वपूर्ण सेवा है।

भोजपुरी-साहित्यके संवर्द्धनमे जो व्यक्तिगत और सम्मिलित प्रयास हो रहे है वे बड़े सराहनीय हैं और यह विश्वास है कि इन सभी प्रयासोंके फलस्वरूप भोजपुरी बोली भी शीघ्र ही साहित्यिक शक्ति संजोकर भाषाके पदपर प्रतिष्ठित हो जायगी, प्रादेशिक भाषाओंमें उसका भी सम्मान होगा। आशंका यही है कि कहीं इतनी साहित्यिक प्रौढ़ता प्राप्त करके भोजपुर प्रदेशके लोग प्रान्तकी माँग न कर बैठे जो उनकी भावात्मक परम्पराके प्रतिकूल है क्योंकि वे उत्तर प्रदेशमें ब्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी, नागरी (खड़ी बोली) और गढ़वाली कुमाऊँनीके साथ और बिहारमें मगही, मैथिली, सन्थालीके साथ रहते चले आए है।

राहुल सांकृत्यायनने भोजपुरी भाषाके पाँच शैली-भेद माने है---१. काशिका (काशी और मिर्जापुर प्रदेशमें बोली जानेवाली; २. मल्लिका (प्राचीन मल्ल देश अर्थात, गाजीपुर, बलिया, छपरा, आजमगढ़, जौनपुर, गोरखपुर, देवरियामें बोली जानेवाली; ३. वज्जिका प्राची वृज्जि प्रदेश अर्थात् मुजफ्फरपुरकी ओर बोली जानेवाली; ४. मधेसिया-थारू (चम्पारन तथा तराईके प्रदेशमे बोली जानेवाली); और ५. नगपुरिया (छोटा नागपुर, रांचीके आसपास बोली जानेवाली। इस प्रकार इस भाषाका क्षेत्र बहुत विस्तृत और विशाल है और यह इस प्रदेशके लिए श्रेयकी बात है कि यहाँके निवासियोंने अपनी बोलीका आग्रह छोड़कर राष्ट्रभाषाकी समुन्नतिमे सबसे अधिक योग दिया, उसे पुष्ट तथा समृद्ध किया।

भोजपुरीका लोक-साहित्य

भोजपुरीका लोक-साहित्य बड़ा सरस, समृद्ध और बहुरूप है। जैसे राजस्थान और गुजरातमें रासक, रासा या रासो चले वैसे ही इस प्रदेशमें बिदेसिया काव्य चला जिसमें उस वियोगिनी नायिकाके वियोगका वर्णन होता है जो नौकरीके लिए परदेश चला जाता है और जिसके सम्बन्धमें यह समाचार मिलता है कि उसने वहीं अपना दूसरा विवाह भी कर लिया है। इसका अन्त प्रायः सुखमय होता है। इसके अतिरिक्त आठ लयोंमें बिरहा, झूमर, लहरो, चहल, घाँटो, चैता, होली, कहरवा आदि न जाने कितने प्रकारके-लोक-काव्य-रूप

मिलते है जिनके साथ स्त्रियोंके गीत (विवाह, यज्ञोपवीत, उत्सव, पर्व, स्नान, पूजा, आदिसे सम्बद्ध) और श्रम कार्योंके गीत (चक्की चलाने, पुरवर चलाने आदिसे सम्बद्ध) भी प्रचलित हैं।

नवीन शैलीके गीत

इन लोक-गीतोंके अतिरिक्त वर्तमान उच्च-शिक्षण प्राप्त कवियोंने उदात्त शैलीके गीत और कविताएँ लिखी है जिन्हें विषय, शैली और कौशल सभी दृष्टियोंसे उदात्त काव्यकी शैलीमे रखा जा सकता है। इन कवियोंने सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक विषयोंपर गंभीर विनोदात्मक रचनाएँ की है। जिनमें कुछ हलकी भी है किन्तु अधिकांश उच्च कोटिकी है। इन रचनाकारोंमें निम्नांकित प्रमुख है—मनोरञ्जन प्रसाद सिनहा, महेन्द्र शास्त्री, रामविचार पांडेय, राजबली तिवारी, प्रसिद्ध नारायण सिह, श्यामसुन्दर ओझा मंजुल, विश्वनाथप्रसाद शैदा, शिवप्रसाद मिश्र रुद, 'गुरु बनारसी', शिवदत्त श्रीवास्तव 'सुमित्र', जगदीश ओझा 'सुन्दर' मोहनलाल गुप्त 'भैयाजी बनारसी', रमाकान्त द्विवेदी 'रमता', नन्दकिशोर 'करुण', मोती बी. ए., रामनाथ पाठक 'प्रणय', विश्वनाथ त्रिपाठी, गगेश्वर पाण्डेय 'चञ्चल', प्रभुनाथ मिश्र, रामबचन लाल श्रीवास्तव, रामदरश मिश्र, रामसिंह उदय, अनिरुद्ध दिवाकर लाल अंकुर, लक्ष्मण त्रिपाठी 'प्रवासी', भगवान सिंह, चन्द्रशेखर मिश्र, पद्मदेव 'पद्म', परमहंस पाठक, चन्द्रदेव सिंह 'हृदय', रघुनाथ चौबे, भुवनेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव 'भानु', परमानन्द मिश्र 'रंग', 'राहगीर', कमलाप्रसाद मिश्र 'विप्र', अर्जुनकुमार 'अशान्त' रामेश्वरप्रसाद काश्यप, चतुरी चाचा, रामवृक्षसिंह 'सरोजेश', स्व. अशेष, उमाकान्त वर्मा, मदन मोहन सिनहा 'मनुज'।

भोजपुरी कवियोंकी एक यह भी परम्परागत विशेषता है कि सब बहुत लम्बी कविता करते है किन्तु असमें सन्देह नहीं कि उनमें सरसता अपार होती है। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय है—

अइली बसन्त रितु महुआका कोचवामें
झाँकि-झाँकि हँसि-हँसि आँखि मलकावेली।
सरसोका फूलवाकी पिअर चदरियामें
तीसीयाका फूलके बतीसी चमकावेली।
आमका मोजरियापर छम-छम नाचेली
आ गम-गम फूलके गमक गमकावेली।
पछवा जे सोहीकि सोहीकिके बहेला ओसे
चूमि-चूमि जगका जवानीके जगावेली।

—रामबिचार पांडेय

बिहान

पुरुबका देसावासे झाँके बिहनवाँ
चहके चिरइयनके गोल।
लहरे ला, धरतीके धानी चुँदरिया,
जागलि किरिनियाँ, लुकाइल अन्हरिया।

साँझियेके तालावामें सूतल कमलवा
ताके नयनवाँके खोल।
लालीमें काली बदरिया रँगाइल,
अइले गगनमें सुरुज अगराइल।
रतियाका अँखियासे ढरकल लोरवा
मोती बनल अनमोल।
जागलि मड़इयोके सूतल जवानी,
माटीपर झलकेला सोनाका पानी।
कलियनका भानावाँसे गावे भँवरिया,
भौंरा बजावेला ढोल।
अबहूँसे, जागु-जागु भइया किसनवाँ,
कमवामें अइहेंना एको बहनवाँ।
लुढुकि-लुढुकि कर बाँटे बयरिया,
पीलऽ मधुइयाके घोल।
पुरुबका देसावासे झाँके बिहनवाँ
गावे चिरइयनके गोल।

—श्यामसुन्दर ओझा 'मंजुल'

ग़ज़ल

बनमें बनल हमार तऽ बासा तोरे बदे।
जग-जगसे लगउले हई आसा तोरे बदे ।।
फाँकीला धूर पीके पवन भूतके तरे।
खेलल करीला बनके तमासा तोरे बदे ।।
जोन्हरी चना न बाय मवस्सर एहर हमें।
लेकिन ओहर हौ दूध-बतासा तोरे बदे ।।
पंछी रही अकासमें मछरी समुन्द्रमें।
देखऽ कहाँ लगाईला लासा तोरे बदे ।।
जूता औ लात हाथ कि लाठी कऽ बातका,
एक दिन चली जरूर गँड़ासा तोरे बदे।
माँगीला भीख आज तऽ साइं अतीथ बन,
गुदड़ी हौ तर पै हाथमें कासा तोरे बदे।
देबीकऽ रूप हमके तू मन्दिरमें ले चलऽ
खस्सी बनल हई होलऽ खासा तोरे बदे।

जेहलमें गूंज गइल जऽ पगली तऽ का भयल,
थाननमें तऽ बजऽला पचासा तोरे बदे।
पढ़ले हौ संसकीरतौ औ नागरी 'गुरु'
सिखलेस बनारसौ कऽ लऽ भासा तोरे बदे।

—शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' 'गुरु बनारसी'

बरखाक रात

बरसेला पनिया,
दुआर लागि धनिया
राहि ताकि ताकि पछिताय।
ना आइल बिदेसिया,
ना भेजलसि सनेसिया,
एक-एक दिन टरि जाय।
कड़के बदरवा,
तड़पे जियरवा,
बिजरीक नोक घँसि जाय।
रतियो सवतिया,
बताई कवन बतिया
आँखि लागि-लागि खुलि जाय।

—बरखाक रात : चन्द्रदेव सिंह 'हृदय'

पहिला पानी

प्यारके पियासल धरती, पड़ल पहिला पानी रे
अँसुवासे भीजल हमरे प्यारके कहानी रे।
मनके कगार टूटल
दिलमें दरार फूटल,
हिरदयके हार टूटल,
जियाके करार छूटल,
अँसुवनके धार फूटल, इहे जिनगानी रे।
बहुत इंतीजार कइली,
जिनगी बेकार कइली,
सोनाके छार कइली,
पाथरके प्यार कइली,
बिरहा अगिनमें गलके होइ गइल पानी रे!

तड़पत जइसे घायल,
झूमके बदरवा आयल,
बाजे घुंघुरवा पायल,
मोरे अँगनवा आयल,
झुकिके कहेला कनवा प्रीतके कहानी रे !
बरखाके बान छूटल,
धरतीके मान टूटल,
फाटल हियरवा जूटल,
एक मोर भाग फूटल,
पानीमें पियासी हमरे प्यारके जवानी रे।
अदरा बदरवा आए,
ढुरकत कजरवा आए,
हिया रोपि बिरवा आए
अँसुआसे सींची ओही प्रीतके निसानी रे !
प्यारके पियासल धरती पड़ल पहिला पानी रे !

अन्य भाषाएँ और बोलियाँ

हिन्दीकी आत्मीय भाषाओंमे नेपाली बहुत समृद्ध है जिसमें सब प्रकारकी शैलियाँ और रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिसमें वर्त्तमान युगके ज्ञान-विज्ञान तथा प्राचीन कालके दर्शन, कलाके अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि हिन्दीवालोंने उसे अपनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि नेपालमें कई ब्रजभाषा और नागरी (खड़ी बोली) के बड़े अच्छे कवि हुए हैं और हैं।

मैथिलीमें भी अब बहुत प्रौढ़, सरस तथा उच्च कोटिकी रचनाएँ होने लगी हैं। पंजाबीमें तो साहित्य-रचना भी होने लगी है। मालवी भाषामें भी साहित्यिक ओज लानेका प्रयास किया जा रहा है। स्वतन्त्रता और सर्वांगीण विकासके साथ सभी प्रादेशिक बोलियाँ अपना अपना संस्कार करती हुई हिन्दी साहित्यको अवश्य शक्ति, व्यापकता और रूप-विविधताके साथ भावात्मक अखण्डताकी सिद्धिमें योग देंगी।

उर्दू-साहित्य

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने कई बार अपने प्रस्तावोंमें घोषणा की है कि उर्दू तो हिन्दीकी ही एक शैली है और कहीं-कहीं तो वह इतनी एक रूप है कि उसे पढ़ या सुनकर उर्दूवाले उसे उर्दू बताते हैं और हिन्दीवाले हिन्दी; अर्थात् दोनोंके मूल स्वरूपमें किसी भी प्रकारका कोई अन्तर नहीं है। नीचे 'गंगाराम' नामक व्यंग्यात्मक उपन्यास का एक अनुच्छेद दिया जा रहा है—

"इसी बीच वहाँ लाल पगड़ी आ धमकी। उसने अपना डण्डा संभाला। दो-चार बार ललकार दी—हटो भागो। हो हल्ला मचाया—यह क्या चौपाल बिछा रखी है ? यहाँ क्या कोई मछर-हट्टा ह

या कालीजीका मन्दिर है जो सारी सड़क रोके खड़े हो ? फिर क्या था ! भगदड़ मच गई। लोगोंने समझा कहीं ठाँय ठाँय न हो जाय, बिना बातके लाठी न चल जाय। लोग तितर-बितर होने लगे। सिपाही-रामने भी गंगारामको नीचेसे ऊपर तक देखा और उसकी बात सुनी तो वह भी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

उपर्युक्त वाक्य हिन्दी और उर्दू दोनोंके लिए ग्राह्य और दोनोंमें अन्तर्मुक्त हैं। ऐसी दशामें उर्दू भाषा कोई नागरीसे भिन्न विचित्र या नई भाषा नहीं है। नागरी (खड़ी बोली) का प्रारम्भ ही उर्दूका प्रारम्भ है किन्तु उर्दू नामसे हिन्दीकी यह शैली शाहजहाँके समयमें अलग हुई। सन् १६२८ में शाहजहाँको गद्दी मिली और उसीके राज्यमें उर्दू भाषा बनी और पनपी। उर्दू लिपि तो सन् १२०६ ई. में ही गढ़ ली गई थी। कुछ लोगोंका मत है कि उर्दूकी नींव पंजाबमें पड़ी और इसके सर्वप्रथम चिन्ह पृथ्वीराज रासोमे मिलते हैं। कुछ लोगोंका कथन है कि जब मोहम्मद बिन कासिमने सन् ११७५ में सिन्धपर आक्रमण किया उस समय उन आक्रमणकारियों और भारतके-निवासी जनताके सम्पर्कसे इस भाषाका श्रीगणेश हुआ। तीसरा मत है कि जब १४ वीं शताब्दीमें मुहम्मद तुगलकने अपनी राजधानी दिल्लीसे दौलताबाद हटा दी तब वहाँ ही उर्दूका जन्म हुआ और गोलकुण्डा बीजापुरके मुसलमान शासकोंने जो मरसिये (शोकगीत) लिखे हैं वही उर्दूकी प्रारम्भिक कविता है। मीरने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है—

ऐ मीर मैं ही इसको किया रेख्ता वरना।
एक चोज लचर-सी बजबाने दकिनी थी॥

(मीर कहते हैं कि मैंने ही इस भाषाको रेखता या उर्दू बनाया नही तो यह एक दरिद्र-सी दक्षिणी भाषा थी।)

दक्षिणमें जाकर हमारी हिन्दी या नागरी भाषा भले ही दरिद्र बन गई हो किन्तु पंजाबमें यह भाषा बहुत पहले ही प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। अमीर खुसरोंने १३ वीं शताब्दीमें इसी भाषामें अर्थात् नागरी (खड़ी बोली) में रचना की थी। मेरठ मुजफ्फरनगरकी शिष्ट जन-भाषामे उसने अपनी मुकरियाँ और पहेलियाँ कही थीं—

बरस बरस वह देसमें आवै, मुंहसे मुंह लगा रस प्यावै।
वा खातिर मै खरचे दाम, क्यों सखि साजन ना सखि आम॥
खेतमें उपजै सब कोई खाय, घरमें रहे तो घर बह जाय।
तरवरसे इक तिरिया उतरी जिसने खूब रिझाया।
बापका उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि अमीर खुसरोने प्रारम्भमे ही १३ वीं शताब्दीमें उस भाषा का प्रयोग काव्यमें किया जो मुजफ्फरनगर मेरठ और दिल्लीके आसपास पहलेसे ही जन-भाषा थी और जिसे दिल्लीके आसपास होनेके कारण व्यवसायियों और व्यापारियोंके अधिक काम आनेके कारण लोगोंने व्यवहारिक बोल-चालके लिए स्वीकार कर रखा था। उसका कारण यह था कि दिल्ली सहस्रों वर्षोंतक उत्तर भारतकी राजधानी रही, इसलिए वहाँके व्यापारी सभी देशमें घूमते थे और सब देशोंके व्यापारी वहाँ आते थे जो वहाँ भाषाका प्रयोग सब स्थानोंपर करते थे। यह व्यावहारिक प्रयोगकी भाषा सब स्थानोंमें उसी प्रकार व्यवहृत हो गई जिस प्रकार आज भी उत्तर प्रदेशकी भाषा फिजी, मॉरीशस, ब्रिटिश गायना और डच गायना जैसे

सुदूर प्रदेशोंमें व्यवहारकी भाषा हो गई है क्योंकि उत्तर प्रदेशके लोग सदासे संख्यामें अधिक रहे हैं और काम-काज, नौकरी-धन्धे तथा व्यापारके लिए बाहर जाते रहे हैं। इसलिए स्वभावतः इन लोगोंने दूर-दूर तक अपनी भाषाका प्रयोग किया। यही कारण था कि जब कबीर आदि सन्तोंने १५ वीं शताब्दीमें अपने विचारों-का प्रचार करना प्रारम्भ किया तब उन्होंने अपनी उसी हिन्दी भाषाका प्रयोग किया जिसे वे लोग नागरी (खड़ी बोली) और उर्दू वाले उर्दू कहते हैं। यही उर्दूके बाजारू कहलानेका रहस्य है। तात्पर्य यह है कि यह भाषा सन्तोंकी धर्म-प्रचार भाषा होनेके कारण और व्यापारियों-द्वारा अधिक प्रचारित होनेके कारण इतनी लोक-व्यवहृत हुई कि गुरुनानकके पुत्र श्रीचन्द्राचार्यजीने अपने चलाए हुए उदासीन सम्प्रदायके धर्म-ग्रन्थ 'मात्रा-शास्त्र' की रचना इसी शुद्ध नागरी भाषामें की। उदाहरण लीजिए—

ओ३म कहु रे बाल।
किसने मूंड़ा किसने मुंड़ाया।
किसका भेजा नगरी आया ?॥१॥
सद्गुरु मूंड़ा लेख मुंड़ाया।
गुरुका भेजा नगरी आया॥२॥
चेतहु नगरी तारहु गाँम।
अलख पुरुषका सिमरहु नाम॥३॥
गुरु अविनाशी खेल रचाया।
अगम-निगमका पन्थ बताया॥४॥

कबीर और गुरुनानकके समयमें ही मुसलमानी शासनके कारण अनेक फारसी और अरबी शब्दोंका प्रयोग काव्यमें होने लगा था। यहाँतक कि सूर और तुलसीने भी बहुत खुलकर फारसी और अरबी शब्दोंका प्रयोग किया है पर उस प्रयोगके कारण उनकी भाषा फारसी या अरबी नहीं हो जाती। अतः, उर्दूका रूप उर्दू तबसे हुआ जबसे मीर, गालिब आदि उर्दूके कवियोंने फारसी और अरबी छन्द शास्त्रके अनुसार अपनी कविताएँ रचनी आरम्भ कीं और उनमें भारतीय वृक्षों, फूलों और पशु-पक्षियोंके बदले फारस और अरबके वृक्ष, फूल और पशु-पक्षियोंका प्रयोग उपमान और वर्णनके लिए ग्रहण किया, फारसीकी पद्धतिके अनुसार गुलो-बुलबुल आशिक-माशूकके चोचले और मरसिए आदिकी रचनाओंका प्रारम्भ हुआ और हिन्दी तथा संस्कृतके शब्द मतरूक (त्याज्य) कर दिए गए। इन लक्षणोंवाली रचनाओंके लिए जिस खड़ी भाषाका प्रयोग किया गया वह उर्दू कहलाई। शाहजहाँके समयमे सबसे पहली गजल 'चन्द्रभान' नामक एक ब्राह्मणने लिखी थी जिसने अपना तखल्लुख (उपनाम) 'बिरहमन' रखा था। यह स्वयं इस बातका प्रमाण है कि एक तो फारसी छन्द शास्त्रकी शैलीमें रचना करनेके कारण वह उर्दूकी रचना कहलाती है और दूसरे उसमें बहुत अधिक फारसी और अरबीके शब्द भी हैं। वह गजल द्रष्टव्य है—

न जाने किस शहर अन्दर हमनको लोक डाला है।
न दिलबर है, न साकी है, न शीशा है, न प्याला है॥
पियाके नाँवका सुमिरन किया चाहूँ, करूँ, कैसे ?
न तस्वीह है, न सुमिरन है, न कंठी है, न माला है॥

पियाके नांव आशिक का कतल बाअजब देखे हूँ।
न बरछी है, न करछी है, न खंजर है न भाला है।।
खूबांके बागमें रौनक होवे तो किस तरह यारो।
न दोना है, न मरवा है, न सौसन है, न लाला है।
'बिरहमन' वास्ते अस्नानके फिरता है बगिया में।।
न गंगा है, न जमुना है, न नदी है, न नाला है।।

आज पंजाबमे यह हल्ला मचाया जा रहा है कि पंजाबकी भाषा पंजाबी है। यदि यह बात होती तो सिक्ख गुरुओंने अपने ग्रन्थ साहबकी रचना पंजाबीमें की होती और गुरु नानकके सुपुत्र श्री चन्द्राचार्यने अपने मात्रा शास्त्र नामक धर्म ग्रन्थकी रचना ' नागरी खड़ी बोलीमें न करके पंजाबीमें की होती। अतः, एक बात यह निश्चय है कि दिल्लीके आस-पास और पंजाबमें शिष्ट जनकी व्यवहारकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली ही थी--न पंजाबी थी न फारसी अरबीसे लदी हुई उर्दू। दूसरी बात यह भी निश्चय है कि उर्दू वही भाषा कहला सकती है जो फारसी अरबीके छन्द शास्त्रमें ढली हुई रचनाओंमे प्रयुक्त होती है या जिनके विषय फारसी-अरबीके कथानकोंसे लिए हुए हों और उनमें फारसी अरबी उपमानोंका फारसी और अरबी शब्दोंमें ही प्रयोग हो। केवल फारसी और अरबी शब्दोंके प्रयोग मात्रसे ही कोई रचना उर्दू नहीं हो जाती।

यह सत्य है कि शाहजहाँके समयमें उर्दू भाषाका संस्कार और नामकरण हुआ। दिल्लीमें उसका परिष्कार हुआ। जहाँगीरके समकालीन दक्षिणके सुल्तान मो. कुतुबशाह, शाहजहाँके समकालीन अब्दुल्ला कुतुबशाह, गोलकुण्डा और बीजापुरके कवि तहसीनुद्दीन, मुल्ला कुतुबी, मुसरती, अंधे हाश्मी और दौलत आदि कवियोंने फारसी-अरबी शैलियोंमें गजल, कसीदे, मसनवी, नामा और कहानियाँ लिखीं। इनके अतिरिक्त उत्तर और दक्षिणके बीचकी कड़ीके रूपमें बली (१६३८ से १७४४) प्रसिद्ध हैं जिन्होंने दक्षिणसे आकर मोहम्मद शाह रंगीलेको अपनी कविता सुनाई थी। महत्वकी बात यह है कि उसी समय दिल्लीके सूफी कवि साहदुल्ला गुलसनने वलीको यह सम्मति दी थी कि आप फारसी की शैली छोड़कर इस देशकी शैली अपनाइये किन्तु उन्होंने नहीं माना। दिल्लीके कवियोंपर उनका प्रभाव हुआ और वलीने उर्दू कवितामे जो नई शैली चलाई वह आजतक चली आ रही है और अब वली तो लौटकर दक्षिण चले गए पर दिल्लीमे उर्दू कविताकी वह धूम मची कि जिसे देखो वही उर्दूमें कविता करने लगा। यहाँतक कि फारसीका रंग भी फीका पड़ गया। उस समय उर्दूमें दो प्रकारकी रचनाएँ होती थीं--एक राज-दरबारकी उर्दू कविता दूसरी सूफियोंके कलाम। उर्दू कवितामें प्रेमके दो रूप माने जाते हैं। एक इश्क हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) और दूसरा इश्क मजाजी। (लौकिक प्रेम)। इश्क हकीकीमे माधुर्य-भक्तिके समान परमात्मा या आराध्य देवसे प्रेम प्रकट किया जाता है। भारतीय प्रथाके अनुसार स्त्री ही पुरुषके प्रति प्रेम प्रकट करती है किन्तु अरबीमे पुरुष ही स्त्रीके प्रति प्रेम प्रकट करता है। इन दोनोंसे भिन्न उर्दूमे फारसीके अनुकरण पर पुरुषका प्रेम पुरुषके प्रति प्रकट किया जाता है। कभी-कभी स्त्री प्रेयसीके प्रति भी पुल्लिग-वाची क्रियामें ही प्रेम व्यक्त कर दिया जाता है। उर्दूपर इन तीनों पद्धतियोंका प्रभाव पड़ा है पर सबसे अधिक रंग चढ़ा है फारसी का।

१८ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें उर्दूके प्रसिद्ध दिल्लीके कवियोंमें मीर तकी, मीर सौदा और दर्द है। इन्हींके युगमें नजीर हुए जिन्होंने बच्चोंके लिए भी रचनाएँ लिखी और बड़ोंके लिए भी और सच्ची बात यह है

कि ये बड़े उदार हृदयके व्यक्ति थे। इन्होंने जहाँ एक ओर हजरत मोहम्मद की नात (प्रशंसा ') लिखी वहीं कन्हैयाका बालपन भी लिखा। क्योंकि भाषाकी दृष्टिसे उर्दू हिन्दीमें कोई भेद नहीं था। आपने ऋतुओंपर कविताएँ लिखनेके साथ-साथ हिन्दी और मुसलमानोंके त्योहारोंपर भी लिखा और 'रीछका बच्चा' तथा 'गिलहरीका बच्चा' जैसी बच्चोंकी कविताएँ भी लिखीं। वे अपनी कलामें अद्वितीय रहे, कोई उनका अनुकरण न कर सका।

दिल्ली उजड़नेपर सौदा और मीर भी लखनऊ चले आये। वहाँ भी नवाबी दरबारमें उर्दूने बड़ा आश्रय पाया। मीर साहब उन दिनों उर्दूके साढ़े तीन शायर मानते थे। एक अपने आपको, दूसरे सौदाको, तीसरे दर्दको और आधा सोजको। इनके पीछे मुसहफी, और इंशाकी प्रसिद्धि हुई और उन्हीके साथ इंशाके मित्र अंधे कवि जुरअत की। लखनऊमें गजलको समुन्नत करनेका श्रेय मुसहफीको ही है। परन्तु इंशाने नए प्रकारका हास्य और व्यंग्य प्रवर्तित किया, उर्दूका पहला व्याकरण लिखा, छन्द ग्रन्थ लिखा और पचास पृष्ठोंकी रानी केतकीकी कहानी लिखी जिससे उर्दूवाले उर्दूकी और हिन्दी वाले हिन्दीकी कहते हैं। यही इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि हिन्दी-उर्दूमें कोई अन्तर नहीं है, गद्यमें दोनों एक हैं।

१९ वीं सदीमें मीर हसन देहलवीने 'बद्र मुनीर' नामकी मसनवी लिखी जिसका उत्तर पण्डित दयाशंकर 'नसीम' का गुल्जारे नसीम है।

गजलके क्षेत्रमें भी लखनऊ और दिल्लीकी शैली अलग-अलग है। दिल्लीमें गालिब, मोमिन और जौक गजलके प्रसिद्ध कवि माने गए हैं और लखनऊमें आतिश और नासिर। किन्तु मीर तकीकी प्रतिष्ठा दोनों ही स्थानोंमें हुई।

उर्दूकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उर्दूके लेखकोंने इस भाषाको बहुत अच्छी तरह माँजा है। मीर अम्मन देहलवीने 'चार दर्वेश' नामकी जो पुस्तक लिखी है उसके प्रारम्भमें उन्होंने लिखा है कि यह दिल्लीकी टकसाली भाषा है। इस पुस्तकको उर्दू गद्यके साहित्यमे प्रथम स्थान मिला है। किन्तु लखनऊ वालोंको इससे बड़ा रोष हुआ; जिसके उत्तरमें मिर्जा रज्जबअली वेग 'सुरूर' लखनवीने फिसाने अजायव नामकी पुस्तक लिखी जो उपमा और अलंकारोंसे ठसाठस भरी पड़ी है और जिसकी भाषा बड़ी कृत्रिम है। इसमें लखनऊकी प्रशंसा और कानपुरकी निन्दा की गई है। कलकत्तेसे लल्लू लालजीकी लिखी हुई बैताल पचीसीको भी उर्दू और हिन्दीवाले दोनों समान रूपसे अपना मानते है।

गालिबने उर्दूमें अपने मित्रों और सम्बंधियोंको जो पत्र भेजे उनसे उर्दू भाषाका नया युग प्रारम्भ होता है। उन्होंने अपने पत्रोंके सम्बोधनमे बड़े-लम्बे चौड़े अरबी-फारसीके शब्दोंका बहिष्कार करके केवल मेहरबान, महाराज, हजरत या वन्दा-परवर लिखकर अपनी बात लिखना प्रारम्भ कर देते है। गालिबके शिष्य ख्वाजा अल्ताफ हुसेन और जौकके शिष्य मौलाना मोहम्मद ने उर्दू गद्य-शैलीकी नींव डाली। नवीन शैलीके उर्दू लेखकोंमें सर सैय्यद अहमद खाँका भी बड़ा ऊँचा स्थान है। इसके अतिरिक्त मौलाना मोहम्मद हुसेन आजाद और मौलाना शिवली प्रसिद्ध गद्य लेखक हैं। दिल्लीमें प्रथम उर्दूके उपन्यासकार मौलवी नजीर अहमद हुए जिन्होंने बहुतसे उपन्यास लिखे।

उर्दूमें पहला दैनिक पत्र 'अवध अखबार' १८५८ से प्रारम्भ हुआ जो पं. रतननाथ दर सरशारके सम्पादकत्वके कारण बड़ा प्रसिद्ध हो चला। इनका प्रथम उपन्यास 'फिसाने आजाद' भी उर्दूका प्रथम उपन्यास

है जिसमें लखनऊके सब प्रकारके सामाजिक रूपोंका अत्यन्त सुन्दर सरस चित्रण है। इनकी शैलीको उर्दूमें कोई नहीं पा सका। इसके पश्चात् तो सन् १८७७ में मुन्शी सज्जाद हुसेनके सम्पादकत्वमें 'अवध पंच' निकला जिसमें हास्य और व्यंग्यके साथ राजनैतिक लेख छपते थे।

२० वीं शताब्दीके आरम्भमें मुन्शी गंगाप्रसाद वर्माने हिन्दुस्तानी अखबार निकाला जिसके सम्पादक कृष्णप्रसाद कौल अभी जीवित हैं। इसके पश्चात् और भी कई अखबार निकले।

उर्दूमें हास्य रसके प्रथम प्रवर्तक मिरजा रफी सौदाके पश्चात नजीर अकबरावादी, इंशा, अकबर हुसेन अकबर और अकबर इलाहाबादी अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे सौदा तो हजो (व्यंग्य) के बादशाह माने जाते है।

उर्दूमें नवीन शैलीकी कहानी लिखनेका श्रेय मुंशी बालमुकुन्द गुप्तको है। २० वीं शताब्दीके आरम्भमे कानपुरसे प्रकाशित 'जमाना अखबार' में बाबू प्रेमचन्द (धनपतराय) नवाबरायके नामसे अपनी कहानियाँ लिखते थे। अभीतक भी प्रेमचन्द जी उर्दूके सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक माने जाते है। दूसरे प्रगतिशील लेखक कृष्णचन्द्र हैं; जिनकी प्रगतिवादी धारामें राजेन्द्रसिंह वेदी, सआदत हसन मिन्टो, फिक्र तौंसवी, देवेन्द्र सत्यार्थी, उपेन्द्रनाथ अश्क और रेवती शरण मुख्य हैं। स्त्रियोंमें मुमताज सीरीं, इस्मत चुगताई और स्वालिहा आविदहुसेन उल्लेखनीय हैं। ख्वाजा अहमद अब्बास तो प्रसिद्ध लेखक हैं हीं। हास्य रसके कहानी लेखकोंमें मिर्जा फरहत उल्ला वेग, शौकत थानबी और मिर्जा अजीग बेग चुगताई प्रसिद्ध हैं।

नवीन उर्दू कविताकी धारामें इस्लामी कवि इकबाल, राष्ट्रीय कवि चकवसत, क्रान्तिकारी कवि जोश मलीहावादी प्रसिद्ध है और जब मौलाना मो. हम्मद अली, मौलाना हसरत मोहानी, फानी वदायूनी, आदिके पश्चात् नई प्रगतिवादी धारामें रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी और अख्तर शिरीनीके नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने रोमानी शायरीको पूर्णतः नवीन रूप दे दिया है। ये प्रगतिशील कवि समाज बदलना चाहते हैं प्रेमकी रास ढीली कर देना चाहते है और विवाह प्रथाको अप्राकृतिक मानते है, ये कवि भी आजतक यह नहीं समझ पाए कि क्रांति और प्रेममेंसे किसका अधिक सम्मान किया जाय। हाँ, मजाज लखनवीने प्रेमका अपमान नहीं किया। हमारे विचारसे वे प्रगतिशील है भी नहीं। ये सभी कवि एक ओर इस प्रकार समाज बदलनेकी बात करते हैं, कारखानेके मालिकसे क्रान्ति करनेकी बात कहते है और उन्हीके यहाँ जाकर प्याले ढालते है। यह दुरंगा रूप उर्दू साहित्यको ही नहीं उर्दू साहित्यके उन महाकवियों और लेखकोंकी प्रतिष्ठाको भी नीचे पटक देगा जिन्होंने अत्यन्त लगन, स्वाभिमान और निष्कपटताके साथ उर्दू साहित्यको बनाया और सँवारा है, जिन्होंने उसमें प्राण फूंके, जिन्होंने उसमें अभिव्यक्तिकी शक्ति भरी और उसे अत्यन्त उदात्त बनानेका जीवन भर प्रयन्न किया।

जैसा ऊपर कहा जा चुका हैं, हिन्दी और उर्दू गद्यमें कोई किसी प्रकारका भेद नहीं है क्योंकि बहुतसे हिन्दीके लेखक भी गद्य लिखते समय फारसी और अरबीके सैकड़ों शब्दोंका स्वाभाविक प्रवाहमें प्रयोग करते है। इन दोनोंकी एकताका एक सबसे बड़ा लक्षण यह दिखाई दे रहा है कि उर्दूके अनेक लेखक और कवि बड़ी सरलतासे अत्यन्त प्रौढ़ और सशक्त हिन्दी रचनाएँ करने लगे हैं जिसके अत्यन्त सबल और ज्वलन्त प्रमाण है प्रेमचन्दजी। इन कवियों और लेखकोंको केवल कुछ ऐसे शब्दोंको हिन्दी रूपमें ढाल देना पड़ता है जो हिन्दीवालोंको अभी अव्यवहृत प्रतीत होते हैं। आधुनिक कवि-सम्मेलनोंमें

यह देखा जाता हैं कि अनेक उर्दू कवि हिन्दी छन्दोंमें अत्यन्त सुन्दर रचना करने लगे हैं और उर्दूमें जबानकी सफाई सिद्ध होनेके कारण उनकी कविताएँ और कहानियाँ हिन्दीके उन कवियों और लेखकोंसे कहीं अधिक प्रौढ़, चटकीली और प्रभावशाली होती है जो पहलेसे हिन्दीमें लिखते आ रहे हैं। जहाँतक हिन्दी और उर्दूकी छन्दहीन रचनाओंकी बात है उसमें तो कोई भेदकी बात नही हैं क्योंकि भाषा एक है, विषय एक होते है और छन्दका भी बन्धन नही है। इसलिए व्यर्थमें उर्दू शैलीको अलग भाषा मानकर उसका एक अलग अखाड़ा बनाना केवल राजनैतिक दृष्टिसे अमान्य नहीं है वरन् व्यावहारिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे भी निर्मूल है। वह भी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अत्यन्त पुष्ट और मँजी हुई शैली है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्यका क्षेत्र बड़ा व्यापक है जिसकी विभिन्न विभाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों और शैलियोंमें बड़ी भावात्मक एकता और अभिन्नता है। इस हिन्दीने अपने आरम्भसे सन्तोंकी वाणीमें धार्मिक और भावात्मक अखण्डताका प्रचार किया और वह राजनैतिक अखण्डताकी सिद्धिके लिए भावात्मक एकताका प्रबल साधन बन गई है।

तेरी पेशानीका टीका झमकता,
तमाशा है उजाले में उजाला॥

—अब्दुल्ला कुतुबशाह

दिलसे उठता है जाँ से उठता है,
यह धुआँ-सा कहाँ से उठता है।
उलटी हो गई सब तदबीरें, कुछ न दवाने काम किया,
देखा इस बिमारिये दिलने, आखिर काम तमाम किया।
नाहक हम मजबूरों पर यह तोहमत है मुख्तारी की,
चाहते हैं सो आप करें, है हमको अबस बदनाम किया।
सिरहाने मीरके आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते रोते सो गया है।
हवादिस और थे पर दिलका जाना,
अजब एक सीन सा हो गया।
मीर अब एक मजारे मजनूसे,
ना तबा सा गुबार उठता है।

—मीर तकी 'मीर'

उठ गया वह्मनोदय का चमनिस्तासे अमल
तेगे उर्दी ने किया मुल्के खिजाँ मस्तासल।
लड़की वो जो लड़कियोंमें खेले
न कि लड़कोंमें जाकर दण्ड पेले।

—सौदा

तोहमते चन्द अपने गुस्से घर चले,
आये क्या करनेको क्या कर चले।
जिन्दगी है या कोई तूफान है,
हम तो इस जीनेके हाथों मर चले।
साकिया लग रहा है चल चलाव,
जब तलक बस चल सके सागर चले।
वाये नादानी की वक्ते मर्ज यह साबित हुआ,
ख्वाब था जो कुछ का देखा, जो सुना अफसाना था।

—दर्द

टुक हिरसो हवाकी छोड़ मियाँ, क्यों देस विदेस फिरे मारा।
कज्जाक अजलका लुटे है, दिन रात। बजाकर नक्कारा॥
सब ठाट पड़ा रह जावेगा,
जब लाद चलेगा बंजारा।

× × ×

क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन
ऐसा था बाँसुरीके बजैयाका बालपन।

—नजीर 'अकबराबादी'

क्या बूदोवास पूछे हो पूरबके साकिनो,
हमको गरीब जानके हँस हँस पुकारके।
दिल्ली जो एक पहर था आलममें इन्तखाब,
रहते थे मुन्तखिब ही जहाँ रोजगारके।
उसको फलक ने लूटके वीरान कर दिया।
हम रहने वाले हैं उसी उजड़े बयारके।

—मीर

शहदमें जैसे मगस, हम हिर्स में पाबन्द हैं,
वाय गफलत इस सियह जिन्दाँमें यूँ खुर्सन्द हैं।
रिज्क क जामिन खुदा शाहिद कलाम अल्लाह है,
जिसपे अपनी मूरतोंसे रोज हाजतमन्द हैं।
मकबरोंमें जाके उन आखोंसे हम देखे हैं रोज,
यह बिरादर, यह बिदर, यह खेश, यह फरजन्द हैं।
तिसपे रानाईसे ठोकर मारकर चलते है हम,
जानते इतना नहीं हम खाकके पैबन्द हैं।

जब तलक आँखे खुली हैं दुःख पै दुख देखेंगे हम,
मुंद गयीं जब अँखड़ियाँ तब, 'सोज' सब आनन्द है।

—सोज

कमर बाँधे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे हैं
बहुत आगे गये बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं।
न देड़ ऐ निकहते वादे बहारी, राह लग गयी अपनी,
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेजार बैठे हैं।
नजीवों का अजब कुछ हाल है, इस दौर में यारो,
जहाँ देखो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं।
कहाँ सवरो तहम्मुलआह नंगो नामका शेष है,
मियाँ रो पीटकर इन सबको हम एक बार बैठे हैं।
भला गर्दिश फलक की चैन देती है किसे इन्शा,
गनीमत है कि हम सोहबत यहाँ दो चार बैठे हैं।

—सैयद इन्शा

बरस पन्द्रह या कि सोलह का सिन
जवानीकी रातें मुरादोंका दिन

—मीर हसन

पत्ता फल फूल छाल लकड़ी।
उस पेड़से लेके राह पकड़ी॥
हय हय मेरा फूल ले गया कौन।
हय हय मुझे दाग दे गया कौन॥
शबनमके सिवा चुराने वाला।
ऊपरसे था कौन आनेवाला॥
जिस तरह उन्हें वहम में लाया।
बिछुड़े यूं ही सब मिले खुदाया॥

—दयाशंकर 'नसीम'

रेखते में तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब
कहते हैं अगले जमानेमें कोई मीर भी था।
कोई तदबीर बर नहीं आती,
कोई सूरत नजर नहीं आती।
मौतका एक दिन मुकर्रर है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती?
पहले आती थी हाले दिलपे हँसी।

अब किसी बातपर आती नहीं।
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी,
कुछ हमारी खबर नहीं आती।
यूं ही कुछ बात है कि मैं चुप हूँ,
वरना क्या बात कर नहीं आती।
जानता हूँ शबाबे तावतो जुहद,
पर तबीयत इधर नहीं आती।
काबे किस मुँहसे जाओगे गालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

—गालिब

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।
साज यह कि ना साज क्या जानें
नाजवाले नमाज क्या जानें।।
दागके दिलपर जो गुजरती है,
अय बन्दानबाज क्या जाने !
जिसमें लाखों बरसकी हूरें हो,
ऐसी जन्नतको कोई करे कोई,
नसीहा तू भी किसी पर जान दें,
हाथ ला उस्ताद, क्यूं कैसी कही।

—दाग

गुल गुन ए शफक, जो भला हूरे सुबह ने,
ठण्डे चिराग कर दिये, काफूरे सुबह ने,

—दबीर

'मुस्तफी' किस जिन्दगी पर नाज इतना कीजिए,
याद है मरगे, कतीलों मुरदने इन्शा मुझे।

—मुस्तफी

नादाँ कहूँ दिल को, या खिदरमन्द कहूँ,
या सिलसिल य बजा का पाबन्द कहूँ।
एक रोज खुदाको मुंह दिखाना हैं जरूर,
किस मुंहसे में बन्देको खुदाबन्द कहूँ।।

गर आँखसे निकलके ठहर जाय राहमें,
पड़ जाये लाख आवले पाये निगाहेमें।

—अनीस

मुश्किल है जे बस कलाम मेरा ऐ दिल,
सुतसुतके अुसे सुखन बराते काबिल।
आसाँ कहनेकी करते हैं फरमाइश,
गोयम् मुश्किल बगर न गोयम् मुश्किल।
कातिशका दिल करे है तकाजा, कि है हिनोज,
नाखुन पै कर्ज, उस गिरहे नीम वाजका।
मै खुलाऊँ और खुले, यों कौन जाय,
यारका दरवाजा पाऊँ गर खुला।

—गालिब

नीचे वाके जल मरो, उपर लागी आग,
बाजन लागी बाँसुरी, निकसन लागे नाग।

—सौदा

जाफर जहल्लीने ऐसा किया,
कि मक्खीको मल मलके भैंसा किया।
बे परदा कल नजर पड़ी जो पड़ी चन्द बीबियाँ,
'अकबर' जमीं में गैरते कौमीसे गड़ गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा कहाँ गया,
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदोंकी पड़ गया।
परदा उठ जानेका आखिर यह नतीजा निकला,
बेटा हम जिसको समझते भतीजा निकला।
आगे इञ्जनके दीन है क्या चीज,
भैंसके आगे बीन है क्या चीज?
यह बात गलत कि मुल्के इस्लाम है हिन्द,
यह झूठ कि मुल्के लछमनों–राम है हिन्द।
हम सब हैं मती और खैर ख्वाहे ब्रिटिश,
यूरोपके लिए बस एक गोदाम है हिन्द।
नाक रखते हो तो तेगे तेजसे डरते रहो,
खैरियत चाहो तो हर अँग्रेजसे डरते रहो॥
बहुत शौक अँग्रेज बननेका है,
तो चेहरे पै पहले गिलट कीजिये।

इशरतो हिन्द की लन्दनमें अदा भूल गए,
केकको खाके सिवाइयोंका मजा भूल गए।
मोमकी पुतलियोंपर ऐसी तबीयत आई,
चमन हिन्दकी परियोंकी अदा भूल गए।
क्या ताज्जुब है जो बच्चोंने भुलाई तहजीब,
जब कि रविशे दीने खुदा भूल गए।

—अकबर

उट्ठो मेरी दुनियाँके गरीबोंको जगा दो,
काखे उमाराके दरो-दीवार हिला दो।
जिस खेतसे दहकांको मयस्सर न हो राजी,
उस खेतके हर खोश्ये गन्दुमको जला दो।

—इकबाल

बिरतानियाका साया, सिरपर कुबूल होगा,
हम होंगे ऐश होगा और होमरूल होगा।
तलब फिजूल है कांटोंकी फूलके बदले,
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले।
तुम्हें जो करना है कर लो अभी वतनके लिये,
लहूमें फिर यह रवानी रहे, रहे न रहे।
रहेगी आबो हवामें ख्यालकी बिजली,
यह मुश्ते खाक है फानी रहे, रहे न रहे।
जो चुप रहें तो हवा कौम की बिगड़ती है,
जो सर उठायें तो कोड़ोंकी मार पड़ती है।
कौम ग़ाफिल नहीं माता तेरी गमखोरीसे,
जवजेला मुल्कमें है तेरी गिरफ्तारीसे।
सन्तरी देखके इस जोशको शरमायेंगे।
गीत जंजीरकी झंकार पै हम गायेंगें।
चाँदी रातमें शबको जो हवा आती है,
कौमके दिलके फड़कनेकी सदा आती है।
जर्रा-जर्रा है मेरे कश्मीरका गेहमा नवाज,
राहमें पत्थरके टुकड़ोंने दिया पानी मुझे।
परदा रुखसे जो उठाया तो बहुत खूब किया।
परदये शर्मको दिलसे न उठाना हरगिज।

—चकबस्त

खुदको गुम करदा राह करके छोड़ा,
हौआ को भी तबाह करके छोड़ा।
अल्लाहने जन्नतमें किये लाख जतन,
आदमने मगर गुनाह करके छोड़ा।
क्या फायदा शेख ऐसे जीनेमें मुझे,
खुश्कीमें तुझे मजा, सफीनेमें मुझे।
ऐयाश तो दोनों हैं मगर फर्क यह है,
खानेमें तुझे मजा है पीनेमें मुझे।
क्या शेखकी तल्ख जिन्दगानी गुजरी।
बेचारेकी एक शब न सुहानी गुजरी।
दोजखके तसव्वरमें बुढ़ापा बीता,
जन्नतकी दुआओंमें जवानी गुजरी।
क्या शेख मिलेगा लन्तरानी करके,
तौहीने मिजाजे नौजवानी करके।
त आतिशे दोजखसे डरता है उन्हें
जो आगको पी जाते हैं पानी करके।
गुंचे तेरी जिन्दगी पै दिल हिलता है,
बस एक तवस्सुमके लिए खिलता है।
गुंचेने कहा यह मुस्कराकर बाबा,
यह एक तबस्सुम भी किसे मिलता है ?
नाम है मेरा जवानी, नाम है मेरा शबाब,
मेरा नारा इन्कलाबी इन्कलाबी, इन्कलाब।
सर-सर है कोई तो बादे तूफां कोई।
खंजर है कोई तो तेगे बुर्रां कोई।
इन्सान कहाँ है किस कुरेमें गुमम है,
यों तो कोई हिन्दू है मुसल्मां कोई।

—जोश मलीहाबादी

बेसुरी नगमा—सराईका न ले नाम अभी,
मंजिले इश्कमें करने हैं बहुत काम अभी।
नुज्ज पा जाये जो खा धोड़से बादाम अभी,
नाला है बुलबुले शोरीदा तेरा खाम अभी,
अपने सीनेमें ज़रा और इसे थाम अभी
कभी मादूम में है और कभी मौजूद में इश्क,

कभी बन्दूकमें है और कभी बारूदमें इश्क
मुब्तिला रोजे अजलसे हैं उछल-कूदमें इश्क,
बेखतर कूद पड़ा आतिशे ममरूदमें इश्क।
अक्ल है महवे तमाशाए लबे बाम अभी।

—हाली

खालिदा चमकी न थी इंगलिशसे जब बेगाना थी,
अब है शमए अंजुमन पहले चिरोग खाना थी,।
शबनमी खघास पै दो जिस्म हो यखवस्ता पड़े,
और खुदा है तो पशेमां हो जाएँ।
चंद रोज और मेरी जान फकत चंद ही रोज,
जुल्मकी छाँवमें दम लेनेपर मजबूर हैं हम।
तुम्हारे गमके सिवा और भी तो गम हैं मुझे।
नजात जिनसे मैं एक लहमा पा नहीं सकता।
यह ऊँचे ऊँचे मकानोंकी ड्योढ़ियोंके तले,
हर एक गामपर भूखे भिखारियोंकी सदा।
यह कारखानोंमें लोहका शोरो-गुल जिसमें,
है दफन लाखों गरीबोंकी रूह का नगमा।

तीसरा खण्ड

राष्ट्रभाषाका निर्माण तथा पारिभाषिक शब्दावली

डॉ. उदयनारायण तिवारी

राष्ट्रभाषाके निर्माणमें पारिभाषिक शब्दावलीका अत्यधिक महत्त्व है। राष्ट्रभाषाके द्वारा ही समस्त देशमें एकताकी स्थापना हो सकती है, इस बातका अनुभव सर्वप्रथम हमारे देशके दो राज्यों—बंगाल एवं महाराष्ट्रने किया। इस देशके इन्ही दो राज्योंको सबसे पहले राष्ट्रीय चेतनाका बोध हुआ। बंगालके श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री केशवचन्द्र सेन तथा श्री भूदेव मुखोपाध्यायने इस कार्यके लिए हिन्दी-को उपयुक्त माना और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने स्वराज्यके लिए राष्ट्रभाषाके रूपमे हिन्दीकी आवश्य-कता स्वीकार की। उधर आर्य समाजके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वतीने भी हिन्दीको अपने धर्म-प्रचारका माध्यम बनाया। किन्तु यह थी वास्तवमें राष्ट्रभाषाकी भूमिका। इसे कार्यरूपमें परिणत करनेवाले वास्तवमें भारतीय क्रान्तिकारी थे। इस शताब्दिके आरम्भमे ही विदेश स्थित भारतीय क्रान्ति-कारियोंका एक दल संगठित हो गया था, जिसमें बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब आदि सभी प्रदेशोंके तरुण थे। इस युगमें राष्ट्रीयताकी जो लहर उठी, उसने राष्ट्रभाषाकी ओर इन भारतीय युवकोंका ध्यान आकर्षित किया और इसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दी राष्ट्रीयताका अविभाज्य अंग बनने लगी। सन् १९१७ में श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनकी प्रेरणासे राष्ट्रपिता बापू 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के सभापति बने और उनके द्वारा राष्ट्रभाषाके आन्दोलनको सर्वाधिक बल मिला। जब देश स्वतन्त्र हुआ तो संविधान द्वारा हिन्दी राज्यभाषा मान ली गई और तब लोग 'राज्यभाषा' तथा 'राष्ट्रभाषा' में स्पष्ट रूपसे अन्तर करने लगे। यह बात भली-भाँति हृदयंगम कर लेनेकी है कि जब तक सम्पूर्ण देश हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार नहीं कर लेता, तबतक न तो भारत सच्चे अर्थोंमें राष्ट्र ही होगा और न हिन्दी राष्ट्रभाषा ही हो सकेगी। ज्यों-ज्यों हमारे भीतर राष्ट्रीयताकी भावना आएगी, त्यों-त्यों राष्ट्रभाषाका भी मार्ग प्रशस्त होगा। राष्ट्रीय भावनाके जागरणके लिए यह सर्व प्रथम आवश्यक है कि हम सम्पूर्ण देशको अपना देश समझें और उससे प्रेम करें। यह प्रेमकी भावना भारतीय संस्कृति, नागरी लिपि, संस्कृत भाषा, उत्तर एवं दक्षिणकी आधुनिक भाषाओंके अध्ययन तथा सम्पूर्ण देशके लिए एक पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणके द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। यहाँ पारिभाषिक शब्दावलीके सम्बन्धमें संक्षेपमें विचार किया जाएगा।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि इस देशके सभी राज्योंमें एक ही पारिभाषिक शब्दावली प्रचलित हो जाय तो उससे राष्ट्रभाषाके निर्माणमें बड़ी सहायता मिलेगी। इससे उच्च शिक्षामें भी बड़ी सहायता मिलेगी और केवल भाषाका ज्ञान प्राप्त करके ही एक अंचलके विश्वविद्यालयोंके छात्र दूसरे अंचलके विश्वविद्यालयोंमें अध्ययन कर सकेंगे। साम्यवादी (कम्युनिस्ट) देशोंकी छोड़कर यत्किंचित् व्यवधानके साथ समस्त यूरोपकी पारिभाषिक शब्दावली प्रायः एक है। प्रायः शब्दका प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि जर्मनीमें ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्द प्रचलित हैं जो यूरोपके अन्य देशोंमें प्रयुक्त नहीं होते। हमारे देशके विद्वान जो अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली की बातें करते है, वह कुछ सीमाके भीतर ही सत्य है। विज्ञानके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले विद्वानोंको पारिभाषिक शब्दोंकी यत्किंचित् भिन्नताके कारण कठिनाई नहीं होती। सहजमें ही इस भिन्नताको जान जाते हैं।

प्रत्येक देश अपनी आवश्यकता तथा भाषाकी प्रतिभाके अनुसार ही पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण करता है। यह एक विचित्र बात है कि पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें हमारे देशके वैज्ञानिकोंके सिरपर अन्तर्राष्ट्रीयताका भूत बेतरह सवार है। यदि अन्तर्राष्ट्रीयतासे इनका केवल अँग्रेजीसे तात्पर्य है तब तो उनका कथन सत्य है, किन्तु यदि इसके अन्तर्गत जर्मनी, रूस, चीन, जापान, हंगेरी तथा इजराइल आदि देश भी है तो उनका कथन मिथ्या है।

पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण स्वयं अपनेमें साध्य नहीं है, वह तो साधन मात्र है। जो लोग यह समझते है कि अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दोंके परित्यागसे ज्ञान-विज्ञानका स्तर गिर जाएगा, उनमें आत्म-विश्वासका अभाव है। क्या रूसी परिभाषाओंके कारण वहाँके लोग ज्ञान-विज्ञानमें यूरोपके किसी देशसे पीछे हैं? चीन भी निकट भविष्यमें ही इस दौड़में भारतके आगे बढ़नेवाला है। ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें आगे बढ़नेके लिए त्याग, अदम्य उत्साह एवं उच्चाकांक्षाकी आवश्यकता होती है। किसी देशका पिछलग्गू बनकर कोई देश आगे नही बढ़ सकता। ऊँचे वैज्ञानिक शोधकर्ताओंके लिए केवल अँग्रेजीका ज्ञान ही पर्याप्त हे। उन्हे फ्रेंच, जर्मन, रूसी आदि भाषाएँ भी जाननी पड़ती है। परिश्रम करके वे ये भाषाएँ सीख लेते हैं। विज्ञानकी उन्नतिके लिए मुख्य तत्त्व ज्ञान है, जिसका सम्बन्ध किसी भाषा विशेषसे नही होता। पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने " प्राचीन लिपिमाला " का प्रणयन हिन्दीमें किया था। आज भी अपने ढंगका यह ग्रन्थ अनूठा है। पुरातत्त्व, विशेषतया पुरालिपिके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले अनेक विदेशी इसे पढ़नेके लिए आज भी हिन्दी सीखते हैं। यदि हम हिन्दीको राज्य अथवा राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार करते हैं तो हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी हिन्दीकी होनी चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता कि हम राष्ट्रभाषाके रूपमें तो हिन्दीको स्वीकार करें और पारिभाषिक शब्द रखें अँग्रेजीका। यह गुरु चाण्डाली योग बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। ऐसा कहीं भी नहीं हुआ है फिर भारतमें ही यह कैसे सम्भव होगा? एक बार जब हमने यह निश्चय कर लिया कि हमारी राज्यभाषा हिन्दी है और हमें संस्कृतके आधारपर पारिभाषिक शब्द बनाने है तो हमें अपने इस निश्चयपर दृढ़ रहना चाहिए।

एक बात और है। पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणमें सभी राज्योंका सहयोग अपेक्षित है। संस्कृत भाषाके सभी शब्दोंके अर्थ भी उत्तरी एवं दक्षिणी भारतके राज्योंमें एक ही नही हैं। इनमें यत्किंचित् भिन्नता आ गई है। उदाहरणके लिए यहाँ दो शब्द लिए जा सकते हैं। उत्तरी भारतमें आज " एजुकेशन " के लिए

'शिक्षा' तथा 'एजुकेशन डिपार्टमेण्ट' के लिए 'शिक्षा विभाग' शब्द चल रहे हैं; किन्तु दक्षिणी भारत तथा महाराष्ट्रमें 'शिक्षा' का अर्थ 'दण्ड' होता है। इस प्रकार शिक्षा विभागका अर्थ वहाँ 'दण्ड विभाग' हो जाएगा। आन्ध्र (हैदराबाद) में 'एजकेशन विभाग' के लिए 'विद्याशाखा' शब्द प्रचलित है। यदि यही शब्द उत्तरी भारतमें भी चालू किया जाय तो क्या कठिनाई होगी? इसी प्रकार "वायर लेस" के लिए इधर 'वितन्तु' शब्द स्वीकृत किया गया है और 'वायरलेस डिपार्टमेण्ट' के लिए 'वितन्तु कार्यालय'; किन्तु दक्षिणमें "वितन्तु" शब्द 'विधवा' के अर्थमें प्रचलित है। वहाँ 'वायरलेस' के लिए "निस्तंत्री" शब्द प्रयुक्त होता है जो सर्वत्र प्रचलित होने योग्य है।

पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणका कार्य यथासम्भव शीघ्र सम्पन्न होना चाहिए। इस दिशामें डा. रघुवीरने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है। जो लोग उनकी आलोचना करते हैं वे भी अन्ततोगत्वा उनके द्वारा निर्मित शब्दोंका प्रयोग करते हैं। सच बात तो यह है कि जितनी आलोचना सरल है उतना शब्दोंका निर्माण करना सरल नहीं है। सन १९४७ ई. में श्री राहुल सांकृत्यायन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के बम्बई अधिवेशनके सभापति हुए थे। श्री राहुलजीने यह कार्यक्रम बनाया था कि चार-पाँच वर्षोंके भीतर ही वे उच्च शिक्षामें प्रयुक्त होनेवाले पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण करके उनकी 'प्रूफ कापी' लेकर विभिन्न राज्योंमें जाएँगे और वहाँके विद्वानोंसे मिलकर इनका अन्तिम रूप तैयार करेंगे। श्री राहुलजीने कतिपय सप्ताहमें ही 'शासन शब्द कोष' तैयार कर दिया था जो सम्मेलनसे प्रकाशित हुआ था। जिस गतिसे श्री राहुलजीने पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणका कार्य प्रारम्भ किया था, उससे न जाने यह कार्य कबका सम्पन्न हो गया होता; किन्तु इसी समय हिन्दीके दुर्भाग्यसे सम्मेलनमें जो आन्तरिक कलह आरम्भ हुआ उससे सम्मेलन ही बन्द हो गया।

जिस प्रकार नागरी लिपिके प्रचार-प्रसारसे देशमें एकताकी अभिवृद्धि होगी, उसी प्रकार पारिभाषिक शब्दावली एक होनेसे भी भारतके विभिन्न राज्य एक दूसरेके निकट आएँगे। पारिभाषिक शब्दावलीके द्वारा वास्तवमें राष्ट्रभाषाके निर्माणमें सहायता मिलेगी।

प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह

डॉ. भोलानाथ तिवारी

किसी भाषाकी प्रकृतिको समझने तथा अन्य भाषाओंसे असके साम्य-वैषम्य या नैतिक-अनैतिकका पता चलानेके लिए शब्द-समूहका अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भाषा विज्ञान अपने शैशव-कालमें इसीका हाथ पकड़ कर चलनेमें समर्थ हो सका था। आज, जब हिन्दी भारतकी राज्य एवं राष्ट्रभाषाके रूपमें विकसित हो रही है, प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें उसके वर्तमान शब्द-समूहका अध्ययन एवं भावीका निर्देश बहुत महत्त्व रखता है।

भारतीय आचार्योंने परम्परागत रूपसे शब्द-समूहका विभाजन प्रमुखतः चार वर्गोंमें किया है—तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी। विश्वकी सभी भाषाओके शब्द-भंडारपर प्रायः इनके अंतर्गत विचार किया जा सकता है। भारतवर्षमे जो भाषाएँ बोली जाती है, उन्हें प्रायः चार परिवारोंमें रखा गया है—भारोपीय परिवार, द्रविड़ परिवार, ऑस्ट्रिक परिवार, तथा तिब्बती-चीनी परिवार। इनमें अधिक महत्त्व केवल प्रथम दो परिवारोंका है। अंतिम दो के अंतर्गत आनेवाली भाषाएँ और बोलियाँ वर्तमानकी दृष्टिसे बहुत महत्त्व नहीं रखतीं। यद्यपि भूतकी दृष्टिसे उनमेंसे प्रथमका कुछ महत्त्व है, क्योंकि उसने प्रथम दो परिवारोंको उभयनिष्टतः शब्द संपत्ति दी है।

जहाँतक तत्सम शब्दोंका प्रश्न है, हिन्दीका भारतकी प्रादेशिक भाषाओंसे पर्याप्त साम्य है। हिन्दीमें संस्कृतके तत्सम शब्द संख्यामें पर्याप्त है। इनका प्रतिशत पचाससे कम न होगा। ये शब्द न्यूनाधिक रूपमें उसी प्रकार पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला तथा असमिया आदि अन्य भारतीय आर्य भाषाओंमें भी हैं। इस श्रेणीके अधिकांश शब्दोंमें हिन्दीका अन्य भारतीय आर्य भाषाओंके साथ ध्वनि-साम्यके साथ-साथ अर्थ-साम्य भी है। उदाहरणार्थ असमियाको ही लें तो अंकन, अंगीकार, अंधकूप, अकल्पित, अकस्मात्, अकीर्ति, अग्रसर, अतिरिक्त, अधोगति, अनुताप, अनुपात आदि हजारों ऐसे तत्सम शब्दोंको खोजा जा सकता है, जो उसमें हिन्दीके समान ही हैं। हाँ, कुछ थोड़े शब्द ऐसे भी अवश्य मिलते हैं जो तत्सम तो हैं, किन्तु जिनका हिन्दीमें कुछ और अर्थ है और अन्य भाषाओंमें कुछ और। जैसे हिन्दीमें श्रीमती का प्रयोग 'सधवा'के लिए होता है, किंतु मराठीमें 'विधवा'के लिए। इसी प्रकार हिन्दी-असमिया अनुभव या हिन्दी-उड़िया

लिपि आदि भी अर्थकी दृष्टिसे पूर्णतः एक नहीं है। तत्समके प्रसंगमें ये बातें हिन्दी और वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओंके सम्बन्धमें थीं। द्रविड़ भाषाओंके सम्बन्धमें भी स्थिति बहुत अधिक भिन्न नहीं है। द्रविड़ भाषाओंमें कन्नड़ तथा मलयाळम तो बहुत ही संस्कृत निष्ठ हैं, अतः वे भी इस दृष्टिसे हिन्दीके समीप हैं। तेलुगुकी भी स्थिति लगभग ऐसी ही है। द्रविड़ भाषाओंमें केवल तमिळ ही ऐसी है जिसमें संस्कृत शब्द कम कहे जाते हैं। किन्तु इसका आशय यह नही कि उनमें संस्कृत शब्दोंका बिल्कुल ही अभाव है। मीन, मणि, अणु, नीति, अरुचि, पति, परम, रीति, उदार, एकांगी, परमाणु, कर्ता, देवी, वस्तु, नदी, गायत्री, वायु, गुरु, चण्डी, माता, महामुनि, आदि सैकड़ों शब्द तमिळमें भी संस्कृत तत्सम है। तमिळमें बहुतसे शब्दोंके अन्तमें हलंत् 'म्' या कभी-कभी 'न्' आते है, यदि उसे भाषाकी सामान्य विशेषता मानकर छोड़ दें, तब तो अनुमान, आनंद, उत्तम, जप तप, जल, तप, स्थान, दिवस, दूर, नष्ट, नाम नायक, नास्तिक, निर्वाण, नीच, निवास, नील, रतन, पंडित, बल, मत, यवन, विचार आदि अन्य बहुतसे समान तत्सम शब्द मिल सकते है। आर्य भाषाओंकी भाँति ही द्रविड़ भाषाओंमें भी कुछ तत्सम शब्द अर्थ-भेदके साथ प्रयुक्त होते है, जैसे तेलुगुमें 'जानु' का अर्थ है पैरका घुटनेसे नीचेका भाग और 'व्यवसाय' का अर्थ है खेती। किन्तु ऐसे शब्द अधिक नहीं हैं। निष्कर्षतः तत्सम शब्दोंकी दृष्टिसे हिन्दीका शब्द-समूह अन्य प्रादेशिक भाषाओंसे न्यूनाधिक रूपमें समीप है। यह सामीप्य मराठी-बंगला आदिसे जहाँ संस्कृत शब्द ४५ प्र. श. के लगभग है, से तो बहुत अधिक हैं, किन्तु तमिळ आदि कुछसे अपेक्षाकृत कम है।

तद्भव शब्दोंकी दृष्टिसे तो स्थिति और भी अच्छी है। तत्सम शब्दोंकी तुलनामें समान तद्भव शब्दोंकी संख्या सभी भाषाओंमें अधिक है। गुजराती, पंजाबी, मराठी, बंगला, उड़िया आदि तो हिन्दी-प्रदेशकी सीमासे मिली हुई है, अतः उनमें तो इनकी संख्या कई हजार होती है; साथ ही वे भाषाएँ, जो सीमासे दूर पड़ती हैं, उनमें भी संख्या बहुत छोटी नही है। कश्मीरी इस दृष्टिसे सुन्दर उदाहरण हो सकती है। यह हिन्दीसे बहुत दूरकी भाषा है। कुछ लोग तो इसे 'दरद' वर्गकी भी मानते है, साथ ही इसपर विदेशी प्रभाव भी हिन्दी आदिकी तुलनामें बहुत अधिक है, फिर भी पर्याप्त समान तद्भव शब्द इसमें हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं:—

हिन्दी	कश्मीरी
अक्षर	अछूर
अंडा	अंड
अधिकारी	अदिकारी
अनाज	अनाज
अनुभव	अनुबव
अन्न	अन
अभाव	अबाव
अभिमान	अबिमान
अमावस	अमावश्या
अर्थ	अर्त

हिन्दी	कश्मीरी
अर्ध	अर्द
अस्थान	अस्थान
अंगन	आंगन
आपदा	आपदा
उग्र	व्वग्र
उत्तर	वुत्तर
कलंक	कलंख
करोड़	क्यरोर
कपट	कपठ

असमिया भी हिन्दीकी सीमावर्ती भाषा नहीं है, किन्तु उसमें भी हिन्दीसे मिलते-जुलते तद्भव शब्दोंकी संख्या बहुत बड़ी है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं:—

हिन्दी	असमिया
अंगीठी	अंगठा
अगहन	अघोन
अच्छा	आच्छा
अटूट	अटूट
अंतः	अंतर
अंधा	अंध
अपना	आपोन
अभागा	आभागा
अभागिन	अभागिनी
अलग	आलाग
आपदा	आपद
आसपास	आशपाश
उदास	उदासीन
कंगाल	कांगाल
कछुआ	काछ

द्रविड़ परिवारकी भाषाओंमें भी तद्भव शब्द हिन्दीसे मिलते-जुलते हैं। इस श्रेणीके शब्द तेलुगु, कन्नड़ और मलयाळममें तो हैं ही, तमिळमें भी हैं, यद्यपि लोग प्रायः इस दृष्टिसे उसे अलग रखते हैं। उदाहरणार्थ :—

हिन्दी	तमिळ
अच्छा	अच्चा

हिन्दी	तमिळ
अधर्म	अदर्मम
अन्याय	अनियायम्
अशुद्धि	असुद्धि
आलस्य	आलसियम्
कंगन	कंगणम्
ककड़ी	ककरी
कच्चा	कच्चा
कत्था	कत्तै
गाड़ी	काड़ी, गाड़ी
चंडाल	चंडालन्
चाँद	चन्दिरन्

इस तरह हर भाषामें इस प्रकारके हजारों शब्द विद्यमान हैं।

हाँ, इस प्रसंगमें एक बात अवश्य उल्लेख्य है। एक ही तत्सम शब्दसे निकले ऐसे भी तद्भव शब्द भारतीय भाषाओंमें हैं, जो सामान्यतया पहचाने नहीं जाते। उदाहरणार्थ :—

हिन्दी	अनुग्रह	तमिळ	अनुक्किरकम्	
,,	आश्रम	,,	आच्चिरमम्	
,,	टकसाल	,,	तंगसालै	(टंकशाला)
,,	महामाई	,,	मकामाई	(महामातृ)
,,	राज	,,	राच्चियम्	(राज्य)
,,	पछताबा	असमिया	पस्ता	(पश्चाताप)
,,	अचरज	कश्मीरी	आछर	(आश्चर्य)
,,	दूब	,,	दर्ब	(दूर्वा)
,,	दरिद्र	,,	द्रोलिद	
,,	भौरा	,,	बम्बुर	(भ्रमर)
,,	पंद्रह	मराठी	पंध्रा	
,,	पत्थर	,,	फत्तर	
,,	भूखा	उड़िया	भोकी	

किन्तु ऐसे शब्दोंको भी प्रसंगानुसार पहचानना बहुत कठिन नहीं है। साथ ही इनकी संख्या बहुत बड़ी नहीं है।

तीसरे प्रकारके शब्द विदेशी हैं। भारतीय भाषाओंमें विदेशी शब्द प्रमुखतः अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली तथा अँग्रेजीके हैं। इन शब्दोंकी दृष्टिसे भी भारतीय भाषाओंमें पर्याप्त एकता है, क्योंकि प्रायः एक ही प्रकारके शब्द उपयुक्त सभी भाषाओंसे आए है। हिन्दीमें विदेशी शब्दोंकी संख्या लगभग

१० हजार है। इसीके आसपास अन्य भाषाओंमें भी विदेशी शब्द होंगे और कुछ अपवादोंको छोड़कर ये शब्द भी प्रायः एक ही होंगे। हिन्दीको केन्द्र मानकर कुछ शब्द देखे जा सकते हैं :—

हिन्दी	उड़िया
अँग्रेज	इंरेज
अँग्रेजी	इंरेजि
अक्ल	अकल
असल	असल
आख़िर	आखर
आबादी	आबादि
आलपिन	आलपिन
आलमारी	आलमारि
क़ाबू	काबु
किरासन	केरोसिन
रेल	रेल
नाश्ता	नास्ता

हिन्दी	तमिळ
इनाम	इनाम
इलाक़ा	इलाका
इस्तरी	इस्तिरी
क़वायद	कवायत्तु
कारख़ाना	कारकाना
कुर्सी	कुरुच्चि
ख़ज़ाना	कजाना
आफ़िस	आपीस
स्टेशन	स्टेशन
होटल	हाटेल

हिन्दी	कश्मीरी
अँग्रेज़ी	अँग्रीजी
अदालत	अदालत
अर्ज़	अर्ज़
आख़िर	आख़िर

हिन्दी	कश्मीरी
आज़माइश	आजमोइश
इजलास	इजलास
इज्ज़त	यज़त
ख़ातिर	ख़ोतिर

देशज शब्द प्रायः सभी भाषाओंके अपने क्षेत्रीय होते हैं। इसी कारण उनमें अधिक समानता नहीं मिल सकती है। द्रविड़ भाषाओंके अपने परम्परागत शब्द भी इसी प्रकार प्रायः आर्य भाषाओंसे भिन्न है।

उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त हिन्दीने अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओंसे भी शब्द लिये है। जैसे दक्षिण भारतकी भाषाओंसे डोसा, इडली; पंजाबीसे सिक्ख, खालसा; गुजरातीसे हड़ताल, श्रीखंड, गरबा; तथा बंगलासे उपन्यास, कविराज, रसगुल्ला, चमचम, सन्देश आदि। दूसरी ओर हिन्दी-भाषी जनता पर्याप्त संख्यामें प्रायः भारतके सभी क्षेत्रोंमें है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक हिन्दी शब्द आधुनिक भारतीय भाषाओंमें घर कर गए हैं। उदाहरणार्थ : कश्मीरीमें अड्डा, आरपार, उथल-पुथल; उड़ियामें बर्फी, पगड़ी; तथा असमियामें कचौड़ी आदि।

उपर्युक्त कारणोंसे हिन्दी तथा सभी प्रादेशिक भाषाओंके शब्द-भंडार में कुछ समानता रही है तथा है। भविष्यमें शब्द-समूहकी समानता और भी बढ़ती जाएगी। इसका कारण यह है कि अभीतक भारतकी सभी भाषाएँ साहित्य, पत्र-व्यवहार तथा समाचार पत्र आदिकी भाषाएँ रही है, विज्ञान आदि तकनीकी विषयोंकी नहीं। अब सभी प्रमुख भाषाएँ तकनीकी विषयोंकी दृष्टिसे भी समृद्ध होने जा रही हैं। इसके लिए पारिभाषिक शब्दोंकी आवश्यकता है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय इस दिशामें तेजीसे काम कर रहा है और लगभग तीन लाख पारिभाषिक शब्द बनाए जा चुके है। इन शब्दोंके निर्माणमें इस बातका भी ध्यान रखा जा रहा है, कि शब्द ऐसे बनें जो न केवल हिन्दीमें अपितु सभी भारतीय भाषाओंमें प्रयुक्त हो सकें। इसी दृष्टिसे यदि कोई शब्द हिन्दीमें नहीं है, किन्तु किसी अन्य भारतीय भाषामें है, तो वह भारतकी इस सामान्य पारिभाषिक शब्दावलीके लिए अपनाया जा रहा है। इसका आशय यह हुआ कि निकट भविष्यमें तीन लाख समान शब्द भारतीय भाषाओंमें आ जाएँगे। लगभग इतने ही और शब्द भविष्यमें बनेंगे और वे भी सभी भाषाओंकी सामान्य सम्पत्ति हो जाएँगे। इस समय कोई भी भारतीय भाषा लाख-सवालाखसे अधिक शब्दोंका प्रयोग नहीं कर रही है। यदि इन सबको मिला दिया जाय, तो ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि भविष्यमें सामान्य और पारिभाषिक दोनों ही प्रकारके शब्द, सामूहिक रूपमें सभी भारतीय भाषाओंमें लगभग सात-सात लाख हो जाएँगे। इनमें छह लाख के लगभग शब्द, जो पारिभाषिक होंगे, समान होंगे ही, साथ ही समान तत्सम, समान तद्भव, समान विदेशी तथा आपसी लेन-देनके कारण सामान्य शब्दावलीके भी पर्याप्त शब्द समान होंगे। इस समय भारतीय भाषाओंमें, आर्य भाषाओंमें, हिन्दीसे शब्द भंडारकी समानता ५०% से ऊपर है। जहाँ तक आर्येतर या द्रविड़ भाषाओंका सम्बन्ध है, यह समानता १५% के लगभग है। ६ लाख समान पारिभाषिक शब्दोंके आ जानेपर आर्यभाषाओंमें यह समानता लगभग ९०% तथा अन्य भाषाओंमें

लगभग ७०% हो जाएगी। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह पर्याप्त समानताएँ रखता है, और भविष्यमें ये समानताएँ और भी बढ़ता जाएँगी, जिसका परिणाम यह होगा कि एक तो राष्ट्रभाषा हिन्दी हर प्रादेशिक भाषा भाषीके लिए उतनी अपरिचित नही ज्ञात होगी जितनी कि आज ज्ञात होती है, दूसरे भारतीय भाषाएँ समवेत रूपमें एक दूसरेके पर्याप्त निकट आ जाएँगी।
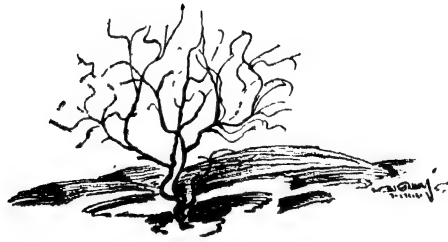
हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य

डॉ. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका अभाव है, अतः क्या देशवासी, क्या विदेशी सभी यह कहते सुने जाते है कि अभी हिन्दीमें वह क्षमता नहीं कि उसे वैज्ञानिक विषयोंके पठन-पाठनके लिए सर्वथा उपयुक्त समझा जाय। बात सच है। और इसके दो कारण प्रतीत होते हैं—प्रथम तो हिन्दीमें प्राचीन वैज्ञानिक साहित्यका अभाव तथा दूसरे, हिन्दीमें उपयुक्त पारिभाषिक शब्दोंकी न्यूनता तथा वैज्ञानिक विचारोंको प्रकट करनेमें हिन्दीकी तथाकथित असमर्थता। इस प्रसंगमें यह न भूल जाना चाहिए कि हिन्दीका विकास ही अत्यन्त अर्वाचीन है, अतः उसमें प्राचीन वैज्ञानिक साहित्यकी खोज करना व्यर्थ है। हाँ, संस्कृत तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओंकी वैज्ञानिक परम्पराका अवतरण जो पूर्णरूपसे हिन्दीमें अब तक हो जाना चाहिए था, वह अभी तक नहीं हो पाया, अतः यदि हम आज जल्दी-जल्दी पारिभाषिक शब्द गढ़ भी लें तो उनको प्रचलित होनेमें काफी समय लग जाएगा।

ऐसी स्थितिमें यह आवश्यक है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो और यह वृद्धि इस प्रकार नियन्त्रित हो कि न केवल स्कूलों या कालिजोमें छात्रोंके वैज्ञानिक ज्ञानकी तृष्णा तृप्त हो वरन् अनुसंधान एवं शोधकी आवश्यकताओंकी भी पूर्ति हो सके। ऐसी वृद्धि नए-नए लेखकोंके उदय, उनके द्वारा विविध विषयोंपर मौलिक कृतियोंके लेखन एवं साहसी प्रकाशकोंके द्वारा उनके शीघ्र एवं सस्ते प्रकाशन द्वारा ही सम्भव है। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि नित्यप्रति उद्भूत नवीन साहित्य-की सूचना एवं ठीक-ठीक जानकारी पाठकों एवं जनसाधारण तक सरलतासे पहुँच सके। आजकल ऐसे लक्ष्यकी पूर्तिके लिए प्रदर्शनियाँ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई हैं। इनके द्वारा नवीन पुस्तकोंका परिचय प्राप्त होता है और आलोचकोंके लिए उनमेंसे उत्तम पुस्तकोंके निर्देशनमें सहायता मिलती है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने आधुनिक हिन्दी साहित्यकी प्रगतिका मूल्यांकन करनेके दृष्टिकोणसे अगस्त सन् १९५५ में हिन्दी पुस्तकोंकी एक प्रदर्शनी आयोजित की थी। तभी राष्ट्रपतिने यह सुझाव दिया था कि आगे चलकर हिन्दीके वैज्ञानिक और प्राविधिक (टेकनिकल) साहित्यकी प्रदर्शनीका आयोजन शिक्षा मन्त्रालय करे। एतदर्थ ५ दिसम्बर सन् १९५७ को नई दिल्लीमें, "हिन्दीमें वैज्ञानिक तथा प्राविधिक

साहित्य" की प्रदर्शनी की गई जिसका उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपतिने ही किया। हिन्दीमें वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्यकी यह प्रदर्शनी इस प्रकारके साहित्यके मूल्यांकन करनेकी प्रथम पीठिका थी। इसके लिए विविध विषयोंकी एवं प्रतिनिधि कृतियोंके रूपमें १००० पुस्तकें चुनी गई थीं। इन पुस्तकोंमें अधिकतर माध्यमिक और उच्चस्तर की पुस्तकोंको ही स्थान दिया गया था। ये पुस्तकें छह भागोंमें विभाजित की गई थीं :—

(१) **भौतिक विज्ञान**—इसमें गणित, भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद, आरोग्य शास्त्र आदिकी पुस्तकें थीं। इंजीनियरी तथा विज्ञानके उत्तम सन्दर्भ ग्रन्थ भी इसीमें सम्मिलित किए गए थे।

(२) **सामाजिक विज्ञान**—इसमें अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मानव-विज्ञान, मनोविज्ञान, कानून आदिकी कृतियाँ थीं।

(३) **सामान्य तथा सरल विज्ञान**—जनसाधारणमें वैज्ञानिक विषयोंकी जानकारी फैलानेके लिए हिन्दीमें लिखी विभिन्न पुस्तकें थीं।

(४) **प्राविधिक विभाग**—इसमें अत्यल्प पुस्तकें थीं परन्तु वे उच्चस्तर की थीं।

(५) **ललित कला विभाग**—यद्यपि अँग्रेजी तथा संस्कृतमें ललित कला सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हैं, परन्तु हिन्दीमें ऐसा साहित्य स्वतन्त्रताके बाद ही लिखा गया।

(६) **वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएँ**—इसमें विभिन्न विषयोंपर निकलनेवाली पत्रिकाएँ एवं पत्र थे।

उपरोक्त प्रकारका विभाजन अपेक्षासे अधिक उदार एवं विस्तृत है। हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी परिचयात्मक विवेचनाके लिए निम्न लिखित वर्गोंपर विचार करना पर्याप्त होगा, क्योंकि विज्ञानका समस्त क्षेत्र इसमें समा जाता है।

(१) **पाठ्य पुस्तकें** :
- गणित सम्बन्धी
- भौतिकी सम्बन्धी
- रसायन सम्बन्धी
- वनस्पति तथा प्राणिशास्त्र सम्बन्धी
- धातु तथा खनिज सम्बन्धी
- कृषि तथा पशुपालन सम्बन्धी

(२) **इंजीनियरी यथा यंत्रकला**

(३) **औद्योगिक साहित्य**

(४) **ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य**

(५) **इतिहास सम्बन्धी साहित्य**

(६) **जनोपयोगी अथवा ज्ञानवर्धक साहित्य**

(७) **पारिभाषिक कोष एवं विश्वकोष**

(८) **पत्र-पत्रिकाएँ**

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका इतिहास

पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें विज्ञानने अद्‌भुत उन्नति की है और अन्य राष्ट्र बहुत आगे बढ़ गए हैं, परन्तु हमारी राजनैतिक दासताने हमें इस दिशामें उन्नति करनेसे वंचित रखा। हमारी शिक्षाका माध्यम एक विदेशी भाषा—अँग्रेजीको बनाया गया, जिसके फलस्वरूप हमारी भाषाओंका स्वाभाविक विकास रुक गया। तेजीसे आगे बढ़ते हुए मानव-ज्ञानके अनेक नए क्षेत्रोंसे ये भाषाएँ अछूती रह गई। स्वतन्त्र लेखकोंको किसी प्रकारकी प्रेरणा और सहायता मिलना तो दूर रहा, साधारण पाठ्य पुस्तकोंको भी इन भाषाओंमें लिखना कठिन हो गया। किन्तु आश्चर्य ही समझें कि इतने व्यवधानोंके होते हुए भी विभिन्न भारतीय भाषाओंमें विज्ञान विषयक साहित्यके सृजनका स्तुत्य प्रयास होता ही रहा। जिससे सन् १८०० से १९०० ई. के बीच लिखी गई रसायन, भौतिकी, बीज गणित, तथा वनस्पति शास्त्र विषयक अनेक पुस्तकें प्राप्त हैं। इन पुस्तकों-में भारतकी प्राचीन वैज्ञानिक परम्पराको जीवित रखने और तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगतिके साथ शृंखलाबद्ध करनेका प्रयत्न मिलता है। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें जिस भौतिक एवं सांस्कृतिक जागरणका नवोदय हुआ, उससे भारतीय भाषाओंमें एक नवीन चेतना आई और इस शताब्दीके उत्तरार्द्ध तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें कई उच्च कोटिके मौलिक ग्रन्थोंकी रचनाएँ हुई।

सन् १९१५ तक जो उल्लेखनीय कार्य हिन्दीके क्षेत्रमें हुए, उनमें लक्ष्मीशंकर मिश्रकी त्रिकोणमिति (सन् १८७३); सुधाकर द्विवेदीकी गणित (सन् १९१०) और ज्योतिषकी पुस्तकें और श्री महेशचरनसिंह (सन् १९११–१२) की भौतिक एवं रसायनके विभिन्न अंगोंकी पुस्तकें थी। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक शब्द कोष (सन् १९०६) अपनी कोटिका प्रथम प्रयास था। विज्ञान परिषद, प्रयाग, द्वारा 'विज्ञान' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन सन् १९१४ ई. में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ। यह है हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रथम उत्थान।

हिन्दीमें वैज्ञानिक प्राविधिक साहित्यका जो द्वितीय उत्थान हुआ, उसमें अधिक उच्चस्तरकी रचनाएँ निकलीं। विज्ञानके क्षेत्रमें काम करनेवालों तथा शिक्षा संस्थाओंसे सम्बन्धित अनेक विद्वानोंने भारतीय भाषाओंमें साहित्यकी रचना करनेके महत्त्वको समझा और अँग्रेजीसे सम्बन्ध होनेके कारण उसके समस्त वैज्ञानिक वाङमयका उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। हो सकता है कि इस कालकी भी रचनाएँ सामान्य कोटिकी सिद्ध हों; परन्तु हिन्दी-वैज्ञानिक साहित्यके विकासके इतिहासमें उनका विशिष्ट स्थान है।

सन् १९४७ में स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ ही हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी अधिक वृद्धि हुई। हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई। सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएँ वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणकी योजनाएँ बनाने लगीं। कहीं-कहीं तो शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो जानेसे इस कार्यमें और सुविधा हुई। शिक्षा पाठ्यक्रमोंकी आवश्यकता-पूर्तिके लिए अनेक अधिकारी विद्वान् और कई संस्थाएँ वैज्ञानिक साहित्यके सृजनमें लग गई। पाठ्यपुस्तकोंके साथ ही सामान्य विज्ञान और उच्चस्तरीय वैज्ञानिक विषयोंकी पुस्तकें भी लिखी गईं जिससे विज्ञानकी मौलिक रचनाओंमें दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि हुई।

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचनाओंको प्रोत्साहित करनेके लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा कई संस्थाओंने पुरस्कार योजनाएँ चालू की हैं। इन योजनाओंने गत १५ वर्षोंमें अनेक लेखकों और

प्रकाशकोंको प्रोत्साहित किया है जिससे हिन्दीमें अधिकाधिक वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण सम्भव हो सका है। अभी हाल ही में (सन् १९५९ से) विज्ञान परिषद, प्रयागकी ओरसे वैज्ञानिक विषयोंपर लिखी उत्तम कृतियोंपर २००० रुपयेका स्वामी 'हरिशरणानन्द पुरस्कार' चालू किया गया है। यह विज्ञानमें प्रदत्त पुरस्कारोंमें सबसे अधिक मूल्यका है।

व्यक्तियों और संस्थाओंको वैज्ञानिक कोष, विश्वकोष, सन्दर्भ ग्रन्थ तथा विशिष्ट विषयोंपर मौलिक पुस्तकें तैयार करनेके लिए सरकारकी ओरसे जो भी वित्तीय सहायता एवं अनुदान दिये गए उनका भी परिणाम उत्साह-जनक रहा है। मौलिक रचनाओंके साथ-साथ अनेक योरोपीय भाषाओंकी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कृतियोंका अनुवाद भी तीव्र गतिसे हो रहा है।

पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण-कार्य भी हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी सृष्टिके लिए अनूठा कदम है। सन् १९५० में शिक्षा मन्त्रालयने वैज्ञानिक शब्दावली बोर्डकी स्थापना की। इसमें चुने हुए वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् हैं। इसके निर्देशानुसार कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानकी अनेक शाखाओंकी पारिभाषिक शब्दावली तैयार हुई है जिसके फलस्वरूप पाठ्य पुस्तकोंकी वैज्ञानिक भाषामें एक रूपता लानेमें काफी सहायता मिली है। हर्षका विषय है कि उत्तर प्रदेशके इंटरमीडियेट बोर्डने यह घोषणा की है कि पाठ्यक्रमके लिए वे ही पुस्तकें चुनी जाएँगी जिनमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली व्यवहृत होगी। इससे लेखक, शिक्षक एवं परीक्षक समान रूपसे एक ही शब्दावलीका प्रयोग करनेके लिए बाध्य हुए हैं और ऐसा वातावरण बन गया है कि विश्वविद्यालयोंमें प्रवेश करनेके पूर्व विज्ञानके सभी छात्र समान रीतिसे वैज्ञानिक हिन्दी शब्दा-वलीसे परिचित एवं भिज्ञ होते हैं। परन्तु खेदका विषय है कि भारतीय सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञोंकी समितियाँ अभीतक स्नातकोत्तर कक्षाओंके लिए उपयोगी शब्दावलीका निर्माण नहीं कर पाई। यहाँतक कि कुछ विषयोंकी समितियों द्वारा इण्टरकी परीक्षाओं तकके लिए भी आवश्यक शब्दावलीका निर्माण नहीं हो सका। इन समितियोंमेंसे गणित एवं रसायनकी समितियोंने सर्वाधिक कार्य किया है; जिससे उच्चतर स्तरकी पाठ्यपुस्तकें लिखनेके लिए शब्दावली उपलब्ध है।

सन्तोषजनक पारिभाषिक शब्दावलीके अभावमें लेखकोंको या तो निराश होना पड़ता है या अपनी रुचिके शब्द गढ़ने पड़ते हैं। यद्यपि विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर पारिभाषिक कोषोंके सम्पादन हुए हैं, परन्तु एक साथ समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति यदि किसी एक कोष द्वारा होती है तो वह डॉ. रघुबीरका 'अंग्रेजी-हिन्दी कोष' है। एक ओर जहाँ इसमें सभी शब्दोंके समानार्थी हिन्दी शब्द मिल सकते हैं, वहीं उनकी दुरूहता उन्हें सर्वग्राह्य नहीं बना पाई। फल यह हुआ है कि जिन लेखकोंने राष्ट्रभाषा हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयोंपर उच्चस्तरीय कृतियाँ लिखी हैं और इस कोषके पारिभाषिक शब्दोंको ग्रहण किया है, वे आज कुतूहल एवं आलोचनाका विषय बन गई हैं। परन्तु यहाँ यह संकेत कर देना प्रसंगानुकूल ही होगा कि डॉ. रघुबीरके कोषके प्रति हमें अनुदार नहीं होना चाहिए वरन् आवश्यकताके समय शब्द ग्रहण करनेमें संकोच नहीं करना चाहिए। विशेषतः जीव-विज्ञानके क्षेत्रमें प्रयुक्त शब्दावलीके लिए यह सर्वश्रेष्ठ स्रोत है।

अब तो केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारोंने कुछ प्रकाशन-कार्य भी अपने हाथोंमें लिया है। विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्मित 'हिन्दी समितिने' पुस्तकें लिखवाई हैं जिनको प्रकाशन शाखा द्वारा प्रकाशित किया गया है। ये पुस्तकें मौलिक एवं अनूदित दोनों श्रेणियों की हैं। साथ ही साथ

अनेक प्रकाशक जो अबतक केवल अँग्रेजी साहित्य प्रकाशित करते थे, अब हिन्दीके क्षेत्रमें आगे बढ़ रहे हैं।। विदेशी लेखकोंकी सर्वप्रिय पुस्तकोंके आधिकारिक अनुवाद भी इधर कुछ वर्षोंसे प्रकाशित होने लगे हैं।

केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित 'नेशनल बुक ट्रस्ट' भी इस दिशामें विशिष्ट कदम है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा हिन्दी विश्वकोष निर्माणकी योजना राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि की ओर अनूठा प्रयास है।

वैज्ञानिक साहित्यके विशिष्ट प्रकाशक एवं प्रकाशन संस्थाएँ

अँग्रेजीके प्रभुत्व कालमें हिन्दी द्वारा वैज्ञानिक साहित्यका प्रकाशन उपहास-सा भले प्रतीत होता रहा हो; परन्तु कुछ दूरदर्शी प्रकाशकोंने साहस जुटाकर यह कार्य दृढ़तासे प्रारम्भ किया और आजकल वे उस मार्गपर अडिग है। कुछ प्रकाशक ऐसे भी थे जिन्होंने पहले प्रकाशन तो प्रारम्भ किया किन्तु बादमें वे उसे चला न सके। इस कोटिमें कतिपय मिशनरी संस्थाअें आती हैं जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दीके माध्यमसे अँग्रेजीमें उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्यने जनताके समक्ष अपरिमार्जित भाषामें ही प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। उदाहरणार्थ, 'क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी' प्रयागने सन् १८९५में 'कीट पतंगोंका वृत्तान्त' नामक एक पुस्तिका निकाली। इससे भी पूर्व सन् १८५६ में 'क्रिश्चियन टेक्स्ट बुक सोसायटी' ने कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। कलकत्ताके 'बैप्टिस्ट मिशन' ने १९११–१४ में कई ग्रन्थ प्रकाशित किए। सचमुच ही इस साहसिक प्रयासके मूलमें धर्मप्रचारकी भावना कार्य कर रही थी परन्तु इससे हमारे देश वासियोंको इस ओर अग्रसर होनेमें बल मिला। बनारसके 'विज्ञानहुनर माला' प्रकाशनने १९१५-१८ के बीच भौतिक एवं औद्योगिक विज्ञानपर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। सर्व प्रथम देशमें 'गुरुकुल कांगड़ी'में हिन्दी माध्यमसे शिक्षाका वैज्ञानिक सूत्रपात वीसवी शतीके प्रारम्भमें ही हुआ फलतः वैज्ञानिक विषयोंपर पुस्तकोंकी आवश्यकता हुई जिन्हें प्रकाशित करनेका कार्यभार 'गुरुकुल कांगड़ी' ने अपने हाथोंमें लिया और १९१०-१५ के बीच अनेक पुस्तकें प्रकाशित की। 'विज्ञान परिषद प्रयाग' की स्थापना १९१४ ई. में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका सृजन एबं उनका देशव्यापी प्रचार था। अपने स्थापना कालसे आजतक इसने ६० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की है जो विज्ञानके अंगोंकी पूर्ति करती हैं। प्रयागकी अन्य प्रकाशन संस्थाओंमें 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' 'इण्डियन प्रेस' तथा 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के नाम प्रमुख है जिन्होंने १९३८ तक विज्ञानकी अनेकानेक मौलिक एवं पाठच पुस्तकें प्रकाशित करके हिन्दीके रिक्त भण्डार की पूर्ति की। 'नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी' ने भी इस यज्ञमें अपना हाथ बँटाया। अमृतसरकी 'पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी' ने वैद्यक शास्त्रपर समय समयपर अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भमें हिन्दीके द्वारा वैज्ञानिक साहित्यके सृजन एवं उसके प्रसारमें इनी-गिनी प्रकाशन संस्थाओंने रुचि दिखाई परन्तु आज हिन्दीके राष्ट्रभाषा घोषित हो जानेसे अन्य अनेक प्रकाशक प्रकट हुए हैं और हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके प्रकाशनका कार्य अधिक सुचारुतासे चला रहे है। पाठ्य-पुस्तकोंके अतिरिक्त मौलिक ग्रन्थों एवं कोषोंके प्रकाशनमें ये प्रकाशक रुचि दिखाने लगे हैं। विहार राष्ट्रभाषा परिषद, राजकमल प्रकाशन, आत्माराम एण्ड सन्स, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ए. आर. सेठ

एण्ड कम्पनी, हिन्दी समिति, देहाती पुस्तक भण्डार, किताब महल आदि प्रमुख प्रकाशक एवं प्रकाशन संस्थाएँ हैं जिनके द्वारा उच्चतर प्रामाणिक वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है।

स्वतन्त्रताके पूर्वका वैज्ञानिक साहित्य

यदि हम १९४७ के पूर्वके हिन्दीमें प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्यपर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि तबतक मुख्यतः सामान्य पाठ्य-पुस्तकों की ही रचना हो पाई थी। क्या भौतिक, रसायन, गणित, कृषि, वनस्पति या जीवनशास्त्र; क्या वैद्यक, ज्योतिष अथवा सामान्य विज्ञान, इन सभी विषयोंके लेखक अपने चिन्तनकी प्रारम्भिक अवस्थामें प्रतीत होते है, उन सबोंकी शैलियाँ विभिन्न होनेपर भी विषयको वोधगम्य नहीं बना पातीं और उनके द्वारा प्रयुक्त अधिकांश शब्द आज हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। परन्तु इस अधिक लेखन एवं प्रकाशनसे वैज्ञानिक क्षेत्रमें हिन्दीका प्रवेश निश्चित रूपसे हो गया और अधिकाधिक पुस्तकोंकी आवश्यकता हुई। परिचयके लिए नीचे विभिन्न विषयोंपर प्राप्त कुछ पुस्तकोंके नाम, उनके प्रकाशक, प्रकाशन तिथि एवं मूल्यों सहित दिये जा रहे हैं। विवरणके लिए 'विज्ञान' के भाग ४८, दिसम्बर १९३८ के अंकको देखा जा सकता है।

स्वतन्त्रता प्राप्तिसे पूर्व हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
भौतिकी :				
चुम्बक	सालगराम भार्गव	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९१७	०–३७
ताप	प्रेमबल्लभ जोशी	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९२१	०–३७
प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान	निहाल करण सेठी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	१९३०	
भौतिकी	गोवर्द्धन	गुरुकुल कांगड़ी	१९१०	०–५०
विद्युत् शास्त्र भाग १	महेशचरण सिंह	गुरुकुल कांगड़ी	१९१२	
वैज्ञानिक परिणाम	सत्यप्रकाश, निहाल करण सेठी	विज्ञान परिषद	१९२८	१–५०
रसायन :				
रसायन शास्त्र	महेशचरण सिंह	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१९०९	३–५०
रसायन संग्रह	विश्वम्भरनाथ वर्मा	बड़ा बाजार कलकत्ता	१८९६	
हिन्दी केमिस्ट्री	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनर माला आफिस काशी	१९१७	१–००
रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर		आगरा स्कूल बुक सोसायटी	१८४७	
मनोरंजक रसायन	गोपाल स्वरूप भार्गव	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२३	१–५०
साधारण रसायन (भाग २)	फूलदेव सहाय वर्मा	हिन्दी विश्वविद्यालय काशी	१९३२	
प्रारम्भिक रसायन	अमीचन्द्र विद्यालंकार	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१९२८	१–००

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
कार्बनिक रसायन	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२८	२–५०
गणात्मक विश्लेषण	रामशरणदास	गुरुकुल कांगड़ी	१९१९	२–५०
औद्योगिक :				
क्षार निर्माण विज्ञान	हरिशरणानन्द	आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर	१९२७	०–५०
कृत्रिम काष्ठ	गंगाशंकर पंचौली	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२०	०–१२
चर्म बनानेके सिद्धान्त	देवदत्त अरेड़ा,	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३०	३–००
तेलकी पुस्तक	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनर माला आफिस, बनारस	१९१७	१–००
फल संरक्षण	गोरखप्रसाद ,,	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३७	१–००
फोटोग्राफी	गोरखप्रसाद ,,	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३१	७–००
नारियलके रेशेका उद्योग		मारवाड़ी महासभा, कलकत्ता		०–५०
भारतीय चीनी मिट्टियाँ	मनोहरलाल मिश्र	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९४१	१–५०
गणित :				
लीलावती		लक्ष्मीबेंकटेम्श्वर प्रेस, बम्बई	१९०९	
अंकगणित, प्रथम भाग	यादवचन्द्र चक्रवर्ती	पी. सी. द्वादस श्रेणी, अलीगढ़	१९००	०–१५
सुलभ बीज गणित	कुंज बिहारीलाल	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	१८७५	०–३१
बीजगणित	लाला सीताराम	कौशल किशोर, मुरादाबाद,	१९०७	१–००
हिन्दुस्तानी माप विद्या	रामनाथ चटर्जी	इण्डियन प्रेस प्रयाग		०–५०
पैमाइश	नन्दलाल मुरलीधर	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९२७	१–००
गणितका इतिहास	सुधाकर द्विवेदी	संस्कृत कालेज, बनारस	१९०२	२–००
गति विद्या	लक्ष्मीशंकर मिश्र	इंस्पेक्टर आफ स्कूल, बनारस	१८८५	०–७५
चलनकलन	सुधाकर द्विवेदी	संस्कृत कालेज, बनारस		
बीज ज्यामिति	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३१	१–२५
ज्योतिष :				
आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३६	००–७५
कालबोध	शिवकुमारसिंह	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१८९५	
ज्योतिर्विनोद	सम्पूर्णानन्द	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१९१७	१–२५
सूर्य सिद्धान्त	इन्द्र नारायण द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९१८	१–००
सूर्य सिद्धांत (विज्ञानभाष्य)	महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२४–३४	५–५०
सौर परिवार	गोरखप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३१	१२–००

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
प्राणि-शास्त्र :				
जंतु जगत	ब्रजेश बहादुर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३०	६–५०
पक्षी चित्रमाला	,, ,,	क्रिश्चियन लिटररी सोसायटी	१८९५	०–०९
पक्षी परिचय	पारसनाथसिंह	नवयुग साहित्य मन्दिर	१९३३	१–२५
वनस्पति-शास्त्र कृषि-शास्त्र :				
गेहूँके गुण, पैदावारकी तरक्की	अलबर्ट हावर्ड्	बैप्टिस्ट मिशन, कलकत्ता	१९१२	०–१२
वनस्पति शास्त्र १	महेशचरण सिंह	गुरुकुल कांगड़ी	१९११	१–००
वर्षा और वनस्पति	शंकरराव जोशी	विज्ञान परिषद, प्रयाग		०–२५
कृषिशास्त्र	तेजशंकर कोचक	गवर्नमेंट कृषि महाविद्यालय, बुलन्दशहर	१९२४	२–००
कृषि विज्ञान (१)	शीतलप्रसाद तिवारी	रामदयाल अग्रवाल प्रयाग	१९२६	०–१२
कृषि कौमुदी	दुर्गाप्रसाद सिंह	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१९१९	१–५०
अंजीर	रमेशवेदी	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९४३	०–७५
उद्यान	शंकरराव जोशी	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ		
वनस्पति विज्ञान	संतप्रसाद टंडन	नेशनल प्रेस, प्रयाग	१९४५	१–२५
वैद्यक, चिकित्सा :				
आसव विज्ञान	हरिशरणानन्द	पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर		१–००
आकृति निदान	जनार्दन भट्ट	हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, काशी	१९२३	१–२५
दूध चिकित्सा	महेन्द्रनाथ पाण्डे	महेन्द्र रसायन शाला कटरा, इलाहाबाद	१९४४	४–००
घरका वैद्य	अत्रिदेव गुप्त	आनन्द बुक डिपो सुल्तानपुर	१९३६	१२–००
व्याधि विज्ञान (२)	आशानन्द पंचरत्न	विराट फार्मेसी, लाहौर	१९३८	३–००
छूतवाले रोग	शिवरानी देवी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१९०९	१–००
मन्थर ज्वर	हरिशरणानन्द	पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर	१९२९	१–००
रसपरिज्ञान	जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	सुधानिधि कार्यालय, प्रयाग	१९२३	०–६२
विष विज्ञान	मुकुन्दस्वरूप वर्मा	हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी	१९३२	१–२५
शल्य विज्ञान	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, काशी	१९३१	३–००
हमारे शरीरकी कथा	बी. के. मित्र	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२१	०–१५
पशु चिकित्सा	केशवसिंह	बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१८९६	—
बृहद्रसप्रदीप	शिवसहाय चतुर्वेदी		१९३८	१२–००

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
सामान्य विज्ञान :				
वायु पर विजय	जगपति चतुर्वेदी	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९३१	१–००
विज्ञान वार्ता	महावीरप्रसाद द्विवेदी	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	१९३०	१–३७
विज्ञान हस्तामलक	रामदास गौड़	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३६	६–५०
सृष्टिकी कथा	सत्यप्रकाश	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९३७	१–००
वायुयान	जगपति चतुर्वेदी	आदर्श ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग	१८३४	०–७५
आविष्कारकी कहानियाँ	जगपति चतुर्वेदी	भारतीय पब्लिशर्स,पटना		०–७५
भारतीय वैज्ञानिक	श्यामनारायण कपूर	साहित्य निकेतन कानपुर	१९४२	३–००

स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य

सन् १९४७ के पश्चात् हिन्दीमें जो वैज्ञानिक साहित्य रचा गया उसकी कुछ विशेषताएँ हैं—यथा उच्चकोटिके लेखकों हिन्दीमें पदार्पण, भाषा एवं शैलीमें सुस्पष्टता एवं प्रवाह तथा सामान्य स्तरकी पुस्तकोंके साथ ही उच्चस्तरीय मौलिक एवं अनूदित पुस्तकोंका लेखन। प्रकाशकोंने इस कालके पश्चात् जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित कीं वे उनके बाह्य आवरण आकर्षक एवं सुसज्जित तथा उनके मूल्य अधिक एवं उनके आकार वृहत् हैं। ऐसा होनेसे वैज्ञानिक विषयोंको चित्रोंसे युक्त करनेमें सफलता मिली है। आज ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जो विदेशी वैज्ञानिक पुस्तकोंसे सरलतापूर्वक होड़ कर सकती है। यद्यपि ऐसी मँहगी कृतियोंको खरीद पाना हिन्दीके पाठकोंके लिए सहज नहीं है परन्तु वे अनेकानेक पुस्तकालयोंमें अवश्य खरीदी जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हम हिन्दीमें लिखी पुस्तकोंपर अधिक खर्च नहीं करना चाहते अन्यथा हमारे देशमें प्रकाशित अनेक वैज्ञानिक कृतियाँ अँग्रेजी में प्रकाशित उन्हीं विषयोंकी कृतियोंसे कहीं अधिक सस्ती हैं। हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए आवश्यक है कि उसके पाठक अधिक पैसे खर्च करके अपनी राष्ट्रभाषाका सम्मान करना सीखें।

नीचे विज्ञानके विविध अंगोंपर १९४७ के पश्चात्से प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची, उनके लेखकों एवं प्रकाशकोंके नाम, प्रकाशन तिथि, पृष्ठ संख्या एवं मूल्य दिये जा रहे है जिससे पाठकोंको यह अनुमान हो जाएगा कि किस तीव्र गतिसे हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य रचा जा रहा है। प्रत्येक वर्षकी नवीनतम पुस्तकोंसे परिचित होनेके लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रदान किये जानेवाले पुरस्कार। यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता चलेगा कि दिन प्रति दिन वैज्ञानिक साहित्यमें वृद्धि हो रही है और पुरस्कृत लेखकों-की कृतियोंकी संख्या अधिक होती रही है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त मंगलाप्रसाद पारितोषिक वैज्ञानिक कृतियोंपर भी दिया जाता है। विहार राष्ट्रभाषा परिषदने भी ऐसा ही आयोजन किया है। विज्ञान परिषद द्वारा स्वामी हरिशरणानन्द पुरस्कारोंकी योजना प्रतिवर्ष नवीन लेखकोंको प्रतियोगितामें भाग लेनेका सुनहला अवसर प्रदान करती है। तात्पर्य यह कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके लेखनके लिए प्रचुर प्रोत्साहन मिलता रहा है। कुछ वर्षोंसे उत्तर-प्रदेशकी हिन्दी समितिने विज्ञानके विविध विषयोंपर मूर्धन्य

लेखकोंसे कृतियाँ लिखानेकी एक योजना बनाई है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रामाणिक पुस्तकें लिखी जा चुकी है और कुछ लिखी जा रही है।

हम विविध विषयोंकी पुस्तक सूचियाँ देते हुए उन विषयोंमें जो उल्लेखनीय प्रयास हुए है उनका इंगित मात्र करेगे क्योंकि प्रत्येक पुस्तकके सम्बन्धमें पृथकसे विचार प्रकट करना असम्भवसा है।

१. (क) **गणित**—जैसा कि इसके पूर्व हम देख चुके है स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्व गणितमें प्रारम्भिक साहित्यकी रचना हुई। परन्तु बादमें कुछ विशिष्ट प्रयास हुए। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने इंटर कक्षाओंके शिक्षणके लिए गणितकी पुस्तकोकी एक योजना बनाई थी। इसके अन्तर्गत डा. डी. पी. शुक्लका गति विज्ञान, डा० हरिचन्द्र गुप्तका चलराशि कलन और डा० ब्रजमोहनकी ठोस ज्यामिति प्रकाशित हुई। गया-प्रसाद एण्ड सन्सने डा० ब्रजवासीलालकी तीन पुस्तकें—'प्रारम्भिक गति विज्ञान', 'आधुनिक स्थिति विज्ञान' तथा 'प्रारम्भिक चलनकलन' और हरस्वरूप शर्माकी 'घन ज्यामिति', नियामक ज्यामिति और समतल त्रिकोण मिति प्रकाशित कीं। हिन्दी प्रकाशन मण्डल काशीने डा० ब्रजमोहन कृत 'नियामक ज्यामिति' (२ भाग) एवं 'इंटरमीडियट बीज गणित प्रश्नोत्तर' तथा श्री कमल मोहन द्वारा लिखित 'ठोस रेखा गणित' प्रकाशित किया। लाला रामदयाल अग्रवालने डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव तथा रामसिंह कृत 'चलन कलन' प्रकाशित किया। लोनीकी प्रसिद्ध पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद—'नियामक ज्यामिति', 'वैश्लेषिक त्रिकोणमिति', 'स्थिति विज्ञान' तथा 'गति विज्ञान'—मैकमिलन एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित हुए। इसीने हाल तथा नाइटके हायर अलजबरा-का हिन्दी अनुवाद—'उच्चतर बीज गणित' भी प्रकाशित किया। पोथीशाला लिमिटेडसे डा. गोरख-प्रसादकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई—(१) 'प्रारम्भिक अवकल समीकरण' तथा (२) 'सरल गणित ज्योतिष'। इनमेसे अधिकांश पुस्तकें इण्टर तक की कक्षाओंके लिए है। विश्वविद्यालयोंमे बी. एस सी. कक्षामें गणितके अन्तर्गत ९ विषय पढ़ाये जाते हैं जिनके लिए कमसे कम एक एक पुस्तककी आवश्यकता होती है। अँग्रेजीमें इनमेसे प्रत्येक विषयपर दर्जनों पुस्तकें मिलेंगी परन्तु हिन्दीमें अभीतक केवल तीन विषयोंपर केवल एक एक पुस्तक लिखी जा सकी है। ये है डा० हरिश्चन्द्र गुप्त कृत चलराशि कलन तथा गोरख प्रसाद कृत अलकल समीकरण जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। डा० बी. एन. प्रसाद कृत अँग्रेजी पुस्तक 'हाइड्रोस्टैटिक्स' का अब हिन्दी अनुवाद भी प्राप्त है।

'हिन्दू गणित शास्त्रका इतिहास' नामक नवीन कृति प्रकाशनब्यूरो उत्तर प्रदेश (लखनऊ) प्रका-शित हुई है जिसमें २३८ पृष्ठ है और मूल्य ३ रु. है। 'गणितके चमत्कार' रा.र. खाडिलकर कृत है जिसका मूल्य ४ रु. है। डा० ब्रजमोहनका गणितीय कोष ६८९ पृष्ठोंका है जिसका मूल्य ९ रु. है। यह अपनी कोटिका विशिष्ट ग्रन्थ है। इस प्रकार गणितके क्षेत्रमें उच्चस्तरीय साहित्यका सर्वथा अभावसा है।

१. (ख) **भौतिकी**—पाठ्य पुस्तकोंके अतिरिक्त प्रायः १ दर्जन ऐसी पुस्तकें प्राप्त हैं जो महत्वपूर्ण हैं। इनमेंसे निहालकरण सेठी कृत 'चुम्बकत्व' और 'विद्युत' पर अिस वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा १२०० रु., का पुरस्कार भी प्रदत्त हुआ है। प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित ४ पुस्तकें उच्चस्तर की हैं जिनमेंसे ३ अनुवादके रूपमें है। पाठ्यपुस्तकोंमेंसे स्टूडेन्ट्स फ्रेंड्स, प्रयाग द्वारा प्रकाशित डा०नन्दलाल सिंह कृत भौतिक विज्ञान प्रवेशिका एवं प्रायोगिक भौतिक विज्ञान प्रमुख है जो इण्टर-मीडियेट कक्षाओंके लिए उपयुक्त है। बी. एस सी. कक्षाओंके लिए भौतिकशास्त्रमें ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत्,

तथा चुम्बकत्व इन पाँच विषयोंपर पुस्तकें चाहिए परन्तु प्रकाश एवं विद्युत् तथा चुम्बकत्वपर ही डा० निहाल करण सेठीकी पुस्तकें—'प्रकाश विज्ञान' एस. चाँद एण्ड कम्पनी दिल्ली' तथा 'चुम्बकत्व और विद्युत्' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) प्राप्त हैं। अभी तक स्नातक कक्षाओंकी भी पूर्ति नहीं हो पाई अतः तमाम ग्रन्थोंके लिखे जानेकी आवश्यकता है।

भौतिकीपर पुस्तकें

नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१. चुम्बकत्व और विद्युत्	डा. निहालकरण सेठी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग		७४९	१६—००
२. शक्ति (वर्तमान और	मूललेखक: शेरडट टेलर अनु० सत्यप्रकाश गोयल	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश	१९६०	१२२	४—००
३. भौतिक विज्ञानमें क्रांति	मूललेखक: लुई दे ब्रोगली अन० निहालकरण सेठी	,, ,, ,, ,,	१९६०	३२४	४—५०
४. आपेक्षिकताका अभिप्राय	निहालकरण सेठी तथा ड़ी. आर. भवालकर	,, ,, ,, ,,	१९६०	१७४	४—००
५. इलेक्ट्रान विवर्तन	अनु० दयालाल खंडेलवाल	,, ,,	१९६०	११८	२—५०
६. प्रकाश विज्ञान	निहालकरण सेठी	एस. चाँद एण्ड कम्पनी, लखनऊ		५४६	१०—००
७. परमाणु शक्ति	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	ज्ञानमंडल पुस्तक भंडार लिमिटेड, काशी		१०२	२—००
८. एटम (हमारे जीवनमें)	अनुवादक—बालकृष्ण	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली		१७९	३—००
९. भौतिक विज्ञान प्रवेशिका (१)	नन्दलालसिह	स्टूडेंट्स, फ्रेंड्स, प्रयाग		७६१	७—००
१०. हाइस्कूल भौतिकी	अरबिन्दमोहन श्रीवास्तव	पोथीशाला लि. प्रयाग	१९५८	३३२	३—५०
११. बिजलीकी लीला	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद	१९५१	१६८	१—००

१. (ग) **रसायन**—हाईस्कूल और इंटरमीडियेट कक्षाओंके लिये उपयोगी पुस्तकोंकी सूची बहुत बड़ी है किन्तु अधिकांश डा० रघुबीरकी शब्दावली प्रयुक्त होनेके कारण प्रचलित न हो सकी। केवल कतिपय लेखकोंकी ही रचनाएँ सर्वप्रिय हो पाई। इनमेंसे डा० सत्यप्रकाशकी सामान्य रसायन कार्बनिक रसायन तथा 'प्रायोगिक रसायन' (स्टुडेण्ट्स फ्रेंड्स, प्रयाग), डा० सन्तप्रसाद टण्डनकी प्रारम्भिक कार्बनि रसायन (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) तथा डा० रामदास तिवारी कृत कार्बनिक रसायन (महेश एण्ड कम्पनी, आगरा) प्रमुख हैं। बी. एस सी. कक्षाओंमें तीन विषयोंके लिए पुस्तकें चाहिए—कार्बनिक, अकार्बनिक तथा भौतिक रसायन किन्तु इनमेंसे केवल दो चार पुस्तकें उपलब्ध हैं। कार्बनिक रसायनपर हिन्दीमें कोई पुस्तक ही नहीं है। अकार्बनिक रसायनमें डा० सत्यप्रकाश कृत सामान्य 'रसायन शास्त्र' (भारती भंडार प्रयाग) तथा श्रीप्रकाश कृत अकार्बनिक रसायन एवं भौतिक रसायनपर डा. रामचरण मेहरोत्राकी

भौतिक रसायनकी रूप रेखा (प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) नामक पुस्तकें है। प्रयोगात्मक रसायन, जो अकार्बनिक रसायनका अंग है, पर डा० कृष्णबहादुरकी वैश्लेषिक रसायन (पोथी शाला, प्रयाग) प्राप्त है। इधर हालहीमें भारतमें रसायन शास्त्रके विकासपर डा० सत्यप्रकाशकी पुस्तक प्रकाशित हुई है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रसायनशास्त्र पर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१.	भौतिक रसायनकी रूपरेखा	डा. रामचरण मेहरोत्रा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९५४	४२०	७–५०
२.	कार्बनिक रसायन	डा. सत्यप्रकाश	स्टुडेण्ट फ्रेंड्स, प्रयाग	१९५४	४१४	४–००
३.	रसायन दीपिका	डा. सत्यप्रकाश	एस. चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली	१९६०	२५९	५–७५
४.	कार्बनिक रसायन	पी. एल. सोनी	,, ,,	१९५८	३९६	५–५०
५.	कार्बनिक रसायन	जी. एस. मिश्रा	सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयाग	१९५७	४१८	४–५०
६.	माध्यमिक रसायन	इन्द्रदेव सिंह आर्य तथा अन्य	नागपुर विश्वविद्यालय	१९५०	७६४	७–५०
७.	प्रारम्भिक कार्बनिक रसायन	डा. सन्तप्रसाद टण्डन	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९५६	४२५	५–००
८.	वैश्लेषिक रसायन	डा. कृष्णबहादुर	पोथीशाला लि., प्रयाग	१९५५	२२८	४–००
९.	अकार्बनिक रसायनकी रूपरेखा	श्री प्रकाश तथा हीरालाल निगम	गौतम ब्रदर्स, कानपुर	×	५८०	७–००
१०.	माध्यमिक कार्बनिक रसायन	झिगुरन तथा अग्निहोत्री	,, ,,	१९५९	४२९	४–००
११.	अकार्बनिक रसायन	कैलाश बिहारी प्रसाद	अशोक प्रेस, पटना	१९४९	२२२	३–५०
१२.	रसायनिक तत्त्व	गोरखप्रसाद श्रीवास्तव	हिन्दी प्रकाशन, माडन काशी	१९४९	२८९	६–००
१३.	धातुओंकी कहानी	धर्मेन्द्रकुमार कांकरिया	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९५८	१११	२–००

१. (घ) **वनस्पति शास्त्र**—वनस्पति शास्त्र पर अभीतक हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट परीक्षाओंके लिए ही उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो पाई हैं। बी. एस. सी. के लिए कोई भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कालेजके लिए वनस्पति शास्त्रपर पुस्तक लेखकोंमें धर्मनारायण; आर. डी. विद्यार्थी तथा ए. सी. दत्त प्रमुख है। सहानी एवं लासनकी सुप्रसिद्ध पुस्तकका अनुवाद इस दिशामें एक विशिष्ट कार्य है।

वनस्पतिशास्त्रपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१.	वनस्पति शास्त्र, भा.२	आर. डी. विद्यार्थी	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९५४	३३०	४–००
२.	वनस्पति शास्त्र	डा. धर्मनारायण	किताब महल प्रकाशन	१९५४	३७९	६–००
३.	वनस्पति विज्ञान	आर. डी. विद्यार्थी	श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा	१९५७	२६३	२–५०
४.	वनस्पति शास्त्र	आर. डी. विद्यार्थी तथा ए. सी. सहगल	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९५७	४६४	६–००
५.	वनस्पति शास्त्र	विजयभूषण भटनागर	नवयुग प्रकाशन, मुजफ्फरनगर	१९५६	४०४	७–००
६.	माध्यमिक वनस्पति विज्ञान	कन्हैयालाल और अन्य	ओरियन्टल पब्लिशर लिमिटेड, आगरा	१९५५	७१९	१०–००
७.	जीव विज्ञानकी भूमिका (२) वनस्पति विज्ञान	कृष्णमोहन गुप्त	भारतेन्दु पुस्तक मन्दिर, बनारस	१९५७	३०१	२–५०
८.	माध्यमिक वनस्पति विज्ञान	एम. एन. गुप्त	गुप्ता पब्लिशिंग हाउस, आगरा	१९५९	४१०	१०–००
९.	जीव विज्ञानकी रूपरेखा (२) वनस्पति विज्ञान	महेशनारायण माथुर व इन्द्रमोहन लमगोड़ा	इण्डिस्ट्रियल एण्ड कमर्शियल सर्विस, हीवेट रोड, इलाहाबाद	×	२२०	२–५०
१०.	वनस्पति शास्त्रकी पाठ्यपुस्तक	मूल लेखक–जे. एन. लायन तथा बीरबल साहनी अनु० : देवेन्द्रकुमार वेदालंकार	एस. चाँद एण्ड कम्पनी, फव्वारा, दिल्ली	१९५५	६३०	१०–५०
११.	अशोक	रामेश बेदी	गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार	१९५९	५९	१–००

१. (ङ) **प्राणिशास्त्र**—हाइस्कूल एवं इण्टरके उपयुक्त पाठ्य पुस्तकोंमें ए. पी. सिंहकी जीव विज्ञान, डा० उमाशंकर श्रीवास्तवकी 'आधुनिक प्राणि शास्त्र' (विद्या भवन, लखनऊ), आर. डी. विद्यार्थीकी माध्यमिक 'प्राणिशास्त्र' (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) तथा चम्पतस्वरूप गुप्त की 'जन्तु विज्ञान' (किताब महल, प्रयाग) पुस्तकें प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कीड़ों मकोड़ों, जन्तुओं आदिपर कतिपय बालोपयोगी एवं सामान्य स्तरकी पुस्तकें भी मिलती हैं। इधर सूचना विभाग, उत्तरप्रदेशकी प्रकाशन शाखाने सुरेश सिंह कृत अत्यन्त विस्तृत एवं सचित्र पुस्तक 'जीव जगत' निकाला है।

प्राणिशास्त्रपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१.	जीव जगत	सुरेश सिंह	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उ. प्र. लखनऊ	१९५८	७२७	१४—००
२.	कृषि हानिकारक जीव जन्तु	मोतीलाल सेठ	विज्ञान साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद	१९५९	२००	५—००
३.	कीट-पतंगोंका संसार	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद	१९५७	१९५	४—००
४.	जन्तुओंकी जन्म-कहानी	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद	१९५८	१८८	४—००
५.	जन्तु-विज्ञान	कृष्णमोहन गुप्त	भारतेन्दु पुस्तक मन्दिर, बनारस	१९५७	३४४	३—००
६.	साँपोंकी दुनिया	रामेश बेदी	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९५१	३३०	४—००
७.	विलुप्त जन्तु	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद	१९५१	१५२	२—००
८.	मछलियोंकी दुनिया	,, ,,	,, ,,	१९५८	१७६	×
९.	संसारके सरीसृप	,, ,,	,, ,,	१९५७	१००	४—००
१०.	जीव जन्तुओंकी बुद्धि	,, ,,	,, ,,	१९५७	१९२	४—००
११.	पक्षियोंकी दुनिया	सुरेश सिंह	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली	१९५९		१—५०
१२.	जीव आया	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	,, ,,	१९५७	३६	१—००
१३.	समुद्रके जीव जन्तु	सुरेशसिंह	,, ,,	१९५८	४८	१—५०
१४.	जीव जन्तु	,, ,,	प्रकाशगृह,कालाकाँकर	१९५७	१४८	४—००

१. (च) **धातु और खनिज**—नागरी प्रचारिणी सभा काशीने डा. दयास्वरूप कृत 'धातु विज्ञान' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। भूगर्भ शास्त्र विषयक पुस्तकोंमें 'वसन्त मालिका' मद्रासमे प्रकाशित डा. एम. एस. कृष्णनकी 'भारतीय भूतत्त्वकी भूमिका' (अँग्रेजीका अनुवाद) उल्लेखनीय है। भूगोल कार्यालयसे एच. एल. शर्माकी 'भारतकी खनिज सम्पत्ति' और प्रो. एन. एल. शर्माकी भारतवर्षकी 'खनिजात्मक सम्पत्ति' एवं डा. रघुबीर कृत 'खनिज अभिज्ञान' (नागपुर) उल्लेखनीय हैं।

१. (छ) **कृषि तथा पशुपालन**—कृषिके अन्तर्गत मृत्तिका रसायन, फसलोत्पादन, फलोत्पादन, फसलोंके रोग आदि विषय हैं। पशुपालनके अन्तर्गत दुग्ध विज्ञान, आहार विज्ञान, पशुओंके रोग, उनकी सुश्रूषा आदि सम्मिलित हैं। कृषि तथा पशुपालनपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है और बी. एस. सी. की परीक्षाओं तकके लिए आवश्यक पुस्तकोंकी रचना हो चुकी है, परन्तु अभी तक मृत्तिका रसायन, कृषि जैव रसायन अथवा मृत्तिका जीवाणु विज्ञानपर कोई भी पुस्तक नहीं लिखी गई। हाइस्कूल तथा इंटरके उपयुक्त पुस्तकोंकी सूची बहुत लम्बी है। देहाती पुस्तक भंडार, दिल्लीसे रामेश्वर अशान्तकी १५ पुस्तकें मिलती हैं; परन्तु इनमेंसे

किसीमें भी न तो सन्तोषजनक सामग्रीका समावेश है और न पारिभाषिक शब्दोंका उचित व्यवहार ही। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं कृषि विभाग, उत्तरप्रदेशकी ओरसे समय-समयपर पत्रिकाओं-के रूपमें विभिन्न विषयोंपर पुस्तिकाएँ प्रकाशित होती रहती हैं जो अत्यन्त लोकोपयोगी एवं प्रामाणिक होती हैं। इन प्रकाशनोंमें 'धानकी खेती', 'मूँगफलीकी खेती', 'प्याज और लहसुनकी खेती'; 'भारतमें आम, खादें और उनका प्रयोग', 'आलूकी खेती' आदि प्रमुख हैं। पशुपालन सम्बन्धी साहित्यमें भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषदसे प्रकाशित 'गोसंवर्धन', 'बकरी पालन', 'मौना पालन' तथा 'मछली पालन' उल्लेखनीय हैं। नारायण दुलीचन्द व्यास, विदुरनारायण अग्निहोत्री, जयरामसिंह तथा सन्त बहादुर सिंहने कृषि विषयक अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनमेंसे डा० सन्तबहादुर द्वारा लिखित 'कृषिमें उन्नति' तथा 'गहन खेती' नामक पुस्तक उल्लेखनीय है। डा० सन्त बहादुर उत्तरप्रदेशके कृषि निर्देशक रह चुके हैं। फूलदेवसहाय वर्मा द्वारा लिखित (खाद और उर्वरक) अपने कोटिकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है परन्तु इसे पूर्णरूपसे मौलिक नहीं कह सकते, क्योंकि यह अँग्रेजी पुस्तक (कोलिंग्सकृत) के आधारपर लिखी गई है।

कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी प्रकाशन

नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१. कृषिमें उन्नति	डा. सन्तबहादुर सिंह भानुप्रताप सिंह			१४०	३–७५
२. गहन खेती	,, ,,	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ. प्र., लखनऊ	१९६१	२५०	५–००
३. खाद और उर्वरक	फूलदेव सहाय वर्मा	,, ,,	१९६०	५७२	१०–००
४. देशी खाद	जगपति चतुर्वेदी	छात्र हितकारी पुस्तक-माला, दारागंज–प्रयाग	१९५५	५६	०–५०
५. वैज्ञानिक खाद	,, ,,	,, ,,	१९५५	४८	०–५०
६. फसल रक्षाकी दवाएं	,, ,,	,, ,,	१९५५	४८	०–५०
७. साग सब्जी उगाओ	लाडली मोहन	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	१९५९	१५२	३–००
८. रोक फसलोंकी खेती,	नारायण दुलीचन्द व्यास	सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली	१९५७	१३९	१–५०
९. खेतीके साधन	,, ,,	,, ,,	१९५९	९६	१–२५
१०. टमाटर	बिदुरनारायण अग्निहोत्री,	कृषि साहित्य प्रकाशन, नरंही, लखनऊ	१९६०	५६	१–५०
११. फल संरक्षण विज्ञान	,, ,,	,, ,,	१९६०	१६६	२–००
१२. आम और उससे निर्मित पदार्थ	,, ,,	,, ,,	१९६०	३३	०–५०

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१३.	भारतमें फसलोत्पादन	जयरामसिंह	किताब महल, प्रयाग	१९५७	४६८	८–००
१४.	बाटिका बनाना सीखो	आनन्द प्रकाश जैन	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	१९५५	२२१	३–००
१५.	बीजकी तैयारी	रामेश्वर अशांत	देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली	१९५७	९८	१–५०
१६.	मिट्टीका अध्ययन	जरायमसिंह तथा लावनिया	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस	–	–	–
१७.	मवेशियोंकी घरेलू चिकित्सा	सुरेशप्रसाद शर्मा	मेडिकल पुस्तक भवन, बनारस	१९५६	५५	०–७५
१८.	मवेशियोंके कृमि रोग	जगपति चतुर्वेदी	क्षात्र हितकारी पुस्तक-माला, दारागंज प्रयाग	१९५५	५१	०–५०
१९.	मवेशियोंके छूतके रोग	” ”	” ”	१९५५	४८	०–५०
२०.	हमारे गाय-बैल	” ”	” ”	१९५५	४०	०–५०

(२) **इंजीनियरी तथा यन्त्रकला**—देहाती पुस्तक भंडार, दिल्लीने इंजीनियरी तथा यन्त्रकला सम्बन्धी अनेक लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिन्हें पढ़कर विशिष्ट प्रकारके यन्त्रोंकी मरम्मत एवं उनके निर्माण कर सकते हैं। परन्तु ऐसी पुस्तकें विद्यार्थियोंके लिए सर्वथा बेकार हैं; क्योंकि उनमें वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका स्पष्टतः व्यवहार नहीं होता; न पारिभाषिक शब्दावलीकी दृष्टिसे ही ये पुस्तकें पुष्ट हैं। ऐसी पुस्तकोंकी संख्या ६५ से ऊपर है जिनमें ‘ इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग बुक, ’ ‘ इलेक्ट्रिक गाइड, ’ ‘इलेक्ट्रिक वायरिंग,’ ‘ आइल व गैस इंजन गाइड,’ ‘वायरलेस रेडियो गाइड,’ ‘खराद तथा वर्कशाप ज्ञान,’ ‘मोटरकार, इंस्ट्रक्टर्स,’ ‘घड़ी साजी’ आदि मुख्य हैं। पैसा कमाने एवं अर्द्ध शिक्षितोंको यन्त्रकलाकी ओर उन्मुख करनेमें ये पुस्तकें अवश्य सहायक हैं, परन्तु इनके द्वारा वास्तविक ज्ञानकी वृद्धि नहीं हो सकती। श्री कालाचाँद शील कृत ‘बेतार विज्ञान’ जो शील रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिकल इम्पोरियम, कलकत्तासे प्रकाशित हुई है, एक अद्वितीय कृति है। माथुर इंजीनियरिंग वर्क्स, दिल्लीसे प्रकाशित ए. बी. माथुर कृत ‘ रेडियो गाइड ’ एक उपयोगी पुस्तक है। विज्ञान परिषद, प्रयागने पं. ओंकारनाथ शर्मा कृत ‘रेल इंजन परिचय और संचालन’ नामक पुस्तक प्रकाशित की है जो मौलिक एवं आधिकारिक कृति है। इसके द्वारा प्रशिक्षक एवं रेल इंजन चालक समान रूपसे लाभान्वित होंगे। इसके लेखक अत्यन्त अनुभवी एवं हिन्दीकी वैज्ञानिक शब्दावलीसे पूर्णरूपेण परिचित हैं। इधर हाल ही में (१९६० ई.) ए. आर. सेठ एण्ड कम्पनी, बम्बईने भ. ने. थत्राणी द्वारा लिखित “ गृह निर्माणके सिद्धान्त—भाग १ ” प्रकाशित किया है। इसका मूल्य १५ रु., है और इसमें ५४३ पृष्ठ हैं। लेखक विक्टोरिया जुबिली टेक्निकल इंस्टीटयूट, बम्बईके सहायक प्राध्यापक हैं। अहिन्दी प्रान्तके होनेपर भी उन्होंने इंजीनियरीपर यह पुस्तक लिखकर अद्वितीय प्रयास किया है। यह पुस्तक ५०० चित्रोंसे युक्त है और इसमें ३०० प्रश्न उदाहरण स्वरूप सिद्ध हुए हैं। इंजीनियरीके विद्यार्थियोंके लिए यह

सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। इसमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीका व्यवहार हुआ है। इसी वर्ष इस 'कृतिपर स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किया गया है।

उद्योग मन्दिर–अजमेरसे १९६० में प्रकाशित ओंकारनाथ शर्माकी एक दूसरी पुस्तक 'वैक्युम ब्रेक' (पृष्ठ संख्या, १६०, मूल्य २ रु) भी उल्लेखनीय है।

आजका युग राकेटोंका युग है। राकेटों या विमानोंसे सम्बन्धित शास्त्रपर भी कई पुस्तकें हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमेंसे ब्रह्ममुनि परिब्राजक कृत 'वृहत विमान शास्त्र' (सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्लीसे प्रकाशित, (प्रकाशन तिथि : सन् १९५९, पृष्ठ संख्या ३४३; मूल्य १३ रु.) प्राचीन विमान शास्त्रपर प्रामाणिक कृति है। प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेशसे प्रकाशित श्री चमनलाल गुप्त कृत 'विमान और वैमानिकी' (प्रकाशन तिथि, १९६० ई.; पृष्ठसंख्या ३१९; मूल्य ४ रुपये) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

इंजीनियरीका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उसमें अनेकानेक पुस्तकोंकी आवश्यकता है परन्तु अभी तक इनीगिनी पुस्तकोंके अतिरिक्त प्रामाणिक पुस्तकोंका नितान्त अभाव है। सम्भवतः पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें कठिनाई होनेके कारण पुस्तक-लेखन कार्य मन्दगतिसे हो रहा है, अन्यथा हमारे देशमें इंजीनियरोंकी कमी नहीं।

(३) **औद्योगिक साहित्य**—स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् हमारे देशमें जो औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ, उसके कारण औद्योगिक साहित्यका प्रचुर निर्माण हुआ है। यह साहित्य दो प्रकारका है—एक तो सामान्य स्तरका जो सर्वसाधारणको किसी उद्योगके प्रति आकृष्ट करके उसके विषयमें साधारण ज्ञान प्रस्तुत करता है, दूसरा वह जो प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

औद्योगिक रसायनके क्षेत्रमें प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा द्वारा लिखित 'ईख और चीनी,' 'रबर,' 'प्लास्टिक,' 'पेट्रोलियम' तथा 'कोयला' अत्यन्त प्रामाणिक एवं प्रसिद्ध पुस्तकें है। 'ईख और चीनी' पर उन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। उत्तर प्रदेशके सूचना विभागकी प्रकाशन शाखा द्वारा पिछले तीन वर्षोंमें कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनके बाह्य आवरण, छपाई, कागज तथा चित्र उच्च कोटिके हैं और वे अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी जानेके कारण प्रामाणिक भी हैं। इनके अतिरिक्त औद्योगिक विज्ञानके विविध अंगों–यथा–काँच, उद्योग, पोर्सलीन उद्योग, इस्पात उत्पादन आदिपर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित हीरेन्द्रनाथ बोस कृत "मृत्तिका उद्योग" एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है जो चीनी मिट्टी उद्योगपर वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसके लेखक अपने विषयके पण्डित हैं और उन्होंने इसमें आधनिकतम शोध सामग्रीका समावेश किया है। सन् १९५९ में इस कृतिपर 'स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किया जा चुका है।

औद्योगिक विज्ञानपर पुस्तकें

नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१. पेट्रोलियम	प्रो. फूलदेव सहाय	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	१९५८	२९३	५–५०
२. कोयला	,, ,,	सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश	१९५८	४८५	८–००

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
३.	रबर	प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना	—	—	—
४.	प्लास्टिक	,, ,,	अशोक प्रेस, पटना	—	१५२	४—००
५.	ईख और चीनी	,, ,,	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	—	—	—
६.	काँच विज्ञान	डा. आर. चरन	सू. वि. उत्तर-प्रदेश, लखनऊ	१९६०	३४४	६—००
७.	इस्पातका उत्पादन	दयास्वरूप तथा धर्मेन्द्रकुमार कांकरिया	,, ,,	१९६०	३३१	५—००
८.	काष्ठ परीक्षण	जगन्नाथ पाण्डे	,, ,,		४३१	१०—००
९.	मिट्टीका काम	मनमोहन 'सरल'	आतमाराम एण्ड सन्स, दिल्ली		१२८	२—००
१०.	लकड़ीका काम	लाड़ली मोहन	,, ,,		१०७	१—००
११.	आइना बनाना	एफ. सी. त्रेहन	गुरुकुल कांगडी, हरिद्वार		७६	१—००
१२.	मोमबत्ती बनाना	,, ,,	,, ,,		६४	१—५०
१३.	कारपेंटरी मैनुअल	के. के. सौंधी	देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली		२००	४—५०
१४.	उद्योग और रसायन	गोरखप्रसाद श्रीवास्तव	सू. वि., उ. प्र. लखनऊ		४९५	७—००
१५.	साबुनसाजी	वृजमोहनलाल मुनीम	सीताराम बुकसेलर, अलीगढ़		१२९	२—००
१६.	वीबिंग गाइड	एस. एन. चोपरा	देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली		२२०	४—००
१७.	बुनाई गणित	श्यामनारायण लाल	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी		२१४	२—००

देहाती पुस्तक भंडार, दिल्लीने 'रंगसाजी', 'प्लास्टिक गाइड', 'बूट पालिश', 'इंक मास्टर', 'रबरकी मोहरें', 'हेयर आयल', 'आतिश बाजी', 'हलवाई मास्टर', 'लाण्ड्री टीचिंग' आदि ४० से अधिक सस्ती, पुस्तकें छापी हैं जो अँग्रेजीमें प्रकाशित ऐसी ही पुस्तकोंके आधारपर प्रचारित की गई हैं।

इधर 'कौंसिल आफ साइंटिफिक ऐंण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च', नई दिल्लीने जो भारतीय सरकारकी औद्योगिक एवं विज्ञान सम्बन्धी परिषद है, महत्त्वपूर्ण प्रकाशन करनेकी योजना बनाई है। इन प्रकाशनोंका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक सामग्रीको संक्षिप्त रूपमें हिन्दीके माध्यमसे सर्वसाधारण तक पहुँचाना है। ऐसे प्रकाशनोंमें 'बिनौला-उद्योग', 'चाय-उद्योग' तथा 'कयर-उद्योग' प्रमुख हैं। परिषद हिन्दीमें एक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त भारतकी विभिन्न औद्योगिक रसायन-शालाओंसे समय-समयपर बुलेटिनें प्रकाशित होती रहती हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दीमें औद्योगिक साहित्यका प्रचुर कोष एकत्र हो चुका है।

(४) **ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य**—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटनाने त्रिवेणीसिंह कृत 'ग्रह नक्षत्र' एवं डा. गोरखप्रसाद कृत 'नीहारिकाएँ' प्रकाशित की हैं। उत्तर प्रदेशके प्रकाशन ब्यूरोने सन् १९५६–५७ में और दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। वे हैं—डा. गोरखप्रसाद कृत

'भारतीय ज्योतिषका इतिहास' (पृ. सं. २९०, मूल्य ४ रु.) तथा श्री शिवनाथ झारखंडी कृत 'भारतीय ज्योतिष' (पृ. सं. ७१३; मूल्य ८ रु.)।

इस प्रसंगमें नक्षत्र विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोंका उल्लेख सप्रसंगिक होगा। तारोंके वर्णन, उल्का, पुच्छल तारा, चन्द्रलोककी सैर आदिपर प्रचुर सामान्य साहित्य उपलब्ध है।

यथा:—

नाम	लेखक	प्रकाशक	पृष्ठ	मूल्य
१. आकाश दर्शन	छोटू भाई सुथार	सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली	६९	२—००
२. उल्का और पुच्छलतारा	ब्रजबिहारीलाल गौड़	देश सेवा मंडल, प्रयाग	७८	१—००
३. चन्द्रलोककी यात्रा	रमेशचन्द्र वर्मा	किताब महल, इलाहाबाद	७९	२—५०
४. आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	८८	०—७५
५. अनन्तकी राहमें	पूर्णानन्द मिश्र	रतनगढ़, बीकानेर	५१३	५—००

(५) **इतिहास सम्बन्धी साहित्य**—समय-समयपर विज्ञानकी विविध शाखाओंपर ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। इनमेंसे आयुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र, गणित शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा कृषि शास्त्र पर भारतीय परम्परावादी इतिहासका लेखन हो चुका है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटनासे प्रकाशित डा. सत्यप्रकाश कृत 'वैज्ञानिक विकासकी भारतीय परम्परा' (सन् १९५४; पृ. सं. २६८; मूल्य ८ रु.) प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक प्रवृत्तियोंको बतानेवाली एकमात्र पुस्तक है। इधर उन्होंने 'प्राचीन भारतमें रसायनका विकास' नामक वृहद् ग्रन्थ लिखा है जिसे प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊने (सन् १९६०, पृ.सं. ८४०, मूल्य १४ रु.) प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थमें प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर रसायनशास्त्रका प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया गया है; आचार्य प्रफुल्लचन्द रे द्वारा लिखित 'हिन्दू केमिस्ट्री' से अधिक विस्तृत होनेके साथ ही हिन्दीमें होनेके कारण यह कृति अधिक सम्मानित होगी, इसमें सन्देह नही। उत्तर प्रदेशके प्रकाशन ब्यूरोने भारतीय 'ज्योतिषका इतिहास' नामक ग्रन्थ, जिसके लेखक स्वर्गीय डाक्टर गोरखप्रसाद थे, प्रकाशित किया है। (इसका उल्लेख ज्योतिष ग्रन्थोंके साथ पहले ही हो चुका है)। डा. विभूतिभूषण दत्त तथा डा. अवधेशनारायण द्वारा लिखित 'हिन्दू गणित शास्त्रका इतिहास' (प्रकाशन ब्यूरो; पृ. सं. २३८; मूल्य ३ रु.) गणितके इतिहासपर प्रमाणिक सामग्री प्रस्तुत करती है। आयुर्वेदके इतिहाससे सम्बन्धित कई उपयोगी ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आयुर्वेदिक विज्ञान ग्रन्थ माला, अमृतसरसे प्रकाशित स्वामी हरिशानन्द कृत 'भस्म विज्ञान' (सन् १९५४; पृ.सं. ४१५; मूल्य १० रु.) तथा चौखम्भा संस्कृत सीरीज, बनारससे प्रकाशित 'चरक संहिताका निर्माणकाल', जिसके लेखक रघुबीर शरण शर्मा हैं (सन् १९५९; पृ. सं. ७३; मूल्य २ रु.) महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। सन् १९६० में प्रकाशन ब्यूरो उत्तर प्रदेशने अत्रिदेव विद्यालंकार कृत 'आयुर्वेदका वृहत इतिहास' (पृ. सं. ७०४; मूल्य ११ रु.) प्रकाशित किया है। पिछले वर्ष विज्ञान परिषद, प्रयागने डा. शिवगोपाल मिश्र कृत 'भारतीय कृषिका विकास' नामक पुस्तक (पृ. सं. २४८; मूल्य ५ रु.) प्रकाशित की है जिसमें प्राचीन कालसे आज तक की भारतीय कृषिका वैज्ञानिक इतिहास दिया गया है। यह अपने प्रकारका प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। यह कृति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पिछले वर्ष ५०० रु. से पुरस्कृत भी की जा चुकी है।

(६) **जनोपयोगी अथवा ज्ञानवर्धक साहित्य**—इसके अन्तर्गत हम चिकित्साशास्त्र (विशेषत: आयुर्वेद या वैद्यकशास्त्र) पाकशास्त्र, आहार-विज्ञान तथा अन्य ज्ञानवर्धक साहित्यका उल्लेख कर सकते हैं।

भारतमें आयुर्वेदकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु वर्तमान युगमें चिकित्सा शास्त्रकी अँग्रेजी पद्धतिके साथ ही लेखकोंका ध्यान आयुर्वेदकी विभिन्न प्रणालियोंकी ओर गया है, जिसके परिणाम-स्वरूप प्रचुर साहित्यका निर्माण हुआ है। यदि हम यह कहें कि अन्य विषयोंकी तुलनामें आयुर्वेदके विविध अंगोंपर अधिक पुस्तकें उपलब्ध है तो अतिशयोक्ति न होगी। इनमेंसे कुछ संस्कृतमें उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थोंके अनुवाद मात्र हैं तो कुछ अनुभूतियोंके आधारपर नवीन कृतियाँ। यही नहीं, आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रकी विभिन्न शाखाओंपर अब नई-नई पुस्तकें लिखी जा रही है जिससे अँग्रेजी न जाननेवाला भी उनसे लाभान्वित हो सकता है। चिकित्सा शास्त्रसे ही हमारे आहारका सम्बन्ध है। आहार विज्ञानसे सम्बन्धित भी कई पुस्तकें हैं। यही नहीं, अच्छा भोजन किस प्रकार पकाया जाय—(पाकविज्ञान)—इस विषयपर भी कई पुस्तकें हैं जिनसे हमारे देशका नारीवर्ग लाभान्वित हो सकता है। आयुर्वेद विज्ञानको दृढ़ आधार-भूमिपर खड़ा करनेमें 'स्वामी हरिशरणानन्द' की कृतियोंने बड़ा योग दिया है। उन्होंने आयुर्वेदको आधुनिक विज्ञानपर आधारित करके अनेक नई पुस्तकें लिखी हैं। उनके द्वारा लिखित व्याधिमूल विज्ञान (पूर्वार्द्ध) (प्रकाशन तिथि : १९६०; पृ. सं. ४००, मूल्य १२ रु.) जो आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला कार्यालय, दिल्ली व अमृतसरसे प्रकाशित हुई है—वास्तवमें आधुनिक जैव रसायन सम्बन्धी पुस्तक है। पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश सरकारने इसपर ६०० रु. का पुरस्कार दिया है। स्वामीजीने आयुर्वेदके साथ आधुनिक विज्ञान (रसायन शास्त्र) पर भी अधिकार प्राप्त कर रखा है। उनकी इस पुस्तककी विशेष कठिनाई यही है कि उन्होंने भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीको न प्रयुक्त करके डा. रघुबीरकी शब्दावलीको ग्रहण किया है जिसके कारण प्रथम दृष्टिपर उनकी कृतिके समझनेमें कठिनाई पड़ती है। आयुर्वेद सम्बन्धी नवीन प्रकाशित ग्रन्थोंकी विशेषता है उनके बृहदाकार एवं अधिक मूल्य जिसके कारण वे पुस्तकालय तक ही अपना प्रवेश पा सकेंगे।

चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ-सूची

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१.	चरक संहिता ६ भाग	श्री गुलाबकुँवर	बा आयुर्वेदिक सोसायटी, जामनगर	१९४९		७५–०० (प्रत्येककी)
२.	पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान	डा. रामसुशीलसिंह	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१९५९	९१२	२५–००
३.	माडर्न मेडिकल ट्रीटमेण्ट	डा. एम. एल. गुजराल	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१९५६	६२२	२०–००
४.	सुश्रुत संहिता	अत्रिदेव गुप्त	,, ,,	१९५०	७८६	२०–००
५.	अष्टांग-संग्रह	अनु० ,, ,,	निर्णयसागर मुद्रणालय, बम्बई–२	१९५१	४०८	११–००

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
६.	रसरत्न-समुच्चय	अम्बिकादत्त शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	१९५१	५४६	१०–००
७.	चक्रदत्तः	जगदीशप्रसाद त्रिपाठी	,, ,,	१९४९	३५२	१०–००
८.	कषाय कल्पना विज्ञान	अवध बिहारी अग्निहोत्री	,, ,,	१९५७	९४	१–५०
९.	भारत भैषज्य रत्नाकर	नगीनदास छगनलाल शाह	ऊंझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, अहमदाबाद	१९४८	५७९	५–००
१०.	अभिनव विकृति-विज्ञान	डा. रघुबीर त्रिवेदी	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	१९५७	११११	२५–००
११.	रसरत्न समुच्चय	शंकरलाल हरिशंकर	खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई	२००९	९२८	
१२.	त्रिदोष मीमांसा	स्वामी हरिशरणानन्द	आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ माला, अमृतसर	१९४८	१७१	२–५०
१३.	शल्यप्रदीपिका	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	कमच्छा, वाराणसी	१९५८	७५२	१२–५०
१४.	चिकित्सा प्रगति	भानुशंकर मेहता	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९५८	१०३	२–००
१५.	सामान्य शल्य विज्ञान	शिवदयाल गुप्त	मेडिकल पुस्तक भवन बनारस	१९५७	८५०	१२–००
१६.	क्षयरोग	ओमप्रकाश मित्तल लक्ष्मीनारायण टंडन	प्रेमी प्रकाशन, लखनऊ	१९५७	१२५	१–७५
१७.	रोगोंकी घरेलू चिकित्सा	राजेन्द्रप्रताप	आरोग्य निकेतन प्रकाशन, मेरठ	१९५९	१४०	२–७५
१८.	रोगी सुश्रूषा	महेन्द्रनाथ पाण्डेय	छात्र हितकारी पुस्तक-माला, प्रयाग	१९५३	२७२	२–५०
१९.	कंपाउन्डरी (शिक्षा, तथा चिकित्सा प्रवेश)	आर. सी. भट्टाचार्य	स्वास्थ्य प्रकाशन गृह, वाराणसी	१९६०	२५३	८–००
२०.	सूचीवेध विज्ञान	रमेशचन्द्र वर्मा	मोतीलाल बनारसी दास, बनारस	१९५८	४६०	७–५०
२१.	आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध इन्जेक्शन्स	प्रकाशचन्द्र जैन	वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन	१९५९	१६८	५–००
२२.	सचित्र इंजेक्शन्स	शिवनाथ खन्ना	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	१९५९	७९९	१०–००
२३.	कहीं हवा न लग जाय	शरत कुमार चौधरी	आपका स्वास्थ्य-प्रकाशन, वाराणसी	१९६०	८८	१–५०

शरीर विज्ञान, आहार विज्ञान तथा पाक विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
१.	हमारा शरीर	चतुरसेन शास्त्री	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	१९५६	३२	०–७५
२.	आपका शरीर	आनन्दकुमार	हिन्द पाकेट बुक्स-प्राइवेट लि. शहादरा, दिल्ली	१९५९	१५१	१–००
३.	मनुष्य, शरीर और स्वास्थ्य	रानी टंडन	कुमार प्रकाशन समिति १३ बैंक रोड, इलाहाबाद	१९५६	३४३	४–००
४.	शरीर निर्माण	हेमेन गार्गरी	सुन्दरबाग, लखनऊ	१९५८	९८	४–५०
५.	शरीरका यंत्र	मुनीश सक्सेना	राजकमल प्रकाशन	१९५९	११२	२–००
६.	भोजन, क्या, क्यों, कैसे ?	सुरेन्द्रनाथ	अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ		२४२	४–००
७.	मनपसंद भोजन	शकुन्तलादेवी	राजकमल प्रकाशन,प्रयाग	१९६०	१९६	३–२५
८.	आहार संयम, और स्वास्थ्य	भगवतीप्रसाद	रामनारायण लाल, प्रयाग	१९५०	३४३	३–००
९.	भारतीय भोजन विज्ञान	सावित्रीदेवी वर्मा	राजकमल प्रकाशन, प्रयाग	१९५६	४०२	७–००
१०.	व्यंजन बीथिका	कुसुम कटारा	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	१९६०	१८४	१–००
११.	संतति निरोध तथा गर्भ विज्ञान	पंडित हरीश	नूतन प्रकाशन, वाराणसी	१९५८	१५५	२–५०

अन्य उपयोगी वैज्ञानिक साहित्यसे हमारा तात्पर्य सामान्य विज्ञानपर लिखी गई उन पुस्तकोंसे है जो विविध आविष्कारों या वैज्ञानिक चमत्कारों अथवा दैनिक जीवनमें विज्ञानके उपयोगसे सम्बन्धित है।

अन्य उपयोगी वैज्ञानिक साहित्यसे हमारा तात्पर्य सामान्य विज्ञानपर लिखी गई उन पुस्तकोंसे है जो विविध आविष्कारों या वैज्ञानिक चमत्कारों अथवा दैनिक जीवनमें विज्ञानके उपयोगसे सम्बन्धित हैं। जनसाधारणको पृथ्वी एवं मनुष्यके सम्बन्धमें अथवा पशु पक्षियोंकी उत्पत्ति एवं उनकी विविधता बतानेके लिए लिखी गई छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तकें भी इसी वर्गमें रखी जा सकती हैं। ऐसी पुस्तकोंमेंसे अधिकांश या तो किसी अँग्रेजी या विदेशी पुस्तककी छायामात्र हैं अथवा कुछ मौलिक भी। उनकी चित्रमयता, सरल एवं रोचक शैली उन्हें आकर्षक बना देती है। कुछ ऐसी पुस्तकें अत्यन्त भ्रामक भी हैं क्योंकि या तो वे किसी वैसी ही पूर्वलिखित पुस्तकोंके अनुकरणके पश्चात् लिखी गई हैं या लेखक उस विषयका पारंगत नहीं है। उदाहरण स्वरूप जगपति चतुर्वेदीकी अनेक ऐसी पुस्तकें अधकचरे ज्ञानकी द्योतक है। जब कोई एक लेखक विविध विषयोंपर एक साथ लेखनी चलाता है तो इस प्रकारकी त्रुटियोंका होना स्वाभाविक है।

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
१.	विज्ञानके चमत्कार	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	ज्ञान मण्डल लि. काशी	—	१९६	१—००
२.	सामान्य विज्ञान	बी. एन. कार इत्यादि	प्राविंशियल बुक डिपो, प्रयाग	१९५३	४५५	४—००
३.	दैनिक जीवनमें विज्ञान	हरि भगवान	अशोक प्रकाशन, लखनऊ	१९५६	२०६	—
४.	विश्व विज्ञान	स्वामी हरिशरणानन्द	आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ-माला, अमृतसर	१९५८	२१५	३—००
५.	नवीनतम आविष्कार	डा. कृष्णबहादुर	रामनारायणलाल इलाहाबाद	१९६०	१२५	१—००
६.	ज्ञान भारती	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	१९५९	७२	३—००
७.	सृष्टिका इतिहास	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, प्रयाग	१९५८	१७१	४—००
८.	मनुष्यका बचपन	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली	१९६०	४७	१—००
९.	मनुष्य जन्मा	,, ,,	,, ,,	१९५७	४३	१—००
१०.	पक्षियोंकी दुनिया	सुरेशसिंह	,, ,,	१९५९		१—५०
११.	पृथ्वी बनी	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	,, ,,		४०	१—००
१२.	छह मील समुद्रके नीचे	शैलेन्द्रदास	भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद, लखनऊ	१९५९	१०३	१—५०
१३.	भूगर्भ विज्ञान	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल, प्रयाग	१९५२	२४०	२—००

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्लीसे सुलभ विज्ञान मालाके अन्तर्गत बच्चोंके लिए डा. सत्यप्रकाशके सम्पादकत्वमें तीन पुस्तकें निकल चुकी हैं—'प्रकाशकी बातें,' 'ध्वनिकी लहरें' तथा 'ऊष्मा अथवा गरमी।' आगे और पुस्तकें लिखी जा रही है। यहींसे छोटा भाई सुथारकी पुस्तक 'धरती और आकाश' अनूदित होकर छपी है।

पारिभाषिक कोष एवं विश्वकोष

पाँच विभिन्न केन्द्रोंसे पारिभाषिक शब्दोंके कोशोंपर कार्य हुआ है :—

(१) भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयागने डा. सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित "अँग्रेजी हिन्दी कोश" (पृ. सं. २५६; मूल्य १२ रु.; प्रकाशन तिथि १९४८ ई.) प्रकाशित किया है। यह सभी वैज्ञानिक विषयोंका संकलित कोश है। इसमेंसे अनेक शब्द, अब उस रूपमें स्वीकृत नहीं हैं।

(२) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागने "जीव रसायन कोश" (डा. ब्रजकिशोर मालवीय द्वारा संकलित) तथा "भूतत्त्व विज्ञान कोश" (एस. पी. सेनगुप्त द्वारा संकलित) प्रकाशित किया है।

(३) नागपुरकी इण्डियन एकेडमी आफ इण्डियन कल्चरसे "एलीमेण्टरी इंगलिश इण्डियन डिक्शनरी : साइंटिफिक टर्मस" (सन् १९४९, पृ. २०७; मूल्य ५ रु., तथा नागपुरसे ही डा. रघुबीर कृत "इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी," प्रमुख हैं। इस कोशने बड़ी ख्याति अर्जित की है। इसमें संस्कृतके आधारपर शब्दावलीका चयन हुआ है।

(४) शिक्षा मंत्रालयके अन्तर्गत विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर शब्दावलियोंके निर्माण-कार्यका उल्लेख प्रारम्भमें ही किया जा चुका है।

(५) व्यक्तिगत प्रयासोंके फलस्वरूप भी कुछ पारिभाषिक कोश बने हैं। इनमें प्रमुख हैं डा. ब्रजमोहन कृत "गणितीय कोश" (जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, बनारस, पृष्ठ सं. ६८९, मूल्य ९ रु.) तथा माहेश्वरसिंह कृत "जन्तु विज्ञान शब्द कोश" (आगरा बुक स्टोरसे प्रकाशित)।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके तत्वावधानमें 'हिन्दी विश्वकोश' का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ है जिसका प्रथम खण्ड (सन् १९६०, पृ. सं. ५०४), प्रकाशित हो चुका है। इसमें अ, आ तथा इ इन तीन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाले विविध शीर्षकोंपर सचित्र विवरण हैं। इस विश्लेषणमें विशेष महत्त्व की बात है। प्रथम बार रासायनिक संकेतों, सूत्रों एवं समीकरणोंका हिन्दीकरण। इसको लेकर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. कोठारीने कटु आलोचना भी की है। जामिया मिलिया, दिल्लीने सरकारकी सहायतासे 'ज्ञान सरोवर' नामक बृहत् ग्रन्थ वैज्ञानिक विषयोंपर छापा है जो सचित्र है। यह प्रथम खण्डके रूपमें है। इसमें केवल ३०४ पृष्ठ हैं और मूल्य २ रु. है। लखनऊसे "विश्वभारती" खण्ड-खण्ड करके प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि इसके ५० खण्ड छपने थे, परन्तु आर्थिक कठिनाइयोंके कारण काम रुक गया। इस विश्वकोशमें वैज्ञानिक विषयोंका सरल सचित्र लोकप्रिय विवेचन है।

वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दीमें विशुद्ध विज्ञानसे सम्बन्धित पत्रिकाओंकी संख्या अत्यल्प है क्योंकि विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं एवं दैनिक पत्रोंमें विभिन्न स्तम्भों अथवा स्वतन्त्र लेखोंके रूपमें वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशमें आता रहता है। विज्ञान जगतमें हिन्दीके माध्यमसे वैज्ञानिक विषयोंपर अनवरत रूपसे सामग्री प्रस्तुत करते रहनेका श्रेय विज्ञान परिषद, प्रयाग द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'विज्ञान' को है। यह पत्रिका सन् १९१४ से प्रकाशित होती रही है। यद्यपि आर्थिक कठिनाइयोंके कारण बीचमें इसके स्तरमें कुछ कमी हुई थी परन्तु आजकल यह उच्चस्तरकी मौलिक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें विज्ञानकी सभी शाखाओंपर लेख, विज्ञानवार्ता, सार संकलन तथा सम्पादकीय होते हैं।

कृषि शास्त्रपर कई पत्रिकाएँ केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। इनमेंसे भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, दिल्ली द्वारा "धरतीके लाल" तथा "खेती" एवं सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'कृषि तथा पशुपालन', 'कृषि समाचार', एवं 'पंचायत राज्य' नामक मासिक पत्रिकाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये न केवल विभिन्न ब्लाकोंके कर्मचारियों, कृषकों एवं अधिकारियोंके लिए उपयोगी हैं, वरन् विद्यार्थियोंके लिए भी समान रूपसे लाभदायक हैं। भारतीय विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्लीकी ओरसे सन् १९५१ से 'विज्ञान प्रगति' नामकी मासिक पत्रिका निकलती है

जिसमें औद्योगिक विषयोंपर अधिकाधिक लेख, विज्ञान वार्ता, पुस्तक समालोचन एवं पेटेन्टोंकी सूचना रहती है।

बच्चोंके लिए सचित्र उपयोगी मासिक पत्रिका "विज्ञान लोक" का प्रकाशन सन् १९५९ ई. से श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरासे प्रारम्भ हुआ है। इसके प्रत्येक अंकका मूल्य ७५ नये पैसे है।

आयुर्वेदके क्षेत्रमें स्वामी हरिशरणानन्द द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इण्डियन मेडिकल एशोशिएसन, बनारस से स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिका "आपका स्वास्थ्य" का प्रकाशन सन् १९५३ से हो रहा है।

अभीतक विज्ञानके क्षेत्रमें हिन्दीमें कोई अनुसन्धान पत्रिका नहीं प्रकाशित होती थी। परन्तु विज्ञान परिषद, प्रयागने सन् १९५६से "विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका" नामक शोध पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया है। इसके सम्पादकोंमें डा. सत्यप्रकाश तथा डा. शिवगोपाल मिश्र हैं। यह शोध पत्रिका त्रैमासिक है। इसका वार्षिक मूल्य ८ रु. है। इसमें रसायन, भौतिकी, गणित, जीव विज्ञान तथा कृषि-विज्ञानपर मौलिक, शोध निबन्ध हिन्दीमें प्रकाशित होते हैं। साथमें निबन्धोंके सारांश अँग्रेजीमें भी छपते है। यह पत्रिका विदेशोंमें जाती है जिसके परिवर्तनमें १७५ से अधिक शोध पत्रिकाएँ प्राप्त होती हैं। भारतीय भाषाओंमें शोध निबन्ध प्रकाशित करनेवाली यह प्रथम पत्रिका है। इसके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। विश्वविद्यालयोंमें होने वाले अनुसन्धानोंकी प्रगति बतानेवाली यह पत्रिका आगे चलकर द्वैमासिक हो जाएगी।

इंजीनियरी सम्बन्धी एक दूसरी शोध पत्रिका श्री ब्रजमोहनलालजीके सम्पादकत्वमें दिल्लीसे प्रकाशित होती है। इसका नाम है "इन्स्टीटयूट आफ इंजीनियर्स जर्नल" यह पुस्तिका रूपमें सोलह पृष्ठों तक प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसमें पारिभाषिक शब्दावली भी प्रकाशित होती रहती है।

इस प्रकार देखते है कि हिन्दीमें विज्ञानकी विविध शाखाओंपर क्रमसे साहित्य रचना हो रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके हित साधनाके लिए आवश्यक है कि सभी वर्गके लेखक इसमें साहित्यकी रचना करें। और इसके रिक्त भण्डारको शीघ्र ही पूरा कर दें जिससे आगे आनेवाली पीढ़ी अपने देशमें अपनी ही भाषाके माध्यमसे विज्ञानका अध्ययन-अध्यापन कर सके।

चौथा खण्ड

देवनागरी वर्णमाला

श्री घनश्यामसिंह गुप्त

जिस वर्णमालाका मै जि़कर कर रहा हूँ, वास्तवमें उसे "ब्राह्मी" वर्णमाला कहना चाहिए। केवल सुभीतेके लिए देवनागरी संज्ञा दी जा रही है।

भाषा और बोली

भाषा और बोलीमें भेद है। संसारमें बोलियाँ सहस्त्रों है। हमारी भारत भूमिमें ही लगभग २०० से अधिक बोलियाँ है, परन्तु संविधान द्वारा स्वीकृत भाषा केवल १४ है। देशकाल और परिस्थितिके अनुसार बोलियाँ बनती है। उन्हें कोई विद्वतमण्डली नहीं बनाती। 'चार कोसमें बदलै पानी, आठ कोसमें बानी'—इस कहावतमें बहुत कुछ तथ्य है कि बोली हर आठ कोसमें बदलती है। परन्तु यह बात भाषाकी नही। समान बोलियोंके आधारपर भाषा कुछ हद्द तक विद्वानों द्वारा सुसंस्कृत की जाती है। विद्वान लोग भाषाका व्याकरण बनाते है और उसके द्वारा भाषाका एक प्रकारका संस्कार होता है। भाषा व्याकरणकी शृखलामें बाँधी जाती है, ऐसा कहना अनुचित न होगा।

यह बात प्रत्येक देशके लिए लागू है। उदाहरणके लिए अँग्रेजी भाषाको ही लीजिए। ग्रेटब्रिटेनमें ही कई बोलियाँ है जिनका समझना हमारे भारतके अच्छे-अच्छे अँग्रेजी जाननेवालोंको भी कठिन है। परन्तु भाषा जो कि "किंग्स इंगलिश" (Kings English) राज्य भाषाके नामसे ज्ञात है, एक ही है और उसका व्याकरण भी है।

भाषा और लिपि

प्रत्येक भाषाकी लिपि होती है जिसके द्वारा वह लिखी जाती है और यह लिखा हुआ विचार दूरस्थ व्यक्तियों तक भी पहुँचाया जाता है। बोलकर अपना विचार तो केवल सुननेवालों तक ही पहुँचाया जा सकता है, परन्तु लिखित विचार संसारके एक कोनेसे दूसरे कोने तक जा सकता है।

लिपि और अक्षर

हरेक लिपिके अक्षर होते हैं "उच्चरित अक्षर" और उसीका लिखित स्वरूप। किसी उच्चरित शब्दके मौलिक टुकड़ेके रेखा द्वारा लिखित रूपको "लिखित अक्षर" कह सकते हैं; जिस प्रकार कि किसी उच्चरित वाक्यका टुकड़ा "शब्द" कहाता है। ये "लिखित अक्षर" भिन्न-भिन्न भाषाओंके भिन्न-भिन्न रूपके और भिन्न-भिन्न उच्चारणके होते हैं।

अक्षर और वर्णमाला

लिखित अक्षरोंकी क्रम बद्ध योजनाको वर्णमाला, वर्णोंकी माला कहते है।

केवल बोलनेमें वर्णमालाकी श्रृंखलासे प्रयोजन नहीं। परन्तु लिखनेमें वर्णमालाका बहुत मुख्य स्थान है। अक्षरोंको किस क्रमसे रखना चाहिए इसका बहुत बड़ा महत्त्व है।

अक्षरोंके निर्माण और उनके वर्गीकरणमें ही किसी भाषाके प्रवर्तकोंकी बुद्धिमता तथा वैज्ञानिकता परिलक्षित होती है। इसमें हमारे ऋषि-मुनियोंको कोई नहीं पा सकता, जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टिसे मानव-कल्याणके लिए अक्षरोंका निर्माण किया और उनको अनुपम श्रृंखलामें बाँधकर उनकी वर्णमाला बनाई।

इसीकी विशेषता बताना इस छोटेसे लेखका मुख्य उद्देश्य है और ऊपर जो कहा गया है, वह प्रस्तावना स्वरूप ही है।

ध्वनि और भाषा किंवा बोली

वायुके उस स्पन्दनको जिससे हमारा कर्ण स्पंदित होता है यदि हम ध्वनि कहे तो मनुष्यका कान प्रत्येक ध्वनिको सुनता है। परन्तु प्रत्येक ध्वनि भाषा या बोली या शब्द नहीं होती।

यदि हम किसी काँसेके पात्रको लोहेकी शलाकासे ठोंके तो उससे ध्वनि तो निकलती है, जिसे हम सुन सकते है, परन्तु उससे कोई शब्द नहीं निकलता। शब्द, भाषा या बोली तो केवल हमारे मुखसे ही निकल सकती है। हमारे मुखसे ऐसी ध्वनि भी निकल सकती है जिसे हम शब्द, भाषा या बोली नहीं कह सकते। परन्तु यह एक अलग बात है। शब्द, भाषा या बोली केवल मनुष्यके मुखसे ही निकलती है यह स्पष्ट है।

मनुष्यके मुखकी रचना जहाँसे शब्द निकलता है

परमात्माने हमे आँख, नाक, कान और मुख दिया है और हम नित्य उस परमपितासे प्रार्थना करते हैं—

पश्येम शरदः शतम्
जीवेम शरदः शतम्
श्रृणुयाम शरदः शतम्
प्रब्रवाम शरदः शतम् इत्यादि।

इस लेखका प्रयोजन 'प्रब्रुवाम' से है। मनुष्य-शरीरमें बोलनेका जो यन्त्र है, उसका विश्लेषण करके ही हमारे ऋषियोंने अक्षर और वर्णमालाका निर्माण किया है। यह बात और कहीं नहीं पाई जाती। अक्षरोच्चारण का स्थान कण्ठसे लेकर ओष्ठ पर्यन्त है और इसीके अनुसार अक्षरोंका निर्माण और विभाजन करके श्रृंखला बद्ध किया गया है। वर्णमालामें स्वर और व्यंजनका भी भेद करना उचित था। मनुष्य-के मुख रूपी वाद यन्त्र (मशीन) के विविध स्थानोंके अनुसार ही वैज्ञानिक रूपसे वर्णमालाका निर्माण हमारे ऋषियों द्वारा किया गया है, जिसका दिग्दर्शन पाणनि मुनिने अपने—

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः

इचुयशानां तालुः

आदि सूत्रों द्वारा किया है।

हमारी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है

हमारी वर्णमाला अत्यन्त वैज्ञानिक और संसार भरमे अद्वितीय है। उसकी तुलनामे संसारकी कोई भी वर्णमाला नहीं है। अन्य प्रचलित वर्णमालाओंको देखिए तो बात स्पप्ट हो जाएगी। ए, वी, सी, डी. आदि कितनी बेतुकी हैं। स्वर और व्यंजन एक साथ और फिर मुखके स्थानका कोई क्रम नहीं। 'बी' का स्थान ओष्ठ है तो 'सी' का स्थान यदि क वाचक है तो कण्ठ है यदि 'स' वाचक है तो दन्त है और 'डी' तो मूर्धा है। यही हाल अरबी वर्णमालाका भी है। कई अक्षरोंके लिए उनकी वर्णमालामें अक्षर ही नहीं है, जैसे 'ण'। कई अक्षरोंके अनेक उच्चारण होते हैं, जैसे--बी यू टी = बट (But) और पी यू टी = पुट (Put) में यू (u) का। इसीलिए संसारके कई विचारकोंकी यह राय हुई कि इसका ठीकसे संस्कार किया जाय।

वर्णमाला और लिपि

हमारी वर्णमाला ही मुख्य चीज है, उसमें मूलभूत परिवर्तन न हुआ है और न होगा। लिपिमें भेद हो सकता है और पहिले भी थोड़ा बहुत होता रहा है।

हमारे भारत देशकी विभिन्न भाषाओंमें लिपिका भेद तो है, परन्तु वर्णमाला भेद (उर्दूको छोड़कर) किसी भी भाषामें प्रायः कुछ भी नहीं है। एक-दो में कवर्ग, चवर्ग आदिमें कुछ बीचके अक्षर छूटे हुए हैं, यह ठीक है, परन्तु वर्णमाला-क्रम वही है।

हमारी वर्णमालाकी व्यापकता

यह वर्णमाला संसारमें सर्वोत्कृष्ट होनेके अतिरिक्त इसकी व्यापकता भी संसारके सभी दूसरी वर्णमालाओंसे अत्यधिक है। इसके जाननेवालोंकी जनसंख्याके मानसे भी इसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

इस वर्णमालाका साम्राज्य केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, अन्य कई देशोंमें भी इसका विस्तार है। ब्रह्मदेश, श्रीलंका, तिब्बत आदि अनेक देशोंमें इसका साम्राज्य है। इसके अतिरिक्त जहाँ

जहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार है, वहाँ भी सभी धार्मिक ग्रन्थ—चाहे वे पालीमें हों या संस्कृतमें—वर्णमाला यही "भारती" वर्णमाला अर्थात् "ब्राह्मी" वर्णमाला ही है। अरेबिक, रोमन आदि अनेक वर्णमालाएँ हैं, जिनकी व्यापकता "ब्राह्मी" वर्णमालाकी तुलनामें बहुत ही कम है।

वर्तमान युगमें संसारके देशोंका संसर्ग इतना अधिक और सुलभ हो गया है कि वह दिन भी आ सकता है जब संसारकी सभी भाषाओंके लिए एक लिपि न भी हो तो भी संसारकी सभी लिपियोंके लिए एक वर्णमालाका होना सम्भाव्य है। यह क्षमता "ब्राह्मी" वर्णमालामें ही है कि संसारकी सभी लिपियाँ उस वर्णमालामें ही पिरोयी जा सकती हैं।

परन्तु वह इस बातपर बहुत दूर तक अवलम्बित होगा कि उसके अनुयायियोंमें उसके प्रचारके लिए कितनी भक्ति, कितना उत्साह और कितनी योग्यता है।

अयोग्य और निरुत्साही संचालकोंके हाथमें अच्छे मामलेकी हार हो जाती है और योग्य और उत्साही संचालकोंके हाथमें कमजोर मामलेकी भी जीत हो जाती है।

नागरी लिपि

प्रो. रामेश्वर दयाल दुबे

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाजमे रहकर उसे अपने नित्यके कार्य करने पड़ते है और उसके लिए उसे अन्य व्यक्तियोंके साथ विचार-विनिमय करना होता है। विचार-विनिमयके माध्यम अनेक है, जिनमें भाषा सबसे प्रमुख और सबसे सरल माध्यम है। विभिन्न संकेतों द्वारा भी, जैसे सिर हिलाना, आँखें फाड़कर देखना, मुठ्ठी बाँधकर दिखाना, भाव प्रकट किए जाते है और दूसरे लोग उन्हें समझ भी लेते है। हाथ दबाने का एक अर्थ है, हल्दी बाँटनेका दूसरा और ताली बजानेका तीसरा। प्रतीकों द्वारा सन्देश भेजनेकी प्रथा तो अति प्राचीन कालसे विभिन्न देशोंमें प्रचलित है। कहते है एक बार एक राजा अपने पड़ोसी राज्यपर आक्रमण करना चाहता था। उसने सरसोंके दस बोरे उस पड़ोसी राजाके यहाँ भेजे। पहले तो वह यह समझ ही न सका कि बोरे क्यो भेजे गए है ? फिर बुद्धिमान मन्त्रीकी सलाहसे उसने उस मौन सन्देशके उत्तर स्वरूप दस तीतर भेज दिए। तीतरोंको देखकर राजाने आक्रमण करनेका विचार छोड़ दिया।

यहाँ सरसोंके दस बोरेका अर्थ था—"मेरे पास अनन्त सेना है।" दस तीतरका अर्थ था—"भले ही तुम्हारे पास अनन्त सरसों (सेना) हो, मेरे पास भी तीतर (उस सेनाको समाप्त करनेवाले बहादुर) है।"

प्रतीकों द्वारा सन्देश भेजने या संकेतों द्वारा अपने मनोभाव प्रकट करनेकी प्रथा प्राचीन कालमें थी और आज भी विद्यमान है। फिर भी यह कहना ही होगा कि भाव और विचार प्रकट करनेका सबसे सरल साधन भाषा है।

मनुष्यने लिखना कैसे सीखा, लिपिका जन्म कब और कैसे हुआ—इसकी कहानी कुछ कम मनोरंजक नहीं है। यह तो निश्चित ही है कि लिपिका जन्म भाषाके जन्मके बहुत समय बाद हुआ होगा। निश्चित प्रयत्नोंके फलस्वरूप मनुष्यके मुखसे निकली हुई सार्थक ध्वनि-समिष्ट-भाषासे बहुत दिनों तक काम चलता रहा होगा। आगे चलकर ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई होगी कि कोई ऐसा माध्यम मिले, जिसके द्वारा

मनुष्यके मुखसे निकली हुई वाणी स्थान और कालगत दूरीको पार कर सके। ध्वनिका क्षेत्र सीमित ही हो सकता है। आधुनिक युगमें, और वह भी अभी-अभी, वैज्ञानिक अन्वेषकोंने लाउडस्पीकरका आविष्कार कर ध्वनिको कुछ अधिक दूर तक पहुँचानेका प्रयत्न किया है। ईथरकी लहरोंका सहारा लेकर रेडियो अवश्य काफी दूर-दूरसे ध्वनि खींच लाता है। इस प्रकार ध्वनिकी दृष्टिसे स्थानकी दूरी सिमट रही है, किन्तु कालगत दूरीकी समस्या अब भी बनी ही हुई है।

प्राचीन कालमें इस स्थानगत और कालगत दूरीको हल करनेके लिए—दूरस्थ व्यक्ति तक अपनी बात पहुँचानेके लिए, तथा अगली पीढ़ियोंके लिए अपने अनुभव, अपनी ज्ञान-राशिको स्थिर करनेके लिए एक माध्यमकी खोज शुरू हुई होगी। इस दिशामें जो प्रयत्न हुए, जो सफलता मिली, उसीसे लिपिके जन्म और विकासकी कहानी प्रारम्भ होती है। आज भी हम वाल्मीकिकी बात सुन सकते हैं, तुलसीकी राम-कथा-का रसास्वाद ले सकते हैं, शेक्सपियरके नाटकोंसे परिचित हो सकते हैं—यह सब लिपिका ही प्रसाद है।

लिपिकी उत्पत्तिके विषयमें सबका मत एक-सा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि लिपि भी भगवान-की ही कृति है। यह मान्यता केवल भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी पाई जाती है, किन्तु मानना होगा कि इस मतमें सार नहीं है। तथ्य यह है कि मनुष्यने अपनी आवश्यकतानुसार लिपिको स्वय जन्म दिया है।

लिपिके जन्मकी खोज करते-करते हम वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ मनुष्य या तो जादू टोनेके लिए अथवा धार्मिक भावनासे किसी देवताका प्रतीक बनानेके लिए, अथवा स्मरण रखनेके लिए कुछ चिन्होंका प्रयोग किया करता था। आज भी अपढ़ धोबी भिन्न-भिन्न घरोंके कपड़ोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारके चिन्ह बना देते हैं, ताकि उन्हें आसानीसे खोजा जा सके।

चित्र-लिपि—लिखनेकी कलाका, लिपिका आद्यरूप चित्र-लिपि ही है। इसके द्वारा किसी वस्तुका बोध करानेके लिए उसका चित्र बनाया जाता है। चित्र-लिपिका अपना महत्त्व है। उसके द्वारा अर्थ-बोध
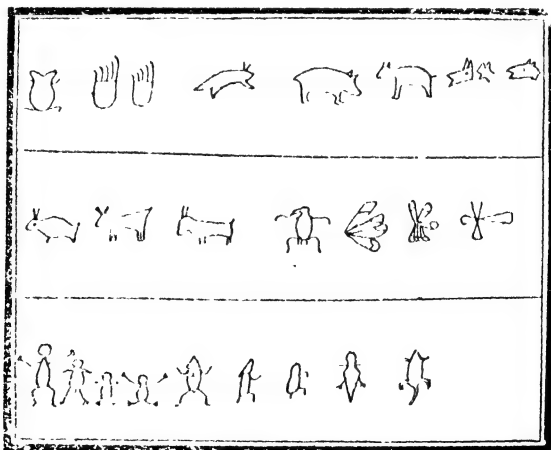
आदि मानवकी गुफाओंकी चित्र-लिपि

तो होता है, किन्तु ध्वनि-बोध नहीं होता। किसी भी देशके समाचार पत्रोंमें छपे कार्टून चित्रके अर्थको, उस देशकी भाषा न जाननेपर भी, सहज ही समझा जा सकता है। इसीलिए चित्र-लिपिको अन्तर्राष्ट्रीय लिपि कह सकते हैं।

हमें यहाँ चित्र और चित्र-लिपिके अन्तरको समझ लेना चाहिए। जब हम किसी वस्तुका चित्र खींचते है, तब हमारा उद्देश्य उसको अंकित करनेका होता है। किन्तु चित्र-लिपिका उद्देश्य केवल विचारोंको प्रकट करना मात्र होता है। आदि मानव की गुफाओंमें जो चित्र लिपि-मिलती है, वह चित्र और लिपि दोनोंका ही आद्यतन रूप है। चित्रकला और लिपिकला—दोनोंने इन्ही चिन्होंसे जन्म पाया और फिर विकसित होते-होते आजके रूप तक पहुँची हैं।

चित्र लिपिका प्रयोग प्रायः प्रत्येक देशमें पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आदि युगमें इसका काफी प्रचार था। एक प्रकारसे चित्र-लिपि स्वयं सिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय लिपि कही जा सकती है। किसी भी वस्तु या प्राणीका चित्र सब जगह एक-सा ही होता है। अगर एक कुत्तेके पास खड़े हुए एक लड़केका चित्र बनाया जाय, तो सभी देशोंमे वह आसानीसे समझा जा सकेगा।

सूत्र-लिपि—अपने भावोंको व्यक्त करनेके लिए, किसी बातको स्मरण रखनेके लिए सूतका, कपड़ेका प्रयोग प्राचीन कालमे भी होता था और आज भी कभी-कभी होता है। आज भी देहातोंमे गमछेके कोनेमें गाँठ लगाकर किसी बातको न भूलनेका प्रयत्न किया जाता है। साल-गिरह अथवा वर्षगाँठमें हम इसी माध्यमको प्रत्यक्ष पाते हैं। एक वर्ष बीता कि एक गाँठ लगा दी गई। 'सूत्र' (व्याकरण या दर्शन शास्त्रके सूत्र), 'गाँठ' आदि शब्द और 'गाँठ बाँधना' (मुहावरा) इसी सूत्र-लिपिकी ओर संकेत करते है।

भाव-लिपि—मनुष्यके हृदयके भावोंका जब चित्रात्मक अंकन किया जाता है, तो भाव-लिपि सामने आती है। उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करना उचित होगा। भाव-लिपिमें जो सामान्य रेखाएँ चित्र रूपमें खीची जाती है, वे उस वस्तुका प्रतिनिधि नहीं होतीं, वरन उससे सम्बन्धित भावको प्रकट करती है। जानेकी क्रियाको दिखानेके लिए दो पैरोंके प्रतिनिधि रूप दो खड़ी रेखाएँ खीच दी जाती है। सिहका सिंहत्त्व दिखानेके लिए निम्न प्रकारकी एक रेखा पर्याप्त मानी जाती है :—

भाव-लिपि गूढ़ होती है। उसे सब नहीं समझ पाते, परन्तु इसीलिए उसका महत्त्व कम नहीं हो जाता है। कलाके क्षेत्रमे भाव-लिपिका बहुत अधिक महत्त्व है।

ध्वन्यात्मक लिपि—अपने भावों और विचारोंको प्रकट करनेके लिए अनेक प्रकारकी लिपियोंका प्रयोग होता है, किन्तु इन सबमें ध्वन्यात्मक लिपिका स्थान सबसे ऊँचा है। इसमें लिपि चिह्नका सम्बन्ध ध्वनिसे जुड़ा रहता है। चित्र-लिपिमें अथवा भाव-लिपिमें चिह्न किसी वस्तुका चित्र उपस्थित करते हैं, अथवा किसी भावको व्यक्त करते हैं, किन्तु ध्वन्यात्मक लिपिमें चिह्न ध्वनियोंको ही प्रकट करते हैं। परिणाम यह होता है कि एक व्यक्ति जिन शब्दोंको कहना चाहता है, उन्हें वह इस लिपिमें लिख देता है और

चूँकि लिपिके अक्षर या वर्ण उन्हीं ध्वनियोंका प्रतिनिधित्व करते है, इसलिए पढ़नेवाला पढ़ते समय उन्हीं ध्वनियोंको पढ़ता है। कहनेवाला 'राम' कहता है, वह उसे 'राम' के रूपमें लिखता है और पढ़नेवाला 'राम' पढ़ता है। ध्वन्यात्मक लिपिमें अक्षरोंका सम्बन्ध ध्वनि से होता है। इसलिए किसी भी भाषाको उसमें लिखा जा सकता है; जैसे :—

रोमन : Love is God.
नागरी : लव्ह इज गॉड.
रोमन : Prem hi Bhagawan hei.
नागरी : प्रेम ही भगवान है।

ध्वन्यात्मक लिपिके दो भेद है :—

(१) अक्षरात्मक (Syllabic)
(२) वर्णात्मक (Alphabetic)

अक्षरात्मक लिपि तथा वर्णात्मक लिपि

इस लिपिमे चिन्ह अक्षरको व्यक्त करता है, वर्णको नही। नागरी लिपि अक्षरात्मक है और रोमन लिपि वर्णात्मक है। 'कमला' शब्द मे क्, म्, तथा ल्—इन तीन वर्णोंके साथ 'अ', 'अ' तथा 'आ' स्वर जुड़े हुए है। यदि इसे रोमन लिपिमे लिखा जाय, तो प्रत्येक ध्वनिका विश्लेषण किया जा सकता है—K A M A L A.

नागरी, गुजराती, तमिल, तेलगू आदि लिपियाँ अक्षरात्मक है।

वर्णात्मक लिपिमे ध्वनिकी प्रत्येक इकाईके लिए पृथक चिह्न होता है। रोमन लिपि वर्णात्मक लिपि है।

भारतीय लिपियाँ

भारतीय लिपियोंका इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि भारतमें लेखन पद्धतिका प्रचार चौथी शताब्दीके पहले भी मौजूद था। प्राचीन कालमें भारतवासी अपने विचारोंको किसी न किसी लिपिमें शिलाओंपर, धातुपत्रोंपर, ताड़पत्रोंपर, भोजपत्रों इत्यादि पर प्रकट किया करते थे। प्राचीन सूत्र-ग्रन्थोंमे 'लेखन कला' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

विद्वानोंका मत है कि प्राचीन कालमें भारतमे ब्राह्मी, खरोष्ठी तथा सिन्धु घाटीकी लिपियाँ प्रचलित थीं। पहली दो लिपियोंकी जानकारी तो विद्वानोंको पहलेसे ही थी, किन्तु मोहनजोदड़ो की खुदाईमें प्राप्त मुद्राओंसे तीसरी लिपिका भी पता चला है। ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियोंकी मूल जन्म-भूमि भारत ही है, अथवा अन्य कोई देश—इस सम्बन्धमे विद्वान एक मत नहीं है।

सिन्धु घाटीकी लिपि अभी विद्वानोंकी गवेषणाका विषय बनी हुई है। इस लिपिके प्रतीकोंकी संख्या एक विद्वान ३९६ बताते है, तो दूसरे विद्वान २५३। यह लिपि न शुद्ध अक्षरात्मक है और न वर्णात्मक। इस लिपिके सम्बन्धमें काफी खोजबीन हो रही है।

खरोष्ठी लिपि

खरोष्ठीके जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुए हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि इसका प्रयोग भारतके कुछ हिस्सोंमें चौथी सदी (ई. पू.) से लेकर तीसरी सदी तक होता रहा है। खरोष्ठी लिपि निर्दोष नहीं है। इसमें स्वरोंकी अव्यवस्था तथा दीर्घ स्वरोंका अभाव है। खरोष्ठी लिपिके अक्षर यहाँ नीचे दिए जा रहे हैं। खरोष्ठी अक्षर समझनेकी दृष्टिसे प्रारम्भ में नागरी अक्षर दिए गए हैं।

खरोष्ठी लिपि के अक्षर

अ -	ण -
इ -	त -
उ -	थ -
ए -	द -
ओ -	ध -
अं -	न -
क -	प -
ख -	फ -
ग -	ब -
घ -	भ -
च -	म -
छ -	य -
ज -	र -
झ -	ल -
ञ -	व -
ट -	श -
ठ -	ष -
ड -	स -
ढ -	ह -

खरोष्ठी लिपि भारतमें न व्यापक बन सकी, न स्थायी। उसका शीघ्र लोप हो गया। खरोष्ठी-की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि अधिक व्यापक हुई और विकास करती हुई आगे बढ़ी। खरोष्ठीके शीघ्र लोप होनेका प्रधान कारण यह था, कि इसमें तिरछी और लम्बी लकीरोंके प्रयोगका बाहुल्य था। इसके अलावा वर्णोंकी आकृति नियमोंमें जकड़ी हुई नहीं थी। इन्हीं दोषोंके कारण खरोष्ठी लोकप्रिय नहीं हो सकी। दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि अधिक सुन्दर, अधिक गठी हुई होनेके कारण लोकप्रिय होती गई। ब्राह्मीमें गोलाई और छोटी

लकीरोंका प्रयोग होता है। ब्राह्मी लिपि बाईंसे दाईं ओर लिखी जाती थी, जबकि खरोष्ठी दाहिनीसे बाईं ओर। खरोष्ठीके लिखनेका यह ढंग सुविधाजनक नहीं समझा गया। इन्ही सब कारणोंसे खरोष्ठी लिपि यहाँसे विलुप्त हो गई और ब्राह्मी लोकप्रिय बन गई।

ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि प्राचीन भारतकी प्रमुख लिपि गिनी जाती है। इस लिपिसे भारतकी अनेक वर्तमान लिपियाँ निकली है। देवनागरी लिपि तो इसका ही विकसित रूप है।

ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विशेषज्ञोंमें बड़ा मतभेद है। एक श्रेणीके विद्वानोंका मत है कि ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति भारतमें ही हुई। दूसरी श्रेणीके विद्वानोंका मत है कि इस लिपिका सम्बन्ध विदेशी लिपिसे है। अपने-अपने पक्षमें जोरदार तर्क दिये जाते हैं। यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन-सा मत ठीक है।

ब्राह्मी लिपि

अ, आ, इ, उ, ए, ओ, अं, क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण

त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह

भारतके प्रसिद्ध विद्वान श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका स्पष्ट कथन है कि "ब्राह्मी लिपि भारत वर्षके आर्योंकी अपनी खोजसे उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग-सुन्दरतासे इसका कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चाहे साक्षर ब्राह्मणोंकी लिपि होनेसे यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि इसका फोनीशियनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।"

सर्वश्री टामस, डासन और कनिंघम आदि विद्वान श्री ओझाजीके विचारोंसे सहमत हैं।

ब्राह्मी लिपिका विकास—ब्राह्मी लिपिके प्राचीनतम नमूने ५ वीं सदी ई. पू. के मिले हैं। यह लिपि अपने गुणोंके कारण फैलती गई, विकसित होती गई और लोकप्रिय बनती गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया, एक ही लिपि रहते हुए भी उत्तर भारतकी ब्राह्मी लिपि और दक्षिण भारतकी ब्राह्मी लिपिमें अन्तर होने लगा और आगे चलकर तो यह भिन्नता इतनी बढ़ गई कि समानतामें भी सन्देह होने लगा।

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपिने भी आगे चलकर धीरे-धीरे प्रदेशोंकी भिन्न-भिन्न लिपियोंका रूप धारण कर लिया।

नागरी—नागर लिपिका ही दूसरा नाम नागरी अथवा देवनागरी है, जो ब्राह्मी लिपिका ही सुसंस्कृत एवं विकसित रूप है। प्राचीन कालमे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात तथा महाराष्ट्रमें नागर लिपिका प्रचार था। इतने बड़े भू-भागकी लिपि होनेके कारण भारतकी लिपियोंमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसमें लिखित जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है, वह सातवी सदीका है। इस लिपिका क्रम-क्रमसे विकास होता रहा। ग्यारहवीं शताब्दीमें इसने पूर्णता प्राप्त कर ली थी, यथा :—

अपने अनेक गुणोंके कारण नागरी लिपि भारतकी सर्वाधिक प्रचलित तथा प्रतिष्ठित लिपि है। आज तो वह राष्ट्रलिपिके उच्चासनपर भी आसीन है।

नागरी लिपिकी व्यापकता

भारतमें अनेक भाषाएँ है और उनकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ है। नागरी लिपिका व्यवहार देशके बहुत बड़े हिस्सेमें होता है। नागरी लिपि केवल उत्तर प्रदेशमें ही नहीं, अपितु दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, विंध्य प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेशमें भी प्रचलित है। महाराष्ट्रमें नागरी लिपि पहलेसे ही प्रचलित है। संस्कृतका प्रचार तो सम्पूर्ण देशमें है। संस्कृतकी लिपि देवनागरी है, इसलिए सभी हिन्दीतर प्रदेशोंके संस्कृत-विद्वान इस लिपिसे परिचित हैं। पिछले चालीस वर्षोंमें हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दीका प्रचार व्यापक रूपसे हुआ है। हिन्दी भाषाके साथ देवनागरी लिपिका भी प्रचार अनायास हुआ है।

कुछ विद्वानोंका तो मत है कि यदि देवनागरीमें कुछ सुधार कर दिए जायँ, उसे और अधिक वैज्ञानिक बना दिया जाय, तो देवनागरी लिपि एशिया भूखंडकी एक प्रमुख लिपि बन सकती है।

आदर्श लिपिके गुण

लिपि-विशेषज्ञोंका मत है कि आदर्श लिपिमें नीचे लिखे गुण होने चाहिए :—

(१) निश्चितता—एक वर्णकी एक ही ध्वनि हो, ताकि जो लिखा जाय, वही पढ़ा जाय।

(२) जिस वर्णका जो उच्चारण है, उसी तरह वह लिखा जाय। जैसे 'क' अक्षर और उसका उच्चारण एक-सा है। उर्दूका 'काफ़' और रोमनका 'के (K)' उच्चारण 'क' से भिन्न है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

(३) शब्दमें कोई अक्षर अनुच्चरित न हों। जैसे, Write में 'W'।

(४) भाषामें उच्चरित होनेवाली सभी ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न हों।

(५) एक ध्वनिके लिए एकसे अधिक लिपि चिह्न न हों।

(६) लिपि देखनेमें सुन्दर हो।

(७) उसमें शीघ्र लेखन-शक्ति हो।

(८) लिपि चिह्नोंकी संख्या बहुत अधिक न हो।

(९) उसमें मुद्रण सुलभता हो, अर्थात उसमें कम्पोज शीघ्र किया जा सके।

(१०) उसके लिए मोनो (एकटंक) लायनो (पंक्तिटंक) और टाइप राइटर आसानीसे बनाए जा सकें।

इस कसौटीपर यदि नागरी लिपिको कसा जाय, तो वह बहुत दूर तक खरी निकलती है। देवनागरी पूर्ण रूपसे सर्व श्रेष्ठ आदर्श लिपि है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसमें भी कमियाँ हैं, किन्तु यह मानना ही होगा कि अन्य कई लिपियोंकी तुलनामें वह कहीं अधिक गुण-सम्पन्न लिपि है। उसकी कमियाँ दूर हों, वह हमारे लिए, हमारे युगकी आवश्यकताओंके लिए और अधिक उपयोगी बने—इस दिशामें चिन्तन, मनन और प्रयत्न चल ही रहे हैं।

ब्राह्मी लिपिसे विकसित लिपियोंके अलावा हमारे देशमें दो और लिपियाँ चल रही है। वे हैं—उर्दू लिपि, जिसे वास्तवमें 'फारसी लिपि' कहना चाहिए, तथा रोमन लिपि। ब्रिटिश राज्यके पहले इस देशपर मुसलमानोंका आधिपत्य रहा, अतः उर्दू लिपिको राजसत्ताका समर्थन मिला। अँगरेजोंका राज्य कायम होनेपर रोमन लिपिको महत्त्व मिल जाना स्वाभाविक ही था। विषम ऐतिहासिक परिस्थितियोंमें हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि उपेक्षित बनी रही। राष्ट्रीय आन्दोलनके दिनोंमे हिन्दी भाषा और देवनागरी ने अपना स्थान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। ऐसे समयमें देवनागरीका मुकाबला करनेका प्रयत्न उर्दूने किया और उसे परिस्थिति वश महात्माजीका समर्थन भी मिला, किन्तु भारतके स्वतन्त्र होते ही वह स्वयं ही अपदस्थ हो गई। इधर लिपिके रोमन समर्थक भी कभी-कभी देवनागरीकी तुलनामें रोमन लिपिको श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयत्न करते रहते हैं, किन्तु जन-जागृतिके इन दिनोंमें किसी भी विदेशी लिपिको अधिक महत्त्व मिल सके—यह सम्भव नहीं है। फिर भी विवेचन करनेकी दृष्टिसे यहाँ उनकी नागरीसे तुलना की जा रही है।

उर्दू लिपिके दोष

(१) अनेक ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न है ही नहीं। जैसे—ऐ, औ, ण।

(२) एक ही अक्षरके दो-दो उच्चारण है।

(३) एक ही उच्चारणको बनानेवाले अनेक अक्षर है।

(४) लिखते समय मूल अक्षरका संकेत मात्र सामने आता है, इसलिए लिखना भले सरल कहा जाय, पढ़ना एकदम कठिन हो जाता है।

(५) प्रेसके लिए एकदम अनुपयोगी है। इसीलिए उर्दू साहित्यको छापनेका काम प्रायः लिथोसे लिया जाता है।

उर्दू लिपिकी कठिनाइयाँ इतनी ही नही है और भी अनेक है, जिनका अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है।

उर्दू लिपिमें कोई गुण न हों, ऐसी बात नहीं है। वह द्रुतगितसे लिखी जा सकती है। उसमें कम स्थानमें अधिक लिखा जा सकता है। इस दृष्टिसे वह 'शीघ्र लेखन' (शॉर्ट हैन्ड) के निकट पहुँचती है।

समग्र रूपसे विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू लिपि सदोष लिपि है और वह कभी भी आदर्श लिपि नहीं बन सकती।

उर्दू लिपिकी तुलनामें रोमन लिपिमें दोष कम हैं, किन्तु नागरी लिपिकी तुलनामें वह बहुत पीछे रह जाती है।

रोमन लिपिके दोष

(१) अनेक ध्वनियोंके लिए रोमन लिपिमें चिह्न ही नहीं हैं। जैसे—ए, औ, अनुनासिक, ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, ण, त, थ, द, ध, भ, श।

(२) महाप्राण वर्णोंको लिखनेके लिए दो या दोसे अधिक अक्षर लिखने पड़ते हैं। जैसे—च = Ch, छ = Chh.

(३) कहा जाता है कि रोमन लिपिमें केवल २६ अक्षर हैं, किन्तु सत्य यह है कि चार प्रकारकी वर्णमाला (लिखनेके लिए केपिटल और स्माल तथा छापनेके लिए केपिटल और स्माल) होनेके कारण संख्या बहुत अधिक है।

(४) अधिकांश अक्षरोंके उच्चारण निश्चित नहीं है। एक जगहपर एक उच्चारण होता है, दूसरे स्थानपर उसीका दूसरा उच्चारण।

सूक्ष्म निरीक्षणसे और भी अनेक दोष देखे जा सकते है। इसलिए रोमन लिपिको जो लोग श्रेष्ठ लिपि मानते हैं, उनका कथन युक्ति संगत नहीं है।

रोमन लिपिके सम्बन्धमें महात्मा गाँधीजीने अपना मत इन शब्दोंमें व्यक्त किया था—"रोमन लिपिके समर्थक तो इन दोनों ही (नागरी और उर्दू) लिपियोंको रद्द कर देनेकी राय देगें, किन्तु विज्ञान तथा भावना—दोनों ही दृष्टियोसे रोमन लिपि नहीं चल सकती। रोमन लिपिका मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और टाइप करनेमें यह लिपि आसान पड़ती है, करोड़ों मनुष्योंको इसे सीखनेमें जो मेहनत पड़ती है, उसे देखते हुए इस लाभका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं। लाखों, करोड़ोंको तो देवनागरीमें या अपने-अपने प्रान्तकी लिपिमें ही लिखा हुआ अपने यहाँ का साहित्य पढ़ना है, इसलिए रोमन लिपि जरा भी सहायता नहीं पहुँचा सकती।

....अगर हम रोमन लिपिको दाखिल करे, तो यह निरी भार रूप ही साबित होगी और कभी लोक-प्रिय नहीं बनेगी। जब सच्ची लोक-जागृति हो जाएगी, तब इस प्रकारके भार रूप दबाव नहीं रह सकेंगे।"

इस कथनमे दिए गए तर्क अकाट्य हैं। अतः यह स्पष्ट है कि किसी दृष्टिसे भी हो, रोमनको भारतीय भाषाओंकी लिपि स्वीकार करना आतमघातक सिद्ध होगा।

देवनागरी लिपिके दोष

देवनागरी लिपि एक सुन्दर लिपि है, वैज्ञानिक लिपि है, फिर भी वह निर्दोष नहीं है। नागरी लिपिकी प्रधान कमियाँ इस प्रकार हैः—

(१) कई ध्वनियोंके लिए लिपि-चिह्न नहीं है, जैसे :—

(क) 'ऑ'—का उच्चारण, यथा—डॉक्टर, वॉल में 'ॉ'

(ख) 'ए' का ह्रस्व रूप; यथा—'जेहि सुमिरत सिधि होयँ' में 'जे'

(ग) 'ओ' का ह्रस्व रूप; यथा—मोहब्बत में 'मो'

(२) कुछ अक्षरोंके दो-दो रूप प्रचलित है, जैसे :—

ल ल; अ अ; ण ण; झ झ;

(३) दो अक्षरोंके योगसे एक नया अक्षर बनता है, जैसे :—

र + व = ख

इसके कारण कभी-कभी पढ़नेमें भ्रम होता है जैसे :—

रवड़ी = खड़ी

रवाना = खाना

(४) र के पाँच प्रकार हैं—

र	–	राम
ʻ	–	कर्म
्र	–	प्रेम
‸	–	राष्ट्र
˘	–	व॒हाड़

इस एक र के कारण ४०–५० टाइप नए बनाने पड़ते है ।

(५) जिस क्रमसे अक्षर लिखे जायें, उसी क्रमसे पढ़े जाने चाहिए, किन्तु इस विचारसे कुछ गड़बड़ी है ।

(छोटी इ) की मात्रा ि लिखी पहले जाती है पढ़ी पीछे जाती है—

किसी, चन्द्रिका

(६) आ–की मात्रा का चिह्न 'ा' है। किसी अक्षरके आगे लगनेपर वह दीर्घ हो जाता है, जैसे— क का, म मा, किन्तु नागरी लिपिमें दो अक्षर ऐसे है जिनमें पहलेसे ही यह मात्रा लगी-सी दीखती है :—

ग, श

(७) क्ष, त्र, ज्ञ—स्वतन्त्र ध्वनियाँ नहीं है। ये संयुक्त व्यञ्जन मात्र है, अतः स्वतन्त्र लिपि चिह्नोंकी आवश्यकता नहीं।

(८) अनेक संयुक्ताक्षरोंके लिए नए टाइप बनाने पड़ते हैं, अतः टाइप संख्या बढ़ती है।

(९) लिपि चिह्नोंकी संख्या अधिक है। यदि नागरी लिपिको कम्पोज-सुलभ तथा टाइप राइटर, टेलीप्रिन्टर आदिके लिए उपयोगी बनना है, तो उसे अपने चिह्नोंकी संख्या कम करनी होगी।

स्वतन्त्र स्वरों और उनकी मात्राओके दो अलग-अलग रूप है। इससे लिपि सीखनेवालोंको दुहरी मेहनत करनी पड़ती है। टाइप और छपाईमें भी असुविधा होती है।

देवनागरीके व्यंजन चिह्न सर्वथा वैज्ञानिक नहीं हैं, क् औ ख् मे तथा ग् और घ् में केवल महा-प्राणत्वका भेद है। इनके लिए दो स्वतंत्र चिह्न मान लिए गए हैं। यही बात अन्य महाप्राण व्यञ्जनोंके बारेमे भी कही जा सकती है। इस प्रकार लिपिमें वैज्ञानिकता की तो कमी है ही, अक्षरोंकी संख्या भी व्यर्थ ही बढ़ी है।

नागरी लिपिकी इन कमियों, समस्याओं और आवश्यकताओंकी ओर विद्वानोंका ध्यान बहुत पहलेसे जाने लगा था। व्यक्तिगत तौरपर और संस्थागत तौरपर सुधार सम्बन्धी अनेक प्रयत्न होते रहे और हो रहे है। इधर तो सुधार सम्बन्धी सुझावोंकी ऐसी बाढ़ आई है कि वह स्वयं एक समस्या बन रही है। भारतके स्वतन्त्र हो जानेके पश्चात् सरकारी स्तरपर भी लिपि-सुधारके सम्बन्धमें प्रयत्न शुरू हुआ है। बावजूद इन सारे प्रयत्नोंके-सुधरी हुई नागरी लिपिका अन्तिम रूप अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है।

लिपि सुधारके क्षेत्रमें जो प्रमुख प्रयत्न किए जाते रहे है, उनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जाती है।

जो लोग इतिहाससे परिचित नहीं, वे मानते हैं कि नागरी लिपिमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और वह वेदकालसे वैसी-की-वैसी चलती आई है। उनकी यह धारणा नितान्त गलत है। नागरी लिपिमें समय-समयपर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते आए है। सम्राट् अशोकके कालसे लेकर आज तक जिस नागरी लिपिका प्रयोग शिलालेख, ताम्रपत्र, ताड़पत्र, भोजपत्र और आजकल कागजपर होता आ रहा है, उसे अगर हम तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो पता चलेगा कि लिपिका परिस्थितिके अनुसार विकास और परिवर्तन होता आया है।

वर्तमान युगमें लिपि सुधारके क्षेत्रमे किए गए प्रयत्नोंका लेखा-जोखा करते समय सबसे पहले लोकमान्य तिलक सामने आते है। लोकमान्य तिलक केवल राजनैतिक नेता ही नही थे, महाराष्ट्रके साहित्यिक जगतमें उनका वही स्थान है जो हिन्दीमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका। मातृभाषा द्वारा लोक-शिक्षण तिलक महाराजका ध्येय था। अपने मराठी साप्ताहिक पत्र 'केसरी' को वे अर्द्ध साप्ताहिक करना चाहते थे, किन्तु देवनागरी कम्पोजकी कठिनाई उनके मार्गमें बाधा बनकर खड़ी हुई जिसे हल करनेके लिए उन्होने बहुत प्रयत्न किए। नागरी टाइपोंकी संख्या घटानेकी दृष्टिसे उन्होंने अनेक टाइप फाउण्डरियोंसे सम्बन्ध स्थापित किया और नए टाइप बनवाए। अपनी इंगलैंड यात्रामें वे इस कारण टाइपको साथ ले गए और वहाँसे मोनो टाइप ढलाकर ले आए। सन् १९०८ में उन्हें ६ वर्षके लिए जेल जाना पड़ा और पहली अगस्त १९२० को तो उनका देहान्त हो गया। यदि लोकमान्य कुछ वर्ष और जीवित रहते तो निस्सन्देह लिपि-सुधारकी समस्या कुछ अंशोंमे तो अवश्य हल हो जाती।

'केसरी' के ट्रस्टियोंने लोकमान्यके जिस कार्यको अधूरा छोड़ा, उसे महाराष्ट्रके अन्य लोगोने अपने हाथमें लिया, इनमें श्री ग. रा. दाते, श्री शं. रा. दाते, श्री सावरकर तथा श्री. ग. पा. विजापुरे मुख्य हैं। श्री विजापुरेने इस कार्यमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त की, जिसका प्रमाण 'विजापुर टाइप नं. ५ है, जिसका व्यवहार आज भी महाराष्ट्रके कई समाचार पत्रोंमें होता है।

नागरी लिपि-सुधारके आन्दोलनका श्रीगणेश १९३५ मे महात्मा गाँधीकी अध्यक्षतामे होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २४ वें इन्दौर अधिवेशनसे हुआ। इस अधिवेशनमे इस विषयकी विशद चर्चा हुई और इस विषयपर देशके विद्वानोंसे विचार-विमर्श करके विवरण उपस्थित करनेके लिए १० व्यक्तियोंकी एक उपसमिति बनाई गई जिसके संयोजक काकासाहेब कालेलकर थे। इस उपसमितिकी अनेक बैठकें हुई। उपसमितिने अपनी रिपोर्ट नागपुरके अधिवेशनमें पेश की। नागपुर सम्मेलनने इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णय करनेका अधिकार सम्मेलनकी स्थायी समितिको सौपा। स्थायी समितिने सन् १९३७ में लिपि-सुधारके सम्बन्धमें जो निश्चय किया वह इस प्रकार है :—

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके निश्चय

प्रस्ताव

नं. १

लिखनेमे शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। छपाईमे साधारण रीतिसे शिरोरेखा लगाना ही नियम रहे। किन्तु विशेष स्थानोंमें अक्षरोंकी विभिन्नता प्रकट करनेके लिए शिरोरेखा-विहीन अक्षर

भी प्रयुक्त हो सकते हैं। इस समितिकी सिफारिश है कि विशेष कर छोटे अक्षरोंमें जहाँ शिरोरेखा होनेसे छपाईकी स्पष्टतामें कमी आ जाती हो, वहाँ शिरोरेखा-विहीन अक्षरोंका प्रयोग करना अच्छा होगा।

नं. २

यह समिति निश्चय करती है कि प्रत्येक वर्ण ध्वनिके उच्चारणके क्रमसे लिखा जाए।

(क) जब तक कोई अधिक सन्तोषजनक स्वरूप सामने न आए, तब तक 'इ' की मात्रा अपवाद रूपसे वर्तमान पद्धतिके अनुसार ही 'ि' लिखी जाए, यथा–'सिर'।

(ख) ए, ऐ की मात्राएँ वर्णके ठीक ऊपर न लगाकर दाहिनी ओर जरा हटाकर, वर्तमान पद्धतिके अनुसार, ऊपर लगाई जाएँ, यथा–दे वता, अने क।

ओ और औ भी ऊपरके सिद्धान्तके अनुसार लिखे जाएँ, यथा–आे ला आै रत।

(ग) उ, ऊ, ऋ की मात्राएँ अक्षरके बाद आएँ और पंक्तिमें ही लिखी जाएँ, यथा–क ुटिल, प ूजा, स ृष्टि।

(घ) अनुस्वार और अनुनासिकके चिह्न भी अक्षरके बाद ऊपर लिखे जाएँ, यथा–अं श।

(ङ) रेफसे व्यक्त होनेवाला अर्द्ध 'र' उच्चारण क्रमसे योग्य जगहपर लिखा जाए, यथा–धर्् म।

(च) संयुक्ताक्षरमे (द्वितीय) 'र' सामान्य रूपसे लिखा जाए, जैसे–प्र, त्र।

(छ) युक्ताक्षरमें भी सर्वत्र वर्ण उच्चारण क्रमसे एकके पीछे एक लिखे जाएँ, यथा द्‌वारका (द्वारका नहीं), विद-वत्ता (विद्वत्ता नहीं)। (द के आगेवाले 'डैस' को द से जुड़ा समझना चाहिए)

नं. ३

स्वरों और मात्राओंमें समानता तथा सामंजस्य स्थापित करनेके लिए 'इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ऋ' के वर्तमान रूप छोड़कर केवल अ में ही इन स्वरोंकी मात्राएँ लगाकर इन स्वरोंके मूल स्वरूपका बोध कराया जाए, अ की बारह खड़ी की जाए; यथा–अ, आ, अि, अी, अ ु, अ ू, अ ृ, अे, अै, आे आै, अं, अः।

नं. ४

दक्षिणकी लिपियोंके स्वरोंमें ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ के स्वरूप आते है, उनके लिए मात्रा इस प्रकार लगाई जाए, यथा–अॆ, आॆ।

नं. ५

पूर्ण अनुस्वारके स्थानपर '°' लगाया जाए और अनुनासिकके लिए केवल बिन्दी '·' लिखी जाए यथा–सिं ह, चां द (चाँद नहीं)। व्यंजनके पूर्व हलन्त ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, की जगहपर जहाँ प्रतिकूलता (यथा–वाङ्मय, तन्मय) न हो, अनुस्वार लिखा जाए, यथा–चं चल, पं थ, पं प आदि।

नं. ६

छपनेमें अक्षरोंके नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थानपर (नुक़ता) बिन्दी लगाई जाए, तो उसका अभिप्राय होगा कि अक्षरकी ध्वनि उस अक्षरकी मूल ध्वनिसे भिन्न है। उस ध्वनिका निर्णय प्रचलनके अनुस्वार होगा। यथा–फारसी :— क़, ख़, ज, झ़, मराठी : च़, सिन्धी : ज़, इत्यादि।

नं. ७

विराम चिह्न आजकल सब भाषाओंमें जैसे प्रचलित हैं वे ही क़ायम रखे जाएँ। पूर्णविरामका चिह्न पाई (।) रहे।

नं. ८

अंकोंके स्वरूप इस प्रकार रहें:— १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

नं. ९

वर्तमान ख के स्वरूपमें परिवर्तन करना आवश्यक है। 'ख' के स्थानपर 'ᛒ' स्वीकृत हुआ।

नं. १०

अ, झ, ण की जगह बम्बईके अ, झ, ण, टाइपवाले रूपोंको आपेक्षिक दृष्टिसे प्रचलित किया जाए और ल, श, की जगह हिन्दीके रूप 'ल, श' रखे जाएँ। 'क्ष' का क्ष रूप प्रचलित किया जाए। बीज-गणित आदि वैज्ञानिक साहित्यमें संज्ञारूप 'क्ष' आ सकता है।

नं. ११

मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलगू आदि भाषाओंमें विशिष्ट ध्वनिके लिए 'ळ' अक्षर प्रयुक्त है, वही रखा जाए। 'ड' या 'ल' से उसे व्यक्त न किया जाए।

नं. १२

ज्ञ के उच्चारणमें प्रान्तीय भिन्नता होनेसे 'ज्ञ' का रूप जैसा है वैसा ही रखा जाए।

ओ३म्के "ओ३म्" और "ॐ" दोनों रूप चलें। श्री के सम्बन्धमें निश्चय हुआ कि 'श्री' के साथ प्राचीन 'श्री' रूप भी रखा जाए।

नं. १३

संयुक्त अक्षरोंको बनानेके लिए जिन वर्णोंमें खड़ी पाई अन्तिम भागमें है—ख, ग, घ, च, ज, झ, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स, उनका संयोज्य रूप खड़ी पाई हटाकर समझा जाए, यथा—ग्, घ्, च्, ज्, त्, थ्, न्, प्, ब्, इत्यादि। क और फ का वर्तमान संयोज्य रूप क, फ, स्वीकृत किया जाए।

जिन अक्षरोंमें खड़ी पाई अन्तिम भाग नहीं है अथवा है ही नहीं उसका संयोज्य रूप संयोजक चिह्न (-) लगाकर समझा जाए। संयोजक चिह्न पिछले अक्षरसे मिला रहे। संयोजक चिह्न–हो, यथा–विद-या ,विट-ठल, श्वासोच्छ-वास, उड-डाण, बुड-ढ़ा, ब्रह्मा। (द, ट, छ, ड, ड, में जो डैस लगे है उन्हें उन अक्षरोंसे जुडा हुआ समझना चाहिए)

नं. १४

शिरोरेखा हटाकर लिखनेमें 'भ' और 'ध' के (म और घ से पृथक् करनेके हेतु) निम्नलिखित रूप स्वीकार हों—भ, ध।

यद्यपि इन सुधारोंको हिन्दी साहित्य सम्मेलनने सहर्ष स्वीकार किया किन्तु सम्मेलनने अपने नित्यके व्यवहारमें उनका उपयोग नहीं किया। हाँ, उसने वर्धा स्थित राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको यह छूट दी कि वह इनका उपयोग करे और इनका प्रचार भी करे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अपने जन्म-कालसे ही इन सुधारोंको अपनाकर चल रही है और उसे इस दिशामें आशातीत सफलता मिली है।

विशेषतः 'अ' की स्वराखड़ी हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी-प्रचारमें भी सहायक सिद्ध हुई है। खासकर असमके पहाड़ी इलाकोंमें, जहाँ रोमन लिपिका बोलबाला है, अ की स्वराखड़ी वाला यह सरल रूप विशेष जनप्रिय हुआ है और इसके कारण वहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारमें सरलता अनुभव की गई है।

देवनागरी लिपिको यदि आजके युगके लिए अत्यन्त उपयोगी, मशीनोंके लिए सक्षम बनाना है और यदि आवश्यक नवीन ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न बनाना है, तो यह परम आवश्यक हो जाता है कि नागरीके कुछ अक्षर कम किये जाएँ। अक्षर कम करते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना ही होगा कि ऐसा करते समय कोई लिपि-दोष न आने पाए।

अ की स्वराखड़ीका जो सुझाव दिया गया है, वह अत्यन्त सरल, और सुबोध है तथा अपरिचित नही है। व्याकरणकी बारीकियोंको एक तरफ रखकर यदि व्यावहारिक दृष्टिसे इस पर विचार करें तो यह सुझाव बहुत उपयोगी है।

लिपि सीखनेवालोंको यह सहज ही समझाया जा सकता है कि जिस प्रकार 'क' में ा ि ी ु ू े ै ो ौ ं ः लगाकर क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः बना लेते है उसी प्रकार 'अ' में ये मात्राएँ लगाकर—

अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ अं अः बनाना है। इस प्रकार अ की स्वराखड़ी अपने आपमें पूर्ण और स्वाभाविक बन जाती है। यह कोई एकदम नया सुधार भी नही है। हम अब तक 'अ' में—

ा ो ौ ं ः की मात्राएँ लगाकर—

आ ओ औ अं अः बनाते रहे हैं। अब एक कदम और आगे चलना है—अि अी अु अू अे अै।

गुजराती और नैपाली लिपिमें अ पर े ै की मात्रा लगाकर अे और अै लिखा ही जाता है।

अि अी अु अू अे और अै को पढ़नेमें कोई कठिनाई नही होती। कोई भी पाठक जब इन्हें पढ़ेगा तब सहज ही इ ई उ ऊ ए ऐ की ध्वनि निकालेगा। इस सुधारके द्वारा नागरी लिपिके छह अक्षर कम हो जाते हैं। यदि इस सुझावको स्वीकार कर लिया जाता है तो नए सीखनेवालोंको इ ई उ ऊ ए ऐ—इन छह अक्षरोंके सीखनेका भार नही उठाना पड़ता, दूसरे टाइप रायटरमें छह बटन (Key) कम हो जाते हैं, प्रेसके टाइपमें कुछ टाइप कम हो जाते है। इस परिवर्तनसे लिपि सौन्दर्यमें अथवा उपयोगितामें कोई कमी भी नहीं आती है।

हिन्दीके प्रसिद्ध वैयाकरण श्री किशोरीदास वाजपेयीने ठीक ही लिखा है—"कह सकते है कि 'अि', 'अी' आदि रूप आँखोंको अच्छे नहीं लगते। यह कोई तर्क नही है। उपयोगिताको रुचि-वैचित्र्य की बलिवेदीपर चढ़ा देना बुद्धिमानी नहीं है। ओ और औ—इन दो स्वर संकेतोंको क्यों पसन्द किया जाता है? इनकी जगह भी कोई नए संकेत स्वतन्त्र रूपसे क्यों नहीं चलाए जाते?"

जैसा कि ऊपर लिखा गया है हमें आगे बढ़कर ओ, और औ की तरह अि अी अु अू अे अै को भी स्वीकार कर लेना चाहिए। अ की स्वराखड़ीकी उपयोगिता कुछ लोगोंके ध्यानमें क्यों नहीं समझमें

आती—यह एक प्रश्न ही है। रुढ़ि-प्रियताके कारण ऐसे उपयोगी सुझावको स्वीकार न करना बुद्धिमानी नही कहा जाएगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी लिपि सम्बन्धी योजनाके पश्चात् लिपि-सुधारका प्रश्न राष्ट्रव्यापी होता गया। हिन्दी भाषाका प्रचार ज्यों-ज्यों बढ़ता गया देवनागरी लिपिमें उसी त्वरासे कार्य सञ्चालन करनेकी क्षमता लानेकी ओर विचारोंकोंका ध्यान जाने लगा।

नागरी प्रचारिणी सभाका ध्यान भी इस ओर गया और उसने सन् १९४४ में एक लिपि उपसमिति-का गठन किया। इस उपसमितिने समाचार पत्रों द्वारा लिपि-विशारदों और सुधार प्रेमियोंसे सम्पर्क स्थापित किया। अन्तमें उसने निश्चय किया कि—

(१) अभी केवल हिन्दी और संस्कृतके लिए उपयुक्त लिपिका ही सुधार किया जाना चाहिए।

(२) पठन-पाठन और लेखनमें सरलता लानेका उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए लिखित और मुद्रित लिपिका रूप एक होना चाहिए।

(३) यद्यपि प्रचलित रीतिके अनुसार संयुक्ताक्षरोंको ऊपर-नीचे लिखने तथा मात्राओंको ऊपर-नीचे, आगे-पीछे लगानेकी स्वतन्त्रता हस्तलिपिमें बरती जा सकती है, तथापि मुद्रण-सौन्दर्यके लिए यह आवश्यक है कि नागरी लिपिके संयुक्ताक्षर और मात्राएँ दाहिनी ओर बगलमे एक ही पंक्तिमें लगाई जाएँ।

उपसमितिने श्री श्रीनिवासजी द्वारा सुझाई हुई लिपिकी सिफारिश की। यह लिपि ही समितिको विशेष संगत प्रतीत हुई। श्री निवासजीकी प्रति संस्कृत वर्णमालाका स्वरूप निम्नलिखित है :—

प्रति संस्कृत वर्णमाला

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

(a) (a)

(b) (b)

(c) (c)

(d) (d)

(e) (e)

(f) (f)

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	
(a)	अ	अ	आ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए	(a)
	Short		Short		Short		Short		Short		
(b)	ओ	ओ	action.	at.	ought.	all.	ऋ	अं	अः	अँ	(b)
	Short		Short		Short						
(c)	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	(c)
(d)	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	(d)
(e)	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	(e)
(f)	ष	स	ह	Z.	F.	azure	ळ	क्ष	त्र	ज्ञ	(f)

श्री श्रीनिवासजीने 'अ' के असंकेतित अतएव निरर्थक अंश "उ" के साथ मात्राओंका प्रयोग करके स्वरोंका बोध कराया था। ऐसा करनेसे स्वरोंमे समानता भी आ गई है और प्रत्येक स्वरका लिपिगत रूप भिन्न हो गया है। इनकी स्वर-लिपिमें एकमात्रिक ह्रस्व और द्विमात्रिक दीर्घ परम्पराका निर्वाह भी है। श्री श्रीनिवासजी प्रत्येक वर्णकी खड़ी रेखा (पूर्ण या अपूर्ण) को स्वरकी मानते थे और उसके प्रयोगसे वर्णको सस्वर और अप्रयोगसे अस्वर समझते है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके प्रथम और तृतीय वर्णोंमे महाप्राणका कल्पित चिह्न लगाकर द्वितीय और चतुर्थ वर्णोंका बोध कराया गया है। पञ्चम वर्णोंकी आकृति भी नितान्त भिन्न नही है, अपने-अपने वर्गके किसी अल्पप्राण वर्णमे अनुस्वारका चिह्न लगाकर उन्हें व्यक्त किया गया था, जैसे 'प' मे अनुस्वारका चिह्न "." लगाकर 'म' होता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभाके इन प्रयत्नोंके अलावा देशमें अनेक विद्वानोंने लिपि-सुधारके सम्बन्धमें चिन्तन-मनन किया और उनमेंसे अनेकने अपनी योजनाओंको जनताके सामने रखा। इन योजनाकारोंमे नीचे लिखे व्यक्तियोंके नाम उल्लेखनीय है :—

(१) श्री काकासाहेब कालेलकर
(२) श्री केदारनाथ चित्रकार (काशी)
(३) स्वामी सत्यभक्त (वर्धा) भारतीय लिपि
(४) श्री हरगोविद (लखनऊ)
(५) श्री टी. के. कृष्णस्वामी अय्यर (हरिद्वार)
(६) आचार्य विनोबा भावे (वर्धा) लोकनागरी
(७) श्री श्रीनिवास (काशी) प्रति संस्कृत देवनागरी लिपि
(८) डॉ. एम. डी. मनोहर (बम्बई)
(९) महापंडित राहुल सांकृत्यायन
(१०) श्री हरिजी गोविल

उपर्युक्त सज्जनोंमेंसे अधिकांशकी योजनाएँ काफी क्रान्तिकारी है। उन्हें अपनानेका अर्थ होगा नई नागरी लिपिका निर्माण, जिसे व्यावहारिक दृष्टिसे स्वीकार नही किया जा सकता। लिपिमें सुधार किस सीमा तक किए जाएँ, इसके सम्बन्धमें श्री काकासाहेबके विचार ज्यादा तर्क संगत और व्यावहारिक है।

काकासाहेबका कहना ठीक है—"चन्द लोग अपनी कल्पना चलाकर नई-नई लिपि देशके सामने रखते है। इसमेसे कुछ लिपियाँ बहुत अच्छी है, वैज्ञानिक हैं, तेजीसे लिखी जा सकती हैं, लेकिन इतने बड़े देशमें बिलकुल नई लिपि स्वीकार कौन करेगा? जो देवनागरी बनारसमें चलती थी, और जिसे सारे देशके पंडितोंने संस्कृत करके अपनाया और जो लिपि हिन्दी-मराठी, गुजराती आदि प्रौढ़ भाषाओंने अपने लिए चलाई, उसी लिपिमे थोड़ा परिवर्तन करके इस युगकी सब आवश्यकताएँ पूरी करनेकी क्षमता लाना व्यवहार और बुद्धिमानीका रास्ता है।"

व्यक्तिगत स्तरपर और संस्थागत स्तरपर देवनागरी लिपिमें सुधार, संशोधनके प्रयत्न किए गए किन्तु सरकारी स्तरपर उसके लिए प्रयत्न स्वाधीनताके बाद ही सफल हुए।

सन् १९४७ में युक्त प्रान्तीय सरकारने हिन्दीको राजभाषाके स्थानपर आसीन किया। उसने अपने उत्तरदायित्वको सहालनेकी दृष्टिसे एक ओर हिन्दीको समृद्ध करनेका प्रयत्न किया, दूसरी ओर आचार्य नरेन्द्रदेवकी अध्यक्षतामे देवनागरी लिपि-सुधार समितिका गठन किया। इस समितिने न्यूनतम परिवर्तनसे अधिकतम लाभ के सिद्धान्तको ध्यानमे रखकर विभिन्न समस्याओंपर गम्भीरतासे विचार किया और अपने सुझाव दिए।

श्री नरेन्द्रदेव समितिने लिपि सुधारके क्षेत्रमें अबतकके किए गए प्रयत्नोंका अध्ययन और मनन किया, सम्पूर्ण देशसे प्राप्त सुझावोपर गम्भीरता पूर्वक विचार किया और निष्कर्ष रूपमे अपने नकारात्मक और स्वीकारात्मक सुझाव सामने रखे जो इस प्रकार है—

समितिके नकारात्मक निश्चय

(१) निश्चय हुआ कि श्री श्रीनिवासजीके एकमात्रिक और द्विमात्रिक आदि स्वरोके भेद समितिको मान्य नही हो सकते।

(२) "अ" की बारहखड़ी या काका साहेब कालेलकरके अनुसार "अ" की स्वराखड़ी नही बनाई जा सकती।

(३) इ की मात्रा को छोड़कर अन्य मात्राओंके वर्तमान स्वरूपमें परिवर्तन न किया जाए।

(४) किसी व्यञ्जनके नीचे कोई दूसरा व्यञ्जन वर्ण न लगाया जाय।

(५) कुछ लोग नागरी लिपिमें सुधारके नामपर आमूल परिवर्तन करना चाहते है जो वाछनीय न होनेके कारण उन 'सुधारों' पर विचार करनेके लिए उनके प्रेपकोको बुलानेकी आवश्यकता नही है।

(६) केवल मशीनकी सुविधाके लिए कोई अवांछनीय परिवर्तन न किए जाएँ।

समितिके स्वीकारात्मक सुझाव

सिद्धान्तगत और साधारण लिपि सम्बन्धी अनुरोध

(१) मुद्रण और टाइपराइटिंगकी सुविधाके लिए आवश्यकतानुसार मात्राओंको थोड़ा हटाकर केवल दाहिनी ओर ही बगलमें ऊपर और नीचे लगाया जाय। यथा-महात्मा गा ंधी, पट ेल, व ि जय (विजय), क ुडल, क ैकेयी, स ंपूर्ण (सम्पूर्ण)।

(२) शुद्ध अनुस्वारके स्थानपर " ० " शून्य लगाया जाए। व्यंजनके हलन्त ङ, ञ्, ण, न्, म्, की जगहपर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथा-वाङमय, तन्मय) शून्य लिखा जाए। अनुनासिक स्वरके लिए ' ˙ ' बिन्दी का प्रयोग हो ' ˙ ' यथा–हंसना, हंस (पक्षी)

(३) शिरोरेखा लगाई जाए।

(४) ऋ लृ की मात्राएँ भी अन्य मात्राओंके ही सदृश थोड़ा हटाकर दाहिनी ओर नीचे लगाई जाएँ।

(५) जिन वर्णोंका उत्तरार्द्ध खड़ी पाई युक्त है उनका आधा रूप, खड़ी पाई निकालकर बनाया जाए। यथा ग पूर्ण रूप, ग अर्द्ध रूप। व पूर्ण रूप, व अर्द्ध रूप। उदाहरण—वक्र (वक्र), ध-र्म (धर्म), वस्त्र (वस्त्र)।

(६) जिन वर्णोंका उत्तरार्द्ध खड़ी पाई युक्त नहीं है उनका आधा रूप " क " और " फ " को छोड़कर हल चिह्न ' ् ' मात्राओंके ही समान बगलमें नीचे की ओर लगाकर बनाया जाए। यथा–ङ का आधा रूप ङ्, राष्ट्र (राष्ट्र), विद्या (विद्या), ब्राह्मण (ब्राह्मण)।

(७) ह्रस्व " इ " की मात्रा भी दाहिनी ओर लगाई जाए, यथा–विजय (विजय)

संग्रथन सम्बन्धी अनुरोध

(८) डा० गोरखप्रसादकी नवीन संग्रथन (Composing) प्रणालीका रूप इस प्रकार रहे—

(१) इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं तथा ऋ, लृ, की मात्राओं और हलके चिह्नको थोड़ा-सा हटाकर दाहिनी ओर लगाया जाए।

(२) नवीन ध्वनियोंके लिए नवीन संकेत स्थित करनेकी अपेक्षा उच्चारण चिह्नों (Diacritical marks) का प्रयोग हो।

(३) संयुक्ताक्षरोंका सयुक्त स्वतन्त्र रूप यथासम्भव निकाल दिया जाए।

इधर नरेन्द्रदेव समिति अपना काम कर रही थी, उधर दिल्लीमे विधान परिषदने इसी बीच शार्टहैंड, टाइप राईटिंग और टेली प्रिंटिंग आदि समस्याओंपर विचार करने तथा उनके तरीकोंमें एकरूपता लानेके उद्देश्यसे श्री काका साहब कालेलकरकी अध्यक्षतामें एक समिति संगठित की।

सन् १९५० में नागपुरमे एक अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ, जिसे पुराने मध्यप्रदेश की सरकारने डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें आमन्त्रित किया था। लेकिन चूंकि तब तक संविधान परिषदने तथा उत्तर प्रदेश और बम्बई राज्यकी सरकारोंने भी लिपि सुधारको लेकर समितियाँ बना दी थीं, इसलिए नागपुर सम्मेलनने अपने निर्णय स्थगित कर दिए और उत्तर प्रदेशकी नरेन्द्रदेव कमेटीकी सिफारिशोंको ही और अधिक विचारके लिए प्रेषित करनेका निर्णय किया। देश भरसे उनपर जो जवाब आए, उसपर से यह दिखाई दिया कि उन सुझावोंसे प्रायः सब सहमत हैं। इसलिए उत्तर प्रदेशकी सरकारने उस विषयपर सर्वमान्य निर्णय कर लेनेकी दृष्टिसे सन् १९५२ में लखनऊमे एक अखिल भारतीय सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलनके अध्यक्ष थे—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और उपस्थितोंमे प्रायः सब राज्योंके मुख्य मन्त्री, शिक्षा-मन्त्री और केन्द्रके कुछ मन्त्रीगण, शिक्षा-मन्त्रालयोंके अधिकारी, विश्वविद्यालयोंके प्रमुख भाषाविद्, साहित्यिक महानुभाव आदि थे।

५३ की लखनऊ परिषदके सुझाव

इस लखनऊ परिषदने जो सुझाव दिये वे इस प्रकार है :—

(१) निम्नलिखित देवनागरी अक्षरों एवं अंकोंको स्टैंडर्ड माना जाए :—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ अं अ:

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म

य र ल व श ष स ह क्ष ज्ञ ळ।

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

इस निर्णयके अनुसार,

(अ) अ, झ, ण, ल और श अक्षर अ, झ, ण, ल और श ही रूपमे लिखे जाएँगे और किसी रूपमे नहीं।

(आ) ख को 'ख' छ को 'छ' ध को 'ध' और भ को 'भ' लिखा जाएगा।

(इ) नया अक्षर 'ळ' अंगीकार किया गया।

(ई) त्र हटा दिया गया।

(२) शिरोरेखा लगाई जाए। आदतवश कोई न लगाए, तो बात दूसरी है।

(३) मात्राएँ प्रचलित रूपमें तथा ढंगसे लगाई जाएँ। सिर्फ ह्रस्व 'इ' की मात्रा आगे दाहिनी ओर लगाई जाए। तब ह्रस्व 'इ' की मात्राका स्वरूप, बड़ी 'ई' की मात्राका-सा रहेगा। अन्तर इतना ही रहेगा कि बड़ी 'ई' की मात्रा शिरोरेखाको पारकर पूरी लम्बाईमे लगती है, जब कि छोटी 'इ' की मात्रा शिरोरेखाको पार करते ही वहीं अटक जाएगी।

उदा० की, की।

(४) अँग्रेजीमें जो विराम चिह्न है उनमेंसे 'फुलस्टाप' तथा 'कोलन' को छोड़कर शेष अन्य विराम चिह्नोंको स्वीकार कर लिया जाए। पूर्ण विरामके लिए खड़ी पाईका व्यवहार हो।

स्वीकृत विराम चिह्न :— — , ; ! ? ।

(५) टाइप राइटरके की-बोर्डमें निम्नलिखित चिह्नोंका भी समावेश किया जाए—

. / ‸ ˚ ‸ % " " ( ) + × ÷ * = †

(६) संयुक्ताक्षर दो प्रकारसे बनाए जाएँ—(अ) जहाँ सम्भव हो अक्षरके अन्तकी खड़ी पाईको हटाकर या (आ) जुड़नेवाले प्रथम अक्षरके अन्तमें हलन्त लगाकर। लेकिन प्रथम अक्षर क, फ, ह हो तो उनमें दूसरा अक्षर प्रचलित तरीकेसे ही जोड़ा जाए।

(७) अनुस्वार तथा अनुनासिक (˙ ˘) मेंसे किसी एक को खतम कर देनेका सुझाव अमान्य किया गया।

(८) अंकों सम्बन्धी सुझाव संविधानके अनुसार अमलमें आएँ।

लखनऊ परिषदके इन निर्णयोंपर मध्यप्रदेश शासनने फिरसे विचार किया। मध्यप्रदेश सरकारका मुख्य विरोध ह्रस्व इ की मात्राके बारेमें था। वह पुराने तरीकेको ही चलाना चाहती थी। उसने संयुक्ताक्षरोंमें 'श्री' के बदले 'श्री' को पसन्द किया। उसका कहना था कि संयुक्ताक्षरमें 'ह्' यदि प्रथम अक्षर

हो तो उस 'ह' को हलन्त बनाना चाहिए लेकिन सुझाव था कि 'र' को हलन्त न बनाया जाए। उसके बारेमें आज जो तरीके हैं उन्हें ही चलने दिया जाए।

केन्द्रीय सरकारने सन् १९५५ में लखनऊ परिषदके निर्णयोंको मान लिया था और उसने प्रदेश राज्योंको सूचित कर दिया था कि उनपर अमल किया जाए। लेकिन स्वयं उत्तर प्रदेशमें और अन्यत्र भी, जैसे-जैसे उन निर्णयोंपर अमल करनेकी बात आई, वैसी-वैसी कुछ दिक्कतें उभरने लगीं। तब उत्तर प्रदेश सरकारने अपने राज्यकी सीमामें ही एक दूसरा लिपि सुधार सम्मेलन किया। यद्यपि उसमें अखिल भारतीय कीर्तिके भाषाविद् एवं विद्वान् शामिल थे। फिर भी यह सम्मेलन उत्तर प्रदेशीय सम्मेलन था।

उत्तर प्रदेशीय लिपि सुधार सम्मेलन सन् ५७ के निर्णय

(१) सन् ५३ में हुए अ. भा. लिपि सुधार सम्मेलन द्वारा संशोधित देवनागरी लिपिके स्वरों, व्यञ्जनों और अंकोंके प्रचलित रूपोंको स्वीकार किया जाए।

(२) ह्रस्व 'इ' की मात्रा अपवाद स्वरूप व्यञ्जनके बाईं ओर ही लगाई जाए। यथा—'कि'।

(३) (अ) संयुक्ताक्षर जहाँ सम्भव हो वहाँ संशोधित वर्णोंके मूलभूत अंग खड़ी पाईको हटाकर बनाए जाएँ। लेकिन संयोज्य वर्ण 'र' को पुराने ही ढंगसे मिलाया जाए।

(आ) क, फ, र और ह को छोड़कर अन्य वर्णोंमें हलन्त लगाकर संयुक्ताक्षर बनाए जाएँ और (इ) ट, ठ, ड, ढ और द में विकल्प स्वीकार किया जाए। जहाँ हलन्त लगानेसे उच्चारण-दोष आनेका डर हो, वहाँ पुरानी परिपाटीसे संयुक्ताक्षर बनाए जाएँ।

(४) 'र' के सम्बन्धमें निर्णय हुआ कि रेफके पुराने तीनों रूप मान लिए जाएँ और उनका प्रयोग पुराने ढंगपर हो। यथा—

प्रकार, धर्म, राष्ट्र

(५) लखनऊ परिषदके शिरोरेखा, विराम चिह्न, टाइप राइटरके मुद्रीपटलके (की-बोर्ड) चिह्न तथा अनुनासिक एव अनुस्वार सम्बन्धी निर्णय ज्यों-के-त्यों कायम रखे गए।

(६) उत्तर प्रदेश शासनने अपनी इस परिषदकी सिफारिशोंको माना। सिर्फ उसने '९' सम्बन्धी निर्णयपर अमल नहीं किया।

चूंकि इस परिषदका दायरा उत्तर प्रदेश तक ही सीमित था, इसलिए भारत सरकारका शिक्षा-मंत्रालय उन सिफारिशोंको पूरे भारतके लिए एकदम नहीं स्वीकार कर सका तथा उन सुझावोंपर विचार करनेके बाद उसने समस्याको हमेशाके लिए निपटा डालनेकी दृष्टिसे ८, ९, अगस्त १९५९ को राज्योंके शिक्षा-मंत्रियोंकी एक परिषद बुलवाई। उसके पहिले देशमें इस समस्याके जो जानकार पंडित गण हैं, उनका भी मत ले लेना उसने ठीक समझा। इसलिए विशेषज्ञोंका एक सम्मेलन भी ४ अगस्त १९५९ को दिल्लीमें आमन्त्रित किया गया। इस सम्मेलनने जो निष्कर्ष निकाले, उन्हें मानते हुए शिक्षा-मन्त्रियोंकी परिषदने निम्नलिखित प्रस्ताव किया—

"सन १९५३ में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा देवनागरी लिपिमें सुधारके लिए आमन्त्रित सम्मेलनने जो प्रस्ताव स्वीकार किए थे, उनको तथा सन् ५७ के दूसरे उत्तर प्रदेश सम्मेलनने जो संशोधन किए थे, उनको, यह शिक्षा-मंत्रियोंकी परिषद स्वीकृति देती है।"

इस प्रस्तावके साथ परिषदने एक स्पष्टीकरणका नोट भी लगाया जिसके अनुसार ॠ तथा ॡ को वर्णमालासे हटा दिया गया। ड़ तथा ढ़ बढ़ा लिये गए। 'श्री' को 'श्‍री' न लिखकर 'श्री' ही लिखा जाना चाहिए, यह बात मान ली गई।

अब अन्तिम रूपसे भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालय एवं राज्योंके शिक्षा मन्त्रियोंकी परिषद द्वारा स्वीकृत एवं संशोधित नागरी लिपि तथा अंकोंका स्वरूप एवं संयुक्ताक्षर बनानेके नियम, विराम चिह्न आदि इस प्रकार हैं—

(शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा स्वीकृत)
संशोधित हिन्दी वर्णमाला

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ अं अः

मात्राएँ—

ा (आ) ि (इ) ी (ई) ु (उ) ू (ऊ) ृ (ऋ)
े (ए) ै (ऐ) ो (ओ) ौ (औ) ं (अं) : (अः)

व्यञ्जन

क ख ग घ ङ य र ल व
च छ ज झ ञ श ष स ह
ट ठ ड ढ ण क्ष ज्ञ श्र
त थ द ध न ड़ ढ़ ळ।
प फ ब भ म

अंक

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

स्पष्टीकरण

(१) हिन्दीमें ॠ (दीर्घ ऋ) का प्रयोग नहीं होता, अतः इसे स्वरोंमें सम्मिलित नहीं किया गया है।

(२) संयुक्ताक्षर—

(१) खड़ी पाईवाले व्यञ्जन—

ख ग घ च ज झ ञ ण त थ ध न प ब भ म य ल व श ष क्ष ज्ञ

खड़ी पाईवाले व्यञ्जनोंका संयुक्त रूप खड़ी पाईको हटाकर ही बनाया जाना चाहिए। यथा :

ख्याति, लग्न, विघ्न

कच्चा, छज्जा, व्यञ्जन

नगण्य

कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास

प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य

शय्या

उल्लेख

व्यास

श्लोक

राष्ट्रीय

स्वीकृत

यक्ष्मा

(३) अन्य व्यञ्जन :

(क) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर बनानेका वर्तमान ढंग ही कायम रहेगा। यथा :
संयुक्त, पक्का, दफ्तर।

(ख) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, और द के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा :
वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या आदि
(वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या नहीं)

(ग) संयुक्त 'र' के पुराने तीनों रूप यथावत् रहेंगे। यथा :
प्रकार, धर्म, राष्ट्र।

(घ) 'श्र' का पुराना रूप जैसा 'श्री' में है वैसा ही कायम रहेगा।

(ङ) 'त्र' के स्थानपर अब 'त' और 'र' का संयुक्त अक्षर 'त्र' रहेगा।

(च) 'ह' का संयुक्त रूप वर्तमान प्रणालीके साथ ही हल् चिह्न लगाकर भी किया जा सकेगा।
यथा :—

चिह्न और चिह्‌न (चिह्न नहीं)

(छ) संस्कृतमें संयुक्ताक्षर पुरानी शैलीसे भी लिखे जा सकेंगे।

(४) अन्य निश्चय १९५३ में हुए थे वे ही कायम रहेंगे। यथा :

(१) शिरोरेखाका प्रयोग प्रचलित रहेगा।

(२) (क) फुलस्टापको छोड़कर शेष विराम आदि चिह्न वही ग्रहण कर लिए जाएँ जो अँग्रेजीमें प्रचलित हैं। यथा :

(- — , ; । ? ! :)

विसर्गके चिह्नको ही कोलनका चिह्न मान लिया जाए)

(ख) पूर्ण विरामके लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाए।

(ग) जहाँ तक सम्भव हो टाइपराइटरके मुद्रीपटलमें निम्नलिखित चिह्नोंको सम्मिलित कर लिया जाए—

(ˎ ˙ · % " " ( ) + × ÷ * = ‿)

(३) अनुस्वार और अनुनासिक दोनों (ं ँ) प्रचलित रहेंगे।

यद्यपि एक प्रकारसे देवनागरी लिपिमे आवश्यक संशोधन कर उसका अन्तिम रूप निश्चित कर दिया गया है और शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा उसपर स्वीकृति की मुहर भी लगा दी गई, फिर भी अनेक लिपि-निष्णातोंका और टेकनीशियनोंका स्पष्ट मत है कि लिपिको अन्तिम रूप देनेके पहले जितना विचार-विनिमय कर लेना चाहिए था, नही किया गया, और न उन टेकनीशियनोंसे उचित परामर्श किया गया जिनकी सलाह और सहयोग के बिना देवनागरी लिपि विविध मुद्रण यन्त्रोंके लिए उपयोगी नहीं हो सकती। यही कारण है कि यद्यपि लिपिका अन्तिम रूप निश्चित हुए काफी समय बीत चुका है, किसी भी टाइप राइटर कम्पनीने उसका प्रयोग नही किया है। उनकी दृष्टिमें जो निर्णय किए गए है, वे मशीनकी दृष्टिसे व्यावहारिक नहीं है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा-जैसी संस्था भी यह मानती है कि 'अ' की स्वराखड़ीको न स्वीकार कर एक आवश्यक संशोधन की उपेक्षा की गई है। उसका निश्चित मत है कि आज नहीं तो कल देवनागरीको यंत्रोंके लिए उपयोगी बनानेके लिए उसमे 'अ' की स्वराखड़ीको अवश्य स्वीकार करना होगा।

राष्ट्रभाषा सम्मेलनके तिनमुकियामे सम्पन्न हुए १० वें अधिवेशनमें इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास किया गया था जो इस प्रकार है:—

"केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयकी ओरसे देवनागरी लिपिको जो अन्तिम रूप दिया गया है, उसे हम स्वीकार करते है, पर हमारा मन्तव्य है कि मन्त्रालयकी लिपि-निष्णातोंकी समितिने देवनागरी लिपिके सम्बन्धमें अखिल भारतीय स्तरपर विचार नहीं किया है। हम और हमारे सभी नेता चाहते हैं कि सभी प्रदेशीय भाषाएँ देवनागरी लिपिमें भी लिखी जाएँ, ताकि प्रदेशीय साहित्य सारे भारतको सुलभ हो। इस दृष्टिसे कुछ नये चिह्न बनाना होगा और उसके लिए कुछ घटाना भी होगा। हम चाहते हैं कि मन्त्रालय इसपर ध्यान दे और ऐसे परिवर्तनके लिए निष्णातोंकी समिति बनाकर विचार करे।"

केन्द्रीय सरकार और उसका शिक्षा-मन्त्रालय इस दिशामें कुछ ठोस कदम उठाये और देवनागरी लिपिमें समयोचित सुधारकर उसे अन्तिम रूप दे—यह वांछनीय है।

राजकाजके लिए जिस प्रकार हिन्दी राजभाषाके रूपमें स्वीकार की गई, उसी प्रकार देवनागरी लिपि राजलिपिके लिए स्वीकार कर ली गई है। किन्तु हिन्दी और देवनागरीकी ये यात्राएँ यहीं समाप्त नहीं हो जाती है, उन्हें सच्चे अर्थोमें राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि बनना है।

आज राष्ट्रको सबसे बड़ी आवश्यकता यदि किसी वस्तु की है, तो वह है राष्ट्रीय ऐक्य की।

विकासकी सभी सीढ़ियोंका आधार राष्ट्रीय एकता है। अतः प्रत्येक देशभक्तका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उन सभी मार्गोंका अवलम्बन करे, जो राष्ट्रीय ऐक्यके सम्वर्द्धनमें सहायक सिद्ध होते हैं।

राष्ट्रपिता पूज्य गाँधीजी इतने दूरन्देश थे कि उन्होने राष्ट्रीय एकतासे सम्वन्धित उन सभी समस्याओंपर बहुत पहले ही प्रकाश डाला था जो आज हमारा ध्यान आर्कषित कर रही है। राष्ट्रकी भावनात्मक एकताकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा हिन्दीका महत्त्वांकन तथा उसके प्रचार-प्रसारका बहुत कुछ श्रेय उन्हीको है। इसीके साथ उन्होंने एक दूसरे विषयकी ओर भी संकेत किया था, जिससे एक भारतीय राष्ट्रीयताका भाव अधिक परिपुष्ट होता—और वह था सम्पूर्ण भारतकी भाषाओका देवनागरी लिपिमे लिखा जाना।

लेकिन गाँधीजी के पहले भी स्वामी दयानन्द सरस्वती, बंकिमचन्द्र चटर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जस्टिस शारदाचरण मित्र आदि सुधी पुरुषोने देशके लिए एक सामान्य लिपिके रूपमें देवनागरीको स्वीकार कर लिया था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी उन्होंने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की किरणें राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिमे बिखेरी थी। वस्तुतः स्वामीजीने अपने विचारोंके वाहनके रूपमे राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिको अपनाकर देशकी महान् सेवा की है। इसके लिए देश उनका चिरकाल तक ऋणी रहेग'।

देवनागरी लिपिके समर्थकों मे जो दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम है वह है, जस्टिस श्री शारदाचरण मित्रका। बगालके विषयमें प्रसिद्ध है कि "बंगाल जिसे आज सोचता है सारा हिन्दुस्तान उसे कल सोचेगा।" स्वामीजीने यद्यपि अपने ग्रन्थ देवनागरी लिपिमे प्रकाशित कर एक युगान्तकारी कार्य किया था, फिर भी वह प्रयास व्यक्तिगत ही रहा। देवनागरी लिपिके लिए आन्दोलनकी लहर उठी बंगालसे ही और उसके जनक थे श्री शारदाचरणजी। उन्होंने एक लिपि-विस्तार परिषदकी स्थापना की और 'देवनागर' नामक एक पत्रिका भी निकाली। यद्यपि यह पत्रिका दीर्घजीवी न हो सकी, किन्तु श्री शारदाचरणजी ने भारतके भाषा और लिपि विषयक मतभेदोंकी अराजकताके बीच जिस ज्योतिको प्रज्वलित किया वह भविष्यके लिए आलोक स्तम्भ बन गई।

श्री मित्र महोदयका 'देवनागर' जिस उद्देश्यको अपने सामने रखकर चला था वह महान् था—

"जगद्विख्यात भारतवर्ष ऐसे महाप्रदेशमे जहाँ जाति-पाँति, रीति, नीति, मत आदिके अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे है। भावकी एकता रहते भी भिन्न-भिन्न भाषाओंके कारण एक प्रान्तवासियोंके विचारोंसे दूसरे प्रान्तवालोंका उपकार नही होता। इसमे सन्देह नही कि भाषाका मुख्य उद्देश्य अपने भावोको दूसरोपर प्रकट करना है, इससे परमार्थ ही नही समझना चाहिए अर्थात् मनुष्यको अपना विचार दूसरोंपर इसीलिए प्रकट करना पड़ता है कि उससे दूसरोंको लाभ हो, किन्तु स्वार्थ साधनके लिए भी भाषाकी बड़ी आवश्यकता है। इस समय भारतवर्षमे अनेक भाषाओंका प्रचार होनेके कारण प्रान्तिक भाषाओसे सर्वसाधारणका लाभ नहीं हो सकता। भाषाओंको शीघ्र एक कर देना तो परमावश्यक होनेपर भी दुस्साध्य-सा प्रतीत होता है, परन्तु इस अवस्थामें भी जब यह देखा जाता है कि अधिकांश लोग कश्मीरसे कुमारी अन्तरीप, और ब्रह्म देशसे गान्धार पर्यत हिन्दी या इसके रूपान्तरका व्यवहार करते है तब आशा है कि सबकी चेष्टा तथा अभिरुचि होनेसे कालान्तरमें प्रान्तिक भाषाओंके सम्मिलनसे एक सार्वजनिक नूतन भाषाका आविर्भाव हो जाएगा।"

इस गन्तव्य तक पहुँचनेके लिए देवनागरमें लिपिकी एकताको पहली सीढ़ी स्वीकार किया गया था—

"एक ऐसा वृक्ष भी रोपना चाहिए जिसमें एक भाषा रूपी सर्वप्रिय फल फले। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी भिन्न-भिन्न बोलियोंको एक लिपिमें लिखना ही उस आशानुरूप फलका देनेवाला प्रधान अंकुर है। क्योंकि अनेक प्रान्तिक बोलियोंको सरल करनेकी पहली सीढ़ी उन्हें एक सामान्य सर्वसुगम लिपिका वस्त्र पहनाना है जिसमें वह अपने चित्र-विचित्र लिपियोंका परिच्छद छोड़कर एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तके निवासियोंके सम्मुख आनेपर सहजमें पढ़ी जा सके और थोड़े ही परिश्रमसे समझी जा सके।"

न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्रके प्रयत्नसे उस समय 'एक लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना हुई थी। इस संस्थाके उद्देश्यको स्थापकोंने इन शब्दोमे बाँधा था—"एक लिपि विस्तार परिषदका उद्देश्य है भारतकी भिन्न-भिन्न प्रान्तिक भाषाओंको यथा साध्य यत्नों द्वारा देवनागरी अक्षरोंमें लिखने और छापनेका प्रचार बढ़ाना, जिससे कुछ समयके अनन्तर भारतीय भाषाओके लिए एक सामान्य लिपि प्रचलित हो जाए। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए 'देवनागर' का आविर्भाव हुआ।"

श्री शारदाचरणजी देवनागरी लिपिके प्रचार-प्रसारके लिए कितने प्रयत्नशील थे, उसका पता इस बातसे ही चलता है कि सन् १९१० में प्रयागमे होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनके समय उन्होंने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनजीको प्रेरित कर 'नागरी सम्मेलन' करानेका आयोजन किया था। उस सम्मेलनके अध्यक्ष पदसे श्री कृष्णस्वामी अय्यरने जो विचार व्यक्त किए थे, उन्हें यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा—

"मै आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप क्षणभर इस बातपर विचार करें कि विभिन्न लिपियों-का व्यवहार करनेसे हम कितनी बड़ी हानि उठा रहे है; क्योकि वे जनताके एक भागको दूसरे भागसे पृथक करती है। भाषा अलग-अलग हो भी, किन्तु यदि उनकी लिपि एक ही हो, तो लोगोंको शब्दों, वाक्यों, अभिव्यक्तिके ढंगकी समानताके कारण अपनी भाषाके अतिरिक्त अन्य भाषाओंका समझना भी सरल होगा।"

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारतके उन जननायकोंमेसे एक है, जिन्होंने विदेशी शासनके विरुद्ध खड़े होकर जन-जागरणके लिए शंख-ध्वनि की थी। उनकी प्रकांड विद्वत्ता उतनी ही महान् थी, जितनी गम्भीर उनकी भारतके प्रति भक्ति थी। सभी प्रान्तीय भाषाओके लिए जब एक लिपिका प्रश्न उठा, तब दो-चार व्यक्तियोंने उसके लिए रोमन लिपिकी सिफारिश की थी। भारतीय भाषाओके लिए रोमन लिपि के समर्थनकी निरर्थकताको सिद्ध करते हुए लोकमान्य तिलकने दृढ़ताके साथ ये विचार प्रकट किए थे—

"लिपि सम्बन्धी प्रश्नको टालनेके लिए एक समय यह कहा गया था कि हम सब रोमन लिपिको स्वीकार कर लें। इसके समर्थनमें एक युक्ति यह दी गई थी कि इससे केवल भारत ही में नही, एशिया और यूरोपके बीच भी एक सर्वसामान्य लिपि कायम हो जाएगी। यह बात मुझे निरी भ्रमात्मक जान पड़ती है। यदि हमे सर्वसामान्य लिपिकी जरूरत है, तो उस लिपिको स्वीकार करना चाहिए जो रोमन लिपिसे अधिक पूर्ण और सांगोपांग हो। यूरोपके संस्कृत पण्डितोंने प्रकट किया है कि देवनागरी वर्णमाला उन सब अक्षरोंसे पूर्ण है, जो आजकल यूरोपमे प्रचलित है। अतएव ऐसी हालतमे आर्य भाषाओंके लिए सर्वसामान्य लिपिकी खोजमें दूसरी जगह जाना आत्मघातक है।"

युगो-युगोंके पश्चात् ही कोई देश राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसा कर्णधार-नेता पाकर गौरवमान बनता है। जीवनका ऐसा कौन पहलू है, कौन समस्या है जिसपर गाँधीजीने प्रकाश न डाला हो, हल न उपस्थित किया हो। भारतके लिए एक सामान्य भाषा और एक सामान्य लिपिकी आवश्यकतापर उनका ध्यान तभी जा चुका था जब वे अफ्रीकासे भारत वापस भी नही आए थे। गाँधीजीने समग्र देशकी भाषाओंके लिए देवनागरी लिपिको स्वीकार करनेके लिए बार-बार बल दिया है। उन्होंने एक स्थानपर लिखा है—

"लिपि विभिन्नताके कारण प्रान्तीय भाषाओंका ज्ञान आज असम्भव हो गया है। बॅगला लिपिमें लिखी हुई 'गीतांजलि' को सिवा बंगालियोंके और पढ़ेगा कौन? पर यदि वह देवनागरी लिपिमें लिखी जाय, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं।...हमें अपने बालकोंको विभिन्न प्रान्तीय लिपियाँ सीखनेका व्यर्थ कष्ट नही देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरीके अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया और बंगला—इन छह लिपियोंको सिखानेमें दिमाग खपानेको कहा जाय। आज कोई प्रान्तीय भाषा सीखना चाहे, तो लिपियोंका यह अभेद्य प्रतिबन्ध ही उनके मार्गमें कठिनाई उपस्थित करता है।"

गाँधीजी वाग्वीर नहीं कर्मवीर थे। उनकी 'कथनी' और 'करनी' में कोई अन्तर नही रहा करता था। इसीलिए उन्होंने न केवल देवनागरी लिपिका मौखिक समर्थन किया, बल्कि उन्हीकी प्रेरणासे 'नवजीवन' प्रकाशन, अहमदाबादने उनकी आत्मकथा 'सत्यनो प्रयोग' को गुजराती भाषा और देवनागरी लिपिमे प्रकाशित किया था। जिसकी भूमिकामें गाँधीजीने लिखा था—

"मै जब दक्षिण अफ्रिकामें था, तव यह स्वप्न देखा करता था कि संस्कृतसे निकली हुई सभी भाषाओंकी एक समान लिपि होनी चाहिए और वह लिपि एक मात्र देवनागरी ही है।"

लेकिन यह स्वप्न अभी तक स्वप्न ही है। एक लिपिके लिए अनेक हलचलें चल रही है, लेकिन बिल्लीके गलेमें घण्टी कौन बाँधे? यह काम सर्व प्रथम कौन करे?

इस समस्याको हल करनेकी दृष्टिसे "सत्यनो प्रयोग" की यह देवनागरी आवृत्ति निकाली गई है। यदि लोग इसे अपनाएँगे, तो नवजीवन पुस्तक प्रकाशन अन्य पुस्तकोंको भी देवनागरी लिपिमें प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेगा।

इस साहसका दूसरा हेतु यह है कि हिन्दी जनताको गुजराती पुस्तक देवनागरी लिपिमें प्राप्त हो। मेरा अभिप्राय यह है कि यदि गुजराती आदि भाषाकी पुस्तकें देवनागरी लिपिमें प्रकाशित हों, तो उससे भाषा सीखनेकी समस्या आधी सुलझ जाती है।

भारत रत्न राजेन्द्रप्रसादजीने तो एक बार नहीं, अनेक बार इस बातको आग्रहके साथ कहा है कि यदि सम्पूर्ण भारतीय भाषाएँ अपने लिए देवनागरी लिपिको अपना लें तो देशका बड़ा कल्याण होगा।

"वर्तमान युगमें भारतीय संस्कृतिके समन्वयके प्रश्नके अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारतकी प्रत्येक प्रादेशिक भाषाकी सुन्दर आनन्दप्रद कृतियोंका स्वाद भारतके अन्य प्रदेशोंके लोगोंको कैसे चखाया जाय। इस बारेमें यह उचित ही होगा कि प्रत्येक भाषाकी साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषाकी कृतियों-को संघ लिपि अर्थात् देवनागरीमें भी छपवानेका आयोजन करें।"

—राजेन्द्रप्रसाद

असममें जब भाषाके मसलेको लेकर चारों ओर ईर्ष्या-द्वेषका धुआँ फैल गया था उस समय नेहरूजी वहाँपर गए थे और तत्कालीन कटु वातावरणको देखकर भाषाओंके विवादको मिटानेके लिए देवनागरी लिपि-की आवश्यकताको तीव्रताके साथ अनुभव किया था। यों, नेहरूजीने इसके पहले भी अपनी 'आत्मकथा' में इस प्रकारके उद्‌गार प्रकट किए हैं—

"लेकिन भारतमें यह प्रश्न आज केवल एक शास्त्रीय प्रश्न नहीं है। लिपि सुधारके कार्यमें अगला प्रोग्राम मुझे यह प्रतीत होता है कि संस्कृतकी पुत्री भाषाओं–हिन्दी, बगला, मराठी और गुजरातीके लिए एक सामान्य लिपि स्वीकार की जाए। स्थिति यह है कि इन सबकी लिपियोंका उद्‌गम और मूल स्थान एक है और इनमें परस्पर अधिक अन्तर भी नही है। अतः एक सामान्य लिपिके रूपमे एक सामान्य साधन खोज निकालना कठिन न होना चाहिए।"

आचार्य विनोबा भावे तो देवनागरीकी व्यापकताके बारेमे विशेष आशावान है। आप देवनागरी-को राष्ट्रीय एकताकी एक मजबूत कड़ी मानते है। एक स्थानपर उन्होने लिखा है—

"सारे भारतको एक रखनेके लिए जितने स्नेह-बन्धनोंसे बाँध सकते है उतने स्नेह-बन्धनोंकी जरूरत है। जैसे हिन्दी—यह एक स्नेह-तन्तु है। वैसे उतने ही महत्वका स्नेह-तन्तु नागरी लिपि है। आज भिन्न-भिन्न भाषाएँ अपनी-अपनी लिपिमें लोग लिखते है। साथ-साथ नागरीमे भी लिखते तो कितना लाभ होता! उनकी लिपि अच्छी है, सुन्दर है, हम उसका निषेध नही करते, परन्तु उसके साथ-साथ ऐच्छिक तौरपर नागरीमें वह भाषा लिखना शुरू करते है तो सारे भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ दूसरोको सीखना सुलभ होगा।"

भारतकी समस्त क्षेत्रीय भाषाओंकी लिपि देवनागरी ही हो सकती है और उसे होना चाहिए। यदि देशभरमें देवनागरी लिपिको स्वीकार कर लिया जाय तो इस बातकी सम्भावना है कि वह देशके बाहर भी स्वीकार कर ली जाएगी।"

आचार्य विनोबाजीका संकेत जापान और चीनकी ओर है। भारतीय और जापानी भाषाओंकी बनावट एकरूपताकी दृष्टिसे लगभग समान है। जापानी भाषाकी लिपि 'चित्रमय लिपि' है। यह एक कठिन लिपि है। इसलिए जापानी एक नई लिपि की खोज कर रहे है। यही बात चीनी भाषाके सम्बन्धमें है। इसलिए विनोबाजीका विश्वास है कि यदि देवनागरीको भारतकी सभी प्रादेशिक भाषाएँ अपना लें तो देवनागरी लिपि पूर्वी एशियामें अपनाई जा सकती है।

दक्षिणकी मलयालम साहित्य सभा भी देवनागरी लिपिको व्यापक बनानेका स्वागत करती है। इस सभाने तो एक प्रस्ताव पास करके यह आग्रह किया था कि मलयाली भाषाके लिए अपनी लिपिके अतिरिक्त देवनागरी लिपिको वैकल्पिक रूपमें शामिल कर लिया जाय तो कही अधिक अच्छा होगा।

भारतमें नागरी लिपिके पास संख्या-बल भी है ही। जनतन्त्रके युगमें संख्या बलका महत्त्व विशेष हुआ करता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश-जैसे चार विशाल हिन्दी प्रदेश नागरी लिपिका प्रयोग करते है। नागरी लिपिका उपयोग हिन्दी भाषाके अलावा मराठी भाषाके लिए भी होता है इसलिए पूरे महाराष्ट्रकी लिपि भी देवनागरी ही है।

गुजराती तथा नागरी लिपि इतनी परस्पर मिलती-जुलती है कि एकका जानकार बिना विशेष परिश्रमके दूसरी लिपि पढ़ सकता है। अभी कुछ ही दिन पहले तक गुजरातीमें यह प्रथा चालू थी कि पाठशालाके बच्चोंके लिए जितनी पुस्तकें प्रकाशित की जाती थीं, उनमे गद्य भाग गुजराती लिपिमें रहता था और पद्य भाग देवनागरी लिपिमें। परिणाम यह होता था कि विद्यार्थी वर्ग सहज ही देवनागरी लिपिसे—जिसे गुजरातमें 'बाल बोध' लिपि कहा जाता है—परिचित हो जाता था। यों भी गुजरातीके दो-तीन ही अक्षर ऐसे है जो देवनागरीसे कुछ विशेष भिन्नता रखते है, वरना शिरोरेखाहीन देवनागरी गुजरातीके बहुत निकट पहुँच जाती है।

उड़िया और बंगला लिपिके अक्षर भी देवनागरीसे बहुत साम्य रखते है। असमिया लिपि तो बहुत कुछ बंगला लिपि ही है। उड़िया लिपिके तो अनेक अक्षर बिलकुल देवनागरी-जैसे ही हैं, भेद केवल शिरोरेखाका है। जिन दिनों कागज उपलब्ध नहीं हुआ करता था, उत्कल प्रदेशमें कागजके स्थानपर सहजमें मिल सकनेवाला ताड़पत्र इस्तेमाल किया जाता था। ताड़पत्रपर लिखते समय यदि शिरोरेखा सीधी खीची जाय तो ताड़पत्रके फटनेका भय रहता था। इसलिए वहाँ अक्षर लिखकर शिरोरेखा गोलाकार लगाई जाती थी।

भारतीयोंका देवनागरीसे परिचित रहनेका दूसरा भी प्रमुख साधन रहा है। भारतकी भाषाओंमें संस्कृत भाषाका एक विशेष स्थान है। सभी प्रदेशोंमें उसका अध्ययन बड़ी श्रद्धाके साथ किया जाता है हिन्दुओके अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है जो प्रायः देवनागरी लिपिमें लिखे गए हैं। अतः बहुत बड़ी संख्यामे सभी प्रदेशोंके लोग देवनागरी लिपिसे परिचित होते हैं।

यदि आँकड़ोंपर दृष्टिपात किया जाय तो एक स्पष्ट चित्र सामने उपस्थित होता है। श्री मो. सत्यनारायणके शब्दोंमें—हिन्दी प्रान्तोंकी साक्षरताका प्रतिशत किसी अन्य प्रान्तकी तुलनामें कम होते हुए भी सम्पूर्ण भारतकी साक्षरतामे ३२·४३ बैठता है। यदि मराठी तथा गुजरातीके साक्षरोंकी संख्या हिन्दी साक्षरोंकी संख्यामे मिला दी जाय तो इनका प्रतिशत भारतके कुल साक्षरोंकी संख्याका ४९·२ बैठता है। इसके अलावा संस्कृत भाषा तक हिन्दी भाषाके अध्ययनके द्वारा अहिन्दी प्रान्तोंमें नागरी लिपिके इतने अधिक जानकार है कि उनकी संख्या भी इसीमें सम्मिलित कर दी जाय तो नागरी लिपिमें साक्षरोंका प्रतिशत ६० से भी अधिक हो जाता है। अब ज्यादा-से-ज्यादा दो करोड़ साक्षर ऐसे रह जाते हैं जो नागरी लिपिसे अनभिज्ञ है।"

ये आँकड़े बहुत पुराने है। इधर देशमें साक्षरता बढ़ी है। हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दीका प्रचार बढ़ा है। यदि वर्तमान समयमे आँकड़े इकट्ठे किए जायें तो निश्चय ही ६० प्रतिशतसे कहीं अधिक प्रतिशत नागरी लिपि जाननेवालोंका होगा।

वर्णमाला और लिपि दो वस्तुएँ हैं, एक नहीं। वर्ण या अक्षर लिपिसे लिखा जाता है। एक ही वर्णमाला अनेक लिपिमें लिखी जा सकती है। भारतीय वर्णमाला एक है जो 'अ' से प्रारम्भ होकर 'ह' पर समाप्त होती है। विभिन्न प्रदेशोंमें वह भिन्न-भिन्न लिपिमें लिखी जाती है। सभी प्रदेशोंकी वर्णमालाओंके अक्षरोंकी संख्या लगभग समान है और क्रम भी सभीका लगभग एक-सा है। सभी भाषा-शास्त्री इस विषयमें एक मत हैं कि यह भारतीय वर्णमाला संसार भरमें सबसे सुन्दर उपयोगी तथा पूर्ण रूपसे वैज्ञानिक है।

भारतमें दो वर्णमालाएँ और हैं—एक अरबी वर्णमाला दूसरी रोमन वर्णमाला। इन दोनों ही के जानकार भारतीय वर्णमालाके जानकारोंकी तुलनामें अत्यन्त कम है। भारतके सम्पूर्ण प्रदेशोंके लोग भारतीय वर्णमाला (अकारादिसे हकार पर्यंत चलनेवाली) से परिचित है। वर्णमाला और लिपिमें भिन्नता होते हुए भी उनमें अटूट सम्बन्ध है। अतः भारतीय वर्णमालाका व्यापक ज्ञान देवनागरी लिपिके व्यापक प्रसारके लिए काफी सहायक हो सकता है, होता है।

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी दृष्टियोंसे अगर कोई लिपि भारतके सम्पूर्ण प्रदेशोंके लिए सामान्य लिपि बननेकी क्षमता रखती है तो वह देवनागरी ही है।

भारतमें रोमन लिपिका तो कोई स्थान है ही नहीं। वह तब तक इस देशमें है जब तक अँग्रेजी यहाँ रहती है। अँग्रेजी जिस आसनपर आज बैठी है, चिरकाल तक बैठी नहीं रह सकती। अँग्रेजी इस देशमें अवश्य रहेगी, किन्तु वह अपने अत्यन्त सीमित क्षेत्रमें ही रह सकेगी। अतः रोमन लिपिका यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, एक दूसरी लिपि है जो एक प्रश्न बनकर सामने खड़ी रहती है; वह है उर्दू। उर्दू भाषा राष्ट्रभाषा की ही एक शैली है।

सरल हिन्दी और सरल उर्दू लगभग एक ही चीज है। हाँ, लिपियोंकी भिन्नता उन्हें पृथक् कर देती है। अगर किसी तरह उर्दू लिपिके स्थानपर देवनागरी लिपिको स्वीकार कर लिया जाय तो न जाने कितनी समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। दोनों लिपियोंको लेकर काफी संघर्ष हुआ था। कोशिश तो यह की गई थी कि हिन्दी नहीं हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनाया जाय और उसके लिए दोनों लिपियाँ (उर्दू और नागरी) स्वीकार की जायँ।

जब कोई प्रश्न राजनैतिक बना दिया जाता है, तब न्याय और सिद्धान्तकी बातको एक ओर रखकर समझौतेकी भाषा अपनायी जाती है। भारतमे भी यही होनेवाला था, पर वह हो न सका। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनी और देवनागरी राष्ट्रलिपि। स्वाधीनता प्राप्तिके बाद यह प्रश्न भी उत्तर प्रदेशमें किया गया था कि यदि उर्दूके साहित्यकार सामूहिक रूपसे नागरी लिपिको अपना लें और वैसी घोषणा कर दें तो हिन्दी और उर्दू—दोनों को उत्तर प्रदेश (उस समय युक्तप्रान्त) की भाषाएं मान ली जायँ। किन्तु यह योजना विफल ही रही। इस सुझाव के देनेवालोंकी यह धारणा थी कि "दो लिपियोंवाली एक हिन्दुस्तानी" की अपेक्षा "एक लिपिवाली दो भाषा—हिन्दी-उर्दू" ज्यादा ठीक होगा।

उर्दूके साहित्यकारोंसे आज भी यह अनुरोध तो किया ही जा रहा है कि वे उर्दू लिपिके स्थानपर नागरी लिपिको स्वीकार कर लें। इधर हिन्दीके साहित्यकार और प्रकाशक इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं, और इस दिशामें काफी काम हो भी चुका है, कि उर्दूका जितना भी अच्छा साहित्य है उसे देवनागरी लिपिमें छाप लिया जाय। ऐसी आशा की जाती है कि कभी न कभी उर्दू लिपिका आग्रह छोड़ा जाएगा और देवनागरीको स्वीकार कर लिया जाएगा।

भारतवर्षमें कुछ इस प्रकार की भी बोलियाँ है जिनके पास अपनी कोई लिपि नहीं है। विभिन्न अंचलोंमें रहनेवाले आदिवासियोंके पास उनकी कोई लिपि नही है। असम प्रदेशके अकेले नागा क्षेत्रमें १३–१४ बोलियाँ है। जहाँ-जहाँ ईसाई मिशनरी पहुँचे हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने इन आदिवासियोंको न केवल ईसाई बनाया है, वरन् उन्हें पूर्णतया अभारतीय बना दिया है। उनकी बोलियों को रोमन लिपि दी है। यह रोमन

लिपि उनकी बोलियोंके लिए उपयुक्त भी नहीं पड़ती है क्योंकि रोमन लिपि उन ध्वनियोंको लिख सकनेमें अपनेको असमर्थ पाती है जो ध्वनियाँ उन लिपियोंमें विद्यमान हैं, फिर भी अन्य किसी लिपिके अभावमें उन्हें रोमन लिपि स्वीकार करनी पड़ी है।

भारतके विभिन्न अंचलोंमें रहनेवाले इन आदिवासियोंकी बोलीको अगर देवनागरी लिपि दे दी जाय, तो एक ओर तो उनकी बोलियोंको एक अच्छी लिपि मिल जाएगी, जिससे वे आज तक वंचित रही हैं, दूसरी ओर उनका परिचय सहज ही उस लिपिसे हो जाएगा जो राष्ट्रकी सामान्य लिपि होगी।

सन् १९५२ में अनुसूचित जातियोंका एक सम्मेलन दिल्लीमें हुआ था। इस सम्मेलनमें जहाँ आदिवासियोंके सम्बन्धमें राष्ट्रपतिने अनेक उपयोगी सुझाव दिये वहाँ उन्होंने उनकी बोलियोंकी लिपिके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था—

"मेरा यह विचार है कि अन्य बालकोंकी तरह ही जन-जातियोंके बालकोंको भी अपनेको दो लिपियोंसे परिचित करना होगा। एक तो उस भाषाकी लिपि होगी जो उनके चारों ओर बोली जाती है और दूसरी हिन्दी लिपि होगी। संविधानके अनुसार भारतकी लिपि हिन्दी होनेवाली है। सम्भवतः यह वांछनीय होगा कि सब जन-जातियोंकी भाषाके लिए हिन्दी लिपिको ही अपनाया जाय, क्योंकि हर हालतमें जन-जातियोंके लोगोंको हिन्दी तो किसी-न-किसी अवस्थामें अखिल भारतीय प्रयोजनोंके लिए सीखनी ही होगी और उनकी अपनी किसी लिपिके अभावमें यह कहीं बेहतर है कि उनकी भाषा उस लिपिको अपनाए जो सर्वाधिक व्यापक लिपि होनेवाली है और जो वास्तवमें आज भी देशमें सर्वाधिक व्यापक लिपि है।"

सभी प्रान्तीय भाषाओंके लिए एक सामान्य लिपिके रूपमें जब देवनागरीका सुझाव दिया जाता है और जब उसका समर्थन अकाट्य तर्कों द्वारा किया जाता है, तब कुछ मौलिक प्रश्न भी उठ खड़े होते हैं और कुछ आशंकाएँ भी। तस्वीरके दूसरे पहलूपर भी हमें विचार करना ही चाहिए।

इस सिलसिलेमें जो प्रश्न, जो शंकाएं उठाई जाती हैं वे कुछ इस प्रकार की हैं—

(१) केवल लिपिका भेद मिटा देने मात्रसे अन्य भाषाओंका अध्ययन सुगम कैसे हो सकता है? अँग्रेजीको नागरी लिपिमें लिख देने मात्रसे क्या अँग्रेजी-ज्ञान न रखनेवाला कोई व्यक्ति उसे समझ सकेगा?

(२) भिन्न भिन्न भाषाओंकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ रहें, यह स्वाभाविक ही है। लिपिका भेद मिटा देने मात्रसे सब लोग भाषाओंको पढ़नेमें प्रवृत्त होंगे ही—ऐसी बात भी नहीं है।

(३) यदि देवनागरीको भारतीय भाषाओंकी सामान्य लिपि स्वीकार कर लिया जाय तो वर्तमान प्रान्तीय लिपियोंका क्या होगा? क्या उन्हें सदाके लिए लुप्त होने दिया जाएगा।

(४) इन प्रान्तीय लिपियोंमें जो असीम प्रान्तीय साहित्य पड़ा है, लिपिके लुप्त होते ही उसका क्या होगा? लिपिमें परिवर्तन कर इस अमूल्य साहित्य-भंडारको गँवाना कहाँ तक बुद्धिमानी होगी?

(५) आज जब भाषाओंको लेकर इतनी तनातनी है तब क्या यह उचित होगा कि एक नये लिपि आन्दोलनको अंकुरित किया जाय?

ये प्रश्न ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और जिनपर गम्भीरतासे विचार करना होगा।

(१) भारतकी प्रादेशिक भाषाओंका आभ्यन्तर स्वरूप कुछ ऐसा है कि केवल लिपि परिवर्तनसे अन्य भाषाओंका समझना और अध्ययन करना सुगम हो सकता है। सभी भाषाएँ संस्कृतसे सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृतकी प्रचुर शब्दावली सभी प्रादेशिक भाषाओंमें विद्यमान है। दक्षिण तक की भाषाओंमें संस्कृतके शब्द कम नही हैं अतः इस शब्दावलीसे परिचित होनेके कारण बहुत कुछ समझा जा सकता है।

अँग्रेजीका उदाहरण देना गलत है। अँग्रेजी पूर्ण रूपसे एक विदेशी भाषा है। अँग्रेजी और भारतकी प्रादेशिक भाषाओंमें किसी प्रकारका कोई साम्य नहीं है।

(२) प्रत्येक भाषाके लिए एक अलग लिपि हो ही—यह आवश्यक नहीं है। योरोपमें भाषाएँ अनेक है, पर उनकी लिपि एक है। भारत एक विशाल देश है। उसमें अनेक भाषाएँ हो सकती है, पर यह आवश्यक नही कि उनकी लिपियाँ भी भिन्न भिन्न रहें। बड़े लाभके लिए छोटे लाभकी हानि उठाना अनुचित नहीं। दूसरे, जो सुझाव अभी दिया जा रहा है वह 'भी' का है 'ही' का नही। प्रादेशिक लिपिके साथ-साथ नागरी लिपिमे भी लिखनेका प्रश्न है।

(३) प्रत्येक लिपिमें परिवर्तन होते रहते है। कालान्तरमें एक ही लिपिका रूप इतना बदल जाता है कि उसके आदि और अन्तके रूपोंमें कोई साम्य नही दिखाई देता। इसी प्रकार अनेक नई लिपियाँ अस्तित्वमें आती है और अनेक विलीन हो जाती है। दूसरे, आज तो इन लिपियोंको पूर्ण रूपसे लादने-का प्रश्न भी नहीं है। लिपि परिवर्तनका काम जल्दी नहीं हो सकता। प्रत्येक सुधार और प्रत्येक परिवर्तनका यही रूप होना चाहिए कि वह शनैः-शनैः हो और उसे क्रान्तिका रूप न दिया जाय। जब परिवर्तन धीरे-धीरे किया जाएगा तो वह सहनीय हो जाता है और जनता नई लिपिका धीरे-धीरे स्वागत करेगी। इस तरह कालान्तरमें यदि भारतीय लिपियोंकी बहुलता मिट जाय तो राष्ट्रीय भावनाकी दृष्टिसे उचित ही होगा।

(४) यही बात साहित्यके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। दिवस धीरे-धीरे ही रात्रिमें परिणत होता है। यदि हम प्रान्तीय साहित्यके अच्छे अंशको धीरे-धीरे देवनागरी लिपिमें भी प्रकाशित करते चले तो समस्या पैदा न होगी। देवनागरीमें प्रकाशित प्रान्तीय साहित्यका क्षेत्र स्वभावतः व्यापक होगा। अतः आर्थिक दृष्टिसे भी वह हानिकार सिद्ध न होगा। जहाँ तक प्राचीन साहित्यका प्रश्न है, उसका जितना अंश सुन्दर है, शक्ति शाली है समृद्ध है, उतना अंश अपने आप देवनागरीमें अपना स्थान बना लेगा। रवि ठाकुर, शरत, प्रेमचन्द, प्रसाद, मेघाणी, बल्लतोळ, तमिळ कवि भारती और इसी प्रकारके समृद्ध साहित्यकारोंकी रचनाएँ भाषा और लिपिकी सीमाएँ पारकर अनुवादके माध्यमसे न केवल देशमें वरन् विदेशोंमें भी पहुँच ही रही हैं। सुन्दर समृद्ध साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। उसमें अमर रहनेकी अवर्णनीय शक्ति रहती है।

(५) भाषाओंको लेकर आज जो तथाकथित तनातनी दिखाई देती है वह विकृत राजनीतिका परिणाम है। वह भयावह कितनी भी लगती हो; है क्षण स्थायी। ज्यों-ज्यों हममें राष्ट्रीय भावनाका उदय और विकास होगा, ज्यों-ज्यों हम अपनी क्षुद्र सीमाओंसे ऊपर उठेंगे, ज्यों-ज्यों हमें अपने राष्ट्रीय गौरवका भान होगा, हम इस प्रकारके विभेदी विचार रखना छोड़ कर एकताका भाव अनुभव करेंगे।

इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टिसे एक लिपिके ग्रहण एवं प्रचारका प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। देवनागरी लिपिको एक सामान्य लिपिके रूपमें स्वीकार कर लेनेसे क्या-क्या लाभ होंगे उनकी आज कल्पना करना भी कठिन है।

भारतमें सर्व सामान्य एक लिपिके विस्तारका प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है। गत ६० वर्षोंमें अनेक बार यह चर्चाका विषय बना है। देशके कर्णधारोंका, विद्वानोंका और दूरदर्शी मनीषियोंका समर्थन इसे प्राप्त होता गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह समय आ गया है जब उस प्रश्नका हल निकालकर उसपर अमल करना चाहिए। यदि दूरदर्शी विद्वान् और नेतागण विचार पूर्वक एक निश्चित योजना तैयार करें और उसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करें तो विशेष सफलता मिलनेकी सम्भावना है।

प्रादेशिक भाषाओंके लिए देवनागरी लिपिका प्रयोग प्रारम्भ हो, इस दिशामें काम करनेके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है——

१——प्रान्तीय भाषाओंकी ऐसी पुस्तकें, जिनके प्रति जनतामें सहज आकर्षण है, देवनागरी लिपिमें भी प्रकाशित की जायँ।

२——दूसरी भाषाओंकी ऐसी पुस्तकोंका, जिन्हें पढ़नेके लिए लोग इच्छुक रहते है, प्रान्तीय भाषामें अनुवाद करके उन्हें देवनागरी लिपिमें प्रकाशित किया जाय।

आचार्य विनोबा द्वारा लिखित 'गीता-प्रवचन' एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसका अध्ययन-मनन प्रत्येक जिज्ञासु करना चाहता है। विनोबाजीके सुझावोंके अनुसार मूल पुस्तकका अनुवाद १८ भाषाओंमें हो चुका है। है। सभी अनुवाद भाषा-विभिन्नता रखते हुए भी देवनागरी लिपिमें प्रकाशित हुए है।

३——प्रान्तीय भाषाओंके समाचार-पत्र यदि अपने कुछ कालमोंमे प्रान्तीय भाषा और देवनागरी लिपिका प्रयोग करें, तो लाखों पाठक देवनागरी लिपिसे सहज ही परिचित हो सकते है।

४——शालाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंमे जितने भी पद्य दिये जायँ, वे प्रान्तीय भाषा और देवनागरी लिपिमें रहें। प्रारम्भिक वर्गोंमें नागरी लिपिके लिखानेका आग्रह रखा जाय। वे नागरी लिपिमे लिखी अपनी प्रान्तीय भाषा पढ़ सकें——इतना ही पर्याप्त समझा जाय।

५——अहिन्दी प्रदेशोंके पुस्तकालय, वाचनालय और शालाओंमें नागरी लिपिके बड़े-बड़े चार्ट टांगे जायँ जिनमें समकक्ष प्रान्तीय लिपिके अक्षर भी रहें।

इसी दिशामें श्री वासुदेव द्विवेदीजीने भी कुछ सुझाव दिये है उन्हें भी यहाँ दिया जा रहा है:——

१——सभी प्रादेशिक भाषाओंके सभा-सम्मेलनोंमें यह प्रस्ताव रखा जाय और उसे बहुतसे और यदि सम्भव हो तो निर्विरोध रूपमें पारित करानेका प्रयत्न किया जाय।

२——विभिन्न प्रदेशोंकी सरकारों, साहित्यिक संस्थाओं, प्रकाशकों तथा लेखकोंसे नागरीमें भी प्रतिवर्ष कुछ चुनी हुई पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए अनुरोध किया जाय।

३——अन्य भाषाओंकी कृतियोंको नागरी लिपिमें प्रकाशित करनेके मार्गमें जो कुछ लिपि सम्बन्धी कठिनाइयाँ है, उनका अखिल भारतीय स्तरपर विचार विमर्श कर उन्हें दूर करनेके सिद्धान्त निश्चित किये जायँ।

४——नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के द्वारा विशेष रूपसे कुछ अन्य भाषाओंकी पुस्तकोंका नागरी लिपिमें प्रतिवर्ष प्रकाशन किया जाय।

५——विभिन्न संस्थाओं द्वारा अब तक नागरी लिपिमें जो अन्य भाषाओंकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, उनका अधिकाधिक प्रचार किया जाय तथा उनकी बिक्री बढ़ाई जाय।

६—सर्वप्रथम अन्य भाषाओंके साहित्यसे ऐसे अंशोंका संकलन किया जाय, जो विषयकी दृष्टिसे सबके लिए अधिक-से-अधिक परिचित हों तथा भाषाकी दृष्टिसे संस्कृत-बहुल हों।

७—केवल नागरी लिपिके विस्तारके लिए ही एक अलग संस्था बनाई जाय, जो सभी सम्भव एवं वैध उपायोंसे इस आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए प्रयत्न करें और उसके संचालनके लिए राजकीय सहायता भी प्राप्त की जाय।

८—अनेक भाषाओंके अध्ययनमें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंका एक सम्मेलन बुलाया जाय तथा उनका संगठन किया जाय।

९—समय-समय एवं स्थान-स्थानपर विभिन्न भाषाओंकी सरल एवं ललित कविताओंके पाठका आयोजन किया जाय।

१०—सभी प्रादेशिक पाठ्य-पुस्तकोंमें टिप्पणीके साथ एक-दो अन्य भाषाओंकी कुछ ऐसी कविताका प्रकाशन किया जाय, जो अधिक संस्कृत शब्द होनेके कारण सबके लिए सुबोध हों।

अन्तमें इस बातको दुहरा देना अप्रांसगिक न होगा कि यदि देवनागरी लिपिको एक सामान्य लिपि मान लिया गया तो वह भारत राष्ट्रकी एकताके लिए एक मजबूत कड़ी सिद्ध होगी। राष्ट्रपिता गाँधीजीके इस कथनसे हम प्रेरणा ले यह वांछनीय है।

"हमारे देशकी जनताका बहुत बड़ा हिस्सा निरक्षर है। उसे साक्षर बनानेकी दिशामें एक समान लिपिका प्रयोग महत्वपूर्ण कदम होगा। समान लिपिका प्रयोग देशकी एकता के संवर्द्धनके लिए सहायक सिद्ध होगा। तमिळ, तेलुगु कन्नड आदि दक्षिणी भाषाएँ भी देवनागरी लिपिमें लिखी जायँ। समान लिपि हो तो किसी भी भाषा-भाषीके लिए अन्य प्रादेशिक भाषाएँ सीखना आसान हो जायगा।"

देवदास गांधी

पाँचवाँ खण्ड

राष्ट्रभाषा प्रचार

श्री कान्तिलाल जोशी

राष्ट्रभाषा हिन्दी

भारत एक विशाल देश है। हजारों मील तक फैला हुआ है। उत्तरमें हिमालयसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक लगभग २००० मीलका भूभाग है और पश्चिमी छोर द्वारिकासे लेकर पूर्वी छोर तक लगभग १७०० मीलका विस्तार है। इतने बड़े विशाल देशमें यह स्वाभाविक ही है कि अनेक भाषाएँ तथा बोलियाँ बोली जाएँ। भिन्न भिन्न आचार-विचार, वेशभूषा एवं धर्मका आचरण करनेवाले तरह-तरहके लोग भारतकी इस विविधताका दर्शन कराते हैं। ऊपरसे लगता है कि यहाँ बड़ी विषमताएँ हैं, पर अन्तरंगमें इन बाह्य विविधताओंके बावजूद एक अखण्ड सांस्कृतिक एकता सदासे यहाँ चली आ रही है। यह सांस्कृतिक एकता अपने आप ही नही हुई है। इसका निर्वाह और इसका पोषण यहाँके लोक-जीवनकी परम्पराओंने किया है। देशकी भौगोलिक स्थिति भी इसमें सहायक हुई है। उत्तर में एक छोरसे दूसरे छोर तक फैला हुआ हिमालय एक दीवारके रूपमें है जो भारतको अन्य देशोंसे अलग करता है। पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिणके किनारोंपर लहराते हुए सागरने इसकी भौगोलिक इकाईको अक्षुण्ण रखा है।

भारतमें सदासे ही यह भावना रही है कि हिमालयके दक्षिणकी ओरका सारा देश एक है। यहांके लोकजीवनकी सदा यह आकांक्षा रही है कि चारों दिशाओंकी सीमाओंपर स्थित चारों तीर्थोंका दर्शन अपने जीवनकालमें किया जाय। उत्तरमें बद्रीनाथ, पश्चिममें द्वारिका, पूर्वमें जगन्नाथपुरी, दक्षिणमें कन्याकुमारी ये चार प्रमुख तीर्थ हैं, जिनका दर्शन करनेसे समूचे भारतकी यात्रा स्वतः हो जाती है। इनके दर्शन करना जीवनका एक लक्ष्य रहा है अतः स्वभावतः भारत-दर्शन स्वतः हो जाता है। इसके अतिरिक्त समय-समयपर नियमित रूपसे विभिन्न प्रदेशोंके निश्चित स्थानोंपर बड़े-बड़े मेले लगते रहे है, जहाँ लाखोंकी संख्यामें भारतके कोने-कोनेसे लोग एक साथ इकट्ठा होते है। इससे भाषा भेदके होते हुए भी सांस्कृतिक एकताको पोषण मिलता रहा है। राजनैतिक दृष्टिसे अनेक परिवर्तन हुए पर लोक-जीवनकी आंतरिक एक रूपता इनके कारण बनी रही।

भारतमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। पुराने कालमें भी ऐसा ही था। अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं। ऊपर दर्शाए हुए लोक-जीवनके लिए यह आवश्यक था कि कोई एक भाषा प्रधानता रखे। इसी-

लिए बहुत प्राचीन कालमें यह प्रधानता संस्कृतको मिली थी। उस समय भी भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी, पर संस्कृतको अन्तर्प्रान्तीय भाषाका सम्मान मिला था। कश्मीरसे लेकर कन्याकुमारी तकके विद्वानोंने उसमे रचनाएँ की और भारतकी एकताको सुदृढ किया। आंचलिक भाषाएँ (विविध प्राकृतें) अपने-अपने क्षेत्रमे व्यवहारमें आती थी पर अन्तर्प्रान्तीय क्षेत्रमें संस्कृतका उपयोग होता रहा। वह न केवल राष्ट्रभाषा ही थी, वरन् वह राजभाषाके रूपमें भी समादर पाती रही। संस्कृतने हमारी सांस्कृतिक एकता की वह पृष्ठभूमि तैयार की है जो हमारे देशपर अनेक संकटोंके आनेपर भी आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। समय-समयपर वैदिक प्राकृत, पाली प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाएँ भी भारतके अन्तर्प्रान्तीय रंगमंचपर आई परन्तु अपनी परम्परा और साहित्यिक महत्त्वके कारण संस्कृतकी प्रधानता एक अखिल भारतीय भाषाके रूपमें सदा बनी रही।

मुसलमानोंके आनेके पश्चात् इस परिस्थितिमे अन्तर पड़ा। वे एक अलग धर्म, अलग संस्कृति और अलग भाषा लेकर यहाँ आये। उन्हें यहाँके जनजीवनसे सम्पर्क स्थापित करना था, अतः उन्होंने यहाँकी जो व्यापक लोकभाषा रही, उसीको प्रधानता दी और उसे अपनाया। उन्होंने उसका नाम हिन्दी रखा। उसे 'रेख्ता' भी कहा गया है। मुसलमान एक शासकके रूपमें आये थे अतः उन्होंने इस भाषाके माध्यमसे अपना लोक-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। इसी हिन्दवीका वर्तमान रूप हिन्दी आज संस्कृतका उत्तराधिकारी बना है। इसमें न केवल उत्तर भारतके वल्कि पश्चिम तथा पूर्व भारतके सन्तो और साधुओंकी वाणी प्रकट हुई है। वाणिज्यके क्षेत्रमें भी इसे अपनाया गया। व्यापारी लोग आपसके व्यवहारके लिए इसी भाषाका उपयोग करते थे। अंचलोंके बीच यह श्रृखलाके रूपमें थी। राजभाषाके रूपमे इसे मान्यता न मिली पर राष्ट्रभाषाके रूपमे इसका सर्वत्र समादर होता रहा। इसके अनेक रूप देखनेको मिलते हैं। कही अधिक अरबी फारसीके प्रभावके कारण इसने 'उर्दू' का रूप धारण किया, कही सामान्य बोलचाल और व्यवहारकी भाषाके रूपमें 'हिन्दुस्तानी' का रूप प्रकट हुआ, पर संस्कृत के प्रभावके कारण हिन्दी " का रूप प्रमुख रहा। हमारी प्रादेशिक भाषाओंकी धात्री संस्कृत रही है, अतः हिन्दीमें भी उनकी तरह संस्कृत शब्दोकी प्रधानताका होना स्वाभाविक था। वस्तुतः भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा हिन्दीमें कोई मौलिक भेद नहीं है, ये वास्तवमें भिन्न-भिन्न प्रभावोंके कारण एक ही भाषाके भिन्न-भिन्न रूप है।

भूतकालमें हिन्दी अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा रही है। इसके अनेक उदाहरण मिलते है। हिन्दीमें वीरगाथा-कालके पश्चात् भक्ति-काल आया है जिसके प्रमुख सन्तकवि सूरदास और तुलसीदास है। सूरने अपने गुरुके रूपमें वल्लभाचार्यजीको माना है। सूरका कथन है:—

"श्री वल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो।।"

वल्लभाचार्यजी विशिष्टाद्वैतवादके प्रणेता थे। वे दक्षिण भारतके थे। उन्होंने तथा उनके सम्प्रदायके अन्य गुरुओंने अपने सम्प्रदायको व्यापक बनानेके लिए हिन्दीके ब्रजभाषा रूपको ही माध्यम चुना। सूरके पद इस सम्प्रदायके भारत व्यापी अनुयायिओंमें बड़े भक्ति भावसे गाये जाते थे। गुजरात तथा बंगालमें इस सम्प्रदायके अधिक अनुयायी थे। अतः वहाँ सूरके पद अधिक लोकप्रिय हो सके! इस प्रकार दक्षिण और उत्तरका सांस्कृतिक मधुर मिलन हिन्दीके माध्यमसे होता रहा।

महाराष्ट्रके सन्तकवियोंने हिन्दीमें सुन्दर एवं भावपूर्ण रचनाएँ की है। सन्तकवि नामदेवका महाराष्ट्रके सन्त साहित्यमें विशेष स्थान है। उनका जीवन काल सम्वत् १३२७ से १४०७ तक माना जाता है। उस युगमें भी उनका हिन्दीमें लिखना हिन्दीकी व्यापकताको सिद्ध करता है। उनकी रचना की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है :—

माइ न होता बाप न होता, कर्म न होता काया।
हम नहीं होते, तुम नहीं होते, कौन कहाँ से आया?
चन्द्र न होता, सूर्य न होता, पानी पवन मिलाया।
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँसे आया?

सिक्खोंके धार्मिक ग्रन्थ "गुरु ग्रन्थ साहब" में हिन्दीकी अनेक कविताएँ मिलती है। गुरुनानक तथा गुरु गोविन्द सिह हिन्दीके अच्छे कवि थे। गुरुनानकका जन्म सवत् १५२६ माना जाता है और 'गुरु ग्रन्थ साहब' का संकलन समय सम्वत् १५०६ से १५४६ तकका माना जाता है। अतः उसमें दी हुई हिन्दी रचनाएँ इस बातका प्रमाण है कि उस समय पंजाबमें हिन्दीका काफी प्रचलन था तथा एक अन्तर्प्रान्तीय भाषाके रूपमें उसका महत्त्व माना जाता है।

बंगला कवि भरतचन्द्रने अपनी रचनाओंमे हिन्दीकी भी रचनाएँ की है। गुजरातके भक्तकवि "प्रेमानन्द" के पूर्व सभी कवि ब्रजभाषामें कविता करते रहे। इस कारण प्रेमानन्दको यह संकल्प करना पड़ा कि वे गुजरातीमें ही रचना करेंगे, इसके बिना गुजरातीकी प्रगति सम्भव नही। श्यामल भट्टने तुलसी-कृत रामायणके आधारपर गुजरातीमें दोहे और चौपाइयाँ लिखी है। कवि 'दयाराम' और 'भालण' की कविताएँ हिन्दीमें मिलती है। मीरा गुजरातकी कवियित्री मानी जाती है पर साथ-साथ हिन्दीकी भी भक्त कवियित्री मानी जाती है। उन्होंने दोनों भाषाओंमें अपने हृदयके भावोंको भजनके माध्यमसे व्यक्त किया है। मैथिलीके कवि विद्यापतिके सम्बन्धमें भी यही विवाद चल रहा है कि उन्हें हिन्दीका कवि माना जाय या बंगलाका। विद्यापति तिरहुतके राजा शिवसिंहके दरबारी कवि थे। इनका काल सम्वत् १४६०के के आसपासका माना जाता है। ठेठ पूर्वमें असममें नौगाँव जिलेके लेडू पुखरी गाँवके माधवदेवकी भी कविताएँ हिन्दीमें मिलती है। उनका काल सम्वत् १४३० का माना जाता है। उनकी रचनाकी कुछ कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी गई है जो ब्रजभाषाकी हैं :—

अबहुँ माय देखत मिलत अनन्दा,
बालक माथे उगत भयो हमरे नयन चकोर श्याम चन्दा।

दक्षिणमें गोलकुण्डाके शासक मुहम्मदकुल्ली कुतुबने हिन्दीमें रचना की थी। उनका काल भी सम्वत् १५२३–१५२७ का माना जाता है। उनकी कविताकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती है :—

रुत आया कलियोंका हुआ राज,
हरि डालिके सिर फुलोंका ताज।

केरलके त्रावणकोर नरेश श्रीमन्त तपूराननने राज्यके कुल देवता श्री पद्मनाथ स्वामीकी स्तुतिमें हिन्दी (ब्रजभाषा) में कविता लिखी, जो आज भी भजनके रूपमें वहाँ अत्यन्त आदरके साथ गाई जाती है।

महाराष्ट्रके छत्रपति शिवाजी महाराजके दरबारमें हिन्दीके कवि भूषण को विशेष प्रतिष्ठा मिली थी। उन्होंने शिवाजी महाराजकी प्रशंसामें जो रचनाएँ की हैं, वे हिन्दी की हैं। स्वयं शिवाजीने भी हिन्दीमें पद रचना की है, उनका जो एक पद प्राप्त है, वह इस प्रकार है :—

जय हो महाराज गरीब निवाज।
बन्दा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी ही लाज।
मैं सेवक बहु सेवा माँगूं इतना है सब काज।
छत्रपति तुम सेकदार "शिव" इतना हमारा अर्ज।

महादाजी सिन्धियाने मराठा राज्यकी स्थापना ग्वालियरमें की। उन्हें कविता करनेका शौक था। वीर एवं राजनीतिज्ञ तो थे ही, इसके अतिरिक्त वे कृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होंने ब्रजभाषामें कृष्णपर सुन्दर रचनाएँ की हैं। कृष्णकी वंशीका वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

अरी बँसुरिया बाँसकी, कहु तप कीन्हों कौन?
उन अधरन लागी रहै, हम चाहत हैं जौन।।

+ + +

एहो ताल, तमाल तरु, बकुल, कदम्ब, रसाल!
मो सों कहिए करि, कृपा, कित माधव नन्दलाल?

+ + +

ऊधो तुम उपदेश कर, लयो सबै रस जान।
कुटिल होत सँग कुटिलके, ज्यों गुन मान कमान।।

मुसलमान शासकोंके पश्चात् अँग्रेजोंका शासन धीरे-धीरे फैला। वे अपने साथ अँग्रेजी सभ्यता एवं अँग्रेजी भाषाको लाये और उसको प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इस सम्बन्धमें लॉर्ड मेकॉलेके विचार इस बातके द्योतक हैं कि वे किस प्रकार अँग्रेजीका प्रभुत्व सारे देशमें बढ़ाना चाहते थे तथा यहाँकी प्राचीन भाषाओं और परम्पराओंको किस प्रकार नष्ट करना चाहते थे? इसके विपरीत अँग्रेजोंके शासनका प्रतीकार करनेके लिए देशमें राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे जाग रही थी। सन् १८५७ में राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर यहाँके लोगोंने एवं राजाओंने अँग्रेजोंका इस देशसे निष्कासन करनेके लिए बड़े पैमानेपर प्रयत्न किया। यह हमारे स्वतंत्रता संग्रामकी सर्वप्रथम लड़ाई थी। इसमें हम आपसी भेदभावोंको भूलकर एक रूप हुए और हमने विदेशी शासनको समाप्त करनेका संकल्प किया। यह लड़ाई प्रधानतः उत्तर भारतमें लड़ी गई। यह निर्विवाद है कि इसका सूत्रपात एक भाषाके माध्यमसे ही हुआ होगा। हिन्दी सारे भारतमें माध्यम का काम कर रही थी। अतः यदि खोजबीनकी जाय तो उस समयके अनेक पत्र एवं निर्देश मिल सकते हैं जिनसे मालूम हो सकता है कि उस समय हिन्दीका व्यापक रूप में फैलाव था।

अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी कड़ीके रूपमें तथा विभिन्न प्रदेशोंके कवियोंकी रचनाओंमें हिन्दी सर्वत्र समादर पाती रही, उसके इस अखिल भारतीय रूपको स्वीकार कर कइयोंने उसे राष्ट्रभाषाका महत्त्व दिया और उसके प्रचारपर बल दिया। यहाँ इस सम्बन्धी कुछके मत दिये गए हैं—

आजसे लगभग ८६ वर्ष पूर्व बंगालके राजनीतिज्ञ समाज सेवी श्री केशवचन्द्र सेनने यह अनुभव किया कि सारे देशमें एक भाषाकी आवश्यकता है और वह हिन्दी ही हो सकती है, इससे राष्ट्रीय एकता पुष्ट हो सकती है। उन्होंने अपना यह विचार सन् १८७५ में अपने पत्र "सुलभ समाचार" नामक एक पत्रमें निम्नानुसार व्यक्त किया है :—

"यदि एक भाषाके न होनेके कारण भारतमें एकता नहीं होती है तो और चारा ही क्या है ?—तब सारे भारतवर्षमें एक ही भाषाका व्यवहार करना ही एक मात्र उपाय है। अभी कितनी ही भाषाएँ भारतमें प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दीको यदि भारत वर्षकी एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही में यह (एकता) सम्पन्न हो सकती है। किन्तु राज्यकी सहायताके बिना यह कभी भी सम्भव नहीं है। अभी अँग्रेज हमारे राजा हैं, वे इस प्रस्तावसे सहमत होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। भारतवासियोंके बीच फिर फूट नहीं रहेगी, वे परस्पर एक हृदय हो जाएँगे, आदि सोचकर शायद अँग्रेजोंके मनमें भय होगा, उनका ख्याल है कि भारतीयोंमें फूट न होनेपर ब्रिटिश-साम्राज्य भी स्थिर नही रह सकेगा। भाषा एक न होनेपर एकता सम्भव नही है।"

('सुलभ समाचार' १८७५ ई. : मूल बंगलामें)

बंगलाके प्रसिद्ध साहित्यकार एवं "वन्दे मातरम्" राष्ट्रगीतके रचयिता स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी भी हिन्दीके प्रबल पक्षपाती थे। उन्होने यह भविष्यवाणी की थी कि "हिन्दी एक दिन भारतकी राष्ट्रभाषा होकर रहेगी, क्योंकि हिन्दी भाषाकी सहायतासे भारतके विभिन्न प्रदेशोंमे जो ऐक्य-बन्धन स्थापित कर सकेगा वही भारत बन्धु कहलाने योग्य है।"

बंगालके ऋषि अरविन्द घोषने भी हिन्दीका समर्थन किया। इसकी उपयोगितापर प्रकाश डालते हुए इन्होंने अपने साप्ताहिक "धर्म" में लिखा था कि "भाषा-भेदसे देशकी एकतामे बाधा नही पड़ेगी। सब लोग अपनी मातृभाषाकी रक्षा करते हुए हिन्दीको साधारण भाषाके रूपमें अपनाकर इस भेदको नष्ट कर देंगे।"

श्री भूदेव मुखर्जीने भी हिन्दीके समर्थनमें अपना यह वक्तव्य दिखाया कि "भारतकी प्रचलित भाषाओंमें हिन्दी हिन्दुस्तानी ही प्रधान है, एवं मुसलमानोंकी कृपासे वह सारे देशमे व्याप्त है। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि इसी का (हिन्दीका) अवलम्बन कर किसी सुदूर भविष्यमें सारे भारतवर्ष की भाषा सम्मिलित रह सकेगी।

महाराष्ट्र हिन्दीका प्रबल समर्थक रहा है। विदेशी-शासन-कालमें यहाँके राष्ट्रीय कर्णधारोंका ध्यान हिन्दीकी ओर आकृष्ट हुआ। यहाँके सुप्रसिद्ध बैरिस्टर श्री विनायक दामोदर सावरकरने सन् १९०१–१९०२ में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देनेके लिए जोरदार आन्दोलन किया। श्री चिपलूणकर एवं श्री आगरकरने भी मराठीके प्रति स्वाभिमान रखते हुए देशके हितके लिए राष्ट्रभाषा-पदपर "हिन्दी" को ही प्रतिष्ठित करनेका समर्थन किया। श्री केशवराव पेठेने सन् १८९३–९४ में "राष्ट्रभाषा" नामक पुस्तक-की रचना कर महाराष्ट्रीय जनतामें "राष्ट्रभाषा हिन्दी" के प्रति जागरूकताका परिचय दिया।

महाराष्ट्रके लोकप्रिय नेता श्री लोकमान्य तिलकने भी एक लिपि और एक भाषा-प्रचार-कार्यके प्रति अपना समर्थन एवं सद्भावना व्यक्त की। आपके ही प्रोत्साहनसे स्व. माधवराव सप्रेने नागपुरसे

" हिन्दी केसरी " का प्रकाशन प्रारम्भ किया। काशीकी प्रथम एक लिपि-विस्तार-परिषदका अधिवेशन सन् १९०५ में बड़ौदा राज्यके तत्कालीन दीवान स्व. रमेचन्द्र दत्तकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। मराठा रियासतें–ग्वालियर, इन्दौर, देवास, धार आदिने " हिन्दी " ही को राजभाषाके रूपमें अपनाया। बड़ौदाके महाराजा सयाजीराव तो हिन्दीके प्रबल समर्थक थे ही।

गुजरातमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीने आर्य समाजकी स्थापना कर जब उसका प्रचार प्रारम्भ किया तो उनके सामने समाज प्रचारके लिए एक सर्वसामान्य भाषाका अत्यन्त विचारणीय एव महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ। आपने सोच-विचार कर हिन्दी भाषाको ही समाजके प्रचारका माध्यम बनाया। आपके प्रभावसे आर्य समाजके सभी गुरुकुलोमे शिक्षाका माध्यम हिन्दी बनी। आपने अपना ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दीमें ही लिखा और वेदोंका अनुवाद भी इसी भाषामें करवाया। गुरुकुल कांगड़ीके संस्थापक महात्मा मुन्शीराम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्द) भी हिन्दीके प्रबल समर्थकोंमेंसे थे। आप हिन्दीको " आर्य भाषा " कहते थे। सम्वत् १७७० के लगभग एक गुजराती सज्जनने " ब्रजभाषा-व्याकरण " " ब्रजभाषा-शब्द-सिन्धु " और " ब्रज-भाषा-धातुमाला " लिखकर ब्रजभाषाके तीन अंगोंपर प्रकाश डाला, जिसमे इस भाषाके प्राचीन रूपकी व्याकरण-सम्मत विवेचना मिलती है। विवेचना लिखनेका कारण इन्होंने निम्नलिखित दोहे द्वारा बताया है:—

नर बानी नर-लोकमें सुगम पढ़त संसार।
ताकी बोलन रीतिको कहौं कछूक विचार।

व्याकरण सम्बन्धी यह विचार और वह भी एक हिन्दीतर प्रान्तवासी द्वारा व्यक्त होना इस बातका सूचक है कि उस समय हिन्दीको कितना व्यापक महत्त्व प्राप्त हो चुका था।

पंजाब उर्दूका गढ़ होते हुए भी वहाँके ग्रामीणोंमें पंजाबी एवं हिन्दीका काफी प्रचार रहा। यहाँ-हिन्दी प्रचारके निमित्त आर्य-समाजने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय है। पंजाब विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार स्व. नवीनचन्द्र रायने यहाँ हिन्दी प्रचारका स्तुत्य कार्य किया। सन् १८६७ में " ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका " प्रकाशित कर आपने इस प्रदेशमे हिन्दी-गद्यका प्रचलन किया। आपका मत था कि—" उर्दू कभी भी जन-साधारणकी भाषा नही बन सकती, हिन्दी ही उसके सर्वथा योग्य है। इस प्रदेशकी स्त्रियोंने सदैव ही हिन्दी-को अपनाया और पुरुषोंको भी इसे सीखनेके लिए विवश किया।

धीरे-धीरे हिन्दीके लिए सभी प्रान्तोंमे वातावरण अनुकूल होने लगा था और इसे सभी प्रान्तोंके मनीषियोंने अपनाना आरम्भ किया। यह प्रयास भी किया जाने लगा कि देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया जाय और इसका प्रचार किया जाय। कुछ और जननायक और चितकोंके विचार इस सम्बन्धमें यहाँ दिए गए हैं :—

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बंगालके युग पुरुष, विभिन्न विदेशी भाषाओंके वेत्ता, मातृभाषाके परम उपासक एवम् सेवक विश्व-कवि रविन्द्र ठाकुरने राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति निम्नलिखित शब्दोंमें अपनी श्रद्धा व्यक्त की :—

" यदि हम प्रत्येक भारतीय नैसर्गिक अधिकारोंके सिद्धान्तको स्वीकार करते है, तो हमें राष्ट्रभाषाके
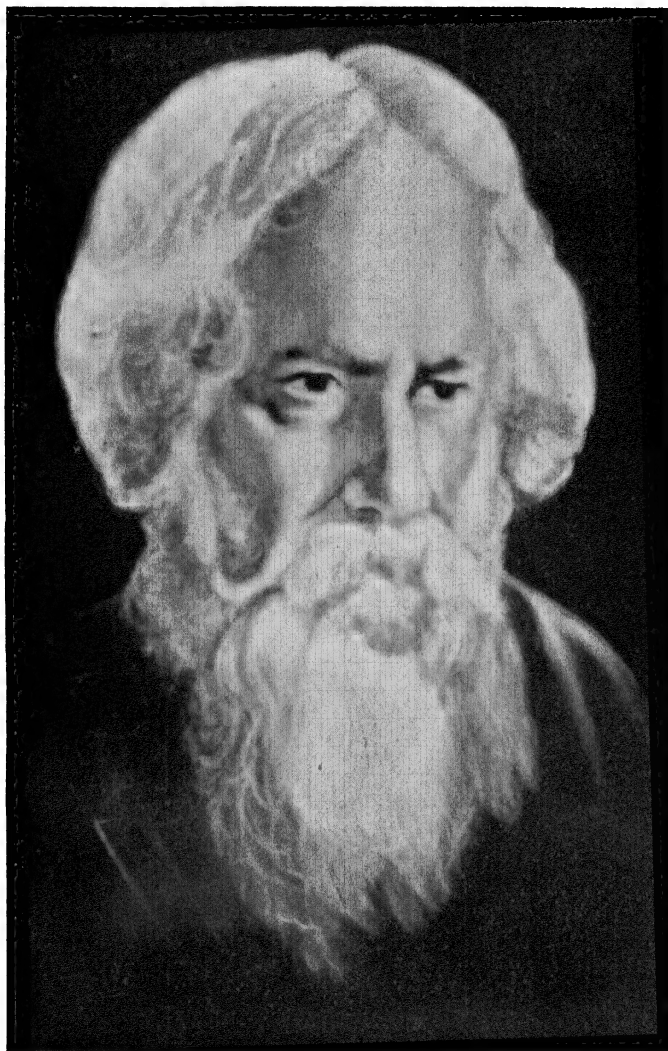
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रूपमें उस भाषाको स्वीकार करना चाहिए जो देशके सबसे बड़े भूभागमें बोली जाती है और जिसे स्वीकार करनेकी सिफारिश महात्माजीने हम लोगोंसे की है—अर्थात् हिन्दी और इसी विचारसे हमें एक भाषाकी आवश्यकता भी है।"

(कलकत्ता, 'हिन्दी क्लब बुलेटिन' : सितम्बर १९३८)

महात्मा गाँधी

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने देशमें राष्ट्रीय चेतना जागृत करनेके लिए चौदह सूत्री विधायक कार्यक्रम निश्चित किया। उसमें हिन्दी-प्रचारके कार्यको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। वे एक युगप्रवर्तक थे। उन्होंने साधारण जनताको ऊँचा उठानेको देशव्यापक जन-आन्दोलन किया। स्वतंत्रता संग्रामके वे सफल संचालक थे। उनके संकेत मात्रपर हजारों लाखों लोग स्वातंत्र्य-संग्राममें जुट जाते थे और अपने प्राणोंकी आहुति देनेको तत्पर रहते थे। उन्होंने जब हिन्दीकी व्यापकता और उसकी शक्तिको पहचाना तो उसके वे प्रबल समर्थक एवं प्रचारक हो गए। सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका इन्दौरमें अधिवेशन हुआ था उसके गाँधीजी सभापति बनाये गए। तबसे उन्होंने हिन्दी-प्रचारके लिए ठोस और सक्रिय कदम उठाया। दक्षिण भारतके द्रविड़ भाषी प्रदेश हिन्दीसे अधिक दूर पड़ते हैं। अतः उन्होंने दक्षिणके हिन्दी-प्रचार-कार्यको सर्वोपरि महत्त्व दिया। सन् १९१८ में उन्होंने अपने पुत्र स्व. देवदास गाँधीको हिन्दी प्रचारके लिए भेजा और दक्षिणमें हिन्दीका संगठनात्मक रूपसे प्रचार करनेका सूत्रपात किया। इसके पश्चात् वे हमेशा हिन्दीके महत्त्वपर जोर देते रहे और इसके प्रचारको बल देते रहे। उनका कथन था कि 'बिना राष्ट्रभाषाके राष्ट्र गूँगा है।' अँग्रेजोंको उन्होंने 'सांस्कृतिक लुटेरे' की संज्ञा दी थी। इस प्रकार उन्होंने जीवनभर हिन्दी प्रचारके लिए सफल प्रयत्न किया तथा इस कार्यको अपनी प्रेरणा दी।

श्री नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

"कुछ लोगोंका विचार है कि बंगला राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि इसमें उच्चकोटिका साहित्य है। हिन्दीमें उच्च साहित्य है अथवा नहीं, यह विवादग्रस्त विषय उठाना व्यर्थ है। हिन्दी-व्यापक रूपसे भारतमें बोली जाती है, और इसमें ग्रहणशक्ति है तथा यह सरल है !"

('एडवान्स' : जुलाई १९३८)

पं. जवाहरलाल नेहरू

"हिन्दीका ज्ञान राष्ट्रीयताको प्रोत्साहन देता है और हिन्दी अन्य भाषाओंकी अपेक्षा सबसे अधिक राष्ट्रभाषाके योग्य है। विभिन्न स्थान विशेषकी बोलियाँ अपने-अपने स्थान विशेषमें प्रमुख रहेंगी किन्तु भारतको एक सूत्रमें बाँधनेके लिए हिन्दीको ही राष्ट्रभाषा होना चाहिए। हिन्दी और उर्दू—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। सिवा इसके कि हिन्दी, नागरी लिपिमें लिखी जाती है और उर्दू फारसी लिपिमें। यह बड़े दुःखकी बात है कि हिन्दी-उर्दूको धार्मिक झगड़ेका रूप दे डाला गया है।"

('एडवान्स' : अक्टूबर १९३६)

श्री श्रीनिवास शास्त्री

"यदि मुझे पुराने बादशाहोंके अधिकार काममें लानेके लिए दिए जाएँ तो मैं एक काम यही करूँ कि देशमे एक भाषा और एक लिपिका व्यवहार हो।"

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

"प्रान्तीय भाषाएँ तो अपनी-अपनी जगहपर रहेंगी ही। हिन्दीका माध्यम ऐसे स्थलोंपर सिद्ध होगा जहाँ विविध प्रान्तो, विविध बोलियोके बोलनेवाले लोग एकत्रित हों और चर्चा ऐसे विषयपर हो जिसका सम्बन्ध सबसे हो।

कोई भी देश विदेशी भाषा द्वारा न तो उन्नति ही कर सकता है और न अपनी राष्ट्रीय भावनाकी अभिव्यक्ति ही कर सकता है। यह भारतका दुर्भाग्य था कि यहाँ कुछ लोग यह कहनेवाले भी निकले कि हमारा सार्वदेशिक संस्थाओं और प्रवृत्तियोके लिए विदेशी भाषा आवश्यक है। लेकिन आज इस विचारके लोगोंकी कोई सुननेवाला नहीं है। यह सर्वसम्मति है कि वही राष्ट्रभाषा हो सकती है, और है, जिसको उत्तर भारतकी जनता साधारण रीतिसे समझ लेती है। इसको हम हिन्दी कहते है। जहाँकी वह बोली नही है, वहाँ भी बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगोंकी है जो उसे समझ और बोल लेते है। उसमे इतनी योग्यता और लचक भी है कि वह सब प्रकारके विचारों और भावनाओंको सरलतासे व्यक्त कर सकती है।"

('आजाद हिन्द': २५ मई १९४७ तथा 'विश्वमित्र': १ अगस्त १९४७)

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

"हिन्दीके द्वारा उत्तर और दक्षिणके कार्यमें तथा भाव विनिमयमे सुविधा होगी। यह धारणा बिल्कुल भ्रमात्मक है कि उर्दू की उत्पत्ति इस्लामसे हुई है। उर्दूको इस्लाम और हिन्दीको हिन्दू भाषा मानना विलकुल गलत है। जिस भी लिपिमें लिखी जाय, भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, इसके नामसे भी ऐसा ही बोध होता है।"

('अमृत बाजार पत्रिका': २१ मार्च १९३०)

श्रीमती अम्बुजम्माल

"मेरे दिलमे आशा बँध गई है कि हिन्दीके द्वारा ही भिन्न भिन्न प्रान्त एक सूत्रमें पिरोये जा सकते है और जिस माध्यमके द्वारा ही विभिन्न भाषा-भाषियोंके हृदयमें ऐक्यकी भावना जाग्रत हो सकती है।"

(दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सम्मेलन १९३३ के अवसरपर)

स्व. नरसिंह चिन्तामणि

"हिन्दी भारतवर्षकी सामान्य भाषा होनी चाहिए।"

डॉ. रामकृष्ण भंडारकर

"यदि देश व्यापी आन्दोलन किया जाय तो देवनागरी लिपिको समस्त भारतवर्षमें चलना कठिन नहीं होगा। भिन्न-भिन्न प्रदेशोंकी एक सामान्य भाषा बनानेका सम्मान हिन्दीको ही मिलना चाहिए।"

श्री फजलअली

"हिन्दी भारतकी स्वाभाविक भाषा है। हिन्दीको न सिर्फ राष्ट्रभाषा होनेका अधिकार है, बल्कि यदि उसके प्रचार और विकासकी ओर उचित ध्यान दिया गया, तो वह भी समय आ सकता है, जब वह समस्त एशिया की भाषा बने।

श्री ख्वाजा हसन निजामी

"बंगला, बर्मी गुजराती और मराठी वगैरह सब जबानोंसे ज्यादा रिवाज हिन्दी या नागरी जबानका है। करोडों हिन्दू औरत-मर्द अब भी यही जबान पढ़ते है और यही जबान लिखते है।"

जोश मलीहाबादी

"हिन्दी और उर्दूमें कोई फर्क नहीं है। हिन्दीके सरकारी जबान बन जानेको हम मुसलमानोंके लिए क्यों न्यामत समझ रहे है ? इसलिए समझ रहे है कि देवनागरी लिखाई मुल्कभरमें आम हो जाएगी।"

('उजाला': १७ नवम्बर १९४७)

श्री चार्ल्स नेपियर

"हिन्दी जितनी अधिक और अँग्रेजी जितनी कम काममें लाई जाएगी, उतनी ही शीघ्रतासे हिन्दीका विकास होगा। हिन्दीका प्रयोग जितना विस्तारसे हो सके, होना चाहिए। शिक्षाका माध्यम किसी स्तर पर अँग्रेजी नही रहना चाहिए।"

('नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष': १८, अंक—३; सम्वत् २०१०)

'खड़ी बोली' हिन्दी

एक सर्व सामान्य भाषाकी आवश्यकताके सम्बन्धमें सारे देशमें मतैक्य था और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है इसपर सभीके विचार समान ही थे। इसका रूप क्या हो इसमें भी कोई सन्देह नही था। वह रूप हिन्दीका खड़ी बोली, रूप ही है। उसका वर्तमान रूप किस प्रकार निखरा उसका यहाँ विवेचन करना अनुचित न होगा।

खड़ी बोलीसे मिलती-जुलती भाषा दिल्ली और मेरठके अंचलमें बोली जाती है। उसकी उत्पत्तिके विषयमें यह माना जाता है कि इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंशसे हुआ है। जो प्रदेश भारतका केन्द्रीय प्रदेश पहले गिना जाता था, उसकी सभी बोलियाँ–यथा अवधी, ब्रज, बुन्देली, राजस्थानी, पंजाबी आदिने खड़ी बोलीको सँवारनेमें योग दिया है। जब हमारे देशमें मुसलमान शासक थे, तब दिल्ली राजधानीका शहर था और उस समय फारसी भाषा शासनकी भाषा थी। उसका उपयोग राजकाजके दायरे में होता था। जन साधारणकी वह भाषा न थी, इसलिए परस्परके व्यवहारमें फारसीका प्रचलन सम्भव नहीं था। जन साधारणसे सम्पर्क करनेके लिए फारसी-अरबीके शब्दोंके संयोगसे विशेषकर लश्करी छावनियोंमें एक भाषा शैलीका निर्माण हुआ जिसे उर्दूका नाम दिया गया। इस भाषाको दरबारोंमें खूब माँजा-सँवारा गया। इसका प्रभाव वर्तमान खड़ी बोलीपर बहुत पड़ा है।

यहाँ खड़ी बोलीके पद्य साहित्यके कुछ अंश प्राचीन कालसे अर्वाचीन काल तकके दिये गए हैं जिन्हें पढ़नेसे ज्ञात होगा कि खड़ी बोलीका रूप काव्यमें कैसे निखरता गया !

जिस प्रकार समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंका मूल अपभ्रंश है उसी प्रकार खड़ी बोलीके बीज भी अपभ्रंशमें—विशेषतः परवर्ती अपभ्रंशमें मिलते है। पं. दामोदर कृत (१२ वीं शताब्दी) 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' में ये पंक्तियाँ मिलती है :—

जब जब धर्मु, बाढ़, तब तब पाप ओहट
जैसे जैसे धर्मु जाम तैसे तैसे षा।

इनमें जब, तब, जैसे, तैसे खड़ी बोलीके प्राचीन स्मारक चिह्न हैं।

हेमचन्द्रका समय १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध माना जाता है। उनके व्याकरणमें खड़ी बोलीके बीज जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े है। हिन्दी पाठकोंका अत्यन्त जाना-पहचाना यह दोहा ही लीजिए :—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि म्हारा कन्तु।
लज्जेजन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

इसमें 'हुआ' तो साफ तौरपर खड़ी बोलीकी ही क्रिया है। यही नहीं, 'म्हारा' (हमारा) सर्वनाम भी मौजूद है। और तो और 'लज्जेजन्तु' में संयुक्त क्रिया भी झलक रही है।

नाथोंका समय ग्यारहवींसे चौदहवीं शताब्दी तक माना जाता है। नाथपंथी जोगी, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र तक फैले हुए थे। उनकी रचनाओंकी भाषाके बारेमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लका अभिमत है :—

"..... नाथ पन्थके जोगियोंने परम्परागत साहित्यकी भाषा या काव्य-भाषासे, जिसका ढाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रजभाषाका था, अलग एक सधुक्कड़ी भाषाका सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिये राजस्थानी था।"

('हिन्दी साहित्यका इतिहास')

गोरखनाथकी ये पंक्तियाँ देखिए :—

बैठा अवधू लोहकी षटी, चलता अवधू पनकी मूंठी।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरं सूवा॥

चौदहवीं शताब्दीमें अमीर खुसरोने खड़ी बोलीमें पहेलियाँ बुझाई है :—

एक तरुवरका फल है तर। पहिले नारी पीछे नर॥
वा फल की यह देखी चाल। बाहर खाल और भीतर बाल॥

खुसरोके बाद उत्तर भारतमें खड़ी बोलीकी रचनाएँ बहुत ही कम देखनेको मिलती हैं। इसका कारण यह था कि वैष्णव धर्मके आन्दोलनके कारण ब्रजभाषाका एकछत्र राज्य स्थापित हो गया था। फिर भी खड़ी बोलीके कहीं-कहीं स्वर सुनाई ही पड़ते हैं। अटपटी बाणीमें खरी-खोटी सुनानेवाले कबीर पुकार उठते हैं :—

माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
करका मनका डार दे, मनका मनका फेर॥

कबीरकी रचनाओंके विश्लेषणके उपरान्त विद्वान इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि कबीरकी साखियोंमें खड़ी बोलीका पानी मिला हुआ है।

इसी सन्दर्भमें रहीमकी इन पंक्तियोंको भी नहीं भुलाया जा सकता :—

कलित ललित वाला वो जवाहिर खड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनीमें खड़ा था।।

रीतिकालके कवि घनानन्दने (सम्बत् १७४६–१७९६) तो खड़ी बोलीमें रचना भी की है। उनकी पुस्तक 'विरह लीला' की भाषाका एक नमूना देखिए :—

सलोने प्रान प्यारे क्यों न आवो।
दरस प्यासी मरै तिनको जिवावो।।

इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत (बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र, मैसूर आदि) में भी खड़ी बोलीके प्रचलित होनेके प्राचीन प्रमाण मिलते है। महाराष्ट्रके सन्त कवि नामदेव की इन पंक्तियोसे तो सभी लोग परिचित हैं :—

पाँड़े तुम्हारी गायत्री लोधेका खेत खाती थी,
लेकर ठेंगा टँगरी तोरी लंगत-लंगत जाती थी।
पाँड़े तुम्हारा रामचन्द्र सो भी आवत देखा था।
रावण सेंती सरवर होइ घरकी जोई गँवाई थी।।

विक्रमकी १६ वी शताब्दीमें सन्त एकनाथ हिन्दू-मुसलमानोंमें ऐक्यका मन्त्र इस भाषामें फूंकते है :—

'एका' जनार्दनका बंदा, जमीन आसमान भरा खुदा

दक्षिणमें खड़ी बोलीके प्रचारमें मुसलमानोंका भी कम योगदान नहीं है। वस्तुतः दक्षिणमें सन्तों और मुसलमानोंके सम्मिलनसे एक मिली-जुली भाषा उत्पन्न हुई जो बादमें 'दक्खिनी हिन्दी' कहलाई। दक्खिनी हिन्दीमें रचना करनेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। मुसलमान कवियोंमें गेसूदराज, मुहम्मद कुली, कुतुबशाह, इब्ननिशाती, और शेखसादीकी पर्याप्त रचनाएँ खड़ी बोलीमें हैं।

समर्थ स्वामी रामदासने (जन्म सम्वत् १६०८) महाराष्ट्र जन-जीवनमें एक नई जागृति उत्पन्न की। हिन्दू-हृदय-सम्राट् शिवाजी इनके शिष्य थे। समर्थ रामदासकी शिष्य परम्परामें दयाबाई की यह कविता दृष्टव्य है :—

बाग रँगीला महल बना है। महलके बीचमें झूलना पड़ा है।।
इस झूलनेपर झूलो रे भाई। जनम मरनकी याद न आई।।

शिवाजीके दरबारी कवि भूषणकी रचनाओंमें तो खड़ी बोलीका पुट बराबर मिलता है :—

अफजल खानको जिन्होंने मैदान मारा।

बरार निवासी देवनाथ (संवत् १७५४) की ये पंक्तियाँ कितनी जोरदार हैं :—

रमते राम फकीर कोई दिन याद करोगे
कोई दिन ओढ़े शाल दुशाला। कोई दिन भावे चीर।

कोई दिन खावे मेवा मिठाई, कोई दिन पीवे नीर।
कोई दिन हाथी कोई दिन घोड़ा, कोई दिन पाँव जंजीर।

इस प्रकार महाराष्ट्रमें १२ वी शताब्दीसे लेकर अठारहवीं शताब्दी तक खड़ी बोली की रचनाएँ मिलती है।

श्री के. एम मुन्शीने अपने ग्रन्थ 'माइल स्टोन्स ऑफ गुजराती लिटरेचर' में लिखा है— मध्ययुगीन गुजरातमे हिन्दी ही सुसंस्कृतों और विद्वानोंकी मान्य भाषा थी, अठारहवीं शताब्दीमें भूधरदासने 'पद संग्रह' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। 'पद संग्रह' मे आई हुई खड़ी बोलीका एक उदाहरण देखिए :—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना
पग खूँटे डग हालन लागे उर मदरा खखराना
आयुमाल को नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे
रोग इलाज मरम्मत चाहे, बैद बाढ़ई हारे॥

गुजरातमें हिन्दी प्रचारके इतिहासमे 'दादू पंथ' को नही भुलाया जा सकता। दादू दयाल (१६ वीं सदी) अहमदाबादके रहनेवाले थे। इनकी रचनाओमें खड़ी बोलीके छीटे दिखाई पड़ते है :—

दादू बिरह अगनिमे जलि गए, मनके मैल विकार
दादू विरही पीवका देखेगा दीदार

१८ वीं शताब्दीमें गुजरातमें दयाराम नामक अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हुए है। उनकी खड़ी बोलीकी एक बानगी देखिए :—

हरदम कृष्ण कह श्रीकृष्ण कह तू जबाँ मेरी
यही मतलबके खातर करता हूँ खुशामद मैं तेरी
दही चोर दूध शक्कर रोज खिलाता हूँ तुझे
तौ भी हरिनाम सुनाती न तू है मुझे।

पंजाबके गुरु गोविन्दसिहके उद्‌गार खड़ी बोलीमे है :—

आज्ञा भई अकाल, तभी चलायो पंथ।
सब सिक्खनको हुकुम है, गुरु मानिए ग्रन्थ॥

सिन्धमें अठारहवी शताब्दीमे 'मनचित परबोध' ग्रन्थ हिन्दीमें लिखा गया। उसकी भाषामें कहीं-कहीं खड़ी बोलीके प्रयोग झाँकते दिखाई देते हैं। एक उदाहरण देखिए :—

प्रभुजी मैं शरन तुम्हारी आया।
मनमें ममता रहे न कोई, दर्द मिटा सुख पाया।
ज्ञान सूरज घट नेत्र समाया, अखंड ज्योति रंग लाया।
जिसके कारण फिरत उदासी, सो घट अन्दर पाया।

उड़ीसामें भी ब्रजनाथ बड़जेना (सन् १७८०) की एक पुस्तक 'समर तरंग' मिलती है। इस पुस्तक-का चौथा अध्याय तो हिन्दीमें ही लिखा गया है। 'समर तरंग' की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

अब सब सरदार विचारो। एक ठा रगड़ हाथ न आया।
भले भले तुम यारो।
ढाल ढाल भर लेके कोई अब मार दो किल्ला
घोड़ा गढ़ टूक लड़ने नाहीं क्या करूँ जाके बंगाला।

इस प्रकार हम देखते है खड़ी बोलीकी जड़ें बड़ी गहरी है और प्राचीन कालसे ही इसको सर्व व्यापी महत्त्व मिला था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि खड़ी बोलीका अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना ब्रजभाषाका। लेकिन फिर भी खड़ी बोलीमें धारावाहिक रूपसे काव्य-सर्जन नही हुआ। इसका कारण था वैष्णव धर्मका आन्दोलन। राम और कृष्णकी जन्मभूमिकी भाषाकी ओर लोगोंका झुकना स्वाभाविक था। रीतिकालमे भी ब्रजभाषाका ही आधिपत्य रहा। लेकिन अँग्रेजोंके सम्पर्कके कारण देशमे चेतनाकी नई लहर दौड़ी तो ब्रजभाषा जो नायक-नायिकाके नख-शिख वर्णनमे ही डूबी रही, उस उत्क्रान्तिके स्वरका भार लेनेमें असमर्थ सिद्ध हुई और खड़ी बोली उस दायित्त्वको लेनेके लिये आगे बढ़ी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्यके जनक माने जाते है। उन्होने गद्यके क्षेत्रमे खड़ी बोलीको बल दिया लेकिन पद्यके क्षेत्रमे वे पुरानी पगडंडीपर ही चलते रहे। लेकिन उन्होंने कुछ खड़ी बोलीमे भी रचनाएँ की है। एक उदाहरण देखिए :—

कहाँ हो हे हमारे राम प्यारे
किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे
बुढ़ापेमें मुझे यह देखना था
इसीके भोगनेको मैं बचा था।

लेकिन भारतेन्दुकी श्रेष्ठ रचनाएँ ब्रजभाषामे है, खड़ी बोलीमे नही। वस्तुतः यदि खड़ी बोलीको भारतेन्दुजीका करावलम्बन मिला होता तो अयोध्याप्रसाद खत्री आदि जैसोंको खड़ी बोलीके लिए अखाड़ेमें नहीं उतरना पड़ता। सन् १८८७ मे अयोध्याप्रसादजी वाकायदा खड़ी बोलीकी ओरसे मैदानमें उतरे। उन्होंने 'खड़ी बोलीका पद्य' नामक पुस्तक अपने व्ययसे ही प्रकाशित की और लोगोका ध्यान आकर्षित करनेके लिए पुस्तकको निःशुल्क वितरित किया। खड़ी बोलीके प्रचारमें खत्रीजी को भुलाया नही जा सकता। उनके जीवनका 'मिशन' ही खड़ी बोलीका प्रचार करना बन गया था। उन्होने उसके लिए अपना जीवन ही होम दिया था। लेकिन इतनी दौड़-धूपके बावजूद भी खत्रीजी अपने मिशनमें विशेष सफल नही हुए। उसका कारण था कि वे ब्रजभाषाको एकदम काव्यके क्षेत्रसे निकाल देना चाहते थे और इस सिलसिलेमें उन्होंने भारतेन्दु तकको खड़ी बोलीके विरोधियोके खेमेमें डाल दिया। फलतः प्रतापनारायण मिश्र, राधा-चरण गोस्वामी ऐसे भारतेन्दु भक्त उनके कट्टर विरोधी हो गए। मजेकी बात तो यह है कि स्वयं प्रताप-नारायण मिश्र आदिने भी खड़ी बोलीमे फुटकर रचनाएँ की है। खत्रीजीके समयमें खड़ी बोलीका यदि कोई जबरदस्त समर्थक रहा तो वे श्रीधर पाठकजी ही थे। श्रीधर पाठक ब्रजभाषाके भी बड़े ही उच्च एवं रससिद्ध कवि थे। उनमें मौलिक प्रतिभा थी। श्रीधर पाठकजीके 'एकांतवासी योगी' से खड़ी बोलीको बहुत बल मिला। डॉ. सुधीन्द्र लिखते है—"अयोध्याप्रसाद खत्रीने जो 'खड़ी बोलीका आन्दोलन' का झण्डा उठाया था उसमें 'एकान्त वासी योगी' का वही स्थान था, जो आज राष्ट्रीय झण्डेमें चक्रका है।"

ब्रजभाषाके समर्थकोंका कहना था कि खड़ी बोलीमें ब्रजभाषा-सी मिठास नहीं आ सकती। पाठकजीने खड़ी बोलीको सरस भी बनानेकी चेष्टा की। खड़ी बोलीके बीचमें वे ब्रजभाषाके शब्दोंको भी जड़ देते थे जिससे भाषा कुछ मधुर हो जाती थी; यथा :—

कहाँ जलै है वह आगी

लेकिन मिठास ढालनेके फेरमें कहीं-कहीं भाषा उपहासास्पद बन जाती थी; जैसे—झूठ-मूठ बहकाय करेगा तेरा निश्चय नाश।' राधा कृष्णदास भी इसी समन्वयवादी पंथके राही थे। उनकी भी कविताओंमें खड़ी बोली और ब्रजभाषाका पुट विद्यमान है। लेकिन यह द्विधात्मक स्थिति किसी भी भाषाके लिए शोभनीय नहीं मानी जा सकती। खड़ी बोलीकी इसी निर्बल स्थितिको देखकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीने 'नागरी तेरी यह दुर्दशा' लिखी थी। इसी परिस्थितिमें पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी सन् १९०० में सरस्वतीके सम्पादकके रूपमें हिन्दी काव्य क्षितिजपर उदित हुए। द्विवेदीजीने घोषित किया कि "गद्य और पद्यकी भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्यमें एक प्रकार-की और पद्यमें दूसरे प्रकारकी भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाजकी जो भाषा हो उसीमें गद्य-पद्यात्मक' साहित्य होना चाहिए।" द्विवेदीजीने ब्रजभाषापर नहीं, ब्रजभाषाकी सीमाओंपर प्रहार किया। नख-शिखके वर्णनोंको तोड़नेका आह्वान किया, उन्होंने प्रेमके पचड़ोंको छोड़कर जीवनकी खुली धूपमें विचरणके लिए निमंत्रण दिया। द्विवेदीजी स्वयं एक बड़े लेखक थे और उनके हाथों खड़ी बोली काव्यके क्षेत्रमें पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो गई। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, शंकर, गुरु, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय, ठाकुर गोपाल शरणसिंह द्विवेदी युगके प्रमुख कवि थे जिन्होंने खड़ी बोलीको समृद्ध किया। फिर भी द्विवेदी युग खड़ी बोलीकी खराखराहटको कम नही कर सका, ब्रजभाषा जैसी मिठास वह खड़ी बोलीमें नहीं ढाल सका। उसमें इतिवृत्तात्मकता अधिक थी। उसमें कहीं :—

सुरम्य रूपे रसरासि रंजिते, विचित्र वर्णाभरणे कहाँ गई

जैसी पंक्तियाँ हैं, तो कही :—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना

संस्कृत शब्दोंसे बोझिल पदावली, तो कहीं ठेठ हिन्दीका ठाठ और कही सीधी सादी भाषा, जैसे 'भारत भारती' की ये पंक्तियाँ :—

जातीयता क्या वस्तु है, निजदेश कहते हैं किसे?
क्या अर्थ आत्म त्यागका, वे जानते हैं क्या इसे?

द्विवेदी युगकी घोर इतिवृत्तात्मकताकी प्रतिक्रियाके रूपमें छायावाद आया। छायावाद वस्तुतः खड़ी बोली कविताका स्वर्ण युग है। प्रसाद, पन्त, निरालाके हाथों जिस काव्य की सृष्टि हुई, उसकी तुलना केवल भक्ति काव्यसे ही की जा सकती है। खड़ी बोलीको छायावादी कवियोंने इन्द्रधनुषी चित्रोंसे, मनोरम कल्पनाओं और उदात्त विचारणाओंसे अलंकृत किया। पंतजीकी इस कोमल कान्त पदावली—

अनिल पुलकित स्वर्णाञ्चल लोल।
मधुर नूपुर ध्वनि खग-कुल-रोल॥

के आगे ब्रजभाषाकी चासनी भी फीकी पड़ गई और खड़ी बोलीपर रुक्षताका जो सबसे बड़ा इलजाम लगाया जाता था, वह सदाके लिए मिट गया।

आधुनिक युगमें गद्यको विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। पुराने समयमें पद्यमें ही रचनाएँ होती थीं। कवि, सन्त अथवा कोई कला-उपासक अपने हृदयके उद्‌गारों, विचारों और भावोको पद्यके माध्यमसे व्यक्त करता था। यह स्थिति केवल हिन्दीकी ही नही रही। हमारी तमाम भाषाओमें भी यही स्थिति रही। सबमें सर्व प्रथम पद्य साहित्यका सर्जन हुआ और बादमें आधुनिक युगमें गद्य साहित्यका विकास हुआ है। नाटक, निबन्ध, एकांकी, कहानी, उपन्यास आदि गद्य साहित्यके विभिन्न अंग हैं, जो इस युगमें विशेष रूपसे पुष्ट हुए है। साहित्य लोक-जीवनसे प्रभावित होता है और साहित्यका प्रभाव लोक-जीवनपर पड़ता है। लेखक या कवि अपना संदेश अधिक से अधिक लोगोके हृदय तक पहुँचाना चाहता है इसलिए वह प्रचलित भाषामे ही अपनी रचनाएँ करता है। यही कारण है कि हमारी तमाम भाषाओंमें गद्य साहित्यका निर्माण आधुनिक युगमें बड़े पैमानेपर हुआ है और आज तीव्र गतिसे बढ़ रहा है। फलस्वरूप भाषाका रूप भी दिनों-दिन निखरता जा रहा है। भाषाको बहता नीर कहते हैं—अतः उसका रूप हमेशा सँवरता-निखरता ही जाएगा। खड़ी बोलीके प्राचीन और आधुनिक गद्य रूपमें काफी अन्तर देखनेको मिलता है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि खड़ी बोलीके गद्य साहित्यकी भाषाका प्रारम्भिक रूप कैसा था और वह आजके रूप तक कैसे पहुँचा!

सन् १८०० के पूर्व तक गद्य-भाषा पूर्ण रूपसे व्यावहारिक हो गई थी। इसके पश्चात् लगभग २५ वर्षोमे इस व्यवहारमें प्रयुक्त भाषाको साहित्यिक रूप देनेका प्रयत्न हुआ। इन वर्षोमे मुशी सदासुखलाल इंशाअल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्रने सराहनीय प्रयत्न किया।

मुशी सदासुखलालने 'सुखसागर' लिखा जिसकी भाषामें संस्कृतके तत्सम शब्दोंके साथ पुराना पंडिताऊपन है। इनकी भाषाका नमूना यह है :—

"जो सत्य बात हो उसे कहा चाहिए, को बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूपमे लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते है कि चतुराईकी बातें कहके लोगोको बहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए, और सुरापान कीजिए और धन द्रव्य इकठौरा कीजिए और मनको कि तमोवृत्तिसे भर रहा है उसे निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायणका नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

('हिन्दी-भाषा-सार')

मुंशीजीकी भाषामें 'होय', 'लय हूजिए', 'करिकै', 'होता है सो' आदि प्रयोगोसे उनके पंडिता-ऊपनकी झलक मिलती है। यद्यपि आपने संस्कृतकी तत्सम शब्दावलीका प्रयोग किया है, फिर भी प्रान्तीयता और ग्रामीणताकी पुटसे आपकी भाषा मुक्त नहीं है। 'हूजिए', 'इकठौरा' आदि शब्द ऐसे ही हैं।

इंशा अल्लाखाँकी 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्यमें एक प्रसिद्ध रचना है। इसकी भाषा बड़ी सरल, मुहावरेदार तथा सुन्दर है। इंशाने साधारण शब्द-समुदायके साथ-साथ वाक्य-रचनाका ढंग मुसलमानी रखा है। वैसे किसीने ठीक ही कहा है कि 'इन्शाके अल्फाज मोतीकी तरह रेशमपर ढुलकते आते हैं।' देखिए :—

"सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवालेके साम्हने जिसने हम सबको बनाया और बातकी बातमें वह कर दिखाया जिसका भेद किसीने न कर पाया। आतियाँ, जातियाँ जो साँसें हैं, उसके बिन ध्यान सब फाँसे हैं। यह कलका पुतला जो अपने उस खिलाड़ीकी सुध रक्खे तो खटाईमें क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो?"

+ + + +

"अच्छापना घाटोंका कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राजकी नदियोंमें थे पक्के चाँदीके थक्केसे होकर लोगोंको हक्का-बक्का कर रहे थे। जितनी टबकी नावें थीं, सोनहरी, रुपहरी, सजी-सजाई, कसी-कसाई सौ-सौ लचके खातियाँ, आतियाँ, जातियाँ, ठहरातियाँ फिरतियाँ थीं।"

('रानी केतकीकी कहानी')

इंशाकी भाषामें कविताकी तरह तुकांत एवं अनुप्रास है और प्रवाह उर्दू शैलीका है।

इसी समय इधर कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजके तत्वावधानमें गद्य निर्माण का कुछ कार्य हो रहा था जिसमें लल्लूलाल एवं सदल मिश्रने रचनाएँ कीं।

लल्लूलालजी द्वारा अपने ग्रन्थ 'प्रेमसागर'में खड़ी बोलीका जो प्रयोग किया गया, उसका रूप इस प्रकार है:—

"मणिका प्रकाश दूर से देख यदुवंशी खड़े हो श्रीकृष्ण चन्द्रजीसे कहने लगे कि महाराज, तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा किए सूर्य चला आता है। तुमको ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता ध्यावते है और आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा यश गावते हैं। तुम्हीं आदि पुरुष अविनाशी, तुम्हें नित सेवती हैं कमला भई दासीं।

('प्रेम सागर')

उसमें ब्रजभाषाके रूपोंका प्रयोग प्रधान रूपसे हो गया है, यद्यपि खड़ी बोलीके अरबी-फारसी युक्त रूपसे बचनेका प्रयत्न किया गया है।

सदल मिश्र संस्कृतके अच्छे विद्वान थे। इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। इन्होंने अपनी रचनामें बोलचालकी भाषाका ही प्रयोग किया है। इनकी भाषाका एक नमूना यह है:—

"जो नर चोरी आदि नाना भाँतिके कुकर्ममें आप तो दिन रात लगे रहते है तिसपर भी औरोंको दूखते हैं, वो एक अक्षर भी जिससे पढ़ते है विसे गुरुके बराबर नही मानते हैं, सो तब तक महानरकको देखते हैं कि जब तक संसार बना रहता है।"

('नासिकेतोपाख्यान')

इनकी भाषामें व्याकरणके नियमोंका पालन ठीकसे नही किया गया। इसमें वो, 'और', 'औ' जैसे प्रयोग हैं।

इसी समय ईसाइयोंने अपनी धर्म पुस्तकोंका जो अनुवाद कराया, उसमें खड़ी बोलीके विशुद्ध रूपका प्रयोग किया गया। सन् १८०६ में प्रकाशित एक पुस्तकका निम्नलिखित उद्धरण देखनेपर यह बात स्पष्ट रूपमें समझमें आ जाती है:—

"भट्टने पहले यह बात लिखी है कि देवताओंके कुकर्म सुकर्म हैं क्योंकि शास्त्रने इनको सुकर्म ठहराया है। यह सच है परन्तु हमारी समझमें इन्हीं बातोंसे हिन्दू शास्त्र झूठे ठहरते हैं। ऐसी बातोंमें शास्त्रके

कहनेका कुछ प्रमाण नहीं। जैसे चोरके कहनेका प्रमाण नही, जो चोरी करे फिर कहे कि मैं तो चोर नही। पहले आवश्यक है कि शास्त्र सुधारे जायें और अच्छे अच्छे प्रमाणोंसे ठहराया जाय कि यह पुस्तक ईश्वरकी है तब इसके पीछे उनके कहनेका प्रमाण होगा।"

इस उद्धरणसे यह कहा जा सकता है कि अब तक खड़ी बोलीमें बल आ गया था।

जैसे-जैसे खड़ी बोलीका प्रवेश पाठशालाओंकी स्थापनाके परिणामस्वरूप पाठ्य-पुस्तकोमें हुआ वैसे-वैसे कुछ लोगोंने खड़ी बोलीके इस ढाँचेमें अरबी, फारसी शब्दावलीका सम्मिश्रण कर, एक कामचलाऊ भाषाका निर्माण करके उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करनेका प्रयत्न किया। अदालतके कार्यकर्ताओंमे इस भाषाकी जड़ जमी। ऐसी स्थितिमें सरकारी मदरसोंके लिए पाठ्य-ग्रन्थोंके निर्माण की भाषाका प्रश्न सामने आया।

इस समय काशीके राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' शिक्षा विभागमें निरीक्षक के पद पर थे। उन्होंने देखा कि शिक्षा विभागमें मुसलमानोंका दल शक्तिशाली है, अतः किसी पक्ष विशेषका समर्थन न करते हुए उन्होंने मध्यवर्ती मार्गका अवलम्बन किया। लिपि देवनागरी रखते हुए उन्होंने स्थान-स्थानपर साधारण उर्दू, फारसी तथा अरबीके शब्दोंका भी प्रयोग किया; पर धीरे-धीरे उनपर उर्दू दाँ बननेकी धुन सवार हुई और उनकी लेखनीसे जो गद्य प्रसूत हुआ, वह इस प्रकारका था:—

"इसमें अरबी, फारसी, संस्कृत और अब कहना चाहिए अँग्रेजीके भी शब्द कंधे-से-कंधा भिड़ाकर यानी दोश-व-दोश चमक-दमक और रौनक पावें, न इस बेतर्तीबीसे कि जैसा अब गड़बड़ मच रहा है बल्कि एक सल्तनतके मानिंद कि जिसकी हदे कायम हो गई हों और जिसका इन्तिजाम मुतजिमकी अक्लमन्दीकी गवाही देता है।"

पर इस स्थितिका सामना राजा लक्ष्मणसिह ने किया और भाषाके एक निश्चयात्मक रूपके सम्यक् जो प्रसार की दृष्टिसे जिस शुद्ध हिन्दी गद्यमे लिखना आरम्भ किया, वह 'शकुन्तला' नाटकके शकुन्तला पात्र द्वारा कही गई भाषामे देखनेको मिलता है:—

"उसी दिन मेरा पाला हुआ दीर्घायांग नामक मृगछौना आ गया, तुमने बड़े प्यारसे कहा—आ छौने, पहले तू ही पीले। उसने तुम्हें विदेशी जान, तुम्हारे हाथसे जल न पिया। फिर उसी पत्तेमें मैंने पिलाया तो पी लिया। तब तुमने हँसकर कहा था कि सब कोई अपने ही सहवासीको पत्याता है, तुम दोनो एक ही वनके वासी हो।"

सन् १८२४ से १८८३ तककी अवधिमें आर्य समाज और सनातन धर्मके बीच चलनेवाले शास्त्रार्थो एवं दोनों पक्षीय व्याख्याताओंने भी खड़ी बोलीके गद्यके विकासमें एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया। उस समय संस्कृतके शब्दोंका अधिकाधिक प्रयोग होता था। ऐसे पंडितोंमें महर्षि दयानन्द, पं. ज्वालाप्रसादजी, भीमसेन तथा श्रद्धाराम फुल्लौरीका नाम लिया जा सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपनी भाषामें न तो 'सितारे हिन्द' का वह उर्दूपन ही रखा जिसमें अरबी-फारसीके शब्दोंकी बहुतायत रहती थी, और न वह रूप ही ग्रहण किया जिसमें एकदम संस्कृतके तत्सम शब्दोंकी बहुतायत होती थी। उन्होंने इन दोनोंके बीचके सरल और प्रचलित रूपको ग्रहण किया:—

"अब नहीं करनेसे क्या होता है? विचार तो करना ही होगा और फिर इसमें दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजाके कुलमें जन्म है वैसा ही दिव्य संन्यासी मिल जाएगा, मैंने तो चाँदका टुकड़ा, वर खोज लिया था पर तू कहती है कि रानीसे उसका समाचार ही मत कहे तो अब कौन उपाय करूँ—अच्छा है जैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उससे भी लम्बी उसकी दाढ़ी है सिरपर बड़ी भारी जटा है और स्व अंगमें भभूत लगाए है ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते—अहा हा, कैसा अद्‌भुत रूप है!

('विद्यासुन्दर': नाटक)

अठारहवीं शताब्दीके अंत तक हिन्दी गद्यके लिए भूमि तैयार होती रही। इसके पश्चात् शासक और शासित—दोनोंकी स्थिति ऐसी हो गई कि गद्यके बिना उनका काम चलना असम्भव था। परिणामतः इसी समयसे गद्यकी प्रगति विशेष रूपसे हुई।

गद्यके इस वर्तमान कालमें पं. महावीर प्रसाद द्विवेदीका स्थान बड़े महत्त्वका है। भाषाकी चली आनेवाली शिथिलता अथवा व्याकरण सम्बन्धी निर्बलताके परिहारका कार्य श्री द्विवेदीजीके हाथों हुआ। द्विवेदीजीने लेखकोंकी रचना शैलीकी आलोचना करके व्याकरणके दोषोंको दूर करने और करवानेका प्रयत्न किया, फलतः लेखक सतर्कता पूर्वक लिखने लगे। साधारणतः लेख सुस्पष्ट और शुद्ध होने लगे। कांति और चमत्कार युक्त छोटे-छोटे वाक्योंमें सम्यक् अभिव्यंजनाके उद्देश्यको लेकर द्विवेदीजीने कई लेखकोंको तैयार किया। व्यंग्यात्मक, आलोचनात्मक और गवेषणात्मक शैलियोंका आश्रय लिये जानेके कारण जिस प्रकारकी गद्यात्मक रचनाएँ हुईं उनके नमूने इस प्रकार हैं—

"इस म्युनिसिपैलिटीके चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुरसी मैन भी कहने लगे है।) श्रीमान् बूचा शाह हैं। बाप-दादेकी कमाईका लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप रामका नाम ही हैं। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए हैं कि अपनी कारगुजारी गवर्नमेंटको दिखाकर आप रायबहादुर बन जायँ और खुशामदियोंसे आठ पहर चौसठ घड़ी घिरे रहें। म्युनिसिपैलिटीका काम चाहे चले चाहे न चले, आपकी बलासे।"

+ + + +

"इसीसे किसी-किसीका ख्याल था कि यह भाषा देहलीके बाजार ही की बदौलत बनी है। पर यह खयाल ठीक नही। भाषा पहलेसे ही विद्यमान थी और उसका विशुद्ध रूप अब भी मेरठ प्रान्तमें बोला जाता है। बात सिर्फ यह हुई कि मुसलमान जब यह बोली बोलने लगे तब उन्होंने उसमें अरबी, फारसीके शब्द मिलाने शुरू कर दिये जैसे कि आजकल संस्कृत जाननेवाले हिन्दी बोलनेमें आवश्यकतासे जियादा संस्कृत शब्द काममें लाते हैं।"

अधिकांशतः द्विवेदीजीकी शैली यही है। उनकी अधिकतर रचनाओंमें एवं आलोचनात्मक लेखोंमें इसी भाषाका व्यवहार हुआ है।

द्विवेदीजी तक जितना हिन्दी गद्य लिखा गया था, उसे देखनेसे यह मालूम होता है कि भाषाका लचरपन लगभग समाप्त हो गया था और बादके खड़ी बोली हिन्दीके सभी गद्य लेखक उन्हींके चरण-चिह्नोंपर चलने लगे। इनमें देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय एवं सरदार पूर्णसिंह आदिकी गणना की जा सकती है।

बाबू श्यामसुन्दरदासने एक अध्यापकके नाते बातको बार बार समझाते हुए भाषाके बलिष्ठ रूपकी एक सफल प्रतिभाको प्रस्थापित किया। देखिए :—

"यह बात स्पष्ट है कि मानव समाजकी उन्नति उस समाजके अन्तर्भूत व्यक्तियोंके सहयोग और साहचर्यसे होती है, पर इस सहयोग और साहचर्यका साफल्य तभी सम्भव है जब परस्पर भावों या विचारोंके विनिमयका साधन उपस्थित हो। भाषा ही इसके लिए मूल साधन है और इसीकी सहायतासे मानव समाजकी उन्नति हो सकती है। अतएव भाषाका समाजकी उन्नतिके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है; यहाँ तक कि एकके बिना दूसरेका अस्तित्त्व ही सम्भव नहीं, पर यहीं उनके सम्बन्धके साफल्यकी इतिश्री भी नहीं होती। दोनों साथ ही साथ चलते हैं। भाषाकी उन्नतिके साथ समाजकी उन्नति होती रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि उनका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।"

('साहित्य और समाज' शीर्षक निबन्धसे)

पं. रामचन्द्र शुक्लने भावोंके अनुरूप प्रौढ़ भाषाका उपयोग किया है। ज्यों-ज्यों विषयकी गहनता और उत्कृष्टता बढ़ती गई है, त्यों-त्यों भाषाके रूपरंगम भी परिवर्तन होता गया है।

"ब्रह्मकी व्यक्त सत्ता सतत क्रियमाण है। अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें स्थिर (Static) सौन्दर्य और स्थिर मंगल कहीं नहीं; गत्यात्मक (Dynamic) सौन्दर्य गत्यात्मक मंगल ही है; पर सौन्दर्यकी गति भी नित्य अनन्त ह और मंगल की भी। गतिकी यही नित्यता जगत्की नित्यता है। सौन्दर्य और मंगल वास्तवमें पर्याय है। कला पक्षसे देखनेमें जो सौन्दर्य है, वही धर्म पक्षसे देखनेमें मंगल है। जिस सामान्य काव्य-भूमिपर प्राप्त होकर हमारे भाव एक साथ ही सुन्दर और मंगलमय हो जाते हैं, उसकी व्याख्या पहले ही हो चुकी है। कवि मंगलका नाम न लेकर सौन्दर्यका ही नाम लेता है और धार्मिक सौन्दर्यकी चर्चा बचाकर मंगल ही का जिक्र किया करता है। टालस्टाय इस प्रवृत्ति-भेदको न पहचानकर काव्य-क्षेत्रमें लोकमंगलका एकान्त उद्देश्य रखकर चले इससे उनकी समीक्षाएँ गिरजाघरके उपदेशके रूपमें हो गईं। मनुष्य-मनुष्यमें प्रेम और मातृभाव की प्रतिष्ठा ही काव्य का सीधा लक्ष्य ठहरानेसे उनकी दृष्टि बहुत संकुचित हो गई, जैसा कि उनकी सबसे उत्तम ठहराई हुई पुस्तकोंकी विलक्षण सूचीसे विदित होता है। यदि टालस्टायकी धर्म-भावनामें व्यक्तिगत धर्मके अतिरिक्त लोकधर्म का भी समावेश होता तो शायद उनके कथनमें इतना असामंजस्य न घटित होता।"

भाषा, सौष्ठवका जितना परिष्कृत रूप हमें प्रसादजीकी रचनामें प्राप्त होता है, वह सचमुच एक अनुपम आनन्द देनेवाला है। इस सौष्ठवमें मनोहरता, ओज और माधुर्यका चमत्कार-पूर्ण संयोग है :—

"सुदर्शनने देखा सब सुन्दर है। आज तक जो प्रकृति उदास चित्र बनाकर सामने आती थी, उसकी मोहिनी और मधुर सौन्दर्यकी विभूतिको देखकर सुदर्शनकी तन्मयता उत्कण्ठामें बदल गई। उसे उन्माद ले चला। इच्छा होती थी कि वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरोंसे चन्द्रमाकी किरणें खेलें और हँसा करें। इतनेमें ध्यान आया उस धीवरकी बालिका का। इच्छा हुई वह भी वरुण कन्या सी चन्द्रकिरणोंसे लिपटी हुई उसके विशाल वक्षस्थलमें विहार करे। उसकी आँखोंमें गोल धवल पालवाली नाव

समा गई, कानोमें अस्फुट संगीत भर गया। सुदर्शन उन्मत्त था। कुछ पद शब्द सुनाई पड़े। उसे ध्यान आया मुझे लौटा ले जानेके लिए कुछ लोग आ रहे है। वह चंचल हो उठा। फेनिल जलधिमे फाँद पड़ा। लहरोंमें तैर चला।"

उपर्युक्त उदाहरणमें भावानुरूप काव्यका प्रौढ़तम उन्माद है।

प्रेमचन्दकी भाषा ठेठ हिन्दुस्तानी है, सीधी-सादी, किन्तु मँजी, प्रौढ़, परिष्कृत, संस्कृत पदावलीसे शुभ्र और उर्दूसे चंचल। देखिए :—

"सकीना जैसे घबरा गई। जहाँ उसने एक चुटकी आटेका सवाल किया था, वहाँ दाताने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटेसे पात्रमें इतनी जगह कहाँ है? उसकी समझमे नहीं आता कि इस विभूतिको कैसे समेटे। अंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी।

('कर्मभूमि')

आजकल साधारणतः सरल शब्दावलीमे अधिकसे अधिक लोगोंके समझनेकी दृष्टिसे भाषाका प्रयोग वांछनीय माना जाता है और इसी दृष्टिसे सभी लोग खड़ी बोली गद्य रचनाओंकी ओर प्रवृत्त हो रहे है। ऐसे लेखकोंमें चतुरसेन शास्त्री, शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, विनयमोहन शर्मा, नन्ददुलारे बाजपेयी आदि लेखकोंका समावेश होता है।

संक्षेपमें कहा जाय तो कह सकते है कि इस समय भाषाकी व्यापकता और विस्तारके साथ अन्य भाषाओंकी भावभंगी एवं वाक्य विन्यासके समावेशके कारण भाषाकी पाचन शक्तिपर काफी जोर पड़ रहा है। परिणामतः सभी भाषाओंकी उपयोगी शब्दावलीको ग्रहण कर अपनी उद्भावना शक्तिका ह्रास न होने देनेकी जागरूकता की ओर सम्यक् ध्यान देते हुए लेखक सतर्कतापूर्वक भाषाका प्रयोग कर रहे है। खड़ी बोली का शुद्ध हिन्दीवाला, हिन्दुस्तानी कहलाया जानेवाला तथा उर्दूवाला आदि तीनो रूपोंका समाहार आजकी खड़ी बोली गद्यमे हो जाता है।

आज तो हिन्दी काव्य एवं गद्यके क्षेत्रमे हिन्दीकी खड़ी बोलीका रूप सर्वत्र छाया हुआ है। ब्रज-अवधीका प्राचीन साहित्य अब अध्ययन तक सीमित है। अब इनमे मौलिक नवीन रचनाएँ बहुत कम होती हैं। साहित्य सर्जकोंका अब सारा झुकाव खड़ी बोलीकी ओर है।

हिन्दीका वर्तमान रूप अनेक घातों, प्रतिघातों, प्रवृत्तियों तथा प्रभावोंका परिणाम है। खड़ी बोलीके वर्तमान रूपको सँवारनेमें हमारे देशकी प्रादेशिक भाषाओ, बोलियो—सस्कृत, अरबी, फारसीके अतिरिक्त अँग्रेजी, पोर्तुगीज आदि विदेशी भापाओंकी शब्दावली, मुहावरे, शब्द प्रयोग आदिका विशेष हाथ है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य राष्ट्र निर्माणका कार्य है। इस कार्यमे अनेक संस्थाओं, व्यक्तियों और प्रवृत्तियोंने सहयोग दिया है। यहाँ हम उन संस्थाओंका संक्षेपमें परिचय दे रहे है, जिन्होंने गत वर्षोंमें हिन्दीके प्रचार-प्रसार एवं उसके श्रीवर्द्धनमें विशेष सहयोग दिया है।
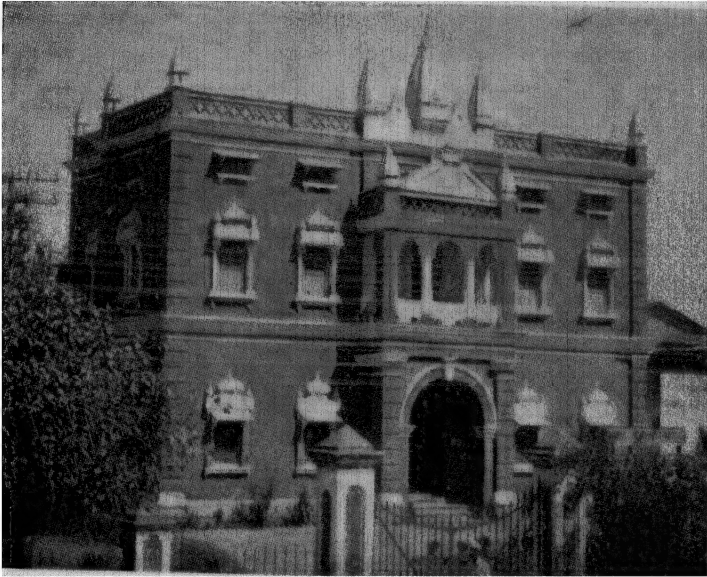
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
[भवन]

नागरी-प्रचारणी-सभा, वाराणसी

सभाका बीजारोपण लगभग ७० वर्ष पूर्व वाराणसीके क्वींस कॉलेजिएट स्कूलकी पाँचवीं कक्षामें पढ़नेवाले कतिपय उत्साही छात्रोंने किया था, जिनका मूल उद्देश्य एक चर्चा समितिकी स्थापना करना था। उन्होंने स्थिर किया था कि नागरी प्रचारको उद्देश्य बनाकर एक सभाकी स्थापना की जाय। इस निश्चयके अनुसार २७ फाल्गुन १९४९ (१० मार्च, १८९३) को सभाकी स्थापना हुई, जिसका नाम 'नागरी प्रचारिणी सभा' रखा गया। उस समय सर्वश्री गोपालप्रसादजी खत्री, रामसूरत मिश्र, उमराव सिंह, शिवकुमार सिंह तथा पं. रामनारायण जी मिश्र उसके प्रमुख कार्यकर्ता थे। थोड़े ही समय पश्चात् श्री श्यामसुंदरदासजी भी इसमें सम्मिलित हो गए और वही मन्त्री हुए।

प्रारम्भमें उसे बालसभा मात्र समझकर बड़े-बूढ़े उसमें आनेसे संकोच करते थे। पर कार्यकर्ताओंके सतत उद्योगसे शीघ्र ही सर्वश्री राधाकृष्णदास, महोमहापाध्याय सुधाकर द्विवेदी, रायबहादुर लक्ष्मीशकर मिश्र, डॉ. छन्नूलाल और रायबहादुर प्रमदादास मित्र जैसे तत्कालीन हिन्दी हितैषी प्रतिष्ठित विद्वान् पथ-प्रदर्शकके रूपमे प्राप्त हो गए। धीरे-धीरे सभा अपनी ओर भारत भरके हिन्दी प्रेमियोंका ध्यान खींचने लगी। सर्वश्री महामना पं. मदनमोहन मालवीय, कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह, राजा शशिशेखर राय, कांकरोलीनरेश, महाराज बालकृष्णलाल, अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, ज्वालादत्त शर्मा (लाहौर), नन्दकिशोर देव शर्मा (अमृतसर,) कुंवर जोधसिंह मेहता (उदयपुर), समर्थदान (अजमेर), डॉ. सर जार्ज ग्रियर्सन जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानोंने पहले ही वर्ष सभाकी संरक्षकता और सदस्यता स्वीकार कर ली।

सभाने आरम्भसे ही ठोस रचनात्मक कामोंको अपने हाथमे लिया। हिन्दीकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोकी खोज कराना, हिन्दीके बृहत् कोशका निर्माण कराना, हिन्दी भाषा और साहित्यका इतिहास तैयार कराना, शोध कार्य कराना, नागरी लिपिका प्रचार आदि सभाके प्रमुख काम थे।

सन् १८३७ मे अँग्रेजी सरकारने फारसीको सर्वसाधारणके लिए दुरूह मानकर देशी भाषाओंको अदालतोंमें जारी करनेकी आज्ञा दी थी। परिणामस्वरूप बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशोंमें वहाँ प्रचलित देशी भाषाओंका चलन हो गया। पर उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेशमें अदालती अमलोंकी कृपासे हिन्दुस्तानीके नामपर उर्दू ही जारी रही। प्रयत्न करनेपर बिहार और मध्यप्रदेशकी सरकारोंने सन् १८८१ में इस भ्रमको समझा और अपने यहाँ उर्दूके स्थानपर हिन्दी प्रचलित की। परन्तु उत्तर प्रदेशकी सरकारने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अतएव सन् १८८२ में प्रान्तीय बोर्ड आफ रेवेन्यूका ध्यान इस ओर खींचा गया कि सन् १८७५ और १८८१ के क्रमशः १९ वें और १२ वें विधानोंके अनुसार 'समन' आदि हिन्दी और उर्दू—दोनोंमें भरे जाने चाहिए। इन्हीं दिनों रोमन लिपिको दफ्तरकी लिपि बनानेका भी कुछ प्रयत्न हुआ। इसपर सभाने २५ अगस्त, १८९५ के निश्चयके अनुसार नागरी लिपि और रोमन अक्षरोंके विषयमें अँग्रेजीमें एक पुस्तिका तैयार करके प्रकाशित की और सरकार, पदाधिकारियों तथा जनतामें इसकी कई सौ प्रतियाँ वितरित कराईं। बोर्ड आफ रेवेन्यू विषयक सभाकी प्रार्थनाको सरकारने स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार सब जिलोंके अधिकारियोंको सूचना दे दी गई कि बोर्ड आफ रेवेन्यूके

समन आदि सब कागज हिन्दीमें भी जारी किए जाया करें। ३ अगस्त, सन् १८९६ को सभाने निश्चय किया कि प्रान्तीय गवर्नरकी सेवामें प्रतिनिधिमंडल भेजकर निवेदन-पत्र (मेमोरियल) उपस्थित किया जाय कि संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के राजकीय कार्यालयोंमें देवनागरी लिपिको स्थान दिया जाय। इस अवसरपर महामना पं. मदनमोहन मालवीयजीने कोर्ट कैरेक्टर ऐंड प्राइमरी एज्यूकेशन नामक एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण निबन्ध तैयार किया। सभाने आन्दोलन करके निवेदनपत्रपर साठ हजार हस्ताक्षर करवाए। सभाका प्रतिनिधिमंडल २ मार्च, १८९८ को इलाहाबादके गवर्नमेंट हाउसमें प्रान्तके गवर्नर सर ऐन्टानी मैक-डॉनेलसे मिला और उनके सम्मुख साठ हजार हस्ताक्षरोंकी १६ जिल्दों तथा मालवीयजीके कोर्ट कैरेक्टर ऐंड प्राइमरी एज्यूकेशनकी एक प्रतिके साथ निवेदन पत्र उपस्थित किया। सभाका आन्दोलन तेजीसे बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप संयुक्त प्रान्तकी सरकारको बाध्य होकर १८ अप्रैल सन् १९०० को यह आज्ञा निकालनी पड़ी :—

१—सभी अपनी इच्छाके अनुसार नागरी वा फारसी लिपिमें लिखकर प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं।

२—सरकारी आदेश और सूचनाएँ नागरी और फारसी—दोनों लिपियोंमें निकलेंगी।

३—सरकारी कर्मचारियोंके लिए नागरी और फारसी दोनों लिपियोंका ज्ञान लेना आवश्यक होगा।

सभाने नागरी लिपि और हिन्दी भाषाको प्रचलित करानेके लिए कचहरी हिन्दी कोश भी तैयार करवाकर प्रकाशित किया। यही नहीं, नागरी लिपिमें सुधारके लिए भी सभाने उद्योग किया।

इस प्रकार नागरी प्रचारिणी सभाने प्रारम्भसे ही हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके प्रचार, प्रसार और संस्कारके कामोंको किया और उन्हें करनेकी लोगोंमें प्रवृत्ति पैदा की तथा निरंतर उनका दिक्निर्देश और नेतृत्व करती रही।

प्रारम्भसे ही सभाने हिन्दीका पुस्तकालय स्थापित करनेका विचार किया। प्रारम्भमे सभाके पुस्तकालयका नाम 'नागरी भंडार' था। २७ अगस्त, १८९४ को सभाने श्री गदाधर सिंहजीसे अनुरोध किया कि वह कृपाकर अपना आर्य भाषा पुस्तकालय सभाको दे दें। श्री गदाधर सिंहजी सभाकी व्यवस्थासे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने इस शर्तके साथ अपना पुस्ताकलय सभाको दे दिया कि सभाके संग्रह और उक्त पुस्तकालयमें संग्रहीत सभी पुस्तकोंके संग्रहका सम्मिलित नाम 'आर्य भाषा पुस्तकालय' रखा जाय। सभाने इसे स्वीकार कर लिया और तभीसे उसका पुस्तकालय 'आर्य भाषा पुस्तकालय' के नामसे सेवा करता आ रहा रहा है। आर्य भाषा पुस्तकालयमें हिन्दीका बहुत व्यापक संग्रह है। अनेक मूर्द्धन्य विद्वानोंने इस पुस्तकालय को अपना महत्त्वपूर्ण संग्रह दिया है। पुस्तकालयमें लगभग ५,००० हस्तलिखित तथा ४०,००० मुद्रित ग्रन्थ संग्रहीत हैं। प्राचीन-पत्र पत्रिकाओंका संग्रह भी पुस्तकालमें है। इस प्रकार आर्य भाषा पुस्तकालयमें हिन्दीका बहुत व्यापक भंडार है। हिन्दीमें शोध कार्य करनेवाले विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे तो यह पुस्तकालय अपूर्व है। विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीमें डी. फिल., पी. एच. डी., और डी. लिट.के शोध-विद्यार्थी बराबर सभाके इस पुस्तकालयमें अध्ययनके लिए जाते हैं और यहीं टिककर अध्ययन करते हैं।

हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी खोजका कार्य आरम्भमें सभाने एशियाटिक सोसायटी (बंगाल) के द्वारा करवाया था। इसके परिणाम स्वरूप सं. १९८५ तक ६०० महत्त्वपूर्ण हस्तलेख मिले। इन ग्रन्थोंमें हिन्दी साहित्यके इतिहासकी बहुत उपयोगी सामग्री मिली। सन् १९०० के बाद हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी

खोजका काम सभाने स्वतन्त्र रूपसे करना प्रारम्भ किया। सभाको प्राचीन हस्तलेखोंकी खोजके कार्यमें अपने-अपने समयके सुविख्यात विद्वानोंका सहयोग प्राप्त था। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, रा. ब. डॉ. हीरालाल और रा. ब. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका सहयोग सभाके खोज विभागको निरंतर मिलता रहा। सभाकी इस खोजके क्षेत्रमें समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश है। इतने बड़े क्षेत्रमें और इतने महत्त्वपूर्ण काममें जितने आदमियोंको लगानेकी जरूरत है, उतने आदमियोंको सभा इस काममें नही लगा पा रही है क्योंकि सभाके पास द्रव्यकी कमी है।

सभाके प्रकाशनोंमें 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' इस युगकी सम्पूर्ण पत्र-पत्रिकाओंमें निर्व्यवधान प्रकाशित होती रहनेवाली सर्वाधिक प्राचीन पत्रिका है। इसका मुख्य उद्देश्य है नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार, हिन्दी साहित्यके विविध अंगोंका विवेचन और भारतीय संस्कृतिका अनुसंधान। यह शोध-पत्रिका है और मुख्यतः इसीके द्वारा हिन्दीमें उच्चतर शोधका मान प्रतिष्ठित हुआ है। आज भी पत्रिका अपने गौरवके अनुकूल चल रही है।

इस मुख पत्रिकाके अतिरिक्त सभा कुछ समय तक 'हिन्दी' तथा 'विधि पत्रिका' नामक हिन्दीकी मासिक पत्रिकाएँ और 'हिन्दी रिव्यू' नामक एक अँग्रेजी मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती रही। ये तीनों पत्रिकाएँ अपने-अपने क्षेत्रोंमें यथेष्ट लोकप्रिय रहीं और उन्होंने अपने उद्देश्योंकी पूर्ति बहुत कुछ की; किन्तु आर्थिक दृष्टिसे वे स्वावलम्बी नही हो सकी। फलतः बाध्य होकर सभाको उनका प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा।

सभाके प्रकाशनोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है 'हिन्दी-शब्द सागर।' वस्तुतः यह हिन्दी जगतके लिए गौरवमय प्रकाशन था। सभाके इस महत्वपूर्ण कार्यमें उस युगके अनेक मनीषी विद्वानोंने बड़ी लगन और साधुभावसे काम किया। अनेक स्थानोंपर जाकर, अनेक विद्वानोसे सलाह करके हिन्दी शब्दसागरको पूर्ण बनाया गया। हिन्दी शब्दसागरमें सब मिलाकर ९३११५ शब्द और ४२८१ पृष्ठ है। इस बृहत् कोशकी तैयारीमें सन १९०८ से १९२९ तक लगभग २२ वर्ष लगे और १०८७१९ रु. १४ आ. ५ पा. व्यय हुए। जिस समय यह हिन्दी शब्दसागर प्रकाशित हुआ उस समय इसने हिन्दीकी आवश्यकताकी अच्छी तरह पूर्ति की। पर इस कोशको प्रकाशित हुए ३० वर्षसे ऊपर हो गए। अब इसके पुनः संशोधनकी, परिवर्तनकी, तथा प्रकाशनकी नितान्त आवश्यकता है। केन्द्रीय सरकारकी सहायतासे सं. २०११ से लेकर २०१६ तक, प्रायः पाँच वर्ष, सभाने इस कोशका संशोधन और परिवर्तन कराया पर काम पूरा नहीं हुआ। सरकारी सहायता बन्द हो जानेपर संशोधन कार्य सभा अपनी ओरसे करा रही है।

हिन्दी शब्दसागरके अलावा हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली नामक अँग्रेजी-हिन्दी कोश भी सभाका एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन रहा है। सच तो यह है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक कोशके प्रणयनका सर्वप्रथम सौभाग्य नागरी प्रचारिणी सभाके उद्योगसे हिन्दीको ही प्राप्त है। इस कोशमें ज्योतिष, रसायन, भौतिक विज्ञान, गणित, वेदान्त, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि विषयोंके शब्द एकत्र किए गए। कई विद्वानोंने लगातार उन्नीस दिनों तक बैठकर अत्यन्त परिश्रमके साथ इस कोशकी सामग्रीकी छानबीन करके इसके सम्बन्धमें व्यवस्थित सिद्धान्त स्थिर किए थे जिनके अनुसार सं. १९६२ में यह कोश छपकर तैयार हुआ।

राजकीय शब्दकोशका काम भी सभाने अपने हाथमें लिया था। देशके विभिन्न विद्वानोंके सहयोगसे सभाने इस कार्यको व्यापक योजनाके साथ आगे बढ़ाया। प्रारम्भमें उत्तर प्रदेशकी सरकारका कुछ

सहयोग भी सभाको मिला। सभाने बहुत दूर तक इस कोशको तैयार भी करा लिया। उसके कुछ फर्मे छपने भी लगे थे। पर दुबारा सरकारने सहायता नहीं दी और द्रव्याभावके कारण, इस दिशामें अपेक्षाकृत यह सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्य स्थगित कर दिया गया।

हिन्दीमें विस्तृत और सुव्यवस्थित व्याकरणका अभाव भी एक बहुत बड़ी कमी रही है। सभाने इस अभावको भी दूर करनेका प्रयत्न किया। सं. १९६० में उसने हिन्दी व्याकरण प्रस्तुत करनेकी सामग्री एकत्र करवाई जिसके आधारपर सन् १९१९ में सभाने हिन्दीका एक प्रामाणिक व्याकरण प्रकाशित किया। इस कार्यमें मुख्य योग स्व. पं. कामताप्रसाद जी गुरुका रहा और उन्हींके नामसे यह व्याकरण प्रकाशित हुआ। समय समयपर कतिपय विद्वान हिन्दी व्याकरण सम्बन्धी विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते रहे और एक नवीन ग्रन्थकी आवश्यकतापर निरन्तर बल देते रहे। फलतः सन् १९६० में सभाने पं. किशोरीदास-जी बाजपेयी प्रणीत 'हिन्दी शब्दानुशासन' प्रकाशित किया जिसमें व्याकरण विषयक अनेक मतभेदों और सन्देहोंका निराकरण हुआ।

हिन्दीमें महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंको प्रस्तुत करनेके लिए सभाने समय-समयपर हिन्दी प्रेमी श्रीमानोंकी सहायता तथा अपने निजी साधनोंसे अनेक पुस्तकमालाओंके प्रकाशनका आयोजन किया। इनमें मनोरंजन पुस्तकमाला, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, सूर्यकुमारी पुस्तकमाला, बोलवक्ष राजपूत-चारण-पुस्तकमाला, देव पुरस्कार ग्रन्थावली, रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला, रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रन्थमाला, महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रन्थावली, नवभारत ग्रन्थमाला और महिला पुस्तकमाला आदि प्रमुख प्रकाशन है। इन ग्रन्थमालाओंमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है। किन्तु फिर भी हिन्दीके जानकारी एवं ज्ञान विबर्द्धनके उपयोगी ग्रन्थोंकी दृष्टिसे सभाके प्रकाशनोंमें कमी थी। हिन्दीके सभी ग्रन्थ सुसम्पादित रूपमें अभी नहीं प्रकाशित हो पाए है। सभाका ध्यान इस कमीकी ओर गया। सभाके एक प्रतिनिधि मण्डलने इसकी हीरक जयन्ती (सं. २०१० वि.) के अवसरपर दिल्ली जाकर श्रीमान् सेठ घनश्यामदासजी बिड़लाका ध्यान इस कमीकी ओर आर्काषित किया। यह कहते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि श्री घनश्यामदासजीने इस कमी को दूर करनेके लिए सभाको पचीस हजार रुपयेका दान दिया, जिससे राजा बलदेवदास बिड़ला पुस्तकमालाकी स्थापना की गई। सभाने अब तक ५०० से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनसे हिन्दी साहित्यका श्रीवर्द्धन हुआ है। ये पुस्तकें हिन्दी साहित्यके विविध अंग—यथा; काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवन-चरित्र, निबन्ध आदिको पुष्ट करती हैं, इसके अतिरिक्त इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र, विज्ञान, कला आदि विषयोंपर भी हिन्दीमें साहित्यका अभाव था उसकी पूर्ति करती है।

अपने उत्तमोत्तम प्रकाशनों द्वारा हिन्दी साहित्यका भंडार भरापूरा करनेके साथ-साथ सभाने सर्वदा यह चेष्टा की है कि अन्यान्य स्रोतोंसे भी निरन्तर विभिन्न विषयोंके उच्च कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित होते रहें। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सभाने पुरस्कारों और पदकोंकी भी योजना की है। प्रति वर्ष भिन्न-भिन्न विषयोंकी सर्वोत्तम पुस्तकोंके रचयिताओंको सभा पुरस्कार और रजत वा स्वर्णपदक प्रदान करके सम्मानित करती है और उनका उत्साहवर्द्धन करती रहती है। हिन्दी-संसार सभाके पुरस्कारों और पदकोंको बड़े आदरास्पद भावसे देखता है।

हिन्दी साहित्यकी मौलिक और उत्तम कृतियोंपर जो पुरस्कार और पदक दिये जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

पुरस्कार

बलदेवदास बिड़ला पुरस्कार—२००) का यह पुरस्कार अध्यात्मयोग, सदाचार, मनोविज्ञान और दर्शनके सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थोंपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

बटुक प्रसाद पुरस्कार—स्वर्गीय राय बहादुर बटुक प्रसाद खत्री द्वारा दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास या नाटकपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

रत्नाकर पुरस्कार—स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार ब्रजभाषाके सर्वोत्तम ग्रन्थपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

एक और कलाका पुरस्कार भी २००) का दिया जाता है। डिंगल, राजस्थानी अवधी, बुन्देलखंडी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदिकी सर्वोत्तम रचना या सुसम्पादित ग्रन्थपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

डॉ. छन्नूलाल पुरस्कार—श्री रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष विज्ञान विषयक उत्तम रचनापर दिया जाता है।

जोधसिंह पुरस्कार—उदयपुर निवासी स्व. मेहता जोधसिंहकी दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रन्थपर दिया जाता है।

माधवीदेवी महिला पुरस्कार—१००) का यह पुरस्कार गृह-शास्त्र सम्बन्धी उत्कृष्ट पुस्तकपर महिला लेखिकाको दिया जाता है।

वसुमति पुरस्कार—बाल-साहित्य की सर्वोत्तम कृतिपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

डॉ. श्यामसुन्दर पुरस्कार—यह पुरस्कार १,०००) तथा २,०००) का प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

पदक

डॉ. हीरालाल स्वर्णपदक—यह स्वर्णपदक प्रति दूसरे वर्ष पुरातत्त्व, मुद्रा शास्त्र, इंडोलोजी (हिन्दी विज्ञान), भाषा विज्ञान आदि सम्बन्धी हिन्दीमें लिखित सर्वश्रेष्ठ मौलिक पुस्तक अथवा गवेषणापूर्ण निबन्ध-पर दिया जाता है।

द्विवेदी स्वर्णपदक—यह पदक प्रति वर्ष हिन्दीकी सर्वोत्कृष्ट कृतिपर दिया जाता है।

सुधाकर पदक—यह रजत पदक बटुक प्रसाद पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

ग्रीव्ज पदक—श्री रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे यह रजत पदक डॉ. छन्नूलाल पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

राधाकृष्णदास पदक—श्री शिवप्रसाद गुप्तकी दी हुई निधिसे यह रजत-पदक 'रत्नाकर पुरस्कार' पानेवालेको दिया जाता है।

बलदेवदास पदक—श्री ब्रजरत्नदास वकीलकी दी हुई निधिसे यह रजत-पदक 'रत्नाकर पुरस्कार' पानेवाले को दिया जाता है।

गुलेरी पदक—स्व. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी स्मृतिमें श्री जगद्धर शर्मा गुलेरीकी दी हुई निधिसे यह रजत पदक जोधसिंह पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

रेडिचे पदक—यह पदक बिड़ला पुरस्कार प्राप्त करनेवालेको दिया जाता है।

सभाने एक राष्ट्रीय अभावकी पूर्तिके लिए सं. १९५१ में हिन्दी संकेत लिपिका निर्माण करवाया एव उसे उत्तरोत्तर परिष्कृत करवाती रही। संकेतलिपि तथा टंकण (टाइपराइटिंग) की शिक्षाके लिए सभाने एक विद्यालय भी खोला है। सभाके उद्योगसे ही आज अनेक प्रदेशोंकी सरकारोंमें हिन्दी संकेत लिपिका व्यवहार होने लगा है।

हिन्दीके परम आदरणीय कवि स्व. जयशंकर प्रसादजीकी स्मृतिमें सभा एक साहित्यगोष्ठी और व्याख्यानमालाका संचालन करती है। गोष्ठीके अन्तर्गत स्थानीय एवं आगत विद्वानोंके स्वागत सत्कार एवं विचारोंके पारस्परिक आदान प्रदान की व्यवस्था की जाती है एवं व्याख्यान मालाके अन्तर्गत विभिन्न विषयोंपर लोकप्रिय एवं सुबोध व्याख्यान होते हैं।

सभाके पास उसका निजी मुद्रणालय है जिसमें यहाँके प्रायः समस्त प्रकाशन मुद्रित हुआ करते है। मुद्रणालयमें यद्यपि अभी बहुतेरी न्यूनताएँ हैं, तथापि सभाके प्रकाशनोंको समयपर प्रस्तुत कर देनेमें मुद्रणालय-का उल्लेखनीय योग रहता है। उन अनेक असुविधाओंसे भी सभाको मुक्ति मिल गई है जिसका सामना मुद्रण कार्य अन्यत्र करानेमें करना पड़ता था। इतना ही नहीं, सभाके अतिरिक्त मुद्रणालय कुछ बाहरी मुद्रणकार्य भी कर लेता है। इस प्रकार यह विभाग अनेक दृष्टियोंसे सभाके लिए सुविधाजनक और हिता-वह सिद्ध हो रहा है।

हिन्दीके बड़े पुराने परिव्राजक हिन्दी सेवी स्वामी सत्यदेव जीने ज्वालापुर (हरद्वार) में 'सत्यज्ञान निकेतन' नामक अपना जो आश्रम बनवाया था उसे मुख्यतः देशके उत्तरी और पश्चिमी अंचलोंके लिए हिन्दीका प्रचार केन्द्र बनानेके निमित्त इस सभाको अर्पित कर दिया है। सभाने अपने यत्किंचित् साधनोंसे वहाँ एक पुस्तकालय भवन बनवा दिया है और यथावश्यकता अन्यान्य सुधार-परिष्कार करके स्वामी-जीके इस सात्विक दानका उद्देश्यानुसार संचालन कर रही है।

सभाके सहयोग और मुख्यतः राय कृष्णदासजीके उद्योगसे सभाने भारतीय संस्कृति और कलाकी विपुल प्राचीन सामग्रीका संग्रह भारत-कला-भवनमें करवाया। संग्रह बहुत अधिक बढ़ जानेपर यह कला-भवन काशी विश्वविद्यालयको हस्तांतरित कर दिया गया, जहाँ उसका यथोचित संचालन एवं विकास हो रहा है।

सं. २०१० में सभाने अपनी हीरक जयन्ती बड़े समारोहपूर्वक भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीके सभापतित्त्वमें मनाई। सभाका यह आयोजन उत्सव मात्र न होकर उसकी परम्पराके अनुसार ऐसा अवसर था जब उसने अपने पिछले कार्यपर सम्यक् दृष्टिपात करते हुए भविष्यके लिए कुछ उत्तमोत्तम रचनात्मक कार्योंका संकल्प किया था जिनमें प्रमुख निम्नांकित है :—

१—हिन्दी शब्दसागरका संशोधन।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

[भवन]

२—आकर ग्रन्थोंका प्रकाशन।

३—हिन्दी साहित्यके बृहत् इतिहासका १७ भागोंमें प्रकाशन।

४—हिन्दी विश्वकोशका प्रणयन और प्रकाशन।

इनमेसे प्रथमोक्त दो कार्योंका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिन्दी साहित्यके बृहत इतिहासका कार्य भी सभा यथोचित रीतिसे कर रही है और अब तक उसके तीन भाग—प्रथम, षष्ठ और षोडश—प्रकाशित हो चुके हैं। शेष भाग भी लेखन-सम्पादन आदिके क्रममें है और यथावसर प्रकाशित होंगे।

हिन्दी विश्वकोशके प्रणयन, प्रकाशनका कार्य सभा केन्द्रीय सरकारके वित्तीय संरक्षणमे कर रही है। लगभग ६००–६०० पृष्ठोंके दस भागोंमे यह विश्वकोश सम्पूर्ण होगा और इसपर कुछ ६॥ लाख रुपये व्यय होंगे। सं. २०१७ में इसका प्रथम भाग प्रकाशित हो गया, जिसपर सारे देशके विद्वानोंने संतोष और प्रसन्नता व्यक्त की है। दूसरा भाग छप रहा है और आगेकी सामग्री संकलन एवं प्रकाशनके क्रममें हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा आधुनिक भारतके राष्ट्रीय जागरण कालकी संस्था है और हमारे लिए यह बड़े गौरवकी बात है कि सभाने अपने अब तकके कालमें राष्ट्रकी साहितियक आवश्यकताकी पूर्तिका रचनात्मक काम किया है। आज हिन्दी और नागरी को जो महत्व प्राप्त है, उसका बहुत कुछ श्रेय सभाको ही है। इस अति अल्प आरम्भसे उसने आज एक विशाल संस्थाका रूप धारण कर लिया है जो देशके मूर्द्धन्य विद्वानोंके सहयोगसे भारत गणराज्य राष्ट्रभाषाकी, हिन्दी साहित्य और राष्ट्रीय संस्कृतिके प्रसार-प्रचार एवं उन्नयनके पथपर अविचल गतिसे निरन्तर प्रगति कर रही है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सुचारुरूपसे कार्य कर रही थी। उसने नागरी लिपिके आन्दोलनका नेतृत्व कर उत्तर प्रदेशकी कचहरियोंमें उर्दूके स्थानपर नागरी लिपिको स्थान दिलानेमे सफल प्रयत्न किया था। इस कारण उसकी प्रतिष्ठा जनतामे काफी बढ़ी। सभाके द्वारा हिन्दी साहित्यके निर्माणका कार्य भी शुरू हो गया था। सभाके प्रमुख कार्यकर्ता तथा हिन्दी जगतके साहित्यकार यह आवश्यकता अनुभव करने लगे थे कि एक ऐसा मंच होना चाहिए जहाँ हिन्दी प्रेमी एकत्रित होकर हिन्दीके विकास तथा हिन्दीकी समस्याओंपर विचार-विनिमय कर सकें। उस समयकी इस आवश्यकताको लक्ष्यमें रखकर स्व. डॉ. श्यामसुन्दरदासजीने जून १९१० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी प्रबन्ध समितिकी एक बैठकमें इस आशयका प्रस्ताव रखा कि हिन्दीके साहित्यिकोंका एक सम्मेलन किया जाय और उसमें हिन्दी तथा नागरी लिपिके व्यापक प्रचार-प्रसार तथा व्यवहारके लिए उपयुक्त साधनों तथा प्रयत्नोके सम्बन्धमें विचार किया जाय। यह प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ और उपस्थित सदस्योंने एवं नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने इसके लिए आवश्यक धनकी भी व्यवस्था की। यह भी निर्णय किया गया कि यह सम्मेलन काशीमें शीघ्र ही बुलाया जाय।

इस प्रकार सन् १९१० में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके प्रयत्नोंसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका जन्म हुआ। इस सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन काशीमें ही हुआ और उसके

सभापति पं. मदनमोहनजी मालवीय रहे। इसमें बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन उपस्थित हुए थे। उन्होंन इस सम्मेलनमें यह प्रस्ताव स्वीकृत करवाया कि सरकारी दफ्तरोंमें नागरी लिपिके प्रचार तथा हिन्दी साहित्य-की व्यापक उन्नति के लिए कोश संग्रह शीघ्र किया जाय और इस कोश संग्रहके लिए सम्मेलनकी ओरसे अपील भी की गई। इसके लिए हिन्दी पैसा-फंड समिति बनाई गई। इस अपीलके जवाबमें तुरन्त पैसोंकी वर्षा-सी शुरू हो गई और कुछ ही समयमें २,२५,५४६ पैसे जमा हो गए। इस पैसा-फंडसे प्राप्त रकमसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी नींव पड़ी। दूसरे वर्ष पंडित गोविन्दनारायण मिश्रकी अध्यक्षतामें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयागमें हुआ। जिसमें टण्डनजीने सम्मेलनके लिए एक छोटी-सी नियमावली पेश की, जो स्वीकार हुई और उसके अनुसार सम्मेलनका नियमित रूपसे कार्य चलने लगा। टण्डनजी सम्मेलनके प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुए।

दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका सूत्रपात

सम्मेलनका काम टण्डनजीके मार्गदर्शनमें दिनों-दिन आगे बढ़ता गया। सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंके कारण हिन्दी साहित्यिकों और हिन्दी-प्रेमियोंका मिलना और हिन्दीकी उन्नतिके लिए विचार विनिमय करना सम्भव हो सका। ये अधिवेशन देशके विभिन्न प्रदेशोंके नगरोंमे होते रहे, इसलिए धीरे-धीरे सम्मेलनको एक अखिल भारतीय संस्थाका रूप प्राप्त होने लगा। सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ८ वाँ अधिवेशन इन्दौरमें हुआ, उसके सभापति महात्मा गाँधी चुने गए। इससे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अखिल भारतीय स्वरूप अधिक स्पष्ट हुआ। इस अधिवेशनमे हिन्दी प्रचारके लिए ठोस कार्य करनेका निश्चय किया गया। इसके अनुसार दक्षिण भारतमे गाँधीजीके मार्गदर्शनमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनने हिन्दी प्रचारके कार्यको शुरू कर दिया। इस प्रकार अपने जीवनकालके केवल ८ वर्षोंमें ही सम्मेलनने हिन्दी प्रचारके लिए क्रियात्मक कदम उठाया। इसलिए इन्दौर अधिवेशनका सम्मेलन-इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। हिन्दीका एक सर्व सामान्य भाषाके रूपमें सारे देशमे उपयोग होता ही था पर उसके प्रचारके लिए संगठित रूपसे अभी तक कोई प्रयास नही किया गया था। सम्मेलन ही प्रथम संस्था है, जो गाँधीजीकी प्रेरणासे इस कार्यके लिए अग्रसर हुई। दक्षिण भारतका हिन्दी प्रचार कार्य सम्मेलनके मद्रास कार्यालयके द्वारा सन् १९२७ तक चलता रहा। प्रचारकोंको भेजना, केन्द्रोंका निरीक्षण करना तथा नए केन्द्र स्थापित करना आदि कार्य सम्मेलनके अधीन मद्रास कार्यालयके संगठककी देखरेखमें चलते रहे। सन १९२७ तक यह कार्य इसी प्रकार चला। बीचमें आवश्यकता पड़नेसे दो शाखा कार्यालय भी दक्षिणमें खोले गए थे। कार्य काफी बढ़ गया था। अतः इसे सम्भालनेको महात्मा गाँधीजीकी इच्छा-नुसार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा स्थापित हुई, जो सम्मेलनसे सम्बद्ध होकर एक स्वतन्त्र संस्थाके रूपमें अब कार्य करनी लगी। उसने गत ३५ वर्षोंमें दक्षिण भारतमें जो कार्य किया है, वह बड़ा ही प्रशंसनीय है। दक्षिणमें हिन्दी प्रचार-कार्यको आरम्भ करनेका तथा इस संस्थाको जन्म देनेका श्रेय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी अनेक प्रवृत्तियोंको सुचारू रूपसे सम्पादित करनेके लिए उसके निम्न-लिखित प्रमुख विभाग हैं :—

(१) प्रबन्ध-विभाग, (४) प्रचार-विभाग,
(२) परीक्षा-विभाग, (५) साहित्य-विभाग तथा
(३) संग्रह-विभाग, (६) अर्थ-विभाग।

परीक्षाएँ

हिन्दीके व्यापक प्रचारकी दृष्टिसे सम्मेलनने हिन्दी-परीक्षाओंका प्रबन्ध करना आवश्यक समझा और इसके लिए सन् १९१३ के भागलपुर अधिवेशनमें यह निर्णय किया गया कि सम्मेलनकी ओरसे हिन्दीकी परीक्षाएँ शुरू की जाएँ, उसके लिए नियमावली तैयार की गई और शीघ्र ही 'प्रथमा', मध्यमा' (विशारद), 'उत्तमा' (साहित्य-रत्न)—ये तीन परीक्षाएँ सम्मेलनकी ओरसे शुरू हुई। जैसे-जैसे कार्य बढ़ता गया और नई परीक्षाएँ भी शुरू की गई। इस समय सम्मेलनकी ओरसे उसका हिन्दी विश्वविद्यालय निम्नलिखित परीक्षाएँ ले रहा है :—

प्रथमा, मध्यमा (विशारद), उत्तमा (साहित्य-रत्न), आयुर्वेद विशारद, कृषि विशारद, व्यापार विशारद, शिक्षा विशारद, सम्पादन कला विशारद, शीघ्रलिपि विशारद, मुनीमी, अर्जीनवीसी तथा उपवैद्य।

इन परीक्षाओंका प्रबन्ध और संचालन सम्मेलनकी परीक्षा समितिकी देखरेखमे होता है। सम्मेलनकी परीक्षांओंको कुछ विश्वविद्यालययोंने तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकारोने मान्यता दी है। अभी कुछ समय हुए केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने सम्मेलनकी मध्यमा परीक्षाको हिन्दीके ज्ञान स्तरमे बी. ए. के समकक्ष माना है तथा उत्तमाको बी. ए. से ऊँचा तथा एम. ए. से कम। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालयने इस प्रकार मान्यता देकर इन परीक्षाओके मानदण्डको स्वीकार किया है। सम्मेलनकी परीक्षाओके केन्द्र सारे देशमे फैले हुए है। इनमे हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थी प्रतिवार सम्मिलित होते है। हिन्दी प्रदेशोके अतिरिक्त हिन्दी-तर प्रदेशोंके सुदूर द्रविड़ भाषी प्रदेशके भी विद्यार्थी सम्मेलनकी परीक्षाओंमे बड़े चावसे बैठते है और अपने हिन्दी ज्ञानमे वृद्धि कर रहे है। भारतके बाहर विदेशोमें भी सम्मेलनकी परीक्षाओके लिए कहीं-कही केन्द्र चलते है। यहाँ गत पाँच वर्षोकी परीक्षार्थी संख्याके कुछ आंकड़े दिये गए है, जिन्हे देखनेसे यह स्पष्ट होगा कि सम्मेलन अपनी उच्च स्तरीय हिन्दी-परीक्षाओके द्वारा हिन्दी प्रचारके कार्यमे कितना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका परीक्षार्थी-क्रम : १९५७ से

	प्रथमा	मध्यमा	उत्तमा		अन्य	सम्पूर्ण
			प्र. खंड	द्वि. खंड	विशारद	परी. संख्या
सन् १९५७	७५००	११३४०	४६७५	२४००	१४३१	२७३४६
,, १९५८	७५५०	१०७७१	४६७०	२३०२	१८७८	२७१७१
,, १९५९	७६७६	११८४०	४८६०	२४७०	२२७०	२९११६
,, १९६०	७५०७	१३६४२	५२६५	२७१५	२९२६	३२०५५
,, १९६१	७९२७	१४६८६	५३३१	२९०३	३३१९	३४१६६

गत कुछ वर्षोंसे सम्मेलनकी ओरसे पदवीदान समारोह मनाया जा रहा है। इसमें देशके गण्यमान्य विद्वानों एवं साहित्यिकोंको आमन्त्रित किया जाता है। गत समारोहमें पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्र-प्रसाद, सेठ गोविन्ददास, श्री न. वि. गाडगील आदिने उपस्थित रहकर पदवीधारियोंके समक्ष अपने दीक्षान्त भाषण दिए हैं।

हिन्दी संग्रहालय

सम्मेलनका संग्रहालय देशके इने-गिने सग्रहालयोंमें एक विशेष स्थान रखता है। सम्वत् १९७९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कानपुरमें १३ वाँ अधिवेशन बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनजी अध्यक्षतामें हुआ था। इसमें यह निर्णय किया गया कि सम्मेलन एक आदर्श-सा संग्रहालय स्थापित करे। इस निर्णयके अनुसार सम्मेलनके एक विशाल भवनमें संग्रहालय स्थापित किया गया है। इस संग्रहालयको बढ़ानेमें टण्डनजीका अथक प्रयत्न एवं प्रेरणा रही है। इसमें इस समय ३५,००० पुस्तकें है। हिन्दीकी कुछ दुर्लभ पुस्तकें तथा पाण्डुलिपियाँ भी यहाँ रखी गई हैं। हिन्दीके अतिरिक्त और भाषाओंकी पुस्तकें इसमें है। इस संग्रहालयमें इतिहासके सुप्रसिद्ध विद्वान स्व. मेजर वामनदास वसुका सारा निजी पुस्तकालय खरीदकर रख लिया गया है। यह संग्रहालय सम्मेलनकी एक महत्त्वपूर्ण निधि है। इसका संवर्द्धन दिनों-दिन हो रहा है। इसमें 'पुरुषोत्तमदासजी टण्डन कक्ष' भी है। राजर्षि टण्डनजीको जो भेटें प्राप्त हुई उन्हें उन्होंने सम्मेलनको अर्पित कर दिया। वे इस कक्षमें संग्रहीत है। इस संग्रहालयका और उसके पुस्तकालयका उपयोग हिन्दीके उच्च कोटिके विद्यार्थी करते है। अनेक प्रदेशोंसे विद्यार्थी अपने शोध ग्रन्थोंके लिए सामग्री जुटानेको यहाँ आते है और यहाँ रहकर इस संग्रहालयका लाभ उठाते है।

हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग

हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा संचालित संस्था है। राजर्षि टण्डनजीने इसके निर्माण तथा उन्नतिमें बहुत दिलचस्पी ली। इसकी कई एकड़ जमीन है तथा यमुना नदीके किनारे यह स्थित है।

विभिन्न प्रदेशोंसे, विशेष कर दक्षिण भारतसे आए हुए अनेक छात्रोंने हिन्दीकी उच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और विद्यापीठके माध्यमसे आज वे दक्षिण भारतमें सफलता पूर्वक हिन्दीका कार्य कर रहे है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना

सन १९३६ में नागपुरमे डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन हुआ। इसमें गाँधीजीकी प्रेरणासे यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि हिन्दी प्रचारका कार्य करनेके लिए 'हिन्दी प्रचार समितिका' संगठन किया जाय और इसका कार्यालय वर्धामें रखा जाय। इसके अनुसार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका संगठन किया गया। यह समिति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरह हिन्दी प्रचारका कार्य दक्षिण भारतके ४ प्रदेशोंको छोड़कर भारतके लगभग सभी प्रदेशोंमें कर रही
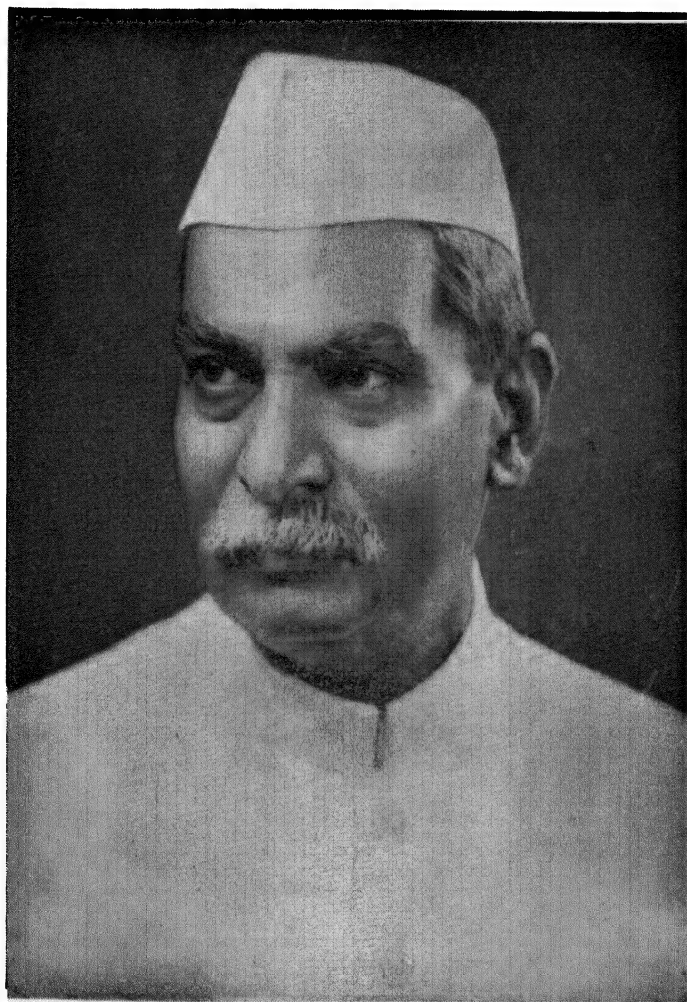
डॉ. राजेन्द्रप्रसाद
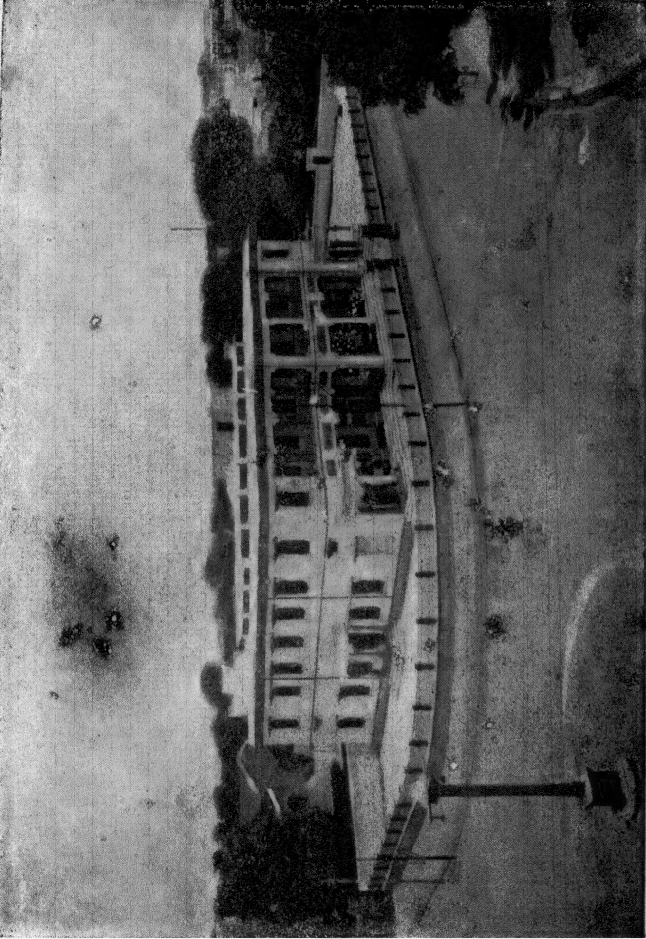
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[संग्रहालय]
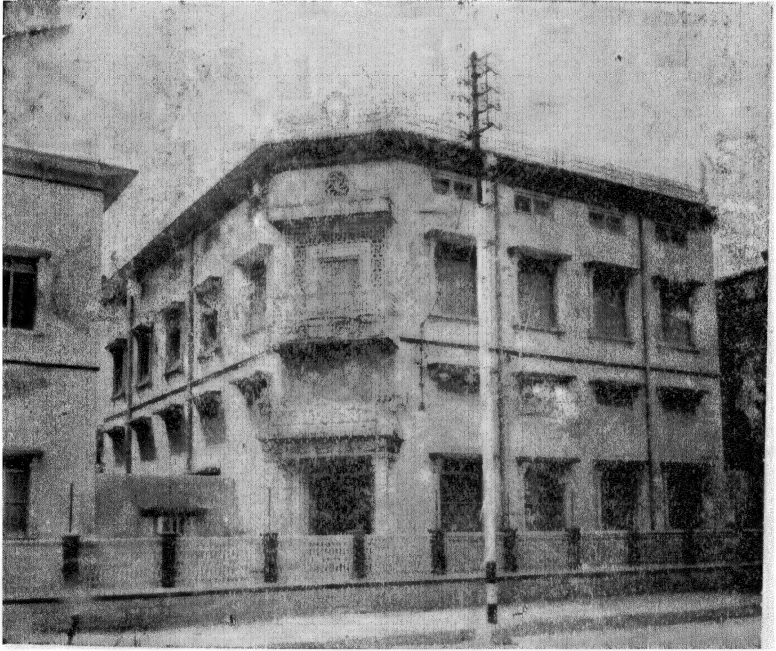
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[मुद्रणालय]

रही है। विदेशोंमें अनेक स्थानोंपर समितिके परीक्षा-केन्द्र हैं और वहाँ हिन्दीके अध्यापनकी व्यवस्था है। इस समितिने गत २५ वर्षोंमें जो कार्य किया है, वह बड़ा ही स्तुत्य है। इसके कार्यका पूरा विवरण अन्यत्र दिया गया है। यह समिति सम्मेलनके अंगरूप कार्य कर रही है। इस प्रकार सम्मेलनके द्वारा हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी प्रचारका ठोस कार्य हो रहा है।

सम्मेलनका एक और महत्वपूर्ण विभाग है, उसका साहित्य विभाग। इसके द्वारा पुस्तकोंका निर्माण तथा प्रकाशन होता है। सम्मेलनने अनेक पुस्तकोंका निर्माण तथा प्रकाशन करके हिन्दी साहित्यकी समृद्धिको बढ़ाया है।

सम्मेलनके द्वारा अनेक ग्रन्थ-मालाओंका आयोजन हुआ है और उनके अन्तर्गत १७ विभिन्न विषयों-की १९७ पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हो चुकी हैं। सम्मेलनकी यह भी योजना है कि भारतीय भाषाओंके गौरव ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद किया जाए।

साहित्य विभागके अन्तर्गत कोश-निर्माणका भी विभाग है। अधिकारी, सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा सम्मेलन कोश-निर्माणका कार्य कर रहा है। अब तक 'शासन शब्द कोश', 'प्रत्यक्ष शरीर कोश', 'जीव रसायन कोश', 'भूतत्त्व विज्ञान कोश', 'चिकित्सा कोश'—ये पाँच शब्दकोश प्रकाशित हो चुके हैं और भी कुछ छोटे कोश उद्योग, रसायन आदि विषयोंपर तैयार करवा लिए गए हैं। अँग्रेजी हिन्दी-शब्द कोश तैयार हो गया है उसके मुद्रणका कार्य चल रहा है।

सम्मेलनकी ओरसे "सम्मेलन पत्रिका" नामक एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। इसमें अनुशीलन प्रधान लेख-सामग्री रहती है। इसलिए यह पत्रिका हिन्दीकी उच्च कोटिकी पत्रिकाओंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

मुद्रणालय

सम्मेलनका अपना मुद्रणालय है, जो अद्यतन साधनोंसे युक्त है। इसीमें सम्मेलनकी पुस्तकोंका मुद्रण होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी बिहार तथा उत्तर प्रदेशकी सरकारोंका भी मुद्रण कार्य इस प्रेसमें होता है। सम्मेलनकी ओरसे साहित्य विद्यालय भी चलाया जाता है। इसमें हिन्दीके विद्यार्थी आकर पढ़ते हैं। प्रयाग नगरके विद्यार्थी इस विद्यालयका लाभ उठाते हैं। इसके अतिरिक्त बाहरके छात्र यहाँ रहकर निःशुल्क हिन्दीका अध्ययन करते है। विदेशोंसे भी कभी-कभी कोई विद्यार्थी हिन्दीका अध्ययन करनेके हेतु यहाँ चला आता है। सम्मेलनकी ओरसे 'संकेत लिपि' तथा 'टंकण विद्यालय' भी चलाये जाते है। इसमें छात्र आकर 'संकेत लिपि' तथा टंकणका ज्ञान प्राप्त करते हैं।

सम्मेलनके पुरस्कार

सम्मेलनकी ओरसे हिन्दीकी मौलिक और उच्च कोटिकी कृतियोंपर पुरस्कार दिये जाते हैं। इन पुरस्कारोंमें मंगलाप्रसाद पुरस्कार जो. रु. १२०० का है, सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सम्मेलनकी ओरसे निम्नलिखित और पुरस्कार भी दिये जाते हैं:—

सेकसरिया महिला पुरस्कार	५००) रुपए का
मुरारका पुरस्कार	५००) रुपए का
नेमीचन्द पंड्या पुरस्कार	५००) रुपए का
रत्नकुमारी पुरस्कार	२५०) रुपए का
नारंग पुरस्कार	१००) रुपए का
गोविन्दराम सेक्सरिया विज्ञान पुरस्कार	१५००) रुपए का

इन पुरस्कारोंका विशेष महत्त्व है। जो पुस्तकें सम्मेलनके पुरस्कारसे समाहृत होती है, उनका हिन्दी साहित्यमे विशेष स्थान है।

साहित्यिक सम्मान

अन्य विश्वविद्यालयकी तरह सम्मेलन भी देशके मूर्द्धन्य साहित्यकारोंको सम्मानित कर उन्हें श्रेष्ठ उपाधियाँ दे विभूषित करता है। सम्मेलनकी ओरसे दी जानेवाली उपाधियोंमे सर्वश्रेष्ठ उपाधि 'साहित्यवाचस्पति' है। इस उपाधिसे सम्मानित होनेवाले कुछ प्रमुख व्यक्ति निम्नानुसार है:—

डॉ. अमरनाथ झा, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, श्री वियोगी हरि, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्री रामनारायण मिश्र, श्री शिव-कुमार सिंह तथा महापण्डित राहुल सांकृत्यायन।

सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशन भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें होते रहे हैं और इसके सभापति केवल हिन्दीके विद्वान ही नहीं हुए है और प्रदेशोंके विद्वान भी हुए है। राष्ट्रीय महासभा काँग्रेसके वार्षिक अधि-वेशनोंका-सा इनका भी महत्त्व है। इन अधिवेशनोंमें देशभरके हिन्दी प्रेमी, हिन्दी-सेवक तथा हिन्दीके साहित्यकार वर्षमें एकबार एक साथ एकत्रित होकर हिन्दीकी समस्याओंपर विचार-विनिमय करते थे और अपने विचारोंको व्यक्त करते थे। अधिवेशनके साथ-साथ कुछ परिषदें भी होती रही है, जिनमें साहित्य परिषद, राष्ट्रभाषा परिषद, दर्शन परिषद, समाजशास्त्र परिषद (इतिहास राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र), विज्ञान परिषद (तात्विक विज्ञान तथा व्यावहारिक विज्ञान) आदि मुख्य है। ये परिषदें सुविख्यात अधिकारी व्यक्तियोंकी अध्यक्षतामे होती रही है। इनमें विद्वानोंके निबन्ध पढ़े जाते है और उनपर चर्चाएँ होती है। इस प्रकार सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशन केवल समारोहका रूप ही नही रखते है, बल्कि उनमें हिन्दी-की समस्याओंपर चिन्तन किया जाता है। पिछले १२ वर्षोंसे कुछ आन्तरिक संघर्षोके कारण गतिरोध हो गया है। फलस्वरूप ये वार्षिक अधिवेशन अब नही हो रहे हैं। सम्मेलनकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ न्यायालय द्वारा नियुक्त आजके आदाता श्री गोपालचन्द्र सिंहकी देखरेखमें चल रही है। इस वर्ष केन्द्रीय सरकारने हिन्दी साहित्य सम्मेलनके लिए एक कानून बनाकर इसे राष्ट्रीय महत्त्वकी संस्थाके रूपमें मान्यता दी है और उसकी नियमावली बनानेको एक समिति भी नियुक्त की है। यह आशा की जाती है कि नजदीक भविष्यमें पुन: सम्मेलन अपनी उस स्थितिको प्राप्त करेगा, जिससे कि वह हिन्दीके कार्यको और अच्छी तरह सुसम्पादित कर सके तथा हिन्दी जगतका नेतृत्व कर सके।

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दिल्ली नगरको हिन्दीका सबसे पुराना घर माना जाता है। संघबद्ध रूपसे हिन्दीके प्रचार और प्रसारका कार्य भी यहाँ बीसवीं शताब्दीकी प्रथम दशाब्दीमे तब आरम्भ हुआ था, जब विभिन्न धार्मिक विचारोंके अनुसार अग्रसर होनेवाली विभिन्न शक्तियाँ हिन्दीके प्रचारार्थ एक मंचपर एकत्रित हुई थीं और सबके सम्मिलित प्रयाससे हिन्दी प्रचारिणी सभाकी नीव रखी गई थी। कूँचा ब्रजनाथके द्वारपर एक कमरेमें उसका कार्यालय, पुस्तकालय और वाचनालय उस अंकुरकी भाँति उन्मुख हुआ था जिसमें भविष्यकी विराट् सम्भावनाएँ निहित रहती हैं। उन दिनोके अनथक कार्यकर्ता श्री केदारनाथ गोयनकाकी सौम्य मूर्ति कितने ही भद्र पुरुषोंको अब तक याद है!

दिल्लीकी निरन्तर परिवर्तित परिस्थितिमे चालीस वर्षों तक इसी प्रकार विभिन्न स्थानोंपर हिन्दी सभाओंकी स्थापना होती रही। जब राजधानीका रूप एक प्रकारसे कुछ स्थिर हो गया, तब २९ अक्टूबर सन् १९४४ के दिन दीवान हालमें श्री रामधन शास्त्री (अब डॉ.) के सभापतित्वमें एक सार्वजनिक सभा हुई। सभामें श्री रामचन्द्र शर्मा महारथीके प्रस्ताव और सर्वश्री नगेन्द्र (अब डॉ.), अवनीन्द्र विद्यालंकार और बाबूराम पालीवालके समर्थनसे दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापनाका संकल्प ग्रहण किया गया। संकल्पको नियमित एवं व्यावहारिक रूप देनेके लिए निम्नलिखित महानुभावों की एक समिति नियुक्ति की गई :—

सर्वश्री—मौलिचन्द्र शर्मा, रामधन शर्मा, इन्द्र वाचस्पति, अवनीन्द्र विद्यालंकार, नगेन्द्र, रामसिंह, कृष्णचन्द्र, पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश', दीनानाथ भार्गव, राजनारायण, सत्यदेव, विद्याभूषण, रामचन्द्र तिवारी, बाबूराम पालीवाल और रामचन्द्र शर्मा (संयोजक)।

जन्मकालसे अब तकके १५ वर्षोंमें निम्नलिखित महानुभाव सम्मेलनके सभापति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं प्रधानमन्त्रीके पदसे राष्ट्रभाषाकी सेवा कर चुके है या कर रहे है :—

सभापति—सर्वश्री श्रीनारायण मेहता, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" इन्द्र विद्यावाचस्पति, मौलिचन्द्र शर्मा, अनन्तशयनम् अय्यंगार, डॉ. युद्धवीर सिंह और रामधारीसिंह 'दिनकर'।

अध्यक्ष—सर्वश्री राजेन्द्र कुमार जैन, मौलिचन्द्र शर्मा, रघुवर दयाल त्रिवेदी, डॉ. युद्धवीरसिंह और बसन्तराव ओक।

उपाध्यक्ष—सर्वश्री मौलिचन्द्र शर्मा, राजेन्द्रकुमार जैन, सत्यदेव विद्यालंकार, रामधन शर्मा, माधव, महावीर प्रसाद, वसन्तराव ओक, रामलाल पुरी, लक्ष्मीनारायण रेखी, सुन्दरलाल भार्गव, कुँवरलाल गुप्त, अक्षयकुमार जैन, प्रि. हरिश्चन्द्र, केशवप्रसाद 'आत्रेय' और किशन प्रसाद कटपीसवाले।

पुनर्गठन

सन् १९५२ में सम्मेलनके तत्कालीन अध्यक्ष एवं प्रधान मन्त्रीकी आकस्मिक व्यस्तता तथा अनुपस्थितिके कारण सम्मेलनका काम कुछ शिथिल हो गया था। हिन्दी आन्दोलनके सदा जाग्रत सूत्रधार राजर्षि टण्डनजीने उस समय अपना वरद हस्त आगे बढ़ाया और डॉ. युद्धवीरसिंहको सम्मेलनका अध्यक्ष

तथा श्री गोपालप्रसाद व्यासको प्रधान मन्त्री बनाया गया। कुछ दिन बाद निपुण संगठनकर्ता और कर्मठ नेता श्री वसन्तराव ओकका सहयोग सम्मेलनको मिल गया एवं श्री अक्षयकुमार जैन, श्री सत्यनारायण बंसल, श्री महावीर प्रसाद वर्मन, श्री अमरनाथ शर्मा तथा अन्य कई महानुभाव सम्मेलनके कार्यमें प्रत्येक प्रकारसे संलग्न हो गए। इस नवीन रक्तसे सम्मेलनको नया वेग मिला, परन्तु सम्मेलनकी वास्तविक शक्ति उसके उस संगठनमें निहित है, जो अपने ढंगका निराला और पूर्ण जनतान्त्रिक हो गया है।

प्रारम्भमें दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनका संगठन भी केन्द्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे सम्बद्ध अन्य प्रादेशिक सम्मेलनोंकी भाँति किया गया था। दिल्लीकी विशेष स्थितिके अनुसार यह निर्णय किया गया कि अस्त-व्यस्त हिन्दी सभाओंके स्थानपर सम्पूर्ण दिल्ली, नई दिल्ली और उसके आस-पासके कस्बों-ग्रामोंके नगर निगमके निर्वाचन केन्द्रोंको आधार मानकर विभाजित किया जाए और प्रत्येक निर्वाचन केन्द्रमें प्रादेशिक सम्मेलमकी एक शाखा मांडलिक संगठनके रूपमें काम करे। मंडलके सब सदस्य सम्मेलनके सदस्य समझे जाएँ। उनके शुल्कका पद्मांश सम्मेलनको मिलाकर और सम्मेलन सदस्य-संख्याके अनुपातसे ही मंडल को प्रादेशिक संगठनमें प्रतिनिधित्व प्रदान करे। इस नवीन योजनाको सर्वत्र सराहना मिली। राजर्षि टंडनजीने इसे विशेष रूपसे आशीर्वाद प्रदान किया और सन् १९५५ में सूर जयन्तीके पुनीत अवसरपर उसके अनसार दरियागंजमें जो पहला मंडल गठित हुआ, उसका उद्घाटन करके इसके मत्थेपर अपने कर-कमलोंसे तिलक भी लगा दिया। अब सम्मेलनके मंडलोंकी संख्या इक्कीस और उनके सदस्योंकी संख्या पाँच हजारसे भी अधिक हो गई है। मंडलोंके नाम इस प्रकार हैं—अजमेरी द्वार, आर्यपुरा सोहनगंज, कृष्णनगर, करौल बाग, कमलानगर, खारी बावड़ी, गोल मार्केट, चाँदनी चौक, तिमारपुर दरियागंज, नई सड़क, निजामुद्दीन, पहाड़गंज, मालीवाड़ा, मिण्टोरोड, मोतीबाग, राजेन्द्रनगर, विनयनगर, लाजपतरायनगर, सदर बाजार, शहादरा और हौज काजी।

सम्मेलनने ऋतु-पर्वोकी परम्परा जाग्रत करने और प्रमुख कदमोंकी जयन्तियाँ समारोहके साथ मनानेका जो अत्यन्त लोकप्रिय कार्य हाथमें लिया था, वह अब इन्हीं मंडलोंको सौंप दिया गया है। मंडल बड़े उत्साहके साथ इस कार्यमें संलग्न हो गए हैं। प्रत्येक उत्सव और समारोहमें जनता पर्याप्त संख्यामें सम्मिलित होती है और उस जीवनदायिनी सरल सुधाका पान करती है। जो हमारे महान पूर्वज हमें दे गए हैं। इस प्रकार मंडलोंके द्वारा सम्मेलनका सन्देश इस महानगरीके कोने-कोने तक आसानीके साथ पहुँच जाता है।

विविधतामें एकता

सम्मेलनके संगठनकी एक और विशेषता यह है कि इसके मंचपर वर्गों, विश्वासों, जातियों और सम्प्रदायोंके लोग प्रत्येक प्रकारकी भेद-बुद्धिको त्यागकर राष्ट्रभाषाकी प्रतिष्ठाके लिए दत्तचित्त हो जाते हैं। हैं। हिन्दीसे प्रेम करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है। इसीलिए सम्मेलन मंचसे रहीम, नानक और वाल्मीकिको भी श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है और दक्षिण, गुजरात, महाराष्ट्र तथा बंगालके वरेण्य वरदपुत्रोंकी जयन्तियाँ मनाकर सब भारतीय भाषाओंके प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट किया जाता है। सम्मेलनके संगठनकी यह विशेषता और उसकी यह कार्य-विधि लोगोंको मौन उत्तर देती है, जो हिन्दीपर
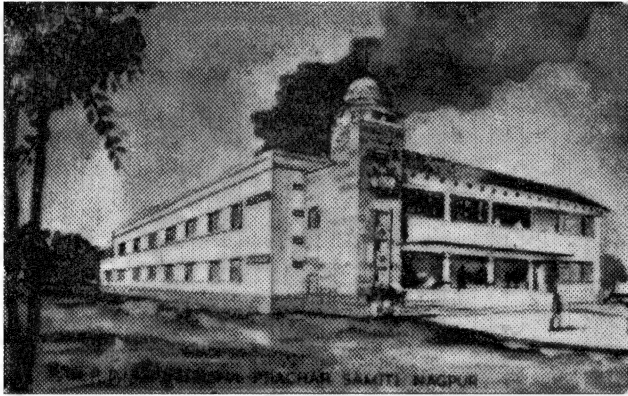
विदर्भ–नागपुर
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
[कार्यालय भवन]

साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका आरोप लगाते हैं, साथ ही साथ यह आज की निरंतर बढ़ती हुई भेद-बुद्धिको समाप्त करनेका एक व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है और इसे अपनानेका नम्र निमन्त्रण देती है। वास्तवमें राष्ट्र-भारतीका अंचल ही वह एक मात्र स्थल है जहाँ सब प्रकारके भेद सम्मिलित और समाहित हो सकते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कामोंकी दिशामें सम्मेलनने दिल्लीकी पुलिस और अदालतकी ओर इसलिए अधिक ध्यान दिया कि वहाँ हिन्दीका प्रवेश बहुत कम हो पाया है। अदालतके क्षेत्रमें सम्मेलनने वकीलों और न्यायाधीशोंसे भेंट करके जहाँ उनको हिन्दी अपनानेके लिए प्रेरित किया है, वहाँ न्यायालयकी परिषदोंमें हिन्दी टाइप करनेवाले एक सज्जनको भी अपनी ओरसे बैठा दिया है। वे हिन्दी टाइप सस्ते पारिश्रमिकपर कर देते है। इसके अतिरिक्त उर्दू और अँग्रेजीमें पहले जो फार्म चलते थे, उन्हें हिन्दीमें छपवाकर निःशुल्क बाँटा जाता है। इससे अदालतोंमें हिन्दीका वातावरण बनने लगा है।

पुलिस कर्मचारियोंमें हिन्दी पहुँचानेके लिए सम्मेलन बड़े अधिकारियोंसे मिलकर पुलिस लाइंसमें १९५८ से कक्षाएँ चला रहा है। अब तक हजारों पुलिस जवान इससे लाभ उठा चुके है।

विदर्भ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागपुर

संक्षिप्त परिचय

इस संस्थाका पुराना नाम मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन था। इसकी स्थापना सन् १९१८ में हुई थी। इसी सम्मेलनके दो अधिवेशन नागपुरमें हो चुके, एक १९२२ तथा दूसरा १९४५ में सम्मेलन के प्रयाससे ही अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र-प्रसादजीकी अध्यक्षतामें सन् १९३६ में हुआ था। उसीके साथ महात्मा गाँधीकी अध्यक्षतामें भारतीय साहित्य परिषद भारतके विभिन्न भाषाओंके साहित्यकारोंके गठनकी नींव डाली गई थी। इस अवसरपर देशके प्रमुख राजनैतिक और साहित्यिक विद्वानोंने भाग लिया था और अखिल भारतीय हिन्दी प्रचार समिति-की नींव रखी गई थी, यों तो ' मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन 'के नामसे सारा कार्य संचालन नागपुरसे होता था, किन्तु सन् १९५६ में राज्योंका पुनर्गठन किया गया जिससे मध्यप्रदेश के १४ जिले विशाल मध्यप्रदेश में समाविष्ट हो गए। शेष आठ जिलोंका प्रतिनिधित्व विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन कर रहा है।

सम्मेलनका उद्देश्य

सम्मेलनका उद्देश्य हिन्दीका सर्वांगीण साहित्यिक विकास तथा राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपिका प्रसार करना है। साहित्यकारोंका सम्मान तथा उनकी प्रतिभाका प्रतिनिधित्व भी उसका ध्येय है। अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए सम्मेलनकी ओरसे आवश्यक संगठन, प्रकाशन, प्रचार, संग्रह, खोज और साहित्यकोंकी सहायता प्रदान करनेका सदैव प्रयत्न किया जाता है। क्षेत्रके उदारमना महानुभनवोंसे प्राप्त दानसे नागपुरमें श्री फतेचन्द मोर हिन्दी भवनके नामसे अपना स्वतःका सुन्दर भवन निर्माण करनेमें सफल

रहा। इस भवनमें चार बड़े कमरोंके अतिरिक्त एक वाचनालय कक्ष और एक पुस्तकालय कक्ष है। साथ ही लगभग १ सहस्त्र दर्शकोंके बैठने योग्य सुन्दर रंगमंच भी है। उसके निर्माणका हेतु हिन्दी रंगमंचका पुनरुत्थान है। यह भवन आज नगरकी विविध सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक गतिविधियोंका प्रमुख केन्द्र है। इस समय भवनके कक्षोंमें एक वाचनालय, राज्य सरकारका माहिती (जानकारी) केन्द्र, संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभाका कार्यालय और नृत्य संगीतका शिक्षण केन्द्र तथा सिलाई-बुनाईसे सम्बन्धित कक्षाएँ-जो कि राजस्थानी महिला मंडल की ओरसे संचालित की जा रही है।

सम्मेलनके भावी कार्यक्रम

विद्यालय, हिन्दी ग्रन्थालय, साहित्य संग्रहालय, गाँधी विचार केन्द्र, 'पूर्णा' त्रैमासिक पत्रिकाका प्रकाशन, बुलेटिनका प्रकाशन और प्रसिद्ध विद्वानोंकी व्याख्यान माला तथा अन्य ऐसे कार्य जिनसे कि हिन्दी साहित्यका प्रचार तथा प्रसार हो सके, किए जा रहे हैं और किए जाते रहेंगे।

सम्मेलनका पुस्तकालय शुरू हो गया है जो एक बृहत् पुस्तकालयका सूत्रपात है। जिसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रकाशित पुस्तकोंका अच्छा संग्रह रहेगा। जिससे भाषा के शोध कार्योंके करनेवाले विद्वान लाभ उठा सकें। पिछले वर्ष १६ विषयोंसे सम्बन्धित लगभग २१७१ पुस्तकें खरीदी गई है और प्रति वर्ष अधिक-से-अधिक पुस्तकें खरीदनेकी योजना है।

प्रकाशन कार्य समय-समयपर हुए हैं जिनमें 'हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन' जिसका कि लेखन तथा सम्पादन साहित्य-मनीषी पं. प्रयागदत्तजी शुक्लने किया है, प्रकाशित किया है। आपकी ही 'क्रान्तिके चरण' नामक पुस्तकका प्रकाशन भी सम्मेलनने किया है। इस पुस्तकमें सन् १८८५ से लेकर सन् १९२० तक काँग्रेसका इतिहास है। तीसरा प्रकाशन अति शीघ्र ही होने जा रहा है वह है दूसरा खंड "हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन" का। इस प्रकारसे और अनुसंधान तथा खोज पूर्ण कार्य हो रहे है। साथ ही विदर्भके प्रतिनिधि कहानीकारोंका संकल्प भी प्रकाशित किया जाएगा।

सम्मेलनकी वर्तमान कार्यकारणी समिति

अध्यक्ष—श्री ब्रिजलाल जी बियाणी।

उपाध्यक्ष—पं. प्रयागदत्तजी शुक्ल।

उपाध्यक्ष—श्री रामगोपालजी माहेश्वरी।

प्रधान-मन्त्री—श्री भीष्म आर्य।

संयुक्त मन्त्री—श्री उमाशंकर शुक्ल।

साहित्य-मन्त्री—श्री शिवचन्द्रजी नागर।

सदस्य—सर्वश्री सेठ नरसिंहदासजी मोर, पं. हृषीकेशजी शर्मा, पं. शिवकरण शर्मा छांगाणी, छेदीलालजी गुप्त 'गोंदिया', विश्वनाथजी सारस्वत, यवतमाल, हीरासावजी चवड़े, वर्धा, जगन्नाथ सिंहजी बैस, अकोला, श्यामलालजी नेमा, खामगाँव, तीन स्थान रिक्त हैं।

कार्यालय व्यवस्थापक—श्री रेवाशंकर परसाई।

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कार्यालय अंबालामें है। इस सम्मेलनकी जालन्धर कपूरथला, अम्बाला छावनी, शिमलामें हिन्दी परिषद तथा स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभाएँ स्थापित हैं। साहित्यिक समारोह आदिके कार्यक्रम इसके द्वारा होते रहते हैं। शिमलामे तो हिन्दी प्रचारिणी सभा अपना रजत जयन्ती समारोह भी मना चुकी है। इसकी सदस्य संख्या ५०० से ऊपर है। इसकी ओरसे पर्याप्त समय तक एक 'सन्देश' नामक हिन्दी मासिक प्रकाशित होता रहा था।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापना सन् १९२० में प्रयागमें हुई। आरम्भमें किन्ही परिस्थितियोंके कारण इसका कार्य बन्द सा पड़ गया था, किन्तु १९४० में पं. श्रीनारायणजी चतुर्वेदीके प्रयत्नोंसे इसका कार्य फिर आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन द्वारा कचहरियोंमें हिन्दी प्रयोग के लिए आन्दोलन किया गया जो बहुत व्यापक बना। उत्तर प्रदेश में इसके अधिवेशन अनेक स्थानोपर हो चुके हैं।

बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

इसकी स्थापना सन् १९१९ में पटनामें हुई थी। बिहार प्रान्तकी यह सबसे प्राचीन हिन्दी सेवी संस्था है। प्रान्तकी करीब ६० संस्थाएँ इससे सम्बद्ध हैं। १९४५ मे इसके वार्षिक सम्मेलनके अवसरपर अध्यक्षपद चीनी विद्वान श्री तानसुन शानने ग्रहण किया था। सम्मेलनकी परीक्षांओके लिए विद्यार्थियोंके लिए वर्ग व्यवस्था आदिका कार्य भी इसकी देखरेखमे चलता है।

नागरी प्रचारिणी सभा, आरा

इस संस्थाकी स्थापना बिहार प्रदेशके प्राचीन नगर पटनामे बीसवी सदीके पहले वर्षमें हुई थी। इसके प्रोत्साहनसे कितने ही गण्यमान्य कवि हिन्दी एवं उसके साहित्यकी सेवामें प्रवृत्त हुए है। सभाने हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके प्रचारार्थ बिहारमे ही नही, अन्य प्रान्तों और तत्कालीन देशी राज्योंमें भी व्यापक किये है। सभा साहित्यिक शोधकी दिशामें भी उन्मुख रही है। और एक अच्छे पुस्तकालयका सचालन भी करती है।

नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा

नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना सन् १९११ मे हुई। इसकी स्थापनासे आगरामें साहित्यिकों तथा हिन्दी पढ़ने तथा लिखनेवालोंमें एक जाग्रति सी आ गई। इस सभाके पास एक वृहत पुस्तकालय है जिसमें करीब १२ हजार पुस्तकें हैं और एक हजारके करीब सदस्य इस सभाके है। गाँवोंके लिए भी एक गश्ती विभागका प्रबन्ध है। सभाकी ओरसे हिन्दीकी उच्च पढ़ाईके लिए एक विद्यालय भी चलता

है जिसमें करीब २०० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते हैं। खोज कार्यका प्रबन्ध भी इस संस्था द्वारा है। इस सभा द्वारा 'सत्यनारायण ग्रन्थ माला' के अन्तर्गत कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। सभाके पास पर्याप्त भूमि व निजी भवन है।

इसके अलावा नागरी प्रचारिणी सभाकी आजमगढ़, आरा, गाजीपुर, गोरखपुर, अजमेर, मुरादाबाद, हरनौत, आदि स्थानोंमें शाखाएँ हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंमें जो सभापति चुने जाते थे, वे साधारणतः हिन्दीके विद्वान और साहित्यकार होते थे, लेकिन सन् १९१८ का वार्षिक अधिवेशन जो इन्दौरमें हुआ उसके सभापतिके रूपमें महात्मा गाँधी चुने गए। बापू हिन्दीके कोई लेखक या साहित्यकार तो थे नहीं, पर फिर भी उन्हें सभापति चुना गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे हिन्दीके प्रबल समर्थक और उसके द्वारा राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है इस विचारके पोषक थे। उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तकमें हिन्दीके महत्त्वके सम्बन्धमें बहुत पहले ही सन् १९०८ में लिखा था तथा सन् १९१६ में जब लखनऊमें अखिल भारतीय कांग्रेसका अधिवेशन हुआ, तब देशभरके राजनीतिक नेता–जिनमें स्व. लोकमान्य तिलक, गाँधीजी, मुहमद अली जिना, एनी बेसन्ट आदि उसमें भाग लेनेको उपस्थित हुए थे। गाँधीजीने अपना भाषण हिन्दीमें दिया था। मद्रासके प्रतिनिधियोंमें जिनमें स्व. सत्यमूर्ति भी थे, उन्होंने इसका विरोध किया था और गाँधीजीसे अनुरोध किया था कि वे अपना भाषण हिन्दीमें दें। इसपर उन्होंने उनको समझाते हुए बताया था कि अँग्रेजीका मोह उन्हें छोड़ देना चाहिए और जल्दी ही हिन्दी सीख लेनी चाहिए। हिन्दीके प्रति उनके इस प्रेमसे प्रभावित होकर ही हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रधान कर्णधार स्व. बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने गाँधीजीसे अनुरोध किया कि वे सम्मेलनके सभापति बनें और उन्होंने भी इस विश्वाससे कि हिन्दीके प्रचारमें सम्मेलन उनका सहयोगी बनेगा; सभापति बनना स्वीकार किया।

यह अधिवेशन हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे विशेष महत्व रखता है। इसमें गाँधीजीने अपने अध्यक्षीय भाषणमें हिन्दीके महत्वपर विशेष जोर दिया और इस बातकी आवश्यकता बताई कि शीघ्र ही दक्षिण भारतमें, जहाँ द्रविड़ परिवारकी तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ भाषाएँ बोली जाती है, हिन्दीका प्रचार आरम्भ कर देना चाहिए। उन्होंने इस कार्यके लिए पैसा देनेके लिए अपील की। उसके जवाबमें तुरन्त ही इन्दौर के नगर सेठ सर हुकुमीचन्दजीने तथा इन्दौरके तत्कालीन नरेश महाराजा यशवन्तराव होल्करने दस-दस हजार रुपये सहायता स्वरूप दिए। इन धन राशिके प्राप्त होनेसे दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका कार्य आरम्भ करनेमें सरलता हुई।

इस सम्मेलनमें यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ था कि प्रतिवर्ष दक्षिण भारतके छह नवयुवक हिन्दी सीखनेको प्रयाग भेजे जाएँ और हिन्दी भाषी छह नवयुवक दक्षिणकी भाषाओंको सीखनेको तथा हिन्दीका प्रचार करनेको उत्तर भारतसे भेजे जाएँ।

गाँधीजीने उस समय एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी कि दक्षिणमें जो भी हिन्दी सीखना चाहें वे यदि हिन्दी कक्षाओंको शुरू करनेकी माँग करेंगे, तो उसका प्रबन्ध तुरन्त किया जाएगा। वैसे तो दक्षिण
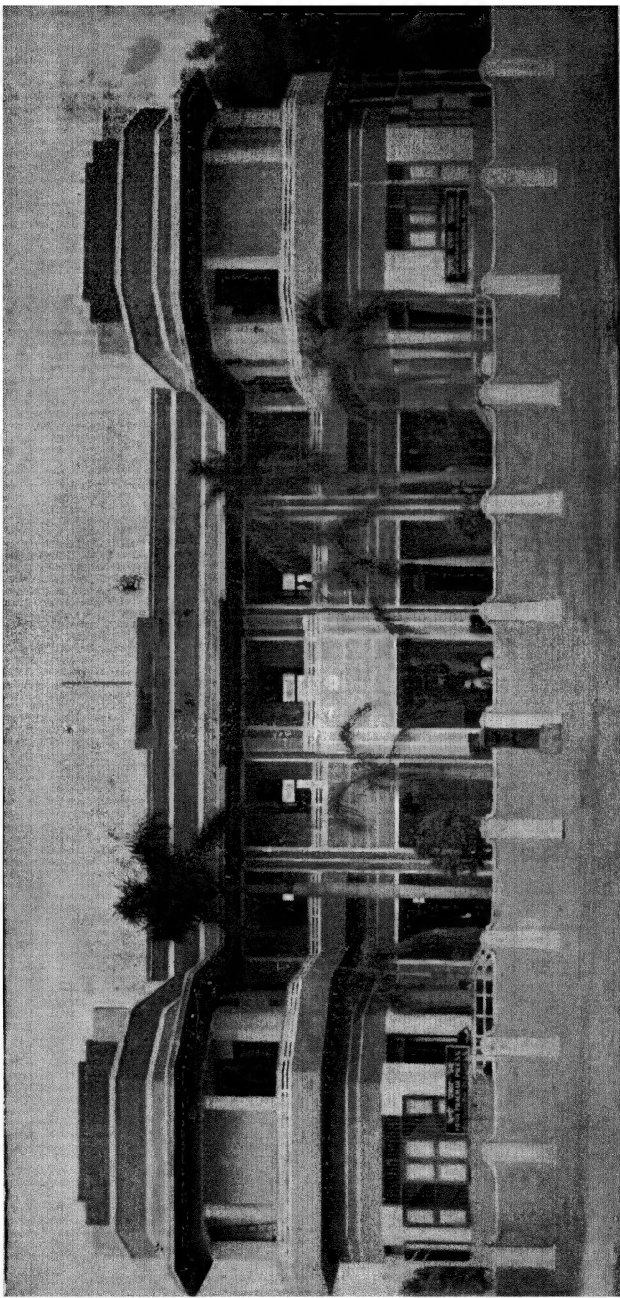
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासका कार्यालय भवन

भारतमें हिन्दी प्रचारका कार्य बहुत पहलेसे ही हो रहा था। आर्य समाजके कार्यकर्ता हिन्दीका "आर्य भाषा" के रूपमें प्रचार करते थे और उसको सिखानेकी मदुरा, काञ्ची आदि स्थानोंपर कुछ व्यवस्था भी की गई थी। आरकाटके नवाबों और तंजौरके महाराजाओंके प्रभावके कारण दक्षिणके इन प्रदेशोंमें हिन्दीका व्यवहार कुछ मात्रामें होता था। ऊँचे, धनी परिवारोंमें हिन्दी सीखनेका शौक भी कहीं-कहीं देखनेको मिलता था। दक्षिणके कई व्यक्ति यह आवश्यकता अनुभव कर रहे थे कि सारे भारतके लिए एक भाषा का होना नितान्त आवश्यक है। मद्रासके श्री वी. कृष्णस्वामी अय्यरने नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके एक समारोहमें भाषण दिया था, उसमें भी इस बातको उन्होंने स्पष्ट किया था। हमारे देशमें यात्राका बड़ा महत्त्व माना गया है। समुदाय-के-समुदाय यात्राके लिए निकल पड़ते हैं। वे अपने प्रदेशसे किसी भिन्न प्रदेशमें जाते हैं, तो साधारणतः हिन्दीका ही प्रयोग करते हैं, अतः जब सन् १९१८ में गांधीजीकी विज्ञप्तिको पढ़कर मद्रासके 'भारत सेवा संघ' (इंडियन सर्विस लीग)के कुछ हिन्दी-प्रेमी नवयुवकोंने गांधीजीको लिखा कि वे एक हिन्दी प्रचारकको भेजें तो इस पत्रके मिलते ही गांधीजीने अपने पुत्र स्व. देवदास गांधीको हिन्दी प्रचारके कार्यके लिए भेजा। उस समय उनकी आयु केवल १८ वर्ष की थी। उन्होंने मद्रास आते ही कुछ ही दिनोंमें स्थानीय गोखले हॉलमें हिन्दीके वर्ग प्रारम्भ कर दिए। इन वर्गोंका उद्घाटन श्रीमती एनीबेसंटके हाथों हुआ था और इस समारोहकी अध्यक्षता श्री सी. पी. रामस्वामी अय्यरने की थी। हिन्दीके प्रति लोगोंमें उत्साह था, इसका प्रमाण तो यही है कि हिन्दीके इस नवीन वर्गमें पढ़नेके लिए जो विद्यार्थी सम्मिलित हुए उनमें स्थानीय कुछ नामी वकील, व्यापारी, न्यायाधीश, डाक्टर आदि उच्च श्रेणीके व्यक्ति भी थे। कुछ ही दिनोंमें कार्य काफी बढ़ गया। इसे सम्हालनेके लिए श्री देवदास गांधीने और किसी व्यक्तिको भेजनेके लिए लिखा। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने स्वामी सत्यदेव परिव्राजकको उनकी सहायतार्थ तुरन्त भेजा। उन्होंने भी एक वर्ष तक मद्रासमें रहकर हिन्दीकी कक्षाओंको चलानेका कार्य किया। प्रारम्भमें पाठ्य पुस्तकोंकी भी कठिनाई थी। उपयुक्त पुस्तकें न थीं। साधारणतः इण्डियन प्रेस, प्रयागकी "बाल रामायण" से ही हिन्दीकी पढ़ाई शुरू होती थी, अतः श्री सत्यदेवजीने अपने प्रयत्नोंसे एक हिन्दी रीडर तैयार की और उसको प्रकाशित भी करवाया। लगभग उन्हीं दिनों गांधीजीसे प्रेरणा लेकर पण्डित हृषीकेश शर्मा भी हिन्दी प्रचारके कार्यमें अपना सहयोग देनेके लिए दक्षिण भारतमें आये और आन्ध्र प्रदेशमें कार्य करने लगे। गांधीजीकी योजना थी कि दक्षिण भारतके उत्साही नवयुवकोंको उत्तर भारतमें भेजकर उन्हें हिन्दी की शिक्षा-दीक्षा दी जाय और वहाँसे वे लौटकर दक्षिण भारतमें आकर हिन्दी प्रचारके कार्यको सम्हालें। इस योजनाके अनुसार तीन दल प्रयाग भेजे गए। प्रथम दलके नेता श्री हरिहर शर्मा थे, जिन्होंने आगे चलकर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके प्रधानमन्त्रीके रूपमें दक्षिणके हिन्दी प्रचार कार्यको संगठित किया। जब श्री देवदास गांधी एक वर्षके पश्चात् गुजरात लौटे तब उन्होंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके मद्रास कार्यालयको सम्हालनेका कार्यभार श्री शर्माजीको सौंपा था। वे उन्हीं दिनों प्रयागसे लौटे थे। इस प्रथम दलमें श्री क. म. शिवराम शर्मा भी थे जो अभीतक हिन्दीके प्रचारमें लगे हुए हैं। बादके दलोंमें श्री शिवन शास्त्री, श्री सुब्बराव आदि प्रमुख थे।

उन दिनों दक्षिण भारतमें हिन्दी पढ़नेका उत्साह जोरोंसे बढ़ रहा था। केवल एक-दो वर्षोंमें ही आन्ध्रके बरहमपुर (अब उत्कल प्रदेशमें है) में राजमहेन्द्रवरम्, मछली पट्टम, नेल्लूर आदि स्थानोंमें तथा

तमिल प्रदेशके त्रिचनापल्ली, मदुरा, सेलम, कोयम्बतूर आदि स्थानोंमें तथा कर्नाटकमें, बंगलोरमें हिन्दीके वर्ग शुरू हो गए थे।

उत्तर भारतके कुछ उत्साही नवयुवक हिन्दी प्रचारके कार्यको अपने जीवनका प्रधान उद्देश्य बनाकर दक्षिण भारतमें आए और यहाँ रहकर उन्होने इस कार्यमें योग दिया। उनमें निम्नलिखित सज्जन मुख्य है—

पं. रघुवरदयालु मिश्र, पं. अवधनन्दन, प्रतापनारायण वाजपेयी, जो युवावस्थामें ही हिन्दीका कार्य करते-करते चल बसे, पं. देवदूत विद्यार्थी, पं. रामानन्द शर्मा, ब्रजनन्दन शर्मा, रामभरोसे श्रीवास्तव, नागेश्वर मिश्र आदि।

इधर दक्षिणके भी नवयुवक प्रयागमें शिक्षा पाकर दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यमें जुटने लगे। स्वर्गीय दामोदर उण्णीने तिरुवान्कूर रियासतमें १९२१ के आसपास कार्य शुरू किया। श्री क. म. शिवराम शर्माने आन्ध्रमें, प्रतापनारायण वाजपेयीने तमिलनाडमें कार्य शुरू किया। मद्रासमे इन वर्गोकी संख्या बढ़ने लगी। लेकिन आन्ध्रमें राष्ट्रीयताकी लहर ऊँची थी। उसका असर हिन्दी प्रचारपर भी पड़ने लगा। सन् १९२४ में काकिनाडामें काँग्रेसका अधिवेशन हुआ। इसके कारण हिन्दी प्रचारका काम अधिक जोरोंसे होने लगा। हिन्दी प्रचार काँग्रेसके कार्यक्रमका एक अंग समझा जाता था। गांधीजीने अपने रचनात्मक कार्यक्रममें हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कार्यालय शुरूमें मद्रासमें साहूकार पेटमें एक छोटी-सी गलीमें था। कुछ समय बाद माईलापूर लाया गया। वहाँसे तिरुवल्लिक्केणीमे और फिर जार्ज टाऊनमें रखा गया। सन् १९३६ में मद्रासके म्युनिस्पल कॉरपोरेशनने दक्षिण भारतके विशाल हिन्दी प्रचार कार्यके अनुरूप अच्छा हिन्दी भवन तैयार किया जा सके, इसलिए अपनी ओरसे त्यागरायनगरमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाको जमीन सहायता स्वरूप दी। यहीपर सभाकी विभिन्न प्रवृत्तियोंका सञ्चालन करनेके लिए सभाके अनेक भवन बनाए गए है।

हिन्दी प्रचारका प्रारम्भिक कार्य हो जानेके पश्चात् यह आवश्यक मालूम होने लगा कि दक्षिणमें ही उच्च स्तरके हिन्दी विद्यालय चलाए जाएँ और वहीपर हिन्दीके लिए सेवाव्रती प्रचारक तैयार किए जाएँ। इसके लिए सन् १९२१ में आन्ध्रमें गोदावरी नदीके तटपर राजमहेन्द्रीके पास धवलेश्वरम् नामक स्थानपर तथा तमिलनाडुमें कावेरी नदीके तटपर 'ईरोड' नामक स्थानपर हिन्दी विद्यालय खोले गए। वहाँ हिन्दीकी उच्च शिक्षा देकर कार्यकर्ता तैयार किए जाने लगे। ईरोडके विद्यालयके सम्बन्धमे यह बात उल्लेखनीय है। श्री इ. वी. रामस्वामी नायकरने इस विद्यालयको चलानेमें बड़ी सहायता की थी। इस विद्यालयका आरम्भ भी उन्हींके घरपर हुआ था। आश्चर्य है कि आज यही श्री नायकरजी हिन्दीके प्रबल विरोधी है।

ये दोनों विद्यालय एक वर्षके तक चले। आन्ध्रके विद्यालयमें आन्ध्रके नवयुवक दाखिल किए गए थे तथा ईरोडके विद्यालयमें तमिलनाडु तथा केरलके विद्यार्थी सम्मिलित किए गए। इन विद्यालयोंमें अध्ययन पूरा करके प्रचारक बन्धु भिन्न-भिन्न केन्द्रोंमें जाकर हिन्दीका प्रचार करने लगे। सन १९२०, १९२१ और १९२२ का समय असहयोग आन्दोलनका था। अतः राष्ट्रीय-मनोवृत्तिवाले व्यक्ति हिन्दीकी तरफ स्वभावतः झुकते थे। इसी समय हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके उत्साहको बढ़ानेके लिए हिन्दी परीक्षायें चलानेका

एम्. सत्यनारायण

क्रम इसी समय शुरू किया गया। मद्रासमें सभाका सदर कार्यालय था। यहीसे भिन्न-भिन्न परीक्षाओंका प्रबन्ध किया जाने लगा। उपयोगी हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेकी व्यवस्था भी होने लगी। धीरे-धीरे प्रचारकोंकी माँग बढ़ने लगी। इस माँगकी पूर्ति के लिए सन् १९२४–२५ में मद्रासमें एक विद्यालय शुरू किया गया। इस विद्यालयमें दक्षिणके सभी विभागोंके विद्यार्थी दाखिल किए गए। अपनी पढ़ाई पूरी करके ये नवयुवक भी हिन्दीके प्रचारमें लग गए।

दक्षिण भारतकी आवश्यकताओंके अनुरूप पुस्तकोंका निर्माण तथा उनके प्रकाशनका प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण था। अतः यहाँ जैसे जैसे कार्य बढ़ता गया यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि सभाके ही अधीन एक छापखानेका भी प्रबन्ध किया जाय। स्व. जमनालालजी बजाजकी सहायतासे सन १९२३ में मद्रासमें हिन्दी प्रचार प्रेस' के नामसे छापखानेका प्रबन्ध किया गया। शुरूमें जो पुस्तके तैयार की गई वह है 'हिन्दी स्वबोधिनी' इसको श्री हरिहर शर्मा तथा श्री क. म. शिवराम शर्माने तैयार किया था। यह पुस्तक तमिल तथा अँग्रेजी भाषामें तैयार की गई। इसी प्रकार तेलुगु भाषामें पंडित हृषीकेश शर्माने, 'स्वबोधिनी' तैयार की। इन पुस्तकोंके आधारपर बादमें कन्नड़ और मलयालममें स्वबोधिनियाँ तैयार की गईं। ये पुस्तकें हिन्दी प्रचारके लिए बड़ी उपयोगी साबित हुई। बादमें श्री सत्यनारायणजी तथा श्री अवधनन्दनने इन पुस्तकोंका परिवर्द्धन एवं परिष्कार कर उन्हें नया रूप दिया।

प्रान्तोंमें हिन्दीका काम इतना बढ़ने लगा कि केवल मद्रास कार्यालयसे कार्य चलाना मुश्किल मालूम हुआ। अतः आन्ध्र तथा तमिलनाडुमें शाखा कार्यालय खोले गए। समय समयपर हिन्दी प्रचारकी आवश्यकतापर नेताओंके भाषण कराए गए। स्वर्गीय सत्यमूर्ति, डा. पट्टाभि सीतारामैय्या तथा राजगोपाला-चार्य हमेशा सभाकी मदद करते थे। राजाजी सभाके उपाध्यक्ष तथा प्रवर्तक भी थे। प्रारम्भिक अवस्थामें मद्रासके जो नेता सभाकी बड़ी सहायता करते थे उनमें देशोद्धारक नागेश्वरराव पन्तुलु, के. भाष्यम, रामदास पन्तुलु, संजीव कामत, जगन्नाथदास के नाम उल्लेखनीय है।

धीरे-धीरे प्रचारकोंकी संख्या बढ़ी। साथ ही प्रचार कार्य भी बढ़ा। तिरुवनंतपुरम्, एरणा-कुलम्, मंगलोर, कालिकट, मद्रास, तंजौर, कुंभकोणम्, बंगलौर, मैसूर, हुबली, बेलगाँव, चित्तूर, बेजवाड़ा, गुण्टूर आदि शहरोंमें जोरशोरसे हिन्दीका प्रचार होने लगा। आन्ध्रमें ज्यादातर गाँवोंके लोग हिन्दीकी ओर झुकने लगे। परीक्षार्थियोंकी संख्या भी वहुत बढ़ी, आवश्यकतानुसार नई-नई पुस्तकें तैयार होने लगी और छपकर निकलने लगीं।

सन् १९२७ तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालयके नामसे सभा कार्य करती थी। सन् १९२६ में महात्मा गाँधीजीकी सलाहसे सभाका नया नाम—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा—रखा गया। सभाका संविधान बनाया गया। महात्मा गाँधी सभाके आजीवन अध्यक्ष चुने गए तथा मद्रासके प्रसिद्ध अँग्रेजी दैनिक "हिन्दू" के संपादक श्री अे. रंगस्वामी अय्यंगार उपाध्यक्ष चुने गए। सभाकी आजीवन प्रचारक श्रेणी बनाई गई। इस श्रेणीमें ये प्रचारक शामिल हुए—

१. पं. हरिहर शर्मा, २. श्री मो. सत्यनारायण, ३. पं. रघुवर दयालु मिश्र, ४. पं. देवदूत विद्यार्थी, ५. पं. अवधनन्दन, ६. श्री एस. रामचन्द्र शास्त्री, ७. श्री पी. सुब्बराव, ८. श्री दामोदर उण्णी। कुछ वर्षोंके बाद यह वर्ग रद्द किया गया।

सन् १९३० में हमारे स्वातन्त्र्य संग्रामके आन्दोलनने जोर पकड़ा। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि दक्षिणमें हिन्दी पढ़नेकी एक लहर सी आ गई। कार्यकर्ताओंकी माँग बढ़ने लगी। मद्रासमें "प्रचारक विद्यालय" शुरू किए गए। "राष्ट्रभाषा विशारद" नामक उपाधि परीक्षा शुरू की गई। विद्यालयमें विशारद तथा प्रचारक दोनोंकी पढ़ाई होती थी। साहित्यिक रुचि रखनेवालोंके लिए "विशेष योग्यता" नामक परीक्षा भी चलाई जाने लगी, जो कालान्तरमें "राष्ट्रभाषा प्रवीण" उपाधि परीक्षामें परिणत हो गई। विद्यालय, परीक्षा, तथा साहित्य निर्माणमें सभाको परामर्श देनेके लिए, विद्यालय, परीक्षा तथा साहित्य उपसमितियोंका सन् १९३२ में निर्माण किया गया। इस दिनों एस. एस., एल. सी., में हिन्दी विषयको प्रवेश मिला। इससे लाभ उठाकर कई हाईस्कूलोंमें हिन्दीको प्रवेश दिया गया। देशी राज्योंमें भी—तिरुवान्कूर, कोचीन, मैसूरमें कुछ हदतक हैदराबादमें भी जनता हिन्दीकी ओर आकर्षित हुई तथा स्कूलोंमें हिन्दीकी पढ़ाई की व्यवस्था होने लगी।

सन् १९३५ में काका कालेलकर हिन्दी प्रचारके निमित्त दक्षिणका दौरा करने आए। उनके सुझावपर सभाके संविधानमें कुछ ठोस परिवर्तन किए गए। सभाको शिक्षा सम्बन्धी बातोंमें सलाह देनेके लिए "शिक्षा परिषद" का निर्माण हुआ तथा आन्ध्र, तमिल, केरल तथा कर्नाटकके हिन्दी प्रचार कार्यको सुसंगठित करनेके लिए उन प्रदेशोंमें प्रान्तीय सभाओंका निर्माण किया गया। आन्ध्रकी सभाका दफ्तर मुकाम—बेजवाड़ामें, तमिलकी सभाका तिरुचिरापल्लीमें, केरलकी सभाका एरणाकुलम (तिरुप्पणत्तुरा) तथा कर्नाटक प्रान्तीय सभा बंगलोरमे थी, अब धारवाड़में है। इन प्रान्तीय सभाओंके लिए श्री पी. सुब्बाराव, रघुवरदयालु मिश्र, देवदूत विद्यार्थी तथा सिद्धनाथ पन्त क्रमशः प्रान्तीय मन्त्री नियुक्त किए गए। प्रान्तीय सभाओंके निर्माणके बाद, प्रान्तोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको नवीन स्फूर्ति मिली है और फल स्वरूप विद्यार्थियों-की संख्या बेहद बढ़ने लगी है।

पंडित हरिहर शर्माने प्रधान मन्त्रीके रूपमें सन् १९३६ तक कार्य किया। इसके बाद श्री मोटूरि सत्यनारायण प्रधान मन्त्री हुए। वे सन् १९६० में नियुक्त हुए और उनके स्थानपर अब श्री रा. शास्त्री प्रधानमन्त्रीके रूपमें कार्य कर रहे है।

दक्षिणके विश्वविद्यालयोंके पाठयक्रममें भी हिन्दीको स्थान मिला। स्वर्गीय सी. राम लिग रेड्डी उपकुलपति, आन्ध्र विश्वविद्यालयने बी. काम. में हिन्दीको अनिवार्य कर दिया। मैट्रिक, इण्टर, बी. ए. के पाठयक्रममें हिन्दी जोड़ी गई। सबसे पहले आन्ध्रमें नेल्लूरके बी. आर. कालेजमें हिन्दीकी पढ़ाई होने लगी। श्री भट्टाराम वेंकट सुब्बय्या हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए।

सन् १९३७ में श्री राजाजी मद्रास प्रान्तके मुख्य मन्त्री बने। उन्होंने मिडिल क्लासमें फार्म १, २, ३ में हिन्दीको लाजिमी कर दिया। इससे बड़ा तूफान उठा। तीन साल बाद कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलने इस्तीफा दे दिया। ब्रिटिश सरकारके हाथमें पूरी सत्ता चली गई। इससे स्कूलोंमें हिन्दी प्रचारका जो कार्य हो रहा था उसे धक्का पहुँचा। पर जनताका उत्साह कम न हुआ। सन् १९४२ में महात्मा गाँधी-जीने "भारत छोड़ो" आन्दोलन शुरू किया। नेतागण तथा अनेक उत्साही कार्यकर्ता जेलोंमें ठूँस दिए गए। जेलोमें भी हिन्दीका खूब प्रचार होने लगा।

इन राजनैतिक उथलपुथलोंके कारण हिन्दी प्रचारकी गति धीमी नहीं हुई। प्रान्तीय सभाएँ

अपना कार्य सुचारु रूपसे करती रहीं। केन्द्रीय सभाके कार्यमें भी खूब विस्तार होने लगा। भिन्न-भिन्न विभागोंके कार्यकलापोंको ठीक तरहसे चलानेके लिए सन् १९४९ में साहित्य मन्त्री, परीक्षा मन्त्री, शिक्षा मन्त्रीके पदोंपर नियुक्त हुए। प्रधान मन्त्रीकी सहायता करनेको "संयुक्त मन्त्री" का पद निर्मित हुआ। पं. रघुवरदयाल मिश्र प्रथम संयुक्त मन्त्री बने। सभाके चुनावोंमें प्रचारक तथा जनता अब ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी।

दक्षिणमें विद्यालयोंकी स्थापना हुई इसके फलस्वरूप कई प्रचारक दक्षिणमें ही तैयार हो गए। उनमेसे जो हिन्दीके उच्च साहित्यका अध्ययन करना चाहते थे; उन्हें उत्तर भारतमें जाकर हिन्दी साहित्यके अध्ययनमें सुविधा हो इसके लिए 'ज्ञानयात्री मण्डल" नामक संस्था सन् १९३२ में स्थापित हुई। पं. सिद्ध-नाथ पन्त इसके संस्थापक थे। इस मण्डल" के द्वारा कई प्रचारक प्रयाग, काशी आदि स्थानोंपर जाकर हिन्दी साहित्यका अध्ययन करके दक्षिण लौटे। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि वे ज्यादा सफल प्रचारक हुए।

सन् १९३४ में एक यात्री-दल कायम किया गया। इसके द्वारा कई "प्रचारक" दल बाँधकर उत्तर भारतमें गए और उन्होंने वहाँ जाकर दक्षिणकी भाषा, संस्कृति आदिके बारेमें उत्तरके लोगोंको समझाया। यह क्रम कुछ वर्षोंतक चलता रहा।

सन् १९५० तक दक्षिणके प्रायः सभी विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीका प्रवेश हो गया था। केरल तथा आन्ध्रके स्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाने लगी है। मैसूरमें भी करीब करीब सभी स्कूलोंमें हिन्दी-का प्रवेश हो गया है। मद्रास प्रान्तमें भी, जहाँ हिन्दी ऐच्छिक रूपसे पढ़ाई जाती है, हिन्दी विषय लेनेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या बेहद बढ़ने लगी। अध्यापकोंकी माँग भी बढ़ने लगी। अध्यापकोंको तैयार करनेके लिए आन्ध्रमें—हैदराबाद, विजयवाड़ा, तेनाली, विद्यावन, राजमहेन्द्री, अनकापल्ली, विजयनगर आदि केन्द्रोंमें विद्यालय चलाए गए, मद्रास राज्यमें, मद्रास, तिरुच्चिरापल्ली, कुंभकोणम्, मदुरा, कोयंबतूर आदि केन्द्रोंमें; केरलमें—तिरुवनन्तपुरम्, तिरुप्पणुत्तुरा (येरणाकुलम), कोट्टयम, कालिकट, कण्णनूर आदि केन्द्रोंमें मैसूर राज्यमें—बंगलोर, मैसूर मंगलोर, धारवाड़ आदि केन्द्रोंमें विद्यालय चलाए गए। इन विद्यालयोंको चलानेका भार केन्द्रीय सभाके शिक्षा मन्त्रीके अधीन था।

इस वक्त दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाका कार्य खूब विस्तृत है। करीब आठ हजार प्रमाणित प्रचारकोंके द्वारा प्रचार कार्य चलता है। प्रारम्भिक परीक्षाओं—प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्रभाषाके संचालन का कार्य प्रान्तीय सभाएँ करती हैं। उच्च परीक्षाएँ—प्रवेशिका, विशारद, प्रवीण तथा प्रचारक—केन्द्रीय सभा स्वयं चलाती है।

हिन्दीका अधिकाधिक प्रचार हो, इसलिए प्रमाण पत्र वितरणोत्सव, प्रचारक सम्मेलन, वाक्स्पर्द्धाएँ, लेखन स्पर्द्धाएँ, नाटकोंका अभिनय, हिन्दी सप्ताह तथा प्रमुख व्यक्तियोंके भाषण आदिका नियमित रूपसे आयोजन किया जाता है। अनेक स्थानोंपर विद्यार्थी मेला भी लगाया जाता है,। ऐसी प्रवृत्तियोंको अच्छी तरहसे सम्पन्न करनेके लिए प्रत्येक प्रान्तके तीन विभाग कर दिए गए हैं उनमेंसे हरएक पर एक एक संगठक नियुक्त किया जाता है जो इन प्रवृत्तियोंका आयोजन करता है। प्रान्तीय समितियोंके अधीन स्थान-स्थानपर हिन्दी-प्रचार-केन्द्र हैं। इन केन्द्रोंका संचालन-हिन्दी प्रेमी मण्डल करते हैं।

महात्मा गाँधीजीके पश्चात् सभाके अध्यक्ष डा. राजेन्द्रप्रसाद हैं, तथा प्रधानमन्त्री श्री एस. आर. शास्त्री हैं। सभाके प्रान्तीय सभाओंके अध्यक्ष तथा मन्त्री निम्नानुसार है—

तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा—मन्त्री—श्री एस. चन्द्रमौली।

आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ—अध्यक्ष—श्री डा. बी. गोपाल रेड्डी, मन्त्री—श्री चितूरी लक्ष्मीनारायण शर्मा।

कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा—अध्यक्ष—श्री जी. वी. हल्लीकेरी, मन्त्री—श्री व्यंकटाचल शर्मा।

केरल हिन्दी प्रचार सभा—अध्यक्ष—श्री पी. के. केशवन् नायर, मन्त्री—पं. नारायण देव।

दिल्ली शाखा—मन्त्री—श्री भालचन्द्र आप्टे।

स्कूल-कालेजोंमें हिन्दीका प्रवेश होनेसे सभाके कार्यकलापोंमें खूब वृद्धि हुई है। प्रान्तीय सभाओंको स्थापित हुए अब २५ सालसे अधिक समय हो गया। वे अपने अपने रजत जयन्ती उत्सव मनाने लगी है। सभाकी परीक्षाएँ केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा मान्य हो चुकी हैं।

सभाके कार्यका विस्तार, सच्चे, कर्मठ प्रचारकोंके सक्रिय सहयोगके बिना सम्भव न था। सभाने जो प्रगति की है, उसका कारण दक्षिण भारतपरभरमें फैले हुए, दिन रात प्रचार कार्यमें लगे हुए प्रचारक ही है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके कार्यका विवरण तथा कुछ आंकड़े यहाँ नीचे दिए गए है वे इस बातके द्योतक हैं कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा उसकी चारों प्रान्तीय सभाओंने गत ४३ वर्षोंमें दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका कितना व्यापक कार्य किया है।

पांच पंचवर्षीय अवधियोंमें विकास

सभाने गत ५ पंचवार्षीय अवधियोंमें जो ८ क्रमबद्ध परीक्षाएँ चलाई, उनमें बैठनेवालोंकी संख्या दस लाखसे भी अधिक है, जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

अवधि	केन्द्र-संख्या	विद्यार्थियोंकी संख्या
१९३६—१९४१	४५१	८९,८५३
१९४२—१९४६	४९८	१,००,२८२
१९४७—१९५१	७९०	३,२२,९६८
१९५२—१९५६	१०००	४,८६,४५५
१९५७—१९६१	१३५०	६,५८,०४९
	कुल	१६,५७,६०७

संगठन एवं प्रचार पर केन्द्रीय खर्च

सभाकी प्रवृत्तियाँ क्रमशः ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही हैं, त्यों-त्यों उसका खर्च भी बढ़ता जा रहा है। गत ५ पंचवर्षीय अवधियोंमें जो खर्च हुआ है, उसका विवरण यों है—

अवधि	रुपए
१९३६—१९४१	६,१३,०७५
१९४२—१९४६	८,६५,१२९
१९४७—१९५१	२५,६४,८८२
१९५२—१९५६	२७,१३,०००
१९५८—१९५९	२३,०१,९५२
कुल	९०,५८,०३८

आन्ध्र, तमिल, कर्नाटक और केरल प्रान्तीय सभाओंका खर्च

दक्षिणमें हिन्दी प्रचार आन्दोलनकी आश्चर्यजनक प्रगति, सभाकी चारों प्रान्तीय शाखाओंकी निम्न-लिखित क्रमिक व्यय-वृद्धिमें स्पष्टतः प्रतिबिंबित है—

अवधि	आन्ध्र	तमिलनाडु	कर्नाटक	केरल
१९३६—४१	८५,०००	४५,०००	३९,०००	५९,०००
१९४२—४६	१,४०,०००	७५,०००	५५,०००	८०,०००
१९४८—५१	२,२७,०००	१,५०,०००	८०,०००	१,६३,०००
१९५२—५६	३,१०,०००	२,१०,०००	२,७६,०००	१,८७,०००
१९५७—५९	३,६८,५९६	२,४४,१९६	२,७६,१५३	१,५०,२७२
कुल	११,३०,५९६	७,२४,१९६	७,२६,१५३	६,३६,२७२

सभाकी परीक्षाएँ

सभा हिन्दीकी आठ क्रमबद्ध परीक्षाएँ चला रही है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी भाषाका अच्छा शिक्षण व्यवस्थित रूपसे हो रहा है। उपर्युक्त आठ परीक्षाओंमें तीन प्रारम्भिक परीक्षाएँ है और पाँच उच्च परीक्षाएँ। 'प्राथमिक', 'मध्यमा', और 'राष्ट्रभाषा' प्रारम्भिक परीक्षांएँ है, तथा 'प्रवेशिका', 'विशारद-पूर्वाद्ध', 'विशारद-उत्तरार्द्ध', 'प्रवीण' और 'हिन्दी प्रचारक' उच्च परीक्षाएँ है। इनके अतिरिक्त स्कूलोंमें हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके उपयोगार्थ सभा 'हिन्दुस्तानी पहली' और 'दूसरी' परीक्षाएँ भी चलाती है और प्रतिवर्ष सभा 'राष्ट्रभाषा विशारद' और 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' परीक्षाओंमें उत्तीर्ण स्नातकोंको पदवीदान-समारम्भ के अवसरपर उपाधियाँ प्रदान करती है।

१९२२ से सभाने जबसे परीक्षाएँ शुरू कीं, तबसे आज तक उसकी विभिन्न परीक्षाओंमें कुल १८३२५४७ परीक्षार्थी बैठे। ये परीक्षार्थी सभी प्रकारके समाजोंसे सम्बद्ध हैं और विभिन्न स्तरोंके लोग भी इनमें शामिल हैं, जिनमें ३० प्रतिशत तो नारियाँ हैं। सभाने अबतक करीब ७००० हिन्दी प्रचारकोंको

प्रशिक्षण दिया है जो कि दक्षिणके कोने-कोनेमें हिन्दी प्रचारको बढ़ानेके कार्यमें लगे हुए हैं। सभाकी परीक्षाएँ करीब १३५० केन्द्रोंमें चलाई जाती हैं।

सभाकी परीक्षाओंको मान्यता

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रासकी परीक्षाएँ भारत सरकारके शिक्षामंत्रालयसे निम्न लिखित रूपमें मान्य है—

प्रवेशिका—मैट्रिकके समकक्ष
विशारद—अिण्टरके समकक्ष
प्रवीण—बी. ए. के समकक्ष

परीक्षार्थी उन्नति क्रम		परीक्षार्थियोंकी संख्या	
वर्ष	**केन्द्र**	**प्रारम्भिक**	**उच्च परीक्षाएँ**
१९२२ से ३०	७३	९,११६	३२
१९३१ से ३५	३९४	३०,७१०	२,१६६
१९३६ से ४०	५७८	७०,९८७	४,१५२
१९४१ से ४५	५२८	६५,१६२	५,०२२
१९४६ से ४९	६४५	१,७६,६२१	१५,३३८
१९५०	७४०	७८,६९७	११,५४७
१९५१	८२२	७८,५८७	१६,१७०
१९५२	८९५	७७,५८८	१५,३३८
१९५३	८३२	७५,५४९	१२,९४९
१९५४	९७३	७१,३९०	१५,५२२
१९५५	१०६४	८१,३२५	१६,८९६
१९५६	१२२३	९८,५५७	१६,९१३
१९५७	१२३१	९०,७२९	१८,११३
१९५८	१२७५	१,०४,५७८	१९,०३४
१९५९	१३०२	१,१६,७०१	२०,८५६
१९६०	१३२६	१,१५,८५९	२३,०४५
१९६१	१३५०	१,१४,८८०	२२,८७२
		१४,५७,०२७	२,३६,२२४
		कुल परीक्षार्थियोंकी संख्या	१६,९३,२५१

* सभाकी 'हिन्दी प्रचारक', 'हिन्दुस्तानी पहली' और 'दूसरी' परीक्षाओंमें जो परीक्षार्थी बैठे, उनकी संख्या इन आंकड़ोंमें सम्मिलित नहीं है।
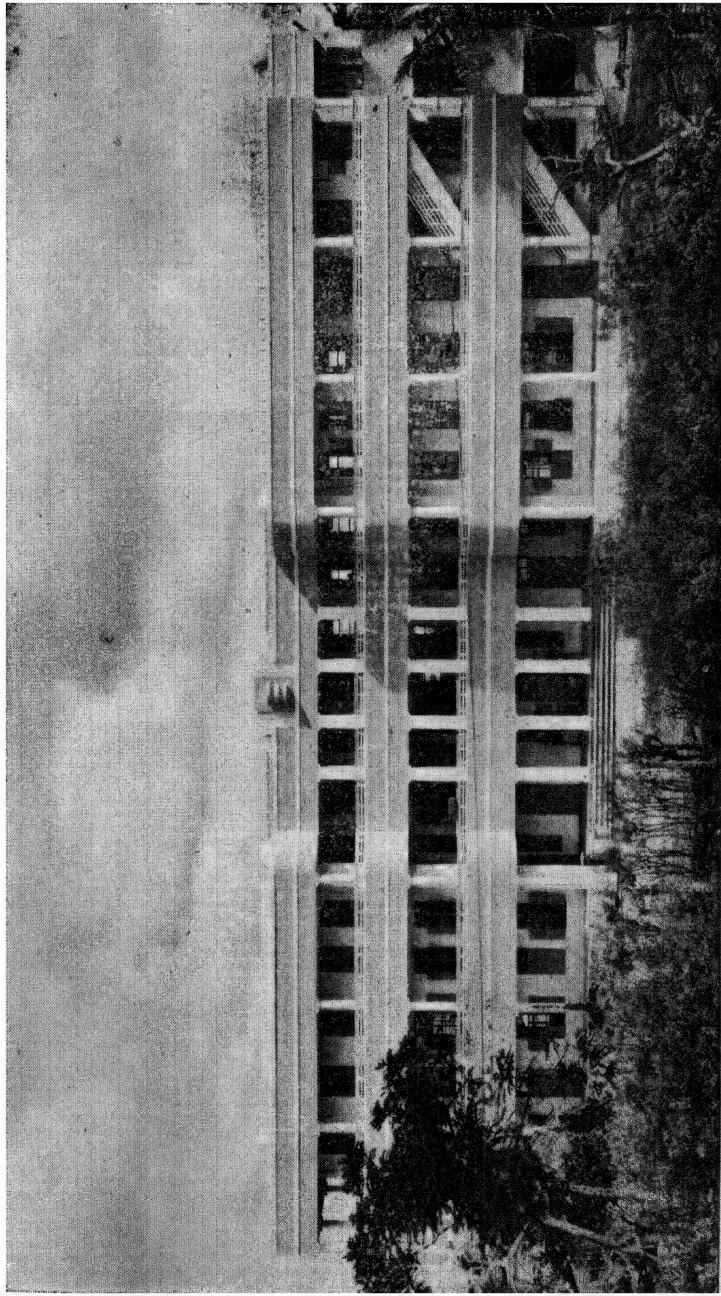
प्रचारक विद्यालय (महिला), मद्रास

[राजाजी छात्रावास]

पदवीदान-समारम्भ

सभाने सन १९३१ से लेकर अबतक उपाधियाँ प्रदान करनेके हेतु पच्चीस पदवीदान-समारम्भ मनाए हैं। निम्नलिखित विद्वानोंने उन अवसरोंपर अभिभाषण दिए हैं—

१९३१ आचार्य काका कालेलकर, १९३२ प्रो. मोहम्मद आगा शुस्त्री, * १९३३ पं रामनरेश त्रिपाठी, १९३४ बाबू प्रेमचन्द, १९३५ पंडित सुन्दरलाल, * १९३६ बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, १९३७ जनाब याकूब हसन सेठ, १९३८ श्रीमती सरोजिनी नायडू, १९३९ श्री बाल गंगाधर खेर, १९४० डा. पट्टाभि सीतारामैय्या, १९४१ आचार्य विनोबा भावे, १९४२, १९४३ सैय्यद अब्दुल्ला ब्रेल्वी, * १९४६ राजकुमारी अमृत कौर; १९४८ डा. जाकिर हुसैन, १९४९ आचार्य विनोबा भावे, १९५० श्री आर. आर. दिवाकर, १९५२ श्री श्रीप्रकाश, १९५३ श्री ए. जी. रामचन्द्र राव, १९५४ श्री बी. रामकृष्णराव, १९५६ (जनवरी) श्री एन. सुन्दर ऐय्यर, १९५६ (अगस्त) डा. राजेन्द्र प्रसाद; १९५७ डा. जगजीवनराम, १९५८ डा. हरेकृष्ण महताब, १९५९ श्री सदाशिव कानोजी पाटील, १९६० डा. बी. गोपाल रेड्डी।

प्रकाशन

सभाका प्रकाशन-विभाग बड़े पैमानेपर प्रकाशनका कार्य कर रहा है, इस विभागकी तरफसे करीब ३१४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें साहित्यिक महत्व रखनेवाली पुस्तकें भी हैं, और दक्षिणी भाषाओंसे हिन्दी सीखनेके लिए आवश्यक पुस्तकें, रीडरोंसे लेकर कोश तक, सम्मिलित हैं। सभाका अपना पुस्तक विक्री विभाग है जहाँ सभाकी निजी पुस्तकें और बाहरके प्रकाशन भी बेचनेका प्रवन्ध है। इस विभागने दक्षिणके कोने-कोनेमें करीब १८०० प्रकारकी २,८०,००,००० पुस्तकें वितरित की हैं।

पत्रिकाएँ

सभाकी तरफसे "दक्षिण भारत" (सांस्कृतिक द्वैमासिक) और "हिन्दी प्रचार समाचार" (प्रचारात्मक मासिक) नामक दो पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं।

"**दक्षिण भारत**" भारतीय—मुख्यतया दक्षिणी—भाषाओंकी विशेषताओंको प्रतिबिम्बित करनेवाले साहित्य, संस्कृति, इतिहास और समाजका तथा इन क्षेत्रोंमें काम करनेवाले नेताओंका परिचय कराता है।

"**हिन्दी प्रचार समाचार**" दक्षिणके हिन्दी विद्यार्थियों एवं प्रचारकोंके लाभार्थ आवश्यक सुरुचिपूर्ण विभिन्न सामग्री प्रस्तुत करती है। यह मुख्यतः शिक्षा एवं संगठनको दृष्टिमें रखकर चलाया जाता है।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय

सभाके प्रमुख कार्य-कलापोंमें स्कूलोंके लिए योग्य हिन्दी शिक्षकोंको तैयार करना भी एक मुख्य

[* १९३३, १९३६ और १९४६ के पदवीदान-समारम्भोंपर महात्मा गाँधीने अध्यक्षासन ग्रहण किया था।]

कार्य है। इस उद्देश्यको सफल बनानेके लिए निम्नलिखित केन्द्रोंमें इस समय सभा हिन्दी प्रचारक विद्यालय चला रही है—

मद्रास तिरुच्चिरापल्ली हैदराबाद

निम्नलिखित केन्द्रोंके हिन्दी प्रचारक विद्यालय सभा द्वारा मान्यता प्राप्त हैं—

राजमहेन्द्री तेनाली

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि सभाने गत ४३ वर्षोंमें कितना व्यापक तथा गौरवपूर्ण कार्य किया है।

दक्षिण भारतकी कुछ अन्य हिन्दी प्रचार संस्थाएँ

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार तथा उनकी चारों प्रान्तीय सभाओंके कार्यका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इनके अतिरिक्त दक्षिण भारतमें और भी कुछ हिन्दी प्रचार संस्थाएँ है जो कुछ वर्षोंसे स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी प्रचारका कार्य कर रही है। आन्ध्र प्रदेशमें हिन्दी प्रचार सभा हैदराबादका विशेष स्थान है। यह संस्था राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध है अतः इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है। इसके अतिरिक्त जो प्रमुख संस्थाएँ हैं उनके नाम राज्यानुसार नीचे दिए गए हैं।

(१) तिरुवांकुर हिन्दी प्रचार सभा— तिरुअनंतपुरम्
(२) मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद— बंगलौर
(३) साहित्यानुशीलन समिति— मद्रास
(४) कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा— धारवाड़

सामान्यतः यह भ्रम बना हुआ है कि दक्षिण भारतमें हिन्दीका कार्य इतना फैला नही है कि शासन तथा अन्य क्षेत्रोंमें हिन्दीका उपयोग किया जाए। ऊपर दिए हुए विवरणसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि दक्षिण भारतके लोग हिन्दीको कितने चावसे अपना रहे है। वहाँके बड़े-बड़े नगरों, कस्बों, एवं गाँवोंमें प्रचार केन्द्र फैले हुए है और उनके द्वारा हिन्दीके लिए अनुकूल वायुमंडलका निर्माण हो रहा है। स्कूलों एवं कालेजोंमें विद्यार्थी हिन्दीको स्च्वेछासे सीख रहे है। विश्वविद्यालयोंमे हिन्दीको ऐच्छिक विषयके रूपमें स्थान मिला है। हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थी हिन्दी विषय लेकर हिन्दी सीख रहे हैं। अतः कुछ व्यक्तियोंके हिन्दी विरोधके कारण यह कहना कि दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रबल विरोध है एक असत्य कथन है। बल्कि यथार्थ तो यह है कि हिन्दी बहुत तीव्र गतिसे सारे दक्षिण भारतमें फैल रही है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

महात्मा गाँधीने सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यको प्रारम्भ किया था। यह कार्य सुचारुरूपसे चलने लगा। इसको सुसंगठित करनेकी दृष्टिसे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। इसने दक्षिणके तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ भाषा-भाषी प्रदेशोंमें व्यापक रूपसे कार्य बढ़ाया। इस प्रकार दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यको संगठित रूपमें लगाकर

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

गाँधीजीका ध्यान शेष भारतके हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको करनेकी ओर गया। सन् १९३६ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन नागपुरमें हुआ। उसके सभापति देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद थे। इस अवसरपर गाँधीजीकी प्रेरणासे एक प्रस्ताव द्वारा हिन्दी प्रचार समितिका संगठन किया गया। उस प्रस्तावके प्रस्तावक स्व. बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन थे तथा उसके अनुमोदक स्व. श्री जमनालालजी बजाज थे। इसके अनुसार प्रारम्भके तीन वर्षोके लिए निम्नलिखित १५ सदस्योंकी हिन्दी प्रचार समिति बनाई गई—

(१) बाबू राजेन्द्रप्रसाद (पदेन), (२) महात्मा गाँधी, (३) पं. जवारहलाल नेहरू, (४) बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, (५) सेठ जमनालाल बजाज, (६) ब्रजलाल बियाणी, (७) आचार्य नरेन्द्र देव, (८) काका कालेलकर, (९) पं. हरिहर शर्मा, (१०) वियोगी हरि, (११) बाबा राघवदास, (१२) शंकरराव देव, (१३) पं. माखनलाल चतुर्वेदी, (१४) सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह (पदेन-सम्मेलन प्रधानमन्त्री), (१५) ठा. श्रीनाथसिंह (पदेन-सम्मेलन प्रबन्ध मन्त्री)।

इस समितिको ६ और सदस्योंको लेनेका अधिकार था। अतः इसकी पहली बैठकमें जो ४ जुलाई १९३६ को सेवाग्राम (वर्धा) में महात्मा गाँधीके निवास स्थानपर हुई उसमें ६ और सदस्य लिए गए। उनके नाम निम्नानुसार हैं:—

(१) श्रीमती लोकसुन्दरी राम, बंगलूर, (२) श्रीमती पेरीनबेन केप्टेन, बम्बई, (३) श्रीमती रमादेवी चौधरानी, कटक, (४) श्रीयुत गुरुमुरीय गोस्वामी, आसाम, (५) श्रीयुत मो. सत्यनारायण, मद्रास, (६) श्रीमन्नारायण अग्रवाल, वर्धा।

इसी बैठकमें निम्नलिखित पदाधिकारियोंका चुनाव किया गया:—

(१) बाबू राजेन्द्रप्रसाद—अध्यक्ष (पदेन), (२) सेठ जमनालाल बजाज—उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, (३) श्री सत्यनारायण—मन्त्री, (४) श्रीमन्नारायण अग्रवाल—संयुक्त मन्त्री।

बादमें सन १९३८ में श्री काका साहब कालेलकर समितिके उपाध्यक्ष बनाए गए।

इस समितिका कार्यालय वर्धामें ही रखा गया। इसका कार्यालय वर्धामें रखनेका हेतु यह था कि उसे गाँधीजीका मार्गदर्शन मिलता रहे। गाँधीजी उन दिनों वर्धाके समीप सेवाग्राममें रहते थे। अतः समितिका यह सौभाग्य रहा कि प्रारम्भके वर्षोमें गाँधीजीका इसे मार्गदर्शन मिलता रहा। आगे चलकर इस समितिका नाम हिन्दी प्रचार समितिसे बदलकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति किया गया। नाम परिवर्तन सम्बन्धी यह निर्णय सन् १९३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २७ वें अधिवेशनके अवसरपर शिमलामें किया गया। तबसे यह समिति राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके नामसे कार्य कर रही है।

रा. प्र. समितिके प्रारम्भके वर्ष

समितिका कार्य सुचारू रूपसे चले इस दृष्टिसे महात्मा गाँधीने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके अनुभवी कार्यकर्ता श्री मो. सत्यनारायण तथा श्री पं. हरिहर शर्माको दक्षिण भारतसे वर्धा बुला लिया। श्री सत्यनारायणजी मंत्री बनाये गए, तथा पं. हरिहर शर्माको परीक्षा मन्त्री बनाकर उन्हें परीक्षा कार्य सौंपा

गया। श्री हरिहर शर्माने अथक प्रयत्नकर समितिकी परीक्षाओंको सुचारू रूपसे नियोजित किया एवं उनके उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोंका निर्माण कराया। इस कार्यमें उनका दक्षिण भारतके कार्यका अनुभव विशेष रूपसे उपयोगी हुआ। स्व. श्री जमनालालजी बजाजके प्रयत्नोंसे समितिको सेठ पद्मपतजी सिंघानियाने ७५ हजार रुपए हिन्दी प्रचार कार्य करनेके लिए सहायता स्वरूप दिए। यह रकम प्रति वर्ष १५ हजारके हिसाबसे ५ वर्षोंके लिए मिली। इससे समितिकी आर्थिक चिन्ता दूर हुई और प्रारम्भके वर्षोंमें कार्य करनेमें सुविधा हो गई। समितिके उपाध्यक्ष आचार्य श्री काका साहेब कालेलकरने समितिके कार्यको बढ़ानेमें पूरा ध्यान दिया और उसके कार्यको अखिल भारतीय रूप देनेमें अपनी पूरी शक्ति लगाई। उन्होंने भारतके विभिन्न हिन्दी-तर प्रदेशोंमें प्रचारार्थ दौरा किया और जगह-जगह हिन्दी प्रचारके लिए समितियाँ संगठित कर उत्तर भारत के हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको संगठित किया। उनके इस प्रचार-दौरेमें समितिके मन्त्री श्री सत्यनारायण भी प्रारम्भमें उनके साथ थे बादमें उन्हें मद्रासके कार्यको सम्हालनेके लिए मद्रास जाना पड़ा। अतः ता. ५–७–१९३८ को समितिके संयुक्त मन्त्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल मन्त्री चुने गए। प्रारम्भिक कालमें समितिको सत्यनारायणजीकी सेवा मिली। इसका विशेष महत्व है। उन्होंने अपने दक्षिण भारतके अनुभवके आधारपर समितिको सुदृढ़ भूमिकापर रखा। उनके पश्चात् भी श्रीमन्नारायणजीने समितिके मन्त्रीके रूपमें ४ वर्ष तक अपनी सेवाएँ दीं। इस कालमे समितिने अपनी सभी प्रकारकी उन्नति की एवं प्रचार कार्यको प्रान्तोंमें बड़ा बल मिला। केवल २-३ वर्षोंके प्रयत्नोंके फलस्वरूप समितिका कार्य भारतके गुजरात, बम्बई, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, बंगाल, सिन्ध, विदर्भ-नागपुर, आदि हिन्दीतर प्रदेशोंमें सुचारू रूपसे चलने लगा तथा इन प्रदेशोंमें प्रान्तीय संगठन भी कायम हुए––

मणिपुर, हैदराबाद, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, कश्मीर, मराठवाड़ा, कर्नाटक आदि प्रदेशोंमें भी यह कार्य काफी बढ़ा है तथा वहाँ प्रचार करनेको समितियोंका भी गठन हुआ है।

बादमें समितिका कार्य विदेशोंमें भी इंग्लैण्ड, सूदान, अदन, जापान, जावा, सुमात्रा, वर्मा, सिलोन, दक्षिण आफ्रिका, पूर्व अफ्रिका आदि देशोंमें फैल गया है।

इनमेंसे कुछ प्रान्तोंमें पहलेसे ही राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर हिन्दी-प्रचारका कार्य चल रहा था। उनमें उड़ीसा, महाराष्ट्र, बम्बई, गुजरात मुख्य हैं। महाराष्ट्रमें हिन्दी-प्रचार-संघ पूना कार्य कर रहा था। इसके कर्मठ संगठक श्री ग. रा. वैशम्पायनका नाम उल्लेखनीय है। बम्बईमें हिन्दी-प्रचार-सभा बम्बई, कार्य कर रही थी, इसके कर्मठ कार्यकर्ता श्री रा. शंकरन्, श्री भा. ग. जोगळेकर तथा श्री कान्तिलाल जोशी रहे। गुजरातमें गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबादने कार्य किया। नवजीवन ट्रस्टने भी इसमें सहयोग दिया। उस समय श्री मोहनलाल भट्ट इस कार्यको सम्हालते थे। अहमदाबादमें सन् १९२८ में हिन्दी प्रचारके लिए श्री जेठालाल जोशी द्वारा विशेष प्रयत्न किया गया। उस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षा-ओंका केन्द्र शुरू किया गया। श्री जेठालाल जोशी केन्द्र-व्यवस्थापक बने। उन्होंने इन परीक्षाओंके लिए कक्षाओंका भी प्रबन्ध किया। सूरतमें राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल कार्य कर रहा था। पूर्वांचलमें श्री परमेष्ठीदास जैन हिन्दी प्रचार कार्यको बल दे रहे थे। पूर्वांचलमें श्री सीताराम सेकसरियाके प्रयत्नोंसे पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभा कलकत्तेमें कार्य कर रही थी, उड़ीसामें श्री अनसूयाप्रसादजी पाठकके प्रयत्नोंसे कार्य

आरम्भ हुआ और असममें बाबा राघवदास गाँधीजीकी प्रेरणासे हिन्दी प्रचार करनेके लिए गए और वहाँ उन्होंने कार्य आरम्भ किया।

इस प्रकार सारे देशमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर जगह-जगह चल रहा था। वर्धामें हिन्दी समितिकी स्थापना हो जानेसे ये सभी बिखरे हुए कार्य उससे सम्बन्धित हुए और परिणाम स्वरूप अखिल भारतीय स्तरपर सारे कार्य सुचारू रूपसे नियोजित हुए। करीब करीब सभी प्रान्तोंमें प्रान्तीय समितियोंका संगठन हो गया था। स्थानीय कार्यकर्ता ही हिन्दी सीखकर हिन्दीके प्रचारमें अपना सहयोग दे रहे थे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरह यहाँ भी सभी प्रदेशोंमें हिन्दीतर भाषी लोग ही विशेषतः हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए।

समितिकी प्रान्तीय समितियाँ तथा उनके वर्तमान पदाधिकारी

समितिका कार्य लगभग भारतके सभी हिन्दीतर प्रदेशोंमें फैल गया है। उसे स्थानीय जनताका एवं वहाँके प्रतिष्ठित समाजसेवियों एवं जन नायकोंका बल मिला है। फलतः समितिका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यहाँ केवल प्रान्तीय समितियोंके वर्तमान पदाधिकारियोंका उल्लेख किया जा रहा है।

प्रान्तीय समितियोंके पदाधिकारी (१९६२ तक)

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली

अध्यक्ष—श्री के. सी. रेड्डी, उत्पादन मन्त्री, भारत सरकार।

कार्यवाह अध्यक्ष—श्री एम. अनन्त शयनम् आयंगार, राज्यपाल, बिहार।

कोषाध्यक्ष—श्री एस. आर. एस. राघवन्।

मन्त्री-संचालिका—श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

अध्यक्ष—माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी, कुलपति, भारतीय विद्याभवन, भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश।

कार्याध्यक्ष—डॉ. श्रीमती हंसाबहन मेहता, भूतपूर्व उपकुलपति, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा।

उपाध्यक्ष—श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए., एल. एल. बी., राजकोट।

उपाध्यक्ष—श्री रमणिकलाल इनामदार, अहमदाबाद।

कोषाध्यक्ष—श्री सन्तप्रसाद भट्ट, आचार्य बा. दा. महिला कालेज, अहमदाबाद।

मन्त्री-संचालक—श्री जेठालाल जोशी, अहमदाबाद।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पूना

अध्यक्ष—माननीय श्री यशवन्तराव चव्हाण, प्रतिरक्षा मन्त्री, भारत सरकार।
उपाध्यक्ष—माननीय श्री न. वि. गाडगील, भूतपूर्व राज्यपाल, पंजाब।
उपाध्यक्ष—श्री मधुकरराव चौधरी, नगर विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।
कार्याध्यक्ष—तर्कतीर्थ पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी, वाई।
कोषाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा. मूंदडा, पूना।
अन्तर्गत लेखाक्षक—श्री माधवराव मा. धुमाळ, सातारा।
मन्त्री-संचालक—श्री पं. मु. डांगरे, बी. ए. बी. टी. पूना।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा. बम्बई

अध्यक्ष—श्री स. ल. सिलम (भूतपूर्व अध्यक्ष महाराष्ट्र विधान सभा)
उपाध्यक्ष—श्री सुलोचना बहन मोदी (भू. पू. मेयर बम्बई महानगरपालिका)
उपाध्यक्ष—श्री रामसहाय पाडेय (भू.पू.उपाध्यक्ष,बम्बई प्रा.काँग्रेस समिति तथा लोक सभा सदस्य।)
कोषाध्यक्ष—श्री शिवकुमार भुवालका।
मन्त्री-संचालक—कान्तिलाल जोशी, एम. ए.।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

अध्यक्ष—डॉ. सर भवानी शंकर नियोगी, भू. पू. जस्टिस, नागपुर हाईकोर्ट।
मन्त्री-संचालक श्री पं. हृषीकेश शर्मा।

पश्चिम वंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता

सभापति—डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, चेअरमेन, वेस्ट बंगाल लेजिस्लेटिव कौन्सिल।
मन्त्री-संचालक—श्री रेवन्तीरंजन सिन्हा।

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल

अध्यक्ष—श्री कालाचान्द सिंह शास्त्री।
उपाध्यक्ष—श्री गौरहरि शर्मा।
कोषाध्यक्ष—श्री ते. आवीरसिंह।
मन्त्री-संचालक—छत्रध्वज शर्मा।

असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग

अध्यक्ष—श्री नरेन्द्रनाथ शर्मा, एम. एल. ए. देरगाँव।
कार्याध्यक्ष—श्रीमती लावण्यप्रभादत्त चौधरी, शिलांग।

उपाध्यक्ष—श्री राधाकृष्ण खेमका, एम. एल. ए. तिनसुकिया।
उपाध्यक्ष—श्री गोपालचन्द्र अग्रवाल, एडवोकेट, नौगाँव।
मन्त्री-संचालक—जीतेन्द्रचन्द्र चौधरी।
कोषाध्यक्ष—श्री कामाख्यालाल सिंघानिया शिलाँग।
प्रचार-मन्त्री—श्री भगवती प्रसाद लड़ीया।

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

अध्यक्ष—श्री स्वामी विचित्रानन्द दास।
मन्त्री—श्री राजकृष्ण बोस।
संचालक—श्री अनसूया प्रसाद पाठक।

सिंध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर

अध्यक्ष—श्री डॉ. सोमनाथ गुप्त।
मन्त्री-संचालक—श्री दौलतराम शर्मा।
सहायक-मन्त्री—श्री मूलचन्द पारीक।
कोषाध्यक्ष—श्री राजरूप टांक।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल

अध्यक्ष—श्री महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंहजी, एम. पी.।
कार्याध्यक्ष—श्री सौभाग्यमल जैन, शुजालपुर।
उपाध्यक्ष—श्री श्यामाचरण शुक्ल, रायपुर।
उपाध्यक्ष—श्री महाराजा भानुप्रकाशसिंह, नरसिंहगढ़।
उपाध्यक्ष—श्री डॉ. विनयमोहन शर्मा, रायगढ़।
कोषाध्यक्ष—श्री हुकुमचन्द पाटनी, इन्दौर।
संयोजिका (महिला विभाग)—श्रीमती सुशीलादास, महू।
मन्त्री-संचालक—श्री बैजनाथप्रसाद दुबे, भोपाल।

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हुबली

अध्यक्ष—श्री एच. बी. शहा, एल. एल. बी., एम. एल. ए.।
कार्याध्यक्ष—श्री आर. व्ही. शिरूर, अध्यक्ष, कर्नाटक वणिक संघ।
उपाध्यक्ष—श्री एम. डी. झवेरी, श्री मरन्तम्मा जवळी, श्री पी. एच. गुँजाळ।
कोषाध्यक्ष—श्री बी. एम. इंचीनाल, श्री राघवजी देवजी लड्ड।
संचालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती, साहित्य रत्न।

मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद

अध्यक्ष—श्री भगवन्तराव गाढ़े, भू. पू. वन और ग्राम विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।

उपाध्यक्ष—श्री शंकरराव चव्हाण, विद्युत विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।

संचालक—श्री विष्णुदत्त शर्मा।

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

अध्यक्ष—श्री अच्युत रेड्डीजी।

मन्त्री—श्री दत्तात्रयराव अवरादी

संयुक्त-मन्त्री—श्री राजकिशोर पाण्डेय।

संचालक—श्री गोपालराव अर्पासिगिकर।

जम्मू काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

अध्यक्ष—श्री जगद्धरजी जाडू, श्रीनगर।

संचालक—श्री शम्भुनाथजी पारिभू।

पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अबोहर

संचालक—श्री दौलतराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।

बेलगाँव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगाँव

जिला-संगठक—श्री द. पा. साटम।

विदेशोंमें हिन्दी प्रचार

हमारा कार्य कुछ विदेशोंमें भी होता है। इस सम्बन्धमें हमारी नीति यह रही है कि हम स्वयं अपनी ओरसे विदेशोंमें कार्य करने नहीं जाते और जो लोग विदेशोंमे कार्य करना चाहते है उन्हें समितिके बजटसे कुछ आर्थिक सहायता भी नही देते। हमारी नीति तो भारतमे ही राष्ट्रभाषाका प्रचार कार्य करनेकी है और भारतमें काफी विशाल क्षेत्र पड़ा है, जिसमें अभी तक जैसा चाहिए वैसा कार्य हम नहीं कर सके है।

सारे पूर्वांचलमें पश्चिमकी तरह विकास नही हो पा रहा है। इसी प्रकार अन्दमान्-निकोबार, नागालैण्ड, गोरा तथा जयन्तीया हिल्स जैसे क्षेत्रमें कार्यको सुगठित रूप देना भी आवश्यक है, जो हम अभी-तक पूरा नहीं कर सके है।

परन्तु विदेशोंमें गए हमारे प्रवासी भाई जहाँ अपने उत्साहसे कार्य आरम्भ करते है, वहाँ हम उनके कार्यको मान्यता देते हैं और सहायता भी करते हैं। अफ्रीकामें हमारा कार्य काफी अच्छा हुआ है और वहाँसे परीक्षार्थी-संख्या भी अच्छी होती है, इसलिए वहाँ समितिकी ओरसे जिस प्रकार अन्य प्रदेशीय समितियों-को सहायता दी जाती है, उसी अनुपातमें वहाँ सहायता दी जा रही है। वैसे तो विदेशोंमें कई स्थानोंसे हिन्दी
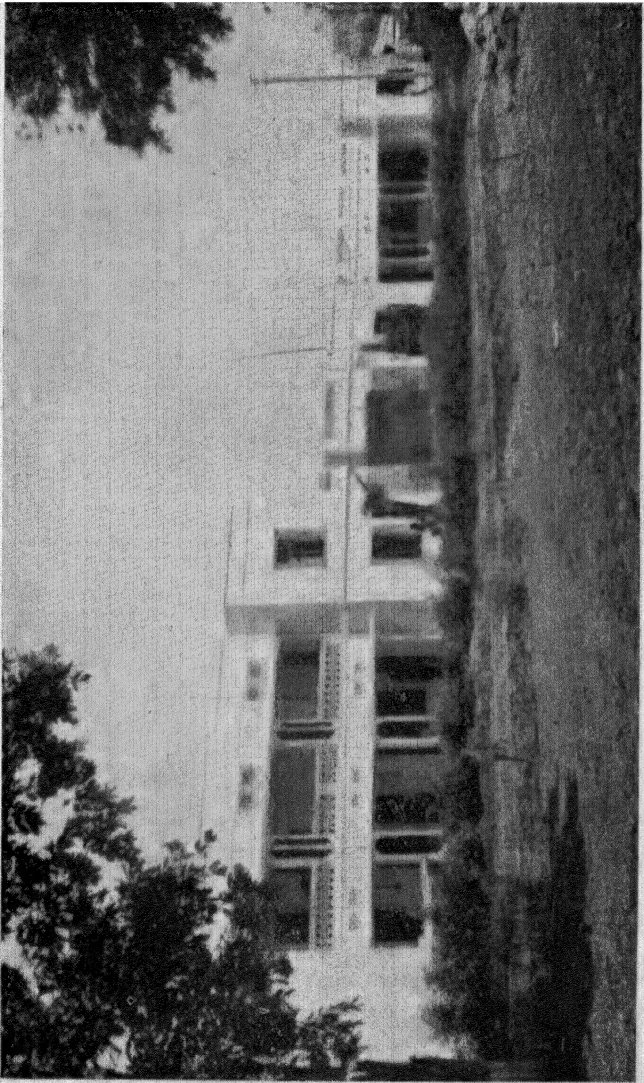
[राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, वर्धा]

शिक्षाकी सुविधा कर देनेके लिए माँगें हमारे पास आती हैं, परन्तु हमें नम्रतापूर्वक सखेद उसका इन्कार करना पड़ता है। लेकिन अब तक विदेशोंमें जहाँ नियमित रूपसे व्यवस्थित ढंगसे कार्य हो रहा है, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं :—

विदेशोंमें—लंका, बर्मा, अफ्रीका, श्याम, जावा, सुमात्रा, मारिशस, अदन, सूदान तथा इंग्लैड आदि स्थानोंमें भी समितिके केन्द्र है और समितिके कार्यकर्ता वहाँ राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य कर रहे है तथा वहाँसे हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थी तैयार करते हैं। वहाँ कई स्थानोंपर तो समितियोंका संगठन भी हो गया है। नियमित रूपसे विद्यालय तथा पुस्तकालय आदि प्रवृत्तियाँ चल रही है।

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर

समितिने अपनी स्थापनाके पश्चात् सर्वप्रथम इस बातपर विशेष ध्यान दिया कि वर्धामें राष्ट्रभाषाके प्रचारक तैयार किये जाएँ। इस उद्देश्यसे उसने सन् १९३७ में राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिरकी स्थापना की। इसके संचालनके लिए उसने एक प्रबन्ध समितिका संगठन किया गया जो निम्नानुसार हैं—

अध्यक्ष—श्री काका साहब कालेलकर।

मन्त्री—श्री मो. सत्यनारायण।

सदस्य—सर्वश्री कृष्णदास जाजू, आर्यनायकम्, आशादेवी, नाना आठवले, दादा धर्माधिकारी, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, हृषीकेश शर्मा।

पंडित हृषीकेश शर्मा इस अध्यापन मन्दिरके प्रधानाध्यापक बनाए गए।

'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर' का उद्घाटन पूज्य महात्मा गाँधीजीके हाथों ता. ७ जुलाई १९३७ को हुआ। इस उद्घाटन समारोहकी अध्यक्षता समितिके अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने की। इस समारोह में सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, श्री गोपबन्धु चौधुरी आदि गण्यमान्य नेता उपस्थित थे। पूज्य गाँधीजीने इस विद्यालयमें पढ़नेवाले छात्रोंको जो आगे चलकर राष्ट्रभाषाके प्रचारक बननेवाले थे सम्बोधित कर उस समय जो उद्गार निकाले थे वे बड़े ही मननीय है और आज भी हमारे प्रचारकोंके लिए प्रेरणा-स्रोत हैं। उन्होंने कहा था कि—

"राजेन्द्रबाबूने यह कहकर कि राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंको चारित्र्यवान होना चाहिए, मेरा काम हलका कर दिया है। यह कहनेकी जरूरत नही कि जो प्रचारक साहित्यिक योग्यता नहीं रखते, उनसे यह काम नहीं हो सकता। परन्तु यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि जिनमें चारित्र्यिक योग्यताका अभाव होगा, वे किसी कामके नहीं।

"..........मैं उनके देवनागरी या फारसी लिपिके अथवा हिन्दी-व्याकरणके अज्ञानको बरदाश्त कर लूँगा, किन्तु उनके चारित्र्यकी कमीको तो मैं एक क्षणके लिए भी बरदाश्त नहीं कर सकता। हमें यहाँ ऐसे आदमियोंकी जरूरत नहीं।

"..........कोरे पांडित्यसे विदेशी शक्तियोंका हम सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकते। यह काम विद्वानोंका नहीं है। फकीरोंका काम है—जिनका चारित्र्य बिलकुल शुद्ध हो और जो स्वार्थ-साधनसे परे हों।

"..........इसी तरह धनसे भी हमको ज्यादा मदद नहीं मिलेगी। अकेले धनसे क्या हो सकता है। रुपयोंसे भी अधिक हम चारित्र्यको प्रधानता देते है।

"..........आज सुबह आप लोगोंसे यही कहने आया हूँ कि आप चारित्र्यवान् बनकर इस काममें मदद दें।"

[तारीख १–७–१९३७]　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—महात्मा गाँधी

अध्यापन कार्यमें सहायकके रूपमें श्री रामानन्द शर्मा नियुक्त किए गए। उन्होंने थोड़े ही समय कार्य किया। इसके पश्चात् सन् १९३७ में ही श्री रामेश्वर दयाल दुबे उनके स्थानपर नियुक्त किए गए। वे इस अध्यापन मन्दिरके सहायक अध्यापक एवं प्रबन्धकके रूपमें कार्य करते रहे। यह अध्यापन मन्दिर ५ वर्षों तक (सन् १९३७ से १९४२ तक) चलता रहा। इस दरम्यान भारतके विभिन्न हिन्दीतर प्रदेशोंके सुयोग्य कार्यकर्ताओंको हिन्दी सिखाकर प्रचारकके रूपमें तैयार किया गया। कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें जाकर हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए। यहाँ जो पाठ्यक्रम चलाया जाता था उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनने अपनी 'मध्यमा' परीक्षाके समकक्ष माना। बादमें जब राष्ट्रभाषा रत्नका पाठ्यक्रम निश्चित किया गया तब उसे यहाँ चलाया गया।

कुल ५ बॅच तैयार किए गए जो इस प्रकार है —

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर, वर्धा

सत्र, सन्	परीक्षार्थी संख्या	विशेष
१९३८	१२	
१९३९	१६	अप्रैल : दूसरा–सत्र
१९४०	८	
१९४१	४	
१९४२	९	सन् '४२ से 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा शुरू हो गई थी।

इस अध्यापन मन्दिरका समितिके जीवनमें विशेष महत्व है। यहाँ जो छात्र पढ़ने आते थे, उन्हें विशुद्ध राष्ट्रीय वातावरण मिलता था। यहाँसे शिक्षित-दीक्षित होकर जो कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें वापस गए, वे राष्ट्रभाषाके मूलमें रही राष्ट्रीय भावनाको लक्ष्यमें रखकर हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए। कवियोंने अपने प्रदेशमें जाकर प्रारम्भिक संगठनात्मक कार्य किया जिसका उस प्रदेशके हिन्दी-प्रचारमें विशेष महत्व है और आज भी वे दत्तचित्त होकर कार्य कर रहे हैं।

सन् १९४२ में राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें महात्मा गाँधीजीके और श्री टण्डनजीके विचारोंमें मतभेद पैदा हुआ। गाँधीजीका मानना था कि दो लिपियोंके साथ हिन्दुस्तानीका प्रचार किया जाए, जब कि श्री टण्डनजी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका मत नागरी लिपिके द्वारा हिन्दीके कार्यको करनेका था। इस सम्बन्धमें गाँधीजी और टण्डनजीमें एक लम्बा पत्र-व्यवहार भी हुआ, जिसमें ये दो विचार स्पष्टरूपसे व्यक्त हुए हैं। इस विचार-भेदके कारण गाँधीजीने सम्मेलन से तथा समितिसे सन् १९४५ में अपना त्यागपत्र दिया। सन् १९४२ में हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना वर्धामें हो चुकी

थी। इस नवीन सभाके मंत्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल बनाए गए, फलतः उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके मन्त्रीपदसे त्यागपत्र दिया और वे केवल सदस्य रहे। श्री टण्डनजीकी प्रेरणासे सन् १९४२ में श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने समितिका मन्त्रीपद सम्हाला और श्री रामेश्वर दयाल दुबे, श्री अमृतलाल नाणावटीके स्थानपर सहायक मन्त्री तथा परीक्षा मन्त्री बने। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने सभी प्रान्तोंका दौरा कर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके कार्यको बल दिया। हिन्दुस्तानीके कारण वातावरणमें अनेक भ्रम फैल गए थे; उनका निवारण किया और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी भाषा विषयक नीतिकी स्पष्टता व्यक्त की। फलतः समितिका कार्य अधिकाधिक विकास पाता गया।

समितिकी भाषा-नीति

समितिकी भाषा नीति हमेशासे उदार रही है। आरम्भसे ही, जिसे श्री काकासाहबने "सबकी बोली" कहा है उस बोलीका (भाषाका) ही वह व्यवहार करती आई है। उर्दू, अँग्रेजी तथा अन्य किसी भी भाषाके शब्द क्यों न हों, यदि वे हिन्दीमें प्रचलित हो गए है तो उन शब्दोंके व्यवहार करनेमें उसे कोई हिचक नहीं रही। वह उर्दू या अँग्रेजीके प्रचलित शब्दोंके प्रयोगका बहिष्कार नहीं करती और न संस्कृतके शब्द जबरदस्ती भाषामें ठूंसना चाहती है। सब समझ सकें, ऐसी सरल भाषामें लिखना या बोलना उसकी दृष्टिमें बहुत बड़ा गुण या कला है। इसका यह अर्थ नहीं कि विषयके अनुरूप भाषाका होना वह आवश्यक नहीं मानती। विषयकी अभिव्यक्तिके लिए जो भाषा स्वाभाविक होगी उसका उपयोग ही व्यावहारिक बात होगी। समिति उर्दूको भी हिन्दीकी एक शैली ही मानती है, इसलिए उसकी परीक्षाओंमें "गुलदस्ता" जैसी पुस्तकोंको स्थान है। गाँधीजी और श्री टण्डनजीका जो लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ, उससे यह स्पष्ट है कि भाषाके रूपके सम्बन्धमें उन दो नेताओंके बीच कोई खास मतभेद नहीं था। जो मुख्य मतभेद था, वह हिन्दी नागरी और अरबी दोनों लिपिमें लिखी जाए——या एक नागरी लिपिमें ही लिखी जाए, यही उनके मतभेदका विषय था।

परन्तु यह तो इतिहासकी बात हुई। सन् १९४९ में संविधानमें जब राजभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें चर्चा हुई तो यह निर्णय किया गया कि नागरी लिपिमें लिखी हिन्दी संविधानमें स्वीकृत केन्द्रकी राजभाषा होगी। और वह मुख्यतः संस्कृतसे तथा आवश्यकता पड़नेपर अन्य भाषाओंसे शब्दोंको आत्मसात् कर अपना विकास करेगी और उसमें हमारी सामाजिक संस्कृतिका प्रतिबिम्ब होगा। समितिकी भाषा-नीतिके सम्बन्धमें समितिने विगत कुछ वर्षोंमें जो प्रस्ताव किए है, वे हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इनसे समितिकी भाषा-नीति स्पष्ट हो जाएगी।

प्रस्ताव–१

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी यह घोषणा है कि आरम्भसे ही उनकी यह नीति रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका रूप दिन-दिन इस रीतिसे विकसित हो कि उसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका हाथ हो और वह सच्चे अर्थमें भारतीय जनताका प्रतिनिधित्व करे।

इस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानने हिन्दीके इसी रूपकी कल्पना की है। यह रूप

किसी अप्राकृतिक रूपसे पैदा नहीं किया जा सकता। जो हिन्दी पुराने समयसे देशभरमें फैली हुई है उसीके क्रमिक विकाससे हिन्दीका भावी रूप निखरेगा। हालमें कुछ भाइयोने यह दिखानेका यत्न किया है कि राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद है। इस समितिके विचारमें इस प्रकारका भेद सर्वथा निर्मूल है और इससे हिन्दीके विकासमें कोई लाभ नहीं हो सकता।

स्थानीय बोलियोंके अतिरिक्त हिन्दीका कोई रूप राष्ट्रीय हिन्दीसे भिन्न नही है। साहित्यिक और सांस्कृतिक हिन्दी एक है। वही सब प्रदेशोंमें प्रचलित है। उसीके द्वारा राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न हो सकेगा और उसीके क्रमिक विकासमें संविधानके अनुसार संस्कृत तथा देशकी अन्य भाषाओंका भाग होगा।"

प्रस्ताव–२

३० सितम्बर १९५१ की बैठक जो वर्धामें हुई थी, राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने अपनी भाषा सम्बन्धी नीतिको स्पष्ट किया था फिर भी कुछ शंकाएँ उठाई गई हैं। इसलिए यह समिति आज पुन: घोषणा करती है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीके रूपके बारेमें उसकी एक ही नीति आरम्भकालसे चली आई है।

पूज्य गाँधीजीकी प्रेरणासे इस संस्थाकी नींव सन् १९३६ में पड़ी और जिस प्रकारकी भाषाका प्रचार पूज्य बापूकी देखरेखमें समितिने शुरू किया था, उसी प्रकारकी भाषाका प्रचार वह आज भी कर रही है।

इस भाषाकी लिपि नागरी है। उसमें सब भाषाओंके शब्दोंका जो चालू है, समावेश और नए शब्दोंके निर्माणमें किसी भाषाके उपयुक्त शब्दोंका बहिष्कार नहीं है।

विशेष वैज्ञानिक विषयोंकी शब्दावलीको छोड़कर यह भाषा सरल और जनताकी बोलचालकी भाषासे मिलती हुई होनी चाहिए।

इस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानमें भी नागरी लिपिमें लिखित हिन्दीके इसी रूपकी कल्पना की गई है और वह मानती है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका जो रूप आगे विकसित होगा उसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका सहयोग होगा।"

प्रस्ताव–३

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी भाषा नीतिके बारेमें कभी-कभी यह प्रश्न उठा है कि वह विधानमें स्वीकृत हिन्दीका प्रचार करती है या उससे भिन्न किसी भाषाका ? समितिका विश्वास है कि समितिकी भाषा-नीति इतनी स्पष्ट रही है कि उसके सम्बन्धमें ऐसी कोई शंका उठनी नहीं चाहिए। इतना होनेपर भी समितिकी कार्य-समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि क्योंकि विधानमें नागरी लिपि और हिन्दीके स्वीकार करनेमें समितिका भी कुछ प्रयत्न और हाथ रहा है, इसलिए हमारा तो कर्त्तव्य तथा निश्चय है कि हम विधानकी ३५१ वीं धाराके अनुरूप हिन्दीका प्रचार करें और केन्द्रीय सरकार तथा राज्योंको भी हिन्दीके प्रचार और प्रसारके कार्यमें सहयोग और सहायता प्रदान करें।

आशा है, राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यसे सम्बन्धित भाई-बहन अपने मनमें किसी प्रकारकी शंकाको स्थान न देंगे और राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें दत्तचित्त और दृढ़ रहेंगे।"

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका संगठन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रतिनिधियों तथा इससे सम्बद्ध प्रान्तीय समितियोंके प्रतिनिधियोंसे होता है। कुल ३५ सदस्योंकी यह समिति है। इनमेंसे १९ प्रतिनिधि प्रान्तोंके प्रतिनिधि हैं और शेष १६ सदस्य जिनमेंसे ७ सम्मेलनके पदाधिकारी पदेन समितिमें आते है और बाकीके ९ सदस्य सम्मेलनकी स्थायी समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। समिति अपने मन्त्रीका चुनाव प्रति तीन वर्षोंके लिए करती है तथा भाषा सम्बन्धी रीति-नीतिके सम्बन्धमें इसे पूरी स्वतन्त्रता है। इसे अपना बजट बनानेका तथा उसके अनुसार व्यय करनेका सम्पूर्ण अधिकार है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी एक समितिके रूपमें यह कार्य कर रही है, पर इसे जो अधिकार प्राप्त है, उसके अनुसार वह पूर्णतः अपने आपमें स्वतन्त्र है। यह इसकी वैधानिक स्थिति है। प्रान्तोंके जो १९ प्रतिनिधि लिये जाते हैं, वे निम्नानुसार हैं—

गुजरात–३, महाराष्ट्र–३, बम्बई–२, विदर्भ-नागपुर–२, सिन्ध-राजस्थान–२, बंगाल–२, उत्कल–२, आसाम–१, हैदराबाद–१, अन्य प्रान्त–१; कुल––१९ सदस्य होते है।

परीक्षा समितिका संगठन

समितिकी अपनी परीक्षा समिति है, जिसमें २१ सदस्य होते हैं। इनमेंसे १५ सदस्य समितिके अन्तर्गत जिन प्रान्तोंमें कार्य होता है, वहाँसे लिये जाते हैं। प्रान्तानुसार परीक्षा समितिके प्रतिनिधि संख्या इस प्रकार है :—

हैदराबाद–१, उत्कल–२, गुजरात–२, सिन्ध-राजस्थान–२, महाराष्ट्र–२, विदर्भ-नागपुर–२, आसाम–१, बंगाल–१, बम्बई–२।

समितिके आरम्भके दो वर्षोंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी ओरसे हिन्दी प्रवेश, हिन्दी परिचय, हिन्दी कोविद, ये तीन परीक्षाएँ ली गई। सितम्बर १९३८ से इन प्रचार परीक्षाओंका संचालन समिति द्वारा वर्धासे होने लगा। जनवरी सन् १९३९ में परीक्षा समितिका गठन किया गया।

आज समितिके निम्नलिखित विभाग हैं :—

परीक्षा-विभाग, प्रकाशन-विभाग, कार्यालय-विभाग—(प्रचार, भवन, राष्ट्रभाषा–राष्ट्रभारती), प्रेस-विभाग, राष्ट्रभाषा-महाविद्यालय, अर्थ-विभाग।

इन विभागोंका कार्य सम्हालनेके लिए प्रत्येकका एक अधिकारी है तथा उसके सहायक कार्यकर्ता भी हैं। समितिमें ४ अधिकारी तथा १०४ कर्मचारी कार्य कर रहे है। राष्ट्रभाषा प्रेसमें करीब ४० व्यक्ति कार्य करते है। इनके अतिरिक्त समितिके निम्नलिखित वैतनिक पदाधिकारी भी है—

परीक्षा-मन्त्री, सहायक-मन्त्री, कार्यालय-सचिव।

सन् १९५१ तक श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन मन्त्रीके रूपमें कार्य करते रहे। उसके बादसे गाँधीजीके 'हिन्दी नजवजीवन' के व्यवस्थापक तथा हिन्दीके पुराने सेवक श्री मोहनलाल भट्ट प्रधानमन्त्रीके रूपमें कार्य कर रहे हैं। गत ११ वर्षोंसे वे राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके व्यापक कार्यको सम्हाल रहे है। इस दरम्यान अनेक कठिनाइयाँ आई पर उनके मार्गदर्शनमें समितिका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहनसे प्रान्तीय संगठन मजबूत हो रहे हैं तथा कुछके भवन भी बन गए है। प्रायः

सभी प्रान्तीय समितियाँ स्वतन्त्र रूपसे रजिस्टर्ड हो चुकी हैं। प्रान्तीय नेताओं, साहित्यकारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंमेंसे प्रान्तीय समितियोंके अध्यक्ष, सहमन्त्री, सदस्य आदिका चुनाव होता है। सभी प्रान्तीय समितियोंकी व्यवस्थापिका समितियाँ हैं।

यह समितिओंका गठन, संचालन, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों एवं परीक्षा सम्बन्धी समस्त नियमों, परीक्षा शुल्क आदिका निर्धारण करती है। उसके द्वारा आज १३ परीक्षाएँ ली जाती हैं, जिनके नाम नीचे अनुसार है—

राष्ट्रभाषा प्राथमिक, राष्ट्रभाषा प्रारम्भिक, राष्ट्रभाषा प्रवेश, राष्ट्रभाषा परिचय, राष्ट्रभाषा कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न, राष्ट्रभाषा आचार्य, राष्ट्रभाषा अध्यापन विशारद, राष्ट्रभाषा अध्यापन कोविद, राष्ट्रभाषा प्रान्तीय भाषा परीक्षा (प्रारम्भिक तथा प्रवेश परीक्षा), राष्ट्रभाषा महाजनी प्रवेश, राष्ट्रभाषा बातचीत, राष्ट्रभाषा आलेखन कोविद।

परिचय उर्दू (पर्याप्त संख्या न होनेके कारण उसको अब हटा दिया गया है।)

राष्ट्रभाषा आलेखन कोविद परीक्षामें अंकगणित, समाजशास्त्र तथा विज्ञान—ये तीन अतिरिक्त ऐच्छिक विषय रखे गए थे। इनमें गत वर्षोंमें राजस्थानसे परीक्षार्थी बैठे थे। कोविदमें प्राचीन प्रश्न एक और अतिरिक्त विषय ऐच्छिक रूपमें रखा गया था जो अब बन्द है।

सन् १९३७ से लेकर फरवरी ६२ तक परीक्षार्थियों, परीक्षा-केन्द्र तथा प्रचारकोंका उन्नति-क्रम नीचे लिखे अनुसार है —

प्रचार परीक्षाओंका उन्नति क्रम

वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	केन्द्र	प्रचारक	वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	केन्द्र	प्रचारक
१९३७	६११	१८	७	१९५१	१७७९७७	१७७७	२९१७
१९३८	२४८६	७५	६३	१९५२	१३८४२२	१९०६	३४३४
१९३९	६८४९	१४०	१४१	१९५३	१२७३४०	१९७०	४०१६
१९४०	१५९६५	२५०	२२६	१९५४	१३२१५८	१९७०	४३८४
१९४१	२७३८८	४२८	२९१	१९५५	१४०१९१	२०२०	४८४८
१९४२	१५६५८	६४२	३५२	१९५६	१७०९९९	२३२८	५१६२
१९४३	५०२६७	६७२	३९९	१९५७	१५१४९०	२३३०	५४७१
१९४४	४४३४५	७४०	४२०	१९५८	१७११४९	२३६२	५८९३
१९४५	४७८७७	७९२	६२१	१९५९	२०७२७६	२४४८	६३६५
१९४६	४४७०१	८२८	८७५	१९६०	२२८४८३	३२५५	६९४०
१९४७	७००१५	१०८६	११६८	१९६१	२६१२१५	३६१८	७२६२
१९४८	१२०९८६	१२९४	१४१४	१९६२	२४६७८	३९४४	७५६२
१९४९	१४३३१९	१५६०	१८१४				
१९५०	१८५७४४	१७२१	२३४१				

अगस्त १९६२ तक

राष्ट्रभाषा कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न एवं राष्ट्रभाषा आचार्यमें अब तक (१९६२ सितम्बर) जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका ब्योरा इस प्रकार है :—

सन्	रा. भा. कोविद	रा. भा. रत्न	राष्ट्रभाषा आचार्य
१९३७	२८		
१९३८	८८		
१९३९	४१३		
१९४०	६२६		
१९४१	८६१		
१९४२	३७८		
१९४३	१९९५		
१९४४	१०५८	७९	
१९४५	१०३०	५६	
१९४६	९१९	५९	
१९४७	१६०६	३८	
१९४८	२८५१	६४	
१९४९	५३१९	१०९	
१९५०	८४६१	३०२	
१९५१	९९५७	५४०	
१९५२	८५३७	४५६	
१९५३	९२४४	७५५	
१९५४	१०००७	४१६	
१९५५	१०६०४	८८८	
१९५६	१०६४९	१०१३	
१९५७	१२६५९	२१४१	
१९५८	११०६३	१३७२	
१९५८	१२३९३	१२४२	२६
१९६०	१४२९०	१४१६	२८
१९६१	१५४०३	११८३	१७
१९६२	१४५१७	९३७	२५
	१६५०५५	१२१३९	९६

शिक्षण केन्द्र, राष्ट्रभाषा विद्यालय एवं महाविद्यालय

सन् १९५२ के पूर्व हिन्दीतर प्रान्तोंमें विभिन्न स्थानोंपर राष्ट्रभाषा-शिक्षकों एवं प्रमाणित प्रचारकों द्वारा पढ़ाईका प्रबन्ध होता रहा था। पर सन् १९५२ से ऐसे सभी वर्गोंको तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया गया। जहाँ प्रारम्भिकसे परिचय तकके वर्गोंकी व्यवस्था होती है उन्हें 'राष्ट्रभाषा-शिक्षण' केन्द्र; जहाँ कोविद तककी पढ़ाईकी व्यवस्था होती है उन्हें 'राष्ट्रभाषा विद्यालय' और जहाँ रत्न तककी पढ़ाईकी व्यवस्था होती है उन्हें 'राष्ट्रभाषा-महाविद्यालय' माना गया। तीनोके लिए अलग-अलग शर्ते निश्चित कर उनकी नियमावली ता. १५-१२-५२ की परीक्षा-समितिकी बैठकमें स्वीकृत की गई। नियमोंके अन्तर्गत आनेवाले सभी राष्ट्रभाषा शिक्षण केन्द्र, विद्यालय एवं महाविद्यालयोको समितिसे सम्बद्ध करनेकी योजना स्वीकृत की गई।

इसके अलावा प्रान्तोंको अपनी-अपनी ओरसे एक संगठित और नियमित महाविद्यालयको चलानेके लिए प्रोत्साहित किया गया। ऐसे महाविद्यालयोंको समितिकी ओरसे वार्षिक ५००) रु. तककी सहायता दी जाती है। प्रान्तोंके अन्य महाविद्यालयोंको सात्रिक ५०) रु. की सहायता दी जाती है।

विभिन्न प्रान्तोंमें शिक्षण केन्द्र, विद्यालय एवं महाविद्यालयोंकी संख्यामें आशातीत वृद्धि हुई। इनके द्वारा काफी संख्यामें परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा सम्बन्धी अपना ज्ञान बढ़ा रहे हैं। शिक्षण केन्द्र विद्यालय व महाविद्यालयकी प्रान्तवार संख्या इस प्रकार है:—

सन्	शिक्षण केन्द्र	राष्ट्रभाषा-विद्यालय	महाविद्यालय
१९५२	२७३	२७७	४
१९५३	३२६	३२६	६
१९५४	३४५	३३९	११
१९५५	३४७	३८३	१३
१९५६	४१३	४२५	१७
१९५७	४३०	४४७	२०
१९५८	४५१	४५९	२२
१९५९	४६२	४७४	२७
१९६०	४८२	४९४	३२
१९६१	५०७	५१९	३५
१९६२	५१७	५३४	३६

उपरोक्त संख्या उन्ही शिक्षण-केन्द्र, राष्ट्रभाषा विद्यालय एवं महाविद्यालयोंकी है, जो समितिसे सम्बद्ध हुए है। इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्यामें शिक्षण केन्द्र, विद्यालय और महाविद्यालय चल रहे हैं, जो अपने-अपने प्रान्तोसे सम्बद्ध है; पर समितिसे अभी तक सम्बद्ध नहीं हुए हैं।

भारत सरकार द्वारा समितिकी परीक्षाओंको मान्यता

भारत सरकारके शिक्षा-मन्त्रालय, गृहमन्त्रालय, आकाशवाणी, रेलवे तथा रक्षा-मन्त्रालय द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी कोविद परीक्षा निम्नलिखित रूपमें मान्य है:—

शिक्षा-मंत्रालय

भारत सरकारके शिक्षा-मन्त्रालयने समितिकी राष्ट्रभाषा परिचय, राष्ट्रभाषा कोविद तथा राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षाको क्रमशः मैट्रिक, इण्टर तथा बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता प्रदान की है।

गृह-मंत्रालय

केन्द्रीय सरकारके किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्द्धारित की गई है, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित "कोविद" परीक्षा उत्तीर्ण करनेवालेको हिन्दी योग्यता सम्बन्धी अन्य परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

रेलवे-मंत्रालय

केन्द्रीय सरकारके रेल विभागीय प्रशिक्षण विद्यालयोके शिक्षार्थियों तथा प्रोबेशनर अधिकारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्द्धारित की गई है—"कोविद" परीक्षा उत्तीर्णको हिन्दी योग्यता सम्बन्धी अन्य कोई परीक्षा देनेसे मुक्त किया गया है।

सूचना तथा प्रसार मंत्रालय

ऑल इण्डिया रेडियो (सूचना तथा प्रसार मन्त्रालय) द्वारा "कोविद" परीक्षा ऑल इण्डिया रेडियोके कर्मचारियोंके लिए विभागीय परीक्षाके रूपमे मान्य की गई है।

रक्षा-मंत्रालय

भारत सरकारके रक्षा-मन्त्रालय (Defence-Ministry) द्वारा सैनिकोंके लिए समितिकी "कोविद" परीक्षा विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य है।

विभिन्न राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं द्वारा मान्यता

बम्बई

'राष्ट्रभाषा कोविद' उत्तीर्ण बम्बई-सरकारकी 'हिन्दी शिक्षक सनद', (एच. एस. एस.) (जूनियर) तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' उत्तीर्ण (सीनियर) परीक्षामें बैठ सकते हैं।

असम

"परिचय" उत्तीर्ण, असममें ट्रेनिंग लेकर सीधा हाईस्कूलमें शिक्षक बन सकता है। कोविद उत्तीर्ण असममें किसी प्रकारकी ट्रेनिग लिए बिना शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत वेतनपर हिन्दी शिक्षक बन सकता है।

बंगाल

कलकत्ता विश्वविद्यालयके ऐसे परीक्षार्थी जो हिन्दीके अतिरिक्त अन्य विषयोंमें बी. ए. हैं " राष्ट्र-भाषा-कोविद " उत्तीर्ण करनेपर हिन्दी लेकर एम. ए. कर सकते हैं।

उत्कल

उत्कलमें " राष्ट्रभाषा-रत्न " परीक्षाको सरकार द्वारा मान्य संस्कृतकी 'आचार्य' परीक्षाके समकक्ष माना गया है। " राष्ट्रभाषा-रत्न " उत्तीर्ण परीक्षार्थीका वेतन-क्रम उत्कल सरकारने ७० रु. से १४० रु. तक स्वीकृत किया है।

राजस्थान

राजस्थान सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, समितिकी " कोविद " परीक्षा मान्य की गई है।

" राष्ट्रभाषा-कोविद " तथा " राष्ट्रभाषा-रत्न " उत्तीर्ण क्रमशः राजपूताना विश्वविद्यालयकी, हाईस्कूल तथा इण्टरमीजिएट परीक्षामें केवल अँग्रेजी विषय लेकर सम्मिलित हो सकते है। '(यह सुविधा केवल राजस्थानकी सीमामें रहनेवालोंके लिए है।')

समितिकी 'कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाएँ राजपूताना विश्वविद्यालयकी 'साहित्य-विनोद' तथा 'साहित्य विशारद' परीक्षाके समकक्ष मान्य की गई है।

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, " परिचय " परीक्षा मान्य की है।

पंजाब

पंजाब सरकारने सरकारी कर्मचारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति या स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की है, समितिकी कोविद परीक्षा मान्य की है।

पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा 'कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षा उसकी 'रत्न' तथा 'भूषण' के समकक्ष मान्य है।

काश्मीर

जम्मू और काश्मीर विश्वविद्यालयने समितिकी कोविद और 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा उक्त विश्वविद्यालय द्वारा संचालित क्रमशः 'रत्न' तथा 'भूषण' परीक्षाके समकक्ष मान्य की है।

मैसूर

मैसूर सरकारने समितिकी प्रवेश परीक्षा सरकारी कर्मचारियोंके लिए (डिपार्टमेण्टल) विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य की है।

उत्तर-प्रदेश

आगरा विश्वविद्यालयकी क. मु. हिन्दी भाषा-विज्ञान विद्यापीठ द्वारा संचालित डिप. लिट. वर्गमें इण्टर एवं कोविद उत्तीर्ण हिन्दीतर परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकते हैं।

संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा कोविद तथा राष्ट्रभाषा-रत्न उत्तीर्ण हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी क्रमशः 'विशारद' तथा 'साहित्य-रत्न' परीक्षामें सम्मिलित हो सकते हैं।

एस. एन. डी. टी. महिला विद्यापीठ (बम्बई) की बी. टी. परीक्षामें 'कोविद' उत्तीर्णको हिन्दी विषय लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

केन्द्रीय राष्ट्रभाषा महाविद्यालय तथा नागा विद्यार्थियोंकी शिक्षा

समितिने जबसे राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षाका आयोजन किया है, तबसे जो राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर चल रहा था, वह सन् १९४३ में बन्द हो गया। समितिकी ओरसे केन्द्रीय महाविद्यालय चला। इसकी आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, अतः पुनः सन् १९५३ में राष्ट्रभाषा महाविद्यालयका कार्य आरम्भ किया गया। इस महाविद्यालयमें श्री रसूल अहमद अबोध प्रधान अध्यापक है। श्री शिवराम शर्मा (द. भा. हिन्दी प्रचार सभाके अनुभवी शिक्षक सहायक प्रधान अध्यापक है। इसमें राष्ट्रभाषा रत्न तथा अध्यापन विशारद तककी पढ़ाईकी व्यवस्था है। इस महाविद्यालयमें नागा विद्यार्थियोंको हिन्दीकी शिक्षा देनेका भी विशेष प्रबन्ध किया गया है। इसके लिए समितिको काफी व्यय करना पड़ता है। प्रतिवर्ष लगभग १०–१२ विद्यार्थी नागा प्रदेशसे बुलाये जाते है। वे यहाँ रहकर हिन्दीका अध्ययन करते हैं। उन्हें समिति अपनी ओरसे छात्रवृत्ति देती है। ये विद्यार्थी राष्ट्रभाषाकी शिक्षा प्राप्त कर अपने प्रदेशमें चले जाते है और वहाँ जाकर हिन्दीके पढ़ानेका कार्य करते हैं। इस प्रकार अब तक यहाँसे ५ बैच शिक्षा पाकर गए हैं। उनमेंसे कुछ विद्यार्थियोंने अपने प्रदेशमें जाकर काम भी शुरू कर दिया है।

समितिकी 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' योजनाके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक प्रान्तीय समिति द्वारा महाविद्यालय चलाया जाए। इसके लिए प्रत्येक प्रान्तको केन्द्रीय समिति प्रतिवर्ष रु. ५००) का अनुदान देती है। इसके अतिरिक्त जो भी अन्य महाविद्यालय चलते हों उन्हें सम्बद्ध होनेपर प्रतिसत्र रु. ५० की सहायता देती है। इसका विस्तारपूर्वक विवरण अन्यत्र दिया गया है।

राष्ट्रभाषा शिविर तथा प्रान्तीय शिविर योजना

समितिकी ओरसे समय-समयपर अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्रभाषा शिविरका आयोजन किया जाता है। इसमें सभी प्रान्तोंके कार्यकर्ता आमन्त्रित किए जाते हैं और उन्हें शिविरमें चलाए जानेवाले प्रशिक्षण वर्गोंका लाभ दिया जाता है।

सन् १९४६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा सर्वप्रथम शिविर आयोजित किया गया। यह शिबिर तीन महीनों तक चलाया गया। इसके बाद सन् १९५८ में वर्धामें दूसरे राष्ट्रभाषा शिबिरका

आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न प्रान्तोंसे ८ कार्यकर्ताओंने भाग लिया था। सन् १९६१–६२ में तीसरा राष्ट्रभाषा शिविर वर्धामें आयोजित किया गया; जिसमें १२ व्यक्ति विभिन्न प्रान्तोंसे आए थे। वर्धा बहुत दूर पड़नेके कारण यहाँ आकर शिविरमें भाग लेना कइयोंको कठिन मालूम देता है, अतः समितिने शिविरके आयोजनको प्रान्तोंमें भी चलाया है। प्रत्येक प्रान्तको यह सुविधा दी है, कि वह अपने प्रचारकों एवं केन्द्र-व्यवस्थापकोंका शिविर आयोजित करे। उसमें जो व्यय होगा उसका ५० प्रतिशत अंश समिति वहन करती है। इस सुविधाका लाभ उठाकर प्रत्येक प्रान्तमें राष्ट्रभाषा शिविर आयोजित किए जाते है। इस योजनासे कार्यकर्ताओंको विशेष लाभ हुआ है। हिन्दी विषयक समस्याओंकी विषद रूपसे शिबिरोंमें चर्चा होती है तथा अधिकारी व्यक्तियोंके भाषण रखे जाते हैं। उससे भी शिविरार्थी लाभान्वित होते हैं।

प्रकाशन योजना

समितिकी ता. १–२–१९३८ की बैठकके अनुसार अहिन्दी-भाषी प्रान्तोंके अनुकूल रीडरें तैयार करनेकी दृष्टिसे दो व्यक्तियोंको मनोनीत किया गया—श्री मुरलीधर श्रीवास्तव तथा श्री रामानन्द शर्मा। बादमें श्री रामानन्द शर्माने उस कार्यको आगे बढ़ाया। निम्नलिखित पुस्तकोंकी पाण्डुलिपि तैयार की गई :—

(१) गुलदस्ता, (२) तलाशे हक (महात्मा गाँधीकी जीवनी), (३) मीरा पदावली, (४) चन्द्रगुप्त, (५) चलती हिन्दी, (६) असम-दर्शन, (७) हिन्दी प्रचार सग्रह।

उपरिलिखित पाण्डुलिपियोंको पुस्तकाकार करनेके लिए एक समिति गठित की गई जिसके निम्न-लिखित सदस्य थे :—

सर्वश्री—(१) हृषीकेश शर्मा, (२) रामेश्वरदयाल दुबे, (३) परमेष्ठीदास जैन, (४) नाना धर्माधिकारी, (६) श्रीमन्नारायण अग्रवाल, (६) हरिहर शर्मा।

इस तरहसे १९३८ से प्रकाशन विभाग क्रियाशील बना और निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की गई :—

(१) गुलदस्ता भाग २, (२) चलती हिन्दी, (३) राष्ट्रभाषाकी पहली, दूसरी, तीसरी पुस्तक, (४) राष्ट्रभाषा प्रारम्भिक बोधिनी, (५) कहानी संग्रह भाग १, २, ३ (६) राष्ट्रभापा प्रचार सर्व संग्रह, (७) हाथकी लिखावट, (८) सरल रचना और पत्र लेखन।

प्रकाशनका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और ता. ३०–६–१९३९ तक ऊपर दी हुई पुस्तकोंका पुनर्मुद्रण हुआ। 'हाथकी लिखावट' नामक पुस्तकका नाम बदल कर 'नेताओंकी कलमसे' कर दिया गया। इसके अलावा रा. भा. प्र. सर्व संग्रह, सबकी बोली (नागरी तथा उर्दू लिपिमें) और हिन्दी-मराठी स्वबोधिनी नामक पुस्तकें भी प्रकाशित की गई।

इसके बाद द्वितीय महायुद्धके परिणामस्वरूप परिस्थितियोंमें अनपेक्षित परिणामके कारण कागज आदिके अभावसे प्रकाशन-कार्य कुछ रुक-सा गया; फिर भी समितिकी परीक्षाओंकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती गई और प्रकाशन कार्य बराबर चलता रहा।

द्वितीय महायुद्धके बाद समितिने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की :—

(१)	रहीमके दोहे	सन् १९४४
(२)	मुहावरे और कहावतें	सन् १९४५
(३)	उड़ते जुगनू	१९४७
(४)	पाँच एकांकी	१९४७
(५)	राष्ट्रभाषाका सरल व्याकरण भाग १, २,	१९४८
(६)	साहित्यका साथी	१९४८

प्रकाशन-विभागको और भी सक्रिय और उपयोगी बनानेकी दृष्टिसे समितिने सन् १९५० में एक साहित्य निर्माणकी योजना बनाई। इस योजनाके प्रेरकास्त्रोत महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायनजी थे। इस योजनाके अन्तर्गत निम्नलिखित छह प्रकारके ग्रन्थ प्रकाशित किए जाना निश्चित हुआ—(१) कोश ग्रन्थ, (२) स्वयं शिक्षक ग्रन्थ, (३) व्याकरण ग्रन्थ, (४) साहित्य-इतिहास ग्रन्थ, (५) कविता संग्रह, (६) पंचरत्न ग्रन्थ।

इनमेंसे क्रमशः निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए :—

(१) संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश—संपादक : राहुल सांकृत्यायन।
(२) फ्रेंच स्वयं शिक्षक—डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार।
(३) भारतीय वाङमय भाग १, २, ३।
(४) मराठीका वर्णनात्मक व्याकरण—न. चि. जोगलेकर।
(५) धरतीकी ओर (कन्नड उपन्यास)—शिवराम कारन्त।
(६) सोरठ तेरा बहता पानी—स्व. झवेरचन्द मेघाणी।
(७) लोकमान्य तिलक—श्री भी. गो. देशपाण्डे।
(८) धूमरेखा—गुलाबदास बोकर व धनसुखलाल महेता।
(९) मिर्जा गालिब (जीवनी व साहित्य)—रसूल अहमद 'अबोध'।
(१०) भारत-भारती (तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगला, ओड़िया, मणिपुरी व असमिया।)
(११) राज्योपनिषद—श्री न. वि. गाडगिल।

जैसे-जैसे राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंकी लोकप्रियता बढ़ती गई और परीक्षार्थी संख्यामें वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे पाठ्यक्रमिक पुस्तकोंका प्रणयन व पुनः मुद्रण-प्रकाशन होता गया और अब तक समिति लगभग ७५ पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। समितिके प्रकाशनोंकी ८५ लाखसे अधिक प्रतियाँ अब तक पाठकोंके हाथोंमें जा चुकी हैं।

प्रकाशन कार्यकी व्यवस्थाको और भी उत्तम बनानेकी दृष्टिसे सन् १९५७ से समितिने प्रकाशन विभागके अन्तर्गत पुस्तक विक्री विभाग व कागज भण्डार विभागको भी सम्मिलित कर दिया है। श्री मदनमोहन शर्मा एम. ए. साहित्यरत्नकी देखरेखमें यह कार्य प्रगति कर रहा है।

राष्ट्रभाषा प्रेस

प्रचार, प्रसार एवं प्रकाशनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताको देखकर समितिके लिए यह अत्यन्त जरूरी था कि उसका एक निजी प्रेस हो। समितिकी स्थापनासे लेकर तो सन् १९४६ तक समिति अपने प्रकाशन बाहरसे छपवाती थी। परन्तु उक्त कमीको पूरा करनेके लिए समितिकी दिनांक २२-५-४६ की बैठकमें यह तय हुआ कि एक प्रेस खोला जाए। तदनुसार उक्त कार्यके लिए २५००० रु. की राशि मंजूर की गई। जून सन् १९४६ में प्रेसका उद्घाटन हुआ।

धीरे-धीरे प्रेसमें अद्यतन साधन जुटाये गए। ट्रेडल, मशीन तो थी ही उसके बादमें सिलण्डर मशीन खरीदी गई। आज राष्ट्रभाषा प्रेसमें करीब १०७९८९ रुपयेकी मशीनें हैं, जिनमें इलेक्ट्रिक मोटर्स, स्टिचिंग मशीन, कटिंग मशीनका भी समावेश है। प्रारम्भमें राष्ट्रभाषा प्रेसमें कुल ५ व्यक्ति काम करते थे। अब उनकी संख्या बढ़कर ४४ हो गई है।

समितिको निजी प्रेससे एक फायदा यह भी हुआ कि उसके प्रकाशन शीघ्र एवं मितव्ययी दरमें प्रकाशित होते गए।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको बल देनेके लिए समितिने अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका आयोजन किया है। यह सम्मेलन समितिके कार्यक्षेत्रमें आई हुई प्रान्तीय समितियों द्वारा बारी-बारीसे बुलाया जाता है। जिस प्रान्तमें यह होता है, वहाँ इससे प्रेरणा मिलती है। दूसरा लाभ यह है कि दूर-दूर तक फैले हुए समितिके कार्यकर्ता, प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक आदि एक स्थानपर एकत्रित होते हैं और राष्ट्र-भाषा विषयक समस्याओंपर चिन्तन करते हैं। इस सम्मेलनसे एक प्रान्तके राष्ट्रभाषा प्रचारकोंको दूसरे प्रान्तोंके प्रचारकोंसे सम्पर्क स्थापित करनेका अवसर मिलता है और विचारोंके आदान-प्रदानसे अपने कार्यको सुगठित करनेमें सहायता एवं प्रोत्साहन मिलता है। वैसे तो राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन १९५० से विधिवत् होने लगा लेकिन इसका प्रारम्भ छोटे रूपमें काँग्रेस अधिवेशनोंके अवसरपर रा. भा. प्र. समितिके कार्यकर्ताओं-को सम्मिलित बैठकोंके रूपमें कभी-कभी होता था। फैजपूर एवं हरिपुरा काँग्रेसके अधिवेशनोके अवसरपर इस प्रकारकी बैठकें श्री जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामें हुई थी। अतबतक ११ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुए हैं, इनका विवरण नीचे लिए अनुसार हैं :—

सन्	सम्मेलन	स्थान	उद्घाटन कर्ता	अध्यक्ष
१९४९	पहला	वर्धा	पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र	सेठ गोविदन्दास
१९५०	दूसरा	अहमदाबाद	स्व. बाबा राघवदास	मुनि जिनविजयजी
१९५१	तीसरा	पूना	श्री न. वि. गाडगीलजी	श्री वियोगी हरि
१९५२	चौथा	बम्बई	श्री रामदेव पोद्दार	श्री कन्हैयालाल मुन्शी
१९५३	पाँचवाँ	नागपुर	श्री श्रीप्रकाश	श्री न. वि. गाडगील
१९५५	छठा	पुरी	—	डॉ. बालकृष्ण वि. केसकर
१९५६	सातवाँ	जयपुर	श्री ब. न. दातार	सेठ गोविन्ददास

सन्	सम्मेलन	स्थान	उद्घाटन कर्ता	अध्यक्ष
१९५८	आठवाँ	भोपाल	देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद	डॉ. के. एल. श्रीमाली
१९५९	नवाँ	नई दिल्ली	श्री जवाहरलाल नेहरू	श्री अनन्तशयनम् अयंगार
१९६१	दसवाँ	तिनसुकिया	श्री जगजीवनराम	डॉ. हरेकृष्ण महताब
१९६२	ग्यारहवाँ	वर्धा	श्री जवाहरलाल नेहरू	भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गाँधी पुरस्कार

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ। उस अवसरपर बाबा राघवदास उपस्थित थे। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि अहिन्दी भाषा-भाषी विद्वानको उसके हिन्दी साहित्यके निर्माणके उपलक्ष्यमें १५०१) रु. का महात्मा गाँधी पुरस्कार दिया जाए। यह प्रस्ताव बड़े हर्ष और उत्साहके साथ स्वीकृत किया गया। आजतक जिन महानुभावोंको यह पुरस्कार अर्पित किया गया है, उनके नाम नीचे अनुसार हैं:—

महात्मा गाँधी पुरस्कार प्राप्त-कर्ता

सन्	सम्मेलन स्थान	पुरस्कार प्राप्त-कर्ता
१९५१	पूना	आचार्य क्षितिमोहन सेन
१९५२	बम्बई	महर्षि श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
१९५३	नागपुर	स्व. बाबूराव विष्णु पराड़कर
१९५५	पुरी	आचार्य विनोबा भावे
१९५६	जयपुर	प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी
१९५८	भोपाल	पं. संतराम, बी. ए.
१९५९	दिल्ली	श्री काकासाहब कालेलकर
१९६१	तिनसुकिया	श्री अनन्तगोपाल शेवड़े

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनको थैली समर्पित

समितिको उसके प्रारम्भसे ही राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनका मार्गदर्शन एवं प्रेरणाप्रद बल प्राप्त होता रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रबल उन्नायक, हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्राण और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके वे सबल प्रेरणा-स्रोत थे। इनके लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह हिन्दीके लिए एक महान देनके रूपमें सिद्ध हुआ है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रांगणमें जब राजर्षि आते थे तो कहा करते थे कि मैं तो अपने ही घरमें हूँ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाने राजर्षिकी सेवामें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन, दिल्लीके नवें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९५९ में २५००१ रुपयोंकी निधि समर्पित की। यह निधि राजर्षि-

की हिन्दीके प्रति महान् सेवाओंके सम्मानस्वरूप समितिके केन्द्र-व्यवस्थापकों, प्रचारकों एवं राष्ट्रभाषा प्रेमियों आदिने एकत्रित की थी। राजर्षिने यह निधि राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको हिन्दी कार्यकी अभिवृद्धि हेतु दे दी।

श्री माखनलालजी चतुर्वेदीके ये वाक्य सचमुच अक्षरशः सत्य हैं कि हिन्दीके एक युगके इतिहासका नाम राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन है। हिन्दीका भावी रूप कैसे निखरेगा इस सम्बन्धमें राजर्षिके निम्न-लिखित विचार बहुत ही मननीय हैं :—

"राष्ट्रभाषाकी नींव वह हिन्दी है जिसकी परम्परा प्राचीन कालसे होते हुए चन्द, सूर, तुलसी, कबीर, रसखान, रहीम, जायसी, हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और महावीर प्रसाद द्विवेदीके हाथोंसे हमें मिली है और जो मुख्य रूपमें उत्तर भारतके प्रदेशोंमें लिखी-पढ़ी जाती है। किन्तु इस राष्ट्रभाषाका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें कुछ भिन्नता रखेगा। जिस प्रकार हिन्दी भाषापर बहुत कालसे अरबी और फारसीका असर पड़ा है, उसी प्रकार जैसे जैसे अन्तरप्रान्तीय व्यवहारोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग बढ़ेगा, वैसे-वैसे उस भाषाके विकासमें प्रान्तीय भाषाओंका असर पड़ना अनिवार्य है।

साहित्य और राष्ट्रीयता दोनों की दृष्टिसे यह आदान-प्रदान हिन्दीको समृद्धि शाली बनाएगा।"

समाचार-भारती

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके नवें अधिवेशनके समय जो दिल्लीमें 'सन् १९५५ में हुआ,उसमें समाचार भारती' (टेलीप्रिन्टर) के सम्बन्धमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव किया गया जो इस प्रकार है:—

"देशमे बड़े पैमानेपर हिन्दी समाचार संस्थाकी आवश्यकता तो बहुत दिनोंसे महसूस की जा रही थी, पर हालमें "यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया" समाचार संस्था बन्द हो गई और लोकतन्त्रके विकासके लिए एकसे अधिक समाचार संस्थाका होना आवश्यक है, विशेषकर हिन्दीकी समाचार संस्थाका, इसलिए राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका यह अधिवेशन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे अनुरोध करता है कि वह हिन्दीकी अन्य संस्थाओंके सहयोगसे राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारोंको सही तौरपर प्रस्तुत करनेवाली एक प्रमुख हिन्दी समाचार संस्थाकी स्थापनाके लिए आवश्यक कदम उठाए। इस समाचार संस्था द्वारा प्रसारित होने-वाले समाचारोंका मुख्य माध्यम तो हिन्दी हो पर जहाँ सम्भव हो वहाँ प्रादेशिक भाषाओंके पत्रोंको उनकी भाषाके माध्यमसे समाचार दिए जाएँ।"

समितिने इस प्रस्तावको लक्ष्यमें रखकर इस कार्यको सम्पादित करनेके लिए प्रारम्भिक कार्य किया। श्री इन्दूरकरजीने इस कार्यमें दिलचस्पी दिखाई। समितिने इसके लिए प्रारम्भिक व्यय भी किया। अब समाचार-भारती रजिस्टर्ड संस्था बन गई है और इसको अनेक राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकारसे सहयोगका आश्वासन मिल चुका है। विश्वास है, यह संस्था शीघ्र ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी और एक अभावकी पूर्ति करेगी।

हिन्दी-दिवस

सन् १९५३ में अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका ५ वाँ अधिवेशन नागपुरमें श्री काका साहब गाडगीलकी अध्यक्षतामें हुआ। इस अवसरपर सम्मेलनने यह चिन्ता व्यक्त की कि सन् १९६५ तक

हिन्दीका प्रचार-प्रसार और उसकी समृद्धि योजनाबद्ध रूपमें की जाए। अतः केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों एवं जनताका ध्यान आकर्षित करनेकी दृष्टिसे यह निर्णय किया गया कि ता. १४ सितम्बर–जिस दिन विधानमें १९४९ में हिन्दीको राजभाषाके रूपमें स्वीकृत किया गया था, स्मृतिके रूपमें यह दिवस "हिन्दी-दिवस" के रूपमें प्रतिवर्ष समग्र भारतमें मनाया जाए। तबसे यह दिवस सारे भारतमें न केवल राष्ट्रभाषा प्रचार संस्थाओं ही में बल्कि अनेक शिक्षण संस्थाओं द्वारा बड़े उत्साहसे मनाया जाता है। इस दिवसपर हिन्दीके विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसका भी हमारे राष्ट्रीय दिवसोंकी तरह महत्व बढ़ रहा है। जनतामें इसके कारण जागृति हो रही है।

पदवीदान समारोह

समिति, कोविद परीक्षा तकके प्रमाण-पत्रोंको परीक्षा केन्द्रोंको भेज देती है। वे इनके वितरण-का प्रबन्ध करते हैं। समिति अपनी ओरसे 'राष्ट्रभाषा रत्न' तथा 'रा. भा. आचार्य' परीक्षामें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोको रत्नका उपाधि-पत्र देनेके लिए पदवीदान समारोहका आयोजन करती है। यह समारोह अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर किया जाता है।

अबतकके पदवीदान समारोहका विवरण नीचे लिखे अनुसार है:—

राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर दीक्षान्त भाषण-कर्ता

अधिवेशन	सन्	स्थान	दीक्षान्त भाषण-कर्ता
पाँचवाँ	१९५३	नागपुर	पं. रविशंकर शुक्ल, तत्कालीन मुख्यमन्त्री मध्य प्रदेश।
छठा	१९५४	पुरी	श्री राधानाथ रथ तत्कालीन शिक्षा मन्त्री उत्कल राज्य
सातवाँ	१९५६	जयपुर	देवीलाल तिवारी
आठवाँ	१९५८	भोपाल	श्री शंकरदयाल शर्मा, शिक्षा मन्त्री, मध्यप्रदेश।
नवाँ	१९५९	नई दिल्ली	अध्यक्ष—सरदार हुकुमसिंह, अध्यक्ष लोक सभा तथा श्री वियोगी हरिजीने दीक्षान्त भाषण दिया।
दसवाँ	१९६०	तिनसुकिया	डॉ. सम्पूर्णानन्दजी, वर्तमान राज्यपाल, राजस्थान
ग्यारहवाँ	१९६२	वर्धा	श्रीमती हंसाबहन मेहता।

रजत जयन्ती समारोह

राष्ट्रभाषाका सेवा-कार्य करते हुए समितिको २५ वर्ष पूरे हुए, अतः उसने बड़े पैमानेपर रजत जयन्ती समारोहका आयोजन किया। इसके अन्तर्गत ठोस साहित्य प्रकाशन का भी कार्य निश्चित हुआ है।

कविश्री माला

समितिने आयोजन किया है कि देशकी १४ भाषाओंके मूर्द्धन्य कवियोंकी रचनाओंके अंश हिन्दी अनुवाद सहित उनकी साहित्य साधनाका परिचय देते हुए पुस्तकाकार दिए जाएँ। यह कार्य अपने आपमें

एक बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इससे सभी भारतीयभाषाओंमें न केवल सौहार्द पैदा होगा बल्कि उनमें समादरकी भावना जागृत होगी। इस प्रकार २५ पुस्तकें बनेंगी। उन्हें कवि-श्रीमालाका नाम दिया गया है। इस कविश्रीमालामें निम्नलिखित भाषाएँ तथा उनके निम्नलिखित कवियोंको स्थान दिया गया है :—

(१)	असमिया	रघुनाथ चौधुरी
(२)	,,	नलिनीबाला देवी
(३)	मणिपुरी	कमलसिंह लमाबम
(४)	बंगला	सत्येन्द्र दत्त
(५)	,,	काजी नजरुल इस्लाम
(६)	ओड़िया	गंगाधर मेहेर
(६)	,,	कालिन्दीचरण पाणिग्राही
(८)	मराठी	कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'
(९)	,,	यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर
(१०)	गुजराती	दयाराम
(११)	,,	सुन्दरम्
(१२)	सिन्धी	किशिनचन्द 'बेवसि'
(१३)	कश्मीरी	परमानन्द
(१४)	पंजाबी	भाई वीरसिंह
(१५)	,,	अमृता प्रीतम
(१६)	तेलुगु	तिरुपति–वेंकट कवुलु
(१७)	,,	काटूरि वेंकटेश्वरराव और पिंगल लक्ष्मीकान्तम्
(१८)	तमिल	सुब्रह्मण्य भारती
(१९)	,,	नामक्कल रामलिंगम पिल्लै
(२०)	कन्नड़	दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे
(२१)	,,	'कुवेम्पु'
(२२)	मलयाळम्	वल्लतोळ नारायण मेनन
(२३)	,,	जी. शंकर कुरुप
(२४)	उर्दू	मुहम्मद इक़बाल
(२५)	हिन्दी	जयशंकर प्रसाद

परिवार ग्रन्थ

समितिने अपने निष्ठावान कार्यकर्ताओं, केन्द्र-व्यवस्थापक एवं प्रचारकोंका सचित्र परिचय देनेके हेतुसे परिवार ग्रन्थ भी प्रकाशित किया है।

तीन मूर्तियोंकी स्थापना

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके निर्माणमें तीन महान व्यक्तियोंका हाथ रहा है, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, स्व. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा स्व. सेठ जमनालालजी बजाज। समिति अपने २५ वर्षके सेवा-कार्यके पश्चात् अपने इन महान मार्गदर्शकोंका श्रद्धाके साथ स्मरण करती है, जिनकी प्रेरणा सदा समितिको मिलती रही है। रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर इन तीनोंकी मूर्तियाँ स्थापित करनेका निर्णय किया गया था। इसके अनुसार महात्मा गाँधीजीकी आदम कद कांस्य प्रतिमाँ समितिके प्रांगणमें महाविद्यालयके सामने स्थापित की गई है। इसका उद्घाटन वर्तमान गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीने ता. २६–५–६२ को किया। स्व. बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनकी बस्ट प्रतिमा परीक्षा भवनके प्रांगणमें एक ओर बाँएँ कोनेमें स्थापित की गई है। इसका अनावरण ता. २८–५–६२ को सेठ गोविन्ददासजीने किया। उसके ठीक बगलमें दूसरे कोनेमें सेठ जमनालालजी बजाजकी बस्ट प्रतिमा स्थापित की गई है। उसका उद्घाटन मध्यप्रदेशके राज्यपाल श्री ह. वि. पाटस्करजीने ता. २७–५–६२ को किया।

राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी

रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर समितिने राष्ट्रभाषा प्रदर्शनीका बृहत् आयोजन किया था। इसमें समितिके अब तकके कार्यका परिचय चित्रों, चार्टों तथा नक्शोंके द्वारा दिया गया था। प्रत्येक प्रान्तीय समितिने अपनी उपलब्धियों एवं कार्यका परिचय देनेकी दृष्टिसे अपना अपना कक्ष प्रदर्शनीमें रखा था। भारत सरकारके शिक्षा विभाग, हिन्दी निदेशालय, मध्य रेल्वे, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, भाषा संचालन विभाग, मध्यप्रदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, विभिन्न प्रकाशकों आदि बहुतोंने अपने कक्ष सजाए थे। दक्षिण आफ्रिका एवं पूर्वी आफ्रिका आदिके भी कक्ष थे जहाँ समितिका कार्य फैला हुआ है। यह प्रदर्शनी अनेक दृष्टियोंसे सफल रही। इसका उद्घाटन महाराष्ट्र राज्यके तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री यशवन्तरावजी चव्हाणने किया था।

११ वाँ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन

समितिने रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर ११ वाँ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन भी आयोजित किया। उसका उद्घाटन हमारे प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने अपना उद्घाटन सन्देश भेजकर किया और उसकी अध्यक्षता डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादने अपना अध्यक्षीय भाषण टेपरेकार्डके रूपमें भेजकर की। पंडित जवाहरलाल नेहरूने उस अवसरपर जो उद्घाटन सन्देश भेजा, वह बड़ा ही प्रेरणा एवं प्रोत्साहनदायक है। उसे यहाँ अक्षरशः दिया जाता है :—

प्रधान मंत्री भवन
PRIME MINISTER'S HOUSE
NEW DELHI

मुझे अफसोस है कि मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रजत जयन्ती महोत्सव में नहीं आ सकता। मेरी बहुत इच्छा थी वहां जाने की, लेकिन डाक्टरों ने मुझे मना किया कि इस गर्मी के समय में मैं लंबा सफर न करूं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इन २५ वर्षों में जो काम किया है उसको सब लोग जो हिन्दी में दिलचस्पी लेते हैं, जानते हैं और उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। मैं ने इस काम को अकसर देखा है और मुझे बहुत पसंद आया है, विशेषकर समिति ने जो राष्ट्रभाषा का ढंग निकाला है, यानि सादी और सहल हो, वह मुझे खास तौर से पसंद आया है। अकसर आजकल हमारी हिन्दी बहुत कठिन हो गई है जिसको आम लोग नहीं समझते। मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रभाषा समिति की हिन्दी का प्रयोग अधिकतर हो। इससे हिन्दी को भी लाभ होगा और उसके पढ़नेवालों को भी।

हिन्दी एक ही तरह से उन्नति कर सकती है - लोगों को सीखने का मौका दिया जाय बगैर ज़बरदस्ती किये। कोई भाषा भी उन्नति करती है इसी तरह से। राष्ट्रभाषा समिति ने यह मौका बहुतों को दिया और बहुतों ने उससे लाभ उठाया। हमारे लिये यह भाषाओं का प्रश्न एक बहुत कठिन और पेचीदा हो गया है। लेकिन मैं समझता हूं कि हल्के हल्के उसको हल करने का रास्ता दिख रहा है।

मैं पसंद करूं अगर जैसे राष्ट्रभाषा समिति बनी है वैसी ही समितियां उत्तर भारत में बनें जोकि दक्षिण भारत की भाषाओं को सिखायें।

मैं आशा करता हूं कि आपका महोत्सव सफलता से होगा और वह हिन्दी को और बढ़ाने और सिखाने का प्रबन्ध करने में सफल होगा।

जवाहरलाल नेहरू

नई दिल्ली
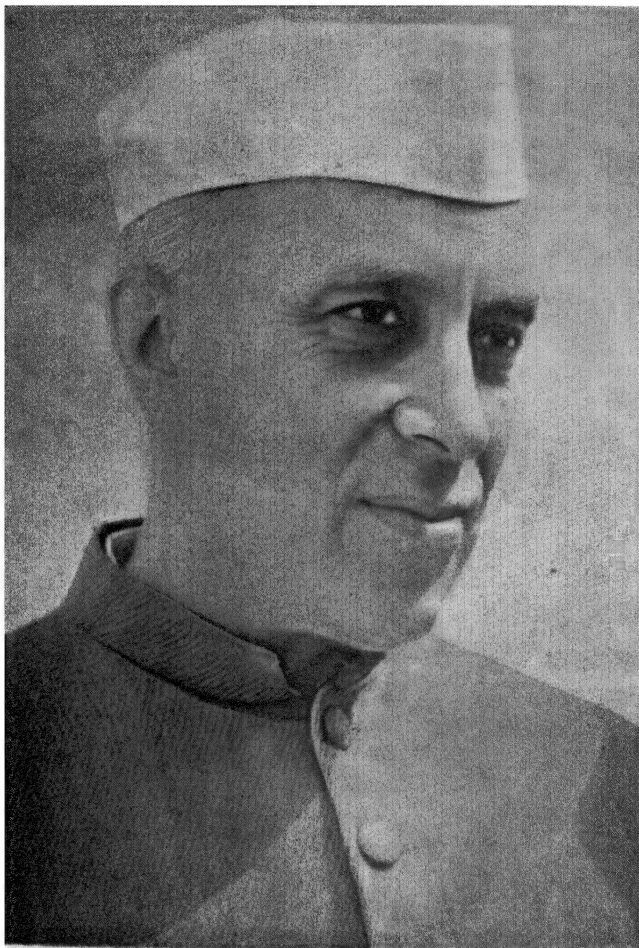
पंडित जवाहरलाल नेहरू

राष्ट्रभाषाके कर्मठ सेवकोंका सम्मान

समिति अपने उन कार्यकर्ताओंका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर करती है, जिन्होंने आजीवन हिन्दीकी सेवा कर राष्ट्रभाषाके कार्यको बल दिया है। अबतक समितिने अपने निम्नलिखित राष्ट्रभाषा सेवकोंका सम्मान किया है :—

पं. हृषीकेशजी शर्मा

श्री शर्माजीका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके सातवें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९५६ में जयपुरमें उनकी दीर्घकालीन सेवाओंके उपलक्ष्यमें किया गया। वे सन् १९१८ में महात्मा गाँधीकी प्रेरणासे राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें प्रवृत्त हुए और इसे अपना जीवन कार्य समझकर लगनपूर्वक कर रहे है। आज वे विदर्भ-नागपुर प्रान्तीय समितिके संचालकके उत्तरदायित्वपूर्ण पदको सम्हाल रहे हैं।

श्री जेठालालजी जोशी

श्री जोशीजीका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके अवसर पर सन् १९५८ में भोपालमें उनकी दीर्घकालीन सेवाओंके उपलक्ष्यमें किया गया। राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने सन् १९२८ में हिन्दी प्रचारका काम प्रारम्भ किया और तबसे वे इस कार्यको लगनपूर्वक अपना जीवन-कार्य समझकर कर रहे हैं। आज वे गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके संचालकके उत्तर-दायित्वपूर्ण पदको सम्हाल रहे हैं।

पं. हरिहरजी शर्मा

श्री शर्माजीका सम्मान रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके ११ वें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९६२ में वर्धामें विशेष रूपसे किया गया। पं. हरिहरजी शर्मा, जिन्हें "अण्णा" नामसे संबोधित किया जाता है, हिन्दीके आदि प्रचारकोंमेंसे हैं। उन्होंने सन् १९१८ में हिन्दी प्रचारके कार्यको गाँधीजीके निर्देशसे शुरू किया। उन्होंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाको जो अपनी सेवाएँ दी हैं, वे चिरस्मरणीय रहेंगी। उन्हें इस समय रु. १००१) की थैली भेट की गई। राष्ट्रभाषा प्रचारको उन्होंने अपना जीवन-कार्य माना है और आज भी उसमें दत्तचित्त हैं।

राष्ट्रभाषा गौरव उपाधि

समितिने अपने कर्मठ कार्यकर्ताओंकी दीर्घकालीन सेवाओंका समादर करनेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा गौरवकी उपाधि देनेका निर्णय किया। इसके अनुसार ११ वें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर निम्नलिखित राष्ट्रभाषा-सेवियोंको यह उपाधि प्रदान की गई :—

नाम	प्रान्त
श्रीमती शारदा बहन मेहता	गुजरात
श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्	दिल्ली
स्वामी केशवानन्द	पंजाब
श्री काशीनाथ रघुनाथ वैशम्पायन	महाराष्ट्र
श्री मुकुन्द श्रीकृष्ण पंधे	विदर्भ-नागपुर
श्री भास्कर गणेश जोगलेकर	बम्बई
श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी	आसाम
श्री देवदत्त शर्मा	सिन्ध-राजस्थान

'समितिका' मुखपत्र

समितिने अपने मुखपत्रके रूपमे "राष्ट्रभाषा" को गत २० वर्षो से प्रति माह प्रकाशित कर रही है। इसमे समितिकी प्रति दिनकी गतिविधियोंका तथा उसकी प्रान्तीय समितियोंकी गतिविधियोंका विवरण रहता है। इसके अतिरिक्त समय-समयपर राष्ट्रभाषा विषयक समस्याओंपर समितिकी ओरसे अभिमत प्रकाशित होते रहते हैं। परीक्षा सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी इस पत्रिकाके द्वारा जनताको एवं उसके प्रचारक एवं केन्द्र व्यवस्थापकोंको दी जाती है। परीक्षार्थियोके लाभार्थ पाठचक्रम सम्बन्धी लेख भी प्रकाशित होते रहते है। इस पत्रिकाका सम्पादन समितिके प्रधानमन्त्री करते है।

समितिकी ओरसे "राष्ट्रभाषा" पत्रिकासे पूर्व "सबकी बोली" पत्रिका प्रति मास प्रकाशित की जाती थी। उसका सम्पादन काका कालेलकरजी एवं श्रीमन्नारायण करते थे। यह पत्रिका सन् १९३९ के अक्तूबर माससे आरम्भ हुई और नियमित रूपसे सन १९४० के नवम्बर तक समितिके मुखपत्रके रूपमे चलती रही। इसके बाद सितम्बर १९४१ तक यह पत्रिका स्वतन्त्र रूपसे काका साहब कालेलकरके सम्पादत्वमें चलती रही। इसमें राष्ट्रभाषा तथा समितिकी गतिविधियों, राष्ट्रभाषा विषयक लेख आदि छपते रहे। जून १९४१ से 'राष्ट्रभाषा समाचार' मासिक पत्र प्रकाशित किया गया जो जून १९४३ तक निकलता रहा। बादमे सन् १९४३ की जुलाई माहसे यह पत्रिका 'राष्ट्रभाषा' के नामसे निकलने लगी। तबसे यह पत्रिका बराबर हर महीने समितिके मुखपत्रके रूपमें निकल रही है।

राष्ट्रभारती पत्रिका

समितिने सन् १९५० से इस पत्रिकाको प्रारम्भ किया है। राष्ट्रभाषाके द्वारा भारतकी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंका सुन्दर समन्वय हो, यह दृष्टि समितिकी प्रारम्भसे ही रही है। अतः हमारे देशकी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंकी उच्चतम साहित्यिक कृतियोंका हिन्दी रूपान्तर कर, इसके द्वारा जनताके सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह कार्य बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इससे भारतव्यापी साहित्य सर्जनकी झाँकी होती है तथा देशकी तमाम भाषाओंके प्रति प्रेम एवं समादरकी भावना अंकुरित होती है। समितिको इस पत्रिकाको

चलानेमें काफी व्यय करना पड़ता है फिर भी समिति इसे एक आवश्यक कार्य मानकर गत १२ वर्षोंसे कर रही रही है।

समितिके भवन

समितिकी स्थापना सन् १९३६ में हुई, तब उसका कार्यालय आरम्भमें श्री बापू सेठके बंगले (वर्तमान कॉमर्स कॉलेजकी दाहिनी ओर) में किरायेके स्थानमें चलता था। वही एक ओर अध्यापन मन्दिर भी चलता था। अध्यापन मन्दिरके लिए बादमे महिलाश्रमके पास तीन कक्ष बनाए गए उनमेंसे दो में चलने लगा। जबकि कार्यालय शहरमें श्रीकृष्ण प्रेसके पास किरायेके मकानमें लाया गया। समिति लगभग एक वर्षमें महिलाश्रमके पास जब बड़ा मकान बना तो वहाँ समितिका कार्यालय लाया गया। यह स्थान 'भारतीय भाषा संघ' नामक ट्रस्टके नामपर कर दिया गया तो स्वभावतः समितिको कार्यालयके लिए स्थानकी आवश्यकता महसूस हुई। उक्त ट्रस्टके अधिकारियोंने ऐन बरसातके मौसममें समितिको अपना कार्यालय अन्यत्र ले जानेको बाध्य किया फलत : समितिका कार्यालय 'गो-रक्षण' के एक शेडमें सन् १९४५ मे लाया गया। यहींसे समितिकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ भी तथा परीक्षाओंका कार्य होता रहा। धीरे-धीरे समितिका कार्य बढ़ता गया। अतः बड़े कार्यालयकी आवश्यकता अनुभव करने लगी। पर १९४२ में विचार भेदके कारण समितिको अपना यह छोटा कार्यालय भी सन् १९४२ मे छोड़ना पड़ा और वर्धामें रेलवे स्टेशनके नजदीक एक छोटेसे स्थानपर कार्यालय रखा गया। इस बीच समितिने पौने पाँच एकड़ जमीन सन् १९४२ मे खरीद ली थी और वहाँ आवश्यकतानुसार अपने भवन बनानेका कार्य धीरे-धीरे प्रारम्भ हुआ। सन् १९४७ तक इस जमीनपर प्रेस, कार्यालय आदिके लिए कुछ भवन तैयार हो गए थे वही समितिका कार्यालय लाया गया। इसके पश्चात् समितिने और जमीन खरीदी और भवन बनवाया। आज समितिके पास १६ एकड़ जमीन है और ६ लाख रुपयोंकी लागतके भवन हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :—

१—कार्यालयका दो मंजिला भवन एवं परीक्षा-विभाग।

२—अतिथि भवन।

३—कार्यालयके दो ६–६ कमरेके ब्लाक।

४—प्रेस भवन।

५—कार्यकर्ता निवास बड़े एवं छोटे ४ इनमे कुल कार्यकर्ताओंके परिवारोंके निवासकी व्यवस्था है।

६—सभा-भवन।

७—महाविद्यालयका दो मंजिला भवन।

८—रोहित कुटीर आदि।

आज समितिके ये भवन स्टेशनके समीप एक विशाल क्षेत्रपर स्थित हैं। इसने एक कॉलोनीका रूप धारण कर लिया है। इसे आज "हिन्दी-नगर" कहा जाता है। समितिके भवनोंमें ही एक कक्षमें "हिन्दी-नगर" डाकखाना आ गया है।

प्रान्तीय भवन योजना

समितिने सन् १९५१ में प्रान्तोंमें प्रान्तीय भवन बनें, इस ओर विशेष ध्यान दिया। इसके लिए, अनुदान देनेकी भी व्यवस्था की गई। इससे प्रेरित होकर कुछ प्रान्तोंमें प्रान्तीय समितियोंके अपने भवन बन चुके हैं, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

कटकमें विद्यालय, राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस भवन लगभग तैयार हो गया है। प्रान्तीय रा. भा. भवनमें ही चल रहा है। उसमें उत्कल प्रान्तीय सभाका कार्यालय आज लम्बे अरसेसे उसमें काम कर रहा है।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अहमदाबादका भव्य "राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन" तैयार हो गया है और उसका उद्घाटन लोक सभाके तत्कालीन अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम अयंगारजी द्वारा सन् १९६० में बड़े समारोहपूर्वक हुआ। गुजरात प्रान्तीय समितिका कार्यालय अब अपने भवनमें काम कर रहा है। समितिका विद्यालय, पुस्तकालय आदि सभी प्रवृत्तियाँ इसी भवनमे चल रही है।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुरका 'राष्ट्रभाषा-भवन' का शिलान्यास राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादने ता. १३–९–५६ को सम्पन्न किया था। उसकी भी पहली और दूसरी मंजिल तैयार हो गई हैं। विदर्भ-राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय वहाँ चला गया है। विद्यालय, पुस्तकालय तथा अन्य प्रवृत्तियाँ राष्ट्रभाषा भवनमे ही चल रही है।

पूनामें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने कोई ३५ हजारके लागतकी जमीन अपने भवनके लिए खरीदी है। भवनके लिए निधि एकत्रित की जा रही है। वहाँ शीघ्र ही भवन-निर्माणका कार्य आरम्भ हो जाएगा।

जयपुरमें सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके लिए १९५६ में ही जयपुर राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर जमीन मिल गई थी, और उसपर राजस्थानके मुख्य मन्त्री श्री सुखाड़ियाजी द्वारा नींव भी डाल दी गई थी। वहाँ कार्य आरम्भ कर दिया गया है और उसका पक्का अहाता बाँध दिया गया है। और भवनकी नींवपरका कार्य भी अब शुरू कर दिया गया है।

मध्यप्रदेशमें 'रविशंकर शुक्ल हिन्दी भवन' के लिए ३ एकड़ जमीन सरकारकी ओरसे दी गई है। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भवनका निर्माणके लिए चन्दा एकत्रित करनेका काम आरम्भ कर दिया गया है। उसमें अच्छी सफलता मिली है। मध्यप्रदेश सरकार भी इस काममें काफी दिलचस्पी ले रही है और हमे आशा है कि भोपालमे यह 'रविशंकर शुक्ल भवन' शीघ्र तैयार हो जाएगा।

मणिपुरके सुदूर प्रदेशमे भी राष्ट्रभाषा भवन बन गया है और समितिका कार्यालय अपने भवनमें ही काम कर रहा है।

बेलगाँव तथा नसीराबादकी जिला समितियोंके भी भवन बन गए हैं और उनके कार्यालय अपने भवनोंमें काम कर रहे है।

बड़ौदा, सूरत, गंजाम आदि जिलोंकी समितियोंके भवनोंके लिए भी समितिने सहायता दी है और वहाँ भवन बन रहे हैं।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभापा, स.म.ने भी भवन-निर्माणका कार्य आरम्भ कर दिया है। उसने महाराष्ट्र विधान सभाके भू. पू. अध्यक्ष श्री [illegible] [illegible]-समिति [illegible] निर्मित कर दी है।

आशा है कि इस समितिके प्रभावशाली सदस्य बहुत शीघ्र बम्बईके राष्ट्रभाषा-भवनके लिए आवश्यक धन जुटा लेंगे।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय योजना

समितिने अपने हिन्दीतर प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा प्रचारकी दृष्टिसे पुस्तकालय योजना बनाई। इसके अनुसार समितिने सम्बद्ध राष्ट्रभाषा पुस्तकालयोंको उनके द्वारा पुस्तकालयके लिए एकत्रित अंशको देनेका निश्चय किया। इस योजनाके अन्तर्गत सिन्ध-महाराष्ट्र तथा गुजरातके ६२ पुस्तकालयोंने अपनेको सम्बद्ध कर इस योजनाका लाभ उठाया। यह योजना सन् १९४५ तक चली।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

समितिका अपना एक विशाल पुस्तकालय है। इस पुस्तकालयसे समितिके कार्यकर्तागण, वर्धा शहरके निवासी, परीक्षार्थी, तथा अन्य व्यक्ति लाभ उठाते हैं। इस पुस्तकालयमें हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंकी लगभग १२ हजारसे अधिक पुस्तकें है। पुस्तकालय राज्य सरकार द्वारा मान्य है। रजत जयन्तीके अवसरपर हिन्दीमें अनूदित साहित्यकी हजारों पुस्तकें पुस्तकालयमें आई। पुस्तकालयमें उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, समालोचना, इतिहास, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयोंकी पुस्तकें हैं।

हिन्दी मन्दिर पुस्तकालय

शहरमें भी समितिकी ओरसे एक 'हिन्दी-मन्दिर पुस्तकालय-वाचनालय' संचालित होता है। इस पुस्तकालय-वाचनालयसे शहरके पाठकोंको बड़ी आसानी हो गई है तथा वे इसका लाभ उठाते हैं। हिन्दी मन्दिरके पुस्तकालयमें करीब ड़ेढ़ हजार पुस्तकें हैं। यह पुस्तकालय सेठ जमनालालजी बजाजने प्रारम्भ किया था, अब यह समितिको दे दिया गया है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

पश्चिमाञ्चलमें राष्ट्रभाषाका प्रचार करनेवाली संस्थाओंमें परस्पर विचारोंका आदान-प्रदान हो तथा यहाँ की समस्याओंपर सामूहिक रूपसे चिन्तन हो एवं उनके हल सोचे जाएँ इस दृष्टिसे सन् १९५० में पश्चिम भारत राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यका संगठन किया गया है। इस संगठनको बनानेमें गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बम्बई प्रान्तीय रासट्रभाषा प्रचार सभा, महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कर्नाटक राष्ट्रभाषा समिति एवं गोमन्तक राष्ट्रभाषा समितिका हाथ है। इसके अध्यक्षके रूपमें श्री क. मा. मुन्शी हैं तथा इसका कार्यालय बम्बईमें, बम्बई सभामें रखा गया है।

महाराष्ट्र राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समन्वय समिति

बम्बई राज्यका विभाजन किया गया और महाराष्ट्र तथा गुजरात इस प्रकार दो राज्य बने।

इससे हमारे राष्ट्रभाषा प्रचारके कामपर इस विभाजनका कोई असर नहीं पड़ा है। गुजरातमें—जिसमें सौराष्ट्र तथा कच्छ भी शामिल हैं—गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जिस प्रकार पहले काम करती आ रही थी, उसी प्रकार काम कर रही है। महाराष्ट्रके चार विभागोमें विदर्भ, मराठवाड़ा, बम्बई तथा पुराने महाराष्ट्र प्रदेशमें जिस प्रकार पहले चार विभागीय समितियाँ—जिन्हें प्रान्तीय समितियोंका ही नाम तथा महत्व प्राप्त हैं—काम करती आई हैं, उसी प्रकार आज भी काम कर रही हैं। परन्तु विभागोकी प्रान्तीय समितियोमें संवादिता लाने तथा राज्यसे सम्बन्धित कामोंमें एक साथ मिलकर कार्य करनेकी दृष्टिसे महाराष्ट्र राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति स्थापित हुई है। इसके अध्यक्ष श्री सिलमजी (महाराष्ट्र विधान सभाके भूतपूर्व अध्यक्ष) तथा श्री भगवन्तरावजी (वनमन्त्री महाराष्ट्र राज्य) के मार्गदर्शन तथा प्रेरणासे महाराष्ट्रमें समितिके कार्यको आगे बढ़ानेमे बहुत प्रयत्नशील है। इस समितिका कार्यालय बम्बई सभाके कार्यालयमें रखा गया है।

सरकारी सहायता

समितिको उसके जन्मकालसे ही जनताका बल मिला है। इसे सरकारकी ओरसे अभीतक कोई विशेष सहायता नही मिली है। यद्यपि उसकी प्रान्तीय समितियोंको कहीं-कही बहुत सहायता मिली है। समितिको प्रथम बार सन् १९६२ में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयकी ओरसे कुछ विशेष कार्योको सम्पादित करनेके लिए रु. ७००० का अनुदान प्राप्त हुआ है। इसका यहाँ उल्लेख करना उचित होगा।

भाषण-स्पर्धा तथा निबन्ध-स्पर्धा पुरस्कार

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे गत मार्च अप्रैलमें अखिल भारतीय भाषण स्पर्धा तथा निबन्ध स्पर्धा, विद्यार्थियोंके लिए तथा प्रौढ़ोंके लिए आयोजित की गई थी—

भाषण स्पर्धामें—श्री सीतारामजी डोगरे प्रथम तथा कुमारी कुमुदिनी पाटील द्वितीय थी। जिन्हें क्रमशः ५०१ तथा ३०१ रुपयेका पुरस्कार दिया गया।

प्रौढ़ निबन्ध स्पर्धाने—श्री श्रीकृष्ण तो. कासार प्रथम तथा श्री रवीन्द्र गो. पटेल द्वितीय थे, जिन्हें क्रमशः २५१ तथा १५१ रुपयेका पुरस्कार दिया गया।

विद्यार्थी निबन्ध स्पर्धामें—श्री कुमारी महेशी कपूर प्रथम तथा कु. प्रभा जोशी द्वितीय आई। जिन्हें क्रमशः २०१ रु. तथा १०१ रु. नकद पुरस्कार श्री माताजी जानकीदेवी बजाज द्वारा वितरित किए गए।

श्री शिवमंगल सिह सुमनका इस अवसरपर बहुत ही सुन्दर एव प्रभावपूर्ण भाषण हुआ। इनके अलावा श्री माधवजी आदिके भी प्रभावशाली भाषण हुए।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९३७ मे जहाँ ६१९ परी-परीक्षार्थी बैठते थे वहाँ आज यह संख्या बढ़कर ढाई लाखसे अधिक तक पहुँची हैं। समितिने गत २५ वर्षोंमें २९ लाखसे अधिक विद्यार्थियोंको हिन्दीकी शिक्षा दी है। आज इसके पास निष्ठावान ७६०० राष्ट्रभाषा प्रचारक केन्द्र-व्यवस्थापक है। जो हिन्दीके सन्देशको गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा रहे हैं। समितिकी स्थापना महात्मा गाँधीकी प्रेरणासे हुई। स्वतन्त्रताके बहुत पूर्व समितिने राष्ट्रभाषाके कार्यको आरम्भ
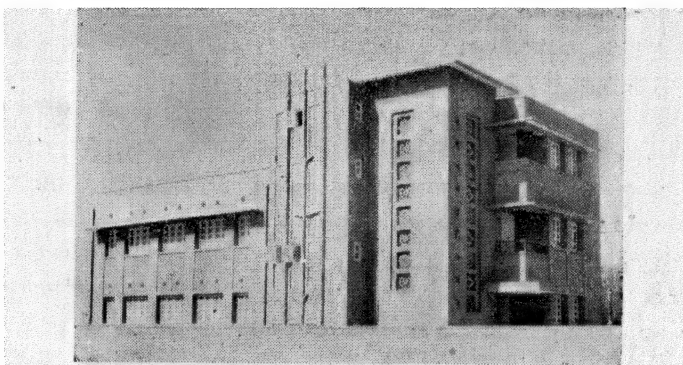
गुजरात प्रांतीय रा. भा. प्र. समिति, अहमदाबाद
[हिन्दी भवन]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मणिपुर
[भवन]

किया। उस समयकी राष्ट्रीय भावना आज भी इसके कार्यकर्ताओंमें है और उन्हें अनुप्राणित करती रहती है। समितिके जीवन कालमें अनेक संकट एवं बाधाएँ भी आई है, लेकिन अपने कर्मठ निष्ठावान् प्रचारकों एव केन्द्र-व्यवस्थापकोंके बलपर उन सब बाधाओंको पार करती हुई समिति इस राष्ट्रीय कार्यको आगे बढ़ा रही है। 'एक हृदय हो भारत जननी' यह समितिका बोध सूत्र है। इसीको लक्ष्यमे रखकर वह अपने कार्यमें सतत प्रयत्नशील रही है। सन् १९५१ मे बम्बई राज्यने समितिकी 'राष्ट्रभाषा कोविद' परीक्षाको अमान्य किया था। इसका बड़ी दृढ़ताके साथ समितिने प्रतीकार किया। फलस्वरूप बम्बई राज्यके कर्णधारोने मान्यता देनेके सम्बन्धमें जो पक्षपात-पूर्ण विभेद किया था, उसे दूर किया और जिन परीक्षाओंको मान्यता दी गई थी उनकी भी मान्यता हटा दी। सरकारने अपनी ओरसे स्वतन्त्र परीक्षाओका गठन किया है। हिन्दी बातचीत परीक्षा, निम्नस्तर हिन्दी परीक्षा और उच्चस्तर हिन्दी परीक्षा—इस प्रकार तीन परीक्षाएँ महाराष्ट्र और गुजरात राज्यके कर्मचारियोंके लिए सरकारकी ओरसे चलाई जा रही है।

समितिके सामने एक और विकट स्थिति सन् १९५१ में उपस्थित हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सदस् लबन्दियाँ हो गई और आपसी झगड़े इतने बढ़ गए कि उन्हें अदालतकी शरण लेनी पड़ी। फलतः यने सम्मेलनके कार्योको सम्पादित करनेके लिए आदाताकी नियुक्ति की जो इस समय सम्मेलनके विभि र्योंको चला रहे है। ऐसी स्थितिमे समितिका अस्तित्व खतरेमें आ गया था, किन्तु उसका का तन्त्र होनेके कारण समितिपर इसके कारण कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई और समितिका रूपसे पूर्ववत् चल रहा है। इन बाह्य आपत्तियोंका मुकाबला करनेमे कोई शक्ति रही है तो वह आन्तरिक संगठन शक्ति ही उसकी सुगठित प्रान्तीय समितियाँ, उसके निष्ठावान् प्रचारक ...-व्यवस्थापक ही उसका वास्तविक बल रहा है। फलतः समिति अपने २५ वर्षोका गौरवमय कार्य करनेके पश्चात् आज रजत जयन्ती समारोह बड़े उत्साहके साथ मना रही है। इसका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार और प्रसारमें समितिकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी और भविष्यमें भी वह इस राष्ट्रीय कार्यको अपना पूरा बल देकर राष्ट्रकी भावनात्मक एकतामें अपना योगदान करेगी।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

गुजरातमें हिन्दीका प्रचार गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, दक्षिणामूर्ति विद्या-मन्दिर, भावनगर और राजकोट सेवा संघ आदि संस्थाओं द्वारा बहुत पहलेसे ही किया जा रहा है। बड़ौदा राज्य इस कार्यका ...ग था। राज्यके सभी सरकारी कर्मचारियोंके लिए कचहरियोंमें हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया गया था। हिन्दीकी पुस्तकें तथा कोष भी तैयार कराए गए थे। वरिष्ट अदालतके फैसले वहाँ गुजराती तथा नाग ...लिपिमें लिखे जाते थे।

सन् १९३५ मे परमेष्ठीदास जैनके प्रयत्नसे राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल, सूरतकी स्थापना हुई थी और निय क राष्ट्रभाषाका अध्यापन कार्य होता था। १९३५ में गुजरात विद्यापीठ तथा नवजीवनके ...ें श्री मोहनलाल भट्टने अहमदाबादमें हिन्दी-प्रचार-कार्य आरम्भ किया और गुजरातमे राष्ट्रभाषा ...ा इस प्रकार आरम्भ किया। राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल सूरतने इस कार्यमें अपना सहज

उसके पहले श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला विद्यापीठ (कर्वे महिला विद्यापीठ) की स्थापना १९१६ में हो चुकी थी। इस विद्यापीठमें पढ़ाईके माध्यमके रूपमें भारतीय भाषाओंको स्थान दिया जा चुका था और हिन्दी भी उन भाषाओंमें एक थी। उसके बाद १९२० में भारतमें बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। इस राष्ट्रीय आन्दोलनके युगमें पूज्य बापूने राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दीपर बहुत जोर दिया। पूज्य महात्माजीकी सत्प्रेरणासे देशमें काशी विद्यापीठ, तिलक विद्यापीठ, सदाकत आश्रम, जामिया मिलिया तथा गुजरात विद्यापीठ जैसी संस्थाएँ स्थापित हुई। उनमें गुजरात विद्यापीठ अहमदाबादका भी अपना एक विशेष स्थान है। गुजरात विद्यापीठके स्नातक (ग्रेज्युएट) तकके पाठ्यक्रममें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दिया गया था। दक्षिणामूर्ति भवनने बाल शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षाके क्षेत्रमें बहुत बड़ा कार्य किया है। वहाँके विद्यार्थियोंके लिए हिन्दी विषयका शिक्षण अनिवार्य था। इस कार्यमें श्री गिजुभाई, श्री नानाभाई भट्ट, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री ताराबहन मोडककी पूरी सहायता रहती थी। शिक्षक गण हिन्दी सीखते थे तथा बोलते भी थे। बड़ौदा राज्यने सारे राज्यकी लिपि गुजरातीके साथ-साथ देवनागरी लिपिको भी स्थान दिया था। महाराजा सयाजीरावने हिन्दीके उत्कर्ष की दृष्टिसे हिन्दी विश्वविद्यालयको छह लाख रुपए दिए थे। सन् १९३३ में राज्यने सभी कर्मचारियोंके लिए हिन्दी जानना अनिवार्य कर दिया था। उसके लिए परीक्षाओंका प्रबन्ध भी किया गया था। साथ ही साथ राज्यकी शिक्षण संस्थाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी। सांवरकाठा जिलेके ईडर राज्यने भी हिन्दी प्रचारके लिए थोड़ा बहुत प्रयत्न किया। राज्यकी भाषा तो गुजराती ही थी, परन्तु रियासतके हाईस्कूलमें पहली श्रेणी (आजकी पाँचवीं श्रेणी) से छठीं श्रेणी (आजकी दसवीं श्रेणी) तक हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी।

कर्वे युनिवर्सिटी, गुजरात विद्यापीठ तथा आर्य गुरुकुलों द्वारा हिन्दीके लिए वातावरण तैयार हो रहा था। फिर भी इन संस्थाओं द्वारा उन भाई-बहनोंको हिन्दी पढ़नेका मौका मिलता था जो इन संस्थाओंमें थे। बाहरके हिन्दी सीखनेवालोंके लिए कोई सुविधा न थी। इसलिए सन् १९२८ में सभी हिन्दी प्रेमियोंके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागका केन्द्र खोलनेके सम्बन्धमें श्री जेठालाल जोशीने प्रयत्न किया। प्रारम्भमें श्री उमाशंकर जोशी, श्री कान्तिलाल जोशी तथा श्री भूलाभाई जोशी अहमदाबाद केन्द्रसे प्रथमा परीक्षामें सम्मिलित हुए। आज सकड़ों परीक्षार्थी इन परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

इस तरह हिन्दीका वातावरण गुजरातमें वन रहा था। सन् १९३५ से श्री मोहनलाल भट्ट तथा श्री परमेष्ठीदास जैनने हिन्दी प्रचारका व्यवस्थित कार्य आरम्भ किया। सन् १९३७ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर समितिके तत्कालीन मन्त्री, श्री मो. सत्यनारायणजीने गुजरात मे श्री मोहनलाल भट्टके साथ भ्रमण किया और हिन्दी प्रचार कार्यके लिए केन्द्र खोलनेके सम्बन्धमें परामर्श दिया। सन् १९३८ में हरिपुरा कॉंग्रेस हुई उसमें राष्ट्रभाषा परिषद भी हुई; जिसमें श्री सेठ जमनालालजी बजाज अध्यक्ष थे। श्री बालासाहब खेर मुख्य वक्ता थे। श्रीमती कमलाबाईने भी इसमें भाग लिया था। यह परिषद श्री मो. सत्यनारायणजी तथा श्री भट्टजीके प्रयत्नसे हुई थी और उससे हिन्दी सीखनेकी प्रवृत्ति बढ़ी। गुजरातमें उसके लिए उत्साह बढ़ा और हिन्दी सीखकर परीक्षार्थी परीक्षाओंमें बैठने लगे। बापूने इसी समय राष्ट्रको अपना महामन्त्र दिया कि "राष्ट्रभाषाके बिना राष्ट्र गूंगा है।" इस मन्त्रने जादूका काम किया और हिन्दीके लिए एक साधारण वातावरण तैयार होता गया। आज तो गुजरातके शहरों और गाँवोंका हर कोना राष्ट्रभाषाके पवित्र सन्देशसे

परिपूरित है। प्रति वर्ष राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें हजारों परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। हरिपुरा काँग्रेसके साथ राष्ट्रभाषा परिषद करनेके बाद श्री मोहनलाल भट्टने गुजरातका कार्य श्री जेठालाल जोशीको सौप दिया, जिन्होंने उसे बड़े उत्साहसे स्वीकार कर लिया और इस प्रवृत्तिको इतना बढ़ाया कि गुजरातमें हिन्दी प्रचारका कार्य बड़े विस्तृत पैमानेपर चल रहा है। उसके बाद सन् १९३९ में वर्धा समितिके गुजरात प्रदेशके हिन्दी प्रचारका कार्य श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें श्री अमृतलाल नाणावटीने करना शुरू किया। परन्तु अहमदाबादका मुख्य कार्य श्री जेठालालजीके हाथोंमें ही था। शुरूमें श्री परमेष्ठीदास जैन और अन्य साथियों की सहायतासे हिन्दी प्रचारका कार्य चल रहा था। १९४० मे हिन्दुस्तानीकी दो लिपियोंकी अनिवार्यताका प्रश्न गाँधीजीने उठाया। उसके कारण मतभेद पैदा हुआ और सन् १९४२ में वर्धामे हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी अलग स्थापना हुई। श्री नाणावटी हिन्दुस्तानी प्रचारके कार्यमें लग गए। इसलिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके कार्यको सुसंगठित रूपसे आगे बढ़ानेके लिए सूरतमे गुजरातके प्रचारकों और केन्द्र-व्यवस्थापकोंकी एक सभा हुई। इस सभामें समितिके तत्कालीन मन्त्री, श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन भी उपस्थित थे। उनके साथ श्री कमलेश भारतीय भी थे। ता. १–१–४४ को इस सभामें गुजरात राष्ट्र-भाषा प्रचार समितिका विधिवत् संगठन हुआ। अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठक तथा उपाध्यक्ष डॉ. चम्पकलाल घीया तथा मन्त्री श्री परमेष्ठीदास जैन नियुक्त हुए और वर्धा समितिकी ओरसे श्री कमलेशजी संचालक नियुक्त किए गए। उसका मुख्य कार्यालय अहमदाबाद बना। श्री जेठालाल जोशी, अहमदाबाद समितिके मन्त्री बने रहे और श्री पाठकजी आदिका हिन्दी प्रचारके कार्यमें दिलचस्पी लेनेके लिए तैयार करनेका भार भी उन्हींपर था। श्री कमलेशजी इस कार्यको एक साल तक करते रहे; परन्तु गुजरातके कार्यमें अनेक कठिनाइयाँ आने लगीं; जिन्हें सम्हालना आवश्यक था। श्री परमेष्ठीदासजी सूरतसे यह कार्य नहीं कर सकते थे और वे सूरत छोड़नेका विचार भी कर रहे थे इसलिए श्री जेठालालजीको ही मन्त्री पदका भार सम्हालना पड़ा। मन्त्री तथा संचालक अलग-अलग रखनेके कारण भी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। परिणामस्वरूप मन्त्री-संचालकका पद श्री जेठालालजीको सौंपा गया। तबसे वे मन्त्री-संचालकका कार्य बहुत कुशलतापूर्वक कर रहे हैं और उनकी सफलताका प्रतीक गुजरातका कार्य और परीक्षार्थी संख्या है।

समितिके सुसंगठित हो जानेसे कार्य बढ़ता गया। १९४६ में अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठकके स्थानपर श्री कन्हैयालाल मा. मुँशी अध्यक्ष तथा उपाध्यक्षके रूपमें स्व. दादा साहब मावलंकर चुने गए। मावलंकरजीके लोकसभाके अध्यक्ष चुने जानेपर डॉ. श्री हरिप्रसाद देसाई उपाध्यक्ष चुने गए। बादमें उपाध्यक्षके रूपमें प्रा. श्री रामचन्द्र ब. आठवले, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री गौरीशंकर जोशी 'धूमकेतु' श्री डोलरराय मांकडका सहयोग प्राप्त हुआ।

समितिके कार्याध्यक्ष पदपर प्रारम्भसे ही श्रीमती शारदाबहन मेहताका पूरा सहयोग समितिको मिलता रहा था। श्रीमती शारदाबहनके मार्गदर्शनसे समितिका कार्य खूब आगे बढ़ा। वे वृद्धावस्थाके कारण जब यह कार्यभार सम्भालनेमें असमर्थ हो गई तब श्री हरिसिद्ध भाई दीवेटियाजीने इस पदको सुशोभित किया। पर श्रीमती शारदाबहनका सहयोग तो मिलता ही रहा। श्री दीवेटियाजीके नेतृत्वमें भी समिति-को बहुत लाभ मिला। अब १९६१ से कार्याध्यक्षके पदपर श्रीमती हंसाबहन मेहता (भू. पू. उपकुलपति, सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा) हैं और पूरा सहयोग दे रही हैं।

समितिका कार्यालय प्रारम्भसे ही गुजरात राज्यके प्रधान नगर अहमदाबादमें है। समितिका कार्यक्षेत्र पूरे गुजरातमें फैला हुआ है। प्रारम्भमें समितिका कार्यालय श्री मोहनलाल भट्टके अपने भारतीय मुद्रणालय, खाड़िया, गोलवाड़में बिना किसी किरायेके रखा गया। १९४५ में यह कार्यालय खाड़िया बाला-हनुमानके सामनेवाले एक छोटेसे किरायेके कमरेमें लाया गया। १९५१ से १९६० तक कालूपुर, खजूरी की पोलमें उस विशाल मकानमें रहा जहाँ पहले नवजीवनका कार्यालय था।

राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन

समितिने सन् १९५७ मार्चमें राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनके लिए एलिस ब्रिज भारतीय निवास सोसा-इटीके सामने जमीन खरीदी। इस जमीनपर सन् १९५७ दिसम्बरमें श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी द्वारा शिलान्यास विधि सम्पन्न हुई। बादमें भवन-निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस भवनको बननेमें चार वर्ष लगे और इसकी उद्‌घाटन विधि तारीख ३–४–६० को तत्कालीन लोकसभाके अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम्‌जी आयंगर द्वारा सम्पन्न हुई। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय तबसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनमें आ गया है।

समितिका संविधान

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी एक व्यवस्थापिका समिति है। संविधानानुसार इसका प्रति तीसरे वर्ष चुनाव होता है और नीचे लिखे अनुसार व्यवस्थापिका समितिका संगठन होता है :—

(१)	प्रमाणित प्रचारकोंके प्रतिनिधि	१४
(२)	केन्द्र-व्यवस्थापकोंके प्रतिनिधि	५
(३)	जिला तथा नगर समितियोंके प्रतिनिधि	२०
(४)	संरक्षक तथा आश्रयदाताओंके प्रतिनिधि	२
(५)	आजीवन सदस्योंके प्रतिनिधि	२
(६)	साधारण सदस्योंके प्रतिनिधि	४
(७)	अधिकृत उपाधिधारी आजीवन तथा सम्मि. प.–सदस्योंके प्रतिनिधि	२
(८)	सम्मान्य सदस्य	५
(९)	भूतपूर्व पदाधिकारियोंके प्रतिनिधि	५
(१०)	पदेन	२

समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी, कुलपति, भारतीय विद्याभवन, भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तरप्रदेश।

कार्याध्यक्ष---डॉ. श्रीमती हंसाबहन मेहता, भू. पू. उपकुलपति, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा।

उपाध्यक्ष---श्री गजाननभाई जोशी, राजकोट।

उपाध्यक्ष---श्री रमणिकलाल इनामदार, अहमदाबाद।

कोषाध्यक्ष---श्री सन्तप्रसाद भट्ट, आचार्य, बा. दा. महिला कालेज, अहमदाबाद।

मन्त्री-संचालक---श्री जेठालाल जोशी, अहमदाबाद।

प्रकाशन

राष्ट्रवीणा

समितिकी ओरसे सन् १९५१ से "राष्ट्रवीणा" त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें चिन्तन प्रधान लेख, कविताएँ, समीक्षा, कहानियाँ आदि सामग्री बड़े सुरुचिपूर्ण ढगसे दी जाती है। इसमे गुजराती भाषा साहित्य और संस्कृतिकी विशेषताओंका सक्षिप्त तथा सुन्दर परिचय दिया जाता है। इस पत्रिकाने गुजरात प्रदेशमे बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर ली है।

पुस्तकें

१---समितिकी ओरसे एक प्रकाशन योजना भी बनाई गई है। समितिने कविवर सुमित्रानन्दन पन्तकी चुनी हुई ३७ कविताओका गुजराती पद्यानुवाद "सुमित्रानन्दन पन्तना केटलोक काव्यों' के नामसे प्रकाशित किया।

२---गुजरातीके मूर्धन्य कथाकारोंकी १५ सुरुचिपूर्ण कहानियोके हिन्दी अनुवादका संकलन "गुजरातीकी प्रतिनिधि कहानियाँ" के रूपमे छापा गया है।

३---हिन्दीसे हिन्दी तथा हिन्दीसे गुजराती कोशकी पाडुलिपि तैयार हो चुकी है। निकट भविष्य-मे वह प्रकाशित हो जाएगा।

सरदार वल्लभभाई पटेल विजय पद्म वक्तृत्व स्पर्धा

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे सरदार वल्लभभाई पटेलकी पुण्यस्मृतिमे सरदार वल्लभभाई पटेल विजय पद्म (ट्राफी) वक्तृत्व स्पर्धाका आयोजन प्रति वर्ष किया जाता है। यह विजय पद्म चाँदीका बना है। इसमे १८ वर्षसे २५ वर्ष तककी उम्रके हिन्दीतर भाषा-भाषी भाग ले सकते है। सर्वप्रथम पुरस्कार १०१) रु. तथा द्वितीय पुरस्कार ५१) रु. तथा तृतीय पुरस्कार ४१) रु. का दिया जाता है। सन् १९५४ से अबतक अहमदाबाद, बड़ौदा, वल्लभ-विद्यानगरमे इसके आयोजन हो चुके है।

राष्ट्रभाषा शिविर

ज्ञानवृद्धि, परस्पर मेलमिलाप, राष्ट्रभाषा प्रचार तथा भाषा ज्ञान बढ़ानेके लिए शिविर बड़े उपयोगी

होते हैं। समितिकी ओरसे केन्द्र-व्यवस्थापकों तथा प्रचारक बन्धुओंको राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रत्यक्ष जानकारी के लिए इन शिविरोंका आयोजन किया जाता है। सुप्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों एवं तीर्थोंका पर्यटन कार्यक्रम भी इन शिविरोंके अन्तर्गत रखा जाता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन १९५० में अहमदाबादमें हुआ था। इसी अधिवेशनमें यह निश्चय हुआ था कि राष्ट्रभाषाके अनन्य प्रवर्तक महात्मा गाँधीकी पुण्यस्मृतिमे १५०१) रु. का एक महात्मा गाँधी पुरस्कार प्रति वर्ष किसी ऐसे हिन्दीतर भाषा-भाषी लेखककी सेवामें समर्पित किया जाए; जिसने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दीकी पर्याप्त सेवाएँ की हों। तबसे यह पुरस्कार समितिकी ओरसे राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोंके अवसरपर दिया जाता है।

प्रचार सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसारके लिए प्रदेशके भिन्न-भिन्न विभागोंमे प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन आयोजित होते हैं। इन प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोंका आयोजन १९५४ से हो रहा है और भावनगर, भुज, सिद्धपुर, वल्लभ-विद्यानगरमे ये सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन भी आयोजित होते है और कच्छमें भूज, मांडवी, आदिपुर, अंजार, सौराष्ट्रमें भावनगर, राजकोट, लिम्बडी, उत्तर गुजरातमे सिद्धपुर, महेसाणा, विसनगर, घोणोज, पंचमहालमें गोधरा, लुणावाडा, खेड़ामे नड़ियाद इत्यादि स्थानोंपर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हो चुके है।

प्रचार-कार्य

परीक्षाएँ

गुजरात प्रदेशमे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्राथमिक, प्रारम्भिक, प्रवेश, परिचय, कोविद राष्ट्रभाषा-रत्न परीक्षाएँ बड़ी लोकप्रिय हैं। ये परीक्षाएँ वर्षमें दो बार फरवरी तथा सितम्बरमें होती है। सन् १९३७ में ७६ परीक्षार्थी गुजरात प्रदेशसे सम्मिलित हुये थे। आज यह संस्था कोई १ हजार गुना बढ़ गई है। प्रतिवर्ष समितिकी परीक्षाओंमें ७५–७६ हजारसे अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित होते है। अबतक गुजरात प्रदेशसे करीब १० लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके है।

केन्द्र

समितिके अन्तर्गत आज पूरे गुजरातमें करीब ६५० परीक्षा केन्द्रोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य चल रहा है।

प्रचारक

गुजरातमें २१५० सक्रिय प्रमाणित प्रचारकोंका सहयोग समितिको प्राप्त हो रहा है।

शिक्षण-केन्द्र, विद्यालय, महाविद्यालय

अधिकांश केन्द्रोंमें प्रशिक्षित प्राध्यापकों तथा शिक्षकों, प्रचारकों द्वारा प्रारम्भिकसे परिचय तककी पढ़ाईके लिए शिक्षण केन्द्र तथा परिचय, कोविदकी पढ़ाईके लिए विद्यालय तथा राष्ट्रभाषा रत्नकी पढ़ाईके लिए महाविद्यालयोंका प्रबन्ध किया गया है। १७० शिक्षण केन्द्र १६२ विद्यालय तथा ५ महाविद्यालय नियमित रूपसे चल रहे हैं।

पुस्तकालय

अहमदाबाद तथा सूरतके राष्ट्रभाषा पुस्तकालय काफी समृद्ध है। अहमदाबादके हिन्दी पुस्तकालयसे हिन्दी बी. ए. एम. ए. विशारद, साहित्य रत्नके विद्यार्थी भी लाभ उठाते हैं। पी. एच. डी. तथा बी. टी की तैयारी करनेवाले भाई-बहन भी इससे लाभ उठा रहे हैं।

इसके अलावा सूरत, राजकोट, भावनगर, बड़ौदा, नड़ियाद, भुज, जामनगर आदि स्थानोंपर भी पुस्तकालय चल रहे हैं। बड़े-बड़े केन्द्रोंमें भी उनके अपने नियमित पुस्तकालय चल रहे हैं।

विभागीय समितियाँ

प्रदेशके नीचे लिखे जिलोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिए विभागीय समितियाँ बनी हुई है। उनके पदाधिकारियोंके नाम नीचे दिए जा रहे है।

कच्छ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भुज

अध्यक्ष—श्री प्रेमजीभाई भवानजी ठाकर, उपमन्त्री गुजरात राज्य।

उपाध्यक्षा—श्री कु. तिलोत्तमा बहन देसाई।

कोषाध्यक्ष—श्री रवजीभाई ठक्कर।

मन्त्री—श्री मार्कण्डराय महेता।

सौराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राजकोट

अध्यक्ष—श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए., एल. एल. बी.।

कार्याध्यक्ष—श्री गंगादासभाई शाह, अध्यक्ष भावनगर नगरपालिका, भावनगर।

मन्त्री—श्री हरिलाल पंड्या।

अहमदाबाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

अध्यक्ष—श्री रमणिकलाल इनामदार।

उपाध्यक्ष—श्री सन्तप्रसाद भट्ट, प्राचार्य बी. डी. कालेज, अहमदाबाद।

मन्त्री—श्री जेठालाल जोशी, ।

सहमन्त्री—श्री रणधीरभाई उपाध्याय।

उत्तर गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सिद्धपुर

अध्यक्ष—श्री खोडाभाई शि. पटेल, एम. ए., एल. एल. बी. (एम. एल. ए.)।
कार्याध्यक्ष—श्री कान्तिलाल याज्ञिक बी. कॉम.।
उपाध्यक्ष—श्री रामचन्द्रभाई अमीन बी. ए. एल. एल. बी.।
उपाध्यक्ष—श्री छगनभाई का. पटेल (आचार्य, पीलवाई हाईस्कूल,)।
मन्त्री—श्री काशीशंकर शुक्ल,
सहमन्त्री—श्री रघुनाथ ब्रह्मभट्ट।

खेडा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वसो

अध्यक्ष—श्री भाईलालभाई पटेल, (भूतपूर्व उपकुलपति वल्लभ विश्व विद्यालय)
उपाध्यक्ष—श्री शंकरभाई र. पटेल और श्री चन्द्रकान्त भट्ट (आचार्य आलिन्द्रा हाईस्कूल)
कार्याध्यक्ष—श्री बहेचरदास शाह, नड़ियाद।
मन्त्री—श्री पुरुषोत्तमभाई पटेल, वसो और श्री शान्तिलाल पंड्या, नड़ियाद

पंचमहाल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गोधरा

अध्यक्ष—श्री माणेकलाल गाँधी, एम. पी. (कालोल)
उपाध्यक्ष—श्री मणिलाल ह. महेता (गोधरा)
कार्याध्यक्ष—श्री जटाशंकर पंड्या (गोधरा)
मन्त्री—श्री फतेहलाल जे. दवे और श्री अमृतगर गोस्वामी तथा श्री सी. पी. पाठक

भरूच राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भरूच

अध्यक्ष—श्री चन्द्रशंकर भट्ट, एम. पी. (भरूच)।
उपाध्यक्ष—श्री राजेन्द्रप्रसाद भट्ट (आमोद)।
कार्याध्यक्ष—श्री चन्दुलाल सेठ (भरूच)।
मन्त्री—श्री विष्णुप्रसाद भट्ट 'बिन्दु' (अमरवा)।
उपमन्त्री—श्री जयराम मालणकर (राजपीपला)

[इस वर्ष अहमदाबाद-साबरकांठा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके विधानकी रचना भी की गई है और चुनावकी योजना की जा रही है।]

सक्रिय नगर समितियाँ

प्रत्येक विभागके कुछ नगरोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको व्यवस्थित करनेके लिए नगर समितियाँ बनी हुई हैं। उनमेंसे सक्रिय नगर समितियोंके पदाधिकारियोके नाम नीचे लिखे अनुसार है :—

कच्छ विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मांडवी

अध्यक्ष—श्री भाईलालभाई मा. मामतोरा।
उपाध्यक्ष—श्री नौशेररभाई दस्तूर।
मन्त्री—श्री शिवलाल धोलकिया।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री सुशीलचन्द्र पंड्या।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मुन्द्रा

अध्यक्ष—श्री भोगीलालभाई महेता।
उपाध्यक्ष—श्री रतिभाई दवे।
मन्त्री—श्रीमती हंसाबहन भट्ट तथा श्री भानुभाई छाया।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री कुंजबिहारी महेता।

राष्ट्रभाषा प्रजार समिति, आदिपुर

अध्यक्षा—श्रीमती कृष्णा हिंगोरानी।
उपाध्यक्ष—श्री तोताराम वलेच्छा।
मन्त्री—श्री कुमारी कृष्णा भंमाणी (केन्द्र-व्यवस्थापिका),
तथा श्री हीरालाल धोलकिया।

सौराष्ट्र विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राजकोट

अध्यक्ष—श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए. एल. एल. बी.।
उपाध्यक्ष—श्री बालकृष्णभाई शुक्ल, बी. ए., एल. एल. बी.।
मन्त्री—श्री हरिलाल पंड्या (केन्द्र-व्यवस्थापक)।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भावनगर

अध्यक्ष—श्री गंगादासभाई शाह (अध्यक्ष नगरपालिका, भावनगर।)
मन्त्री—श्री हिंमतलाल याज्ञिक, बी. ए., साहित्यरत्न।
उपमन्त्री—श्री दिनकरराय भट्ट, कोविद।
सहमन्त्री—श्री जयेन्द्रभाई त्रिवेदी रा. रत्न, एम. ए., बी. एस. सी.।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री लक्ष्मीचन्द्र सोमानी एम. ए., कोविद।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, लिम्बडी

अध्यक्ष—श्री माणेकलाल म. आचार्य
उपाध्यक्ष—श्री ए. जे. सोमानी।
मन्त्री—श्री बिहारीलाल क. रावल।
कार्यालय-मन्त्री—श्री लक्ष्मीकान्त च. भट्ट।
कोषाध्यक्ष—श्री खोडुभा दे. राणा।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री धरमशीभाई पटेल।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पोरबंदर

अध्यक्ष—श्री मणिभाई वोरा।
उपाध्यक्ष—श्री रसिकभाई बच्छराजानी (केन्द्र-व्यवस्थापक)
मन्त्री—श्री चन्दुलाल ठकराल।
कोषाध्यक्ष—श्री मुगटलाल थानकी।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, धारी

अध्यक्ष—श्री ताहेरभाई हीरानी।
मन्त्री—श्री जमनादास जोशी।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री ब्रजलाल ह. शोथीदशाणी।

उत्तर गुजरात विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सिद्धपुर

अध्यक्ष—श्री चन्दुलाल ज. भट्ट।
उपाध्यक्ष—श्री बदरुद्दीन ब्ल्यु (केन्द्र-व्यवस्थापक)
मन्त्री—श्री चिन्तामण गो. शिवापुरकर,
तथा श्री चन्द्रकान्त डा. शाह।
प्रचार-मन्त्री—श्री हरिकृष्ण ठाकर।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पाटण

अध्यक्ष—श्री वसन्तराय वैद्य (केन्द्र-व्यवस्थापक)
मन्त्री—श्री शंकरलाल शि. ठक्कर,
सहमन्त्री—श्री ठाकोरभाई एम. देसाई।

खेडा विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नडियाद

अध्यक्ष---श्री बहेचरदासजी शाह, बी. ए., एल. एल. बी. वकील।
उपाध्यक्ष---श्री सताभाई गो. पटेल।
मन्त्री---श्री शान्तिलाल पंड्या तथा श्री मोहनलाल म. शाह।
कोषाध्यक्ष---श्री पूजालाल त्रि. शुक्ल।
केन्द्र-व्यवस्थापक---श्री रतिलाल मू. दवे।

राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, आणंद

अध्यक्ष---श्री केशवलाल भा. पटेल, बी. ए., एल. एल. बी. वकील।
उपाध्यक्ष---श्री शकरभाई र. पटेल, बी. ए., बी. टी. कोविद ।
कार्याध्यक्ष---श्री फूलाभाई झ. पटेल, बी. ए. बी. टी. (शारदा हाईस्कूल)
मन्त्री---श्री उमियाशंकर ठाकर, कोविद, साहित्यालंकार।
उपमन्त्री---श्री सुबोधचन्द्र स्नातक, साहित्य रत्न।

भरूच विभाग

हिन्दी प्रचार सभा, भरूच

अध्यक्ष---श्री चन्दुलाल सेठ।
उपाध्यक्ष---श्री करसनभाई पटेल।
कोषाध्यक्ष---श्री वैकुंठलाल देसाई।
मन्त्री---श्री नटवरलाल सी. ईटवाला।
सहमन्त्री---श्री माणेकलाल पाछियापरावाला।

बड़ौदा विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, बड़ौदा

अध्यक्ष---श्री मोहनलाल भट्ट (मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा)।
कार्याध्यक्ष---श्री मनुप्रसाद ल. भट्ट (केन्द्र-व्यवस्थापक)।
कोषाध्यक्ष---श्री नटवरलाल देसाई, विशारद।
मन्त्री---श्री महादेव अ. वैशम्पायन।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पादरा

अध्यक्ष---श्री मूलजीभाई बी. पटेल, बी. ए.,।

उपाध्यक्ष—श्री ईश्वरभाई पटेल।
मन्त्री—श्री नाथालाल गो. मिस्त्री।
उपमन्त्री—श्री रणछोड़भाई पटेल।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री भीखाभाई ए. ठक्कर।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कोसिन्द्रा

अध्यक्ष—श्री शंकरभाई फू. पटेल।
मन्त्री—श्री शान्तिलाल चु. शाह।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री चम्पकलाल पू. शाह।

सूरत विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, सूरत

अध्यक्ष—श्री ईश्वरभाई ई. देसाई।
उपाध्यक्ष—प्रा. श्री मोहनलाल पा. दवे, एम. ए., एल. एल. बी.।
उपाध्यक्षा—श्रीमती लताबहन र. देसाई।
मन्त्री—श्री विपिन बिहारी चटपट तथा श्री मधुकर उ. शुक्ल।
हिसाब-मन्त्री—श्री साकेरचन्द सरैया।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री नृसिंहराम उपाध्याय।

स्मरणीय सहयोग

हमारे प्रदेशके विद्यालयों, महाविद्यालयों, और सार्वजनिक संस्थाओंने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको राष्ट्रीय रचनात्मक कार्य मानकर हृदयसे सहयोग दिया है। केन्द्र-व्यवस्थापक, प्रमाणित प्रचारक, तथा सहायक प्रचारक बन्धुओंने प्रदेशके कोने-कोनेमें राष्ट्रभाषाका सन्देश पहुँचाया है। समिति इन सभीके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

अन्य प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाओंके अलावा गुजरातमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके केन्द्र, अहमदाबाद, राजकोट, जामनगर, बड़ौदा, सूरत, नड़ियाद इत्यादि स्थानोंमे चल रहे हैं। सम्मेलनकी 'विशारद', 'साहित्य रत्न' परीक्षाओंमे प्रतिवर्ष सैकड़ों परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

'हिन्दी शिक्षक सनद' वर्ग भी पिछले बारह वर्षोंसे चल रहे है।

सभा-समारम्भ

हिन्दी-दिवस, गाँधी जयन्ती, चरखा द्वादशी, तुलसी जयन्ती, रवीन्द्र जयन्ती, गाँधी पुण्य दिवस,

तिलक पुण्य तिथि इत्यादि प्रसंगोंपर गण्यमान्य विद्वानोंके कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं।

प्रदेशके विभिन्न केन्द्रोंमें प्रमाण-पत्र वितरणोत्सवके आयोजन प्रति-वर्ष होते रहते हैं।

केन्द्र-निरीक्षक

प्रदेशमें फैले हुए केन्द्रोंके निरीक्षणके लिए सुयोग्य अनुभवी जिला केन्द्र निरीक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं। वे अपने निर्दिष्ट क्षेत्रमें समय समयपर केन्द्रमे जाकर मार्गदर्शन देते हैं।

कच्छ, सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात, अहमदाबाद व सांबरकाँठा जिला, खेडा, पचमहाल, भरूच, सूरत आदि स्थानोंमें केन्द्र-निरीक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं।

गुजरातसे राष्ट्रभाषा परीक्षाओंमें हर वर्ष जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका वर्षवार उन्नति क्रम इस प्रकार है :—

गुजरातका परीक्षार्थी उन्नति क्रम

वर्ष	गुजरात
१९३७	७६
१९३८	६३९
१९३९	२,१०१
१९४०	५,३०२
१९४१	१०,८२०
१९४२	६,३३५
१९४३	२१,४१५
१९४४	१५,३२४
१९४५	१२,३९६
१९४६	१३,०४५
१९४७	२३,८१०
१९४८	४७,४७६
१९४९	६८,२३०
१९५०	९३,५५८
१९५१	७९,५६१
१९५२	४३,७६६
१९५३	४४,०२७
१९५४	४७,७००
१९५५	४८,९५७
१९५६	५७,५९३

वर्ष	गुजरात
१९५७	४६,२८६
१९५८	४८,०५१
१९५९	५९,९९६
१९६०	६५,४१७
१९६१	७५,५६९
कुल	९,३७,४५०

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणें

स्व. ग. र. वैशम्पायनजीकी प्रेरणा तथा उनके प्रयत्नोंसे महाराष्ट्रमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्र-भापा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहले भी चल रहा था। इसमें माननीय श्री न. वि. उपाख्य, काका-साहब गाडगिल, श्री वि. मा. देशमुख, श्री पोपटलाल शहा महानुभावोंका स्नेह-सहयोग रहा। सन् १९३४ मे हिन्दी प्रचार संघ, पुणेंकी स्थापना हुई। इस संस्था द्वारा आरम्भमे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासका कार्य होता था। बादमें सन् १९३७ से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाओंका कार्य होने लगा। "संघ" ने हिन्दी प्रचारके कार्यमे वहुमुखी कार्य किया है। उसका अपना एक विशाल कार्यक्षेत्र है और वहाँके कार्यकर्ता नि.स्वार्थ भावसे सेवाकार्यमें संलग्न हैं। उसका अपना एक विशाल पुस्तकालय है। अभी "संघ" ने अपनी रजत जयन्ती १९५९ में धूमधामसे मनाई है।

सन् १९३४ में ही हिन्दी प्रचार कार्य करनेके उद्देश्यसे कोल्हापुरमें श्रीमद् दयानन्द निःशुल्क हिन्दी विद्यालयकी स्थापना श्री पं. नारायण शास्त्री वालावलकरने की।

सन् १९३८ से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षामे कोल्हापुर तथा करवीर क्षेत्रमे प्रारम्भ हुई। अन्य क्षेत्रोंमें भी हिन्दी प्रचारके सक्रिय प्रयत्न चलते रहे। पुणे, कोल्हापुरके साथ ही नासिकमें श्री कृ. ब. महाबळ गुरुजीने हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ किया था। बादमे श्री ह. शि. सहस्त्रबुद्धेजी वर्धाकी परीक्षाओंकी पढ़ाईका प्रबन्ध करने और श्री महाबळ गुरुजीकी सहायतार्थ नासिक पहुँचे। अहमदनगर, सोलापुर, राजापुर, चिपळूण, मालवण, रत्नागिरी आदि केन्द्रोंमें भी हिन्दी प्रचारका कार्य शुरू हो गया था।

काकासाहब कालेलकर तथा श्री शंकरराव देवने महाराष्ट्रके करीब २० स्थानोंमें हिन्दी प्रचारार्थ परिभ्रमण किया। इस प्रकार कई केन्द्रोंमें हिन्दी प्रचारका कार्य चलने लगा।

सन् १९३८ में श्री शंकरराव देवकी अध्यक्षतामें पुणेंमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका संगठन किया गया और श्री नाना धर्माधिकारी उसके मन्त्री-संचालक नियुक्त हुए। प्रचार क्षेत्रका विभाजन किया गया। बेंगुर्ला, बोर्डी ठाणें आदि स्थानोंमे परीक्षा केन्द्र खोले गए। हिन्दी प्रचार केन्द्रोंमे सवेतन प्रचारकोंकी नियुक्तिके लिए सन् १९३८ मे अमलनेरके श्री प्रताप सेठजीने ६००० रु. की जो उदार सहायता दी, उसने महाराष्ट्रके कामको बड़ी गति प्रदान की।

सन् १९४० में श्री शंकरराव देवजीने अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे दिया एवं इसके संचालनका भार तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणेंको सौपा गया। विद्यापीठने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यके लिए एक उपसमिति बनाई जिसके अध्यक्ष महामहोपाध्याय प्रा. श्री द. वा. पोतदार बनाए गए और श्री कृ. ज. धर्माधिकारीके स्थानपर श्री गो. प. नेने प्रचार-संचालनका कार्य करने लगे। ३ वर्ष तक यह कार्य तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ के अन्तर्गत चलता रहा।

सन् १९४३ में पुनः स्वतन्त्र संगठन किया गया जिसके अध्यक्ष महामहोपाध्याय श्री द. वा. पोतदार मन्त्री श्री माधवराव नेमाने एव संगठन मन्त्री, श्री गो. प. नेने चुने गए।

सन् १९४५ तक इस प्रकार कार्य करते रहनेके अनन्तर नवम्बर सन् १९४५ मे इस समितिके कुछ लोगोंने अहमदनगर जिलेके बेलापुर ग्राममे प्रस्ताव-द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिसे अपनी सम्बद्धता तोड़कर स्वतन्त्र रूपसे कार्य करने लगे और अपने मूल उद्देश्य तथा नीतिमे एकाएक परिवर्तन किया। इन्होंने अपनी एक अलग संस्था महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभाके नामसे सन् १९४६ में प्रारम्भ की।

पुनर्गठन

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके पदाधिकारियोंकी इस अवैधानिक कार्यवाहीके सम्बन्धमें उस समयके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी,प्रधान-मन्त्री श्री मौलिचन्द्र शर्मा तथा समितिके तत्कालीन मन्त्री श्री आनन्द कौसल्यायन बम्बईमे मिले। महाराष्ट्रके कार्यकर्ताओसे विचार-विनिमय किया गया। वे पुणें पहुँचे और नूतन मराठी विद्यालयमे एक सभा हुई; जिसमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके नवीन पदाधिकारियोंका चुनाव किया गया। श्री प्रा. वा. मा. दवडघाव अध्यक्ष चुने गए; और विधिवत् कार्य महाराष्ट्रमे चलने लगा। श्री गो. प. नेनेको उनकी इच्छानुसार मुक्त किया गया। एक वर्ष बाद सन् १९४६ मे सचालकके पदपर श्री पं. मु. डागरेजीकी नियुक्त हुई। तबसे लेकर आजतक श्री डागरेजी महाराष्ट्रमे राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको सम्हाल रहे हैं।

वर्तमान समितिकी कार्यकारिणी

अध्यक्ष——श्री यशवन्तरावजी चव्हाण।

कार्याध्यक्ष——श्री तर्कतीर्थ लक्षमण शास्त्री जोशी

उपाध्यक्ष——श्री काकासाहब गाडगीलजी (भू. पू. राज्यपाल, पंजाब) एवं मधुकररावजी चौधरी, (नगर विकास मन्त्री म. रा.)।

कोषाध्यक्ष——श्री श्रीनिवास मूंदड़ा।

अन्तर्गत लेखेक्षक——श्री माधवराव मा. धुमाळ।

संचालक——श्री पं. मु. डांगरे, पुणें।

'जयभारती' पत्रिकाका प्रकाशन

सन् १९४७ से महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे 'जयभारती' नामक एक मासिक

पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ किया गया जो समितिके मुखपत्रके रूपमें पूरे पन्द्रह साल बराबर चलता रहा। समय-समयपर हमने परीक्षोपयोगी तथा अन्य विशेषांक प्रकाशित होते रहते हैं। परीक्षार्थियोके लिए यह पत्रिका बड़ी उपयोगी सिद्ध हूई। "पत्रिका" का प्रकाशन फिलहालमें स्थगित है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन पुणेंमें सन् १९५१ के मई महीनेमें सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन श्री न. वि. गाडगीलजी तथा अध्यक्षता पं. वियोगीहरिजीने किया। इसी सम्मेलनके अवसरपर शान्ति निकेतनके आचार्य श्री क्षितिमोहन सेनको १५०१ रु. का प्रथम 'महात्मा गाँधी पुरस्कार' एवं ताम्रपट्ट सर्मपित किया गया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनकी योजना

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने, पुणेंमे राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनके निर्माणके सम्बन्धमे एक योजना बनाई है। इस भवनके लिए ८ हजार चौरस फुटकी एक खुली जगह खरीद ली गई है। इसका प्लान एस्टिमेट बनकर तैयार हो गया है, वह पुणे महानगरपालिका द्वारा स्वीकृत भी हो चुका है। भवनमें ३ लाख लागतका अनुमान है।

तुलसी महाविद्यालय

सन् १९५१ से समितिकी ओरसे तुलसी महाविद्यालय नामक एक महाविद्यालयको भी चलाया जा रहा है जिसमें राष्ट्रभाषा रत्न, अध्यापन विशारद, साहित्य-रत्न, साहित्य विशारद, आदि हिन्दीकी ऊँची परीक्षाओंकी पढ़ाईकी व्यवस्था की गई है। "समिति द्वारा" महाराष्ट्र सरकारकी ओरसे चलाई जा रही "हिन्दी शिक्षक सनद" परीक्षाके लिए वर्गकी व्यवस्था की जा रही है।

जिला समितियाँ

महाराष्ट्रके बढ़ते हुए कार्यको देखकर हर जिलेमे जिला समितियाँ स्थापित की गई हैं। इन जिला समितियोंकी देखरेखमें सभी केन्द्र प्रचार-कार्य कर रहे हैं। पूर्व खान्देश, पश्चिम खान्देश, नाशिक, अहमदनगर, ठाणा, कुलाबा, पुणें, रत्नागिरी, उत्तर सातारा, दक्षिण सातारा, शोलापुर, कोल्हापुर और गोमन्तक जिला समितियाँ हैं—

प्रकाशन

समितिने एक प्रकाशन विभाग भी खोला है, जिसकी ओरसे बापूकी बातें, पाठ-पद्धति, अमावसकी रात, साधारण चार्ट आदि प्रकाशित हो चुके हैं—

राष्ट्रभाषा प्राथमिक परीक्षा

राष्ट्रभाषाका प्राथमिक ज्ञान करा देनेके हेतु "प्रान्तीय समिति" की ओरसे "राष्ट्रभाषा प्राथमिक"

नामक एक प्रारम्भिक हिन्दी परीक्षा वर्धा समितिके तत्वावधानमें सन् १९५७ से संचालित हो रही है। इस परीक्षामें प्रति वर्ष ६ हजारसे भी अधिक परीक्षार्थी महाराष्ट्रसे सम्मिलित होते हैं—अबतक इसके अन्तर्गत १९१४६ परीक्षार्थी लाभ उठा चुके हैं।

सर्वाधिक प्रचारके लिए विशेष पुरस्कारकी योजना

जिलों तथा सभी शहरोंमे वर्षमें सर्वाधिक राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य करनेके उपलक्ष्यमें जिला राष्ट्र-भाषा प्रचार समितिको २१ रु. का श्री मोहन पुरस्कार (प्रथम) तथा शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको ११ रु. का 'श्री मोहन पुरस्कार' (द्वितीय) सन् १९५९ से देना आरम्भ किया गया है। उसी प्रकार प्राथमिक परीक्षामें सर्वाधिक संख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित करनेवाले जिलोंको "राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन' नामक रु. ११ का प्रथम तथा रु. ७ का द्वितीय पुरस्कार सन् १९६० की परीक्षाओंसे समितिकी ओरसे प्रतिवर्ष देना आरम्भ किया गया।

परीक्षार्थी संख्या एवं प्रचार केन्द्र तथा प्रचारक आदि

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा किए गए प्रचारके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप, प्रति वर्ष करीब २४ हजार परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

महाराष्ट्रमें वर्धा समितिकी परीक्षाओंके लिए ३६२ परीक्षा केन्द्र चल रहे हैं। प्रचारकोंकी संख्या १६०२ है। करीब १०० रा. भा. विद्यालय चल रहे हैं। अबतक लगभग ६ लाखके करीब परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। क्रमसे वर्षवार उन्नतिक्रम इस प्रकार है :—

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या	वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९३७	३१४	१९५०	३८,५८४
१९३८	१,११८	१९५१	३७,७७७
१९३९	४,२२२	१९५२	३२,२२६
१९४०	६,४००	१९५३	२३,०३५
१९४१	१०,५६८	१९५४	२०,०७९
१९४२	५,५५४	१९५५	१९,०४४
१९४३	२२,७१०	१९५६	२१,६५३
१९४४	१८,४९५	१९५७	१८,४०७
१९४५	२१,७४५	१९५८	१८,५२८
१९४६	१५,६८१	१९५९	२१,१६६
१९४७	१८,९८९	१९६०	२२,१२८
१९४८	२३,४४६	१९६१	२३,४४२
१९४९	३३,४६६		

सन् १९६१ अन्त तककी महाराष्ट्रकी कुल परीक्षार्थी-संख्या— ४,८७,७७७

महाराष्ट्रकी जिला तथा शहर राष्ट्रभाषा-प्रचार समितियाँ

वर्तमान-पदाधिकारी सन् १९६२–६३

अहमदनगर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदनगर

अध्यक्ष—श्री ग. गो. फड़के, अहमदनगर।
उपाध्यक्ष—श्री द. बा. डावरे, भिंगार।
मन्त्री—श्री रा. प. पटवर्धन, अहमदनगर।
सहायक मन्त्री—श्री रा. ता. हिरे, जामगाँव।
कोषाध्यक्ष—श्री सौ. सरस्वतीबाई फड़के, अहमदनगर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री शं. भ. अंदुरे, खरवंडी-कासार, श्री दि. श्री. देशमुख, पाथर्डी, श्री शेख यूसुफ शेख इब्राहीम, राशीन।

कुलाबा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रोहा

अध्यक्ष—श्री यशवन्तराव देशमुख, रोहा।
उपाध्यक्ष—श्री दि. गो. आवळसकर, रोहा।
मन्त्री—श्री शं. पा. पाध्ये, रोहा।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री न. वि. पोतनीस, नागोठणा, श्री रा. ल. महाडीक श्रीवर्धन।

कोल्हापुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इचलकरंजी

अध्यक्ष—श्री लक्ष्मणराव पाटील।
कोषाध्यक्ष—श्री वि, रा. पापड़े, इचलकरंजी।
कार्याध्यक्ष—श्री वि. रा. थोरात, नूला।
लेखेक्षक—श्री ग. गो. पाटील, इचलकरंजी।
मन्त्री—श्री बा. गु. कोळी, इचलकरंजी।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री वि. रा. थोरात, नूल, श्री ब. आ. पाटील, इचलकरंजी, श्री प्र. ना. जोशी, कागल।

जलगाँव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जलगाँव

कार्याध्यक्ष—श्री रा. वा. पाटील, जलगाँव।
उपाध्यक्ष—श्री घ. ग. नारखेड़े, किन्ही।
कोषाध्यक्ष—श्री सी. म. तिवारी, जलगाँव।
मन्त्री—श्री का. म. पाटील, जलगाँव।
लेखेक्षक—श्री ग. लो. भिरूड़, पिंपळगाँव।

उपमन्त्री——श्री गो. दे. चौधरी, पाडलसा।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि——श्री द्वारकाबाई पाटील, जलगाँव, श्री कृ. पा. पाटील, पाडलसा, श्री चुनीभाई रावल, जलगाँव, श्री सु. टो. कोल्हे, बामणोद।

ठाणें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ठाणें

अध्यक्ष——श्री कृष्णाप्रसाद उपाध्याय, ठाणें।

कोषाध्यक्ष——श्री कनुभाई गुजराती, ठाणें।

मन्त्री——श्री श्रीराम देसाई, ठाणें।

लेखेक्षक——श्री दि. खं. कानडे, भाईदर।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि——श्री कनुभाई गुजराती, ठाणे, श्री स. बा. तेंडुलकर, वसई, श्री कृष्णप्रसाद उपाध्याय, ठाणें।

धुळें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, धुळें

अध्यक्ष——श्री पं. स. करंजीकर, शिन्दखेड़े।

कार्याध्यक्ष——श्री ग. मा. पाठक, धुळें।

कार्यवाह——श्री य. भा. स्वर्गे, नंदुरबार।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि——श्री य. भा. स्वर्गे, नंदुरबार, श्री ना. ब. चौधरी, नंदुरबार, श्री ब. कृ. पवार, तळोदें।

नासिक जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कळवण

अध्यक्ष——श्री पं. ध. पाटील, नासिक।

उपाध्यक्ष——श्री द. वि. केतकर, मनमाड़।

कार्याध्यक्ष——श्री तु. का. पाटील, देवळे।

कोषाध्यक्ष——श्री मु. ग. अहिरे, रावळगाँव।

मन्त्री——श्री भा. अ. चान्दोरकर, निवाणें।

उपमन्त्री——श्री नि. का. शिंपी, कळवण।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि——श्री मु. ग. अहिरे, रावळगाँव, श्री मा. अ. चान्दोरकर, कळवण, श्री खं. दा. पाटील, कळवण।

पुणें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बारामती

अध्यक्ष——श्री शं. के. शिन्दे, मालेगाँव–बुद्रुक।

उपाध्यक्ष——श्री अ. प्र. कवीश्वर, लोणावळें।

कोषाध्यक्ष——श्री प्र. ब. राजोपाध्ये, मालेगाँव–बुद्रुक।

मन्त्री—श्री वि. पं. भगली, बारामती।

सहायक मन्त्री—श्री शं. भ. पंढरी, बारामती।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री वि. पं. भगली, बारामती, श्री अ. प्र. कवीश्वर, लोणावळें, श्री ग. शं. वाघ, मालेगाँव–बुद्रुक, श्री श्री. ग. भोसले, बारामती।

रत्नागिरी जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रत्नागिरी

अध्यक्ष—श्री मे. द. शिरोड़कर, (सम्पादक 'वैनतेय') सावन्तवाड़ी।

सहायक मन्त्री—श्री भा. ज. घैसास, गुहागर, श्री शां. कृ. तांड़ेल, वेंगुर्ले।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री शां. कृ. तांड़ेल, वेंगुर्ले, श्री बा. स. नाईक, सावन्तवाड़ी।

सांगली जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सांगली

अध्यक्ष—श्री सं. नि. पाटील, सांगली।

कार्याध्यक्ष—श्री सौ. इंदिराबाई पेंडसे, सांगली।

कोषाध्यक्ष—श्री आ. दा. कारदगेकर, सांगली।

लेखेक्षक—श्री बा. ल. तमोली, कोंत्यबा–बोबलाद।

मन्त्री—श्री अे. दा. कांबळे, सांगली।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री ता. बा. शिन्दे, सांगली, श्री र. पां. भाट, पारे, श्री आ. दा. कारदगेकर, सांगली, श्री ना. ता. महाजन बुधगाँव।

सातारा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सातारा

अध्यक्ष—श्री प्रा. आ. भा. मगदूम, सातारा।

उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. साळुंखे, कराड, श्री शं. कृ. वेळमकर, सातारा।

कोषाध्यक्ष—श्री यू. चां. बागवान, कराड।

लेखेक्षक— प्रा. रा. ना. क्षीरसागर, सातारा।

प्रधान-मन्त्री—श्री माधवराव धुमाळ, सातारा।

सहायक-मन्त्री—प्रा. व. रा. घाटगे, सातारा।

प्रचार-मन्त्री—श्री ज. श्री. घाडगे, कामेरी।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—प्रा. रा. ना. क्षीरसागर, सातारा, श्री पं. न. पाटक, सातारा, श्री ना. मा. भोसले, फलटण, श्री यू. चां. बागवान, कराड़, श्री ज. श्री. घाडगे, कामेरी।

सोलापुर जिला राष्ट्रभाषा समिति, बार्शी

अध्यक्ष—श्री नगराजजी पुनमिया, बार्शी।

उपाध्यक्ष—श्री माधवरावजी बुडूख, बार्शी।

मन्त्री—श्री शं. अ. पाठक, बार्शी।
सहायक मन्त्री—श्री अ. न. सोनार, बार्शी।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री शं. अ. पाठक, बार्शी, श्री वि. फ. हरकुणी, अक्कलकोट, श्री दा. वि. आपटे, पंढरपुर।

शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समितियाँ

कोल्हापुर शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

अध्यक्ष—श्री मेजर दादासाहेब निंबाळकर।
कार्याध्यक्ष—श्री गो. द. छत्रे।
मन्त्री—श्री वा. गं. महाजन।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री बा. कृ. जोशी, कोल्हापुर।

पुणें शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणें

अध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रामविलास मून्दड़ा।
कोषाध्यक्ष—श्री ग. रा. वर्धे।
मन्त्री—श्री मा. बा. आळेकर।
उपमन्त्री—सुश्री प्रमिला केळकर।
अन्तर्गत-लेखेक्षक—श्री म. मो. रावेतकर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री मा. बा. आळेकर, श्री भ. ना. कानड़े।

सिन्धुनगर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कल्याण-कैम्प

अध्यक्ष—श्री दयालदास सा. हुकुमताणी।
उपाध्यक्ष—श्री थधासिंह गुरुबक्षसिंहाणी।
प्रधानमन्त्री—श्री हरिबक्षराय मोटवानी।
परीक्षा-मन्त्री—श्री दौलतराम तेजवाणी।
प्रचार-मन्त्री—श्री टिलूलाल ठारवाणी।
अर्थ-मन्त्री—श्री कर्तारसिंह नागवाणी।
प्रकाशन-मन्त्री—श्री लक्ष्मणदास वधवा।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री मनोहरलाल बनाणी, श्री परमानन्द पंजाबी, श्री द. सा. हुकुमताणी, श्री वसूराम डी. पंजाबी।

सोलापुर शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सोलापुर

अध्यक्ष—श्री गोविन्दलालजी अवस्थी।

कार्याध्यक्ष—श्री काशीताई कुलकर्णी।
प्रचार-मन्त्री—श्री डॉ. कृ. शे. मार्डीकर।
कोषाध्यक्ष—श्री रमाबाई नातू।
मन्त्री—श्री ज. ना. पंडित।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री द. गो. शित्रे।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेंसे सम्बद्ध संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नसिराबाद (जलगाँव)

अध्यक्ष—श्री द. गो. मोहरीर।
उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. वाणी।
मन्त्री—श्री बा. गो. कुलकर्णी।
उपमन्त्री—श्री ना. ग. भावसार।
सदस्य—श्री के. गो. सन्त, श्री रा. शं. देशपांडे, श्री भ. चिं. घोड़कर, श्री जा. रा. डहाके, श्री स. वि धर्माधिकारी, श्री भी. मा. पाटील, श्री रा. गं. चौधरी, श्री रा. मो. महाजन, श्री यशवन्त बु. गर्गे, श्री कृ. वि. कानुगो, सुश्री मालती द. मोहरीर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री के. गो. सन्त।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणें ७८८ ब, सदाशिव पेठ, पुणें—२

कार्यकारिणी

अध्यक्ष—प्रा. डॉ. न. का. घारपुरे।
कार्याध्यक्ष—श्री द. स. थत्ते।
कोषाध्यक्ष—श्री चिं. प. खरे।
प्रधान-मन्त्री—श्री ज. गं. फगरे।
कार्यकारिणी-सदस्य—श्री द. स. थत्ते, श्री ज. गं. फगरे, श्री मु. ना. केळकर, श्री शं. ज्यो. धामुड़े, श्री भ. ना. कानडे, श्री के. वासुदेवराव।

व्यवस्था-समिति

अध्यक्ष—प्रा. डॉ. न. का. घारपुरे।
उपाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा. मूदन्ड़ा।
सदस्य—श्री न. च. दोरस्वामी, श्री सुब्रह्मण्यम्, श्री लक्ष्मीबाई भांडारी।
शिक्षा-विभाग-प्रमुख—श्री मु. ना. केळकर।
वाचनालय-प्रमुख—श्री भ. ना. कानड़े।
रास्ता पेठ शाखा-प्रबन्धक—श्री. के. वासुदेवराव।

अन्तर्गत लेखेक्षक—श्री चं. अ. इनामदार।

प्रान्तीय-समिति-प्रतिनिधि—श्री ज. गं फगरे।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणें

महाराष्ट्रके 'पुणें' शहरमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत यह संस्था हिन्दी प्रचारका कार्य कर रही है। इसकी स्थापना महात्मा गाँधीके हाथों सन् १९३४ में हुई। इसके द्वारा हिन्दी प्रचार का बहुत सुदृढ़ ढंगसे कार्य हो रहा है। प्रारम्भमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जाते थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना होनेपर अब इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी भेजे जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे यह सम्बद्ध है।

हिन्दी प्रचार करनेवाली एक पुरानी संस्थाके रूपमें इस संस्थाका विशेष महत्त्व है। अबतक कई हजार परीक्षार्थी इसके द्वारा हिन्दीकी शिक्षा ले चुके हैं।

इसका अपना एक बड़ा पुस्तकालय है जिसमें ८००० पुस्तकें हैं। इसमें उच्च हिन्दी परीक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकोंका भी एक विभाग है।

सन् १९४० में पुणेंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन हुआ था। तब इसके कार्य-कर्ताओंने उसे सम्पन्न करनेमें बड़ी सहायता पहुँचाई थी।

इसके प्रमुख कार्यकर्ताओंमे स्व. ग. र. वैशम्पायन, प्रा. प्र. रा. भुपटकर, स्व. शं. दा. चितले, श्रीमती सोनुताई काळे, श्री ज. गं. फगरे आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके अबतकके अध्यक्षोंमें श्री न. बी. गाड़गील, श्री द. वा. पोतदार, श्री न. का. घारपुरे आदिके नाम उल्लेखनीय है।

हिन्दी-मराठी अनुवादमाला भाग १, २, ३, संघने प्रकाशित की है।

संघ द्वारा विद्यार्थी सम्मेलन प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इसमें मराठीसे हिन्दीमें अनूदित नाटक खेलना एक विशेषता रही है।

सन् १९६० मे महाराष्ट्रके तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीकी अध्यक्षतामे संस्थाकी रजत जयन्ती मनाई गई।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहले बम्बईमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य प्रारम्भ किया गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने १९१८ में अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशन-के अवसरपर राष्ट्रभाषा हिन्दीके द्वारा भारतकी राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता सुदृढ़ करनेके लिए हिन्दीके प्रचार कार्यको राष्ट्रकी विधायक प्रवृत्तियोंमें महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसका प्रभाव बम्बईपर भी पड़ा। प्रारम्भमें राष्ट्रभाषाके प्रेमसे प्रेरित होकर जिन व्यक्तियोंने हिन्दी प्रचारके लिए बम्बईमें कार्य किया, उनमें श्री विट्ठलभाई पटेल, स्व. जमनालालजी बजाज, श्री राजा गोविन्दलाल बन्सीलाल पित्ती, श्री बेलजी लखनसी

नप्पू, स्व. पेरिन बेन केप्टन, डा. ना. सु. हार्डिकर आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। उन दिनों श्रीकृष्णलालजी वर्मा, श्री भा. ग. जोगलेकरजी तथा श्री ए. शंकरन्‌जी जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओंका सहयोग प्राप्त हुआ,जिन्होंने अनेक कठिनाइयोंका सामना कर हिन्दी प्रशिक्षण वर्ग चलाकर राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यका सूत्रपात किया। सन् १९२१ में स्थानीय कॉंग्रेस हाउसके अहातेकी कीर्ति बिल्डिंगमें कॉंग्रेसकी ओरसे हिन्दी सीखनेके लिए वर्ग खोला गया। इस वर्गके प्रथम विद्यार्थी स्व. श्री विट्ठलभाई पटेलके भतीजे श्री ईश्वरभाई पटेल थे। फिर अनेकों गुजराती, मराठी प्रेमी राष्ट्रभाषा सीखनेके लिए आने लगे। सन् १९२४ के जनवरी महीनेमें बम्बई म्युनिसिपल कार्पोरेशनके द्वारा प्रायोगिक तौरपर हिन्दीकी पढ़ाई शुरू की गई। स्थानीय मारवाड़ी सम्मेलनने हिन्दीकी पढ़ाईमें बड़ा सहयोग दिया। हिन्दी अध्यापकोंको प्रशिक्षित करनेकी ओर भी ध्यान दिया गया।

सन् १९३० का 'नमक सत्याग्रह आन्दोलन' हिन्दीके प्रचार कार्यको बड़ा बल देनेवाला सिद्ध हुआ। १९३१ में कुछ स्थानीय उत्साही व्यक्तियोंने हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना की जिसके अध्यक्ष श्री बेवजी लख-नसी नप्पू तथा मन्त्री श्री रा. शकरन् हुए और उनके द्वारा हिन्दी वर्ग शुरू किए गए। १९३५ मे उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्दजीकी उपस्थितिमें स्व. जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामे हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना की गई। इससे हिन्दी-प्रचारके कार्यको संगठित रूप मिला। खार, माटुंगा, गिरगॉंव आदि स्थानोंमे हिन्दी प्रचारके लिए जो पृथक्-पृथक् वर्ग चलते थे, वे इस सभाके अन्तर्गत हो गए। अबतक इन वर्गोंमे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंकी पढ़ाईका प्रबन्ध था। १९३६ के जून मासमे ही श्री शंकरन्‌जी को मद्रास जाना पड़ा अतः संगठकके रूपमें श्री कान्तिलाल जोशी नियुक्त किए गए।

सन् १९३७ मे वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर बम्बईकी हिन्दी प्रचार सभा इससे सम्बद्ध हुई और बम्बईके विद्यापीठको राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (पूर्वनाम हिन्दी प्रचार समिति) की परीक्षाओके लिए तैयार किया जाने लगा। प्रान्तीय संचालक श्री कान्तिलाल जोशी नियुक्त हुए।

हिन्दीके विकासका इतिहास हमारे स्वतन्त्रता संग्रामसे बहुत कुछ जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे हमारा स्वतन्त्रता आन्दोलन प्रगति करता गया, वैसे-वैसे हिन्दी का कार्य भी बल पकड़ता गया। सन् १९४२ में वर्धामें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। कुछ हिन्दी वर्गोंने हिन्दुस्तानीके इस नवीन कार्यको अपनाना चाहा पर अधिकांश वर्गोंने तथा राष्ट्रभाषा प्रचारकोंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके कार्यको ही चालू रखना उचित समझा। १० अक्तूबर, सन् १९४६ को बम्बईके प्रचारकों आदिकी एक बैठक स्थानीय आर्यन एज्युकेशन सोसाइटी हायस्कूलमें बुलाई गई, जिसमें यह निर्णय हुआ कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका कार्य ही चालू रखा जाए। फलस्वरूप बम्बईमें हिन्दी प्रचारका जो कार्य चल रहा था, उसकी दो धाराएँ बनीं। देवनागरी लिपिके द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका जो राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य था वह बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अन्तर्गत हुआ और अरबी लिपिमें एवं देवनागरीके साथ हिन्दुस्तानी का जो काम शुरू हुआ, वह हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके अन्तर्गत हुआ।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अध्यक्ष सन् १९४५ से १९५५ तक श्री गोविन्दलाल बन्सीलाल रहे। उनके पश्चात् माननीय श्री मंगलदास जी पकवासा सन् १९५६से १९५८ तक अध्यक्ष रहे। इनके पश्चात् महाराष्ट्र राज्य विधान सभाके भू.पू. अध्यक्ष मान. श्री स. ल. सिलम सभाके वर्तमान अध्यक्ष है।

परीक्षार्थी-संख्या

सभाके तत्वावधानमें प्रतिवर्ष २८ हजारसे भी अधिक परीक्षार्थी, समितिकी विभिन्नप रीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। अबतक सभाके तत्वावधानमें करीब ४ लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं। परीक्षार्थी उन्नतिक्रम तथा शिक्षणके प्रचार आदिका प्रारंभसे अबतकका ब्यौरा वर्षानुसार नीचे दिया जा रहा है।

उन्नतिक्रम

हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दी-कक्षाओंका आयोजन प्रारम्भमें किया जाता रहा। हिन्दीका पढ़ना क्रमबद्ध हो इस दृष्टिसे परीक्षा प्रणालीको अधिक महत्व दिया गया। हिन्दी प्रचार कार्यकी प्रगति निम्नलिखित परीक्षार्थी-संख्याके आकड़ोंसे स्पष्ट होगी—

वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	परीक्षा-केन्द्र	शिक्षण-केन्द्र	राष्ट्रभाषा-प्रचारक
१९३५	४३०	४	१५	३१
१९३६	५५७	५	१५	३५
१९३७	६३०	६	१८	४४
१९३८	१,१४०	७	२२	५२
१९३९	२,१०८	८	४०	६५
१९४०	२,०४४	८	४२	६८
१९४१	३,३२५	१०	५५	८२
१९४२	१,७३९	१०	५८	८७
१९४३	४,७४९	१४	६५	९३
१९४४	३,९२२	१४	६८	९८
१९४५	४,३३७	१५	७७	१०४
१९४६	५,४७१	१७	८२	१३९
१९४७	८,३४४	१८	८८	१५९
१९४८	१३,३०८	२२	११२	२१५
१९४९	१५,५११	२३	१३५	२८७
१९५०	२०,६८२	२५	१५५	३१५
१९५१	२१,८३१	२८	१८०	३८०
१९५२	२०,२५१	३५	१८२	४६३
१९५३	१५,९०९	३६	१८५	५३६
१९५४	१६,४५६	३७	१८६	५८०
१९५५	२१,५८५	३८	१९०	६७४
१९५६	२९,९१३	४६	१९५	७४८

सभाका कार्यक्षेत्र

सभा द्वारा हिन्दीका जो प्रचार कार्य हो रहा है, वह बम्बई एवं उसके उपनगरोंमें विस्तृत रूपसे फैला हुआ है। कार्य संचालनकी दृष्टिसे सभाके कार्यक्षेत्रके निम्नानुसार विभाग किए गए है :—

(१) बम्बई दक्षिण विभाग, (२) बम्बई उत्तर विभाग, (३) बम्बई उपनगर (पश्चिम रेल्वे) विरारतक, (४) बम्बई उपनगर (मध्य रेल्वे) मुलुन्द तक।

सभाका कार्यालय गिरगाँव, काँग्रेस हाऊस, विट्ठल सदनमें है।

सभाका संगठन

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा रजिस्टर्ड संस्था है। उसमें निम्नलिखित श्रेणियोंके सदस्य हैं :—

संरक्षक, पोषक, आजीवन, साधारण, प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, उपाधिधारी, अधिकृत उपाधि-धारी तथा सम्मानित। सभाकी सदस्य संख्या १२०० से अधिक है। सभाके संगठनमें कार्य समिति तथा व्यवस्थापिका समिति दो प्रमुख समितियाँ हैं।

सभाके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री स. ल. सिलम (भूतपूर्व अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य विधान सभा)

उपाध्यक्ष—श्री सुलोचना मोदी (भूतपूर्व मेयर बम्बई नगरपालिका)

उपाध्यक्ष—श्री रामसहाय पाण्डेय (भूतपूर्व उपाध्यक्ष, बम्बई प्रदेश काँग्रेस समिति तथा वर्तमान लोकसभाके सदस्य।)

कोषाध्यक्ष—श्री शिवकुमार भुवालका।

मन्त्री-संचालक—श्री कान्तिलाल जोशी।

शिक्षण-केन्द्र, विद्यालय, महाविद्यालय

सभाके अन्तर्गत मान्य शिक्षण केन्द्र विद्यालय एवं महाविद्यालय राष्ट्रभाषाकी पढ़ाईके लिए चलाए जाते हैं। शिक्षण केन्द्रोंकी संख्या ३० तथा विद्यालयोंकी संख्या ७४ है। १६ महाविद्यालय भी सभाके तत्वावधानमें चल रहे हैं। इनमें राष्ट्रभाषा रत्नकी पढ़ाईकी व्यवस्था है।

परीक्षा-केन्द्र

वर्षमें दो बार समितिकी राष्ट्रभाषा रत्न तककी परीक्षाओंकी व्यवस्था विभिन्न केन्द्रोंमें होती है। ५१ राष्ट्रभाषा परीक्षा केन्द्र बम्बईके सभी विभागोंमें फैले हुए है।

कान्तिलाल कारिया सर्वप्रथम राष्ट्रभाषा विद्यालय विजय पद्म

सभाकी ओरसे वर्ष सन् १९६० से यह विजय पद्म उस प्रचार केन्द्रको दिया जाता है जिसकी दो

सत्रोंकी परीक्षाओंकी परीक्षार्थी संख्या सर्वाधिक है। अभी १९६०–६१ के लिए इस विजयपद्म का विजेता राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, परेल रहा है।

प्राथमिक परीक्षा

सभाकी ओरसे सितम्बर सन् १९५६ रा. भा. प्रारम्भिकसे पूर्व 'राष्ट्रभाषा प्राथमिक' परीक्षाका आयोजन किया गया है। इसमें करीब ५६ हजार से अधिक परीक्षार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। अबतक करीब २१ हजार परीक्षार्थी इस परीक्षामें सम्मिलित हो चुके हैं।

गांधी जयन्ती निबन्ध स्पर्धा

सभा द्वारा प्रतिवर्ष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीकी पुण्यस्मृतिमें उनकी जयन्तीके उपलक्षमें हिन्दीमें गाँधी जयन्ती निबन्ध स्पर्धाका आयोजन किया जाता है। यह स्पर्धा उच्च एवं निम्न कक्षाओके विद्यार्थियोंके लिए इस प्रकार 'क' और 'ख' श्रेणियोंमें विभाजित की गई हैं। इसमें राष्ट्रभाषाके वर्गोंके विद्यार्थी, स्थानीय स्कूल, कालिजोंके विद्यार्थी प्रतिवर्ष काफी संख्यामें सम्मिलित होते हैं। इस स्पर्धामे प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय आनेवालोंको क्रमशः २५, १५ तथा १० रु. पुरस्कार स्वरूप दिये जाते हैं।

राष्ट्रभाषा शिविर

राष्ट्रभाषा प्रचारकगण एक जगह एकत्रित होकर विचार-विनिमय कर सकें, इस उद्देश्यसे राष्ट्रभाषा शिबिरका आयोजन सन् १९५९ से किया जा रहा है। इस अवसरपर गण्यमान्य विद्वानोंके सारगर्भित भाषण एवं राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें व्यावहारिक ज्ञान तथा प्रत्यक्ष परिचय कराया जाता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका चौथा अधिवेशन

सन् १९५२ में बम्बईमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका चौथा अधिवेशन माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। इस अवसरपर महात्मा गाँधी पुरस्कार वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीकी सेवामें समर्पित किया गया।

राष्ट्रभाषा-भवन योजना

सभाके बढ़ते हुए कार्यको देखते हुए आज जो स्थान कार्यालयके लिए उसके पास है, वह पर्याप्त नहीं है। हिन्दी विद्यालय, वृहद् पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन, रंगमंच आदि प्रवृत्तियोंको सुचारु रूपसे सम्पन्न करनेके लिए बम्बईमें राष्ट्रभाषा भवनका निर्माण करना नितान्त आवश्यक हो गया है। इसके लिए भवन निधिमें करीब २५ हजार रूपये एकत्रित भी हो चुके हैं। एक भवन समितिका आयोजन किया गया है जिसमें प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, आजीवन पोषक, संरक्षक आदि सभी श्रेणी के सदस्य हैं। इस समितिमें व्यवस्थापिका समिति, कार्य समिति एवं कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंको भी सम्मिलित किया गया है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयसे प्राप्त अनुदान

सभाने केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयको हिन्दी प्रचारकी एक योजना बनाकर भेजी थी, जिसपर विचार कर केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयने ६३०० रु. की सहायता शिविर, पुस्तकालय एवं स्पर्धाओं आदिके लिए स्वीकार की। इस प्रकारकी सहायता सरकारकी ओरसे प्रथमबार प्राप्त हुई है।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

सभाने राष्ट्रभाषा पुस्तकालयकी व्यवस्था सन १९४७ से की है। देशके विभाजनके पश्चात् राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कराँचीके पुस्तकालयकी पुस्तकें श्री सूर्यप्रकाश बम्बई ले आए और उन्होंने ये पुस्तकें सभाको सर्मापित कीं। इन पुस्तकोंसे पुस्तकालयका आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे इसमें और पुस्तकें खरीदकर रखी गई। इस समय हिन्दी साहित्यके सभी अंगोंपर पुस्तकालयमें ३१९४ पुस्तकें हैं। इस वर्ष केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयसे पुस्तकोंके लिए रु. ३००० का अनुदान प्राप्त हुआ। इस रकमसे पुस्तकें खरीदकर इसे और समृद्ध किया गया। इसमे पाठ्य पुस्तक विभाग भी रखा गया है। इसमें साहित्य विशारद, साहित्य रत्न, राष्ट्रभाषा रत्न, राष्ट्रभाषा आचार्य, बी. ए., एम. ए. आदि परीक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकोंकी अधिक प्रतियाँ रखी गईं हैं। राष्ट्रभाषा प्रचारकोंको विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं।

विविध प्रवृत्तियाँ, स्पर्धाएँ

सभाकी ओरसे विविध स्पर्धाओंका आयोजन, किया जाता है उनमे प्रमुख ये हैं—

(१) **भाषण प्रतियोगिता**—यह स्पर्धा राष्ट्रभाषा विद्यालयोंमें होती है। जो विद्यालय सर्व प्रथम आता है उसे सेठ गोवर्धनदास वल्लभदास चतुर्भुज विजयपद्म दिया जाता है। (२) नागरी सुलेखन स्पर्धा, (३) काव्य-पठन स्पर्धा, (४) काव्य-रचना स्पर्धा, (५) नाट्य-स्पर्धा।

स्पर्धाओंमें जो सर्वप्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आते हैं उन्हें सभाकी ओरसे पुरस्कार दिए जाते हैं।

हिन्दी-दिवस—प्रतिवर्ष १४ सितम्बरको 'हिन्दी-दिवस' बड़े उत्साहसे मनाया जाता है। सभाकी प्रेरणासे स्थानीय स्कूल कालेज भी 'हिन्दी-दिवस' को उत्साहसे मनाते हैं।

राष्ट्रभाषा स्नेह-सम्मेलन—बम्बईके सभी राष्ट्रभाषा प्रचारक एक मंचपर एकत्रित हों, इस दृष्टिसे प्रति वर्ष सभाकी ओरसे राष्ट्रभाषा स्नेह-सम्मेलनका आयोजन किया जाता है। इसमे विद्वानोंके भाषण, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सहभोजन आदि कार्यक्रम रहते हैं।

पदवीदान समारोह—सभाकी ओरसे प्रतिवर्ष कोविद उपाधिके वितरणके लिए पदवीदान समारोह आयोजित किया जाता है। इस अवसरपर दीक्षान्त भाषणके लिए हिन्दीके विद्वानोंको तथा समाजसेवियोंको आमन्त्रित किया जाता हैं। अबतक जितनके दीक्षान्त भाषण हुए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, सेठ जमनालालजी बजाज, आचार्य विनोबा भावे, आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', सुश्री महादेवी वर्मा, सेठ गोविन्ददास, महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन, डॉ. बलदेवप्रसाद, स्व. बालासाहब खेर, श्री यशवन्तराव चव्हाण, श्री मामा वरेरकर।

सभा, अनेक संघर्षोंके बीच बम्बईमें कार्य कर रही है। लगभग १००० राष्ट्रभाषा प्रचारक निष्ठा-पूर्वक सेवाभावसे इस राष्ट्रीय कार्यमें सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं। शिक्षण संस्थाएँ, बम्बई नगरपालिका तथा स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं फलस्वरूप बम्बईमें हिन्दी प्रचारका कार्य दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९३६ मे जहाँ केवल ४३० परीक्षार्थी बम्बईसे हिन्दीकी परीक्षाओंमे बैठे थे, वहाँ आज यह संख्या प्रतिवर्ष लगभग २९–३० हजार तक पहुँची है।

राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, माटुंगा

यह संस्था बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अन्तर्गत ३१ वर्षोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य बम्बई मे कर रही है। शुरूमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए यहाँ विद्यार्थी तैयार किए जाते थे, बादमें जबसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना, हुई इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जा रहे है।

अबतक इसके द्वारा ३०००० विद्यार्थी हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। सन् १९५८ में सभाने अपनी रजत जयन्ती बड़े समारोहसे मनाई। उस समय हिन्दीके ख्यात कवि और नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा अध्यक्षके रूपमें आमन्त्रित किए गए थे।

सभाके कार्यक्रमोंके लिए हिन्दीके ख्यातनामा लेखक सेठ गोविन्ददासजी, रामधारी सिह 'दिनकर', पं. सुदर्शनजी, श्री महावीर अधिकारी आदिका सहयोग मिला है।

सभाके पास एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें हिन्दी साहित्यके सभी अंगोंकी पुस्तकें संग्रहीत है।

सभा एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी स्थापनाके आरम्भके कालमें श्री आर. शंकरन्, श्री एच. के. गुण्डूराव, श्री एस. कृष्ण अय्यर, आदिका इसे पूरा सहयोग मिला है। इसके कार्यकर्ता बड़े उत्साहसे हिन्दी प्रचारका कार्य कर रहे हैं। प्रतिवर्ष लगभग १००० छात्र सभाके वर्गोंमें हिन्दी सीखते हैं।

इसके वर्तमान प्रमुख कार्यकर्ताओंमें श्री टी. एम. एम. मणिक्कर, श्री पी. एस. गोपाल कृष्णन्, श्री के. एस. राघवन, श्री जी. एस. मणि, तथा श्री एस लक्ष्मणके नाम उल्लेखनीय हैं।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

सन १९३७–३८ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका आरम्भ हुआ। इसका कार्यक्षेत्र विदर्भके ८ जिलों तक ही प्रारम्भ में मर्यादित रहा। पहले अँग्रेजी शासनके समय तक सी. पी. एण्ड बेरार नामसे यह प्रान्त प्रसिद्ध था। नागपुर इसकी राजधानी थी।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी जो पहली प्रबन्ध कारिणी समिति निर्मित हुई थी, उसके प्रथम मन्त्री-संचालक अध्यक्ष थे विदर्भके त्यागमूर्ति नेता स्व. वीर वामनराव जोशी और अमरावतीकी सुप्रसिद्ध व्यायाम शालाके संचालक वैद्य श्री हरिहररावजी देशपांडे और उसमें सदस्यके रूपमें स्वर्गीय कृष्णदासजी जाजू, स्व. कानडे शास्त्रीजी, ब्रिजलाल बियाणीजी, स्व. तात्याजी वझलवार, श्रीमन्नारायण, आचार्य दादा धर्माधिकारी आदि प्रमुख व्यक्ति थे। इस प्रान्तीय समितिका कार्यालय १९४५ तक अमरावतीमें रहा। तबतक विदर्भमें १०–१२ प्रचार केन्द्र और १०–१२ ही प्रमाणिक प्रचारक थे। लगभग हजार-ड़ेढ़-हजार

परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें बैठते थे। सन् १९४५ की जूनमें १८-१९ वर्ष तक मद्रासकी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभामें कार्य किए हुए अनुभवी श्री हृषीकेशजी शर्माको विदर्भका समस्त हिन्दी प्रचार कार्य संगठित और व्यापक बनानेके लिए प्रान्तीय संचालकका उत्तरदायित्व सौंपा। श्री शर्माजी गाँधीजीके आदेशानुसार सन् १९१८ से १९३५ तक मद्रास सभामें विभिन्न विभागीय कार्योंका संचालन करते रहे और १९३५-३६ तक बम्बईमे श्री के. एम. मुन्शीजी और स्व. प्रेमचन्दजीके साथ रहकर उन्होंने बम्बईमें हिन्दी प्रचार कार्यमें तथा 'हंस' पत्रिकाके प्रकाशनमें हाथ बॅटाया। १९३६ में वर्धा समितिकी स्थापनाके साथ ही शर्माजीका सक्रिय सहयोग वर्धा समितिको प्राप्त हुआ। वे तबसे निष्ठापूर्वक सेवामें संलग्न है।

विदर्भ नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय सन् १९४६ में नागपुर लाया गया। १९४६ से प्रान्तके मराठी भाषी क्षेत्रोंमें केन्द्रोंकी, प्रचारकोंकी तथा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्बन्धी प्रवृत्तियोंकी संख्या बढ़ी। अनेक सहयोगी कार्यकर्ताओंने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको आगे बढ़ाया। श्रीमती शारदादेवी शर्मा, स्व. श्रीमती अनुसूयाबाई काळे, स्व. काकासाहब पुराणिक, पंडित प्रयागदत्तजी शुक्ल आदिका सक्रिय सहयोग मिला और नागपुरमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यकी लोक प्रियता बढ़ी। १९४६ में नागपुरमें कार्यालय आनेके बाद न्यायमूर्ति डॉ. भवानीशंकर नियोगी सर्वानुमतिसे (नागपुर विश्वविद्यालयके भू. पू. कुलगुरु एवं सेवानिवृत्त चीफ जस्टिस) विदर्भ-नागपुर रा. भा. प्र. समितिके अध्यक्ष बने और तबसे वे इस पदको सुशोभित कर रहे है।

कार्य विस्तार

विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत कार्य और व्यवस्थाकी दृष्टिसे कार्य विभाजन निम्नलिखित ८ जिलोंमें किया गया है :—

(१) अमरावती, (२) अकोला, (३) यवतमाल, (४) बुलढाणा (५) नागपुर, (६) भंडारा, (७) चाँदा और (८) वर्धा। इन जिलोंमें गत २५ वर्षोसे यह संस्था हिन्दीतर भाषी लोगोंमें हिन्दीका प्रचार कार्य कर रही है। अब यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई है और सरकार मान्य है। १९५१ से जब से यह संस्था रजिस्टर्ड बनी तबसे ही सरकार इसे प्रतिवर्ष ५०००) वार्षिक सहायता देती है। १९५६ में विदर्भके ८ जिले बम्बई-महाराष्ट्र राज्यमें सम्मिलित हुए। महाराष्ट्र सरकारने वह ५००० रु. का पुराने मध्यप्रदेशका अनुदान चालू रखा और ५००० रु. का यह वार्षिक अनुदान प्रतिवर्ष मिल रहा है। अब विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका नाम राज्य पुनर्रचनाके बाद विदर्भ-राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर कर दिया गया।

अनुदान

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुरको पुरानी मध्यप्रदेश सरकारसे अनुदानमें बहुत अच्छे मौकेकी १ एकड़ जमीन कार्यालय भवन निर्माणके लिए सन् १९५६ के सितम्बर मासमें मिली थी। भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रबाबूने ता. १३-९-६० को भवनकी आधारशिला रखी। उस संकल्पित भवनकी एक मंजिल बनकर तैयार हो चुकी है। दूसरी मंजिल शीघ्र पूरी हो जाएगी। इसमें कुल डेढ़ लाख रुपया लगा। ३०,००० रुपये केन्द्रीय सरकारसे भवनके लिए अनुदान स्वरूप मिल चुका है। वर्धा समितिने १५ हजार रुपये भवन निर्माण सहायतामें दिये २५००० रुपये नागपुरसे एकत्रित हुए।

केन्द्रीय सरकारकी ओरसे इस वर्ष स्पर्धामें एवं पुस्तकालय शिविर तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके लिए अनुदान दिया गया। इसके अनुसार समिति द्वारा उपरोक्त कार्यक्रम सम्पन्न किए गए।

प्रचार-कार्य

इस समय अकोला, अमरावती, बुलडाणा, चाँदा, वर्धा, भंडारा, यवतमाल और नागपुरमें माहिती केन्द्र व जिला समितियाँ हैं। श्री परमेश्वर गोरे, श्री आनन्दराव लढके, श्री भंवरलाल सेवक, श्री मधुकर जोशी, श्री पुंडलीकराव मेघे, श्रीमती निशा हिर्डे और श्री र. वि. समर्थ तथा श्री श्याम लोहबरे, देकापुरवार और भा. रा. कोलते जिला सगठक हैं। ये जिला संगठक अपने जिलेमें भ्रमण कर जन सम्पर्क स्थापित करते हैं।

विदर्भ नागपुर समितिके संचालकत्वमें इस समय ५७५ परीक्षा केन्द्र चल रहे हैं। ७०० प्रचारक-बन्धु निष्ठापूर्वक प्रचार कार्यमें सहायता कर रहे हैं। अबतक साढ़े चार लाखसे अधिक परीक्षार्थी विदर्भसे वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन

अ. भा. रा. प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन श्री काकासाहब गाडगीलकी अध्यक्षतामें ११-१२ नवम्बर १९५२ को हुआ। उद्‌घाटन श्री श्रीप्रकाशजीने किया था। इस अवसरपर पत्रकार पितामह श्री बाबूराव विष्णु पराड़करजीको उनकी हिन्दीके प्रति की गई सेवाओंके सम्मान स्वरूप महात्मागाँधी पुरस्कार की १५०१ रु. की राशि समर्पित की गई। इसी अधिवेशनमें हिन्दी दिवस समारोह १४ सितम्बरको मनानेका निश्चय किया था जो बड़ा लोकप्रिय हुआ।

माहिती केन्द्र व जिला समितियाँ

विदर्भमें माहिती केन्द्र एवं जिला समितियाँ हैं। जिला समितियोंके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) बुलढाणा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, खामगाँव, संगठक—श्री भँवरलाल सेवक।
(२) अकोला जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री परमेश्वर गोरे।
(३) अमरावती जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अमरावती, संगठक—श्री आनन्दरावजी लढ़के।
(४) यवतमाल जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री र. वि. समर्थ।
(५) वर्धा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, संगठक—श्री पुं. सु. मेघे।
(६) चाँदा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री मधुकर जोशी।
(७) भंडारा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, निशा हिर्डे-मन्त्री।
(८) नागपुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री श्याम लोहबरे, देकापुरवार।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित परीक्षार्थियोंकी संख्या इस प्रकार है :—

सन्	परीक्षार्थी-संख्या
१९३९–४०	१००
१९४१	४२१
१९४२ (अगस्त आन्दोलनके कारण स्थगित)	
१९४३	१,०६७
१९४४	१,०९०
१९४५	१,९०३
१९४६	२,६०४
१९४७	५,८४१
१९४८	१२,९९४
१९४९	१३,०४८
१९५०	१४,४४५
१९५१	१४,९६४
१९५२	२०,१००
१९५३	२१,२१३
१९५४	२५,८३०
१९५५	२६,२७८
१९५६	२९,००२
१९५७	२४,१९६
१९५८	३६,५६६
१९५९	४८,५००
१९६०	४६,५००
१९६१–६२	१,०३,१००
कुल—	४,५०,७६२

पदवी-दान दीक्षान्त समारोह

नागपुरमें केन्द्र-व्यवस्थाके अन्तर्गत कोविद, विशारद, राष्ट्रभाषा-रत्न आदि उच्च हिन्दी परीक्षोपयोगी स्नातक छात्र-छात्राओंके सम्मानार्थ अबतक दीक्षान्त समारोह मनाए गए, उनमे दीक्षान्त भाषण करने व पुरस्कार-पारितोषिक वितरण करनेके लिए हमारे मुख्य अतिथियोंकी एक श्रेष्ठ पवित्र परम्परा इस समारोह में रही है। अबतक सर्वश्री भारतीय आत्मा, साहित्य देवता श्री माखनलालजी चतुर्वेदी, स्व. न्यायमूर्ति वा. रा. पुराणिक (नागपुर युनिवर्सिटीके तत्कालीन उपकुलपति), संगीताचार्य पं. ओंकारनाथजी ठाकुर (दो बार) डॉ. भवानीशंकर नियोगी (चीफ जस्टिस और वाअिसचान्सलर ना. पु. हा. कोर्ट और ना. वि. वि.), म. प्र.

के मुख्यमन्त्री स्व. पं. रविशंकर शुक्लजी, श्री डी.के. मेहताजी, अर्थमन्त्री, मा. घनश्याम सिंहजी गुप्त, राज्यपाल, श्री पकवासाजी, डॉ. वा. स. बारलिंगे (आरोग्य मन्त्री, म. प्र.), डॉ. पट्टाभिसीतारामैय्याजी, साहित्याचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी एम. ए., श्री ब्रिजलालजी बियाणी अध्यक्ष, विदर्भ हिन्दी सा. सम्मेलन, आचार्य धर्माधिकारी, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, श्रीमान् चिन्तामणिराव देशमुख, माननीय मुख्यमन्त्री यशवन्तराव चव्हाण, महाराष्ट्रके भू. पू. राज्यपाल श्रीप्रकाशजी आदि महानुभावोंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीके स्नातकोंको प्रमाण-पत्र, पारितोषिक आदि दिए और अपने प्रभावशाली हिन्दी दीक्षान्त भाषणोंसे हिन्दीका भव्य वातावरण निर्माण किया। हिन्दी प्रचार-प्रसार कार्यको प्रोत्साहित कर प्रेरणा दी।

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापना सन् १९३३ में हुई थी।

सभाका इतिहास

१९३२ का अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन पुरीमें होना निश्चित हुआ। इस अधिवेशनकी कार्यवाही हिन्दीमें करना निश्चित किया गया। इसी निश्चयके अनुसार हिन्दी शिक्षकोंकी खोज की जाने लगी। इसी सिलसिलेमें स्वर्गीय बाबा राघवदास और भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने प्रचारक भेजे। कलकत्तेके श्री सीतारामजी सेक्सरिया और बसन्तलालजी मुरारकाने भी अनसूयाप्रसादजी पाठकको उड़ीसामें प्रचार कार्यके लिए भेजा और दूसरे प्रचारक भाई भी पाठकजीकी सहायताके लिए भेजे गए लेकिन यह कार्य दो माहही चल पाया था कि जनवरी १९३३ से कांग्रेसका सत्याग्रह कार्यक्रम चल पड़ा और इसी बीच पाठकजीको जेल जाना पड़ा। पाठकजीने जेलमें भी हिन्दी पढ़ाईका काम चालू रखा। पाठकजीकी प्रेरणासे लोग जेलमें अन्य साधन उपलब्ध न होनेसे दातूनोंसे जमीनपर लिख-लिखकर अक्षर सीखते थे। बादमें जेल अधिकारियोंने सभी सुविधाएँ कर दीं।

१९३३ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापनाके बाद प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया। अभीतक सभाका कार्यालय राधामोहनजी महापात्रके घरमें ही था—लेकिन सन् १९३३ के अप्रैल माहमें एक मकान किरायेपर लेकर एक हिन्दी शिक्षा-मन्दिर खोला गया। इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी परीक्षाएँ चलती थीं। श्रीमती रमादेवीका सहयोग समितिके कार्यको आगे बढ़ानेमें बड़ा सहायक हुआ। हिन्दी प्रचारके काममें कठिनाइयाँ अब कुछ-कुछ कम हो चली थीं। जनताकी ओरसे उत्साह तथा सहानुभूति मिल रही थी।

१९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बना। जैसे अन्य कामोंको इसके कारण प्रोत्साहन मिला, वैसे ही हिन्दी प्रचारके कार्यको भी बल मिला। तत्कालीन उत्कलके मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ दासने यह घोषणा की कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, तबसे इस ओर पर्याप्त उत्साह मिला। महात्मा गांधीजीकी उपस्थितिमें गांधी सेवा संघका उत्सव भी हिन्दी प्रचारके लिए बड़ा उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ। इसमें श्रीमती सरोजिनी नायडूने हिन्दी प्रचारके सम्बन्धमें बड़े सुन्दर विचार व्यक्त किए।

उत्कलमें हिन्दी प्रचारके लिए काकासाहब कालेलकरका दौरा बड़ा लाभकारी रहा। काकाजी स्वयं हिन्दी प्रचारके लिए चन्देके लिए गए थे।

धीरे-धीरे हिन्दीका प्रचार बढ़ने लगा। कटक, पुरी, ब्रह्मपुर, झारसुगडा, बुरेल, बालेश्वर, गोबरा और बरीमें वर्धा समितिकी परीक्षाओंके केन्द्र खोले गए। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके बाद प्रचार सभाका नाम विधिवत् उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा रखा गया है और वह वर्धा समितिसे सम्बन्द्ध हो गई। श्री रामसुखजी भी इसी बीच आए और उन्हें ब्रह्मपुर केन्द्रके राष्ट्रभाषा प्रचारकके रूपमें भेजा गया।

१९४२ का आन्दोलन जोरोंसे चल रहा था। राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य भी जोरोंपर था। उस आन्दोलनमें पाठकजी और श्री वनमाली मिश्र जेल चले गए। इस समय सभाके संचालनका भार श्री गोविन्दचन्द्र मिश्रपर था। स्वामी विचित्रानन्द दासजी प्रदेशके सभी प्रचार कार्यपर ध्यान रखते थे।

१९४५ में श्री लिंगराज मिश्रने सभाका मन्त्री पद ग्रहण किया। पाठकजी और श्री बनमालीजीको जेलसे मुक्त तो कर दिया गया, किन्तु पाठकजीपर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे प्रान्तके अन्दर प्रवेश न करें। यह प्रतिबन्ध अगस्त १९४५तक रहा। उसके बाद फिर पाठकजी यथावत् कार्य संचालन करनेमें जुट गए।

सन् १९४६ मे फिरसे कांग्रेसी सरकार बनी। श्री हरेकृष्ण महताब मुख्यमन्त्री बने और पं. लिंग-राज मिश्र शिक्षा मन्त्री। इसी समय हिन्दी तथा उर्दू लिपिके मतान्तरके कारण कलकत्तेसे पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे मिलनेवाली सहायता बन्द हो गई। उत्कल सरकारका ध्यान सभाकी ओर आकृष्ट हुआ। सरकारने सरकूलर निकालकर सूचित कर दिया कि प्रान्तके सभी स्कूलोंमें छठीसे नवीं श्रेणीतक हिन्दी पढ़ना आवश्यक है। इसके साथ ही सरकारकी ओरसे प्रान्तमें प्रशिक्षण शिबिर योजना बनी और उसके लिए ६४००० रु. का अन्दाजा लगाया गया। प्रचारार्थ कार्य को और भी व्यापक बनानेकी दृष्टिसे सरकारने सभाको ३००० रु. की सहायता दी। गंजाम जिला बोर्डने भी सभाकी योजनाके अनुसार हिंजलिकाटूमें शिक्षक शिबिरके आयोजनको पूर्ण करनेकी लिए ५००० रु. की सहायता दी।

१९४७ में उत्कल सरकारसे सभा कार्यालयको १॥ एकड़ भूमि अनुदानमें मिली। इसी जमीनपर आज सभाका कार्यालय एवं राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस है।

उत्कल सरकारने सभाके कार्य संचालनके लिए एवं पुस्तकालयकी अभिवृद्धिके लिए पर्याप्त सहायता दी। प्रान्तीय सभाके प्रांगणमें गांधी राष्ट्रभाषा भवन बननेकी योजना बनी। १९४८ में तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्रीयुत् डा. हरेकृष्ण मेहताब द्वारा गाँधी राष्ट्रभाषा भवनका शिलान्यास हुआ। भवन निर्माण व्ययके लिए सरकारने १ लाख १८ हजार रुपए प्रदान किए हैं। सन् १९५१ से उत्कल सरकार प्रतिवर्ष सभाको १५००० रु. देती आई है।

प्रान्तीय समितिके पदाधिकारी

सभापति—स्वामी विचित्रानन्द दास।
मन्त्री—श्री राजकृष्ण बोस
संचालक—अनसूयाप्रसाद पाठक।
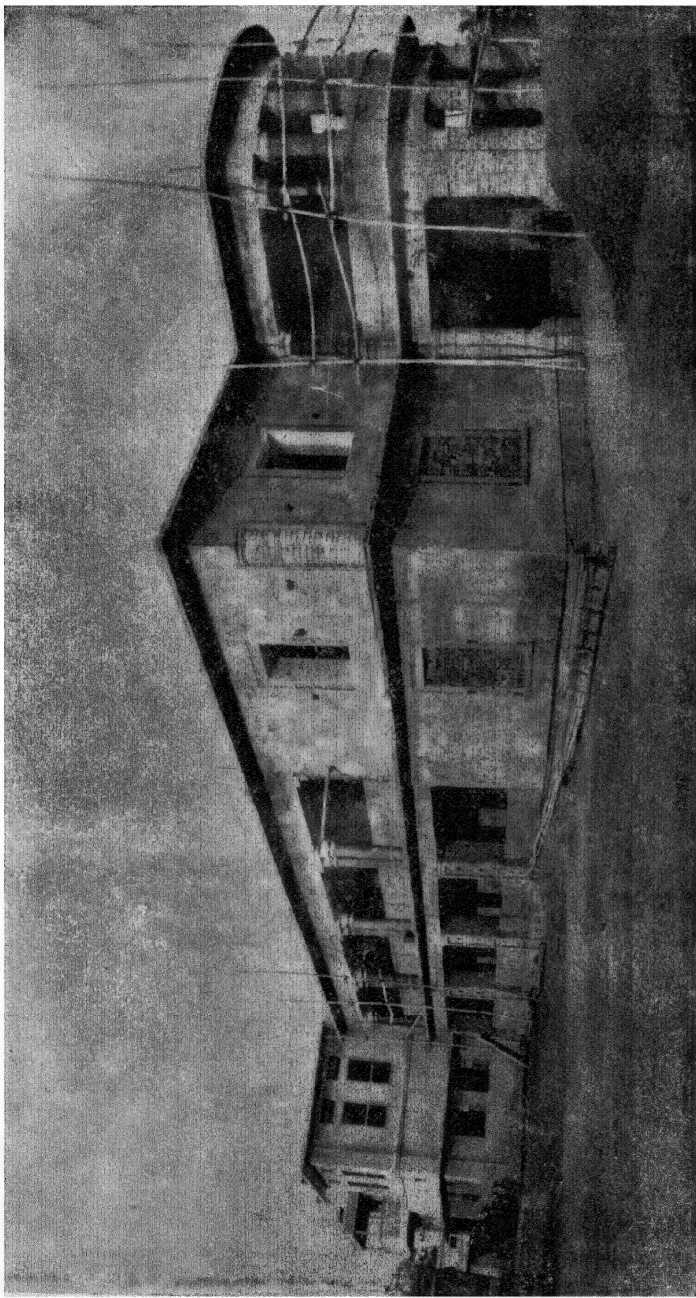
उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक
(कार्यालय भवन)

सदस्य—श्री डॉ. हरेकृष्ण मेहताब, डॉ. आर्त वल्लभ महान्ति, श्री गुरुचरण महान्ति, श्री जगन्नाथ मिश्र, श्री बनमाली मिश्र, श्री उदयनाथ षड़ंगी, श्री वैद्यनाथ आचार्य।

राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस

उत्कल प्रान्तमें राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको व्यापक बनानेकी परिकल्पनासे १९४८ में राष्ट्रभाषा समवाय प्रेसकी स्थापना हुई। इसका संचालन एक बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर द्वारा होता है।

पुस्तकालय

हिन्दी प्रेमियों तथा परीक्षार्थियोंकी सुविधाके लिए सभामें एक वृहत् पुस्तकालय है। इसमें उड़िया, संस्कृत, हिन्दीकी ६००० से ऊपर पुस्तकें हैं। पुस्तकालयके अतिरिक्त वाचनालय भी है। जिसमें ५०–६० पत्रिकाएँ आती है।

राष्ट्रभाषा पत्र

विगत १८ वर्षोंसे सभाके मुख्य पत्रके रूपमे 'राष्ट्रभाषा पत्र' प्रकाशित हो रहा है। परीक्षार्थियों, शिक्षकों, प्रचारकोंके लिए यह बड़ा उपयोगी पत्र रहा है।

अनुवाद समिति

सभाकी एक अनुवाद समिति है जिसके निरन्तर परिश्रमसे बहुत-सी ओड़िया पुस्तकोंका हिन्दी अनुवाद और हिन्दी पुस्तकोंका ओड़िया अनुवाद हो चुका है। इस समितिके द्वारा प्रस्तुत की हुई पुस्तकें विभिन्न पाठ्यक्रमोंमें निर्धारित है। इसके हाथमे अब कोशका काम है। १५०० नए शब्दोंके माध्यमसे ओड़िया भाषियोंको हिन्दी सिखानेके लिए शिक्षाकी नई प्रणाली तैयार हो रही है।

प्रकाशन विभाग

सभाके प्रकाशन विभागने अबतक ५० पुस्तकोंका प्रकाशन कर लिया है।

हाथसे बने कागजका कारखाना

खादी बोर्डने सभाको एक हाथसे कागज बनानेके कारखानेको चलानेकी स्वीकृति दी है। कारखाना बन रहा है। अबतक करीब ३५००० रु. खर्च हो चुके है।

उत्कलसे अबतक राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें १,८४,१०७ से अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। २६४ प्रचारक एवं ४७६ केन्द्र-व्यवस्थापक राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यमें सहायता कर रहे है।

६ शिक्षण केन्द्र तथा १७ विद्यालय हैं तथा १ महाविद्यालय हैं।

उत्कलमें जिला समितियाँ निम्नलिखित स्थानोंमें कार्य कर रही हैं, उनकी जानकारी निम्नानुसार है :—

१—श्री बैद्यनाथ आचार्य मन्त्री सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा बालेश्वर।
१—श्री बनमाली मिश्र, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, सम्बलपुर।
३—श्री कन्हैयालाल दोशी, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बालेश्वर।
४—श्री राधाकृष्णदास, मन्त्री राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, पुरी।
५—श्री त्रिभुवनजी दास, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बलांगी।
६—श्री के. एन. राव, केन्द्र-व्यव. राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, ढेकानाल।
७—श्री हरिहर नन्द, केन्द्र-व्यव. राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, केंदुझर।
८—सतीशचन्द्र पटनायक, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वारिपदा।
९—वासुदेव प्रधान, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, फुलवणी।
१०—हृषीकेश नायक, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, सुंदरगढ़।

परीक्षार्थी उन्नतिक्रम

उत्कलसे प्रतिवर्ष राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका क्रम इस प्रकार है :—

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९३७	७०
१९३८	१११
१९३९	१६०
१९४०	१७५
१९४१	१९८
१९४२	३४२
१९४३	१,१३७
१९४४	९०५
१९४५	१,३९७
१९४६	२,२८२
१९४७	४,०९३
१९४८	६,५१७
१९४९	४,४३८
१९५०	४,९८१
१९५१	६,२४३
१९५२	५,८२१
१९५३	५,०६२
१९५४	५,१३५

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९५५	७,२७०
१९५६	८,९९८
१९५७	९,३५४
१९५८	१७,५७४
१९५९	१९,६९६
१९६०	२६,२६१
१९६१	२१,९६०
१९६२	२७,१२८

असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग

आसाममें भाषागत एकताकी आवश्यकता सर्वप्रथम महात्मा गाँधीको महसूस हुई जब कि वे सन् १९३३–३४ के बीच अपने असहयोग आन्दोलन और रचनात्मक कार्यक्रमके सिलसिलेमे असम राज्यका व्यापक दौरा कर रहे थे। बापूने असममे ही भावी भारतकी एकताकी दृष्टिसे हिन्दीके प्रचार कार्यको प्रयोग दशामें प्रारम्भ किया। बापूसे प्रेरणा पाकर बाबा राघवदास हिन्दीका सन्देश लेकर असममें आए।

सर्वप्रथम बाबा राघवदासजीने अपना व्यापक दौरा असम राज्यके प्रमुख शहरोंमे किया और कुछ ऐसे शिक्षित युवकोंने उनसे प्रेरणा प्राप्त की। इन युवकोंने बाबा राघवदासके राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको सफल बनानेमें पूरा योग दिया। डिब्रूगढ़के दानवीर चाय उद्योगपति रायसाहब हनुमान बक्श कनोई जो कि अभीतक अपनी वृद्धावस्थामें भी गणेशवाड़ी केन्द्रका केन्द्र-व्यवस्थापक पद अलंकृत कर रहे है, उनका सहयोग प्रारम्भसे ही समितिको प्राप्त होता रहा।

सन् १९३७ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके बाद असममे उसकी परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंको सम्मिलित कराया गया।

असम हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना लोकप्रिय स्व. गोपीनाथजी बरदलैकी अध्यक्षतामें सन् १९३८ में हुई। डॉ. बरदलैके अत्यन्त व्यस्त रहनेके साथ कारण बादमें डॉ. हरेकृष्णदास असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अध्यक्ष बने।

हिन्दी प्रचार समितिका संचालन और संगठन करनेके निमित्त स्व. यमुनाप्रसाद श्रीवास्तवको केन्द्रीय समिति वर्धासे पहले ही भेजा गया था। वे ही इसके सर्वप्रथम संचालक नियुक्त हुए।

सन् १९३९ में काकासाहबके सभापतित्वमें प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सम्मेलन गौहाटीमें हुआ जिसमें प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक और अनेक हिन्दी प्रेमी प्रतिनिधि उपस्थित थे––इसी वर्ष फरवरी महीनेमें गौहाटीमें एक प्रचारक विद्यालयकी स्थापना स्व. गोपीनाथ जी बरदलैकी अध्यक्षतामें हुई। वर्धासे श्री कमलदेवनारायण और श्री रामप्रसादजी भेजे गए। इन्होंने अपनी विद्वत्ता और परिश्रमसे पर्याप्त संख्यामें प्रचारक बनाए। नौगाँवमें भी एक राष्ट्रभाषा विद्यालयकी स्थापना हुई।

इस समय असममें समितिका वर्ष बहुमुखी हुआ। प्रधान कार्यालय गौहाटीमें स्थापित हुआ। स्व. श्रीवास्तवजी तथा उनके सहयोगी स्व. कमलदेवनारायणने कार्यालयके कार्यको बड़े सुन्दर ढंगसे संचालित किया था। समितिकी प्रवृत्तियोंमें श्री कामाख्याप्रसाद त्रिपाठी (जो इस समय असमके श्रम तथा उद्योग मन्त्री हैं) डॉ. विरंचिकुमार बरुवा, डॉ. वाणिकान्त काकती आदि प्रमुख शिक्षाविदोंका सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा। सन् १९४० में श्री देवकान्त बरुवाने, जो समितिके प्रधानमन्त्रीके थे, सत्याग्रह आन्दोलनमें शामिल होने के कारण प्रधानमन्त्री पद-त्याग दिया और १९४१ में श्री यमुनाप्रसाद श्रीवास्तवजी संचालक पदसे मुक्त हो गए। श्री कमलदेव नारायणको संचालक पदपर नियुक्त किया गया। उन्होंने धीरे-धीरे समिति-की सभी प्रवृत्तियोंको सुव्यवस्थित कर लिया।

इतिहास

सन् १९४२ के आन्दोलनमें समितिकी स्थिति बड़ी नाजुक हो गई। कई प्रचारक जेल भेज दिए गए। जो प्रचारक जेलके बाहर रहे वे भी स्वतन्त्रतापूर्वक हिन्दी प्रचार कार्य नहीं कर पाते थे क्योंकि अँग्रेज सरकार हिन्दी कार्यको भी स्वतन्त्रता आन्दोलनका एक दूसरा मोर्चा समझती थी। फिर भी कमलदेव नारायणजीकी कार्य कुशलताके कारण सलिला फल्गुकी तरह राष्ट्रभाषा प्रचारकी धारा बहती रही।

बौद्धिक मतभेद

सन १९४२ में ही हिन्दी—हिन्दुस्तानीका बौद्धिक मतभेद प्रारम्भ हुआ। १९४३ में वर्धामें काकासाहबके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। स्व. बरदलैजीने भी हिन्दुस्तानी समितिका समर्थन किया। गौहाटीके शरणीया आश्रममें बापूकी उपस्थितिमें समितिकी बैठक हुई; जिसमें श्री नीलमणिजी फूकन तथा श्री कमलदेव नारायणजीने हिन्दुस्तानीका विरोध किया। बादमें हिन्दुस्तानी समर्थकोंको लेकर एक अलग समिति बनाई गई। इसका नाम असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गौहाटी रखा गया। जो कुछ सरकारी सहायता सरकारकी ओरसे मिलती वह हिन्दुस्तानी समितिको ही प्राप्त होती रही। लेकिन वर्धा समितिके निष्ठावान् कतिपय प्रचारकोंने प्रलोभनसे दूर रहकर सेवा-भावनासे इस विषम परिस्थितिमें भी कमलदेव नारायणके नेतृत्वमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य किया। लेकिन सन् १९४६ में श्री कमलदेव नारायणका अचानक स्वर्गवास हो गया और राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यका भार श्री चक्रेश्वर भट्टा-चार्य तथा स्व. कमलदेव नारायणकी पत्नी नलिनीदेवीने उठाया। पर जब उन्होंने भी यह कार्य छोड़ दिया तो यहाँका काम सीधे वर्धासे संचालित होने लगा।

सन् १९४८ में प्रो. रंजनजी असम गए। उन्होंने हिन्दुस्तानी समितिके कारण तथा वर्धा समिति-के कई प्रचारकोंका हिन्दुस्तानी प्रचारक बन जानेके कारण जो समस्या प्रचार क्षेत्रमें उत्पन्न हुई उसका अध्ययन किया। उन्होंने निष्ठावान प्रचारकोंके तथा अन्य हितैषियोंके परामर्शसे श्री छगनलाल जैनको सन् १९४८ के मई महीनेमें संचालक पदपर नियुक्त किया। श्री छगनलाल जैन, श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, श्री बिपनचन्द्र गोस्वामी, श्री राजकुमार कोहली तथा श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरीके सहयोगसे गौहाटीमें असम प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका चुनाव द्वारा नूतन संगठन किया गया। श्री नीलमणिजी फूकन सर्व

सम्मतिसे अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसी समय मणिपुरके प्रचार क्षेत्रको स्वतन्त्ररूपसे चलानेका अधिकार. असम राज्य समितिकी सम्मतिसे वर्धा समितिने मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको सौप दिया। वहाँका प्रचार कार्य तबसे श्री छत्रध्वज शर्माके संचालनमें सुन्दर रूपमें चल रहा है।

चूँकि भारतीय सविधानमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके आदेशानुसार ही हिन्दी तथा नागरी लिपिको स्वीकृति प्राप्त हुई इसलिए समितिने निम्नलिखित निर्णय सर्व सम्मतिसे किया––

"चूँकि हिन्दुस्तानी प्रचार समितिकी आवश्यकता अब नहीं रही, इसलिए आजकी यह सभा चाहती है कि हिन्दुस्तानी प्रचार समिति (असम) राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें ही मिल जाए। उसके लिए एक सम्मिलित सभा बुलाई जाए जिसमें इस मिलनके विषयमें विचार-विमर्ष हो, इस कार्यका भार संचालकपर छोड़ा जाए जो हिन्दुस्तानी प्रचार समितिसे बातचीत करके एक ऐसी सभाका आयोजन करनेकी चेष्टा करे।"

इधर सन् १९४८ के मई महीनेमें हिन्दुस्तानी परम्पराकी समितिने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धासे अपनी सम्बद्धता छोड़कर, एक स्वतन्त्र समिति बन चुकी थी। उसने हिन्दुस्तानीका प्रचार बन्द कर दिया; क्योंकि दो लिपियोंमें राष्ट्रभाषाकी शिक्षा जनप्रिय नही हो सकी। हमारी वर्धा प्रान्तीय समितिने हिन्दुस्तानी समितिके लोगोंको यह समझानेका प्रयत्न किया कि हिन्दुस्तानीका आदर्श अब नही रहा––अतएव हिन्दुस्तानी समिति अब पुरानी मातृसंस्थामें लीन होकर असम राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको गतिशील बनाए लेकिन सब कोशिशोके बावजूद भी उन्होने अलग रहना ही पसन्द किया और सन् १९४९ मे अपना रूप बदल कर यह संस्था अखिल भारतीय हिन्दी परिषदसे सम्बद्ध हो गई। १० जनवरीको एक प्रस्ताव पारित कर असममें वर्धा समितिके कार्यपर सरकारका ध्यान आकृष्ट किया गया।

सन् १९५१ में एक नई हलचल पैदा हो गई। सरकार तथा दूसरी समितिने राज्य समितिके सामने एकीकरणका एक प्रस्ताव रखा। राज्य समितिने उसका स्वागत किया और ९ मार्च १९५२ को दोनों समितियोंके प्रतिनिधियोंको लेकर राज्यके तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री विष्णुरायजी मेधीकी अध्यक्षतामें एक संयुक्त बैठक हुई। बैठकमे दोनो समितियोंको मिलाकर एकीकरणकी योजनाको स्वीकार कर लिया गया; किन्तु केन्द्रीय समिति वर्धासे नवीन रूपसे बनाई जानेवाली समितिका सम्पर्क स्पष्ट किए बिना केन्द्रीय समितिके असम स्थित अंगका विलयन करनेका आग्रह हिन्दुस्तानीके समर्थकोंमे दिखाई देने लगा और व्यवहारमें भी ऐसा प्रतीत होता देखकर उक्त एकीकरणका समर्थन करके नए विधानको स्वीकृत तथा कार्यान्वित न करनेका निर्णय समितिके अधिकांश सदस्योंने किया––जिस सभामें यह निर्णय किया गया उसमे मन्त्री श्री आनन्द-जी, परीक्षा मन्त्री श्री दुबेजी तथा सिन्ध-राजस्थानके सचालक श्री दौलतरामजी भी उपस्थित थे। मन्त्री-संचालक श्री छगनलाल जैनको यह निर्देश दिया गया कि एकीकरणके सम्बन्धमें कोई भी निर्णय तबतक लागू न हो सकेगा जबतक कि वर्धा समितिका अनुमोदन इसे प्राप्त न हो गया हो। यह भी निर्णय हुआ कि दूसरी समितिके द्वारा प्रस्तुत किए गए पारस्परिक सम्मानजनक एकीकरणके किसी भी प्रस्तावपर समिति आदर तथा आग्रहके साथ विचार करेगी।

इसके परिणाम स्वरूप १९५२ के अक्टूबर महीनेमें श्री छगनलाल जैनने अपने संचालक पदसे त्यागपत्र दे दिया। श्री फूकनजीने भी अध्यक्ष पद त्यागकर दूसरी समितिका कार्याध्यक्ष पद स्वीकार

कर लिया। उनके स्थानपर श्री जीतेन्द्रचन्द्र जी चौधुरीको संचालक पदका कार्य भार सौंपा गया। उन्होंने असमका दौरा किया और कार्यको संगठित किया। जो प्रचारकगण निष्क्रिय होकर हिन्दी प्रचार कार्यसे अलग हो गए थे, वे नए संगठनमें जुट गए। असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय शिलाग लाया गया और तबसे वह शिलांगमे ही है। अब यह रजिस्टर्ड संस्था बन गई है और इसका अपना विधान है।

वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री नरेन्द्रनाथ शर्मा, एम. एल. ए.।
कार्याध्यक्ष—श्रीमती लावण्य प्रभा दत्त चौधुरी।
उपाध्यक्ष—श्री राधाकृष्ण खेमका, एम. एल. ए.।
उपाध्यक्ष—श्री गोपाल चन्द्र अग्रवाल एडवोकेट।
कोषाध्यक्ष—श्री कामाख्यालाल सिंहानिया।
मन्त्री-संचालक—श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरी।
प्रचार-मन्त्री—श्री भगवती प्रसाद लाडिया।

समित संरक्षक, आजीवन, हितैषी सदस्य क्रमश: १००१ और ५०१, १०१ तथा ५१ रु. देकर बन सकते है।

प्रचार विवरण

असममें २०५ परीक्षा केन्द्र इस समय चल रहे हैं। ११७ शिक्षण केन्द्र एवं विद्यालय है। १५० से ऊपर प्रचारक हमारे प्रचार-कार्यमें सहयोग दे रहे है।

प्रशिक्षण केन्द्र

सन् १९५८–५९, १९६०–६१ में शिलचर, करीमगंज तथा सिद्ध कार्यपीठ कामाख्य पर्वतपर प्रशिक्षण केन्द्र हिन्दी शिक्षकोंको प्रशिक्षण देनेके लिए आयोजित किए गए। इन प्रशिक्षण केन्द्रोंको चलानेके लिए २०००० रु. का अनुदान सरकारकी ओरसे प्राप्त हुआ था। इन प्रशिक्षण केन्द्रोंको चलानेमें असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको बड़ी सफलता प्राप्त हुई।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दसवाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दसवाँ अधिवेशन असममें श्री हरेकृष्ण महताबकी अध्यक्षतामें १९–२०–२१ मई १९६१ को मनाया गया। इसका उद्घाटन श्री जगजीवनरामने किया था। स्वागताध्यक्ष असमके मुख्यमन्त्री श्री बिमला प्रसाद चलिहा थे। यह सम्मेलन बड़ा भव्य एवं सफल रहा। इस अवसरपर श्री अनन्तगोपालजी शेवडेको महात्मा गाँधी पुरस्कार भेंट किया गया।

सभा-समारम्भ-हिन्दी-दिवस

समिति प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस समारम्भका मुख्यरूपसे आयोजन करती है। इसमें प्रान्तके राज्यपाल, नेतागण आदिका प्रमुख रूपसे सहयोग प्राप्त होता रहा है।

असमसे सम्मिलित परीक्षार्थी तथा शिक्षण केन्द्र, प्रचारक तथा केन्द्रोंका उन्नतिक्रम इस प्रकार है—

शिक्षण व परीक्षा-उन्नति-क्रम

सन्	शिक्षण केन्द्र	परीक्षा केन्द्र	परीक्षार्थी संख्या	प्रचारक
१९३६	३	३	४०	३
१९३७	७	१५	३५०	१२
१९३८	–	२२	८४०	२०
१९३९	–	२६	१,०५८	२९
१९४०	–	३१	१,४५०	३१
१९४१	–	१४	९३०	१७
१९४२	–	९	४००	९
१९४३	–	१४	७२०	१२
१९४४	–	१४	८१५	१२
१९४५	–	२०	१,३३६	१८
१९४६	–	२१	१,१२०	२०
१९४७	–	१८	१.००७	२०
१९४८	–	१४	९२०	१४
१९४९	–	१४	१,०४२	१४
१९५०	–	१४	१,२११	१४
१९५१	–	१४	९८०	१६
१९५२	४	१४	८१९	१६
१९५३	१०	१९	१,८८३	१८
१९५४	२२	२९	२,०२१	२३
१९५५	२२	२६	१,६९८	२४
१९५६	२५	४०	२,४१०	३७
१९५७	३२	५१	४,२१६	६५
१९५८	५३	७३	५,८२५	१०१
१९५९	६६	९९	८,२८८	१२६
१९६०	१००	११३	८,११५	१३०
१९६१	११७	१५२	११,१६४	१४०

पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता

बंगालमें सन् १९३४ से कलकत्तेकी "पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभा" हिन्दी प्रचारका कार्य करती आ रही थी। सन् १९३६ में वर्धा समितिकी स्थापनाके बाद यह सभा उस समितिके मार्गदर्शनमें कार्य करने लगी। सन् १९३८ के शिमला-अधिवेशनमें जब हिन्दी प्रचार समिति वर्धाका नाम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति कर दिया गया, तब कलकत्तेमें हिन्दीका प्रचार करनेवाली संस्थाका नाम भी पूर्व भारत राष्ट्र-भाषा प्रचार सभा रखा गया। किन्तु सन् १९४५ में इसकी नीतिमें परिवर्तन हो जानेके कारण इसने हिन्दु-स्तानीका प्रचार करना आरम्भ किया तथा वर्धा-समितिसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। ऐसी स्थितिमे हिन्दी प्रचारके लिए वर्धा समितिसे सम्बद्ध एक पृथक् प्रान्तीय समितिका संगठन आवश्यक समझा गया। फलस्वरूप १५ दिसम्बर १९४५को डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके निवास स्थान "सुधर्मा" में कई गण्यमान्य साहित्यिकों, शिक्षा-प्रेमियों तथा विद्वानोंकी बैठक करके "बंगाल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" की स्थापना की गई, जो देश-विभाजनके बाद "पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" कहलाने लगी।

बंगालमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापनाके बाद श्री रेवतीरंजन सिन्हाके सद्प्रयत्नोसे प्रचार और संगठनका कार्य आरम्भ हुआ। सर्वश्री भुवनेश्वर झा, ब्रजनन्दनसिंह, नरेन्द्रसिंह राय, शिवविलास सिन्हा, अमल सरकार आदि प्रचारक शिक्षकोंने अपनी सेवाएँ देकर प्रचार-कार्यको आगे बढ़ानेमें महत्वपूर्ण योग दिया। मुफस्सिलमे सर्वश्री जयगोविंद मिश्र, वामनचन्द्र वसु, श्रीनिवास शर्मा, जनार्दन चतुर्वेदी, संजीवप्रसाद सेन, देवीप्रसाद वर्मा, अरण्यबिहारी दास आदि प्रचारकोंने इस कार्यमे यथेष्ट हाथ बँटाया।

इस समय पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत १२१ प्रमाणित प्रचारक तथा ३५ शिक्षक-अध्यापक हैं। प्रान्तभर में १९५ अवैतनिक शिक्षण-केन्द्र तथा विद्यालय चलाए जाते है। परीक्षा-केन्द्रोंकी संख्या ११७ है तथा प्रायः १२००० परीक्षार्थी प्रति वर्ष त्रिपुरा अंचल सहित बंगाल प्रान्तसे वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। समिति बंगाल सरकारके सहयोगसे "डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग" परीक्षा चलाती है। इसमे उत्तीर्ण होनेपर हिन्दी शिक्षकको अपने वेतनके अलावा १० रुपये प्रति माह भत्तेके रूपमें मिलते हैं। बंगालसे करीब ९० हजार परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मलित हो चुके है।

इस समितिको बंगाल सरकारका काफी सहयोग प्राप्त है। हिन्दी शिक्षा प्रचार-प्रसार तथा शिक्षकों आदिकी नियुक्तिमें सरकार समितिसे सलाह लेती है और उससे नियमित सम्पर्क बनाए रखती है। समितिको शिक्षक-शिक्षण योजनाके अन्तर्गत प्रति वर्ष २१८६००) की सहायता मिलती है। बंगालमें वर्धा समितिकी निम्नलिखित परीक्षाएँ मान्य हैं—

(१) 'कोविद' तथा मैट्रिक उत्तीर्णको हायर सेकण्डरी स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षकके रूपमें रखा जाता है।

(२) 'डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग" उत्तीर्ण व्यक्ति हाइस्कूलमें हिन्दी शिक्षकके रूपमें रखा जाता है जिसमें 'परिचय" परीक्षा उत्तीर्ण होना पड़ता है।

(३) कलकत्ता-विश्वविद्यालय ऐसे व्यक्तियोंको हिन्दी विषय लेकर एम. ए. पढ़नेकी अनुमति देता है, जो अहिन्दी भाषी बी. ए. और 'कोविद' उपाधिधारी हों।

किन्तु नूतन मान्यताके आधार पर यह सुविधा हट रही है। समितिकी व्यवस्था तथा संचालनमे एक हिन्दी प्रचार पुस्तकालय तथा वाचनालय भी चल रहा है। समितिका अपना एक प्रकाशन "पन्तः कविता संकलन" भी प्रकाशित हो चुका है।

कलकत्तेमें गत पाँच वर्षसे सरकारी अनावर्तक सहायता प्राप्त कर एक प्रशिक्षण महाविद्यालय भी चलता है जिसमें सम्मिलित होनेवाले शिक्षक शिक्षार्थीको मासिक ३० रु. की छात्रवृत्ति दी जाती है तथा इंटर उत्तीर्ण व्यक्तियोंको १५ महीनोंके सत्रमें 'कोविद' तथा 'डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग' पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करना पड़ता है।

इसके अलावा २ डिप्लोमा कोर्सके तथा १० विशेष कोविद कोर्सके केन्द्र, शिक्षकोंके लिए चलाए गए है।

यह समिति प्रति वर्ष राजभवन मार्बल हालमें समापवर्तन उत्सव मनाती रही है, जिसके अध्यक्ष राज्यपाल ही होते रहे। इस अवसरपर विशिष्ट विद्वान् या शिक्षा-मन्त्री दीक्षान्त भाषण देते रहे है।

इस समय समितिके अध्यक्ष अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाषाविद् डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या है। मन्त्री-संचालक श्री रेवतीरजन सिन्हा है। अन्य पदाधिकारियोंमे कार्यवाहक सभापति डॉक्टर श्रीकुमार बनर्जी, उपसमिति सभापति डॉक्टर सुकुमार सेन तथा अर्थमन्त्री श्री जनगन्नाथ बेरीवाला है।

बंगालके अबतक सम्मिलित परीक्षार्थियोंका उन्नति-क्रम

वर्ष	परीक्षार्थी
१९३८	१०२
१९३९	१०
१९४०	१३
१९४१	४१
१९४२	६५
१९४३	१४५
१९४४	९१
१९४५	३५७
१९४६	७४९
१९४७	८३३
१९४८	१,६८५
१९४९	१,५४९
१९५०	१,९२९
१९५१	२,६९९

सन्	परीक्षार्थी
१९५२	२,९६६
१९५३	३,८४३
१९५४	३,९५६
१९५५	५,२३९
१९५६	६,८७८
१९५७	६,३१५
१९५८	७,५०४
१९५९	९,२१८
१९६०	१२,४४६
१९६१	१२,१८९
१९६२	११,६८०

मणिपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, इम्फालका विवरण

नया संगठन

भारतके प्रान्त मणिपुरमें सन् १९४० से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,वर्धाकी ओरसे राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य होता रहा था; पर विशेष रूपसे कोई संगठन नहीं हुआ था। प्रयागमें राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनकी अध्यक्षतामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्रचार समितिकी एक बैठक हुई, जिसमें मणिपुरमें राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यके प्रति उत्साह देखकर यह निश्चय किया गया कि मणिपुर स्टेट को एक स्वतन्त्र प्रान्त मान लिया जाए और उसका प्रचार-कार्यभार श्री छत्रध्वज शर्माको सौंप दिया जाए। उसी निश्चयके अनुसार मणिपुरमें मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। पहले मणिपुरका कार्य असमके कार्यके अन्तर्गत चलता था।

पदाधिकारी और सदस्यगण

अध्यक्ष—श्री कालाचान्द सिंह, शास्त्री, बी. ए. बी. टी.।

उपाध्यक्ष—श्री पं. गौरहरि शर्मा, व्याकरण-तीर्थ, विशारद।

मन्त्री-संचालक—श्री छत्रध्वज शर्मा।

कोषाध्यक्ष—श्री ते. आवीरसिंह।

सदस्यगण—सर्वश्री मोहनलाल भट्ट, मन्त्री (वर्धा), अध्यापक वा. नित्याइ सिंह, अध्यापक चन्द्रशेखर सिंह तथा अध्यापक योगेन्द्र सिंह।

प्रचारकोंका सहयोग

राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें प्रचारकोंका सहयोग प्राप्त किए बिना कभी श्रीवृद्धि नहीं हो सकती।

एतदर्थ समितिने प्रचारकोंकी नियुक्तिपर विचार किया है। समिति चाहती है कि जो बन्धु 'राष्ट्रभाषा कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचारक बनाया जाए। फिल-हाल ४० प्रचारक-बन्धु निष्ठापूर्वक राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार-कार्य कर रहे हैं और वे राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें काफी सहयोग दे रहे हैं।

राष्ट्रभाषा शिक्षण-व्यवस्था

मणिपुर जैसे छोटे-से तथा भारतके सुदूर पूर्वी प्रदेशमें राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य तो काफी हुआ है और हो रहा है। फिर भी समितिका ध्यान इस ओर है कि बिना शिक्षण-व्यवस्थाके राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें सफलता मिलना कठिन है। अतः मणिपुरके कोने-कोने और गाँव-गाँवमे समितिकी ओरसे राष्ट्रभाषा शिक्षण केन्द्र तथा विद्यालय खोलनेका प्रयत्न किया गया। अब समितिके अन्तर्गत ६१ राष्ट्रभाषा शिक्षण-केन्द्र व विद्यालय हैं।

श्री ढेबरभाई द्वारा भवन-शिलान्यास

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको कार्यालयके लिए इम्फालमे ही मणिपुर सरकारकी टाउन-फड कमेटीने जमीन दी जिसपर भवनका निर्माण हो चुका है। ता. २६-११-१९४५ को अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके अध्यक्ष माननीय श्री ढेबर भाईने राष्ट्रभाषा-भवनका शिलान्यास किया। इसी भवनमें समितिका कार्यालय कार्य कर रहा है। अब कार्यालयके लिए समितिको कोई कठिनाई नही है। इस कमीकी पूर्तिमें वर्धा समितिकी ओरसे भी काफी सहायता एवं प्रेरणा प्राप्त हुई।

प्रशासन द्वारा आर्थिक-सहायता

मणिपुर प्रशासनके मुख्यायुक्त माननीय श्री जगत मोहनजी रैना तथा शिक्षा विभागके निर्देशक श्रीमान ए. डी. बहुगुणाजीके सहयोगसे प्रचार-कार्यके लिए विगत तीन वर्षसे वार्षिक रु. ३१०० के हिसाबसे अनुदान मिलने लगा है।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

मणिपुरसे चार हजारसे ऊपर परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्रचार परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष बैठते है। प्रारम्भसे अबतक लगभग ४००० परीक्षार्थी समितिकी परीक्षाओमे सम्मिलित हो चुके। अबतक हर वर्ष जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनकी संख्या इस प्रकार है—

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फालने परीक्षार्थी-संख्यामे वृद्धि की। अबतक जो प्रगति हुई है वह इसप्रकार है—

वर्ष	परीक्षार्थी
१९४०	४४
१९४१	४९

वर्ष	परीक्षार्थी
१९४२	३२
१९४३ से १९४४ तक	महायुद्ध
१९४५	१०१
१९४६	१६३
१९४७	७६७
१९४८	१,३३१
१९४९	१,५९१
१९५०	१,५०७
१९५१	१,९२८
१८५२	२,३४४
१९५३	१,५६७
१९५४	१,५०४
१९५५	१,८०३
१९५६	१,९१५
१९५७	२,२०५
१९५८	२,३६०
१९५९	३,५९०
१९६०	४,८१०
१९६१	४,९७२

उत्सव-समारोह

समितिके तत्वावधानमें समय-समयपर गणतन्त्र-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस, तुलसी-जयन्ती, तिलक-जयन्ती, गाँधी-जयन्ती; पुण्य-तिथि, बाल-दिवस, हिन्दी-दिवस तथा प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव आदि समारोहोंका आयोजन किया जाता है। समारोह जतथा उत्सवके कार्यक्रमसे जनता तथा राष्ट्रभाषा-सेवियोंमें बड़ा उत्साह पैदा हो जाता है। यह कार्यक्रम शिक्षा-प्रचार तथा राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यका भी एक सफल साधन है।

मणिपुरमें विद्यालय

१. हिन्दी विद्या मन्दिर, ख्यायोंग। २. वाहेंगलैकाई हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ३. नाओरेमथोंग हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ४. मणिपुर हिन्दी विद्यापीठ, क्वाकैथेल। ५. दामेश्वरी प्राच्य हिन्दी विद्यालय, नोंगमैबुंग। ६. वांखै हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ७. धर्मालय हिन्दी स्कूल, ब्रह्मपुर। ८. याइस्कूल हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ९. तेन्दोनयान हिन्दी स्कूल, शेकमाई। १० मोंगशागै हिन्दी विद्यालय, इम्फाल। ११. ककचिखुलेल राष्ट्रभाषा विद्यालय, ककचिगबाजार। १२. सानोय उच्च हिन्दी विद्यालय, नम्बोल। १३. मालोम हिन्दी

स्कूल, मालोम। १४. ड०इखोंग हिन्दी स्कूल, विष्णुपुर। १५. जनता हिन्दी विद्यालय, खुराईकोन्समलैकाई। १६. विष्णुपुर हिन्दी विद्यालय, विष्णुपुर। १७. बारुणी रोड़ हिन्दी विद्यालय, थम्बोलखोंग। १८. खुराई हिन्दी विद्यालय, खुराई-बाजार। १९. चींगनुंगहुत हिन्दी स्कूल, पलेल। २०. आदर्श हिन्दी विद्यालय, शगोलबन्द-लांगजिंग-अचौबा। २१. थम्बाल स्मृति हिन्दी विद्यालय मोइरांग। २२. फुंचोंगयांग हिन्दी स्कूल, मोइरांग। २३. नारान सैन्य हिन्दी स्कूल, फुबाला। २४. मेंग्राओ हिन्दी स्कूल। २५. हैड० कोन्था हिन्दी स्कूल। २६. अवांगपोतशंगबम हिन्दी स्कूल। २७. लैप्पोकपम हिन्दी विद्यालय, लैप्पोकपम। २८. रोमकेश्वर तोरीबारी हिन्दी स्कूल, कैथेलमनबी।

राष्ट्रभाषा प्रचार शिबिर

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति समय-समयपर राष्ट्रभाषा शिबिरोंका आयोजन भी करती है। १९६१ में एक शिबिर हिन्दी विद्यामंदिर, खुमाथोंगमें आयोजित किया गया। इस अवसरपर एक प्रदर्शनी-का आयोजन भी किया गया था।

पुस्तकालय तथा वाचनालय

समितिने स्थानीय जनता तथा विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिए राष्ट्रभाषा कार्यालय भवनमें पुस्तकालय खोल दिया है। पुस्तकालयमें सभी विषयोंकी पुस्तकें हैं। वाचनालयकी भी व्यवस्था है।

संक्षिप्त इतिहासका प्रकाशन

मणिपुरमें राष्ट्रभाषा प्रचारका संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तिका समितिने प्रकाशित की है। इससे प्रचार कार्यमें बड़ा लाभ हुआ है।

प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव

मणिपुरके केन्द्रों एवं विद्यालयोंमें प्रतिवर्ष प्रमाण पत्र वितरणोत्सवके आयोजन होते है। उन परीक्षार्थियोंको, जो प्रथम-द्वितीय उत्तीर्ण होते हैं, उन्हें पुरस्कार भी दिए जाते हैं।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली

अप्रैल १९४८ से पहले दिल्ली तथा नई दिल्लीमें रहनेवाले हिन्दीतर भाषी लोगोंमें हिन्दीका प्रचार करनेकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया था। शायद इसका कारण यह हो कि पुरानी दिल्लीका प्रदेश हिन्दी भाषी है इसलिए उनमें हिन्दी प्रचारकी आवश्यकता न समझी गई हो। श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन् १९३७ से बम्बई वर्धा समितिकी परीक्षाओंका कार्य करती आ रहीं थीं, वे १९४२ में दिल्ली पहुँची और हिन्दीतर भाषी व्यक्तियोंमें उन्होंने हिन्दीका कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दीके कार्यके लिए दिल्ली एक व्यापक क्षेत्र है। अहिन्दी भाषी प्रान्तोंसे आए करीब १ लाख सरकारी कर्मचारी एवं विभिन्न प्रदेशोंसे आकर बसी हुई जनतामें हिन्दी प्रचारकी बड़ी आवश्यकता महसूस की गई। १९४८ में श्री रंजनजी,

श्री यशपालजी और श्रीमती राजलक्ष्मी राघवनके प्रयत्नसेदिल्लीमें वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका केन्द्र स्थापित किया गया।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका आरम्भ

२३ अप्रैल १९४८ में सन्त विनोबाजी द्वारा दिल्ली केन्द्रका उद्घाटन हुआ। डॉ. पट्टाभि सीता-रामय्या अध्यक्ष थे। प्रारम्भमें ७ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख एवं उनकी माताजी का सहयोग बड़ा प्रेरणादायक रहा। प्रारम्भमें विनयनगर, लोदी कॉलोनी, लाजपतरायनगर, नई दिल्ली, राजेन्द्रनगर, गुजराती स्कूल (दिल्ली) और हरिजन उद्योग शालामें सुचारु रूपसे काम चला। इन सब स्थानोपर परीक्षार्थियोंकी संख्या ३०० तक पहुँची। इस कारण एक प्रान्तीय शाखा खोलनेकी जरूरत महसूस हुई और परिणामस्वरूप दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। ३ अगस्त १९५२ में श्रीमती विजयलक्ष्मी पडितकी अध्यक्षतामें राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा उसका विधिवत् उद्घाटन हुआ।

एक अपूर्व प्रसंग

ता. २ मई १९५४ को नई दिल्ली केन्द्रका सातवाँ वार्षिक सम्मेलन बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। यह समितिके इतिहासमे अभूतपूर्व ही रहा। भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने इस समारम्भका अध्यक्ष-पद सुशोभित किया था। उन्होंने हिन्दी प्रचार कार्यपर अपना प्रोत्साहन पूर्ण सन्देश इस अवसरपर दिया। करीब एक हजार हिन्दी प्रेमी, नेतागण, मन्त्री, अधिकारी एवं भारतके सभी हिन्दी प्रेमी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हुए। इसने एक अखिल भारतीय जैसा रूप धारण कर लिया था। दिल्लीका प्रचार-कार्य अब आगे बढ़ा।

प्रचार-कार्यकी प्रगति

१९५५ की सितम्बरकी परीक्षाओमे लगभग ८०० परीक्षार्थी बैठे। राजर्षि टण्डनजीने स्वयं सभी केन्द्रोंका निरीक्षण कर प्रशंसा की थी। नई दिल्ली और पुरानी दिल्लीके बीच १० केन्द्र चलते रहे और ५० वर्ग छात्र-छात्राओंको हिन्दी सीखनेके लिए चलते रहे। करीब १५० प्रचारक बन्धु इस कार्यमे जुट गए थे। अवतक ५००० विद्यार्थी समितिकी विभिन्न परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके थे।

केन्द्रीय सरकारके सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ानेकी योजना (दिल्ली और नई दिल्लीमें) दिल्ली समितिने बनाई। भारत सरकारके द्वारा इसका अनुकरण किया गया। दिल्ली समितिने, केन्द्रीय सरकारको एक पंचवर्षीय योजना केन्द्रीय कर्मचारियोंको हिन्दी सीखनेकी दृष्टिसे दी थी किन्तु वह योजना स्वीकृत न हो सकी क्योंकि सरकारने वैसी ही अपनी योजना प्रारम्भ की। जबसे सरकारकी ओरसे हिन्दी सीखनेके वर्ग खोले गए है तबसे हमारे वर्गोंकी संख्या धीरे-धीरे घटने लगी।

संसदीय सदस्योंको हिन्दी पढ़ानेका कार्य

१९५२ मे जब संसदका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ तब समितिने संसदीय सदस्योंको हिन्दी सिखानेका

प्रबन्ध किया। यह कार्य संसदीय हिन्दी परिषदके सहयोगसे किया गया। १२ संसदीय सदस्य समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए।

भाषाकी शिक्षा

संसदीय सदस्योंके लिए तमिल वर्ग भी खोले गए। इसका उद्घाटन मौलाना अब्दुल कलाम आजादने किया था—अध्यक्षता श्री टी. टी. कृष्णमाचारीने की थी। ये वर्ग जितने चाहिए उतने यशस्वी न हो सके।

मान्यता संबंधी प्रयत्न

दिल्ली समितिने विभिन्न अवसरोंपर वर्धा समितिकी परीक्षाओंकी मान्यताके लिए अनेक प्रयत्न किए और आकाश वाणी, गृहमन्त्रालय, शिक्षा मन्त्रालय, रेल्वे मन्त्रालय आदिसे मान्यता प्राप्त करानेमें सहयोग दिया।

रेल्वे कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी योजना

रेल्वेमें कम-से-कम एक करोड़ लोग काम करते हैं जिनमेंसे ६० फीसदी लोग ऐसे हैं कि जिन्हें हिन्दी सिखानेकी नितान्त आवश्यकता है। दिल्ली समितिने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे इस योजनाको कार्यान्वित करनेकी बात रेल्वेबोर्डसे छेड़ी। सन् १९५७ मे इस संबंधमे एक आदेश भी निकाला गया था किन्तु उसके पश्चात् कोई प्रगति नही हुई। इसके सम्बन्धमे तत्कालीन रेल्वे मन्त्री श्री जगजीवनरामजीने एक आदेश निकाला था जिसके अनुसार जहाँ गृह-मन्त्रालयकी ओरसे हिन्दी सिखानेका प्रबन्ध न हो ऐसी जगहपर वर्धा समितिके द्वारा हिन्दी सीखनेका प्रबन्ध करनेके लिए सोचा गया। इसमे दिल्ली समितिने अपना पूर्ण सहयोग दिया। इस कार्यको देशमें बडा बढ़ावा मिला।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका नवाँ अधिवेशन

१९५९में दिल्लीमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। विभिन्न हिन्दी-तर प्रदेशोंसे १५०० प्रतिनिधि, दर्शक इस सम्मेलनमें सम्मिलित हुए। पं. जवाहरलाल नेहरूने इस सम्मेलनका उद्घाटन किया और श्री अनन्तशयनम् अयंगारने इसकी अध्यक्षता की। इस अवसरपर ही राजर्षि पुरुषोत्तम-दासजी टण्डनकी सेवामें २५००१ रु. की निधि समर्पित की गई। वह निधि राजर्षिने हिन्दी प्रचार कार्यके लिए समर्पित कर दी। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी द्वारा प्रतिनिधयोंको राष्ट्रपति भवनमे मुगल उद्यानमे एक दावत दी गई। प्रधान मन्त्री नेहरूजीने भी अपनी कोठीपर प्रतिनिधियोंसे मुलाकात की। ससद भवनमें सभी प्रतिनिधियोंको पार्टी दी गई। दिल्ली कार्पोरेशनकी ओरसे भी प्रतिनिधियोंका स्वागत कर पार्टी दी गई। इस प्रकार यह सम्मेलन भी चिरस्मरणीय रहा। गांधी पुरस्कार श्री काका साहब कालेलकरको दिया गया।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी-प्रचार-कार्य

चूंकि सभी भाषाओंका प्रतिनिधित्व दिल्लीसे होता है, इसलिए सभी भाषाओंको एक दूसरेसे निकट

लानेका प्रयत्न करना आवश्यक समझा गया। इस उद्देश्यसे सन् १९५६ में एक अच्छी पत्रिका "विजय भारती" निकालनेका प्रयास किया गया परन्तु इसका एक अंक ही निकल सका और यह कार्य रुक गया।

'देवनागर' पत्र संसदीय हिन्दी परिषदकी ओरसे पुनः निकलने लगा। संसदीय हिन्दी परिषद द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके सहयोगसे एक हिन्दी साप्ताहिक राजभाषा प्रकाशित करना शुरू किया गया इस साप्ताहिककी सहसम्पादिका श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन् हैं।

हिन्दी-दिवस

हिन्दी-दिवसका आयोजन बड़े समारोहके साथ राष्ट्रपतिजी आदिके मार्गदर्शनमें होता रहा। संसद भवन में राष्ट्रपति भवनमें इसके आयोजन होते रहे हैं। इससे हिन्दीके कार्यको बड़ी गति मिली है। हिन्दी सप्ताहका आयोजन भी इस अवसरपर किया जाता रहा है।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री के. सी. रेड्डी, मन्त्री, उद्योग तथा व्यापार केन्द्रीय सरकार।

उपाध्यक्ष—श्री अनन्त शयनम् अयंगार राज्यपाल बिहार।

कोषाध्यक्ष—श्री एस. आर. एस. राघवन्।

मंत्री-संचालक—श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्।

परीक्षा उन्नति-क्रम

दिल्लीसे अबतक इस प्रकार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी विभिन्न परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए।

सन्	परीक्षार्थी
१९५३	७७८
१९५४	८३५
१९५५	८२४
१९५६	४९९
१९५७	२३९
१९५८	२२४
१९५९	२५९
१९६०	३०१
१९६१	३२०
१९६२	३७१

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर

सिंधमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके पूर्व भी होता रहा।

शिकारपुरकी प्रीतम धर्म सभा, साधुबेलाके महन्त स्वामी हरनामदास सक्खर तथा सिन्धके वीर सेनानी डॉ. चोइथराम द्वारा १९११ में हैदराबादमें स्थापित ब्रह्मचारी आश्रम एवं गिटूमल संस्कृत पाठ शाला द्वारा सिन्धमें हिन्दीका प्रचार होता रहा। १९१५ में स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने हैदराबाद (सिन्ध) में नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना की जिसकी ओरसे दो रात्रि पाठशालाएँ चलाई गई।

१९३६ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर काकासाहब कालेलकरकी अध्यक्षतामें सिन्ध-प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। उसी अवसरपर सिन्ध-हिन्दी प्रचार समितिका गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष सेठ लोकामल चेलाराम एवं मन्त्री पं. चन्द्रसेन जेतली निर्वाचित किए गए। पं. इन्द्रदेव शर्माको जो उन दिनों वर्धा अध्यापन मंदिरसे शिक्षा प्राप्त कर लौटे थे, संचालकके पदपर नियुक्त किए गए। १९४०–४१ में प्रोफेसर नारायण दास मलकानीको अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने समितिको नए सिरेसे संगठित किया। प्रत्येक जिलेके अध्यक्ष एवं मन्त्री इस प्रकार नियुक्त किए गए—

करांची	अध्यक्ष—श्री भगवानसिंह।	मन्त्री—श्री चन्द्रसेन जेतली।
हैदराबाद	अध्यक्ष—श्री प्रो. एम. एन. बठीजा।	मन्त्री—श्री देवदत्त शर्मा।
नवाबशाह	अध्यक्ष—श्री मठोराम हरूमल।	मन्त्री—श्री दीपचन्द्र।
सक्खर	अध्यक्ष—श्री बालचन्द्र।	मन्त्री—श्री बृहस्पति शर्मा।

प्रान्तीय समितिका कार्यालय करांचीसे बदलकर हैदराबाद रखा गया।

इसके बाद ही २१–२२ फरवरी १९४० को काकासाहबकी अध्यक्षतामें हैदराबादमें राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ और तदनन्तर कार्य बढ़ने लगा। कार्य बढ़ जानेपर पं. इन्द्रदेव शर्माके स्थानपर श्री देवदत्त शर्मा प्रान्तीय संचालक बनाए गए जो १९४६ तक इस कार्यको करते रहे।

सन् १९४४ में सिन्ध समितिने 'कौमी बोली' नामक मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया। पं. देवदत्त शर्मा एवं श्री गौरीशंकर शर्मा इसके सम्पादक थे।

१९४२ में प्रो. मलकानीके जेल चले जानेके कारण भाई प्रताप डीयलदासको समितिका सभापति बनाया गया।

श्री इन्द्रदेवजी शर्माके अथक परिश्रम एवं त्यागके कारण ही सिन्धमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य बढ़ा, लेकिन १९४६ में उनकी मृत्यु हो जानेके कारण समितिकी अपार क्षति हुई।

दिसम्बर १९४६ में करांचीमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। उसी अवसरपर सिंध समितिके संचालनका कार्य श्री दौलतरामजी शर्माको सौंपा गया। अभी मुश्किलसे १ वर्ष बीत पाया था कि देशका विभाजन हो गया और सिन्धका सारा कार्य जैसे-का-तैसा छोड़कर आना पड़ा।

राजस्थानमें

विभाजनके कारण सिन्धी भाइयोंको अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी। राजस्थान सिन्धके निकट होनेके कारण बहुत संख्यामें सिन्धी भाई राजस्थानमें आए। अतः राजस्थानमें ही वर्धा समिति द्वारा सिन्ध

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको कार्य करनेके लिए कहा गया और अजमेर प्रान्तीय कार्यालय स्थापित कर, कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

सिन्धी भाइयोंको राजस्थानी एवं अन्य प्रान्तोंकी जनताके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए हिन्दी ही एकमात्र सहारा थी। इसलिए राष्ट्रभाषा-कर्मीगण राष्ट्रभाषाका सन्देश घर-घर पहुँचाने लगे। वे दिन आँधी-तूफान और कठिनाईके दिन थे। उसकी कल्पना कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

राजस्थान चूंकि छोटे-छोटे राज्योंमें सदियोंसे बँटा हुआ था अतः शिक्षामें बहुत पिछड़ा हुआ था। राजस्थानी भाइयोंने हिन्दी पढ़ना शुरू किया और समितिका क्षेत्र व्यापक बनने लगा। समितिने राजस्थानमें राष्ट्रभाषाकी शिक्षाकी माँगको देखते हुए अपने नाममें राजस्थान जोड़ लिया और अब वह 'सिन्ध-राजस्थान' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बन गई। आज समिति राजस्थानके ग्राम-ग्राम, नगर-नगरमें आबाल-वृद्ध एवं सभी वर्गोंके लोगोंमें काम कर रही है।

सिन्धमें १९३८ से १९४७ तक २४४३२ परीक्षार्थी समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके थे। राजस्थानमें १९४८ से कार्य १११ परीक्षार्थीथियोंसे प्रारम्भ किया गया और १९६१ तक ५९३८१ परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके है, अब केन्द्रोंकी संख्या भी २०५ हो गई है। आजकल प्रतिवर्ष करीब १० हजारसे ऊपर परीक्षार्थी बैठने लगे हैं।

राष्ट्रभाषा सम्मेलन

राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने जोधपुरमें १९५३ के अक्तूबर महीनेमें अनन्त शयनम्जी अयंगारकी अध्यक्षतामें अपना प्रथम प्रान्तीय सम्मेलन सफलतापूर्वक मनाया।

१९५३ में ही नवम्बरमें उदयपुर जिलेके एक बहुत ही छोटे ग्राम रीछेड़में श्री जनार्दनरायकी अध्यक्षतामें उदयपुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुआ।

रीछेड़की ही भाँति सिकरायमें १९५४ में तत्कालीन संचालक मन्त्री श्री राजबहादुरकी अध्यक्षतामें सम्मेलन हुआ।

५–६ नवम्बर ५५ को लक्ष्मणगढ़में सीकर जिला सम्मेलन श्री पं. मु. डांगरेजीकी अध्यक्षतामें हुआ।

१९५९ में विनोबाजी द्वारा उद्घाटन किया जाकर श्री जेठालाल जोशीकी अध्यक्षतामें डूंगरपुरमें उदयपुर डिवीजन सम्मेलन २५ जनवरीको हुआ।

अखिल भारतीय रा. भा. प्रचार सम्मेलन, सातवाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका ७ वाँ अधिवेशन जयपुरमें सम्पन्न हुआ। इसकी अध्यक्षता साहित्य वाचस्पति सेठ गोविन्ददासजीने की एवं गृह-मन्त्रालयके मन्त्री श्री ब. ना. दातारने उद्घाटन किया। प्रदर्शनी उद्घाटन जयपुरके महाराज सवाई मानसिंहजीने किया। इस अवसरपर भारतीय दर्शनके प्रकाण्ड विद्वान् प्रज्ञाचक्षु पं. सुन्दरलालजीको महात्मा गाँधी पुरस्कार समर्पित

किया गया। राष्ट्रभाषाके पुराने निष्ठावान् सेवी श्री हृषीकेशजीका भी वर्धा समितिने अभिनन्दन किया।

हिन्दी-भवन

सम्मेलनके अवसरपर ही राजस्थानके मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़ियाने सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके तत्वावधानमें बननेवाले हिन्दी भवनका शिलान्यास किया। अब इस भवनका निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया है।

अब सिन्ध राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अध्यक्ष डॉ. सोमनाथजी गुप्त हैं जिनका मार्ग-दर्शन समितिको बड़ा प्रेरणादायी रहा है।

श्री दौलतरामजी शर्मा सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके मन्त्री-संचालक पदपर बड़ी लगनसे कार्य कर रहे हैं। वे १९५९ में थाइलैण्ड, कम्बोडिया, वीतनाम, हांगकाग, जापान और सिंगापुर भी हो आए हैं। जापान म्योतौमें उन्होंने राष्ट्रभाषा केन्द्रकी स्थापना भी की।

अन्य प्रवृत्तियां

१—राजस्थान ही पहला प्रान्त है जहाँ पचायतोंको अधिकार दिए गए। लेकिन अधिकतर पंच अशिक्षित है। समितिने उनमें शिक्षाका प्रचार किया और बड़ी सख्यामें पंच राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते है।

२—एक रेल विभाग भी खोला गया है। श्री सत्यदेवराव, अजमेर के प्रयत्नसे अजमेर, उदयपुर फुलेरा, रींगस, सीकर बोदी मुई, अछनेरा और जयपुरमें रेल्वे मजदूर वर्गके लिये राष्ट्रभाषा वर्ग चल रहे हैं।

३—२० शिक्षण केन्द्र एवं ३५ विद्यालय तथा १० महाविद्यालय प्रान्तमें चल रहे है।

४—राजस्थानमें ज्यों-ज्यों काम बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यो केन्द्र-संख्या भी बढ़ती जा रही है। १९४८ में ११ केन्द्रोंसे काम शुरू हुआ था अब राजस्थानमें २५० केन्द्र चल रहे है।

५—१६० प्रमाणित प्रचारक बन्धुओंका हार्दिक सहयोग समितिको प्राप्त है और लगभग उससे दुगने सहयोगी प्रचारक बड़ी निष्ठासे राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य कर रहे है।

६—समिति ६ वर्षोंसे 'उत्तर भारती' के नामसे कार्यकी जानकारी देनेके लिए एक मासिक बुलेटिन भी निकाल रही है जो केन्द्रोंको निःशुल्क भेजी जाती है।

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री डॉ. सोमनाथजी गुप्त, डाइरेक्टर-राजस्थान अकादमी उदयपुर।

संचालक-मन्त्री—श्री दौलतरामजी शर्मा।

कोषाध्यक्ष—श्री राजरूपजी टाँक।

सिंधमें तथा राजस्थानमें परीक्षार्थियोंका उन्नति क्रम नीचे दिया जा रहा है —

केवल सिन्धमें

सन्	परीक्षार्थी
१९३८	१४
१९३९	१६६
१९४०	८४८
१९४१	१,५४८
१९४२	१,८७२
१९४३	२,९०२
१९४४	३,४४२
१९४५	४,२०५
१९४६	५,१८९
१९४७	५,२४३
	२४४३२

राजस्थानमें

सन्	परीक्षार्थी
१९४८	१११
१९४९	३,०६२
१०५०	४,५११
१९५१	३,८८८
१९५२	३,६६१
१९५३	३,३९८
१९५४	३,६०९
१९५५	३,२२८
१९५६	३,७५८
१९५७	३,४३८
१९५८	३,८८२
१९५९	४,९३२
१९६०	७,४४५
१९६१	१०,४५६

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल

(इतिहास एवं प्रगतिविवरण)

स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद सिन्ध व पंजाबसे एक बड़ी संख्यामें शरणार्थी भाई पूर्व मध्यभारत व भोपालमें आकर बसे। उन्हें हिन्दी सिखानेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा इस प्रान्तमें परीक्षाऐं आरम्भ की गई। प्रारम्भमें यह कार्य श्री प्रेमसिंह चौहान 'द्विव्यार्थ' देखते थे। इसका कार्यालय विदिशाके पौस त्यौंदा ग्राममें था। कुछ वर्षोंके बाद कार्यालय त्यौंदासे खाचरौद ले आया गया। खाचरौदसे कार्य १९५२ तक चलता रहा। १९५२ में भोपाल-मध्यभारत राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई इसके सर्वप्रथम अध्यक्ष महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंह, सीतामऊ बनाए गए। कतिपय कारणोंसे १९५३–५४ में वहाँका कार्यालय बन्द कर दिया गया और वह कार्य केन्द्रीय कार्यालय वर्धासे ही संचालित होता रहा किन्तु जुलाई १९५४ में श्री बैजनाथ प्रसाद दुबेकी नियुक्ति प्रान्तीय समितिके संचालक-मन्त्री पदपर हुई। १५ व्यक्तियोंकी एक कार्यकारिणीका गठन डॉ. रघुवीरसिंहजीकी अध्यक्षतामें किया गया। कार्य विधिवत् प्रगति करता रहा। समितिके कार्यमें स्थिरता आने लगी। सन् १९५६ के नवम्बर माहमें मध्यभारत, भोपाल, विन्ध्य व महाकोशलको मिलाकर मध्यप्रदेश प्रान्तका एकीकरण हुआ तब भोपाल मध्यभारत राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका नाम बदलकर मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति किया गया और उसका कार्यालय जो पहले महूमें था अब भोपाल आ गया। २२ जून १९५७ को मध्यप्रदेशके मुख्यमन्त्री डॉ. कैलाशनाथ काटजूने इस कार्यालयका विधिवत् उद्घाटन किया।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, प्रान्तमें, अपने अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियोंका संचालन करती है।

सचिवालय कक्षाएँ

मध्यप्रदेश शासनके तृतीय श्रेणीके कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिए जुलाई १९६० से सचिवालयके कमेटी रूममें कक्षाएँ आरम्भ की गई हैं। इन कक्षाओंमें लभगभग ५० परीक्षार्थी (१९६१ तक) सम्मिलित हो चुके हैं। इस कार्यमें भाषा विभाग मध्यप्रदेश शासनका विशेष सहयोग मिला।

वादविवाद प्रतियोगिताएँ

१९५९ में रानी पद्मावती देवी (खैरागढ़) ने १५००) रु. की लागत की दो शील्डे प्रदान कीं। ये शील्डें पुरुषोंके लिए पं. रविशंकर शुक्ल वाद-विवाद प्रतियोगिता अेवं महिलाओंके लिए रानी पद्मावती देवी वाद-विवाद प्रतियोगिताके लिए दी गई।

हेवी इलेक्ट्रिकल्समें कार्य

सितम्बर ५९ से हेवी इलेक्ट्रिकल्समें राष्ट्रभाषाका केन्द्र खोला गया। इसमें १९६१ तक हिन्दीतर भाषा-भाषी २५१ परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। प्रमाण-पत्र १९६० के जुलाई महीनेमें डॉ.

कैलाशनाथ काटजूने वितरित किए। हेवी इलेक्ट्रिकल्सके कर्मचारियोंने हिन्दी भवनके लिए भी पर्याप्त मदद की।

हिन्दी-भवन

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके तत्वावधानमें पं. रविशंकर शुक्लकी स्मृतिमें एक हिन्दी भवन बनानेका निश्चय किया गया है। भवनके लिए शासनकी ओरसे दो अेकड़ भूमि टैगोर स्मृति गृहके निकट आकाशवाणीके पड़ोसमें मिल चुकी है। भवनके लिए राष्ट्रभाषा प्रचार केन्द्रोंसे १० हजार रु. एवं बिड़ला बन्धुओंसे १० हजार एकत्र हुए हैं। भवन-निधि एकत्र करनेके लिए ईटोंके प्रतीक ब्लाक बनाए गए हैं।

प्रचार विवरण

प्रान्तमें ७० प्रचारक बन्धु प्रचार कार्यमें सहयोग दे रहे हैं।
७१ केन्द्रोंमें नियमित रूपसे परीक्षाओंका आयोजन किया जाता है।
करीब सवा पाँच हजार परीक्षार्थी प्रतिवर्ष प्रदेशसे सम्मिलित होते हैं।

मान्यता

मध्यप्रदेश शासनने समितिकी परिचय परीक्षाको विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य किया है। उसी तरह शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकारके समान परिचय, कोविद, एवं राष्ट्रभाषा रत्नको क्रमशः मैट्रिक, इन्टरमीजियेट, एवं बी. ए. हिन्दी के समकक्ष स्वीकार किया है।

हस्ताक्षर आन्दोलन

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने १९६१ से एक हस्ताक्षर आन्दोलन प्रारम्भ किया है और मध्यप्रदेशके समस्त हिन्दी प्रेमियों, प्रचारकों, केन्द्र-व्यवस्थापकों एवं हिन्दी संस्थाओंसे अनुरोध किया है कि वे अपने पास-पड़ोस, ग्राम नगरके अशिक्षित व्यक्तियोंको हस्ताक्षर करना सिखाएँ और अंगूठा निशानी एवं अशिक्षाको दूर करें। मध्यप्रदेशके राज्यपाल श्री पास्टकरजीने एक चपरासिनको हस्ताक्षर करना सिखाकर इस आन्दोलनका उद्घाटन किया।

महिला विभाग

१९५६ में मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने महिलाओंमें राष्ट्रभाषा कार्यको बढ़ावा देने और अशिक्षित महिलाओंको शिक्षित करनेके विचारसे एक महिला विभाग खोलनेका निश्चय किया। १९५७ में रानी पद्मावती (खैरागढ़) के नेतृत्वमें म. प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत महिला विभाग खोल दिया गया। उसकी एक कार्यकारिणी गठित की गई। पहले इसका कार्यालय इन्दौरमें रखा गया था लेकिन अगस्त ५९ में यह कार्यालय भोपाल ले आया गया।

१९५७–५८ में समाज शिक्षा विभागने महिला विभागको १० हजारका अनुदान दिया। १९५८–५९ में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्डने पुस्तकालयके लिए १३०० का अनुदान दिया। समाज कल्याण बोर्डने १९५०–६० व १९६०–६१ में भी क्रमशः १ हजार एवं ९५० का अनुदान दिया।

मध्यप्रदेशसे सम्बद्ध संस्थाओंमें ये संस्थाएँ प्रमुख हैं—

१—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रतलाम।

२—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इन्दौर।

३—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, उज्जैन।

४—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बैरागढ़।

५—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, आष्टा।

६—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बुरहानपुर (जिला पूर्व निमाड)

७—नूतन साहित्य कलानिकेतन, जच्छण्ड (जिला भिण्ड)

८—मालव विद्यापीठ मन्दसौर।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री महाराज कुमार डॉ. रघुवीरसिंह, डी. लिट्।

कार्याध्यक्ष—श्री सौभाग्यमलजी जैन, एडवोकेट।

उपाध्यक्ष—श्री श्यामाचरणजी शुक्ल, एम. एल. ए.।

उपाध्यक्ष—श्री महाराजा भानुप्रकाशसिंहजी।

उपाध्यक्ष—श्री डॉ. विनयमोहन शर्मा।

कोषाध्यक्ष—श्री हुकुमचन्दजी पाटनी।

संयोजिका महिला विभाग—श्रीमती सुशीलारानी दास।

मन्त्री-संचालक—श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५१	२,०३७
१९५२	१,७९९
१९५३	१,३८४
१९५४	१,३०८
१९५५	१,५०७
१९५६	३,१४८
१९५७	२,७१८
१९५८	३,८१४

सन्	परीक्षार्थी
१९५९	४,५३३
१९६०	४,६२५
१९६१	५,०९८
१९६२	४,६१७

मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद

मराठवाड़ा कई सांस्कृतिक विशेषताओंके गौरवसे सम्पन्न होते हुए भी, कई वर्षोंतक अँग्रेजों तथा निजाम शासनकी दुहरी गुलामीमें जकड़ा होने के कारण भारतके अन्य कई प्रदेशोंकी अपेक्षा पिछड़ा ही रहा। वहाँकी जनताके मनपर भय व आतंकका प्रभाव था।

हैदराबादमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापनाके अनन्तर ही १९३७ में कार्य आरम्भ किया गया था। लेकिन श्री विष्णुदत्तजी शर्मा मराठवाड़ामें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य बड़ी निर्भीकतासे करते रहे। भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद निजाम हुकूमतसे छुटकारा पानेके लिए स्टेट कांग्रेस हैदराबाद द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन ' प्रारम्भ किया गया। इस कारण राजनैतिक नेताओंके साथ कई राष्ट्रभाषा प्रेमियोंको भी जेल भेज दिया गया। श्री पं. विष्णुदत्तजी शर्माको भी जेलमें भेज दिया गया। हिन्दी प्रचारका कार्य भी जेलके सींकचोंमें ही चलने लगा। जेलमें ही राष्ट्रभाषा पढ़ानेकी योजना विविध प्रवृत्तियोंके साथ कार्यान्वित होने लगी।

नवम्बर १९४८ में भारत सरकार द्वारा पुलिस कार्यवाही होनेके पश्चात् भय एवं आतंकके साम्राज्यका अन्त हुआ। राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको भी गति मिली। इस समय जालनाके श्री पं. गंगा विष्णुजी शर्मा, श्री पं. नागेशदत्तजी शुक्ल, श्री भीमरावजी बरील, नान्देड़के श्री लक्ष्मणाचार्य शास्त्री, श्री मदनलालजी विपाणी, लातूरके श्री कचरूलालजी पोकरणा, अम्बा जोगाईके श्री चन्द्रगुप्तजी गुप्ता तथा श्री वि. ना. जाधव, औरंगाबादके श्री पं. ज्ञानेन्द्रजी शर्मा आदि कई हिन्दी प्रेमियोंने अपनी निष्ठाका परिचय देकर हिन्दी प्रचार क्षेत्रमें महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मराठवाड़ामें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभाके द्वारा संचालित होता रहा। आगे चलकर जब हैदराबाद स्टेट का पुनर्विभाजन हुआ तो वह बम्बई राज्यके अन्तर्गत आ गया। १९५६ के अन्ततक मराठवाड़ामें हिन्दीका कार्य शिथिल-सा हो गया। अतः समितिके निश्चया-नुसार मराठवाड़ामें कार्य करनेकी दृष्टिसे मराठवाड़ाके पुराने राष्ट्रभाषा कर्मी श्री पं. विष्णुदत्तजी शर्माकी नियुक्ति की गई।

शर्माजीने मराठवाड़ाके जालना, सेलू, नान्देड़, परभणी, बीड़ तथा लातूर आदि स्थानोंका दौरा कर जन सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने मराठवाड़ाके प्रमुख जन नेता मा. श्री भगवंतरावजी गाढ़े तथा मा. श्री शंकररावची चव्हाणसे विचार विनिमयकर मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका गठन किया। अध्यक्ष श्री भगवन्तरावजी गाढ़े बनाए गए और उपाध्यक्ष श्री शंकररावजी चव्हाण। ये अबतक पदा-धिकारीके रूपमें विद्यमान हैं।

कार्यकी सुविधाके लिए प्रारम्भमें प्रान्तीय समितिका कार्यालय जालनामें रखा गया। १९५८ में यह समिति विधिवत् प्रान्तीय समिति स्वीकृत कर ली गई।

अब मराठवाड़ा समितिका कार्य प्रगतिपर है। प्रतिवर्ष करीब ६००० परीक्षार्थी सम्मिलित होने लगे है और करीब १०० केन्द्र भी स्थापित हो चुके हैं।

प्रान्तीय समितिकी ओरसे हाईस्कूल तथा महाविद्यालयीन छात्र-छात्राओंके लिए वक्तृत्व तथा निबन्ध स्पर्धाएँ आयोजित की जाती है।

महाराष्ट्र सरकारकी ओरसे १९५९–६० से अबतक १३ हजारका अनुदान प्राप्त हो चुका है।

मराठवाड़ामें राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें जो परीक्षार्थी सम्मलित हुए उनका उन्नतिक्रम इस प्रकार है :—

मराठवाड़ा उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५७	४३६
१९५८	१,५९५
१९५९	३,०८९
१९६०	४,५००
१९६१	४,११६
१९६२	५,६७६

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हुबली

कर्नाटकमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाएँ लेनेका कार्य १९४७ से आरम्भ हुआ। उस समय पूरे कर्नाटक भरमें केवल ५ केन्द्र थे। १९४९ में हुबलीमें एक स्थानीय समिति बनी। उसके अध्यक्ष थे श्री आर. व्ही. शिरूर एवं कार्याध्यक्ष थे कामर्स कालेजके प्रिंसिपल श्री महाजन और संगठनका कार्य श्री वा. चिं. बस्ती करते थे। श्री भा. मा. कुलकर्णीका सहयोग भी समितिको कुछ समय तक प्राप्त हुआ था। धीरे-धीरे कार्य बढ़ने लगा। कार्य सम्हालनेके लिए सुव्यवस्थित संगठनकी आवश्यकता पड़ी। हुबलीमें श्री सु. वि. भट्ट तथा श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्तीके प्रयत्नोंसे १९५४ में कार्यालयका तत्कालीन प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पाजी द्वारा उद्घाटन हुआ। १९५४ में प्रान्तीय समितिके निर्माण होनेके बाद प्रथम अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा कार्याध्यक्ष श्री आ. व्ही. शिरूर एवं प्रान्तीय संचालक श्री वासुदेवराव चिन्तामणि बस्ती थे।

कर्नाटक समितिकी ओरसे समय समयपर स्पर्धाएँ भी रखी जाती हैं। समिति अपना निजी भवन बनानेकी योजना भी बना रही है।

१९५९ में कर्नाटक समितिकी ओरसे एक शैक्षणिक स्नेह-सम्मेलन आयोजित किया गया था।

उसमें मूरसाविर मठके जगद्गुरु श्री गंगाधर राजयोगीन्द्र स्वामीजीने उद्घाटन किया तथा मैसूर राज्यके तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री बी. डी. जत्तीजी मुख्य अतिथिके रूपमें पधारे थे।

हिन्दी-दिवसका आयोजन बड़े समारोहपूर्वक किया जाता है। इस अवसरपर विभिन्न स्पर्धाएँ भी आयोजित की जाती हैं।

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य इस अल्प कालमें बहुत प्रगति कार चुका है। अब ४० केन्द्रोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य चल रहा है और ४३००० से अधिक परीक्षार्थी इसकी परीक्षामें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं।

अबतक प्रान्तसे प्राथमिकमें ६,७१२, प्रारम्भिकमें १७,५८५, प्रवेशमें १३६८३, कोविदमें ३,०३६ तथा रत्नमें १६२ इस प्रकार ४८,१०१ परीक्षामे सम्मिलित हो चुके हैं—

समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री एच. पी. शहा, एम. एल. ए.।

कार्याध्यक्ष—श्री आर. व्ही. शिरूर।

उपाध्यक्ष—श्री बी. एल. इचिनाल,

उपाध्यक्ष—श्री राघवजी देवजी लद्दड़।

संचालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती।

यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई है। सरकारकी ओरसे इसे कोई सहायता अभी प्राप्त नहीं हुई है। वर्धा समितिकी सहायता एवं जनताके सहयोगपर ही यह समिति अपना कार्य चलाती है। एक सालसे हुबली कर्नाटकमें राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें निम्नलिखित क्रमसे वर्षवार परीक्षार्थी सम्मिलित हुअे।

कर्नाटकमें भवन निर्माणके लिए श्री आर. व्ही. शिरूरने ५४४५ स्केर फटकी जगह प्रदानकी है। भवन निर्माण शीघ्र ही प्रारम्भ होनेवाला है। शिरूरजीकी सहायता पहलेसे ही है।

कर्नाटक परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९४७	२००
१९४८	१५०
१९४९	८००
१९५०	१,२००
१९५१	३,५००
१९५२	४,५००
१९५३	१,३३४

सन्	परीक्षार्थी
१९५४	९०९
१९५७	१,४६९
१९५८	१,७३७
१९५९	१,९९६
१९६०	३,९३५
१९६१	३,६८८
१९६२	३,१००
	२८,५१८

बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगांव

बेलगाँव जिलेमें १९४५ से वर्धा समितिकी परीक्षाएँ शहापुर तथा येल्लूरमें संचालित होती थीं और १९४७ से बेलगाँव और गोवामें भी वर्धा समितिकी परीक्षाएँ संचालित हो रही थी और इनका संचालन महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा होता था। परन्तु बेलगाँव जिलेका अलग संगठन बनानेका निश्चय किया गया तदनुसार १९५१ मे बेलगॉव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। इसके प्रथम अध्यक्ष श्री भैरूलालजी व्यास चुने गए।

११ वर्षोंके इस अल्पकालमें इस जिला समितिने बड़ी सफलतापूर्वक कार्य किया। अब २५०० से अधिक परीक्षार्थी प्रतिवर्ष वर्धा समितिकी परीक्षाओंमे जिला बेलगाँव केन्द्रोंसे बैठते हैं। यहाँ परीक्षाओंके कार्यको सुचारु रूपसे चलानेके लिए प्रचारकोंको कई प्रकारके संघर्ष एवं कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ी हैं। अब अनुकूलवातावरण तैयार हो गया है। इस कार्यमें हिन्दी प्रचार सभा, बेलगाँव, राष्ट्रभाषा विद्यालय, येल्लूर, भारती हिन्दी विद्यालय, बेलगाँव, राष्ट्रभाषा विद्यालय, टिलकवाड़ी, राष्ट्रभाषा विद्यालय कागवाड़का सहयोग विशेष रूपसे मिलता रहा है।

श्री द. पा. साटम, मन्त्रीने बेलगाँव जिलेके विभिन्न क्षेत्रोंमें केन्द्र स्थापित करने एवं प्रचार कार्यको बढ़ानेके लिए बड़ा सराहनीय कार्य किया है।

बेलगाँवकी हिन्दी प्रचार सभाकी ओरसे एक हिन्दी भवन भी बना है। उसमें वर्धा समितिने भी २००१ रु. का अनुदान दिया। येल्लूरमें भी एक हिन्दी भवन बननेवाला है उसमें भी वर्धा समितिने ७५१ रु. का अनुदान दिया।

१९५४ में बेलगाँवमें एक जिला सम्मेलन श्री ना. शा. बालावलकरजीकी अध्यक्षतामें आयोजित किया गया था। इससे प्रचार कार्यको बड़ा बल मिला।

अबतक बेलगाँव जिला समितिके प्रचारकों द्वारा वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें लगभग २० हजार परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं।

गोवामें हिन्दी प्रचार

बेलगाँव जिला समितिने गोवामें भी हिन्दी प्रचार करनेमे काफी सहयोग दिया है। श्री गाँवकर, श्री सुर्लेकर, रामकर तथा कु. कीर्तनी कामत आदि हिन्दी प्रेमी वर्धाकी परीक्षाओंका सफल प्रचार कर रहे हैं। वर्धा समितिके प्रचारका भविष्य उज्ज्वल है।

श्री भैरूलालजी व्यास जो समितिके प्रारम्भसे अध्यक्ष थे उनका २५ दिसम्बर १९६० को देहान्त होनेके कारण बेलगाँवके राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको बड़ी क्षति पहुँची।

बेलगाँव जिलेसे निम्नानुसार परीक्षार्थी सम्मिलित हुए—

बेलगांव परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५३	१,८००
१९५४	१,५०४
१९५५	१,३७७
१९५६	१,७७५
१९५७	१,८६८
१९५८	२,१२९
१९५९	२,२३३
१९६०	२,१२०
१९६१	२,२७१
१९६२	२,८९१

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

पचीस वर्ष पूर्व १९३५ में युगादिके शुभ मुहूर्तपर सभाकी स्थापना हुई। प्रारम्भिक दिनोंसे इसकी नीति राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिका प्रचार और प्रसार करना है। देशके इतिहासमें, राष्ट्रभाषाके प्रश्नको लेकर कई समस्याएँ खड़ी हुई, किन्तु सभाका संगठन और सभाकी नीति दृढ़ रही। संविधानमें राष्ट्रभाषा हिन्दीकी स्वीकृतिके कारण 'सभा' अधिक प्रोत्साहित हुई। संविधान मूलक हिन्दीका प्रचार करना 'सभा' का मूल उद्देश्य रहा है। सन १९५२ में औरंगाबाद अधिवेशनमें सभाने प्रादेशिक भाषाओंके सम्बन्धमें अपनी नीति स्पष्ट की है।

सभाके निमन्त्रणपर १९४९ दिसम्बरमें अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन स्व. चन्द्रबली पांडेयकी अध्यक्षतामें यहाँपर सम्पन्न हुआ।

सभाके मुख्य उद्देश्योंमेंसे एक है—अहिन्दी भाषियोंमें हिन्दीका प्रचार, दूसरा है हिन्दी साहित्यके प्रति रुचि उत्पन्न करना और प्रान्तीय भाषाओंसे हिन्दीका परस्पर आदान-प्रदान करना तथा स्नेह सौहार्द बढ़ाना। हिन्दी प्रचारके दो तरीके सभाने अपनाऐं हैं। एक तो साधारण जनताकी हिन्दीकी

आवश्यकताओंकी पूर्ति करना। दूसरा है 'संविधान' की धाराओंको ध्यानमें रखते हुए केन्द्रीय राज-काज तथा अन्तर्प्रान्तीय काम काजके विचारसे हिन्दीको व्यवहारोपयोगी बनाना। साधारण जनतामें प्रचार बढ़ानेके लिए परीक्षाओंका संचालन, करना, इनके लिए उचित पुस्तकोंको प्रकाशित करना आदि कार्य सभा कर रही है।

दूसरे उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए ऊंचे गम्भीर और मौलिक साहित्यका निर्माण, प्रादेशिक साहित्य और हिन्दीका अनुवादों द्वारा आदान-प्रदान और प्रादेशिक तथा हिन्दी भाषाको निकटतम लानेका प्रयत्न, ये कार्य सभाके प्रकाशन विभाग और साहित्य विभागके द्वारा सम्पन्न किए जा रहे हैं। सभा कई वर्षोंतक उच्च कोटिकी पत्रिका "अजन्ता" का प्रकाशन भी करती थी। लेकिन यह पत्रिका अब बन्द हो गई है।

सभा जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दीके नाते अपने कार्योंका संचालन करती है, वहाँ हिन्दीकी ऐच्छिक भाषा और माध्यमके रूपमें व्यवहृत किए जानेके लिए भी सुविधाएँ देती है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सभाके अन्तर्गत दो हिन्दी महाविद्यालय हैदराबादमें संचालित हो रहे हैं।

प्रचारात्मक, साहित्यिक और प्रकाशनात्मक कार्योंके अतिरिक्त 'सभा' का कार्य जन सम्पर्क और सरकारी शिक्षा विभागके सहयोगके नाते भी उल्लेखनीय रहा है। हिन्दीके द्वारा भाषाके त्रिवेणीका स्वरूप हैदराबादके इस क्षेत्रमे विभिन्न भाषा भाषियोंके निकट लानेका कार्य सभाने किया और हैदराबादमें उर्दूके कारण जो अनुकूल वातावरण हिन्दी प्रचारके लिए अनायास मिल गया, उसके फल-स्वरूप जाति, धर्म, भाषा आदि भेदोंके रहते हुए भी हिन्दी प्रचारके कार्योंमे सभी लोग एक मन और एक प्राण रहे हैं। यहाँकी अन्य साहित्यिक संस्थाओके साथ हमारा केवल सहयोगका सम्बन्ध ही नही, अपितु घनिष्ठताका नाता है। आन्ध्र साहित्य परिषद्, महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, कन्नड़ साहित्य परिषद्, अजुमन तरक्की उर्दू, अदबियात उर्दू, दखनी प्रकाशन समिति आदिसे हमारा अभिन्न सम्बन्ध रहा है। यहाँके कार्यकर्ताओंने यह प्रमाणित कर दिया है कि भाषा, धर्म, जाति आदिकी भिन्नता हिन्दी प्रचारमें बाधक नही अपितु साधक है।

सभाने अपनी गतिविधियोंके द्वारा सरकारी शिक्षा विभागके एक साधक अंगके रूपमें कार्य किया है। उसके द्वारा हैदराबाद, वरंगल, सिकंदराबाद तेनालि नर्सापुर और महबूबाबादमें हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण वर्गोंके दीर्घ कालीन सत्रोंका संचालन किया जा रहा है। भारत सरकारकी समाज शिक्षा योजनाके अन्तर्गत लगभग १६ केन्द्रोंका २ वर्ष तक संगठन सरकारी कार्यालयोंमे वहाँके कार्यकर्ताओंको हिन्दी शिक्षासे सक्षम बनाना, जीवनसे निराश सैकड़ों कैदियोंको जेल विभागकी कृपासे हिन्दी शिक्षा द्वारा उनमें नवीन आशाका संचार, और हरिजन तथा पिछड़ी हुई जातियोंमे हिन्दी प्रचारको बढ़ावा देनेके लिए पर्याप्त निःशुल्क सुविधाओंका आयोजन, ये ऐसे कार्य है जिनसे सभा जनता तक पहुँचती है और सरकारके शिक्षा विभागके पूरक अंगके रूपमें कार्य कर रही है।

हिन्दी साहित्यकी अभिरुचि बढ़ाने तथा ऊँचे और गम्भीर साहित्यके पठन-पाठनकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहित करनेके लिए सभा पुस्तकालयोंका संचालन करती है। इस पुस्तकालय योजनाके अंतर्गत सभाने कई जिला स्थानोंमें हिन्दीकी पुस्तकोंका अनुदान दिया है। यह अनुदान उन्हीं स्थानोंपर

दिया गया है, जहाँ प्रादेशिक साहित्यकी अच्छी पुस्तकें एकत्रित की गई हों। इस प्रकार हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंके मेल-मिलापका यह प्रयत्न सभाने किया है।

इधर 'सभा' के विशेष प्रकाशनोंकी योजनाके लिए भारत सरकारने सहायता दी है। इसके अन्तर्गत मराठी, तेलुगु, कन्नड़ और उर्दू साहित्यका इतिहास हिन्दीमें प्रकाशित किया जा रहा है और हिन्दी-उर्दू कोष, उर्दू-हिन्दी कोषका भी निर्माण किया जा रहा है। इसमेंसे कुछ कार्य पूर्ण हो चुके हैं और थोड़े शेष हैं।

सभा दक्खिनी प्रकाशन समितिको सहयोग देती रही है। इस समितिका कार्य है दक्षिणमें 'दखनी' नामसे जो बोली प्रचलित है और उसमें जो साहित्य है, उसको हिन्दीमें रूपान्तरित करना। इसके द्वारा हिन्दीकी एक विशिष्ट शैलीका परिचय साहित्य जगतको दिया जा रहा है। हिन्दी और उर्दूको निकटतम लानेमें दक्खिनी प्रकाशन समितिके इस शुभ कार्यमे 'सभा' ने आर्थिक तथा बौद्धिक सहयोग दिया है।

सभा द्वारा प्रकाशित बाल साहित्यकी ६ पुस्तकोंमेसे गाँवोंकी कहानियाँ भाग १ तथा बालकोंकी कहानियाँ इन दो पुस्तकोंको केन्द्रीय सरकार द्वारा ५००)–५००) रुपयोंका पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

यहाँ सभाकी परीक्षाओंके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करना अप्रासंगिक न होगा। सभाकी सात परीक्षाएँ वर्षभरमें दो बार होती हैं, जिनमे लगभग ४० हजार विद्यार्थी ४५० केन्द्रोंमें प्रवेश पाते है। इनमें महिलाओंका अनुपात लगभग ३० प्रतिशत होता है। शहरमें इससे अधिक। अहिन्दी क्षेत्र होनेके नाते अहिन्दी परीक्षार्थियोंकी संख्या लगभग ९० प्रतिशत रहती है।

प्रसन्नताकी बात है कि इधर भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयन सभाकी तीन परीक्षाओंको इस प्रकार मान्यता प्रदान की है।

विशारद—मैट्रिक
भूषण—इंटर
विद्वान—बी. ए.

'हिन्दी-शिक्षक' प्रशिक्षणको आन्ध्र प्रदेशकी सरकारने बी. टी. के बराबर मान्यता प्रदान की है।

मैसूर और महाराष्ट्र प्रदेशने भी सभाकी परीक्षाओंको मान्यता प्रदान की है।

इस प्रकार सभाका कार्य आन्ध्र प्रदेशमे बड़े गौरव पूर्ण ढंगसे किया जा रहा है। प्रदेशमें उसका हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे बड़ा महत्व है।

सभा द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमे वर्षवार जो परीक्षार्थी सम्मिलित कराए गए उनकी संख्या इस प्रकार है :—

हैदराबादका परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९४८	२०७
१९४९	१,१४५

सन्	परीक्षार्थी
१९५०	२,१०१
१९५१	१,५७२
१९५२	३६७
१९५३	१४४
१९५४	५९
१९५५	११४
१९५६	२३२
१९५७	१५४
१९५८	८९
१९५९	२३५
१९६०	३४८
१९६१	३३८
१९६२	२७३

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना श्री दौलतरामजीके प्रयत्नोंसे १९५६ में हुई। श्रीमती कमला पारिमू प्रिंसिपल महिला महाविद्यालयके प्रयत्नोंसे महिला महाविद्यालयमें वर्धा समितिका पहला परीक्षा केन्द्र स्थापित हुआ। महिला महाविद्यालय राज्यभरकी प्राचीनतम हिन्दी शिक्षण संस्था है। यहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी परीक्षाओं एवं रत्न, भूषण, प्रभाकर आदि हिन्दी परीक्षाओंका प्रबन्ध १९४० से ही होता था।

अहिन्दी प्रान्त होनेके कारण काश्मीरमें कार्यको बढ़ानेमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। लेकिन अब वहाँकी जनता राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यकी ओर आकृष्ट हुई है और रूचि लेने लगी है।

१९५८ में श्री मोहनलाल भट्ट (मन्त्री वर्धा समिति) श्री जेठालालजी (संचालक गुजरात) एवं श्री दौलतरामजी शर्मा (संचालक सिन्ध-राजस्थान) श्रीनगर पधारे। एक बैठक श्री जगद्धरजी जाडू के सभापतित्वमें हुई जिसमें श्री हकीम शम्भूनाथजी पारिमू तथा श्रीमती कमला पारिमूने आजीवन वर्धा समितिका कार्य करनेकी प्रतिज्ञा की। इसी बैठकमें श्री जगद्धरजी जाडूने समितिका अध्यक्ष पद स्वीकार किया। १९५९ से हकीम शम्भूनाथजी पारिमू संचालक एवं श्रीमती पारिमू मन्त्री बनीं।

जम्मू-काश्मीर सरकारने समितिके कार्यसे प्रभावित होकर इस वर्ष समितिको १ हजार रुपयोंकी सहायता प्रदान की है। केन्द्रीय सरकारने भी पुस्तकालयके लिए ५०० रु. का अनुदान देना स्वीकार किया।

जम्मू-काश्मीरके प्रमुख नगरोंमें वर्धा समितिके अनेक केन्द्र खुल चुके हैं जहाँ पाठ्यपुस्तक वितरण, परीक्षा प्रबन्ध आदि कार्य प्रारम्भ किया गया।

समितिने एक उर्दू-हिन्दी स्वयं शिक्षक भी प्रकाशित किया है जिसके द्वारा उर्दू जाननेवाला व्यक्ति १५ दिनमें ही स्वयं हिन्दी सीख सकता है। इस स्वयं शिक्षककी हजारों प्रतियाँ समिति वितरित कर चुकी है।

अबतक श्रीनगरमें श्रीनगर, कर्णनगर, रैणाबारी, भट्टयार, रंगटेंग जम्मूमें-कच्ची छावनी जम्मू एवं गावोंमें अनन्तनाग, चवगाम, भट्टन (मार्तण्ड) उत्तर सू. अच्छन, वेरीनाग, सागाय, चीनीगुण्ड, सोपुर, चोडुर, पट्टन, पलहालन, बारामुल्ला, हन्दवाड़ा, दरबाग आदि स्थानोमें केन्द्र खुल चुके हैं।

परीक्षार्थी संख्यामें निरन्तर प्रगति होती जा रही है।

काश्मीरसे सन् १९५६ में ६६, १९५७ में १३०, १९५८ में १६०, १९५९ में ८०७, १९५० मे ९७३ एवं १९६१ में ८८० परीक्षार्थी सम्मिलित हुए।

काश्मीर समितिके प्रयत्नोंसे वर्धा समितिकी राष्ट्रभाषा परीक्षाओंको काश्मीर विश्वविद्यालय तथा जम्मू-काश्मीर शिक्षा विभागसे मान्यता प्राप्त हुई है।

हिन्दी-दिवस

१९५८ में 'हिन्दी-दिवस' श्री गुलाम मुहम्मद मुख्तार, शिक्षा-संचालक जम्मू-काश्मीरके सभा पतित्वमें मनाया गया।

१९५९ में हिन्दी दिवसपर राज्यके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री सरदार हरबन्ससिंहजी 'आजाद' द्वारा प्रमाण-पत्र वितरित किये गये।

१९६० में 'हिन्दी-दिवस' के अवसरपर प्रचारकोंको पुरस्कार तथा परीक्षार्थियोंको प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आनेके उपलक्ष्यमें पुरस्कार वितरण समारम्भ राज्यके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद राजपुरीके सभापतित्वमे हुआ।

१९६१ में समितिने एक लेख प्रतियोगिताका आयोजन किया। इसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय आनेवालोंको राज्यके शिक्षा मन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिकने अच्छे पुरस्कार दिये।

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भविष्यमे निम्नलिखित योजनाओंको कार्यान्वित करने जा रही है :—

१—राष्ट्रभाषा शिक्षकों एवं प्रचारकोंके लिए रिफ्रेशर कोर्सका आरम्भ।

२—राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी।

३—उत्कृष्ट काश्मीरी साहित्यका सुयोग्य विद्वानों द्वारा हिन्दी अनुवाद।

४—यात्रियोंकी सुविधाके लिए 'कश्मीरी सीखिए' पुस्तिकाका प्रकाशन। (इसकी पांडु लिपि प्रेसमें दी जा चुकी है।)

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर।

अध्यक्ष—श्री जगद्धरजी जाडू।

मन्त्री—श्रीमती कमला पारिमू।

संचालक—श्री शम्भूनाथजी पारिमू।

अबतक वर्षवार जम्मू काश्मीरसे परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनकी वर्षवार परीक्षा संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५६	६६
१९५७	१३०
१९५८	१६०
१९५९	८०७
१९६०	९७३
१९६१	६३८
१९६२	१,१८३

पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

वैसे पजाबमें पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन और साहित्य-सदन अबोहरके द्वारा काफी दिनोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य चल रहा है। साहित्य-सदन सन् १९२५ में एक पुस्तकालयके रूपमें स्थापित हुआ था। इसका भव्य भवन हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी सम्पत्ति है। श्री स्वामी केशवानन्दजीके नेतृत्वमें सदनने पंजाबमें बड़ी ख्याति अर्जित की। इसके पुस्तकालय-संग्रहालयमें हस्तलिखित ग्रन्थ आदि प्राचीन वस्तुएँ संग्रहीत हैं। 'दीपक' मासिकका भी प्रकाशन यहाँसे होता था। पंजाब तथा काश्मीरके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलनने हिन्दी परिचय तथा हिन्दी कोविद परीक्षाओंकी व्यवस्थाका भार सदनको सौंपा था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ३० वाँ अधिवेशन सदनके प्रांगणमें ही हुआ था। सन् १९५८ से हिन्दी साहित्य सदनका सारा कार्यभार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाको सौंप दिया गया। वहाँपर पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय भी खोल दिया गया है। फिलहाल पंजाबके कार्यका संचालन सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके संचालक श्री दौलतरामजी शर्मा कर रहे हैं। पंजाब सरकार तथा पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा समितिकी कोविद परीक्षाको भी मान्यता प्राप्त हो चुकी है। परिणामतः यहाँ काफी केन्द्र खुल चुके हैं तथा प्रचार कार्य उत्साहपूर्ण वातावरणमें चल रहा है।

इस समय प्रतिवर्ष पंजाबमें ३१०६ परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। कुल ८ परीक्षा केन्द्र हैं तथा ६ प्रचारक इस कार्यमें अपना योग दे रहे हैं।

अबतक जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका वर्षवार विवरण इस प्रकार है—

पंजाब परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५५	५५
१९५६	१५६
१९५७	२६३
१९५८	३९३
१९५९	४४७
१९६०	६८०
१९६१	६६७
१९६२	४४५

गुजरात विद्यापीठ

गुजरात विद्यापीठ महात्मा गाँधीजीके १९२० के असहयोग आन्दोलनके फलस्वरूप शाला एवं महाविद्यालयोंके त्याग करनेवाले विद्यार्थियोंकी शिक्षाके 'लिए स्थापित हुई। गाँधीजी स्वयं ही उसके कुलपति बने थे और आचार्य गिडवानी, आचार्य कृपालानी, आचार्य काकासाहब कालेलकर जैसे विद्वान् तथा शिक्षा शास्त्रियोंने इसके विकासमें पूरा योग दिया। वर्तमान गुजरातके राष्ट्रीय विकासमें इस विद्यापीठ-का बहुत बड़ा हिस्सा है। आरम्भसे ही इस विद्यापीठमें हिन्दीकी शिक्षाको स्थान मिला था और वहाँ हिन्दी विषय माध्यमिक शिक्षा तथा महाविद्यालयमें सदा अनिवार्य रहा है। परन्तु इस विद्यापीठने सन् १९३५ से ही नवजीवन ट्रस्टके सहयोगसे राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य प्रचारकों द्वारा गुजरातमें करना आरम्भ किया। इन दोनों संस्थाओंकी ओरसे श्री मोहनलालजी भट्टको यह प्रचार-कार्य सौंपा गया। इससे बहुत पहले ही गुजरातमें श्री परमेष्ठीदास जैनके प्रयत्नसे सूरतमें राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल की स्थापना हो चुकी थी और उसके द्वारा वहाँ राष्ट्रभाषाके वर्ग चलाए जा रहे थे। अब अहमदाबादमें भी राष्ट्रभाषा हिन्दीके नियमित वर्ग चलने लगे।

१९३६ में जब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना हुई तब वही कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा होने लगा। किन्तु १९४२ में हिन्दी-हिन्दुस्तानीका प्रश्न पैदा हुआ और जब हिन्दु-स्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई तब विद्यापीठने उसको सहयोग दिया।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धाने भी १९४५ में गुजरातमें चलनेवाले कार्यको गुजरात विद्यापीठ-को ही सौंप दिया था। जब संविधानमें हिन्दी तथा नागरी लिपि स्वीकार की गई तो विद्यापीठने भी दो लिपियोंका आग्रह छोड़ दिया। गुजरात विद्यापीठके प्रति गुजरातमें बहुत आदर है। बम्बई राज्य तथा गुजरातमें इन परीक्षाओंमें परीक्षार्थी बड़े पैमानेपर सम्मिलित होते हैं। इसकी क्रमिक रूपमें पाँच निम्नलिखित परीक्षाएँ ली जाती हैं—

१—हिन्दी पहली
२—हिन्दी दूसरी
३—हिन्दी तीसरी
४—विनीत
५—हिन्दी सेवक

ये परीक्षाएँ वर्षमें फरवरी और सितम्बरमें ली जाती हैं। विद्यापीठकी शिक्षामें आज भी हिन्दीको वही स्थान तथा महत्व प्राप्त है जो पहले था।

गुजरात विद्यापीठकी तीसरी, विनीत और सेवक परीक्षाएँ अनुक्रमसे हिन्दी योग्यताकी दृष्टिसे मैट्रिक, इन्टर और बी. ए. के समकक्ष भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालय द्वारा मान्य की गई हैं।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना २ मई १९४२ को वर्धामें हुई। इसका प्रधान उद्देश्य हिन्दुस्तानी-का प्रचार करना था। सभाने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए परीक्षाओंका संचालन करना चाहा, किन्तु इस बीच १९४२ का आन्दोलन छिड़ गया और राष्ट्रनेता तथा इसके सभी कर्मी जेलमें चले गए। श्री अमृतलाल नानावटी बाहर थे। इस बीच श्री नानावटीने गुजरात विद्यापीठके द्वारा हिन्दुस्तानीका प्रचार कार्य शुरू किया। सन् १९४४ में जब सभी कर्मी जेलसे बाहर आए तो गुजरातमें चलनेवाले कार्यकी तरह दूसरे प्रदे-शोंमें भी हिन्दुस्तानी प्रचारका कार्य करनेके सम्बन्धमें निश्चय किया। फरवरी १९४५ में वर्धामें एक सभा हिन्दुस्तानी प्रचार परिषदकी ओरसे गाँधीजीकी अध्यक्षतामें बुलाई गई। इस अवसरपर एक हिन्दुस्तानी साहित्य तैयार करनेवाला बोर्ड कायम हुआ। उसीकी एक उपसमिति बनाई गई जिसकी देखभाल डॉ. ताराचन्दके सुपुर्द हुई।

जब सभाका काम १९४४–४५ में फिरसे शुरू हुआ तो यह तय किया गया कि प्रान्तोंमें संगठन किया जाए और प्रान्तीय संगठनको पदवीकी परीक्षाको, छोड़कर बाकीकी नीचेकी परीक्षाएँ अर्थात् हिन्दुस्तानी लिखाव ट, हिन्दी पहली, हिन्दी दूसरी तथा हिन्दी तीसरी परीक्षाएँ चलानेका अधिकार दिया जाए। जहाँ प्रान्तीय संगठन न हो, वहाँ वर्धाके दफ्तरसे प्रचार कार्य किया जाए। यह भी तय हुआ कि प्रान्तीय संगठनोंको सम्बद्ध किया जाए और उसी धनसे दूसरी तरह मदद की जाए। इसके मुताबिक गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार सभा और बम्बई हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ये दो प्रान्तीय संस्थाएँ सम्बन्द्ध की गई। सन् १९४५ में जुलाईमें श्री काका साहब कालेलकर जेलसे बाहर आये तब बाकीके सिन्ध, महाराष्ट्र, विदर्भ, बगाल, उड़ीसा आदि प्रान्तोंमें प्रचार करनेका भार सभाने उन्हें सौंपा। सन् १९४५ के अन्तमें और १९४६ के शुरूमें काका साहबने गुजरातका दौरा किया। इसके बाद गुजरातमें हिन्दुस्तानी प्रचारका काम गुजरात विद्यापीठ अहमदाबादको सौपा गया। सन् १९४७ में इस सभाके मन्त्री पदसे श्रीमन्नारायणजी अग्रवालने स्तीफा दे दिया।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाका कार्यालय अब बम्बई चला गया और वहींसे इसकी परीक्षाएँ ली जाती हैं।

भारत सरकारने इसकी काबिल और विद्वान् परीक्षाओंको क्रमशः मैट्रिक और इन्टरकी हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्

सन १९४९ में निम्नलिखित उद्देश्योंको लेकर अखिल भारतीय हिन्दी परिषदकी स्थापना की गई—

१—भारतीय संविधानके अनुच्छेद ३५१ के आदेशके अनुसार राजभाषा हिन्दीके निर्माण-विकास और प्रचारमे मदद करना।

२—हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेका प्रयत्न करना।

३—केन्द्रीय राजकाजमे हिन्दीका शीघ्र उपयोग हो, इसके लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना और आवश्यक सुविधाएँ प्रस्तुत करना।

४—भारतके अन्तरप्रान्तीय व्यवहारमें हिन्दीका अधिक-से-अधिक उपयोग हो,इसका प्रयत्न करना।

५—भारतीय संविधानकी आठवी अनुसूचीमे उल्लिखित सभी भाषाओंके प्रति आदर और प्रेम पैदा करनेके साथ साथ हिन्दी भाषियोंको अन्य भाषाएँ सीखनेके लिए प्रोत्साहित करना।

६—इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए आवश्यक संस्थाएँ स्थापित करना।

७—इन उद्देश्योंके अनुसार काम करनेवाली संस्थाओको सम्बद्ध करना। इस परिषदका कार्यालय नई दिल्लीमें स्थापित किये गये। परिषदकी प्रथम कार्य समितिके लिए निम्नलिखित सदस्योका चुनाव हुआ—

अध्यक्ष—श्री डॉ. राजेन्द्रप्रसाद।

सर्वश्री—ग. वा. मावलंकर, कन्हैयालाल मा. मुन्शी, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, राजकुमारी अमृतकौर, के. सन्तानम, रंगनाथ दिवाकर, घनश्याम सिह गुप्त, इन्द्र विद्या वाचस्पति, गोविन्द वल्लभ पन्त, बालासाहब खेर, विष्णुराम मेघी, स्वामी विचित्रानन्दन दास, एस. के. पाटील, कमलनयन बजाज।

इस परिषदके संयोजक श्री शंकरराव देव तथा श्री मो. सत्यनारायण चुने गये। कार्यालय तथा परीक्षा-मन्त्री श्री देवदूत विद्यार्थी नियुक्त किये गये।

परिषदका एक अधिवेशन सन १९५१ के मार्चमे हुआ। इसमें राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादको संस्थापक संरक्षक रहनेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—तथा इसके पदाधिकारी निम्नलिखित हुए—

अध्यक्ष—श्री ग. वा. मावलंकर।

उपाध्यक्ष—श्री गोविन्द वल्लभ पन्त।

उपाध्यक्ष—श्री रंगनाथ दिवाकर।

कोषाध्यक्ष—श्री कमलनयन बजाज।

मन्त्री—श्री शंकरराव देव।

मन्त्री—श्री मो. सत्यनारायण।

इसी अवसरपर सदस्योंकी भी घोषणा की गई।

इस परिषदसे निम्नलिखित संस्थाएँ प्रारम्भसे सम्बद्ध हुई :—

१—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।
२—पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कलकत्ता।
३—उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक।
४—आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ, विजयवाड़ा।
५—तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा, तिरुचिरापल्ली।
६—कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़।
७—केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, एर्नाकुलम्।
८—महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना।
९—असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गौहाटी।
१०—भारतीय हिन्दी परिषद, दिल्ली प्रदेश।
११—भारतीय हिन्दी परिषद, कश्मीर प्रदेश।
१२—हैदराबाद हिन्दी प्रचार संघ, हैदराबाद।
१३—राष्ट्रभाषा प्रचार परिषद, भोपाल।

परिषदकी ओरसे आगरामें एक महाविद्यालय चलाया जाता था जहाँ अहिन्दी प्रदेशोंसे विद्यार्थी हिन्दीकी उच्च शिक्षा तथा शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करनेके हेतु आते थे। यहाँसे शिक्षा प्राप्त स्नातकको 'पारंगत' उपाधि प्राप्त होती थी। अब यह विद्यालय केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयने अपने अधीन कर लिया है और उसके लिए एक कमेटी बना दी है जो उसका सञ्चालन, नियमन करती है। भारत सरकारने इस परीक्षाको बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके पुराने कार्यकर्ता श्री रामकृष्ण नावड़ा आगरामें चलनेवाले विद्यालयके आचार्य हैं।

बम्बई हिन्दी विद्यापीठ

सन् १९३८ में बम्बई हिन्दी विद्यापीठकी स्थापना हुई। इसका कार्यालय बम्बईमें है। हिन्दी प्रचारको अपना लक्ष्य बनाकर यह कार्य कर रहा है। अनेक कठिनाइयाँ आने पर भी इसके कार्यकर्ताओंके अदम्य उत्साहके कारण यह संस्था दृढ़तापूर्वक कार्य कर रही है। इसके द्वारा सञ्चालित परीक्षाएँ भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें ली जाती हैं। इस समय इसके ८४७ परीक्षा-केन्द्र हैं और प्रतिवर्ष काफी संख्यामें विद्यार्थी इसकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

विद्यापीठमें निम्नलिखित परीक्षाएँ ली जाती है—

प्रचार परीक्षाएँ—हिन्दी प्रवेश, हिन्दी प्रथमा, हिन्दी मध्यमा तथा हिन्दी उत्तमा।

उच्च परीक्षाएँ—हिन्दी भाषा रत्न, साहित्य सुधाकर तथा साहित्य रत्नाकर।

विद्यापीठकी उत्तमा, भाषा रत्न एवं साहित्य सुधाकर परीक्षाएँ भारत सरकार द्वारा क्रमशः मैट्रिक इण्टर एवं बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मानी गई हैं।

विद्यापीठकी उच्च परीक्षाओंको कुछ राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकारकी मान्यता प्राप्त है।

विद्यापीठका अपना मुद्रणालय है तथा अपने पाठ्यक्रमकी कुछ पुस्तकोंका प्रकाशन वह स्वयं करती है। इसके विकासमें श्रीमती लीलावती मुन्शी, श्री रामनाथ पोद्दार, स्व. रणछोड़लाल ज्ञानी, डॉ. मोतीचन्द-जी, श्री घनश्यामदास पोद्दार श्री भानुकुमार जैन आदिका मुख्य योगदान रहा है।

समय-समयपर इस विद्यापीठ द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं। यशोधरा, कामायनी, रामायण, चित्रलेखा आदि कलाकृतियोंको रंगमञ्चपर प्रस्तुत करनेमे इसे सफलता मिली है।

ज्ञानलता मण्डल--भारतीय विद्यापीठ

यह संस्था बम्बईमें कार्य कर रही है। इसके द्वारा हिन्दीका प्रचार तो होता है, पर इसके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नड़के भी वर्ग चलाये जाते है और यह इस विद्यापीठ भाषाओंकी परीक्षाएँ भी लेता है। १९४२ में ज्ञानलता मंडलकी स्थापना हुई। और इस मंडलने परीक्षाओंकी व्यवस्था करके सन् १९४९ में 'भारतीय विद्यापीठ' की स्थापना की।

इस विद्यापीठकी हिन्दी परीक्षाओंके केन्द्र भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें स्थापित हैं। इसकी परी-क्षाओंके नाम प्रवेश, प्रथम, द्वितीय, तृतीय और रत्न हैं। उच्च परीक्षाओंके नाम आचार्य और शिक्षा रत्न हैं। अबतक ३६०० परीक्षार्थी इसकी हिन्दी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए है। कुछ राज्य सरकारों द्वारा इसकी उच्च परीक्षाएँ--रत्न तथा आचार्य परीक्षा मान्य हैं।

इस विद्यापीठने अबतक १८ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसके द्वारा प्रकाशित 'व्यवहार दीपिका' नामक मराठी हिन्दी लघु कोश बहुत लोकप्रिय है। इसके पुस्तकालयमें हिन्दीके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, अँग्रेजी आदि भाषाओंकी पुस्तकें हैं।

समय-समयपर सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते है।

मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्, बंगलौर

मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, बंगलौर दक्षिण भारतकी एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रभाषा प्रचार संस्था है। इसकी स्थापना सन् १९४३ में हुई। दक्षिण भारतमें, प्रधानतः मैसूर राज्यमें, राष्ट्रभाषा हिन्दीके साथ हिन्दी साहित्यके प्रति जनतामें अभिरुचि पैदा करना ही इस संस्थाका मुख्य लक्ष्य रहा है।

कार्य-विवरण

परिषदकी ओरसे प्रथमा, मध्यमा, प्रवेश, उत्तमा, हिन्दी रत्न, (उपाधि परीक्षा) आदि परीक्षाएँ ली जाती हैं। इन परीक्षाओंको मैसूर सरकारकी मान्यता प्रारम्भ कालसे ही थी। इस वर्ष भारत सरकारकी मान्यता भी प्राप्त हुई। परीक्षाएँ वर्षमें दो बार फरवरी और अगस्त महीनोंमें चलती है। इन परीक्षाओंमें करीब २५ हजार तक विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। विशाल कर्नाटक प्रान्तकी स्थापनाके बाद इसका कार्यक्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक हो गया है। गर्मियोंमें भी प्रचारकी दृष्टिसे प्रथमा और मध्यमा की विशेष परीक्षाएँ ली जाती हैं। मैसूर राज्यमें करीब २०० परीक्षा केन्द्र हैं।

भारत सरकारकी मान्यता

भारत सरकारके शिक्षा-विभाग द्वारा परिषदकी 'प्रवेश' परीक्षाको मैट्रिक, उत्तमाको इण्टर, और हिन्दी रत्नको बी. ए. के समकक्ष मान्यता प्राप्त हो चुकी है। मैसूर सरकार उत्तमा वालोंको माध्यमिक शालाओंमें, हिन्दी रत्नमें उत्तीर्ण उपाधिधारियोंको प्रौढ़ शालाओंमें हिन्दी अध्यापकका स्थान दे रही है। मध्यमामें उत्तीर्ण होनेवाले सरकारी कर्मचारी व अधिकारियोंको विभागीय हिन्दी परीक्षासे छूट भी मिल रही है। पंचवर्षीय योजनाके अनुसार इन परीक्षाओंके लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है।

अध्ययनकी व्यवस्था

परिषदकी परीक्षाओंके लिए परिषदके केन्द्रीय कार्यालयमें अध्यापनकी व्यवस्था भी की गई है। 'हिन्दी उत्तमा' और 'हिन्दी रत्न' के लिए विशेष वर्ग भी चलते हैं। हिन्दी साहित्यके अच्छे ज्ञाता और हिन्दी पंडित ही अध्यापक हैं। हिन्दी विद्यार्थियोंकी विशेष योग्यता की दृष्टिसे व्याख्यान माला, वाक्स्पर्धा, विशेष भाषण, प्रचारक सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी 'विशारद' और 'साहित्य रत्न' परीक्षाओंके परीक्षार्थियोंके लिए ऐसी ही विशेष व्यवस्था की जाती है।

पुस्तकालय

परिषदके अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय और वाचनालय भी है। केन्द्रीय पुस्तकालयमें हिन्दी साहित्यके उच्च कोटिके सभी ग्रन्थ संग्रहीत है। फिलहाल २० हजारसे अधिक पुस्तकें है। केन्द्रीय पुस्तकालयके अतिरिक्त राज्यके मुख्य मुख्य नगरोंमें परिषदके नेतृत्वमें स्थानीय हिन्दी पुस्तकालय भी चल रहे है। इन पुस्तकालयोंको केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकार तथा स्थानीय संस्थाओंकी आर्थिक सहायता भी प्राप्त है।

प्रकाशन

परिषदकी प्रारम्भिक परीक्षाओंके सारे पाठ्यग्रन्थ परिषदकी ओरसे ही प्रकाशित होते है। अबतक 'हिन्दी प्रकाश' के तीन भाग, 'महापुरुष', 'चार एकांकी,' 'साहित्य सुबोध,' हिन्दी कन्नड़ अनुवाद माला, हिन्दी कन्नड़ व्याकरण आदि प्रकाशित हो चुके है।

हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र

परिषदके तत्वावधानमें "हिन्दी अध्यापकोंका प्रशिक्षण केन्द्र" भी मैसूर सरकारकी आर्थिक सहायतासे चल रहा है।

समितिके पदाधिकारी

श्री एच. रामकृष्णरावजी (अध्यक्ष), श्रीमती पुष्पाबाई (उपाध्यक्षा), श्री के. बी. मानप्पा

(प्रधान और परीक्षा-मन्त्री), श्री वेंकटेशय्या (कोषाध्यक्ष), श्री वी. वीरप्पा (सदस्य), श्री आर. के. गोडबोले (सदस्य)।

कार्य समितिके अतिरिक्त परिषदके असंख्य प्रेमी और प्रचारक भी है, जिनके सक्रिय सहयोगसे राष्ट्रभाषाका सन्देश अपने प्रान्तके कोने-कोनेमें पहुँचानेमें सफलता मिल रही है। हम परिषदके सभी शुभकांक्षियोंको धन्यवाद देते हैं।

साहित्य निर्माणकी फुटकर संस्थाएँ

हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग

महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंके अनुवाद करानेके उद्देश्यसे हिन्दुस्तानी एकेडमीकी स्थापना सन् १९२७ में प्रयागमे हुई। प्रमुख मौलिक रचनाओंको पुरस्कृत करना और साहित्य-सेवाको प्रोत्साहन देना, उत्तम लेखकोंको संस्थाकी ओरसे सम्मानित करना इसके प्रधान उद्देश्य रहे हैं। इसने सचमुच साहित्यकी बहुत बड़ी सेवा की है। इसका एक बहुत बड़ा सर्वागपूर्ण पुस्तकालय है। प्रति वर्ष अनेक विद्वानों द्वारा व्याख्यानों के आयोजन भी किये जाते है। 'हिन्दुस्तानी' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती रही है। इसके द्वारा कई दर्जन पुस्तकें विभिन्न विषयोंपर प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकाशनके क्षेत्रमें इसने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

महिला विद्यापीठ, प्रयाग

हिन्दीके माध्यम द्वारा महिलाओंमें शिक्षा-प्रसार का जो काम प्रयागकी महिला विद्यापीठने किया है, उसका अपना एक विशेष स्थान है। इसके द्वारा प्रवेशिका, विद्या-विनोदिनी, विदुषी, सुगृहिणी, सरस्वती आदि परीक्षाएँ सञ्चालित होती है। प्रारम्भसे लेकर एम. ए. तककी पढ़ाईका प्रबन्ध भी प्रयाग महिला विद्यापीठ द्वारा होता है। संस्थाके अन्तर्गत एक कालेज भी है। इसके प्रिन्सिपल हिन्दी साहित्यकी सुविख्यात कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा रही हैं। भारत सरकारने इसकी विदुषी एवं सरस्वती परीक्षा-ओंको क्रमशः इण्टर एवं बी. ए. के हिन्दी ज्ञानके समकक्ष माना है।

नागरी जागरणकी इनी-गिनी कुछ संस्थाओंमें प्रयाग महिला विद्यापीठका नाम बड़े आदरके साथ लिया जाता है।

हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर

देवघर हिन्दी विद्यापीठ कई वर्षोंसे हिन्दीकी उच्च परीक्षाओंका सञ्चालन करती आ रही है। इसकी साहित्यालंकार (उपाधि) परीक्षाका देशमें बड़ा सम्मान है। हिन्दीके माध्यम द्वारा अनेक औद्यो-गिक विषयोंकी शिक्षा दी जाती है। साहित्य महाविद्यालयकी ओरसे पहली कक्षासे उत्तमा परीक्षा तक हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। बिहारसे बाहर भी इसके कई केन्द्र है तथा वहाँ इस संस्थाकी परीक्षा-ओंमें परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

भारत सरकारने हिन्दी विद्यापीठ देवघरकी प्रवेशिका, साहित्य भूषण एवं साहित्यालंकार परीक्षाओंको क्रमशः मैट्रिक, इण्टर एवं बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

बिहार राज्यकी विधान सभाने ११ अप्रैल सन् १९४७ के दिन इस परिषदकी स्थापनाका संकल्प किया था। आधुनिक भारतीय भाषाओंके साहित्यका संवर्धन भारत की राष्ट्रभाषा और बिहारकी राज्यभाषा हिन्दीमें कला, विज्ञान एवं अन्यान्य विषयोंके मौलिक तथा उपयोगी ग्रन्थोंका प्रकाशन और बिहारकी प्रमुख बोलियोंका अनुशीलन परिषदके उद्देश्य रखे गये थे।

विभाजन सम्बन्धी असुविधाओंके कारण परिषदका कार्य १९ जुलाई १९५० में प्रारम्भ हो सका, जब श्री शिवपूजन सहाय इसके मन्त्री नियुक्त हो गये। बिहारके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री आचार्य बद्रीनाथ वर्मा इसके अध्यक्ष हुए। परिषदका विधिवत् उद्घाटन ११ मार्च सन् १९५१ के दिन बिहारके तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री माधव श्रीहरि अणेके कर कमलोसे सम्पन्न हुआ।

उद्देश्योंकी सफलताके लिए श्रेष्ठ साहित्यके संकलन और प्रकाशनकी व्यवस्था की गई। प्रारम्भिक एवं वरिष्ठ ग्रन्थ-प्रणेताओं एवं नवोदित साहित्यकारोंको पुरस्कार देनेकी योजना बनी और सोचा गया कि उपयोगी साहित्यका सम्पादन करनेवालोंको आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। विशिष्ट विद्वानोंके सारगर्भित भाषणोंका प्रबन्ध हुआ और हस्तलिखित एवं दुर्लभ साहित्यकी खोजका काम हाथमें लिया गया तथा भोजपुरी, मैथिली एवं मराठी आदि लोक भाषाओके शब्दकोश प्रस्तुत करनेकी दिशामे प्रयत्न प्रारम्भ हुए।

इस कार्यक्रमके अनुसार अब परिषदके पास हस्तलिखित एवं दुर्लभ ग्रन्थोंका विशाल संग्रह एकत्रित हो गया है। उसके द्वारा प्रकाशित, हिन्दी साहित्यका 'आदि काल', 'हर्ष चरित', 'योरोपीय दर्शन' और 'सार्थवाह' आदि ग्रन्थ राष्ट्र भारतीके भंडारके गौरव माने गये हैं। लोक भाषाओंकी दिशामे भी पर्याप्त काम किया गया है। डॉ. उदयनारायण तिवारीका 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' इस प्रयत्नमें मुकटमणि है।

परिषदका वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष भव्य समारोहके साथ सम्पन्न होता है। वरेण्य विद्वानोंके भाषणोंकी व्यवस्था इसी अवसरपर होती है।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणें

सन् १९४५ तक महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामनजी पोतदार एवं श्री गो. प. नेने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके क्रमशः अध्यक्ष और संगठन मन्त्री थे। लेकिन नवम्बर १९४५ में उन्होंने बेलापुरमें एक संगठन कायम किया और वर्धा समितिसे एकाएक सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और एक स्वतन्त्र संगठन बनाया जो आज महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणेंके नामसे कार्य कर रहा है।

ता. २६ जनवरी १९४६ से महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभाने अपनी परीक्षाएँ लेना आरम्भ कर दिया। तबसे परीक्षा और विद्यालयोंका सञ्चालन-शिक्षण, प्रकाशन आदि कार्योंकी इस संस्थाकी उन्नति हो

रही है। सभा द्वारा ये परीक्षाएँ सञ्चालित हो रही हैं—

राष्ट्रभाषा—पहली
राष्ट्रभाषा—दूसरी
राष्ट्रभाषा—प्रबोध
राष्ट्रभाषा—प्रवीण
राष्ट्रभाषा—पंडित
राष्ट्रभाषा—सम्भाषण योग्यता।

सन् १९४९ में अखिल भारतीय हिन्दी परिषदकी स्थापना हुई। तब यह सभा भी उससे सम्बद्ध हो गई।

सभा-द्वारा मुख्यतः जो प्रवृत्तियाँ चलाई जाती हैं, वे इस प्रकार हैं—परीक्षा, प्रचार, शिक्षण, ग्रन्थालय, मासिक पत्रिका, प्रकाशन, प्रेस।

परीक्षा—महाराष्ट्रमें अबतक करीब २२ लाख व्यक्तियों तक यह संस्था हिन्दीका सन्देश पहुँचा चुका है।

परीक्षा मान्यता—प्रबोध, प्रवीण, और पंडित परीक्षाएँ भारत सरकार द्वारा मैट्रिक, इण्टर एवं बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्य की गई हैं।

सभाने एक अनुवाद पंडित परीक्षा चलाई है ताकि भिन्न-भिन्न साहित्य शैलियोंमें लिखे गये सामान्य तथा उच्च ग्रन्थोंके अनुवाद करनेकी प्रवृत्ति बढ़े।

प्रचार और शिक्षण

सभाकी ओरसे स्थान-स्थानपर शिक्षण वर्गोंका प्रबन्ध किया जाता है। सभाने पूना और नासिकमें हाईस्कूल भी खोले हैं जहाँ शिक्षणका माध्यम हिन्दी है। सभा-द्वारा उच्च परीक्षाओंके लिए शिक्षक तैयार करनेके लिए विद्यालय चलाये जाते हैं, साथ ही भिन्न-भिन्न परीक्षाओंके लिए विद्यार्थियोंके लिए व्याख्यान-मालाओंका आयोजन किया जाता है।

ग्रन्थालय—सभाके पास एक बृहद् ग्रन्थालय भी है जिसमे हिन्दी तथा अन्य भाषाओंकी विभिन्न विषयोंपर लगभग २० हजार पुस्तकें हैं।

राष्ट्रवाणी मासिक पत्रिका

सभा द्वारा 'राष्ट्रवाणी' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन भी किया जाता है। राष्ट्रवाणीका स्वरूप ऐतिहासिक व सांस्कृतिक है।

प्रेस

सभाके पास अपना एक बड़ा प्रेस भी है।

सभाका कार्यक्षेत्र निरन्तर व्यापक होता जा रहा है और इसकी परीक्षाओंमें अच्छी संख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

राजभाषा-हिन्दी

संघ सरकार तथा राज्य सरकारोंके प्रयत्न

जबतक अँग्रेज थे, भारतकी राजभाषा अंग्रेजी ही रही। यह ठीक है कि सन् १९३७ से जब कि कांग्रेसके हाथोंमें प्रान्तीय शासनकी बागडोर आई थी, हिन्दीको तथा प्रान्तीय भाषाओंको महत्त्व देनेका कार्य किसी-न-किसी रूपमें शुरू हो गया था। लेकिन फिर भी अँग्रेजोंके शासनकालमें राजभाषाके पदपर अँग्रेजीका ही बोलबाला रहा। अधिकसे-अधिक जनता तक अपनी बात पहुँचाने, अर्थात् अपने प्रचारके लिए शासकगण हिन्दी, हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाओंका उपयोग कर लिया करते थे।

१५ अगस्त १९४७ में जैसे ही स्वराज्य मिला, हम सबका मन उमंगोंसे भर उठा। अँग्रेज चले गए उनके साथ अँग्रेजी भी चली जाएगी, ऐसी हमारी धारणा बनी।

स्वतन्त्रता हमें १५ अगस्त १९४७ को मिली, पर भारतके संविधानका काम सन् १९४६ से ही शुरू हो गया था। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ९ दिसम्बर १९४६ को संविधान सभाके अध्यक्ष चुन लिये गये थे। लगभग तीन वर्षोंके चिन्तन-मनन एवं वाद-विवादके बाद, २६ नवम्बर १९४९ को संविधान परिषदके द्वारा भारतीय संविधान को पूरा रूप दे दिया गया।

वह दिन १४ सितम्बर १९४९ का था जब कि भारतीय संविधान सभाने भारत संघ राज्यकी राजभाषाके बारेमें निर्णय किया। हिन्दीके रूपके सम्बन्धमें देशमें दो मत थे। एकका कहना था कि भारतकी राजभाषाके रूपमे देवनागरी एवं उर्दू लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानी प्रतिष्ठित हो; यह भाषा एक ऐसी भाषा रहे जिसमें न तो संस्कृतिके तत्सम, भारी-भरकम शब्द हों और न अरबी फारसीके अगम्य, अनसुने शब्दोंकी भरमार। यह भाषा बोलचालकी ऐसी भाषा रहे जिसे कि हिन्दू-मुसलमान दोनों समझ लें। गाँधीजी तथा उनके इस नीतिके कुछ अनुयायी इस मतके पक्षमें थे। दूसरा मत था कि नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दी ही केन्द्रकी राजभाषा हो। इस पक्षमें श्री टण्डनजी तथा उनके समर्थक हिन्दी, अहिन्दी-भाषी लोग थे। तीसरी एक विचार धारा अवधिके बारेमें थी। दक्षिणांचलके प्रतिनिधि यह चाहते थे कि हिन्दीको लानेकी १५ सालकी अवधि बहुत कम है, उसे बढ़ाया जाए। इस तरह भारतकी राजभाषाका प्रश्न पूरे भारतवर्षके लिए एक चिन्तनीय प्रश्न बन बैठा था। अत: उसके निराकरणके लिए, कुछ प्रमुख व्यक्तियोंके प्रयत्नोंसे, विशेषत: श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके प्रयत्नोंसे दिल्लीमे सारे देशके भाषाविदों एवं विद्वानोंकी एक परिषद (Convention) आमन्त्रित की गई। इस परिषदमें सभी प्रदेशोंके एवं भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित एवं विद्वान् इकट्ठे हुए थे। तीन दिनों तक उनमें आपसमें चर्चा, वाद-विवाद एवं चिन्तन-मनन चलता रहा। अन्तमें सब एक समझौतेपर पहुँचे, जिसका निष्कर्ष यह था कि हिन्दी ही अपनी प्रकृति एवं गठनके कारण भारतकी सभी प्रादेशिक भाषाओंके अधिक निकट है, अत: उसीको राजभाषाके रूपमें स्वीकार किया जाय। संविधान सभामें बादमें जो राजभाषा सम्बन्धी निर्णय हुए उनपर इस परिषदके निष्कर्षोंका गहरा प्रभाव पड़ा था; इसीलिए उसका यहाँ उल्लेख किया गया है।

राजभाषाके सवालपर संविधान सभामें जो अनेक प्रकारकी चर्चाएँ हुई थी उनका समारोप एवं समन्वय करते हुए श्री कन्हैयालालजी मुन्शी तथा श्री गोपालस्वामी आयंगरने एक फार्मूला पेश किया। इस फार्मूलामे विभिन्न विचार-धाराओंका समाधान था। लगभग सर्व सम्मतिसे संविधान सभाने यह नियम स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप संविधानमे राजभाषा विषयक जो धाराएँ आई, उनका निष्कर्ष इस प्रकार है :—

संविधानमें राजभाषा सम्बन्धी धाराएँ

धारा ३४३ (१) संघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघके राजकीय प्रयोजनोंके लिए प्रयुक्त होनेवाले अंकोका रूप भारतीय अंकोंका अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(२) खड (१) से किसी बातके होते हुए भी इस संविधानके प्रारम्भसे पंद्रह वर्पकी कालावधिके लिए संघके उन सब राजकीय प्रयोजनोंके लिए अँग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए ऐसे प्रारम्भके ठीक पहले वह प्रयोग की जाती है—

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कलावधिमे, आदेश द्वारा संघके राजकीय प्रयोजनोंसे किसीके लिए अँग्रेजी भाषाके साथ-साथ हिन्दी भाषाका तथा भारतीय अकोके अन्तर्राष्ट्रीय रूपके साथ-साथ देवनागरी रूपका प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।

(३) इस अनुच्छेदमे किसी बातके होते हुए भी ससद उक्त पन्द्रह सालकी कालावधिके पश्चात् विधि द्वारा—

(क) अँग्रेजी भाषाका; अथवा

(ख) अकोके देवनागरी रूपका,

ऐसे प्रयोजनोंके लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसी कि ऐसी विधिमें उल्लिखित हों।

धारा ३४४ (१) राष्ट्रपति, इस सविधानके प्रारम्भसे पाँच वर्षकी समाप्तिपर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भसे दस वर्पकी समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेंगे, जो एक सभापति, और अप्टम अनुसूचीमें उल्लिखित भाषाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाले उन अन्य सदस्योंसे मिलकर बनेगा, जिन्हें कि राष्ट्रपति नियुक्त करें, तथा आयोग द्वारा अनुसरणकी जानेवाली प्रक्रियाको भी वही आदेश निर्दिष्ट करेगा।

(क) सघके राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषाके उत्तरोत्तर अधिक प्रयोगके बारेमें,

(ख) सघके राजकीय प्रयोजनोंमेसे सव या किसीके लिए अँग्रेजी भाषाके प्रयोगपर निर्बन्धनोंके बारेमे,

(ग) अनुच्छेद ३४८ मे वर्णित प्रयोजनोंमेसे सव या किसीके लिए प्रयोगकी जानेवाली भाषाके बारेमें,

(घ) संघके किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनोंके लिए प्रयोग किये जानेवाले अंकोके रूपके बारेमें,

(ङ) संघकी राजभाषा तथा सघ और किसी राज्यके बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्यके बीच सञ्चारकी भाषा तथा उनके प्रयोगके बारेमे राष्ट्रपति द्वारा (आयोग) से पृच्छा किये गये किसी अन्य विषयके सम्बन्धमें,

अपनी सिफारिशें राष्ट्रपतिके समक्ष पेश करनेका कर्तव्य आयोगका होगा।

(३) खंड (२) के अधीन अपनी सिफारिशें करनेमें आयोग भारतकी औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नतिका तथा लोक-सेवाओंके बारेमें अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रोंके लोगोंके न्यायपूर्ण दावों और हितोंका सम्यक् ध्यान रखेगा।

(४) तीस सदस्योंकी एक समिति गठित की जाएगी जिनमें से बीस लोक-सभाके सदस्य होंगे तथा दस राज्य-परिषदके सदस्य होंगे जो कि क्रमशः लोकसभाके सदस्यों तथा राज्य-परिषदके सदस्यों द्वारा सानुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धतिके अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(५) खंड (१) के अधीन गठित आयोगकी सिफारिशोंकी परीक्षा करना तथा उनपर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपतिको करना समितिका कर्तव्य होगा।

(६) अनुच्छेद ३४३ में किसी बातके होते हुए भी राष्ट्रपति खंड (५) में निर्दिष्ट प्रतिवेदनपर विचार करनेके पश्चात् उस सारे प्रतिवेदनके या उसके किसी भागके अनुसार निदेश निकाल सकेंगे।

धारा ३४५ अनुच्छेद ३४६ और ३४७ के उपबन्धोंके अधीन रहते हुए राज्यका विधान मंडल विधि द्वारा उस राज्यके राजकीय प्रयोजनोंमेंसे सब या किसी के लिए प्रयोगके अर्थ उस राज्यमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाओंमेंसे किसी एक या अनेक को या हिन्दीको अंगीकार कर सकेगा।

परन्तु जबतक राज्यका विधान-मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तबतक राज्यके भीतर उन राजकीय प्रयोजनोंके लिए अँग्रेजी भाषा प्रयोगकी जाती रहेगी जिनके लिए इस संविधानके प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

धारा ३४६ संघमे राजकीय प्रयोजनोंके लिए प्रयुक्त होनेके लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्यके बीचमें तथा किसी राज्य और संघके बीचमें संचारके लिए राजभाषा होगी।

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्योंके बीचमें संचारके लिए राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचारके लिए वह भाषा प्रयुक्त की जा सकेगी।

धारा ३४७—तद्विषयक मांगकी जानेपर यदि राष्ट्रपतिका समाधान हो जाय कि किसी राज्यकें जन समुदायका पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए, तो वह निदेश दे सकेगा कि उस भाषाको उस राज्यमे सर्वत्र अथवा उसके किसी भागमे ऐसे प्रयोजनके लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे, राजकीय अभिज्ञा दी जाए।

अध्याय ३. उच्चतम न्यायालय, उच्चन्यायालयों आदिकी भाषा

धारा ३४८ (१) इस भागके पूर्ववर्ती उपबन्धोंमें किसी बातके होते हुए भी जबतक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक—

(क) उच्चतम न्यायालयमें तथा प्रत्येक उच्च न्यायालयमें सबकार्यवाहियाँ;

(ख) (१) जो विधेयक, अथवा उनपर प्रस्तावित किये जानेवाले जो संशोधन, संसदके प्रत्येक सदनमें पुनः स्थापित किये जाएँ, उन सबके प्राधिकृत पाठ,

(२) जो अधिनियम संसद द्वारा या राज्यके विधान-मंडल द्वारा पारित किये जाएँ तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राज्यप्रमुख द्वारा प्रख्यापित किये जाएँ, उन सबके प्राधिकृत पाठ, तथा

(३) जो आदेश, नियम, विनिमय और उपविधि इस संविधानके अधीन, अथवा संसद या राज्योके विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधिके अधीन, निकाले जाएँ उनके प्राधिकृत पाठ, अँग्रेजी भाषामें होंगे।

(२) खंड (१) के उपखंड (क)मे किसी बातके होते हुए भी किसी राज्यका राज्यपाल या राज-प्रमुख राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे हिन्दी भाषाका या उस राज्यमे राजकीय प्रयोजनके लिए प्रयुक्त होनेवाली किसी अन्य भाषाका प्रयोग उस राज्यमें मुख्य स्थान रखनेवाले उच्च न्यायालयकी कार्यवाहियोंके लिए अधिकृत कर सकेगा।

परन्तु इस खंडकी कोई बात जैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेशपर लागू न होगी।

(३) खंड (१) के उपखंड (ख) में किसी बातके होते हुए भी, जहाँ किसी राज्यके विधान-मंडलने उस विधान मंडलमे पुरः स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमोमे अथवा उस राज्य, राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशोंमे अथवा उस उपखंडकी कंडिका (३) मे निर्दिष्ट किसी, आदेश, नियम, विनिमय या उपविधिमें प्रयोगके लिए अँग्रेजी भाषासे अन्य किसी भाषाके प्रयोगको विहित किया है वहाँ राज्यके राजकीय सूचना-पत्रमे उस राज्यके राज्यपाल या राजप्रमुखके प्राधिकारसे प्रकाशित अँग्रेजी भाषामे उसका अनुवाद उस खंडके अभिप्रायोंके लिए उसका अँग्रेजी भाषामे प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

धारा ३४९. इस संविधानके प्रारम्भसे पन्द्रह वर्षोंकी कालावधि तक अनुच्छेद ३४८ के खंड (१) में वर्णित प्रयोजनोंमे से किसी के लिए प्रयोगकी जानेवाली भाषाके लिए उपबन्ध करनेवाला कोई विधेयक या सशोधन संसदके किसी सदनमें राष्ट्रपतिकी पूर्व मंजूरीके बिना न तो पुरः स्थापित और न प्रस्तावित किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयकके पुरः स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधनके प्रस्तावित किए जानेकी मंजूरी अनुच्छेद ३४४ के खंड (१) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशोंपर, तथा उस अनुच्छेदके खंड (४) के अधीन गठित समितिके प्रतिवेदन पर विचार करनेके पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

धारा ३५०. किसी व्यथाके निवारणके लिए संघ या राज्यके किसी पदाधिकारी या प्राधिकारीको यथास्थिति संघमे या राज्यमें प्रयोग होनेवाली किसी भाषामें अभिवेदन देनेका, प्रत्येक व्यक्तिको हक होगा।

धारा ३५१. हिन्दी भाषाका प्रसार करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारतकी सामा-जिक संस्कृतिके सब तत्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनूसूचीमें लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भंडारके लिए मुख्यत: संस्कृतसे तथा गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओंसे शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघका कर्तव्य होगा।

इस तरह हमारे संविधानमे हिन्दीको १९६५ तक राजभाषाके पदपर आसीन कर देनेकी व्यवस्था कर दी गई। संविधान २६ जनवारी १९५० से अमलमें आया अर्थात् १५ वर्षोंमें हिन्दी भारतकी राजभाषा बन जाएगी इसका निश्चय स्वयं संविधानने ही कर दिया था।

सन् १९५० का राष्ट्रपतिका आदेश

संविधानने भारत सरकार एवं प्रादेशिक सरकारोंपर यह उत्तरदायित्व सौंपा था कि वे इस बीच हिन्दीको समुचित रूपसे विकसित करें तथा उसे सक्षम बनाएँ, ताकि सन १९६५ तक वह शासनके काममें पूर्ण-रूपसे प्रयुक्त हो सके। हिन्दीको विकसित करनेके लिए तथा उसका प्रचार एवं प्रसार करनेके लिए शिक्षा-मन्त्रालय एवं गृह-मन्त्रालयके द्वारा उनका विवरण यथास्थान दिया गया है।

राष्ट्रपति द्वारा प्रसारित राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषा आदेश १९५५

राष्ट्रपतिने संविधानके अनुच्छेद ३४३ के खंड (२) के प्रतिबन्धात्मक खंड द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करके एक आदेश (Order) जारी किया था जिसका नाम था "संविधान (राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषा) आदेश, १९५५"। इस आदेशके उपबन्धोंके अन्तर्गत भारत सरकारके सभी मंत्रालय तथा सम्बन्द्ध विभाग निम्न कार्योंके लिए अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी भाषाका भी प्रयोग कर सकेंगे।

(१) जनताके सदस्योंके साथ पत्र-व्यवहारमें, (२) प्रशासकीय रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं तथा उन रिपोर्टोंमें जो संसदको दी जानेवाली हों; (३) सरकारी प्रस्तावों तथा संसदीय विधियोंमें; (४) उन राज्य-शासनोंके साथ पत्र-व्यवहारमें जिन्होंने राजभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया हो; (५) संधि-पत्र तथा करारनामोंमें; (६) विदेशी राज्यों, उनके राजदूतों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओके साथ पत्र-व्यवहारमे; (७) अन्तर्राजनैतिक तथा वाणिज्य दूत अधिकारियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंके भारतीय प्रतिनिधियोंके लिए जारी किए जानेवाले रीतिक लेख्योंमें।

गृहमंत्रालय द्वारा आदेशका स्पष्टीकरण १९५५

राष्ट्रपतिके उपर्युक्त आदेशको और आगे स्पष्ट करते हुए भारत सरकारके गृह मन्त्रालयने अपने ता. ५ दिसम्बर १९५५ के पत्र संख्या ५९ (२) ।५४ (पब्लिक) १ में बताया है कि:—

(१) जनताके सदस्योंसे जो भी पत्र प्राप्त हों उन सबका उत्तर यथासम्भव सरल हिन्दीमें ही दिया जाए।

(२) संसदमें पेश की जानेवाली रिपोर्टें, प्रशासकीय रिपोर्टें, सरकारी पत्रिकाएँ इत्यादि; यथा सम्भव हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंमें ही प्रकाशित की जाएँ।

(३) सरकारी प्रस्तावों तथा अधिनियमोंमें अँग्रेजीके स्थानपर शनैः शनैः हिन्दीके प्रयोगको बढ़ानेके उद्देश्यसे तथा जनताके उपयोगके लिए, इस प्रकारके लेखोंको, जहाँ तक सम्भव हो, उनके मूल अँग्रेजी प्रतियोंके साथ, हिन्दीमें भी जारी किया जाए ओर साथ ही यह बात स्पष्ट कर दी जाए कि अँग्रेजी की प्रति ही अधिकृत प्रति समझी जाएगी।

(४) जिन्होंने राजभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया है ऐसे राज्य शासनोंके साथ-पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें यह स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि पत्र-व्यवहार अँग्रेजी ही में होना चाहिए, परन्तु वैधानिक कठिनाइयोंकी सम्भावनाको बचानेके उद्देश्यसे ऐसे राज्य शासनोंको भेजे जानेवाले पत्रोंके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

गृहमंत्रालय द्वारा की गई व्यवस्था

अपने उपर्युक्त स्पष्टीकरणके साथ-साथ भारत सरकारके गृह-मन्त्रालयने व्यवस्था की है कि—

(१) उपर्युक्त राजकीय कार्योंमें हिन्दीका प्रयोग किस हदतक किया जाय, इसका निर्णय भारत सरकारका प्रत्येक मन्त्रालय तथा सम्बन्धित विभाग स्वयं करेगा, और

(२) यदि राष्ट्रपतिके आदेशको कार्यान्वित करनेमें किसी अतिरिक्त कर्मचारी वर्गकी आवश्यकता पड़ी तो इस सम्बन्धमें प्रत्येक मन्त्रालय तथा सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय, वित्त विभागसे परामर्श करके, आवश्यक अतिरिक्त कर्मचारियोंकी नियुक्ति कर सकेंगे।

राजभाषा आयोगकी नियुक्ति तथा उसकी रिपोर्ट

७ जून १९५५ को राष्ट्रपतिने राजभाषा आयोगकी नियुक्ति की। बम्बई राज्यके भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बाल गंगाधर खेर इस आयोगके अध्यक्ष बनाए गए। उनके अलावा संविधान द्वारा स्वीकृत एवं उसकी अष्टम सूचीमें उल्लिखित हिन्दीतर भाषाओंके बीस प्रतिनिधियोंको भी उसमें रखा गया। इस आयोगने पूरे हिन्दुस्तानका दौरा किया, अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओंके पदाधिकारियों एवं प्रमुख व्यक्तियोंसे भेंट की। लगभग ९३० व्यक्तियोंने आयोगके समक्ष अपने मंतव्य रखे तथा आयोगके पास १०९४ लिखित उत्तर आए। लगभग ५ लाख रुपये आयोगके काममें खर्च हुए। ६ अगस्त सन् १९५६ को उसने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपतिके सम्मुख प्रस्तुत कर दी। रिपोर्टके साथमें दो असहमति-पत्र थे और एक व्याख्यात्मक टिप्पण। आयोगने अपनी रिपोर्टमें जो मंतव्य दिए हैं एवं जो सुझाव रखे हैं वे इस प्रकार हैं :—

(१) संविधानके अनुसार कायम होनेवाले भारतीय राज्यके संपूर्ण जनतांत्रिक आधारको ध्यानमें रखते हुए अँग्रेजीकी अखिल भारतीय स्तरपर सामूहिक माध्यमके रूपमें कल्पना करना संभव नहीं है। संविधानमें जो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाके कार्यक्रम की बात आई है उसके बारेमें भारतीय भाषाओंके माध्यमसे ही सोचा जा सकता है।

शिक्षाके क्षेत्रोंमें, विशेषतया विज्ञान एवं अनुसंधानके क्षेत्रोंमें, उच्च स्टैण्डर्ड कायम रखनेकी दृष्टिसे, विश्वकी वैज्ञानिक एवं विचारात्मक प्रगतिसे सम्बन्ध बनाये रखनेकी दृष्टिसे, तथा अन्य विशिष्ट हेतुओं— अंतर्राष्ट्रीय संबंधोंकी राजकीय एवं कूटनीतिक भाषाके रूपमें कुछ व्यक्तियोंको अँग्रेजी भाषाका ज्ञान संपादित करना होगा। लेकिन विशिष्ट हेतुओंके लिए अथवा दूसरी भाषाके रूपमें किसी विदेशी भाषाका व्यवहार करनेमें तथा उसे शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक जीवन तथा देशके दैनिक कारोबारके प्रमुख अथवा सामान्य माध्यमके रूपके प्रयुक्त करनेमें बहुत बड़ा अन्तर है।

(३) हिन्दी ही अखिल भारतीय कामोंके लिए प्रयुक्त हो सकने वाली सुस्पष्ट भाषा-माध्यम है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओंकी तुलनामें हिन्दी अधिक लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाती है ; इसीलिए संविधान ने उसे संघकी भाषाके रूपमें तथा आंतरप्रान्तीय व्यवहारकी भाषाके रूपमें स्वीकृति दी है। इस स्वीकृतिका कारण यह नहीं है कि विकासकी दृष्टिसे या साहित्यिक-समृद्धिकी दृष्टिसे भारतकी अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ किसी भी रूपमें हिन्दीसे कम हैं।

(४) एक हिन्द-आर्य परिवारकी तथा दूसरी द्रविड़ परिवारकी --ऐसी दो भाषाओंको संघ राज्यकी भाषाओंके रूपमें मानना व्यवहार्य नहीं है, और न यह ही संभव है कि अखिल भारतीय माध्यमके रूपमें संस्कृतपर सोचा जाए।

(५) इन सब परिस्थितियोंमें केन्द्रके, केन्द्र एवं राज्यके, तथा राज्य और राज्यके कामोंके लिए हिन्दीको मान्यता देने संबंधी संविधानके उपबंध ही एकमात्र व्यवहार्य मार्गके रूपमें हमारे सामने आते हैं।

(६) संविधानके (राजभाषा संबंधी) उपबंध एक ऐसे " भाषिक-गणतंत्र " की कल्पना करते हैं, जिसमें अँग्रेजी सहित हर भाषाको देशके राष्ट्रीय जीवनमें अपना समुचित स्थान मिलेगा। हम उस बातका हार्दिक समर्थन करते हैं।

(७) संविधानके भाषा संबंधी उपबंध बुद्धिमत्ता--पूर्ण एवं व्यापक हैं। उनमें उद्देश्योंकी स्पष्ट व्याख्याके साथ-साथ संघ-भाषाको, विशेषतया न्यायालयों एवं विधान सभाओंकी भाषाको विकसित करनेकी भी व्यवस्था है, तथा बीचके समय की कठिनाइयोंपर भी ध्यान रखा गया है। वे (उपबंध) विकासमान एवं लचीले हैं, उनमें यह क्षमता है कि परिस्थिति जैसी भी विकसित होगी उसे वे संविधानके ढाँचेमें बिना कोई परिवर्तन किए सम्हाल सकेंगे।

(८) यद्यपि कुछ लोगोंके मनमें यह शंका है कि १५ वर्ष तैयारीका समय कम होगा ; फिर भी लगभग सब जिम्मेदार व्यक्ति संविधानमें सूचित इस अवधिको स्वीकार करते हैं।

(९) पारिभाषिक शब्दावलीको स्वीकार करते समय मुख्य ध्येय स्पष्टता, सही अर्थ, एवं सरलता होना चाहिए। पांडित्यपूर्ण भाषिक शुद्धता की हठको त्याज्य माना जाए। नई शब्दावलीके निर्माणके काममें भूतकालमें प्रयुक्त होनेवाले देशज शब्दोंका भंडार तथा कारीगरों एवं दस्तकारों द्वारा उपयोगमें लाए जानेवाले प्रचलित शब्द अच्छे साधन-स्रोत हैं। जहाँ मुचित समझा गया वहाँ अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का भारतीय भाषाओंकी प्रकृतिके अनुसार किंचित हेर-फेरके साथ अथवा ज्यों के त्यों स्वीकार किया जाना चाहिए। इसमें ध्येय यह रहे कि सब भारतीय भाषाओंकी नई पारिभाषिक शब्दावलियोंमें अधिक समानता हो।

(१०) केन्द्रीय भाषा तथा अन्य भाषाओंकी शब्दावली विकसित करनेके कामकी समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए; साथ ही अलग-अलग अधिकारियों द्वारा शब्दावली-निर्माणके काममें ठीकसे सामंजस्य स्थापित करनेकी भी व्यवस्था रहनी चाहिए। भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय द्वारा जो पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणका काम किया गया है, उसको देखनेके बाद यह महसूस होता है कि कामकी गतिको और अधिक तीव्र बनाया जाए तथा शब्दावली-निर्माण की अलग-अलग कोशिशोंमें अधिक अच्छा सामंजस्य लाया जाए।

(११) शिक्षा-प्रणालीको इस तरहसे पुनर्गठित करना चाहिए जिससे कि १४ सालकी उम्र तक हर विद्यार्थियोंको हिन्दीकी अच्छी साक्षरता प्राप्त हो जाए, ताकि हर नागरिक चाहे तो अखिल भारतीय स्तर पर सार्वजनिक जीवनकी हलचलोंके और संघ सरकारकी कार्रवाइयोंको समझ ले, तथा उनसे अपने सम्बन्ध बनाए रखे। १४ वर्ष की उम्र तक अनिवार्य शिक्षा लेने वाले बालकोंको कम से कम पिछले तीन-चार साल तक हिन्दी भाषाकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

(१२) जब हमारे विश्वविद्यालयोंमें अँग्रेजीका माध्यम समाप्त हो जाएगा ; तब भी आगामी बहुत लम्बी अवधिके लिए यह आवश्यक होगा कि विश्वविद्यालयोंसे निकलने वाले हमारे स्नातकोंके पास, विशेषतया वैज्ञानिक विषयों एवं उद्योगोंके स्नातकोंके पास अँग्रेजी भाषाका (अथवा अन्य दूसरी कोई विकसित विदेशी भाषाका) उतना काफी ज्ञान रहे जिससे कि वे उस भाषामें छपने वाले पत्रों एवं प्रकाशनोंको पढ़कर अपने विशिष्ट विषयकी प्रगतिको जान-समझ लें। चूंकि हमारे देशकी शिक्षा-पद्धतिमें अँग्रेजीकी पढ़ाई अब विशिष्ट उद्देश्योंके लिए ही की जाएगी, इसलिए इसके बाद अँग्रेजीको साहित्यिक भाषा-स्तरपर नहीं, समझ सकने योग्य भाषा-स्तरपर पढ़ाया जाना चाहिए।

(१३) हमारे ख्यालसे पूरे देशमें माध्यमिक शिक्षाके स्तरपर हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाए। हिन्दीकी यह पढ़ाई कबसे अनिवार्य बनाई जाए, इसका निर्णय राज्य सरकारों पर छोड़ देना चाहिए। माध्यमिक शिक्षाकी अवधिमें दक्षिणसे संतुलन बनाए रखनेके लिए हिन्दी भाषी क्षेत्रोंके विद्यार्थियोंपर दूसरी दूसरी (दक्षिण भारतीय) भाषाके अनिवार्य अध्ययनको लादने का सुझाव आयोगको मान्य नही है।

(१४) विश्वविद्यालयीन शिक्षाके सामान्य माध्यमके रूपमें अँग्रेजीको हटानेमें यह जरूरी नही कि पूरे देशमें सब जगह, एक ही समय पर, एक ही तरीकेसे यह बात की जाए। यह हो सकता है कि कुछ विषय, जैसे कि समाज शास्त्र क्षेत्रीय भाषाओंमें अधिक अच्छी तरहसे पढ़ाए जा सकेंगे, साथ ही इसका भी ध्यान रखा जा सकता है कि अन्य विषयोंके लिए सर्वत्र एक सामान्य माध्यमका लाभ सब विश्वविद्यालयोंको पूरा-पूरा मिलता रहे। इस पर भी ध्यान रखना चाहिए, इसके विपरीत, कुछ अभ्यासक्रमोंमें उच्च स्तरीय अध्ययनके लिए अँग्रेजी माध्यमको बनाये रखना भी अधिक हितकर हो सकता है। इस तरह शिक्षाके माध्यमकी पूरी परिस्थिति आज अस्थिर एवं प्रवाही है। इसलिए हमारी यह सलाह है कि शुरू-शुरूमें, विश्वविद्यालय आपसी विचार विनिमयके द्वारा स्वयं निर्णय करें कि अलग-अलग अभ्यासक्रमोंके लिए अलग-अलग स्तरोंपर किस माध्यमको उन्हें प्रयुक्त करना है।

(१५) लेकिन हम महसूस करते हैं कि देशकी वर्तमान भाषिक-समस्याको ध्यानमें रखते हुए कम-से-कम ऐसी कुछ व्यवस्था होनी ही चाहिए—

(अ) जो विद्यार्थी हिन्दी भाषाके माध्यमसे परीक्षामें बैठना चाहें, उनकी परीक्षाका इन्तजाम हर हालतमें सभी विश्वविद्यालय करें।

(आ) महाविद्यालयोंको सम्बद्ध करनेवाले विश्वविद्यालयोंपर यह बन्धन रहना चाहिए कि वे हिन्दी माध्यमसे किसी भी विषयको पढ़ानेवाले अपने क्षेत्रमेंके कॉलेज या संस्थाको (सबके साथ) समानताके आधारपर सम्बन्द्ध कर लें।

(१६) जब वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षण संस्थाओंमें पढ़ाईके लिए विभिन्न भाषिक क्षेत्रोंसे विद्यार्थी आते हैं, तब वहाँ सामान्य माध्यम रूपमें हिन्दी भाषाको अपनाना होगा; लेकिन जहाँ पूरे विद्यार्थी या लगभग सब विद्यार्थी किसी एक भाषिक वर्गके हों, वहाँ सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषा माध्यमके रूपमें अपनाई जाए।

(१७) जहाँ तक पढ़ाईके भाषिक माध्यमका सवाल है, वहाँ अन्ततः विश्वविद्यालयोंकी स्वायत्तताका सिद्धान्त सापेक्ष्य बन जाएगा और अन्तमें राष्ट्रभाषाकी (अधिकृत) नीतिपर ही चलना पड़ेगा।

(१८) यह ठीक है कि विभिन्न विश्वविद्यालयोंके अभ्यास-क्रमोंके लिए हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं-की पाठ्य पुस्तकोंकी पूर्तिकी बात तत्सम्बन्धी बढ़नेवाली माँगपर आधारित है। फिर भी ऐसी व्यवस्था चाहिए कि इस क्षेत्रमें अधिक परिणामकारक एवं सामंजस्यपूर्ण काम सम्भव हो सके। जहाँ तक इन भाषाओंमें सन्दर्भ-साहित्यके निर्माणकी बात है, यह जरूरी है कि उन्हें प्रोत्साहित करने वाले विशेष प्रयत्नों-को संगठित किया जाए।

लोक प्रशासनमें भाषा

(१९) यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि प्रशासकीय तन्त्रके कार्यान्वयनसे सम्बन्धित नियमों, विनिमयों, नियम-पुस्तकों, गुटकों तथा इतर प्राविधिक साहित्य सम्बन्धी सरकारी प्रकाशनोंके हिन्दी अनुवादकी भाषामें एक हदतक एकरूपता रहे। इस दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि ऐसे सब कामोंको कराने एवं उनपर देख-रेख रखनेकी सामान्य जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकारकी किसी एक एजेंसीको सौंप दी जाए।

(२०) विभिन्न स्तरों एवं वर्गोंके प्रशासकीय कर्मचारियोंको भाषिक योग्यतामें समुचित रूपसे प्रशिक्षित करनेकी दृष्टिसे ....यदि वैकल्पिक व्यवस्थासे सन्तोषजनक परिणाम न निकलते हों तो ... सरकारके लिए यह वाजबी तथा आवश्यक हो जाता है कि वह सरकारी कर्मचारियोंपर ऐसे अनिवार्य बन्धन लागू करे, जिनसे कि वे अपने कामके लिए आवश्यक हिन्दीका ज्ञान ठीक-ठीक अवधिमें प्राप्त कर लें।

(२१) ऐसी योजनाएँ बनायी जाएँ जिनसे आशुलिपिक तथा टंकमुद्रक नये भाषामाध्यमकी आशुलिपिमें तथा टंक-मुद्रणमें प्रशिक्षण प्राप्त कर लें और संघीय भाषाका ज्ञान हासिल कर लें।

(२२) सामान्य तौरपर यदि उचित ही लगता है कि यदि कर्मचारी निर्धारित स्तर तकका हिन्दी ज्ञान निश्चित तारीख तक हासिल न कर पाएँ तो उन्हें दंड दिया जाए। वैसे ही उस स्तरसे अधिक ज्ञान हासिल कर लेनेपर उनके लिए पुरस्कारों एवं प्रोत्साहनका आयोजन भी समुचित है।

(२३) संघ सरकारके प्रशासन तन्त्रके किन्ही हिस्सोंमें उन स्तरों तक कि जहाँ भारतीय शब्दावली-की आवश्यकता महसूस न की जाती हो, अँग्रेजीकी तकनीकी शब्दावलियाँ अनिश्चित समय तक भविष्यमें भी प्रयुक्त हो सकती हैं। वैसे ही, जहाँ विदेशोंसे कामका सम्बन्ध अँग्रेजी माध्यम द्वारा आता हो, वहाँ पत्र-व्यवहार अँग्रेजीमें भी किया जा सकता है।

(२४) रेलवे, डाक और तार विभाग, उत्पादन-शुल्क (Custom Duty) विभाग, सीमा-शुल्क (Excise Duty) विभाग, आयकर विभाग जैसी सरकारी एजेंसियों एवं संगठनोंको .... अपने प्रशासकीय संगठनोंमें एक हदतक स्थायी द्विभाषिकता विकसित करनी होगी। वे अपने आन्तरिक कारोबारमें हिन्दीका उपयोग करेंगे और जनतासे व्यवहार हेतु सम्बन्धित क्षेत्रकी भाषाका।

(२५) मौलिकके रूपमें इन विभागोंको एवं संगठनोंको अपने विभिन्न कार्यालयोंमें विभिन्न स्तरोंपर भर्तीके लिए (जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाकी योग्यताके साथ-साथ) हिन्दीकी योग्यताका स्तर भी निर्धारित करनेका निश्चित अधिकार है ....यह हो सकता है कि प्रारम्भमें हिन्दी

ज्ञानका स्तर कुछ नीचा रखा जाए, ताकि संक्रमणकालमें विभिन्न क्षेत्रोंको मिलनेवाली नौकरियोंका परिमाण कम न हो जाए। हिन्दी ज्ञानके स्तरकी यह कमी भर्ती होनेके बाद विभागीय प्रशिक्षण द्वारा दूर की जा सकती है .... केन्द्रीय सरकारकी रेलवे, डाक और तार विभाग जैसी अखिल भारतीय एजेंसियोंकी भाषा नीति, जिस जिस क्षेत्रकी जनताको वे अपनी सेवाएँ प्रदान करती हैं, उस उस जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे, मुख्य रूपसे निर्धारित होनी चाहिए। जनताकी असुविधाकी कीमतपर हिन्दी प्रचारकी गति बढ़ानेके लिए विभागोंका उपयोग नहीं होना चाहिए। जहाँ पट्टकोंपर या प्रपत्रोंमें हिन्दीकी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियाँ दी जाती हैं, वहाँ जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे उसे क्षेत्रीय भाषामें (अथवा योग्य हो तो अँग्रेजीमें) भी दिया जाना चाहिए।

इन विभागों द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियोंको इसी दृष्टिसे जाँचना आवश्यक है कि वे स्थानीय बोलियों तथा सन्दर्भोंसे असंगत न होने पाएँ।

(२६) हमारे ख्यालसे संविधानमें संघ-राज्यके कामके लिए भारतीय भाषाके माध्यमकी बातका उल्लेख इस उद्देश्यसे नहीं किया गया था कि मूल काम तो अँग्रेजीमें चलता रहे और जनताके पैसोंसे विभिन्न स्तरोंपर उसका हिन्दीमें अनुवाद करवाया जाता रहे। इसलिए नये भाषा-माध्यममें कर्मचारियोंको प्रशिक्षित करना यही ठीक मार्ग है।

संघ सरकार अपनी सेवाओंमें नये भरती होनेवालोंके लिए हिन्दी भाषाके उचित स्तर तकके ज्ञानकी यदि शर्त लगाए, तो वाजिब ही होगा, बशर्ते कि इस बातकी काफी लम्बी सूचना दी जाए और भाषा सामर्थ्यका स्तर मामूली हो और जो कमी रह जाए वह बादमें प्रशिक्षण देकर पूरी कर ली जाए।

जिन अधिकारियोंकी उम्र ४५ वर्षसे ऊपर की हो गई है, उनके लिए हिन्दी भाषाको ठीकसे समझ लेनेका स्तर ही निश्चित किया जाए।

(२७) भारत सरकारके सांविधिक प्रकाशन जितने अधिक बन सकें उतने अबसे हिन्दी भाषामें प्रकाशित हों।

(२८) फिलहाल, केन्द्रके किसी भी काममें अँग्रेजीके उपयोगपर किसी भी प्रकारकी रोकका सुझाव हम नहीं देना चाहते। केन्द्रके कारोबारमें संविधान द्वारा निश्चित अवधिके भीतर हिन्दीका अमल शुरू हो जाए इस दृष्टिसे एक निश्चत तारीख, तिथि वार टाइम टेबुल देना तथा हिन्दीको उस दृष्टिसे आगे बढ़ानेकी निश्चित मंजिलें सूचित करना हमारे लिए सम्भव नहीं है .... इसलिए सम्बन्धित तथ्योंके अध्ययनके बाद कामकी योजनाका खाका खींचने तथा उसके अन्तर्गत तारीख-समय निश्चित करनेके कामको भारत सरकारपर ही छोड़ देना चाहिए।

(२९) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षकके अधीन भारतीय लेखा परीक्षक एवं हिसाब विभागका मसला विशिष्ट है .... किसी राज्यमें स्थित महालेखा एवं नियन्त्रक कार्यालयमें यह योग्यता रहनी चाहिए कि वह क्षेत्रीय भाषामें पेश किये गये विवरणोंसे हिसाब तैयार कर ले तथा सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाके टिप्पणों एवं प्रशासकीय निर्णयोंपर से लेखा-परीक्षणका काम कर ले .... इस उपायके रूपमें लेखा-परीक्षणके प्रान्तीयकरणपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

राज्य प्रशासनके स्तरपर हिन्दीका उपयोग

(३०) अन्तर्राज्यीय व्यवहारसे तथा राज्य और संघके बीचके व्यवहारसे जिन अधिकारियोंका सम्बन्ध आता है उनपर अमुक समयमें, अमुक स्तर तकका हिन्दी ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बारेमें यदि राज्य सरकारें सख्ती करें, तो वह उचित ही माना जाएगा। राज्यके इतर कर्मचारी हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करें, इसके लिए दण्ड एवं सख्तीके बजाय पुरस्कारों एवं प्रोत्साहनोंका सहारा लेना ज्यादा अच्छा होगा।

(३१) यदि सम्बन्धित राज्य सरकार चाहे तो संघ राज्यसे हिन्दी भाषी राज्यको लिखे जानेवाले पत्रोंका हिन्दी अनुवाद भी साथ-साथ भेजनेकी व्यवस्था की जानी चाहिए...... इससे हिन्दी भाषामे सम्बो-धन एवं अभिव्यक्तिके तौर तरीके सुस्थापित होनेमें मदद मिलेगी।

अंकोंके स्वरूप

(३२) अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप.......भारतीय स्वरूप ही हैं.....वे प्राचीन भारतीय अंकोंके बिगड़े हुए रूप हैं। दक्षिण भारतकी चार महान् द्रविड़ भाषाओंमें कई बार अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय रूपोंका प्रयोग किया जाता है........संघ सरकारको चाहिए कि वह, जिस जनताको सम्बोधित किया जा रहा है उसकी सुविधानुसार, विभिन्न मन्त्रालयोंके प्रकाशनोंमें अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी स्वरूपोंके प्रयोगको निर्धारित करें.....पर इसके सम्बन्धमें संघ-राज्यकी मूलभूत नीतिमें एक रूपता रहनी चाहिए।

कानून एवं कचहरियोंकी भाषा

(३३) आज ऐसा होता है कि अन्य सदस्योंकी जानकारीके लिए विधान सभाओंमें एक भाषाके प्रश्नों एवं उत्तरोंके लिखित अनुवाद सम्बन्धित विधान सभाकी निर्धारित भाषा (भाषाओं) में प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रथाको यदि सामान्य बना दिया जाए तो अधिक लाभ होगा।

सन् १९६५ के बाद जब कि केन्द्रीय पार्लियामेंटमें अँग्रेजीका स्थान हिन्दी और राज्योंकी विधान सभाओंमे सम्बन्धित क्षेत्रकी भाषा ले ले; तब यह हो सकता है कि कोई सदस्य हिन्दीमें या उस क्षेत्रकी भाषामें या अपनी मातृभाषामें अपने मनके विचार ठीकसे प्रकट न कर पाए। उस हालतमें उस सदस्यको अँग्रेजीमें बोलनेकी अनुमति दी जानी चाहिए।

(३४) हमारा यह ख्याल है कि संसद एवं राज्योंकी विधान सभाओंकी कार्यवाहियों एवं विचार-विनिमयकी दृष्टिसे भाषाके लिए संविधानमें जो लिखा गया है, वह परिस्थितिके लिहाजसे काफी है।

(३५) हमारे ख्यालसे संसद एवं राज्यकी विधान सभाओं द्वारा स्वीकृत सरकारी कानूनोंको अन्ततः हिन्दीमें ही होना चाहिए। जनताकी सुविधाके लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि संसद एवं राज्योंके कानूनोंके अनुवाद विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें प्रकाशित किए जाएँ।

(३६) हमारे विचारसे यह जरूरी है कि जब भाषा-माध्यम पूरी तरहसे बदल जाए तब देशका सम्पूर्ण सांविधिक ग्रन्थ एक ही भाषामें (अर्थात् हिन्दीमें) लिखा रहे। इसलिए राज्योंके तथा संसदके

विधानोंकी भाषा हिन्दी ही रहनी चाहिए और किसी भी कानूनके मातहत प्रकाशित होनेवाले तमाम सांविधिक आदेशों, नियमों आदिकी भाषा भी हिन्दी ही रहे।

अदालतकी भाषा

(३७) यह स्वाभाविक ही है कि देशमें न्यायदान देशकी भाषामें हो, और यदि यह परिवर्तन उचित तरीकेसे लाया जाए, तो उसकी मूल व्यावहारिकतामें कोई आशंका या खतरेकी गुंजाइश नहीं है। जहाँतक उच्चतम न्यायालयकी भाषाका सवाल है, सम्पूर्ण कोर्टकी कार्यवाही तथा उसके रिकार्डों, फैसलों एवं आदेशोंकी भाषा अन्ततः हिन्दी ही रहेगी। जब परिवर्तनका समय आयेगा तब उच्चतम न्यायालयको हिन्दीमें काम करना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालयके प्रकाशित फैसलोंके अधिकृत पाठ्य भी हिन्दीमे ही प्रकाशित करने होंगे।

(३८) उच्चतम न्यायालयकी हिन्दी आदेशिकाएँ जब अहिन्दी क्षेत्रोंमे या अहिन्दी मातृभाषा-वाले व्यक्तिको भेजी जा रही हों तब सुविधाके लिए अनुवाद भी साथमे रहना चाहिए। इसका भी इन्तजाम होना चाहिए कि उच्चतम न्यायालयोंके निर्णयोंके प्रामाणिक अनुवाद विभिन्न राज्योंकी भाषाओंमें किये जाएँ।

(३९) न्याय पालिकाके निम्नतर स्तरों पंचायती अदालतों तथा तहसीली (दीवानी एवं फौज-दारी) अदालतोंकी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाएँ होनी चाहिए जिन्हें जनता अधिक-से-अधिक समझ सकें। यह बात जिला कचहरियोंपर भी लागू हो सकती है.....यह बहुभाषिक माध्यमका घेरा उच्च न्यायालयके स्तरपर तोड़ना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालयकी दृष्टिसे हिन्दी एवं मातहत न्यायालयोंकी दृष्टिसे क्षेत्रीय भाषाकी व्यवस्था की जानी चाहिए। इस निश्चयके कई सुदृढ़ निर्णायक कारण हैं कि भाषा-परिवर्तनके बाद उच्च न्यायालयोंके निर्णय, डिग्रियाँ और आदेश पूरे देशके लिए एक सामान्य भाषा-माध्यममे, अर्थात् हिन्दीमें ही रहें। और चूंकि दोयम एवं मातहत अदालतें उच्च न्यायालयोंके निर्णयोंके मार्गदर्शनमें काम करती है इस-लिए उच्च न्यायालयोंके सब प्रकाशित निर्णय सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाओंमे भी अनूदित होने चाहिए। जब भाषा माध्यम बदले तब हमारा सुझाव है कि प्रत्येक उच्च न्यायालयमें फैसलोंके ऐसे अनुवादोंके लिए एक अनुवादक तन्त्र कायम किया जाए।

उच्च न्यायालयोंकी हिन्दी आदेशिकाओंके क्षेत्रीय भाषी अनुवाद भी, जहाँ आवश्यक हो, साथमें रखे जाएँ।

(४०) अदालतोंकी भाषाके सम्बन्धमें इस बातका बड़ा महत्त्व है कि सारी ताकत अदालती कार्यके भाषा-माध्यमको सामान्य रूपसे बदलनेमें लगा दी जाए।

(४१) उच्च न्यायालयोंके न्यायाधीशोंको अँग्रेजीमें फैसला देनेके वैकल्पिक अधिकारके साथ अपनी क्षेत्रीय भाषाओंमें फैसलों देनेका भी अधिकार रहना चाहिए। बशर्ते कि वे उन निर्णयोंके अँग्रेजी अथवा हिन्दी अनुवादको प्रमाणित कर दें।

(४२) यह व्यवस्था की जा सकती है कि सामान्य भाषिक स्थित्यंतरके बाद भी पीठासीन न्याया-धीश गण समुचित अवसरोंपर वकीलोंको उच्चतम न्यायालयमें अँग्रेजी या क्षेत्रीय भाषाओंमें बहस करनेकी

अनुमति दें। उसी तरह राज्यको हमारा सुझाव है कि वे (कम-से-कम) जिला अदालतोंमें मुवक्किल या वकील यदि चाहें तो हिन्दीका उपयोग कर सकें, ऐसी व्यवस्था योग्य समय आनेपर कर दें।

(४३) जहाँतक विशेष न्यायालयोंकी बात है, यदि उनके निर्णय किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित न हों, तो यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि वे अपने फैसले तथा आदेश मूलमें हिन्दीमें लिखें। जहाँ आवश्यक हों वहाँ पक्षकारोंको दूसरी भाषामें उनका अनुवाद उपलब्ध कराया जा सकता है। उच्च न्याया-लयोंकी तरह, इन विशिष्ट न्यायालयोंके न्यायाधीशोंको भी, व्यक्तिशः संक्रमण कालकी समाप्तिके बाद काफ़ी समय तक छूट रहे कि वे चाहें तो अँग्रेजीमें फैसला दें या आदेश लिखें।

(४४) परीक्षार्थियोंकी इच्छानुसार कानूनके विद्यार्थियोंको यह सुविधा मिलनी चाहिए कि वे हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओंमें परीक्षा दे सकें।

(४५) हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सरकारी प्रशासन- एवं शिक्षा-पद्धतिमें परिवर्तनके अनुरूप कानून-निर्माण एवं अदालतोंके क्षेत्रमें भी भाषिक माध्यमका स्थित्यन्तर अवश्यमेव आएगा, भले ही उसमें कुछ देरी लगे। इस प्रकारके परिवर्तनके लिए हमारे ख्यालसे ये प्राथमिक तैयारियाँ आवश्यक हैं:—

(अ) एक प्रामाणिक कानूनी कोषकी रचना।

(आ) केन्द्रीय एवं राज्य स्तरके कानूनोंके सांविधिक ग्रन्थको हिन्दीमें फिरसे विधिपूर्वक लागू करना।

(४६) जहाँ तक कानूनकी शब्दावली बनानेकी बात है निम्नलिखित कार्य-योजनाको स्वीकार कर उस पर तेजीसे अमल करना हमारे मतसे जरूरी है—

(अ) भारतीय भाषाओंमें कानूनकी शब्दावली गढ़नेके कामकी गति बहुत अधिक बढ़ाना।

(आ) जैसे-जैसे वह बनाई जाए, वैसे-वैसे समुचित प्राधिकारी की देखरेखमें उसे प्रकाशित किया जाए।

(इ) केन्द्रके तत्वावधानमे केन्द्र तथा राज्यके कानूनोंका सांविधिक ग्रन्थ हिन्दीमें बनानेके कामकी योजना बनाई जाए।

(४७) हमें यह आवश्यक लगता है कि जिन राज्योंकी इच्छा हो उन्हें हिन्दीमें मूल सरकारी कानूनोंको बनानेकी अनुमति प्रदान की जाए। बीचके समयमें हम सोचते हैं कि सांविधिक ग्रन्थ और निर्णय-विधि कुछ हिन्दी में और कुछ अँग्रेजीमे रहेंगे तथा हिन्दी उत्तरोत्तर अधिक जगह लेती चली जाएगी; तब हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंमें कानूनका मजमून रहेगा, एकमें मूल तो दूसरेमें अनुवाद।

शासकीय सेवा-परीक्षाएँ और संघ-भाषा

प्रतियोगिता परीक्षाओंका भाषा-माध्यम सामान्यतया शिक्षापद्धतिमें प्रचलित माध्यमसे सुसंगत रहना चाहिए। भारतीय नौसेना प्रवेशिका केडेट परीक्षा या राष्ट्रीय सुरक्षा अकेडेमी प्रवेशिका परीक्षा जैसी पहले प्रशिक्षणके लिए दाखिल करने वाली प्रतियोगिता परीक्षाओंमें तथा प्रत्यक्ष भर्तीके लिए ली जानेवाली प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अन्तर किया जाना चाहिए। योग्य-प्रवेश परीक्षाओंके भाषा-माध्यममे परिवर्तनकी

दृष्टिसे कदम उठाये जाने चाहिए। इनमें अँग्रेजीके स्थानपर क्षेत्रीय भाषा-माध्यमको लानेकी आवश्यकता हो सकती है। ऐसा करने पर प्रवेश परीक्षाका शायद क्षेत्रीय विकेंद्रीकरण करना पड़े और परिणाम स्वरूप कोटा सिस्टिम लागू करनी पड़े।

(४८) अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओंके कर्मचारियोंमें भविष्यमें हिंदी सम्बन्धी योग्यताका रहना जरूरी है। इस दृष्टिसे योग्य सूचनाके बाद उसके लिए हिंदीका एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र रखा जाना चाहिए। अहिंदी विद्यार्थियोंकी राहमें अनुचित बाधा न आए इस ख्यालसे ऐसा प्रश्न-पत्र प्रारंभमें काफी साधारण स्तरका रहे। बादमें योग्य सूचनाके बाद उसे अन्य पर्चीके स्तरपर अनिवार्य बनाया जा सकेगा, इसके अलावा जिनकी मातृभाषा दक्षिणी भाषाएँ हैं उन्हें इस पर्चेके एक या दो कठिन सवालोंके बारेमें छूट दी जा सकती है। हिन्दी भाषी उम्मीदवारों एवं अहिन्दी भाषी उम्मीदवारोंमें समानता लानेकी दृष्टिसे हिन्दी-भाषी उम्मीदवारोंके लिए उनके भाषा माध्यममें एक और पर्चा रहना चाहिए जिसमें दक्षिण भारतकी संस्कृति एवं आठवीं अनुसूचीकी (हिंदीको छोड़कर) इतर भाषाओंसे सम्बन्धित विषयोंपर कई वैकल्पिक प्रश्न रहें।

(४९) परीक्षाका माध्यम अँग्रेजीसे बदलकर दूसरी भाषा या भाषाओंमें हो जानेके बाद भी अखिल भारतीय सेवा परीक्षाओंके उम्मीदवारोंमें अँग्रेजीका ज्ञान कितना है, इसकी जाँचके लिए कुछ खास पर्चोंकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(५०) अखिल भारतीय सेवाओंके कर्मचारियोंके बारेमें मुख्य जोर "गुण" पर दिया जाना चाहिए न कि सानुपातिक हिस्सेदारी पर; इसलिए सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंके भाषा-माध्यमके बारेमें नीचे लिखे निष्कर्षों पर पहुँचे हैं :—

(अ) अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओंमें योग्य सूचना देनेके बाद, प्रचलित अँग्रेजी माध्यमके साथ-साथ वैकल्पिक रूपमें हिंदी माध्यमको चलाया जाए। जब और जैसे स्नातक-स्तरकी परीक्षाओंमें विश्व-विद्यालयोंमें हिंदीकी तरह क्षेत्रीय भाषाका माध्यम भी शुरू हो जाएगा तब उस भाषा माध्यमको भी दाखिल करनेकी बात सोची जा सकेगी। जब तक आवश्यक हो तब तक अँग्रेजी भाषाके माध्यमको वैकल्पिक रूपमें चालू रखा जा सकता है। अन्ततः जब परिस्थिति ऐसी आ जाए कि अँग्रेजीका माध्यम हटाया जा सकता है तब काफी कालावधिकी नोटिसके बाद उसे हटाया जाए।

(आ) जब तक माध्यमके रूपमें भाषाओंकी संख्या सीमित है, तब तक संयम (मॉडरेशन) व्यवहार्य बात होगी। लेकिन एक परिस्थिति ऐसी भी आ सकती है जबकि आगे माध्यमके रूपमें भाषाओंकी संख्या बढ़ाना अव्यवहार्य हो जाएगा। तब संघ सरकार एवं राज्य सरकारोंको आपसमें तय करना होगा कि

(क) क्या वे अखिल भारतीय सेवाओंमें भर्तीकी पद्धतिको बदलना चाहेंगे अथवा

(ख) माध्यमके रूपमें भाषाओंको सीमित करनेकी बात पर राजी हो जाएँगे अथवा

(ग) परीक्षा पद्धतिमें और किसी प्रकारके योग्य परिवर्तनको स्वीकार करेंगे?

(इ) हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त परिस्थिति आनेके पहले ही अहिन्दी भाषी विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंमें हिन्दीका ज्ञान सामान्य तौर पर इतना काफी बढ़ जाएगा कि वे हिंदी भाषी

विद्यार्थियोंके समकक्ष हिन्दी भाषाके माध्यमसे इन परीक्षाओंमें बैठ सकेंगे और जब तक ऐसा संभव हो, तब तक अँग्रेजी माध्यम अहिन्दी भाषी उमीदवारोंके वाजबी हितोंकी रक्षा करता रहेगा।

(५१) हमारे देशकी विशिष्ट परिस्थितियोंको देखते हुए भाषाओंके अध्ययनको सामान्य रूपसे प्रोत्साहनकी बड़ी आवश्यकता है। इसलिए सम्बन्धित अधिकारियोंको विभिन्न लोक-सेवा-आयोग परीक्षाओंके वैकल्पिक विषयोंकी यादीको इस प्रकार संशोधित करना चाहिए ताकि विभिन्न भारतीय भाषाओंके तथा उनके साहित्यके अध्ययनको अधिक मौका मिल सके।

(५२) राज्योंके लोक-सेवा-आयोगोंको अपनी सम्बन्धित प्रतियोगिता परीक्षाओंमें हिंदी माध्यमके विकल्पकी बातपर विचार करना चाहिए जिससे कि संघीय लोक सेवा आयोगकी प्रतियोगिता परीक्षाओंमें हिन्दी माध्यमसे शामिल होनेवाले उमीदवार घाटेमें न रहें। ऐसी हालतमें राज्यकी परीक्षाएँ क्षेत्रीय भाषाके साथ-साथ हिन्दीके भी माध्यमसे ली जा सकेंगी। संक्रमण समाप्त होने तक अँग्रेजीका माध्यम बना रहेगा।

हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओंका प्रचार एवं विकास

(५३) पिछले ३५ सालसे अहिन्दी क्षेत्रोंमें हिन्दी प्रचारका जो देशभक्तिपूर्ण एवं बहुत अच्छा काम हुआ है, बहुत कुछ उसीके कारण संविधान सभा राज्यके लिए अँग्रेजीके स्थानपर एक भारतीय भाषाको रखनेकी बात मान्य कर सकी। संविधान द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो जानेके बाद हिन्दी-प्रचारके काममें एक नया पहलू जुड़ गया है और यह आवश्यक हो गया है कि वह काम अब सरकारी तौर पर "प्रेरित" हो। हमें ऐसा लगता है कि हिन्दी प्रचारके कामके बेहतर विकास एवं व्यवस्थित संगठनकी दृष्टिसे निम्न दिशाओंमें कदम उठाये जाने चाहिए।

(अ) विभिन्न एजेंसियोंके कामोंमें समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करना और जहाँ आवश्यक हो वहाँ उनके कार्य-कलापोंके क्षेत्रोंको अलग-अलग निश्चित कर देना।

(आ) उन्हें सौंपे गये क्षेत्रोंमें उनका काम बढ़ सके इस दृष्टिसे उनकी आवश्यकताएँ निश्चित करना।

(इ) उनकी परीक्षाओंके स्तरोंमें एक हद तक एक समान तथा तुलनात्मकता आ सके इसके लिए कदम उठाना, और यह देखना कि परीक्षाओंके संचालनमें ठीक तरीकोंका उपयोग होता रहे तथा उनका समुचित स्तर टिका रहे।

(ई) अध्यापनके तरीकोंको सुधारनेके लिए तथा शिक्षकोंके प्रशिक्षणके लिए अधिक सुविधा मिल सके इस दृष्टिसे मदद करना।

(उ) देशके विभिन्न क्षेत्रोंके लिए तथा हिंदी पढ़नेवाले विभिन्न वर्गोंके व्यक्तियोंके लिए योग्य एवं क्रमबद्ध पुस्तकोंकी पूरी व्यवस्था करना।

(ए) अभी जिन लोगोंने हिंदी सीखी है उनके लिए वाचनालयों एवं पुस्तकालयोंकी व्यवस्था करना।

(५४) हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्रीय सरकार स्वेच्छासे कार्य करने वाली संस्थाको भी उनके कामको बढ़ाने एवं सुधारनेके लिए भरपूर आर्थिक मदद करे।

भारतीय लिपिका प्रामाणिक रूप

(५५) भारतकी लगभग सब लिपियां ब्राम्ही लिपिसे निकली है। तमिलको छोड़कर प्राय: सब लिपियोंमें लगभग एकसे वर्ण हैं। विभिन्न भाषा-भाषी भारतीय जनताका जितना बड़ा हिस्सा हिन्दी भाषा बोलता-समझता है उससे कहीं अधिक बड़े हिस्सेमें देवनागरी लिपि फैली हुई है। इसलिए यदि भारतकी सब भाषाओंके लिए एक लिपि रखनी हो तो उसके लिए सबसे अधिक अधिकार पूर्ण लिपि देवनागरी है। यदि सब भारतीय भाषाओंकी एक लिपि हो जाए तो देशकी एकातमकता एवं एकताका काम बहुत आगे बढ़ेगा। हर क्षेत्रमें दूसरी भाषाओं एवं उनके साहित्यके अध्ययनका काम बड़ा सुकर हो जाएगा, . . . सब तरहसे विचार करनेके बाद हमारा यह निष्कर्ष है कि रोमन लिपिको स्वीकार करनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा. . . . हमारी सलाह है कि संघ भाषाके अलावा अन्य भारतीय भाषाओके लिए देवनागरी लिपिको वैकल्पिकरूपसे स्वीकार किया जाए।

देवनागरी लिपिका सुधार

(५६) देवनागरी लिपि-सुधारके कुछ प्रश्नोंका समाधान करनेके लिए लखनऊ परिषद्का निर्णय स्तुत्य प्रयत्न है, यह तुरंत आवश्यक है कि हिन्दी टाइप राइटरका कुंजी पटल अंतिमरूपसे निश्चित कर लिया जाए और देवनागरी लिपिके सुधार सरकारी तौर पर स्वीकृत कर लिये जाए। यह काम केन्द्रीय सरकारके मातहत तथा नेतृत्वमें ही सम्भव है।

कौन सी हिन्दी ?

(५७) जिस हिन्दीको विकसित करना है वह सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए। लेकिन असली मुसीबत तो यह है कि कुछ इलाकोंमें जिसे "सरल" माना जाता है वही दूसरे इलाकोंके लिए सचमुच कठिन हो जाती है। ऐसी हालतमें अलग अलग हिस्सोंमें जिन्हें सरल एवं परिचित माना जाता है वैसे सब शब्दोंको भाषामें लाना है और इस हद तक संघ-भाषाकी अलग-अलग शैलियोंको विकसित किया जाना चाहिए।

समाचार पत्र और भारतीय भाषाएं

(५८) हमारी सिफारिश है कि भारतीय भाषाओंके समाचार पत्रोंकी सुविधा के लिए हिंदीमें तथा जो लाभप्रद बन सके ऐसी अन्य क्षेत्रीय भाषाओंमें समाचार देनेवाली संस्थाओंके निर्माणकी सम्भावनाओं पर विचार किया जाए। यदि देवनागरी लिपिका प्रयोग क्षेत्रीय भाषाओंमें समाचार भेजनेके लिए किया जाए तो यह बात अधिक व्यवहार्य हो सकेगी। भाषाओंकी समाचार अभिकरणकी योजनासे भारतीय भाषा की पत्रकारिताको प्रोत्साहन एवं सुविधा तो मिलेगी ही पर साथ ही साथ हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओंकी शब्दा-वली तथा अभिव्यक्तिके प्रमाणीकरणमें भी सहायता पहुँचेगी।

राष्ट्रभाषा कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेवाली एजेन्सियां

(५९) जहां तक संघ-प्रशासनमें हिंदी माध्यमको लानेकी बात है, हम जोर देकर कह सकते है

कि केन्द्रके सभी विभागों एवं एजेन्सियोंमें किये जानेवाले तत्सम्बन्धी कार्यवाहियोंके प्रारम्भी, दिग्दर्शन, अधीक्षण एवं सामंजस्यकी जिम्मेदारी विशेष रूपसे केन्द्रीय सरकारके एक प्रशासनिक इकाई पर डाल दी जानी चाहिए। यह एक मंत्रालय हो या मंत्रालयका विभाग हो अथवा उसका सिर्फ एक मण्डल (डिवीजन) हो, इसका निर्णय सरकार करे। शर्त यही है कि उसको काम करनेका पूरा अधिकार प्राप्त रहे।

(६०) कानून एवं प्रशासनके क्षेत्रोंमे भाषिक नीतियों पर अमल करते समय संघ प्रशासन एवं राज्य-प्रशासन एक दूसरे पर अतिक्रमणसा करने लगते हैं। हमारे ख्यालसे उनके द्वारा किये जानेवाले विभिन्न कामोंमें समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करनेकी दृष्टिसे केन्द्रमें राज्योंके प्रतिनिधियोंसे युक्त एक सलाहकारी बोर्डका संगठन हितकारी होगा।

(६१) हम यह महसूस करते हैं कि संघ-भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओंके विकासकी दृष्टिसे आवश्यक कार्यवाहियोंके संचालनके लिए तथा पाठ्य पुस्तकोंके एवं संदर्भ पुस्तकोंके उत्पादन जैसे सम्बन्धित उद्देश्योंके लिए "भारतीय भाषाओंकी राष्ट्रीय अकादमी" के नामसे नई एक एजेन्सीका निर्माण बहुत अच्छी बात होगी। अकादमीकी शासकीय समितिमें संघ-राज्य, प्रान्तीय-राज्यों, विश्वविद्यालयों तथा देशभरमे फैली हुई एवं विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें काम करनेवाली पेशेवर एवं साहित्यक संस्थाओंको प्रतिनिधित्व दिया जाए।

(६२) यह ठीक है कि देशकी संघ-भाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओंके विकासकी नई योजनाओंमें तथा नई पारिभाषिक शब्दावलीको विकसित करनेके काममे विद्वानों एवं साहित्यिकोंके मतोंको पूर्ण अवसर प्राप्त होता रहे। फिर भी यह जरूरी है कि केन्द्रीय सरकारके हाथमें उस राष्ट्रीय अकादमी को नीति-सबंधी आदेश देनेके अधिकार सुरक्षित रहें। यह अकादमी हैदराबाद शहरमे स्थित रहे, ऐसी हमारी सूचना है।

(६३) यह आवश्यक है कि सब भाषाओंके साहित्योंका एक केन्द्रीय पुस्तकालय बने तथा भाषा शिक्षकोंको प्रशिक्षणके लिए एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की जाए। इस पर सोचा जाए कि क्या संस्थाएँ भारतीय भाषाओंकी राष्ट्रीय अकादमीके साथ-साथ ही स्थित रहें?

(६४) हमारी सिफारिश है कि केन्द्रीय सरकार संसदमे हर साल एक रिपोर्ट पेश करे जिसमे यह बताया जाए कि संविधानकी भाषा सम्बन्धी धाराओंकी व्यवस्थानुसार पिछले साल केन्द्र द्वारा क्या-क्या किया गया?

यह भी आवश्यक है कि भाषाओं सम्बन्धी राष्ट्रीय नीतिको विस्तृत रूपसे प्रसारित प्रकाशित किया जाए जिससे कि आम जनतामें उस विषयमें एक उचित दृष्टि आए और बिना कारणकी गलत फहमियाँ न फैलें।

समारोप

(६५) भारतके भाषिक एवं सांस्कृतिक ढांचेकी स्पष्ट भिन्नताओंके बावजूद भारतकी महत्वपूर्ण भाषाओंमें आपसमें गहरी समानता एवं लगाव है। यदि देशकी विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें पुनर्मेल बढ़ानेकी दृष्टिसे जोरदार कदम उठाए जाएँ तो कुछ वर्षोंके भीतर ही भारतकी अलग-अलग भाषाओंके बीचकी दूरियाँ

काफी घटती जाएँगी। बहुभाषिक देशके नागरिकोंके नाते हमारे लिए यह जरूरी है कि हम सब भाषिक क्षेत्रोंके बीच व्यापक बहुभाषिकताको प्रोत्साहित करें और इन उद्देश्योंकी पूर्ति के लिए माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा पद्धतियोंमें समुचित व्यवस्था करें।

(६६) भाषिक समस्या मुख्यरूपसे आज की पीढ़ीकी समस्या है, इसलिए उसके ऐसे ही समाधान का महत्व है जो कि सामान्य रूपसे सबको मान्य हो। इस समस्याको सुलझानेमें संघ एवं राज्य सरकारोंके अलावा और भी कई एजेन्सियोंकी दिलचस्पी है और इसलिए उसके हलमें उनका भी सहकार प्राप्त करना आवश्यक है। भाषिक नीतियोंमें यह जरूरी है कि जहाँ तक बारीकियों एवं समयकी पाबन्दीका सवाल है, वह लचीली रहे। उद्देश्यों एवं ध्येयोंके बारेमें अडिग रहे और मोटे कार्यक्रमोंके बारेमें निश्चित रहे। भाषा सिर्फ एक साधन है, उसके सवाल पर गर्मागर्मी या भावुकता नहीं होनी चाहिए। यह ठीक है कि भारतकी भाषा-समस्यामें जितनी उलझनें हैं वे और कहीं नहीं पाई जातीं, फिर भी हम यह महसूस करते हैं कि यदि उसको ठीकसे संभाला जाए तो उनके सही समाधान ढूंढ़े जा सकते हैं। हमें विश्वास है कि इसका सफलतापूर्वक मुकाबला किया जाएगा और उसे हम ठीकसे सुलझा सकेंगे।

संसदीय राजभाषा समितिकी नियुक्ति तथा उसकी रिपोर्ट

संविधानकी कलम ३४४ (४) के अनुसार, राजभाषा आयोगकी रिपोर्टपर विचार करनेके लिए संसदकी एक समिति गठित की गई। सितम्बर १९५७ में इस समितिके लिए लोकसभाके सदस्योंने अपने २० सदस्य तथा राज्य सभाके सदस्योने १० सदस्य सानुपातिक प्रतिनिधित्वकी एकल सांक्रमणीय गुप्त मतदान (Single Transferrable Secret Vote) पद्धति द्वारा चुने। १६ नवम्बर १९५७ की अपनी बैठकमें समितिने स्वर्गीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्तको अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। एक नियम उपसमिति बनाकर उसने अपने कामकाज चलानेके नियम आदि निश्चित किए। संविधानमें यह स्पष्ट निर्देशित था कि इस समितिका काम आयोगकी सिफारिशोंपर विचार करना तथा राष्ट्रपतिके पास उनपर अपनी रिपोर्ट भेजनेका है, इसलिए समितिने आयोगके निष्कर्षोंपर चर्चा नहीं की, सिर्फ उसकी सिफारिशोंके बारेमे सोचा और उन्हींके बारेमे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समितिकी कुल २६ बैठकें हुई। उसने अपना पचपन पृष्ठका प्रतिवेदन राष्ट्रपतिके पास ८ फरवरी १९५९ को भेज दिया। प्रतिवेदनके साथ डा. रघुवीर, सर्वश्री हरीशचन्द्र शर्मा, प्रफुल्ल चन्द्र भंजदेव, पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा सेठ गोविन्ददास, फ्रेंक अन्थोनी और ठाकुरदास भार्गवके छः असहमति पत्र तथा टिप्पण थे। यह रिपोर्ट संसदमें अप्रेल १९५९ के अंतिम सप्ताहमें चर्चाके लिए प्रस्तुत की गई।

संसदीय समितिने राजभाषा आयोगकी निम्नलिखित सिफारिशोंके बारेमें अपना भिन्न मत प्रकट किया—

(१) आयोगकी सिफारिश थी कि सरकारके विभिन्न पदों एवं नौकरियोंके लिए फिलहाल जो अँग्रेजीकी शिक्षाका स्तर निर्धारित है, हिन्दी ज्ञान एवं शिक्षाका वही स्तर कर्मचारियोंके लिए निर्धारित किया जाए। समितिने सिद्धान्तके रूपमें उसे मान्यता देते हुए लिखा कि संक्रमण की अवस्थाओंमें हिन्दी ज्ञानका स्तर कुछ कम भी चल सकता है।

(२) आयोगकी सिफारिश थी कि कर्मचारी निर्धारित स्तरका हिन्दी ज्ञान निर्धारित समयके अन्दर प्राप्त न करले तो उन्हें दडित किया जाए। समितिने उसे स्वीकृति नही दी।

(३) आयोगकी सिफारिश थी कि सघ सरकारके प्रशासन तंत्रके कुछ हिस्सोंमें उन स्तरोंपर कि जहाँ भारतीय पारिभाषिक शब्दावली का विकास आवश्यक न लगता हो, अँग्रेजीकी तकनीकी शब्दावली अनिश्चित काल तक चलती रहे। उसी तरह जहाँ विदेशोंसे अँग्रेजी माध्यमसे सतत सम्बन्ध बनाए रखना आवश्यक हो, वहाँ अँग्रेजीमें पत्र-व्यवहार किया जा सकता है। समितिने आयोगकी इस सिफारिश पर कहा कि जब तक इन स्तरोंपर भारतीय शब्दावलीके विकासकी आवश्यकता न महसूस की जाती हो तब तक अँग्रेजी की तकनीकी शब्दावली चलाई जा सकती है, लेकिन ऐसा अनिश्चित काल तक नहीं होना चाहिए।

(४) आयोगकी सिफारिश थी कि ४५ वर्षकी तथा उसके ऊपर जिनकी आयु हो गई है वैसे अधिकारियोंके लिए हिन्दीको सिर्फ समझ लेने तकका ज्ञान-स्तर निर्धारित होना चाहिए। समितिके मतसे ४५ वर्ष या उसके ऊपरकी आयुवाले अधिकारियोंके लिए हिन्दी ज्ञान प्राप्तिके बारेमे सख्ती नही की जानी चाहिए।

(५) समितिका यह मत है कि राजभाषा आयोगकी सिफारिशोंपर समितिने जो मन्तव्य दिए है, उन्हें मद्दे नजर रखते हुए हिन्दीका राजभाषाके रूपमें अधिकाधिक प्रयोग किया जा सके इस दृष्टिसे संघ सरकारको प्रत्यक्ष कार्यकी एक योजना बनानी चाहिए तथा उस पर अमल करना चाहिए।

(६) समितिके विचारसे संघ सरकारके विभिन्न मंत्रालयोंके प्रकाशनोंमें अंकोंके अंतर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी अकोंको प्रयुक्त करनेके बारेमे संघ सरकारकी एक मूलभूत समान नीति होनी चाहिए। सम्बोधित की जाने वाली जनतापर एवं प्रकाशनकी विषय-वस्तु पर वह नीति आधारित रहे।

(७) केन्द्र सरकारके कामोंके लिए अंकोंके अंतर्राष्ट्रीय रूपोंके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके उपयोग हेतु राष्ट्रपति द्वारा निर्देश प्रसारित करनेके बारेमे आयोगने कोई सिफारिश करनेसे इन्कार कर दिया था। समितिने इस इन्कारी पर विचार प्रकट करते हुए कहा कि उसकी कोई आवश्यकता नही थी और उसपर कतई न सोचा जाए।

(८) ससदके तथा राज्योंकी विधान सभाओंके कामकाजमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाके बारेमें आयोगने जो सिफारिशे की थीं, समितिने उनपर विचार नहीं किया, कारण उसके मतमे संविधानकी धारा ३४८ के अनुसार आयोगको उस सम्बन्धमे कुछ कहना ही नही चाहिए था।

(९) संसदमें तथा राज्योंकी विधान सभाओंमें पास होनेवाले कानूनोंकी भाषाके बारेमें आयोगकी जो सिफारिशे थी, उन पर समितिका मत पड़ा कि--

(अ) १९६५ तक, या जब तक अँग्रेजीका स्थान हिन्दीको नही दे दिया जाए तब तक संसदीय विधि-निर्माण अँग्रेजी भाषामे होते रहें, हिन्दी भाषामे उनके अधिकृत अनुवाद दिए जाएँ। विभिन्न राज्योंकी राजभाषाओंमें भी उसके अनुवाद देनेकी व्यवस्थाएँ की जा सकती है।

(आ) जहाँ तक राज्यके विधि-निर्माणकी भाषाका सवाल है (सम्बन्धित) राज्य विधान सभा उस हेतु राज्यकी राजभाषाका स्वीकार कर सकती है ; लेकिन तब संविधानकी धारा ३४८ खंड (३) के अनुसार कानूनोंका अधिकृत पाठ अँग्रेजीमें प्रकाशित करना जरूरी होगा। यदि (कानूनका) मूल पाठ हिन्दीको छोड़कर अन्य भाषामें है, तो साथमें हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया जा सकता है।

(१०) उच्च न्यायालयोंकी भाषाके बारेमें आयोगकी सिफारिशों पर मत देते हुए समितिने कहा कि संविधानकी धारा ३४८ खंड (२) के अनुसार राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे उच्च न्यायालयकी कार्यवाहीमें राज्यकी राजभाषाका या हिन्दीका प्रयोग हो सकता है। लेकिन उच्च न्यायालयों द्वारा पास किए जानेवाले निर्णयों, डिक्रियों तथा आदेशोंको अँग्रेजीमें ही होना चाहिए। समितिका यह मत है कि राष्ट्रपति कृपा करके संसदमें ऐसे एक विधेयकको प्रस्तुत करनेकी सम्मति दे दे जिसके अनुसार राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे उच्च न्यायालयोंके निर्णयों, डिक्रियों तथा आदेशोंके लिए वैकल्पिक रूपसे हिन्दी तथा राज्योकी अन्य राजभाषाओंके प्रयोगकी व्यवस्था हो जाए। अँग्रेजीके अलावा दूसरी भाषामें दिए जाने वाले निर्णयों, डिक्रियों एवं आदेशोंका अँग्रेजी अनुवाद साथमें रखना चाहिए। सब प्रकाशित होनेवाले निर्णय एवं आदेशोंका हिन्दी भाषामें भी अनुवाद होना चाहिए। उच्च न्यायालयों द्वारा निकाली जानेवाली आदेशिकाएँ (Processes) सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषामें लिखी हो सकती है, लेकिन साथमें संघ-भाषामें उनका अनुवाद रहना चाहिए।

(११) समिति यह उचित नही समझती कि उच्च न्यायालयोंके न्यायाधीशोंके लिए भाषा सम्बन्धी परीक्षाएं निर्धारित की जाएँ। हाँ, समिति इसे मानती है कि हिन्दी का तथा जिस क्षेत्रमे उच्च न्यायालय स्थित है उस क्षेत्रकी भाषाका ज्ञान न्यायाधीशोंके लिए उपयुक्त होगा।

(१२) जिलास्तरोंपर तथा आवश्यक हो तो उससे भी नीचे, यदि पक्षकार या वकील चाहें तो हिन्दीका उपयोग कर सकते हैं—इस बारेमें आयोगने जो सिफारिश की है, उसके लिए समितिका कहना है कि धारा ३४८ के अनुसार यह मुद्दा आयोगके लिए विचाराधीन ही नही हो सकता था।

(१३) विधि-निर्माण एवं न्यायदानके क्षेत्रोंमें भाषिक परिवर्तनकी दृप्टिसे प्रामाणिक विधि-शब्दावलीके निर्माण तथा हिन्दीमें सम्पूर्ण सांविधिक ग्रंथके विधिकरणके सम्बन्धमें जो सुझाव एवं कार्य-योजना आयोगने प्रस्तुत की थी, उन्हें मानते हुए समितिने भारतकी विभिन्न राष्ट्रभाषाओंका प्रतिनिधित्व करने वाले कानून-विशारदोंके एक ऐसे स्थाई आयोग या तत्सम उच्च स्तरीय समितिके निर्माणकी सिफारिश की थी, जिसका काम सांविधिक ग्रन्थोंके अनुवाद तथा कानूनकी पारिभाषिक शब्दावली आदिके निर्माणकी उचित योजना बनाना तथा उसके सम्पूर्ण क्रियान्वयनकी व्यवस्था करना रहे।

जहाँ तक राज्योंके सांविधिक ग्रन्थोंको सम्बन्धित राज्योंकी राजभाषाओंमें अनूदित करनेकी बात है, समितिने राज्य सरकारोंको सलाह दी कि वे सम्बन्धित केन्द्रीय अधिकारियोंसे विचार विनिमय कर योग्य कार्यवाही करें।

(१४) आयोगका सुझाव था कि प्रतियोगिता परीक्षाओंका भाषा-माध्यम शिक्षा-पद्धतिमें प्रचलित भाषा-माध्यमसे सुसंगत रहे। समितिने आयोगकी इस सिफारिशको ठुकरा दिया।

(१५) केन्द्रकी प्रशिक्षण सिब्बंदियोंके भाषा-माध्यमके सम्बन्धमें आयोगकी जो सिफारिशें थी, उनके बारेमें समितिका मत था कि आयोगकी रिपोर्टमें जिन प्रशिक्षण सिब्बंदियोंका जिकर आया है उनमें यह जरूरी है कि शुरू-शुरूमें कुछ समय तक अँग्रेजी, माध्यमके रूपमें चले लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि उनकी पूरी पढ़ाईमें उसके कुछ अंश तक हिन्दीको माध्यमके रूपमें दाखिल करानेके लिए उचित कदम उठाया जाए। इन प्रशिक्षण सिब्बंदियोंमें भर्तीके लिए जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, उनके सब या किन्हीं प्रश्नपत्रोंके लिए इच्छानुसार अँग्रेजी या हिन्दीको माध्यमके रूपमें लेनेकी स्वीकृति मिलनी चाहिए और एक विशेषज्ञ कमेटी बनाई जानी चाहिए जो यह देखे कि बिना कोटा पद्धति दाखिल किए क्षेत्रीय भाषाओंको उन परीक्षाओके माध्यमके रूपमें लाना कहाँ तक व्यवहार्य होगा ?

(१६) अखिल भारतीय तथा उच्च स्तरीय केन्द्रीय सेवाओकी प्रतियोगिता परीक्षाओके बारेमें समितिका मत रहा कि

(अ) परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें अँग्रेजीको चलने दिया जाए, कुछ समय बाद हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल किया जाए और तदनन्तर जहाँ तक आवश्यक हो वहाँ तक हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें चलने दिया जाए।

(आ) परीक्षाओंमें योग्य सूचनाके बाद समान स्तरके दो भाषा-प्रश्नपत्र अनिवार्य रूपसे रहें—एक हिन्दीका और दूसरा हिन्दीके अलावा अन्य किसी आधुनिक भारतीय भाषाका जिसे कि परीक्षार्थी पसन्द करें।

(इ) जब तक सरकारी कामोंमें से अँग्रेजीको पूर्णतया हटा नहीं दिया जाता तब तक परीक्षाका माध्यम बदल दिए जाने पर भी अँग्रेजीका अनिवार्य प्रश्नपत्र रहना चाहिए।

(ई) एक विशेषज्ञ समिति बनाई जाए जो इसकी जाँच करे कि बिना कोटा-पद्धति लाए क्षेत्रीय भाषाओंको माध्यमके रूपमें दाखिल करना कहाँ तक सम्भव है ?

(१७) हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओंके प्रचार एवं विकासके बारेमें आयोगकी सिफारिशोंको स्वीकृति प्रदान करते हुए समितिने अपनी तरफसे कहा कि कुछ हिन्दी किताबोंका क्षेत्रीय लिपियोंमें प्रकाशन अहिन्दी क्षेत्रोंके वयस्कोको हिन्दी सिखानेके काममें सुविधा पैदा करेगा।।

(१८) भारतकी रंग-बिरंगी संस्कृतिकी परम्पराको समझने एवं आत्मसात् करनेकी दृष्टिसे तथा विभिन्न भारतीय भाषाओंके बीच अधिकाधिक पुनर्मेल बढ़ानेकी दृष्टिसे आयोग ने जो सिफारिश की थी उसे मानते हुए समितिने सुझाया कि भारतीय साहित्यके अध्ययनको भी प्रोत्साहन दिया जाए।

(१९) देवनागरी लिपिमें सुधार सम्बन्धी आयोगकी सिफारिशसे सहमति जाहिर करते हुए समिति ने कहा कि देवनागरी लिपिमें सुधारकी दृष्टिसे १९५३ की लखनऊ परिषदके निर्णयोंपर जो अभी-अभी मतभेद उत्पन्न हुए हैं, उनके निराकरणके लिए फौरन-कदम उठाए जाएँ।

इनके अलावा आयोगकी जो अन्य सिफारिशें थीं, वे सब समिति द्वारा मान ली गई।

संसदीय समितिकी प्रमुख सिफारिश—असहमतिका नोट लिखवानेवाले श्री फ्रेंक अंथोनीके अनुसार संसदीय समितिकी प्रबल एवं प्रभावशाली सिफारिश उसके निम्नलिखित शब्दोंमें निहित है—"अँग्रेजीसे हिन्दीमें अन्तिम स्थित्यन्तरकी तारीख इस प्रक्रिया की नई मंजिल की नही, उसके चरमोत्कर्ष बिन्दुकी सूचक

होगी; उस तारीखको इसलिए लक्ष्मण-रेखा नहीं माना जा सकता। इस प्रश्नकी तरफ हमारा रुख लचीला एवं व्यवहार्य होना चाहिए। समितिका मत है कि १९६५ तक संघ राज्यकी प्रमुख राजभाषा अँग्रेजी रहे तथा हिन्दी उसकी आनुषंगिक राजभाषा रहे। और १९६५ से जब कि हिन्दी प्रमुख राजभाषा हो जाएगी तबसे जबतक आवश्यक हो तब तक अँग्रेजीका संसद द्वारा विधिवत् निर्धारित कामोंके लिए सहायक राज-भाषाके रूपमें प्रयोग चलता रहेगा।"

पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा सेठ गोविन्ददासजीका संयुक्त असहमति-पत्र

राजभाषा-आयोगकी सिफारिशोंपर विचार करनेके लिए बनाई गई संसदीय समितिकी रिपोर्टका सार ऊपर दिया जा चुका है। इस रिपोर्टसे विभिन्न मत व्यक्त करते हुए विभिन्न सदस्यों द्वारा जो नोट लिखे गए थे, उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा सेठ गोविन्ददासजी द्वारा प्रस्तुत संयुक्त असहमति-पत्र था, इसलिए नीचे उसका सार दिया जा रहा है—

"इस समितिके बहुसंख्यक सदस्योंकी रिपोर्टसे हम सन्तुष्ट नहीं हैं.......हमारी यह धारणा है कि संघ सरकारके कामकाजोंमें अँग्रेजीकी जगहपर हिन्दीको प्रस्थापित करनेके लिए आवश्यक वातावरण तथा परिस्थितियाँ पैदा करनेका काम भारत सरकारकी ओरसे विचारपूर्वक नहीं किया गया है। संविधानके अमलमें आनेके नौ साल बाद भी अँग्रेजी खुले आम अधिसत्तायुक्त भाषा है।......आज भी हमारी (इस) समितिने, केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए वातावरणके प्रभावमें आकर अँग्रेजीके पक्षकी सिफारिशें प्रस्तुत की है। हिन्दी भाषाके प्रचार एवं प्रसारके बारेमें.......समितिकी सिफारिशें अधूरी-सी तथा असन्तोषजनक हैं। वर्तमान ढाँचेमें परिवर्तन सूचित करनेवाली भाषा-आयोगकी सिफारिशें तो पहले ही आवश्यकसे अधिक संकीर्ण एवं संकुचित थीं। समितिने उनमेंसे कुछ को और भी हल्का बना दिया है।

लोक प्रशासनमें भाषा

१—आयोगने सिफारिश की थी कि संघ सरकारके किसी भी कामके लिए अँग्रेजीके उपयोगपर फिलहाल कोई रोक लगानेकी वह सिफारिश नहीं करता। समितिके बहुमतकी रिपोर्टने आयोगकी इस सिफारिशको मंजूर कर लिया है। लेकिन हम उससे सहमत नहीं है। संघ राज्यके कुछ काम ऐसे है कि जिनमें अँग्रेजीको चलने देना साफ साफ अयुक्तिसंगत एवं अन्यायकारी है ओर इसलिए उनपर रोक लगाना बहुत जरूरी हो गया है। हम केन्द्रीय सरकारके चतुर्थ श्रेणीके कर्मचारियोंकी ही बात लेते हैं। ये कर्मचारी देश भरमें फैले है। इन कर्मचारियोंको जब कर्तव्यकी अवहेलना या कर्तव्य-च्युतिके बारेमें अभियोग-पत्र दिए जाते है तो वे अँग्रेजीमें लिखे रहते है तथा उन कर्मचारियोंसे उनका जवाब अँग्रेजीमें माँगा जाता है। यह बात बहुत ही अनुचित है; कारण इस श्रेणीके कर्मचारीकी साक्षरता अपनी भाषा तक ही सीमित रहती है। हम सिफारिश करते हैं कि चतुर्थ श्रेणीके कर्मचारियोंको भेजे जानेवाले सब पत्र वे कर्मचारी जिस राज्यके हों उस राज्यकी अधिकृत भाषामें, अथवा हिन्दीमें, निकाले जाएँ और ऐसे आदेश तुरन्त जारी कर दिए जाएँ।

उसी प्रकार हमारी सिफारिश है कि केन्द्रीय विभाग उन सब पत्रोंके उत्तर जो अँग्रेजीमें नहीं लिखे जाते, सम्बन्धित राज्यकी भाषामें अथवा हिन्दीमें भेजे। विशेष कर जब कि कोई व्यक्ति, प्रतिष्ठान या संस्था

हिन्दीमें या अपनी राज्यभाषामें पत्र लिखता है, तब तो उसका जवाब हिन्दीमें या राज्य की भाषामें ही जाना चाहिए। किसी भी हालतमें वह अँग्रेजीमें नही भेजा जाए।

हमारे देशके स्वाभिमानका यह तकाजा है कि विदेशी शासकों एवं प्रमुख महानुभावोंकी सेवाओंमें राजदूतोंके साथ भेजनेवाले प्रत्यय-पत्र हमेशा हिन्दी भाषामें ही लिखे रहें; वे किसी भी हालतमें अँग्रेजीमें न लिखे जाएँ।

२—राजभाषा आयोगसे यह अपेक्षा थी कि अँग्रेजीसे हिन्दीमें स्थित्यन्तरण करनेके बारेमें वह भारत सरकारके विभिन्न विभागोंका मार्गदर्शन करनेके लिए एक ऐसी कार्य-योजना प्रस्तुत करेगा जिसमें इस स्थित्यन्तरणकी अवस्थाओं तथा तारीखोंका टाइम-टेबल भी जुड़ा रहे। आयोगका कहना है कि उसके सामने भारत सरकार द्वारा तत्सम्बन्धी कोई कार्य-योजना पेश नही की गई और इसलिए उसने ऐसी कार्य-योजनाके सम्बन्धमें सिर्फ कुछ पूर्वावश्यकताओंकी सूचना मात्र दी है; प्रत्यक्ष कार्य-योजना तैयार करनेका काम उसने भारत सरकारपर छोड़ दिया है। इस संसदीय समितिकी बैठकोंमे भी सरकारसे कई बार आग्रह पूर्वक कहा गया कि वह अब भी समितिके सामने सरकारके कामकाजोंमें हिन्दीको अधिकाधिक प्रयुक्त करने सम्बन्धी अपनी योजनाको प्रस्तुत कर दे, ताकि सदस्यगण उसपर विचार कर सकें और अपने प्रस्ताव सूचित कर सकें। लेकिन समितिके सामने कोई योजना नहीं रखी गई। दिखता ऐसा है कि सरकार किसी योजना-बद्ध कार्यक्रमसे अपने आपको नही बाँध लेना चाहती है। इस परिस्थितिमें हम सिर्फ आशा प्रकट कर सकते है कि पिछले नौ सालोंसे इस सम्बन्धमें जो अधकचरी उदासीनताकी नीति चलाई गई है, वह आगे नही चलाई जाएगी।

३—अब हम हिन्दीमे प्रयुक्त किये जानेवाले अंकोंके स्वरूपके सम्बन्धमें समितिकी रिपोर्टमें जो कुछ कहा गया है, उसपर विचार करेंगे।

संविधान सभाने जहाँ देवनागरी लिपिमें लिखी हुई हिन्दीको संघ राज्यकी राजभाषाके रूपमें स्वीकृति दी, वहाँ उसने प्राचीन एवं लोकप्रिय संस्कृत अंकोंके बदले अँग्रेजी अंकोंको मान्यता प्रदान की है। संविधान सभाके इस कामको हमने हमेशा अदूरदर्शितापूर्ण माना है। लेकिन संविधानमे यह भी व्यवस्था है कि संघ-राज्यके किसी भी काममें भारतीय अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके प्रयोगको १५ वर्षकी अवधि तक राष्ट्रपति अधिकृत कर सकता है। इस रक्षात्मक खंडवाक्यसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपकी आड़मे अँग्रेजी अंकोंको दाखिल करनेकी गलती कुछ कम हो जाती है। वस्तु स्थिति यह है कि उन हिन्दी प्रकाशनोंमें अँग्रेजी अंकोंके उपयोगकी कोई तुक ही नही है, जो कि मूल अँग्रेजी-वस्तुके सिर्फ अनुवाद या उद्धरण मात्र होते हैं। चूँकि १९६५ तक या जब तक संसद अन्यथा निर्णय न कर ले तबतक सब सांख्यिकी तथा तकनीकी आंकड़े नियमानुसार अँग्रेजीमें ही लिखे जाते रहेंगे, इसलिए ऐसी कृतियोंके हिन्दी प्रकाशन अँग्रेजी अकोंके उपयोगकी वजहसे निरर्थक हो जाते है और जो अँग्रेजी नहीं जानते है उनके लिए इन प्रकाशनोका उपयोग काफी कम हो जाता है। हम सोचते है कि सन् १९६५ के बाद अँग्रेजी तथा देवनागरी अंकोंके प्रयोगके सम्पूर्ण प्रश्नपर उस समय जो हालत होगी उसके सन्दर्भमें, नए सिरेसे विचार किया जाए।

विधि-निर्माणकी भाषा

४—(संविधानके अनुसार) संसदमें पेश किए जानेवाले सब विधेयकोंकी भाषा १९६५ तक अँग्रेजी

ही रहेगी; पर हमारी सिफारिश है कि विधि-विभाग द्वारा प्रमाणित उनके हिन्दी अनुवाद भी संसदमें साथ-साथ पेश किए जाएं। यह न सिर्फ जनताके हितकी दृष्टिसे ही आवश्यक है, बल्कि संसदके उन सदस्योंकी दृष्टिसे भी जरूरी है कि जो अँग्रेजीमे प्रस्तुत विधेयकोंकी व्यवस्थाओंको, अपने अध-कचरे अँग्रेजी ज्ञानके कारण ठीकसे नहीं समझ पाते। यदि उपर्युक्त सिफारिशानुसार प्रस्तुत करते समय ही विधेयकोंका हिन्दी अनुवाद करवा लिया जाए, तो अधिनियम स्वीकृत होते ही अँग्रेजी मूलके साथ साथ उसका हिन्दी अनुवाद भी तुरन्त मिल जाया करेगा।

विधि-विभाग केन्द्रीय विधि-मण्डलके कुछ अधिनियमोंको हिन्दीमें अनूदित करवा चुका है। हम सिफारिश करते है कि इन अनुवादोंको मूलके समकक्ष प्रामाणिकता हासिल हो जाए, इस दृष्टिसे तुरन्त कदम उठाए जाने चाहिए। सम्पूर्ण संविधि-ग्रन्थ का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद भी तीन सालमे तैयार कर लिया जाए। हमारी सिफारिशोंपर अमल करनेके लिए यह जरूरी है कि विधि-विभागके हिन्दी-अनुभागको बहुत अधिक सुदृढ़ बनाया जाए।

जहाँ तक राज्य विधान-मण्डलोंका सवाल है, राज्योंके साथ ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि उनकी विधियोंका हिन्दी-अनुवाद निकाला जा सके।

कचहरियोंकी भाषा

५—इस बारेमें समितिने जो कुछ कहा है उसमे हम इतना और जोड़ना चाहते है कि हिन्दी भाषी राज्योंके उच्च न्यायालयोंसे कहा जाए कि वे हिन्दीकरणके बारेमें अगुआई करें। उन्हें चाहिए कि वे साक्ष्य प्रमाणके अँग्रेजी अनुवादकी बातको हटा दें, ओर अधिवक्ताओंको अनुमति दें कि वे न्यायाधीशोंको, उनकी सम्मति लेकर हिन्दीमें सम्बोधित करें। उन्हें चाहिए कि विविध प्रार्थना-पत्रों और शपथ पत्रोंको वे हिन्दीमें दाखिल होने दें।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयोंके महत्वपूर्ण फैसलोंका तुरन्त प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद निकाला जा सके। इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए। विधि-विभागकी देखरेखमें काम करनेवाली दिल्ली स्थित केन्द्रीय आफिसको यह काम सौपा जा सकता है।

लोक-सेवा परीक्षाएँ

६—अब हम लोकसेवाओंके लिए ली जानेवाली परीक्षाओंमें तथा प्रशिक्षण कक्षाओंमे हिन्दीको प्रयुक्त करनेके बारेमे कुछ कहना चाहते हैं। आयोगने यह सिफारिश की थी कि सामान्यतया प्रतियोगिता परीक्षाओंका भाषा-माध्यम शिक्षा-पद्धतिमें प्रचलित पढ़ाईके माध्यमसे सुसंगत रहना चाहिए। हम सोचते है कि यह सिद्धान्त आमतौरपर मान लिया जाए। इस सम्बन्धमें समितिकी बहुसंख्यक सदस्योंकी रिपोर्टका कहना है कि आयोगकी इस सिफारिशको खतम कर दिया जाए। लेकिन हम उससे सहमत नहीं है।

हम बहुसंख्यक सदस्योंके इस मतसे सहमत है कि प्रशिक्षण सिब्बंदियोंमें प्रवेशके लिए ली जानेवाली परीक्षाओंका माध्यम, फिलहाल, अँग्रेजी तथा हिन्दी रहे, परीक्षार्थी उनमेसे किसी एकको, एक या सब पर्चोंके लिए चुन सकता है। लेकिन उनकी इस सिफारिशसे हम बिल्कुल असहमत है कि उन सिब्बंदियोंमें शिक्षा-

माध्यमके रूपमें कुछ समय तक सिर्फ अँग्रेजी ही चलती रहे। वे डरते-डरते इतना भर कहते हैं कि "पूरी पढ़ाईके लिए या उसके कुछ हिस्सेके लिए हिन्दीको माध्यमके रूपमें दाखिल करानेकी दृष्टिसे फिर भी योग्य कदम उठाए जाएँ: "हमने सुझाव रखा था कि 'कदम' के आगे 'तुरन्त' शब्द जोड़ दिया जाए, लेकिन समितिने उसे मान्यता नहीं दी और 'तुरन्त' की जगहपर 'योग्य' शब्द रखा गया। इसपरसे दिखाई देता है कि समितिके सामने इस सिफारिशकी कितनी क्या कीमत है? समितिकी मुख्य इच्छा यह दिखती है कि जितनी देर तक हो सके, सिर्फ अंग्रेजीको ही शिक्षाका माध्यम रहने दिया जाए। हमारे विचारसे यह रवैया अदूरदर्शितापूर्ण, दकियानूसी एवं देशभक्तिके विरुद्ध है। इन प्रशिक्षण संस्थाओंमें दाखिल होने वाले अधिकांश लड़के १५ से १८ वर्षकी उमरके होंगे और उनकी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षाका माध्यम उनके राज्यकी भाषा रहेगी तथा अँग्रेजीका उनका ज्ञान सामान्यतया काफी कम स्तरका होगा। इसलिए सिर्फ अंग्रेजीको माध्यमके रूपमें रखनेकी जिदमें कोई तुक नही है।

हमारा यह मत है कि इन संस्थाओंमें हिन्दीको शिक्षाके प्रमुख माध्यमके रूपमे तुरन्त स्वीकृत कर लेना चाहिए; अंग्रेजी देर तक कुछ वैकल्पिक माध्यमके रूपमें भले ही बनी रहे।

अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंमें भाषा-माध्यमके बारेमें भाषा-आयोग द्वारा २८ महीने पहले की गई मुख्य सिफारिशोंमे कहा गया था कि वर्तमान अंग्रेजी-माध्यमके साथ साथ, उचित अवधिका नोटिस देकर हिन्दीको भी वैकल्पिक माध्यमके रूपमे दाखिल कर लिया जाए। हम सोचते हैं कि जैसे ही आयोगने यह सिफारिश की थी, वैसे ही उसपर अमल हो जाना चाहिए था। चूँकि पिछले चार वर्षोंमें अनेकों विश्वविद्यालयोंमेसे बहुत बड़ी संख्यामे विद्यार्थियोंने अपनी विश्वविद्यालयीन परीक्षाओंके माध्यमके रूपमे हिन्दीको अथवा अपनी राज्यकी भाषाको अपना कर स्नातकीय परीक्षाएँ पास कर ली हैं और चूँकि आज उनका अंग्रेजी-ज्ञान इतना सक्षम नही है कि वे इन प्रतियोगिता परीक्षाओंमे अंग्रेजी मे उत्तर लिख सकें, इसलिए हमे इसका कोई न्यायसंगत कारण नहीं दिखाई देता कि आयोग की उपर्युक्त सिफारिशपर अमल करनेके कामको और आगे ढकेल दिया जाए। यदि उच्चतर प्रतियोगिता परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें फिलहाल अंग्रेजीको रखा ही जाना हो, तो उस हालतमें यही न्यायकी बात होगी कि जो विद्यार्थी हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमे अपनाना चाहें, उन्हें वैसा करनेकी अनुमति दी जाए।

इन परीक्षाओंके बारेमें समितिके बहुसंख्यक सदस्योंका यह रुख है कि अंग्रेजीको परीक्षाओंके माध्यमके रूपमे चलने दिया जाए और हिन्दीको कुछ समय बाद वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल किया जा सकता है। हमें समितिका यह रुख उन विद्यार्थियोकी दृष्टिसे अनुचित एवं पक्षपातपूर्ण लगता है, जिन्होंने अपनी शिक्षाके माध्यमके रूपमे अँग्रेजीकी जगह हिन्दीको पसन्द किया है। हमारा प्रस्ताव था कि हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमे अंग्रेजीके साथ-साथ स्वीकार कर लिया जाए, परन्तु उसे समितिके बहुमत द्वारा स्वीकृति नही मिली। वे चाहते है कि वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको दाखिल करनेकी बात आज टाल दी जाए और "कुछ अवधिके बाद" उसे लाया जाए। इससे लम्बे समयके लिए निष्क्रियताकी नीतिको बल मिल सकता है। हमारा निश्चित सुझाव है कि सितम्बरमें होनेवाली १९५९ की प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अंग्रेजीके साथ साथ हिन्दीको भी माध्यमके रूपमें अनुमति मिले और १९५९ का मार्च खतम हो, उसके पहले ही वैसी घोषणा कर दी जाए।

हम मानते है कि जिनकी मातृ-भाषाएँ हिन्दीतर भाषाएँ हैं ऐसे विद्यार्थियोंको हिन्दी विद्यार्थियोंसे समस्तर करनेके लिए, इन परीक्षाओमे भाषाओंके दो समान-स्तरीय अनिवार्य पर्चे रहें जिसमें एक हिन्दीका रहे तथा दूसरा परीक्षार्थी द्वारा चुनी गई किसी हिन्दीतर आधुनिक भारतीय भाषाका।

हिन्दी-मंत्रालयके लिए सुझाव

८—अन्तमे हम यह कहना चाहते है कि आयोग की, हमारी समितिकी तथा हमारी भी सिफारिशों-पर बिना किसी अनावश्यक देरीके अमल किया जा सके और आवश्यक भाषिक स्थित्यंतरणको मंजिल दर मजिल पूरा करनेके प्रश्नपर ठीकसे विचार किया जा सके तथा उसके पीछे दत्तचित्त होकर भिड़ा जा सके। इसलिए यह जरूरी हैं कि अलगसे एक हिन्दी मंत्रालय बनाया जाए जो अन्य मन्त्रालयोंके साथ मिलकर काम तो करेगा लेकिन सीधे किसीके अधीन नही रहेगा। यदि किसी कारणसे यह बात स्वीकार्य न पाई जाए, तो आवश्यक सुधारोंपर अमल करनेके लिए गृह-मन्त्रालय या शिक्षा-मन्त्रालयके मातहत एक स्वयं-शासित बोर्डकी नियुक्ति की जाए, जिससे कि अँग्रेजीसे हिन्दीमें संक्रमणका पूरा काम १९६५ तक या १९६५ के बादके एक दो सालोंमे पूरा कर लिया जा सके।

राष्ट्रपतिका आदेश सन् १९६०

संसदीय समितिकी इस रिपोर्टपर ससदके दोनों सभागृहोंमें चर्चा होनेके बाद, राष्ट्रपतिने २७ अप्रैल १९६० को एक आदेश प्रसारित किया जिसमें कहा गया है कि—

"संविधानकी धारा ३४४ खंड (४) में की गई व्यवस्थाओंके अनुसार प्रथम राजभाषा आयोगकी सिफारिशोंकी जाँच-पड़ताल करनेके लिए तथा राष्ट्रपतिके सम्मुख उनपर अपना मन्तव्य सूचित करनेके लिए लोकसभाके २० तथा राज्यसभाके १० सदस्योंकी एक समिति बनाई गई थी। समितिने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपतिके पास ८ फरवरी १९५९ को प्रस्तुत कर दी। समितिके सामान्य रुखको निर्देशित करने-वाले उस रिपोर्टके महत्वपूर्ण मुद्दे निम्नलिखित हैं—

(अ) संविधानमें राजभाषाके लिए एक समाकलित योजना सन्निहित है। (राजभाषाके) प्रश्नके बारेमे उस योजनाका रुख लचीला है तथा उसके ढाँचेमे आवश्यक उचित समंजनोंकी गुँजाइश है।

(आ) सरकारी कामकाजके माध्यमके रूपमें राज्योंमें विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएँ तेजीसे अँग्रेजीका स्थान ले रही है। यह स्वाभाविक ही है कि क्षेत्रीय भाषाएँ उस स्थानको प्राप्त करें जिसपर कि उनका अधिकार है। इस तरह संघ-राज्यके कामकाजके लिए एक भारतीय भाषाका उपयोग व्यावहारिक आव-श्यकता हो गई है। लेकिन उस परिवर्तनके लिए किसी लक्ष्मण-रेखाकी आवश्यकता नहीं है। यह ऐसा स्वाभाविक संक्रमण होना चाहिए जो कम-से-कम असुविधा उत्पन्न करते हुए फैली हुई कालावधिमें सरलता पूर्वक सम्पन्न हो।

(इ) १९६५ तक अँग्रेजी प्रमुख राजभाषा रहे और हिन्दी सहायक राजभाषा। १९६५ के बाद जबकि हिन्दी केन्द्रकी मुख्य राजभाषा बन जाती है तो अँग्रेजी सहायक राजभाषाके रूपमें चलती रहे।

(ई) संघ-सरकारके किसी कामके लिए अँग्रेजीपर फिलहाल कोई रोक नहीं लगानी चाहिए और संविधानकी धारा ३४३ खंड (३) में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि १९६५ के बाद भी संसद द्वारा कानूनसे निर्धारित बातोंके लिए जब तक आवश्यक समझा जाए तबतक अँग्रेजीका उपयोग होता रहे।

(उ) धारा ३५१ की इस व्यवस्थाका बहुत महत्व है कि हिन्दीको इस तरहसे विकसित किया जाए जिससे कि वह भारतीय संस्कृतिके सब तत्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम बन सके। उसमें सरल एवं प्रासादिक शब्द-योजनाको हर तरहसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

अप्रैल १९५९ में संसदके दोनों सदनोंके सामने इस रिपोर्टकी प्रतिलिपियाँ रखी गईं और लोक-सभामें उसपर २ सितम्बरसे ४ सितम्बर ५९ तक तथा राज्यसभामे ८ तथा ९ सितम्बर ५९ को चर्चाएँ हुई। लोकसभाकी चर्चामें प्रधान-मन्त्रीने ४ सितम्बर १९५९ के दिन एक वक्तृत्व दिया जिसमें राजभाषाके प्रश्नपर सरकारके रुखको मोटे तौरपर इंगित किया गया था।

२—राष्ट्रपतिको धारा ३४४ के खण्ड ६ के अनुसार जो अधिकार प्रदान किए गए है उनके अनुसार राष्ट्रपतिने समितिकी रिपोर्टपर विचार किया है और राजभाषा आयोगकी सिफा-रिशोंपर समिति द्वारा प्रकट किए गए मन्तव्योके सिलसिलेमे राष्ट्रपति निम्नलिखित निर्देश प्रसारित करते हैं—

पारिभाषिक शब्दावली

३—आयोगकी जिन मुख्य सिफारिशोंको समितिने मान लिया है वे हैं—

(१) पारिभाषिक शब्दावली बनाते समय मुख्य लक्ष्य स्पष्टता, सही अर्थ, और सरलताका रहना चाहिए। (२) योग्य मामलोमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीको जैसे-के-तैसे अथवा रूपान्तरित कर स्वीकृत किया जा सकता है,। (३) सब भारतीय भाषाओंके लिए शब्दावलीको विकसित करते समय यह ध्यान रखा जाए कि उनमें अधिक-से-अधिक एकरूपता आए। (४) केन्द्र और राज्योंमें चलनेवाले हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंकी शब्दावली विकसित करनेके कामोंका समन्वय करनेके लिए उचित व्यवस्थाएँ की जानी चाहिए। समितिने आगे कल्पना की है कि विज्ञान एवं औद्योगिकी (टेकनीक) के क्षेत्रमें बने वहाँ तक सब भारतीय भाषाओंमें एकरूपता रहे और उनकी शब्दावली अंग्रेजी या अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीसे घनिष्ट रूपसे मिलनेवाली हो। समितिने सुझाव दिया है कि इस क्षेत्रमें विभिन्न अभिकरणों द्वारा किए जानेवाले कामका समन्वय एवं अधीक्षण करनेके लिए और समस्त भारतीय भाषाओंके उपयोगार्थ अधिकृत शब्द-संग्रहोंके प्रकाशनके लिए एक ऐसे स्थायी आयोगका गठन किया जाए जिसमें मुख्य रूपसे वैज्ञानिक एवं औद्योगिकीविद् रहें।

'शिक्षा-मन्त्रालय निम्न कार्यवाही कर सकता है—

(अ) अभी तक जो काम हुआ है उसका पुनर्विलोकन करनेके लिए और समिति द्वारा मान्य सामान्य सिद्धान्तोंके अनुसार शब्दावली बनानेके लिए शिक्षा-मन्त्रालय कार्यवाही कर सकता है। विज्ञान एवं औद्योगिकी के क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगकी शब्दावली को कमसे-कम हेरफेरके साथ मान्य करना

चाहिए। अर्थात् मूल शब्द वे ही रहें जो फिलहाल अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमें प्रचलित हैं, यद्यपि उनसे निकले हुए शब्दोंका भारतीयकरण जितना जरूरी हो उतना किया जा सकता है।

(आ) शिक्षा-मन्त्रालय शब्दावली बनानेके काममें समन्वय स्थापित करनेकी व्यवस्थाको लेकर प्रस्ताव तैयार करनेका काम कर सकता है ।

(इ) जैसा कि समितिने सुझाव दिया है, शिक्षा मन्त्रालय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शब्दावलीको विकसित करनेकी दृष्टिसे एक स्थायी आयोगका गठन कर सकता है।

प्रशासकीय नियम-पुस्तकों तथा अन्य क्रियाविधिक साहित्योंका अनुवाद

४—नियम-पुस्तकों तथा अन्य क्रिया-विधिक साहित्योंके अनुवादमें प्रयुक्त की जानेवाली भाषामें एक हदतक एकरूपता लानेकी आवश्यकता महसूस करते हुए समितिने आयोगके इस सुझावको मान लिया है कि यह सब काम एक एजेन्सीके जिम्मे कर दिया जाए, तो अच्छा रहे। शिक्षा-मन्त्रालय सांविधिक नियमों, विनियमों तथा आदेशोंको छोड़कर अन्य सब नियम-पुस्तकों एवं क्रियाविधिक साहित्योंका अनुवाद-कार्य करवा सकती है । साविधिक नियमों, विनियमों एवं आदेशोके अनुवादका काम सांविधियोंके अनुवाद कार्यसे घनिष्टता-पूर्वक जुड़ा हुआ है और विधिमंत्रालय उसका जिम्मा ले सकता है। यह कोशिश की जानी चाहिए कि इन सब अनुवादोंमें प्रयुक्त होने वाली सब भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीमें अधिक-से-अधिक एकरूपता रहे।

प्रशासकीय कर्मचारियोंको हिन्दी माध्यममें प्रशिक्षित करना

५—(अ) समिति द्वारा अभिव्यक्त मंतव्यानुसार ४५ वर्षसे कम उम्रके सरकारी कर्मचारियोंके लिए नौकरी करते हुए हिन्दीकी शिक्षाको अनिवार्य बनाया जा सकता है। पर तीसरी श्रेणीके नीचेके, औद्योगिक प्रतिष्ठानोके तथा कामके अनुसार वेतन पानेवाले (Work-Charged) कर्मचारियोंके लिए यह जरूरी नही है। इस योजनामें निश्चित तारीख तक निर्धारित स्तर तक ज्ञान प्राप्त करनेमें असफल होनेपर किसी प्रकारका दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। हिन्दी प्रशिक्षणकी सुविधाएँ प्रशिक्षणार्थियों-को मुफ्त प्राप्त होनी चाहिए ।

(आ) केन्द्रीय सरकार द्वारा रखे गए टंकमुद्रकों तथा आशुलिपिकोंको हिन्दी टंकमुद्रक तथा आशुलेखनमें प्रशिक्षित करनेकी योग्य व्यवस्थाएँ गृह-मन्त्रालय द्वारा की जानी चाहिए ।

(इ) शिक्षा-मन्त्रालय हिन्दी टाइप यंत्रोंका कुंजी पटल तैयार करनेके कामको तुरन्त हाथमें ले ले।

हिन्दी प्रचार

६–(अ) समितिने आयोगकी इस सिफारिशको मान लिया है कि इस कामका जिम्मा अब सरकारी स्तरपर उठा लिया जाए। जहाँ सक्षम स्वयं-प्रेरित संस्थाएँ कार्यरत है, वहाँ उन्हें आर्थिक एवं अन्य प्रकारसे मदद दी जा सकती है और जहाँ ऐसे अभिकरण नहीं है, वहाँ सरकार स्वयं ऐसे जरूरी संगठन कायम करे।

हिन्दी प्रचारके लिए जो व्यवस्थाएँ अभी हैं उनके काम-काजका शिक्षा-मन्त्रालय पुनर्विलोकन करे और समिति द्वारा निर्देशित ढंगपर अगली कार्यवाही करे।

(आ) शिक्षा-मन्त्रालय एवं वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सांस्कृतिक कार्योंका मन्त्रालय दोनों मिलाकर समितिके सुझावानुसार, भारतीय भाषा-विज्ञान, भाषातत्व एवं साहित्यके बारेमें अध्ययन एवं अनुसंधानको प्रोत्साहित करने वाले कदम उठाएँ और विभिन्न भारतीय भाषाओंको नजदीक लानेकी दृष्टिसे तथा धारा ३५१ के निर्देशनानुसार हिन्दीको विकसित करनेकी दृष्टिसे आवश्यक प्रस्तावोंको तैयार करें।

केन्द्रीय सरकारके विभागोंके स्थानिक आफिसोंमें भर्ती

७—समितिका मत है कि केन्द्रीय सरकारके विभागोंके स्थानिक आफिसोंको अपने अन्तर्गत कामोंमें हिन्दीका और सम्बन्धित क्षेत्रोंकी जनताके साथ व्यवहार करते समय सम्बन्धित क्षेत्रोंकी भाषाओंका उपयोग करना चाहिए।

अपने स्थानिक कार्यालयमें अँग्रेजीके अलावा हिन्दीका उत्तरोत्तर अधिक उपयोग करने सम्बन्धी योजना बनाते समय केन्द्रीय सरकारके विभागोंको इस बातकी आवश्यकताका भी ध्यान रखना चाहिए कि स्थानिक जनताके लिए उस क्षेत्रकी भाषामें अधिक-से-अधिक व्यवहार्य तादादमें पत्र एवं वैभागिक साहित्य उपलब्ध करनेवानेकी सुविधा की जाए।

(आ) समितिका मत है कि केन्द्र सरकारकी प्रशासकीय एजेन्सियों एवं विभागोंके कर्मचारी-ढाँचेका पुर्नविलोकन किया जाए और क्षेत्रीय आधारपर उसका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए। इस दृष्टिसे उन भर्तीके तरीकोंको एवं योग्यताओंको उचित रूपसे परिशोधित भी करना पड़ सकता है।

जिनके कर्मचारियोंकी बदली सामान्य रूपसे सम्बन्धित क्षेत्रके बाहर नहीं की जा सकती, ऐसी स्थानिक कार्यालयोंकी श्रेणियोंके स्थानोंके लिए अधिवास सम्बन्धी योग्यताओंको बिना लागू किए, समितिके इस सुझावको सिद्धान्तके रूपसे मान लिया जा सकता है।

(इ) समितिने आयोगकी इस सिफारिशको मान लिया है कि अपनी नौकरीमें आनेवाले लोगोंके लिए एक स्तर तक हिन्दी-भाषा-ज्ञानकी योग्यताको निर्धारित करना संघ सरकारके लिए वाजिब होगा, बशर्ते कि उसकी काफी सूचना दी जाए और निर्धारित भाषिक योग्यताका स्तर साधारण हो उसमें जो कमी रह जाए वह नौकरीमे दाखिल हो जानेके बाद प्रशिक्षण द्वारा पूरी कर ली जाए।

इस सिफारिशका अमल केन्द्रीय सरकारके विभागोंके सिर्फ हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें स्थित कार्यालयोंकी भर्तीके लिए ही किया जाए; अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके स्थानीय कार्यालयोंके लिए नही।

(अ), (आ), और (इ) में निहित निर्देश भारतीय लेखा परीक्षण तथा हिसाब विभागके मातहत कार्यालयोंपर लागू नहीं होंगे।

प्रशिक्षण सिब्बंदियाँ

८ (अ) समितिने सुझाव दिया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी जैसी प्रशिक्षणात्मक सिब्बंदियोंमें

शिक्षाके माध्यमके रूपमें अँग्रेजीको चालू रखा जा सकता है, लेकिन साथ ही पूर्ण या आंशिक रूपसे हिन्दीको भी माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी दृष्टिसे उचित कदम उठाए जाने चाहिए।

प्रतिरक्षा मंत्रालय हिन्दीमे पढ़ाईकी किताबों इ. के. प्रकाशन जैसी उचित तैयारीके कदमोंको उठाए ताकि जहाँ व्यवहार्य एवं सम्भव हो वहाँ हिन्दीको माध्यमके रूपमें लानेमे सहूलियत हो।

(आ) समितिने सुझाव दिया है कि प्रशिक्षण सिब्बंदियोंमे प्रवेश के लिए ली जानेवाली परीक्षाओं का माध्यम अँग्रेजी और हिन्दी रहे, परीक्षार्थी उनमेसे एकको कुछ पर्चोंके लिए अथवा सब पर्चोंके लिए इच्छानुसार पसन्द कर सकते है। समितिका सुझाव है कि एक विशेषज्ञ समितिकी नियुक्ति की जाए जो बिना कोटा पद्धतिको दाखिल किए क्षेत्रीय भाषाओंके माध्यमकी व्यावहारिकताकी जाँच-पड़ताल करे।

प्रतिरक्षा मत्रालय प्रवेश परीक्षाओंमें वैकल्पिक माध्यमके रूपमे हिन्दीको दाखिल करनेकी दृष्टिसे आवश्यक उपाय कर सकता है तथा बिना कोटा पद्धतिको लाए क्षेत्रीय भाषाओंके माध्यमपर विचार करनेके लिए विशेषज्ञ कमेटी बनानेकी दृष्टिसे योग्य कदम उठा सकता है।

अखिल भारतीय सेवाओं तथा उच्चतर केन्द्रीय सेवाओंमें भर्ती

९. (अ) **परीक्षाका माध्यम**: समितिका मत है कि

(१) अँग्रेजी परीक्षाका माध्यम बनी रहे और कुछ समय बाद वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको लाया जाए; उसके बाद जबतक आवश्यक हो तब तक हिन्दी और अँग्रेजी दोनों माध्यम रहें, परीक्षार्थी जिसे चाहे ले सकें।

(२) बिना कोटा पद्धतिको लाए क्षेत्रीय भाषाओंको माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी बात की व्यावहारिकता की जाँच-पड़तालके लिए एक विशेषज्ञ समिति बनाई जाए।

संघ लोक-सेवा आयोगके परामर्शसे गृह-मंत्रालय कुछ समय बाद हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी दृष्टिसे आवश्यक कदम उठा सकता है। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंको भी वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेसे सम्भवतः गम्भीर मुश्किलें उठ खड़ी होंगी, इसलिए क्षेत्रीय भाषाओंको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी व्यावहारिकता पर सोचने के लिए विशेषज्ञ समितिका गठन आवश्यक नहीं है।

(आ) **भाषा सम्बन्धी प्रश्नपत्र**:—समितिका मत है कि योग्य सूचना के बाद, दो समान स्तरके अनिवार्य प्रश्नपत्र होने चाहिए—एक हिन्दीमें और दूसरा हिन्दीको छोड़कर परीक्षार्थी द्वारा पसन्द अन्य आधुनिक भारतीय भाषामें।

फिलहाल, सिर्फ हिन्दी भाषाका एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र ही दाखिल किया जाए। प्रतियोगिताके परिणाम स्वरूप चुने जानेवाले उम्मीदवारोंमेंसे जो इस वैकल्पिक हिन्दी प्रश्नपत्रमें उत्तीर्ण हो जाते है, उन्हें भर्तीके बाद ली जानेवाली वैभागिक हिन्दी-जाँच-परीक्षामें बैठने तथा उसमें उत्तीर्ण होनेसे मुक्त किया जा सकता है।

अंक

(१०) जैसा कि समितिने सुझाव दिया है, केन्द्रीय मंत्रालयोंके हिन्दी प्रकाशनोंमें अन्तर्राष्ट्रीय

अंकोंके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके उपयोगके बारेमें, जिस जनताको सम्बोधित किया जा रहा है उसके अनुरूप तथा प्रकाशन-विषयके अनुरूप एक मूलभूत नीति रहनी चाहिए। वैज्ञानिक, तकनीकी एवं सांख्यिकीय प्रकाशनोंमें तथा केन्द्रीय सरकारके बजट सम्बन्धी साहित्यमें सब जगह अन्तर्राष्ट्रीय अंकोंका उपयोग किया जाए।

अधिनियमों, विधेयकों आदिकी भाषा

११. (अ) समितिका मत है कि संसदीय विधि-निर्माणका काम अँग्रेजीमें चालू रखा जा सकता है, लेकिन हिन्दीमें प्रमाणित अनुवादकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

संसदीय विधि-निर्माणका काम अँग्रेजीमें चालू रखा जा सकता है, विधि-मंत्रालय उसके प्रमाणित हिन्दी अनुवादकी व्यवस्थाके लिए आवश्यक कानून बनानेके कामको यथा समय चालना दे सकता है। संसदीय कानूनोंका क्षेत्रीय भाषाओंमें अनुवाद प्रस्तुत करनेकी भी व्यवस्था विधि-मंत्रालय कर सकता है।

(आ) समितिने मत प्रकट किया है कि जहाँ राज्य विधान सभामें प्रस्तुत विधेयकोंके पाठ या उसके द्वारा स्वीकृत अधिनियम हिन्दीके अलावा अन्य भाषामें हों, वहाँ संविधानकी धारा ३४८ खण्ड ३ की व्यवस्थानुसार उनके अंग्रेजी अनुवादके अलावा हिन्दी अनुवादको प्रकाशित किया जा सकता है।

राज्योंके विधेयकों, अधिनियमों तथा अन्य सांविधिक दस्तावेजोंका हिन्दी अनुवाद राज्यकी सरकारी भाषामें उनके मूल-पाठके साथ-साथ, प्रकाशित करनेके लिए यथा समय कानून बनाया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयोंकी भाषा

(१२) राजभाषा आयोगने सिफारिश की थी कि जहाँ तक उच्चतम न्यायालयकी भाषाका सवाल है, जब भी स्थित्यन्तरका समय आए, अन्ततः हिन्दीको ही उच्चतम न्यायालयकी भाषा रहना चाहिए। समिति ने इस सिफारिशको मान लिया है।

उच्च न्यायालयकी भाषाके सिलसिलेमें, आयोगने क्षेत्रीय एवं हिन्दी भाषाको लेकर सब तरहसे विचार किया और सिफारिश की कि जब स्थित्यन्तरणका समय आ जाए तब सब क्षेत्रोंमें उच्च न्यायालयोंके निर्णयों, डिकरियो तथा आदेशोंकी भाषा हिन्दी रहनी चाहिए। लेकिन समितिने यह मत प्रकट किया है कि उच्च न्यायालयोके निर्णयों, डिकरियों तथा आदेशोंके लिए राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मति से हिन्दी तथा राज्योंकी राजभाषाओंके वैकल्पिक उपयोगार्थ आवश्यक कानून बनाकर व्यवस्था की जा सकती है।

उच्चतम न्यायालयके अन्ततः हिन्दीमें काम करनेसे सम्बन्धित समितिकी राय सिद्धान्ततया मान ली जा सकती है और जब स्थित्यन्तरणका समय आ जाएगा तभी उस दृष्टिसे उचित कार्यवाही करनी पड़ेगी। उच्च न्यायालयोंकी भाषाके सम्बन्धमें आयोगकी सिफारिशको मंदित करते हुए समितिने जो सुझाव दिया है, उसके अनुसार निर्णयों, डिकरियों तथा आदेशोंके हेतु राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे हिन्दी एवं राज्योंकी अन्य राजभाषाओंके वैकल्पिक उपयोगके लिए विधि-मंत्रालय आवश्यक कानून बनानेका काम यथासमय शुरू कर सकता है।

कानूनके क्षेत्रमें स्थित्यन्तरणके लिए तैयारीकी कार्यवाहियां

१३. प्रामाणिक विधि कोषके निर्माण, केन्द्रीय एवं राज्यीय कानूनोंके सांविधिक-ग्रंथके हिन्दीमें पुनर्विधिकरण, विधि-शब्दावली गठन की कार्य-योजना, तथा बीचके संक्रमण कालमें (जिसमें कि सांविधिक-ग्रथ तथा निर्णय विधि अंशतः हिन्दी तथा अँग्रेजीमें रहेंगे) तैयारीके अन्य कामोंको करनेके बारेमें आयोगने जो सिफारिशें की थी उनसे समिति सहमत हो गई है। समितिने सांविधिक-ग्रन्थोंके अनुवाद तथा विधि शब्दावली व शब्द-संग्रहोंके निर्माणके पूरे कार्यक्रमकी उचित रूपसे योजना बनाने एवं उसे सम्पूरित करनेके लिए भारतकी विभिन्न भाषाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाले विधि विशेषज्ञोंके एक स्थायी आयोग या तत्सम उच्चस्तरीय निकायके गठनका भी सुझाव दिया है। समितिने यह भी मत दिया है कि केन्द्रीय प्राधिकरणोंके परामर्शसे आवश्यक कदम उठानेकी सलाह राज्य सरकारोंको दी जाए।

सब भारतीय भाषाओंमें अधिकसे अधिक प्रयुक्त हो सकनेकी क्षमता रखनेवाली प्रामाणिक विधि शब्दावलीके निर्माण—एवं हिन्दीमें संविधियोंके अनुवादके पूरे कामकी उचित ढंगसे योजना बनाने एवं उसे संपादित करनेके लिये, समितिके तत्सम्बन्धी सुझावको ध्यानमें रखकर विधि-मंत्रालय कार्यवाही कर सकता है।

हिन्दीके उत्तरोत्तर उपयोगके लिए कार्यक्रम अथवा योजना

(१४) समितिने सुझाया है कि संघ सरकार संघकी राजभाषा के रूपमें हिन्दीके उत्तरोत्तर उपयोगकी दृष्टिसे एक योजना बनाए और उसपर अमल करे तथा संघके किसी भी सरकारी काम के लिए अंग्रेजी भाषाके उपयोगपर कोई रोक फिलहाल नही लगाई जाए।

इस सुझावके अनुसार गृह-मंत्रालय एक योजना या कार्यक्रम को तैयार करने तथा उसपर अमल करनेके लिए आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। इस योजना या कार्यक्रम का सम्बन्ध ऐसी तैयारीकी कार्यवाहियोंसे रहे जिनसे कि संघीय प्रशासनमें हिन्दीके उत्तरोत्तर प्रयोगमें सहूलियत हो तथा संविधानकी धारा ३४३ खण्ड २ में की गई व्यवस्थाके अनुसार संघके विभिन्न कामेके लिए अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीके उपयोगको प्रोत्साहन मिले। मुख्य रूपसे इन तैयारी के उपायोंकी क्षमता पर बात निर्भर रहेगी कि अँग्रेजीके साथ साथ हिन्दीका उपयोग कितने अधिक पैमानेपर किया जा सकता है। अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीको प्रयुक्त करनेकी योजना पर अनुभवोंके प्रकाशमें समय-समय पर पुनर्विचार एवं समंजन करना होगा।

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालयकी विविध योजनाएं तथा कार्यक्रम

(१) वैज्ञानिक, औद्योगिकी तथा प्रशासकीय शब्दावलीका निर्माण

सन् १९४७ में भारत के स्वतंत्र होनेके पश्चात् जब देशमें नये सांविधानिक परिवर्तन हुए, तभी पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माण की दिशामें अखिल भारतीय स्तर पर देशमें प्रथम प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसका श्रेय राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादको है, जो उस समय संविधान सभाके अध्यक्ष थे। उन्होंने भाषा-

विशेषज्ञोंका एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें इस बात पर विचार किया गया कि जहाँ तक सम्भव हो संविधानके लिए एक व्यापक पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की जाए, जो सभी भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे प्रयुक्त हो सके और जिसका उपयोग हम अन्य सरकारी, कानूनी, अदालती और शासन-सम्बन्धी कामोंमें कर सकें। इस सम्मेलनने संविधानमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंका एक पारिभाषिक शब्दावली संग्रह तैयार किया, जिसे अखिल भारतीय स्तर पर निर्मित प्रथम प्रामाणिक कोष कह सकते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डलके प्रयास

यों तो पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें १९ वीं शताब्दीसे ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं और विचार शील विद्वानोंने विचार करना शुरू कर दिया था और हिन्दी क्षेत्र तथा बंगला, मराठी आदि अन्य प्रादेशिक भाषाओंमें भी पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणका कार्य अनेक व्यक्तियों, और नागरी-प्रचारिणी-सभा जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा होता रहा। किन्तु, अधिकृत रूपसे शासनके क्षेत्रमें सन् १९३८ में ही जबकि प्रान्तोंमें कॉंग्रेसकी सरकारें अधिष्ठित हुई तब हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओंको समृद्ध करनेके लिए ज्ञान-विज्ञानकी विविध शाखाओंमें शब्दावली-निर्माणके प्रयत्न शुरू किए गए। कुछ समय पश्चात् उन्हीं प्रयासोंके प्रेरणा स्वरूप सन् १९४० में वैज्ञानिक शब्दावलीके प्रश्नपर भारत सरकारने भी विचार करना शुरू कर दिया। १९४० में शिक्षा सलाहकार मण्डलकी पांचवीं बैठकमें अखिल भारतीय आधारपर एक-सी वैज्ञानिक शब्दावली अपनानेकी समस्या पर व्यापक रूपसे चर्चा की गई थी और इसकी ब्यौरेवार परीक्षा करनेके लिए स्वर्गीय सर अकबर हैदरीकी अध्यक्षतामें एक समिति भी नियुक्त की गई थी। जनवरी १९४१ में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार मण्डलने अपनी छठी बैठकमें सर अकबर हैदरी समितिकी इस सिफारिश को मजूर कर लिया। भारतमें तथा दूसरे देशोंमें होनेवाले वैज्ञानिक विकासमें आपसमें आवश्यक सम्पर्क बनाए रखनेके लिए भारतमें ऐसी वैज्ञानिक शब्दावली अपनाई जाए जो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें आमतौरपर स्वीकार किए गए शब्दोंको यथा सम्भव अपना ले।

केन्द्रीय निर्देश मण्डल

लेकिन विभिन्न राज्योंमें जनताकी राय जाननेके लिए इसपर की जानेवाली कार्यवाही स्थगित कर दी गई। जनवरी १९४२ में प्रान्तोंके विचार मालूम हो गए और चूंकि ये मण्डलकी रायसे मिलते थे, इसलिए एक ऐसे केन्द्रीय निर्देश मण्डलकी नियुक्ति करनेका फैसला किया गया जो भारतीय भाषाओंको कई समूहोंमें बाँटने और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली अपनानेके बारेमें विभिन्न प्रश्नों पर विचार करे। डा. ए. लक्ष्मणस्वामी मुदालियरके सभापतित्वमें इस निर्देश मण्डलकी एक बैठक मई १९४७में हुई और उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंके बारेमें शिक्षा-मण्डलने जो निर्णय किया था, उसी पर जोर दिया गया।

उपकुलपतियों एवं विशेषज्ञोंकी समिति

इसके पहले कि उस नीतिके अनुसार कोई कार्यवाही हो सके, सवैधानिक परिवर्तन हो गए और जनवरी १९४८ में माननीय शिक्षा-मंत्रीने एक अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् बुलाई और उसमें यह निर्णय

हुआ कि विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाके माध्यमके प्रश्नपर विचार करनेके लिए भारतके विश्वविद्यालयोंके उप-कुलपतियों और विशेषज्ञोंकी एक समिति नियुक्त की जाए।

इस समितिने अन्य मामलोंके साथ निर्देश-मण्डलकी रिपोर्ट पर विचार किया और इसके अलावा पाठ्य-पुस्तकों तथा वैज्ञानिक शब्दकोष बनाने और विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा एवं परीक्षाओंके माध्यमके विषयमें की गई सिफारिशोंको अपनानेके लिए अन्य आवश्यक बातोंपर भी विचार किया। इस समितिने यह सिफारिश की कि राजभाषामें प्रामाणिक साहित्यके निर्माणकी व्यवस्था करने और दूसरी भारतीय भाषाओंमे इसी प्रकार के साहित्य निर्माणमें सहायता देनेके लिए तत्काल कार्यवाही की जाए।

विश्वविद्यालय आयोग

सन् १९४८ में भारत सरकारने डा. राधाकृष्णन्की अध्यक्षतामें विश्वविद्यालय आयोगकी स्थापना की। इस आयोगने इस समस्यापर गहराईसे सोच-विचार किया और कुछ सिफारिशे की। इन सिफारिशोंपर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डलकी (Contral Advisory Board of Education) अप्रैल १९५० की विशेष बैठकमें अन्य सिफारिशोंके साथ विचार किया गया और इन्हें स्वीकार कर लिया गया।

वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली मण्डलका निर्माण

शिक्षा-मंत्रालयने केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्उलकी इन सिफारिशोंपर सावधानीसे विचार किया और उसने यह महसूस किया कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इस प्रश्नका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है और यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि अखिल भारतीय स्तरपर एक ऐसे मण्डलकी स्थापना की जाए जो सारे देशके लिए एक सी वैज्ञानिक शब्दावलीका निर्माग करे और खासतोरसे वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयोंकी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करे। तदनुसार १९५० में एक एक वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली मण्डल (Board of Scientific Technical Terminology) की स्थापना की गई जिसमे देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक, भाषा-शास्त्री एव शिक्षा-शास्त्री सम्मिलित थे और केंद्रीय शिक्षा सलाहकार उसके अध्यक्ष थे।

वैज्ञानिक शब्दावली मण्डलकी पहली बैठक ११ दिसम्बर १९५० को हुई। तत्कालीन शिक्षा-मत्री स्वर्गीय मौलाना आजाद बैठकके अध्यक्ष थे। इस बैठकके निर्णयानुसार वैज्ञानिक शब्दावलीके काममें मण्डलको सहायता पहुँचानेके लिए इन नो विषयोंकी अलग अलग नौ विशेषज्ञोंकी उपसमितियोंका संगठन किया गया।

(१) गणित
(२) भौतिकी
(३) रसायन
(४) चिकित्सा-विज्ञान
(५) प्राणि-विज्ञान

(६) वनस्पति-विज्ञान
(७) कृषि-विज्ञान
(८) भूविज्ञान
(९) समाज-विज्ञान और प्रशासनिक शब्दावली।

बादमें रक्षा-विभागमें प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दोंके लिए भी एक अलग समिति बनाई गई।

भाषा-शास्त्रियोंकी समिति

इस समस्याकी भाषा-सम्बन्धी गुत्थियोंकी ब्यौरेवार परीक्षा करनेके लिए मण्डलकी सिफारिशोंके अनुसार भाषाशास्त्रियोकी एक समिति (A Committee of Philologists) भी नियुक्त की गई। इस समितिकी कुल तीन बैठकें हुई और उसने निम्नलिखित सिफारिशें कीं :—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें प्रयुक्त होनेवाले नए और गढ़े गए पारिभाषिक शब्द हिन्दी (और दूसरी भारतीय भाषाओं) मे सामायन्त: उसी रूपमें अपना लिए जाने चाहिए जिस रूपमें उनका प्रयोग अँग्रेजीमें होता है।

उदाहरणार्थ गैस, पेनिसिलीन, क्विनीन (कुनैन), प्लास्टिक, मरसराइज।

(२) जहाँ आमतौर पर उपयोगमें आनेवाले अँग्रेजी शब्दोका उपयोग विशेष या पारिभाषिक अर्थमें किया गया है वहाँ हिन्दी (या अन्य भारतीय भाषा) का पर्याय भी पारिभाषिक अर्थमें प्रयुक्त हो सकता है। जैसे Heat ऊष्मा, Iron लोहा Saturation संपृक्तता।

(३) जब अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंका हिन्दीमें प्रयोग किया जाए तो सभी पुस्तकोंमे उसके पहले प्रयोगके आगे उसका हिन्दी पर्याय या अर्थ कोष्ठकमे दिया जाना चाहिए।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दोंको भारतीय भाषाओमे अपनाते समय उनका उच्चारण अँग्रेजीके प्रचलित और प्रामाणिक उच्चारण जैसा रखना चाहिए तथा देवनागरी लिपिमे उच्चारण लिखते समय समितिकी सिफारिशोंका पालन किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीका हिन्दीमे लिप्यन्तरण करने तथा उनकी वर्तनी (Spelling) और उच्चारण निश्चित करनेके लिए भी एक ब्यौरेवार योजना बनाई गई।

इस दिशामें व्यवस्थित श्रीगणेश करने और इसकी कार्य-प्रणाली निश्चित करनेके लिए शिक्षा-मंत्रालयने उन तमाम विशेषज्ञ समितियोंके संयोजकोंकी एक बैठक बुलाई जो पारिभाषिक शब्दावली-मण्डलकी सिफारिशके अनुसार बनाई गई थी। यह बैठक पहली फरवरी १९५२ मे हुई। वैज्ञानिक शब्दावली मण्डल और भाषाशास्त्रियोंकी समितिकी सिफारिशोंपर सामान्य चर्चाके बाद समितिने निम्नलिखित कुछ निश्चय किए :—

(१) जो वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्द अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें मान्य नही है, उनके लिए विभिन्न प्रचलित पर्यायों पर विचार करके उपयुक्त हिन्दी पर्याय तैयार करने चाहिए। इसके लिए सरलता और सुबोधता मुख्य आधार होना चाहिए।

(२) यह भी स्वीकार किया गया कि अन्य विज्ञानों पर जो सिद्धान्त लागू होते हैं वे ही भू-विज्ञान, प्राणिविज्ञान और वनस्पति विज्ञान पर भी लागू होंगे।

(३) सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया गया कि चिन्ह, प्रतीक, सूत्र और अंकन पद्धति (नोटेशन) को बिना किसी परिवर्तनके अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें ही स्वीकार कर लेना चाहिए।

(४) यह तय हुआ कि यौगिक शब्द हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप बनाए जाएँ, परन्तु आधारभूत वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीको अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें ही रखा जाए।

(५) प्रामाणिक उच्चारण और वर्तनीके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीका लिप्यन्तरण करनेके बारेमें समितिने यह सिफारिश की कि देवनागरीकरणका आधार वैज्ञानिक तकनीकी शब्दोंका अँग्रेजी उच्चारण होना चाहिए।

यह भी निर्णय किया गया कि इंजीनियरीके लिए एक उपसमिति बनाई जाए।

वैज्ञानिक शब्दावलीके संग्रहके कार्यक्रम और हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओमे उनके प्रचलित या सुझाए गए पर्यायोंका सर्वेक्षण करनेके सम्बन्धमें यह तय हुआ कि प्रत्येक समिति सम्बन्धित विज्ञानकी बुनियादी पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करे।

इन निर्णयोंको सामने रखकर विभिन्न विशेषज्ञ समितियोंकी सहायतासे शब्दावली बनानेका काम शुरू किया गया। विभिन्न भाषाओंके शब्द-भडारकी वास्तविक छानबीनसे यह स्पष्ट हो गया कि ऐसे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द बहुत बड़ी मात्रामें है, जो विश्वकी अधिकांश उन्नत भाषाओंमें अपना लिए गए हैं। अतएव यह निर्णय किया गया कि नीचे लिखी कोटियोंके शब्दोंका केवल लिप्यंतरण किया जाए और उन्हें अपना लिया जाए :—

(अ) बाट और मापकी इकाइयोंके द्योतक शब्द, जैसे—मीटर, ग्राम, अर्ग, डाइन, केलारी, लिटर आदि।

(आ) ऐसे शब्द जो आविष्कारकके नामपर बनाए गए हैः—अम्पियर वोल्ट, फारेनहाइट, वाट आदि।

(इ) ऐसे अन्य शब्द जो आमतौरपर सारे ससारमे प्रयुक्त हो रहे है, जैसेः—अस्फाल्ट, रेडियो, पेट्रोल, रडार आदि।

(ई) नए तत्वों और यौगिकोंके वैज्ञानिक नामादि, जैसेः—अल्युमिनियम, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, बेरियम, कार्बन, क्रोमेट, डायऑक्साइड।

(उ) वनस्पति विज्ञान और प्राणिविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।

उस समय तक निर्धारित किए गए सिद्धान्तोंके अनुसार काम करनेके लिए मंत्रालयके हिन्दी प्रभागमे एक हिन्दी विभाग खोला गया, जिसमें विशेष अधिकारी और अनुसन्धान सहायक रखे गए।

राजभाषा-आयोग तथा संसदीय राजभाषा-समिति

यद्यपि प्रादेशिक भाषाओं तथा हिन्दीमें शब्दावलीके निर्माणके जो कार्य हो रहे थे, उनपर पूरा ध्यान दिया जाता रहा तथापि इनके वास्तविक समन्वयके लिए बहुत प्रभावशाली व्यवस्था नहीं हो सकी और विभिन्न व्यक्तियों, संस्थाओं, विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारोंके प्रयत्नोंके फलस्वरूप विभिन्न प्रकारकी शब्दावलियाँ तैयार होती रहीं। इस प्रकार भारतीय शब्दावलीकी एकरूपता तथा हिन्दी और अन्य प्रादेशिक

भाषाओंकी शब्दावलियोंके समन्वयकी गम्भीर समस्या पैदा हो गई। भारतके संविधानके अनुच्छेद ३४४ के उपबन्धोंके अनुसार १९५५ में जो राजभाषा आयोग नियुक्त किया गया था, उसने भी १९५६में अपनी रिपोर्टमें सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर स्पष्ट रूपसे आकर्षित किया।

राजभाषा आयोगने पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणके बारेमें जो अन्य सिफारिशें की थीं उनपर संसदकी राजभाषा समितिने विचार किया और उसने उनको स्वीकार कर लिया। संसदकी समितिने इस बात पर भी जोर दिया कि विज्ञान तथा टेकनॉलॉजीके क्षेत्रमें सभी भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीमें अधिकाधिक समानता होनी चाहिए और वह शब्दावली अँग्रेजी या अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीके भी निकट होनी चाहिए। समितिने सुझाव दिया कि इस क्षेत्रमें काम करनेवाली विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए कामके समन्वयन एवं देखभालके लिए तथा सभी भारतीय भाषाओंमें प्रामाणिक शब्दावलियाँ तैयार करनेके लिए एक स्थायी आयोग बना दिया जाए, जिसमें मुख्यतया वैज्ञानिक तथा भाषाशास्त्री हों।

राजभाषा सम्बन्धी समितिकी रिपोर्ट पर विचार करते समय कैबिनेटने उन सभी सामान्य सिद्धान्तोंसे सहमति प्रकट की, जिन्हें समितिने स्वीकार किया था। परन्तु उसने यह इच्छा प्रकट की कि विज्ञान तथा टेक्नॉलॉजीके क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगमे आनेवाले शब्दोंको न्यूनतम परिवर्तनके साथ साथ अपना लिया जाना चाहिए अर्थात् उनका मूल शब्द वही होना चाहिए, जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमे है, परन्तु आवश्यकतानुसार उनके यौगिक और व्युत्पन्न रूपोंको भारतीय स्वरूप दिया।

राष्ट्रपतिका आदेश

मंत्री मण्डलकी सिफारिशोंके अनुसार २७ अप्रैल १९६० को भारतके राष्ट्रपतिने एक आदेश निकाला जिसमें शिक्षा-मंत्रालयको कुछ काम करनेके निदेश दिए गए थे :—

(क) अब तक हुए कामका पुनरीक्षण करना और समिति द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तोंके अनुसार पारिभाषिक शब्दावली तैयार करना। विज्ञान तथा टेक्नॉलॉजीके क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगमें आनेवाले शब्दोंको न्यूनतम परिवर्तनके साथ अपना लिया जाना चाहिए अर्थात् उनका मूल शब्द वही होना चाहिए, जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमें है परन्तु आवश्यकतानुसार उनके यौगिक और व्युत्पन्न रूपोंको भारतीय स्वरूप दिया जा सकता है।

(ख) पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें समन्वयकी व्यवस्थाके लिए सुझाव देना, और

(ग) समिति द्वारा दिए गए सुझावके अनुसार वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणके लिए एक स्थाई आयोगकी नियुक्ति करना।

पारिभाषिक शब्दावली आयोगकी स्थापना

राष्ट्रभाषाके निर्देशनके अनुसार शिक्षा-मंत्रालयने वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणार्थ अक्टूबर १९६१ में डॉ. दौलतसिंह कोठारीकी अध्यक्षतामे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके लिए एक आयोग (A Commission for Scientific & Technical Terminology) की स्थापना की जिसमें विज्ञान तथा टेक्नोलाजीके कुछ विशेषज्ञ तथा भाषा वैज्ञानिक शामिल किए गए

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके निदेशक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद आयोगके सचिव नियुक्त किए गए। आयोगके कार्योमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं :—

(क) राष्ट्रपतिके आदेशके पैरा ३ में दिए हुए सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हुए वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीके क्षेत्रमें अबतक हुए कार्यका पुनरीक्षण करना ।

(ख) हिन्दी और अन्य भाषाओंके लिए वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली बनानेके लिए और बनी हुई शब्दावलीमें समन्वय स्थापित करनेके लिए सिद्धान्त निर्धारित करना।

(ग) विभिन्न राज्योंमें वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके क्षेत्रमें काम करनेवाली संस्थाओंके काममें उनकी सहमति या अनुरोधसे समन्वय स्थापित करना और ऐसी संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत की गई हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीको स्वीकृत करना।

(घ) इसके अतिरिक्त आयोग वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके कोषोंके निर्माण, विदेशी भाषाओं की वैज्ञानिक पुस्तकोंके भारतीय भाषाओंमें अनुवाद और अपनी बनाई हुई तथा स्वीकृत की हुई शब्दावलीके प्रयोगका स्पष्टीकरण करनेके लिए प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकों की रचनाका काम भी कर सकेगा।

उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शब्दावली सलाहकार मण्डलकी रचना

विभिन्न संस्थाओं, राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयोंको आयोगके कार्यके साथ सम्बद्ध करनेके लिए मंत्रालयने एक उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शब्दावली सलांहकार मण्डल की स्थापना करनेका निश्चय किया। यह मण्डल आयोगको सौपे गए कार्यके विषयमें मंत्रालयको सलाह देगा।

बोर्डके सदस्य इस प्रकार होंगे—

(१) शिक्षा-मंत्रालय, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, गृह-मंत्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोगसे एक-एक प्रतिनिधि,

(२) प्रत्येक राज्य सरकारका एक एक प्रतिनिधि

(३) विश्वविद्यालयों, विद्वत्समाजों और अन्य वर्गोका प्रतिनिधित्व करनेवाले १० सदस्य जो शिक्षामंत्रालय द्वारा नामित किए जाएँगे।

विज्ञानेतर विषयोंके लिए पुनरीक्षण और समन्वय समितिका गठन

वैज्ञानिक शब्दावली आयोगकी स्थापना केवल वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीका विकास, समन्वय और उसे अन्तिम रूप देनेके लिए की जा रही है, पर सामाजिक विज्ञानों, मानविकी और प्रशासनसे सम्बन्धित बहुतसी शब्दावलीके निर्माणका कार्य उस आयोगके कार्यक्षेत्र की सीमामें नहीं आता। अतः यह भी निश्चय किया गया कि साहित्यिक विद्वानों और भाषा वैज्ञानिकों की एक समिति स्थापित की जाए और विज्ञानेतर पारिभाषिक शब्दावलीको अन्तिम रूप देनेका कार्य उसे सौपा जाए। इस समितिका नाम विज्ञानेतर विषयोंके लिए पुनरीक्षण और समन्वय समिति (Review & Co-ordination Committee for Non-scientific Subjects) है और श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' इसके अध्यक्ष हैं।

शिक्षा-मंत्रालयके अधीन नवगठित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयको अब हिन्दीके विकास और प्रचारका वह काम सौंपा गया है जो पहले मंत्रालयके हिन्दी प्रभागके तत्वावधानमें होता था। अर्थात् पारिभाषिक शब्दावलीका काम भी अब केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके द्वारा किया जा रहा है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय पारिभाषिक शब्दावली आयोग तथा पुनरीक्षण और समन्वय समितिके सचिवालयके रूपमें भी काम करता है। ज्ञानके विभिन्न क्षेत्रोंकी विशिष्ट शाखाओसे सम्बन्धित अनेक विशेषज्ञ-समितियां स्थापित की गई और १९६० तक उनके द्वारा तैयार किए गए शब्द बहुत संख्यामे इकट्ठे हो गए थे। अब समय आ गया था जब कि इस कार्यको अंतिम रूप दिया जाए और प्रामाणिक शब्द-सूचीके रूपमें इन्हें स्वीकृत और प्रकाशित किया जाए। परन्तु पुनरीक्षण और समन्वयका कार्य करनेवाले मण्डलोंको स्थापित करनेमें बहुत समय लग गया। उसी अवधिमे केन्द्रीय पारिभाषिक और वैज्ञानिक-शब्दावली-सलाहकार मण्डलकी बैठक ६ नवम्बर १९६० को विज्ञान भवन, नई दिल्लीमें हुई। मण्डलने सिफारिश की कि प्रादेशिक भाषाओंमें शब्दावलीका निर्माण करनेके लिए राज्य सरकारें उपयुक्त संस्थाओं, समितियों या विभागोंकी स्थापना करें जो कि आयोगके मार्गदर्शन एवं सहयोगसे काम करे। मण्डलने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलीके बारेमें कई संकल्प किए और कुछ निर्णय भी किए।

विभिन्न विशेषज्ञ समितियाँ तथा कोष उपसमितियाँ

शब्दावली निर्माणका कार्य प्रारम्भमे दस विशेषज्ञ समितियोंसे आरम्भ हुआ था। आज केन्द्रीय निदेशालयके अन्तर्गत जिन विभिन्न विषयोंकी विशेषज्ञ समितियाँ कार्य करती रही हैं वे निम्नलिखित हैं—

१—भौतिकी
२—रसायन
३—गणित
४—वनस्पति विज्ञान
५—प्राणिविज्ञान
६—चिकित्साविज्ञान
७—भू-विज्ञान
८—कृषि-विज्ञान
९—सिविल इंजीनियरी
१०—यान्त्रिक इंजीनियरी
११—विद्युत् इंजीनियरी
१२—रक्षा
१३—अर्थ-शास्त्र
१४—सामान्य प्रशासन
१५—इतिहास और पुरातत्व
१६—समाज-विज्ञान

१७—परिवहन
१८—राजनीति-विज्ञान
१९—राजनय
२०—शिक्षा
२१—सूचना और प्रसार
२२—दर्शनशास्त्र
२३—साहित्य-शास्त्र
२४—मानव शास्त्र तथा समाज शास्त्र
२५—डाक-तार
२६—रेल
२७—विधि

चूंकि अब राष्ट्रपतिके आदेशानुसार एक पृथक् विधि-आयोग (Law Commission) नियुक्त हो चुका है अतएव विधि विशेषज्ञ समितिका कार्य अब उसे ही सौंप दिया गया है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा मन्त्रालयमें सन् १९५८–५९ से स्वीकृत शब्दावलियोंको कोषके रूपमे तैयार करनेकी दिशामें काम हो रहा है। इस कार्यके लिए अभी तक सात उपसमितियाँ काम करती रही है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयमें प्राचीन शास्त्रीय वाङ्मयमें व्यवहृत वैज्ञानिक शब्दावलीका भी संग्रह कराया गया है और ऐसे शब्द कोशोंका भी शीघ्र ही प्रकाशन किया जाएगा। रसायन तथा इंजीनियरिंग सम्बन्धी शब्दकोष छपनेके लिए तैयार है।

साहित्यमें शब्दावलीका प्रयोग

आयोग द्वारा विभिन्न विज्ञानसे सम्बन्धित शब्दावलीके अन्तिम रूपसे अनुमोदनमें अभी कुछ समय लगनेकी सम्भावना है। इस बीच केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयने शब्दावलीके औचित्यकी जाँच करनेके लिए प्रशासनिक और वैज्ञानिक वाङ्मयमें इनका वास्तविक प्रयोग करनेकी दिशामें भी कुछ कार्य किया है। सन्तोषकी बात है कि कुछ विज्ञान-विषयोंकी दीपिकाएँ प्रशासनिक नियमावलि तथा अन्य पुस्तकें प्रकाशित होनेवाली है। स्वतन्त्र रूपसे भी इधर विज्ञानकी कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई है, जिनमें हमारी पारिभाषिक शब्दावलीका प्रयोग हुआ है।

इस वर्ष दो महत्वपूर्ण योजनाएँ आरम्भ की गई है। पहली योजनाका सम्बन्ध विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाई जानेवाली प्रामाणिक पुस्तकोंके अनुवादसे है। यह काम विभिन्न विश्वविद्यालय और राज्य सरकारोंके शैक्षिक निकायोंको सौंपा गया है। किसी खास प्रादेशिक क्षेत्रमें काम करनेवाली संस्थाओंकी समस्याओंको हल करनेके लिए विभिन्न राज्योंमें समन्वय-समितियाँ बनाई गई है जो इन समस्याओंको सुलझानेमें विचार-विमर्शका माध्यम बन सकेंगी। लगभग ३०० पुस्तकें अनुवादके लिए निश्चित की जा चुकी है और उनमेंसे बहुतोंका अनुवाद प्रारम्भ भी हो गया है। इस योजनाके अनुसार भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

विज्ञान और सामान्य ज्ञान आदिकी लोकप्रिय पुस्तकोंके प्रकाशनकी योजनाको प्रकाशकोंकी सहायतासे अमलमें लाया जा रहा है। इस योजनाके अधीन प्रकाशकोंको यह आश्वासन दिया गया है कि उनके द्वारा प्रकाशित की जानेवाली पुस्तकोंको एक निश्चित संख्यामें खरीद लिया जाएगा। इसके अलावा यह भी विचार किया जा रहा है कि विभिन्न विषयोंके साहित्यको प्रकाशित करनेके लिए प्रकाशकोंको रुपया उधार दिया जाए। परन्तु ऐसे मामलोंमें यह शर्त होगी कि हिन्दी भाषाके अनुवादमें भारत सरकार द्वारा बनाई गई पारिभाषिक शब्दावलीका उपयोग किया जाए।

पारिभाषिक शब्द-संग्रहके दोनों खण्ड प्रकाशित

पारिभाषिक शब्दावलीका पूरा कोष, लगभग ३ लाख शब्दोंवाला, दो खण्डोंमें प्रकाशित हो गया है। उसमें मूल अंग्रेजीकी शब्दावली हिन्दीमें दी गई है। सरकारके विभिन्न प्रशासनिक विभागों तथा मन्त्रालयोंने इसकी शब्दावलीको अपनानेका आश्वासन दिया है। इस प्रकाशनसे देशको विभिन्न भागोंके भाषाविदों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंको तकनीकी विषयोंके हिन्दी पर्याय सुगमतासे मिल सकेंगे।

शब्द-निर्माण कार्यके लिए कार्य-गोष्ठी (वर्क शॉप)

वैज्ञानिक शब्दावलीके निर्माण कार्यको अधिक सुचारु रूपसे चलानेके लिए तथा बनाई गई शब्दावलीपर विभिन्न भाषाविदों तथा विद्वानोंके विचार जाननेके लिए तथा नई शब्दावलीके निर्माणमें उनके विचारोंका लाभ उठानेके लिए एक योजना शब्दावली कार्य-गोष्ठी' के नामसे तैयार की गई है। इसकी पहली बैठक एक मासके लिए शिमलामें ता. २२ मई १९६२ से शुरू की गई थी। इसमे गणित, रसायन तथा भौतिकीकी शब्दावलियोंको संशोधित एवं परिवर्द्धित करनेका कार्य हुआ। भविष्यमें अन्य तकनीकी विषयोंसे सम्बन्धित कार्य-गोष्ठियाँ आयोजित की जाएँगी।

दो खण्डोंमें पारिभाषिक शब्द-संग्रह प्रकाशित हो जानेपर भी दर्शन, चिकित्सा, सिविल इंजीनियरींग, भौतिकी तथा डाक एवं तार विषयोंकी बैठकें चल रही है। शब्द-निर्माणका काम एक सतत कार्य है जो आगे बढ़ता और फैलता रहेगा। तदर्थ जो विभिन्न आयोग, मंडल तथा समितियाँ उपसमितियाँ बनी है वे काम करती ही रहेंगी।

२. हिन्दी-शिक्षा-समितिका गठन

हिन्दी प्रचार सम्बन्धी मामलोंमें, विशेषकर अहिन्दी भाषी प्रदेशोंमें सरकारको परामर्श देनेके लिये सन् १९५१ में हिन्दी शिक्षा समिति नियुक्त की गई। अक्टूबर १९५४ में उसका पुनर्गठन हुआ। फिर पहली नवम्बर १९५६ से राज्य पुनर्गठनके फलस्वरूप उसके संगठन और सदस्यताकी अवधिमें कुछ परिवर्तन किए गए। परिवर्तन समितिमें उसके बाद भी परिवर्तन होते गए हैं। आज समितिका गठन मोटे रूपसे इस प्रकार का है —

(क) अध्यक्ष जो भारत सरकार द्वारा नामित हो।

(ख) इन राज्योंमेंसे प्रत्येकका एक-एक सदस्य—आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, जम्मू और काश्मीर, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, प. बंगाल और दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, तथा त्रिपुराके प्रशासित राज्य।

(ग) लोकसभाका एक सदस्य जो अध्यक्ष द्वारा नामित होगा।

(घ) राज्यसभाका एक सदस्य, जो अध्यक्ष द्वारा नामित होगा।

(ङ) प्रमुख हिन्दी संस्थाओंके दो प्रतिनिधि जो भारत सरकार द्वारा नामित होंगे।

समितिके अध्यक्ष तथा सदस्योंकी पदावधि तीन वर्षकी होगी। कार्यकी प्रगतिका सर्वेक्षण करने तथा हिन्दीके प्रचार और भावी कार्यक्रमोंपर सलाह देनेके लिए समय समयपर समितिकी बैठकें होती है और उनमें अहिन्दी क्षेत्रोंमे राज्य सरकारोंके मार्फत तथा स्वेच्छासे हिन्दीका काम करनेवाली संस्थाओंके मार्फत समितिकी देखरेखमें अन्यथा भी जो काम चलता रहता है, उसका सिहावलोकन किया जाता है, चर्चा होती है और विभिन्न योजनाएँ निर्धारित की जाती है। समितिकी सलाह एवं सिफारिश पर शिक्षा-मन्त्रालय तथा हिन्दी निदेशालय राज्योंको तथा संस्थाओंको अनुदान देते हैं तथा हिन्दीके विकास एवं प्रसारके अन्य कामोंकी व्यवस्था करवाते हैं। हिन्दी शिक्षा समितिके अध्यक्ष वर्तमान शिक्षा मन्त्री डॉ. श्रीमालीजी स्वयं है।

३. हिन्दीमें विज्ञान, तकनीकी एवं समाज-शास्त्र सम्बन्धी तथा सामान्य ढंगका लोकप्रिय साहित्य, प्रमाणित पुस्तकें कोष, आदि तैयार करना तथा उनका अनुवाद करवाना।

(क)

सन् १९५९ में शिक्षा-मन्त्रालयने अलग-अलग विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारोंकी एक परिषद निमन्त्रित की थी जिसने सिफारिश की थी कि शिक्षा-मन्त्रालयके मार्गदर्शनमें प्रमाणित एवं दर्जेदार पुस्तकोंके निर्माण एवं अनुवादकी पूरी योजनाको क्रमबद्ध मंजिलोंमे सम्पन्न किया जाए। तदर्थ एक स्थाई परामर्श समितिका गठन किया गया जिसके अध्यक्ष शिक्षा-मन्त्रालयके संयुक्त सचिव, श्री रमाप्रसन्नजी नायक, आई. सी. एस. हैं और सदस्योंमें विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सांस्कृतिक कार्योंके मन्त्रालयके प्रतिनिधि हैं। समितिने वैज्ञानिक तकनीकी एवं समाज शास्त्रीय विषयोंकी पुस्तकोंके बारेमे एक योजना बनाई जिसके तीन लक्ष्य थे :—

१—उचित स्तरवाली किताबोंका हिन्दीमे अनुवाद, २—शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा तैयार की हुई शब्दावलीका प्रयोग कर भारतीय दृष्टिकोणसे हिन्दीमे प्रकाशनार्थ किताबोंका आवश्यक परिवर्तनोके साथ लेखन अथवा पुनर्लेखन एवं ३—हिन्दीमे ही मौलिक ग्रन्थोंकी रचना करना।

इस योजनाके प्रथम हिस्सेपर तेजीसे अमल शुरू हो गया है। अनुवादकी एक योजनाको स्वीकृति प्राप्त हो गई है। अन्य लक्ष्योंकी पूर्तिके हेतु भी काम शुरू हो गया है। शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा तैयार अनुवाद योजनामें शिक्षा मन्त्रालय अनुवादोंपर पूरा खर्च करनेके लिए तैयार है। इस योजनामें तीन प्रायोजनाएँ सम्मिलित है।

(अ) **मानक ग्रन्थोंके अनुवादकी योजना**—यह योजना तीन टप्पोंमें पूरी होनी चाहिए। सर्व प्रथम ३०० किताबोंको लिया गया है। इसमें महाविद्यालयीन स्तरोंकी पाठ्य-पुस्तकोंके निर्माणपर विशेष जोर है। तीसरी पंचवार्षिक योजनामें अनुवादोंके लिए २५ लाख रुपयोंकी रकम निर्धारित की गई है।

(आ) **लोकप्रिय पुस्तकोंका अनुवाद**—भारत सरकारने सामान्य रुचिकी विभिन्न पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादकी योजना भी शुरू की है। योजनाका उद्देश्य सामान्य पाठकों एवं पुस्तकालयोंके लिए कम मूल्यपर लोकप्रिय साहित्यका प्रचुर मात्रामें उत्पादन करना है। इस योजनाके अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकोंमें शिक्षा-मन्त्रालय तथा निदेशालय द्वारा निर्मित शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य है तथा भाषा यथा-सम्भव सरल, व्यावहारिक एवं मुहावरेदार होगी।

(इ) **असांविधिक प्रशासनिक साहित्यका अनुवाद**—हिन्दी निदेशालयमें इसके अलावा सरकार के विभिन्न कार्यकलापों तथा दैनिक कामकाजमें आनेवाले विभिन्न प्रकारके असांविधिक प्रशासनिक साहित्यका अनुवाद 'अनुवाद एकक' द्वारा किया जा रहा है। अभीतक अनुवाद कार्यके लिए तीन सौ से अधिक पुस्तकें तथा तीन हजार पाँच सौ प्रपत्र आदि प्राप्त हो चुके हैं। शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा पारि-भाषिक शब्दावली निर्माण कार्यके अन्तर्गत कई शब्द-सूचियाँ, पारिभाषिक शब्द-संग्रहके दोनों खण्ड,दीपिकाएँ तथा अन्य पुस्तकें निकाली जा चुकी हैं। निदेशालयमें क्रिया विधि सम्बन्धी साहित्यके अनुवादका काम भी तेजीसे प्रारम्भ हो गया है।

(ख) विभिन्न कोशोंका निर्माण

(अ) **हिन्दी-हिन्दी कोश तथा हिन्दी विश्वकोश**—हिन्दी शब्द-सागरका संशोधित और बृहत् संस्करण प्रकाशित करनेके लिए १९५४–५५ में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीको कुल १ लाख रुपए स्वीकृत किए गए थे। विश्वकोशको दस खण्डोंमे तैयार करनेका भी भार नागरी प्रचारिणी सभाको ही सौपा गया है।

(आ) **रूसी हिन्दी कोश**—श्री ऋषिजीने ५०,००० शब्दोंवाले एक रूसी-हिन्दी कोशको सम्पादित किया है। यह काम दिल्ली विश्वविद्यालयके रूसी विभागके प्रो. शिवायव और हिन्दी विभागके डॉ. नगेन्द्र की देखरेखमे किया गया है।

(इ) **द्विभाषीय शब्द-सूचियां**—१९५४ मे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे पाए जाने वाले शब्दोंकी सूचियाँ बनाकर प्रादेशिक भाषाओंके क्षेत्रोंमे सुझावोंके लिए भेजी गई। इस योजनामें दृष्टि यह है कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे मिलनेवाले शब्दोंके संग्रहीत हो जानेसे हिन्दीको अखिल भारतीय भाषाके रूपमें विकसित होनेमें सहूलियत होगी।

(ई) इलाहाबादकी हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलनको अँग्रेजीकी कन्साईज डिक्शनरीके शब्दोंके आधारपर अँग्रेजी हिन्दी कोशका काम अलग अलग सौंपा गया था, लेकिन उसमें विशेष प्रगति नही है। उसी तरह अँग्रेजी, हिन्दी, तुर्की, फ्रांसीसी, रूसी और इटालियन भाषाओंके एक शब्द-कोशकी योजना भी १९५५ में बनी थी। दूसरी योजना हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु और उर्दूके एक सामान्य कोशकी भी थी। लेकिन उनका क्या हुआ पता नहीं।

(ग) बुनियादी हिन्दी शब्दावलीका निर्माण

हिन्दी शिक्षा समितिने सन् १९५४ में सिफारिश की थी कि बुनियादी हिन्दी शब्दोंकी दो सूचियाँ तैयार की जाएँ और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें जो पाठ-मालाएँ तथा पाठ्य-पुस्तकें तैयार हों उनमें इन शब्दोंका प्रयोग किया जाए। समितिने तदर्थ दो उपसमितियाँ बनाईं। उन्होंने देशमें इस विषयपर जो कुछ काम हो चुका था उसका सर्वेक्षण किया और तदनन्तर समितिके आदेशानुसार बुनियादी शब्दावलीकी दो सूचियाँ तैयार कीं। दोनों सूचियाँ सरकार द्वारा स्वीकृत एवं प्रकाशित हो चुकी है। प्रत्येक राज्यको चाहिए कि वह इसी शब्दावलीके आधारपर प्रदेश विशेषकी आवश्यकताओं और रुचियोंको ध्यानमें रखते हुए, हिन्दीकी पाठ्य-पुस्तकें बनाएँ। अपने यहाँ प्रचलित हिन्दीके और ५०० शब्द वह राज्य इस शब्दावलीमें जोड़ सकता है।

(घ) हिन्दीके मूलभूत व्याकरणका निर्माण

शिक्षा-मन्त्रालयने हिन्दीका मूलभूत व्याकरण तैयार करनेके लिए सन् १९५३ में एक विशेषज्ञ उपसमिति बनाई थी; जिसमें उस्मानिया विश्व-विद्यालयके डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, सुनीतकुमार चटर्जी, एम. सत्यनारायण, नेनेजी, डॉ. बाबूराम सक्सेना थे। डॉ. आर्येन्द्र शर्माने सजीव भाषाओंके व्याकरण-लेखनकी नवीनतम अनुमोदित पद्धतियोंके आधारपर वैज्ञानिक ढगसे एक आदर्श हिन्दी व्याकरण तैयार किया। अँग्रेजीमे पुस्तक A Basic Grammer for Modern Hindi के नामसे छप चुकी है और हिन्दीमें उसका संस्करण निकल रहा है। इसमें उच्चारणपर विशेष ध्यान दिया गया है। ध्वनि उच्चारणकी क्रियाके सम्बन्धमें संस्कृतसे ली गई ध्वनियोंके सम्बन्धमें तथा हिन्दीकी मूल ध्वनियोंके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ढंगसे चर्चा की गई है। 'ने' का प्रयोग तथा व्याकरणकी अन्य बातें बडी सरलतासे प्रस्तुत की गई है।

(ङ) उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकोंके लिए पुरस्कार योजना

सन् १९५२ में शिक्षा-मन्त्रालयने विभिन्न श्रेणियोंकी सर्वश्रेष्ठ हिन्दी पुस्तकोंपर पुरस्कार देनेकी योजना स्वीकृत की थी। इन पुरस्कारोंके लिए प्रतिवर्ष एक प्रेस नोट निकाला जाता है। पिछले वर्षमें जो पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं उनमेंसे श्रेष्ठ पुस्तकोंपर पुरस्कार देनेकी घोपणा की जाती है। पुरस्कारके लिए चार श्रेणियाँ निश्चित की गई हैं—

श्रेणी १–अन्य भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवाद—इस श्रेणीमे काव्य, नाटक, कथा-साहित्य और सामान्य साहित्यके चार पुरस्कार दिए जाते हैं। पाँचवा पुरस्कार उपर्युक्त विषयोंमेंसे किसी एक विषयकी किताबका अनुवाद प्रस्तुत करनेवाले अहिन्दी भाषीके लिए सुरक्षित है।

श्रेणी २–हिन्दीमें मौलिक रचनाएँ—इस श्रेणीके अन्तर्गत काव्य, नाटक, कथा-साहित्य एवं सामान्य साहित्यके लिए चार पुरस्कार हैं तथा पाँचवा पुरस्कार अहिन्दी भाषी लेखकके लिए है।

श्रेणी ३–अन्तर्वर्गीय, अन्तर्जातीय तथा अन्तर्देशीय सद्भावना एवं भारतकी संमिश्र संस्कृतिको समझानेके लिए लिखी गई हिन्दीकी मौलिक पुस्तकोंपर तीन पुरस्कार निश्चित किए गए हैं।

श्रेणी ४—वैज्ञानिक एवं प्राविधिक विषयकी पुस्तकें—इस श्रेणीके अन्तर्गत (ब) हाईस्कूलों एवं कालेजोंके लिए उपयोगी पुस्तकों (२) जनसाधारणकी रुचिकी पुस्तकों तथा (३) पत्रिकाओं आदिपर तीन पुरस्कार निर्धारित हैं।

प्राप्त पुस्तकोंके मूल्यांकनके लिए निर्णायकोंकी विशेष समितियाँ रहती हैं।

वैज्ञानिक ग्रन्थ-लेखनके लिए अनुदान—इसके अलावा जो लेखक वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखते हैं, पर आर्थिक परिस्थितियोंके कारण उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते, उन्हें सरकारने अनुदान देनेका निश्चय किया है।

(च) बच्चों एवं नव साक्षरोंके लिए साहित्य-सृजन

(१) एक योजनाके अनुसार दक्षिणकी भाषाओंमें हिन्दीकी बालोपयोगी पुस्तकें तैयार करनेका काम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाको सौंपा गया था जिसे उसने लगभग पूरा कर लिया है।

(२) भारत सरकारने विविध भारतीय भाषाओंमे बाल-साहित्यके विकासकी आवश्यकताको महसूस कर बच्चोंके लिए उत्कृष्ट पुस्तकोंके प्रत्येक लेखकको ५०० रु० पुरस्कार देनेकी एक योजना बनाई है। इनमें हिन्दी पुस्तकोंपर भी पुरस्कार दिए जाते हैं।

(३) नव साक्षरोंके लिए सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंपर पुरस्कार योजना सन् १९५४ से शुरू है। इसके लिए पुस्तकें किसी भी भारतीय भाषामें भेजी जा सकती हैं। विशिष्ट अनुवाद और रूपान्तरण भी स्वीकृत किए जाते हैं। सिर्फ उनमें वयस्क नव साक्षरोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका ध्यान रखा जाना चाहिए और वे आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणोंसे लिखी हुई हैं। सरकार प्रत्येक पुरस्कृत पुस्तककी कुछ प्रतियाँ खरीदकर उन्हें सामुदायिक प्रायोजना क्षेत्रोंमें तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडोंमें वितरित करवाती है। हिन्दीके अलावा जिन पुस्तकोंको पुरस्कार मिलता है उनका हिन्दी अनुवाद करवाया जाता है।

(४) इनके अलावा बच्चों एवं नवसाक्षरोंके लिए शिक्षा-मंत्रालयकी एक योजना, भी है, जिसके अन्तर्गत कुछ पुस्तकें तैयार करवाई जा रही है तथा निकल चुकी है।

(५) शिक्षा-मंत्रालय हिन्दीके बाल-साहित्यके विकासमें योगदानार्थ प्रकाशकोंको प्रोत्साहित करती है। उसने विदेशी गौरव ग्रन्थ माला तथा जीव विज्ञान पुस्तक माला जैसी कुछ मालाओंको प्रकाशित करानेके प्रयत्न किए हैं।

(६) हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओंमे बच्चोंकी पुस्तकोंके प्रकाशनकी सुविधाएँ बढ़ानेके उद्देश्यसे मंत्रालयने बाल-पुस्तक न्यासकी एक योजनाको स्वीकृति दे दी है। यह प्रायोजन ७ लाखका है और उसमें मंत्रालय द्वारा तैयार की गई पुस्तकोंको प्राथमिकता दी जाती है।

(७) हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी इलाहाबादने नव-साक्षरोंके लिए क्रमबद्ध पुस्तकोंके प्रकाशन की योजना पेश की थी जिसे मंत्रालयने मान लिया है। इस काममें सोसायटीकी सहायता करनेके लिए तीन व्यक्तियोंकी एक समिति बना दी गई है।

(८) सामाजिक शिक्षा-साहित्य सम्बन्धी किताबें हिन्दीमें प्रकाशित हों, इसलिए शिक्षा-मंत्रालय प्रकाशकोंसे सहयोग करता है तथा उन्हें प्रोत्साहन देता है। इस विषयकी पुस्तकोंकी वह निश्चित संख्यामें प्रतियाँ खरीदता है जिन्हें वह सामुदायिक योजना क्षेत्रों, शिक्षा-संस्थाओं, पुस्तकालयों आदिमें वितरित करवाता है। राज्य सरकारें इस मदमें खर्चका ५० प्रतिशत देती हैं, बाकीकी रकम तथा प्रेषण खर्च आदि भारत सरकारका रहता है।

(९) जन-साधारणके लिए 'भारतका एक लोकप्रिय इतिहास' पर ५००० रु. पुरस्कारकी घोषणा की गई है।

(छ) साहित्य निर्माणकी अन्य योजनाएँ

शिक्षा मंत्रालयने हिंदीके प्रचार एवं प्रसारके लिए निम्न लिखित योजनाएँ बनाई हैं और उनपर काम चल रहा है:—

(अ) अहिन्दी भाषी लोगोंकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए हिन्दी शिक्षाके लिए वैज्ञानिक ढंगपर हिन्दीकी पाठ मालाएँ तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करना।

(आ) अहिन्दी भाषी देवनागरी लिपि सीख सकें, इसलिए हिन्दी तथा भारतकी विभिन्न भाषाओं के सचित्र द्विभाषी वर्णमाला चार्ट बनाना।

(अि) मेग्रहिल एन्साक्लोपीडिया ऑफ सायन्सेज अॅण्ड टेक्नॉलॉजीका १५ खण्डोंमें अनुवाद प्रकाशित करना।

(अी) वर्तमान तथा वास्तविक क्षेत्रोंके प्रत्यक्ष कार्योंकी सहायतासे कला और हस्तशिल्प संबंधी विशिष्ट शब्दावलियोंका चयन तथा संकलन।

(उ) हिंदीके प्राचीन तथा नवीन प्रख्यात लेखकोंकी कृतियोंमेंसे पारिभाषिक तथा इतर शब्दोंकी अनुक्रमणिकाएँ, विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा तैयार करवाना।

(ऊ) हिन्दीके अप्राप्य मानक ग्रन्थोंके परिशोधित एवं आलोचनात्मक संस्करण, विश्वविद्यालयों एवं आलोचनात्मक संस्करण, विश्वविद्यालयों एवं पण्डितोंकी सहायतासे प्रकाशित करना।

(ए) श्री रामचंद्र वर्मा द्वारा 'शब्द-साधना' लिखवाकर प्रकाशित करवाना।

(ऐ) हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोंकी रचनाओंके बृहत् संकलन, विद्वानों एवं विश्वविद्यालयोंकी सहायता से तैयार करवाना।

(ओ) इतिहास, भौतिक शास्त्र, सामान्य-विज्ञान, गणित आदि शास्त्रीय विषयोंपर हिंदीमें प्रमाणित पाठ्य-पुस्तकें तैयार करवाना।

(ज) केन्द्रीय हिन्दी पुस्तकालय

सन् १९५० में शिक्षामंत्रालयके हिंदी प्रभागमें जो एक पुस्तकालय तैयार किया गया था, वह अब बढ़ते बढ़ते एक अच्छे संदर्भ पुस्तकालयमें बदल गया है। केंद्रीय हिंदी निदेशालयके इस पुस्तकालयमें विश्वकोश, शब्दकोश, भाषा-शास्त्र, मानवशास्त्र एवं विभिन्न सामाजिक तथा वैज्ञानिक

विषय आदिपर बहुविध सन्दर्भ ग्रन्थ एवं साहित्य उपलब्ध है। इस केन्द्रीय पुस्तकालयसे सम्बद्ध चार प्रादेशिक पुस्तकालयोंकी स्थापना पर विचार चल रहा है।

४. हिन्दी शिक्षण एवं प्रशिक्षणके प्रयत्न

(क) केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल

सन् १९५२ से आगरामें अखिल भारतीय हिन्दी परिषद द्वारा एक अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय अहिन्दी भाषी राज्योंके हिन्दी शिक्षकोंकी ट्रेनिंगके लिए चलाया जा रहा था। सन् ५५–५६ से केंद्रीय सरकारने उसका पूरा खर्च देना शुरू कर दिया था। उपर्युक्त महाविद्यालयके लिए १९५९ मे भारत सरकाने केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल नामकी एक स्वशासी संस्था कायम की। महाविद्यालयको पुनर्गठित कर उसे प्रशिक्षण एवं अनुसन्धानकी आदर्श संस्थाके रूपमें बदल देनेका काम इस मण्डलको सौंपा गया। यह मण्डल सरकार-नियुक्त एक अध्यक्ष, भारत सरकारके दो प्रतिनिधि, केन्द्रीय शिक्षामंत्रालय द्वारा नियुक्त १३ अन्य सदस्य तथा हिन्दीके विकासके लिए काम करनेवाली १७ संस्थाओं के एक एक प्रतिनिधिसे बना है। मण्डलने ता. १–१–१९६१ से अ. भा. हिन्दी महाविद्यालय आगराका नाम बदलकर केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय आगरा रख दिया है। केन्द्रीय सरकारकी विज्ञप्ति तथा मण्डलके उद्देश्य-पत्रके अनुसार इस महाविद्यालयमें हिन्दी अध्यापकोंका प्रशिक्षण, हिन्दीके उच्च साहित्यका अध्ययन, हिंदी शिक्षण पद्धतिमें अनुसन्धान तथा हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिशिक भाषाओंके तुलनात्मक अध्ययन आदिकी सुविधाएं प्रदान की जाएँगी। महाविद्यालय 'हिन्दी शिक्षण प्रवीण', 'हिन्दी शिक्षण पारंगत' तथा 'हिन्दी शिक्षण निष्णात' की परीक्षाएं चलाता है।

(ख) अहिन्दी राज्योंमें हिन्दी-अध्यापक-शिक्षण-कालेज

हिन्दी शिक्षा समितिकी सिफारिशके अनुसार केन्द्रीय सरकारने कई अहिन्दी राज्योंमें स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी प्रशिक्षण महविद्यालयोंकी स्थापना की है और वे अपने-अपने राज्योंके शिक्षा-विभाग द्वारा संचालित होते हैं। उनका पूरा खर्च केन्द्र सरकार देती है पर उनका सम्बन्ध केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण म डलसे या महाविद्यालयसे नही है, यद्यपि वैसे प्रयत्न चल रहे हैं। हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षण की योजनामें कई अहिन्दी भाषी राज्य शामिल हो चुके हैं। आन्ध्रप्रदेश, बम्बई, केरल, असम, मैसूर, मद्रास राज्योंमें तथा त्रिपुरा, अन्दमान और निकोबार द्वीपमें हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

(ग) अहिन्दी भाषी राज्योंमें हिन्दी अध्यापकोंकी नियुक्ति

विभिन्न पंचवार्षिक योजनाओंके अधीन अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी अध्यापकोंको नियुक्त करनेकी योजना है। सम्बद्ध राज्य सरकारोंसे कहा गया था कि वे अपने बजटमें इस योजनाके लिए आवश्यक व्यवस्था करें। केन्द्रीय सरकारने तदर्थ अपनी ओरसे ६० प्रतिशतसे अधिक रकमके अनुदान दिए। केन्द्र प्रशासित क्षेत्रोंमें अनुदानशत प्रतिशत थे। माध्यमिक विद्यालयोंमें हिन्दी अध्यापकोंकी

नियुक्तिके लिए भी केन्द्रीय सरकारने अनुदान दिए है। खेद है, कुछ राज्य सरकारोंने इस योजनासे कोई लाभ नही उठाया और न उसपर अमल किया।

(घ) त्रिभाषा सिद्धान्तका माध्यमिक स्कूलोंमें अमल तथा अहिन्दी भाषी राज्योंमें विद्यार्थियोंको हिन्दी सिखाना

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्डने जनवरी १९५६ के अपने २३ वें अधिवेशनमें माध्यमिक स्कूलोंमे भाषा-शिक्षाके लिए दो सूत्र तैयार किए थे जिनमे हिन्दीकी शिक्षा भी शामिल थी। इन सूत्रोंपर राज्य सरकारोंके जो विचार आए उन्हें बोर्डके जनवरी ५७ के २४ वें अधिवेशनमें रखा गया। बोर्डको इस बातका सन्तोष रहा कि उसके द्वारा तैयार किए गए दोनों सूत्रोंमें निहित एक मुख्य सिफारिश पर—माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओंकी पढ़ाईकी अनिवार्य व्यवस्थापर बड़ी मात्रामें सब सहमत हो गए। काफी सोच-विचार करनेके बाद राष्ट्रीय एकता समितिने माध्यमिक स्कूलोंकी पढ़ाईमें त्रिभाषा सिद्धान्तको अपना लेने पर जोर दिया था और अगस्त '६१में मुख्य मंत्रियोंके सम्मेलनमें उसे स्वीकार कर लिया गया था। तदनुसार यह त्रिभाषा सूत्र माध्यमिक स्तरपर शिक्षाकी भारतीय नीतिका रूप ग्रहण कर चुका है —और विभिन्न राज्य उसपर या तो चल रहे है या चलनेके प्रयत्नमे है। इसका अर्थ यह हुआ कि पूरे भारतमें सर्वत्र माध्यमिक स्तरपर हिंदीकी पढ़ाई अनिवार्य हो जाएगी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केन्द्रीय सरकारने माध्यमिक स्कूलोंमें हिन्दी अध्यापकोंकी नियुक्तिके लिए अनुदान भी दिए हैं। आज प्रायः अहिंदी राज्योंमे स्कूलोंमें हिंदी अध्यापककी जगह रहती है।

(ङ) विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च संस्थाओंमें हिन्दीको प्रोत्साहन

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्डने नवम्बर १९५३ के अपने २० वें अधिवेशनमें सिफारिश कर विश्वविद्यालयोंका ध्यान अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओंसे हिन्दीमें पाठ्य-पुस्तक तैयार करनेके लिए अकादमी एवं ब्यूरोंकी स्थापनाकी तरफ आकर्षित किया था। विभिन्न विश्वविद्यालयोंने तदनुसार कदम उठाए और काफी काम किया।

सरकार द्वारा प्रेरित विश्वविद्यालय अनुदान आयोगने हिन्दीके विश्वविद्यालयोंकी कई योजनाओंको धन प्रदान किया है जिससे कि हिन्दीके प्रचार एवं विकासका काम आगे बढ़ता रहे। यह आयोग विश्वविद्यालयोंको उनके हिन्दी विभागोंको विकसित करनेके लिए तथा जहाँ नहीं है, वहाँ उन्हें कायम करनेके लिए भी अनुदान देता है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगने शिक्षाके माध्यमपर विचार करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दीके भाषा-ज्ञानकी आवश्यकतापर जोर दिया है और संघीय भाषाकी लिपिके रूपमें देवनागरी लिपिके प्रयोगकी बात मान ली है। विश्वविद्यालयीन स्तरपर ऐच्छिक हिन्दी माध्यमको भी स्वीकृति दे दी गई है।

शिक्षा समितिकी इस योजनापर जब उचित प्रतिक्रिया नहीं हुई तो योजनामें संशोधन किया गया। हिन्दीकी ओर आकृष्ट करनेके लिए इण्टरके दर्जेसे हिन्दीको ऐच्छिक विषयके रूपमें लेकर अध्ययन करनेवाले लड़कों तथा लड़कियोंको सहायता देनेकी व्यवस्था योजनामें अब है। डाक्टरेटके लिए अध्ययन योजना अलग

है। जहाँ हिन्दी के उच्च अध्ययनकी सुविधा नहीं है, ऐसे अहिन्दी भाषी राज्योंके विद्यार्थियोंके लिए यह सुविधा की गई है। हिन्दी भाषी प्रदेशोंके विद्यार्थी भी योजनाका उपयोग हिन्दीके उच्च अध्ययनके उस हिस्सेके लिए ले सकते है जिस अध्ययनकी व्यवस्था उनके यहाँ न हो। इस योजनाके अन्तर्गत अब वार्षिक ११० छात्रवृत्तियोंकी व्यवस्था है।

हिन्दीके उच्च अध्ययनके लिए छात्रवृत्तियाँ

सन् १९५५–५६ में हिन्दी-शिक्षा समितिके सुझावानुसार एक योजना चालू की गई थी, जिसके अधीन अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके उन व्यक्तियोंको छात्र-वृत्तियाँ दी जाती है जो हिन्दी भाषी राज्योंमें हिन्दीका उच्चतर अध्ययन करना चाहते हैं। उस समय हिन्दीके अध्ययनके लिए कुल १२ छात्र-वृत्तियाँ निर्धारित थीं।

(च) केन्द्रीय सरकारके अहिन्दी भाषी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ाना—शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालयने सरकारके अहिन्दी भाषी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए दफ्तरोंके बादके समयमें सन् १९५२ में कक्षाएँ शुरू की थी। एक परीक्षा 'प्रबोध' नामकी शुरू की गई जिसका स्तर 'अवर बुनियादी स्तर' का था। हिंदी शिक्षणको सगठित रूप देनेके लिए तथा व्यापक बनानेके लिए सन् १९५५ में स्वराष्ट्र मंत्रालय तथा शिक्षा मंत्रालयकी संयुक्त समिति बनाई गई। इस समितिने हिंदी शिक्षणकी एक सांगोपाग योजना बनाई जिसके अनुसार काम किया गया। सबसे पहले कर्मचारियोंके वर्गीकरण किए गए।

(क) हिंदी भाषी तथा हिंन्दी जाननेवालोंका,

(ख) पंजाबी, उर्दू तथा हिंन्दीसे मिलती जुलती भाषाओंवालोंका,

(ग) बंगला, मराठी, गुजराती आदि सहोदर भाषाओंवालोंका,

(घ) दक्षिण भाषा भाषियों का। 'क' वर्ग को छोड़कर तीन प्रकारके पाठ्यक्रम बनाए गए। 'प्रबोध' तो 'घ' के लिए शुरू थी ही।

'ग' वर्गके लिए हिंदी प्रवीण तथा 'ख' वर्गके लिए 'हिंदी प्राज्ञ' शुरु की गई।

आगे चलकर सरकारने योग्यता क्रमसे नगद पुरस्कार देनेकी भी व्यवस्था की। प्रथम पुरस्कार —३०० रु., १० तक द्वितीय पुरस्कार—२०० रु. प्रत्येक २० तक तृतीय पुरस्कार–१०० रु. प्रत्येक ७० तक चतुर्थ पुरस्कार ५० रु. प्रत्येक।

हर बार कितने पुरस्कार दिए जाएँगे; यह हर परीक्षाओंमें पास होने वाले कर्मचारियोंकी संख्याको देखकर निश्चित किया जाता है।

उद्देश्य यह था कि सरकारी कर्मचारी सरकारी कामको हिन्दीमें करनेके लिए आवश्यक हिन्दी-ज्ञान प्राप्त कर सकें। गृह मंत्रालयने भी सन् १९५५ से दफ्तरके समयमें ही दिल्ली तथा दिल्लीसे बाहर हिन्दी कक्षाएँ प्रारम्भ की। पहले तो यह नियम था कि जो कक्षाओंमें उपस्थित रहें, उन्हें ही परीक्षाओंमे बैठने दिया जाए। लेकिन १९५७ से हिन्दी प्रबोध एवं प्राज्ञ परीक्षाके लिए सभी कर्मचारियोंको अनुमति दे दी गई, फिर चाहे वे कक्षाओंमें उपस्थित रहें या न रहें।

ऐसे केन्द्र कि जहाँ कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ानेका इन्तजाम है, फिलहाल पूरे हिन्दुस्तानमें लगभग १२५ हैं। इस योजनामें पढ़ाईकी फीस नहीं ली जातीं, कक्षाएँ कार्यालयके समयमें लगतीं, परीक्षाओंके लिए विशेष आकस्मिक छुट्टियाँ दी जातीं, ऊँचे नंबरोंमें पास होने वालोंको नकद पुरस्कार दिए जाते और सर्विस बुकमें परीक्षाओंका उल्लेख कर दिया जाता है। १ जनवरी १९६१ को ४५ वर्षसे जिनकी आयु कम थी उनके लिए हिन्दी माध्यमसे प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है। अब लगभग ४० हजार प्रशिक्षार्थी प्रति वर्ष इस योजनासे शिक्षित हो सकते है। सन् १९६० में दिल्लीमें हिन्दीका एक टाइपराइटिंग तथा स्टेनो-ग्राफीका केन्द्र खुला, बादमे दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमें उसके ४ और नए केन्द्र खुले। अब प्रति वर्ष २००० टाइपिस्ट तथा ५०० स्टेनोग्राफर प्रशिक्षित किए जा सकते है।

(छ) गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा सचालित विभिन्न हिन्दी परीक्षाओंको मान्यता--देशमें विभिन्न हिन्दी संस्थाओं द्वारा प्रचलित हिन्दी परीक्षाओंको मान्यता देनेके प्रश्नपर १९५३से विचार किया जा रहा था। हिन्दी शिक्षा समितिने परीक्षाओंकी मान्यता के प्रश्नपर कई समितियोंके माध्यमसे खोजबीन तथा सोच-विचार किया। अलग-अलग संस्थाओं द्वारा संचालित विभिन्न परीक्षाओंके स्तर भी एक-से नही थे। अतः उन सबके स्तरोंका नाम मानकीकरण आवश्यक था। हर्षकी बात है कि आज विविध संस्थाओं द्वारा परीक्षाओंके स्तर निर्धारित हो चुके हैं और केन्द्रीय सरकार द्वारा उन्हें मान्यता प्राप्त हो गई है। केन्द्र अब तक ऐसी १५ संस्थाओंकी परीक्षाओंको मान्यता दे चुका है। शिक्षा मंत्रालय द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'परिचय', 'कोविद' तथा रत्न' परीक्षाओंको क्रमशः मैट्रिक, इंटर तथा बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता दी जा चुकी है।

५. देवनागरी लिपिमें सुधार

देवनागरी लिपिमें सुधार करनेके लिए उत्तरप्रदेशकी सरकारने एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया था जिसमे प्रायः सब राज्योंके मुख्य-मंत्री शिक्षा-मंत्री, केन्द्रीय सरकारके कतिपय मंत्रीगण, शिक्षा-मत्रालयके अधिकारी, विभिन्न विश्वविद्यालयोंके प्रमुख भाषाविद् एवं साहित्यिक महानुभाव आदि उपस्थित हुए थे। डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् उस सम्मेलनके अध्यक्ष थे। सम्मेलनका उद्देश्य देवनागरी लिपिमें इस तरहसे सुधार करनेका था जिससे वर्तमान मुद्रण आविष्कारोंका अभीष्ट उपयोग हो सके तथा उसके मुद्रणमें सरलता, प्रयत्नलाघव तथा सौष्ठवका समावेश हो सके। टंकण-यंत्रोंके कुंजी पटलकी भी समस्या थी ही। लेकिन छपाईकी दृष्टिसे लिपि-सुधारकी समस्याका विशेष महत्व था। इस सम्मेलनने देवनागरी लिपिमें सुधारकी जो सिफारिशे की थी, उन्हें केन्द्रीय सरकारने सन् १९५५ में मान लिया था। लेकिन स्वयं उत्तरप्रदेशमे तथा अन्यत्र उन पर पुनर्विचार होने लगा था और इसलिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सन् १९५७ में एक दूसरा लिपि सुधार सम्मेलन निमंत्रित किया गया। भारत सरकारके शिक्षा-मत्रालयने इस सम्मेलनकी सिफारिशोंपर गौर करनेके लिए तथा लिपि सुधारकी समस्याको हमेशा के लिए निपटा डालनेकी दृष्टिसे ४ अगस्त १९५९ को अखिल भारतीय स्तरपर विशेषज्ञोंका एक सम्मेलन दिल्लीमें आमंत्रित किया। तदनंतर राज्योंके विशेषज्ञ संमेलनोंकी सिफारिशोंपर विचारार्थ सब राज्योंके शिक्षा-मंत्रियोंकी ८, ९ अगस्त १९५९ को तुरन्त एक परिषद् शिक्षा मंत्रालय द्वारा बुलाई गई। इस परिषदने उत्तर

प्रदेशके दूसरे भाषा-सम्बन्धी सम्मेलनकी सिफारिशोंको तथा उपयुक्त विशेषज्ञ सम्मेलन के निष्कर्षोंको कुछ स्पष्टीकरणात्मक टिप्पणियोंके साथ स्वीकृति प्रदान कर दी। तबसे देवनागरी लिपि सुधार सम्बन्धी बहसका अन्त-सा हो गया है।

अन्तिम रूपसे स्वीकृत देवनागरी लिपि अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ड़, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, ज्ञ।

६. हिन्दी टाइप राइटर तथा टेलीप्रिंटरके कुंजी-पटलका मानकीकरण

देवनागरी लिपिमें सुधारके बारेमें प्रथम सम्मेलनकी सिफारिशोंको भारत सरकारने पहले स्वीकृति प्रदान कर दी थी और इसलिए सन् १९५५ में हिन्दी टाइप राइटर और हिन्दी टेलीप्रिंटरके कुंजी पटलके मानकीकरणके लिए तीन सदस्योंकी एक उपसमितिका शिक्षा-मंत्रालय द्वारा गठन किया गया था। इस उपसमितिमे डाक तथा तार निदेशालय, मुद्रण और लेखन सामग्री नियंत्रणके कार्यालय तथा शिक्षा-मंत्रालय का एक एक प्रतिनिधि था। समितिने नवम्बर १९५५ में अपनी पूरी रिपोर्ट पेश की तथा उसने जो कुंजी-पटल तैयार किया था वह भी प्रकाशित किया। उस कुंजी-पटलपर विभिन्न स्रोतोंसे कुल तीन सौ सुझाव आए। उपसमितिने देशभरमें दौरा भी किया और टाइप राइटर बनानेवाली अनेक सस्थाओंसे बातचीत की। इसके बाद समितिने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत हिन्दी टाइप राइटरोंका एक कुंजीपटल प्रस्तावित किया गया था।लेकिन तब तक देवनागरी लिपिमें-सुधार सम्बन्धी सरकारी तथा सर्वमान्य निष्कर्षोंमें अन्तर पड़ गया, इसलिए उस कुंजी पटलपर फिरसे विचार करना पड़ा। अब टाइप राइटरका मानक कुंजी पटल अन्तिम रूपसे निर्धारित हो चुका है तथा तदनुसार हिन्दी टाइप राइटरोंके निर्माणका आर्डर भी कम्पनियोंको दिया जा चुका है। उसके राहकी सारी अड़चने दूर हो गई है। हाँ टेलीप्रिंटरका विषय अभी विचाराधीन है।

७. हिन्दी आशुलिपिकी मानक पद्धतिका निर्णय

शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालय बहुत दिनों पहलेसे हिन्दी और यथासम्भव अन्य भारतीय भाषाओंके लिए भी एक मानक आशुलिपि पद्धतिके विकासके प्रयत्न कर रहा था। इस प्रश्नपर गहराईसे विचार करनेके लिए तथा ठोस सुझाव देनेके लिए मंत्रालयने सन् १९५५ में एक समिति बनाई थी। उस समितिने अपनी रिपोर्ट पेश कर सुझाव दिया था कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंके लिए आशुलिपिकी एक मानक पद्धतिका विकास करनेके लिए सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि शब्दके रूप और ध्वनिकी दृष्टिसे हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओंका विश्लेषण किया जाए। समितिकी इस सिफारिशको स्वीकार कर सरकारने गौहाटी, कलकत्ता, उत्कल, मद्रास, मैसूर, तिरुवांकुर, आन्ध्र और गुजरातके विश्वविद्यालयोंको यह काम सुपुर्द किया था। शब्दके रूप और ध्वनिकी दृष्टिसे हिन्दीके विश्लेषणका काम डेक्कन कालेज, पूनाको सौंपा गया था। सरकारने तदर्थ अनुदान दिए हैं।

८. हिन्दीमें वैज्ञानिक एवं प्राविधिक साहित्यकी प्रदर्शनियाँ

हिन्दीके वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्यके प्रचारार्थ प्रदर्शनियोंके आयोजन सरकार द्वारा किए जाते है। सन् १९५७ में नई दिल्ली में तथा बादमें दिल्ली विश्वविद्यालय, इन्दौर, बम्बई, पटना और लखनऊमें तथा फिलहाल राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी रजत जयन्तीके अवसरपर वर्धामें ये प्रदर्शनियाँ की गई और विभिन्न अखिल भारतीय सम्मेलनोंके अवसरपर शिक्षा-मंत्रालय हिन्दी प्रकाशनोंके स्टाल लगवाता है।

९. राज्य सरकारोंको अनुदान

अपने-अपने राज्योंमें हिन्दी प्रचारके लिए राज्य, विशेषकर अहिन्दी राज्य जो योजनाएँ बनाते हैं उन पर सोच-विचार करनेके बाद उन योजनाओं पर होनेवाले खर्चके काफी बड़े हिस्सेका बोझ उठा लेती है। पिछले सालोंसे केन्द्रीय सरकारने विभिन्न राज्य सरकारोंको तथा केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों एवं प्रदेशोंको हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए इस तरहसे काफी उदार अनुदान दिए हैं।

जिन अहिंदी भाषी राज्योंमे हिंदी पढ़ाई जारी है, वहाँके स्कूलों, कालेजों तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंको शिक्षा-मंत्रालयने हिंदीकी पुस्तकें अनुदानमे देनेका निश्चय किया। शिक्षा मंत्रालयकी तदर्थ हिन्दीके उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, कविता, निबन्ध यात्रा-विवरण, जीवनियाँ, संस्कृति इतिहास, विज्ञान, साधारण ज्ञान आदि की तथा बच्चोंकी पुस्तकें तथा उनके अनुवाद बहुत बड़ी तादादमें खरीदनेकी योजना है। पुस्तकोंका चुनाव करनेके लिए एक समिति स्थापित की जा रही है।

१०. गैर सरकारी संस्थाओंको अनुदान

शिक्षा-मंत्रालय द्वारा निमंत्रित ६ दिसम्बरकी विभिन्न गैर सरकारी संगठनों, अहिन्दी राज्य सरकारके प्रतिनिधियोंकी परिषदने स्वेच्छासे हिन्दी प्रचारका काम करनेवाली संस्थाओंको आर्थिक मदद की बात पर भी सोच विचार कर निम्नलिखित निर्णय किया था—(अ) हिन्दी प्रचारकी नई संस्थाओंको खोलनेके लिए या जो पुरानी संस्थाएँ चल रही है उनके संचालनके लिए (आ) अहिन्दी भाषी राज्योंमें अहिन्दी भाषा-भाषियोंकी कक्षाओंको चलानेके लिए (इ) अहिन्दी क्षेत्रोंके लिए प्रचारकोंको प्रशिक्षित करने तथा नियुक्त करनेके लिए (ई) अहिन्दी क्षेत्रोंमे हिन्दी किताबें तथा सामयिक पत्रोंके पुस्तकालय व वाचनालयोंको कायम करनेके लिए (उ) अहिन्दी क्षेत्रोंमें हिन्दी प्रचार के लिए प्रचार-साधनोंकी खरीदके लिए (ऊ) अहिन्दी क्षेत्रोंमें हिन्दी भाषण प्रतियोगिताएँ, वाद-विवाद, नाटक आदि करानेके लिए तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा व्याख्यानमाला संगठित करनेके लिए और हिन्दीके विकास एवं प्रचारके लिए, स्वेच्छासे कार्यरत संस्थाओंको आर्थिक मदद दी जाए।

राज्य सरकारोंको केन्द्रीय सरकार द्वारा हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए जो सहायता दी जाती है, उनके बारेमें सम्बन्धित राज्य सरकारको यह छूट रहती है कि वह उसे जैसे वह उचित समझे खर्च करे, किसी भी एजंसीसे या किसी भी ढंगपर वह काम कर सकती है। लेकिन जो संस्थाएं अखिल भारतीय होती है, उनमेंसे सरकार जिन्हें जिस कामके लिए योग्य आँकती है, उन्हें उन उन कामोंके लिए वह आर्थिक

सहायता देती है। लेकिन सरकारकी अनुदान नीतिके बारेमें अनुभव बड़ा अटपटा है। जहाँ काम हो रहा है वहाँ कुछ नहीं दिया जाता, और बहुत-सा अनुदान अपात्र-दानकी तरह व्यर्थ नष्ट हो जाता है। यह भी देखा गया है कि अनुदानकी रकमें पड़ी हैं, योजनाएँ भी कागजपर हैं, लेकिन सम्बन्धित अधिकारी तथा विभाग ही सो रहा है या अव्यवस्थित है।

११. हिन्दी-वर्तनी-समिति

शिक्षा-मंत्रालयने एक वर्तनी (Spelling) समिति बनाई है। इसका काम है यह तय करना कि हिन्दीके शब्द ठीकसे कैसे लिखे जाएँ तथा कौनसा शब्द किस रूपमें ठीक है? इसने हिन्दीके शब्दोंकी वर्तनी के सम्बन्धमें कुछ निर्णय किए थे, जिनके बारेमें यह द्विधा पैदा हो गई थी कि वे हिन्दीके बेसिक ग्रामर के नियमों के अनुकूल नहीं बैठते। इसलिए वर्तनी समितिने अपनी चौथी बैठकमें ११ अप्रैल १९६२ को उन पर फिरसे विचार किया। उसने पुर्नानिश्चय किया कि उसके निर्णय ही ठीक हैं और उन्हें मान्य समझा जाए। चन्द्रबिन्दु के बारेमें यह निश्चय किया गया कि बच्चोंकी पुस्तकोंमें, जहाँ उच्चारण समझाना उद्दिष्ट हो वहाँ नासिका ध्वनिको व्यक्त करनेके लिए चन्द्रबिन्दुका अवश्य प्रयोग किया जाए, परन्तु सामान्यतया जहाँ अक्षरके ऊपर मात्रा लगी हो वहाँ चन्द्रविन्दु उच्चारणको व्यक्त करनेके लिए भी अनुस्वारसे ही काम चलाना पर्याप्त होगा।

समितिकी पिछली बैठकोमें यह सुझाव आया था कि वर्तनीके विपयमें अन्तिम रूपसे निर्णय करनेके लिए एक विस्तृत समिति बनाई जाए। लेकिन यह सुझाव नामंजूर हो गया है, कारण उससे निर्णयोंमें देर होनेकी सम्भावना है।

१२. आकाशवाणीकी हिन्दीके लिए सलाहकार समिति

आकासवाणीके समाचारोंकी हिन्दीके सम्बन्धमे सलाह देनेके लिए सरकारने महाराष्ट्रके भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी की अध्यक्षतामें एक समिति नियुक्त की है। यह कदम ११ संसदीय सदस्योंकी उस समितिकी सिफारिशों पर उठाया गया है, जिसने आकाशवाणीके समाचारोंकी हिन्दी पर विचार किया था। समितिकी रिपोर्ट सितम्बर सन् १९६२ में दी गई थी। समितिने हिन्दीके सरलीकरणका स्वागत करते हुए कहा था कि उन नए मुहावरों तथा शब्दोंका हिन्दीमें प्रयोग किया जाए जो हिन्दीकी प्रकृति के अनुकूल हों तथा हिन्दीमें खप सकें। अब जो नई समिति वनी है उसमें श्री सुमित्रानंदनजी पंत, हरिभाऊ उपाध्याय डॉ. बच्चन, तथा आकाशवाणीकी नई दिल्ली न्यूजसर्विसके डाईरेक्टर महोदय भी हैं।

१३. हिन्दीके विकास एवं प्रचारके लिए विनिमय कार्यक्रमोंकी तीन योजनाएँ

(क) अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दीके बारेमें दिलचस्पी पैदा करने और अहिन्दी भाषी तथा हिन्दी भाषी लोगोंमें अधिक सम्पर्क स्थापित करनेके लिए विनिमय कार्यक्रमोंकी कुछ योजनाएँ शिक्षा-मंत्रालय द्वारा बनाई गई हैं तथा वे कार्यान्वित की जा रही हैं।

योजना नं. १—हिन्दी भाषी क्षेत्रमें अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंसे हिन्दी भाषी क्षेत्रोंके हिन्दी अध्यापकोंके सेमिनार (विचार गोष्ठियाँ) आयोजित करना—योजनाका उद्देश्य यह है कि जो लोग अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी पढ़ा रहे हैं, वे समय समय पर हिन्दी क्षेत्रोंमें जाएँ और हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की समसामयिक प्रवृत्तियोंसे परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञानको बढ़ाएँ तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रोंके अध्यापकों और हिन्दी जगतके प्रमुख व्यक्तियोंसे सम्पर्क स्थापित करें। हिन्दी भाषी क्षेत्रके अध्यापकों एवं विद्वानोंको भी इन सेमिनारोंसे अहिन्दी क्षेत्रोंमें हिन्दी पढ़ानेकी उलझन युक्त समस्या का निकटसे ज्ञान होता है। ऐसे कई शिक्षक सेमिनार शिक्षा मंत्रालयद्वारा संगठित किए जा चुके हैं और किए जा रहे हैं।

योजना नं. २—हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रोंके अध्यापकों, कवियों, विद्वानों आदिके एक-दूसरेके क्षेत्रमें व्याख्यान-दौरे—स्थाई परामर्श समितिने व्याख्यानोंके इन दौरोंकी योजना सितम्बर १९५७ में बनाई थी। १९५७ में तो उस पर अमल नहीं हो सका, लेकिन उसके बाद हर वर्ष हिन्दी क्षेत्रोंके विद्वानों, अध्यापकों आदिको व्याख्यान-प्रवासके लिए अहिन्दी क्षेत्रोंमें भेजा जा रहा है तथा अहिन्दी क्षेत्रोंके हिन्दी अध्यापकों आदिके दौरे हिन्दी क्षेत्रोंमें करवाए जा रहे हैं। इस कार्यक्रमका उद्देश्य यह है कि हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके बीच निकट सम्बन्ध स्थापित हो और दोनों क्षेत्रोंके लोग एक दूसरेके दृष्टिकोणों और कठिनाइयोंको समझें।

योजना नं. ३—हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके छात्रोंके वाद-विवाद दलों (Debating Teams) **को एक-दूसरेके क्षेत्रोंमें भेजनेकी व्यवस्था करना**—इस कार्यक्रमके अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि राज्योंके स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थियोंके अलग-अलग वाद-विवाद दल प्रतिवर्ष हिन्दी भाषी क्षेत्रोंसे अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें तथा अहिन्दी भाषा क्षेत्रोंमेंसे हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें दौरा करें। इस कार्यक्रमका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियोंमें हिन्दीके लिए दिलचस्पी पैदा हो जाए तथा हिन्दीके माध्यमसे सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रोंमें परस्पर सम्पर्क स्थापित होनेमें सहायता मिले।

(ख) विनिमय कार्यक्रम स्थाई परामर्श समिति

सन् १९५९ में इस विनिमय कार्यक्रमोंकी केन्द्रीय योजनामें सरकारको सलाह देनेके लिए एक स्थाई परामर्श समितिकी नियुक्ति शिक्षा-मंत्रालय की ओरसे की गई है जो बार-बार बैठकर उनके बारेमें सोचती है, निर्णय करती है और उसको संगठित करनेमें सहायता देती है। इस समितिमें सरकारी गैर-सरकारी नौ व्यक्ति हैं।

१४. विदेशोंमें हिन्दी-प्रचार

(क) विदेशोंमें बसे भारतीयोंको हिन्दी सीखनेकी सुविधाएँ देनेके लिए भारत सरकार प्रति वर्ष कुछ रकम निश्चित करती है। तदर्थ विभिन्न भारतीय दूतावासोंसे प्रस्ताव मँगाए गए और ब्रिटिश पूर्वी आफ्रिका, नेपाल, ब्रिटिश वेस्ट इंडीज गायना, जमेका, फिजी, मारीशस, श्रीलंका आदि देशोंमें जहाँ भारतीय

प्रवासी जाकर काफी संख्यामें बस गए हैं, हिन्दीकी कक्षाओंके लिए, शिक्षकों एवं पुस्तकालयोंके लिए तथा विद्यार्थियोंमें पुरस्कारार्थ वितरणके लिए रकमें तय की जाती है।

(ख) भारत सरकार उन देशोंमें भी जहाँ कि भारतीय प्रवासी नहीं हैं, प्राध्यापक शिक्षक आदि भेजकर वहाँके विश्वविद्यालयों आदिको हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए प्रोत्साहित करती है। सरकार ऐसे हिन्दी प्राध्यापकका या तो पूरा वेतन देती है या तदर्थ आंशिक सहायता देती है।

(ग) विदेशोंमें हिन्दी विषयक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंमेंसे जो सर्वश्रेष्ठ होते हैं उनको भारत सरकार विशेष रूपसे पुरस्कृत भी करती है।

(घ) विदेश स्थित अलग अलग विश्वविद्यालयोंको तथा संस्थाओंको उनके पुस्तकालयोंके हिन्दी विभागके लिए भारत सरकार हिन्दी पुस्तकोंके सेट भेंट या दानमें दिया करती हैं। आक्सफोर्ड, डरहम, केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंको तथा नेपालकी स्कूलों एवं संस्थाओंकी ऐसे सेट भेंट किए गए हैं। क्वींसलेंड, तिब्बत, सिक्किम और भूतान, चीन,, पोलैण्ड आदिकी संस्थाओंको भी हिन्दी पुस्तकें आदि दी गई है।

(ङ) भारतमें उच्च अध्ययनके लिए आनेवाले आफ्रिकी तथा अन्य देशोंके विद्यार्थियोंको हिन्दी शिक्षा देनेके लिए भारत सरकार कुछ रकम खर्च करती रहती है।

१५. सरकारी कामकाजमें हिन्दीके उपयोगके लिए कुछ कदम

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयकी स्थापना

शुरु-शुरू में हिन्दीके प्रचार एवं विकासका काम शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालयके अधीन चला करता था। भावी राजभाषाके रूपमें हिन्दीको महत्व प्राप्त हो जाने पर सन् १९५१ में मंत्रालयके अधीन एक पृथक् हिन्दी इकाई (Hindi Unit) की रचना की गई। जैसे-जैसे काम बढ़ता गया, यह एकक बढ़ कर 'हिन्दी प्रभाग' (Hindi Division) में परिवर्तित हो गया। राजभाषा आयोग तथा संसदीय समितिके अहवालोंके बाद, स्वर्गीय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके मन्तव्यानुसार शिक्षा-मंत्रालयके मातहत एक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (Central Hindi Dircctorate) गठित किया गया। १९६५ तक हिन्दी राजभाषा बन सके इस दृष्टिसे उसे विकसित करने तथा उसका प्रचार एवं प्रसार करनेका काम हिन्दी निदेशालय को सौंपा गया है। हिन्दीकी पारिभाषिक शब्दावली विकसित करनेका काम, प्रमाणित शब्द कोशोंके निर्माणका काम, शासकीय एवं असांविधिक ढंगके प्राविधिक साहित्य के अनुवादका काम और हिन्दीके विकास एवं प्रसारसे जुड़े हुए अन्य कामोंका जिम्मा निदेशालयका है। यह निदेशालय एक सक्षम डायरेक्टरकी देखरेखमें कार्यरत है और उसने हिन्दीके विकास एवं प्रचार-प्रसारके लिए बहुविध प्रयत्न किए हैं।

(१) केन्द्रीय सरकारने ४५ वर्षसे कम आयुवाले अपने कर्मचारियोंको आदेश दिए हैं कि वे अगले पाँच वर्षके भीतर हिन्दी सीखलें ताकि १९६५ तक वे हिन्दीमें काम करने लायक हो जाएँ।

(२) सरकारने यह निश्चय किया है कि सचिवालयके कुछ चुने हुए विभागोंमें जहाँ अधिकतर कर्मचारी हिन्दी जानते हों, परीक्षणके रूपमें फाइलों पर हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाए। प्रारम्भमें

हिन्दी पत्र-व्यवहार सम्बन्धी फाइलोंमें हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाएगी। इसके अलावा हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें स्थित केन्द्रीय सरकारके स्थानीय कार्यालयोंमें भी फाइलों पर हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाएगी।

इन कार्यवाहियोंका उद्देश्य यह है कि सन् ६१–६२ के अन्त तक हिन्दीके सब पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें दिए जाने लगें और १९६३–६४ के अन्त तक उन राज्योंके साथ जिन्होंने हिन्दीको अपनी सरकारी भाषाके रूप में अपना लिया है अंग्रेजीके साथ हिन्दीमें भी पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो जाए।

सरकारने तीन और निश्चय किए हैं

(अ) सरकारी प्रस्ताव हिन्दीमें भी प्रकाशित किए जाएँ।

(आ) फार्मो और रजिस्टरोंमें अंग्रेजीके साथसाथ हिन्दीको भी अपनाया जाए।

(इ) १९६२–६३ से भारत सरकारके गजटके कुछ भाग हिन्दीमें भी प्रकाशित किए जाएँ।

हिन्दी-प्रगतिकी जांचके लिए स्थाई समिति

स्वराष्ट्र गृह मंत्रालय सचिवकी अध्यक्षतामें एक स्थाई समिति बनाई गई है जिसका काम यह देखना है कि केन्द्रीय सरकारके कामकाज में अंग्रेजीके साथ साथ हिन्दीको अपनानेके कार्यक्रम पर कितना क्या और कैसा अमल हो रहा है तथा कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेमें क्या प्रगति की जा रही है। इस समितिमें केन्द्रीय मंत्रालयोंके कुछ सचिव भी हैं।

(५) स्वराष्ट्र मंत्रीने एक परिपत्र निकालकर सभी मंत्रालयोंको सूचित किया है कि वे अंग्रेजीके स्थान पर हिन्दीके प्रयोगकी योजना बनाएँ तथा अधिकारी यह देखे कि उनको कहाँ तक पूरा किया गया है। वे हिन्दी टाइपराइटर तथा सन्दर्भ ग्रन्थ आदि की भी सुविधाएँ प्रदान करें।

(६) केन्द्रीय सचिवालयमें हिन्दीका कार्य चलानेके लिए "हिन्दी असिस्टेंट" नियुक्त किए गए हैं। केन्द्रीय लोक सेवा आयोग हिन्दी असिस्टेंटों की प्रतियोगिता परीक्षाएं आयोजित करता है।

(७) हिन्दीमें प्राप्त पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें देने तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रोंकी सरकारोंके साथ पत्र-व्यवहार करने आदिके लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी भाषाका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया गया है।

भारत सरकारके अन्य मन्त्रालयों द्वारा हिन्दी कार्य

१. रेलवे-मन्त्रालय

हिन्दी पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें

रेल मंत्रालयके कार्यालयमें जो हिन्दीके पत्र आते हैं, उनके उत्तर हिन्दीमें दिए जाते हैं। यह व्यवस्था दिसम्बर १९५२ में शुरू की गई थी। क्षेत्रीय रेल प्रशासनोंके प्रधान कार्यालयोंमें भी हिन्दी पत्रोंके हिन्दीमें उत्तर देनेकी व्यवस्था कर ली गई है। रेलवेके अन्य कार्यालयोंमें भी यह व्यवस्था की जा रही है। जिन

राज्य सरकारोंने हिन्दीको राजभाषा स्वीकार कर लिया है, मार्च, १९६४ से उनके साथ भी पत्र-व्यवहारमें अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीका प्रयोग किया जाएगा।

पिछले कई वर्षोंसे रेल मंत्रालयकी वार्षिक रिपोर्ट और बजट सम्बन्धी अन्य विवरण अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीमें प्रकाशित किए जाते हैं। विगत बजटमे १३ रिपोर्ट, विवरण आदि अंगरेजी और हिन्दीमें साथ-साथ प्रकाशित किए गए हैं।

रेल संहिताओं, नियमावलियों आदिका हिन्दी अनुवाद

हिन्दीमें सरकारी काम आरम्भ करनेसे पहले यह आवश्यक है कि रेलवेके काममे जिन जिन नियम पुस्तकों, संहिताओं आदिका प्रयोग होता है, वे हिन्दीमें उपलब्ध हों। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार रेलवेकी नियम-पुस्तकोंका हिन्दी अनुवाद तैयार किया जा रहा है। रेलवे बोर्डने यह भी निर्णय किया है कि अब से जो नियम पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ, वे अँगरेजी-हिन्दीमें हों। एक अन्य निर्णयके अनुसार वर्तमान सभी नियम-पुस्तकें १९६५ तक अँग्रेजी-हिन्दीमे प्रकाशित कर दी जाएँगी। रेलवेके विभिन्न कार्यालयोंमे जो फार्म काममे लाए जाते हैं, वे अँगरेजी और हिन्दीमें साथ-साथ जारी किए जा रहे है। रेल प्रशासनोंसे कहा गया है कि १९६५ तक सभी फार्म हिन्दी और अँगरेजीमें जारी करनेकी व्यवस्था करें।

कर्मचारियोंसे सम्बन्धित परिपत्र और अधिसूचनाएँ आदि हिन्दीमें

रेल मन्त्रालयके कार्यालयमें कर्मचारियोंसे सम्बन्धित परिपत्र, अधिसूचनाएँ आदि अँग्रेजी और हिन्दीमें साथ-साथ जारी की जाती है। चौथे दर्जेके कर्मचारियोंके आवेदन-पत्रोंका उत्तर भी अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीमें देनेकी व्यवस्था की जा रही है। क्षेत्रीय रेलोंको भी निर्देश दिया गया है कि कर्मचारियों, विशेष रूपसे चौथे दर्जेके कर्मचारियोंसे सम्बन्धिति परिपत्र आदि अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंमें जारी करनेकी व्यवस्था की जाए।

अखिल भारतीय समय-सारणी और क्षेत्रीय रेलोंकी समय-सारणियाँ पिछले कई वर्षोसे हिन्दीमें भी प्रकाशित की जा रही हैं। कुछ रेलोंके समाचार-पत्र आदि भी अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंमे प्रकाशित किए जा रहे हैं। अगस्त, १९६० से रेल मन्त्रालयकी ओरसे "भारतीय रेल" नामकी मासिक हिन्दी-पत्रिका प्रकाशित की जा रही है। इसके अतिरिक्त उत्तर पूर्वोत्तर मध्य और पश्चिम रेलोंकी मासिक पत्रिकाओंके कुछ पृष्ठ हिन्दीमें भी प्रकाशित किए जा रहे है।

पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी पर्याय

हिन्दीमें काम शुरू होनेसे पहले यह आवश्यक है कि रेलवेके काममे आनेवाले शब्दोंके हिन्दी पर्याय तैयार कर लिए जाएँ। यह काम शिक्षा मन्त्रालयके परामर्शसे किया जा रहा है। इस कामको शीघ्र पूरा करनेके उद्देश्यसे रेल मन्त्रालयमें भी एक समिति बनाई गई है जिसने अपना काम प्रारम्भ कर दिया है।

रेल कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी व्यवस्था

रेलवेका अधिक-से-अधिक काम हिन्दीमें हो, इसके लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि रेल कर्मचारी जल्द-से-जल्द हिन्दी सीखें। भारतीय रेलवेमें पहले, दूसरे और तीसरे दर्जेके लगभग ढाई लाख कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानी है। रेल कर्मचारी देशके हर कोनेमें फैले हुए हैं। इसलिए उनको हिन्दी सिखानेके काममें कई व्यावाहरिक कठिनाइयाँ हैं। लेकिन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी अधिकाधिक कर्मचारियोंको निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार हिन्दी सिखानेकी व्यवस्था की जा रही है। इस समय विभिन्न क्षेत्रोंमें ८३ हिन्दी शिक्षण केन्द्र चल रहे हैं और इस समय इन केन्द्रोंमें १४००० से कुछ अधिक रेल कर्मचारी हिन्दी सीख रहे हैं। हर क्षेत्रमें अधिकाधिक हिन्दी शिक्षण-केन्द्र खोलनेकी व्यवस्था की जा रही है। केन्द्रीय सरकारके कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिये भारत सरकारकी ओरसे देशके सभी भागोंमें हिन्दी कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। रेल कर्मचारी भी इस सुविधासे लाभ उठा रहे हैं। इस सरकारी व्यवस्थाके अतिरिक्त रेल कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रासका भी सहयोग प्राप्त किया गया है। हिन्दी टाइप और शार्ट हैंड सिखानेकी भी व्यवस्था की गई है। रेलवे स्टेशनोंपर हिन्दीमें तार देनेकी व्यवस्था धीरे-धीरे बढ़ाई जा रही है। हिन्दी क्षेत्रके कुछ प्रमुख स्टेशनोंपर हिन्दीमें तार भेजनेकी व्यवस्था की गई है। आवश्यकतानुसार यह व्यवस्था क्रमशः और स्टेशनोंपर भी की जा रही है। कर्मचारियोंको हिन्दी 'मोर्स' सिखानेकी व्यवस्था कई केन्द्रोंमें की जा रही है।

कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी दृष्टिसे रेलवे बोर्डने केन्द्रमें तथा अलग-अलग रेलवे प्रशासनोंमें एक-एक हिन्दी अनुभागकी रचना की है। रेलवे मन्त्रालय—(१) प्रबोध, (२) प्रवीण तथा (३) प्राज्ञ नामक तीन परीक्षाओंको चलाता है। इन परीक्षाओंमें तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा द्वारा संचालित परीक्षाओंमें सफल होनेवाले व्यक्तियोंके लिए १०० इनाम रखे गए हैं, जो सालमें दो बार दिए जाते हैं। पहला इनाम ३०० रु० का है। पुरस्कार विजेताओंमेसे १० प्रतिशतको प्रत्येकको २०० रु., बीस प्रतिशतको प्रत्येकको १०० रु. तथा ७० प्रतिशतको प्रत्येकको ५० रु., इस तरह पुरस्कार योजना है। पुरस्कारकी आधी रकम हिन्दी किताबोंके रूपमें तथा आधी नकद दी जाती है।

हिन्दी-प्रचारके अन्य कार्य

यह निर्णय किया गया है कि अब से रेल मन्त्रालय द्वारा जो करार या समझौते किसी अन्य सरकार या प्राइवेट फर्मसे किए जाएँगे उनका हिन्दी रूपान्तर भी तैयार किया जाएगा। भारत सरकारके गजटके कुछ अंश अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीमें प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। रेल मन्त्रालयके प्रस्ताव अब अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीमें प्रकाशित किए जा रहे हैं।

स्पष्ट है कि जो कर्मचारी हिन्दी सीख रहे हैं या सीख चुके हैं उनको हिन्दीमें काम करनेका अवसर दिया जाए। इस उद्देश्यसे रेल मन्त्रालयकी जिन शाखाओंमें ७५ प्रतिशत या इससे अधिक कर्मचारियोंको हिन्दीका व्यवहारिक ज्ञान है, वहाँ परीक्षणके रूपमें सामान्य फाइलोंमें हिन्दीमें टिप्पणी लिखनेकी अनुमति दी गई है। हिन्दी क्षेत्रोंमें स्थित रेलवे कार्यालयोंमें भी यह प्रथा अपनाई जा रही है।

हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें काम करने वाले कर्मचारियोंको अनुमति दी गई है कि यदि वे चाहें तो छुट्टी आदिके आवेदन-पत्र हिन्दीमें दे सकते हैं।

केन्द्रीय सरकारके रेल विभागीय प्रशिक्षण विद्यालयोंके शिक्षार्थियों तथा प्रोबेशनर अधिकारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है—वहाँ राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धाकी "कोविद" परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको उसके बाद अन्य कोई हिन्दी योग्यता सम्बन्धी परीक्षा देनेसे मुक्त कर दिया गया है।

२. रक्षा-मंत्रालय

सशस्त्र सेनाओंमें हिन्दी—(१) सेनामें प्रथम श्रेणी प्रमाण-पत्रकी सभी परीक्षाएँ अब हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपिमें होती हैं। (२) सेना शिक्षाकी हवलदार युनिटोंमें अध्यापकोंके स्थानपर जो नागरिक अध्यापक रखे जाते हैं उनके लिए आवश्यक है कि उनमे सेनाकी प्रथम श्रेणी प्रमाण-पत्र परीक्षाके बराबर योग्यता हों वर्ना उन्हें यह परीक्षा पास कर लेनी पड़ती है। (३) रक्षा-प्रतिष्ठानोंके विभिन्न स्थानोंमें जहाँपर असैनिक कर्मचारी काम करते हैं, सेना-सम्पर्क-अफसर नियुक्त किए गए हैं। उनका काम गृह-मन्त्रालयकी सरकारी कर्मचारी हिन्दी प्रशिक्षण योजनामें सहायता देना है। (४) मन्त्रालयने रक्षा सम्बन्धी हिन्दी पारिभाषिक शब्दावलीके विकासका तथा प्रशिक्षण पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादका बहुत-सा काम सम्पन्न किया है। (५) नौ सेनाके अफसर तथा मिडशिप मॅन अनिवार्य हिन्दी परीक्षामें अधिकाधिक संख्यामें बैठते हैं तथा कामयाब होते हैं। अब तक नियमित अफसरोंमें आधेसे भी काफी अधिक लोगोंने यह परीक्षा पास कर ली है या उससे उनको छूट मिल गई है। (६) विभिन्न प्रशिक्षण सिब्बंदियोंमें हिन्दीकी योग्यतावाले नागरिक शिक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं। (७) प्रशिक्षण सिब्बंदियों (Training Establishments) में ऊँची कक्षाओंके बालकोंको हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। (८) जिन ब्रांच अफसरोंकी लेफ्टिनेंटके पदपर तरक्की होती है या जो सीधे सब लेफ्टिनेंट (एल) पदसे नौ-सेनामें आते है उन दोनोंके लिए संयुक्त हिन्दी कक्षाएँ चलाई जाती है और अहिन्दी भाषी ब्रांच अफसरोंको तरक्कीके पहले ही अनिवार्य हिन्दी पढ़ाई जाती है। (९) मॅन्युअल, नियम इ. साहित्यका हिन्दी अनुवादका काम तेजीसे चल रहा है। (१०) वायुसेनाके सैकड़ों अफसरोंने अनिवार्य हिन्दी परीक्षा पास करली है। इस परीक्षाको लगभग ८५ प्रतिशत अफसर और केडेट पास कर चुके है। जहाँ कही सम्भव है, स्वेच्छाके आधार पर हिन्दी कक्षाएँ चलाई जाती हैं। केन्द्रीय सरकारी नौकरोंको हिन्दी पढ़ानेकी गृह-मन्त्रालयकी योजनाके लिए सम्पर्क अफसरोंकी नियुक्तियाँ की गई है। वायुसेनाकी विभिन्न तकनीकी तथा निर्देश पुस्तकालयोके लिए हजारों रुपयोंकी पुस्तकें खरीदी गई है। वायु सेनाकी विभिन्न यूनिटोंमे हिन्दी फिल्मे दिखाई जाती है। सूचना-केन्द्रोंमें हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाएँ रखी जाती है। मॅन्युअलों आदिका अनुवाद-काम भी शुरू हैं। (११) सशस्त्र सेनाओंकी युनिटों आदिमे सब सूचना बोर्डोंपर तथा साइन बोर्डोंपर ऊपर हिन्दी तथा नीचे अँग्रेजीमें लिखा रहता है। (१२) सैनिक कवायदों तथा परेडोंमें हिन्दी शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। गणराज्यकी पूरी परेडोंमें तथा विदेशी अध्यागतोंकी सलामीमें हिन्दी शब्द प्रयुक्त होते है। (१३) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी कोविद परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तियोंको विभागीय परीक्षासे मुक्त कर दिया गया है।

३. वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय

इस मन्त्रालय द्वारा निम्नलिखित हिन्दी काम होता है—

१—सरकारी पत्रों, प्रशासनिक रिपोर्टो, संसदको दी जानेवाली रिपोर्टो, भारत सरकारके राज-पत्रमें छपनेवाले सरकारी संकल्पोंका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया जाता है।

२—आनेवाले हिन्दी पत्रोंका उत्तर हिन्दीमें दिया जाता है।

३—मन्त्रालयके जो कर्मचारी हिन्दी नहीं जानते हों, उनकी तालिकाएँ बनाकर गृह-मन्त्रालय द्वारा चलाई गई हिन्दी कक्षाओंके उपयोगके लिए प्रेषित की जाती है।

४—मन्त्रालयोंके प्रकाशनोंको हिन्दीमें प्रकाशित किया जाता है।

४. वित्त-मंत्रालय

१—मन्त्रालयके उन अनुभागोंमे जिनके ५० प्रतिशत अथवा उससे अधिक कर्मचारियोको हिन्दीका काम चलाऊ ज्ञान है, हिन्दीमें प्राप्त पत्रोंको निपटाते समय फाइलोंमे हिन्दीमे टिप्पण (नोट) लिखनेकी अनुमति दे दी गई है।

२—चतुर्थ श्रेणियोंको दी जानेवाली हिदायतें सामान्यतया हिन्दीमें भी जारी की जाती हैं।

३—मन्त्रालयकी वार्षिक रिपोर्ट, आर्थिक समीक्षा, केन्द्रीय सरकारके बजटका आर्थिक वर्गीकरण, वित्त-मन्त्रीका बजट भाषण, अनुदानोंकी माँगों, व्याख्यात्मक ज्ञापन, अर्ध सरकारी पत्रका नमूना, हिन्दी मुद्रा, अवकाश सम्बन्धी ज्ञापनका हिन्दी रूप आदि हिन्दीमें रहती हैं।

५. स्वराष्ट्र मंत्रालय (गृह-मंत्रालय)

स्वराष्ट्र मन्त्रालयने हिन्दीको विकसित करनेके काममें तथा उसका प्रयोग सरकारी स्तरपर शुरू करवानेके काममें बहुत कुछ किया है। कर्मचारियोको हिन्दी पढ़नेकी दृष्टिसे तथा उन्हें हिन्दीमे काम कर सकने लायक बनानेकी दृष्टिसे भी इस मन्त्रालय द्वारा काफी काम किया गया है। राजभाषा आयोग, संसदीय समिति आदि की नियुक्तियाँ, उनके अहवालोंका प्रकाशन, राष्ट्रपतिके राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विभिन्न आदेश, स्वराष्ट्र मन्त्रालयकी उनपर मार्गदर्शक टिपणियाँ आदिका जिक्र किया जा चुका है: स्वराष्ट्र मन्त्रालयने सरकारी स्तरपर हिन्दीके अधिकाधिक प्रयोग किए जानेके लिए एक योजना बनाई है जिसके अनुसार सभी मन्त्रालयोंको यह आश्वासन देना होगा कि वे १९६३–६४ के अन्त तक अँग्रेजीके अलावा हिन्दीका भी प्रयोग करेंगे। केन्द्रीय मन्त्रालय उन राज्य सरकारोंके साथ जहाँ कि हिन्दीको सरकारी भाषा स्वीकार कर लिया गया है, हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करेंगे।

२—**हिन्दी-प्रगति-जाँच-समिति**—केन्द्रीय सरकारके कामकाजमें अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीके अधिकाधिक प्रयोगके कार्यक्रमकी प्रगति समय-समयपर जाँचनेके लिए एक विभागीय समिति स्वराष्ट्र मन्त्रालय द्वारा गठित की गई है। इस स्थाई-समितिके अध्यक्ष स्वराष्ट्र मन्त्रालयके सचिव रहेंगे और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयोंके सचिवोंमेंसे चार को समितिका सदस्य बनाया जाएगा। यह समिति यह देखेगी कि

किस हद तक हिन्दीका प्रयोग होने लगा है और सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके कामकी क्या प्रगति है ?

३—स्वराष्ट्र-मन्त्रीने एक परिपत्र निकालकर सभी मन्त्रालयोंको सूचित किया है कि वे अँग्रेजीके स्थानपर हिन्दीके प्रयोगकी योजनाएँ बनाएँ तथा अधिकारी गण यह देखें कि उनको कहाँ तक पूरा किया गया है।

४—केन्द्रीय सरकारके किसी पदपर नियुक्तिके लिए अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है वहाँ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित कोविद परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको बादमें अन्य कोई परीक्षा नही देनी होती।

५—स्वराष्ट्र मन्त्रालयका ही यह जिम्मा है कि वह देखे कि मन्त्रालय संलग्न, अधीनस्थ तथा प्रादेशिक कार्यालयके हिन्दी न जाननेवाले वर्तमान कर्मचारी ३१–३–१९६४ तक काम चलाने योग्य हिन्दी ज्ञान हासिल कर लें तथा केन्द्रीय सरकारी विभागोंकी शाखाओं तथा स्थानीय कार्यालयोंके हिन्दी न जाननेवाले कर्मचारी १९६६ मार्च तक हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त कर लें। उसी प्रकार मन्त्रालयों, संलग्न कार्यालयों तथा प्रादेशिक कार्यालयोंके वर्तमान कर्मचारी हिन्दी टाइप राइटिग तथा स्टेनोग्राफीके प्रशिक्षणको ३१–१२–६४ तक तथा केन्द्रीय सरकारी विभागोंकी शाखाओं तथा स्थानीय कार्यालयोंके वर्तमान कर्मचारी १९६६–६७ तक पूरा कर लें, इसकी भी जिम्मेदारी स्वराष्ट्र मन्त्रालयकी है।

६. डाक तार मंत्रालय

१—हिन्दीमें तार भेजनेकी योजना सन् १९४९ में शुरू की गई थी। आज हजारों तारघरोंमें हिन्दी तार भेजनेकी व्यवस्था हो गई है। मद्रासमें तथा दक्षिणमें भी हिन्दीमें तार करनेकी व्यवस्था है। इन तारघरोंसे देवनागरीमें लिखे हुए किसी भी भारतीय भाषाके तार भेजे जा सकते है। हिन्दीमें बधाईके तार, जरूरी तार, स्थानीय तार, फोनोग्राम, और तारसे मनिआर्डर भेजे जा सकते है और रियायती दर पर 'तारके पते' रजिस्टर्ड कराए जा सकते है।

२—कई केन्द्रोंमें हिन्दी-मोर्स, प्रणालीकी शिक्षा दी जाती है और हजारों आदमियोंको उसमें प्रशिक्षित किया जा चुका है।

३—डाकतारकी जेबी गाइड हिन्दीमे प्रकाशित होती है। हिन्दी क्षेत्रोंमें टेलीफोन डायरेक्टरी भी हिन्दीमें छप रही है।

४—डाकतार मण्डलने सिद्धान्ततः यह भी स्वीकार कर लिया है कि हिन्दीके लिए जो प्रशिक्षण-वर्ग चलाए जा रहे है उनमें उपयोग करनेके लिए पाठ्य-पुस्तकें निःशुल्क दी जाएँ। साथ ही गृह-मन्त्रालय द्वारा ली जानेवाली परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेवाले अपने कर्मचारियोंको नकद पुरस्कार भी दिए जाएँ।

५—पोस्टकार्डों, अन्तर्देशीय पत्रों, जवाबी कार्डों तथा स्थानीय कार्डोंपर हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों भाषाओंमें विवरण लिखा रहता है।

७. सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय

हिन्दीके व्यवहारमें केन्द्रीय सरकारके सूचना और प्रसारण मंत्रालयने महत्वपूर्ण योग दिया है। इसके विभिन्न विभागोंमें तेजीसे हिन्दीकी प्रगति हो रही है।

(१) प्रेस सूचनाओंको शीघ्रतासे हिन्दी समाचार पत्रों तक पहुँचानेके लिए सूचना कार्यालयने हिन्दी टेलीप्रिंटरका सर्वप्रथम-पत्र उपयोग किया। राजधानीसे जारी होनेवाली विज्ञप्तियोंको हिन्दी टेलीप्रिंटरसे लखनऊ क्षेत्रीय कार्यालयमें भेजा जाता है जहाँसे वे उस क्षेत्रके हिन्दी पत्रोंको दी जाती है। जब हिन्दी टेलीप्रिंटर मशीनें तैयार हो जाएँगी तब यह काम और भी तेजीसे विस्तृत होगा।

(२) सूचना मंत्रालयके प्रकाशन द्वारा 'भारत' नामक एक वर्ष-पुस्तिका निकाली जाती है। हिन्दीमें अपने ढंगका यह एक ही प्रकाशन है।

(३) विज्ञापन तथा दृश्य विभागने अच्छी छपाई की प्रतियोगिताओं और प्रदर्शनियोंका उपक्रम शुरू किया है। उससे भारतीय मुद्रणको, विशेषकर हिन्दी मुद्रणको प्रोत्साहन मिला है। सबसे अच्छी छपाई वाले समाचार-पत्रको छपाई पुरस्कार दिए जाते हैं।

(४) आकाशवाणी रेडिओ द्वारा हिन्दीकी जो सेवा हो रही है, वह सर्वविदित है ही। हिन्दीमें राष्ट्रीय कार्यक्रम, हिन्दी सीखने वालोंके लिए रेडिओसे हिन्दी पाठ, हिन्दी माध्यमसे सर्वभाषा कवि सम्मेलन उसके कुछ उल्लेखनीय आयोजन हैं। हिन्दी समाचार, समाचार समीक्षा, कथा, कहानी, एकांकी, काव्य संगीत आदि विविध कार्यक्रम तो हैं ही।

(५) आकाशवाणीकी हिन्दी विषयक सलाह देनेके लिए एक सलाहकार समिति श्री श्रीप्रकाशजीके सभापतित्वमें हाल ही में गठित की गई है।

(६) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालयही ऐसा मंत्रालय है जहाँ किसी भी मंत्रालयकी अपेक्षा बहुत अधिक पत्र हिन्दीमें प्राप्त होते हैं। उन पत्रोंके उत्तर भी प्रायः हिन्दीमें दिए जाते हैं।

(७) आकाशवाणीने अपने कर्मचारियोंको राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद' परीक्षा उत्तीर्ण कर लेनेपर विभागीय हिंदी परीक्षा में बैठनेसे मुक्त कर दिया है।

८. परराष्ट्र मन्त्रालय

परराष्ट्रोंसे व्यवहारमें अधिकाधिक हिन्दी पर जोर दिया जा रहा है। दूसरे देशोंमें नियुक्त होने-वाले भारतीय राजदूत और राजनीतिज्ञ अपने विश्वास-पत्र हिन्दीमें प्रयुक्त करते हैं। प्रधान-मंत्रीकी ओरसे अन्य देशोंको जो औपचारिक निमंत्रण पत्र भेजे जाते है उनकी मूल प्रति पार्चमेंटपर हिन्दीमें सुन्दर अक्षरोंसे लिखी जाती है। परराष्ट्र सेवामें नव नियुक्त अधिकारियोंको तथा प्रोबेशनरोंको अपना अभ्यास काल पूरा करने पर हिन्दीकी परीक्षा पास करनी होती है।

राज्य सरकारों द्वारा किया गया कार्य

१. उत्तर प्रदेश

प्रारम्भसे ही इस राज्यके विभिन्न क्षेत्रोंके लोग हिन्दी भाषाका प्रयोग करते आए हैं। सन् १८३७ तक न्यायालयोंमें फारसी लिपि और फारसी भाषा प्रयुक्त होती रही। उसके बाद न्यायालयकी भाषा हिन्दुस्तानी हो गई, लिपि अलबत्ता फारसी रही। सन् १९०० में उत्तरी पश्चिमी प्रान्तके लेफ्टिनेंट गवर्नर और अवधके कमिश्नरने आवेदन-पत्र, शिकायत, सम्मन आदिमें देवनागरी लिपिकी छूट दे दी थी। १८ अप्रैल १९०० के एक सरकारी संकल्पमें आदेश था कि विशुद्ध रूपसे अंग्रेजी कार्यालयोंके अतिरिक्त अन्य किसी कार्यालयमें . . . कोई भी व्यक्ति किसी भी पद पर तब तक नियुक्त नहीं किया जाएगा जबतक वह हिन्दी और उर्दू दोनों ही न जानता हो। बादमें उच्च न्यायालय तथा अवधके न्यायिक आयुक्तने आदेश निकाले कि भविष्यमें सभी प्रतिवाद-पत्र तथा लिखित कथन हिन्दी भाषामें तथा देवनागरी लिपिमें लिखे हुए उत्तर पश्चिमी प्रान्त तथा अवधकी समस्त अधीनस्थ दीवानी अदालतोंमे स्वीकार किए जाएँगे।

हिन्दुस्तानी अकादमी

२० जनवरी सन् १९२७ को एक सरकारी संकल्प द्वारा सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षतामें हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना की गई। अकादमीके काम थे—

(१) विशिष्ट विषयोंकी सर्वोत्तम पुस्तकों पर पुरस्कार देना।

(२) वैतनिक अनुवादों द्वारा पुस्तकोंका हिन्दी तथा उर्दूमें अनुवाद करना और अकादमीके माध्यमसे उन्हें प्रकाशित करवाना।

(३) विश्वविद्यालयों तथा साहित्यिक संस्थाओं आदिको दिए गए अनुदानसे मौलिक अथवा अनूदित पुस्तकोंकी रचनाको प्रोत्साहित करना।

(४) अकादमीकी फेलोशिपके लिए विख्यात लेखकोंका चुनाव करना।

अकादमीके लिए एक आवर्त्तक अनुदानकी व्यवस्था की गई थी।

गव्हर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट, १९३५के अन्तर्गत बनी नई विधान सभामें सभापतिने निम्नलिखित कार्योंके लिए हिन्दीका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया—

(१) कार्यक्रम तथा कार्यवाहियाँ हिन्दीमें भी हों।

(२) सदस्य विकल्प रूपसे हिन्दीमें भी बोल सकते हैं।

(३) पेश होनेवाले विधेयक तथा प्रतिवेदन हिन्दीमें भी प्रस्तुत किए जाएँ।

(४) प्रश्नोंके उत्तर हिन्दीमें भी छापे जाएँ।

इसका परिणाम यह हुआ कि विधान सभा विभागमें एक अलग अनुवाद तथा कार्यवाही अनुभाग की स्थापना की गई।

प्रदेशमें कांग्रेस मंत्रिमण्डलकी स्थापनाके बाद सन् १९३७ में मंत्रियों तथा अधिकारियोंके पास आनेवाली हिन्दी याचिकाओंके अनुवादके लिए जो अनुवाद विभाग बनाया था, उसीके जिम्मे अंग्रेजीसे हिन्दी अनुवादका काम भी सौंप दिया गया था।

जनताको सरकारके राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी कार्योंसे परिचित करानेके लिए शासनने सूचना-विभागमें एक अलग हिन्दी अनुभाग खोला। इसके फलस्वरूप प्रेस विज्ञप्तियां नोट आदि हिन्दीमें प्रकाशित होने लगे तथा कई प्रचार-पुस्तिकाएं भी हिन्दीमें छपीं।

हिन्दी राजभाषा घोषित

(अ) अक्टूबर १९४७ में हिन्दी राज्यकी राजभाषा घोषित की गई, और सरकारी कर्मचारियोंके पथ-प्रदर्शनके लिए विस्तृत अनुदेश जारी किए गए।

(आ) भारतके संविधानके अनुच्छेद ३४८ खण्ड (३) के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश विधान मण्डलने उत्तर प्रदेश (विधेयक तथा अधिनियम) अधिनियम, १९५० स्वीकृत किया जिसके अन्तर्गत विधान-मण्डलमें सभी विधेयक तथा अधिनियम वेदनागरी लिपिमें लिखित हिन्दीमें प्रस्तुत एवं पारित किए जाते है।

(इ) संविधानकी धारा ३४५ में और विषयोंके अतिरिक्त यह व्यवस्था है कि राज्य विधान-मंडल राज्यके राजकीय प्रयोजनोंके लिए देवनागरी लिपिमें हिन्दीको अंगीकृत कर सकता है। इस व्यवस्थाके अनुसार उत्तर प्रदेश विधान मण्डलने १९५१में उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५१ में पारित किया। इस अधिनियमकी धारा २ के अन्तर्गत राज्यपालने घोषित किया कि १ नवं. १९५२ से निम्नलिखितके सम्बन्धमें देवनागरी लिपिमें हिन्दीका प्रयोग होगा––

(१) संविधानके अनुच्छेद २१३ के अधीन प्रचारित अध्यादेश।

(२) संविधानके अधीन अथवा संसद या राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसीके अधीन राज्य सरकार द्वारा प्रचारित आज्ञा, नियम, विनिमय, उपविधि इ.

विधान सभाकी भाषा हिन्दी

उत्तर प्रदेश विधान सभाने भी संविधानके उपबन्धोंके अन्तर्गत अपने कार्य-संचालन प्रक्रियाकी जो नियमावली बनाई है उसमें यह व्यवस्था की है कि विधान सभाका कार्य देवनागरी लिपिमें लिखित हिन्दी भाषा ही में होगा। विधान परिषदने भी अभी हालमें अपनी कार्य-संचालन प्रक्रिया सम्बन्धी नियमावलीमें इसी नियमका अनुसरण किया है, यद्यपि विशिष्ट मामलोंमें सभापतिकी अनुमतिसे अँग्रेजीमें भी भाषण दिए जा सकते हैं, यदि कोई सदस्य हिन्दीसे अनभिज्ञ हो।

न्यायालयोंमें हिन्दी

राज्य सरकारने हिन्दीको इस प्रदेशकी दीवानी और फौजदारी अदालतोंकी भाषा जाव्ता दीवानीकी धारा १३७ और जाव्ता फौजदारीकी धारा ५५८ द्वारा प्रदत्त अधिकारोंका प्रयोग करके घोषित की है।

उच्च न्यायालयके अधीनस्थ अदालतोंके निर्णयों '(Judgements)को छोड़कर करीब-करीब अन्य सभी कार्यवाही हिन्दीमें होती है जैसे अदालतोंमें रजिस्टर, डायरियाँ आदि हिन्दीमें भी जाती है, गवाहोंके बयान आदि हिन्दीमे लिखे जाते हैं और मुकदमोंकी सभी मिसलें हिन्दीमें तैयार होती है। जब तक उच्च न्यायालयकी भाषा भी हिन्दी नहीं घोषित हो जाती (और यह भारत सरकार की मंज़ूरी प्राप्त करके ही किया जा सकता है), अधीनस्थ अदालतोंमे निर्णयोंका हिन्दीमें लिखा जाना आमतौर पर सुविधाजनक नहीं होगा। फिर भी निर्णयोंको हिन्दीमे लिखनेके लिए कोई रुकावट नही है और कभी-कभी वे हिन्दीमें ही लिखे जाते है।

सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दीकी प्रगतिके लिए किए गए उपाय

सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दीकी प्रगति बढ़ानेके निम्नलिखित उपाय किए गए है :—

(१) हिन्दीके लिए पदेन अधिकारी :—सचिवालय विभागाध्यक्षों तथा कार्यालयाध्यक्षोके कार्यालय आदिमें हिन्दीकी प्रगति समुचित रूपसे हो रही है अथवा नही यह देखनेके लिए

(२) साथही सरकारने हेडक्वार्टर्स पर एक विशेष कार्याधिकारी (हिन्दी) की नियुक्ति की है जो प्रदेशके सरकारी कार्यालयोंका निरीक्षण करके सरकारको हिन्दी सम्बन्धी मामलोंसे सम्बन्धित सरकारी कार्यालयोंकी प्रगतिकी रिपोर्ट भेजता रहे। यह अधिकारी यह भी देखता है कि विभिन्न कार्यालयों तथा विभागोंमे हिन्दी सम्बन्धी आदेशोंका किस हद तक अमल होता है।

(३) प्रत्येक कार्यालयमें एक हिन्दी पुस्तकालय स्थापित करनेकी व्यवस्था की गई है।

(४) अधिकारीका पदनाम (Designation) और विभागोंके नाम हिन्दीमे निर्धारित कर दिए गए है और कार्यालयकी टिप्पणियों, पत्र-व्यवहार, पर्चियों आदिमे और तख्तियों आदिमें इन्ही हिन्दी पर्यायोंका प्रयोग करनेके'आदेश' दिए गए है।

(५) जनतासे प्राप्त आवेदन-पत्रका उत्तर हिन्दीमें दिया जाता है।

(६) आदेश है कि निम्नलिखित पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें सभी अनुस्मारक और पत्र प्राप्ति हिन्दीमे लिखी जाएँ—

(१) अन्तर्विभागीय पत्र-व्यवहार,

(२) विभिन्न विभागाध्यक्षोंसे शासनको आने वाला पत्र-व्यवहार और शासनसे विभिन्न विभागाध्यक्षोंको जानेवाला पत्र-व्यवहार।

(३) सामान्य प्रकारका सरकारी पत्र-व्यवहार और उससे सम्बन्धित टिप्पणी, पुस्तकोंके लिए अपेक्षण पत्र और लेखन-सामग्री मंगानेके लिए अपेक्षण-पत्र हिन्दीमें लिखे जाएं।

(७) लिफाफों पर पते हिन्दीमें हों।

(८) वैभागिक प्रतिवेदन आदि हिन्दीमे भी प्रकाशित हों।

(९) तारोंको हिन्दीमें भेजनेकी व्यवस्था की गई है और समाचार-पत्रोंके लिए हिन्दीमें प्रेस टलीग्राफ सर्विसकी व्यवस्था भी कर दी गई है।

(१०) समाचार-पत्रोंको विज्ञापन, टेण्डर, नोटिसें, समन आदि हिन्दीमें दिए जाते हैं और वे हिन्दीमें छपते हैं। सरकारी नौकरीमें भर्तीके लिए लोक सेवा आयोग द्वारा जो विज्ञापन निकाले जाते हैं, वे हिन्दीमें ही होते हैं ।

(११) कार्यालयोंकी मुहरें, रबर की मुद्राएँ, चपरासियोंके बिल्ले आदि हिन्दीमें है।

(१२) सभी कार्यालयोंमें नाम-पट्टे, सूचनाएँ इत्यादि हिन्दीमें ही होनी चाहिए।

सचिवालयके विभागोंमें कार्यवाही

विशेषकर सचिवालयके विभागोंमें निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की गई हैं—

(१) सचिवालयके सूचना विभाग, पंचायत राज विभाग, विधान सभा विभाग, शिक्षा विभाग और भाषा विभागमें प्रायः सम्पूर्ण कार्य हिन्दीमें होनेके आदेश हुए हैं।

(२) सरकार द्वारा भेजे जाने वाले परिपत्र हिन्दीमें भी तैयार होने चाहिए। यदि कोई ऐसा परिपत्र भेजना हो, जिसका सम्बन्ध वित्तीय मामलोंसे हो और जिसकी प्रति महालेखापालको भेजनी हो, तो भी उसे हिन्दी ही में भेजनेका प्रयत्न किया जाना चाहिए और उसके साथ एक अंग्रेजी प्रति लगा दी जानी चाहिए।

इस आशयके आदेश जारी कर दिए गए हैं कि सचिवालयसे विभागाध्यक्षोंको और विभागाध्यक्षोंसे अधीनस्थ कार्यालयोंको जो भी पत्र, परिपत्र या आदेश जारी किए जाएँ वे यथासम्भव हिन्दीमें ही हों जिससे कि शीघ्रसे शीघ्र सरकारी काम हिन्दीमें ही होने लगे।

(३) विधान सभाके प्रश्नों तथा प्रस्तावोंके सम्बन्धमें टिप्पण-कार्य तथा पत्र-व्यवहार यथासम्भव हिन्दीमें होना चाहिए।

(४) संविधानके अनुच्छेद ३४६ के अन्तर्गत बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान सरकारोंसे एक करारनामा हो गया है जिसके अनुसार इन सरकारोंके बीच सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार हिन्दीमें किया जाना चाहिए।

(५) सरकारी समितियोंकी कार्यवाही हिन्दीमें तैयार हों।

प्रदेशके अधीनस्थ कार्यालयों तथा जिलोंके स्थानीय कार्यालयोंको आदेश

प्रदेशके अधीनस्थ कार्यालयों और जिलोंके स्थानीय कार्यालयोंमें भी हिन्दीमें पूर्ण रूपसे कार्य करनेके लिए आदेश दिए गए हैं। इसमें जो प्रगति हुई है, वह नीचे दी हुई है:—

(१) विभागाध्यक्षोंके कार्यालयोंमें भी हिन्दीमें काम करनेका धीरे-धीरे अभ्यास किया जा रहा है और उन मदोंमें भी, जिनका उल्लेख "(क)" सामान्यमें किया गया है, काम यथासम्भव हिन्दीमें किया जाता है।

(२) जिला दफ्तरोंमें अधिकतर कार्य हिन्दीमें होता है जैसा कि नीचे बताया गया है:—

(१) जिला दफ्तर—सभी कर्मचारियोंने हिन्दीका काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दफ्तरका अधिकांश काम भी हिन्दी भाषामें किया जाता है। नियोजन, पंचायत, जमीदारी उन्मूलन कार्यालयों आदि जिनका सम्बन्ध सीधा जनतासे है, हिन्दीमें ही काम होता है।

(२) तहसील——यहाँ भी अधिकतर काम हिन्दीमें किया जाता है।

(३) नगरपालिका——यहाँ भी अधिकतर हिन्दीका ही प्रयोग होता है।

(४) गाँवों–गाँवोंमें सम्पूर्ण काम हिन्दीमें होता है।

प्रोत्साहनार्थ किए गए उपाय

कर्मचारियोंको दिए गए आदेश तथा उनको हिन्दी प्रयोग करनेके लिए प्रोत्साहित करनेके हेतु नीचे दिए गए उपाय किए गए है :——

(१) सभी कर्मचारियोंसे हिन्दी सीखनेके लिए कहा गया है और यह भी कहा गया है कि वे अपना सारा कार्य हिन्दीमे ही करें।

(२) सरकारी कर्मचारियोसे कहा गया है कि वे अपने आवेदन-पत्र यथासम्भव हिन्दी ही में दें। इसी प्रकार सभी विभागों तथा कार्यालयोंसे कहा गया है कि वे ऐसे आवेदन-पत्रोंपर दिए गए आदेशोंकी सूचना हिन्दीमें ही देनेका प्रयत्न करें।

(३) सचिवालयके सभी कर्मचारियोंके लिए दक्षता-रोक पार करने तथा वार्षिक वेतन-वृद्धि पानेके लिए २५ शब्दोंकी हिन्दी टाइपिंगका ज्ञान होना आवश्यक कर दिया गया है।

(४) हिन्दीमें अच्छा ज्ञान रखने वाले तथा हिन्दीकी प्रगतिमें विशेष योग देनेका कर्मचारियोंको प्रोत्साहन देनेके लिए उनकी आचरणावलियोंमें इस आशयकी विशेष प्रविष्टियाँ की जाएँ और पदोन्नतिके समय इन पर विशेष ध्यान दिया जाए।

(५) सचिवालयके कर्मचारियोंको हिन्दी आशुलिपि तथा हिन्दी टंकन सीखनेकी सुविधाएँ दी जाएँ। पहले ये कर्मचारी केवल कार्यालयके घंटोंके बाद या पहले ही हिन्दी आशुलिपि और टंकन सीख सकते थे, परन्तु अब उन्हें कार्यालयके घंटोंके भीतर इन्हें सीखनेकी सुविधा दी गई है। यदि आवश्यकता हो तो सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी स्टेनोग्राफी तथा हिन्दी टाइप सीखनेके लिए अध्ययन-अवकाश भी दिया जाए।

नोट——सचिवालयमें हिन्दी टंकन कक्षाएँ १९५५ से प्रारम्भ हुई है। अबतक बहुतसे कर्मचारी हिन्दी टंकन सीख चुके हैं। हिन्दी आशुलिपिकी कक्षाएँ १९५६ में खोली गई थीं और अबतक काफी सख्यामें कर्मचारीगण हिन्दी स्टेनोग्राफी सीख चुके है।

सचिवालयमें जो मौजूदा हिन्दी आशुलिपि तथा टंकक है उनके लिए भी हिन्दी शार्टहैण्ड तथा हिन्दी टाइप राइटिंग सीखना आवश्यक कर दिया गया है।

कर्मचारियोंके लिए उपयोगी प्रकाशन

शासनने कर्मचारियों आदिको हिन्दीमें कार्य करनेमें कार्य कुशलता प्राप्त करनेके लिए कई उपयोगी प्रकाशन निकाले है। इनका विवरण नीचे दिया गया है——

१——"हिन्दी निर्देशिका" नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की गई। इस पुस्तिकामें सरकारी कर्मचारियोंके लिए हिन्दी सम्बन्धी सामग्री संग्रहीत है, जिसमें और बातोंके अतिरिक्त, टिप्पण, आलेखन और

अनुवादके सम्बन्धमें सुझाव और नमूने दिए गए हैं और एक संक्षिप्त विविध तथा प्रशासकीय शब्दावली भी दी गई है।

२—बादमें एक और पुस्तिका सामान्य अँग्रेजी वाक्यांशोंके हिन्दी पर्यायके नामसे अप्रैल, १९५८ में प्रकाशित की गई। इस पुस्तिकाकी प्रतियाँ भी विभागाध्यक्षों इत्यादिको बहुसंख्यामें बाँटी गईं।

३—इसके अतिरिक्त, राज्यकी पुनर्गठित हिन्दी शब्दकोश समितिने पारिभाषिक शब्दोंकी एक शब्दावली तैयार की है।

प्रपत्र, प्रतिवेदन, नियमिकाएँ, सेवा नियमावलियाँ हिन्दीमें

प्रपत्रों, प्रतिवेदनों, नियमिकाओं, सेवा नियमावलियों आदिके सम्बन्धमें शासनने १९४७ से ही ये आदेश दे दिए थे कि इनके हिन्दी रूपान्तर शीघ्रातिशीघ्र तैयार किए जाएँ ताकि सरकारी काममें हिन्दीका प्रयोग अधिकाधिक बढ़ जाए। इस सम्बन्धमें वर्तमान स्थिति इस प्रकार है—

सचिवालयके प्रायः सभी प्रपत्रों और पंजियोंका हिन्दी रूपान्तर हो गया है और हिन्दीमें छप भी गए हैं। इनमें लेखा तथा वित्त सम्बन्धी प्रपत्र शामिल नहीं हैं।

विभागाध्यक्षों आदिके कार्यालयोंके अधिकतर प्रपत्रोंका हिन्दी रूपान्तर एक विशेष कार्याधिकारी द्वारा करा लिया गया है।

आदेश जारी किए गए हैं कि सभी प्रपत्र चाहे वे अँग्रेजीमें हों या हिन्दीमें हों, कार्यालयोंमें हिन्दी ही में भरे जाएँ। इसीप्रकार सभी प्रकारकी पंजियोंको भी हिन्दीमें भरे जानेके भी आदेश दिए गए हैं।

२—वार्षिक प्रतिवेदनों आदिका प्रकाशन हिन्दीमें हो।

३—सरकार द्वारा निर्मित सेवा नियमावलियाँ हिन्दीमें भी प्रकाशित होती हैं।

सन् १९४७ से ही शासनने निम्नलिखित कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कर दी—

१—विधान सभामें प्रस्तुत किया जानेवाला सम्पूर्ण आय-व्ययक (बजट) साहित्य जिसमें पाँच खण्ड सम्मिलित होते हैं हिन्दीमें भी तैयार होता है। इसके साथ सार्वजनिक लेखा समितिकी कार्यवाहियाँ तथा विनियोग लेखे तथा लेखा परीक्षण प्रतिवेदन हिन्दीमें छापे जाते हैं।

२—राज्य सरकारके गजटका एक पृथक् हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित होता है जिसमें सरकारी सूचनाएँ, विज्ञप्तियाँ, घोषणाएँ, आदि प्रकाशित होती हैं।

३—पुलिस गजट भी हिन्दीमें प्रकाशित होता है।

४—विभिन्न विभागों द्वारा वैभागिक मासिक तथा त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी हिन्दीमें प्रकाशित हो रही हैं। इनमें 'त्रिपथगा, पंचायत राज, शिक्षा, जनसेवक, तथा नवयुवक' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सूचना विभागका काम हिन्दीमें

सूचना-विभागका सारा प्रख्यापन कार्य हिन्दीमें होता है। यह विभाग शासनके विभिन्न विभागोंके कार्यपर हिन्दीमें पुस्तिकाएँ निकालता है। "उपयोगी रिसाले" नामक पुस्तिकाएँ भी इसी

विभाग द्वारा प्रकाशित होती हैं। प्रेस विज्ञप्तियाँ, विज्ञापन आदि हिन्दीमें तैयार किए जाते हैं। अन्य विभागोंका भी प्रख्यापन कार्य अधिकतर हिन्दीमें ही होता है। कुछ विभागोंका प्रकाशन कार्य तो प्रायः सभी हिन्दीमें होता है, जैसे कृषि विभाग, पंचायत राज विभाग और नियोजन विभागका प्रकाशन कार्य।

सूचना विभागकी हिन्दी समिति, हिन्दी साहित्यके अलभ्य ग्रन्थों एवं पाठ्य-पुस्तकोंके प्रकाशनकी योजनाको पूरा करनेमें लगी है। इस कार्यक्रमपर चालू योजनामें २० लाख रुपए व्यय का अनुमान है। अलभ्य ग्रन्थोंमें ३०० ग्रन्थोंको और पाठ्य-पुस्तकोंमें १४५ पुस्तकोंको प्रकाशित करनेकी योजना है।

सरकारी नौकरीके उम्मीदवारोंके लिए आदेश

शासनने सरकारी नौकरियोंमें भर्ती होनेवाले उम्मीदवारोंके लिए निम्न लिखित आदेश जारी किए हैं—

१—सरकारी नौकरियोंमें भर्तीके वास्ते उम्मीदवारोंके लिए हिन्दीका ज्ञान होना आवश्यक है।

२—जिन नौकरियोंमें भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षा लेकर की जाती है उनमें हिन्दीको एक अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

३—आयोगने अपने परीक्षार्थियोंको अँग्रेजीको छोड़कर अन्य प्रश्न-पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें लिखनेकी सुविधा भी प्रदान की है।

४—इसी प्रकार आशुलिपिकों (स्टेनोग्राफरों) की भर्तीके लिए यह नियम बना दिया गया है कि उन्हें हिन्दी आशुलिपिका भी यथेष्ट ज्ञान हो।

५—टाइपिस्टोंकी जगहोंके लिए भर्तीमें भी हिन्दी टंकनका ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया है।

शिक्षा-क्षेत्रमें हिन्दी

शिक्षाके क्षेत्रमें हिन्दीके सम्बन्धमें निम्नलिखित कार्यवाही की गई है—

१—प्रारम्भिक (प्राइमरी), जूनियर हाइस्कूल, माध्यमिक तथा इण्टरमिडिएट कक्षाओंका शिक्षण तथा परीक्षाका माध्यम हिन्दी है। तीसरी कक्षासे अहिन्दी भाषी छात्रोंके लिए हिन्दी अनिवार्य विषय है।

२—**विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीको स्थिति**—विश्वविद्यालयोंमें भी बी. ए. तथा एम. ए. में हिन्दी अध्ययनका विषय है। कुछ समय पश्चात्, सभी विश्वविद्यालयोंमें अनिवार्य रूपसे शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो जाएगा। अभी भी विश्वविद्यालयोंकी उन कक्षाओंमें जहाँ विद्यार्थी हिन्दीमें पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं, हिन्दीमें ही पढ़ाई होती है। विद्यार्थियोंको परीक्षाओंमें प्रश्न-पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें लिखनेकी अनुमति भी दी गई है।

इसके अतिरिक्त, आगरा विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक इंस्टिट्यूट भी स्थापित किया गया है जहाँ हिन्दीमें गवेषणाकी विशेष सुविधा है।

३—गैर सरकारी हिन्दी संस्थाओंकी डिग्रियोंको मान्यता देना–गैर सरकारी संस्थाओं जैसे, काशी नागरी-प्रचारणी सभा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, महिला-विद्यापीठ, अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ, जो हिन्दीके प्रसारमें योग दे रही हैं, इनके द्वारा प्रदत्त डिग्रियोंको शासनने मान्यता प्रदान कर दी है।

हिन्दी साहित्यका विकास तथा विश्व-विद्यालयीन पाठ्यक्रमकी पुस्तकोंका निर्माण

हिन्दी साहित्यके विकास और कला, साहित्य और विज्ञानमें कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंकी कक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करानेके उद्देश्यसे शासनने निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की हैं—

१—**पुरस्कार देनेकी योजना**—हिन्दीके विकासको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे राज्य सरकारने साहित्यिक अथवा वैज्ञानिक ग्रन्थों या विशिष्ट प्रकारकी रचनाओंके लिए पुरस्कार देनेकी योजना चलाई।

२—**हिन्दी लेखकों और विद्वानोंकी वित्तीय सहायता**—ऐसे लेखकों एव विद्वानोंको आर्थिक सहायता देनेके लिए, जिनकी वित्तीय दशा बीमारीके कारण या किन्हीं अन्य कारणोसे बहुत खराब हो गई हो, व्यवस्था की है।

३—**हिन्दी प्रकाशकोंको वित्तीय सहायता**—इसी प्रकार कला, साहित्य या विज्ञान सम्बन्धी मौलिक रचनाओंके प्रकाशनको वित्त पोषित करनेके लिए भी राज्य सरकार हिन्दी प्रकाशनोंको इस प्रयोजनके लिए वित्तीय सहायता देती है।

४—**हिन्दी मन्त्रणा समितिकी स्थापना**—उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए राज्य सरकारने हिन्दी मन्त्रणा समितिकी स्थापना की है। इसकी स्थापना १९४८ में की गई थी।

५—**हिन्दी साहित्य कोषकी स्थापना**—उपर्युक्त मद १, २ और ३ के अन्तर्गत जो पुरस्कार आदि दिए जाते हैं, वे शासन द्वारा स्थापित हिन्दी साहित्य कोषसे दिए जाते हैं जिसके लिए एक विशिष्ट नियमावली बना दी गई है।

हिन्दीको लोकप्रिय बनानेके लिए किए गए काम

हिन्दीको लोकप्रिय बनाने तथा उसके साहित्यको समृद्ध करनेके लिए जो विविध कार्यवाहियाँ की गई हैं, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है—

(क) राजकीय कार्योंमें हिन्दीकी शैली तथा भाषा सरल हो। इस सम्बन्धमें राज्य सरकारने १९५४ में विधान परिषदमें पारित इस आशयके गैर-सरकारी प्रस्तावको मान लिया कि हिन्दी भाषाको जीवित व जागृत बनाए रखने और उसके शब्दकोशमें वृद्धि करनेके लिए आजकलके प्रचलित ऐसे शब्दोंको, जिन्हें सब शिक्षित व अशिक्षित आसानीसे समझ सकते हैं, ज्यों का त्यों सरकारी काममें प्रयोग होनेवाली हिन्दी भाषामें सम्मिलित कर लिया जाए।

सन् १९५२ के अपने राजकीय आदेशमें भी राज्य सरकारने यह स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दीके माने उस सरल जबानसे है जो देश में और इस प्रदेशमें बोली जाती है। लिपि नागरी होगी और जबान आसान और सरल होगी। पारिभाषिक शब्द नागरी या रोमन लिपिमें लिखे जा सकते हैं।

(ख) **देवनागरी लिपिमें सुधार**—देवनागरी लिपिमें सुधार करनेके लिए राज्य सरकारने सबसे पहले १९५३ में एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया था जिसने एक नई लिपि तैयार की। इस लिपिमें कुछ दोष पाए जानेपर राज्य शासनने १९५७ में एक दूसरा सम्मेलन बुलाया और इन दोषोंको दूर करनेका निर्णय किया।

(ग) **हिन्दी प्रकाशन योजना**—हिन्दी साहित्यका विकास करने तथा उसे समृद्ध बनानेके लिए, राज्य सरकारने अप्रैल, १९५५ से द्वितीय-पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत एक हिन्दी प्रकाशन योजना चालू की है। संगीत, नृत्य तथा नाटकों जैसी कलाओंमें अच्छी पुस्तकोंकी कमीको देखते हुए यह निश्चय किया गया है कि इन विषयोंकी पुस्तकोंके प्रकाशनपर विशेष जोर दिया जाए। योजनाके अन्तर्गत लगभग ३०० पुस्तकोंके प्रकाशनका आयोजन था जिनमें लगभग १०० मौलिक ग्रन्थ, १०० अन्य साहित्योंकी पुस्तकोंके अनुवाद और १०० सामान्य विषयकी पुस्तकें होंगी। इस योजना पर कुल व्यय लगभग २५ लाख रुपया होगा।

(घ) **हिन्दी-बाल-साहित्यका प्रकाशन**—भारत सरकारकी योजनाके अन्तर्गत, उपयुक्त हिन्दी-बाल साहित्यके तैयार करनेकी एक योजना बनाई गई है जिसे द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें सम्मिलित कर लिया गया है। इस योजनाके अधीन प्रत्येक वर्ष १२ पुस्तकें गैर-सरकारी लेखकों द्वारा लिखवानेका प्रस्ताव है। इस सम्बन्धमें लेखकोंपर तथा प्रकाशकों द्वारा लिखित तथा प्रकाशित पुस्तकोंपर भी पुरस्कार देनेका प्रस्ताव है।

(ङ) **पुराण कोश समितिकी स्थापना**—हिन्दी समितिके तत्वावधानमें पुराण कोशका संकलन करनेके लिए एक पुराण कोश समिति स्थापित की गई है। इस समितिने १५ सितम्बर, १९५७ से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

(च) **लोक-साहित्यके पुनरुद्धार तथा प्रकाशनके लिए समितिकी स्थापना**—शासनको लोक गीतोंके सुधारसे सम्बन्धित मामलोंमे सलाह देनेके लिए और उनके प्रकाशनमें सहायता देनेके लिए सरकारने एक लोक-साहित्य सुधार समिति स्थापित की है। इस समितिने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं और बहुतसे लोक-गीतोंके ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार कराए हैं।

(छ) **हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना**—शासनने १९२७ ई. में इलाहाबादमें हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना की थी। हालमें इसका पुनस्संगठन किया है। इसने बहुतसे हिन्दीके उत्कृष्ट ग्रन्थ निकाले हैं।

(ज) ऊपर दी गई कार्यवाहियोंके अतिरिक्त मिम्नलिखित अन्य कार्यवाहियाँ भी की गई हैं :—

(क) अँग्रेजी टाइपराइटरोंके स्थानपर हिन्दी टाइपराइटरोंका क्रय:—केवल हिन्दी टाइपराइटर ही क्रय किए जाते हैं, अँग्रेजी टाइपराइटरोंके क्रयके लिए शासनकी स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया है।

(ख) रीतिक अवसरोंके निमंत्रण-पत्र तथा कार्यक्रम हिन्दीमें हों—

(ग) राज्यपाल, मंत्रियों और अधिकारियोंके भाषण, अपील, रेडिओ प्रसारणकी भाषा हिन्दीमें हो।

(ङ) तिथि-पत्री (कॅलेंडर) पंचांग, दैनन्दिनी (डायरी) और छुट्टियोंकी सूची आदि हिन्दीमें हों।

(च) उत्तर प्रदेशके पोस्ट मास्टर जनरलको सरकारी पदनामोंके हिन्दी पर्यायोंकी सूची भेजना।

उत्तरप्रदेश सचिवालयका भाषा-विभाग

उत्तर प्रदेशमें कांग्रेस मंत्रिमण्डलके सत्तारूढ़ होते ही १९३७ ई. के अन्तिम भागमें सचिवालयमें एक अनुवाद विभाग अस्थाई रूपसे कायम किया गया। सन् १९३९ में यह विभाग स्थाई बना दिया गया।

इस विभागका काम, विधान सभा और विधान परिषदके प्रश्नों और उत्तरोंका हिन्दी तथा उर्दूमें अनुवाद, विभागीय प्रतिवेदनों, याचिकाओं, मॅन्युअलों, विधेयकों तथा अधिनियमोंका अनुवाद आदि था। स्वतंत्रताके पश्चात्, जब देवनागरी लिपिमें हिन्दी राजभाषा घोषित हो गई तब उर्दूका काम प्रायः समाप्त हो गया। अब सचिवालयके अन्य विभाग अपना समस्त कार्य इस विभागमें भेजने लगे। सरकारने एक विशेष कार्याधिकारीकी विभाग-प्रशासकके रूपमें नियुक्ति की तथा उसे प्रशासन शब्दावली तैयार करनेका काम भी सौंपा गया। सन् १९५८ जुलाईमें राज्य सरकारने अनुवाद विभागको छोटी छोटी इकाइयोंमें विभाजित करके सचिवालयकी विभिन्न शाखाओं और विभागोंमें हिन्दीकी प्रगतिमें सहायता देनेके अभिप्रायसे संलग्न कर दिया। अनुवादकोंकी इस तरहकी सहायता से सचिवालयके कर्मचारियोंको हिन्दीमें काम करना आ गया।

लेकिन इस विकेंद्रीकरणसे अनुवादोंका काम पिछड़ने लगा तथा उसमें असम्बद्धता आने लगी। इसलिए १५ अक्टूबर १९५९ ई. को फिर एक भाषा-विभाग कायम किया गया। स्थाई और अस्थाई सभी अनुवादक अलग अलग विभागोंसे खींचकर इकट्ठे कर दिए गए। पुनर्गठित भाषा-विभागको तीन अनुभागोंमें बांटा गया

(१) मॅन्युअल और फार्म अनुभाग।
(२) बजट तथा विधायिका अनुभाग।
(३) भाषा (सामान्य) अनुभाग।

प्रत्येक अनुभाग एक विशेष कार्याधिकारीके मातहत काम करता है। इसके अतिरिक्त शब्दकोष समितिको भी विभागका एक अनुभाग घोषित कर दिया गया। इस विभागके कार्य निम्नलिखित हैं:—

(क) भाषा-नीति सम्बन्धी कार्य:—

१—सरकारी काममें हिन्दीके प्रयोगके बारेमें नीति सम्बन्धी विनिश्चय।
२—उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५१ उसके अधीन नियमावलियाँ, विज्ञप्तियाँ, उनकी व्याख्यादि।
३— हिन्दी शब्दकोश।
४—सरकारी कर्मचारियोंके लिए हिन्दी प्रशिक्षाकी व्यवस्था, सचिवालय और डिविजनोंमें हिन्दी आशुलिपिकी तथा टाइपकारी की कथाएँ।
५—सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दी पुस्तकालयोंकी स्थापना।
६—देवनागरी लिपि सुधार और
७—अन्तर्राष्ट्रीय अंकोंका प्रयोग।

(ख) अनुवाद और परीक्षण कार्य—

१—अधिनियम, विधेयक, नियम आदि।
२—प्रशासकीय रिपोर्ट, भाषण आदि।
३—बजट साहित्य।

बिहार

राज्यकी राजभाषा हिन्दी

बिहार हिन्दी भाषी प्रदेश है। यहाँकी राज्य सरकार यह निश्चत अनुभव करती रही थी कि यहाँका राजकाज विशेष सुविधासे तभी चल सकता है, जब यहाँके जन-साधारणकी भाषा हिन्दीको ही उसका माध्यम बनाया जाए। इस बीच हिन्दी देशकी राष्ट्रभाषा मान ली गई। पन्द्रह वर्षोंके अन्दर उसे केन्द्रकी राजभाषा बनानेका भी निर्णय हो गया। अतः बिहार सरकार द्वारा तत्काल ही नागरी लिपिमें लिखी हिन्दीको राजभाषाकी मान्यता दे दी गई।

हिन्दी-समितिका गठन

हिन्दीकरणकी दिशामें तत्परता लाने तथा सुझाव और सलाह देनेके लिए सरकारने सन् १९४८ में हिन्दी समितिका गठन किया। हिन्दीके कुछ चोटीके विद्वान और सरकारके कुछ उच्चाधिकारी इसके सदस्य है।

बिहार राजभाषा अधिनियम

सन् १९५० में बिहार राजभाषा अधिनियम (लैंग्वेज एक्ट) पास किया गया। इसके अनुसार राजकाजमें पूर्णतया हिन्दीकरणकी अवधि दस साल रखी गई। और तबसे सरकार इसके लिए प्रयत्नशील हो गई कि वैधानिक कठिनाईवाले कामोंको छोड़कर शेष काम इसी अवधिमें होने लगे।

प्राथमिक कठिनाइयाँ

इस संकल्पके साथ ही कुछ ऐसी बुनियादी कठिनाइयाँ सामने आई, जिन्हें हल किए बिना इस दिशामें एक कदम बढ़ सकना भी सम्भव न था; यथा अहिन्दी भाषी सरकारी पदाधिकारी और कर्मचारियोंको हिन्दी सिखाना, हिन्दी टिप्पण-प्रारूपणका प्रशिक्षण, शब्दावलीका निर्माण, कोड-मॅन्युअलका हिन्दी रूपान्तर, टंकण-यन्त्रोंकी आपूर्ति, हिन्दी आशुलेखन और टंकणका प्रशिक्षण।

हिन्दी-शिक्षण-केन्द्र

अहिन्दी भाषियोंको यथाशीघ्र हिन्दी सिखानेकी समस्याका हल पहले कर लेना जरूरी था। इसके लिए प्रत्येक जिलेमें अविलम्ब एक-एक हिन्दी शिक्षण-केन्द्र खोल दिया गया। ये केन्द्र लगातार तीन वर्ष तक चलाए गए एवं कर्मचारियोंको भाषाका आरम्भिक ज्ञान कराया गया।

टिप्पण प्रारूपणका प्रशिक्षण

लेकिन भाषाके ज्ञानमात्रसे ही काम नहीं चल सकता—काम-काजकी व्यावहारिक योग्यता अपेक्षित थी। यह व्यावहारिक योग्यता उनके लिए भी जरूरी थी, जिन्हें हिन्दीकी अच्छी योग्यता हो। अतः टिप्पण-

प्रारूपणके प्रशिक्षण-केन्द्र भी खोले गए। आधार ग्रन्थके लिए "प्रशिक्षण व्याख्यानमाला" के दो भाग तैयार कराकर प्रकाशित किए गए।

योग्यता परीक्षा

१९६१ तक लगभग २५ हजार व्यक्ति टिप्पण-प्रारूपणकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं। सिर्फ सचिवालयके ही करीब ६ हजार राजपत्रित और अराजपत्रित पदाधिकारी यह प्रशिक्षण पा चुके हैं। योग्यता परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवालोंकी संख्या ५,७५६ है।

प्रमाण-पत्र वितरण

परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवालोंमें जो विशेष योग्यता दिखाते हैं, प्रोत्साहन के लिए उन्हें पुरस्कृत किया जाता है। प्रति वर्ष एक विशेष समारोहका आयोजन करके उत्तीर्ण होने वाले पदाधिकारियोंको प्रमाण-पत्र दिया जाता है। अब तक केवल सचिवालयके तीन हजारसे अधिक पदाधिकारियोंको यह प्रमाण-पत्र दिया जा चुका है।

शब्दावली-निर्माण

तकनीकी एवं व्यावहारिक शब्दावलीकी कमी हिन्दीकरणके मार्गमें बहुत बड़ी बाधा थी। आधारके लिए डा. रघुवीरका कोश उपलब्ध जरूर था, परन्तु व्यावहारिकताकी दृष्टिसे और भी सहज-सुबोध तथा उपयुक्त शब्दोंकी उपयोगिता महसूस की गई, जिनमें कमसे कम नित्य व्यवहारमे आनेवाले आवश्यक शब्द आ जाएँ। सरकारने "पद और पदाधिकारी" तथा ". प्रशासन-शब्दावली" के प्रकाशनसे तात्कालिक आवश्यकताकी पूर्तिकी, ताकि हिन्दी प्रयोगकी प्रगतिमें रुकावट न आए।

विज्ञ-समिति

शब्दावली-निर्माणका कार्य और उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। इसके लिए यही चेष्टा चरम नहीं। विभिन्न विभागोंके कोड-मँन्युअल, शिक्षा-क्रमके विभिन्न सब विषय सबके उपयुक्त व्यावहारिक शब्दोंका संग्रह और निर्माण है। इस महत्वपूर्ण कार्यके लिए सरकारने विभिन्न विषयोंके विशिष्ट विद्वानोंकी एक "विज्ञ-समिति" बना दी है, जो बड़ी लगन और परिश्रमके साथ इस कामको कर रही है।

अनुवाद विभाग

उतने ही महत्वका और जरूरी काम है कोड-मॅन्युअलका हिन्दी रूपान्तर। यह बहुत समयसापेक्ष और व्ययसाध्य कार्य है। इसके लिए सन् १९५६ से ही अनुवाद विभागका संगठन किया गया, जिसमें राजपत्रित, एवं अयराज पत्रित, कुल ५४ व्यक्ति काम कर रहे हैं। अब तक ५६४ एक्ट एवं ५७ कोड-मँन्युअलका हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

हिन्दी टंकण-यंत्र

हिन्दी टंकण-यंत्रोंकी नितान्त कमी थी। कम्पनियोंने निर्माण भी किया था, तो उसका की-बोर्ड टंकणकी दृष्टिसे सुविधाजनक नहीं था। इसके लिए राज्य-सरकारने बड़ी छानबीनके बाद एक नए की-बोर्ड, मिश्र-की-बोर्डको चुना। इसमें अँग्रेजी की-बोर्डो जैसी सुगमता है। राज्य सरकारने अपने एक प्रतिनिधिको जर्मनी भेजकर ओलिम्पिया कम्पनीसे अपने लिए मशीनें बनवाई। विभिन्न विभागोंको अब तक लगभग ५ हजार हिन्दी टंकण-यंत्र बाँटे जा चुके हैं।

टंकणोंका प्रशिक्षण

टंककोंके प्रशिक्षणके लिए पाँच केन्द्र प्रमण्डलों और सचिवालयोंमें पहले से ही चालू थे—राँची, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, पटना और सचिवालय। अब प्रत्येक जिलेमें एक-एक केन्द्र खोल दिया गया है। कुल मिलाकर १,५९४ टंकक हिन्दी-यंत्र पर काम करनेकी योग्यता प्राप्त कर चुके हैं।

हिन्दी आशुलिपिक

उपर्युक्त केन्द्रोंमें ही हिन्दी आशुलिपि प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। इस अवधिमें १,१०२ आशुलिपिक प्रशिक्षित हो चुके हैं।

राजभाषा-विभाग

राज-काजमें हिन्दी प्रयोगकी सतत प्रगतिके लिए आदेश एवं प्रगतिके निरीक्षण तथा परीक्षणके लिए नियुक्त विभागके अन्तर्गत राजभाषा विभाग नामसे एक अलग विभाग ही स्थापित कर दिया गया है।

हिन्दी-प्रगति-समिति

निरीक्षण कार्यके लिए गैर-सरकारी विद्वानोंकी एक समिति भी बना दी गई है, जिसमे विधान सभा और विधान परिषदके सदस्यगण ही सदस्य हैं। समितिके अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण "सुधांशु" हैं। समिति राज्यके विभिन्न जिलों एवं सचिवालयके विभागोंमें हिन्दी प्रयोगकी स्थितिका अध्ययन करके समय-समयपर प्रतिवेदन भेजती है।

जिला-प्रगति समिति

जिला अधिकारीकी अध्यक्षतामें प्रत्येक जिलेमें भी एक-एक हिन्दी-प्रगति-समिति है, जो प्रत्येक महीने प्रगतिका लेखा-जोखा सरकारको भेजा करती है।

प्रगतिका औसत

इन प्रचेष्टाओंसे सचिवालय स्तरपर ७३ फी सदी और जिला स्तरपर ७८ फी सदी राज-काज

हिन्दीमें होने लगे हैं। इस औसतमें भारत-सरकार, महालेखापाल तथा विधि सम्बन्धी कार्य शामिल नहीं है। वैधानिक रुकावटके कारण ऐसे कार्य अनिवार्य नहीं किए जा सके हैं।

हिन्दीमें होनेवाले कार्योंका प्रतिशत सम्बन्धी विवरण इस प्रकार है—

	सचिवालय स्तरपर	जिला स्तरपर
१९५८	३६.८	३६.६
१९५९	३५.४	३४.१
१९६०	६१.९	८१.५
१९६१	७३.३	७८.४

राज्योंसे पत्राचार

मध्य भारत, उत्तर प्रदेश आदि कुछ राज्योसे बिहार-सरकारका पत्राचार हिन्दीमे ही होता है।

पाठ्य-पुस्तक समिति

राज-काजमें हिन्दी प्रयोगके अतिरिक्त हिन्दीके समुचित प्रचार एवं प्रसारके अन्यकार्योमें सरकारने यथासाध्य हाथ बँटाया है। पाठ्य-पुस्तकोंके प्रणयन और प्रकाशनके लिए शिक्षा विभागके अन्तर्गत विशेषज्ञोंकी एक समिति है। यह समिति दर्जा १ से प्रवेशिका वर्गके छात्रोके लिए साहित्य, गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, सामाजिक-अध्ययन सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयोकी पुस्तकें अधिकारी विद्वानोसे तैयार कराती है तथा प्रकाशन और वितरणकी व्यवस्था करती है। चौथी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

साक्षरोंके लिए पुस्तकें

वयस्क शिक्षा-बार्डकी ओरसे कम पढ़े लिखे लोगोके लिए सुबोध भाषामें विभिन्न विषयोंकी बहुतेरी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई है और हो रही हैं, जिनका जन-जीवनकी प्रगतिसे गहरा सम्बन्ध है।

प्रदेश-परिचय-माला

जन-सम्पर्क विभागने अन्य अनेक प्रकाशनोंके साथ बिहारके ऐतिहासिक महत्वके दर्शनीय स्थानोंपर बड़े कामकी बहुत-सी पुस्तकें निकाली है। ये पुस्तकें सचित्र हैं और बिहारकी सांस्कृतिक विरासतके ऐश्वर्य-का सक्षिप्त तथा सहज परिचय देती हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

"बिहार समाचार", "जन-जीवन", "श्रमिक", "आदिवासी" तथा "पंचायत राज" आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओंका भी सरकार नियमित प्रकाशन कराती है।

राष्ट्रभाषा परिषद

राष्ट्रभाषा परिषदकी स्थापना हिन्दीके उन्नयनकी दिशामें सरकारका बड़ा ठोस कदम है। कुछ वर्षोंमें इस संस्थाने अखिल भारतीय महत्वके अनेक कार्य किए हैं। शोध कार्य, पुस्तक-प्रणयन, प्रकाशन, नवोदित साहित्यकारोंको प्रोत्साहन जाने-माने विद्वानोंका सम्मान, आर्थिक सहायता आदि इसके कर्तव्यके प्रमुख अंग है।

महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य

चूंकि महाराष्ट्र तथा गुजरात १ मई १९६० तक एक ही राज्यमे सम्मिलित रहे, इसलिए यहाँ दोनों राज्योंका विवरण एक साथ दिया गया है।

हिन्दुस्तानी बोर्ड या हिन्दुस्तानी-शिक्षा-समिति

बम्वई राज्यमें सन् १९३७ में काँग्रेस मन्त्रि-मण्डलके सत्तारूढ़ होनेके बाद हिन्दुस्तानी बोर्ड (या हिन्दुस्तानी शिक्षण समिति) कायम किया गया था जिसके सभापति काकासाहब कालेलकर थे। इसी बोर्डमें बादमे म. म. दत्तो वामन पोतदार भी अध्यक्षके रूपमें सम्बन्धित रहे हैं। यह बोर्ड हिन्दीके प्रचार एवं विकासके सम्बन्धमे प्रान्तीय सरकारको सलाह दिया करता था।

कक्षाएँ ५, ६, ७ में हिन्दी अनिवार्य विषय

उस समय मुख्य-मन्त्री श्री बाला साहब खेर थे। वे शिक्षा-मन्त्री भी थे। उन्होंने सभी माध्यमिक शालाओंमे उपर्युक्त बोर्डकी सलाहपर कक्षा ५, ६, ७, में हिन्दीको अनिवार्य विषय बना दिया था। तदनुसार स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था हुई थी। हिन्दी विषय अनिवार्य रूपसे पढ़ाया जाता था।

हिन्दी-शिक्षण-समिति

स्वतन्त्रताके बाद और विशेष रूपसे संविधानमें राजभाषा सम्बन्धी धाराओंका समावेश हो जानेपर राज्य सरकारने मई सन् १९५० में अपने हिन्दी कार्यको और भी सुव्यवस्थित बनानेके लिए "हिन्दी शिक्षण समिति" का गठन किया। संविधान की राजभाषा सम्बन्धी धाराओंकी व्यवस्थाओंको ध्यानमें रखते हुए बम्बई राज्यमें हिन्दी प्रचार एवं विकासका काम किस तरह आगे वढ़ाया जाए, इसपर रिपोर्ट करनेका काम समितिको सौंपा गया था।

चूंकि उस वक्त बम्बई राज्यमें कई हिन्दी प्रचार संस्थाएँ काम कर रही थीं, इसलिए उन संस्थाओं एवं उनकी परीक्षाओंके बारेमें मानदण्ड निश्चित करनेका काम भी समितिको सौंपा गया था।

उस समितिने १९५१ में सरकारको अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्टमें (१) अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंको स्कूलोंमें हिन्दी प्रचारकी पद्धति एवं सिद्धान्तों पर (२) हिन्दीके रूप पर और (३) हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं उचित पाठ्य-पुस्तकोंके निर्माण एवं हिन्दी शिक्षाके कार्यक्रम पर विचार किया गया था और सिफारिशें की गई थी। उन सिफारिशोंमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना की प्रवीण परीक्षा, धारवाड़ और

कर्नाटक प्रचार सभाकी चौथी परीक्षा और हिन्दुस्थानी प्रचार सभा, बम्बईकी 'काबिल' परीक्षाको मान्यता देने सम्बन्धी सिफारिश भी शामिल थी।

सरकारने समितिकी सूचनाओंपर विचार किया और हिन्दी शिक्षाको आगे बढ़ानेकी दृष्टिसे कतिपय कदम उठाए। उसने निम्न लिखित संस्थाओंकी परीक्षाओंको मान्यता प्रदान की--गुजरात विद्यापीठकी हिन्दी विनीत परीक्षा महाराष्ट्र राष्ट्र सभा पूनाकी प्रवीण परीक्षा और कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा धारवाड़-की चौथी परीक्षा तथा हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बम्बई की 'काबिल' परीक्षा बादमें। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की'कोविद' परीक्षाको भी सन् १९५१ तक मान्यता प्रदान की गई। इन परीक्षाओंको सरकारने कर्मचारियोंके लिए अनिवार्य बना दिया था। यह परिस्थिति १९५५ तक चलती रही। बादमें सरकारने अपनी परीक्षाएँ शुरू कीं और तब गैर सरकारी संस्थाओंकी मान्यता रद्द कर दी गई।

सन् १९५२–५३ मे सरकारने एक आदेश प्रसारित कर कक्षा ८, ९, १० में हिन्दी विषयकी पढ़ाईको अनिवार्य बना दिया।

सन् १९५६ से बम्बई राज्यके एस. एस. सी. बोर्डने हिन्दीको अनिवार्य विषय बनाकर उसमें परीक्षाएँ लेनी शुरू कर दीं। इससे हिन्दीकी शिक्षाका महत्व बढ़ गया। फिलहाल पश्चिमी महाराष्ट्र और विदर्भमें हिन्दी, ५ वीं कक्षासे अनिवार्य विषय है तथा मराठवाड़ामें तीसरी कक्षासे वह ऐच्छिक विषयके रूपमें पढ़ाया जाता है।

राज्यकी म्यु. कमेटियों तथा लोकल बोर्डोंने भी अपनी स्कूलोंमे हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाना शुरू किया है।

प्रशासकीय शब्दावलीका निर्माण

सरकारने इस समितिको हिन्दीमें प्रशासकीय शब्दावलीके निर्माणका काम भी सौंपा था। संविधानकी धारा ३५१ की व्यवस्थानुसार पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण किया गया जिसमें हिन्दीतर भाषाओंके शब्दोंको भी ज्यों-का-त्यों अथवा हेरफेरके साथ लेकिन हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप अपना लिया गया था।

हिन्दीकी परीक्षाओंका संचालन

बम्बई सरकार सन् ५१–५२ से हिन्दी कन्वरसेशनल स्टैण्डर्ड, हिन्दी लोअर स्टैण्डर्ड तथा हिन्दी हायर स्टैंण्डर्ड ऐसी तीन विभागीय परीक्षाओंका संचालन कर रही है। सरकारका एक एडहॉक हिन्दी बोर्ड है। सरकारी कर्मचारियोंकी वह परीक्षाएँ लेता है। सरकारी कर्मचारियोंके लिए ये परीक्षाएँ पास करना अनिवार्य वना दिया गया है।

उसी तरह हिन्दी शिक्षक सनदकी जूनियर एवं सीनियर परीक्षाएँ भी राज्य सरकार द्वारा संचालित होती हैं। जूनियर सनद पास शिक्षक मिडिल स्कूलमें तथा सीनियर सनद पास हाईस्कूलमें हिन्दी विषय पढ़ा सकता है। हिन्दी अध्यापकोंके लिए ये परीक्षाएँ पास करना बम्बई राज्यमें (और अब महाराष्ट्र) राज्यमें अनिवार्य हैं।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़

[हिन्दीके कार्यको प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता देकर व्यवस्थित रूपमें प्रचारित करनेवाले स्व. बड़ौदा नरेश।]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'कोविद' परीक्षा तथा 'रत्न' परीक्षाको पास करनेवाले क्रमशः जूनियर तथा सीनियर सनद परीक्षामें सीधे बैठ सकते हैं।

७—राज्यकी गैर-सरकारी संस्थाओंको पहले बम्बई सरकारने तथा बादमें महाराष्ट्र एवं गुजरात सरकारने समय-समयपर हिन्दीके प्रचार एवं परीक्षाओंके लिए अनुदान दिए हैं। विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको ५००० रु. प्रतिवर्ष राज्य सरकार अनुदानमें देती है। सन् १९५९–६० से मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको महाराष्ट्र सरकार अनुदान देती है। अबतक १३००० रु. अनुदानमें दिए जा चुके हैं।

८—गुजरात राज्यकी बड़ौदा स्टेटमें हिन्दीको समृद्ध करनेके लिए तथा उसका प्रचार-प्रसार करनेके लिए स्व. महाराज सयाजीरावजी गायकवाड़के शासन कालसे ही सतत प्रयत्न किए जाते रहे हैं। इस राज्यकी ओरसे सन् १९३१ में एक "शासन-शब्दकल्पतरु" नामक शब्दकोश प्रकाशित हुआ था जिसमें अँग्रेजी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा बंगला भाषाओंके समानार्थी हजारों शब्दोंका संकलन किया गया था। राज्यका आदेश था कि शासन-कार्यकी भाषा गुजराती हो और अँग्रेजीके बदले गुजराती, संस्कृत, हिन्दी, भारतीय शब्दोंका व्यवहार हो। उच्च न्यायालयको 'न्याय मन्दिर' कहा जाता था और उसकी भाषा गुजराती निर्धारित की गई थी। सन् १९३३ में राज्यने सभी कर्मचारियोंके लिए हिन्दीका ज्ञान अनिवार्य बना दिया था। साथ ही राज्यकी शिक्षण संस्थाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी।

९—गुजरातमें (तथा महाराष्ट्रमें भी) सन् १९३८ से हाईस्कूलके प्रथम ३ वर्षोंमें तथा प्राथमिक-के अन्तिम तीन वर्षोंमें अर्थात् ५, ६, ७, कक्षामें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है। सन् ४७ से वह ८, ९, १०, कक्षामें अनिवार्य कर दी गई है। सन १९४९ मार्चसे हिन्दी मातृभाषाके रूपमें मैट्रिकमें रखी गई है। सन् ५२ से हायर मैट्रिकमें जनरल इंग्लिशके विकल्पमें हिन्दी विषय है। सन् १९५७ से लोअर मैट्रिकमें हिन्दी अनिवार्य विषय है। आज ५ वींसे ११ वीं तक हिन्दी और उसकी परीक्षाएँ अनिवार्य हैं।

मध्यप्रदेश

१—भारतीय संविधानकी धारा ९४५ की व्यवस्थानुसार पुराने मध्यप्रदेश राज्यने सन् १९५० में "मध्यप्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५०" स्वीकृत कर हिन्दी और मराठीको राज्यकी राजभाषा घोषित कर दिया था।

इस अधिनियममें यह व्यवस्था है कि विधान मण्डलमें पेश किए जानेवाले विधेयकों तथा उनके द्वारा स्वीकृत अधिनियमों, राज्यपाल द्वारा प्रसारित अध्यादेशों, राज्य द्वारा जारी किए गए किसी भी प्रकारके आदेश, नियम, विनिमय, उपनियम आदि हिन्दी और मराठीमें रहेंगे।

पुराने मध्यप्रदेश राज्यने उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान, भोपाल तथा विंध्य प्रदेश सरकारोंसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहार हिन्दीमें करने सम्बन्धी समझौते किए थे।

२—पुराने मध्यभारतकी सरकारने भी सन् १९५० में मध्य भारत राजभाषा अधिनियम १९५० पास कर हिन्दीको राजभाषाके रूपमें अंगीकार कर लिया था। उसी अधिनियमकी व्यवस्थानुसार विधान

विधेयक, अधिनियम, राज्यपालके अध्यादेश, राज्य सरकारके आदेश, नियम, विनिमय तथा उपनियम आदि हिन्दीमें रहा करते थे।

पुरानी मध्यभारत सरकारने पुराने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, तथा अजमेरसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारमें हिन्दीका प्रयोग करनेके बारेमें समझौते किए थे। राजप्रमुखने उच्च न्यायालय की कार्यवाहियोंमें हिन्दीका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया था।

३—उसी प्रकार भोपाल एवं विन्ध्य प्रदेश सरकारोंने भी मध्यप्रदेश सरकारसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारके लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेका समझौता किया था।

४—सन् १९५६ में राज्य पुनर्रचनाके बाद मध्यप्रदेशमेंसे विदर्भ छोड़कर शेष मध्यप्रदेश और मध्यभारत, भोपाल, विन्ध्य प्रदेश मिलाकर नए मध्यप्रदेश राज्यका गठन किया गया। इस नए मध्यप्रदेश राज्यकी राजभाषा तथा लोक भाषा हिन्दी ही है और अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारोंमें हिन्दीको प्रयुक्त करनेके बारेमें उसके उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा बिहारसे समझौते हुए है।

राज्य शासनके कार्यालयोंमें हिन्दीका यथा सम्भव अधिकाधिक उपयोग करनेके प्रयत्न किए जा रहे हैं। ९ जुलाई १९६० से सचिवालयके कमेटी रूममें शासनके तृतीय श्रेणी कर्मचारियोंके लिए रा. भा. प्र. समितिकी ओरसे कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। यह कार्य भाषा विभाग, राज्य सरकारकी प्रेरणा एवं सहायतासे चल रहा है।

मध्यप्रदेशकी हाईस्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें अहिन्दी भाषी छात्रोंको पढ़ाई जाती है।

५—मध्यप्रदेश शासकीय हिन्दी परिषद, राज्यमें हिन्दीको विकसित एवं समृद्ध करनेकी योजनाओंको चलाती है। शासन साहित्य परिषदने भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश सरकारकी विभिन्न साहित्यिक प्रतियोगिताओं, देव पुरस्कार इ. को जारी रखा है। इतना ही कि ये पुरस्कार अब पूरे मध्यप्रदेश तक व्यापक कर दिए गए हैं।

२,१००) रु. का देव पुरस्कार मात्र अखिल भारतीय स्तरका है।

परिषद प्रत्येक वर्ष राज्यके प्रमुख केन्द्रोंमें कुछ भाषण-मालाओंका आयोजन करवाती है।

गैर सरकारी संस्थाओंके द्वारा किए गए हिन्दी-प्रचार-कार्यको सहायता

शासनने समितिकी 'परिचय' 'कोविद' तथा 'रत्न' परीक्षाओंको क्रमशः मॅट्रिक, इंटरमीडिएट, तथा बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता प्रदान की है। उसी प्रकार कर्मचारी की किसी पद पर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारितकी जाती है, वहाँ सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की 'परिचय' परीक्षाको विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्यता दी है। पुरानी मध्यप्रदेश सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको नागपुरमें भवन बनानेके लिए भूमि दानमें दी थी। म. प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके द्वारा राज्यमें रेल कर्मचारियोंके लिए तथा हेवी इलेक्ट्रिकल कारखानेके कर्मचारियोंके लिए कक्षाएँ चलाई जाती हैं। भोपालमें भी समितिको भवन बनानेके लिए दो एकड़ जमीन दी गई है। शासनने समितिको ६०-६१ के लिए ३ हजार रु. दिए; ५९-६० में भी अनुदान दिया गया था। सन् १९५७-५८में पंचायत व समाज-शिक्षा

विभागने १० हजार रु. का अनुदान समितिको दिया था। ५८-५९के लिए समिति पुस्तकालयके लिए केंद्रीय समाज कल्याण बोर्डने १३०० रु. दिए थे।

पंजाब

१—जब पेप्सू अलग राज्य था तो राजप्रमुखने उच्च न्यायालयकी कार्यवाहियोंमें हिन्दी एवं पंजाबी भाषाके प्रयोगकी अनुमति दे दी थी।

२—राज्यके भाषा-विभागने १९५६ में प्रतिवर्ष हिन्दी तथा पंजाबीकी साहित्य प्रतियोगिताएँ जारी करनेका निर्णय किया था। सफल रचनाओंको विभागीय पत्र 'सप्तसिन्धु' (हिन्दी) तथा 'पंजाबी-दुनिया' में प्रकाशित करनेकी बात थी। कुछ पुरस्कार भी रखे गए थे।

३—राज्यके भाषा-परामर्श बोर्डकी बैठकमें १९५९में हिन्दी और पंजाबीमे शब्दोके अनुवादके लिए दो अलग-अलग समितियाँ नियुक्त की गई थीं और राज्यके लेखकोंकी पुस्तकों पर पुरस्कार देने तथा तदर्थ दो समितियोंके गठनका निश्चय किया गया था।

४—बोर्डने हिन्दी और पंजाबीकी विभागीय परीक्षाओंके लिए एक उपसमिति भी गठित की थी।

५—राज्य स्तर पर विश्वकी उत्तम पुस्तकोंका और वैज्ञानिक साहित्य का हिन्दी और पंजाबी अनुवाद प्रस्तुत करनेकी भी राज्य की योजना है।

६—राज्यकी भाषा-समस्यापर विचार करनेके लिए राज्य सरकारने १९६० मे एक २५ सदस्यीय समितिको नियुक्त किया था।

७—पंजाब सरकारने सरकारी कर्मचारियोंकी किसी पद पर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की है, वहाँ उसने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद'-परीक्षाको मान्यता दी है।

वैसे पंजाब विश्वविद्यालय समितिकी 'कोविद' एवं 'रत्न' परीक्षाओंको अपने 'रत्न' तथा 'भूषण' परीक्षाओंके समकक्ष मानता है।

८—पंजाब सरकारने कुछ दिनों पहले अपने गजटमें एक अधिसूचना प्रकाशित की है जिसके अनुसार २ अक्टूबर १९६२ से पंजाबके हिन्दी क्षेत्रमे देवनागरी लिपिमे लिखी जानेवाली हिन्दी भाषा और पंजाबी क्षेत्रमें गुरुमुखी में लिखी जानेवाली पंजाबी भाषा जिला स्तर पर तथा उससे नीचेके स्तरों पर सरकारी भाषाएँ होंगी। लोगोंको पंजाबी अथवा हिन्दीमे प्रार्थना-पत्र भेजनेकी छूट रहेगी और उनके उत्तर प्रार्थीकी भाषामें दिए जाएँगे। सरकारके तमाम नोटिस हिन्दी और पजाबीमें प्रकाशित होंगे।

९—अधिसूचनामें यह भी कहा गया है कि उच्च न्यायालयके मातहत तमाम अदालतोंकी भाषा हिन्दी क्षेत्रमें हिन्दी और पंजाबी क्षेत्रमें पंजाबी होगी। राजधानी चण्डीगढ़मे अँग्रेजी और उर्दू में काम चलता रहेगा। राज्यकी अदालतोंमें अँग्रेजीमे उन मामलोंमें काम होता रहेगा जो २ अक्टूबरसे पहले पेश ही अँग्रेजीमें किए गए होंगे।

१०—स्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य विषय है। हिन्दी शिक्षकोंके प्रशिक्षणकी व्यवस्था है।

राजस्थान

१—राजस्थान राज्यने सन् १९५२ में 'राजस्थान राजभाषा अधिनियम १९५२' स्वीकृत कर हिन्दीको राजस्थान राज्यकी राजभाषाके रूपमें अंगीकार कर लिया था।

२—इस अधिनियममें यह व्यवस्था थी कि विधान सभाके सभी विधेयक, अधिनियम, राजप्रमुखके अध्यादेश तथा राज्य सरकार द्वारा प्रसारित आदेश, नियम, विनिमय अथवा उपनियम हिन्दीमें रहेंगे।

३—तभी राजस्थान सरकारने तत्कालीन अजमेर, मध्यप्रदेश, तथा मध्य भारत राज्योंसे अन्तर-राज्यीय व्यवहारोंके लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेके समझौते किए थे।

४—पुराने अजमेर राज्यने भी हिन्दीको राजभाषाके रूपमें घोषित कर दिया था। उसने भी सन् १९५२ में "अजमेर राजभाषा अधिनियम" पास किया था। अजमेर राज्यने भी मध्य भारत तथा राजस्थान राज्योंसे पत्र-व्यवहार के लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेका समझौता किया था।

५—राजस्थान साहित्य अकादमी राजस्थानमें साहित्य-विकासका एक विशेष केन्द्र है। हिन्दीकी उपभाषा राजस्थानी तथा उसकी स्थानीय बोलियोंको विकसित एवं समृद्ध करनेका प्रयत्न करना इस अकादमीका एक कार्य है।

अकादमी राजस्थानके पुराने साहित्य, काव्य, नाटक, आदिका अनुसंधान करवाती है। उसने कतिपय जैन एवं प्राचीन हस्तलिपियाँ एवं ग्रन्थोंके प्रकाशन एवं संशोधनका काम भी हाथमें लिया है।

६—स्कूलोंमे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

७—राजस्थान सरकारने हिमाचल प्रदेश सरकारसे हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करनेका करारनामा किया है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार राज्य सरकारोंसे तथा मध्यप्रदेस सरकारसे वह हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करती ही है।

८—अपने वित्त-मन्त्री श्री हरिभाऊ उपाध्यायके नेतृत्वमें बनी समितिकी सिफारिश एवं रिपोर्टपर विचार कर राजस्थान सरकारने एक घोषणा प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार १ अप्रैल १९६० से सचिवालय और अन्य सब विभागोंका प्रत्यक्ष कामकाज हिन्दीमें शुरू हो गया है। अबतक हिन्दी सरकारके कुछ चुनिदे विभागोंकी तथा जिला स्तर और उससे नीचेके कार्यालयोंकी भाषा थी। इस घोषणाके बाद सरकारी कार्यालय गैर-सरकारी लोगोंके साथ हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करने लगे हैं। जहाँ कानूनी शब्दावलीकी बात होती है, वहीं अँग्रेजीमें पत्र-व्यवहार किया जाता है। केन्द्र या राज्यसे प्राप्त अँग्रेजी पत्रोंपर कार्यवाही करनेके पहले उनका हिन्दी अनुवाद कर लेना पड़ता है।

उपर्युक्त घोषणाके अनुसार उस प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको सन् १९६० के अन्त तक उच्च विद्यालय स्तरकी हिन्दी योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिए थी जो फाइलोंका काम करता है। सरकारने यह भी घोषित किया था कि सरकार कुछ परीक्षाओंका आयोजन करेगी जिनमें उत्तीर्ण होनेवालोंको ही वृद्धि दी जाएगी। हिन्दीमें टाइप तथा शार्टहैंडकी कक्षाएँ भी खोली गई।

राज्य का उच्च न्यायालय अपने निर्णय अँग्रेजीमें ही देता है लेकिन अधीनस्थ अदालतें तथा राजस्व मण्डल अपने निर्णय हिन्दीमें देते हैं।

९——सरकारी कर्मचारियोंके स्थायित्व अथवा नियुक्तिके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, वहाँ शासन द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद' परीक्षाको मान्यता प्रदान की गई है। 'राष्ट्रभाषा-कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' उत्तीर्ण व्यक्ति राजपूताना विश्वविद्यालयकी हाइस्कूल एवं इटर मिडियट परीक्षाओंमें सिर्फ अॅग्रेजी लेकर बैठ सकते हैं। विश्व विद्यालयने समितिकी इन परीक्षाओंको अपनी 'साहित्य विनोद' एवं 'साहित्य विशारद' के समकक्ष मान्यता दी है।

असम

१——जब १९३८ में असम प्रान्तके मुख्यमन्त्री स्व. गोपीनाथजी बारडोलाईकी अध्यक्षतामें असम हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना हुई थी, तब प्रान्तके शिक्षा विभागके डायरेक्टर श्री जी. के. स्लम भी उस सभामें आमन्त्रित थे और उनकी सलाहसे सरकारी हाई स्कूलोंमें पाँचवीं और छठीं कक्षाओंमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेका निर्णय किया गया था। समितिने सन् १९३९ मे सभी हाइस्कूलोंमें हिन्दीकी व्यवस्था करनेपर विचार किया था।

२——सन् १९३९ से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको सरकारकी ओरसे अनुदान दिए गए है। महायुद्ध आदिके कारण यह सिलसिला टूट गया था। अब फिर सन् १९५८–५९ तथा ६० के लिए राज्य सरकारने तीन भिन्न स्थानोंपर हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षणार्थ प्रशिक्षण शिविर चलानेके हेतु समितिको २० हजार रुपएके अनुदान स्वीकृत किए थे। इन शिबिरोंमें सरकार द्वारा प्रेषित लगभग १०० अध्यापक प्रशिक्षित किए जा चुके हैं।

३——तिनसुकियामें सन् १९६१ मे जो अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ था, उसके स्वागताध्यक्ष मुख्यमन्त्री श्री विमलप्रसादजी चलिहा थे। सम्मेलनके लिए सरकारने १० हजार रु. के नगद अनुदानके अलावा हिन्दी प्रचार आदिके लिए काफी ठोस सहायता प्रदान की थी।

४——राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'परिचय' परीक्षा पास व्यक्ति ट्रेनिंग लेकर सीधा हाइस्कूलका अध्यापक बन सकता है, 'कोविद' उत्तीर्ण व्यक्ति तो बिना ट्रेनिंग लिए ही शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत वेतन-क्रमपर हिन्दी शिक्षकके रूपमे नियुक्त किया जा सकता है।

५——राज्यमे चौथी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

उत्कल

१——काँग्रेस मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके साथ ही सन् १९३७ मे प्रान्तीय स्कूलोंमें हिन्दीको वैकल्पिक विषय बना दिया गया था।

२——सन् १९३८ में मुख्य मन्त्री श्री विश्वनाथ दासकी इस घोषणासे कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, हिन्दीको काफी बल मिला।

३——शिक्षा मन्त्रीने सन् १९४१ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अनुरोधसे एक परिपत्र भेजा था जिसमें हिन्दी सीखनेकी बात पर जोर दिया गया था तथा उसे अनिवार्य बनानेका भी जिकर किया गया था।

४—सन् १९३८ से सरकारी आदेशानुसार प्रान्तकी सभी स्कूलोंमें चौथीसे ग्यारहवीं तक हिन्दी शिक्षाकार्य आरम्भ हुआ। उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाने तदर्थ अपने प्रचारक एवं शिक्षक भेजे।

५—स्कूलोंमें पहले उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अवैतनिक प्रचारक हिन्दी पढ़ाया करते थे बादमें सन् १९४१ में हर स्कूलसे एक शिक्षकके हिसाबसे प्रान्तके शिक्षकोंका एक प्रशिक्षण केन्द्र सभाकी ओरसे सरकारी सहायतासे चलाया गया था।

६—तदनन्तर काम बन्द हो गया। सन् १९४६ में काँग्रेसके सत्तारूढ़ होते ही सरकारने एक परिपत्र निकाल कर सूचित किया कि प्रान्तके सभी स्कूलोंमे छठीसे नवी श्रेणी तक राष्ट्रभाषा हिन्दी पढ़ना आवश्यक है। सन् १९४८ से सभी स्कूलोंमें राष्ट्रभाषा की पढाई आवश्यक कर दी गई।

७—सरकारकी ओरसे प्रान्तमें १९४८ में प्रशिक्षण शिविरके लिए ६४००० रु. की एक योजना बनी। सरकारने उत्कल प्रां. रा. प्र. सभाको इसके अलावा उस वर्ष ३०००) का अनुदान दिया। गजाम जिला बोर्डके ४८ शिक्षकोंको प्रशिक्षित करनेके लिए सभाकी ओरसे हिजली काटूमे एक शिविर तीन माह तक चलाया गया जिसका खर्च ५००० रु. आया।

८—१९४७ में सभाको सरकारने डेढ़ एकड़ जमीन दी। १९४८ मे सभा द्वारा सभी हाइस्कूलों तथा मिडिल स्कूलोंके एक-एक शिक्षकको लेकर प्रशिक्षित करनेके लिए आठ केन्द्र खोले गए तदर्थ सभाको उत्कल सरकारने १००००) का एक तथा ५०००) का दूसरा ऐसे दो अनुदान दिए। पुस्तकालयके लिए २७०० रु० की रकम भी दी। भवन-निर्माणके लिए सरकारने ११०००) की रकम सभाके लिए मजूर की है। सन् १९५१ से सरकार सभाको हरसाल १५ हजार रु. देती है। सन् १९५५ से केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय भी प्रान्तीय सभाको सालाना २५०००) देती है।

९—सन् १९५६ में शिक्षा विभागके निर्देशक महोदयकी परिचालनासे हिन्दी ट्रेनिंग स्कूल सभाके प्रांगणमें ही खोला गया।

१०—**अनुवाद समिति**—उड़ीसा सरकार उ. प्रां. रा. सभाकी अनुवाद समितिको अनुदान देती है। इस समिति द्वारा अनूदित पुस्तकें माध्यमिक शिक्षण बोर्डके लिए स्वीकृत कर ली गई हैं। अब अनुवाद—समितिके हाथमें शब्दकोशका काम है। सभाका एक प्रकाशन विभाग भी है। इसके द्वारा ५० पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं।

११—तीन सालसे उत्कली हाईस्कूलों और आश्रम स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षकोंकी नियुक्तियाँ की जा रही हैं।

१२—सरकारी कॉलेजों तथा गैर-सरकारी कॉलेजोंमें हिन्दी प्राध्यापक नियुक्त किए गए हैं।

१३—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाको प्रान्तीय सरकारने अपनी संस्कृत 'आचार्य' परीक्षाके समकक्ष मान्यता प्रदान की है। "राष्ट्रभाषा रत्न" उत्तीर्ण व्यक्तिका वेतन क्रम राज्य सरकारने ७० रु. से १४० रु. तक स्वीकृत किया है।

मणिपुर

१—आठवीं कक्षातक हिन्दी अनिवार्य विषय है।

२—मणिपुर प्रशासन हिन्दीकी शिक्षा एवं प्रचारके कालमें मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको प्रतिवर्ष अनुदान देती है। सन् ६०–६१ में ही उसने ३१००० रु. हिन्दी शिक्षा केन्द्रों, विद्यालयों, पुस्तकालयों आदि खोलनेके लिए तथा चलानेके लिए दिए थे। इसके अलावा उसने प्रतिमाह २०) के हिसाबसे समितिके लगभग २१ हिन्दी विद्यालययोंको अलगसे मदद दी थी। समितिके वर्धा स्थित केन्द्रीय राष्ट्रभाषा विद्यालयमें हिन्दी पढ़नेके लिए प्रतिवर्ष कुछ छात्र प्रशासंनकी ओरसे छात्रवृत्ति देकर भेजे जाते है।

पश्चिम बंगाल

१—छठवीं तथा सातवी कक्षामें हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है।

२—१९५८ से राज्य सरकारने करीब ४०० उच्चतर विद्यालयोंमे छठी कक्षासे ९ वी तक हिन्दीको वैकल्पिक विषय बना दिया है।

३—राज्य सरकारने हिन्दीकी शिक्षा एवं प्रसारके लिए पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके मार्फत काम किया है। तदर्थ उसने उसे प्रतिवर्ष अनुदान दिए हैं।

(अ) डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग पाठ्यक्रमानुसार समितिने कलकत्तामें दो तथा कोच बिहारमें एक केन्द्र चलाए है। कलकत्ताके केन्द्र पिछले दस ग्यारह सालोंसे चल रहे हैं।

(आ) कलकत्ता स्थित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयको समिति द्वारा चलाया जाता है, जिसमें सम्मिलित होनेवाले व्यक्तियोंको मासिक ३० रु. सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है। प्रवेशकी न्यूनतम योग्यता इण्टर मिडिएट है। अभ्यास क्रम १५ माहका है और महाविद्यालय दोपहर १२ से ५ तक नियमित चलता है।

(इ) इसके अलावा समिति द्वारा शिक्षक-शिक्षण-केन्द्र कई स्थानोंपर सरकारी सहायतासे चलाए जाते है।

४—सन् १९५१ मे सरकारका प्रस्ताव था कि कम-से-कम ४ वर्ष नियमित हिन्दीकी पढ़ाई की जाए।

५—सरकारने प्रान्तीय समितिको डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंगके लिए ३००० रु. का तथा कोविद विशेषके १२ केन्द्रोंके लिए १२४८० रु. का. आवर्तक तथा ६२४० रु. का अनावर्तक अनुदान तथा विशेष शिक्षक शिक्षण केन्द्रोंके लिए १५६०० रु. आवर्तक अनुदान तथा कलकत्ता महाविद्यालयके कार्य संचालनके लिए ५००० रु. का अनुदान दिया है। सरकारने हिन्दीकी प्राचीन तथा आधुनिक साहित्यिक कृतियोंकी खरीदके लिए ७९२ रु. का दान दिया है। सन् १९४९ में समितिको एक और ५००० रु. का अनुदान मिला था। समितिको और भी कई अनुदान समय-समयपर राज्य सरकारकी ओरसे दिए गए हैं।

६—सरकारने माध्यमिक शिक्षामें भाषा सम्बन्धी नीतिके लिए एक समिति बनाई थी, लेकिन उसकी सिफारिशें हिन्दीके लिए अत्यन्त अनुदार थीं।

७—सरकारने बहुत देरसे क्यों न हो, सन् १९६० में एक हिन्दी शिक्षाधिकारीकी भी नियुक्ति की है।

७—बंगालके विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंमे विश्वविद्यालय गत योग्यताओंके साथ-साथ हिन्दी ज्ञानकी दृष्टिसे सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी कोविद परीक्षाको मान्यता दी है। "कोविद" उपाधिधारी शिक्षकको न्यूनतम वेतन १०० रु. प्राप्त करनेका अधिकारी माना जाता है।

उसी तरह माध्यमिक शिक्षा परिषदने समितिकी 'प्रवेश' परीक्षा उत्तीर्णको स्कूल फायनल—मैट्रिककी हिन्दीके समकक्ष माना है और समितिकी पुस्तकोंको मैट्रिक की हिन्दीके पाठ्यक्रममें स्थान दिया गया है।

कहा जा चुका है कि राज्य सरकारने शिक्षा-प्रशिक्षण योजनाओंके अन्तर्गत विभिन्न परिकल्पनाओंके लिए समितिको आवर्तक, अनावर्तक तथा सामयिक कार्यकारी सहायता अनुदानके रूपमे समय-समयपर दी है।

आन्ध्र प्रदेश

(१) छठी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

(२) सन् १९५९ से मैट्रिक परीक्षाके लिए हिन्दी अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

(३) हिन्दी प्रचारके लिए विशेष अफसर नियुक्त किए गए है।

(४) हिन्दी शिक्षण संस्थाओंको अनुदान दिए जाते है।

(५) स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं।

हिन्दी शिक्षाधिकारीकी नियुक्ति की गई है।

(७) आन्ध्र प्रदेशकी सरकारने हिंदी प्रचार सभा हैदराबादकी 'विद्वान्' एवं 'हिदी शिक्षक' परीक्षाको मान्यता दी है। दोनों परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको बी. ए. बी. टी. के समकक्ष माना जाता है। भारत सरकारने भी हिन्दी प्रचार सभा की हिन्दी विशारद हिन्दी भूषण तथा हिन्दी विद्वान् परीक्षाओंको क्रमशः हिन्दी मैट्रिक, हिन्दी इंटर परीक्षा तथा हिन्दी बी. ए. के समकक्ष माना है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाओंकी उच्च स्तरीय परीक्षाओंको भी मान्यता प्राप्त हुई है।

(८) भारत सरकारकी योजनानुसार तथा उसके निदेशनमें हिन्दी प्रचार सभाने कतिपय प्रकाशन निकाले हैं। मराठी, तेलुगु, कन्नड़ और उर्दू-हिन्दी कोश तथा हिन्दी-उर्दू कोशका निर्माण जारी है। इन योजनाओंके लिए सभाको ४२ हजार रुपयोंकी सहायता स्वीकृत हुई है। सभाकी दो बाल-साहित्य पुस्तकोंपर केन्द्रीय सरकारसे ५००–५०० के पुरस्कार मिले हैं। सभाने सरकारी शिक्षा विभागके एक पूरक-अंगके रूपमें हिन्दी शिक्षा एवं प्रसारका काम किया है। सरकारी अनुदानसे उसने कई स्थानोंपर हिन्दी शिक्षा प्रशिक्षणवर्गोंका संचालन किया। आन्ध्र प्रदेश सरकारने १९५९ तक सभाको १८००० रु. तथा आगे भी बहुत कुछ सहायता प्रदान की है।

(९) सरकारने उच्चम पेठमें एक हिन्दी भवन बनाया है तथा उससे हिन्दी प्रचार सभाको नि:शुल्क हिन्दीके कामोंके लिए दे दिया गया है।

(१०) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेष कर विशारद, प्रवीण एवं हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको सरकारने मान्यता प्रदान की है।

मैसूर

द्वितीय पंचवार्षिक योजनाके अन्तर्गत सरकारका प्रस्ताव था कि राज्यकी प्रत्येक हाईस्कूलमें कमसे कम एक हिन्दी अध्यापक नियुक्त किया जाए।

राज्यमें छठी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी प्रवेश परीक्षाको सरकारी कर्मचारियोंके लिए विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्यता दी है। उसी तरह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेषकर विशारद, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है।

केरल

(१) कोचीनके महाराजने १९२८ में अपने यहाँके हाईस्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था करवाई।

(२) केरलके सभी स्कूलों तथा कॉलेजोंमें आज हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। वहाँ छठी कक्षाओंसे हिन्दी अनिवार्य विषय है। केरलका एक भी गांव या कस्बा ऐसा नहीं है; जहाँ हिन्दी विद्यालय या हिन्दी वर्ग न चलते हो।

(३) केरल विश्वविद्यालय 'हिन्दी विद्वान्' परीक्षा चलाता है। विश्वविद्यालयने अपने कुछ प्रमुख कालेजोंमें एम. ए. हिन्दीकी पढ़ाईका इंतजाम किया है और उसके प्रायः हरेक कॉलेजमें हिन्दी पढ़ाईकी व्यवस्था है।

(४) केरल राज्यने हिन्दी प्रचार कार्यके लिए एक विशेष हिन्दी अधिकारीकी नियुक्ति की है।

(५) हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षणके लिए सरकार प्रशिक्षण शिबिर तथा विद्यालय चलाती है। वह समय-समयपर सरकारी नौकरी करनेवाले योग्य हिन्दी अध्यापकोंको मार्गव्यय एवं छात्रवृत्ति देकर उत्तर भारत भेजती है। प्रशिक्षित हिन्दी शिक्षकोंको अच्छा वेतनमान दिया जाता है।

(६) हिन्दी प्रचारके लिए उसने एक प्रदर्शनी-वॅन खरीदी है।

(७) सरकार केरलकी प्रमुख हिन्दी संस्थाओंको आर्थिक सहायता देती है तथा उनको प्रोत्साहित करती है। नंबूदरीपाद सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरलको भवन निर्माणके लिए १० हजार रु. एक मुश्त तथा मासिक २५० रु. का अनुदान देना निश्चित किया था।

(८) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेषकर विशारद, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको राज्य सरकारने मान्यता प्रदान की है।

मद्रास

(१) सन् १९३७ में जब कांग्रेस मंत्रिमण्डल बना तो सरकारने सभी स्कूलोंमें पाँचवे दर्जेसे हिन्दी शिक्षा अनिवार्य कर दी। यह बात दूसरी है कि जब कांग्रेसका मंत्रिमण्डल न रहा, तब यह अनिवार्यता समाप्त हो गई थी। स्कूलोंमें हिन्दीके अनिवार्य बननेपर सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी सहायतासे एस. एस. एल. सी. पास १००० नवयुवकोंको हिन्दी शिक्षकोंके रूपमे हिन्दी शिक्षण विद्यालय खुलवाकर प्रशिक्षित किया।

(२) कांग्रेस मंत्रिमण्डलके समाप्त होनेके बाद भी हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था स्कूलोंमे थी, और आज भी हर स्कूलमें हिन्दी अध्यापक रहता है। हाँ, हिन्दी अब अनिवार्य विषय नहीं है, वैकल्पिक विषय बन गया है।

(३) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने महिलाओं तथा पुरुषोंके लिए प्रचारक विद्यालय चलाकर बी. टी. के पाठ्यक्रमको हिन्दी माध्यमसे पढ़ाया तथा सरकारसे हिन्दी शिक्षकोंका वेतनक्रम भी निश्चित करवाया।

(४) प्रथम पंचवार्षिक योजनामें हिन्दी प्रचार एवं शिक्षाके लिए राज्य सरकारने द. भा. हिन्दी प्रचार सभाको ही उनके हिन्दी प्रचारक विद्यालयों तथा पुस्तकालयोंके लिए अनुदान दिए। इस अवधिमें स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाई की व्यवस्थाके साथ-साथ कॉलेजोंमें भी हिन्दी पढ़ाई की जाने लगी। स्कूलोंमे जहाँ वह तीसरा ऐच्छिक विषय था, वहाँ कॉलेजोंमें दूसरी भाषाके रूपमें अंगीकृत किया जाने लगा था। केन्द्र सरकारके क्षेत्रमे काम करनेवालोंके लिए हिन्दीका ज्ञान अनिवार्य बन जानेके कारण हिन्दी शिक्षाको बल मिला। मद्रास प्रान्तके कालेजोंमें पहले इंटरमें तथा बादमें पी. यू. सी. मे. बी. ए. बी. काम. तथा बी. एस. सी. में हिन्दी पढ़ाई की जाने लगी और योग्य हिन्दी अध्यापकोंकी नियुक्तियाँ की गई।

मद्रास प्रान्तमें अब रेल्वे, डाक तथा केन्द्रीय विभागोंके कर्मचारियोंको हिन्दीमे प्रशिक्षित करनेका काम ३० से अधिक हिन्दी प्राध्यापक कर रहे हैं।

(५) १९५६ से शुरु होनेवाली दूसरी योजनामें सरकारने स्कूलोंमें कार्य करने वाले अध्यापकोंमेसे ऐसे १०० प्रचारक नियुक्त किए जो प्रति दिस अपने शहरों या गाँवोंमें मुफ्तका वर्ग चलाकर २५ विद्यार्थी तैयार करेंगे। उन्हें २५ रु. माहवार पारिश्रमिक दिया जाता है था, जिसमेंसे ६० प्रतिशत केंद्रीय सरकार और २० प्रतिशत प्रान्तीय सरकार देती थी। बाकी २० प्रतिशत द. भा. हि. प्र. सभा देती थी।

(६) इसके अलावा मद्रास तिरुच्चि तथा मदुरामें हिन्दी टंकन तथा शीघ्र लिपि विद्यालय खोलने के लिए सरकारने घाटेका ५० प्रतिशत वहन करनेका भार अपने पर लिया था।

(७) उसने पूर्ण समयका विशारद विद्यालय तथा प्रचारक विद्यालय मद्रासमें महिलाओंके लिए तिरुच्चिमें पुरुषोंके लिए संचालनार्थ सभाको अनुदान दिया।

(८) तीसरी पंचवार्षिक योजनामें सन् १९६१-६२ में मद्रासके हाइस्कूलोंमें हिन्दी परीक्षाका विषय बनाई गई लेकिन न्यूनतम अंक नहीं निर्धारित किए गए। अतएव स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षण तेजीसे चल निकला।

(९) सरकारने सभाकी प्रवेशिका, विशारद पूर्वार्ध, विशारद उत्तरार्ध, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको मान्यता दी है। हिन्दी शिक्षकोंको विशारद, प्रवीण तथा प्रचारक परीक्षाएँ पास करनी पड़ती हैं, तभी उन्हें हाईस्कूलोंमें रखा जाता है तथा पक्का किया जाता है। प्रचारक उत्तीर्ण व्यक्तिको विश्वविद्यालयकी 'डिप्लोमा इन ओरियण्टल लर्निंग' परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिके समकक्ष सब सुविधाएँ एवं वेतन इ. दिया जाता है।

दिल्ली

(१) स्कूलोंमे हिन्दी विषय अनिवार्य है।

(२) सन् १९५८ में दिल्ली प्रदेशके शासनने यह निर्णय किया था कि ६ माहके भीतर उसके सब कर्मचारी हिन्दी सीख लें। अगले छ:महीनेमे सरकारका सारा काम हिन्दी में किया जाने लगेगा।

दिल्लीके मुख्य आयुक्तने एक छः सदस्योंवाली भाषा-समिति बनाई थी। उस समितिने भी उपर्युक्त अवधिको उचित बताया था।

जम्मू-कश्मीर

(१) स्कूलोंमे हिन्दी ऐच्छिक विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है।

(२) हिन्दी शिक्षकोके प्रशिक्षणकी व्यवस्था है।

(३) जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालयने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी 'कोविद' और 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाको अपनी रत्न' एवं 'भूषण' परीक्षाके समकक्ष मान्यता दी है।

त्रिपुरा

(१) मिडिल कक्षाओसे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

उत्तर पूर्व सीमान्त अभिकरण (नेफा)

(१) तीसरी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य है।

लक्ष और निमिकाय द्वीप

आठवीं और नवी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य है।

अण्डमान निकोबार द्वीप

तीसरी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

विश्व-विद्यालयोंमें हिन्दी

हमारे देशमें विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षा दी जाती है। साधारणत: सभी विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षाका माध्यम अँग्रेजी भाषा है। कुछ वर्षोंसे यह विचार चिन्तनीय बन गया है कि विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षाका माध्यम क्या रखा जाए। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षाका माध्यम विद्यार्थियोंकी अपनी मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा होती है। उसके पश्चात् उच्च शिक्षाका प्रश्न उपस्थित होता है। एकाएक शिक्षाका माध्यम बदल जानेसे अनेक कठिनाइयाँ पैदा होती है। अभी तक इस स. बन्धमें कोई निश्चित नीति निर्धारित नहीं हुई है, लेकिन इन समस्याओंका हल सोच विचारकर निश्चित करना आवश्यक है। अन्यथा शिक्षाका स्तर दिनोंदिन गिरता ही जाएगा। कुछ का यह निश्चित मत है कि विश्वविद्यालययोंमें उच्च स्तरीय शिक्षाका माध्यम विशेषत: विज्ञान एवं (तकनकी) टेकनिकल विषयोंकी शिक्षाका माध्यम अँग्रेजी ही रहना चाहिए। जब कि कुछ शिक्षा शास्त्रियोंका यह मत है कि जब तक जिन विषयोंकी शिक्षा विद्यार्थीकी अपनी भाषामें नहीं दी जाएगी तब तक शिक्षाका स्तर गिरता ही जाएगा। एक प्रबल विचार धारा यह है कि भारतके सभी विश्वविद्यालयोंकी उच्च शिक्षाका माध्यम देशकी सर्व सामान्य भाषा हिन्दीमें होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियोंको एक प्रान्तके विश्वविद्यालयसे दूसरे प्रान्तके विश्वविद्यालयमें जानेमें कोई असुविधा न हो। इसी प्रकार प्राध्यापकोंको भी एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेमें कोई कठिनाई न हो। अपने पक्षके समर्थनमें उनका यह भी कथन है कि जो भी अनुशीलन एवं अनुसन्धानका कार्य देशके विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें हो रहा है उसका माध्यम एक भाषा न रही तो परिणाम स्वरूप ज्ञानकी जो भी उपलब्धियाँ होंगी वे प्रदेश तक ही सीमित रहेंगी और वे सारे देशकी उपलब्धियाँ नहीं हो सकेंगी। एक भाषाके रहनेसे शोधकी नवीनतम बातें सभीपर प्रकट हो सकेंगी और उससे सभी लाभान्वित होंगे अत: एम. ए. तथा पी. एच. डी. जैसी उच्च परीक्षाओं और उपाधियोंमें यह आवश्यक कर दिया जाए कि उनमें हिन्दीका उपयोग किया जाए।

विश्वविद्यालयकी शिक्षाके माध्यमके सम्वन्धमें जो विभिन्न मत आज विद्यमान है उनके सम्बन्धमें देशके शिक्षा शास्त्रियोंको सम्भीरतापूर्वक विचार करके एक निश्चित नीति निर्धारित करनी चाहिए और उसके अनुसार उसे कार्यान्वित किया जाना चाहिए। जहाँ तक हिन्दीके शिक्षणका प्रश्न है विश्वविद्यालयोंने उसके बढते हुए लक्षके महत्वको ध्यानमे रखकर अपने यहाँके पाठ्यक्रममें किसी न किसी रूपमें स्थान देकर उसके प्रशिक्षणकी व्यवस्था की है। कुछ विश्वविद्यालयोंने कॉलेजके प्रथम एवं द्वितीय वर्षमें हिन्दीको एक अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान देकर राष्ट्रभाषाके रूपमें उसके महत्वको स्वीकार किया है तथा उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। कहीं उसे ऐच्छिक विषयके रूपमें स्थान दिया है। भारतके कुछ विश्वविद्यालयोंसे जो जानकारी प्राप्त हुई है उसका यहाँ संक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है।

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

आगरा विश्वविद्यालय हिन्दीकी उन्नतिके लिए सदासे प्रयत्न कर रहा है। इसने कुछ प्रमुख टेकनिकल विषयोंको छोड़कर प्राय: सभी विषयोंका माध्यम हिन्दीको स्वीकार किया है। कला संबंधी (आर्ट्स) सभी विषयोंके साथ बी. कॉम, एम. काम, बी. एस. सी एग्रिकल्चर यहाँ तककि एल. एल. बी कक्षाओंका माध्यम

ऐच्छिक रूपमें हिन्दी अथवा अँग्रेजी है। इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत श्री कन्हैयालाल मुंशी हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ भी चलती है; जिसमें देशकी प्रायः सभी भाषाओंके विद्यार्थी हिन्दी भाषा तथा साहित्यका ज्ञान पानेके लिए आते हैं। विश्वविद्यालयकी कार्यक्षमताको देखते हुए भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालयने उसे देशी तथा विदेशी भाषाओंसे लगभग ३००० पुस्तकोंका हिन्दीमें अनुवाद कार्य सौंपा है।

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विश्वविद्यालयमे हिन्दीकी प्रारम्भिक कक्षाओंसे लेकर बी. ए., बी. काम, तथा बी. एस. सी. कक्षाओं तक प्रशिक्षित करनेकी व्यवस्था की गई है। इस विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्रशिक्षणकी नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था की गई है:—

अ—अहिन्दी भाषा-भाषी राज्योंसे आनेवाले विद्यार्थियोंके लिए प्रारम्भिक हिन्दी।

आ—हिन्दी भाषा-भाषी राज्योंसे आनेवाले उन विद्यार्थियोंके लिए प्रारंभिक हिन्दी जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक कक्षाओंमे हिन्दीका अनिवार्य रूपसे अध्ययन किया है।

इ—हिन्दीकी विशेष शिक्षा उन विद्यार्थियोंको दी जाती है जिनका बोधस्तर अपेक्षाकृत ऊँचा है और जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक कक्षाओंमे हिन्दी का विशेष (वैकल्पिक नहीं) रूपसे अध्ययन किया है।

प्रारम्भिक कक्षाओंमे हिन्दीके प्रशिक्षणके लिए इस विश्वविद्यालयने अपनी ओरसे कुछ विशेष पुस्तकें तैयार की हैं जो बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

हिन्दी साहित्यका अध्ययन एक वैकल्पिक विषयके रूपमे बी. ए. तथा एम. ए. तककी परीक्षाओंके लिए स्वीकृत है।

सामान्य हिन्दीका अध्ययन बी. ए. मे उन छात्रोंके लिए अनिवार्य है, जिन्होंने हाइस्कूल अथवा इण्टरमीजिएट परीक्षामें उच्च हिन्दीका अध्ययन नहीं किया है। इस विश्वविद्यालयमें कुछ भारतीय भाषाओंका अध्ययन हिन्दी भाषाके माध्यमसे किया जाता है। कला अधिकरण (आर्ट्स फॅकल्टी) के अन्तर्गत अँग्रेजीको छोड़कर शेष अन्य विषयोंमे परीक्षार्थीकी इच्छानुसार हिन्दी अथवा अँग्रेजी माध्यम रखा गया है। इसी प्रकार वाणिज्य एवं कृषि अधिकरणमें भी सुविधा दी गई है।

हिन्दी विषयोंमें विद्यार्थी पी एच. डी. तथा डी. लिट् कर सकते हैं। विश्वविद्यालयकी उच्चतम प्रशासिका (सीनेट) की कार्यवाही अब हिन्दीमें ही होती है। कालिदास समारोहके उपलक्ष्यमें हिन्दीमें ही निबंध आमंत्रित किए जाते हैं।

जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

इस विश्वविद्यालयने अपने स्थापना वर्ष सन् १९५७ से ही हिन्दीको विश्वविद्यालयीन विभिन्न

पाठ्यक्रम व परीक्षाओंमें स्थान दिया है। कुछ पाठ्यपुस्तकोंका प्रशिक्षण भी हिन्दी माध्यमके द्वारा ही होता है। बी. ए. तथा एम. ए. में हिन्दीको एक ऐच्छिक विषयके रूपमें स्थान दिया गया है। इण्टरमीजिएट तक हिन्दी एक अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है।

सागर विश्वविद्यालय, सागर

इस विश्वविद्यालयमे बी. ए., बी. एस. सी. तथा बी. कॉम, कक्षाओं तक अध्ययन और परीक्षणका माध्यम हिन्दी स्वीकृत है। एम. ए. में प्रश्नपत्रोंके उत्तर वैकल्पिक रीतिसे हिन्दीमें दिए जा सकते हैं। पी. एच. डी. के प्रबन्धोंकी भी वैकल्पिक भाषा हिन्दी है। इनके अतिरिक्त बी. ए., बी. एस. सी., बी. कॉम तक हिन्दी का एक अनिवार्य प्रश्नपत्र ५० अंकोंका रहता है। जिन विद्यार्थियोंकी मातृभाषा हिन्दी नही होती है तथा जिन्होंने हाइस्कूल तक हिन्दी नही ली है उन्हें सुगम हिन्दीका एक प्रश्नपत्र परीक्षाके लिए दिया जाता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस विश्वविद्यालयमे बी. ए. मे हिन्दी वैकल्पिक विषयके रूपमें पड़ाई जाती है। जिन विद्यार्थियोकी मातृभाषा हिन्दी नहीं होती है उन्हें हिन्दी अनिवार्य परीक्षाके रूपमें पास करनी होती है। इस विश्वविद्यालयने शिक्षा और परीक्षाका माध्यम बदलनेकी योजना बनाई है, जिसके अनुसार हिन्दीमाध्यम मण्डल द्वारा माध्यम परिवर्तन का कार्य १०–१२ वर्षोंमें संपन्न होगा। यह विश्वविद्यालय कुछ प्रामाणिक अँग्रेजी पुस्तकोका अनुवाद करानेका तथा कुछ मौलिक पाठ्यग्रंथ लिखवानेका प्रयत्न कर रहा है। शोध करनेवालोंके लिए पी. एच. डी. का पाठ्यक्रम भी आरम्भ किया गया है जिसके अनुसार प्राविधिक और प्रक्रियाके सम्बन्धोंमें विशेषज्ञों द्वारा विशेष मार्गदर्शन किया जाता है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

इस विश्वविद्यालयने बी. ए. तक आधुनिक भारतीय भाषाओंके अन्तर्गत हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की है। वैकल्पिक विषयके रूपमें भी हिन्दीको विभिन्न परीक्षाओंमें स्थान दिया गया है। एम. ए. की परीक्षा के लिए भी हिन्दी विषय स्वीकृत है। कला अधिकरणमें एम. ए. तक अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीको भी शिक्षा के माध्यमके रूपमे स्थान दिया गया है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

इस विश्वविद्यालयमें यह व्यवस्था है कि जिन विद्यार्थियोंने हायस्कूल या इन्टर मीजिएटमें हिन्दी विषय नहीं लिया है उनके लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य है। बी. ए., एम. ए. में हिन्दीको एक ऐच्छिक विषयके रूपमे लेनेकी सुविधा कर दी गई है। इस विश्वविद्यालयमें छात्रोंकी तीन परिषदें है, जिनमें हिन्दी शोध परिषद भी एक है। इस विश्वविद्यालय द्वारा एक हिन्दी-नाट्य-शास्त्र तैयार किया जा रहा है—इसमें परिभाषाएँ दशरूपक इत्यादिसे होंगी।

राजस्थान विश्वविद्यालय

कला-विज्ञान तथा वाणिज्यकी सभी उपाधि परीक्षाओंमें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें स्वीकृत है।

गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

इस विश्वविद्यालयके अभ्यासक्रममें इण्टर मीजिएट कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है। बी. ए. तथा. एम. ए. की कक्षामें हिन्दीको एक वैकल्पिक विषयके रूपमें स्थान दिया गया है।

सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ

इस विद्यापीठने सभी विद्याशाखाओंमे शिक्षा व परीक्षाके माध्यमके रूपमें हिन्दी भाषाको स्वीकार करनेका निर्णय किया है। विद्यापीठने शिक्षा और परीक्षाओंके लिए हिन्दी माध्यम स्वीकार किया है।

महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

कला, वाणिज्य एवं विज्ञानके प्रथम वर्षमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवर्य विषयके रूपमें की जा रही है। ललितकला अधिकरणके प्रथम एवं द्वितीय वर्षमें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमे स्थान दिया गया है। सन् ५७ से तृतीय एव चतुर्थ वर्षमें अनिवार्य विषयके रूपमें हिन्दीको स्वीकार किया गया है। इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दीमे शोध कार्य भी हो रहा है। इस विश्वविद्यालयकी शिक्षाका माध्यम क्या रखा जाए इस सम्बन्धमें भी विचार चल रहा है और इसके लिए योजना भी बनी है। एक प्रशिक्षण योजना भी प्रारंभ की गई है। इस योजनाके अन्तर्गत विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षाएँ भी ली जाती हैं।

बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई

इस विश्वविद्यालयमें हिन्दीको एक विषयके रूपमें एम. ए. तक स्थान दिया गया है। पी. एच. डी. डिग्रीके लिए भी हिन्दी विषय स्वीकृत हुआ है। कॉलेजके प्रथम एवं द्वितीय वर्षमें कला तथा विज्ञानके अधिकरणोंमें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दिया गया है।

पूना विश्वविद्यालय, पूना

इस विश्वविद्यालयकी स्थापना सन् १९४८ में हुई। इसके पूर्व इससे सम्बद्ध महाविद्यालय बम्बई विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध थे जहाँ हिन्दीके प्रशिक्षणकी सुविधा बी. ए. तक एक वैकल्पिक विषयके रूपमें विद्यमान थी। पूना विश्वविद्यालयने सन् १९५३ से हिन्दीमें एम. ए. परीक्षाकी व्यवस्था की। सन् १९६० से इस विश्वविद्यालयने स्वतंत्र हिन्दी विभाग खोला है। एक अनुसंधान मण्डलकी स्थापना भी की गई है; जिसका उद्देश्य संशोधन सम्बन्धी नई जानकारीका आदान-प्रदान करना है।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय

हिन्दीको बी. ए., बी. कॉम, बी. एस सी. में वैकल्पिक एवं एक विषय के रूपमें स्थान दिया गया है। एम. ए. परीक्षामे हिन्दीको एक विषयके रूपमें पढ़ानेकी व्यवस्था इस विश्वविद्यालय द्वारा की गई है।

नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

इस विश्वविद्यालयमें एम. ए. तक हिन्दीको एक विषयके रूपमें पढ़ानेकी सुविधा कर दी गई है। शिक्षाके माध्यमके रूपमें हिन्दी को भी रखा गया है। एक योजनाके अनुसार मराठी एवं हिन्दीमें पाठ्य पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। बी. ए. तक हिन्दी अथवा मराठी विषयका अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है।

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत सन् ४९ मे हिन्दीका एक पृथक् विभाग कर दिया गया है और १९५१ में हिन्दी विषय ले करके कुछ विद्यार्थी एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण हुए। हिन्दीमें शोध कार्य सन् १९५३ से प्रारम्भ हुआ और सन् ५७ में हिन्दीमें पी. एच. डी. की डिग्री दी गई। इस समय २० विद्यार्थी हिन्दी में शोध कार्य कर रहे हैं। एम. ए. में ७०, बी. ए. में १५०० छात्र इस समय हिन्दीको एक विषयके रूपमें लेकर पढ़ रहे है। इस विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें हिन्दीकी १५००० पुस्तकें हैं। सम्बद्ध माहविद्यालयोके पुस्तकालयोंमें हिन्दीकी भी पुस्तकें रहती हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

इस विश्वविद्यालयमें बी. ए. तथा एम. ए. के पाठ्यक्रममें हिन्दीके प्रशिक्षणकी सुविधा दी गई है। विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दीका एक पृथक् विभाग ही स्थापित किया गया है।

विश्वभारती, शान्ति निकेतन

इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दी विभाग है, जिसमे हिन्दीके अध्यापन और अध्ययनकी व्यवस्था की गई है। कुछ समय पूर्व हिन्दी विश्वभारती पत्रिका आचार्य हजारी प्रसादजी द्विवेदीके प्रयत्नोंसे शुरू हुई थी जो इस समय बन्द है। विश्वभारतीमें स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओंमे हिन्दीके अध्यापन तथा शोध की व्यवस्था हिन्दी विभाग द्वारा की जाती है। हिन्दी विभागके पुस्तकालयमें इस समय लगभग ६००० हिन्दी की पुस्तकें हैं। अहिन्दी भाषी देशी व विदेशी छात्रोंको हिन्दी सिखानेके लिए हिन्दी विभागकी ओरसे विशेष व्यवस्था है।

जिन-जिन विश्वविद्यालयोंसे विवरण नहीं प्राप्त हुआ है उनके सम्बन्धमें यहाँ जानकारी नहीं दी जा सकी है।

सभी विश्वविद्यालयोंके सामने माध्यमका प्रश्न बड़ा चिन्तनीय है और उपयुक्त पाठ्य पुस्तकोंका अभाव ही एक मुख्य बाधा है। अतः अधिकांश विश्वविद्यालय अनुवाद द्वारा हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओंमें

पुस्तकें तैयार करवानेका विचार कर रहे हैं और कुछ ने तो इसके लिए योजनाएँ बना ली हैं। इस कार्यमें केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उनकी सहायता कर रहा है।

भारतीय हिन्दी परिषद

१७ वर्षोंसे यह संस्था भारत वर्षके समस्त विश्वविद्यालयोंके प्राध्यापकोंका संगठन करती हुई उनकी अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसन्धान सम्बन्धी विविध समस्याओंपर प्रतिनिधि रूपसे विचार करती आई है। हिन्दी भाषा और साहित्य क्षेत्रके सभी मूर्द्धन्य विद्वान इस संस्थाके साथ घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जैसे युग पुरुष तथा बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय, महामहोपाध्याय पंडित गौरी शंकर हीराचंद ओझा भारत रत्न डॉ. भगवान-दास-जैसे देश भक्त, साहित्य सेवी और अनुसंधाता इसके मान्य सदस्य रहे हैं। स्व. डॉ. अमरनाथ झा इसके प्रथम संरक्षक थे। इसके वर्तमान मान्य सदस्योंमें राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. सम्पूर्णानन्द, आचार्य शिवपूजन सहाय और सेठ गोविन्ददास आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। परिषदको अपने विभिन्न अधिवेशनों पर स्व. आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. सम्पूर्णानन्द, श्री रा. र. दिवाकर श्री क. मा. मुन्शी, डॉ. केसकर पं. रविशंकर शुक्ल, श्री हरिभाऊ उपाध्याय जैसे देशके गण्यमान्य मनीषियों और नेताओंका सहयोग तथा पथ प्रदर्शन प्राप्त होता रहा है।

इस संस्थाका प्रमुख उद्देश्य विश्व विद्यालयीन स्तरपर हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृतिके अध्ययन तथा अनुसंधानके कार्यको अग्रसर करना और उसके लिए अनुकूल वातावरणके लिए निर्माणमें सहायता देना है। इस सम्बन्धमें परिषदने समय-समयपर अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की हैं और देशके सन्मुख अपने विचार और सुझाव प्रस्तुत किए हैं। शोध कार्यकी प्रगति पर परिषदका विशेष ध्यान रहा है और विभिन्न विश्वविद्यालयोंके तत्संबंधी पारस्परिक सहयोगके लिए वह अनेक प्रकारसे उद्योग करती रही है। अपने वार्षिक अधिवेशनोंकी विशिष्ट गोष्ठियोंमें शोधपूर्ण निबंधोंकी योजना द्वारा उनके शोध कार्यके स्तरको ऊँचा उठानेका सफल प्रयत्न किया है। राष्ट्रभाषाके स्वरूपका निर्धारण, उच्च शिक्षाका माध्यम, पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणकी समस्या, विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंसे हिन्दीका सम्पर्क तथा हिन्दी क्षेत्रकी विभिन्न उपभाषाओंसे उसके सम्बन्धकी समस्या आदि अनेक प्रश्नोंपर परिषदके अधिवेशनोंमें विद्वानोंने विद्वत्ता पूर्ण विवेचन, समाधान, सुझाव तथा योजनाओं द्वारा अनेक रूपोंमें दिशा-निर्देश किया है।

अधिवेशनों और गोष्ठियोंके अतिरिक्त कतिपय योजनाओंके द्वारा भी परिषदने अपनी सीमित शक्ति और साधनोंसे हिन्दी साहित्यकी अभिवृद्धि करनेका प्रयत्न किया है। आर्थिक कठिनाइयाँ होते हुए भी उसने विश्व विद्यालयोंके प्राध्यापकों द्वारा ३०,००० पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी अंग्रेजी वैज्ञानिक कोषका निर्माण कराया है। हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वानोंके सहयोगसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत करनेकी परिषद की योजना केन्द्रीय सरकारकी सहायतासे कार्यान्वित की जा रही है। उसका एक खंड प्रकाशित हो चुका है तथा शेष दो खंड भी इसी वर्षके भीतर प्रकाशित होने वाले हैं। परिषदने विभिन्न विषयों पर उच्च शिक्षाके स्तरकी पाठ्य पुस्तकें तैयार करानेकी एक विस्तृत योजना भी बनाई है।

परिषदका त्रैमासिक मुखपत्र "हिन्दी अनुशीलन" हिन्दी शोधके क्षेत्रमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। परिषदकी गतिविधिके साथ-साथ इसमें हिन्दी क्षेत्रके शोध कार्यका विवरण भी दिया जाता है।

परिषदकी प्रगतिमें उसके वार्षिक अधिवेशनोंका विशेष महत्व है। इसी अवसर पर देश भरके हिन्दी प्राध्यापक एक स्थानपर एकत्र होकर हिन्दी भाषा एवं साहित्यकी विविध समस्याओंपर विचार करते हैं। अबतक इसके अधिवेशन प्रयाग, लखनऊ, पटना, आगरा, जयपुर, नागपुर, वाराणसी, रायगढ़ (म. प्र.) और दिल्ली में हो चुके हैं।

विदेशोंमें हिन्दी

हिन्दी चूँकि विश्वमें जनसंख्या की दृष्टिसे दूसरे नंबरके राष्ट्रकी राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा घोषित हो चुकी है, इसलिए विदेशोंमें उसका महत्व बढ़ता जा रहा है। आजकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति जहाँ लाओस कम्बोडिया, लेबनान जैसे कुछ लाखोंकी जनसंख्यावाले राष्ट्रोंके लिए अत्यन्त खतरनाक खीचतानसे बाज नही आती,वहाँ ४५ करोड़की आबादीवाले हिन्दुस्तानको समझनेके लिए, उसे अपनी बात ठीकसे समझा देनेके लिए और उसकी सहानुभूति अपने पक्षमें जीत लेनेके लिए हिन्दीके अध्ययन अध्यापनका विश्वके अलग-अलग राष्ट्रोंमें यदि महत्व बढ़े तथा विदेशी विश्व विद्यालयोंमे और शिक्षा-संस्थाओंमें उसके अध्ययनकी व्यवस्था की जाए, तो कोई आश्चर्य की बात नही है। वस्तु स्थिति यह है कि आज विश्वके समस्त एवं उन्नत राष्ट्रोंके विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीको स्थान प्राप्त हो चुका है या अतिशीघ्र मिल जाएगा।

ऐसे कई छोटे-मोटे देश हैं जहाँ महाप्राण भारतवासी व्यापारके लिए या श्रम मजदूरीके लिए जाकर बस गए हैं। भारतवर्षकी स्वतंत्रताके बाद और हिन्दीको भारतीय गणराज्यकी राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा स्वीकृत कर लिए जानेके बाद इन सब प्रवासी भारतीयोंमें तथा उनके वंशजोंमें हिन्दीके प्रति अनुराग बढ़े, यह स्वाभाविक ही है। भारत सरकार भी उनमे हिन्दीका प्रचार-प्रसार बढ़े इस दृष्टिसे आर्थिक अनुदान देती आई है तथा उन्हें पुस्तकों एवं अध्यापकोंकी सहायता आदि प्रदान करती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ,वर्धाके कार्यकर्ता एवं प्रचारकोंने भी इन क्षेत्रोंमें काफी अच्छा एवं ठोस कार्य किया है।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियोंसे विदेशोंमें हिन्दीका जो प्रचार एवं प्रसार हुआ है, उसका संक्षिप्त विवरण हम नीचे प्रस्तुत करते हैं।

सोवियत रूस

रूस और भारत सदियोंसे एक-दूसरेसे परिचित पड़ोसी जैसे रहे है; इसलिए रूसमें इण्डोलॉजी सदियोंसे शास्त्रके रूपमें अध्ययन एवं मननका विषय रहा है। अक्टूबर १९१७ की श्रमिक क्रान्तिके सर्वस्पर्शी एवं दूर-दृष्टि नेता लेनिनके आदेशसे तथा महान मनीषी श्री गोर्कीके नेतृत्वमें वहाँ एक पौर्वात्य विभाग की सृष्टि की गई थी, जिसमें इण्डोलॉजी एक महत्वपूर्ण विषय है। तबसे भारतीय लेखकोंकी लगभग ३०० पुस्तकें रूसकी ३२ भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं और उनकी १५ करोड़ प्रतियाँ छप चुकी हैं। १९०९ में प्रेमचन्दजीके एक कहानी-संग्रहको अंग्रेज सरकारने जब्त कर लिया था। ५० साल पहले प्रकाशित उस किताब का रूसी भाषामें अनुवाद कई सालों पहले किया जा चुका है, प्रेमचन्दकी प्रारंभिक कहानियोंके नायकोंने इस

तरह बहुत पहले रूसी भाषा बोलनी शुरू कर दी थी। अबतक सोवियत यूनियन प्रेमचन्दजीकी १६ किताबोंका अनुवाद अपने यहाँ की आठ भाषाओंमें छाप चुकी है और उनकी कुल ८ लाख प्रतियाँ निकली है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, इकवाल, सुब्रह्मण्यम् भारती, शरतच्चन्द्र चट्टोपाध्याय तथा वल्लतोळ के साथ साथ हिन्दीके पंत, निराला, कृशनचन्दर, डॉ. रामकुमार वर्मा, यशपाल, सरदार अली जाफरी, ख्वाजा अहमद अब्बास, मैथिलीशरण गुप्त आदिका साहित्य भी सोवियत यूनियनमें बड़ी तेजीसे अनूदित एवं प्रकाशित हो रहा है। मास्को, लेनिनग्राड, ताशकन्द, कीव आदि शहरोंकी कई प्रकाशन संस्थाएँ इस कार्यमे दत्तचित्त हैं। स्टेट पब्लिशिग हाऊस फॉर फिक्शन, स्टेट पब्लिशिग हाऊस फॉर फॉरेन लिटरेचर तथा पब्लिशिंग हाऊस ऑफ ओरिएन्टल लिटरेचर इस दृष्टिसे अग्रसर प्रकाशन-संस्थाएँ हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ विस्तृत एवं गंभीर शोध-कार्य करवाती है और रूसी भाषाओंमें अनुवादके लिए सुन्दरतम कृतियोंका चुनाव करती है। भारतीय साहित्यके विशेषज्ञ एव लेखक इस कार्य में उन्हें सलाह देते हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ कोशिश करती है कि हिन्दीके राष्ट्रीय साहित्य की विविध शैलियों एवं प्रवृत्तियोंसे सोवियत पाठक भलीभाँति और सम्पूर्णतया परिचित हो जाएँ। इसलिए हिन्दीके विभिन्न प्रगतिवादी, स्वच्छंदतावादी (रोमेंटिसिस्ट), प्रतीकवादी एवं तथाकथित मनोविज्ञानवादी कवियों, नाटककारों कहानी एवं उपन्यास लेखकों आदिकी कृतियोंके अनुवाद सोवियत यूनियनकी विभिन्न भाषाओंमे प्रस्तुत किए जा चुके हैं। जिन लेखकोंको हिन्दी साहित्यमें मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त हो चुका है, उनके साथ-साथ नए उदीयमान लेखकोंकी प्राणवान कृतियोंको भी छापा जा रहा है। मालोद्या ग्वारडिया पब्लिशिंग हाउसकी तरफसे ऐसा ही एक संग्रह 'यंग पोस्टस् ऑफ इडिया' सन् १९६० में प्रकाशित हुआ है। विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमे काफी विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमें काफी अहमियत रखती है और उनकी खूब माग रहती है।

पिछले साल रूसमे श्री एहतीशम हुसैनकी 'हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर' प्रकाशित की गई। हिन्दी के प्रमुख विद्वान एवं प्रथितयश लेखक शिवदान सिंह चौहानकी भी एक महत्वपूर्ण किताब प्रकाशित हुई है। डॉ. नगेन्द्रके सम्पादकत्वमें लिटरेरी एकेडेमी द्वारा विविध भारतीय भाषाओंके साहित्यपर एक किताव निकाली जा चुकी है। ताशकन्दमें १९५८ मे एशिया और अफ्रिकाके लेखकोंकी एक परिषद हुई थी, जिसमे हिन्दी साहित्यके प्रतिनिधि लेखकोंने हिस्सा लिया था। इससे हिन्दी साहित्यके अनुवादकी धाराको रूसमें और भी बल मिला। सोवियत अनुवादकर्ता इस बातकी भरसक कोशिश करते है कि मूलका सौन्दर्य, उसके भाव एव विषय और साथ ही जिस शैली एवं छंद आदिमे वह बात कही गई वे भी ज्योके त्यों अनुवादमे प्रस्तुत किए जाएँ। पिता-पुत्र बेरेन्निकोवने तुलसी रामायण (रामचरित मानस) का अनुवाद अत्यत सजगता एव कई वर्षो के सतत परिश्रमसे सम्पन्न किया है। उसमें रामचरितमानसकी मूल दोहा-चौपाई तक की रक्षा की गई है। उनकी पत्नीने कामता प्रसाद गुरूके हिन्दी व्याकरणका अनुवाद प्रस्तुत किया है। रूसमे भारतीय कविताओंका कवितामें अनुवादकी परम्परा प्राचीन है। झुकोवस्की, बालकोटकी तरह वर्तमानमे भी एन-तिखोनोव्ह, ए. सुरकाव्ह, व्हीं. डेरझेवीन, ए. अखमातोवा, एस. लिप्किन आदि सफल कवि-अनुवादक हैं। बा. बालिन, वी. चेरनीशोव वी. बेसक्रोवीन, एन. राबिनाविच आदि महानुभाव हिन्दी अनुवादके माहिर है।

श्री इ. चेलीशेव हिन्दी साहित्यके अध्येता एवं सफल अनुवादक है। सच तो यह है कि हिन्दीके अनुवादोंका सोवियत रूसमें एक वर्ग (कूल) ही बन गया है। इस वर्गकी चारित्रिक विशेषता यह है कि उनके

अनुवाद तथ्यात्मक एवं रंगारंग रहते हैं। उनमें कलापूर्ण कल्पनाएँ बड़ी संजीदगी एवं खूबसूरतीसे पेश की जाती हैं। मूलके प्रति उनकी ईमानदारी हद दर्जेकी रहती है। अनुवादमें रेखाएं और रंग सब भारतीय ही रखे जाते हैं, भापा सिर्फ बदलती है।

दसों वर्षोंसे—सोवियत रूस अपनी विचारधाराका, अपने उपन्यासों एवं काव्योंका तथा अपने कई प्रकारके बाल एवं प्रौढ साहित्यका प्रकाशन हिन्दीमें प्रस्तुत करता आया है। उसके ये प्रकाशन सुन्दर, सुभग एवं सजीले होते हैं तथा भारत वर्षमें कई बुक-स्टालोंपर बेचे जाते हैं। सोवियत यूनियनके नेताओंके महत्वपूर्ण व्याख्यान, राजनैतिक दस्तावेज, हलचलों एवं दृष्टिकोणोंके विवरण, समाचार आदि हिन्दीमें हुआ करते हैं और भारतीय समाचार-पत्रों संस्थाओं एवं पुस्तकालयोंकी सेवामें नियमित रूपसे पहुँचते रहते हैं।

सोवियत रूसके विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीका विशिष्ट विषयके रूपमें अध्ययन करनेवाले छात्रोंकी संख्या सैकड़ोंसे नही, हजारोंसे गिनी जा सकती है। कहीं कहीं तो हिन्दीको माध्यमिक स्तरपर भी सिखाया जाता है। रूस सरकारके अनुरोधपर भारत सरकार अपने यहाँसे हिन्दी अध्यापकोंका चुनाव कर देती है और उन्हें रूस जानेकी अनुमति प्रदान करती है। औपनिवेशिक स्वाधीनता युद्धके महान नेता एवं अमर शहीद पीट्रिक लुभुम्बाके नामपर स्थापित मैत्री विश्वविद्यालय मास्कोमें हिन्दी अध्यापनकी विशेष व्यवस्था है।

लेनिनग्रादमें एक नियमित हिन्दी स्कूल है जिसमें दूसरीसे लेकर ग्यारहवीं कक्षातक हिन्दीकी पढ़ाई की जाती है। इस स्कूलमें सारे विषय हिन्दीके माध्यमसे सिखाए जाते हैं और भारतका इतिहास, भारतका भूगोल, भारतीय साहित्य एवं संस्कृति आदि भारतके सम्बन्धित विषयोंका विधिवत् अध्ययन करवाया जाता है। इस स्कूलके छात्र आगे चलकर इंडोलॉजी एव पौर्वात्य विषयकी प्रवीणता हासिल करते हैं।

पूर्वी जर्मनी

र्बालनकी हमबोल्ट युनिवर्सिटीमें इंडोलॉजी के अध्ययनमें प्राचीन भारतके साथ-साथ आधुनिक भारतके राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विकासका भी अध्ययन समाविष्ट रहता है, और वह अध्ययन सहज साध्य हो सके इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओंके अध्ययनपर और विशेष रूपसे भारतकी वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दीके अध्ययनपर अधिक जोर दिया जाता है। जब यह विश्वविद्यालय दूसरे महायुद्धके वाद दुबारा शुरू हुआ, तब हिन्दीके माध्यमकी तुरन्त आवश्यकता महसूस की गई। लेकिन १९४५ के पहले जर्मनीमें हिंदी अध्ययन-अध्यापनकी कोई परम्परा नहीं थी; इसलिए हिन्दी अध्यापकोंकी दृष्टिसे तथा योग्य पाठ्य पुस्तकोंके अभावमें बड़ी कठिनाइयोंका मुकाबला करना पड़ा। जब बर्लिन स्थित एक भारतीय डॉक्टर डॉ. वैद्य हिन्दी कक्षाओंको पढ़ाने तैयार हो गए तब कहीं जाकर १९५५ में हिन्दीके वर्ग शुरू किए गए। १९५७ के वसन्तमें एक-दूसरे डॉक्टर डा. अन्सारी हिन्दीके लेक्चररके रूपमें संस्थामें चले आए। वादमें जब श्रीमती डी. अन्सारीने संस्थासे संस्कृत एवं हिन्दीमें उपाधि-ग्रहण कर ली तब संस्थाने उन्हें हिन्दीके असिस्टेंट रीडर तथा रिसर्च विद्यार्थीके रूपमें संस्थामें नियुक्त कर लिया। उस समय संस्थाकी हिन्दी कक्षामें लगभग १५ विद्यार्थी थे। १९५८-५९ में शान्तिनिकेतन से पं. शास्त्रीजी अतिथि-प्राध्यापकके रूपमें संस्थामें शामिल हुए। उनके बाद श्रीमती त्रिपाठी हिन्दी अध्यापकके रूपमें आई

और सन् १९६० तक बनी रहीं। फिलहाल डा. एम. अन्सारी, श्रीमती डी. अन्सारी, श्री एस. के. सिन्हा तथा कुमारी वेस्टफाल हिन्दी शिक्षक है और हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या १८ है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शुरू शुरूमे न तो उचित पाठ्य-पुस्तकें ही थीं, और न आधुनिक व्याकरणकी किताबे और न कोई हिन्दीके समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ आदि ही। काफी हिन्दी अध्यापक भी नहीं थे। लेकिन फिर भी पिछले सालोंमे विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागने काफी तरक्की की है। इस विभागमें फिलहाल हिन्दी बोलनेवाले दुभाषिए तैयार नही किए जा रहे है। अभी तो विद्यार्थियोंको इस तरहसे पढ़ाया जाता है जिससे कि वे अपने विशिष्ट अभ्यास क्रमसे सम्बन्धित हिंदी किताबें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ और समझ ले सके। इन विद्यार्थियोंको हिन्दी बोलनेका मौका नहीं मिलता, यद्यपि विश्वविद्यालयका यह उद्देश्य है कि उन्हें हिन्दीपर अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाए।

भारत सरकारने सन् ५६–५७ में बर्लिन विश्वविद्यालयमें हिन्दी पढ़ानेके लिए एक प्रोफेसरको भारतसे जर्मनी तक का किराया देकर भेजा था।

पश्चिम जर्मनी

स्टुटगार्टमे एक भारत-भवन है जिसके अन्तर्गत हिन्दी की कक्षाएं चलाई जाती है। भारत सरकारने पुस्तको आदिके लिए तथा हिन्दी प्रचारके लिए उसे कुछ अनुदान दिया है।

ॲमस्टरडम विश्वविद्यालय हॉलेंडमें सन् १९६० से रायल ट्रॉपीकल इंस्टीट्यूट ऑफ ॲमस्टरडमकी तरफसे 'आधुनिक भारतीय भाषाएं तथा उनका साहित्य, पर अध्यासन कायम किया गया है जिसके अध्यक्ष है डॉ० के. डी. व्रीज। डॉ० के. डी. व्रीज १९५४–५५ में भारत आए थे और तब उन्होंने महत्वपूर्ण इडो आर्यन तथा द्रविडियन भाषाओंके अध्ययनार्थ पूरे भारतका दौरा किया था। जो उच्च विद्यार्थी भारतमे जाकर व्यवसाय या अन्य वृत्ति धारण करना चाहते है उनके लिए ॲमस्टरडम विश्वविद्यालयमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओके अध्ययनकी यह व्यवस्था लाभप्रद सिद्ध होगी।

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकियाने अपनी राजनैतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए तथा भारत जन-गणसे परिचय एव सम्बन्ध कायम करनेके लिए हिन्दी अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था अपने देशमें की है। प्राग विश्वविद्यालयमे हिन्दीका एक अलग विभाग है, जहाँ छात्र नियमित रूपसे हिन्दीका अध्ययन करते है। वहाँके हिन्दी-इनचार्ज प्रोफेसर ओडोनेल स्मेकल कुछ दिनों पहले भारतके प्रवास पर भी आए थे। उन्होंने हिन्दीकी अनेक पुस्तकोंका चेक भाषामे अनुवाद किया है। डॉ० ओताकर पेर्तोल्ड भी प्राग-विश्वविद्यालयमे हिन्दी प्राध्यापक है। यहाँ हिन्दी पढ़ाई की यह विशेषता है कि शुद्ध हिन्दी लिखने-पढ़नेके साथ-साथ उसके शुद्ध उच्चारण पर तथा बोलनेकी सहज सुन्दर लकब पर ध्यान दिया जाता है। इसके लिए वे आकाशवाणी हिन्दीके समाचारों एवं बी. बी. सी. के हिन्दी कार्यक्रमोंका उपयोग करते है।

इटली

इटलीके विश्वविद्यालयोमे इंडोलॉजीके अन्तर्गत और अलगसे भी हिन्दीके अध्ययनकी व्यवस्था है। रोम की 'इटालियानो इंस्टीटयुट ' में हिन्दी पढ़नेके लिए भारत सरकारकी ओरसे एक प्रोफेसर इटली भेजा गया था। उस प्रोफेसरको वेतनका एक अंश भी लगभग २५०) रु. प्रति माह, भारत सरकारकी ओरसे दो वर्ष तक दिया गया था।

भारत सरकारने रोम विश्वविद्यालयमे हिन्दीके दो सर्वोत्तम विद्यार्थियोंको १९५१–५२ मे ५०० रु. तथा २५० रु. के दो पारितोषिक देने के लिए रोम विश्वविद्यालय को सहायता भेजी ' थी।

पोलैण्ड

वारसामें एक भारतीय संस्था है जो हिन्दी कक्षाएँ चलाती है। उसका एक अच्छा हिन्दी पुस्तकालय भी है। इस संस्थाको भारत सरकारकी ओरसे हजारों रुपएकी हिन्दी पुस्तकें अनुदानमें दी गई है। अपनी राजनैतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए पोलैण्डमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था विश्वविद्यालयीन स्तरपर तथा सरकारी तौरपर की जाती है।

ग्रेट-ब्रिटेन

पिछली चार सदियोंमें भारतसे जिस देशका सबसे अधिक सम्बन्ध आया है, वह है ग्रेट-ब्रिटेन। सत्य तो यह है कि यूरोपियनोंके और विशेषकर अंग्रेजोंके भारतमें आगमनके बाद ही हमारी भाषाओंके सम्बन्धमे तरह तरहके शोध-कार्योंकी और उनके फलस्वरूप शोध ग्रन्थों एवं पुस्तकोंकी भव्य परम्पराका प्रारम्भ हुआ था। सन् १७७३ मे लन्दनमे श्री फर्ग्युसन नामक सज्जन द्वारा हिन्दीके दो शब्द-कोश रोमन लिपिमें प्रस्तुत किए गए थे। सन् १८१० मे एडिनबरासे तथा १८१७ में लन्दनसे अंग्रेजी-हिन्दी तथा हिन्दी-अग्रेजी शब्दकोश प्रकाशित हुए। श्री गिलक्रिस्ट एवं ग्रियर्सन साहबके नाम तो हिन्दीके अभ्युत्थान और इतिहासमें अजरामर हो गए हैं। न सिर्फ हिन्दीकी विभिन्न उपभाषाओंका, बल्कि पूरे भारतकी भाषाओंका 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थ १९ वी सदीके अन्तमे श्री ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित कराया गया था। अन्य भारतीय भाषाओंकी तरह हिन्दी तथा उसकी उपभाषाओंके बारेमे, उनके व्याकरण, साहित्य, इतिहास आदिके सम्बन्धमें कई प्रकारके शोध-ग्रन्थोंका काम अग्रेजी-भाषाविदों एव पण्डितों द्वारा पिछली दो-ढाई सदियोंसे निरन्तर किया जाता रहा है। इसलिए इण्डोलॉजी और भारतीय भाषाओके विस्तृत एवं गम्भीर अध्ययनकी व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेनके विश्वविद्यालयों एव शिक्षण-सस्थाओंमे मिलती है। ब्रिटिश म्यूजियममें तथा पुस्तकालयमें भारतकी तथा हिन्दीकी प्राचीन हस्तलिपियाँ तथा अनमोल ग्रन्थ संग्रहीत हैं तथा सैकड़ों जिज्ञासु दत्तचित्त होकर उससे नित्य लाभान्वित होते दिखाई देते हैं। पहले शासक और शासितके रूपमे तथा पिछले पन्द्रह वर्षोंसे राष्ट्र-कुटुम्बके एक प्रभावशाली सदस्यके रूपमें अंग्रेज राष्ट्रकी दिलचस्पी एव स्वार्थ, भारतीय जनताके साथ विविध प्रकारेण संलग्न रहे है। आज भी असम और बंगालमें तथा पूरे देशमे सबसे अधिक 'विदेशी-सम्पत्ति यदि किसी राष्ट्रकी है तो वह

ब्रिटेनकी ही है। इसलिए उस देशमें भारतकी सर्व-प्रमुख भाषा हिन्दीके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था समुचित रूपसे की जाए, यह स्वाभाविक ही है। और यही कारण है कि अंग्रेज सरकारके उपनिवेश विभागमें तथा राष्ट्र-कुटुम्ब विभागमें हिन्दी भाषाके कुशल लेखक एवं पण्डित काफी तादादमें मिलते हैं।

ऑक्सफोर्ड, डुरहॅम तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंको भारत सरकार की ओरसे हिन्दी पुस्तकें भेंट स्वरूप प्रदान की गई है। लन्दन आदि शहरोंमे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा एवं प्रचार केन्द्र स्थित है।

आफ्रिका

दक्षिण आफ्रिका—दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय लोग सन् १८६० से बस रहे हैं। वहाँ भारतीयोंमें प्रथम हिन्दी-प्रचार कार्य करनेवाले स्वामी शकरानंदजी हुए। उनके बाद स्वामी भवानी दयाल सन्यासीने हिन्दी प्रचारका कार्य किया। एक 'धर्मवीर' पत्र भी वहाँ उन्होंने निकाला था। उन्हीके प्रयत्नोंसे हिन्दीके प्रचार कार्यकी दक्षिण आफ्रिकामें जड़ें जमी थी। सन् १९४७ में श्री नरदेवजी वेदालंकारके दक्षिण आफ्रिकामें पहुँचनेके बाद हिन्दी प्रचारके कार्यको विशेष गति मिली। उनकी सलाहसे १९४८ में एक हिन्दी सम्मेलन बुलाया गया था। उस सम्मेलनमें एक प्रस्ताव द्वारा हिन्दी शिक्षा संघ नाताल की स्थापना की गई और उसे दक्षिण आफ्रिका का सब कार्य सौप दिया गया। दक्षिण आफ्रिकामे अधिकतर भारतीय नाताल प्रान्तमे ही बसे हुए है। इनमें तमिल-भाषी व्यक्तियोंके बाद हिन्दी-भाषी लोगोंकी संख्या अधिक है और उनके लिए स्थान-स्थानपर हिन्दी पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं।

युवक आर्यसमाज क्लेयर वुड, मियर-बैंक सनातन धर्म उन्नति सभा, वेद धर्म सभा पीटर मेरित्सबर्ग, वैदिक विद्या प्रसारक सभा, आर्य समाज प्लेसिस्लेयर, वैदिक युवक सभा विल्गे फोंटीन, आर्य समाज रेअिस्तोर्प, आर्य समाज माऊंट पाट्रिज, हिन्दी विद्या मंदिर जोहानीसबर्ग, नागरी प्रचारिणी सभा स्प्रिंगफील्ड, कंडेला इस्टेट हिन्दू संगठन, एसेन्डीन रोड हिन्दी पाठशाला, भारत हिन्दी पाठशाला जेकबस, बिनोनी हिन्दी पाठशाला, सनातन धर्म सभा लेड़ी स्मिथ, आर्य समाज केटोमेनोर, आर्य समाज वेस्टविल, इनान्डा इन्डयन वेलफेयर सोसायटी, विलेयर सोशियल सोसायटी, केवेन्डिश हिन्दी पाठशाला, डरबन पाठशाला, गुजराती हिन्दी स्कूल लेडी स्मिथ नवयुवक हिन्दी पाठशाला सीकाउलेक, हिन्दी युवक सभा लेडी स्मिथ, डरबन केन्द्र हिन्दी प्रचार समिति, क्लेयरवुड हिन्दी रात्रि वर्ग आदि पाठशालाएँ चल रही है इनमें ३००० के करीब विद्यार्थी हिन्दी नियमित रूपसे सीखते है। २२ और पाठशालाएँ अभी संघमे नई सम्मिलित हुई है।

दक्षिण आफ्रिकामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की ही परीक्षाएं चलती है। समिति दक्षिण आफ्रिकाको वार्षिक अनुदान भी नियमित रूपसे देती आ रही है।

दक्षिण आफ्रिकामें प्लेसीअर, डरबन, जोहानीसबर्ग, पीटरमेरित्सवर्ग, केप टाऊन, स्प्रिन्ग्स, डरबन एन. ई. आदि स्थानोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके केन्द्र चलते है और सैकड़ों की संख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। हिन्दी शिक्षा संघकी ओरसे संगीत-नृत्य नाटक, भाषण आदि प्रतियोगिताएँ भी हिन्दीमें आयोजित की जाती हैं।

१० वर्ष पूरे होनेके उपलक्षमें १९५८ में हिन्दी शिक्षा संघका दशाब्दि समारोह आयोजित हुआ और एक हिन्दी प्रचार सप्ताह मनाया गया। इस अवसर पर एक भारत-झलक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थीं।

पूर्व आफ्रिका—करीब दस वर्षसे पूर्व आफ्रिकामें भी श्री अनन्त शास्त्री, मोम्बासाके प्रयत्नसे हिन्दी प्रचार कार्य सुन्दर ढंगसे हो रहा है। मध्य तथा पूर्व आफ्रिकामें बसे हुए लगभग ४लाख भारतीय धन-धान्यसे सुखी है। ये अपनी मातृभूमि भारतकी संस्कृतिसे सम्पर्क रखनेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा सीखनेकी ओर रुचि दिखाते है और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

श्री मावजीभाई जोशी तथा श्री अनन्त शास्त्रीजीके हिन्दी-प्रचार-कार्यके प्रयत्न सराहनीय है।

पूर्व आफ्रिकामें मोम्बासा, नैरोबी, एलडोरेट, किसुमु, नकरू, कम्पाला, काकीरा, दारेसलाम, टांगा, म्वान्झा, सैलस्बरी, लुसाका, मगड़ीशो, जांजीवार, वेरा आदि स्थानोंमें हिन्दी की पाठशालाएं है एवं नियमित हिन्दी वर्ग चलते हैं।

भारतीय आयुक्त के शिक्षा अनुभागने नैरौबीमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की। भारत सरकारने नैरोबीकी पच्चीस स्कूलोंके लिए पुस्तकें खरीद दी हैं। दो अंशकालीन अध्यापकोंका वेतन भी भारतीय आयुक्त द्वारा प्रदान किया गया। नैरोबी में हिन्दी की पहली पुस्तकके लिए ४० रु. भी दिए गए थे।

पूर्व आफ्रिकामें टांगानिका, युगांडा तथा केनियाका समावेश होता है। टांगानिकामें शिनयांगा, मुसोमा, दारेसलाम, टांगा आदि, युगांडामें लुगाझी, म्बाले, नगोन्गेरा, जिजा, कबाले, कम्पाला आदि तथा केनियामें नैरोबी, मोम्बासा, ब्रोड़ेरीक फाल्स, किमुमु आदि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा-केन्द्र हैं।

पश्चिमी आफ्रिका—भारतसे आकर बसे हुए लोगोंमें हिन्दी प्रचारके प्रति काफी दिलचस्पी है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का एक परीक्षा केन्द्र 'लोरेन्को मारक्विस' में चलता है।

दक्षिण रोडेशिया

भारतीय जनोंमें हिन्दी प्रचार का काफी काम हो रहा है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाओंका एक केन्द्र 'बुलावायो' में चला करता है।

सूदान

जो प्रवासी भारतीय सूडान के नागरिक बन गए है अथवा उस देश में रहने लगे है उनमें हिन्दी शिक्षा के लिए तीव्र ललक रहती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा केन्द्र नियमित रूपसे कसाला और पोर्ट सूडानमें चला करते हैं।

इरीट्रिया

इरीट्रियाके अस्मारा, इरीट्रियामें हिन्दी परीक्षाओंका एक केन्द्र है। यहाँसे परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षामें बैठा करते हैं।

जो आफ्रिकी विद्यार्थी उच्चस्तरीय या तकनीकी अध्ययनके लिए भारत आते है उन्हें हिन्दी सिखानेके लिए भारत सरकार अनुदान दिया करती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिकाके वाशिंगटन स्थित भारतीय दूतावासमें सन्दर्भके लिए 'हिन्दी स्वयं शिक्षक' के ढंगकी पुस्तकें खरीदी गई हैं।

अमरीकी विश्वविद्यालयोंमेंसे कोर्नेल, पेन्सिल्वानिया तथा केलीफोर्निया विश्वविद्यालयोंमें एशियाई साहित्यके अन्तर्गत हिन्दी विषयके अध्ययन एवं अध्यापनकी व्यवस्था की जाती है। हिन्दी विषयके रूपमें पढ़ानेकी सुविधा अन्य विश्वविद्यालयोंमें भी हो रही है। न्यूयार्कमें भूगर्भ स्टेशनपर एवं मार्गोपर जो सूचनाएँ लिखी रहती हैं, उनमें उर्दू एवं हिन्दीको भी स्थान दिया गया है।

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया तथा क्वीन्सलैण्डने हिन्दी कक्षाओंके लिए बहुत अधिक रुचि दिखाई। आस्ट्रेलियन सरकारने तदर्थ सहायताके लिए भारत सरकारसे अनुरोध भी किया था। क्वीन्सलैण्ड विश्वविद्यालय, ब्रिसबेनने भी स्थानीय नागरिकोंके लिए प्राथमिक स्तरपर हिन्दी कक्षाएँ चलानेके लिए भारत सरकारसे आर्थिक एवं अन्य सहायता माँगी थी। तदनुसार भारत सरकारकी ओरसे उक्त विश्वविद्यालयको २,०००) की पुस्तकें प्रदान की गई।

जापान

१—जापानमें निम्नलिखित विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओंमें हिन्दी अध्ययन एवं अध्यापनकी व्यवस्था है :—

(१) टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस, हिन्दी सेक्शन, भारत-पाक डिपार्टमेण्ट—यहाँ हिन्दीके शिक्षकोंमें एक सहायक प्रोफेसर तथा एक लेक्चरर जापानी हैं और तीन विदेशी हैं। विद्यार्थियोंकी औसत संख्या ६० है। प्रतिवर्ष १५ विद्यार्थियोंको प्रवेश दिया जाता है। ४ वर्षोंका पाठ्यक्रम है।

(२) ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज डिपार्टमेंन्ट ऑफ इंडोलॉजी, हिन्दी सेक्शन—यहाँ हिन्दी पढ़ानेके लिए एक प्रोफेसर तथा दो असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। कुल ६० विद्यार्थी पढ़ते हैं। प्रतिवर्ष १५ नए विद्यार्थी दाखिल किए जाते हैं। पूरा कोर्स ४ वर्षका है।

(३) कियोटो युनिवर्सिटी, फेकल्टी ऑफ लिटरेचर, संस्कृत लँग्वेज डिपार्टमेण्ट हिन्दी सेक्शन—हिन्दीके लिए एक लेक्चरर है।

२—हिन्दीकी निम्नलिखित पुस्तकें जापानी भाषामें अनूदित एवं जापानमें प्रकाशित हो चुकी है :—

(अ) प्रेमचन्दजीका गोदान (उपन्यास—'चिकुमा-शोबो' भारतीय कृतियोसे संग्रहीत।)

(आ) सुमित्रानन्दन पन्तका स्वर्ण किरण (तारीखवार क्रमबद्ध कविताएँ तथा उद्धरण—'हैबोन-शा' विश्वकी श्रेष्ठ कविताएँ : ग्रन्थ १८ : पूर्व)

(इ) सुमित्रानन्दन पन्तकी दो कविताएँ—(:हैबोन-शा : विश्वकी श्रेष्ठ कविताएँ।)

(ई) बच्चोंके गीत—('कोदान-शा' विश्वके बाल-गीतोंका संग्रह—विश्वके बाल-साहित्य संग्रहका १८ वाँ खण्ड।)

३—जापानकी पत्र-पत्रिकाओंमें निम्नलिखित रचनाएँ अनूदित होकर छप चुकी है—

(अ) प्रेमचन्दजीकी "बेटोंवाली विधवा" कहानी—'किंदाई बुन्गकु' (समकालीन साहित्य) के मई १९५७ के अंकमें।

(आ) महादेवी वर्माकी 'घीसा' कहानी—जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशिइन बुन्का', खंड २ में।)

(इ) जैनेन्द्रकुमारकी 'पटनी'—किनोकुनिया बुक स्टोर द्वारा प्रकाशित, त्सुकुएके जुलाई १९५९ के अंकमे।

(ई) जयशंकर 'प्रसाद' की "ध्रुव स्वामिनी"—कनसेई जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशि-इन बुन्का खंड २ के मार्च १९६१ के अंकमें।

(उ) रामधारी सिंह 'दिनकर' का "संस्कृतिके चार अध्याय" शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

४—जापानमे विद्यार्थियों द्वारा निम्नलिखित हिन्दी एकांकी नाटक खेले जा चुके हैं:—

(अ) श्री उपेन्द्रनाथ अश्कका 'अंजो दीदी', 'आदि-मार्ग' तथा 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ'।

(आ) डॉ० रामकुमार वर्माका 'उत्सर्ग।'

(इ) श्री लक्ष्मीनारायणलालका 'बाहरका आदमी।'

(ई) श्री जयशंकर प्रसादका 'ध्रुव स्वामिनी।'

(उ) श्री प्रेमचन्दजीका 'कफन।'

५—जापानमे हिन्दीके निम्निलिखित प्रोफेसर हैं:—

(१) श्री हिसाया डोई, असिस्टेंट प्रोफेसर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।

(२) श्री ओटाया टनाका, प्रोफेसर चुओ युनिवर्सिटी।

(३) श्री शान्तिलाल झवेरी, लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।

(४) कुमारी पूर्णलता लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।

(५) श्री सन्तप्रकाश गांधी, लेक्चरर टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।

(६) श्री नोरीहिको उचीदा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।

(७) श्री केंतारो यामामाटो, प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।

(८) श्री कत्सुरो कोगा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।

६—जापानमें एक गाँधी इन्स्टीटयूट है जो गाँधीजीके तत्वोंके साथ साथ हिन्दीका भी प्रचार एवं प्रसार करती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके हिन्दी वर्ग भी जापानमें चलाए जाते है। कियोटो समितिका एक परीक्षा केन्द्र चल रहा है।

चीन

भारत और चीन हजारों वर्षोंसे पड़ोसी देश हैं और इसलिए एक-दूसरेमें एक-दूसरेको अनेकों प्रकारकी दिलचस्पियाँ रहती चली आई हैं। (अभी-अभी तो हमारे राष्ट्रकी उत्तरी तथा पश्चिमी सीमाओंपर चीनका बहशियाना खूनी आक्रमण ही चल रहा है।) इसलिए चीनमे भारतकी भाषाओंके और विशेषकर सबसे अधिक बोली एवं समझी जानेवाली भाषाके रूपमे हिन्दीके अध्ययनपर विशेष तत्परता एवं योजना पूर्वक ध्यान दिया जाता रहा है। चीन अपने यहाँ ऐसे दुभाषियोंकी फौज खड़ी करना चाहता है जो हिन्दीमें माहिर हों, योग्यतापूर्वक हिन्दी लिख-पढ़ तथा बोल ले सकें ताकि भारतीय जनतामे विरोधी प्रचार मोर्चेपर उनका उपयोग किया जा सके। अकेले इन दिनों पीकिंग विश्वविद्यालयमे ४० छात्र हिन्दीका गहराईसे अध्ययन कर रहे हैं। विदेशोंसे हिन्दीमें समाचार तथा टिप्पणियाँ आदि प्रेषित करनेवाले देशोंमे शायद चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ समाचार प्रेषित करनेवाला व्यक्ति भारतीय नही, हिन्दी सीखा हुआ चीनी है।

चीन हिन्दीमे कुछ पत्र-पत्रिकाओंका भी नियमित प्रकाशन करता आया है। विदेशोंमे सोवियट रूसके बाद चीन ही मे हिन्दीमें पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ इतनी बड़ी तादादमे छापी जाती है। अन्तर इतना ही है कि चीन भारतकी जनता तक अपनी बात एवं प्रचार पहुँचानेके लिए यह सब उठापटक करता है, भारतके साहित्य एवं संस्कृतिसे रूसकी तरह अपनी जनताको समृद्ध एवं संस्कारित करनेके लिए नही। अब यह बात दूसरी है कि हिन्दी कविताएँ तथा भारतीय साहित्य अपनी शक्तिसे चीनी छात्रोंके मनमे अपने लिए अनुराग एवं ललक पैदा करनेमें कुछ अंश तक सफल हो जाएँ। कहते हैं कि हिन्दी कविताओंके अनुवादको पढ़कर ही कुछ छात्रोंके मनमें उन्हें मूल हिन्दीमें पढ़नेकी तीव्र इच्छा जाग उठी थी और उन्हींकी इच्छापूर्तिके लिए चीनमे सर्वप्रथम हिन्दी अध्यापनकी व्यवस्था की गई थी। चीनमे हिन्दी भाषाके इतिहास, व्याकरण, साहित्य इ० सम्बन्धी शोधकार्य भी चलाए जा रहे हैं।

भारत सरकारकी ओरसे पीकिंग स्थित भारतीय दूतावासको तथा शँघाई स्थित काउंसलेट जनरलको वहाँके भारतीय बच्चोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए हिन्दी पुस्तकें भेंट मे दी गई है।

विएतनाम

विएतनाम गणतन्त्रके नई दिल्ली स्थित काउंसलेट जनरलके अनुसार विएतनामके किसी कालेज या विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विषयके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था नहीं है, लेकिन राजधानी सैगांनमें तथा अन्य महत्वपूर्ण शहरोंमे बहुतसे लोग हिन्दी जानते समझते है। भारतीय चलचित्र न सिर्फ वहाँके हिन्दुस्तानियोंमें बल्कि वियतनामियोंमे भी लोकप्रिय है। सैगानके एक या दो सिनेमाघरोंमें हिन्दी चलचित्रोंके प्रदर्शनकी विशेष व्यवस्था है।

ब्रह्मदेश

ब्रह्मदेश संस्कृति, भूगोल एवं इतिहासकी दृष्टिसे भारतके बहुत निकट है। आजसे २५–३० साल पहिले तक वह अँग्रेजोंके अधीन भारतका एक अंग ही था। भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह भारतीय

वहाँ अब तक निर्बाध गतिसे जाते एवं बसते रहे हैं। द्वितीय महायुद्धके बाद जब दोनों प्रदेश अलग-अलग रूपसे स्वतन्त्र बना दिए गए, तबसे कही कुछ व्यवधान आया है। ब्रह्मदेशमे आज हजारों भारतवासी हैं और उनकी वहाँ अनेकों शिक्षा-संस्थाएँ आदि चलती हैं। उस प्रदेशका अपना हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी है। ब्रह्मदेशमे हिन्दी विद्यापीठ, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा मद्रास तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका कार्य शिक्षण-केन्द्र एवं परीक्षाएँ चलती हैं तथा सैकड़ों विद्यार्थी उनमें सम्मिलित होते है। रंगूनके जियावाड़ी हाइस्कूलमे प्रायमरीसे सब विषय हिन्दी मे पढ़ाए जाते है तथा आई. एस. खालसा हाईस्कूल, डी. ए. बी. हाई-स्कूल, मारवाड़ी हाईस्कूल और गुजराती हाइस्कूलमें कलकत्ताके मैट्रिक स्तरकी हिन्दी पढ़ाई जाती है। रगूनकी इग्लिश मेथडिस्ट हाईस्कूल तथा बंगाली एकेडमी हाईस्कूलमे हिन्दीके विशेष अध्ययनकी व्यवस्था है। गाँधी मेमोरियल हाईस्कूल टौजीमें मिडिल स्कूल तक सबको हिन्दी पढ़ाई जाती है। लाश्यो, मिचान, माडले तथा कलौमें जो भारतीय स्कूलें है उनमें सब विद्यार्थियोंको हिन्दीमें पढ़ाई जाती है। इनके अलावा ए. बी. एम. तमिल स्कूल, तेलुगु स्कूल तथा नेपाली स्कूलमे हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी भी संख्या काफी रहती है। ब्रह्मदेशके रामकृष्ण मिशन पुस्तकालय, मारवाड़ी पुस्तकालय तथा आर्य समाज पुस्तकालयमें हिन्दीकी क्रमशः ६ हजार, ३० हजार तथा १ हजार पुस्तकें हैं।

रगून तथा मांडलेमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा केन्द्र चलते हैं।

श्रीलंका

श्रीलंका यद्यपि आज स्वतन्त्र राज्य है लेकिन भाषा, धर्म, संस्कृति, एव वशकी दृष्टिसे वह भारतसे अविच्छिन्न रूपसे जुड़ा हुआ है। वहाँ दो तरहके भारतीय है, एक तो जिन्हे नागरिताके अधिकार प्राप्त हो चुके हैं और दूसरे जो पीढ़ियोंसे वहाँके बाशिदे होनेपर भी उन अधिकारोसे वंचित है। जनसंख्याके अनुपातमें भारतसे आए हुए लका वासियोंकी संख्या इतनी काफी है कि वे वहाँकी राजनीतिपर प्रभाव डाल सकते है। इसलिए श्रीलकामे प्रयत्न पूर्वक अलगाव एव भेदभावकी नीतिके बावजूद भी हिन्दी सस्कृत, एव पाली आदि भाषाओंका अध्ययन-अध्यापन बड़े पैमानेपर चलता रहता है। यहाँ एक बात ध्यानमे रखनी चाहिए कि लंका-वासी भारतीय अधिकतर तमिल भाषा-भाषी है, इसलिए वहाँ हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके कामका बहुत बड़ा शोर नही सुनाई देता। फिर भी हिन्दीकी तरफ लोक-रुचि है। सरकार भी उसपर सांस्कृतिक एवं राज-नैतिक आवश्यकताओंके कारण ध्यान देती है। श्री लंकाके विद्यालंकार विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक अध्यासन कायम किया गया है, जिसके अध्यक्षके रूपमें हिन्दीके प्रथितयश साहित्य-मनीषी एवं राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यके उद्भट सेनानी सुप्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायनजीको नियुक्त किया गया है। राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके कई परीक्षा केन्द्र कोलंबो, देमलगोड़ आदि जगहपर चल रहे है।

श्रीलंका विश्वविद्यालयमे हिन्दी भाषाके अध्ययनकी व्यवस्था है। भारत सरकारकी ओरसे इस विश्वविद्यालयको ५९०० रु. की निधि इसलिए प्रदान की गई है कि उसमेसे प्रतिवर्ष हिन्दीके दो सर्वोत्तम विद्यार्थियोंको एक सौ (१००) रु. का तथा ७५ रु. का पुरस्कार दिया जा सके। भारत सरकारकी ओरसे समय-समयपर विभिन्न शिक्षण-संस्थाओंको हिन्दी शिक्षणकी व्यवस्थाके लिए तथा पुस्तकालयों आदिके लिए नगद तथा पुस्तकोंके रूपमे अनुदान दिए जाते रहे हैं।

नेपाल

धर्म, संस्कृति एवं साहित्यकी दृष्टिसे तथा भाषाकी दृष्टिसे नेपाल तथा भारत लगभग एकजीव रहे हैं। विश्वमें नेपाल ही एकमात्र राज्य है जहाँ का धर्म आज भी आधिकारिक रूपसे हिन्दू है और जहाँके शासकोंके विवाहादि सम्बन्ध भारतीय राजपूतोंके साथ बने हुए हैं। नेपालके स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाईकी व्यवस्था है। भारत सरकारने सन् ५४–५५ में १० हजार रुपयेकी लागत की पुस्तकें पचास नेपाली स्कूलों एवं संस्थाओंको अनुदानमें दी थी। सन ५५–५६ मे उसने और ५० सेट पुस्तकोंके भेजे। हिन्दी प्रचार एवं प्रसारमे तथा उसकी शिक्षा-दीक्षामें नेपाल सरकार भी दिलचस्पी लेती है। नेपालमें हिन्दीके समाचार-पत्र निकलते हैं या भारतसे जाकर बिकते हैं। बहुत बड़ी तादादमें हिन्दी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तकालयोंकी सख्या तो अनगिनत है। नेपाली भाषा तथा हिन्दी भाषा एक ही इंडो-आर्यन वर्गकी भाषा——बहनें होनेके कारण दोनोंमें आपसमे आदान-प्रदान लगातार चलता आया है। स्वाधीनताके बाद तो इस दिशामें सजग प्रयत्न भी किए गए हैं। यूँ भी कहा जा सकता है कि हिन्दी नेपालकी दुय्यम महत्वपूर्ण भाषा है, संस्कृतको तो खैर वहाँ धार्मिक दृष्टिसे मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त है ही।

सिक्किम और भूटान

ये दोनों प्रदेश लगभग भारतीय ही हैं, भारतीय शक्ति द्वारा संरक्षित तथा भारतीय साधनोंसे परि-वर्धित सिक्किम तथा भूटानकी सस्थाओंको हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए भारत सरकार द्वारा सन् १९५६–५७ मे १० हजारकी हिन्दी पुस्तकें भेंट की गई थीं। हिन्दी शिक्षा एवं प्रसारके लिए भारत सरकारकी ओरसे समय-समयपर आर्थिक मदद भी प्राप्त होती रहती है।

पाकिस्तान

वाक्योंमे पदों, सम्बन्ध सूचक अव्ययों तथा क्रियाओंकी स्थितियोंपरसे, लिंग-वचन पुरुष-वचनके अनुसार संज्ञा-सर्वनाम शब्दोंके रूपोंपरसे और लिंग, वचन, काल एवं पुरुषके अनुसार क्रियापदोंके स्वरूपों परसे भाषाका स्वरूप निश्चित किया जा सकता है। इन सब दृष्टियोंसे हिन्दी और उर्दू एक ही भाषाके दो रूप, दो शैलियाँ मालूम होती हैं, मानों माँ-जाई दो बहनें हों। इसीलिए पाकिस्तानकी राजभाषा उर्दूमें जो समाचार समाचार प्रक्षेपित किए जाते हैं, वे उनमें ठूँसे गए अरबी-फारसी शब्दोंके बावजूद भी हिन्दी जाननेवालोंकी समझमें मोटे तौरपर आ जाते हैं। पश्चिमी पाकिस्तानमें जेकोबाबाद जिलेके कन्धकोट शहरमें तथा पूर्वी पाकिस्तानके बैरकपुर नगरमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा-केन्द्र सफलतापूर्वक चल रहे हैं। पाकिस्तानमें सिंध तथा पंजाबमें और बंगालमें हिन्दी भाषाकी पढ़ाईके लिए स्कूलोंमें तथा कालेजोंमें व्यवस्था की जाती है। दोनों राज्योंके बीच साहित्यिक आदान-प्रदान गोष्ठी मुशायरे आदि आए दिन हुआ करते हैं।

फिजी

फिजीमें प्रवासी भारतीयोंकी संख्या काफी बड़ी है। उनमें हिन्दीके प्रति स्वाभाविक अनुराग है।

भारत सरकारने भी इसीलिए समय-समयपर वहाँकी पाठशालाओं संस्थाओं, पुस्तकालयों आदिको भरपूर मदद दी है। सन् १९५४–५५ में उसने फिजीके २५ स्कूलों तथा संस्थाओंमेंसे प्रत्येकको ८०–८० रु. की हिन्दी पुस्तकोंके संच भेंट किए और उस मदमें ७००० रु. खर्च किए। सन् १९५५–५६ में भारत सरकारकी ओरसे फिजीके चलते-फिरते पुस्तकालयकी 'पुस्तक पेटी योजना' के लिए ४ हजार रुपयेकी पुस्तकें भेजी गई। उसी वर्ष फिजीके स्कूलों एवं संस्थाओंको ३३०० रु. की पुस्तकें भारत सरकारकी ओरसे दानमें मिली। सन् १९५६–५७ में भारत सरकारने अशिक्षित भारतीय महिलाओंको हिन्दी सिखानेके प्रयत्नोंमें सहायता स्वरूप कु. ग्रिफीसको ५०० रु. की हिन्दी पुस्तकें भेंट की। फिजीमें स्थित भारतीय आयुक्तकी प्रार्थनापर भारत सरकारके सूचना एवं प्रसार मन्त्रालयने फिजीमें हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दीमें रिकार्ड किया हुआ एक प्रोग्राम 'फिजी प्रसार निगम' (ब्राडकास्टिंग कारपोशन) को भेजा है।

फिजीमें एक 'फिजी-कुमार साहित्य परिषद' है जो हिन्दी प्रचारका काम करती है। उसीके मातहत सिंगातोकामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका परीक्षा-केन्द्र चलाया जाता है।

मारीशस

यह द्वीप आफ्रिकाके पूर्वमें, हिन्दुस्तानसे लगभग २॥ या ३ हजार मील दूर हिन्द महासागरमें स्थित है। इसकी ५ लाख जनसंख्यामें ३ लाख भारतीय हैं; इसलिए इस द्वीपकी समस्त राजनीति, कारोबार आदि भारतीयोंके ही हाथोंमें हैं। सन् १९१३ में स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीने यहाँ सर्वप्रथम हिन्दी पाठशालाएँ खुलवाई। आज इन पाठशालाओंकी संख्या १५० है और लगभग १ हजार छात्र हिन्दीका नियमित अध्ययन करते हैं। हिन्दी प्रचार एवं प्रसारका काम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा किया जाता है। समिति एवं सम्मेलनकी परीक्षाओंमें यहाँसे परीक्षार्थी काफी तादादमें बैठा करते हैं। समितिका परीक्षा-केन्द्र मोसेलमा प्लैडेपपाईमें है। मारीशससे हिन्दीके चार समाचार पत्र 'आर्योदय, 'जनता', 'जमाना' तथा 'नवजीवन' निकलते हैं। चूंकि यहाँ जो भारतीय बसे हैं उनमें बिहार, उत्तरप्रदेश, बंगाल, पंजाब, उत्कल आदिके अधिक हैं, इसलिए भी इस द्वीपका वातावरण हिन्दीमय बन गया है। यहाँके स्कूल-कॉलेजोंमें हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य है। तुलसीकृत रामायण लोकप्रिय है और कई रामायण-मण्डल रामकथाके साथ-साथ हिन्दीका भी प्रचार एवं प्रसार करनेमें सहायक सिद्ध हुए हैं। मारीशसमें हिन्दी प्रचारिणी सभाकी ओरसे हिन्दी-प्रचारका विशिष्ट कार्य किया गया है।

भारत सरकारने भी मारीशसमें हिन्दी प्रचार एवं शिक्षाके लिए समय-समयपर सहायता प्रदान की है। सन् १९५४–५५ में उसकी ओरसे ४० पाठशालाओंमेंसे प्रत्येकको १००–१००) रु. की हिन्दी पुस्तकोंका सेट भेंट किया गया तथा वहाँके हिन्दी पुस्तकालयके लिए ४,०००) रु. की पुस्तकें भेजी गई। सन् १९५५–५६ में फिर सरकारकी ओरसे चालीस स्कूलोंके लिए १,०४४ रु. की पुस्तकें दी गई।

ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज, ब्रिटिश गायना और जमेका

इन तीनों उपनिवेशोंमें भारतीय आबादीका अनुपात बड़ा है। यही कारण है कि इन प्रदेशोंके समाजिक एवं राजनैतिक जीवनमें भारतीय प्रवासियोंके वंशज प्रमुख रूपसे मोर्चोंपर दिखाई देते हैं। ब्रिटिश

गोयनाके प्रधानमन्त्री डॉ. छेदी जगन है। इसलिए हिन्दीके प्रति एवं भारतके प्रति इन प्रदेशोंमें स्वाभाविक अपनत्वकी भावना है और इसीलिए उनमें बसे हुए भारतीयोंको हिन्दी सिखानेके लिए भारत सरकारने योजनाबद्ध रूपसे हर साल सहायता प्रदान की है। उसके द्वारा सन् १९५४–५५ में १५ हिन्दी-केन्द्रोंको अलग-अलग रूपसे तीन-तीन सौ रु. मूल्यकी हिन्दी किताबोंके सेट भेंट किए गए थे। उस वर्ष हिन्दी शिक्षा केन्द्रोंके अध्यापकोंको मानधनके रूपमें भारत सरकारकी ओरसे पारिश्रमिक भी प्रदान किया गया था। साथ ही विभिन्न केन्द्रों एवं प्रत्येक उपनिवेशमें सर्वश्रेष्ठ आनेवाले हिन्दी विद्यार्थियोंको पुरस्कार भी दिए गए। इन सब मदोंमें सन् ५४–५५ के सालमें भारत सरकारकी कुल रकम ९८१० रु. खर्च हुई। सन् १९५५–५६ में उसे बढ़ाकर १४,६५४ रु. कर दिया गया। उसमें से ५१४ रु. किताबोंके सेट देनेके लिए, १०,४४० रु. अध्यापकोंको मानधन स्वरूप पारिश्रमिकके लिए तथा २७०० रु. विद्यार्थियोंको पुरस्कार देनेके लिए निर्धारित थे। सन १९५६–५७ में इन उपनिवेशोंके भारतीय-स्कूलोंको ९६० रु. ११ आ. ६ की पुस्तकें अनुदानमें दी गई तथा अध्यापकोंके पारिश्रमिक के लिए ५०० रु. स्वीकृत किए गए। भारत सरकारकी ओरसे इन उपनिवेशोंमें हिन्दी प्रचार एवं शिक्षाके कामको हर वर्ष इसी प्रकार प्रोत्साहन मिलता आया है। इन उपनिवेशोंमें रहनेवाले भारतीय अपने स्वयंस्फूर्त सगठनों एवं प्रयत्नों द्वारा भी हिन्दीके विद्यालय और कक्षाएँ चलाते है, पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलते हैं तथा विस्तृत पैमानेपर धार्मिक अवसरों तथा त्योहारों एवं उत्सवोंमें हिन्दीका प्रयोग करते हैं।

अन्यत्र

अन्दमान-निकोबारमें मायाबन्दर तथा पोर्टब्लेअर, अदनमें अदन और दक्षिण अमेरिकामें पारामरेबो हिन्दी प्रचार एवं परीक्षा के केन्द्र हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका वहाँ काम चलता है। ट्रिनीडाडमें भी समितिका परीक्षा-केन्द्र है। इसके अलावा इन्डोनेशिया, फारस, अफगानिस्तान तथा अन्यत्र जहाँ भारतीय जा बसे हैं उनमें तथा राजनयिक एवं सांस्कृतिक कारणोंसे अन्य लोगोंमें भी हिन्दी सीखनेकी इच्छा बढ़ रही है और उन उन देशोंमें स्वयंस्फूर्त संगठनोंके सहारे हिन्दी शिक्षाके केन्द्र चलाए जाते है तथा पुस्तकालयोंमें हिन्दी,की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ रखी जाती हैं।

हिन्दीके व्यापक प्रचारमें हिन्दी चलचित्रोंका योगदान

आधुनिक युगमें चलचित्रोंका विशेष महत्व है। आजका युग प्रचारका युग है जिसमें चलचित्रोंने जो कार्य किया है वह असाधारण है। हमारे यहाँके चलचित्रोंका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। पहले मूक चित्रोंके द्वारा ही कथा वर्णित की जाती थी, किन्तु जबसे चलचित्रोंको वाणी प्रदान की गई है, तबसे तो बड़ी क्रान्ति-सी आ गई है। चलचित्रोंके द्वारा जनताका मनोरंजन होता ही है साथ ही उनके मन पर भी प्रभाव पड़ता ही है। हम इसका विवेचन यहाँ नहीं कर रहे हैं कि चलचित्रोंके कारण हमारे चरित्र निर्माणमें क्या प्रभाव पड़ा है। हमारा तो सम्बन्ध इसीसे है कि उनके द्वारा हिन्दीकी व्याप्ति सारे देशमें फैल रही है प्रारंभमें तथा अब भी कुछ प्रादेशिक भाषाओंमें चलचित्र बनाए जाते है और वे उन प्रदेशोंमें चलते भी है, पर अधिकांश चलचित्र अब हिन्दीमें ही निर्मित किए जाते है और उनका प्रचलन सारे देशमें बड़े-बड़े नगरोंमें ही नहीं छोटे-छोटे कस्बों

और गाँवोंमें भी हो रहा है। हिन्दीके कुछ चलचित्र तो इतने लोकप्रिय होते है कि वर्ष डेढ़ वर्ष तक मद्रास जैसे तमिल भाषी प्रदेशमें भी चलते है। इन्हें जनता लाखोंकी संख्यामें देखती है। उनकी भाषाको समझती है और कई गीत इतने लोकप्रिय होते है कि वे लोगोंकी जबानपर चढ़ जाते है। पुस्तकोंको पढ़कर हिन्दी सीखना और बोलती हुई फिल्मोंको सुनना इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। फिल्मोंके कारण हिन्दीके उच्चारणकी शुद्धता अधिक सम्भव है, इसलिए इस कथनमें कोई अत्युक्ति न होगी कि हिन्दीका प्रचार चलचित्रोंके द्वारा भी बड़ी मात्रामे हुआ है। चलचित्रोंकी भाषाके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। वह इतनी प्रांजल नहीं होगी पर हिन्दी या मूलके हिन्दुस्तानी रूपके प्रति लोगोंमें रुचि उत्पन्न हुई है यह स्वीकार करना होगा।

उपसंहार

इस विवरणमें सभी संस्थाओं और सभी व्यक्तियों द्वारा किए हुए प्रयत्नोंका विवरण नही दिया जा सका है। एक तो सभीसे विवरण प्राप्त नहीं हो सका है एवं दूसरे स्थानाभावके कारण भी ऐसा हुआ है। कुछ ऐसी भी संस्थाएँ एवं व्यक्ति रहे होंगे, जिन्होंने हिन्दीके प्रचार-प्रसारमे योगदान दिया है, लेकिन उस सम्बन्धमें कोई जानकारी न होनेके कारण उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका है बहुतसी संस्थाएँ तथा व्यक्ति जिनके सम्बन्धमें यहाँ विवरण नहीं दिया जा सका है वे हमें क्षमा करेंगे।

यहाँ हिन्दीके प्रचार-प्रसारके कार्यके लिए किए गए प्रयत्नोंके प्रति निर्देश करना हमारा उद्देश्य था इसलिए केवल ऐसे मुख्य प्रयत्नोंका ही विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी प्रचारका कार्य स्वतंत्रता प्राप्तिके पश्चात् जिस गतिके साथ आगे बढ़ना चाहिए था वैसा हो नहीं पाया है। सन् ४९ में संविधानकी इस सम्बन्धमें बनी धाराओंमें यह निर्णय किया गया कि हिन्दी केन्द्रकी राजभाषा होगी और राजकाजमें उसका पूरा प्रचलन १५ वर्षकी अवधिमें होगा। उस समय प्रत्येक राष्ट्रभाषा प्रेमीको यह लग रहा था कि यह अवधि बहुत लम्बी है। राष्ट्रीयताकी भावना उस समय बड़ी प्रबल थी। देश उन्हीं दिनोंमें स्वतंत्र हुआ था अतः स्वभावतः जनतामें उल्लास और चेतनाकी एक लहर-सी आ गई थी। स्वतंत्र गौरवशाली भारतके निर्माणकी कल्पनाएँ प्रत्येक राष्ट्रप्रेमीके मनमें लहरा रही थीं। लेकिन इस बीचमें कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई, जिनके कारण स्वतंत्रताके आन्दोलनका जोश प्रायः लुप्त सा हो गया। सर्वत्र उदासीनताका वातावरण देखनेको मिला। हमारी राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार कार्यके प्रति भी उदासीनता दिखाई देने लगी। प्रादेशिक भावना और भाषगत संकीर्णताका वातावरण इन दिनों कुछ अधिक रहा। फलस्वरूप राष्ट्रीय भावनात्मक एकताको अधिक पुष्ट करनेकी आवश्यकता आज अनुभव की जा रही है। प्रत्येक राष्ट्र-हितैषी व्यक्ति इसी दिशामें प्रयत्नशील है कि भावनात्मक एकता कैसे स्थापित हो; इसके लिए अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्रके नेतागण चिन्तन कर रहे हैं और ऐसी योजनाएँ बना रहे हैं, जिनसे देशमें भावनात्मक एकता स्थापित हो। भावनात्मक एकताको सुदृढ़ करनेका सबसे प्रबल साधन राष्ट्रभाषा है। इसके प्रचार एवं प्रसारके लिए जितना प्रयास किया जाएगा उसका निश्चित ही यह शुभ परिणाम होगा कि आजकी संकीर्णता दूर हो जाएगी और शुद्ध राष्ट्रीय भावनाका निर्माण होगा। अतः हिन्दी प्रचार कार्यमें लगी हुई संस्थाओंके लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अपने प्रचार कार्यको अधिक वेग और शक्तिके साथ सम्पन्न करें। सरकारकी उदासीनता तथा जनतामें उत्साहकी कमीके कारण

उनके सामने आज आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयाँ आ रही हैं पर उन्हें अपना यह कार्य उत्साह पूर्वक आगे बढ़ाना चाहिए।

प्रादेशिक भाषाएँ एवं हिन्दीके प्रचलनमें सबसे बड़ी बाधा पारिभाषिक शब्दावलीकी है। उसके लिए सरकारकी ओरसे प्रयत्न किए जा रहे हैं। लगभग सभी विषयोंकी प्रारंभिक परिभाषा तैयार भी कर ली गई है। अब इस परिभाषाका सभी भाषाओंमें शीघ्र व्यवहार होना चाहिए। उसके लिए भी प्रचारकी आवश्यकता है।

गत कुछ वर्षोंसे यह विचारधारा चल पड़ी है कि अँग्रेजीके ज्ञानके बिना हमारा सर्वतोमुखी विकास नहीं हो सकेगा। जहाँ तक ज्ञानकी भाषाके रूपमें अँग्रेजी सीखनेका प्रश्न है उसको कोई भी इन्कार नही करेगा। जो विज्ञानमें निष्णात बनना चाहें उनको अँग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाएँ सीखना आवश्यक है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके लिए भी अँग्रेजीकी आवश्यकता महसूस की जा सकती है। अँग्रेजी ही क्यों संसारके प्रगतिशील देशोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए हमें और भी विदेशी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना होगा। लेकिन इन सबकी मर्यादाएँ हैं। जो विद्यार्थी विज्ञानके क्षेत्रमे आगे बढ़ना चाहें उनके लिए इन विदेशी भाषाओंका ज्ञान आवश्यक कर दिया जा सकता है। केन्द्रीय सरकारको भी विभिन्न देशोके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उन-उन देशोंकी भाषाओके जाननेवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता रहेगी, इसलिए हमारे शिक्षा क्रममे मेधावी विद्यार्थियोंके लिए अँग्रेजीके अतिरिक्त दूसरी विदेशी भाषाओंके पठन-पाठनकी सुविधा रखनी चाहिए। लेकिन जिस प्रकार आज अँग्रेजी हमपर छाई हुई है उसी प्रकार उसका अधिक दिनों तक बना रहना हमारे लिए विघातक होगा। हमारी भाषाएँ अँग्रेजीके प्रचलनके कारण अपना विकास नहीं कर सकेंगी और यह तो निश्चित ही है कि भारत अपनी प्रतिभाका सर्वतोमुखी विकास अपनी भाषाके द्वारा ही कर सकेगा। विदेशी भाषा चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो उसके व्यवहारसे हमारी प्रतिभा तथा मौलिकताका विकास होना कठिन है और उससे हमारी सर्जन शक्ति का भी ह्रास होगा। अपनी भाषाके अनुशीलनसे चेतना प्रगट होती है। कुछ इने-गिने परन्तु महत्वके व्यक्ति अँग्रेजीके व्यामोहमें पड़कर यहाँतक अपना मत प्रकट करते हैं कि यदि अँग्रेजी इस देशसे हट गई तो देशकी बड़ी अवनति होगी। यह विचारधारा हमारे राष्ट्रके लिए हानिकारक है।

सरकारकी ओरसे एक विधेयक पारित किया गया है; सरकार द्वारा जिसमें हिन्दीके साथ अँग्रेजीको अनिश्चितकाल तक एक सहभाषाके रूपमें स्थान दिया गया है। हिन्दीको उसका स्थान देनेमें जितना कार्य होना चाहिए था उतना नहीं हुआ इस कारण आज व्यावहारिक कठिनाइयाँ अनुभव की जाती हों और विधानमें निर्दिष्ट अवधिके अन्दर अँग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको लाना यदि सम्भव न हो तो कुछ अधिक समयके लिए अँग्रेजीका प्रचलन हिन्दीके साथ-साथ जारी रखा जा सकता है। लेकिन इसको अनिश्चितकाल तक सहभाषाका स्थान देना सर्वथा अनुचित होगा। संविधानमे १५ वर्षोंकी लम्बी अवधि रखी गई, इस कारण सम्भव है कि सरकार इस भ्रममें रही कि धीरे-धीरे यह काम हो ही जाएगा। उसकी इस उदासीनताको देखकर प्रतिक्रियावादियोंको बल मिला और उन्होंने आज यह स्थिति पैदा कर दी है कि अँग्रेजीको १९६५ के बाद भी कायम रखनेका प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। अनिश्चित काल तक यदि अँग्रेजी सहभाषाके रूपमें रही तो शिथिलताका ऐसा वातावरण निर्मित होगा कि

हिन्दी सीखनेका योजनाबद्ध प्रयत्न नही होगा। हमारी भाषाओंका विकास भी इस कारण कुण्ठित होगा।

हमारा विश्वास है कि राष्ट्र हितैषी सभी व्यक्ति इस प्रश्नपर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करेंगे और ऐसा मार्ग निकालेंगे कि जिससे देशकी भाषा विषयक समस्याका सुन्दर हल निकले।

सविधानके अनुसार वह भारतकी सामाजिक संस्कृतिको अभिव्यक्त करनेवाली राष्ट्रभाषा बननेवाली है। इसलिए सभी प्रदेशोंकी विशिष्टता तथा प्रतिभाका उसमें प्रतिबिंब पड़ना चाहिए और भारतको जिन्होंने अपनाया है और जिनकी भावनाएँ मान्यताएँ विश्वास आदिने भारतकी संस्कृतिके विकासमें प्रभाव डाला उन हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी जातिके विद्वानों, चिन्तकों द्वारा उसके उच्च निर्माण कार्यमे पूरा सहयोग होना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् हिन्दीका उत्तरदायित्व और बढ़ गया है। आज हमारे केन्द्रीय शासनमें अँग्रेजीका व्यवहार हो रहा है उसका स्थान हिन्दीको लेना है। ज्ञान, विज्ञानके क्षेत्रमे अँग्रेजी आज छाई हुई है; उसे अपदस्थ कर हिन्दी एवं हमारी प्रादेशिक भाषाओंको प्रतिष्ठित करना है अतः हिन्दीका वर्तमान स्वरूप दिनों दिन निखरता ही जाएगा। इसे अपना सर्वतोमुखी विकास करना है। आज हिन्दीकी धारा हरिद्वारके पासकी गंगाकी धारा-सी है। वह दिनों दिन बढ़ती ही जाएगी और गगाके समान अपना प्रगाढ़ रूप कुछ ही समयमें ग्रहण करेगी। उसका ओज और उसकी शक्ति अधिकाधिक बढ़ती जाएगी। भारतकी बहुमुखी प्रतिभा हिन्दीके द्वारा मुखरित होगी। भारतके विभिन्न प्रदेशोंमे जो सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही है, उनमें सामंजस्य स्थापित करनेका कार्य हिन्दीको ही करना है। प्रान्त-प्रान्तके बीच जो खाइयाँ है उन्हें पाटनेका कार्य भी हिन्दीके द्वारा ही होगा। इस प्रकार हिन्दीका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। उसके वेग और उसकी शक्तिको अब कोई रोक नहीं सकता। वह जनता जनार्दनकी भाषा होकर ही रहेगी। पर उसके लिए सबके सहयोगकी आवश्यकता है। हिन्दी भाषी क्षेत्रियोंके ही नहीं, अहिन्दी-भाषियोंके भी। सारे भारतका आज हिन्दीपर दावा है।